॥ श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ॥

2158

महर्षिवेदव्यासप्रणीतं

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्
श्रीधरीटीका एवं
गुजरातीव्याख्यासहितम्

[तृतीय-खण्ड]

(सप्तमः, अष्टमः एवं नवमः स्कन्धः)

सच्चिदानन्दरूपाय विश्वोत्पत्त्यादिहेतवे।
तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः॥
सदा सेव्या सदा सेव्या श्रीमद्भागवती कथा।
यस्याः श्रवणमात्रेण हरिश्चित्तं समाश्रयेत्॥

अनुवादिका : **श्रीमती वैदेही पार्थिवकुमार अध्यारु**

[गीताप्रेस, गोरखपुर]

प्रथम संस्करण ०००००

अनुवादिका :
श्रीमती वैदेही पार्थिवकुमार अध्यारु

मूल्य :

प्रकाशक एवं मुद्रक : **गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**
गोबिन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान
फोन : (०५५१) ३३४७२१; फैक्स : २३३६९९७

website : www.gitapress.org | **e-mail : booksales@gitapress.org**

અક્ષરમાલિકા

રસેશ્વર શ્રીબાલકૃષ્ણલાલજીની અસીમ કૃપાથી ગુજરાતી અનુવાદ સહિત શ્રીમદ્ ભાગવત અને શ્રીધરી ટીકાનો ત્રીજો ખંડ અધ્યાત્મનિષ્ઠ વાચકો સમક્ષ ગીતાપ્રેસ દ્વારા પ્રસ્તુત થાય છે, તે અવસરે મને અપાર તૃપ્તિનો અનુભવ થઈ રહ્યો છે.

સચ્ચિદાનંદ પરમાત્માના સ્વકીય તેજપુંજસ્વરૂપ શ્રીમદ્ ભાગવતામૃતને ઘૂંટડે ઘૂંટડે માણતા આપણે સપ્તમ સ્કંધના ઉંબરે ઊભા છીએ. ભગવાન બાદરાયણ વ્યાસજી શ્રીશુકદેવજીના મુખે શ્રીમદ્ ભાગવતની મધુર કથા દ્વારા આપણને વારંવાર એક જ લક્ષ્ય પ્રત્યે અંગુલિનિર્દેશ કરે છે.

'तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत्॥' શ્રીમદ્ ભા. ૭/૧/૩૧ 'તેથી ગમે તે પ્રકારે મન શ્રીકૃષ્ણમાં તન્મય કરી લેવું જોઈએ.' પણ મન શ્રીકૃષ્ણમાં તન્મય થાય કેવી રીતે? તે માટે કહે છે કે ભગવાનની પરમ મંગળમય લીલાકથાઓનું વારંવાર શ્રવણ કરવાથી ભગવાન શ્રીકૃષ્ણ કાનના માર્ગથી હૃદયમાં આવીને બિરાજમાન થઈ જાય છે.

'प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण स्वानां भावसरोरुहम्।
धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत्॥ (શ્રીમદ્ ભા. ૨/૮/૫)

'કાનનાં છિદ્રો દ્વારા ભક્તોના ભાવમય હૃદયકમળમાં પ્રવિષ્ટ થયેલા શ્રીકૃષ્ણ, શરદઋતુ જળના મળને દૂર કરે તેમ ભક્તોના મનોમળને દૂર કરે છે.' માટે કાનના પડિયા ભરી ભરીને શ્રીકૃષ્ણકથામૃતના રસાસ્વાદનમાં મનને નિમગ્ન કરી દેવું જોઈએ.

ભગવાન વેદવ્યાસજીનાં દુર્બોધ પદોને સુબોધ બનાવનાર પંડિત શ્રીધરાચાર્ય સ્વામિચરણોને પ્રણામ કરીને અને જેમની જ્ઞાનોન્મુખી કૃપા અને માર્ગદર્શનથી આ અનુવાદ થઈ શક્યો છે તે પરમપૂજ્ય ગુરુદેવ શ્રી જોષીસાહેબના ચરણોમાં પ્રણામ કરીને આ તૃતીય ખંડરૂપી અક્ષરમાલિકા પ્રભુની પ્યારી ગ્રીવામાં પ્રેમથી પધરાવું છું.

— **શ્રીકૃષ્ણકૃપાકાંક્ષિણી**

વૈદેહી

॥ શ્રીહરિઃ ॥

વિષય-સૂચી

તૃતીય ખંડ

અધ્યાય સં.	વિષય	પૃષ્ઠાંક

સાતમો સ્કંધ

આઠમો સ્કંધ

નવમો સ્કંધ

॥ श्रीहरिः ॥

मेरा सत् चित् आनंदरूप कोई कोई जाणे रे॥
जनम मरण मेरा धर्म नहीं है।
पाप पुण्य मेरा कर्म नहीं है॥
मैं हूँ साक्षीभूत कोई कोई जाणे रे॥
पंचकोश से मैं हूँ न्यारा।
तीन अवस्था से भी न्यारा॥
अनुपम चित्-स्वरूप कोई कोई जाणे रे।
मेरा सत् चित् आनंदरूप कोई कोई जाणे रे॥

मंगलाचरण

वासुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनं
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्।
कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च
नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः॥

नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने
नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये।
अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव। त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव॥
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव। त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गोविन्द दामोदर स्तोत्रम्

करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम्।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बाल मुकुन्दं मनसा स्मरामि॥ १॥

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ २॥

विक्रेतुकामा किल गोपकन्या मुरारिपादार्पित चित्तवृत्तिः।
दध्यादिकं मोहवशादवोचद् गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ३॥

गृहे गृहे गोपवधू कदम्बाः सर्वे मिलित्वा समवाप्य योगम्।
पुण्यानि नामानि पठन्ति नित्यं गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ४॥

सुखं शयाना निलये निजेऽपि नामानि विष्णोः प्रवदन्ति मर्त्याः।
ते निश्चितं तन्मयतां व्रजन्ति गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ५॥

जिह्वे सदैवं भज सुन्दराणि नामानि कृष्णस्य मनोहराणि।
समस्तभक्तार्ति विनाशनानि गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ६॥

सुखावसाने इदमेव सारं दुःखावसाने इदमेव ज्ञेयम्।
देहावसाने इदमेव जाप्यं गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ७॥

श्रीकृष्ण राधावर गोकुलेश गोपाल गोवर्धन नाथ विष्णो।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ८॥

*****

प्रार्थना

(जित देखौं तित श्याममयी है)

गोविन्द, मेरी यह प्रार्थना है, भूलूँ न मैं नाम कभी तुम्हारा।
निष्काम होकर के दिन रात गाऊँ, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति॥ १॥

देहान्त काले तुम समाने हो, बंशी बजाते, मन को लुभाते।
गाता यही मैं तन नाथ त्यागूँ, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति॥ २॥

माता यशोदा हरि को जगावें, जागो, उठो कृष्ण अब नेत्र खोलो।
द्वारे खड़े गोप बुला रहे हैं, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति॥ ३॥

गोपी दही छाँछ विलो रही है, मीठा करे शब्द घड़ा मथानी।
गाती मथानी संग नारि सारी, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति॥ ४॥

ले ले करो में निज पिंजरों को, कोई पढ़ाती शुक सारिकाको।
गाते यही हैं शुक सारिका भी, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति॥ ५॥

बैठी लिये है दुहनी अनोखी, गो दुग्ध काढ़े अबला नवेली।
गोदुग्ध धारा संग गा रही है, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति॥ ६॥

माला रही गूँथ सुबाम कोई, लै गोद बैठी अपने ललाको।
गा–गा सुनाती निज बाल को है, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति॥ ७॥
धोये किसीने मुख बालकों के, लै गोद में प्यार करे, दुलारे।
हे लाल गावो तुम संग मेरे, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति॥ ८॥
कोई जगाती निज लाल को है, जागो दुलारे टुक नैन खोलो।
ये नाम बोलो हरिके सलोने, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति॥ ९॥
कोई नवेली, पति को जगावे, प्राणेश जागो अब नींद त्यागो।
बेला यही है हरि गीत गाओ, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति॥ १०॥
कासार के मध्य लला विलोको, कैसे मनोहारि सरोज फूले।
बैठे यही सब मिलकर के गाते, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति॥ ११॥
देखो पखेरू तरु डालियों में, गाते सुहाते मधुर स्वरों में।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति॥ १२॥
ऊँचे स्वरों से हरि गीत गाती, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति॥ १३॥
जागे पुजारी हरि मंदिरों में, जाके जगाते हरि को सभी ये।
हे शीलसिन्धो, अब नेत्र खोलो, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति॥ १४॥

धन्या सभी हैं व्रज गोपिकाएँ, गाती सदा जो हरि नाम प्यारा।
गो दोहते भी यह गीत गाती, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति॥ १५॥
है टूटता तार नहीं कभी ये, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति॥ १६॥
डाली मथानी दधि में किसी ने, है ध्यान आया दधि चोर का ही।
गदगद् हुआ कंठ पुकारती है, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति॥ १७॥
हैं लीपती आँगन नारि कोई, गोविन्द आवें, मय गेंद खेलें।
ध्यानस्थ यह ही पद गा रही हैं, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति॥ १८॥
सोया किसी का सुत पालने में, डोरी करों से जब खींचती है।
गाती यही है हरि प्रेम मत्ता, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति॥ १९॥
रोया किसी का जब लाल प्यारा, हो प्रेम मग्ना उसने पुकारा।
रोओ न, गाओ तुम संग मेरे, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति॥ २०॥
झारि उठाई कर में किसीने, धोती रसोई, मन में विचारे।
गोपाल जीमे हम गीत गायें, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति॥ २१॥
कोई नवेली घर को बुहारे, गोपाल को ही मन में निहारे।
आनन्द से शील यही पुकारे, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति॥ २२॥

देखो जहाँ भी यह दीखता है, सोचो जरा भी यह सूझता है।
सर्वत्र यह ही स्वर गूँजता है, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति॥ २३॥
राकेश तारागण भानु विद्युत, श्यामा घटा ये जलबिन्दु सारे।
आकाश में है ध्वनि यह लगाते, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति॥ २४॥
पक्षी अनेको नभ पन्थ जाते, कैसी सुधा की झड़ियाँ लगाते।
मीठे स्वरों में हरि गीत गाते, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति॥ २५॥
स्त्रोतस्विनी के कल नाद मध्ये, उत्तुङ्गशैलाग्र-जल-प्रपाते।
हैं शब्द ये ही श्रुति मध्य गाते, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति॥ २६॥
ग्रामों घरों में वन निर्जनों में, अट्टालिका में कुटिया धरा में।
हैं गूँजते नाम यही सभी में, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति॥ २७॥
वारीश* की प्रेममयी तरंगे, भावेश की भाव भरी उमंगे।
संकेत द्वारा दिन रात गाती, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति॥ २८॥

* वारीश (समुद्र)

॥ श्रीहरिः ॥

आरति बालकृष्णकी कीजै

आरति बालकृष्ण की कीजै।
अपनो जनम सुफल करि लीजै॥

श्रीयशोदाको परम दुलारो,
बाबाकी अखियन को तारो।
गोपिन के प्राणन सो प्यारो,
इन पर प्राण निछावर कीजै॥
आरति बालकृष्ण की कीजै॥

बलदाऊको छोटो भैया,
कनुवा कहि कहि बोले मैया।
परममुदित मन लेत बलैया,
अपनो सरबस इनकूँ दीजै॥
आरति बालकृष्ण की कीजै॥

श्रीराधावर सुघर कन्हैया,
व्रजजन को नवनीत खवैया।
देखत ही मन नयन चुरैया,
यह छबि नयनन में भरि लीजै॥
आरति बालकृष्ण की कीजै॥

तोतरि बोलनि मधुर सुहावे,
सखन मध्य खेलत सुख पावे।
सोइ सुकृती जो इनकूँ ध्यावे,
बस इनकूँ अपनो करि लीजै॥
आरति बालकृष्ण की कीजै॥

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीमद्भागवतकी आरती

आरति अतिपावन पुरानकी।
धर्म-भक्ति-विज्ञान-खानकी ॥
महापुरान भागवत निरमल।
शुक-मुख-विगलित निगम-कल्प-फल।
परमानन्द-सुधा-रसमय कल।
लीला-रति-रस रस-निधानकी ॥
॥ आरति० ॥

कलि-मल-मथनि त्रिताप-निवारिनि।
जन्म-मृत्युमय भव-भय-हारिनि।
सेवत सतत सकल सुखकारिनि।
सुमहौषधि हरि-चरित-गानकी ॥
॥ आरति० ॥

विषय-विलास-विमोह-विनाशिनि ।
विमल विराग विवेक विकाशिनि।
भगवत्तत्त्व-रहस्य प्रकाशिनि।
परम ज्योति परमात्म-ज्ञानकी ॥
॥ आरति० ॥

परमहंस-मुनि-मन उल्लासिनि।
रसिक-हृदय रस-रास-विलासिनि।
भुक्ति, मुक्ति, रतिप्रेम-सुदासिनि।
कथा अकिञ्चनप्रिय सुजानकी ॥
॥ आरति० ॥

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

सप्तमः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

નારદ-યુધિષ્ઠિરનો સંવાદ તથા જય-વિજયની કથા

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

स्वभक्तपक्षपातेन तद्विपक्षविदारणम्।
नृसिंहमद्भुतं वन्दे परमानन्दविग्रहम्॥ १

શ્રીગણેશજીને નમસ્કાર

પોતાના ભક્ત ઉપર પક્ષપાત હોવાથી તેના વિરોધીને વિદારી નાખનાર અદ્ભુત એવા પરમાનંદસ્વરૂપ નરસિંહ ભગવાનને હું વંદન કરું છું.॥ ૧ ॥

वंशीधरी—अद्भुतमकस्मादाविर्भूतम्।

અચાનક આવિર્ભૂત થયેલા અદ્ભુત (નરસિંહ) ને (હું વંદન કરું છું.)

ऊतिः पञ्चदशाध्यायैः सप्तमे वर्ण्यतेऽधुना।
ऊतिश्च वासना प्रोक्ता तत्तत्कर्मानुसारिणी॥ २

હવે સાતમા સ્કંધમાં પંદર અધ્યાયો દ્વારા તે શુભ-અશુભ કર્મોને અનુસરનારી ઊતિ, કે જેને વાસના કહેલી છે તેનું વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે.॥ ૨ ॥

अशुभा च शुभा चेति द्विधा सा हेतुभेदतः।
अशुभा महतां कोपाच्छुभा महदनुग्रहात्॥ ३

જુદા જુદા હેતુઓ હોવાને કારણે તે વાસના અશુભ અને શુભ–એમ બે પ્રકારની છે. અશુભ વાસના મહાપુરુષોના કોપથી થાય છે અને શુભ વાસના મહાપુરુષની કૃપાથી થાય છે.॥ ૩ ॥

हरेर्द्वारपयोर्यद्वद्वैकुण्ठे वसतोरपि।
चतुःसनरुषा विष्णुद्वेषाद्यशुभवासना॥ ४

શ્રીહરિના (જય-વિજય નામના) દ્વારપાળોને વૈકુંઠમાં વસતા હોવા છતાં પણ ચાર સનત્કુમારોના ક્રોધથી ભગવાન વિષ્ણુ ઉપર દ્વેષ થવો વગેરે અશુભ વાસના જેમ થઈ હતી (તેમ અશુભ વાસના સમજવી).॥ ૪ ॥

---

* મૂળ શ્લોક અને તેનો અનુવાદ મોટા અક્ષરોમાં છે અને તેના ઉપરની શ્રીધરસ્વામીની ભાવાર્થદીપિકા ટીકા તેનાથી નાના અક્ષરોમાં છે. શ્રીધરજી દ્વારા સમજાવવામાં આવેલા મૂળ શ્લોકના શબ્દોને ગુજરાતી અનુવાદમાં અવતરણ ચિહ્નોમાં મૂકી સમજાવવામાં આવ્યા છે. ક્યાંક વિશેષ પ્રકાશ પાડવા અન્ય ટીકાઓ પણ ઉદ્ધૃત કરેલી છે.

यथा च दैत्यगर्भेऽपि प्रह्लादस्य सतः स्थिरा।
नारदानुग्रहादास विष्णौ सद्भक्तिवासना॥ ५

દૈત્યના ગર્ભમાં હોવા છતાં જેમ પ્રહ્‌લાદજીને શ્રીનારદજીના અનુગ્રહથી ભગવાન વિષ્ણુ ઉપર શ્રેષ્ઠ ભક્તિરૂપ સ્થિર વાસના થઈ હતી (તેમ શુભ વાસના સમજવી).॥ ૫॥

स्वभक्तं च सदा विष्णुर्द्विषन्तमपि रक्षति।
तृतीयेऽथ भवे द्वास्थावकरोदात्मसात्पुनः॥ ६

પોતાનો ભક્ત દ્વેષ કરતો હોય તો પણ ભગવાન વિષ્ણુ તેની સદા રક્ષા કરે છે. તે અનુસાર પોતાના દ્વારપાળ જય-વિજયને ત્રીજા જન્મે (શાપમુક્ત કરી ભગવાને) પાછા નિજ જન તરીકે સ્વીકાર્યા હતા.॥ ૬॥

अतो मनीषिणा यत्नः कार्यो महदनुग्रहे।
इत्येतदर्थमूतीनामत्र लक्षणमुच्यते॥ ७

આથી બુદ્ધિમાન મનુષ્યે મહાપુરુષોનો અનુગ્રહ પ્રાપ્ત કરવા માટે પ્રયત્ન કરવો જોઈએ, એ વાત સાર્થક કરવા માટે અહીં (સપ્તમ સ્કંધમાં) ઊતિનું લક્ષણ કહેવામાં આવ્યું છે.॥ ૭॥

तत्रादौ दशभिर्दैत्यतत्पुत्रमतिभेदतः।
महत्कोपानुकम्पोत्थवासनाभेद उच्यते॥ ८

તેમાં પ્રથમ દસ અધ્યાયો દ્વારા દૈત્ય અને તેના પુત્રની બુદ્ધિમાં ભેદ હોવાથી (દૈત્ય હિરણ્યકશિપુ ઉપર) મહાપુરુષોના કોપથી અને (તેના પુત્ર પ્રહ્‌લાદ ઉપર) મહાપુરુષોની અનુકંપાથી ઊભી થતી વાસનાઓનો ભેદ કહેવામાં આવે છે.॥ ૮॥

सद्वासना च युज्येत कर्मभिः शुद्धचेतसः।
परैस्तु पञ्चभिस्तस्मात्क्रियते धर्मनिर्णयः॥ ९

શુદ્ધ ચિત્તવાળા મનુષ્યની સાથે કર્મો વડે સદ્‌વાસના જોડાય છે, તેથી (દસ અધ્યાય) પછીના પાંચ અધ્યાયો દ્વારા ધર્મનિર્ણય કરવામાં આવ્યો છે.॥ ૯॥

तत्र तु प्रथमेऽध्याये हिरण्यकशिपोः सुते।
विष्णुभक्ते विरोधस्तु विप्रशापज ईर्यते॥ १०

તે દસ અધ્યાયોમાંના પ્રથમ અધ્યાયમાં તો હિરણ્યકશિપુનો પોતાના વિષ્ણુભક્ત પુત્ર વિષે, સનકાદિ દ્વારા અપાયેલા શાપને કારણે (થયેલા અસુરભાવથી) જન્મેલો વિરોધ જ વર્ણવવામાં આવે છે.॥ ૧૦॥

॥ श्रीगोपालकृष्णाय नमः॥

॥ શ્રીગોપાલકૃષ્ણને નમસ્કાર॥

यदुक्तं पूर्वस्कन्धान्ते—
हतपुत्रा दितिः शक्रपार्ष्णिग्राहेण विष्णुना।
मन्युना शोकदीप्तेन ज्वलन्ती पर्यचिन्तयत्॥

પૂર્વના સ્કંધ (૬) ના અંતમાં જે કહેવામાં આવ્યું કે ‘ઇન્દ્રના પક્ષમાં રહી તેને ગુપ્ત રીતે પાછળથી સહાય કરનાર ભગવાન વિષ્ણુ દ્વારા

इति तच्छ्रुत्वा विस्मितः परीक्षित्पृच्छति—**सम इति** त्रिभिः।

राजोवाच

समः प्रियः सुहृद्ब्रह्मन् भूतानां भगवान् स्वयम्।
इन्द्रस्यार्थे कथं दैत्यानवधीद्विषमो यथा॥ १

न हि समस्य सुहृदश्च वैषम्यं नामास्ति। न च प्रियस्य प्रीतिकर्तृषु वैषम्यं युक्तमित्यर्थः॥ १॥

किंच यस्य यैः प्रयोजनं सिध्यति स तत्पक्षपाती भवति, येभ्यो बिभेति तान्द्वेषेण हन्ति न तु तदत्रास्तीत्याह—**न हीति**।

न ह्यस्यार्थः सुरगणैः साक्षान्निःश्रेयसात्मनः।
नैवासुरेभ्यो विद्वेषो नोद्वेगश्चागुणस्य हि॥ २

निःश्रेयसं परमानन्द एव आत्मा स्वरूपं यस्य। असुरेभ्यश्चोद्वेगो भयं नास्ति। अतो विद्वेषोऽपि नास्त्येव। तत्र हेतुः—**अगुणस्येति**। गुणाधीनौ प्रीतिद्वेषावित्यर्थः॥ २॥

वंशीधरी—निर्गुणस्य गुणाभावात्तद्धेतुकरागद्वेषौ कथं सम्भवत इति भावः।

જેના પુત્રો મરાયા હતા તેવી, શોકને કારણે ઉદ્દીપ્ત થયેલા ક્રોધથી સળગતી દિતિ વિચારવા લાગી.' (શ્રીમદ્ ભા.૬/૧૮/૨૩) તે સાંભળીને વિસ્મય પામેલા રાજા પરીક્ષિત ત્રણ શ્લોકોથી પૂછે છે— '**समः इति।**'

રાજા પરીક્ષિત બોલ્યા – હે બ્રહ્મન્, સર્વ પ્રાણીઓને માટે સમાન, પ્રિય તથા સુહૃદ એવા ભગવાને, વિષમ બુદ્ધિવાળા હોય તેમ ઈન્દ્ર માટે દૈત્યોનો નાશ કેમ કર્યો?॥ ૧૧॥

(ભેદભાવથી રહિત) સમાન અને મિત્ર એવા ભગવાનને ખરેખર વિષમતા ન હોય. વળી, સર્વના પ્રિય એવા ભગવાનને પ્રીતિ કરનારાઓ ઉપર વિષમભાવ હોય તે યોગ્ય નથી, એમ અર્થ છે.॥ ૧॥

વળી, જેનું પ્રયોજન જેમનાથી સિદ્ધ થાય તે તેનો પક્ષપાતી થાય છે અને જેમનાથી ભય થાય છે તે તેમને દ્વેષથી હણે છે. અહીં તો તે બન્ને નથી, એમ કહે છે— '**न हि इति।**'

ખરેખર, સાક્ષાત્ પરમાનંદ એ જ જેમનું સ્વરૂપ છે તેવા આ ભગવાનને દેવગણો સાથે કંઈ પ્રયોજન નથી અને સત્ત્વાદિ ગુણરહિત એવા (આ) ભગવાનને અસુરોથી ભય નથી અને દ્વેષ પણ નથી.॥ ૨॥

'**निःश्रेयसम्**' પરમાનન્દ જ '**आत्मा**' સ્વરૂપ છે જેમનું – અસુરોથી '**उद्वेगः**' ભય નથી, આથી વિદ્વેષ પણ નથી જ. તે માટેનું કારણ— '**अगुणस्य इति।**' ગુણોને અધીન હોય તેવા રાગ અને દ્વેષ એમ અર્થ છે.॥ ૨॥

નિર્ગુણ (એટલે અહીં ગુણાતીત) પરમાત્માને સત્ત્વાદિ ગુણોનો અભાવ હોવાથી તે તે ગુણોને કારણે થનારા રાગ-દ્વેષ કેવી રીતે સંભવે, એવો ભાવ છે.

इति नः सुमहाभाग नारायणगुणान् प्रति।
संशयः सुमहाञ्जातस्तद्भवांश्छेत्तुमर्हति॥ ३

(ભગવત્પ્રેમના) મહાસૌભાગ્યથી સમ્પન્ન (હે શુકદેવજી), આ પ્રમાણે ભગવાન શ્રીનારાયણના (સમત્વાદિ) ગુણો પ્રત્યે અમને ઘણો મોટો સંશય થયો છે, તેને આપ દૂર કરવા સમર્થ છો.॥ ૩॥

श्रीनारायणस्य गुणाननुग्रहनिग्रहादीन् प्रति। तत्तं संशयम्॥ ३॥

શ્રીનારાયણના અનુગ્રહ, નિગ્રહ વગેરે ગુણો પ્રત્યે – '**तत्**' તે સંશયને ॥ ૩॥

श्रीशुक उवाच

साधु पृष्टं महाराज हरेश्चरितमद्भुतम्।
यत्र भागवतमाहात्म्यं भगवद्भक्तिवर्धनम्॥ ४

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – હે મહારાજ (પરીક્ષિત), શ્રીહરિના અદ્ભુત ચરિત્રના સંબંધમાં તમે ખૂબ સુંદર પ્રશ્ન કર્યો, જેમાં ભગવદ્ભક્ત (પ્રહ્લાદ)નું, ભગવાનમાં ભક્તિ વધારનારું માહાત્મ્ય (ગવાયું) છે.॥ ૪॥

भागवतस्य प्रह्लादस्य माहात्म्यं गीयत इति संबन्धः॥ ४॥

'**भागवतस्य**' ભગવદ્ભક્ત પ્રહ્લાદનું માહાત્મ્ય ગવાયું છે, એમ સંબંધ છે.॥ ૪॥

अत्राक्षराधिक्यमार्षम्। 'यद्भागवतमाहात्म्यं' इति पाठः।

'**यत्र भागवतमाहात्म्यम्**' માં વધારાનો અક્ષર છે તે આર્ષ પ્રયોગ છે. '**यद्भागवतमाहात्म्यम्**' એમ પાઠ (પણ) છે. (અનુષ્ટુપ છંદના પ્રત્યેક ચરણમાં આઠ અક્ષર હોય છે.)

गीयते परमं पुण्यमृषिभिर्नारदादिभिः।
नत्वा कृष्णाय मुनये कथयिष्ये हरेः कथाम्॥ ५

(આ) પરમ પુણ્યમય (પ્રસંગ)ને નારદજી વગેરે ઋષિઓ દ્વારા (અતિ પ્રેમથી) ગાવામાં આવ્યો છે. (હવે હું મારા પિતાશ્રી) કૃષ્ણ દ્વૈપાયન વ્યાસને નમસ્કાર કરીને ભગવાન શ્રીહરિની કથા કહીશ.॥ ૪॥

कृष्णाय व्यासाय। कृष्णं मुनिं नत्वेत्यर्थः *॥ ५॥

'**कृष्णाय**' કૃષ્ણ દ્વૈપાયન વ્યાસજીને, વ્યાસમુનિને નમસ્કાર કરીને એમ અર્થ છે.॥ ૫॥

(**जिह्वां लब्ध्वापि यो विष्णुं कीर्तनीयं न कीर्तयेत्।**
लब्ध्वापि मोक्षनिःश्रेणीं स नारोहति दुर्मतिः॥ १

(જિહ્વા પ્રાપ્ત કરીને પણ જે દુર્મતિ મનુષ્ય કીર્તન કરવા યોગ્ય શ્રીવિષ્ણુ ભગવાનનું કીર્તન કરતો નથી, તે મોક્ષની નિસરણી પ્રાપ્ત કરીને પણ તેના પર ચઢતો નથી.॥ ૧॥

* **नत्वा** સાથે દ્વિતીયા વિભક્તિ લેવી જોઈએ એટલે '**कृष्णाय मुनये**' ને બદલે '**कृष्णं मुनिम्**' છે.

तस्माद्गोविन्दमाहात्म्यमानन्दरससुन्दरम् ।
शृणुयात्कीर्तयेन्नित्यं स कृतार्थो न संशयः॥ २

તેથી આનંદરસથી સુંદર શ્રીગોવિંદના માહાત્મ્યનું જે નિત્ય શ્રવણ અને કીર્તન કરે છે, તે કૃતાર્થ થાય છે, એમાં સંશય નથી.॥ ૨ ॥

तस्माद्धीमन्कथां पुण्यां गोविन्दचरिताञ्चिताम्।
महापुण्यप्रदां यस्माच्छृणुष्व नृपसत्तम॥ ३)

માટે હે બુદ્ધિમાન શ્રેષ્ઠ મહારાજા, મહાપુણ્ય આપનારી એવી શ્રીગોવિંદના ચરિત્રથી શોભતી પવિત્ર કથાનું તમે શ્રવણ કરો.॥ ૩॥)

(एतच्छ्लोकत्रयं व्याख्यारहितमधिकं वीर. पाठे।)

(વીર રાઘવજીના પાઠમાં આ ત્રણ વ્યાખ્યારહિત શ્લોકો અધિક છે.)

निर्गुणोऽपि ह्यजोऽव्यक्तो भगवान् प्रकृतेः परः।
स्वमायागुणमाविश्य बाध्यबाधकतां गतः॥ ६

વાસ્તવમાં ભગવાન પ્રકૃતિથી પર હોવાથી નિર્ગુણ કે ગુણાતીત, અજન્મા અને અવ્યક્ત (રાગદ્વેષાદિના કારણ એવાં દેહ, ઇન્દ્રિયોથી રહિત) છે, છતાં પણ પોતાની માયાના (સત્ત્વાદિ) ગુણોમાં અધિષ્ઠિત થઈ પીડા પામનાર અને પીડા આપનારના (વિરોધી) ભાવને ગ્રહણ કરે છે.॥ ૬॥

यस्मात्प्रकृतेः परः। अतो निर्गुणः। अत एवाजः। अत एवाव्यक्तो रागद्वेषादिनिमित्त-भूतदेहेन्द्रियादिरहितः। सोऽपि स्वमायागुणं सत्त्वादिकमाविश्याधिष्ठाय बाध्यान्प्रति। यद्वा देवासुराणां परस्परं या बाध्यबाधकता तां गतः प्राप्तः। तत्र हेतुर्जात इत्यर्थः॥ ६॥

કારણ કે પ્રકૃતિથી પર છે, આથી નિર્ગુણ છે, આથી અજન્મા છે. આથી જ '**अव्यक्तः**' રાગ-દ્વેષાદિના કારણરૂપ દેહ, ઇન્દ્રિયોથી રહિત છે. તેવા હોવા છતાં પણ પોતાની માયાના સત્ત્વાદિ ગુણોમાં '**आविश्य**' અધિષ્ઠિત થઈ પીડા પામનાર પ્રત્યે (પીડા આપનારના ભાવને ગ્રહણ કરે છે.) અથવા દેવો અને અસુરોને એકબીજા પ્રત્યે બાધ્યબાધક ભાવ થાય છે, તે સ્થિતિને ભગવાન પ્રાપ્ત થાય છે. તેમાં તેઓ માત્ર પ્રેરક હેતુ બને છે, એમ અર્થ છે.॥ ૬॥

अन्वि.—देवासुराणां या परस्परं बाध्यबाधकता तां गतः तत्र हेतुर्जातः न तु द्वेषस्नेहाद्यैः। अतः तस्य दोषो नास्ति।

દેવો અને અસુરોમાં પરસ્પર જે બાધ્યબાધક ભાવ છે તેને ભગવાન ગ્રહણ કરે છે. તેમાં ભગવાન (પ્રેરક) હેતુ બને છે, પણ દ્વેષ, સ્નેહ વગેરેથી (કર્તા) નથી બનતા. (ભગવાન પ્રયોજક કર્તા બને છે, પ્રયોજ્ય કર્તા નથી બનતા.) તેથી તેમને દોષ લાગતો નથી.

तत्र गुणानां स्वीयत्वे सति प्राकृतपुरुषवद्विषमः स्यात्तत्तु नास्तीत्याह— **सत्त्वमिति**।

(સત્ત્વાદિ) ગુણો ભગવાનના પોતાના હોય તો તેમનામાં પ્રાકૃત મનુષ્યની જેમ વિષમતા હોય પણ એ ગુણો તેમના પોતાના છે જ નહીં, એમ કહે છે – '**सत्त्वम् इति।**'

सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः।
न तेषां युगपद्राजन् ह्रास उल्लास एव वा॥ ७

સત્ત્વ, રજસ્ અને તમસ્ એ પ્રકૃતિના ગુણો છે, પરમાત્માના નહીં. હે રાજા, તે ગુણોનાં ક્ષય અને વૃદ્ધિ એક સાથે થતાં નથી જ.॥૭॥

ननु स्वेच्छया गुणाधिष्ठानेनापि पक्षपात–वैषम्यं स्यादेव, न। तस्य कालकृतत्वादित्याह— न तेषामिति सार्धेन। उल्लासो वृद्धिः॥७॥

શંકા કરવામાં આવી છે કે સ્વેચ્છાપૂર્વક પણ જો ભગવાન ગુણોના અધિષ્ઠાનરૂપ હોય, તો પક્ષપાતની વિષમતા થાય જ. તે માટે ઉત્તર આપે છે કે તેમ નથી. ગુણોની વિષમતા તો કાળને કારણે થાય છે, એમ દોઢ શ્લોકથી કહે છે— '**न तेषाम् इति**'। '**उल्लासः**' વૃદ્ધિ॥૭॥

जयकाले तु सत्त्वस्य देवर्षीन् रजसोऽसुरान्।
तमसो यक्षरक्षांसि तत्कालानुगुणोऽभजत्॥ ८

તે જુદા જુદા સમયને અનુરૂપ થઈને ભગવાન સત્ત્વગુણની વૃદ્ધિના સમયે– જયકાળે દેવો અને ઋષિઓનો, રજોગુણની વૃદ્ધિના સમયે– જયકાળે અસુરોનો અને તમોગુણની વૃદ્ધિના સમયે– જયકાળે યક્ષો તથા રાક્ષસોનો અભ્યુદય કરે છે.॥૮॥

सत्त्वस्य जयकाले देवादीनृषींश्चाभजत्। तत्तद्देहं प्रविश्य वर्धयतीत्यर्थः। रजसो जयकालेऽसुरान्। तमसो जयकाले यक्षरक्षांसि। तस्य कालस्यानुगुणः सन्॥८॥

સત્ત્વગુણની વૃદ્ધિના સમયે દેવો તથા ઋષિઓનો અભ્યુદય કરે છે. તે દેવ વગેરેના દેહમાં પ્રવેશીને તેઓની વૃદ્ધિ કરે છે, એમ અર્થ છે. રજોગુણની વૃદ્ધિના સમયે અસુરોનો અને તમોગુણની વૃદ્ધિના સમયે યક્ષો તથા રાક્ષસોનો અભ્યુદય કરે છે. તે તે સમયને અનુરૂપ થઈ(તેમ કરે છે.)॥૮॥

समस्यापि निमित्तभेदेन वैषम्ये दृष्टान्तः— **ज्योतिरादिरिव**।

સમાન હોવા છતાં જુદા જુદા નિમિત્તને કારણે વિષમતા થવા માટેનું દૃષ્ટાન્ત— '**ज्योतिः आदिः इव।**'

ज्योतिरादिरिवाभाति सङ्घातान्न विविच्यते।
विदन्त्यात्मानमात्मस्थं मथित्वा कवयोऽन्ततः॥ ९

(એક જ હોવા છતાં) અગ્નિ વગેરે જેમ (જુદા જુદા આકારનાં લાકડાંઓમાં જુદો જુદો) જણાય છે, (તેમ ભગવાન પણ એક જ હોવા છતાં અનેક સ્વરૂપવાળા જણાય છે અને દેવ વગેરે શરીરસમૂહરૂપ) સંઘાતથી પૃથક્ જણાતા નથી. (તેમ છતાં) વિચારશીલ જનો કાર્યદર્શનના ચિહ્નથી અનુમાન કરીને અંતતઃ (સ્વભાવવાદ, કાળવાદ, કર્મવાદ વગેરેનો નિષેધ કરીને) પોતાનામાં રહેલા પરમાત્માને જાણે છે.॥૯॥

ज्योतिरग्निर्यथा काष्ठादिषु। जलं यथा पात्रेषु। आकाशो यथा घटादिषु। तथा भगवान्नानारूप आभाति।

‘**ज्योतिः**’ અગ્નિ જેમ (એક જ હોવા છતાં) લાકડાંઓમાં (જુદા જુદા આકારનો જણાય છે,) (એક જ) જળ (અનેક) પાત્રોમાં જેમ (જુદું જુદું જણાય છે) તથા આકાશ જેમ (એક જ હોવા છતાં અનેક) ઘડાઓમાં (અલગ-અલગ જણાય છે), તેમ ભગવાન પણ અનેકરૂપે પ્રતીત થાય છે.

ननु तर्हि तद्वदेव विवेकेन किं न प्रतीयते तत्राह—संघातात्सुरादिदेहान्न विविच्यते न पृथक् प्रतीयते। तर्हि तान्भजतीति कुतो ज्ञायते तत्राह—**विदन्तीति**।

શંકા કરવામાં આવી છે કે કાષ્ઠ વગેરેને કારણે અગ્નિ ભેદજ્ઞાનથી પૃથક્ દેખાય છે, તેમ ભગવાન કેમ પૃથક્રૂપે પ્રતીત થતા નથી? તે માટે ઉત્તર આપે છે – ‘**संघातात्**’ દેવો વગેરેના દેહથી ‘**न विविच्यते**’ (અગ્નિ અને કાષ્ઠની જેમ) જુદા દેખાતા નથી. તો પછી તે દેવ વગેરેનો ભગવાન અભ્યુદય કરે છે, તે કેવી રીતે જાણી શકાય? તે માટે કહે છે— ‘**विदन्ति इति**।’

आत्मस्थं परमात्मानं कवयो निपुणाः मथित्वा कार्यदर्शनलिङ्गेन विचार्य जानन्ति।

આત્મસ્થ પરમાત્માને ‘**कवयः**’ વિદ્વાનો ‘**मथित्वा**’ કાર્યદર્શનના ચિહ્નથી અનુમાન કરીને જાણે છે. (જ્યાં ઘટજ્ઞાનાદિરૂપ કાર્ય થાય, ત્યાં કારણરૂપ ચૈતન્યસ્વરૂપ પરમાત્મા હોય જ.)

अन्ततः स्वभावकालकर्मादिवादनिषेधेन। विन्दन्तीति पाठे लाभोऽपि ज्ञानमेव।

સ્વભાવવાદ, કાળવાદ, કર્મવાદ વગેરેનો નિષેધ કરીને ‘**अन्ततः**’ આખરે પરમાત્માને જાણે છે. ‘**विन्दन्ति**’ પાઠમાં ‘લાભ પામે છે’, લાભ પણ જ્ઞાન જ છે.

अत्रापि ज्योतिरादिरिवेति द्रष्टव्यम्। यथा सूर्यकान्तादौ दाहदर्शनाज्ज्योतिर्ज्ञायते। यथा च गन्धदर्शनाद्वायुरित्यादि॥ ९॥

અહીં પણ (**'विन्दन्ति'** પાઠમાં **विद् गण ६, उभय. जानन्ति**) **'ज्योतिः आदिः'** જેવું જ સમજવું. જેમ સૂર્યકાન્તમણિ વગેરેમાં દાહકશક્તિ જોવાથી અહીં તેજ છે, એમ જણાય છે તથા જેમ ગંધનું જ્ઞાન થવાથી અહીં વાયુ છે, એમ જણાય છે વગેરે.॥૯॥

तदेवं मायागुणवशेनैतद्वैषम्यं न स्वाभाविकमित्युक्तम्, तर्हि गुणपारतन्त्र्याद-नीश्वरत्वमाशङ्क्याह—

આમ, માયાના ગુણોને વશ થવાથી ઈશ્વરમાં આ વિષમતા દેખાય છે તે સ્વાભાવિક નથી, એમ કહેવામાં આવ્યું. તો પછી ગુણોને કારણે ઈશ્વરમાં પરતન્ત્રતા આવતાં ઈશ્વરત્વ કેવી રીતે રહે, એવી આશંકા કરીને (હવે પછીના શ્લોક વડે) સમાધાન કરે છે.

यदा सिसृक्षुः पुर आत्मनः परो
रजः सृजत्येष पृथक् स्वमायया।
सत्त्वं विचित्रासु रिरंसुरीश्वरः
शयिष्यमाणस्तम ईरयत्यसौ॥ १०

જ્યારે આ પરમેશ્વર જીવના ભોગ માટે શરીરો સર્જન કરવાની ઈચ્છાવાળા થાય છે, ત્યારે પોતાની માયાથી રજોગુણની અલગ સૃષ્ટિ કરે છે. જ્યારે તે ઈશ્વર જુદાં જુદાં શરીરોમાં ક્રીડા કરવા ઈચ્છે છે, ત્યારે પોતાની માયાથી સત્ત્વગુણની અલગ સૃષ્ટિ કરે છે અને શયન (સંહાર) કરનારા તેઓ તમોગુણને પ્રેરે છે.॥૧૦॥

यदा आत्मनो जीवस्य भोगाय पुरः शरीराणि परः परमेश्वरः सिसृक्षुर्भवति तदा साम्येन स्थितं रजः पृथक् सृजति। विचित्रासु तासु पूर्षु रिरंसुः क्रीडितुमिच्छुर्यदा सत्त्वं तदा पृथक् सृजति। शयिष्यमाणः संहरिष्यन्यदा तदा तमः पृथगीरयति प्रेरयति, आधिक्यं नयतीत्यर्थः॥ १०॥

જ્યારે **'आत्मनः'** જીવના ભોગ માટે **'परः'** પરમેશ્વર **'पुरः'** શરીરો સર્જન કરવાની ઈચ્છાવાળા થાય છે, ત્યારે સમભાવે રહેલા રજોગુણની અલગ સૃષ્ટિ કરે છે. જ્યારે તે જુદાં જુદાં શરીરોમાં ક્રીડા કરવા ઈચ્છે છે, ત્યારે પોતાની માયાથી સત્ત્વગુણની અલગ સૃષ્ટિ કરે છે અને **'शयिष्यमाणः'** (ભવિષ્યમાં શયન કરનારા) તે સંહાર કરે ત્યારે તમોગુણને અલગથી **'ईरयति'** પ્રેરે છે, તમોગુણની અધિકતા કરે છે, એમ અર્થ છે.॥૧૦॥

यदा सिसृक्षुरित्यादिनिर्देशात्प्रतीतं कालपारतन्त्र्यं वारयन् प्रधानपुरुषपारतन्त्र्यमपि वारयति—**कालमिति**।

'यदा सिसृक्षुः' (શ્લોક-૧૦માં) નિર્દેશ થયો હોવાથી કાળથી જણાતી પરતન્ત્રતાનું નિવારણ કરતા (પરમેશ્વર) પ્રકૃતિ અને પુરુષથી જણાતી પરતન્ત્રતાને પણ નિવારે છે — **'कालम् इति।'**

कालं चरन्तं सृजतीश आश्रयं
प्रधानपुम्भ्यां नरदेव सत्यकृत्।
य एष राजन्नपि काल ईशिता
सत्त्वं सुरानीकमिवैधयत्यतः।
तत्प्रत्यनीकानसुरान् सुरप्रियो
रजस्तमस्कान् प्रमिणोत्युरुश्रवाः॥ ११

હે નરદેવ, (જગતની ઉત્પત્તિના) નિમિત્તરૂપ પ્રકૃતિ અને પુરુષના સહકારી બને તે રીતે આશ્રયરૂપ એવા વર્તમાનકાળને સત્યસંકલ્પ ઈશ્વર સર્જે છે. હે રાજા, આ જે કાળ છે તે સત્ત્વગુણની વૃદ્ધિ કરે છે, આથી નિયંતા હોવા છતાં પણ ઈશ્વર સત્ત્વગુણપ્રધાન દેવસમૂહની વૃદ્ધિ કરે છે. પરમ યશસ્વી, દેવપ્રિય ભગવાન તે દેવોના પ્રતિપક્ષી એવા રજોગુણ-તમોગુણથી યુક્ત અસુરોનો વિનાશ કરે છે.॥ ૧૧ ॥

हे नरदेव, प्रधानपुंभ्यां निमित्तभूताभ्यां सत्यकृदमोघकर्ता ईशस्तयोः सहकारित्वेनाश्रयभूतं चरन्तं वर्तमानं कालं स्वयमेव सृजति। स्वचेष्टारूपत्वात्कालस्य न तत्पारतन्त्र्यमित्यर्थः। तथापि प्रस्तुते किमायातं तत्राह—

હે નરદેવ (પરીક્ષિત), (જગતની ઉત્પત્તિના) નિમિત્તરૂપ પ્રકૃતિ અને પુરુષ– તે બંનેના સહકારીપણે આશ્રયરૂપ એવા '**चरन्तम्**' વર્તમાનકાળને '**सत्यकृत्**' અમોઘ (સત્ય)સંકલ્પકર્તા ઈશ્વર પોતે જ સર્જે છે. કાળ એ ભગવાનની પોતાની જ ચેષ્ટારૂપ હોવાથી ભગવાન કાળને અધીન નથી, એમ અર્થ છે. તેમ છતાં પ્રસ્તુત વાતમાં શું ફલિત થયું, તે વિષે કહે છે—

य एष कालः सत्त्वमेधयति वर्धयत्यतो हेतोरीशिताऽपीश्वरोऽपि सत्त्वप्रधानं सुरानीकं देवसमूहमेधयतीव। तत्प्रत्यनीकानसुरान्सुर-प्रतिपक्षान् प्रमिणोति हिनस्ति चेत्यन्वयः। उरु प्रभूतं श्रवः कीर्तिर्यस्य सः। कालशक्ति-क्षुभितगुणगतवैषम्यमिह सन्निधिमात्रेण तदधिष्ठातरि स्फुरतीति प्रकरणार्थः॥ ११॥

આ જે કાળ છે તે સત્ત્વગુણ '**एधयति**' વધારે છે ત્યારે '**अतः**' એ કારણે '**ईशिता-अपि**' નિયંતા હોવા છતાં પણ ઈશ્વર સત્ત્વગુણ-પ્રધાન દેવસમૂહની વૃદ્ધિ કરતા હોય તેમ જણાય છે. તે દેવોના '**प्रत्यनीकान्-असुरान्**' પ્રતિપક્ષી અસુરોનો '**प्रमिणोति**' વિનાશ કરે છે, એમ અન્વય છે. '**उरु**' મહાન '**श्रवः**' કીર્તિ છે જેમની તે ભગવાન. કાળશક્તિને કારણે ક્ષોભ (વિકાર) પામેલા ગુણોમાં રહેલી વિષમતા અહીં માત્ર સમીપપણાને કારણે તે ગુણોના અધિષ્ઠાતા ભગવાનમાં સ્ફુરે છે, એમ પ્રકરણનો અર્થ છે.॥ ૧૧ ॥

तदानीं तयोर्न सुरपक्षपातेन वधः किंतु

તે સમયે (હિરણ્યાક્ષ અને હિરણ્યકશિપુ) તે બંનેનો, દેવો ઉપરના પક્ષપાતને કારણે નહીં, પરંતુ બ્રહ્મપુત્ર સનત્કુમારના શાપને કારણે

ब्रह्मशापेनासुरीं योनिं प्राप्तयोरनुग्रहार्थ एवेति वक्तुमितिहासमुपक्षिपति—**अत्रैवेति**।

આસુરીયોનિને પ્રાપ્ત થયેલા તે બંને (દ્વારપાળો જય-વિજય) ઉપર અનુગ્રહ કરવા માટે જ વધ કર્યો હતો, તે ઈતિહાસ રજૂ કરે છે— '**अत्र-एव-इति**।'

अत्रैवोदाहृतः पूर्वमितिहासः सुरर्षिणा।
प्रीत्या महाक्रतौ राजन् पृच्छतेऽजातशत्रवे॥ १२

હે રાજા, અહીં આ સંદર્ભમાં જ પૂર્વે રાજસૂય મહાયજ્ઞમાં પ્રશ્ન કરતા (તમારા પિતામહ) અજાતશત્રુ યુધિષ્ઠિરને દેવર્ષિ નારદજી દ્વારા ખૂબ પ્રેમથી એક ઈતિહાસ કહેવામાં આવ્યો હતો.॥ ૧૨ ॥

अत्र द्वेषादिरहितस्यापि दैत्यवधे नारदेनेतिहासः प्रस्तावितः॥ १२॥

અહીં ભગવાન દ્વેષાદિથી રહિત હોવા છતાં પણ દૈત્યનો વધ કરે છે, તે વિષયમાં નારદજી દ્વારા ઈતિહાસ પ્રસ્તુત કરવામાં આવ્યો છે.॥ ૧૨ ॥

दृष्ट्वा महाद्भुतं राजा राजसूये महाक्रतौ।
वासुदेवे भगवति सायुज्यं चेदिभूभुजः॥ १३

तत्रासीनं सुरऋषिं राजा पाण्डुसुतः क्रतौ।
पप्रच्छ विस्मितमना मुनीनां शृण्वतामिदम्॥ १४

રાજસૂય મહાયજ્ઞમાં ચેદિરાજ શિશુપાલનું ભગવાનમાં અતિ અદ્ભુત (ઐક્ય) સાયુજ્ય જોઈને મનમાં આશ્ચર્ય પામી ત્યાં બેઠેલા દેવર્ષિ નારદજીને યજ્ઞપ્રસંગમાં પાંડુપુત્ર રાજા યુધિષ્ઠિરે મુનિઓના સાંભળતાં આ પ્રમાણે પૂછ્યું હતું. ॥ ૧૩ ॥ ૧૪ ॥

चेदिभूभुजः शिशुपालस्य॥ १३॥ १४॥

'**चेदिभूभुजः**' ચેદિરાજ શિશુપાલનું ॥ ૧૩ ॥ ૧૪ ॥

युधिष्ठिर उवाच

अहो अत्यद्भुतं ह्येतद्दुर्लभैकान्तिनामपि।
वासुदेवे परे तत्त्वे प्राप्तिश्चैद्यस्य विद्विषः॥ १५

યુધિષ્ઠિર બોલ્યા – અહો! શિશુપાલ શત્રુ હોવા છતાં અનન્ય ભક્તોને પણ દુર્લભ એવા પરમતત્ત્વ વાસુદેવ ભગવાનમાં તે સાયુજ્ય પ્રાપ્ત કરે, તે ખરેખર, અતિ અદ્ભુત છે!॥ ૧૫॥

एकान्तभक्तानामपि दुर्लभा प्राप्तिर्विद्विषो जातेत्येतदत्यद्भुतं हि॥ १५॥

અનન્ય ભક્તોને પણ દુર્લભ એવી પ્રાપ્તિ શત્રુને થઈ, તે ખરેખર, અતિઅદ્ભુત છે!॥ ૧૫॥

एतद्वेदितुमिच्छामः सर्व एव वयं मुने।
भगवन्निन्दया वेनो द्विजैस्तमसि पातितः॥ १६

હે મુનિ, ભગવાનની નિંદાથી વેનને બ્રાહ્મણો દ્વારા નરકમાં નાખવામાં આવ્યો હતો, (તો પછી ભગવાનની નિંદા કરનાર આ શિશુપાલને સાયુજ્ય મુક્તિ કેવી રીતે મળી?) તે અમે બધા જ જાણવા ઈચ્છીએ છીએ.॥ ૧૬॥

तस्य तु वेनवन्नरकपात एवोचित इत्याह—भगवन्निन्दयेति। तमसि नरके॥ १६॥

તે શિશુપાલને તો વેનની જેમ નરકમાં જ નાખવો ઉચિત છે, એમ કહે છે— '**भगवन्निन्दया इति।**' '**तमसि**' નરકમાં॥ ૧૬॥

दमघोषसुतः पाप आरभ्य कलभाषणात्।
सम्प्रत्यमर्षी गोविन्दे दन्तवक्त्रश्च दुर्मतिः॥ १७

દમઘોષનો પાપી પુત્ર શિશુપાલ અને દુર્મતિ દંતવક્ત્ર (બાળપણમાં) તોતડું બોલતા હતા ત્યારથી અત્યાર સુધી પણ શ્રીગોવિંદ પ્રત્યે ક્રોધી (ઈર્ષ્યાળુ) હતા.॥ ૧૭॥

दमघोषस्य सुतः शिशुपालः। कलभाषणाद् बाल्यकोमलभाषणमारभ्य। संप्रत्यधुनाप्यमर्षी क्रोधी मत्सरी वा॥ १७॥

દમઘોષનો પુત્ર શિશુપાલ '**कलभाषणात्**' બાળપણમાં તોતડું બોલતો હતો ત્યારથી, '**सम्प्रति**' અત્યાર સુધી પણ '**अमर्षी**' ક્રોધી કે ઈર્ષ્યાળુ હતો.॥ ૧૭॥

शपतोरसकृद्विष्णुं यद्ब्रह्म परमव्ययम्।
श्वित्रो न जातो जिह्वायां नान्धं विविशतुस्तमः॥
॥ १८॥

જે અવિનાશી પરબ્રહ્મ છે તે ભગવાન વિષ્ણુને વારંવાર ગાળો દેતા તે બંનેની જીભમાં કોઢ ન નીકળ્યો કે ન તેઓ ઘોર નરકમાં પ્રવેશ્યા.॥ ૧૮॥

श्वित्रः श्वेतकुष्ठम्॥ १८॥

'**श्वित्रः**' શ્વેતકોઢ॥ ૧૮॥

कथं तस्मिन् भगवति दुरवग्राहधामनि।
पश्यतां सर्वलोकानां लयमीयतुरञ्जसा॥ १९

જેમનું સ્વરૂપ પ્રાપ્ત કરવું અત્યંત કઠણ છે તેવા ભગવાનમાં સર્વ લોકોના દેખતાં (આ બંને) અનાયાસે લય કેવી રીતે પામ્યા?॥ ૧૯॥

दुरवग्राहं दुष्प्रापं धाम स्वरूपं यस्य तस्मिन् लयं सायुज्यमीयतुर्जग्मतुः। अभूतस्यापि दन्तवक्त्रलयस्य तज्जातकप्रामाण्येन सिद्धवन्निर्देशः॥ १९॥

'**दुरवग्राहम्**' દુષ્પ્રાપ્ય, દુર્લભ '**धाम**' સ્વરૂપ છે જેમનું તેમનામાં '**लयम्**' સાયુજ્ય '**ईयतुः**' પામ્યા. દંતવક્ત્રની મુક્તિ થવાની બાકી હોવા છતાં જન્મપત્રિકાના આધારે દંતવક્ત્રની મુક્તિ થઈ હોય તેમ નિર્દેશ છે.॥ ૧૯॥

एतद् भ्राम्यति मे बुद्धिर्दीपार्चिरिव वायुना।
ब्रूह्येतदद्भुततमं भगवांस्तत्र कारणम्॥ २०

વાયુ(ની લહેરખીઓ)થી હાલતી દીપશિખાની જેમ મારી બુદ્ધિ ભમે છે. આ અત્યંત આશ્ચર્યકારક ઘટના માટેનું કારણ સર્વજ્ઞ (ભગવાન) એવા આપ (મને) કહો.॥ ૨૦॥

एतदद्भुततममत एतत्प्रति मे धीर्भ्राम्यति। भगवान् सर्वज्ञस्त्वं ब्रूहि॥ २०॥

આ અત્યંત અદ્‌ભુત છે. તેથી આના વિષે મારી બુદ્ધિ ભમે છે. '**भगवान्**' સર્વજ્ઞ એવા આપ કહો.॥ ૨૦॥

श्रीशुक उवाच

राज्ञस्तद्वच आकर्ण्य नारदो भगवानृषिः।
तुष्टः प्राह तमाभाष्य शृण्वत्यास्तत्सदः कथाः॥
॥ २१ ॥

आभाष्य संबोध्य। सीदन्ति निषीदन्त्यस्यामिति सद् सभा तस्याः सदः सदसः शृण्वत्याः सत्याः कथाः प्राहेत्यन्वयः॥ २१॥

अहो भगवन्निन्दकस्य नरकपातेन भाव्यमिति वदतस्तव कोऽभिप्रायः। भगवत्पीडाकरत्वेन वा तदभावेऽपि सुरापानादिवन्निषिद्धनिन्द्याचरणाद्वा तत्र तावद्देहाभिमानकृतनिन्दादिनिमित्तत्वात्पीडादीनां भगवतश्च तदभावान्न पीडाशङ्कास्तीत्याह—**निन्दनेति सार्धैस्त्रिभिः**।

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – રાજા (યુધિષ્ઠિર)નું તે વચન સાંભળી દેવર્ષિ ભગવાન નારદ પ્રસન્ન થયા અને તે સભાના સાંભળતાં જ તેમને (યુધિષ્ઠિરને) સંબોધીને કથા કહેવા લાગ્યા.॥ ૨૧ ॥

'आभाष्य' સંબોધીને, જેમાં (લોકો) બેસે છે (અને સાંભળે છે) તે સભા, તેના **'सदः'** સભાના સાંભળતાં કથા કહે છે, એમ અન્વય છે.॥ ૨૧ ॥

અહો! ભગવાનની નિંદા કરનાર નરકમાં પડવો જોઈએ, એમ કહેતા એવા તમારો કયો અભિપ્રાય છે? નિંદક, ભગવાનને પીડા કરનાર હોવાથી (તે નરકમાં પડવો જોઈએ)? કે પછી ભગવાનને પીડા ન થતી હોય તો પણ મદ્યપાનાદિ જેવા નિષિદ્ધ કે નિંદ્ય આચરણથી (તે નરકમાં પડવો જોઈએ)? ભગવાનમાં દેહાભિમાનાદિ ન હોવાથી દેહાભિમાનપ્રયુક્ત નિંદા વગેરેના નિમિત્તથી જે પીડાદિ થાય તેનો અભાવ હોવાથી તેની શંકા નથી, એમ સાડાત્રણ શ્લોકોથી કહે છે — **'निन्दन इति।'**

नारद उवाच

निन्दनस्तवसत्कारन्यक्कारार्थं कलेवरम्।
प्रधानपरयो राजन्नविवेकेन कल्पितम्॥ २२

निन्दनं दोषकीर्तनम्। न्यक्कारस्तिरस्कारः। निन्दास्तुत्यादिज्ञानार्थं प्रधानपुरुषयोरविवेकेन कलेवरं कल्पितं रचितम्॥ २२॥

वि.चक्र.—निन्दनस्तवौ वाचिकौ दोषगुणौ, सत्कारन्यक्कारौ कायिकौ मानसौ च।

નારદજી બોલ્યા – હે રાજા (યુધિષ્ઠિર), નિંદા-સ્તુતિ, સત્કાર-તિરસ્કાર (વગેરેની અનુભૂતિ) માટે (જીવોનું) શરીર પ્રકૃતિ અને પુરુષના અવિવેકથી રચાયું છે.॥ ૨૨ ॥

'निन्दनम्' દોષકથન, **'न्यक्कारः'** તિરસ્કાર, નિંદા-સ્તુતિ (સુખ-દુઃખ) વગેરેની અનુભૂતિ માટે જીવોનું શરીર પ્રકૃતિ અને પુરુષના (પરસ્પર અધ્યાસને કારણે થતા) અવિવેકથી **'कल्पितम्'** રચાયું છે.॥ ૨૨ ॥

નિન્દા અને સ્તુતિ વાણીના દોષ-ગુણ છે, સત્કાર અને તિરસ્કાર શરીરના અને મનના છે.

हिंसा तदभिमानेन दण्डपारुष्ययोर्यथा।
वैषम्यमिह भूतानां ममाहमिति पार्थिव॥ २३

હે પાર્થિવ (રાજા યુધિષ્ઠિર), આ સંસારમાં મનુષ્યોને તે શરીરાભિમાનને કારણે જેમ 'હું અને મારું' એવો વિષમ ભાવ જન્મે છે, તેનાથી કાયિક દંડ અને વાચિક નિંદારૂપ તિરસ્કાર થવાને કારણે હિંસા થાય છે (તેમ ઈશ્વરને છે નહીં).॥ ૨૩॥

तदभिमानेन भूतानां यथा ममाहमिति वैषम्यं तत्कृतं हिंसादिकं च भवति तथा न यस्येत्युत्तरेणान्वयः। दण्डस्ताडनं पारुष्यं निन्दा तयोर्हेतुभूतयोर्हिंसा पीडा च भवति॥ २३॥

તે શરીરના અભિમાનને લીધે પ્રાણીઓને જેમ 'હું અને મારું' એવો વિષમ ભાવ જન્મે છે અને તેને કારણે હિંસાદિ થાય છે, તેમ જેમને (ઈશ્વરને) થતા નથી, એમ પછીના શ્લોક (૨૪) સાથે સંબંધ છે. '**दण्डः**' તાડના અને '**पारुष्यम्**' નિંદા– તે બંનેને કારણે હિંસા-પીડા થાય છે.॥ ૨૩॥

यन्निबद्धोऽभिमानोऽयं तद्वधात्प्राणिनां वधः।
तथा न यस्य कैवल्यादभिमानोऽखिलात्मनः।
परस्य दमकर्तुर्हि हिंसा केनास्य कल्प्यते॥ २४

જે શરીરમાં આ અભિમાન બંધાઈ ગયું છે તે શરીરના વધથી પ્રાણીઓને પોતાનો વધ જણાય છે. જીવો જેવું દેહાભિમાન, અદ્વિતીય હોવાથી જે સર્વાત્માને નથી તે, દૈત્યોનું દમન કરનાર આ પરમેશ્વરમાં હિંસાદિની કલ્પના કોઈ પણ પ્રકારે કરી શકાય ખરી?॥ ૨૪॥

यस्मिन्निबद्धोऽयमभिमानस्तस्य देहस्य वधाद्वधश्च यथा तथा यस्याभिमानो नास्ति। अतोऽस्य परमेश्वरस्य हिंसा केन हेतुना कल्प्यते न केनापीति। अभिमानाभावे हेतुः—कैवल्याद-द्वितीयत्वेनाभिमन्तव्याभावात्।

જે શરીરમાં આ અભિમાન બંધાઈ ગયું છે તે શરીરના નાશથી પ્રાણીઓને જેમ પોતાનો નાશ જણાય છે, તેમ જેમને દેહાભિમાન નથી. આથી આ પરમેશ્વરમાં કયા કારણે હિંસા(નો ભાવ) કલ્પી શકાય? કોઈ પણ કારણે નહીં. ઈશ્વરને અભિમાન ન હોવા માટેનું કારણ– '**कैवल्यात्**' અદ્વિતીય હોવાથી તેમને અભિમાન નથી, તેથી (હિંસાદિ ભાવ નથી).

वैषम्याभावे हेतुः—अखिलात्मनः सर्वात्मन इति। तर्हि किमिति हन्ति

('હું અને મારું' એવું) વૈષમ્ય ન હોવા માટેનું કારણ– '**अखिलात्मनः**' સર્વના આત્મા એવા ઈશ્વરને, (સર્વાત્મા હોવાથી વૈષમ્ય નથી.) તો પછી દૈત્યોને કેમ હણે છે? તે માટે ઉત્તર

दैत्यांस्तत्राह—परस्य दमकर्तुः हितार्थं दण्डं करोतीत्यर्थः ॥ २४ ॥

આપે છે — '**परस्य दमकर्तुः**' દમન કરનાર પરમેશ્વર દૈત્યોને હિત માટે શિક્ષા કરે છે, એમ અર્થ છે. ॥ २४ ॥

यस्माद्भगवतो निन्दादिकृतवैषम्यं नास्ति तस्माद्येन केनाप्युपायेन ध्यायतस्तेनैव ध्यानेन निन्दादिकृतपापस्यापि नाशात्सायुज्यं युक्तमित्याशयेनाह—**तस्मादिति** सप्तभिः ।

કારણ કે ભગવાનને નિંદા વગેરેને લીધે વિષમભાવ નથી થતો, તેથી કોઈ પણ રીતે (ભગવાનનું) ધ્યાન કરતો મનુષ્ય તે જ ધ્યાનથી નિંદાદિને કારણે થતા પાપનો પણ નાશ થવાથી તેનું સાયુજ્ય થાય તે યોગ્ય છે, એ આશયથી સાત શ્લોકો વડે કહે છે — '**तस्मात् इति।**'

तस्माद्वैरानुबन्धेन निर्वैरेण भयेन वा।
स्नेहात्कामेन वा युञ्ज्यात् कथञ्चिन्नेक्षते पृथक् ॥
॥ २५ ॥

માટે સુદૃઢ વેરભાવથી, વેરરહિત (ભક્તિ-) ભાવથી, ભયથી, સ્નેહથી કે કામનાથી, કોઈ પણ રીતે (મનને ભગવાનમાં) જોડી દેવું જોઈએ (જેથી મન ભગવાન સિવાય) બીજું કાંઈ જોતું નથી. ॥ २४ ॥

निर्वैरेण नास्ति वैरं केनापि यस्मिंस्तेन भक्तियोगेनेत्यर्थः। युञ्ज्यान्मन इति शेषः। यस्मादेतैरुपायैः पृथङ्नेक्षते ॥ २५ ॥

'**निर्वैरेण**' જેમાં કોઈ પણ રીતે વેર નથી તે ભક્તિયોગ દ્વારા, એમ અર્થ છે. મનને જોડી દેવું જોઈએ, એટલું બાકી છે (તે ઉમેરવું). જેથી આ ઉપાયોને કારણે મન (ભગવાન સિવાય) બીજી વસ્તુને જોતું નથી. ॥ २५ ॥

तेष्वपि वैरानुबन्धः श्रेष्ठ इत्याह—**यथेति** ।

તે સર્વ (ઉપાયો)માં સુદૃઢ વેરભાવ (અતિ નિંદ્ય હોવા છતાં પણ–વં.) શ્રેષ્ઠ છે, એમ કહે છે.

यथा वैरानुबन्धेन मर्त्यस्तन्मयतामियात्।
न तथा भक्तियोगेन इति मे निश्चिता मतिः ॥ २६

સુદૃઢ વેરભાવથી મનુષ્ય જેવી તન્મયતા પ્રાપ્ત કરે છે, તેવી ભક્તિયોગથી પ્રાપ્ત નથી કરતો, એવી મારી દૃઢ માન્યતા છે. ॥ २६ ॥

न तथा भक्तियोगेनापि ॥ २६ ॥

તેવી તન્મયતા ભક્તિયોગથી પણ પ્રાપ્ત થતી નથી. ॥ २६ ॥

अत्र दृष्टान्तः—कीटः **पेशस्कृता** भ्रमरेण।

અહીં દૃષ્ટાન્ત આપે છે – '**पेशस्कृता**' ભમરા દ્વારા પુરાયેલો કીડો

कीटः पेशस्कृता रुद्धः कुड्यायां तमनुस्मरन्।
संरम्भभययोगेन विन्दते तत्सरूपताम् ॥ २७

ભમરા દ્વારા ભીંતમાં (કરાયેલા પોતાના દરમાં) પુરાયેલો કીડો દ્વેષ અને ભયના ભાવસંબન્ધથી તે ભમરાનું જ સ્મરણ કરતો તેના જેવા સ્વરૂપને જ પામે છે. ॥ २७ ॥

संरम्भो द्वेषो भयं च स एव योगस्तेन ॥ २७ ॥

एवं कृष्णे भगवति मायामनुज ईश्वरे।
वैरेण पूतपाप्मानस्तमापुरनुचिन्तया॥ २८

वैरेण यानुचिन्ता चिन्तनं तयैव पूतः पाप्मा येषां ते तं प्रापुः॥ २८॥

कामाद् द्वेषाद्भयात्स्नेहाद्यथा भक्त्येश्वरे मनः।
आवेश्य तदघं हित्वा बहवस्तद्गतिं गताः॥ २९

तदघं कामादिनिमित्तं पापं हित्वा॥ २९॥

तानाह—**गोप्य इति**।

गोप्यः कामाद्भयात्कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः।
सम्बन्धाद्वृष्णयः स्नेहाद्यूयं भक्त्या वयं विभो॥
॥ ३०॥ ३०॥

तर्हि वेनः किमिति नरके पातितः। तीव्रध्यानाभावात्पापमेव तस्य फलितमित्याह—**कतमोऽपीति**।

'**संरम्भः**' द्वेष અને ભય સાથે હોવો તે સંરંભ, તેના લીધે॥ ૨૭॥

એ જ રીતે માયાથી મનુષ્ય બનેલા ઈશ્વર ભગવાન શ્રીકૃષ્ણ વિષે વેરભાવથી તેમનું સતત ચિંતન કરવા દ્વારા પાપરહિત થયેલા (શિશુપાલાદિ) મનુષ્યો તે ભગવાનને પામ્યા છે.॥ ૨૮॥

વેરભાવથી જે '**अनुचिन्ता**' સતત ચિંતન થાય છે, તેનાથી જ પવિત્ર થયું છે પાપ જેમનું તેઓ તે ભગવાનને પામ્યા છે.॥ ૨૮॥

જેવી રીતે ભક્તિથી ઈશ્વરમાં મન પરોવીને ઘણા (ભક્તો) તેમની (ભગવાનની) ગતિને પ્રાપ્ત થયા છે, તેવી રીતે કામથી, દ્વેષથી, ભયથી, સ્નેહથી ભગવાનમાં મન જોડીને તે (કામાદિજનિત) પાપને છોડીને અનેક મનુષ્યો તે ગતિને પામ્યા છે.॥ ૨૯॥

'**तत्-अघम्**' તે કામાદિને કારણે થયેલા પાપને છોડીને॥ ૨૯॥

તે ભગવાનને પ્રાપ્ત કરનારાઓનું જ વર્ણન કરે છે— '**गोप्यः इति।**'

હે વિભુ, ગોપીઓએ ભગવાનને તીવ્ર કામનાથી પ્રાપ્ત કર્યા, કંસે ભગવાનને ભયથી પ્રાપ્ત કર્યા, શિશુપાલાદિ રાજાઓએ દ્વેષથી, યાદવોએ (પરિવારના) સંબંધથી, તમે (યુધિષ્ઠરે) સ્નેહથી અને અમે ભક્તિથી ભગવાનને પામ્યા છીએ.॥ ૩૦॥ ૩૦॥

તો પછી વેનને કેમ નરકમાં નાખ્યો? તીવ્ર ધ્યાનના અભાવને કારણે તેને ફળરૂપે પાપ જ મળ્યું, એમ કહે છે — '**कतमः अपि इति।**'

कतमोऽपि न वेनः स्यात्पञ्चानां पुरुषं प्रति।
तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत्॥ ३१

(ભક્તો ઉપરાંત ભગવાનનું ચિંતન કરનારા ઉપર્યુક્ત) પાંચ પ્રકારોમાં વેન કોઈ પણ પ્રકારનો ન હતો, (કારણ કે તેણે કોઈ પણ રીતે પોતાનું મન ભગવાનમાં જોડ્યું ન હતું.) માટે કોઈ પણ ઉપાયથી મનને કૃષ્ણમાં પરોવી દેવું જોઈએ.॥ ૩૧ ॥

पुरुषं श्रीहरिं प्रति। पुरुषे पुरुषस्य कामासंभवाद्भयादिभिश्चिन्तयतां पञ्चानां मध्ये वेनो न कतमोऽपीत्युक्तम्॥ ३१ ॥

(વેન) '**पुरुषम्**' શ્રીહરિનું (ચિંતન કરતો ન હતો). પુરુષ (પરમેશ્વર) ઉપર પુરુષનો (વેનનો) કામભાવ થવો અસંભવ હોવાથી ભય વગેરે દ્વારા ચિંતન કરનારાઓના પાંચ પ્રકારોમાં વેન કોઈ પણ પ્રકારનો ન હતો, એમ કહેવાયું છે.॥ ૩૧ ॥

तदेवमितिहासप्रस्तावकथामुक्त्वा श्रीकृष्णे शिशुपालस्य वैरानुबन्धे को हेतुरित्यपेक्षायां तमेवेतिहासं वक्तुमाह—**मातृष्वस्रेय इति**।

આ પ્રમાણે ઈતિહાસના આરંભની કથા કહીને શ્રીકૃષ્ણ ઉપર શિશુપાલનો વેરભાવ હોવા માટે શું કારણ હતું, એવી અપેક્ષાથી તે જ ઈતિહાસ વર્ણવવા માટે કહે છે — '**मातृष्वस्रेयः इति**।'

मातृष्वस्रेयो वश्चैद्यो दन्तवक्त्रश्च पाण्डव।
पार्षदप्रवरौ विष्णोर्विप्रशापात्पदाच्च्युतौ॥ ३२

હે પાંડુનંદન, તમારી માસીનો પુત્ર શિશુપાલ અને દંતવક્ત્ર (પૂર્વે) ભગવાન વિષ્ણુના મુખ્ય પાર્ષદો હતા, (પરંતુ) વિપ્ર (સનત્કુમાર)ના શાપને કારણે વૈકુંઠપદમાંથી નીચે પડ્યા છે.॥ ૩૨ ॥

पदाद्वैकुण्ठाच्च्युतौ॥ ३२ ॥

'**पदात्**' વૈકુંઠપદમાંથી બંને જણા નીચે પડ્યા છે.॥ ૩૨ ॥

युधिष्ठिर उवाच

कीदृशः कस्य वा शापो हरिदासाभिमर्शनः।
अश्रद्धेय इवाभाति हरेरेकान्तिनां भवः॥ ३३

યુધિષ્ઠિર બોલ્યા – શ્રીહરિના દાસોને પણ અભિભૂત કરનાર શાપ કેવો હતો અને કોનો હતો? શ્રીહરિના અનન્ય ભક્તોને જન્મ (-મરણરૂપ સંસાર) થાય એ (અસંભવિત હોવાથી) વિશ્વાસ ન પડે તેવું લાગે છે.॥ ૩૩॥

हरिदासावभिमृशत्यभिभवतीति तथा। कस्य शापः। कीदृशो वा। अश्रद्धेयोऽनादरणीय इव असंभवात्। भवो जन्म॥ ३३॥

देहेन्द्रियासुहीनानां वैकुण्ठपुरवासिनाम्।
देहसम्बन्धसम्बद्धमेतदाख्यातुमर्हसि ॥ ३४

असंभवमेवाह—जन्महेतुभूतैः प्राकृतैर्देहेन्द्रियासुभिर्हीनानाम्। शुद्धसत्त्वमयदेहानामित्यर्थः। प्राकृतदेहसंबन्धेन संबद्धमेतदाख्यानमाख्यातुमर्हसि॥ ३४॥

नारद उवाच

एकदा ब्रह्मणः पुत्रा विष्णोर्लोकं यदृच्छया।
सनन्दनादयो जग्मुश्चरन्तो भुवनत्रयम्॥ ३५

॥ ३५॥

पञ्चषड्ढायनार्भाभाः पूर्वेषामपि पूर्वजाः।
दिग्वाससः शिशून् मत्वा द्वाःस्थौ तान् प्रत्यषेधताम्॥
॥ ३६॥

कथंभूताः। पञ्च वा षड्वा हायनानि वर्षाणि येषां ते। अर्भा बालास्तद्वदाभा येषां ते। पूर्वेषां मरीच्यादीनामपि पूर्वजास्तेभ्यः प्रथमं जाताः। दिग्वाससो दिगम्बराः अतः शिशून्मत्वा ॥ ३६॥

શ્રીહરિના બંને દાસ (પણ) '**अभिमृशति।**' અભિભૂત થાય તેવો શાપ કોનો અથવા કેવો હતો? '**अश्रद्धेयः**' અનાદરણીય લાગે છે કારણ કે અસંભવિત છે. '**भवः**' જન્મ॥ ૩૩॥

દેહ, ઈન્દ્રિય અને પ્રાણથી રહિત એવા, વૈકુંઠપુરમાં વસનારાઓને પ્રાકૃત દેહનો સંબંધ બંધાયો એ કહેવા માટે આપ યોગ્ય છો.॥ ૩૪॥

(તે બંનેનો ભૂલોકમાં જન્મ થવો) અસંભવ જ છે, તેમ કહે છે— જન્મના કારણરૂપ પ્રાકૃત દેહ, ઈન્દ્રિયો અને પ્રાણથી રહિત જનોને– શુદ્ધ સત્ત્વમય દેહધારીઓને, એમ અર્થ છે. પ્રાકૃત દેહના સંબંધથી બંધન થયું તે આખ્યાન કહેવા માટે આપ યોગ્ય છો.॥ ૩૪॥

નારદજી બોલ્યા – એક દિવસ બ્રહ્માજીના સનંદનાદિ ચાર પુત્રો ત્રણેય લોકમાં વિચરણ કરતા, દૈવયોગે વિષ્ણુલોકમાં ગયા. ॥ ૩૫॥ ૩૫॥

તેઓ પાંચ-છ વર્ષના બાળક જેવી કાન્તિવાળા, (બાલ્યાવસ્થામાં રહેલા હોવા છતાં) પૂર્વે થઈ ગયેલા (મરીચિ વગેરે) ઋષિઓની પણ પૂર્વે જન્મેલા અને દિશાઓરૂપી વસ્ત્ર ધારણ કરનારા છે. શિશુઓ માનીને બંને દ્વારપાળોએ તેમને રોક્યા.॥ ૩૬॥

(સનન્દનાદિ બ્રહ્મપુત્રો) કેવા છે? પાંચ કે છ '**हायनानि**' વર્ષો જેમને છે તેઓ, '**अर्भाः**' બાળકો, તેમના જેવી આભા છે જેમની તેઓ, '**पूर्वेषाम्**' પૂર્વે થઈ ગયેલા મરીચિ વગેરે ઋષિઓની પણ પૂર્વે જન્મેલા– '**दिक्-वाससः**' દિશાઓરૂપી વસ્ત્રવાળા અથવા દિગમ્બર, તેથી બાળક સમજીને॥ ૩૬॥

अशपन् कुपिता एवं युवां वासं न चार्हथः ।
रजस्तमोभ्यां रहिते पादमूले मधुद्विषः ।
पापिष्ठामासुरीं योनिं बालिशौ यातमाश्वतः ॥ ३७

એટલે કુપિત થયેલા સનત્કુમારોએ તે બંનેને આ પ્રમાણે શાપ આપ્યો– 'મધુસૂદન ભગવાનના, રજોગુણ અને તમોગુણથી રહિત ચરણના આશ્રયમાં તમે બંને રહેવાને પણ યોગ્ય નથી. (તો પછી સેવાનો તો પ્રશ્ન જ ક્યાંથી હોય?) માટે હે મૂર્ખાઓ, અત્યંત પાપી એવી આસુરી યોનિમાં તમે બંને અહીંથી જલદી ચાલ્યા જાઓ!' ॥ ૩૭ ॥

वासमपि नार्हथः, कुतः पुनस्तत्सेवा–मिति चकारार्थः। हे बालिशौ। अतो हेतोराशु यातम् ॥ ३७ ॥

તમે બંને અહીં રહેવાને પણ લાયક નથી, તો તેમની સેવાને યોગ્ય તો ક્યાંથી હો? એમ 'ચ'કારનો અર્થ છે. હે મૂર્ખ દ્વારપાળો, આ કારણે તમે જલદી જાઓ. ॥ ૩૭ ॥

एवं शप्तौ स्वभवनात् पतन्तौ तैः कृपालुभिः ।
प्रोक्तौ पुनर्जन्मभिर्वां त्रिभिर्लोकाय कल्पताम् ॥ ३८

આ પ્રમાણે શાપિત થયેલા અને પોતાના વૈકુંઠધામથી પડતા તે બંને દ્વારપાળોને કૃપાળુ એવા તે સનત્કુમારો દ્વારા ફરીથી કહેવામાં આવ્યું કે 'તમારા બંનેના ત્રણ જન્મો પછી (વૈકુંઠ) લોકની પ્રાપ્તિ માટે તમે સમર્થ થશો.' ॥ ૩૮ ॥

वां युवयोस्त्रिभिर्जन्मभिः। लोकाय स्वस्थानप्राप्तये कल्पतां तावतायं शापः समाप्यतामिति पुनः प्रोक्तावित्यर्थः ॥ ३८ ॥

'वाम्' તમારા બંનેના ત્રણ જન્મો પછી **'लोकाय'** પોતાનો (વૈકુંઠ)લોક પ્રાપ્ત કરવા માટે તમે સમર્થ થશો. ત્યાં સુધી આ શાપ ભોગવો, એમ ફરીથી તે બંનેને કહેવામાં આવ્યું, એમ અર્થ છે. ॥ ૩૮ ॥

जज्ञाते तौ दितेः पुत्रौ दैत्यदानववन्दितौ ।
हिरण्यकशिपुर्ज्येष्ठो हिरण्याक्षोऽनुजस्ततः ॥ ३९

॥ ३९ ॥

દૈત્યો અને દાનવોથી વંદન કરાયેલા તે બંને દિતિના પુત્રો તરીકે જન્મ્યા. તે બંનેમાં મોટો હિરણ્યકશિપુ અને નાનો હિરણ્યાક્ષ હતો. ॥ ૩૯ ॥ ૩૯ ॥

हतो हिरण्यकशिपुर्हरिणा सिंहरूपिणा ।
हिरण्याक्षो धरोद्धारे बिभ्रता सौकरं वपुः ॥ ४०

નૃસિંહરૂપ શ્રીહરિ દ્વારા હિરણ્યકશિપુ હણાયો હતો અને પૃથ્વીના ઉદ્ધાર સમયે વરાહ રૂપ ધારણ કરનાર શ્રીહરિ દ્વારા પૃથ્વીના ઉદ્ધારમાં (અંતરાયરૂપ એવા તેમનો પ્રતિઘાતી) હિરણ્યાક્ષ હણાયો હતો. ॥ ૪૦ ॥

धरोद्धारनिमित्ते तत्प्रतिघाती हतः ॥ ४० ॥

પૃથ્વીના ઉદ્ધાર નિમિત્તે તેમાં અંતરાયરૂપ બનેલો હિરણ્યાક્ષ હણાયો હતો. ॥ ૪૦ ॥

हिरण्यकशिपोर्वधे कारणं सूचयति— **हिरण्यकशिपुः** पुत्रमिति।

હિરણ્યકશિપુના વધ માટેનું કારણ સૂચવે છે — હિરણ્યકશિપુએ પુત્રને (તીવ્ર વેદના પહોંચાડી ત્યારે)

हिरण्यकशिपुः पुत्रं प्रह्लादं केशवप्रियम्।
जिघांसुरकरोन्नाना यातना मृत्युहेतवे॥ ४१ ॥ ४१ ॥

ભગવાન કેશવને પ્રિય એવા પોતાના પુત્ર પ્રહ્લાદને મારવાની ઈચ્છાવાળા હિરણ્યકશિપુએ તેને મારી નાખવા માટે જ્યારે અનેક જાતનાં દુઃખો આપ્યાં (ત્યારે તે શ્રીહરિ દ્વારા હણાયો). ॥ ૪૧ ॥ ૪૧ ॥

सर्वभूतात्मभूतं तं प्रशान्तं समदर्शनम्।
भगवत्तेजसा स्पृष्टं नाशक्नोद्धन्तुमुद्यमैः॥ ४२

સર્વ પ્રાણીઓના આત્મસ્વરૂપ, અત્યંત શાંત, (સર્વમાં સમાનરૂપે રહેલા બ્રહ્મનાં દર્શન કરનાર) સમદર્શી અને ભગવાનના પ્રભાવથી સદાય વ્યાપ્ત તે પ્રહ્લાદને (જાત જાતના) ઉપાયો કરીને પણ (હિરણ્યકશિપુ) મારવાને સમર્થ થયો નહીં. ॥ ૪૨ ॥

सर्वभूतानामात्मभूतम्। कुतः। समं ब्रह्मैव पश्यतीति तथा तम्। अतः प्रशान्तं द्वेषादिरहितम्। अत एव भगवत्तेजसा स्पृष्टं व्याप्तम्। उद्यमैः शस्त्रास्त्रप्रहारादिभिः॥ ४२ ॥

સર્વ પ્રાણીઓના આત્મસ્વરૂપ એવા પ્રહ્લાદને – પ્રહ્લાદજી શા માટે સર્વ પ્રાણીઓના આત્મસ્વરૂપ હતા? બ્રહ્મને સર્વમાં સમાનરૂપે રહેલું જુએ તેવા તેમને – આથી '**प्रशान्तम्**' દ્વેષાદિથી રહિત અત્યંત શાંતને– આથી જ, ભગવાનના તેજથી '**स्पृष्टम्**' વ્યાપ્ત એવા તેમને '**उद्यमैः**' શસ્ત્ર, અસ્ત્ર, પ્રહાર વગેરેથી ॥ ૪૨ ॥

ततस्तौ राक्षसौ जातौ केशिन्यां विश्रवःसुतौ।
रावणः कुम्भकर्णश्च सर्वलोकोपतापनौ॥ ४३

(હિરણ્યકશિપુ અને હિરણ્યાક્ષ નામનાં શરીરોનો ત્યાગ કર્યા) પછી તે બંને કેશિનીમાં રાવણ અને કુંભકર્ણ નામના વિશ્રવાના પુત્ર, સર્વ લોકને દુઃખી કરનારા રાક્ષસો થયા. ॥ ૪૩ ॥

विश्रवसः सुतौ॥ ४३ ॥

વિશ્રવાના બે પુત્રો (થયા). ॥ ૪૩ ॥

तत्रापि राघवो भूत्वा न्यहनच्छापमुक्तये।
रामवीर्यं श्रोष्यसि त्वं मार्कण्डेयमुखात् प्रभो॥ ४४

તે સમયે પણ રઘુકુળમાં રામચન્દ્રરૂપે અવતરીને (ભગવાને તે બંનેને) શાપથી મુક્ત કરવા માટે હણ્યા હતા. હે પ્રભુ (યુધિષ્ઠિર), શ્રીરામચન્દ્ર ભગવાનનું પરાક્રમ તમે *માર્કંડેય ઋષિના મુખેથી શ્રવણ કરશો.॥ ૪૪॥

न्यहनत्, हतवानित्यर्थः। तर्हि तदेव कथनीयमित्युत्सुकं प्रत्याह—**रामवीर्यमिति** ॥ ४४॥

'न्यहनत्' હણ્યા હતા, એમ અર્થ છે. તો પછી ભગવાન રામની જીવનકથા જ કહેવા યોગ્ય છે, એમ ઉત્સુક એવા યુધિષ્ઠિરને કહે છે— **'रामवीर्यम् इति।'**॥ ૪૪॥

तावेव क्षत्रियौ जातौ मातृष्वस्त्रात्मजौ तव।
अधुना शापनिर्मुक्तौ कृष्णचक्रहतांहसौ॥ ४५

તે જ બંને (જય-વિજય) અત્યારે તમારી માસીના પુત્રો (શિશુપાળ અને દંતવક્ત્ર નામે) ક્ષત્રિયરૂપે જન્મ્યા અને ભગવાન શ્રીકૃષ્ણના સુદર્શનચક્ર(ના સ્પર્શ)થી નિષ્પાપ થઈ શાપમુક્ત થયા છે.॥ ૪૫॥

कृष्णचक्रेण हतमंहो ययोस्तौ। तयोः पापमेव हतं न तु तावित्यर्थः॥ ४५॥

શ્રીકૃષ્ણના ચક્રથી નષ્ટ થયું છે પાપ જેમનું તેવા તે બંને— તે બંનેનું પાપ જ નષ્ટ થયું છે, તે બંને નહીં, એમ અર્થ છે.॥ ૪૫॥

वैरानुबन्धतीव्रेण ध्यानेनाच्युतसात्मताम्।
नीतौ पुनर्हरेः पार्श्वं जग्मतुर्विष्णुपार्षदौ॥ ४६

॥ ४६॥

વેરભાવથી તીવ્ર બનેલા ધ્યાનથી (નિરંતર ચિંતનથી) અચ્યુત ભગવાનમાં સાયુજ્ય પ્રાપ્ત કરીને પુનઃ વિષ્ણુ ભગવાનના પાર્ષદો (થઈ) તે બંને શ્રીહરિની પાસે ગયા.॥ ૪૬॥ ૪૬॥

युधिष्ठिर उवाच

विद्वेषो दयिते पुत्रे कथमासीन्महात्मनि।
ब्रूहि मे भगवन्येन प्रह्लादस्याच्युतात्मता॥ ४७

યુધિષ્ઠિર બોલ્યા — મહાત્મા એવા (પોતાના) પ્રિય પુત્ર (પ્રહ્લાદ) ઉપર (હિરણ્યકશિપુને) દ્વેષ કેમ થયો હતો? હે ભગવાન (નારદજી), પ્રહ્લાદજીને જે કારણથી શ્રીઅચ્યુત ભગવાન સાથે તાદાત્મ્ય થઈ ગયું હતું, તે કારણ પણ કહો.॥ ૪૭॥

---

* શ્રીમહાભારતમાં વનપર્વમાં રામોપાખ્યાનપર્વ અ-૨૧૩ થી અ-૨૯૧માં માર્કંડેય ઋષિ દ્વારા યુધિષ્ઠિરને રામચરિત્ર સંભળાવવામાં આવ્યું છે.

येन कारणेन प्रह्लादस्याच्युतात्मता–च्युतैकचित्तत्वं तदपि ब्रूहीति शेषः॥ ४७॥

જે કારણથી પ્રહ્‌લાદને '**अच्युत-आत्मता**' અચ્યુત ભગવાનમાં એકચિત્તપણું પ્રાપ્ત થયું હતું, 'તે પણ' કહો, એટલું શેષ છે.॥ ૪૭॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे प्रह्लादचरितोपक्रमे प्रथमोऽध्यायः॥ १॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां
भावार्थदीपिकायां टीकायां प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

❋❋❋❋❋

अथ द्वितीयोऽध्यायः

હિરણ્યાક્ષનો વધ અને હિરણ્યકશિપુનું સૌને સાન્ત્વન

द्वितीये विष्णुरोषेण लोकं विप्लाव्य दानवैः।
तद्धतभ्रातृपुत्रादीनितिहासैरसान्त्वयत् ॥ १

(ભગવાન) વિષ્ણુ ઉપરના રોષને કારણે દાનવો દ્વારા લોકને વ્યાકુળ કરાવીને હિરણ્યકશિપુએ તે વિષ્ણુ દ્વારા હણાયેલા ભાઈ (હિરણ્યાક્ષ)ના પુત્રાદિને બનેલી ઘટનાઓ વડે સાન્ત્વન આપ્યું.॥ ૧॥

भगवद्द्वेष एव तद्द्वेषेऽपि कारण–मित्याशयेनाह—**भ्रातरीत्यादिना**।

ભગવાન પ્રત્યેનો દ્વેષ જ તેના (પ્રહ્‌લાદ) ઉપરના દ્વેષનું પણ કારણ છે, એ આશયથી કહે છે— '**भ्रातरि**' વગેરે દ્વારા.

नारद उवाच

भ्रातर्येवं विनिहते हरिणा क्रोडमूर्तिना।
हिरण्यकशिपू राजन् पर्यतप्यद्रुषा शुचा॥ १

નારદજી બોલ્યા – હે રાજા (યુધિષ્ઠિર), વરાહમૂર્તિ શ્રીહરિ દ્વારા આમ, (દેવો ઉપર પક્ષપાતને કારણે) ભાઈ (હિરણ્યાક્ષ) હણાયો, ત્યારે (ભગવાન ઉપરના) રોષને કારણે અને (ભાઈના હણાવાથી) શોકને કારણે હિરણ્યકશિપુ સંતાપ કરવા લાગ્યો.॥ ૧॥

एवं देवपक्षपातेन॥ १॥

'**एवम्**' આમ, દેવો ઉપર પક્ષપાતને કારણે॥ ૧॥

आह चेदं रुषाऽऽघूर्णः सन्दष्टदशनच्छदः।
कोपोज्ज्वलद्भ्यां चक्षुर्भ्यां निरीक्षन् धूम्रमम्बरम्॥ २

જેના ઓષ્ઠ (ક્રોધને કારણે દાંત વડે) પિસાઈ ગયા છે તેવો, ક્રોધથી ધ્રૂજતો, અતિશય ક્રોધથી સળગતાં નેત્રો(ની આગના ધુમાડા)થી ધુમ્મિલ થયેલા આકાશને જોતો (હિરણ્યકશિપુ) આ પ્રમાણે કહેવા લાગ્યો.॥ ૨॥

कोपेन उत् अतिशयेन ज्वलद्भ्याम् कोपाग्निधूमेनैव धूम्रमम्बरं निरीक्षमाणः॥ २॥

ક્રોધથી '**उत्**' અતિશય સળગતાં નેત્રો(ની આગ)થી ક્રોધાગ્નિના ધુમાડાથી જ ધુમ્મિલ થયેલા આકાશને જોતો હિરણ્યકશિપુ॥ ૨॥

करालदंष्ट्रोग्रदृष्ट्या दुष्प्रेक्ष्यभ्रुकुटीमुखः।
शूलमुद्यम्य सदसि दानवानिदमब्रवीत्॥ ३

વિકરાળ દાઢોથી યુક્ત ઉગ્ર દૃષ્ટિને કારણે જોઈ ન શકાય તેવી ભ્રૂકુટિવાળું મુખ છે જેનું તે હિરણ્યકશિપુએ ત્રિશૂળ ઉગામી સભામાં દાનવોને આ પ્રમાણે કહ્યું.॥ ૩॥

करालदंष्ट्राभिर्युक्तयोगया दृष्ट्या। दुष्प्रेक्ष्यं भ्रुकुटीयुक्तं मुखं यस्य सः॥ ३॥

વિકરાળ દાઢોથી યુક્ત હોવાથી ઉગ્ર દૃષ્ટિને કારણે જોઈ ન શકાય તેવી ભ્રૂકુટિવાળું મુખ છે જેનું તે.॥ ૩॥

भो भो दानवदैतेया द्विमूर्धंस्त्र्यक्ष शम्बर।
शतबाहो हयग्रीव नमुचे पाक इल्वल॥ ४
॥ ४॥
विप्रचित्ते मम वचः पुलोमन् शकुनादयः।
शृणुतानन्तरं सर्वे क्रियतामाशु मा चिरम्॥ ५
॥ ५॥

અરે ઓ દાનવો, હે દૈત્યો, હે દ્વિમૂર્ધા, હે ત્ર્યક્ષ, શંબર, શતબાહુ, હે હયગ્રીવ, નમુચિ, પાક, હે ઈલ્વલ, ઓ વિપ્રચિત્તિ, પુલોમા અને હે શકુન વગેરે (દૈત્યો), તમે મારું વચન સાંભળો અને પછી તમે બધા તે પ્રમાણે ઝડપથી કરો, વિલંબ ન કરો.॥ ૪॥ ૫॥ ૪॥ ૫॥

सपत्नैर्घातितः क्षुद्रैर्भ्राता मे दयितः सुहृत्।
पार्ष्णिग्राहेण हरिणा समेनाप्युपधावनैः॥ ६

સમાન (દૃષ્ટિવાળા) હોવા છતાં પણ તેમની (શ્રીહરિની) સેવા કરનારા હોવાને કારણે દેવોને (છૂપી રીતે) સહાયરૂપ થનારા શ્રીહરિ દ્વારા (પ્રેરિત) તુચ્છ શત્રુઓ (દેવો) વડે મારો પ્રિય સુહૃદ ભાઈ (હિરણ્યાક્ષ) હણવામાં આવ્યો છે.॥ ૬॥

समेनाप्युपधावनैर्भजनैर्निमित्तभूतैः पार्ष्णि-ग्राहेण सता॥ ६॥

સમાન (દૃષ્ટિવાળા) હોવા છતાં '**उपधावनैः**' તેમની સેવા કરનારા હોવાને કારણે સહાયરૂપ થનારા શ્રીહરિ દ્વારા॥ ૬॥

तस्य त्यक्तस्वभावस्य घृणेर्मायावनौकसः।
भजन्तं भजमानस्य बालस्येवास्थिरात्मनः॥ ७

मच्छूलभिन्नग्रीवस्य भूरिणा रुधिरेण वै।
रुधिरप्रियं तर्पयिष्ये भ्रातरं मे गतव्यथः॥ ८

(સમત્વરૂપ) સ્વભાવનો ત્યાગ કરનાર, શુદ્ધ તેજોમય સ્વરૂપ હોવા છતાં માયાથી જંગલમાં વસતું ભૂંડ બનનાર, પોતાનું ભજન કરનારને સેવનાર અને બાળક જેવા અસ્થિર મનવાળા, મારા ત્રિશૂળથી કપાયેલા ગળાવાળા વિષ્ણુના પ્રચુર રુધિરથી, રુધિર જેને પ્રિય હતું તેવા મારા ભાઈનું તર્પણ કરીશ ત્યારે મારી વ્યથા દૂર થશે.॥ ૭॥ ૮॥

एवं त्यक्तः स्वभावः समत्वं येन तस्य। घृणेः शुद्धतेजोमयस्यापि मायया वनौकसो

આમ, સમત્વરૂપ સ્વભાવ જેણે ત્યાગ્યો છે તેના (વિષ્ણુના)– '**घृणेः**' શુદ્ધ તેજોમય સ્વરૂપવાળા હોવા છતાં માયાથી '**वनौकसः**' જંગલી ભૂંડ

वराहरूपस्य सतः। अस्थिरात्मनोऽव्यवस्थित-चित्तस्य। कुतः। यो यो भजति तं तं भजमानस्यानुसरतः ॥ ७ ॥

તસ્य रुधिरेण यावत्तर्पयिष्यामि तावद्यूयं भुवं यातेति तृतीयेनान्वयः ॥ ८ ॥

ननु देवैस्तद्वधः कारितोऽतस्ते किं न हन्यन्ते तत्राह—

तस्मिन् कूटेऽहिते नष्टे कृत्तमूले वनस्पतौ।
विटपा इव शुष्यन्ति विष्णुप्राणा दिवौकसः ॥ ९

तस्मिन्हरौ कूटे कपटे। अहिते प्रतिपक्षे। कूटमीहितं यस्येति वा। नष्टेऽदृष्टे सति देवाः शुष्यन्ति स्वयमेव नाशं यास्यन्ति। कुतः। विष्णुरेव प्राणो येषां ते। यथा कृत्तमूले वृक्षे शाखाः स्वयं शुष्यन्ति तद्वत्॥ ९ ॥

तावद्यात भुवं यूयं विप्रक्षत्रसमेधिताम्।
सूदयध्वं तपोयज्ञस्वाध्यायव्रतदानिनः ॥ १०

तपोयज्ञादियुक्तान् सूदयध्वं घातयत ॥ १० ॥

ननु तैः किमपराद्धं तत्राह—**विष्णुरिति**।

બનનારના, **'अस्थिर-आत्मनः'** અવ્યવસ્થિત ચિત્તવાળાના– શા માટે? જે કોઈ તેને ભજે તે સર્વ ભજનારાઓને સેવનારના (વિષ્ણુના)॥ ૭ ॥

તેના (વિષ્ણુના) રુધિરથી જ્યાં સુધી હું તર્પણ કરું, ત્યાં સુધી તમે બધા પૃથ્વી ઉપર જાઓ (રહો), એમ આનાથી ત્રીજા શ્લોક (૧૦) સાથે અન્વય છે. ॥ ૮ ॥

શંકા કરવામાં આવી છે કે દેવો દ્વારા વધ કરાવ્યો તો તે દેવોને કેમ હણવામાં નથી આવતા? તે માટે ઉત્તર આપે છે–

શત્રુ એવો તે કપટરૂપ વિષ્ણુ નાશ પામતાં, વિષ્ણુ જેમના પ્રાણ છે તેવા સ્વર્ગમાં રહેનારા (દેવો) પણ વૃક્ષનું મૂળ કપાઈ જતાં જેમ શાખાઓ સુકાઈ જાય તેમ નાશ પામશે. ॥ ૯ ॥

'कूटे' કપટરૂપ તે વિષ્ણુ **'अहिते'** શત્રુ એવો તે વિષ્ણુ, અથવા કપટ **'ईहितम्'** કરતૂતો છે જેની– **'नष्टे'** (વિષ્ણુ) અદૃશ્ય થતાં દેવો **'शुष्यन्ति'** સુકાઈ જશે (સ્વયં નાશ પામશે). કેવી રીતે? વિષ્ણુ જ પ્રાણ છે જેમના તે દેવો. જેમ વૃક્ષનું મૂળ કપાઈ જતાં શાખાઓ જાતે જ સુકાઈ જાય છે તેમ! ॥ ૯ ॥

માટે બ્રાહ્મણો અને ક્ષત્રિયો દ્વારા વૃદ્ધિ પામેલી પૃથ્વી પર તમે જાઓ અને તપ, યજ્ઞ, સ્વાધ્યાય, વ્રત તથા દાન કરનારાઓને હણાવી નાખો. ॥ ૧૦ ॥

તપ, યજ્ઞ વગેરે સાથે સંકળાયેલા જનોને **'सूदयध्वम्'** મરાવી નાખો. ॥ ૧૦ ॥

શંકા કરવામાં આવી છે કે તેઓ (તપ વગેરે કરનારા વિપ્રો અને ક્ષત્રિયો) દ્વારા કયો અપરાધ કરવામાં આવ્યો છે? તે માટે ઉત્તર આપે છે – **'विष्णुः इति।'**

विष्णुर्द्विजक्रियामूलो यज्ञो धर्ममयः पुमान्।
देवर्षिपितृभूतानां धर्मस्य च परायणम्॥ ११

બ્રાહ્મણોનાં (યજ્ઞાદિ) અનુષ્ઠાન જેનું મૂળ છે તે યજ્ઞરૂપ વિષ્ણુ ધર્મમય પુરુષ છે. દેવો, ઋષિઓ, પિતૃઓ, સર્વ પ્રાણીઓ અને ધર્મના પરમ આશ્રયરૂપ છે.॥૧૧॥

द्विजानां क्रिया अनुष्ठानं मूलं यस्य सः। यतोऽसौ यज्ञो धर्ममयश्च। देवादीनां परायणं परम आश्रयः। अतो यज्ञरूपस्य विष्णोर्मूलत्वात् मामनादृत्य तदाश्रयणाच्च ते वध्या इति भावः ॥ ११ ॥

બ્રાહ્મણોનાં '**क्रियाः**' (યજ્ઞાદિ) અનુષ્ઠાન મૂળ છે જેનું તે વિષ્ણુ. કારણ કે તે વિષ્ણુ યજ્ઞરૂપ છે તથા ધર્મમય છે. દેવો વગેરેના '**पर-अयनम्**' પરમ આશ્રયરૂપ છે. આથી યજ્ઞરૂપ વિષ્ણુ મૂળ હોવાથી મારો અનાદર કરીને તેઓ વિષ્ણુનો આશ્રય કરનારા છે તેથી તેઓ વધને યોગ્ય છે, એવો ભાવ છે.॥૧૧॥

तस्मात्परमं मन्त्रं शृणुतेत्याह—**यत्र यत्रेति।**

માટે શ્રેષ્ઠ સલાહ સાંભળો, એમ કહે છે—'**यत्र यत्र इति।**'

यत्र यत्र द्विजा गावो वेदा वर्णाश्रमाः क्रियाः।
तं तं जनपदं यात सन्दीपयत वृश्चत॥ १२

જ્યાં જ્યાં બ્રાહ્મણો, ગાયો, વેદો, વર્ણાશ્રમો તથા યજ્ઞ-યાગાદિ ક્રિયાઓ હોય, તે તે દેશમાં તમે જાઓ, (તેમને) બાળી નાખો અને (વૃક્ષોને) કાપી નાખો.॥૧૨॥

संदीपयत दहत। वृश्चत आजीव्यानां वृक्षाणां छेदं कुरुत॥ १२॥

'**सन्दीपयत**' બાળી નાખો, '**वृश्चत**' આજીવિકાના સાધનરૂપ (અથવા યજ્ઞ-યાગાદિ ક્રિયામાં ઉપયોગી) વૃક્ષોને કાપી નાખો.।।૧૨।।

इति ते भर्तृनिर्देशमादाय शिरसाऽऽदृताः।
तथा प्रजानां कदनं विदधुः कदनप्रियाः॥ १३

॥ १३ ॥

આ પ્રમાણે સ્વામીની આજ્ઞા મસ્તકથી સ્વીકારી (સ્વામી પ્રત્યે) આદરવાળા અને હિંસાપ્રિય એવા તે દાનવો તે પ્રમાણે પ્રજાઓની હિંસા કરવા લાગ્યા.॥૧૩॥૧૩॥

पुरग्रामव्रजोद्यानक्षेत्रारामाश्रमाकरान्।
खेटखर्वटघोषांश्च ददहुः पत्तनानि च॥ १४

તેઓએ નગરો, ગામડાં, નેસડા, બગીચા, ખેતરો, કુદરતી વનો, આશ્રમો, (રત્નાદિની) ખાણો, ખેડૂતોનાં રહેઠાણો, પહાડની તળેટીનાં ગામો, આહીરોની વસ્તીઓ તથા રાજધાનીઓને બાળી નાખ્યાં.॥૧૪॥

पुरं हट्टादिमत्। ग्रामस्तद्रहितः। व्रजो गवां वासः। उद्यानं कृत्रिमं वनम्। क्षेत्रं

'**पुरम्**' બજાર વગેરેથી યુક્ત હોય તે નગર, '**ग्रामः**' બજાર વગેરે ન હોય તે ગામ, '**व्रजः**' ગાયોનો વાસ હોય તે વ્રજ, '**उद्यानम्**'

व्रीह्यादेः। आरामोऽकृत्रिमं वनम्। आश्रमः ऋषीणां स्थानम्। आकरो रत्नादीनाम्। खेटः कृषीवलानां वासः। खर्वटो गिरिद्रोण्याश्रयो ग्रामः। घोष आभीराणां वासः। पत्तनं राजधानी ॥ १४ ॥

કૃત્રિમ વન-બગીચો, '**क्षेत्रम्**' ડાંગર વગેરેનું ખેતર, '**आरामः**' કુદરતી વન, '**आश्रमः**' ઋષિઓનું સ્થાન, '**आकरः**' રત્નાદિની ખાણ, '**खेटः**' ખેડૂતોનું રહેઠાણ, '**खर्वटः**' પર્વતની તળેટી પર રહેલું ગામ, '**घोषः**' ભરવાડોની વસ્તી, '**पत्तनम्**' રાજધાની ॥ ૧૪ ॥

केचित्खनित्रैर्बिभिदुः सेतुप्राकारगोपुरान्।
आजीव्यांश्चिच्छिदुर्वृक्षान् केचित्परशुपाणयः।
प्रादहन् शरणान्यन्ये प्रजानां ज्वलितोल्मुकैः॥
॥ १५ ॥

કેટલાક દાનવોએ ખોદવાનાં સાધનોથી પુલો, કિલ્લા અને દરવાજા તોડી નાખ્યા. કુહાડી હાથમાં લઈને કેટલાકે જીવનના મૂળ આશ્રયરૂપ વૃક્ષોને કાપી નાખ્યાં. બીજા કેટલાકે બળતાં લાકડાંથી પ્રજાઓનાં ઘરો બાળી નાખ્યાં. ॥ ૧૫ ॥

खनित्रैः खननसाधनैः। आजीव्यानुपजीव्यान् जम्ब्वाम्रकपित्थादीन् शरणानि गृहान्॥ १५ ॥

'**खनित्रैः**' ખોદવાનાં સાધનોથી, '**आजीव्यान्**' જીવનના આશ્રયરૂપ જાંબુ, આંબા અને કોઠાં વગેરે (વૃક્ષો)ને, '**शरणानि**' ઘરોને ॥ ૧૫ ॥

एवं विप्रकृते लोके दैत्येन्द्रानुचरैर्मुहुः।
दिवं देवाः परित्यज्य भुवि चेरुरलक्षिताः॥ १६

આ પ્રમાણે દૈત્યરાજના અનુચરોએ લોકમાં વારંવાર ઉપદ્રવ કર્યો, ત્યારે દેવતાઓ સ્વર્ગ છોડીને પૃથ્વી ઉપર ગુપ્ત રીતે વિચરવા લાગ્યા. ॥ ૧૬ ॥

विप्रकृते उपद्रुते। यज्ञभागानामभावाद्दिवं परित्यज्यालक्षिताः सन्तो भुवि चेरुः॥ १६ ॥

'**विप्रकृते**' ઉપદ્રવ કર્યો ત્યારે– યજ્ઞભાગના અભાવે સ્વર્ગ છોડીને ગુપ્તરૂપે પૃથ્વી ઉપર વિચરણ કરવા લાગ્યા. ॥ ૧૬ ॥

तदेवं प्रजानां कदनं दानवेषु कुर्वत्सु स्वयं स्वर्गराज्यादि साधयितुं तपस्तप्तुकामः प्रथमं यत्कृतवांस्तदाह—**हिरण्यकशिपुरित्यादिना**।

તે પ્રમાણે દાનવો પ્રજાઓને રંજાડતા હતા, ત્યારે હિરણ્યકશિપુએ પોતે સ્વર્ગનું રાજ્ય વગેરે હાંસલ કરવા માટે તપ કરવાની ઈચ્છાવાળા થઈ પ્રથમ જે કર્યું તે કહે છે– '**हिरण्यकशिपुः**' વગેરે દ્વારા.

हिरण्यकशिपुर्भ्रातुः सम्परेतस्य दुःखितः।
कृत्वा कटोदकादीनि भ्रातृपुत्रानसान्त्वयत्॥ १७
शकुनिं शम्बरं धृष्टं भूतसन्तापनं वृकम्।
कालनाभं महानाभं हरिश्मश्रुमथोत्कचम्॥ १८

દુઃખી થયેલા હિરણ્યકશિપુએ મરણ પામેલા ભાઈ (હિરણ્યાક્ષ)ની પ્રેતને આપવા યોગ્ય જળ વગેરે (શ્રાદ્ધાદિ) ક્રિયા કરીને ભાઈના પુત્રો શકુનિ, શમ્બર, ધૃષ્ટ, ભૂતસન્તાપન, વૃક, કાલનાભ, મહાનાભ, હરિશ્મશ્રુ તથા ઉત્કચને આશ્વાસન આપ્યું. ॥ ૧૭ ॥ ૧૮ ॥

कटोदकं प्रेताय प्रदेयमुदकम्। आदिशब्दात् प्रेतश्राद्धादिकम्॥ १७॥ १८॥

तन्मातरं रुषाभानुं दितिं च जननीं गिरा।
श्लक्ष्णया देशकालज्ञ इदमाह जनेश्वर॥ १९ ॥ १९॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

अम्बाम्ब हे वधूः पुत्रा वीरं मार्हथ शोचितुम्।
रिपोरभिमुखे श्लाघ्यः शूराणां वध ईप्सितः॥ २०

हे वधूरिति भ्रातुर्भार्यां संबोधयति ॥ २०॥

वंशीधरी—दीर्घत्वमार्षम्।

भवतु नाम तस्य श्लाघ्यो वधस्तथाप्यस्माकं तावद्बन्धुर्गत एवेति चेत्तत्राह—**भूतानामिति**।

भूतानामिह संवासः प्रपायामिव सुव्रते।
दैवेनैकत्र नीतानामुन्नीतानां स्वकर्मभिः॥ २१

दैवेन प्राचीनकर्मणा एकत्र नीतानां संयोजितानां पुनश्च स्वैः स्वैः कर्मभिरुन्नीतानां वियोजितानाम् ॥ २१॥

एवं लौकिकदृष्ट्या शोकं निवार्य तत्त्वदृष्ट्या वारयति—**नित्य इति**।

‘**कट-उदकम्**’ પ્રેતને આપવા યોગ્ય જળ, ‘**आदि**’ શબ્દથી પ્રેતશ્રાદ્ધાદિ સમજવાં.॥ ૧૭॥ ૧૮॥

હે જનેશ્વર, તે (શકુનિ વગેરે)ની માતા રુષાભાનુને તથા પોતાની માતા દિતિને દેશ અને કાળના જ્ઞાતા એવા હિરણ્યકશિપુએ મધુર વાણીથી આ પ્રમાણે કહ્યું.॥ ૧૯॥ ૧૯॥

હિરણ્યકશિપુ બોલ્યો – હે માતા, હે માતા, હે વધૂ, હે પુત્રો, વીરનો શોક કરવો તમારે માટે યોગ્ય નથી. શત્રુની સામે શૂરવીરોનો વધ પ્રશંસનીય અને પ્રાપ્ત કરવો ઈષ્ટ છે.॥ ૨૦॥

‘**हे वधूः**’ એમ ભાઈની પત્નીને સંબોધન કરે છે.॥ ૨૦॥

‘**हे वधूः**’ સંબોધનનું દીર્ઘત્વ આર્ષ છે. (**हे वधु** હોવું જોઈએ.)

(સામી છાતીએ થયેલો શૂરવીરનો) વધ ભલે પ્રશંસનીય હોય, પરંતુ અમારો તો સંબંધી ચાલ્યો જ ગયો, એમ જો કહેવામાં આવે તો તે માટે ઉત્તર આપે છે – ‘**भूतानाम् इति**।’

હે સુવ્રતા (જનની), આ સંસારમાં પ્રાચીન કર્મથી એક સ્થળે સંયોગ પામેલાં અને (ફરીથી) પોતપોતાનાં કર્મો વડે વિયોગ પામેલાં પ્રાણીઓનો સહવાસ પાણીની પરબમાં એકઠાં થતાં અને છૂટાં પડતાં પ્રાણીઓ જેવો જ છે.॥ ૨૧॥

‘**दैवेन**’ પૂર્વના કર્મથી ‘**एकत्र नीतानाम्**’ સંયોગ પામેલાં પ્રાણીઓનો અને ફરીથી પોતપોતાનાં કર્મો વડે ‘**उन्नीतानाम्**’ છૂટાં પડેલાં પ્રાણીઓનો॥ ૨૧॥

આમ, લૌકિક દષ્ટિથી શોકનું નિવારણ કરીને તત્ત્વદષ્ટિથી શોકનું નિવારણ કરે છે— ‘**नित्यः इति**।’

नित्य आत्माव्ययः शुद्धः सर्वगः सर्ववित्परः।
धत्तेऽसावात्मनो लिङ्गं मायया विसृजन्गुणान्॥ २२

તે આત્મા મૃત્યુરહિત, અપક્ષયરહિત (અવિનાશી), શુદ્ધ, સર્વવ્યાપક, સર્વજ્ઞ તથા દેહાદિથી પૃથક્ છે. પોતાના અજ્ઞાનથી ઊંચ-નીચ શરીરોને સ્વીકારતો તે આત્મા સૂક્ષ્મ શરીર ધારણ કરે છે.॥ ૨૨ ॥

आत्मा नित्यो मृत्युशून्यः। अव्ययोऽपक्षयशून्यः। शुद्धो निर्मलः। सर्वगतः सर्ववित्सर्वज्ञश्च। सर्वत्र हेतुः—परो देहादिव्यतिरिक्तः। अतो मृत इति कृश इति मलिन इति वियुक्त इत्यज्ञ इति च मत्वा शोको न कार्य इत्यर्थः। कथं तर्हि तस्य संसारस्तत्राह—धत्त इति। आत्मनो मायया स्वाविद्यया लिङ्गं मूर्तीर्धत्ते। गुणानुच्चावचान्देहान् सुखदुःखादीन्वा विशेषेण सृजन्स्वीकुर्वन्। लिङ्गशरीरोपाधिः संसार इत्यर्थः॥ २२॥

આત્મા '**नित्यः**' મૃત્યુરહિત છે. '**अव्ययः**' વિનાશાદિ અવસ્થાથી રહિત છે. '**शुद्धः**' નિર્મળ છે અને '**सर्ववित्**' સર્વજ્ઞ છે. સર્વત્ર હોવાનું (કારણ)— '**परः**' દેહાદિ સંઘાતથી પૃથક્ છે, આથી મરેલો છે, પાતળો છે, મલિન છે, વિયોગી છે, અજ્ઞાની છે, એમ માનીને શોક ન કરવો જોઈએ, એમ અર્થ છે. તો પછી તેને સંસાર કેવી રીતે છે, તે કહે છે— '**धत्ते इति।**' '**आत्मनः मायया**' પોતાની અવિદ્યાથી '**लिङ्गम्**' સૂક્ષ્મ શરીરને ધારણ કરે છે. '**गुणान्**' ઊંચ-નીચ શરીરોને અથવા સુખ-દુઃખને '**विसृजन्**' વિશેષ રીતે સ્વીકાર કરતો આત્મા– લિંગશરીરરૂપ ઉપાધિ એ જ સંસાર છે, એમ અર્થ છે.॥ ૨૨ ॥

एतत्सदृष्टान्तं प्रपञ्चयति—**यथेति** चतुर्भिः।

(સ્થૂળ અને સૂક્ષ્મદેહના અધ્યાસની ગાંઠ જીવનું સંસારિત્વ છે,) એ વાત દૃષ્ટાંતસહિત ચાર શ્લોકો વડે વિસ્તારપૂર્વક સમજાવે છે — '**यथा इति।**'

यथाम्भसा प्रचलता तरवोऽपि चला इव।
चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते चलतीव भूः॥ २३

જેમ હલતા પાણીની સાથે (તેમાં પ્રતિબિમ્બિત થતાં) વૃક્ષો પણ હલતાં હોય તેમ જણાય છે. ભમતી આંખ સાથે ભૂમિ પણ ભમતી હોય તેમ દેખાય છે.॥ ૨૩ ॥

तरवः प्रतिबिम्बिताः। उपाधिधर्मा उपहिते भवन्तीति दृष्टान्तमुक्त्वा ग्राहकधर्मा ग्राह्ये भवन्तीति दृष्टान्तमाह—**चक्षुषेति**॥ २३॥

પ્રતિબિમ્બિત થતાં વૃક્ષો– ઉપાધિના ધર્મો '**उपहिते**' ઉપાધિવાળા પદાર્થમાં પ્રતીત થાય છે, એમ દૃષ્ટાન્ત આપીને ગ્રહણ કરનાર (આંખ)ના ધર્મો ગ્રહણ કરવા યોગ્ય (ભૂમિ)માં અધ્યસ્ત થાય છે, એ દૃષ્ટાન્ત આપે છે— '**चक्षुषा इति।**'॥ ૨૩ ॥

एवं गुणैर्भ्राम्यमाणे मनस्यविकलः पुमान्।
याति तत्साम्यतां भद्रे ह्यलिङ्गो लिङ्गवानिव॥ २४

અેમ હે કલ્યાણી, (સત્ત્વાદિ) ગુણોથી મન ભમે છે ત્યારે મનુષ્ય પરિપૂર્ણ (અવિકલ, શોકાદિ વિકારોથી રહિત) હોવા છતાં મનની સમાનતા (ચંચલતા) પામે છે. દેહાદિના સંગથી રહિત હોવા છતાં પણ દેહાદિના સંગવાળો હોય તેમ જણાય છે.॥ ૨૪॥

अविकलः परिपूर्ण एव। तत्साम्यताम्, मन:समतामित्यर्थः ॥ २४ ॥

'**अविकलः**' પરિપૂર્ણ જ. '**तत्साम्यताम्**' મનની સમાનતાને પ્રાપ્ત કરે છે.॥ ૨૪॥ (સમનું ભાવવાચક સમતા થાય છે. સામ્યતા આર્ષ પ્રયોગ છે).

एष आत्मविपर्यासो ह्यलिङ्गे लिङ्गभावना।
एष प्रियाप्रियैर्योगो वियोगः कर्मसंसृतिः ॥ २५

ખરેખર, લિંગ શરીરથી જુદા એવા આત્મા ઉપર લિંગદેહાભિમાન (અહંતા-મમતા) રાખવું એ જ આત્માનું અજ્ઞાન છે. આ (અન્યથાભાવરૂપ અજ્ઞાનને કારણે જ) પ્રિયજનો સાથે વિયોગ, અપ્રિયજનો સાથે યોગ, જુદાં જુદાં કર્મો અને અનેક ગર્ભોમાં પ્રવેશ કરવાનું થાય છે.॥ ૨૫॥

लिङ्गभावना देहाभिमानः। एष आत्मनो विपर्यासोऽन्यथाभावः। तमेवाह— प्रियैर्वियोगोऽप्रियैर्योगश्च। कर्म च संसृतिश्च नानागर्भेषु प्रवेशः ॥ २५ ॥

'**लिङ्गभावना**' દેહાભિમાન એ જ આત્માનું '**विपर्यासः**' (અવળું જ્ઞાન) અજ્ઞાન છે. તે જ કહે છે— પ્રિયજનો સાથે વિયોગ અને અપ્રિયજનો સાથે યોગ, અનેક પ્રકારનાં કર્મો અને '**संसारः**' અનેક ગર્ભોમાં પ્રવેશ॥ ૨૫॥

सम्भवश्च विनाशश्च शोकश्च विविधः स्मृतः।
अविवेकश्च चिन्ता च विवेकास्मृतिरेव च॥ २६

જન્મ, મૃત્યુ, અનેક પ્રકારના શોક, અવિવેક, વિષયોનું ચિંતન તથા વિવેકનું વિસ્મરણ– (આ સર્વનું કારણ આત્મા સંબંધી અજ્ઞાન જ) કહેવાય છે.॥ ૨૬॥

ततश्च संभव उत्पत्तिः। विवेक- स्यास्मृतिरननुसंधानम्॥ २६ ॥

તેને (અજ્ઞાનને) કારણે '**सम्भवः**' જન્મ– વિવેકની '**अस्मृतिः**' વિસ્મૃતિ, (આત્માનું) અનુસંધાન ન રહેવું ॥ ૨૬॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
यमस्य प्रेतबन्धूनां संवादं तं निबोधत॥ २७

આ વિષયમાં પણ (મહાત્માઓ) પુરાતન ઈતિહાસ કહે છે. મૃત્યુ પામેલા મનુષ્યના સંબંધીઓના યમરાજ સાથેના તે સંવાદને, તમે સાંભળો.॥ ૨૭॥

अत्रापि शोकहेतुं विना वृथैवायं शोक इत्यस्मिन्नर्थे। प्रेतस्य मृतस्य कस्यचिद्ये बन्धवस्तेषां च संवादं शृणुत॥ २७॥

'अत्र-अपि' અહીં પણ શોકના કારણ વિના વ્યર્થ જ શોક કરવામાં આવ્યો છે, એ વિષયમાં– **'प्रेतस्य'** મૃત મનુષ્યના જે કોઈ સંબંધીઓ છે તેમના અને (યમરાજના) સંવાદને સાંભળો.॥ ૨૭॥

उशीनरेष्वभूद्राजा सुयज्ञ इति विश्रुतः।
सपत्नैर्निहतो युद्धे ज्ञातयस्तमुपासत॥ २८

ઉશીનર દેશમાં સુયજ્ઞ નામનો પ્રખ્યાત રાજા થઈ ગયો. યુદ્ધમાં શત્રુઓ દ્વારા તેને મારી નાખવામાં આવ્યો. (તે સમયે તેના) સંબંધીઓ તેની પાસે વીંટળાઈને બેઠા.॥ ૨૮॥

उपासत तत्समीपे आवृत्य स्थिताः॥ २८॥

'उप-आसत' તેની પાસે વીંટળાઈને બેઠા.॥ ૨૮॥

विशीर्णरत्नकवचं विभ्रष्टाभरणस्रजम्।
शरनिर्भिन्नहृदयं शयानमसृगाविलम्॥ २९

જેનું રત્નખચિત કવચ ટુકડે ટુકડા થઈ ગયું હતું, જેનાં અલંકારો અને પુષ્પમાળાઓ પડી ગયાં હતાં, હૃદય બાણથી ચિરાઈ ગયું હતું તેવા લોહીથી લથપથ થઈને (ભૂમિ ઉપર) સૂતેલા (રાજા)ને॥ ૨૯॥

विशीर्णं रत्नमयं कवचं यस्य। विभ्रष्टान्याभरणानि स्रजश्च यस्य। शरेण निर्भिन्नं हृदयं यस्य। असृजा रक्तेनाविलं लिप्तम्॥ २९॥

જેના રત્નખચિત કવચના ટુકડે ટુકડા થઈ ગયા હતા, જેનાં અલંકારો અને પુષ્પમાળાઓ પડી ગયાં હતાં, બાણથી ચિરાઈ ગયું હતું હૃદય જેનું, **'असृजा'** રક્તથી **'आविलम्'** ખરડાઈ ગયેલા (રાજા)ને॥ ૨૯॥

प्रकीर्णकेशं ध्वस्ताक्षं रभसा दष्टदच्छदम्।
रजःकुण्ठमुखाम्भोजं छिन्नायुधभुजं मृधे॥ ३०

જેના કેશ વિખરાઈ ગયા હતા, બંને આંખ ફૂટી ગઈ હતી, જેના દ્વારા આવેશને કારણે હોઠ પિસાઈ ગયો હતો, મુખકમળ ધૂળથી છવાઈ ગયું હતું, જેનાં આયુધો અને ભુજાઓ યુદ્ધમાં કપાઈ ગયાં હતાં તેવા (રાજા)ને॥ ૩૦॥

प्रकीर्णाः केशा यस्य। ध्वस्ते अक्षिणी यस्य। रभसा संरम्भेण दष्टो दच्छद ओष्ठो येन। रजसा कुण्ठमावृतं मुखाम्भोजं यस्य। छिन्नमायुधं भुजश्च यस्य॥ ३०॥

વિખરાઈ ગયા છે કેશ જેના, જેની બંને આંખ ફૂટી ગઈ છે, **'रभसा'** આવેશથી પિસાઈ ગયો છે **'दच्छदः'** હોઠ જેનો, ધૂળથી **'कुण्ठम्'** છવાઈ ગયું છે મુખકમળ જેનું, કપાઈ ગયાં છે આયુધો અને ભુજાઓ જેનાં॥ ૩૦॥

उशीनरेन्द्रं विधिना तथा कृतं
पतिं महिष्यः प्रसमीक्ष्य दुःखिताः।
हताः स्म नाथेति करैरुरो भृशं
घ्नन्त्यो मुहुस्तत्पदयोरुपापतन्॥ ३१

પતિ ઉશીનરનરેશને દૈવ દ્વારા તેવો કરવામાં આવેલો જોઈને રાણીઓ દુઃખી થઈ ગઈ અને 'હે નાથ, અમે મરી ગયાં' એમ હાથ વડે વારંવાર જોરથી છાતી કૂટતી તેના પગ પાસે ઢળી પડી.॥ ૩૧ ॥

तस्य पदयोरुप समीपे आ समन्तादपतन्॥ ३१ ॥

તે રાજાના પગ '**उप**' પાસે સાવ ઢળી પડી.॥ ૩૧ ॥

रुदन्त्य उच्चैर्दयितांघ्रिपङ्कजं
सिञ्चन्त्य अस्रैः कुचकुंकुमारुणैः।
विस्त्रस्तकेशाभरणाः शुचं नृणां
सृजन्त्य आक्रन्दनया विलेपिरे॥ ३२

અત્યંત ઉચ્ચ સ્વરે રુદન કરતી, સ્તન ઉપરના કેસરથી લાલ બનેલાં અશ્રુઓ વડે પ્રિયતમના ચરણપંકજને પખાળતી, (તેમને જોવાથી બીજા) મનુષ્યો(નાં હૃદય)માં પણ શોકને ઉત્પન્ન કરતી એવી વિખરાયેલાં કેશ અને અલંકારોવાળી રાણીઓ કરુણ ક્રંદન કરીને વિલાપ કરવા લાગી.॥ ૩૨ ॥ ૩૨ ॥

विलेपिरे इत्यार्षम्।

'**विलेपिरे**' આર્ષ પ્રયોગ છે. ('**विलापं चक्रुः**' અથવા '**विललापुः**' રૂપ થાય.)

विलापमेवाह—**अहो इति** द्वाभ्याम्।

વિલાપનું જ બે શ્લોકોથી વર્ણન કરે છે— '**अहो इति।**'

अहो विधात्राऽकरुणेन नः प्रभो
भवान् प्रणीतो दृगगोचरां दशाम्।
उशीनराणामसि वृत्तिदः पुरा
कृतोऽधुना येन शुचां विवर्धनः॥ ३३

હે સ્વામી! અરેરે, ક્રૂર વિધાતા દ્વારા આપને અમારી આંખોથી જોઈ ન શકાય તેવી દશા પ્રાપ્ત કરાવવામાં આવી છે! પૂર્વે જે વિધાતા દ્વારા આપને, ઉશીનરવાસીઓને આજીવિકા આપનાર બનાવવામાં આવ્યા હતા, તે જ વિધાતા દ્વારા અત્યારે આપને ઉશીનરવાસીઓનો શોક વધારનાર બનાવવામાં આવ્યા છે!॥ ૩૩ ॥

अकरुणत्वमेवाहुः—येन विधात्रा दृशामगोचरां दशां भवान्प्रणीतो गमितस्तेन विधात्रा त्वमधुना शुचां विवर्धनः कृतोऽसीत्यन्वयः॥ ३३ ॥

(રાણીઓ વિધાતાની) ક્રૂરતાને જ વર્ણવે છે. જે વિધાતા દ્વારા આપને આંખોથી જોઈ ન શકાય તેવી દશા પ્રાપ્ત કરાવવામાં આવી છે, તે વિધાતા દ્વારા તમને અત્યારે (દેશવાસીઓનો) શોક વધારનાર કરવામાં આવ્યા છે, એમ અન્વય છે.॥ ૩૩ ॥

त्वया कृतज्ञेन वयं महीपते
कथं विना स्याम सुहृत्तमेन ते।
तत्रानुयानं तव वीर पादयोः
शुश्रूषतीनां दिश यत्र यास्यसि॥ ३४

हे महीपते, त्वया सुहृत्तमेन विना वयं कथं स्याम भवेम। जीवेमेत्यर्थः। अतो हे वीर, यत्र त्वं यास्यसि तत्र तेऽनुयानमनुगमनं तव पादयोः शुश्रूषां कुर्वतीनामस्माकं दिश देहि॥ ३४॥

હે પૃથ્વીપતિ, અત્યંત સ્નેહી અને કૃતજ્ઞ એવા તમારા વિના અમે કેવી રીતે જીવીશું? (આથી) હે વીર, તમે જ્યાં જાઓ છો ત્યાં તમારા ચરણોની સેવા કરતી એવી અમને આપને અનુસરવાની આજ્ઞા આપો.॥ ૩૪॥

હે પૃથ્વીપતિ, અત્યંત સ્નેહી એવા તમારા વિના અમે કેવી રીતે '**भवेम**' જીવીશું? એમ અર્થ છે. આથી હે વીર, તમે જ્યાં જાઓ છો ત્યાં તમને '**अनुयानम्**' અનુસરતી, તમારા ચરણોની શુશ્રૂષા કરતી એવી અમને '**दिश**' **(आदिश)** આજ્ઞા આપો.॥ ૩૪॥

एवं विलपतीनां वै परिगृह्य मृतं पतिम्।
अनिच्छन्तीनां निर्हारमर्कोऽस्तं संन्यवर्तत॥ ३५

निर्हारं दाहार्थं नयनमनिच्छन्तीनाम्। अस्तमस्ताचलं प्रति॥ ३५॥

આમ, મૃત પતિને પકડીને જ્યારે રાણીઓ વિલાપ કરતી હતી અને પતિને દાહ દેવા માટે લઈ જવા દેવા ઈચ્છતી ન હતી, ત્યારે તેવામાં સૂર્ય અસ્ત થયો.॥ ૩૫॥

'**निर्हारम्**' દાહ દેવા માટે લઈ જવા દેવા ઈચ્છતી ન હોય તેવી રાણીઓ– '**अस्तम्**' અસ્તાચલ તરફ॥ ૩૫॥

तत्र ह प्रेतबन्धूनामाश्रुत्य परिदेवितम्।
आह तान् बालको भूत्वा यमः स्वयमुपागतः॥ ३६

परिदेवितं रोदनं स्वपुर्यामेव स्थित आश्रुत्य श्रुत्वा तत्र स्वयमेवोपागतो यमो बालको भूत्वा तानाह—**अहो** इत्यादिना॥ ३६॥

ત્યાં તે મૃતાત્માના સગાં-સંબંધીઓનો વિલાપ સાંભળીને યમદેવ પોતે બાળક બનીને આવ્યા અને તેમને કહેવા લાગ્યા.॥ ૩૬॥

'**परिदेवितम्**' રુદન, પોતાની નગરીમાં જ રહીને, '**आश्रुत्य**' સાંભળીને ત્યાં બાળક બનીને આવેલા યમરાજ તેમને કહે છે– '**अहो**' વગેરે દ્વારા॥ ૩૬॥

यम उवाच

अहो अमीषां वयसाऽधिकानां
विपश्यतां लोकविधिं विमोहः।
यत्रागतस्तत्र गतं मनुष्यं
स्वयं सधर्मा अपि शोचन्त्यपार्थम्॥ ३७

યમદેવ બોલ્યા – અહો! અમારા કરતાં ઉંમરે મોટા છે તો પણ જન્મ-મરણાદિ લોકરીતિ જોવા છતાં આ મનુષ્યોનો મોહ (આશ્ચર્યજનક) છે! જ્યાંથી આવ્યો છે ત્યાં જ ગયેલા મનુષ્યનો, પોતે પણ તેના જેવા જ (મરણ)ધર્મવાળા હોવા છતાં લોકો વ્યર્થ શોક કરે છે.॥ ૩૭॥

अहो आश्चर्यम्। अस्मत्तो वयसाऽधिकानामपि लोकस्य विधिं जन्ममरणादिप्रकारं विपश्यतामपि विमोहः। मोहमेवाह—यत्र यस्मादव्यक्तादागतस्तत्रैव गतमपार्थं शोचन्ति।

'**અહો**' આશ્ચર્ય! અમારા કરતાં ઉંમરે મોટા છે, તો પણ જન્મ-મરણ વગેરે પ્રકારની '**लोकविधिम्**' લોકની રીતિ જોવા છતાં આમનો મોહ (આશ્ચર્યજનક) છે! મોહનું જ વર્ણન કરે છે— '**यत्र**' જ્યાંથી, જે અવ્યક્તમાંથી મનુષ્ય આવ્યો ત્યાં જ ગયેલાનો વ્યર્થ શોક કરે છે.

तदुक्तं गीतासु—
'अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।'
'अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना।'
इति।

ગીતાજીમાં તે જ કહેવાયું છે— 'હે ભારત, સર્વ પ્રાણીઓ આદિમાં (જન્મ પહેલાં) સૂક્ષ્મરૂપે (અવ્યક્ત) હતાં, મધ્યકાળમાં સ્થૂળ શરીરવાળાં (વ્યક્ત પ્રતીત થાય) છે અને મરણ પછી સૂક્ષ્મરૂપે (અવ્યક્ત) છે, ત્યારે તેમાં શોક કેવો?' (ગીતા ૨/૨૮)

किंच—स्वयमपि सधर्माः मृतेन सह समानो मृत्युलक्षणो धर्मो येषां तथाभूता अपि ॥ ३७ ॥

વળી, પોતે પણ '**सधर्माः**' મરેલાના સમાન મૃત્યુરૂપ લક્ષણવાળો ધર્મ છે જેમનો તેવા હોવા છતાં પણ ॥ ૩૭ ॥

अहो वयं धन्यतमा यदत्र
त्यक्ताः पितृभ्यां न विचिन्तयामः।
अभक्ष्यमाणा अबला वृकादिभिः
स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे॥ ३८

અહો! અમે દુર્બળ હોવા છતાં પરમ ધન્ય છીએ, કારણ કે (રક્ષક એવાં) માતા-પિતા દ્વારા (દુઃખાર્ણવરૂપ સંસારમાં) ત્યજાયેલા છીએ. પરંતુ વરુ વગેરે (હિંસક પ્રાણીઓ) દ્વારા જેમનું ભક્ષણ કરવામાં આવ્યું નથી તેવા અમે કાંઈ ચિંતા કરતા નથી, કારણ કે જે (ઈશ્વર) ગર્ભમાં રક્ષા કરે છે, તે જ, ખરેખર (સર્વત્ર) રક્ષણ કરનારો છે. ॥ ૩૮ ॥

अबला दुर्बला अपि वृकादिभिरभक्ष्यमाणा वयं न विचिन्तयामः। तत्र हेतुः— यो गर्भे रक्षति स एव सर्वत्र रक्षिता॥ ३८॥

'**अबलाः**' દુર્બળ હોવા છતાં વરુ વગેરે (હિંસક પ્રાણીઓ) દ્વારા જેમનું ભક્ષણ કરવામાં આવ્યું નથી, તેવા અમે કાંઈ ચિંતા કરતા નથી. તે માટેનું કારણ – જે ગર્ભમાં રક્ષા કરે છે તે જ, ખરેખર સર્વત્ર રક્ષણ કરનારો છે (કરશે). ॥ ૩૮ ॥

ननु तस्य रक्षणे किं प्रयोजनं न किंचिदपि, किंतु क्रीडैव केवलमित्याह— **य इति**।

શંકા કરવામાં આવી છે કે રક્ષણ કરવા માટે તે ઈશ્વરનુ શું પ્રયોજન છે? કોઈ પ્રયોજન નથી, પરંતુ તે ઈશ્વર માટે તો કેવળ ક્રીડા જ છે, એમ કહે છે— '**यः इति।**'

य इच्छयेशः सृजतीदमव्ययो
य एव रक्षत्यवलुम्पते च यः।
तस्याबलाः क्रीडनमाहुरीशितु-
श्चराचरं निग्रहसंग्रहे प्रभुः॥ ३९

હે અબળઓ (રાણીઓ), જે અવિનાશી ઈશ્વર પોતાની ઈચ્છાથી જ આ વિશ્વનું સર્જન કરે છે, જે ઈશ્વર જ વિશ્વનું રક્ષણ કરે છે, જે ઈશ્વર વિશ્વનો સંહાર કરે છે, તે જ ઈશ્વરનું આ ચરાચર વિશ્વ રમવાનું સાધન છે, એમ (તત્ત્વવેત્તાઓ) કહે છે. આથી તે ઈશ્વર જ પ્રાણીઓનો સંહાર કરવામાં અને પાલન કરવામાં સમર્થ છે.॥ ૩૯॥

य ईशः इदं विश्वं सृजति रक्षत्यवलुम्पते संहरति च। भो अबलाः, तस्येशितुश्चराचरं क्रीडासाधनमाहुः—अतः स एव निग्रहे संहारे संग्रहे पालने च प्रभुः॥ ३९॥

જે ઈશ્વર '**इदम्**' આ વિશ્વનું સર્જન કરે છે, રક્ષણ કરે છે અને '**अवलुम्पते**' સંહાર કરે છે. હે અબળાઓ (રાણીઓ), આ સ્થાવર-જંગમ જગત તે ઈશ્વરનું ક્રીડા કરવાનું રમકડું છે, એમ (તત્ત્વવેત્તાઓ) કહે છે— આથી તે જ '**निग्रहे**' સંહાર કરવામાં અને '**सङ्ग्रहे**' પાલન કરવામાં સમર્થ છે.॥ ૩૯॥

वंशीधरी—अकारवाच्यो हरिरेव बलं येषां तेऽबला विज्ञा इत्यर्थः।

'अ' કારથી સંબોધિત થવા યોગ્ય શ્રીહરિ જ જેમનું બળ છે તેવી હે અબળાઓ, હે વિજ્ઞ (જ્ઞાની) રાણીઓ, એમ અર્થ છે.

प्रभुत्वमेवान्वयव्यतिरेकाभ्यां दर्शयति—**पथीति**।

અન્વય અને વ્યતિરેક દ્વારા પ્રભુની પ્રભુતા (સર્વોપરિતા) દર્શાવે છે— '**पथि इति**।'

पथि च्युतं तिष्ठति दिष्टरक्षितं
गृहे स्थितं तद्विहतं विनश्यति।
जीवत्यनाथोऽपि तदीक्षितो वने
गृहेऽपि गुप्तोऽस्य हतो न जीवति॥ ४०

ઈશ્વર દ્વારા રક્ષાયેલી વસ્તુ (હજારો મનુષ્યોની દૃષ્ટિ પડવાની સંભાવના હોય તેવા) રસ્તા ઉપર પડી હોય તો પણ તેમની તેમ જ રહે છે અને ઘરમાં (સુરક્ષિત) રહેલી વસ્તુ પણ તે ઈશ્વર દ્વારા ઉપેક્ષા પામેલી હોય તો નાશ પામે છે! તે પરમેશ્વરે કૃપાદૃષ્ટિથી જોયેલો અનાથ (બાળક) વનમાં હોય તો પણ તે જીવે છે અને તે પરમેશ્વર દ્વારા ઉપેક્ષિત થયેલો મનુષ્ય ઘરમાં સુરક્ષિત હોય તો પણ જીવતો નથી.॥ ૪૦॥

दिष्टेन दैवेनेश्वरेण रक्षितं तेनेश्वरेण विहतमुपेक्षितम्। अस्य हतस्तेनोपेक्षितः ॥ ४० ॥

'**दिष्टेन**' દૈવ દ્વારા, ઈશ્વર દ્વારા રક્ષાયેલી, તે ઈશ્વર દ્વારા '**विहतम्**' ઉપેક્ષિત થયેલી વસ્તુ– '**अस्य हतः**' તે પરમેશ્વર દ્વારા ઉપેક્ષિત થયેલો મનુષ્ય ॥ ૪૦ ॥

तदेवमात्मनो जन्ममरणादिकमङ्गीकृत्येश्वराधीनत्वान्न शोकः कार्य इत्युक्तम्, इदानीं तु देहानामेव जन्मादि न त्वात्मन इत्याह—**भूतानीति** त्रिभिः।

આ પ્રમાણે જીવનાં જન્મ-મરણાદિનો સ્વીકાર કરીને, તે સર્વ ઈશ્વરને અધીન હોવાથી શોક કરવા યોગ્ય નથી, એમ કહેવામાં આવ્યું. છતાં પણ હવે શરીરોનાં જ જન્માદિ હોય છે, પરંતુ આત્માનાં જન્માદિ હોતાં નથી, એમ ત્રણ શ્લોકોથી કહે છે— '**भूतानि इति।**'

भूतानि तैस्तैर्निजयोनिकर्मभि-
र्भवन्ति काले नभवन्ति सर्वशः।
न तत्र हात्मा प्रकृतावपि स्थित-
स्तस्या गुणैरन्यतमो निबध्यते॥ ४१

પ્રાણીઓનાં સ્થૂળ શરીરો પોતપોતાનાં કારણરૂપ લિંગશરીરરૂપી નિમિત્તવાળાં જુદાં જુદાં કર્મોને કારણે સમયાનુસાર ઉત્પન્ન થાય છે અને નાશ પામે છે. તે જ સમયે શરીરમાં રહેલો હોવા છતાં પણ આત્મા શરીરનાં જન્મ-મરણાદિ ધર્મોથી બંધાતો નથી, કારણ કે આત્મા દેહથી અત્યન્ત વિલક્ષણ છે. ॥ ૪૧ ॥

भूतानि देहाः निजयोनिः स्वकारणभूतं लिङ्गशरीरं तन्निमित्तैः कर्मभिर्भवन्ति जायन्ते, न भवन्ति नश्यन्ति च। सर्वशो देवादिदेहा अपि। तत्र ह तदा प्रकृतौ देहे स्थितोऽप्यात्मा तस्याः प्रकृतेर्गुणैर्देहधर्मैर्जन्मादिभिर्न निबध्यते न युज्यते। यतोऽन्यतमो देहादत्यन्तविलक्षणः ॥ ४१ ॥

'**भूतानि**' (મનુષ્ય, પશુ વગેરેનાં) શરીરો '**निजयोनिः**' પોતાના કારણરૂપ લિંગશરીર, તે શરીરના નિમિત્તવાળાં કર્મોને કારણે '**भवन्ति**' ઉત્પન્ન થાય છે અને '**न-भवन्ति**' નાશ પામે છે. '**सर्वशः**' દેવ (તિર્યક્, મનુષ્ય) વગેરે સર્વનાં શરીરો પણ, '**तत्र ह**' તે જ સમયે '**प्रकृतौ**' શરીરમાં રહેલો હોવા છતાં પણ આત્મા '**तस्याः (प्रकृतेः) गुणैः**' તે દેહનાં જન્મ-મરણરૂપ ધર્મોથી '**न निबध्यते**' બંધાતો નથી, '**यतः अन्यतमः**' કારણ કે આત્મા દેહથી અત્યન્ત વિલક્ષણ છે. ॥ ૪૧ ॥

नन्वहं कृशः स्थूल इत्यादौ वैलक्षण्यं न प्रतीयते तत्राह—**इदमिति**।

શંકા કરવામાં આવી છે કે હું પાતળો, જાડો વગેરે પ્રકારની વિલક્ષણતા નથી દેખાતી. તે માટે ઉત્તર આપે છે— '**इदम् इति।**'

इदं शरीरं पुरुषस्य मोहजं
यथा पृथग्भौतिकमीयते गृहम्।
यथौदकैः पार्थिवतैजसैर्जनः
कालेन जातो विकृतो विनश्यति॥ ४२

મોહથી ઉત્પન્ન થયેલું આ પુરુષનું શરીર (પોતાનાથી જુદા એવા) ભૌતિક ઘરની જેમ (આત્માથી) જુદું જ પ્રતીત થાય છે. જળના પરમાણુઓમાંથી ઉત્પન્ન થયેલા પરપોટા, પૃથ્વીના પરમાણુઓમાંથી ઉત્પન્ન થયેલા ઘડા તથા તેજરૂપ સોનામાંથી ઉત્પન્ન થયેલાં કુંડળ વગેરેની જેમ તે જ ત્રણ પ્રકારના પરમાણુઓથી ઉત્પન્ન થયેલું શરીર વિકારવાળું હોઈ કાળને કારણે નાશ પામે છે.॥ ૪૨ ॥

इदं शरीरं मोहजमविवेकादात्मत्वेन जातम्। वस्तुतस्तु पृथगेव। यत ईयते दृश्यते भौतिकं च यथा गृहमित्यन्वयः।

આ શરીર મોહથી ઉત્પન્ન થયેલું છે. અવિવેક (હું અને મારું એવા અધ્યાસ)ને કારણે પોતાના તરીકે થયેલું છે. પરંતુ વાસ્તવિક રીતે આ શરીર આત્માથી ભિન્ન જ છે, કારણ કે '**ईयते**' દેખાય છે. (દશ્યરૂપ હોવાથી) ઘરની જેમ આ શરીર ભૌતિક છે, એમ અન્વય છે.

अत्रैवं प्रयोगः—

द्रष्टुरभौतिकाच्च पुरुषाच्छरीरं भिन्नम्। दृश्यत्वाद्भौतिकत्वाच्च। यथात्यन्ताविवेकिन आत्मत्वेनाभिमतमपि गृहं ततः पृथक् तद्वदिति।

અહીં અનુમાન પ્રમાણ આ રીતે છે—

શરીર દ્રષ્ટા અને અભૌતિક પુરુષથી જુદું છે, કારણ કે શરીર દશ્ય છે અને ભૌતિક છે. જેમ અત્યંત અજ્ઞાની મનુષ્યે પોતાનું માનેલું ઘર તેના પોતાનાથી જુદું જ છે તેમ (આત્મા શરીરથી ભિન્ન છે.)

भौतिकत्वानुमानं विवृण्वन्नात्मनो जन्माद्यभावमुपसंहरति।

શરીર ભૌતિકરૂપ હોવાના અનુમાનનું વિવરણ કરતાં, આત્મા જન્મ-મરણાદિથી રહિત છે, તે વાતનો ઉપસંહાર કરે છે.

यथा औदकैः परमाणुभिर्जातो बुद्बुदादिर्यथा च पार्थिवैर्जातो घटादिर्यथा च तैजसैर्जातः कुण्डलादिर्विनश्यति तथा तैरेव त्रिविधैः परमाणुभिर्जातो जनो देह एव विकृतः परिणतः सन्विनश्यति। न त्वात्मेत्यर्थः ॥ ४२ ॥

જેમ '**ओदकैः**' જળનાં પરમાણુઓથી થયેલા પરપોટા વગેરે તથા પૃથ્વીના પરમાણુઓથી થયેલ ઘડા વગેરે તેમ જ તેજરૂપ સોનામાંથી થયેલાં કુંડળ વગેરે નાશ પામે છે, તેવી જ રીતે, તે જ (તેજ, જળ, અન્ન– એ) ત્રણ પ્રકારનાં પરમાણુઓથી ઉત્પન્ન થયેલું '**जनः**' શરીર પણ '**विकृतः**' વિકારવાળું, પરિણામી હોઈ નાશ પામે છે, પરંતુ આત્મા નાશ પામતો નથી, એમ અર્થ છે.॥ ૪૨ ॥

पृथगवस्थानाभावेऽपि भिन्नत्वे दृष्टान्तद्वयमाह—**यथेति**।

यथाऽनलो दारुषु भिन्न ईयते
यथाऽनिलो देहगतः पृथक् स्थितः।
यथा नभः सर्वगतं न सज्जते
तथा पुमान् सर्वगुणाश्रयः परः॥ ४३

यथाऽनलो दारुष्ववस्थितोऽपि दाहकत्वेन प्रकाशकत्वेन भिन्न एव प्रतीयते। यथा च देहगतोऽप्यनिलो मुखनासिकादिषु पृथक् स्थित एव प्रतीयते। देहस्थत्वेऽप्यात्मनस्तद्धर्मयोगाभावे दृष्टान्तमाह—यथा नभो न सज्जते क्वापि सङ्गं न प्राप्नोति तथा पुमानपि सर्वेषां गुणानां देहेन्द्रियादीनामाश्रयस्तेष्वाश्रितो वा परः पृथगेवेत्यर्थः॥ ४३॥

રહેવાનું સ્થાન જુદું ન હોવા છતાં (બંને વસ્તુઓ) જુદી હોવા માટેનાં બે દૃષ્ટાન્ત આપે છે — '**यथा इति।**'

અગ્નિ જેમ લાકડાંથી જુદો દેખાય છે, જેમ શરીરમાં રહેલો વાયુ જુદો જ રહેલો છે, જેમ સર્વ સ્થળે રહેલું આકાશ (ક્યાંય) લેપાતું નથી, તેમ આત્મા (દેહ-ઈન્દ્રિયાદિ) સર્વ ગુણોનો આશ્રય હોવા છતાં (દેહાદિથી) જુદો જ છે.॥ ૪૩॥

અગ્નિ જેમ લાકડામાં રહેલો હોવા છતાં દાહક અને પ્રકાશક તરીકે તે લાકડાથી જુદો જ જણાય છે. વળી, વાયુ શરીરમાં રહેલો હોવા છતાં પણ મુખ, નાસિકા વગેરેમાં જુદો જ રહેલો જણાય છે. શરીરમાં રહેવા છતાં પણ આત્માને તે શરીરના ધર્મો સાથે સંબંધ ન હોવા માટેનું દૃષ્ટાન્ત આપે છે– જેમ આકાશ કોઈ પણ સ્થળે '**न सज्जते**' લેપાતું નથી, (કોઈના ગુણ-દોષથી) સંગ પામતું નથી, તેમ આત્મા પણ '**गुणानाम्**' દેહ-ઈન્દ્રિયાદિ સર્વ ગુણોનો આશ્રય છે અથવા તેમનામાં જ આશ્રિત થઈને રહેલો છે, છતાં પણ તે '**परः**' જુદો જ છે, (દેહ-ઈન્દ્રિયોના ધર્મોથી કદી લેપાતો નથી.) એમ અર્થ છે.॥ ૪૩॥

सुयज्ञो नन्वयं शेते मूढा यमनुशोचथ।
यः श्रोता योऽनुवक्तेह स न दृश्येत कर्हिचित्॥ ४४

હે મૂઢ (રાણીઓ), જેનો તમે શોક કરો છો તે આ સુયજ્ઞ (તો અહીં જ) સૂતો છે ને! (તમે બધા એને જ જોતા હતા). તેનામાં જે સાંભળનારો હતો અને જે ઉત્તર આપનારો હતો, તે તો (કોઈને) ક્યારેય દેખાતો નથી.॥ ૪૪॥

किंच हे मूढाः, यमनुशोचथ सोऽयं युष्मद्भर्ता सुयज्ञः शेते। किमिति शोचथ। नन्वेतावन्तं कालमसौ शृणोत्यनन्तरं प्रतिवक्ति

વળી, હે મૂઢ (રાણીઓ), તમે જેનો શોક કરો છો તે આ તમારો પતિ સુયજ્ઞ (તો અહીં) સૂતો છે, (તો પછી) શા માટે શોક કરો છો? જો કદાચ (તમે એમ કહો કે) અત્યાર સુધી તો તે સાંભળતો હતો અને પછી પ્રત્યુત્તર પણ

च। इदानीं तस्यादर्शनान्मृत इति शोचामेति चेत्स तु शोच्यो न भवति, प्रागपि तस्या-दर्शनादित्याह—**यः श्रोतेति** ॥ ४४ ॥

આપતો હતો. અત્યારે તે દેખાતો નથી તેથી મરી ગયો છે અને માટે અમે શોક કરીએ છીએ. તો તે માટે કહે છે કે તે શોક કરવા યોગ્ય નથી, કારણ કે તે (સાંભળનારો અને પ્રત્યુત્તર આપનારો તો) પહેલાં પણ દેખાતો ન હતો— **'यः श्रोता इति।'** ॥ ४४ ॥

ननु मुखनासिकासंचारी प्राणः श्रोता वक्ता च दृष्ट एवेति चेन्नासौ श्रोता वक्ता वा अचेतनत्वादित्याह—**न श्रोतेति**।

શંકા કરવામાં આવી છે કે મુખ અને નાસિકામાં ગતિ કરનારો પ્રાણવાયુ સાંભળનાર અને બોલનાર તરીકે દેખાય જ છે. તેના ઉત્તરરૂપે કહે છે કે તે પ્રાણવાયુ બોલનાર કે સાંભળનાર નથી, કારણ કે તે પ્રાણવાયુ તો જડ છે— **'न श्रोता इति।'**

न श्रोता नानुवक्तायं मुख्योऽप्यत्र महानसुः।
यस्त्विहेन्द्रियवानात्मा स चान्यः प्राणदेहयोः॥ ४५

આ શરીરમાં પ્રાણવાયુ (સર્વ ઇન્દ્રિયોની ચેષ્ટા માટે કારણરૂપ હોવાથી સૌથી) મહાન અને મુખ્ય છે, છતાં પણ તે સાંભળનાર કે બોલનાર નથી. પરંતુ આ શરીરમાં જે (દેહ અને) ઇન્દ્રિયવાળો છે તે આત્મા તો દેહ અને ઇન્દ્રિયોથી પૃથક્ છે. ॥ ૪૫ ॥

महान्सर्वेन्द्रियचेष्टाहेतुः—अत एव मुख्यः। 'प्राणो वै मुख्यः' इति श्रुतेः। कस्तर्हि श्रोता वक्ता च तत्राह—यस्त्विह देहेन्द्रियैस्तत्तदर्थद्रष्टा आत्मा स तु प्राणदेहाभ्यामचेतनाभ्यामन्य एव सचेतनः॥ ४५ ॥

સર્વ ઇન્દ્રિયોની ચેષ્ટા માટેનું કારણ છે— મહાન પ્રાણવાયુ— આથી જ મુખ્ય છે. 'પ્રાણ જ મુખ્ય છે' તેવી શ્રુતિ છે. તો પછી શ્રોતા અને વક્તા કોણ છે? તે માટે કહે છે— **'यः तु इह'** પરંતુ આ શરીરમાં જે (દેહ તથા ઇન્દ્રિયોવાળો હોઈ) દેહ તથા ઇન્દ્રિયોથી તે તે વિષયનો દ્રષ્ટા છે, તે આત્મા તો પોતે સચેતન હોઈ અચેતન એવા પ્રાણ અને ઇન્દ્રિયોથી પૃથક્ જ છે. ॥ ૪૫ ॥

ननु चेतनत्वेऽन्यत्वे च तस्याहं कृशः स्थूलः काणो बधिर इत्यादिदेहधर्मोपलब्धिः कुतस्तत्राह—

પ્રશ્ન કરવામાં આવ્યો છે કે ચૈતન્યરૂપ આત્મા જો (શરીરથી) પૃથક્ હોય તો 'હું કૃશ છું, સ્થૂળ છું, કાણો છું, બહેરો છું' વગેરે દેહધર્મોને કેમ પ્રાપ્ત કરે છે? તેના ઉત્તરમાં આ શ્લોક કહે છે —

**भूतेन्द्रियमनोलिङ्गान् देहानुच्चावचान् विभुः।
भजत्युत्सृजति ह्यन्यस्तच्चापि स्वेन तेजसा॥ ४६**

પંચમહાભૂતો, ઈન્દ્રિયો અને મન દ્વારા જણાતા, ઊંચ-નીચ શરીરોને (અને તેમના ધર્મોને) તેમનાથી પૃથક્ હોવા છતાં આત્મા સ્વીકારે છે અને પોતાના વિવેકબળથી તેમનો ત્યાગ પણ કરે છે.॥ ૪૬॥

भूतेन्द्रियमनोभिर्लिङ्ग्यन्ते लक्ष्यन्त इति तथा तान्देहांस्तेभ्योऽन्य एव भजत्यहमिति मन्यते। तर्हि कथं मोक्षस्तत्राह—

પંચમહાભૂતો, ઈન્દ્રિયો તથા મન દ્વારા '**लिङ्ग्यन्ते**' જણાય છે તથા તે (દેવ, મનુષ્ય, પશુ-પંખી વગેરે) શરીરોને આત્મા '**भजति**' સ્વીકારે છે અર્થાત્ આ શરીર હું છું, એમ માને છે. તો પછી તેનો મોક્ષ કેવી રીતે? તે માટે કહે છે—

तच्च भजनं स्वेन तेजसा विवेकबलेनो-त्सृजत्यपि। हीत्यनुभवं प्रमाणयति॥ ४६॥

તે દેહધર્મોના સ્વીકારને '**स्वेन तेजसा**' પોતાના વિવેકબળથી ત્યાગી પણ દે છે. (આ શરીર હું નથી, એમ સમજીને તેને છોડે છે.) '**हि**' ખરેખર, એમ કહીને અનુભવને પ્રમાણિત કરે છે.॥ ૪૬॥

विविधं भवतीति विभुः।

વિવિધ પ્રકારે બની જાય તે વિભુ.

ननु विवेकानन्तरमप्याहारादिकर्मसु प्रवृत्तेर्बन्धः स्यादेवेत्यत आह—**यावदिति**।

શંકા કરવામાં આવી છે કે વિવેક પ્રાપ્ત થયા પછી પણ આહારાદિ કર્મોમાં પ્રવૃત્ત થવાથી બંધન થાય જ છે. તે માટે ઉત્તર આપે છે— '**यावत् इति।**'

**यावल्लिङ्गान्वितो ह्यात्मा तावत्कर्म निबन्धनम्।
ततो विपर्ययः क्लेशो मायायोगोऽनुवर्तते॥
॥ ४७॥**

આત્મા જ્યાં સુધી લિંગશરીરથી યુક્ત છે, ત્યાં સુધી જ કર્મ તેને બંધનના કારણરૂપ થાય છે. (આત્મા લિંગશરીરથી યુક્ત છે,) તેથી વિપર્યય—અવળું જ્ઞાન કે અધ્યાસ ચાલુ રહે છે અને તેથી રાગદ્વેષાદિ ક્લેશ અને માયાસંબંધ ચાલતો રહે છે.॥ ૪૭॥

यावल्लिङ्गशरीरेणान्वितस्तदभिमानवानात्मा भवति तावदेव तस्य तत्कर्म निबन्धनं बन्धहेतु-र्भवति, ततो विपर्ययो देहधर्मभाक्त्वं, ततः

જ્યાં સુધી આત્મા લિંગશરીરથી '**अन्वितः**' યુક્ત છે, 'આ શરીર હું છું.' એવા અભિમાનવાળો છે, ત્યાં સુધી જ તે કર્મ તેને '**निबन्धनम्**' બંધનના કારણરૂપ થાય છે. '**ततः**' તેથી '**विपर्ययः**' અવળું જ્ઞાન કે અધ્યાસ ચાલુ રહે છે. તેથી રાગદ્વેષાદિ

क्लेशश्चानुवर्तते न तु लिङ्गाभिमाने निवृत्तेऽपि। यतोऽयं मायायोगो विपर्ययादिः। मायया युज्यत इति तथा। न परमार्थ इत्यर्थः॥ ४७॥

ક્લેશ ચાલતો રહે છે, પરંતુ લિંગશરીરનું અભિમાન છૂટે ત્યારે તે પ્રમાણે થતું નથી, કારણ કે આત્માને આ વિપર્યય વગેરે માયાથી જોડાય છે. વસ્તુતઃ આત્માને અધ્યાસ થતો નથી, એમ અર્થ છે.॥ ૪૭॥

ननु सुखदुःखादीनां तत्साधनानां च सत्यत्वप्रतीतेः कुतो मायामयत्वम्। तथा च बहवो वादिनः सत्यत्वमेव वदन्ति तत्राह—**वितथेति**।

પ્રશ્ન કરવામાં આવ્યો છે કે સુખ-દુઃખાદિ અને તેનાં સાધનો સત્યરૂપ જણાતાં હોવાથી તેમને માયામય કેવી રીતે કહેવાય? તેમ જ (જુદાં જુદાં દર્શનના) ઘણા વિદ્વાનો પણ તેમને સત્યરૂપ જ કહે છે. તે માટે ઉત્તર આપે છે— '**वितथः इति**।'

वितथाभिनिवेशोऽयं यद् गुणेष्वर्थदृग्वचः।
यथा मनोरथः स्वप्नः सर्वमैन्द्रियकं मृषा॥ ४८

ગુણો(નાં કાર્યરૂપ સુખ-દુઃખાદિ)માં સત્ય પદાર્થ હોવાની દૃષ્ટિ રાખવી અને તેમ કહેવું એ મિથ્યા દુરાગ્રહ છે, કારણ કે જેમ મનોરથ અને સ્વપ્ન મિથ્યા છે તેમ ઈન્દ્રિયજન્ય (કે ઈન્દ્રિયગ્રાહ્ય) સર્વ સુખ મિથ્યા છે.॥ ૪૮॥

वितथो मिथ्याभूतोऽयमभिनिवेशः। कोऽसौ। गुणेषु तत्कार्येषु सुखदुःखादिष्वर्थः परमार्थ इति दृक् वचश्चेति यत्। स कुत इत्यत आह—यथेति॥ ४८॥

આ દુરાગ્રહ '**वितथः**' મિથ્યારૂપ છે. કયો છે તે દુરાગ્રહ? '**गुणेषु**' સત્ત્વાદિ ગુણોમાં અને ગુણોનાં કાર્યરૂપ સુખ-દુઃખાદિમાં '**अर्थः**' પરમાર્થ-સત્યતા કે વાસ્તવિકતા જોવી અને કહેવી, એ જે છે (તે દુરાગ્રહ છે). તે કેવી રીતે છે, તે હવે કહે છે— '**यथा इति**।'॥ ૪૮॥

उपसंहरति—**अथेति**।

ઉપસંહાર કરે છે— '**अथ इति**।'

अथ नित्यमनित्यं वा नेह शोचन्ति तद्विदः।
नान्यथा शक्यते कर्तुं स्वभावः शोचतामिति॥ ४९

માટે આ સંસારમાં (નિત્ય અને અનિત્યને જાણતા) તત્ત્વવેત્તાઓ નિત્ય એવા આત્માનો અને અનિત્ય એવા શરીરનો શોક કરતા નથી. શોક કરનારાઓનો સ્વભાવ બદલવો શક્ય નથી.॥ ૪૯॥

अथ तस्मात्। नित्यमात्मानमनित्यं देहं वा तद्विदो नित्यमनित्यं च जानन्तो न शोचन्ति।

'**अथ**' આથી '**नित्यम्**' નિત્ય એવા આત્માને અને '**अनित्यम्**' અનિત્ય એવા શરીરને '**तत्-विदः**' નિત્ય અને અનિત્યને જાણતા તત્ત્વવેત્તાઓ શોક કરતા નથી. શંકા કરવામાં આવી છે કે

नन्वेवमुपदेष्टारोऽपि शोचन्तो दृश्यन्ते तत्राह—**नान्यथेति**। ज्ञानदार्ढ्याभावात्स्वभावो न निवर्तत इत्यर्थः॥ ४९॥

આવો ઉપદેશ આપનારાઓ પણ શોક કરતા દેખાય છે. તે માટે ઉત્તર આપે છે— **'न-अन्यथा इति।'** જ્ઞાનની દૃઢતા ન હોવાને કારણે સ્વભાવ બદલાતો નથી, એમ અર્થ છે.॥ ૪૯॥

स्वयं सधर्मा अपीति यदुक्तं तत्रेतिहासमाह—**लुब्धक** इत्यादिना।

'स्वयं सधर्मा अपि' (શ્લોક-૩૭) એમ જે કહેવામાં આવ્યું તે માટે ઈતિહાસ રજૂ કરે છે— **'लुब्धकः'** વગેરે દ્વારા.

लुब्धको विपिने कश्चित्पक्षिणां निर्मितोऽन्तकः।
वितत्य जालं विदधे तत्र तत्र प्रलोभयन्॥
॥ ५०॥

(એક) જંગલમાં પક્ષીઓના કાળ તરીકે નિર્મિત થયેલો કોઈ એક પારધી (જ્યાં જ્યાં પક્ષીઓ હોય) ત્યાં ત્યાં જાળ પાથરીને (પક્ષીઓને) લોભાવતો જાળને વિશેષ રીતે પકડી રાખતો હતો.॥ ૫૦॥

पक्षिणामन्तक ईश्वरेण निर्मितः सन् यत्र यत्र ते तत्र तत्र तान्कणादिभिः प्रलोभयन् जालं विस्तार्य विशेषेण धृतवान्। पाठान्तरे तेषामामिषादिभिः प्रलोभनं कृतवानित्यर्थः॥ ५०॥

પક્ષીઓના કાળ તરીકે ઈશ્વર દ્વારા નિર્મિત થયેલો હોઈ જ્યાં જ્યાં તે પક્ષીઓ હોય, ત્યાં ત્યાં દાણા વગેરેથી લોભાવતો જાળ પાથરીને વિશેષરૂપે ફસાવતો હતો. (**'प्रलोभयन्'** ને બદલે) **'प्रलोभनम्'** પાઠમાં— તેમને માંસાદિ દ્વારા પ્રલોભન આપતો હતો, એમ અર્થ છે.॥ ૫૦॥

कुलिङ्गमिथुनं तत्र विचरत्समदृश्यत।
तयोः कुलिङ्गी सहसा लुब्धकेन प्रलोभिता॥ ५१

ત્યાં ફરતું કુલિંગ પક્ષીયુગલ તેના દ્વારા જોવામાં આવ્યું. તે બંનેમાંથી તરત જ શિકારી દ્વારા કુલિંગ માદા પક્ષીને લોભાવવામાં આવી.॥ ૫૧॥

कुलिङ्गः कन्दभक्षी पक्षिविशेषः। कुलिङ्गयोर्मिथुनम्॥ ५१॥

કુલિંગ પક્ષી કંદ ખાનારું વિશિષ્ટ પક્ષી છે. બે કુલિંગ પક્ષીઓનું જોડું॥ ૫૧॥

साऽसज्जत शिचस्तन्त्यां महिषी कालयन्त्रिता।
कुलिङ्गस्तां तथाऽऽपन्नां निरीक्ष्य भृशदुःखितः।
स्नेहादकल्पः कृपणः कृपणां पर्यदेवयत्॥
॥ ५२॥

કાળ દ્વારા નિયંત્રિત (પ્રેરાયેલી) તે માદા કુલિંગી પક્ષીરાણી જાળની દોરીમાં ફસાઈ ગઈ. અત્યંત દુઃખી થયેલું નરકુલિંગ પક્ષી આપત્તિગ્રસ્ત કુલિંગીને જોઈને, તેને છોડાવવાને અસમર્થ હોઈ, સ્નેહને કારણે દયાપાત્ર થઈ (દયાપાત્ર કુલિંગી માટે) વિલાપ કરવા લાગ્યું.॥ ૫૨॥

शिचस्तन्त्यां जालस्य सूत्रेऽसज्जत बन्धं प्राप। तामापन्नामापदं प्राप्ताम् (दृष्ट्वा कुलिङ्गः पक्षी तां मोचयितुमकल्पः सन्पर्यदेव-यद्वृक्षशाखामाश्रित्य विलापं चकार।) ॥ ५२ ॥

'**शिचस्तन्त्याम्**' જાળની દોરીમાં '**असज्जत**' બંધનને પ્રાપ્ત થઈ. તેને '**आपन्नाम्**' આપત્તિમાં ફસાયેલી (જોઈને તેને છોડાવવા અસમર્થ એવું નરકુલિંગ પક્ષી ઝાડની ડાળી પર બેસીને '**पर्यदेवयत्**' વિલાપ કરવા લાગ્યું.) ॥ ૫૨ ॥

કૌંસમાં રહેલો વ્યાખ્યાભાગ સર્વત્ર ઉપલબ્ધ નથી.

अहो अकरुणो देवः स्त्रियाऽऽकरुणया विभुः ।
कृपणं माऽनुशोचन्त्या दीनया किं करिष्यति ॥
॥ ५३ ॥

અરે રે, નિર્દય વિધાતા સમર્થ હોવા છતાં દયાપાત્ર એવા મારો શોક કરતી અને સર્વ રીતે અનુકંપાને યોગ્ય એવી મારી દીન પત્નીથી (મને વિખૂટો પાડીને) શું કરશે ? ॥ ૫૩ ॥

आकरुणया सर्वतोऽनुकम्प्यया स्त्रिया किं करिष्यति ॥ ५३ ॥

'**आकरुणया**' સર્વ રીતે અનુકંપાને યોગ્ય એવી સ્ત્રીથી (મને વિખૂટો પાડીને) શું કરશે ? ॥ ૫૩ ॥

कामं नयतु मां देवः किमर्धेनात्मनो हि मे ।
दीनेन जीवता दुःखमनेन विधुरायुषा ॥ ५४

પોતાના દેહના (અર્ધા ભાગને પત્નીરૂપે લઈ જવાથી બાકી રહેલા મારા) અર્ધા શરીરથી અને ભાર્યારહિત જીવનથી જેમ દુઃખ થાય તેમ જીવતા દીન એવા મારે (આ સંસારમાં હવે) શું કામ છે? દેવ ભલે મને પણ લઈ જાય. ॥ ૫૪ ॥

आत्मनो देहस्यार्धेन। अनेन विधुरायुषा भार्याशून्यजीवितेन दुःखं यथा भवत्येवं जीवता किं मे प्रयोजनम्। अतो मामपि कामं नयत्वि-त्यन्वयः ॥ ५४ ॥

પોતાના દેહના અર્ધા ભાગથી, આ '**विधुरायुषा**' ભાર્યારહિત જીવન દ્વારા જે રીતે દુઃખ જ થાય તે રીતે જીવતા એવા મારું શું કામ છે? માટે દેવ ભલે મને પણ લઈ જાય, એમ સંબંધ છે. ॥ ૫૪ ॥

कथं त्वजातपक्षांस्तान् मातृहीनान् बिभर्म्यहम् ।
मन्दभाग्याः प्रतीक्षन्ते नीडे मे मातरं प्रजाः ॥
॥ ५५ ॥

પાંખો વગરનાં (જેમને હજી પાંખો પણ ફૂટી નથી તેવાં) નમાયાં બચ્ચાંઓને હું કેવી રીતે પોષીશ? મારાં અભાગિયાં બચ્ચાં માળામાં માતાની વાટ જુએ છે. ॥ ૫૫ ॥

न जाताः पक्षा येषां तान्बालकान्कथं बिभर्मि पुष्यामि। मन्दभाग्या मे प्रजा मातरं प्रतीक्षन्ते ॥ ५५ ॥

જેમને પાંખો નથી ફૂટી તેવાં બચ્ચાંઓને હું કેવી રીતે '**बिभर्मि**' પોષીશ? મંદભાગી એવાં મારાં બચ્ચાં માતાની વાટ જુએ છે. ॥ ૫૫ ॥

एवं कुलिङ्गं विलपन्तमारात्
प्रियावियोगातुरमश्रुकण्ठम् ।
स एव तं शाकुनिकः शरेण
विव्याध कालप्रहितो विलीनः ॥ ५६

शाकुनिकः पक्षिहन्ता। विलीनः सन्॥ ५६ ॥

આ પ્રમાણે પ્રિયાના વિયોગથી દુ:ખી, અશ્રુભર્યા કંઠે વિલાપ કરતા તે કુલિંગપક્ષીને કાળથી પ્રેરાયેલા તે જ પારધીએ છુપાઈને દૂરથી બાણ વડે વીંધી નાખ્યો. ॥ ૫૬ ॥

'शाकुनिकः' પારધીએ છુપાઈ જઈને ॥ ૫૬ ॥

एवं यूयमपश्यन्त्य आत्मापायमबुद्धयः ।
नैनं प्राप्स्यथ शोचन्त्यः पतिं वर्षशतैरपि ॥ ५७

आत्मापायं स्वमृत्युम्॥ ५७ ॥

આ પ્રમાણે તમે પણ પોતાના મૃત્યુને ન જોતી હે મૂર્ખ (રાણીઓ), સો વર્ષ સુધી શોક કરવા છતાં પણ આને (પતિને) પ્રાપ્ત નહીં કરી શકો. ॥ ૫૭ ॥

'आत्म-अपायम्' પોતાના મૃત્યુને ॥ ૫૭ ॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

बाल एवं प्रवदति सर्वे विस्मितचेतसः ।
ज्ञातयो मेनिरे सर्वमनित्यमयथोत्थितम् ॥ ५८

अयथोत्थितं मिथ्यैवाविर्भूतम्॥ ५८ ॥

હિરણ્યકશિપુ બોલ્યા – આ પ્રમાણે બાળકે કહ્યું ત્યારે સર્વ વિસ્મિત ચિત્તવાળા સગાં-સંબંધીઓએ સંપૂર્ણ જગતને મિથ્યા ઉત્પન્ન થયેલું અનિત્ય માન્યું. ॥ ૫૮ ॥

'अयथा-उत्थितम्' મિથ્યા થયેલું ॥ ૫૮ ॥

यम एतदुपाख्याय तत्रैवान्तरधीयत।
ज्ञातयोऽपि सुयज्ञस्य चक्रुर्यत्साम्परायिकम् ॥ ५९

सांपरायिकं परलोककृत्यम्॥ ५९ ॥

યમરાજ આ (ઉપાખ્યાન) કહીને ત્યાં જ અંતર્ધાન થઈ ગયા. ભાઈ-બંધુઓએ પણ સુયજ્ઞની જે અંત્યેષ્ટિક્રિયા કરવાની હતી તે કરી. ॥ ૫૯ ॥

'साम्परायिकम्' મૃત વ્યક્તિને ઉદ્દેશીને કરવા યોગ્ય કર્મ, પરલોકને લગતી (અન્ત્યેષ્ટિ) ક્રિયા ॥ ૫૯ ॥

ततः शोचत मा यूयं परं चात्मानमेव च।
क आत्मा कः परो वात्र स्वीयः पारक्य एव वा।
स्वपराभिनिवेशेन विनाज्ञानेन देहिनाम्॥
॥ ६० ॥

अशोचतेति पाठे अडागम आर्षः। स्वः पर इत्यभिनिवेश एवाज्ञानं तेन विना॥ ६० ॥

માટે તમે બધા પણ પોતાનો કે પારકાનો શોક ન કરો. આ સંસારમાં પ્રાણીઓને પોતાના અને પારકાના દુરાગ્રહરૂપ અજ્ઞાન સિવાય કોણ પોતાનું છે અને કોણ પરાયું છે? પોતે કોણ છે અને બીજો કોણ છે? ॥ ૬૦ ॥

'ततः शोचत' ને બદલે **'ततोऽशोचत'** પાઠમાં अ નો અભાવ આર્ષપ્રયોગ છે. પોતાનું અને પારકું એવું અભિમાન કે એવો દુરાગ્રહ એ જ અજ્ઞાન છે, તે અજ્ઞાન વિના ॥ ૬૦ ॥

नारद उवाच

इति दैत्यपतेर्वाक्यं दितिराकर्ण्य सस्नुषा।
पुत्रशोकं क्षणात्त्यक्त्वा तत्त्वे चित्तमधारयत्॥ ६१

सस्नुषा स्नुषासहिता॥ ६१॥

નારદજી બોલ્યા – એમ દૈત્યપતિ હિરણ્યકશિપુની વાત સાંભળી, પુત્રવધૂસહિત દિતિએ તે જ ક્ષણે પુત્રશોક ત્યજીને પરમતત્ત્વસ્વરૂપ પરમાત્મામાં ચિત્ત ચોંટાડ્યું.॥ ૬૧॥

'**सस्नुषा**' પુત્રવધૂસહિત॥ ૬૧॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे दितिशोकापनयनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

*****

अथ तृतीयोऽध्यायः

હિરણ્યકશિપુની તપસ્યા અને વરદાનપ્રાપ્તિ

तृतीये तस्य तपसा तप्तं वीक्ष्य जगद्विधिः।
आगत्य विस्मितस्तेन संस्तुतश्च वरानदात्॥ १

તે (હિરણ્યકશિપુ)ના તપથી જગતને તપ્ત જોઈને આશ્ચર્ય પામેલા બ્રહ્માજીએ આવીને, તેના (હિરણ્યકશિપુ) દ્વારા સારી રીતે સ્તુતિ કરાયેલા પોતે તેને વરદાનો આપ્યાં, એ કથા ત્રીજા અધ્યાયમાં કહેવાશે.॥ ૧॥

तदेवं साधूनां कदने दानवानादिश्य बन्धूनां शोकं तत्त्वनिरूपणेनापनीय यत्कृतवांस्तदाह— **हिरण्यकशिपु**रित्यादिना।

તો આમ, સજ્જનોને રંજાડવા માટે દાનવોને આજ્ઞા આપીને (પોતાના) સગાં-સંબંધીઓનો શોક તત્ત્વનિરૂપણ દ્વારા દૂર કરીને હિરણ્યકશિપુએ જે કર્યું, તે કહે છે– '**हिरण्यकशिपुः इति।**' વગેરે દ્વારા.

नारद उवाच

हिरण्यकशिपू राजन्नजेयमजरामरम्।
आत्मानमप्रतिद्वन्द्वमेकराजं व्यधित्सत॥ १

अप्रतिद्वन्द्वं प्रतिपक्षहीनमेकराजमेकमेव राजानं व्यधित्सत कर्तुमैच्छत्॥ १॥

નારદજી બોલ્યા – હે રાજા (યુધિષ્ઠિર), હિરણ્યકશિપુએ પોતાને અજેય, અજર, અમર, પ્રતિપક્ષીરહિત (શત્રુરહિત) અને (ત્રિભુવનના) એક જ રાજા તરીકે બનાવવાની ઈચ્છા કરી.॥ ૧॥

'**अप्रतिद्वन्द्वम्**' પ્રતિપક્ષીરહિત (શત્રુરહિત), '**एकराजम्**' (ત્રિલોકીના) માત્ર એક જ રાજા તરીકે '**व्यधित्सत**' પોતાને બનાવવાનું ઈચ્છ્યું.॥ ૧॥

स तेपे मन्दरद्रोण्यां तपः परमदारुणम्।
ऊर्ध्वबाहुर्नभोदृष्टिः पादाङ्गुष्ठाश्रितावनिः॥ २

મંદરાચળ પર્વતની ખીણમાં બાહુ ઊંચા રાખી અને આકાશ સામે દૃષ્ટિ રાખી માત્ર પગના અંગૂઠાથી પૃથ્વી પર ઊભા રહીને તેણે અતિ દારુણ તપ કરવા માંડ્યું.॥ ૧॥

ऊर्ध्वौ बाहू यस्य। नभसि दृष्टिर्यस्य। पादाङ्गुष्ठेनाश्रिताऽवनिर्येन॥ २॥

જેના બંને બાહુ ઊંચા છે, જેની આકાશ સામે દૃષ્ટિ છે, પગના અંગૂઠા વડે જેણે પૃથ્વીનો આધાર લીધો છે.॥ ૨॥

जटादीधितिभी रेजे संवर्तार्क इवांशुभिः।
तस्मिंस्तपस्तप्यमाने देवाः स्थानानि भेजिरे॥ ३

પ્રલયકારી સૂર્ય જેમ કિરણો વડે પ્રકાશે તેમ તે જટાઓની કાંતિ વડે પ્રકાશતો હતો. (પૂર્વે પૃથ્વી ઉપર ઓળખાય નહીં તેમ જેઓ ફરતા હતા,) તે દેવોએ, તે (હિરણ્યકશિપુ) તપ કરતો હતો ત્યારે પોતપોતાનાં પદોને પુનઃ પ્રાપ્ત કર્યાં.॥ ૩॥

जटानां दीधितिभिः कान्तिभिः अंशुभी रश्मिभिः प्रलयकर्ता अर्क इव रेजे। पूर्वं येऽलक्षिताः सन्तो भुवि विचेरुस्ते देवाः पुनः स्वानि स्थानानि भेजिरे॥ ३॥

જટાઓની '**दीधितिभिः**' કાન્તિ વડે– પ્રલયકારી સૂર્ય જેમ '**अंशुभिः**' કિરણો વડે પ્રકાશે તેમ– પૂર્વે જે દેવો (ઓળખાય નહીં તેવા) ગુપ્ત વેશે પૃથ્વી પર ફરતા હતા, તે દેવોએ પોતપોતાનાં પદોને પુનઃ પ્રાપ્ત કર્યાં.॥ ૩॥

भ.मनो.—प्रतिपक्षस्यासुरस्य तपसि स्थितत्वादुपद्रवाभावादिति भावः।

શત્રુ એવો અસુર હિરણ્યકશિપુ તપમાં સ્થિત હોવાથી ઉપદ્રવ થતા ન હતા, તેથી (દેવો પુનઃ સ્વસ્થાને પ્રતિષ્ઠિત થઈ ગયા.)

तस्य मूर्ध्नः समुद्भूतः सधूमोऽग्निस्तपोमयः।
तिर्यगूर्ध्वमधोलोकानतपद्विष्वगीरितः ॥ ४

તેના મસ્તકમાંથી નીકળતો, તપને કારણે બધે ફેલાયેલો, ધૂમાડા સહિતનો અગ્નિ ઉપર, નીચે અને આજુબાજુના લોકને તપાવવા લાગ્યો. ॥ ૪॥

विष्वगीरितः सर्वतः प्रसृतः सन्॥ ४॥

'**विष्वक्-ईरितः**' સર્વ તરફ ફેલાતો હોઈ ॥ ૪॥

चुक्षुभुर्नद्युदन्वन्तः सद्वीपाद्रिश्चचाल भूः।
निपेतुः सग्रहास्तारा जज्वलुश्च दिशो दश॥ ५

(તેના તપોમય અગ્નિથી) નદીઓ અને સમુદ્રો ખળભળી ઊઠ્યાં. દ્વીપો અને પર્વતો સહિત પૃથ્વી ડગમગવા લાગી. (આકાશમાંથી) ગ્રહો સહિત તારા ખરવા લાગ્યા અને દશે દિશાઓ બળવા માંડી.॥ ૫॥

द्वीपैरद्रिभिश्च सहिता भूश्चलिता॥ ५॥

દ્વીપો અને પર્વતો સહિત પૃથ્વી ડગમગવા લાગી.॥ ૫॥

तेन तप्ता दिवं त्यक्त्वा ब्रह्मलोकं ययुः सुराः।
धात्रे विज्ञापयामासुर्देवदेव जगत्पते॥ ६ ॥ ६ ॥

दैत्येन्द्रतपसा तप्ता दिवि स्थातुं न शक्नुमः।
तस्य चोपशमं भूमन् विधेहि यदि मन्यसे।
लोका न यावन्नङ्क्ष्यन्ति बलिहारास्तवाभिभूः॥ ॥ ७ ॥

तव बलिहाराः करप्रदाः पूजाकारिण इति वा। अभितो भवतीत्यभिभूः। हे अभिभूः हे सर्वाधिपते। पाठान्तरे भो इति संबोधनम्। अभितो यावन्न नङ्क्ष्यन्तीति संबन्धः॥ ७॥

તે તપોમય અગ્નિથી તપેલા દેવતાઓ સ્વર્ગ છોડી બ્રહ્મલોકમાં ગયા અને બ્રહ્માજીને વિનંતિ કરવા લાગ્યા, ‘હે દેવોના દેવ, હે જગત્પતિ, દૈત્યેન્દ્ર હિરણ્યકશિપુના તપથી તપેલા અમે સ્વર્ગમાં રહી શકતા નથી. હે અનંત, હે સર્વેશ્વર, જો આપ માનતા હો તો આપની સેવા કરનારી પ્રજા નાશ પામે તે પહેલાં આપ તેની શાન્તિ કરો.॥ ૬ ॥ ૭ ॥ ૬ ॥

આપના ‘**बलिहाराः**’ કર આપનારાઓ અથવા પૂજા કરનારાઓ– સર્વ તરફ હોય તે ‘**अभिभूः**’ હે સર્વના અધિપતિ, (‘**तवाभिभूः**’ ને બદલે ‘**तवाभिभो**’) પાઠમાં ‘**भो**’ એ સંબોધન છે. પ્રજા બધી બાજુએથી નાશ ન પામી જાય, એમ સંબંધ છે. (આપની સેવા કરનારી જનતાનો નાશ થતાં પહેલાં જ આપ તેની શાંતિ કરો.)॥ ૭ ॥

ब्रह्मणस्तस्मिन्द्वेषमुत्पादयितुं तत्संकल्पमाहुः—**तस्येति** चतुर्भिः।

બ્રહ્માજીને તેની (દૈત્યની) ઉપર દ્વેષ ઉત્પન્ન કરવા માટે (દેવો) તેનો સંકલ્પ ચાર શ્લોકો વડે જણાવે છે– ‘**तस्य इति।**’

तस्यायं किल सङ्कल्पश्चरतो दुश्चरं तपः।
श्रूयतां किं न विदितस्तवाथापि निवेदितः॥ ८

દુશ્ચર એવું તપ કરનાર તે હિરણ્યકશિપુનો સંકલ્પ શું આપને વિદિત નથી? (છે જ.) તેમ છતાં પણ અમે આપને આ સંકલ્પનું નિવેદન કરીએ છીએ; સાંભળો.॥ ૮ ॥

तस्य संकल्पस्तव किं न विदितोऽथाप्यस्माभिर्निवेदितस्त्वया श्रूयताम्॥ ८॥

તેનો સંકલ્પ શું આપને વિદિત નથી ? અમારા દ્વારા નિવેદન કરવામાં આવેલો સંકલ્પ આપના દ્વારા શ્રવણ કરવામાં આવે.॥ ૮ ॥

सृष्ट्वा चराचरमिदं तपोयोगसमाधिना।
अध्यास्ते सर्वधिष्ण्येभ्यः परमेष्ठी निजासनम्॥ ९

આ સ્થાવર-જંગમ જગતને તપ અને યોગની નિષ્ઠાથી સર્જીને (પરમેષ્ઠી) બ્રહ્માજી (જેમ) સર્વ સ્થાનોથી શ્રેષ્ઠ પોતાના સ્થાનમાં રહે છે,॥ ૯ ॥

तपोयोगयोः समाधिना निष्ठया सर्वधिष्ण्येभ्यः श्रेष्ठं निजासनं सत्यलोकं यथा अध्यास्तेऽधितिष्ठति॥ ९॥

તપ અને યોગની ‘**समाधिना**’ નિષ્ઠાથી સર્વ સ્થાનોથી શ્રેષ્ઠ એવા ‘**निजासनम्**’ પોતાના સ્થાન સત્યલોકમાં ‘**अध्यास्ते**’ (બ્રહ્માજી) અધિષ્ઠિત થયા છે.॥ ૯ ॥

तदहं वर्धमानेन तपोयोगसमाधिना।
कालात्मनोश्च नित्यत्वात्साधयिष्ये तथाऽऽत्मनः॥
॥ १० ॥

તેમ હું પણ વધતા તપ અને યોગની નિષ્ઠા દ્વારા કાળ અને આત્મા નિત્ય હોવાથી (અનેક જન્મ લઈને પણ) મારે પોતાને માટે તે બ્રહ્મપદ સાધીશ.॥ ૧૦॥

तत्तथैवात्मनः साधयिष्यामि।

'तत्' તેવું જ બ્રહ્મપદ **'आत्मनः'** મારે પોતાને માટે સાધીશ.

ननु ब्रह्मणाऽतिदीर्घायुषा तपस्तप्त्वा तत्साधितमन्यः कुतस्तत्साधयेत्तत्राहुः—कालात्मनोरिति।

પ્રશ્ન કરવામાં આવ્યો છે કે બ્રહ્માજી દ્વારા તો, અતિ દીર્ઘ આયુષ્યવાળા હોવાથી તપ કરીને તે સ્થાન સિદ્ધ કરવામાં આવ્યું છે. બીજો કોઈ તે કેવી રીતે સાધે? તે માટે ઉત્તર આપે છે— **'काल-आत्मनोः इति।'**

यद्यप्यायुषोऽल्पत्वेन देहो वारंवारं म्रियेत तथापि कालस्यात्मनश्च नित्यत्वाद्बहुभि-र्जन्मभिस्तपस्तप्त्वा तत्पदं साधयिष्याम्येवेति ॥ १० ॥

જો કે આયુષ્ય અલ્પ હોવાથી શરીર વારંવાર મરે છે, તેમ છતાં કાળ અને આત્મા નિત્ય હોવાથી અનેક જન્મો વડે તપ કરીને હું તે પદ પ્રાપ્ત કરીશ જ.॥ ૧૦॥

वर्धमानेनेति यदुक्तं तदभिप्रायमाह—**अन्यथेति**।

'वर्धमानेन' (શ્લોક-૧૦) એમ જે કહેવામાં આવ્યું, તેનો અભિપ્રાય કહે છે— **'अन्यथा इति।'**

अन्यथेदं विधास्येऽहमयथापूर्वमोजसा।
किमन्यैः कालनिर्धूतैः कल्पान्ते वैष्णवादिभिः॥ ११

(મારા) તપોબળથી આ જગતને હું ઉલટાવી દઈશ અને પૂર્વે હતું તેનાથી તેને વિપરીત બનાવીશ. કલ્પના અંતે કાળથી નષ્ટ થનારાં અન્ય વૈષ્ણવાદિ પદોથી મારે શું કામ છે?॥ ૧૧॥

अन्यथा सुरासुरादिव्यत्ययेन। अयथापूर्वं पुण्यपापादिव्यत्ययेन। इदं जगद्विधास्यामि। अन्यैर्वैष्णवादिभिर्ध्रुवादिपदैः किं प्रयोजनमत-स्तदेव साधयिष्यामि॥ ११ ॥

'अन्यथा' દેવોને અસુરો અને અસુરોને દેવો બનાવીશ, એમ ઉલટાવી દઈશ. **'अयथापूर्वम्'** પૂર્વે હતું તેનાથી વિપરીત અર્થાત્ પાપને જ સુખનું સાધન અને પુણ્યને દુઃખનું સાધન બનાવીશ. પાપ અને પુણ્ય(ના નિયમો) બદલીને આ જગત બનાવીશ. બીજાં **'वैष्णवादिभिः'** ધ્રુવપદ વગેરે વિષ્ણુને લગતાં પદોથી મારે શું કામ છે? આથી હું તો તે (પરમેષ્ઠી પદ)ને જ પ્રાપ્ત કરીશ.॥ ૧૧॥

इति शुश्रुम निर्बन्धं तपः परममास्थितः।
विधत्स्वानन्तरं युक्तं स्वयं त्रिभुवनेश्वर॥ १२

इति त्वत्पदापहरणे तस्य निर्बन्धं शुश्रुम। अत एवासौ तपः परममास्थितो वर्तते। यदत्र युक्तं तदनन्तरमेव विधत्स्व॥ १२॥

अन्यथा तव स्थानभ्रंशे सति साधूनामनिष्टं स्यादिति शोचन्त आहुः—

तवासनं द्विजगवां पारमेष्ठ्यं जगत्पते।
भवाय श्रेयसे भूत्यै क्षेमाय विजयाय च॥ १३

तव पारमेष्ठ्यमिदमासनम्। द्विजानां गवां च भवायोद्भवाय। श्रेयसे सुखाय। भूत्यै ऐश्वर्याय। क्षेमाय लब्धपालनाय। विजया-योत्कर्षाय॥ १३॥

इति विज्ञापितो देवैर्भगवानात्मभूर्नृप।
परीतो भृगुदक्षाद्यैर्ययौ दैत्येश्वराश्रमम्॥ १४

॥ १४॥

न ददर्श प्रतिच्छन्नं वल्मीकतृणकीचकैः।
पिपीलिकाभिराचीर्णमेदस्त्वङ्मांसशोणितम् ॥
॥ १५॥

वल्मीकादिभिः प्रतिच्छन्नं प्रथमं न ददर्श। पश्चात्कथंचिद्विलक्ष्य तं प्राहेति द्वयोरन्वयः। पिपीलिकाभिराचीर्णं समन्ताद्भक्षितं मेदश्च त्वक्च मांसं च शोणितं च यस्य॥ १५॥

હે ત્રિભુવનના ઈશ્વર, આવો (તેનો) દુરાગ્રહ અમે સાંભળ્યો છે (અને તેથી જ તે) ઘોર તપશ્ચર્યા કરી રહ્યો છે. તે માટે હવે પછી આપ પોતે જ યોગ્ય હોય તે કરો.॥ ૧૨॥

આમ, આપના પદને ઝૂંટવી લેવાનો તેનો દુરાગ્રહ અમે સાંભળ્યો છે. આથી જ તે દૈત્ય શ્રેષ્ઠ તપ '**आस्थितः**' કરી રહ્યો છે. આ વિષયમાં જે યોગ્ય હોય તે હવે પછી આપ કરો.॥ ૧૨॥

નહીં તો, આપનું સ્થાન નષ્ટ થતાં સાધુપુરુષોનું અનિષ્ટ થશે, એમ ચિંતા કરતા દેવો કહે છે—

હે જગત્પતિ, આપનું પરમેષ્ઠી પદ બ્રાહ્મણો અને ગાયોના ઉદ્ભવ માટે છે, સુખ, ઐશ્વર્ય, કલ્યાણ અને વિજય માટે છે.'॥ ૧૩॥

આપનું '**पारमेष्ठ्यम्**' પરમેષ્ઠી પદ, આ બ્રહ્માસન બ્રાહ્મણો અને ગાયોના '**भवाय**' ઉદ્ભવ માટે છે. '**श्रेयसे**' સુખ માટે છે, '**भूत्यै**' ઐશ્વર્ય માટે છે, '**क्षेमाय**' પ્રાપ્ત કરેલું સાચવવા માટે છે, '**विजयाय**' ઉત્કર્ષ માટે છે.॥ ૧૩॥

હે રાજા (યુધિષ્ઠિર), આ પ્રમાણે દેવો દ્વારા વિનંતિ કરવામાં આવેલા ભગવાન સ્વયમ્ભૂ બ્રહ્માજી ભૃગુ તથા દક્ષ વગેરેથી વીંટળાઈ દૈત્યરાજ હિરણ્યકશિપુના આશ્રમમાં ગયા.॥ ૧૪॥ ૧૪॥

રાફડા, ઘાસ અને વાંસથી ઢંકાઈ ગયેલા, કીડીઓ દ્વારા સર્વ તરફથી ખવાઈ ગયાં છે મેદ, ત્વચા, માંસ અને રક્ત જેનાં તેવા (તેને બ્રહ્માજીએ પ્રથમ તો) જોયો નહીં.॥ ૧૫॥

રાફડા વગેરેથી ઢંકાયેલા એવા તેને પ્રથમ તો જોયો નહીં. પછી કોઈક રીતે જોઈને તેને કહે છે, એમ બે શ્લોકોનો (૧૫-૧૬) અન્વય છે. કીડીઓ દ્વારા '**आचीर्णम्**' સર્વ તરફથી ખવાઈ ગયાં છે મેદ તથા ત્વચા તથા માંસ અને રક્ત જેનાં॥ ૧૫॥

तपन्तं तपसा लोकान् यथाभ्रापिहितं रविम्।
विलक्ष्य विस्मितः प्राह प्रहसन् हंसवाहनः॥ १६

(પણ પછી) વાદળોથી ઢંકાયેલા સૂર્યની જેમ તપ વડે લોકોને તપાવતા તેને જોઈને વિસ્મય પામેલા હંસવાહન બ્રહ્માજી હસતાં હસતાં કહેવા લાગ્યા.॥ ૧૬॥

अभ्रैरपिहितं छन्नं रविमिव विलक्ष्य विस्मितः प्राह॥ १६॥

વાદળોથી **'अपिहितम्'** ઢંકાઈ ગયેલા સૂર્યની જેમ (લોકને તપાવતા એવા તેને) જોઈને, વિસ્મય પામીને બ્રહ્માજી કહે છે.॥ ૧૬॥

ब्रह्मोवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते तपःसिद्धोऽसि काश्यप।
वरदोऽहमनुप्राप्तो व्रियतामीप्सितो वरः॥ १७
॥ १७॥

બ્રહ્માજી બોલ્યા – હે કશ્યપનંદન! ઊઠ, ઊઠ, તારું કલ્યાણ થાઓ! તું તપથી કૃતાર્થ થયો છે. વરદાન આપનારો હું આવ્યો છું. તું પ્રાપ્ત કરવા ઈચ્છેલું વર માગ!॥ ૧૭॥ ૧૭॥

वंशीधरी—स्वप्रपौत्रत्वात्तेऽभीप्सितं दातुमागतोऽस्मीति भावः।

મારો પોતાનો પ્રપૌત્ર (બ્રહ્માજીના પુત્ર મરીચિ ઋષિ, તેમના પુત્ર કશ્યપ ઋષિ, તેમનો પુત્ર હિરણ્યકશિપુ) હોવાથી, તેં પ્રાપ્ત કરવા ઈચ્છેલ વર આપવા માટે આવ્યો છું, એવો ભાવ છે.

अद्राक्षमहमेतत्ते हृत्सारं महदद्भुतम्।
दंशभक्षितदेहस्य प्राणा ह्यस्थिषु शेरते॥ १८

તારું આ મહા અદ્ભુત ધૈર્ય મેં જોયું. કીડાઓથી ખવાઈ ગયેલા શરીરનાં હાડકાંઓમાં તારા પ્રાણ સૂઈ રહ્યા છે.॥ ૧૮॥

हृत्सारं धैर्यम्। दंशैर्मक्षिकादिविशेषैर्भक्षितो देहो यस्य॥ १८॥

'हृत्सारम्' ધૈર્યરૂપ હૃદયનું બળ– **'दंशैः'** વિશિષ્ટ પ્રકારની માખીઓ વગેરે દ્વારા ખવાઈ ગયું છે શરીર જેનું॥ ૧૮॥

नैतत्पूर्वर्षयश्चक्रुर्न करिष्यन्ति चापरे।
निरम्बुर्धारयेत्प्राणान् को वै दिव्यसमाः शतम्॥ १९

આવું તપ પૂર્વે થઈ ગયેલા ઋષિઓએ કર્યું નથી અને બીજા કોઈ કરશે પણ નહીં. પાણી પણ છોડી દેનાર કયો મનુષ્ય દેવતાઓનાં સો વર્ષ સુધી પ્રાણ ધારણ કરે?॥ ૧૯॥

निरम्बुर्निषिद्धमम्बु येन सः। त्यक्तोदक इत्यर्थः॥ १९॥

'निरम्बुः' જેના દ્વારા જળનો પણ નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે તે, જળ છોડી દેનાર, એમ અર્થ છે.॥ ૧૯॥

व्यवसायेन तेऽनेन दुष्करेण मनस्विनाम्।
तपोनिष्ठेन भवता जितोऽहं दितिनन्दन॥ २०

હે દિતિનંદન, (ઋષિઓ વગેરે) મનસ્વી જનોને પણ દુષ્કર એવા તારા આ (અડગ) નિશ્ચયથી અને તપોનિષ્ઠ એવા તારાથી હું જિતાઈ ગયો છું.॥ ૨૦॥

ते त्वया अनेन व्यवसायेनैव तावज्जितोऽहम्। तपोनिष्ठेन भवता तु सुतरां जितः॥ २०॥

ततस्त आशिषः सर्वा ददाम्यसुरपुङ्गव।
मर्त्यस्य ते अमर्त्यस्य दर्शनं नाफलं मम॥ २१

मर्त्यस्य तवामर्त्यस्य मम दर्शनमफलं न भवति॥ २१॥

नारद उवाच

इत्युक्त्वाऽऽदिभवो देवो भक्षिताङ्गं पिपीलिकैः।
कमण्डलुजलेनौक्षद्दिव्येनामोघराधसा॥ ॥ २२॥

आदौ भवतीत्यादिभवो ब्रह्मा। औक्षत् प्रोक्षितवान्॥ २२॥

स तत्कीचकवल्मीकात् सहओजोबलान्वितः।
सर्वावयवसम्पन्नो वज्रसंहननो युवा।
उत्थितस्तप्तहेमाभो विभावसुरिवैधसः॥ ॥ २३॥

वज्रवत्संहननमङ्गदार्ढ्यं यस्य। तप्तस्य हेम्न इवाभा देहकान्तिर्यस्य॥ २३॥

स निरीक्ष्याम्बरे देवं हंसवाहमवस्थितम्।
ननाम शिरसा भूमौ तद्दर्शनमहोत्सवः॥ २४

तस्य दर्शनेन महानुत्सवो यस्य॥ २४॥

'**ते**' તારાથી– આ નિશ્ચયથી જ, તેથી હું જિતાઈ ગયો છું. તપોનિષ્ઠ એવા તારા વડે તદ્દન વશીભૂત થઈ ગયો છું.॥ ૨૦॥

માટે હે અસુરશ્રેષ્ઠ, હું તને સર્વ અભીષ્ટ પદાર્થો આપું છું. મરણધર્મા તને અમર એવા મારાં દર્શન નિષ્ફળ ન થાય.॥ ૨૧॥

મરણધર્મા એવા તને અમર એવા મારું દર્શન '**अफलम्**' નિષ્ફળ ન થાય.॥ ૨૧॥

નારદજી બોલ્યા – એમ કહી સૌ પ્રથમ ઉત્પન્ન થયેલા આદિદેવે (બ્રહ્માજીએ) કીડીઓથી ખવાઈ ગયેલાં અંગોવાળા તે હિરણ્યકશિપુ ઉપર કમંડળના અમોઘ પ્રભાવવાળા દિવ્ય જળથી પ્રોક્ષણ કર્યું.॥ ૨૨॥

સૌ પ્રથમ ઉત્પન્ન થયેલા તે '**आदिभवः**' બ્રહ્માજી– '**औक्षत्**' પ્રોક્ષણ કર્યું.॥ ૨૨॥

લાકડાં(ના ભારા)માંથી જેમ અગ્નિ પ્રગટી ઊઠે, તેમ વાંસવાળા રાફડામાંથી મનોબળ, ઇન્દ્રિયબળ અને શરીરબળથી યુક્ત, સર્વ અવયવોથી પૂર્ણ, વજ્ર જેવાં કઠોર અંગવાળો અને તપાવેલા સોના જેવી કાંતિવાળો હિરણ્યકશિપુ નવયુવાન થઈ ઊભો થયો.॥ ૨૩॥

વજ્ર જેવી '**संहननम्**' અંગોની દૃઢતા છે જેની, તપાવેલા સોના જેવી '**आभा**' દેહની કાંતિ છે જેની॥ ૨૩॥

તેમનાં દર્શનથી જેને અત્યંત આનંદ થયો તેવા તે હિરણ્યકશિપુએ આકાશમાં હંસના વાહન ઉપર બેઠેલા બ્રહ્મદેવને જોઈને ભૂમિ ઉપર પડીને મસ્તકથી પ્રણામ કર્યા.॥ ૨૪॥

તેમનાં દર્શનથી અતિ આનંદ થયો છે જેને॥ ૨૪॥

उत्थाय प्राञ्जलिः प्रह्व ईक्षमाणो दृशा विभुम्।
हर्षाश्रुपुलकोद्भेदो गिरा गद्गदयागृणात्॥ २५

ઊઠી, બે હાથ જોડી નમ્ર બની, વિભુ (બ્રહ્માજી)ને નેત્રોથી નિહાળતો તે દૈત્ય હર્ષથી અશ્રુયુક્ત અને પુલકિત રોમાવલિ-યુક્ત થઈને ગદ્ગદ વાણીથી સ્તુતિ કરવા લાગ્યો.॥ ૨૫॥

हर्षेणाश्रूणि पुलकोद्भेदश्च यस्य सः ॥ २५ ॥

હર્ષને કારણે આંસુ આવ્યાં છે અને રૂંવાડાંનું ઉત્થાન થયું છે જેને તે॥ ૨૫॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

कल्पान्ते कालसृष्टेन योऽन्धेन तमसाऽऽवृतम्।
अभिव्यनग् जगदिदं स्वयञ्ज्योतिः स्वरोचिषा॥
॥ २६ ॥

હિરણ્યકશિપુ બોલ્યો – કલ્પના અંતમાં કાળ દ્વારા ઉત્પન્ન કરવામાં આવેલા તમોગુણરૂપ ઘનિષ્ઠ અંધકારથી ઢંકાયેલા આ જગતને જે સ્વયંપ્રકાશરૂપ આપે પોતાના તેજથી અભિવ્યક્ત કર્યું,॥ ૨૬॥

आत्मना त्रिवृता चेदं सृजत्यवति लुम्पति।
रजःसत्त्वतमोधाम्ने पराय महते नमः॥ २७

તે (બ્રહ્માજી) પોતાના ત્રણ ગુણ સ્વરૂપ (ત્રેવડી શક્તિ)થી આ જગતનું સર્જન કરે છે, પાલન કરે છે અને સંહાર કરે છે, તે રજોગુણ, સત્ત્વગુણ અને તમોગુણના આશ્રયરૂપ મહાન પરમેશ્વરને નમસ્કાર હો.॥ ૨૭॥

अन्धेन निबिडेन। तत्र हेतुः—कालसृष्टेन प्रकृतिगुणरूपेण न तु ध्वान्तेन। तमसावृतमिदं जगद्योऽभिव्यक्तमकरोत्। यश्च त्रिगुणेनात्मना इदं जगत्सृजत्यवति पालयति लुम्पति संहरति च तस्मै रजःसत्त्वतमसां धाम्ने आश्रयाय महते पराय परमेश्वराय नम इति द्वयोरन्वयः ॥ २६ ॥ २७ ॥

'**अन्धेन**' નિબિડ, ઘનિષ્ઠ અંધકારથી– તે માટેનું કારણ– કાળ દ્વારા ઉત્પન્ન કરવામાં આવેલા પ્રકૃતિના (તમો)ગુણરૂપ અંધકારથી, નહીં કે સાધારણ કાળા અંધકારથી. તમસ્થી ઢંકાયેલા આ જગતને જેમણે અભિવ્યક્ત કર્યું, એવા જે બ્રહ્માજી ત્રણ ગુણવાળા પોતાના સ્વરૂપથી (શક્તિથી) આ જગતનું '**सृजति**' સર્જન કરે છે, '**अवति**' પાલન કરે છે, '**लुम्पति**' સંહાર કરે છે, તે રજોગુણ, સત્ત્વગુણ અને તમોગુણના આશ્રયરૂપ મહાન '**पराय**' પરમેશ્વરને નમસ્કાર, એમ બે શ્લોકોનો સંબંધ છે.॥ ૨૬॥ ૨૭॥

* **अञ्ज्** નું હ્ય.ભૂ.ત્રીજો પુ.એ.વ. '**आनक्—वि+आनक्=व्यानक्, अभि+वि+आनक्=अभिव्यानक्**' રૂપ વ્યાકરણ પ્રમાણે થાય છે.

बा.प्र.—तत्र ब्रह्मणि स्थितमन्तर्यामिणं सर्वकारणं भगवन्तमेव तदभेददृष्ट्या स्तौति।

અહીં બ્રહ્માજીમાં અંતાર્યામીરૂપે રહેલા, સર્વના કારણરૂપ પરમેશ્વરની અભેદ દૃષ્ટિથી સ્તુતિ કરે છે.

अत्र च स्वप्रकाशत्वं, जगत्प्रकाशकत्वं, तत्कारणत्वं, तत्सृष्ट्यादिकर्तृत्वं, महत्त्वं, परमेश्वरत्वं, चेति षड्विधत्वमुक्तं तदेव प्रपञ्चयन्नमस्करोति—**नम इति** चतुर्भिः।

અહીં (પૂર્વોક્ત બે શ્લોકોમાં બ્રહ્માજીને) સ્વયંપ્રકાશરૂપ, જગતને અભિવ્યક્ત કરનાર, જગતના કારણરૂપ, તે જગતની સૃષ્ટિ (સ્થિતિ, લય) કરનાર, મહાન અને પરમેશ્વર– એમ છ પ્રકારે વર્ણવીને તે જ વાત વિસ્તારપૂર્વક સમજાવતાં ચાર શ્લોકોથી નમસ્કાર કરે છે— '**नमः इति**।'

नम आद्याय बीजाय ज्ञानविज्ञानमूर्तये।
प्राणेन्द्रियमनोबुद्धिविकारैर्व्यक्तिमीयुषे* ॥ २८

(જગતના) મૂળ કારણરૂપને (બ્રહ્માજીને) નમસ્કાર. જ્ઞાન તથા વિજ્ઞાનમૂર્તિને નમસ્કાર. પ્રાણ, ઈન્દ્રિયો, મન, બુદ્ધિરૂપ વિકારો વડે અભિવ્યક્તિ પ્રાપ્ત કરનારને નમસ્કાર.॥ ૨૮॥

बीजाय कारणाय। तत्र हेतुः—आद्याय। ज्ञानं ज्ञप्तिर्विज्ञानं विषयाकारं ज्ञानं मूर्तिर्यस्य तस्मै।

'**बीजाय**' કારણરૂપને, (બ્રહ્માજીને બીજરૂપ કહ્યા) તે માટેનું કારણ– '**आद्याय**' મૂળ કારણરૂપ બ્રહ્માજીને (નમસ્કાર). '**ज्ञानम्**' બુદ્ધિ (શાસ્ત્રોનું જ્ઞાન) '**विज्ञानम्**' વિષયાકાર જ્ઞાન, વિશેષ જ્ઞાનરૂપ મૂર્તિ છે જેની તેમને

अनेन स्वप्रकाशत्वं जगत्प्रकाशकत्वं च दर्शितम्। बीजायेति निमित्तत्वमुक्तम्। उपादानत्वमाह—प्राणादयो ये विकारास्तै रूपैर्व्यक्तिं कार्याकारमीयुषे प्राप्तवते॥ २८॥

આ દ્વારા સ્વપ્રકાશરૂપત્વ અને જગત્પ્રકાશકત્વ દર્શાવ્યું. '**बीजाय**' એમ કહીને નિમિત્ત કારણરૂપ કહ્યા. ઉપાદાનકારણરૂપ કહે છે— પ્રાણ વગેરે જે વિકારો છે, તે રૂપોથી '**व्यक्तिम्**' અભિવ્યક્ત અર્થાત્ કાર્યના આકારને '**ईयुषे**' પ્રાપ્ત કરનારને (નમસ્કાર).॥ ૨૮॥

एवमात्मना त्रिवृता चेत्यनेनोक्तं कारणत्वं द्वेधा दर्शितम्, महत्त्वमीश्वरत्वं चाह—**त्वमिति**।

આમ, '**आत्मना त्रिवृता च**' (શ્લોક-૨૭) દ્વારા કહેવામાં આવેલી કારણરૂપતા બે રીતે દર્શાવી છે, તે મહત્તા અને પરમેશ્વરતાનું વર્ણન કરે છે— '**त्वम् इति**।'

*√'**ईयुषे**' — **ई** નું પરોક્ષ ભૂ.કૃ. '**ईयिवस्**' છે તેની ચોથી વિભક્તિ '**ईयुषे**'।

त्वमीशिषे जगतस्तस्थुषश्च
प्राणेन मुख्येन पतिः प्रजानाम्।
चित्तस्य चित्तेर्मनइन्द्रियाणां
पतिर्महान् भूतगुणाशयेशः॥ २९

(સૂત્રાત્મારૂપ) મુખ્ય પ્રાણ દ્વારા આપ જ સ્થાવર-જંગમ જગતના નિયંતા છો, પ્રજાઓના પતિ છો, તેમના ચિત્તના અને ચિત્તની ચેતનાના પણ પતિ છો, મનના અને મનને વશ રહેનારી ઇન્દ્રિયોના પણ પતિ છો. આકાશાદિ પંચમહાભૂતોના અને તેમના શબ્દાદિ વિષયોના તથા તેમના સંસ્કારોના પણ આપ જ મહાન ઈશ્વર છો.॥ ૨૯॥

त्वमेव जगतो जङ्गमस्य तस्थुषः स्थावरस्य च ईशिषे नियन्ता भवसि। केन। मुख्येन प्राणेन सूत्रात्मरूपेण। अतस्त्वं प्रजानां पतिः। तासां चित्तस्य चित्तेश्च तत्परिणामभूताया-श्चेतनाया मनसश्च तन्नियम्यानामिन्द्रियाणां च पतिः। अतस्त्वमेव महान्। भूतानामाकाशादीनां तद्गुणानां शब्दादिविषयाणामाशयानां तद्वासना-नामीशश्च। एतेनैव स्रष्टृत्वं दर्शितम्॥ २९॥

આપ જ **'जङ्गमस्य'** જંગમ અને સ્થાવર જગતના **'ईशिषे'** નિયંતા છો. કોના દ્વારા? સૂત્રાત્મારૂપ મુખ્ય પ્રાણ દ્વારા. આથી આપ પ્રજાઓના પતિ છો. તેમનાં ચિત્તની, **'चित्तेः च'** ચિત્તના પરિણામરૂપ ચેતનાના પણ પતિ છો તથા મનના પતિ છો, મનના નિયમનમાં રહેનારી ઇન્દ્રિયોના પણ પતિ છો. આથી આપ જ મહાન છો. **'भूतानाम्'** આકાશાદિ પંચમહાભૂતોના, તેમના શબ્દાદિ વિષયોના અને તેમની **'आशयानाम्'** વાસના કે સંસ્કારોના પણ આપ જ ઈશ્વર છો. આ દ્વારા જ બ્રહ્માજીનું સર્જકત્વ દર્શાવ્યું છે.॥ ૨૯॥

इदानीं यज्ञप्रवर्तकत्वेनान्तर्यामित्वेन जगत्पालकत्वमाह।

હવે યજ્ઞની પ્રેરણા કરાવનાર અન્તર્યામી તરીકે બ્રહ્માજીનું જગત્પાલકત્વ વર્ણવે છે.

त्वं सप्ततन्तून् वितनोषि तन्वा
त्रय्या चातुर्होत्रकविद्यया च।
त्वमेक आत्माऽऽत्मवतामनादि-
रनन्तपारः कविरन्तरात्मा॥ ३०

(જેમાં ચાર હોતાઓ હોય છે તેવા) ચાતુર્હોત્રક (યજ્ઞ)વિદ્યાથી અને ત્રણ વેદરૂપી તનુ દ્વારા (અગ્નિષ્ટોમાદિ) સપ્તતંતુ યજ્ઞવિશેષાદિ યજ્ઞોને આપ વિસ્તારો છો. આપ જ પ્રાણીઓના આત્મારૂપ અંતર્યામી છો, સર્વજ્ઞ, અખંડ, અનાદિ, અનંત, અપાર છો.॥ ૩૦॥

त्वमेव सप्ततन्तूनग्निष्टोमादियज्ञान् विस्तारयसि।

આપ જ **'सप्ततन्तून्'** સપ્તતંતુ યજ્ઞવિશેષ અગ્નિષ્ટોમ વગેરે યજ્ઞોને વિસ્તારો છો.

कथम्। त्रय्या तन्वा वेदत्रयरूपेण। कथंभूतया। चत्वारो होतारो यत्र तच्चातुर्होत्रकं कर्म तद्विषयया विद्यया।
(**वंशीधरी—**'होत्रुद्गात्रध्वर्युर्ब्रह्माणः')

आत्मवतां प्राणिनामात्मभूतस्त्वमेवान्तरात्मा चान्तर्यामी।

कुतः। यतः कविः सर्वज्ञः। तत्कुतः। एकोऽखण्डः। तत्र हेतुः—अनादिरनन्तपारश्चेति। नास्त्यन्तः कालतः पारश्च देशतो यस्य सः॥ ३०॥

वंशीधरी—तन्यन्ते विस्तार्यन्ते इति तन्तवः सप्त अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोमोक्थषोडशिवाजपेयाप्तोर्यामोऽतिरात्राणाम् इत्येतान्।

કેવી રીતે? '**त्रय्या तन्वा**' ત્રણ વેદરૂપી તનુ દ્વારા– કેવી રીતે? જેમાં ચાર હોતાઓ છે તે ચાતુર્હોત્ર કર્મ, તદ્દવિષયક વિદ્યા દ્વારા.

(હોતા, ઉદ્દગાતા, અધ્વર્યુ, બ્રહ્મા.)

'**आत्मवताम्**' પ્રાણીઓના આત્મારૂપ એવા આપ જ '**अन्तरात्मा**' અંતર્યામી છો.

કેમ? કારણ કે '**कविः**' સર્વજ્ઞ છો. તે કેમ? '**एकः**' અખંડ છો. તે માટેનું કારણ— અનાદિ, અનંત, અપાર છો. કાળથી આપનો અંત નથી અને દેશથી આપનો પાર નથી.॥ ૩૦॥

વિસ્તારવામાં આવે છે તે સાત તન્તુઓ (યજ્ઞો) છે— સાત પ્રકારના યજ્ઞો—૧-અગ્નિષ્ટોમ, ૨-અત્યગ્નિષ્ટોમ, ૩-ઉક્થ, ૪-ષોડશી, ૫-વાજપેય, ૬-આપ્તોર્યામ, ૭-અતિરાત્ર.

कालरूपेण संहर्तृत्वमाह—**त्वमेवेति**।

બ્રહ્માજી કાળરૂપે સંહાર કરે છે, તે વર્ણવે છે— '**त्वम्-एव-इति।**'

त्वमेव कालोऽनिमिषो जनाना-
मायुर्लवाद्यावयवैः क्षिणोषि।
कूटस्थ आत्मा परमेष्ठ्यजो महां-
स्त्वं जीवलोकस्य च जीव आत्मा॥ ३१

આપ જ (નિમેષ-ઉન્મેષ રહિત સર્વને જોનાર) સદાય જાગરૂક કાળસ્વરૂપ હોઈ (ક્ષણ) લવ વગેરે (કાળના) વિભાગો દ્વારા મનુષ્યોના આયુષ્યને ક્ષીણ કરો છો, (છતાં આપ) નિર્વિકાર છો. જ્ઞાનસ્વરૂપ, પરમેશ્વર, અજન્મા, અસીમ છો, જીવલોકના જીવનનું કારણ છો.॥ ૩૧॥

लवाद्यैः कालावयवैः क्षिणोषि क्षपयसि। तदेवं सृष्ट्यादिकर्तृत्वेऽपि निर्विकारत्वमेवाह—कूटस्थ इति। तत्र हेतवः—आत्मा ज्ञानरूपः। परमेष्ठी परमेश्वरः। अजो जन्मशून्यः। महानपरिच्छिन्नः। किंच जीवलोक एव कर्मवशाज्जन्मादिभिर्विक्रियते। त्वं तु तस्य जीवो जीवनहेतुः—यतस्तस्यात्मा नियन्ता॥ ३१॥

(ક્ષણ) લવ વગેરે કાળના વિભાગો દ્વારા (મનુષ્યોના આયુષ્યને) '**क्षिणोषि**' ક્ષીણ કરો છો. વળી, સર્જન વગેરે કરવામાં પણ બ્રહ્માજીની નિર્વિકારતાનું જ વર્ણન કરે છે— '**कूटस्थः इति।**' તે માટેનાં કારણો— '**आत्मा**' જ્ઞાનરૂપ, '**परमेष्ठी**' પરમેશ્વર, '**अजः**' જન્મરહિત, '**महान्**' વ્યાપક, અમાપ. વળી, જીવલોક જ કર્મવશાત્ જન્માદિ દ્વારા વિકાર પામે છે. આપ તો તે જીવના જીવનનું કારણ છો, કારણ કે જીવના '**आत्मा**' નિયન્તા છો.॥ ૩૧॥

तत्कुतस्तत्राह—**त्वत्त इति**।

त्वत्तः परं नापरमप्यनेज-
देजच्च किञ्चिद् व्यतिरिक्तमस्ति।
विद्याः कलास्ते तनवश्च सर्वा
हिरण्यगर्भोऽसि बृहत्त्रिपृष्ठः॥ ३२

त्वत्तो व्यतिरिक्तं यदि किंचिद्भवेत्तर्हि तस्मात्तव जन्मादिविकारो नियम्यत्वादिकं वा भवेत्तत्तु नास्तीत्याह—

परं कारणमपरं कार्यम्। तत्र चैजज्जङ्गमम्, अनेजत्स्थावरं च तद्व्यतिरिक्तं नास्ति। ननु मद्बोधकशास्त्रं व्यतिरिक्तमस्तीति चेन्न, यतो विद्या वेदोपवेदादिविद्यास्थानानि कलाश्च तदङ्गानि तवैव तनवो न तु त्वद्व्यतिरिक्ताः।

तत्कुतः। यतस्त्वं बृहद्ब्रह्मैवासि। तदपि कुतस्तत्राह—हिरण्यरूपं ब्रह्माण्डं गर्भे यस्य सः। त्रिपृष्ठस्त्रिगुणात्मकस्य प्रधानस्य पृष्ठे परतः स्थितः। 'अक्षरात्परतः परः' इत्यादिश्रुतेः॥ ३२॥

ननु ब्रह्माण्डशरीरस्य जीवस्य मम कुतो ब्रह्मत्वं, कुतो वा ब्रह्माण्डगर्भत्वादि तत्राह—

બ્રહ્માજીનું સર્વાત્મત્વ કેવી રીતે છે, તે કહે છે— '**त्वत्तः इति।**'

કાર્ય, કારણ, સ્થાવર, જંગમ– એવું કાંઈ પણ આપનાથી જુદું નથી. સમસ્ત વિદ્યાઓ અને કલાઓ આપનાં શરીરો છે. (કારણ કે) આપ (બૃહદ્) બ્રહ્મ (ગુણોથી મહાન) છો. આપના ગર્ભમાં સુવર્ણમય (પ્રકાશમાન) બ્રહ્માંડ છે તથા ત્રિગુણાત્મક પ્રકૃતિથી આપ પર છો.॥ ૩૨॥

આપનાથી જુદું જો કાંઈ પણ હોય તો તેને કારણે આપના જન્માદિ વિકારો થાય અથવા આપનું નિયમનાદિ થાય (તે પદાર્થ આપનો નિયામક બને), પરંતુ તેમ છે નહીં, એમ કહે છે.

'**परम्**' કારણ, '**अपरम्**' કાર્ય, તેમાં વળી '**एजत्**' જંગમ, '**अनेजत्**' સ્થાવર તે પણ તેમનાથી જુદું નથી. મને જ્ઞાન આપનારું શાસ્ત્ર જુદું છે, એમ જો કોઈ શંકા કરે તો તે માટે કહે છે કે ના, કારણ કે '**विद्याः**' વેદો, ઉપવેદો વગેરે વિદ્યાસ્થાનો તથા તેનાં અંગોરૂપ કલાઓ– તે સર્વ આપનાં જ શરીરો છે, પણ આપનાથી પૃથક્ નથી.

તે કેવી રીતે? કારણ કે આપ '**बृहद्**' બ્રહ્મ જ છો. તે પણ કેવી રીતે, તે કહે છે–સુવર્ણમય બ્રહ્માંડ જેમના ગર્ભમાં છે તે '**हिरण्यगर्भः**' છો. '**त्रिपृष्ठः**' ત્રિગુણાત્મક પ્રકૃતિથી '**पृष्ठे**' પર રહેલા છો. '**अक्षरात् परतः परः**' (મુંડક. ૨/૧/૨) 'સર્વથી પર એવા અક્ષર પ્રધાનથી પણ પર' એમ શ્રુતિ છે.॥ ૩૨॥

પ્રશ્ન કરવામાં આવ્યો છે કે બ્રહ્માંડરૂપી શરીરવાળા જીવ એવા મારું બ્રહ્મત્વ કેવી રીતે છે? અથવા ગર્ભમાં બ્રહ્માંડ કેવી રીતે છે? તે માટે ઉત્તર આપે છે—

व्यक्तं विभो स्थूलमिदं शरीरं
येनेन्द्रियप्राणमनोगुणांस्त्वम् ।
भुङ्क्षे स्थितो धामनि पारमेष्ठ्य
अव्यक्त आत्मा पुरुषः पुराणः ॥ ३३

હે વિભુ, આ કાર્યરૂપ જગત આપનું સ્થૂળ શરીર છે, જેના દ્વારા આપ પોતાના પરમ ઐશ્વર્યમય સ્વરૂપમાં સ્થિત રહીને ઇન્દ્રિય, પ્રાણ અને મનના વિષયોનો ઉપભોગ કરો છો. (વસ્તુતઃ આપ) અવ્યક્ત, પુરાણ, પુરુષ, બ્રહ્મસ્વરૂપ (જ) છો. ॥ ૩૩ ॥

व्यक्तं कार्यमिदं तव शरीरम्। व्यक्तं सत्यमिति वा। येन शरीरेण त्वमिन्द्रियप्राण-मनसां गुणान्विषयान्भुङ्क्षे। किंच पारमेष्ठ्ये पारमैश्वर्ये धामनि स्वरूपे स्थित एव भुङ्क्षे, न त्वस्मदादिवत् स्वरूपतिरोधानेन। अतस्त्वम-व्यक्त आत्मा निरुपाधिर्ब्रह्मैव पुराणः पुरुषश्चेत्यर्थः ॥ ३३ ॥

'**व्यक्तम्**' કાર્યરૂપ આ જગત આપનું (વિરાટ) શરીર છે. અથવા સત્યરૂપ આ જગત આપનું શરીર છે. જે શરીર દ્વારા આપ ઇન્દ્રિય, પ્રાણ અને મનના '**गुणान्**' વિષયોનો ઉપભોગ કરો છો. વળી, '**पारमेष्ठ्ये**' પરમેશ્વરના '**धामनि**' સ્વરૂપમાં રહીને જ ઉપભોગ કરો છો, પરંતુ અમારી જેમ સ્વરૂપના આચ્છાદન દ્વારા નહીં. આથી (**स्वरूपतिरोधानाभावात्** સ્વરૂપ-તિરોધાનનો અભાવ હોવાથી) આપ '**अव्यक्तः आत्मा**' નિરુપાધિક બ્રહ્મ જ છો. '**पुराणः पुरुषः**' પુરાતન પુરુષ છો, એમ અર્થ છે. ॥ ૩૩ ॥

वंशीधरी—इत्यर्थः इति। स्वरूपतिरोधानेन भोगो हि जीवानामेवेति।

જીવોના સ્વસ્વરૂપનું તિરોધાન થઈ જવાને કારણે ભોગ ખરેખર જીવોને જ હોય છે, એવો ભાવ છે.

ननु ब्रह्मत्वं पुराणपुरुषत्वं कथमेकस्य तत्राह—**अनन्त इति**।

બ્રહ્મત્વ (બ્રહ્માજી) અને પુરાણપુરુષત્વ (ભગવાન) એકને જ કેવી રીતે હોય? તે માટે ઉત્તર આપે છે— '**अनन्त इति**।'

अनन्ताव्यक्तरूपेण येनेदमखिलं ततम्।
चिदचिच्छक्तियुक्ताय तस्मै भगवते नमः ॥ ३४

હે અનન્ત, મન અને વચનના અવિષયરૂપ એવા આપના જે (અવ્યક્ત) સ્વરૂપ વડે આ આખું વિશ્વ વ્યાપ્ત છે, તેવા અચિન્ત્ય ઐશ્વર્યવાળા તથા વિદ્યાશક્તિ અને માયાશક્તિથી યુક્ત એવા આપ ભગવાનને નમસ્કાર હો. ॥ ૩૪ ॥

हे अनन्त, येन त्वयाऽव्यक्तेन मनोवचना-गोचरेण रूपेणेदं विश्वं ततं व्याप्तं तस्मै तुभ्यं भगवतेऽचिन्त्यैश्वर्याय नमः। भगवत्त्वे

હે અનંત, મન અને વચનના અવિષયરૂપ આપના જે '**अव्यक्तेन**' અવ્યક્ત સ્વરૂપ વડે '**इदम्**' આ વિશ્વ '**ततम्**' વ્યાપ્ત છે, '**तस्मै**' (**तुभ्यम्**) તેવા આપને, '**भगवते**' અચિન્ત્ય

हेतुः—चिदचिच्छक्तियुक्ताय, चिच्छक्तिर्विद्या, अचिच्छक्तिर्माया, ताभ्यां युक्तायेति॥ ३४॥

ઐશ્વર્યવાળા ભગવાનને નમસ્કાર. ભગવત્ત્વ હોવા માટેનું કારણ– '**चिदचिच्छक्तियुक्ताय**' '**चिच्छक्तिः**' વિદ્યાશક્તિ, '**अचिच्छक्तिः**' માયાશક્તિ, તે બંનેથી યુક્ત એવા ભગવાનને (નમસ્કાર)॥ ૩૪॥

वंशीधरी—अनन्तरूपस्य सर्वं सङ्गच्छत इति भावः।

અનન્ત રૂપવાળાને માટે સર્વ સુસંગત છે, એવો ભાવ છે.

यदि दास्यस्यभिमतान् वरान्मे वरदोत्तम।
भूतेभ्यस्त्वद्विसृष्टेभ्यो मृत्युर्मा भून्मम प्रभो॥ ३५
॥ ३५॥

હે શ્રેષ્ઠ વરદાતા, જો મને આપ ઈચ્છિત વર આપો છો, તો હે પ્રભુ, આપે સર્જેલાં (સર્વ) પ્રાણીઓથી મારું મૃત્યુ ન થાઓ! ॥ ૩૫॥ ૩૫॥

नान्तर्बहिर्दिवा नक्तमन्यस्मादपि चायुधैः।
न भूमौ नाम्बरे मृत्युर्न नरैर्न मृगैरपि॥ ३६

(આપે સર્જ્યા સિવાયના) બીજા પદાર્થથી પણ અંદર, બહાર, દિવસે, રાત્રે, કોઈ પણ હથિયારથી, ભૂમિ ઉપર, આકાશમાં, મનુષ્યોથી કે પશુઓથી પણ મારું મૃત્યુ ન થાઓ!॥ ૩૬॥

व्यसुभिर्वाऽसुमद्भिर्वा सुरासुरमहोरगैः।
अप्रतिद्वन्द्वतां युद्धे ऐकपत्यं च देहिनाम्॥ ३७

પ્રાણ વિનાનાથી કે પ્રાણવાળાઓથી, દેવો, અસુરો કે મોટા સર્પોથી પણ (મારું મૃત્યુ ન થાઓ!) તથા યુદ્ધમાં પ્રતિદ્વન્દ્વી (હરીફ) ન હોવા પણું અને સમસ્ત પ્રાણીઓમાં એક સ્વામીપણું (આપો.)॥ ૩૭॥

सर्वेषां लोकपालानां महिमानं यथाऽऽत्मनः।
तपोयोगप्रभावाणां यन्न रिष्यति कर्हिचित्॥ ३८

સમસ્ત લોકપાલોમાં જેવો આપનો મહિમા છે તે તથા તપ અને યોગના પ્રભાવવાળા મનુષ્યોનું જે (અણિમાદિ ઐશ્વર્ય) છે કે જેનો નાશ થતો નથી, (તે પણ) મને આપો.॥ ૩૮॥

अन्यस्मात्त्वत्सृष्टव्यतिरिक्तादपि। आयुधैर्मृत्युर्मा भूत्॥ ३६॥

'**अन्यस्मात्**' આપે સર્જ્યા સિવાયના બીજા પદાર્થથી પણ, (કોઈ પણ) હથિયારથી મૃત્યુ ન થાઓ!॥ ૩૬॥

व्यसुभिरप्राणैः। असुमद्भिः सप्राणैः। यथा आत्मनस्तवास्ति महिमा तथाऽप्रतिद्वन्द्वतादिकं देहीति शेषः॥ ३७॥

'**व्यसुभिः**' પ્રાણ વિનાના પદાર્થથી '**असुमद्भिः**' પ્રાણવાળાઓથી– જેવો '**आत्मनः**' આપનો મહિમા છે તેવો મહિમા મને આપો તથા પ્રતિદ્વન્દ્વી ન હોવો તે વગેરે– 'આપો', એટલું બાકી છે.॥ ૩૭॥

तपसा योगेन च प्रभावो येषां तेषाम्। यदणिमाद्यैश्वर्यं न रिष्यति न नश्यति तच्च देहीत्यर्थः ॥ ३८ ॥

તપ અને યોગથી જેમનો પ્રભાવ હોય તેમનું જે અણિમાદિ ઐશ્વર્ય છે તે **'न रिष्यति'** નાશ ન પામે તે પણ મને આપો, એમ અર્થ છે. ॥ ૩૮ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे हिरण्यकशिपोर्वरयाचनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

*****

अथ चतुर्थोऽध्यायः

હિરણ્યકશિપુના અત્યાચાર અને પ્રહ્‌લાદજીના ગુણો

चतुर्थे तु वराँल्लब्ध्वा विजित्याखिललोकपान्।
विष्णुद्वेषेण तान्सर्वान्दैत्येन्द्रः समपीडयत् ॥ १

ચોથા અધ્યાયમાં વરદાનો પ્રાપ્ત કરી, સમગ્ર લોકપાલોને જીતી લઈ દૈત્યેન્દ્રે (હિરણ્યકશિપુએ) વિષ્ણુ ઉપરના દ્વેષને કારણે તે સર્વ (લોકપાલો)ને ખૂબ દુ:ખ દેવા માંડ્યું (તે કથા કહેવાશે). ॥ ૧ ॥

नारद उवाच

एवं वृतः शतधृतिर्हिरण्यकशिपोरथ।
प्रादात्तत्तपसा प्रीतो वरांस्तस्य सुदुर्लभान् ॥ १

નારદજી બોલ્યા – આમ, જેમની પાસે યાચના કરવામાં આવી છે તેવા બ્રહ્માજીએ તેના તપથી પ્રસન્ન થઈ તે હિરણ્યકશિપુને અત્યંત દુર્લભ એવાં વરદાન આપી દીધાં. ॥ ૧ ॥

शतधृतिर्ब्रह्मा ॥ १ ॥

'शतधृतिः' બ્રહ્માજીએ ॥ ૧ ॥

ब्रह्मोवाच

तातेमे दुर्लभाः पुंसां यान् वृणीषे वरान् मम।
तथापि वितराम्यङ्ग वरान् यदपि दुर्लभान् ॥ २

બ્રહ્માજી બોલ્યા – હે પુત્ર (હિરણ્યકશિપુ), મારી પાસેથી જે વરદાનો તું માગે છે તે આ વરદાનો જો કે મનુષ્યો માટે (અત્યંત) દુર્લભ છે, છતાં પણ હે પ્રિય, તે દુર્લભ વરદાનો હું તને આપું છું. ॥ ૨ ॥

मम मत्तः। यदपि यद्यपीमे दुर्लभाः ॥ २ ॥

'मम' મારી પાસેથી– **'यदपि'** જો કે આ (વરદાનો) દુર્લભ છે તેમ છતાં ॥ ૨ ॥

ततो जगाम भगवानमोघानुग्रहो विभुः।
पूजितोऽसुरवर्येण स्तूयमानः प्रजेश्वरैः ॥ ३

ત્યાર પછી અસુરશ્રેષ્ઠ હિરણ્યકશિપુ દ્વારા જેમનું પૂજન કરવામાં આવ્યું તેવા, અમોઘ (નિષ્ફળ ન જાય તેવો) અનુગ્રહ કરનારા સમર્થ બ્રહ્માજી પ્રજાપતિઓ દ્વારા સ્તુતિ કરાતા (સ્વધામ) પધાર્યા. ॥ ૩ ॥

अमोघोऽनुग्रहो यस्य। प्रजेश्वरैर्मरीच्यादिभिः ॥ ३ ॥

यदर्थं तपस्तप्तं तदाह—**एवमित्यादिना**।

एवं लब्धवरो दैत्यो बिभ्रद्धेममयं वपुः।
भगवत्यकरोद् द्वेषं भ्रातुर्वधमनुस्मरन्॥ ४ ॥ ४ ॥

स विजित्य दिशः सर्वा लोकांश्च त्रीन् महासुरः।
देवासुरमनुष्येन्द्रान् गन्धर्वगरुडोरगान्॥ **॥ ५ ॥** ५ ॥

सिद्धचारणविद्याध्रानृषीन् पितृपतीन् मनून्।
यक्षरक्षःपिशाचेशान् प्रेतभूतपतीनथ॥ ६ ॥ ६ ॥

सर्वसत्त्वपतीन् जित्वा वशमानीय विश्वजित्।
जहार लोकपालानां स्थानानि सह तेजसा॥ ७

सर्वेषां सत्त्वानां प्राणिजातानां ये ये पतयस्तान्॥ ७ ॥

देवोद्यानश्रिया जुष्टमध्यास्ते स्म त्रिविष्टपम्।
महेन्द्रभवनं साक्षान्निर्मितं विश्वकर्मणा।
त्रैलोक्यलक्ष्म्यायतनमध्युवासाखिलर्द्धिमत्॥ ८

त्रिविष्टपं स्वर्गमध्यास्ते स्माधिष्ठितवान्। तत्र स्वर्गेऽपि महेन्द्रभवनमध्युवासाधिवसति स्म॥ ८ ॥

अखिलसमृद्धियुक्तत्वमेवाह—**यत्रेति** त्रिभिः।

અમોઘ (સત્ય) છે અનુગ્રહ જેમનો, ‘**प्रजेश्वरैः**’ મરીચિ વગેરે પ્રજાપતિઓ દ્વારા॥ ૩॥

જેને માટે તપ કર્યું તે કહે છે– ‘**एवम्**’ વગેરે દ્વારા.

આમ, જેણે વરદાન પ્રાપ્ત કર્યાં છે તેવો દૈત્ય સુવર્ણમય (અત્યંત પ્રકાશમય) દેહ ધારણ કરતો, ભાઈ હિરણ્યાક્ષના વધનું વારંવાર સ્મરણ કરતો ભગવાન ઉપર દ્વેષ કરવા લાગ્યો. ॥ ૪ ॥ ૪ ॥

તે વિશ્વવિજયી મહાન અસુરે સર્વ દિશાઓને તથા ત્રણ લોકને જીતીને દેવો, અસુરો, રાજાઓ, ગંધર્વો, ગરુડો, સર્પો, સિદ્ધો, ચારણો, વિદ્યાધરો, ઋષિઓ, પિતૃઓના અધિપતિઓ, મનુઓ, યક્ષો, રાક્ષસો, પિશાચોના રાજાઓ, પ્રેતો, ભૂતપતિઓ તથા સર્વ પ્રાણીઓના સ્વામીઓને જીતીને વશ કરી, લોકપાલોનાં સ્થાનોને તેમના તેજ સહિત હરી લીધાં. ॥ ૫ ॥ ૬ ॥ ૭ ॥ ૫ ॥ ૬ ॥

સર્વ ‘**सत्त्वानाम्**’ જન્મેલાં પ્રાણીઓનાં જે જે સ્વામીઓ હતા તે સર્વને॥ ૭॥

દેવોના ઉદ્યાનની શોભાથી યુક્ત એવા સ્વર્ગમાં તે રહેવા લાગ્યો. સ્વયં વિશ્વકર્માએ બનાવેલા એવા ત્રિલોકની સમ્પત્તિના ધામ અને સંપૂર્ણ સમૃદ્ધિઓથી યુક્ત એવા ઈન્દ્રના ભવનમાં નિવાસ કરવા લાગ્યો.॥ ૮ ॥

‘**त्रिविष्टपम्**’ સ્વર્ગમાં ‘**अध्यास्ते स्म**’ રહેવા લાગ્યો. ત્યાં સ્વર્ગમાં પણ ઈન્દ્રના ભવનમાં ‘**अधि-उवास**’ રહેતો હતો.॥ ૮ ॥

અખિલ સમૃદ્ધિઓથી યુક્ત એવા મહેન્દ્ર-ભવનનું જ ત્રણ શ્લોકો વડે વર્ણન કરે છે— ‘**यत्र इति**।’

यत्र विद्रुमसोपाना महामारकता भुवः।
यत्र स्फाटिककुड्यानि वैदूर्यस्तम्भपंक्तयः॥ ९ ॥ ९ ॥

यत्र चित्रवितानानि पद्मरागासनानि च।
पयःफेननिभाः शय्या मुक्तादामपरिच्छदाः॥ १०

कूजद्भिर्नूपुरैर्देव्यः शब्दयन्त्य इतस्ततः।
रत्नस्थलीषु पश्यन्ति सुदतीः सुन्दरं मुखम्॥ ११

मुक्तादामानि परिच्छदाः परिकरा यासाम् ॥ १० ॥

सुदतीः सुदत्यः॥ ११ ॥

तस्मिन्महेन्द्रभवने महाबलो
महामना निर्जितलोक एकराट्।
रेमेऽभिवन्द्यांघ्रियुगः सुरादिभिः
प्रतापितैरूर्जितचण्डशासनः ॥ १२

ऊर्जितमधिकं चण्डं तीव्रं शासनं यस्य॥ १२ ॥

तमङ्ग मत्तं मधुनोरुगन्धिना
विवृत्तताम्राक्षमशेषधिष्ण्यपाः ।
उपासतोपायनपाणिभिर्विना
त्रिभिस्तपोयोगबलौजसां पदम्॥ १३

જે (ભવન)માં વિદ્રુમમણિના પગથિયાવાળા અને મરકતમણિના માળ છે, સ્ફટિકમણિની ભીંતો અને વૈદુર્યમણિના સ્થંભોની પંક્તિઓ છે.॥ ૯ ॥ ૯ ॥

રંગબેરંગી ચંદરવા અને પદ્મરાગમણિની બેઠકો છે. દૂધના ફીણ જેવી (મૃદુ અને શુભ્ર) શય્યાઓ અને મોતીની માળાવાળાં પાથરણાં છે.॥ ૧૦ ॥

સુંદર દંતાવલિવાળી દેવાંગનાઓ ઝણકાર કરતા ઝાંઝરથી જ્યાં ત્યાં રુમઝુમ કરતી, રત્નમય ભૂમિઓ ઉપર (પોતાનાં) સુંદર મુખ જુએ છે.॥ ૧૧ ॥

મોતીની માળાવાળાં '**परिच्छदाः**' પાથરણાં છે જે (શય્યાઓ)માં॥ ૧૦ ॥

'**सुदतीः**' '**सुदत्यः**' (દ્વિતીયા બ.વ. ને બદલે પ્રથમા બ.વ. હોવું જોઈએ.) સુંદર દાંતવાળી અપ્સરાઓ॥ ૧૧ ॥

અત્યંત સંતાપ પામેલા દેવાદિ દ્વારા જેના ચરણયુગલની વંદના થઈ રહી છે તેવો મહાબળવાન, મહામનસ્વી, સમગ્ર લોકને જીતી લેનાર, ચક્રવર્તી, અત્યંત કઠોર શાસન કરનાર દૈત્યરાજ હિરણ્યકશિપુ ઈન્દ્રના તે ભવનમાં વિહાર કરવા લાગ્યો.॥ ૧૨ ॥

'**ऊर्जितम्**' અધિક '**चण्डम्**' કઠોર શાસન છે જેનું॥ ૧૨ ॥

હે પ્રિય (યુધિષ્ઠિર), ઉગ્ર ગંધવાળી સુરાથી મત્ત બનેલા, (અને તેથી) ઘેરાતી રાતીચોળ આંખોવાળા તથા તપ, યોગ, બળ અને તેજના આશ્રયરૂપ એવા તે દૈત્યની બ્રહ્મા, વિષ્ણુ અને મહેશ– એ ત્રણ દેવો સિવાય સમગ્ર લોકપાલો હાથમાં ઉપહાર લઈને સેવા કરતા.॥ ૧૩ ॥

अङ्ग हे राजन्, उरुगन्धिनोग्रगन्धेन मधुना सुरया मत्तम्। अत एव विवृत्ते विघूर्णिते ताम्रे अक्षिणी यस्य तम्। अशेषधिष्ण्यपाः सर्वलोकपाला उपायनयुक्तैः पाणिभिरुपासत सेवन्ते। त्रिभिर्ब्रह्मविष्णुरुद्रैर्विना। पदमाश्रयभूतम् ॥ १३ ॥

'अङ्ग' હે રાજા (યુધિષ્ઠિર), **'उरुगन्धिना'** ઉગ્ર ગંધવાળી **'मधुना'** સુરાથી ઉન્મત્ત બનેલો– આથી જ **'विवृत्ते'** ઘેરાતી રાતીચોળ આંખો છે જેની તેને– **'अशेषधिष्ण्यपाः'** સમગ્ર લોકપાલો હાથમાં ઉપહાર લઈને **'उपासत'** સેવા કરે છે. બ્રહ્મા, વિષ્ણુ અને મહેશ– એ ત્રણ દેવો સિવાય, **'पदम्'** આશ્રયરૂપ તે દૈત્યની ॥ ૧૩ ॥

उपासनप्रकारमाह—**जगुरिति**।

સેવાનો પ્રકાર જણાવે છે– **'जगुः इति।'**

जगुर्महेन्द्रासनमोजसा स्थितं
विश्वावसुस्तुम्बुरुरस्मदादयः ।
गन्धर्वसिद्धा ऋषयोऽस्तुवन्मुहु-
र्विद्याधरा अप्सरसश्च पाण्डव॥ १४ ॥ १४ ॥

હે પાંડુપુત્ર, પોતાના બળથી ઈન્દ્રાસન ઉપર બેઠેલા તે દૈત્યની વિશ્વાવસુ, તુમ્બુરુ, ગંધર્વો, સિદ્ધો, ઋષિઓ, વિદ્યાધરો, અપ્સરાઓ તથા અમે વગેરે (ગાનનિપુણ જનો) વારંવાર સ્તુતિ કરતા. ॥ ૧૪ ॥ ૧૪ ॥

स एव वर्णाश्रमिभिः क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः।
इज्यमानो हविर्भागानग्रहीत् स्वेन तेजसा॥ १५ ॥ १५ ॥

વર્ણાશ્રમધર્મનું પાલન કરનારા પુરુષો દ્વારા કરવામાં આવતા મોટી દક્ષિણાવાળા યજ્ઞોથી તે હિરણ્યકશિપુ જ પૂજાતો અને પોતાના તેજથી (બળાત્કારથી) યજ્ઞના ભાગોને તે જ પડાવી લેતો. ॥ ૧૫ ॥ ૧૫ ॥

अकृष्टपच्या तस्यासीत् सप्तद्वीपवती मही।
तथा कामदुघा द्यौस्तु नानाश्चर्यपदं नभः॥ १६ ॥ १६ ॥

સાત દ્વીપોવાળી પૃથ્વી ખેડાયા વિના પણ તેને માટે ધાન્યસમ્પન્ન થતી. સ્વર્ગ સર્વ કામનાઓ પૂર્ણ કરનારું બન્યું તથા આકાશ જાતજાતના અદ્ભુત સ્થાનરૂપ (વસ્તુઓ પ્રદાન કરનાર) બન્યું. ॥ ૧૬ ॥ ૧૬ ॥

रत्नाकराश्च रत्नौघांस्तत्पत्न्यश्चोहुरूर्मिभिः।
क्षारसीधुघृतक्षौद्रदधिक्षीरामृतोदकाः ॥ १७

ખારા પાણીના, સુરાના, ઘીના, મધના, દહીંના, દૂધના અને અમૃત જેવા (મીઠા) જળના સમુદ્રો તથા તેમની પત્ની નદીઓ તરંગો દ્વારા તેને રત્નોના ઢગલાઓ વહાવી આપતાં હતા. ॥ ૧૭ ॥

तत्पत्न्यो नद्यः। ऊहुर्वहन्ति स्म। रत्नाकरानेवाह—**क्षारेति**॥ १७॥

તે સમુદ્રોની પત્નીઓ, નદીઓ– **'ऊहुः'** વહન કરતી હતી. (સાત પ્રકારના) સમુદ્રોનું જ વર્ણન કરે છે– **'क्षारः इति।'** ॥ ૧૭ ॥

शैला द्रोणीभिराक्रीडं सर्वर्तुषु गुणान् द्रुमाः ।
दधार लोकपालानामेक एव पृथग्गुणान् ॥ १८

પર્વતો કન્દરાઓ દ્વારા ક્રીડાસ્થાનને, (ધારણ કરતા હતા.) વૃક્ષો સર્વ ઋતુઓમાં પોતાના ગુણોને, (ફળ-ફૂલ વગેરેને ધારણ કરતાં હતાં.) તથા તે દૈત્ય એકલો જ સર્વ લોકપાલોના જુદા જુદા ગુણો ધારણ કરતો. ॥ ૧૮ ॥

आक्रीडं क्रीडास्थानम्। द्रुमाः सर्वेषु ऋतुषु गुणान्पुष्पफलादीन्। स च लोकपालानां पृथग्विधान्गुणान्वर्षणदहनशोषणादीनेक एव दधार ॥ १८ ॥

'आक्रीडम्' ક્રીડાસ્થાનને. વૃક્ષો સર્વ ઋતુઓમાં પોતાના ગુણોરૂપ પુષ્પ-ફળ વગેરેને ધારણ કરતાં હતાં તથા તે દૈત્ય એકલો જ સર્વ લોકપાલોના જુદાં જુદાં વર્ષણ, દહન, શોષણ વગેરે ગુણોને ધારણ કરતો. ॥ ૧૮ ॥

स इत्थं निर्जितककुबेकराड् विषयान् प्रियान् ।
यथोपजोषं भुञ्जानो नातृप्यदजितेन्द्रियः ॥ १९

આ પ્રમાણે સર્વ દિશાઓ જેના દ્વારા જીતી લેવામાં આવી તે એકછત્ર સમ્રાટ પ્રિય વિષયોને પોતાની પ્રીતિ અનુસાર ભોગવતો હોવા છતાં તૃપ્ત થતો ન હતો, (કારણ કે તે) અત્યંત અજિતેન્દ્રિય (અવિવેકી) હતો. ॥ ૧૯ ॥

निर्जिताः ककुभो येन। यथोपजोषं यथाप्रीति ॥ १९ ॥

જીતી લેવામાં આવી છે દિશાઓ જેના દ્વારા— **'यथा-उपजोषम्'** (પોતાની) પ્રીતિ અનુસાર ॥ ૧૯ ॥

एवमैश्वर्यमत्तस्य दृप्तस्योच्छास्त्रवर्तिनः ।
कालो महान् व्यतीयाय ब्रह्मशापमुपेयुषः ॥ २०

આમ, ઐશ્વર્યથી ઘમંડી બનેલા (અને તેથી) શાસ્ત્ર(ની મર્યાદા)નું ઉલ્લંઘન કરીને વર્તતા તથા બ્રહ્મશાપ (સનકાદિઓનો શાપ) પામેલા દૈત્યનો દીર્ઘકાળ વ્યતીત થઈ ગયો. ॥ ૨૦ ॥

महान्कालः एकसप्ततियुगानि किंचिदधिकानि ॥ २० ॥

'महान्कालः' ઈકોતેર યુગો કરતાં પણ થોડો વધુ સમય ॥ ૨૦ ॥

(**'व्यतीयाय'** **वि+अति+इ**નું પરોક્ષ ભૂ.કા. પ્ર. પુ.એ.વ. **इयाय, व्यतीयाय)**

'उपेयुषः' **उप+इ** નું પરોક્ષ ભૂ.કૃ. **उपेयिवस्** **उपेयिवस्** નું ષ.એ.વ. **'उपेयुषः'**

तस्योग्रदण्डसंविग्नाः सर्वे लोकाः सपालकाः ।
अन्यत्रालब्धशरणाः शरणं ययुरच्युतम् ॥ २१
॥ २१ ॥

તેના કઠોર શાસનથી ત્રાસી ગયેલા લોકપાલો સહિત સમગ્ર લોકો (શ્રીહરિ સિવાય) બીજે ક્યાંય આશ્રય પ્રાપ્ત કરનારા ન હોઈ ભગવાન શ્રીહરિને શરણે ગયા. ॥ ૨૧ ॥ ૨૧ ॥

**तस्यै नमोऽस्तु काष्ठायै यत्रात्मा हरिरीश्वरः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते शान्ताः संन्यासिनोऽमलाः॥ २२॥ २२॥**

જ્યાં આત્મા-સર્વાન્તર્યામી, સર્વનિયંતા શ્રીહરિ રહે છે તથા જે દિશામાં જઈને વિશુદ્ધ (અન્તઃકરણવાળા) અને રાગાદિદોષરહિત સંન્યાસીઓ (સંસારમાં કદી) પાછા ફરતા નથી, તે દિશાને નમસ્કાર હો.॥ ૨૨॥ ૨૨॥

**इति ते संयतात्मानः समाहितधियोऽमलाः।
उपतस्थुर्हृषीकेशं विनिद्रा वायुभोजनाः॥ २३॥ २३॥**

આ પ્રમાણે ચિત્તને વશ કરનારા, બુદ્ધિને એકાગ્ર કરનારા તથા વાયુનું ભોજન કરનારા નિષ્પાપ દેવોએ નિદ્રારહિત થઈ હૃષીકેશ ભગવાન શ્રીહરિની સ્તુતિ કરી.॥ ૨૩॥ ૨૩॥

**तेषामाविरभूद्वाणी अरूपा मेघनिःस्वना।
सन्नादयन्ती ककुभः साधूनामभयङ्करी॥ २४**

તે દેવોની આગળ અદશ્ય વક્તાવાળી, મેઘ જેવા ગંભીર ઘોષવાળી, દિશાઓને ગજાવતી, સાધુઓને નિર્ભય કરનારી (આકાશ)વાણી પ્રકટ થઈ. (દેવોને સંભળાઈ.)॥ ૨૪॥

अरूपा वक्तृरहिता॥ २४॥

'**अरूपा**' (જોઈ શકાય તેવા) વક્તાવાળી ॥ ૨૪॥

**मा भैष्ट विबुधश्रेष्ठाः सर्वेषां भद्रमस्तु वः।
मद्दर्शनं हि भूतानां सर्वश्रेयोपपत्तये॥ २५**

હે શ્રેષ્ઠ દેવો, તમે ભય ન પામો! તમારા બધાનું કલ્યાણ થાઓ! કારણ કે મારું દર્શન પ્રાણીઓનાં સર્વ કલ્યાણની પ્રાપ્તિ માટે થાય છે.॥ ૨૫॥

मम दर्शनं श्रवणं सर्वेषां श्रेयसामुपपत्तये भवति॥ २५॥

મારું '**दर्शनम्**' શ્રવણ (અદશ્ય વક્તાવાળી વાણી હોવાથી દર્શનનો સંભવ નથી, તેથી 'દર્શન' શબ્દનો અર્થ શ્રવણ છે.) સર્વ પ્રાણીઓમાં કલ્યાણની પ્રાપ્તિ માટે થાય છે.॥ ૨૫॥

अयमार्षः संधिः।

'**सर्वश्रेयसामुपपत्तये**' હોવું જોઈએ '**सर्वश्रेयोपपत्तये**'માં થયેલી સંધિ આર્ષ છે. **श्रेयः + उपपत्तये=श्रेयउपपत्तये** એમ સંધિ થાય. એક સંધિ થયા પછી બીજી સંધિ ન થાય.

त्रयोविंशतिश्लोकोत्तरं इति पद्यमधिकं इति **वीर. विज.**।

'**ॐ नमो भगवते तुभ्यं पुरुषाय महात्मने। विशुद्धानुभवानन्दसंदोहाय यतोऽभयम्॥**'

ત્રેવીસમા શ્લોક પછી આ એક શ્લોક અધિક છે તેમ વીર રાઘવજી અને વિજયધ્વજજી માને છે. ૐ વિશુદ્ધ-અનુભવાનંદરાશિરૂપ પરમ પુરુષરૂપ પરમાત્મા ભગવાન એવા આપને નમસ્કાર હો, કે જેમનાથી અભય (પ્રાપ્ત થાય છે.)

ज्ञातमेतस्य दौरात्म्यं दैतेयापसदस्य च।
तस्य शान्तिं करिष्यामि कालं तावत्प्रतीक्षत॥ २६ ॥ २६ ॥

આ અધમ દૈત્યની દુષ્ટતાને હું જાણું છું. તેની દુષ્ટતાને હું શાંત કરીશ. તેટલા સમય સુધી તમે પ્રતીક્ષા કરો.॥ ૨૬॥ ૨૬॥

यदा देवेषु वेदेषु गोषु विप्रेषु साधुषु।
धर्मे मयि च विद्वेषः स वा आशु विनश्यति॥ २७ ॥ २७ ॥

જ્યારે જે પ્રાણીને દેવો, વેદો, ગાયો, બ્રાહ્મણો, સાધુજનો, ધર્મ અને મારા ઉપર દ્વેષ થાય છે, (ત્યારે) તે તત્કાળ નાશ પામે છે.॥ ૨૭॥ ૨૭॥

ननु देवादिविद्वेषेऽप्यस्य विनाशो नास्ति, ब्रह्मवरेणोर्जितत्वात्तत्राह—**निर्वैरायेति**।

શંકા કરવામાં આવી છે કે બ્રહ્માજીના વરદાનને કારણે અત્યંત શક્તિસંપન્ન થયેલા આ દૈત્યનો, શું દેવો વગેરેનો અતિ દ્વેષ કરવાને કારણે પણ વિનાશ નહીં થાય? તે માટે કહે છે— **'निर्वैराय इति।'**

निर्वैराय प्रशान्ताय स्वसुताय महात्मने।
प्रह्लादाय यदा द्रुह्येद्धनिष्येऽपि वरोर्जितम्॥ २८

જ્યારે તે દૈત્ય વેરરહિત, અત્યંત શાન્ત, મહાત્મા એવા પોતાના પુત્ર પ્રહ્‌લાદનો દ્રોહ કરશે, ત્યારે વરદાનને કારણે તે અત્યંત શક્તિ-સંપન્ન બન્યો હોવા છતાં હું તેનો નાશ કરીશ.॥ ૨૮॥

सर्वमहं सहे न मद्भक्तद्रोहमिति भावः ॥ २८॥

(ભગવાન કહે છે કે) હું બધું જ સહન કરું છું પણ મારા ભક્તનો દ્રોહ હું સહન કરતો નથી, એવો ભાવ છે.॥ ૨૮॥

नारद उवाच

इत्युक्ता लोकगुरुणा तं प्रणम्य दिवौकसः।
न्यवर्तन्त गतोद्वेगा मेनिरे चासुरं हतम्॥ २९

નારદજી બોલ્યા – લોકોના ગુરુ અર્થાત્ લોકોના હિત માટે સદાય ઉદ્યત એવા ભગવાન દ્વારા આ પ્રમાણે કહેવામાં આવેલા દેવતાઓ તેમને પ્રણામ કરી પાછા ફર્યા અને ઉદ્વેગરહિત થઈ તે અસુરને હણાયેલો માનવા લાગ્યા.॥ ૨૯॥

असुरं च हतं मेनिरे। तदानीं तद्द्वेषे प्रवृत्तत्वादिति भावः॥ २९॥

અસુરને હણાયેલો જ માન્યો. તે સમયે પ્રહ્‌લાદ ઉપરનો દ્વેષ પ્રવૃત્ત થયો હોવાને કારણે (દૈત્યને હતપ્રાય જ માન્યો).॥ ૨૯॥

तमेवं द्वेषं वक्तुमादौ सुतस्य महत्त्वमाह—**तस्येति**।

તે દ્વેષનું વર્ણન કરવા માટે પ્રથમ પુત્રની મહત્તાનું વર્ણન કરે છે – **'तस्य इति।'**

तस्य दैत्यपतेः पुत्राश्चत्वारः परमाद्भुताः।
प्रह्लादोऽभून्महांस्तेषां गुणैर्महदुपासकः॥ ३०

તે દૈત્યરાજને અત્યંત અદ્‌ભુત ચાર પુત્રો હતા, તેમાંના પ્રહ્‌લાદજી ગુણો વડે સર્વશ્રેષ્ઠ હતા. તેઓ મહાપુરુષોના ભક્ત,॥ ૩૦॥

ब्रह्मण्यः शीलसम्पन्नः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः।
आत्मवत्सर्वभूतानामेकः प्रियसुहृत्तमः॥
॥ ३१ ॥

બ્રાહ્મણભક્ત, શીલસંપન્ન, સત્યપ્રતિજ્ઞ, જિતેન્દ્રય, સર્વ પ્રાણીઓના આત્મારૂપ એક માત્ર પ્રિય અને પરમ મિત્ર હતા.॥ ૩૧ ॥

दासवत्संनतार्यांघ्रिः पितृवद्दीनवत्सलः।
भ्रातृवत्सदृशे स्निग्धो गुरुष्वीश्वरभावनः।
विद्यार्थरूपजन्माढ्यो मानस्तम्भविवर्जितः॥ ३२

વડીલોના ચરણોમાં દાસની જેમ પ્રણત, દીનજનો ઉપર પિતા જેવા વત્સલ, સમવયસ્ક સાથે ભાઈ સમાન પ્રેમાળ, ગુરુજનો ઉપર ભગવદ્‌ભાવ રાખનાર, વિદ્યા, ધન, રૂપ તથા આભિજાત્યથી સમ્પન્ન હોવા છતાં અભિમાન અને અકડાઈથી રહિત હતા.॥ ૩૨ ॥

नोद्विग्नचित्तो व्यसनेषु निःस्पृहः
श्रुतेषु दृष्टेषु गुणेष्ववस्तुदृक्।
दान्तेन्द्रियप्राणशरीरधीः सदा
प्रशान्तकामो रहितासुरोऽसुरः॥ ३३

દુઃખોમાં ઉદ્વિગ્ન મનવાળા ન થનાર, (પરલોકના) સાંભળેલા અને (આ લોકના) જોયેલા વિષયોમાં નિઃસ્પૃહ, (વિષયોને) અવસ્તુરૂપે જોનાર, જેમનાં ઈન્દ્રિયો, પ્રાણ, શરીર અને બુદ્ધિ સંયમિત છે તેવા, જેમની કામનાઓ સદાયને માટે અત્યંત શાંત થઈ ગઈ છે તેવા તથા અસુર હોવા છતાં આસુરી ભાવથી રહિત હતા.॥ ૩૩ ॥

गुणैर्महानभूत्। गुणानेवाह—**महदुपासक** इत्यादिना॥ ३०॥

પ્રહ્‌લાદજી ગુણોથી સર્વશ્રેષ્ઠ હતા. ગુણોનું જ વર્ણન કરે છે— ‘**महत्-उपासकः**’ વગેરે દ્વારા॥ ૩૦॥

सत्या सन्धा प्रतिज्ञा यस्य। एक एव प्रियश्च सुहृत्तमश्च॥ ३१॥

સત્ય છે ‘**सन्धा**’ પ્રતિજ્ઞા જેમની, એક માત્ર પ્રિય અને પરમ મિત્ર॥ ૩૧॥

दासवत्सम्यङ्नता आर्याणामङ्घ्रयो येन। गुरुषु ईश्वर इति भावना यस्य॥ ३२॥

વડીલોના ચરણોમાં દાસની જેમ નમીને જેમના દ્વારા નમન કરવામાં આવ્યાં છે, ગુરુજનો ઉપર ભગવાનમાં હોય તેવી ભાવના છે જેમની॥ ૩૨॥

व्यसनेषु प्राप्तेष्वपि नोद्विग्नचित्तः। दृष्टेषु श्रुतेषु गुणेषु विषयेषु निस्पृहः। यतस्तेष्ववस्तुदृक्। दान्ता इन्द्रियादयो यस्य। रहित आसुरो भावो मत्सरादिर्यस्य सः। असुरोऽपि सन् प्रशान्तकामः॥ ३३॥

દુઃખો પ્રાપ્ત થાય ત્યારે પણ ઉદ્વિગ્ન મનવાળા ન થનાર, જોયેલા અને સાંભળેલા ‘**गुणेषु**’ વિષયોમાં નિઃસ્પૃહ, કારણ કે તેઓ વિષયોને અવસ્તુરૂપે જોનાર હતા. જેમની ઈન્દ્રિયો વગેરે સંયમિત છે તેવા, મત્સર વગેરે આસુરી ભાવોથી જે રહિત છે, અસુર હોવા છતાં પણ જેમની કામનાઓ અત્યંત શાંત થઈ છે તેવા॥ ૩૩॥

यस्मिन्महद्गुणा राजन् गृह्यन्ते कविभिर्मुहुः ।
न तेऽधुनापिधीयन्ते यथा भगवतीश्वरे ॥ ३४

अधुनापि ते गुणा नापिधीयन्ते तिरोहिता न भवन्ति ॥ ३४ ॥

હે રાજા, જેમનામાં (પ્રહ્‌લાદજીમાં) રહેલા મહાપુરુષોના ગુણ વિદ્વજ્જનો દ્વારા વારંવાર અપનાવવામાં આવ્યા છે, તે ગુણો ભગવાન ઈશ્વરમાં રહેલા ગુણોની જેમ આજે (પણ) તિરોહિત થયા નથી. ॥ ૩૪ ॥

(આટલો લાંબો સમય વીતી ગયો હોવા છતાં) આજે પણ એ ગુણો '**न-अपिधीयन्ते**' ભુલાયા નથી. ॥ ૩૪ ॥

यं साधुगाथासदसि रिपवोऽपि सुरा नृप ।
प्रतिमानं प्रकुर्वन्ति किमुतान्ये भवादृशाः ॥ ३५

साधुगाथासदसि साधुकथाप्रसङ्गवत्यां सभायाम्। यं प्रह्लादम्। प्रतिमानं दृष्टान्तम्। रिपवोऽपि सुराः कुर्वन्ति, किं वक्तव्यं भवादृशा विष्णुभक्ताः ॥ ३५ ॥

હે નૃપ, સત્પુરુષોની કથાના પ્રસંગો જેમાં વર્ણવાય છે તે સભામાં (અસુરોના) શત્રુઓ દેવો પણ જે (પ્રહ્‌લાદજી)ને દૃષ્ટાંતરૂપ ગણે છે, તો આપના જેવા અન્ય (વિષ્ણુભક્તો) પ્રહ્‌લાદજીનું દૃષ્ટાંત લે એમાં શું કહેવાનું હોય ? ॥ ૩૫ ॥

'**साधुगाथासदसि**' સત્પુરુષોની કથાના પ્રસંગો જેમાં વર્ણવાય છે તે સભામાં, '**यम्**' જે પ્રહ્‌લાદજીને '**प्रतिमानम्**' દૃષ્ટાન્તરૂપ– (અસુરોના) '**रिपवः**' શત્રુઓ એવા દેવો પણ (દૃષ્ટાંતરૂપ) ગણે છે, તો આપના જેવા વિષ્ણુભક્તો તેમનું દૃષ્ટાંત લે તેમાં શું કહેવાનું ? ॥ ૩૫ ॥

गुणैरलमसंख्येयैर्माहात्म्यं तस्य सूच्यते ।
वासुदेवे भगवति यस्य नैसर्गिकी रतिः ॥ ३६

सूच्यते मया केवलं द्योत्यते। सुष्ठु कथ्यत इति वा ॥ ३६ ॥

ભગવાન વાસુદેવમાં જે પ્રહ્‌લાદજીની સ્વાભાવિક પ્રીતિ હતી તેમના ગુણો વર્ણવવા શક્ય નથી, (પરંતુ) અસંખ્ય ગુણો દ્વારા તેમનું માહાત્મ્ય સૂચવવામાં આવ્યું છે. ॥ ૩૬ ॥

'**सूच्यते**' મારા દ્વારા માત્ર વ્યક્ત કરવામાં આવ્યું છે અથવા સારી રીતે કહેવામાં આવ્યું છે. ॥ ૩૬ ॥

नैसर्गिकरतेर्लिङ्गान्याह—**न्यस्तक्रीडनक इति** षड्भिः ।

સ્વાભાવિક પ્રીતિનાં ચિહ્‌નો છ શ્લોકો વડે વર્ણવે છે— '**न्यस्तक्रीडनकः इति।**'

न्यस्तक्रीडनको बालो जडवत्तन्मनस्तया।
कृष्णग्रहगृहीतात्मा न वेद जगदीदृशम्॥ ३७

कृष्णरूप ग्रह द्वारा જેમનું ચિત્ત આવિષ્ટ થઈ ગયું હતું તેવા તેમનું મન ભગવાનમાં તન્મય હોવાથી જેમણે રમકડાં ત્યાગી છે, તેવા જડ જેવા બાળક પ્રહ્‌લાદ (વ્યવહાર અવસ્થામાં દેખાતા) આવા જગતને જાણતા ન હતા. (પરંતુ સંપૂર્ણ જગતને કૃષ્ણમય જોતા હતા.)॥ ૩૭॥

तन्मनस्तया तदेकचित्तत्वेन॥ ३७॥

'**तन्मनस्तया**' તે ભગવાનમાં એક ચિત્તવાળા હોવાથી॥ ૩૭॥

आसीनः पर्यटन्नश्नन् शयानः प्रपिबन् ब्रुवन्।
नानुसन्धत्त एतानि गोविन्दपरिरम्भितः॥ ३८

શ્રીગોવિંદ ભગવાન દ્વારા આલિંગન પામેલા (બાળક પ્રહ્‌લાદ) સૂતાં, બેસતાં, ખાતાં, પીતાં, હરતાં, ફરતાં, બોલતાં એ સર્વ (ક્રિયાવ્યાપાર)ને જાણતા નહીં.॥ ૩૮॥

एतान्यासनादीनि। गोविन्देन परिरम्भित आत्मना एकीकृतः॥ ३८॥

'**एतानि**' આસન વગેરેને (માર્ગ, ભક્ષ્ય, શયનીય, પેય, ભાષણ– એ સર્વ ક્રિયાવ્યાપારના વિષયોને જાણતા ન હતા.) શ્રીગોવિંદ ભગવાન દ્વારા '**परिरम्भितः**' આશ્લેષ પામેલા, પોતાની સાથે એકરૂપ કરવામાં આવેલા॥ ૩૮॥

क्वचिद्रुदति वैकुण्ठचिन्ताशबलचेतनः।
क्वचिद्धसति तच्चिन्ताह्लाद उद्गायति क्वचित्॥
॥ ३९॥

વૈકુંઠ ભગવાન શ્રીહરિના ચિંતનથી (મિશ્રભાવવાળી) વિહ્‌વળ થયેલી ચેતનાવાળા પ્રહ્‌લાદજી કોઈ વખત રડે તો કોઈ વખત તેમના ધ્યાનથી આહ્‌લાદ પામી હસે અને ક્યારેક મોટેથી (શ્રીગોવિંદના ગુણોનું) ગાન કરે.॥ ૩૯॥

रुदति रोदिति रौति। वैकुण्ठस्य चिन्तया शबला व्यामिश्रा क्षुभिता चेतना यस्य। तस्य चिन्तयाह्लादो यस्य॥ ३९॥

'**रुदति**' રડે– વૈકુંઠ ભગવાનના ચિંતનથી '**शबला**' મિશ્રભાવવાળી વિહ્‌વળ, ક્ષોભ પામેલી ચેતના છે જેમની, તેમના ધ્યાનથી આહ્‌લાદ છે જેમને॥ ૩૯॥

नदति क्वचिदुत्कण्ठो विलज्जो नृत्यति क्वचित्।
क्वचित्तद्भावनायुक्तस्तन्मयोऽनुचकार ह॥
॥ ४०॥

ક્યારેક (દૂર પ્રકટ થયેલા ભગવાનને જોઈને) મુક્ત કંઠે (હે કૃષ્ણ, હે પ્રભુ, એમ) પોકારી ઊઠતા. ક્યારેક લજ્જા છોડીને નાચી ઊઠતા. ક્યારેક ભગવદ્‌ભાવનાયુક્ત (હું જ ભગવાન છું) એમ તન્મય થઈ (ભગવલ્લીલાનું) અનુકરણ જ કરવા લાગતા.॥ ૪૦॥

क्वचिदुत्कण्ठो मुक्तकण्ठः सन् अनुचकार तच्चेष्टादिकं स्वयं कृतवान्॥ ४०॥

क्वचिदुत्पुलकस्तूष्णीमास्ते संस्पर्शनिर्वृतः।
अस्पन्दप्रणयानन्दसलिलामीलितेक्षणः॥ ४१

संस्पर्शस्तद्भावापत्तिस्तेन निर्वृतः। अस्पन्दः स्थिरो यः प्रणयस्तेन य आनन्दस्तेन यत्सलिलं तेन युक्ते 'आमीलिते' ईषन्निमीलिते ईक्षणे यस्य सः॥ ४१॥

स उत्तमश्लोकपदारविन्दयो-
र्निषेवयाऽकिञ्चनसङ्गलब्धया।
तन्वन् परां निर्वृतिमात्मनो मुहु-
र्दुःसङ्गदीनान्यमनःशमं व्यधात्॥ ४२

आत्मनः परां निर्वृतिं तन्वन् दुःसङ्गेन दीनस्यान्यस्यापि मनः शमं शान्तं व्यधात्॥ ४२॥

तस्मिन्महाभागवते महाभागे महात्मनि।
हिरण्यकशिपू राजन्नकरोदघमात्मजे॥ ४३

अघं द्रोहमकरोत्॥ ४३॥

प्रथमाध्यायान्ते पृष्टमेवार्थमतिविस्मयेन पुनः पृच्छति—**देवर्ष इति**।

युधिष्ठिर उवाच

देवर्ष एतदिच्छामो वेदितुं तव सुव्रत।
यदात्मजाय शुद्धाय पितादात् साधवे ह्यघम्॥ ४४

ક્યારેક '**उत्कण्ठः**' મુક્ત કંઠવાળા થઈ– '**अनुचकार**' ભગવાનની ચેષ્ટા (લીલા) વગેરે પોતે કરવા લાગતા.॥૪૦॥

ક્યારેક ભગવદ્‌ભાવની પ્રાપ્તિ થવાને કારણે આનંદમગ્ન અને રોમાંચિત થઈ ઊઠેલા તેમ જ અવિચળ પ્રેમનાં આનંદાશ્રુથી યુક્ત એવાં સહેજ બિડાયેલાં નેત્રે મૌન થઈ બેસી રહેતા.॥૪૧॥

'**संस्पर्शः**' ભગવદ્‌ભાવની પ્રાપ્તિ– તેને કારણે આનંદમગ્ન– '**अस्पन्दः**' સ્થિર, અવિચળ એવો જે પ્રેમ છે, તેનાથી જે આનંદ થયો છે, તેનાથી જે જળ (અશ્રુ), તેનાથી યુક્ત એવાં '**आमीलिते**' સહેજ બિડાયેલાં નેત્રો છે જેમનાં તે॥૪૧॥

અકિંચન ભગવદ્‌ભક્તોના સંગથી પ્રાપ્ત થયેલી, ઉત્તમશ્લોક ભગવાનનાં ચરણકમળની વારંવાર (નિરંતર) સેવાથી પોતાના મનની પરમ શાંતિને વિસ્તારતા (તે પ્રહ્‌લાદજી) દુર્જનોના સંગથી દીન બનેલાં બીજાં મનુષ્યોનાં મનને પણ શાન્તિ આપતા હતા.॥૪૨॥

પોતાના મનની પરમ શાંતિને વિસ્તારતા (તે પ્રહ્‌લાદજી) દુર્જનોના સંગથી દીન બનેલા બીજા મનુષ્યોના મનને પણ '**शमम्**' શાન્તિ આપતા હતા.॥૪૨॥

હે રાજા, તે મહાન ભગવદ્‌ભક્ત, પરમ ભાગ્યવાન, મહાત્મા પુત્ર પ્રહ્‌લાદનો હિરણ્યકશિપુએ દ્રોહ કર્યો હતો.॥૪૩॥

'**अघम्**' દ્રોહ કર્યો હતો.॥૪૩॥

પ્રથમ અધ્યાયને અંતે (૭/૧/૪૭) પૂછવામાં આવેલો પ્રશ્ન અત્યંત આશ્ચર્ય સાથે ફરીથી પૂછે છે– '**देवर्षे इति।**'

યુધિષ્ઠિર બોલ્યા – હે દેવર્ષિ, હે અખંડ વ્રતધારી, આપની પાસેથી અમે એ જાણવા ઈચ્છીએ છીએ કે પોતાના પવિત્ર, શ્રેષ્ઠ પુત્રનો પિતાએ દ્રોહ (કેમ) કર્યો.॥૪૪॥

तव त्वत्तस्तव वाक्यमिति वा। साधवेऽघमदात् साधोर्द्रोहं कृतवानिति यदेतद्वेदितुं ज्ञातुमिच्छामः ॥ ४४ ॥

'**तव**' આપની પાસેથી અથવા આપનું વચન. '**साधवेऽघमदात्**' સત્પુત્રનો જે દ્રોહ કર્યો, આ અમે જાણવા ઈચ્છીએ છીએ. ॥ ૪૪ ॥

पुत्रान् विप्रतिकूलान् स्वान् पितरः पुत्रवत्सलाः।
उपालभन्ते शिक्षार्थं नैवाघमपरो यथा॥
॥ ४५ ॥

પુત્ર ઉપર પ્રેમ રાખનારા પિતાઓ પોતાના પ્રતિકૂળ (દુરાચારી) પુત્રોને શિક્ષા કરવા માટે ઠપકો આપે ખરા, પણ શત્રુની જેમ તેઓનો દ્રોહ તો કરતા જ નથી. ॥ ૪૫ ॥

उपालभन्ते आक्षिपन्ति। अघं तु नैव कुर्वन्ति। अपरः शत्रुरिव ॥ ४५ ॥

'**उपालभन्ते**' ઠપકો આપે છે, પણ દ્રોહ કરતા જ નથી. '**अपरः**' શત્રુની જેમ ॥ ૪૫ ॥

किमुतानुवशान् साधूंस्तादृशान् गुरुदेवतान्।
एतत् कौतूहलं ब्रह्मन्नस्माकं विधम प्रभो।
पितुः पुत्राय यद् द्वेषो मरणाय प्रयोजितः ॥ ४६

તો જેમને માટે પિતા દેવ સમાન છે તેવા અનુકૂળ અને રાગ-દ્વેષથી રહિત એવા પુત્રોને અનુલક્ષીને પિતાઓ દ્રોહ ન કરે એમાં શું કહેવાનું હોય? હે બ્રહ્મન્, પુત્રને અનુલક્ષીને પિતા દ્વારા કરવામાં આવેલો દ્વેષ પુત્રના મરણ માટે પ્રવૃત્ત કરવામાં આવ્યો! હે પ્રભુ, જે અમારા આ આશ્ચર્યને આપ દૂર કરો. ॥ ૪૬ ॥

अनुवशाननुकूलान्। साधून् अरागरोषान्। गुरुः पितैव देवता येषां तानुद्दिश्याघं न कुर्वन्तीति किमु वक्तव्यमित्यर्थः। पुत्राय पुत्रमुद्दिश्य पितुर्द्वेषः पित्रा कृतो द्वेषःपुत्रस्य मरणार्थं प्रयोजितः प्रवर्तित इति यदेतत्कौतूहलं विधमापाकुरु। यद्वा यद्यस्मात् पुत्राय यो द्वेषः स पितुर्मरणाय प्रयोजितोऽत एतत्कौतूहलं विधमेत्यर्थः ॥ ४६ ॥

'**अनुवशान्**' અનુકૂળ (પુત્રો)ને, '**साधून्**' રાગ-દ્વેષરહિત (પુત્રો)ને, '**गुरुः**' ગુરુરૂપ પિતા જ દેવતા છે જેમના, તે પુત્રોને અનુલક્ષીને દ્રોહ ન કરે એમાં શું કહેવાનું હોય, એમ અર્થ છે. '**पुत्राय**' પુત્રને અનુલક્ષીને '**पितुर्द्वेषः**' પિતા દ્વારા કરવામાં આવેલો દ્વેષ પુત્રના મરણ માટે '**प्रयोजितः**' નિમિત્તરૂપ બન્યો, એ જે આશ્ચર્ય છે તે આપ '**विधम**' દૂર કરો. અથવા '**यत्**' જે કારણે પુત્ર માટે જે દ્વેષ છે તે પિતાના મરણ માટે પ્રયુક્ત થયો, આથી આ અચંબો દૂર કરો, એમ અર્થ છે. ॥ ૪૬ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे प्रह्लादचरिते चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

*****

अथ पञ्चमोऽध्यायः

હિરણ્યકશિપુ દ્વારા પ્રહ્‌લાદજીના વધના પ્રયત્નો

पञ्चमे गुरुतोऽधीतं त्यक्त्वा विष्णुस्तुतौ रतम्।
घातयन्द्विपसर्पाद्यैः सुतं दैत्यो न चाशकत्॥ १

ગુરુ (શંડ અને મર્ક) પાસેથી અધ્યયન કરવામાં આવેલી (રાજનીતિ વગેરે)ને છોડીને ભગવાન વિષ્ણુની સ્તુતિમાં મગ્ન રહેતા પુત્ર પ્રહ્‌લાદને હાથી, સર્પો વગેરે દ્વારા મરાવી નાખતો (તે માટે પ્રયત્ન કરતો) દૈત્ય (હિરણ્યકશિપુ) તેને મરાવી શક્યો નહીં, (એ કથા) પાંચમા અધ્યાયમાં છે.॥ ૧ ॥

भगवद्भक्तिरेव विद्वेषे कारणमिति वक्तुमाह—**पौरोहित्यायेत्यादिना**।

ભગવાનની ભક્તિ જ વિદ્વેષ માટેનું કારણ હતી, એમ કહેવા માટે વર્ણન કરે છે— '**પૌરાહિત્યાય**' વગેરે દ્વારા.

नारद उवाच

पौरोहित्याय भगवान् वृतः काव्यः किलासुरैः।
शण्डामर्कौ सुतौ तस्य दैत्यराजगृहान्तिके॥ १

નારદજી બોલ્યા – પ્રસિદ્ધ છે કે અસુરો દ્વારા ભગવાન શુક્રાચાર્ય પુરોહિતકર્મ માટે પસંદ કરવામાં આવ્યા હતા. તેમના બે પુત્રો શંડ અને મર્ક દૈત્યરાજ હિરણ્યકશિપુના ઘરની પાસે (જ રહેતા હતા).॥ ૧ ॥

काव्यः शुक्रः। अतस्तस्य सुतौ दैत्यराजगृहान्तिके न्यवसतामिति शेषः॥ १॥

'**काव्यः**' શુક્રાચાર્ય– આથી તેમના બે પુત્રો દૈત્યરાજના ઘરની પાસે 'રહેતા હતા', એટલું શેષ છે.॥ ૧ ॥

वंशीधरी—शण्डश्च मर्कश्च शण्डामर्कावत्र दीर्घश्छान्दसः।

શંડ અને મર્ક– દેવતા દ્વન્દ્વ સમાસની જેમ છાન્દસ દીર્ઘ ('**शण्डामर्कौ**') થયો છે.

तौ राज्ञा प्रापितं बालं प्रह्लादं नयकोविदम्।
पाठयामासतुः पाठ्यानन्यांश्चासुरबालकान्॥ २

ભણનાર નીતિનિપુણ થાય તે રીતે રાજા દ્વારા મોકલવામાં આવેલા બાળક પ્રહ્‌લાદને અને અન્ય અસુર બાળકોને દંડનીતિ વગેરે પાઠ્યગ્રંથો બંને (શંડ-મર્ક) ભણાવતા હતા.॥ ૨ ॥

पाठ्यान्दण्डनीत्यादीन्। पाठ्यानसुरबालकानिति वाऽन्वयः॥ २॥

'**पाठ्यान्**' પાઠ્યગ્રંથોને– પઠન કરાવવા યોગ્ય દંડનીતિ વગેરે વિષયોનું (અધ્યાપન કરાવતા હતા.), અથવા '**पाठ्यान्**' પઠન કરાવવા યોગ્ય અસુર બાળકોને, એમ સંબંધ છે.॥ ૨ ॥

यत्तत्र गुरुणा प्रोक्तं शुश्रुवेऽनुपपाठ च।
न साधु मनसा मेने स्वपरासद्ग्रहाश्रयम्॥ ३

ત્યાં (ગુરુ-ગૃહે) ગુરુ દ્વારા જે ભણાવવામાં આવતું તે પાઠ પ્રહ્લાદજી સાંભળી લેતા હતા અને પછી (તે જ પ્રમાણે) બોલી જતા હતા. પરંતુ પોતાના અને પરાયાના મિથ્યા આગ્રહના આશ્રયરૂપ (લૌકિક જ્ઞાનને) તેઓ મનથી શ્રેષ્ઠ માનતા નહીં.॥ ૩॥

अनु श्रवणानन्तरं तथैव पपाठ च किंतु तत्साधु न मेने। तत्र हेतुः—स्वः पर इत्यसद्ग्रहो मिथ्याभिनिवेश एवाश्रयो यस्य तत्॥ ३॥

શ્રવણ કર્યા પછી તે જ પ્રમાણે બોલી જતા હતા, '**च**' પરંતુ તેને શ્રેષ્ઠ માનતા ન હતા. તે માટેનું કારણ— પોતાનું અને પારકું એવો '**असद्-ग्रहः**' મિથ્યા આગ્રહ એ જ જેનો આધાર છે તેવા તે (ભૌતિક) જ્ઞાનને॥ ૩॥

एकदाऽसुरराट् पुत्रमङ्कमारोप्य पाण्डव।
पप्रच्छ कथ्यतां वत्स मन्यते साधु यद्भवान्॥ ४

॥ ४॥

હે પાંડવ (યુધિષ્ઠિર), એક દિવસ અસુરરાજ હિરણ્યકશિપુએ પુત્ર પ્રહ્લાદને ખોળામાં બેસાડીને પૂછ્યું, 'બેટા, તમે જે શ્રેષ્ઠ માનતા હો તે (મને) કહો.'॥ ૪॥ ૪॥

प्रह्लाद उवाच

तत्साधु मन्येऽसुरवर्य देहिनां
सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात्।
हित्वाऽऽत्मपातं गृहमन्धकूपं*
वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत॥ ५

પ્રહ્લાદજી બોલ્યા – હે અસુરશ્રેષ્ઠ, 'હું અને મારું' એવા મિથ્યા આગ્રહને કારણે સદા અત્યંત ઉદ્વિગ્ન બુદ્ધિવાળા મનુષ્યોએ પોતાના અધ:પતનના કારણ એવા આંધળા કૂવારૂપ ઘરને છોડીને વનમાં જઈને શ્રીહરિનો આશ્રય કરવો જોઈએ, તેને હું શ્રેષ્ઠ માનું છું.॥ ૫॥

हे असुरवर्य, असद्ग्रहादहंममेति मिथ्याभिनिवेशाद्धेतोः सम्यगुद्विग्ना विषण्णा धीर्येषां ते। वनं गतः सन्हरिमाश्रयेतेति यत्तदेवाहं साधु मन्ये। कथंभूतं गृहम्। आत्मपातमात्मनोऽधःपातनिमित्तम्। कुतः। अन्धकूपवन्मोहावहम्॥ ५॥

'**असत्-ग्रहात्**' 'હું અને મારું' એવા મિથ્યા આગ્રહને કારણે અત્યંત '**उद्विग्ना**' ઉદ્વેગવાળી, વિષાદવાળી બુદ્ધિ છે જેમની તેઓએ, વનમાં જઈને શ્રીહરિનો આશ્રય કરવો જોઈએ, એ જ વસ્તુને હું શ્રેષ્ઠ માનું છું. કેવા ઘરને? '**आत्मपातम्**' પોતાના અધ:પતનના કારણરૂપ ઘરને (છોડીને), કેમ?* '**अन्धकूपवत्**' આંધળા કૂવાની જેમ મોહ ઉપજાવનાર ઘરને॥ ૫॥

* જેનું મુખ ઢંકાયેલું હોય– ઘાસ વગેરેથી ઢંકાઈ ગયેલા અથવા ઢાંકવામાં આવેલા કૂવોને આંધળો કૂવો કહે છે.

नारद उवाच

श्रुत्वा पुत्रगिरो दैत्यः परपक्षसमाहिताः।
जहास बुद्धिर्बालानां भिद्यते परबुद्धिभिः॥ ६

परपक्षे विष्णौ समाहिताः परिनिष्ठिताः। हासे हेतुः—**बुद्धिरिति**॥ ६॥

सम्यग्विधार्यतां बालो गुरुगेहे द्विजातिभिः।
विष्णुपक्षैः प्रतिच्छन्नैर्न भिद्येतास्य धीर्यथा॥ ७

विष्णुपक्षैर्भागवतैर्हेतुभूतैः। ननु त्वद्गृहे कुतस्तेषां प्रवेशः। सत्यम्, तथापि प्रतिच्छन्नैर्वेषान्तरेण छन्नैः॥ ७॥

गृहमानीतमाहूय प्रह्लादं दैत्ययाजकाः।
प्रशस्य श्लक्ष्णया वाचा समपृच्छन्त सामभिः॥ ८

वत्स प्रह्लाद भद्रं ते सत्यं कथय मा मृषा।
बालानति कुतस्तुभ्यमेष बुद्धिविपर्ययः॥ ९

बुद्धिभेदः परकृत उताहो ते स्वतोऽभवत्।
भण्यतां श्रोतुकामानां गुरूणां कुलनन्दन॥ १०

दैत्यैर्गृहमानीतम्॥ ८॥

बालान्सर्वानति अतिक्रम्य। तुभ्यं तव ॥ ९॥ १०॥

નારદજી બોલ્યા – શત્રુના પક્ષમાં સ્થિર થયેલી પુત્રની વાણી સાંભળી દૈત્ય હિરણ્યકશિપુ હસ્યો (અને બોલ્યો), 'બાળકોની બુદ્ધિ પ્રતિપક્ષીઓની બુદ્ધિ દ્વારા ભરમાવવામાં આવે છે.'॥ ૬॥

'**परपक्षे**' શત્રુપક્ષ વિષ્ણુમાં '**समाहिताः**' એકનિષ્ઠ થયેલી વાણી– હસવાનું કારણ– '**बुद्धिः इति।**'॥ ૬॥

આ બાળક ગુરુના ઘરમાં જ સારી રીતે રક્ષાય, જેથી ગુપ્તવેશવાળા વિષ્ણુપક્ષના બ્રાહ્મણો દ્વારા આની બુદ્ધિ (ભિન્ન) વિપરીત ન થાય.॥ ૭॥

'**विष्णुपक्षैः**' વિષ્ણુના પક્ષના ભગવદ્‌ભક્તો કારણરૂપ હોવાથી– આક્ષેપ કરવામાં આવ્યો છે કે તમારા ઘરમાં તેમનો (શત્રુપક્ષવાળા બ્રાહ્મણોનો) પ્રવેશ કેવી રીતે થયો! (તે માટે ઉત્તર આપે છે– એ) ખરું, તેમ છતાં '**प्रतिच्छन्नैः**' બીજા ગુપ્ત વેશવાળા બ્રાહ્મણો દ્વારા॥ ૭॥

દૈત્યોના પુરોહિતો ઘરમાં લાવેલા પ્રહ્‌લાદને બોલાવીને, મૃદુ વાણીથી પ્રશંસા કરી સુંદર વચનોથી પૂછવા લાગ્યાઃ॥ ૮॥

'પુત્ર પ્રહ્‌લાદ, તારું કલ્યાણ થાઓ! સાચું કહેજે, જુઠ્ઠું બોલીશ નહીં. (સર્વ) બાળકોની ઉપરવટ જઈને તારો આ ઊલટો બુદ્ધિભ્રમ કેવી રીતે થયો?॥ ૯॥

હે કુળનંદન, આશ્ચર્ય છે કે તારો બુદ્ધિભ્રમ અન્યને કારણે થયો છે કે તારી જાતે જ થયો છે? તે સાંભળવા ઈચ્છતા અમને ગુરુજનોને તું જણાવ.'॥ ૧૦॥

દૈત્યો દ્વારા ઘરમાં લાવેલા બાળકને॥ ૮॥

સર્વ બાળકોને (તો થયો નહીં; તેમની) '**अति**' ઉપરવટ જઈને થયેલો, '**तुभ्यम्**' તારો બુદ્ધિભ્રમ॥ ૯॥ ૧૦॥

अहो मायामोहिता भवन्तो मामाक्षिपन्तीत्याशयेन तावदाह—

प्रह्लाद उवाच

स्वः परश्चेत्यसद्ग्राहः पुंसां यन्मायया कृतः।
विमोहितधियां दृष्टस्तस्मै भगवते नमः॥ ११

स्वः परश्चेति मिथ्याभिनिवेशो यदीयया माययैव कृतो न तु वास्तवः। अत एव तदीयया मायया विमोहितबुद्धीनां भवतामेव दृष्टो न तु मम। तस्मै अचिन्त्यमायेश्वराय नमः॥ ११॥

अहो किमेतत्प्रलपसि तव बुद्धिभेदो यतो जातस्तं कथयेत्याक्षिप्तः संस्तत्प्रसादादेवेत्युत्तरमाह—**स इति** त्रिभिः।

स यदानुव्रतः पुंसां पशुबुद्धिर्विभिद्यते।
अन्य एष तथान्योऽहमिति भेदगतासती॥ १२

स भगवान्यदाऽनुव्रतोऽनुकूलो भवति, तदा पशूनामविवेकिनामिव बुद्धिर्भेदगता असती मिथ्या संसारविषया विभिद्यते अभिन्नात्मनिष्ठा भवति॥ १२॥

भेदस्यासत्त्वं दर्शयन्नाह—

આશ્ચર્ય છે કે માયાથી મોહિત થયેલા તમે મારી ઉપર આક્ષેપ કરો છો, એ આશયથી અત્યારે કહે છે—

પ્રહ્‌લાદજી બોલ્યા – જેમની માયાથી મનુષ્યોને પોતાનું અને પારકું, એવો મિથ્યા દુરાગ્રહ થાય છે અને જેમની માયાથી અત્યંત મોહિત થયેલી બુદ્ધિવાળા મનુષ્યોમાં જ તે મિથ્યા દુરાગ્રહ દેખાય છે, તે (અચિન્ત્ય માયાના સ્વામી) ભગવાનને નમસ્કાર હો.॥ ૧૧॥

પોતાનું અને પારકું, એવો મિથ્યા દુરાગ્રહ જેમની માયાને કારણે જ થયો છે, પરંતુ તે સત્ય નથી. આથી જ તેમની માયાથી અત્યંત મોહિત થયેલી બુદ્ધિવાળા એવા તમારામાં જ દુરાગ્રહ દેખાય છે, મારામાં નહીં. તે અચિન્ત્ય માયાના સ્વામીને નમસ્કાર હો.॥ ૧૧॥

'અરે, આ શું બકે છે? જેને કારણે તારી બુદ્ધિ બદલાઈ છે, તેનું કારણ કહે.'– એમ આક્ષેપ કરવામાં આવેલા પ્રહ્‌લાદજી ત્રણ શ્લોકો વડે ઉત્તર આપે છે, કે કેવળ તે ભગવાનની કૃપાથી જ બુદ્ધિ બદલાય છે– **'सः इति।'**

તે ભગવાન જ્યારે અનુકૂળ બને છે ત્યારે (અવિવેકી) પુરુષોની 'આ બીજો અને આ હું' એવી ભેદભાવવાળી મિથ્યા પશુબુદ્ધિ પણ નષ્ટ થઈ જાય છે.॥ ૧૨॥

'**सः**' તે ભગવાન જ્યારે '**अनुव्रतः**' અનુકૂળ બને છે ત્યારે '**पशूनाम्**' અવિવેકીઓની હોય તેવી '**भेदगता**' ભેદભાવવાળી '**असती**' મિથ્યા, સંસારના વિષયવાળી બુદ્ધિ પણ નષ્ટ થઈ જાય છે અને (ભગવાનની કૃપાથી બદલાઈને ભેદભાવ-રહિત) આત્મનિષ્ઠ બુદ્ધિ થાય છે.॥ ૧૨॥

ભેદનું અસ્તિત્વ જ નથી, એમ દર્શાવતાં કહે છે—

स एष आत्मा स्वपरेत्यबुद्धिभि-
र्दुरत्ययानुक्रमणो निरूप्यते।
मुह्यन्ति यद्वर्त्मनि वेदवादिनो
ब्रह्मादयो ह्येष भिनत्ति मे मतिम्॥ १३

જેમનું અનુસરણ દુર્ગમ છે તથા જેમના (પ્રાપ્તિના) માર્ગમાં (જિજ્ઞાસા કરવામાં) બ્રહ્માદિ વેદપ્રવર્તકો પણ મોહ પામે છે તથા આ (સર્વાન્તર્યામી) પરમાત્માનું, પોતાના અને પારકા– એમ ભેદ કરીને અવિવેકીઓ દ્વારા નિરૂપણ કરવામાં આવે છે, તે આ પરમાત્મા જ (સર્વ પ્રાણીઓની બુદ્ધિના નિયંતા હોવાથી) મારી બુદ્ધિને પરિવર્તિત કરે છે.॥૧૩॥

स एष परमात्मैव स्वः पर इति चाविवेकिभिर्निरूप्यते। युक्तं चैतत्। यतो यस्य वर्त्मनि जिज्ञासायां ब्रह्मादयोऽपि मुह्यन्ति। तत्र हेतुः—दुरत्ययं दुर्घटमनुक्रमणमनु-चरितमनुवर्णनं वा यस्य॥ १३॥

'**सः एषः**' તે આ પરમાત્મા જ, 'પોતાના અને પારકા' એમ ભેદ કરીને અજ્ઞાનીઓ દ્વારા નિરૂપિત કરવામાં આવે છે અને તે યોગ્ય છે, કારણ કે જેમની (પ્રાપ્તિના) '**वर्त्मनि**' માર્ગમાં– જિજ્ઞાસા કરવામાં બ્રહ્માદિ પણ મોહ પામે છે. તે માટેનું કારણ— '**दुरत्ययम्**' દુર્ગમ છે '**अनुक्रमणम्**' અનુસરણ અથવા ચરિત્રાનુવર્ણન જેમનું॥૧૩॥

ननु निर्विकारस्य कथं मतिभेदकत्वं तत्राह—**यथेति**।

શંકા કરવામાં આવી છે કે નિર્વિકાર ભગવાન બુદ્ધિમાં પરિર્વતન શા માટે કરે? તે માટે કહે છે— '**यथा इति**।'

यथा भ्राम्यत्ययो ब्रह्मन् स्वयमाकर्षसन्निधौ।
तथा मे भिद्यते चेतश्चक्रपाणेर्यदृच्छया॥ १४

હે બ્રહ્મન્, લોહચુંબકની સન્નિધિમાં જેમ લોખંડ સ્વયં જ ખેંચાય છે, તેમ મારું ચિત્ત ચક્રપાણિ ભગવાન શ્રીહરિના સાન્નિધ્યમાં આપોઆપ જ ઢળી પડે છે, બીજાથી જુદું પડી જાય છે.॥૧૪॥

यथा अयो लोहमाकर्षस्यायस्कान्तस्य समीपे स्वयमेव भ्रमति तथा मे चेतश्चक्रपाणेः संनिधौ।

જેમ '**अयः**' લોખંડ '**आकर्षस्य**' લોહચુંબકની સમીપમાં પોતાની જાતે જ ખેંચાય છે, તેમ મારું ચિત્ત ચક્રપાણિ ભગવાનની સંનિધિમાં (ઢળી પડે છે).

तव कुतो जातस्तत्संनिधिस्तत्राह—**यदृच्छयेति**।

તે ભગવાનનું સાન્નિધ્ય તને કેવી રીતે મળ્યું? તે માટે કહે છે— '**यदृच्छया इति**।'

कस्य तपोदानादेः फलमेतदिति न ज्ञायत इत्यर्थः॥ १४॥

કયાં કયાં તપ, દાન વગેરેનું આ ફળ છે, એ ખબર નથી, એમ અર્થ છે.॥૧૪॥

नारद उवाच

एतावद्ब्राह्मणायोक्त्वा विरराम महामतिः।
तं निर्भर्त्स्याथ कुपितः स दीनो राजसेवकः॥ १५

નારદજી બોલ્યા – (દૈત્યોના પુરોહિત તે) બ્રાહ્મણને આટલું કહી મહાજ્ઞાની પ્રહ્‌લાદજી મૌન થઈ ગયા એટલે ક્રોધે ભરાયેલો, પરાધીન એવો તે રાજાનો સેવક તેમનો તિરસ્કાર કરીને (બોલ્યો).॥ ૧૫॥

राजसेवक उवाचेति शेषः॥ १५॥

રાજાનો સેવક 'બોલ્યો', એટલું શેષ છે. (તે ઉમેરવું.)॥ ૧૫॥

आनीयतामरे वेत्रमस्माकमयशस्करः।
कुलाङ्गारस्य दुर्बुद्धेश्चतुर्थोऽस्योदितो दमः॥ १६

અરે, અમારી છડી લાવો. (આ તો) અપયશ આપનારો છે! આ દુષ્ટબુદ્ધિ કુલાંગાર માટે તો શાસ્ત્રમાં ચોથો ઉપાય (દંડ) જ કહેવામાં આવ્યો છે!॥ ૧૬॥

अरे वेत्रं कशा आनीयताम्। सामदानभेद-दण्डानां मध्ये चतुर्थो दमो दण्डोऽस्य दुर्बुद्धेरुदित उक्तः शास्त्रेषु। दुर्बुद्धित्वे हेतुः—कुलाङ्गारस्य कुलस्याङ्गारवन्नाशहेतोः॥ १६॥

અરે! **'वेत्रम्'** છડી લાવો. સામ, દાન, ભેદ અને દંડ– એમાંથી ચોથો ઉપાય **'दमः'** દંડ આ દુષ્ટબુદ્ધિ માટે શાસ્ત્રોમાં કહેવામાં આવ્યો છે. દુષ્ટબુદ્ધિ હોવા માટેનું કારણ— **'कुलाङ्गारस्य'** કુળના અંગારા જેવો, નાશના કારણરૂપ હોવાથી॥ ૧૬॥

तत्कुतस्तत्राह—

તે કેવી રીતે કુળનાશક છે, તે કહે છે—

दैतेयचन्दनवने जातोऽयं कण्टकद्रुमः।
यन्मूलोन्मूलपरशोर्विष्णोर्नालायितोऽर्भकः॥ १७

દૈત્યોરૂપી ચંદનવનમાં આ કાંટાના ઝાડ જેવો થયો છે, જેના (ચંદનવનના) મૂળને ઉખાડી નાખવામાં (આ) બાળક કુહાડારૂપી વિષ્ણુનો હાથો છે!॥ ૧૭॥

दैतेया एव चन्दनद्रुमास्तेषां वनेऽयं कण्टकद्रुमतुल्यो जातः। तदेवाह—यस्य दैतेयचन्दनवनस्य मूलोन्मूलने परशुस्थानीयस्य विष्णोरयमर्भक एव नालायितो नालमिवाचरत्। यथा परशोश्छेदकत्वे बब्बूलादिद्रुमनिर्मितो दण्डः सहकारी तं विना छेदनासंभवात्तथायं विष्णोर्दैत्यमूलोच्छेदे हेतुर्जात इत्यर्थः॥ १७॥

દૈત્યો જ ચંદનવૃક્ષો– તેમના વનમાં આ કાંટાના ઝાડ જેવો થયો છે! તે જ કહે છે– જે દૈત્યરૂપી ચંદનવૃક્ષનું મૂળ ઉખાડી નાખવામાં કુહાડાને સ્થાને રહેલા વિષ્ણુનો હાથો બનેલો આ બાળક હાથાની જેમ વર્તે છે. જેમ કુહાડાને વૃક્ષાદિ કાપવા માટે બાવળ વગેરેમાંથી બનાવેલો હાથો ઉપયોગી છે, તે હાથા વિના કાપવું અસંભવ છે, તેમ દૈત્યોનું મૂળ કાપવામાં આ (દૈત્ય) બાળક વિષ્ણુનો હાથો બન્યો છે, એમ અર્થ છે.॥ ૧૭॥

इति तं विविधोपायैर्भीषयंस्तर्जनादिभिः।
प्रह्लादं ग्राहयामास त्रिवर्गस्योपपादनम्॥ १८

આ રીતે ધાકધમકી વગેરે જુદા જુદા અનેક ઉપાયોથી તે પ્રહ્‌લાદજીને ડરાવતા તે બ્રાહ્મણ પુરોહિતે (ધર્મ, અર્થ અને કામ– એ) ત્રણ વર્ગનું પ્રતિપાદન કરનારું શાસ્ત્ર ભણાવવા માંડ્યું.॥ ૧૮ ॥

इति तं प्रह्लादं भीषयन्धर्मार्थकामवर्गस्य प्रतिपादकं शास्त्रमध्यापयामास॥ १८॥

આ રીતે તે પ્રહ્‌લાદજીને ડરાવતા (તે બ્રાહ્મણ પુરોહિતે) ધર્મ, અર્થ અને કામ– એ ત્રિવર્ગનું પ્રતિપાદન કરનારું શાસ્ત્ર ભણાવવા માંડ્યું.॥ ૧૮ ॥

तत एनं गुरुर्ज्ञात्वा ज्ञातज्ञेयचतुष्टयम्।
दैत्येन्द्रं दर्शयामास मातृमृष्टमलंकृतम्॥ १९

ત્યાર પછી જાણવા યોગ્ય (સામાદિ) ચારેય ઉપાયોને એણે જાણી લીધા છે એમ સમજીને, માતા દ્વારા સ્નાન કરાયેલા અને (તિલકાદિથી) અલંકૃત કરાયેલા (પ્રહ્‌લાદજી)ને ગુરુજીએ દૈત્યેન્દ્રની પાસે લઈ ગયા.॥ ૧૯ ॥

ज्ञातं ज्ञेयमुपायानां चतुष्टयं सामदानादि येन तं दैत्येन्द्रं प्रति। मात्रा मृष्टमुद्वर्त्य स्नापितम्। अलंकृतं भूषणतिलकादिभिः॥ १९॥

જાણવા યોગ્ય (સામાદિ) ચારેય ઉપાયોને જેણે જાણી લીધા છે તે પ્રહ્‌લાદજીને દૈત્યેન્દ્ર પાસે– માતા દ્વારા **'मृष्टम्'** વિલેપન-સ્નાન કરાયેલાને અને **'अलंकृतम्'** તિલકાદિથી અલંકૃત કરાયેલાને॥ ૧૯ ॥

पादयोः पतितं बालं प्रतिनन्द्याशिषासुरः।
परिष्वज्य चिरं दोर्भ्यां परमामाप निर्वृतिम्॥ २० ॥ २०॥

પગમાં પડેલા બાળક (પ્રહ્‌લાદ)ને આશીર્વાદથી વધાવીને અસુર (હિરણ્યકશિપુ) બંને હાથે ઘણી વાર સુધી ભેટીને પરમ શાંતિ પામ્યો.॥ ૨૦ ॥ ૨૦ ॥

आरोप्याङ्कमवघ्राय मूर्धन्यश्रुकलाम्बुभिः।
आसिञ्चन् विकसद्वक्त्रमिदमाह युधिष्ठिर॥ २१ ॥ २१॥

હે યુધિષ્ઠિર, ખોળામાં બેસાડી મસ્તક સૂંઘીને હર્ષાશ્રુથી ભીંજવતો તે અસુર પ્રફુલ્લ મુખવાળા પ્રહ્‌લાદને આ પ્રમાણે કહેવા લાગ્યો. ॥ ૨૧ ॥ ૨૧ ॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

प्रह्लादानूच्यतां तात स्वधीतं किञ्चिदुत्तमम्।
कालेनैतावताऽऽयुष्मन् यदशिक्षद् गुरोर्भवान्॥ २२ ॥ २२॥

હિરણ્યકશિપુ બોલ્યો – હે આયુષ્માન પુત્ર પ્રહ્‌લાદ, આટલા સમય સુધી (તેં) ગુરુ પાસેથી અધ્યયન કર્યું, તેમાં સારી રીતે અધ્યયન કરેલું જે કાંઈ શ્રેષ્ઠ હોય તે બોલ.॥ ૨૨ ॥ ૨૨ ॥

अन्वि.—गुरोर्हिरण्यकशिपुमते शुक्रात्मजात्। प्रह्लादमते नारदात्।

ગુરુ પાસેથી એટલે હિરણ્યકશિપુના મતે ગુરુ શુક્રાચાર્યના પુત્ર પાસેથી અને પ્રહ્‌લાદના મતે નારદજી પાસેથી.

प्रह्लाद उवाच

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥ २३

પ્રહ્‌લાદજી બોલ્યા – ભગવાન વિષ્ણુ(નાં નામ, રૂપ, ગુણ અને લીલા)નું શ્રવણ, (તેમનું) કીર્તન, (તેમનું) સ્મરણ, (તેમના) ચરણોની સેવા, (તેમનું) પૂજન-અર્ચન, વંદન (વાણીથી નામ સહિત નમસ્કારનું ઉચ્ચારણ અને કાયાથી દંડવત્પ્રણામ), (પોતાનામાં તેમના) દાસ હોવાની ભાવના, (તેમના મિત્ર હોવાની ભાવનાથી) સખ્ય અને (દારા, આગાર, પુત્ર, વિત્ત તથા દેહાદિ સર્વનું ભગવાન પ્રત્યે સંપૂર્ણ સમર્પણ અર્થાત્) આત્મનિવેદન,॥ ૨૩॥

पादसेवनं परिचर्या। अर्चनं पूजा। दास्यं कर्मार्पणम्। सख्यं तद्विश्वासादि। आत्मनिवेदनं स्वशरीरसमर्पणम्। यथा विक्रीतस्य गवाश्वादेर्भरणपालनादिचिन्ता न क्रियते तथा देहं तस्मै समर्प्य तच्चिन्ता–वर्जनमित्यर्थः॥ २३॥

‘**पादसेवनम्**’ ભગવાનના ચરણોની સેવા, ‘**अर्चनम्**’ પૂજા, ‘**दास्यम्**’ કર્મો ભગવાનને અર્પણ કરવાં, ‘**सख्यम्**’ મિત્રની ભાવનાથી દૃઢ વિશ્વાસ રાખવો વગેરે, ‘**आत्मनिवेदनम्**’ પોતાના શરીરનું સમર્પણ– જેમ વેચાયેલાં ગાય, ઘોડા વગેરેના ભરણ-પોષણની ચિંતા કરવામાં આવતી નથી, તેમ દેહ તે ભગવાનને સમર્પીને તેની ચિંતા છોડી દેવી, એમ અર્થ છે.॥ ૨૩॥

इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥ २४

આ પ્રમાણે જેનાં નવ લક્ષણો છે તે ભક્તિ મનુષ્ય દ્વારા જો સાક્ષાત્ ભગવાન વિષ્ણુ પ્રતિ સમર્પણ ભાવથી યુક્ત હોય તે રીતે કરવામાં આવે, તેને હું શ્રેષ્ઠ અધ્યયન માનું છું.॥ ૨૪॥

इति नवलक्षणानि यस्याः सा अधीतेन चेद्भगवति विष्णौ भक्तिः क्रियते सा चार्पितैव सती यदि क्रियेत न तु कृता सती पश्चादर्प्येत तदुत्तममधीतं मन्ये। न त्वस्माद्गुरोरधीतं शिक्षितं वा तथाविधं किंचिदस्तीति भावः॥ २४॥

આ પ્રમાણે જેનાં નવ લક્ષણો છે તે ભક્તિ ગુરુ પાસેથી ભણેલા જ્ઞાન દ્વારા જો ભગવાન વિષ્ણુ પ્રત્યે કરવામાં આવે અને સમર્પણ સાથે જ તે ભક્તિ કરવામાં આવે— એમ નહીં કે પ્રથમ ભક્તિ કરવામાં આવે અને પછી તેને સમર્પિત કરવામાં આવે, તેને હું શ્રેષ્ઠ અધ્યયન માનું છું. અમારા ગુરુજી પાસેથી અધ્યયન કરેલું કે શિક્ષણ અપાયેલું એવા પ્રકારનું તો કંઈ છે નહીં, એવો ભાવ છે.॥ ૨૪॥

वंशीधरी—अत्र नवलक्षणसमुच्चयोऽनावश्यकः। एकेनैवाङ्गेन साध्याव्यभिचारश्रवणात्। तथा हि—

विष्णोस्तु श्रवणे परीक्षिदभवद्
वैयासकिः कीर्त्तने।
प्रह्लादः स्मरणे तदङ्घ्रिभजने
लक्ष्मीः पृथुः पूजने।
अक्रूरस्त्वभिवन्दनेऽथ हनुमान्
दास्येऽथ सख्येऽर्जुनः।
सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत्
कृष्णाप्तिरेकैकतः॥

इति प्रबोधचन्द्रोदयटीकायाम्। क्वचिद-न्याङ्गमिश्रणं तु तथापि भिन्नश्रद्धारुचित्वात्। ततो नवलक्षणशब्देन सामान्योक्त्या तन्मात्रानुष्ठानं विधीयत इति ज्ञेयम्।'

અહીં નવ લક્ષણોનો સંયોગ (સરવાળો) આવશ્યક નથી, એક જ અંગથી (પરમાત્મપ્રાપ્તિ) અચૂક રીતે સાધી શકાય છે, એમ શ્રુતિ છે. જેમ કે, શ્રીવિષ્ણુની શ્રવણભક્તિથી પરીક્ષિતે કૃષ્ણપ્રાપ્તિ કરી. શ્રીશુકદેવજીએ કીર્તનથી, પ્રહ્‌લાદજીએ સ્મરણથી, તેમની ચરણસેવાથી લક્ષ્મીજીએ, પૂજનથી રાજા પૃથુએ, વંદનભક્તિથી અક્રૂરજીએ, દાસ્યથી કપિપતિ શ્રીહનુમાનજીએ, વળી સખ્યથી અર્જુને અને સર્વસ્વનું આત્મનિવેદન કરવા દ્વારા રાજા બલિએ કૃષ્ણપ્રાપ્તિ કરી. ભક્તિના માત્ર એક જ અંગથી કૃષ્ણપ્રાપ્તિ થઈ.

આ પ્રમાણે પ્રબોધચન્દ્રોદય ટીકામાં છે. ક્યારેક ભક્તિના બીજા અંગનું મિશ્રણ જુદી શ્રદ્ધા અને રુચિને કારણે થાય છે, તેથી નવ લક્ષણવાળી ભક્તિ– એમ શબ્દ દ્વારા સામાન્ય કથન કરેલું છે. તે જ કથનથી માત્ર તે નવ ભક્તિના સેવન વિષે અહીં વિધાન કરેલું છે, એમ સમજવું. (અર્થાત્ નવ કરતાં પણ વધારે ભક્તિના પ્રકારો હોઈ શકે.)

निशम्यैतत्सुतवचो हिरण्यकशिपुस्तदा।
गुरुपुत्रमुवाचेदं रुषा प्रस्फुरिताधरः॥ २५
॥ २५॥

પુત્રનું આ વચન સાંભળીને, ક્રોધથી જેનો હોઠ ધ્રૂજતો હતો તેવો હિરણ્યકશિપુ તે સમયે ગુરુપુત્રને આ પ્રમાણે કહેવા લાગ્યો.॥ ૨૫॥ ૨૫॥

ब्रह्मबन्धो किमेतत्ते विपक्षं श्रयताऽसता।
असारं ग्राहितो बालो मामनादृत्य दुर्मते॥ २६

અરે ઓ દુષ્ટબુદ્ધિ, નીચ બ્રાહ્મણ, આ તેં શું કર્યું? મારો અનાદર કરીને શત્રુનો આશ્રય કરનાર દુષ્ટ એવા તારા દ્વારા બાળકને માટે નિસ્સાર (એવું વિષ્ણુભજન) ગ્રહણ કરાવવામાં આવ્યું?॥ ૨૬॥

न विद्यते सारं यत्र तदसारम्। न विद्यते सारं यस्मादिति वास्तवोऽर्थः॥ २६॥

જેમાં સાર નથી તે અસાર. અહીં વાસ્તવિક અર્થ એ છે કે જે વિષ્ણુભક્તિથી ભિન્ન કશામાં સાર નથી તેવું સર્વસારરૂપ વિષ્ણુભજન.॥ ૨૬॥

मित्रत्वेन प्रवर्तमानस्यापि तव विरोधाचरणं नासंभावितमित्याह—**सन्ति हीति**।

મિત્ર તરીકે રહેતા હોવા છતાં પણ તારું વિરુદ્ધ આચરણ અસંભવિત નથી, એમ કહે છે– **'सन्ति हि इति।'**

सन्ति ह्यसाधवो लोके दुर्मैत्राश्छद्मवेषिणः।
तेषामुदेत्यघं काले रोगः पातकिनामिव॥ २७

दुष्टं मैत्रं मित्रत्वं येषां ते दुर्मैत्राः। रोग इति।

'ब्रह्महा क्षयरोगी स्यात्सुरापः श्यावदन्तकः।
स्वर्णहारी तु कुनखी दुश्चर्मा गुरुतल्पगः॥'

इत्यादि स्मृत्युक्तपातकिनां काले नरकभोगानन्तरं रोगो यथोदेति तथा तेषां दुर्जनानां सुजनत्वेन वर्तमानानामप्यघं विद्वेषादिकमुदेतीत्यर्थः ॥ २७॥

સંસારમાં દુષ્ટ મૈત્રીવાળા, કપટવેશધારી દુર્જનો હોય છે ખરા! પણ જેમ સમય આવતાં પાપીઓનું પાપ રોગરૂપે પ્રકટ થાય છે, તેમ દુષ્ટ મૈત્રીવાળાઓનું વિદ્વેષાદિ આચરણ પ્રકટ થાય છે જ!॥ ૨૭॥

જેમની દુષ્ટ મિત્રતા છે તેઓ '**दुर्मैत्राः**' છે. '**रोगः इति।**' 'બ્રહ્મઘાતી ક્ષયરોગી થાય છે. સુરા પીનાર ભૂખરા (કથ્થાઈ) દાંતવાળો, સુવર્ણનો ચોર રોગિષ્ઠ નખવાળો અને ગુરુપત્નીગામી ચર્મરોગી બને છે.' (મનુસ્મૃતિ ૧૧-૪૯ માં આ જ અર્થનો શ્લોક છે.) વગેરે સ્મૃતિમાં કહેવામાં આવેલા પાપીઓને '**काले**' સમય આવતાં નરક ભોગવ્યા પછી જેમ રોગ પ્રકટ થાય છે, તેમ દુર્જનોનું સજ્જન તરીકે રહેતા હોવા છતાં પણ '**अघम्**' વિદ્વેષાદિ (આચરણ) પ્રકટ થાય છે જ, એમ અર્થ છે.॥ ૨૭॥

गुरुपुत्र उवाच

न मत्प्रणीतं न परप्रणीतं
सुतो वदत्येष तवेन्द्रशत्रो।
नैसर्गिकीयं मतिरस्य राजन्
नियच्छ मन्युं कददाः स्म मा नः॥ २८

मत्प्रणीतं मया पाठितम्। नोऽस्मभ्यं कत् कुत्सितं दोषं मा स्म अदाः। अडागम आर्षः। मयि दोषारोपं मा कृथा इत्यर्थः। इन्द्रशत्रो इति न हि ब्राह्मणेषु तव कोप उचित इति भावः॥ २८॥

ગુરુપુત્ર બોલ્યો – આ તમારો દીકરો (જે) બોલે છે, તે નથી મારા દ્વારા શીખવવામાં આવ્યું કે નથી અન્ય દ્વારા! હે રાજા, આ બાળકની આવી બુદ્ધિ સ્વાભાવિક (જન્મજાત) છે. માટે હે ઈન્દ્રશત્રુ, તમારા ક્રોધને કાબૂમાં રાખો અને અમને દોષ ન દો.॥ ૨૮॥

'**मत्प्रणीतम्**' મારા દ્વારા શીખવવામાં આવેલું– '**नः**' અમને '**कत्**' કુત્સિત, દોષ ન દો. અડાગમ આર્ષ છે. **अट्+आगम अ** નો લોપ થવો જોઈએ. **अदाः** રૂપ આર્ષ છે. મારા ઉપર દોષારોપણ ન કરો, એમ અર્થ છે. 'ઈન્દ્રશત્રુ' (એમ સંબોધનથી) બ્રાહ્મણો ઉપર તમારો કોપ ઉચિત નથી, એવો ભાવ છે.॥ ૨૮॥

नारद उवाच

गुरुणैवं प्रतिप्रोक्तो भूय आहासुरः सुतम्।
न चेद्‌गुरुमुखीयं ते कुतोऽभद्रासती मतिः॥ २९

गुरुमुखी गुरुवाक्यजनिता। हे अभद्र ॥ २९ ॥

आस्तामियं वार्ता भवादृशानां विषयासक्तानामत्रानधिकारादित्याशयेनाह— **मतिरिति**।

प्रह्राद उवाच

मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा
मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानाम्।
अदान्तगोभिर्विशतां तमिस्रं
पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम्॥ ३०

परतो गुरोः स्वतो वा मिथो वाऽन्योन्यतो नाभिपद्येत न संपद्येत। केषाम्। गृहव्रतानां गृह एव व्रतं संकल्प इति कृत्यचिन्ता येषाम्। अत एवादान्तैरनुपरतैः गोभिरिन्द्रियैर्हेतु-भूतैस्तमिस्रं संसारं विशताम्। तत्र चर्वितस्यैव चर्वणं येषाम्॥ ३०॥

ननु श्रीकृष्णस्य परमानन्दस्वरूपत्वात्तेऽपि तन्निष्ठा एव किं न स्युरिति चेत्तदज्ञानादि-त्याह—**नेति**।

નારદજી બોલ્યા – આ પ્રમાણે ગુરુ દ્વારા જેને ઉત્તર આપવામાં આવ્યો તે અસુર, પુત્રને ફરીથી કહેવા લાગ્યો. હે અમંગળ! જો તારી આ બુદ્ધિ ગુરુવાક્યજનિત નથી તો તને આવી બુદ્ધિ કયાંથી પ્રાપ્ત થઈ?॥ ૨૯॥

‘**ગુરુમુખી**’ ગુરુના વાક્યથી જન્મેલી બુદ્ધિ– હે અમંગળ!॥ ૨૯॥

આ વાત બાજુએ મૂકો, કારણ કે તમારા જેવા વિષયાસક્ત જીવોનો અહીં અધિકાર નથી, એ આશયથી કહે છે– ‘**मतिः इति।**’

પ્રહ્‌લાદજી બોલ્યા – ઘર એ જ જેમનું વ્રત છે (અર્થાત્ જેઓ ઘરમાં જ આસક્ત છે) (અને તેથી) ન જિતાયેલી ઈન્દ્રિયો દ્વારા અંધકારરૂપ સંસારમાં પ્રવેશેલા અને વારંવાર ભોગવાયેલા વિષયોને ભોગવનારા જીવોની બુદ્ધિ પોતાનાથી, બીજાથી કે પરસ્પર (કહેવા)થી શ્રીકૃષ્ણમાં લાગતી નથી.॥ ૩૦॥

‘**परतः**’ બીજા કોઈના કે ગુરુના શીખવવાથી કે પોતાનાથી કે ‘**मिथः**’ પરસ્પર કહેવાથી ‘**न-अभिपद्येत**’ (ભગવાનમાં બુદ્ધિ) લાગતી નથી. કેવા જીવોની? ‘**गृहव्रतानाम्**’ ઘર એ જ ‘**व्रतम्**’ સંકલ્પ છે જેમનો, અર્થાત્ ગૃહકાર્ય કરવાની જ ચિંતા છે જેમને, આથી જ ‘**अदान्तैः**’ અસંયમી (અશાન્ત) ઈન્દ્રિયોને કારણે ‘**तमिस्त्रम्**’ અંધકાર કે નરકરૂપ સંસારમાં પ્રવેશેલા જીવોની (બુદ્ધિ)– સંસારમાં ભોગવાયેલા વિષયો જ ભોગવવાના છે જેમને॥ ૩૦॥

શ્રીકૃષ્ણ પરમાનંદસ્વરૂપ હોવાથી તે (વિષયાસક્ત) જીવોને પણ તેમનામાં જ નિષ્ઠા કેમ ન થાય, એમ જો શંકા કરવામાં આવે તો તે માટે કહે છે કે તેમના અજ્ઞાનને કારણે તેમને ભગવાનમાં નિષ્ઠા થતી નથી– ‘**न इति।**’

न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुं
दुराशया ये बहिरर्थमानिनः।
अन्धा यथाऽन्धैरुपनीयमाना
वाचीशतन्त्यामुरुदाम्नि बद्धाः॥ ३१

વિષયોની વાસનાથી યુક્ત અંતઃકરણવાળા જે મનુષ્યો બાહ્ય વસ્તુને સત્ય માનનારા છે તેઓ, આત્મસ્વરૂપમાં જ પુરુષાર્થવાળા જનોને જાણવા યોગ્ય એવા ભગવાન વિષ્ણુને જાણી શકતા નથી. (આથી) આંધળાઓ વડે દોરાતા આંધળાની જેમ તેઓ ('બ્રાહ્મણ' વગેરે મોટા નામવાળી) ઈશ્વરની વેદલક્ષણા વાણીરૂપ દીર્ઘ રજ્જુમાં (વેદોક્ત કામ્ય કર્મો વડે) બંધાયેલા રહે છે.॥ ૩૧ ॥

ये दुराशया विषयवासितान्तःकरणास्ते हि विष्णुं न विदुः। तत्र हेतुः—स्वस्मिन्नेवार्थः पुरुषार्थो येषां तेषां गतिं गम्यम्। ननु तेऽपि गुरूपदेशाद्विष्णुं ज्ञास्यन्ति तत्राह—बहिर्विषये-ष्वर्थो येषां ते बहिरर्थास्तानेव गुरुत्वेन मन्तुं शीलं येषां ते। अतोऽन्धैरुपनीयमाना अन्धा यथा पन्थानं न विदुः किंतु गर्ते पतन्ति तथा तेऽपीशस्य तन्त्यां दीर्घरज्ज्वां वेदलक्षणा-यामुरूणि दामानि ब्राह्मणादिनामानि यस्यां तस्यां काम्यैः कर्मभिर्बद्धा एव भवन्तीत्यर्थः। तदुक्तम्—

જે મનુષ્યો '**दुराशयाः**' વિષયોની વાસનારૂપ અંતઃકરણવાળા છે, તેઓ વિષ્ણુ ભગવાનને જાણી શકતા જ નથી. તે માટેનું કારણ—પોતાના સ્વરૂપમાં જ '**अर्थः**' પુરુષાર્થ છે જેમનો, તેવા (આત્મનિષ્ઠ) જનોને જ '**गतिम्**' ભગવાન જાણવા યોગ્ય છે. વળી, શંકા કરે છે કે તે (બહિર્મુખી) જનો પણ ગુરુના ઉપદેશથી વિષ્ણુ ભગવાનને જાણી શકશે. તે માટે કહે છે કે બાહ્ય વિષયોમાં જ જેમને (પ્રયોજન) સત્યતા લાગે છે તેવા '**बहिः-अर्थाः**' બાહ્ય વસ્તુને સત્ય માનનારાઓ, તેમને જ ગુરુ તરીકે માનવાનો સ્વભાવ છે જેમનો તેવા તેઓ છે. આથી આંધળાઓ વડે દોરાતા આંધળા જેમ માર્ગને જાણતા નથી પણ ખાડામાં જ પડે છે, તેમ તેઓ પણ 'બ્રાહ્મણ' વગેરે નામો છે જેનાં તે ઈશ્વરની વેદલક્ષણા વાણીરૂપ '**तन्त्याम्**' દીર્ઘ દોરડીમાં (વેદોક્ત) કામ્ય કર્મો વડે બંધાયેલા જ રહે છે, એમ અર્થ છે. તે જ કહેવામાં આવ્યું છે—

'विषयाविष्टचित्तानां विष्ण्वावेशः सुदूरतः।
वारुणीदिग्गतं वस्तु व्रजन्नैन्द्रीं किमाप्नुयात्॥'
इति॥ ३१॥

'જેમનાં મન વિષયોથી ઘેરાયેલાં હોય છે, તેમનો ભગવાન વિષ્ણુ(ની દિશા)માં પ્રવેશ અતિશય દૂર છે. વરુણની દિશા (પશ્ચિમ)માં રહેલી વસ્તુ ઈન્દ્રની (પૂર્વ) દિશામાં જતા મનુષ્યને મળે ખરી?' ॥ ૩૧ ॥

ननु च 'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।' इत्यादिश्रुति-प्रतिपादितं विष्णुं कथं न विदुः, कुतो वा तेषां तमिस्त्रप्रवेशस्तत्राह—**नैषामिति**।

વળી, શંકા કરે છે કે 'સર્વ પ્રાણીઓમાં ગુપ્તરૂપે રહેલા, સર્વવ્યાપી, સર્વ પ્રાણીઓના અંતરાત્મા એક જ દેવ છે.' (શ્વેતા.ઉપ.૬/૧૧) વગેરે શ્રુતિમાં પ્રતિપાદન કરાયેલા ભગવાન વિષ્ણુને તેઓ કેમ જાણી શકતા નથી? અથવા તે વિષયાસક્ત પુરુષો શા માટે નરકમાં પ્રવેશે છે? તે માટે ઉત્તર આપે છે— **'न-एषाम् इति।'**

नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रिं
स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः।
महीयसां पादरजोऽभिषेकं
निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत्॥ ३२

જ્યાં સુધી આ મનુષ્યોની બુદ્ધિ નિષ્કિંચન મહાપુરુષોની ચરણરજથી (પોતાના ઉપર) અભિષેક કરવાનું વરણ કરતી નથી, ત્યાં સુધી એમની બુદ્ધિ ઉરુક્રમ ભગવાનનાં ચરણકમળનો સ્પર્શ કરનારી થતી નથી કે જે બુદ્ધિનું પ્રયોજન સંસારને દૂર કરવાનું છે.॥ ૩૨ ॥

निष्किंचनानां निरस्तविषयाभिमानानां महत्तमानां पादरजसाभिषेकं यावन्न वृणीत तावत् श्रुतिवाक्यतो जाताप्येषां मतिरुरुक्रम-स्याङ्घ्रिं न स्पृशति न प्राप्नोति। असंभावनादिभिर्विहन्यत इत्यर्थः। अनर्थस्य संसारस्यापगमो यदर्थो यस्या अङ्घ्रिस्पर्शिन्या मतेरर्थः प्रयोजनम्। महदनुग्रहाभावान्न तत्त्व-निश्चयो नापि मोक्षस्तेषामित्यर्थः॥ ३२॥

'निष्किञ्चनानाम्' જેમનું વિષયાભિમાન દૂર થઈ ગયું છે તેવા મહાપુરુષોની ચરણરજ વડે (જે બુદ્ધિ) જ્યાં સુધી (પોતાના ઉપર) અભિષેક કરવાનું વરણ કરતી નથી, ત્યાં સુધી વેદવાણીથી સંસ્કૃત થઈ હોવા છતાં એ લોકોની બુદ્ધિ ઉરુક્રમ ભગવાનના ચરણને **'न स्पृशति'** પ્રાપ્ત કરતી નથી. વિપરીત ભાવનાઓ વગેરે દ્વારા એ બુદ્ધિ શંકા-કુશંકામાં પડે (નષ્ટ થઈ જાય) છે, એમ અર્થ છે. **'अनर्थस्य'** સંસારને દૂર કરવો એ જ **'यद्-अर्थः'** જેનું અર્થાત્ ભગવાનના ચરણકમળનો સ્પર્શ કરનારી બુદ્ધિનું **'अर्थः'** પ્રયોજન છે. મહાપુરુષોના અનુગ્રહના અભાવને કારણે ન તો તેઓ તત્ત્વનો નિશ્ચય કરી શકે છે કે નથી તેમનો મોક્ષ થતો, એમ અર્થ છે.॥ ૩૨ ॥

वीर.—मम मातृगर्भावस्थानदशायामेव महीयसः श्रीनारदस्यानुग्रहादियं बुद्धिरुरुक्रमस्याङ्घ्रिं-विषयाऽभूदिति गूढोऽभिप्रायः।

મારી માતાના ગર્ભમાં હું હતો તે દશા દરમ્યાન જ મહાપુરુષ શ્રીનારદજીના અનુગ્રહથી (મારી) આ બુદ્ધિ ઉરુક્રમ ભગવાનના ચરણરૂપ વિષયમાં રતિવાળી થઈ, એવો ગૂઢ અભિપ્રાય છે.

इत्युक्त्वोपरतं पुत्रं हिरण्यकशिपू रुषा।
अन्धीकृतात्मा स्वोत्सङ्गान्निरस्यत महीतले॥ ३३

એમ કહીને શાંત થયેલા પુત્ર પ્રહ્‌લાદને ક્રોધથી અંધ થયેલા હૃદયવાળા હિરણ્યકશિપુએ પોતાના ખોળામાંથી પૃથ્વી ઉપર ફેંક્યો.॥ ૩૩॥

निरस्यत चिक्षेप॥ ३३॥

'**निरस्यत्**' ફેંક્યો॥ ૩૩॥

आहामर्षरुषाविष्टः कषायीभूतलोचनः।
वध्यतामाश्वयं वध्यो निःसारयत नैर्ऋताः॥ ३४

અસહિષ્ણુતા અને ક્રોધથી ઘેરાયેલો અને રાતીચોળ આંખોવાળો દૈત્ય હિરણ્યકશિપુ બોલી ઊઠયો– 'અરે ઓ રાક્ષસો, આને અહીંથી સત્વરે કાઢી મૂકો, મારી નાખવાને યોગ્ય એવા આને મારી નાખો.'॥ ૩૪॥

अमर्षोऽसहनं तेन सहितया रुषाविष्टो व्याप्तः। कषायीभूते आताम्रे लोचने यस्य। हे नैर्ऋता राक्षसाः॥ ३४॥

'**अमर्षः**' અસહિષ્ણુતા, તેની સાથે ક્રોધથી '**आविष्टः**' વ્યાપેલો– '**कषायीभूते**' લાલઘૂમ બંને આંખો છે જેની– '**हे नैर्ऋताः**' હે રાક્ષસો॥ ૩૪॥

अयं मे भ्रातृहा सोऽयं हित्वा स्वान् सुहृदोऽधमः।
पितृव्यहन्तुर्यः पादौ विष्णोर्दासवदर्चति॥ ३५

આ (પુત્ર જ) મારા ભાઈને હણનારો છે. હિતકર્તા એવા પોતાના સ્વજનોને છોડીને કાકા હિરણ્યાક્ષને મારનાર વિષ્ણુના ચરણોને તે આ નીચ દાસની જેમ સેવે છે!॥ ૩૫॥

वध्यत्वे हेतुः—यतोऽयं मे भ्रातृहा। कुतः। यो विष्णोः पादौ दासवदर्चति। तत्पक्षपातीत्यर्थः। अतः स एवायमिति अन्वयः॥ ३५॥

પુત્રને મારવા માટેનું કારણ– કારણ કે આ મારા ભાઈને હણનારો છે. કેવી રીતે? જે પુત્ર વિષ્ણુના ચરણને દાસની જેમ સેવે છે. તે (વિષ્ણુ)નો જ પક્ષપાત કરનાર છે, એમ અર્થ છે. તેથી (ભાઈનો હણનારો) તે આ જ છે, એમ અન્વય છે.॥ ૩૫॥

अहो विष्णुरप्यविश्वसनीयं किमिति स्वीकृतवानित्याह—**विष्णोर्वेति**।

અરે, વિષ્ણુ પણ અવિશ્વસનીયને સ્વીકારે છે? એમ કહે છે– '**विष्णोः वा इति।**'

विष्णोर्वा साध्वसौ किं नु करिष्यत्यसमञ्जसः।
सौहृदं दुस्त्यजं पित्रोरहाद्यः पञ्चहायनः॥
॥ ३६॥

પણ કૃતઘ્ની એવો આ વિષ્ણુનું પણ શું ભલું કરશે? (કારણ કે) પાંચ વરસના બાળકે અત્યારે માતા-પિતાનો દુસ્ત્યજ સ્નેહ છોડી દીધો! ।।૩૬।।

अहाज्जहौ॥ ३६॥

'**अहात्**'* છોડી દીધો ।।૩૬।।

* √**हा** ત્રીજા ગણનો ધાતુ છે, પણ અહીં બીજા ગણનો ગણીને '**अहात्**' રૂપ બનાવેલું છે. ત્રીજા ગણ પ્રમાણે '**अजहात्**' રૂપ થવું જોઈએ.

ननु तवायमपत्यं कथं वध्यस्तत्राह—

બીજો કોઈ પ્રશ્ન કરે કે તારું (પોતાનું જ) સંતાન શા માટે વધ કરવા યોગ્ય છે? તે માટે ઉત્તર આપે છે—

परोऽप्यपत्यं हितकृद्यथौषधं
स्वदेहजोऽप्यामयवत्सुतोऽहितः ।
छिन्द्यात्तदङ्गं यदुतात्मनोऽहितं
शेषं सुखं जीवति यद्विवर्जनात्॥ ३७

પારકો હોય તો પણ ઔષધની જેમ જો આપણું હિત કરનાર હોય તો તેને પુત્ર જ જાણવો. પોતાના દેહમાંથી ઉત્પન્ન થયેલો પુત્ર પણ જો અહિત કરનાર હોય તો તેને રોગ જેવો જાણવો. (પોતાનું) અંગ હોય પણ જો તે પોતાનું અહિત કરનારું હોય, તો તેને કાપી નાખવું જોઈએ, કે જેને ત્યજી દેવાથી શેષ (શરીર) સુખથી જીવી શકે.।।૩૭।।

परोऽप्यौषधमिव हितकृच्चेत्तर्ह्यपत्यमेव ज्ञेयः। सुतः स्वदेहजोऽप्यहितश्चेदामय इव ज्ञेयः। आस्तां ममतास्पदस्य कथा, अङ्गमपि च यत्करचरणादि तदप्यात्मनोऽहितं चेच्छिन्द्या-देवेत्यर्थः॥ ३७॥

પારકો હોય તો પણ ઔષધની જેમ જો આપણું હિત કરનાર હોય તો તેને પુત્ર જ જાણવો. પોતાના દેહમાંથી ઉત્પન્ન થયેલો પુત્ર પણ જો અહિત કરનાર હોય તો તેને રોગ જેવો જાણવો. મમતાસ્પદની વાત તો બાજુએ રહી, હાથ, પગ વગેરે પોતાનું જે અંગ હોય, તે પણ જો પોતાનું અહિત કરનારું હોય, તો તેને કાપી નાખવું જ જોઈએ, એમ અર્થ છે.।। ૩૭।।

विजय.—परः शत्रुरप्यवश्यं द्वेषेणापि हित-कृच्चेत्स एव सुतः यथा औषधं तिक्तत्वेन 'हरीतकी मनुष्याणां मातेव हितकारिणी।' इति वचनात्।

શત્રુ દ્વેષથી પણ જો હિતકારી હોય તો તે જ પુત્ર છે. જેમ ઔષધ કડવું હોવા છતાં હિતકારી છે, કારણ કે 'હરડે મનુષ્યોને માટે માતા જેવી હિતકારી છે.' તેવું વચન છે.

सर्वैरुपायैर्हन्तव्यः सम्भोजशयनासनैः।
सुहृल्लिङ्गधरः शत्रुर्मुनेर्दुष्टमिवेन्द्रियम्॥ ३८

(વશમાં ન રહેનારી) દુષ્ટ ઇન્દ્રિય જેમ યોગી માટે શત્રુ બને તેમ સ્વજનવેષધારી શત્રુ ભોજન, આસન, શયન(માં ઝેર વગેરે આપવા) દ્વારા સર્વ કોઈ ઉપાયે હણવા યોગ્ય છે.।।૩૮।।

अतः सर्वैरुपायैर्हन्तव्यः। सम्भोजो भोजनम्। भोजनादिषु विषादिप्रयोगैरित्यर्थः। यथा दुष्टमिन्द्रियं मुनेः शत्रुः॥ ३८॥

આથી સર્વ કોઈ ઉપાયે (આ) હણવા યોગ્ય છે. '**सम्भोजः**' ભોજન— ખાવામાં વિષ વગેરે આપીને— એમ અર્થ છે. જેમ વશમાં ન રહેનારી ઈન્દ્રિય યોગીની શત્રુ છે તેમ।।૩૮।।

नैर्ऋतास्ते समादिष्टा भर्त्रा वै शूलपाणयः।
तिग्मदंष्ट्रकरालास्यास्ताम्रश्मश्रुशिरोरुहाः ॥ ३९

(આ પ્રમાણે પોતાના) સ્વામી દ્વારા આદેશ આપવામાં આવેલા, હાથમાં ત્રિશૂળ ધારણ કરેલા, તીક્ષ્ણ દાઢો અને ભયંકર મોઢાંવાળા, લાલચોળ દાઢીમૂછ તથા વાળવાળા,।।૩૯।।

नदन्तो भैरवान्नादांश्छिन्धि भिन्धीति वादिनः।
आसीनं चाहनन् शूलैः प्रह्लादं सर्वमर्मसु॥ ४०

ભયંકર ગર્જનાનો નાદ કરતા, 'કાપી નાખો, ચીરી નાખો' બોલતા રાક્ષસો (ત્યાં) બેઠેલા પ્રહ્‌લાદજીને સર્વ મર્મસ્થાનોમાં ત્રિશૂળ વડે મારવા લાગ્યા. ।।૪૦।।૪૦।।

तिग्मास्तीक्ष्णा दंष्ट्रा येषाम्। करालान्यास्यानि भयंकराणि मुखानि येषां ते च ते च। ताम्राणि श्मश्रूणि शिरोरुहाश्च येषाम्॥ ३९ ॥ ४० ॥

'**तिग्माः**' તીક્ષ્ણ દાઢો છે જેમની તેઓ, '**करालानि आस्यानि**' તથા ભયંકર મોઢાં છે જેમનાં તેઓ– લાલચોળ દાઢીમૂછ તથા વાળ છે જેમના।।૩૯।। (**अहनन्-अघ्नन्** રૂપ છે)

वंशीधरी—यच्छेदेन जीवनं दुर्लभं तन्मर्म इति कथ्यते।

જેને કાપવાથી જીવવું દુર્લભ બને છે તેને મર્મ કહેવાય છે.

अन्वि.—वृषणकुक्षिहृदयकण्ठशिरआदीनि स्वल्पप्रहारेऽपि प्राणहारीणि मर्मस्थानानि ज्ञेयानि।

વૃષણ, કુક્ષિ, હૃદય, કંઠ, મસ્તક વગેરેને અતિ અલ્પ પ્રહાર કરવામાં પણ પ્રાણ નીકળી જાય તેવાં મર્મસ્થાનો જાણવાં.

परे ब्रह्मण्यनिर्देश्ये भगवत्यखिलात्मनि।
युक्तात्मन्यफला आसन्नपुण्यस्येव सत्क्रियाः॥ ४१

નિર્વિકાર, સર્વના અવિષય, અત્યંત ઐશ્વર્યવાન અને સર્વના આત્મા એવા ઈશ્વરમાં જેમનું મન જોડાયેલું છે તે પ્રહ્‌લાદજી વિષે (તે રાક્ષસાદિના પ્રહારો) ભાગ્યહીનના મોટા ઉદ્યમો નિષ્ફળ થાય તેમ નિષ્ફળ થયા.।।૪૧।।

परे ईश्वरे युक्तः समाहित आत्मा मनो यस्य तस्मिन्प्रह्लादे तेषां नैर्ऋतादीनां प्रहारा निष्फला आसन् जाताः। तत्र हेतवः—ब्रह्मणि निर्विकारेऽनिर्देश्येऽविषये भगवति निरतिशयैश्वर्येऽखिलात्मनि शस्त्रादीनामपि नियन्तर्येवंभूते परे। अपुण्यस्य निर्दैवस्य सत्क्रिया महोद्यमा इव॥ ४१ ॥

'**परे**' ઈશ્વરમાં '**युक्तः**' જોડાયેલું છે '**आत्मा**' મન જેનું તે પ્રહ્‌લાદ વિષે તે સર્વ રાક્ષસાદિના પ્રહારો નિષ્ફળ '**आसन्**' થયા. તે માટેનાં કારણો– '**ब्रह्मणि**' નિર્વિકાર (બ્રહ્મ)માં, '**अनिर्देश्ये**' અગોચરમાં, '**भगवति**' અત્યંત ઐશ્વર્યવાનમાં, '**अखिल-आत्मनि**' સર્વના આત્મામાં, શસ્ત્રાદિના પણ નિયંતામાં, આવા ઈશ્વરમાં– '**अपुण्यस्य**' ભાગ્યહીનના '**सत्क्रियाः**' મોટા ઉદ્યમો જેમ ।।૪૧।।

प्रयासेऽपहते तस्मिन् दैत्येन्द्रः परिशङ्कितः।
चकार तद्वधोपायान्निर्बन्धेन युधिष्ठिर॥ ४२
॥ ४२ ॥

હે યુધિષ્ઠિર, તે પ્રયાસ નિષ્ફળ જતાં ભારે શંકાશીલ થયેલો દૈત્યેન્દ્ર હિરણ્યકશિપુ તેનો વધ કરવાના ઉપાયો હઠપૂર્વક કરવા લાગ્યો.।।૪૨।।૪૨।।

वीर.—परिशङ्कितः किमहो अयं शूलघातादिभिरपि नाहन्यत किमस्मादेव मम मृत्युर्भविष्यतीत्याशङ्कितः।

કેવું આશ્ચર્ય છે કે ત્રિશૂળ વગેરે મારવાથી પણ આ હણાયો નહીં! શું આનાથી જ મારું મૃત્યુ થશે? એવી શંકાવાળો દૈત્યેન્દ્ર.

दिग्गजैर्दन्दशूकैश्च अभिचारावपातनैः।
मायाभिः संनिरोधैश्च गरदानैरभोजनैः॥ ४३

(મોટા મોટા ઉન્મત્ત) દિગ્ગજો(ના આક્રમણ) દ્વારા, (વિષધર) સર્પો(ના દંશ) દ્વારા, (કૃત્યા ઉત્પન્ન કરવી, મારણહોમ કરવો વગેરે અભિચારરૂપ) મેલી વિદ્યા દ્વારા, (પર્વતના શિખર ઉપરથી) નીચે પાડવા દ્વારા, (શમ્બરાસુરે રચેલી) માયા(ના પ્રયોગો) દ્વારા, (ખાડા વગેરેમાં) પૂરી રાખવા દ્વારા, વિષપાન કરાવવા દ્વારા, ઉપવાસ કરાવવા દ્વારા,।।૪૩।।

हिमवाय्वग्निसलिलैः पर्वताक्रमणैरपि।
न शशाक यदा हन्तुमपापमसुरः सुतम्।
चिन्तां दीर्घतमां प्राप्तस्तत्कर्तुं नाभ्यपद्यत॥ ४४

બરફમાં નાખવા દ્વારા, (પ્રચંડ) વાયુ(માં ભમાવવા) દ્વારા, અગ્નિ અને જળમાં નાખવા દ્વારા અને પર્વત નીચે કચડવા દ્વારા પણ પોતાના નિષ્પાપ પુત્રને મારવા માટે જ્યારે તે અસુર સમર્થ ન થયો, ત્યારે તે મહાન ચિન્તામાં પડ્યો અને તેને મારવા માટે તેને બીજો ઉપાય સૂઝ્યો નહીં.।।૪૪।।

दन्दशूकैः सर्पैः। अभिचाराः कृत्यादयः। अवपातनानि गिरिशृङ्गादधःपातनानि तैः। मायाभिः शम्बरनिर्मिताभिः अवटादिषु संनिरोधैश्च॥ ४३ ॥

'**दन्दशूकैः**' સર્પો દ્વારા– '**अभिचाराः**' કૃત્યા વગેરે (ઉત્પન્ન કરવાના) મેલી વિદ્યાના પ્રયોગો, '**अवपातनानि**' પર્વતના શિખર ઉપરથી નીચે પાડવું, તે સર્વ ઉપાયો દ્વારા '**मायाभिः**' શમ્બરાસુરે રચેલી (અચાનક વજ્રપાત કરવો, અચાનક સિંહ, વાઘ ઉત્પન્ન કરવા વગેરે આસુરી) માયાથી તથા ખાડા વગેરેમાં પૂરી રાખવા દ્વારા।।૪૩।।

पर्वताक्रमणैः पर्वतानां तदुपरिक्षेपैः। बहुवचनैरभिचाराद्यावृत्तिं दर्शयति। तद्धननं कर्तुं नाभ्यपद्यत न प्राप। नाशक्नोदित्यर्थः॥ ४४॥

'**पर्वताक्रमणैः**' પર્વતોનો તેમના ઉપર પ્રહાર કરવા દ્વારા, (સર્વત્ર) બહુવચનના પ્રયોગ દ્વારા અભિચાર વગેરે ઉપાયોનું આવર્તન દર્શાવે છે. તેમને મારવા માટે '**न-अभ्यपद्यत**' ઉપાય પ્રાપ્ત થયો નહીં, મારી શક્યો નહીં, એમ અર્થ છે.।। ૪૪ ।।

चिन्तामेवाह—**एष इति** त्रिभिः।

ચિંતાનું જ વર્ણન કરે છે— '**एषः इति**।' ત્રણ શ્લોકો વડે.

एष मे बह्वसाधूक्तो वधोपायाश्च निर्मिताः।
तैस्तैर्द्रोहैरसद्धर्मैर्मुक्तः स्वेनैव तेजसा॥ ४५

આ બાળકને મેં ઘણાં દુર્વચનો કહ્યાં તેમ જ મારી નાખવાના ઉપાયો પણ કર્યા, (છતાં) આ બાળક તે સર્વ દુઃખો તથા અપકારોમાંથી પોતાના જ તેજથી બચ્યો છે.।।૪૫।।

मे मया असाधु परुषं यथा भवति तथोक्तः। असद्धर्मैरपकारैरभिचारैर्वा॥ ४५॥

'**मे**' મારા દ્વારા '**असाधु**' કઠોર, કર્કશ જે રીતે થાય તે રીતે કહેવામાં આવેલો (આ બાળક)— '**असद्-धर्मैः**' અપકારોમાંથી અથવા મારણ પ્રયોગોમાંથી।। ૪૫ ।।

वर्तमानोऽविदूरे वै बालोऽप्यजडधीरयम्।
न विस्मरति मेऽनार्यं शुनःशेप इव प्रभुः॥ ४६

(મારી) પાસે જ રહેતો હોવા છતાં અને બાળક હોવા છતાં આ નિર્ભય મનવાળો અને સમર્થ છે. મારી દુષ્ટતાને સમર્થ શુનઃશેપની જેમ ભૂલતો નથી.।।૪૬।।

अविदूरे समीपे वर्तमानोऽपि बालोऽप्ययमजडधीर्निर्भयचित्तो मेऽनार्यमन्याय्यं शत्रुत्वं वा न विस्मरति।

'**अविदूरे**' (મારી) પાસે જ રહેતો હોવા છતાં અને બાળક હોવા છતાં આ '**अजडधीः**' નિર્ભય મનવાળો છે. '**मे-अनार्यम्**' મારી દુષ્ટતા કે શત્રુતાને ભૂલતો નથી.

अजीगर्तस्य मध्यमपुत्रः शुनःशेपो नाम पितृभ्यां हरिश्चन्द्राय विक्रीतः सन्यथा तयोरपकारमविस्मरंस्तद्विपक्षं विश्वामित्रमाश्रित्य गोत्रान्तरमापन्नस्तद्वत्। यद्वा स्वभावापरित्यागे दृष्टान्तः—शुनः शेपः पुच्छमिवेति॥ ४६॥

અજીગર્તનો શુનઃશેપ નામનો વચલો પુત્ર તેના માતા-પિતા દ્વારા હરિશ્ચન્દ્રને વેચવામાં આવેલો હોઈ, જેમ તે બંનેનો અપકાર ન ભૂલતાં તેમના વિપક્ષી વિશ્વામિત્રનો આશ્રય કરીને અન્ય ગોત્રને પ્રાપ્ત થયો હતો, તેમ — (આ કથા ઐ.બ્રા.માં છે.) અથવા સ્વભાવ પરિત્યાગ ન કરવા માટેનું દૃષ્ટાંત— શુનઃશેપ (કૂતરા)ની પૂંછડીની જેમ।।૪૬।।

अप्रमेयानुभावोऽयमकुतश्चिद्भयोऽमरः।
नूनमेतद्विरोधेन मृत्युर्मे भविता न वा॥ ४७

અપ્રમેયોઽપરિમેયોઽનુભાવો યસ્ય। ન કુતશ્ચિદ્ભયં યસ્ય। અમરો મૃત્યુશૂન્યશ્ચ। ન વા ભવિતા। અન્યથા મૃત્યુર્નૈવ ભવિષ્યતીત્યર્થઃ ॥ ४७ ॥

આનો પ્રભાવ અમાપ છે, આને કોઈનાથી ભય નથી અને આ મૃત્યુરહિત છે. એ નિશ્ચિત છે કે આની સાથે વિરોધ કરવાથી જ મારું મૃત્યુ થશે, બીજી રીતે નહીં જ થાય.।।૪૭।।

'**अप्रमेयः**' અમાપ પ્રભાવ છે જેનો, કોઈનાથી ભય નથી જેને તથા '**अमरः**' મૃત્યુરહિત છે. '**न वा भविता**' બીજી રીતે મૃત્યુ નહીં જ થાય, એમ અર્થ છે.।। ૪૭ ।।

इति तं चिन्तया किञ्चिन्म्लानश्रियमधोमुखम्।
शण्डामर्कावौशनसौ विविक्त इति होचतुः॥ ॥ ४८ ॥

औशनसौ उशनसः पुत्रौ नीतिज्ञौ। विविक्ते एकान्ते॥ ४८॥

આવી ચિન્તાને કારણે કંઈક નિસ્તેજ અને પડી ગયેલા મુખવાળા તે દૈત્યેન્દ્રને શુક્રાચાર્યના બે પુત્રો શંડ અને મર્ક એકાંતમાં આ પ્રમાણે કહેવા લાગ્યા.।।૪૮।।

'**औशनसौ**' ઉશનસ્ (શુક્રાચાર્ય) ના બંને નીતિવિદ્ પુત્રો– '**विविक्ते**' એકાન્તમાં।।૪૮।।

जितं त्वयैकेन जगत्त्रयं भ्रुवो-
र्विजृम्भणत्रस्तसमस्तधिष्ण्यपम् ।
न तस्य चिन्त्यं तव नाथ चक्ष्महे
न वै शिशूनां गुणदोषयोः पदम्॥ ४९

भ्रुवोर्विजृम्भणेनैव त्रस्ताः समस्ता धिष्ण्यपा लोकपाला यस्मिन्। तस्य तव चिन्त्यं न चक्ष्महे न पश्यामः। पदमालम्बनं नैवास्ति। यद्वा शिशूनां वृत्तं गुणदोषयोः पदं विषयो न भवतीत्यर्थः॥ ४९॥

હે નાથ, ભ્રૂકુટિના વિલાસમાત્રથી જ સમસ્ત લોકપાલો જેમાં ત્રાસી ગયા છે, તે ત્રણેય લોક જે એકલા આપના દ્વારા જ જીતી લેવામાં આવ્યા છે તેવા આપને ચિંતા કરવા જેવું હોય તેમ અમે જોતા નથી, (કારણ કે) બાળકોનું ચરિત્ર ગુણદોષનો વિષય હોતો જ નથી.।।૪૯।।

ભ્રૂકુટિના વિલાસમાત્રથી જ સમસ્ત '**धिष्ण्यपाः**' લોકપાલો જેમાં ત્રાસી ગયા છે (તે ત્રણેય જગત)– તેવા '**तस्य**' '**तव**' આપને ચિંતા કરવા જેવું અમે '**न चक्ष्महे**' જોતા નથી. '**पदम्**' (ચિંતાનો) વિષય છે જ નહીં. અથવા બાળકોનું ચરિત્ર ગુણદોષનો '**पदम्**' વિષય હોતો જ નથી, એમ અર્થ છે.।।૪૯।।

तथापि तु बन्धनमस्योचितमित्याहतुः— **इमं त्विति**।

પરંતુ તેમ (ગુણ-દોષનો વિષય ન હોવા) છતાં આને બાંધી રાખવો ઉચિત છે, એમ તે બંને કહે છે— '**इमं तु इति**।'

इमं तु पाशैर्वरुणस्य बद्ध्वा
निधेहि भीतो न पलायते यथा।
बुद्धिश्च पुंसो वयसाऽऽर्यसेवया
यावद् गुरुर्भार्गव आगमिष्यति॥ ५०

યાવદ્‌ગુરુર્ભાર्गव आगमिष्यति तावद्बद्ध्वा निधेहि। ततः किमत ऊचतुः—यतः पुंसो बुद्धिश्च वयसा तथा आर्यसेवया समीचीना भवति॥ ५० ॥

જ્યાં સુધી ભૃગુપુત્ર ગુરુદેવ શુક્રાચાર્ય આવે ત્યાં સુધી આને તો વરુણના પાશથી બાંધીને રાખો, જેથી ભયભીત થઈ નાસી ન જાય, કારણ કે મનુષ્યની બુદ્ધિ વયથી અને શ્રેષ્ઠ પુરુષોની સેવાથી (સુધરતી હોય છે).।।૫૦।।

જ્યાં સુધી ભૃગુપુત્ર ગુરુદેવ શુક્રાચાર્ય આવે ત્યાં સુધી આને બાંધીને રાખો. ત્યાર પછી શું, તે હવે પછી તે બંને બોલ્યા– કારણ કે મનુષ્યની બુદ્ધિ ઉંમરથી અને શ્રેષ્ઠ પુરુષોની સેવાથી સુધરતી હોય છે.।।૫૦।।

तथेति गुरुपुत्रोक्तमनुज्ञायेदमब्रवीत्।
धर्मा ह्यस्योपदेष्टव्या राज्ञां ये गृहमेधिनाम्॥ ५१

अनुज्ञाय तथेत्यङ्गीकृत्य॥ ५१ ॥

'બહુ સારું' એમ ગુરુપુત્રનાં વચનને સ્વીકારી (હિરણ્યકશિપુ) આ પ્રમાણે બોલ્યો, 'આને (છોકરાને) તમારે ગૃહસ્થાશ્રમી રાજાઓના ધર્મનો ઉપદેશ કરવો જોઈએ.'।।૫૧।।

'अनुज्ञाय' 'બહુ સારું' એમ સ્વીકારીને।।૫૧।।

धर्ममर्थं च कामं च नितरां चानुपूर्वशः।
प्रह्लादायोचतू राजन् प्रश्रितावनताय च॥ ५२

ततश्च तौ प्रह्लादाय धर्मादिकमूचतुः—प्रश्रितश्चासाववनतश्च तस्मै॥ ५२ ॥

હે રાજા, ત્યાર પછી તે બંને (શંડ અને મર્ક) વિનયી અને વિનમ્ર પ્રહ્‌લાદજીને ક્રમશઃ ધર્મ, અર્થ તથા કામનો નિરન્તર ઉપદેશ કરવા લાગ્યા.।।૫૨।।

ત્યાર પછી તે બંને પ્રહ્‌લાદજીને ધર્માદિનો ઉપદેશ કરવા લાગ્યા. વિનયી અને વિનમ્ર એવા તે પ્રહ્‌લાદજીને।।૫૨।।

यथा त्रिवर्गं गुरुभिरात्मने उपशिक्षितम्।
न साधु मेने तच्छिक्षां द्वन्द्वारामोपवर्णिताम्॥ ५३

यथा यथावत्त्रिवर्गमुपशिक्षितमपि न साधु मेने तत्तां शिक्षां च। कुतः। द्वन्द्वैः

ગુરુજનો દ્વારા પોતાને કરવામાં આવેલા ત્રિવર્ગના ઉપદેશને તથા રાગ-દ્વેષાદિ દ્વન્દ્વોપૂર્વક વિષયોમાં રમમાણ રહેનારાઓ દ્વારા આપવામાં આવેલ શિક્ષણને પણ પ્રહ્‌લાદજીએ સારું માન્યું નહીં, કારણ કે રાગ-દ્વેષાદિ દ્વન્દ્વોપૂર્વક વિષયોમાં રમમાણ રહેનારાઓને માટે તે ઉપદેશ હતો. ।।૫૩।।

ત્રિવર્ગ (ધર્મ, અર્થ અને કામ)ને **'यथा'** યથાવત્ ઉપદેશવામાં આવ્યો હોવા છતાં પણ તેને શ્રેષ્ઠ માન્યો નહીં. **'तत्'** તે શિક્ષણને પણ

रागद्वेषादिभिर्विषयेष्वारमणं येषां तैरुपवर्णिताम् ॥ ५३ ॥

શ્રેષ્ઠ માન્યું નહીં. શા માટે? 'द्वन्द्वैः' રાગ-દ્વેષાદિ દ્વન્દ્વોપૂર્વક વિષયોમાં જેમનું ભરપૂર રમણ છે, તેમના દ્વારા (અને તેમને માટે તે શિક્ષણને) વર્ણવાયું હતું.।।૫૩।।

यदाऽऽचार्यः परावृत्तो गृहमेधीयकर्मसु।
वयस्यैर्बालकैस्तत्र सोपहूतः कृतक्षणैः ॥ ५४

જ્યારે આચાર્ય ઘરના કામકાજ માટે અન્યત્ર જતા, ત્યારે (રમત માટે) જેમને સમય મળતો હતો તેવા સમવયસ્ક બાળકો દ્વારા તે સ્થળે બોલાવવામાં આવેલા તે પ્રહ્લાદજી।।૫૪।।

परावृत्तोऽन्यत्र गतः। स उपहूतः। सन्धिः पादपूरणार्थम्। क्रीडार्थं कृतक्षणैः कृतोत्सवैर्लब्धावसरैरिति वा॥ ५४॥

'परावृत्तः' અન્યત્ર જતા ત્યારે (**सः उपहूतः** ને બદલે) **स+उपहूतः=सोपहूतः** સંધિ પાદપૂરણ * માટે કરેલી છે. રમત માટે '**कृतक्षणैः**' જેમને અવસર કે સમય પ્રાપ્ત થયો છે તેવા બાળકો દ્વારા।।૫૪।।

તે સમયે તે બાળકોની જન્મ-મરણાદિ સ્થિતિ જાણતા મહાજ્ઞાની એવા તે બાળકોને મધુર વાણીથી પાસે બોલાવી જાણે હસતા હોય તેમ કૃપાપૂર્વક કહેતા.।।૫૫।।

अथ तान् श्लक्ष्णया वाचा प्रत्याहूय महाबुधः।
उवाच विद्वांस्तन्निष्ठां कृपया प्रहसन्निव ॥ ५५

'तन्निष्ठाम्' તે બાળકોનાં જન્મ-મરણના લક્ષણરૂપ '**निष्ठाम्**' સ્થિતિને જાણતા।।૫૫।।

तन्निष्ठां तेषां निष्ठां जन्ममरणादि-लक्षणां विद्वान्॥ ५५ ॥

ते तु तद्गौरवात्सर्वे त्यक्तक्रीडापरिच्छदाः।
बाला न दूषितधियो द्वन्द्वारामेरितेहितैः ॥ ५६

पर्युपासत राजेन्द्र तन्न्यस्तहृदयेक्षणाः।
तानाह करुणो मैत्रो महाभागवतोऽसुरः ॥ ५७

રાગદ્વેષપરાયણ મનુષ્યોનાં ઉપદેશો અને ચેષ્ટાઓ દ્વારા જેમની બુદ્ધિ દૂષિત નથી થઈ તેમ જ તે પ્રહ્લાદજીમાં જ જેમણે મન અને દૃષ્ટિ સ્થાપ્યાં છે તથા જેમણે રમત-ગમતનાં સાધનો છોડી દીધાં છે, તે સર્વ બાળકો તે પ્રહ્લાદજી પ્રતિ આદર હોવાને કારણે તેમની પાસે બેસી જતા, (ત્યારે) હે રાજેન્દ્ર યુધિષ્ઠિર, અસુર (હોવા છતાં) દયાળુ, સર્વના હિતકારી અને મહાન ભગવદ્‌ભક્ત પ્રહ્લાદજી તે બાળકોને ઉપદેશ આપવા લાગતા.।।૫૬।।૫૭।।

---

* અનુષ્ટુપ છંદના આઠ અક્ષર રાખવા માટે આ સંધિ કરી છે, અન્યથા નવ અક્ષર થાય. '**सोऽचि लोपे चेत् पादपूरणम्**' (પા.સૂ. ૬/૧/૧૩૪)

નોંધ — જો શ્લોકના પાદની પૂર્તિ થતી હોય તો **सः** ના વિસર્ગનો લોપ થઈ જાય છે.

द्वन्द्वारामाणामीरितैरीहितैश्च न दूषिता धीर्येषाम्। यतो बालाः ॥ ५६ ॥

રાગ-દ્વેષપરાયણ મનુષ્યોનાં ઉપદેશો અને ચેષ્ટાઓ દ્વારા જેમની બુદ્ધિ દૂષિત નથી થઈ, કારણ કે બાળકો છે.।।૫૬।।

तस्मिन्नेव न्यस्तं हृदयमीक्षणं च यैः ॥ ५७ ॥

તે પ્રહ્‌લાદજીમાં જ સ્થાપવામાં આવ્યાં છે મન અને દૃષ્ટિ જેમના દ્વારા।।૫૭।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे प्रह्लादानुचरिते पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

*****

अथ षष्ठोऽध्यायः

પ્રહ્‌લાદજી દ્વારા અસુર બાળકોને ઉપદેશ

षष्ठे गुरौ गृहव्यग्रे प्रह्लादो दैत्यबालकान्।
अनुकम्प्य परं तत्त्वं नारदोक्तमुपादिशत्॥ १

ગુરુજી ગૃહકાર્યમાં વ્યસ્ત હોય ત્યારે પ્રહ્‌લાદજી દૈત્ય બાળકોને (તેમની ઉપર) કૃપા કરીને નારદજી દ્વારા કહેવામાં આવેલા પરમ તત્ત્વનો ઉપદેશ આપતા, એ (કથા) છઠ્ઠા અધ્યાયમાં છે. ।।૧।।

निरर्थकक्रियालापैरायुर्व्ययमजानताम् ।
प्रह्लादः सदयं प्राह धर्मं भागवतं कृती॥ २

નિરર્થક કર્મોના ભાષણ વડે થતા આયુષ્યના વ્યયને ન જાણતા બાળકોને નિપુણ એવા પ્રહ્‌લાદજી દયાપૂર્વક ભાગવતધર્મનું નિરૂપણ કરે છે.।।૨।।

कौमार इत्यादिना।

‘कौमारे’ વગેરે દ્વારા

प्रह्लाद उवाच

कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम्॥ १

પ્રહ્‌લાદજી બોલ્યા – બુદ્ધિમાન મનુષ્યે આ મનુષ્યજન્મમાં બાળપણથી (જ) ભગવદ્‌વિષયક ધર્મોનું આચરણ કરવું જોઈએ, (કારણ કે આ) મનુષ્યજન્મ (અતિ) દુર્લભ છે અને નાશવંત હોવા છતાં (ભગવત્પ્રીતિના સાધનરૂપ પરમ) પુરુષાર્થ આપનારો છે.।।૧।।

इहैव मानुषजन्मनि धर्मानाचरेत्। यतोऽर्थद-मेतत्। तत्र च कौमार एव। यतस्तदप्यध्रुवम्।

‘इह’ આ મનુષ્યજન્મમાં જ ધર્મોનું આચરણ કરવું જોઈએ, કારણ કે આ (ઇચ્છિત) અર્થ આપનારો છે. તેમાં પણ બાલ્યાવસ્થામાં જ (ધર્માચરણ કરવું જોઈએ), કારણ કે તે મનુષ્યજન્મ પણ નાશવંત છે. વળી, આવો જ બીજો

न चैवंभूतं जन्मान्तरम्। यतो दुर्लभम्। तत्र धर्मानेवाचरेन्न सुखार्थे प्रयासान्। तत्र भागवतानेव न काम्यान्॥ १ ॥

મનુષ્યજન્મ મળે એમ નથી, તેથી તે દુર્લભ છે. તેમાં ધર્મોનું જ આચરણ કરવું જોઈએ, નહીં કે સુખ માટેના પ્રયાસો. તેમાં ભાગવતધર્મોનું જ આચરણ કરવું જોઈએ, કામનાપૂર્તિ કરનારા ધર્મોનું નહીં. ।।૧।।

वीर.—प्राज्ञः हेयोपादेयविभागाभिज्ञः पुमान्।

ત્યાગ કરવા યોગ્ય અને મેળવવા યોગ્ય વિભાગને ઉચિત રીતે જાણનાર મનુષ્ય પ્રાજ્ઞ છે.

बा.प्र.—भगवत्प्रीतिजनकान् जपस्तुतिध्यानादि-रूपान् हिंसावर्जितानेव।

જપ, સ્તુતિ, ધ્યાન વગેરે ભગવાનની પ્રીતિ જન્માવનારા, હિંસારહિત ધર્મોનું આચરણ કરવાનું કહે છે.

वि.चक्र.—यदि कौमारान्ते एव मृत्युः स्यात् तर्हि किं भवेदिति प्रकृष्टज्ञानवान्, ननु तत्र का चिन्ता? जन्मान्तरन्तु भावि तत्रैव भक्तिः कार्य्येति तत्राह—दुर्लभं मानुषं जन्म तदपि भाग्याल्लब्धमप्यध्रुवम् अद्य वर्तमानत्वेऽपि तस्य श्वः स्थितौ निश्चयाभावात्।

જો બાળપણ પછી જ મૃત્યુ થાય તો શું થાય? એવા શ્રેષ્ઠ જ્ઞાનવાળો બુદ્ધિમાન (પ્રાજ્ઞ) મનુષ્ય કૌમારાવસ્થામાં ધર્મનું આચરણ કરે છે. (યથેચ્છ વિષયભોગ કર્યા પછી યૌવનાદિ બીજી અવસ્થાઓમાં પણ ભજન કરીને કૃતાર્થ થઈ જઈશું, એમ વિચારનાર) એમાં વળી ચિંતા શાની? બીજો જન્મ તો થવાનો જ છે, ત્યારે જ ભક્તિ કરવી જોઈએ, એમ જો કોઈ કહે તો તે માટે ઉત્તર આપે છે કે મનુષ્યજન્મ તો દુર્લભ છે, ભાગ્યથી જ મળે છે અને તે પણ નાશવંત છે, કારણ કે આજે છે પણ કાલે તે રહેશે, એ નક્કી નથી.

वि.चक्र.—ननु तर्हि तावन्मात्रकालेन कुतो भक्तिसिद्धिस्तत्राह—अर्थदं मुहूर्त्तमात्रव्यापि-भक्तिमतामपि खट्वाङ्गादीनां सिद्धिदर्शनात्।

શંકા કરે છે કે તો પછી તેટલા જ સમયમાં ભક્તિ કેવી રીતે સાધી શકાય? તે માટે ઉત્તર આપે છે કે મનુષ્યજન્મ પરમ પુરુષાર્થ સિદ્ધ કરનારો છે, કારણ કે બે ઘડી (૪૮ મિનિટ)માં જ થાય તેટલી ભક્તિ કરનારા ખટ્વાંગ વગેરેને સિદ્ધિ પ્રાપ્ત થતી દેખાય છે.

विजय.—एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्॥ इति श्रीमुखोक्तेः।

ભગવાનના શ્રીમુખે કહેવાયું છે 'જે આ પ્રકારનો જન્મ છે એ ખરેખર, આ લોકમાં દુર્લભ છે.' (ગીતા. ૬/૪૨)

विजय.—

बाल्ये विद्यां निषेवेत यौवने दारसङ्ग्रहम्।
स्थाविर्ये मोक्षमातिष्ठेत्सर्वदा धर्ममाचरेत्॥

इति स्मृतेः।

अन्वि.—अतः अस्थिरेणानेन देहेन स्थिरं पुरुषार्थं साधयेदिति भावः।

इह भागवतानेव धर्मानाचरेदित्येतदुपपादयति—**यथा हीति** चतुर्भिः।

यथा हि पुरुषस्येह विष्णोः पादोपसर्पणम्।
यदेष सर्वभूतानां प्रिय आत्मेश्वरः सुहृत्॥ २

इह पुरुषस्य विष्णोः पादोपसर्पणमेव यथाऽनुरूपं योग्यमित्यर्थः। यद्यस्मादेष प्रिय इत्यादि॥ २॥

वंशीधरी—'येषामहं प्रिय आत्मा सुतश्च सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टम्॥' इति भगवदुक्तिप्रामाण्येन कान्तभावशान्तिरति-दास्यभावसख्यभावानां मध्ये येन भावेनोपसर्पितुमिच्छेत्तेनैवोपसर्पन्भागवतान् धर्मानेवाचरेदिति।

भ.मनो.—ईश्वरोऽन्तः प्रविश्य प्रशासनपूर्वकं भर्त्ता, प्रियः प्रियतास्पदपुत्रादिवद्धितकारकः, सुहृच्च सुहृद्वत् सहायत्वकारकश्च।

ननु भोगोद्यमः कथं त्याज्य इति चेत्तत्राह—**सुखमिति**।

'બાલ્યાવસ્થામાં વિદ્યાભ્યાસ કરવો જોઈએ. યુવાનીમાં પત્ની પ્રાપ્ત કરવી જોઈએ. વૃદ્ધાવસ્થામાં મોક્ષ સંપાદન કરવો જોઈએ અને ધર્મનું આચરણ સદાય કરવું જોઈએ'. એમ સ્મૃતિ કહે છે.

આથી આ અસ્થિર દેહ વડે સ્થિર પુરુષાર્થને સિદ્ધ કરવો જોઈએ, એવો ભાવ છે.

આ સંસારમાં ભગવદ્ધર્મોનું જ આચરણ કરવું જોઈએ, એમ ચાર શ્લોકો વડે સિદ્ધ કરે છે— '**यथा हि इति**।'

આ સંસારમાં પરમ પુરુષ ભગવાન વિષ્ણુના ચરણનું શરણ લેવું એ જ યોગ્ય છે, કારણ કે એ ભગવાન સર્વ પ્રાણીઓના પ્રિય આત્મા, ઈશ્વર અને મિત્ર છે.।।૨।।

આ સંસારમાં પરમ પુરુષ વિષ્ણુના ચરણની પ્રાપ્તિ જ '**यथा**' અનુરૂપ, યોગ્ય છે, એમ અર્થ છે. '**यत्**' કારણ કે એ પ્રિય વગેરે છે.।।૨।।

'(હે શાન્તસ્વરૂપ માતા,) હું જ જેમનો પ્રિય આત્મા, પુત્ર, મિત્ર, ગુરુ, સુહૃદ તથા ઈષ્ટદેવ છું ...' (શ્રીમદ્ ભા.૩/૨૫/૩૮) એવા ભગવાનના વચનના પ્રમાણ અનુસાર મધુરભાવ, શાન્તભાવ, વાત્સલ્યભાવ, દાસ્યભાવ અને સખ્યભાવ વગેરે (પાંચ) ભાવોમાંથી જે ભાવે મનુષ્ય શરણ ગ્રહણ કરવા ઈચ્છે, તે જ ભાવથી શરણ લઈ તે ભાગવતધર્મોનું જ આચરણ કરે.

અંતરમાં પ્રવેશીને પ્રશાસનપૂર્વક રક્ષણ કરનાર ઈશ્વર, પ્રિય પ્રેમાસ્પદ પુત્ર વગેરેની જેમ હિત કરનાર, પ્રેમાળ અને (ઉપકારની અપેક્ષા વિના) મિત્રની જેમ સહાય કરનાર સુહૃદ— (એવા ભગવાન વિષ્ણુનાં ચરણકમળની શરણાગતિ ગ્રહણ કરવી જોઈએ.)

શંકા કરવામાં આવી છે કે ભોગ પ્રાપ્ત કરવા માટેનો પ્રયત્ન કેમ ત્યજવા યોગ્ય છે? તો તે માટે ઉત્તર આપે છે— '**सुखम् इति**।'

सुखमैन्द्रियकं दैत्या देहयोगेन देहिनाम्।
सर्वत्र लभ्यते दैवाद्यथा दुःखमयत्नतः॥ ३

સર્વત્ર પશ્વાદાવપિ। દૈવાત્ પૂર્વાદૃષ્ટાદેવ ॥ ૩ ॥

ઈન્દ્રિયોથી પ્રાપ્ત થનારું વિષયસુખ તો પ્રાણીઓને શરીરનો સંબંધ થતાં (પશુ વગેરે) સર્વ યોનિઓમાં મળી રહે છે. પૂર્વજન્મમાં કરેલાં કર્મો પ્રમાણે દૈવ અનુસાર પ્રયત્ન કર્યા વિના પ્રાણીઓને જેમ દુઃખ મળે છે, તેમ સુખ પણ વિના પ્રયત્ને જ મળે છે.।।૩।।

'**सर्वत्र**' પશુ વગેરે (યોનિઓ)માં પણ '**दैवात्**' પૂર્વે કરવામાં આવેલાં કર્મોને કારણે જ।।૩।।

तत्प्रयासो न कर्तव्यो यत आयुर्व्ययः परम्।
न तथा विन्दते क्षेमं मुकुन्दचरणाम्बुजम्॥ ४

अतस्तदर्थं प्रयासो न कर्तव्यः। यतः प्रयासात्परं केवलमायुषो व्यय एव। यतस्तथा तेन प्रकारेण क्षेमं न प्राप्नोति॥ ४॥

આથી તે માટે પ્રયત્ન કરવો યોગ્ય નથી, કારણ કે જે પ્રયત્ન કરવાથી કેવળ આયુષ્યનો નાશ જ થાય છે. તેવી રીતે મુકુન્દ ભગવાનનાં પરમ કલ્યાણરૂપ ચરણારવિંદ પ્રાપ્ત થતાં નથી।।૪।।

આથી તે વિષયસુખો માટે પ્રયત્ન કરવો યોગ્ય નથી, કારણ કે જે પ્રયાસથી '**परम्**' કેવળ આયુષ્યનો નાશ જ થાય છે અને '**तथा**' તેવી રીતે પરમ કલ્યાણ પ્રાપ્ત થતું નથી.।।૪।।

ततो यतेत कुशलः क्षेमाय भयमाश्रितः।
शरीरं पौरुषं यावन्न विपद्येत पुष्कलम्॥ ५

भयमाश्रितः संसारं प्राप्तः। पुरुषरूपं शरीरं यावत्पुष्कलमस्ति न विपद्येत अक्षमं न भवेन्न नश्येदिति वा तावच्छीघ्रं क्षेमाय यतेत॥ ५॥

તેથી સંસારને પ્રાપ્ત થયેલા વિવેકી મનુષ્યે જ્યાં સુધી પોતાનું મનુષ્યશરીર સર્વાંગસંપૂર્ણ હોય અને જ્યાં સુધી અસમર્થ ન બને કે નાશ ન પામે, ત્યાં સુધીમાં કલ્યાણ માટે (શીઘ્ર) પ્રયાસ કરવો જોઈએ.।।૫।।

'**भयम्-आश्रितः**' સંસાર(ના દુઃખથી ભય)ને પ્રાપ્ત થયેલો, પોતાનું મનુષ્ય શરીર જ્યાં સુધી '**पुष्कलम्**' સર્વાંગસંપૂર્ણ હોય, (વૃદ્ધાવસ્થા, રોગ વગેરેના અભાવને કારણે હૃષ્ટ-પુષ્ટ હોય તથા જ્યાં સુધી અંગોની વિકલતાને કારણે) '**न विपद्येत**' અસમર્થ ન બને કે નાશ ન પામે, ત્યાં સુધીમાં કલ્યાણ માટે ત્વરિત પ્રયાસ કરવો જોઈએ.।।૫।।

आयुर्व्ययक्रममाह—**पुंस इति** त्रिभिः।

पुंसो वर्षशतं ह्यायुस्तदर्धं चाजितात्मनः।
निष्फलं यदसौ रात्र्यां शेतेऽन्धं प्रापितस्तमः॥ ६

यद्यस्मात् शेते॥ ६॥

बा.प्र.—अजितात्मन इति। अवशीकृत-देहेन्द्रियादिसङ्घातस्य यदि कौमारादारभ्य भक्तियोगः स्यात्तदा तदभ्यासबलाज्जितात्मत्वेन रात्र्यामपि मध्यमं यामद्वयं निद्रार्थमुपयोज्य पूर्वोत्तरयामयोरपि कीर्तनस्मरणादिभजनमेव कुर्यात्तदा न तावदायुर्वृथा स्यादिति भावः।

मुग्धस्य बाल्ये कौमारे क्रीडतो याति विंशतिः।
जरया ग्रस्तदेहस्य यात्यकल्पस्य विंशतिः॥ ७

विंशतिर्वर्षाण्यायुर्याति॥ ७॥

दुरापूरेण कामेन मोहेन च बलीयसा।
शेषं गृहेषु सक्तस्य प्रमत्तस्यापयाति हि॥ ८

दुरापूरेण दुःखैः समन्तादापूर्यमाणेन॥ ८॥

ननु यौवने गृहासक्तोऽपि पश्चाद्विरक्तः सन् क्षेमं यास्यतीत्याशङ्क्य तदसंभवं दर्शयन्कौमार एवाचरेदित्येतदुपपादयति—**को गृहेष्विति** सप्तभिः।

આયુષ્યના નાશનો ક્રમ ત્રણ શ્લોકોથી જણાવે છે— **'पुंसः इति।'**

મનુષ્યનું આયુષ્ય સો વર્ષનું છે. (દેહ-ઈન્દ્રિયાદિ સંઘાત જેના વશમાં નથી તેવા) અજિતેન્દ્રિય મનુષ્યના આયુષ્યનો અર્ધો ભાગ નિષ્ફળ જાય છે, કારણ કે રાત્રિમાં (નિદ્રારૂપી) ઘોર અંધકારને પામેલો એવો તે સૂતો હોય છે.।।૬।।

'यत्' કારણ કે સૂઈ જાય છે.।।૬।।

દેહ-ઈન્દ્રિયાદિ સંઘાતને વશ ન કરનાર મનુષ્યને જો બાળપણથી ભક્તિયોગ થયો હોય, તો તે અભ્યાસના બળથી ઈન્દ્રિયો જિતાવાથી રાત્રે પણ વચ્ચેના બે પ્રહર નિદ્રામાં ગાળી આગલા-પાછલા બે પ્રહરોમાં તે ભજન-કીર્તનાદિ જ કરે, તેથી અર્ધા આયુષ્ય જેટલો સમય વ્યર્થ ન જાય, એવો ભાવ છે.

બાલ્યાવસ્થા અને કુમારાવસ્થામાં મૂઢ મનુષ્યનાં વીસ વર્ષ ખેલતાં-કૂદતાં વીતી જાય છે અને વૃદ્ધાવસ્થાથી ઘેરાઈ ગયેલા શરીરવાળા અસમર્થ મનુષ્યના આયુષ્યનાં (છેલ્લાં) વીસ વર્ષો (અસહાય દશામાં) વીતી જાય છે.।।૭।।

વીસ વર્ષોનું આયુષ્ય વીતી જાય છે.।।૭।।

ઘરમાં આસક્ત અને પ્રમત્ત એવા મનુષ્યનું શેષ આયુષ્ય મહામુશ્કેલીએ પૂર્ણ થનારી કામનાઓમાં અને (અતિ) બળવાન મોહમાં વીતી જાય છે.।।૮।।

'दुरापूरेण' મહામુશ્કેલીએ પૂર્ણ થનારી (અર્થાત્ તૃપ્ત કરવાને અશક્ય એવી) કામનાઓ પૂરી કરવા દ્વારા (વીતી જાય છે).।।૮।।

જુવાનીમાં ઘરમાં આસક્ત હોવા છતાં પાછળથી વિરક્ત થઈ કલ્યાણને પ્રાપ્ત કરશે, એવી શંકા કરીને, તે વસ્તુ અસંભવ છે એમ દર્શાવતાં, બાળપણથી જ ધર્માચરણ કરવું જોઈએ, એમ સાત શ્લોકોથી સિદ્ધ કરે છે— **'को गृहेषु इति।'**

को गृहेषु पुमान्सक्तमात्मानमजितेन्द्रियः।
स्नेहपाशैर्दृढैर्बद्धमुत्सहेत विमोचितुम्॥ ९ ॥ ९ ॥

गृहेषु इति बहुवचनं पुत्रदाराद्युपलक्षणम्।

કયો અજિતેન્દ્રિય મનુષ્ય સ્નેહના દઢ પાશથી બંધાયેલા તથા ઘર-ગૃહસ્થીમાં આસક્ત એવા પોતાને મુક્ત કરવાને સમર્થ થાય?।।૯।।૯।।

'**गृहेषु**' બ.વ. પુત્ર, પત્ની વગેરેનું સૂચન કરે છે.

को न्वर्थतृष्णां विसृजेत् प्राणेभ्योऽपि य ईप्सितः।
यं क्रीणात्यसुभिः प्रेष्ठैस्तस्करः सेवको वणिक् ॥ ॥ १० ॥

यमर्थमसुभिः क्रीणाति प्राणहानिमङ्गीकृत्यापि साधयति तस्करादिः। तस्मिन्नर्थे तृष्णां को नु विसृजेत्॥ १० ॥

મનુષ્ય ચોર, સેવક કે વેપારી બની પોતાના અત્યંત પ્રિય પ્રાણ કરતાં પણ જે ધન પ્રાપ્ત કરવા ઈચ્છેલું છે, પ્રાણની હાનિ સ્વીકારીને પણ જેને ખરીદે છે, તે ધન માટેની તૃષ્ણા કયો (અજિતેન્દ્રિય) મનુષ્ય ત્યજે?।।૧૦।।

જે ધનને ચોર વગેરે પોતાના પ્રાણ વડે ખરીદે છે, પ્રાણહાનિ સ્વીકારીને પણ પ્રાપ્ત કરે છે, તે ધન માટેની તૃષ્ણા કોણ ત્યજે?।।૧૦।।

कथं प्रियाया अनुकम्पितायाः
सङ्गं रहस्यं रुचिरांश्च मन्त्रान्।
सुहृत्सु च स्नेहसितः शिशूनां
कलाक्षराणामनुरक्तचित्तः ॥ ११

पुत्रान्स्मरंस्ता दुहितॄर्हृदय्या
भ्रातॄन् स्वसॄर्वा पितरौ च दीनौ।
गृहान् मनोज्ञोरुपरिच्छदांश्च
वृत्तीश्च कुल्याः पशुभृत्यवर्गान्॥ १२

किं च कथमित्यादि। प्रियायाः सङ्गादिकं स्मरन्कथं त्यजेतेति तृतीयेनान्वयः। मन्त्रान् हितशिक्षालापान्। सुहृत्सु च सङ्गम्। तेषां स्नेहेन सितो बद्धः। कलानि मधुराण्यक्षराणि येषां तेषां च सङ्गम्। तेष्वनुरक्तं चित्तं यस्य ॥ ११ ॥

(પત્ની-પુત્રાદિ) સુહૃદજનોમાં સ્નેહથી બંધાયેલો અને તેમનામાં અનુરાગપૂર્ણ ચિત્તવાળો (મનુષ્ય) પોતાની કૃપાપાત્ર સ્ત્રીના એકાંત સંગને, તેનાં મનોહર હિતકારી વચનોને, મધુર કાલી બોલી બોલતાં બાળકોના સંગને,।।૧૧।।

પુત્રો અને પ્રિય પુત્રીઓને, ભાઈઓ-બહેનો અને દીન(અવસ્થાને પ્રાપ્ત થયેલાં) માતા-પિતાને, અનેક મનોરમ સાધન-સામગ્રીવાળાં ઘરોને, કુળપરંપરાથી ચાલી આવતી આજીવિકાને, પશુઓ અને સેવકગણોને યાદ કરતો, (તે તેમની આસક્તિને કેવી રીતે ત્યજી શકે?)।।૧૨।।

વળી, '**कथम्**' વગેરે, પ્રિયાના સાથ વગેરેનું સ્મરણ કરતો, કેવી રીતે ત્યજી શકે, એમ આનાથી ત્રીજા શ્લોક (૧૩) સાથે અન્વય છે. '**मन्त्रान्**' હિતકારી વચનોને, પત્ની-પુત્રો વગેરે સુહૃદજનોમાં રહેલી આસક્તિને, તેમના સ્નેહથી '**सितः**' બંધાયેલો, '**कलानि**' મધુર કાલી બોલી છે જેમની તેમના સંગને– તેમનામાં અનુરાગપૂર્ણ ચિત્ત છે જેનું,।।૧૧।।

ताः श्वशुरगृहे स्थिताः। हृदय्या हृदयङ्गमाः। मनोज्ञा उरवः परिच्छदा येषु तान् गृहान्। वृत्तीर्जीविकाः। कुल्याः कुलपरम्परागताः॥ १२॥

'**ताः**:' શ્વસુરગૃહે રહેલી તે '**हृदय्याः**' હૃદયંગમ દીકરીઓને, મનોહર એવાં અનેક રાચરચીલાં છે જેમાં તે ઘરોને, '**वृत्तीः**' આજીવિકાઓને, '**कुल्याः**' કુળની પરંપરાથી ચાલી આવતી (આજીવિકાઓ)ને,।।૧૨।।

त्यजेत कोशस्कृदिवेहमानः
कर्माणि लोभादवितृप्तकामः।
औपस्थ्यजैह्व्यं बहुमन्यमानः
कथं विरज्येत दुरन्तमोहः॥ १३

રેશમના કીડાની જેમ લોભને કારણે કર્મો કર્યે રાખતો, અતૃપ્ત ભોગવાસનાઓવાળો, જનનેન્દ્રિય અને રસનેન્દ્રિયના સુખને જ સર્વશ્રેષ્ઠ માનનારો અને દુષ્ટ પરિણામવાળા મોહથી યુક્ત (અજિતેન્દ્રિય) મનુષ્ય (પોતાની કૃપાપાત્ર સ્ત્રીના એકાંત સહવાસને...વગેરે (શ્લોક-૧૧,૧૨)માં વર્ણવાયેલા દ્વિતીયાન્ત પદોવાળા સર્વ પદાર્થોની આસક્તિને) કેવી રીતે છોડી શકે અને કેવી રીતે વૈરાગ્ય પામી શકે?।।૧૩।।

कोशस्कृत् कोशस्कारी कीटः। स यथा आत्मनो हितं गृहं कुर्वाणो निर्गमाय द्वारमपि नावशेषयति तथा कर्माणीहमानः।

'**कोशस्कृत्**' રેશમનો કીડો, તે જેવી રીતે પોતાને હિતકારી એવું ઘર બનાવતો તેમાંથી પોતાને બહાર નીકળવાનો માર્ગ પણ બાકી રાખતો નથી તેમ કર્મો કર્યે રાખતો મનુષ્ય

नन्ववितृप्तकामोऽपि दोषदर्शनेन विरक्तः संस्त्यजेत्तत्राह—औपस्थ्यं शैश्न्यं जैह्व्यं च सुखं बहुमन्यमानस्तदेवाधिकं मन्यमानः। अतो दुरन्तो मोहो यस्य स कथं विरज्येत विरक्तः स्यात्॥ १३॥

શંકા કરે છે કે ભોગવાસનાઓ અતૃપ્ત હોવા છતાં તેમાં દોષદર્શન કરવાને કારણે મનુષ્ય વિરક્ત થઈને ત્યાગ કરી શકે ખરો? તે માટે ઉત્તર આપે છે કે '**औपस्थ्यम्**' જનનેન્દ્રિય અને '**जैह्व्यम्**' રસનેન્દ્રિયનું સુખ. '**बहुमन्यमानः**' તેને જ સર્વશ્રેષ્ઠ માનનારો. તેથી અત્યંત દુષ્ટ પરિણામવાળો મોહ વ્યાપ્યો છે જેને તે કેવી રીતે '**विरज्येत**' વિરક્ત થાય?।।૧૩।।

दुरन्तमोहत्वं दर्शयन्नाह—

દુષ્પરિણામવાળા મોહને દર્શાવતાં કહે છે—

कुटुम्बपोषाय वियन्निजायु-
र्न बुध्यतेऽर्थं विहतं प्रमत्तः।
सर्वत्र तापत्रयदुःखितात्मा
निर्विद्यते न स्वकुटुम्बरामः॥ १४

કુટુંબનું પોષણ કરવા માટે, નાશ પામતા પોતાના આયુષ્યને અને નાશ પામેલા પોતાના પુરુષાર્થને આ ગાફેલ મનુષ્ય સમજી શકતો નથી, (અને તેથી જ) સર્વત્ર (દૈહિક, દૈવિક અને ભૌતિક–એમ) ત્રણ પ્રકારના તાપથી દુઃખી થયેલા મનવાળો તે વૈરાગ્ય પામતો નથી, કારણ કે પોતાના કુટુમ્બમાં તે રમમાણ છે.।।૧૪।।

कुटुम्बपोषणाय वियत्क्षीयमाणं निजमायुः पुरुषार्थं च विहतं न बुध्यते। अत एव तापत्रयेण दुःखितचित्तोऽपि न निर्विद्यते तत्र दुःखबुद्धिं न करोति। यतः स्वकुटुम्बे रामो रतिर्यस्य॥ १४॥

કુટુમ્બનું પોષણ કરવા માટે '**वियत्**' નાશ પામતા પોતાના આયુષ્યને અને નાશ પામતા પોતાના પુરુષાર્થને સમજી શકતો નથી. આથી જ ત્રણ પ્રકારના તાપથી દુઃખી થયેલો હોવા છતાં પણ '**न निर्विद्यते**' વૈરાગ્ય પામતો નથી, તેમાં દુઃખબુદ્ધિ કરતો નથી, કારણ કે પોતાના કુટુમ્બમાં '**रामः**' પ્રેમ છે જેને।।૧૪।।

प्रत्युत चौर्यं करोतीत्याह—**वित्तेष्विति**।

ઊલટું ચોરી કરે છે, એમ કહે છે—'**वित्तेषु इति।**'

वित्तेषु नित्याभिनिविष्टचेता
विद्वांश्च दोषं परवित्तहर्तुः।
प्रेत्येह चाथाप्यजितेन्द्रियस्त-
दशान्तकामो हरते कुटुम्बी॥ १५

જેનું ચિત્ત સદાય ધનમાં જ ચોંટેલું હોય છે તેવા પારકું ધન હરનારને પરલોકમાં (યમયાતનારૂપ નરક) અને આ લોકમાં (રાજા વગેરેના દંડરૂપ) દોષ પ્રાપ્ત થાય છે, એમ જાણતો હોવા છતાં અજિતેન્દ્રિય, અશાંત કામનાઓવાળો અને કુટુમ્બ-કબીલાવાળો તે પારકું ધન હરે જ છે.।।૧૫।।

नित्यमभिनिविष्टं चेतो यस्य स परवित्तहर्तुः प्रेत्य नरकलक्षणमिह च दण्डादिरूपं दोषं यद्यपि विद्वान् जानन्नथाप्यशान्ताभिलाषस्तत्परवित्तं हरत्येव॥ १५॥

જેનું ચિત્ત સદાય ધનમાં જ ચોંટેલું હોય છે એવા પારકું ધન હરનારને મૃત્યુ પછી પરલોકમાં (યમયાતનારૂપ) નરકપ્રાપ્તિના લક્ષણવાળો અને આ લોકમાં રાજા વગેરેનો દંડ પ્રાપ્ત થવારૂપ દોષ લાગે છે, તે જાણવા છતાં જેની કામનાઓ શાંત નથી થઈ તેવો તે (પ્રવૃદ્ધ વાસનાવાળો) બીજાના ધનની ચોરી કરે જ છે.।।૧૫।।

तदेवं को गृहेषु पुमानित्यादिसप्तभिः श्लोकैरुपपादितम्, गृहादिषु प्रसक्तस्य वैराग्याद्यसंभवमुपसंहरति—**विद्वानिति**।

તો આ પ્રમાણે '**को गृहेषु पुमान्**' (શ્લોક ૯થી૧૫) એમ સાત શ્લોકો દ્વારા સિદ્ધ કરવામાં આવેલી વસ્તુનો ઉપસંહાર કરે છે, કે ગૃહ વગેરેમાં આસક્ત થયેલાને વૈરાગ્યાદિ અસંભવ છે— '**विद्वान् इति**।'

विद्वानपीत्थं दनुजाः कुटुम्बं
पुष्णन्स्वलोकाय न कल्पते वै।
यः स्वीयपारक्यविभिन्नभाव-
स्तमः प्रपद्येत यथा विमूढः॥ १६

હે દાનવો, આ પ્રમાણે (અતિ આસક્તિને કારણે) પરિવારનું પોષણ કરતો તે આત્મ-સાક્ષાત્કાર કરવાને સમર્થ તો થતો જ નથી, પણ વિદ્વાન હોવા છતાં અત્યંત મૂઢ હોય તેમ નરક(ના કારણરૂપ આસક્તિ)ને જ પ્રાપ્ત થાય (છે), કારણ કે 'આ પોતાનું અને આ પારકું' એવી ભેદભાવવાળી તેની ભાવના હોય છે.।।૧૬।।

स्वलोकायात्मपरामर्शाय न कल्पते। किंतु विमूढो यथा तथा विद्वानपि तमोऽभि-निवेशमेव प्रपद्यते। तत्र हेतुः—**य इति**। स्वीयमिदं पारक्यमिदमिति विभिन्नो भावो भावना यस्य सः॥ १६॥

'**स्वलोकाय**' આત્મસાક્ષાત્કાર કરવા માટે સમર્થ નથી થતો, પરંતુ વિદ્વાન હોવા છતાં અત્યંત મૂઢ હોય તેમ '**तमः**' નરકના કારણરૂપ આસક્તિ જ પામે છે. તે માટેનું કારણ— '**यः इति**।' 'આ પોતાનું અને આ પારકું' એવી ભેદભાવવાળી '**भावः**' ભાવના જેની છે તે।।૧૬।।

तस्मात्कौमार एव भागवतान्धर्मानाचरेदिति सहेतुकमुपसंहरति—**यत इति**।

તેથી બાલ્યાવસ્થાથી જ ભગવદ્‌ભક્તોના ધર્મોનું આચરણ કરવું જોઈએ, એમ કારણ આપીને ઉપસંહાર કરે છે— '**यतः इति**।'

यतो न कश्चित् क्व च कुत्रचिद् वा
दीनः स्वमात्मानमलं समर्थः।
विमोचितुं* कामदृशां विहार-
क्रीडामृगो यन्निगडो विसर्गः॥ १७

જે સ્ત્રીઓની દૃષ્ટિમાં કામ છે અને જે સ્ત્રીઓમાંથી સંતતિરૂપ બેડી ઉત્પન્ન થાય છે, તે સ્ત્રીઓને ક્રીડા કરવાના ક્રીડામૃગ જેવો લંપટ એવો કોઈ પણ મનુષ્ય કોઈ પણ કાળે અને કોઈ પણ સ્થળે પોતાની જાતને મુક્ત કરવા સમર્થ થતો નથી,।।૧૭।।

* **अन्वि.—'विमोचितुम्'** આર્ષ પ્રયોગ છે. '**मोचयितुम्**' રૂપ થાય છે (પ્રેરકના પ્રત્યયનો લોપ થયો છે તે આર્ષ છે.)

यतः कश्चिदपि स्वमात्मानं मोचितुं न समर्थस्ततो नारायणमुपेत शरणं यातेत्युत्तरेणान्वयः।

असामर्थ्ये हेतुः—अलं दीनो लम्पटः। अतः कामो दृशि यासां तासां विहारे क्रीडायां निमित्ते क्रीडामृगः। विहारमिति पृथक्पाठे तासां विहारसाधनमात्मानम्। यतस्तासां क्रीडामृगः स इत्यन्वयः।

किंच यद्यासु निगडः शृङ्खलातुल्यो विसर्गः पुत्रपौत्रादिरूपो भवति॥ १७॥

ततो विदूरात् परिहृत्य दैत्या
दैत्येषु सङ्गं विषयात्मकेषु।
उपेत नारायणमादिदेवं
स मुक्तसङ्गैरिषितोऽपवर्गः॥ १८

विदूराद्दूरतः सङ्गं परिहृत्य। यद्वा अविदूराच्छीघ्रं नारायणमुपेतेत्यन्वयः। यस्मात्स एवापवर्ग इषित इष्टः॥ १८॥

अन्वि.—अपवर्गः परमानन्दरूपो मोक्षोऽपि स एव।

बा.प्र.—संसारावधिभूतः परमानन्दरूपो मोक्षः स एव।

भ.मनो.—शरणीकरणीयो नारायण एव मुक्तसङ्गैः परमपुरुषार्थलक्षणमोक्षहेतुभूतः इषित इष्टः।

કારણ કે (ગમે તેટલો વિદ્વાન હોય તો પણ) કોઈ પણ મનુષ્ય પોતાની જાતને મુક્ત કરવાને સમર્થ નથી. તેથી નારાયણને '**उपेत**' શરણે જાઓ, એમ પછીના શ્લોક (૧૮) સાથે સંબંધ છે.

મુક્ત થવા માટે સમર્થ ન હોવા માટેનું કારણ— '**अलम्**' અતિ '**दीनः**' લમ્પટ છે, આથી જે સ્ત્રીઓની દષ્ટિમાં કામ છે તેમની '**विहारे**' ક્રીડામાં નિમિત્તરૂપ ક્રીડામૃગ (રમકડું કે વાંદરો) છે. '**विहारम्**' એમ પૃથક્ પાઠમાં, તે સ્ત્રીઓની ક્રીડાના સાધનરૂપ પોતાને (મુક્ત કરવા ક્યારેય સમર્થ થતો નથી,) કારણ કે તે સ્ત્રીઓના રમકડા જેવો છે, એમ અન્વય છે.

વળી, '**यत्**' જે સ્ત્રીઓમાં '**निगडः**' સાંકળરૂપ '**विसर्गः**' પુત્ર-પૌત્રાદિ સંતતિરૂપ બેડી ઉત્પન્ન થાય છે.।।૧૭।।

માટે હે દૈત્યો, વિષયાસક્ત દૈત્યોનો સંગ દૂરથી જ છોડીને (શીઘ્ર) આદિદેવ નારાયણને શરણે જાઓ, કારણ કે સંસારની આસક્તિ છોડનારા મહાત્માઓ દ્વારા તે જ મોક્ષરૂપે ઈચ્છવામાં આવેલા છે.।।૧૮।।

'**विदूरात्**' દૂરથી જ તેમનો સંગ છોડીને, અથવા (**ततोऽविदूरात्** પાઠમાં) '**अविदूरात्**' શીઘ્ર નારાયણને શરણે જાઓ, એમ અન્વય છે, કારણ કે તે જ મોક્ષરૂપે '**इषितः**' ઈચ્છવામાં આવેલા છે. (અથવા તે જ મોક્ષરૂપ છે અને તે જ પરમ આરાધ્ય ઈષ્ટદેવરૂપ છે.)।।૧૮।।

તે નારાયણ જ પરમાનંદરૂપ મોક્ષ છે.

સંસારની સમાપ્તિરૂપ બનેલા તે નારાયણ જ પરમાનંદરૂપ મોક્ષ છે.

શરણ કરવા યોગ્ય નારાયણ જ આસક્તિરહિત મહાત્માઓ દ્વારા પરમ પુરુષાર્થના લક્ષણરૂપ મોક્ષના હેતુરૂપે ઈચ્છવામાં આવ્યા છે.

ननु बालानामस्माकं तद्भजनमशक्यमिति चेत्तत्राह—**न हीति**।

શંકા કરવામાં આવી છે કે અસુરોના બાળકો જો એમ કહે કે બાળકો એવા અમારે માટે તે પરમાત્માનું ભજન અશક્ય છે, તો તે માટે કહે છે— **'न हि इति।'**

न ह्यच्युतं प्रीणयतो बह्वायासोऽसुरात्मजाः।
आत्मत्वात् सर्वभूतानां सिद्धत्वादिह सर्वतः॥ १९

હે અસુરપુત્રો, ભગવાન અચ્યુતને પ્રસન્ન કરનાર મનુષ્યને ખરેખર, બહુ પરિશ્રમ પડતો નથી, કારણ કે તેઓ સર્વ પ્રાણીઓના આત્મા છે તથા આ સંસારમાં સર્વસ્થળે અને સર્વકાળે સિદ્ધ છે.।।૧૯।।

बह्वायासोऽतिप्रयासः॥ १९॥

'बहु-आयासः' અતિ પ્રયાસ કરવો પડે છે જેને તે ।।૧૯।।

आत्मत्वात्सर्वत्र सिद्धत्वादिति च हेतुद्वयमुपपादयति—**परावरेष्विति** चतुर्भिः।

'સર્વ પ્રાણીઓના આત્મારૂપ હોવાથી અને સર્વસ્થળે અને સર્વકાળે સિદ્ધ હોવાથી' એમ જે બે કારણ કહ્યાં, તે ચાર શ્લોકોથી સિદ્ધ કરે છે— **'पर-अवरेषु इति।'**

परावरेषु भूतेषु ब्रह्मान्तस्थावरादिषु।
भौतिकेषु विकारेषु भूतेष्वथ महत्सु च॥ २०

गुणेषु गुणसाम्ये च गुणव्यतिकरे तथा।
एक एव परो ह्यात्मा भगवानीश्वरोऽव्ययः॥ २१

સ્થાવર (તણખલા) વગેરેથી માંડીને (બ્રહ્માજી સુધીનાં) નાનાં-મોટાં (સર્વ) પ્રાણીઓમાં, (ઘડા વગેરે જડ) ભૌતિક કાર્યોમાં અને (આકાશાદિ) પંચમહાભૂતોમાં, (સત્ત્વાદિ ત્રણ) ગુણોમાં, ગુણોની સામ્યાવસ્થારૂપ પ્રકૃતિમાં તથા ગુણોની વિષમ અવસ્થારૂપ મહત્તત્ત્વાદિમાં ખરેખર, એક જ બ્રહ્મસ્વરૂપ ષડૈશ્વર્યવાન ઈશ્વર અવિનાશી પરમાત્મા (રહેલા) છે.।।૨૦।।૨૧।।

ब्रह्मा अन्तो येषां स्थावर आदिर्येषां तेषु भूतेषु जीवेषु। भौतिकेष्वजीवेषु घटादिषु। महत्सु च भूतेष्वाकाशादिषु॥ २०॥

બ્રહ્માજી અંત છે જેમનો અને (તણખલું વગેરે) સ્થાવર આદિ છે જેમનો તે **'भूतेषु'** પ્રાણીઓમાં, **'भौतिकेषु'** નિર્જીવ ઘડા વગેરે જડ પદાર્થોમાં અને આકાશાદિ મહાભૂતોમાં,।।૨૦।।

गुणसाम्ये प्रधाने। गुणव्यतिकरे महत्तत्त्वादौ च। परो ब्रह्मस्वरूपः॥ २१॥

'गुणसाम्ये' ગુણોની સામ્યાવસ્થારૂપ પ્રકૃતિમાં, **'गुणव्यतिकरे'** ગુણોના વત્તાઓછા પ્રમાણના મિશ્રણરૂપ મહત્તત્ત્વાદિમાં પણ **'परः'** બ્રહ્મસ્વરૂપ ।।૨૧।।

कथं तर्हि द्रष्टृदृश्यभोक्तृभोग्यादिभेदो माययेत्याह—

(પરમાત્મા વિકલ્પરહિત એક જ છે,) તો પછી દ્રષ્ટા-દશ્ય, ભોક્તા-ભોગ્ય વગેરે ભેદ કેમ છે? તે માટે ઉત્તર આપે છે— '**मायया इति।**'

प्रत्यगात्मस्वरूपेण दृश्यरूपेण च स्वयम्।
व्याप्यव्यापकनिर्देश्यो ह्यनिर्देश्योऽविकल्पितः॥ २२

(વાસ્તવિક રીતે પરમાત્મા) પોતે ભેદરહિત અને દર્શાવી ન શકાય તેવા હોવા છતાં (માયાને કારણે) દ્રષ્ટાસ્વરૂપે વ્યાપક હોવાથી અને દશ્ય (દેહાદિરૂપે) વ્યાપ્ય હોવાથી દર્શાવી શકાય તેવા છે.॥૨૨॥

प्रत्यगात्मा द्रष्टा भोक्ता तत्स्वरूपेण व्यापकतया निर्देश्यः। दृश्यं भोग्यं देहादि तद्रूपेण च व्याप्यतया निर्देश्यो मायया ईयत इत्युत्तरेणान्वयः।

'**प्रत्यक्-आत्मा**' (સર્વ જીવોના) દ્રષ્ટા અને ભોક્તા, તે સ્વરૂપે વ્યાપક તરીકે દર્શાવી શકાય તેવા તથા દશ્ય અને ભોગ્ય દેહાદિ, તે રૂપે વ્યાપ્ય હોવાથી પણ દર્શાવી શકાય તેવા, માયાને કારણે દેખાય છે, એમ પછીના શ્લોક (૨૩) સાથે અન્વય છે.

वस्तुतस्तु स्वयमविकल्पितोऽनिर्देश्योऽपि सन्। यद्वा अनिर्देश्योऽप्येवं निर्देश्यः सन् विकल्पित ईयत इत्यन्वयः॥ २२॥

('**ह्यनिर्देश्योऽविकल्पितः**') પરંતુ વાસ્તવિક રીતે પોતે '**अविकल्पितः**' ભેદરહિત અને '**अनिर्देश्यः**' દર્શાવી ન શકાય તેવા હોવા છતાં— અથવા (**ह्यनिर्देश्यो विकल्पितः**) દર્શાવી ન શકાય તેવા હોવા છતાં આ પ્રમાણે દર્શાવી શકાય તેવા થઈ (જાતિ, ગુણ વગેરે) ભેદવાળા પ્રતીત થાય છે, એમ અન્વય છે.॥૨૨॥

विजय.—'विकल्पितः' 'विविधक्लृप्तः'

વિકલ્પિત એટલે વિવિધ રીતે કલ્પના કરવામાં આવેલા.

वि.चक्र.—उपासकभेदैर्ब्रह्म परमात्मा भगवानित्येवं विकल्पविषयीकृतः।

(બીજો અર્થ) ઉપાસકોના ભેદને કારણે બ્રહ્મ, પરમાત્મા, ભગવાન— એમ વિકલ્પના વિષયરૂપ કરવામાં આવેલા પરમાત્મા.

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।

બ્રહ્મ, પરમાત્મા, ભગવાન એમ શબ્દો દ્વારા વર્ણવાયેલા (**શ્રીમદ્ભા. ૧/૨/૧૧**)

केवलानुभवानन्दस्वरूपः परमेश्वरः।
माययाऽन्तर्हितैश्वर्य ईयते गुणसर्गया॥ २३

કેવળ અનુભવાત્મક, આનંદસ્વરૂપ પરમેશ્વર ગુણોની સૃષ્ટિ કરનારી માયા દ્વારા પોતાના ઐશ્વર્યને ઢાંકી દેનારા પ્રતીત થાય છે.॥૨૩॥

यतः केवलोऽनुभवात्मक आनन्द एव स्वरूपं यस्य।

ननु स एव चेत्सर्वत्र तर्हि सर्वत्र सर्वज्ञत्वाद्युपलभ्येत तत्राह—

गुणात्मकः सर्गो यस्याः सा गुणसर्गा तया माययान्तर्हितमैश्वर्यं येन सः॥ २३॥

वंशीधरी—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

इति भगवदुक्तेः भगवद्भक्त्यैव मायातरणे सति स यथायोगं भक्तितारतम्येन निर्देश्यो भवतीति भावः।

तस्मात् सर्वेषु भूतेषु दयां कुरुत सौहृदम्।
आसुरं भावमुन्मुच्य यया तुष्यत्यधोक्षजः॥ २४

यस्मादेवं तस्मात्सर्वेषु भूतेषु यथोचितं दयां सौहृदं च कुरुत। यया दयया। उन्मुच्य संत्यज्य॥ २४॥

ततः किमत आह—

तुष्टे च तत्र किमलभ्यमनन्त आद्ये
किं तैर्गुणव्यतिकरादिह ये स्वसिद्धाः।
धर्मादयः किमगुणेन च काङ्क्षितेन
सारंजुषां चरणयोरुपगायतां नः॥ २५

(પરમાત્મા અનિર્દેશ્ય અને અવિકલ્પિત છે,) કારણ કે કેવળ અનુભવાત્મક આનંદ જ તેમનું સ્વરૂપ છે.

કોઈ શંકા કરે છે કે જો તે ભગવાન જ સર્વત્ર છે, તો પછી સર્વત્ર સર્વજ્ઞત્વ વગેરે પ્રાપ્ત થવાં જોઈએ. તે માટે ઉત્તર આપે છે—

ગુણાત્મક સૃષ્ટિ છે જેની તે ગુણસૃષ્ટિવાળી, તે માયાને કારણે છુપાવવામાં આવ્યું છે ઐશ્વર્ય જેના દ્વારા તે પરમેશ્વર।।૨૩।।

"કારણ કે મારી આ અલૌકિક ત્રિગુણમયી માયા તરવી મુશ્કેલ છે. પરંતુ જે પુરુષો મારે જ શરણે આવે છે, તેઓ આ માયાને તરી જાય છે." (ગીતા ૭/૧૪) એમ ભગવાનની વાણી છે, તેથી ભગવાનની ભક્તિથી જ માયા તરી જવામાં આવે ત્યારે યોગ્યતા અનુસાર ઓછા-વત્તી ભક્તિ પ્રમાણે તે પરમાત્મા નિર્દેશ કરવા યોગ્ય બને છે, એવો ભાવ છે.

તેથી આસુરી ભાવને છોડીને સર્વ પ્રાણીઓ ઉપર દયા અને સ્નેહ કરો, જેનાથી ભગવાન અધોક્ષજ પ્રસન્ન થાય છે.।।૨૪।।

જે કારણે આમ છે (ભગવાન સર્વના અંતરાત્મા છે,) તેથી સર્વ પ્રાણીઓ ઉપર યોગ્ય રીતે દયા અને સૌહાર્દ રાખો. '**यया**' જે દયા કરવાથી— '**उन्मुच्य**' (આસુરીભાવને) સંપૂર્ણપણે છોડીને।।૨૪।।

(અધોક્ષજ ભગવાન પ્રસન્ન થાય) પછી શું? તે કહે છે—

તે આદિનારાયણ ભગવાન અનંત પ્રસન્ન થાય ત્યારે શું અલભ્ય છે? ગુણોના પરિણામ(રૂપ દૈવ)ને કારણે આ લોકમાં પ્રયત્ન કર્યા વિના જાતે સિદ્ધ થયેલા ધર્માદિથી શું પ્રયોજન છે? (તે અનંત ભગવાનના) ચરણોનું કીર્તન કરનારા અને તેમના ચરણોના અમૃતનું સેવન કરનારા અમને કૈવલ્ય (મોક્ષ) ઈચ્છવાથી પણ શું પ્રયોજન છે?।।૨૫।।

तुष्टे च तत्र तस्मिन्किमलभ्यम्। तथापि गुणपरिणामाद्दैवादेव स्वसिद्धा अयत्नतः सिद्धा ये धर्मादयस्तैः किम्। अगुणेन च मोक्षेण काङ्क्षितेन किम्। तमुपगायतां नोऽस्माकम–काङ्क्षितस्यापि तस्य सिद्धेः। यद्वा मा भून्मोक्षस्तस्य चरणयोः सारंजुषां सुधां सेवमानानां तेनापि किमित्यर्थः॥ २५॥

તે પ્રસન્ન થાય ત્યારે શું અલભ્ય છે? તો પણ (સત્ત્વાદિ) ગુણોના પરિણામરૂપ દૈવને કારણે જ ‘**स्वसिद्धाः**’ (પોતાની મેળે જ) પ્રયત્ન કર્યા વિના સિદ્ધ થયેલા જે ધર્માદિ છે, તેમનાથી શું પ્રયોજન છે? ‘**अगुणेन**’ ત્રણેય ગુણોથી રહિત એવા કૈવલ્ય મોક્ષને ઈચ્છવાથી પણ શું પ્રયોજન છે? કારણ કે ભગવાનના (ગુણ, નામ, લીલા વગેરેના અખંડ)કીર્તનમાં નિષ્ઠા રાખનારા ‘**नः**’ અમને તે મોક્ષ આકાંક્ષા વગર પણ સિદ્ધ થાય છે. અથવા ચરણોના ‘**सारंजुषाम्**’ અમૃતનું સેવન કરનારાઓનો મોક્ષ ન થાઓ! તેનાથી (મોક્ષથી) પણ શું પ્રયોજન છે? એમ અર્થ છે.।।૨૫।।

वि.चक्र.—उप मोक्षादप्याधिक्येन गायतामिति चरणयोः कमलत्वं सारस्य सौरभ्यमाधुर्यादित्वं तत्सेविनां भ्रमरत्वमारोपितम्।

‘**उप**’ ભગવાનનાં ચરણકમળને મોક્ષથી પણ અધિક ગણીને ‘**गायताम्**’ કીર્તન કરનારા ભક્તજનોને (મોક્ષથી શું પ્રયોજન છે?), કમળરૂપ ચરણોની સુંદરતા, સૌરભ, માધુર્ય વગેરેનું સેવન કરનારાઓ ઉપર ભ્રમરત્વનું આરોપણ કરવામાં આવ્યું છે.

ननु च धर्मादेरपुरुषार्थत्वे किमित्याचार्याभ्यां वेदोक्तत्वेन सत्य एवाभिहितस्तत्राह—

કોઈ શંકા કરે કે ધર્માદિ પુરુષાર્થ શા માટે નથી? કારણ કે એ તો બંને આચાર્યો (શંડ-મર્ક) દ્વારા વેદોક્ત હોવાથી સત્ય જ કહેવાયા છે. તે માટે ઉત્તર આપે છે—

धर्मार्थकाम इति योऽभिहितस्त्रिवर्ग
ईक्षा त्रयी नयदमौ विविधा च वार्ता।
मन्ये तदेतदखिलं निगमस्य सत्यं
स्वात्मार्पणं स्वसुहृदः परमस्य पुंसः॥ २६

ધર્મ, અર્થ, કામ– એ જે ત્રિવર્ગ કહેવામાં આવ્યો છે, તે માટે આત્મવિદ્યા, કર્મવિદ્યા, તર્ક અને દંડનીતિ તથા અનેક પ્રકારની આજીવિકા છે. તે આ સર્વ, વેદોના પ્રતિપાદ્ય વિષયો સ્વ-અંતર્યામી, પરમ પુરુષ ભગવાનને આત્મનિવેદન કરવાના સાધનરૂપ હોય તો તે સાર્થક છે, એમ હું માનું છું.।।૨૬।।

धर्मोऽर्थः कामश्चेति यस्त्रिवर्गस्तदर्थं च य ईक्षाद्या अभिहिताः। ईक्षा आत्मविद्या त्रयी कर्मविद्या। नयदमौ तर्को दण्डनीतिश्च। विविधा च वार्ता जीविका। तदेतत्सर्वं निगमस्यार्थजातं स्वसुहृदः स्वान्तर्यामिणः परमस्य पुंसः स्वात्मार्पणसाधनं चेत्तर्हि सर्वं सत्यं मन्ये। सत्यपरत्वात्। अन्यथा तदसत्यमेव, यद्वा तदेतदखिलं निगमस्य त्रैगुण्यविषयस्य प्रतिपाद्यं मन्ये। सत्यं पुनर्निस्त्रैगुण्यलक्षणं परमस्य पुंसः स्वात्मार्पणमेवेत्यर्थः। तदुक्तं भगवता—

'त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।'

इति॥ २६ ॥

ધર્મ, અર્થ અને કામ– એ જે ત્રિવર્ગ છે તે પ્રાપ્ત કરવા માટે જે ઈક્ષા વગેરે કહ્યાં છે, '**ईक्षा**' આત્મવિદ્યા, '**त्रयी**' કર્મવિદ્યા, '**नयदमौ**' તર્ક અને દંડનીતિ તથા અનેક પ્રકારની આજીવિકા– એ સર્વ વેદનો વિષયસમૂહ છે, '**स्वसुहृदः**' પોતાના અંતર્યામી, પરમપુરુષને પોતાની જાત સમર્પણ કરવા માટે જો સાધનરૂપ હોય તો જ તે સર્વ સત્ય છે, એમ હું માનું છું, કારણ કે તે સત્યરૂપ ધ્યેયવાળા છે, નહીં તો તે અસત્ય જ છે. અથવા, એ સર્વ શાસ્ત્રો ત્રણે ગુણોના વિષયવાળા વેદોના પ્રતિપાદ્ય વિષયો છે, એમ હું માનું છું. ત્રણ ગુણોથી પર એવા પરમપુરુષને કરેલું પોતાના આત્માનું સમર્પણ જ સત્ય છે, એમ અર્થ છે. ભગવાન દ્વારા તે જ કહેવામાં આવ્યું છે. 'હે અર્જુન, સર્વ વેદો ત્રણે ગુણોના જ વિષયવાળા છે, માટે તું ત્રણ ગુણોથી પર થઈ જા.' (ગીતા-૨/૪૫)।।૨૬।।

तेषां पुनर्विश्वासार्थं गुरुसंप्रदायमाह— **ज्ञानमिति**।

વળી, તે દૈત્યબાળકોને વિશ્વાસ પડે તે માટે પ્રહ્લાદજી ગુરુસંપ્રદાય કહે છે– '**ज्ञानम् इति।**'

ज्ञानं तदेतदमलं दुरवापमाह
नारायणो नरसखः किल नारदाय।
एकान्तिनां भगवतस्तदकिञ्चनानां
पादारविन्दरजसाऽऽप्लुतदेहिनां स्यात्॥ २७

(બદરિકાશ્રમવાસી) નરસખા નારાયણ સંસારના મળને દૂર કરનાર આ દુર્લભ જ્ઞાનનો નારદજીને ઉપદેશ કરે છે. ભગવાનના અનન્ય પ્રેમી, અકિંચન ભક્તોનાં ચરણકમળની રજથી સ્નાન કરનારા (સર્વ) દેહધારીઓને તે જ્ઞાન થાય છે.।।૨૭।।

यत्र नारदःश्रोता तत्र कुतो मादृशानामधिकार इति मा शङ्कीत्याह—भगवत एकान्त-भक्तानां यत्पादरजस्तेनाप्लुतानां स्नातानां देहिनां सर्वेषामपि तज्ज्ञानं स्यान्न तूत्तमानामेवेति नियमः॥ २७॥

જ્યાં નારદજી શ્રોતા છે ત્યાં મારા જેવાઓનો શો અધિકાર? એવી શંકા ન કરશો, એમ કહે છે– ભગવાનના અનન્ય પ્રેમી ભક્તોની જે ચરણરજ છે તેનાથી '**आप्लुतानाम्**' સ્નાન કરનારા સર્વ દેહધારીઓને તે જ્ઞાન થાય છે, ઉત્તમ પુરષોને જ આ જ્ઞાન થાય એવો નિયમ નથી.।।૨૭।।

अन्वि.—अकिञ्चनानां भगवदतिरिक्तेच्छारहितानाम्।

श्रुतमेतन्मया पूर्वं ज्ञानं विज्ञानसंयुतम्।
धर्मं भागवतं शुद्धं नारदाद् देवदर्शनात्॥ २८

अत एव मयापि पूर्वं नारदाच्छ्रुतम्। विज्ञानसहितमनुभवपर्यन्तं ज्ञानं धर्मं च श्रुतम् ॥ २८ ॥

तत्रातिविस्मिताः पृच्छन्ति—**प्रह्लादेति**।

दैत्यपुत्रा ऊचुः

प्रह्लाद त्वं वयं चापि नर्तेऽन्यं विद्महे गुरुम्।
एताभ्यां गुरुपुत्राभ्यां बालानामपि हीश्वरौ॥ २९

हे प्रह्लाद, त्वं वयमेताभ्यां शण्डामर्काभ्यामृतेऽन्यं गुरुं न विद्मः।

एतदागमनात्पूर्वमेवाहं नारदपार्श्वं गत इति चेत्तत्राहुः—बालानामप्यतिशिशूनामस्माकमेतावीश्वरौ नियन्तारावतस्तवान्यत्र गमनं न संभवति॥ २९ ॥

स एवात्रागत इत्यपि न संभवतीत्याहुः—**बालस्येति**।

बालस्यान्तःपुरस्थस्य महत्सङ्गो दुरन्वयः।
छिन्धि नः संशयं सौम्य स्याच्चेद्विश्रम्भकारणम्॥
॥ ३० ॥

ભગવાન સિવાયની કોઈ પણ ઈચ્છા વિનાના અકિંચન ભક્તોની (ચરણરજ)

આ અનુભવપર્યન્તનું જ્ઞાન તથા શુદ્ધ ભાગવતધર્મ ભગવાનનાં દર્શન કરનારા નારદજી પાસેથી પૂર્વે મેં શ્રવણ કર્યાં છે.।।૨૮।।

(આ દુર્લભ જ્ઞાન ઉત્તમ પુરુષોને જ થાય એવો નિયમ નથી,) એટલે જ મેં પણ પૂર્વે નારદજી પાસેથી શ્રવણ કર્યું છે. '**विज्ञानसहितम्**' અનુભવસહિત જ્ઞાનનું તથા ધર્મનું શ્રવણ કર્યું છે.।।૨૮।।

ત્યારે અત્યંત આશ્ચર્ય પામેલા દૈત્ય બાળકો પ્રહ્લાદજીને પૂછે છે— '**प्रह्लाद इति।**'

દૈત્યપુત્રો બોલ્યા – હે પ્રહ્લાદજી, આ બંને ગુરુપુત્રો સિવાય બીજા ગુરુને નથી તમે જાણતા કે નથી અમે. બાળકો એવા આપણા પણ આ બંને જ શાસકો છે.।।૨૯।।

હે પ્રહ્લાદ, આ બંને શંડ અને મર્ક સિવાય બીજા ગુરુને તમે અને અમે જાણતા નથી.

અહીં આવતાં પહેલાં હું નારદજી પાસે ગયો હતો, એમ જો (પ્રહ્લાદજી કહેતા) હોય તો તે માટે બાળકો કહે છે, કે '**बालानाम् अपि।**' અતિશય નાના બાળકો એવા આપણા આ બંને જ '**ईश्वरौ**' નિયન્તા હતા, આથી બીજે જવાનું તમારે માટે સંભવિત હતું જ નહીં.।।૨૯।।

તે નારદજી જ અહીં આવ્યા હતા, એ પણ સંભવિત નથી, એમ બાળકો કહે છે— '**बालस्य इति।**'

હે સૌમ્ય, અંતઃપુરમાં રહેનાર બાળક એવા તમારો મહાપુરુષ સાથે સંગ થવો દુર્ઘટ છે. તો તેમાં વિશ્વાસ બેસે તેવું કારણ જો હોય તો અમારો સંશય દૂર કરો.।।૩૦।।

दुरन्वयो दुर्घटः। विश्रम्भकारणं विश्वासहेतुः॥ ३०॥

'**दुरन्वयः**' અસંગત– '**विश्रम्भकारणम्**' વિશ્વાસનું કારણ।।૩૦।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे प्रह्लादानुचरिते षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

*****

अथ सप्तमोऽध्यायः

પ્રહ્‌લાદજીએ માતાના ગર્ભમાં મેળવેલા નારદજીના ઉપદેશનું વર્ણન

सप्तमे मातृगर्भस्थे स्वस्मिन्नारदभाषितम्।
प्रह्लादो वर्णयामास शिष्यप्रत्ययसिद्धये॥ १

(દૈત્ય) શિષ્યોને વિશ્વાસ પડે તે માટે પ્રહ્‌લાદજીએ પોતાની માતાના ગર્ભમાં હતા ત્યારે નારદજી દ્વારા કહેવામાં આવેલું (પૂર્વોક્ત જ્ઞાન) વર્ણવ્યું હતું, (તે કથા) સાતમા અધ્યાયમાં છે. ।।૧।।

अश्रावि नारदादेतन्मया गर्भ इतीरितुम्।
तत्प्रस्तावकथामाह पद्यैः षोडशभिः सुधीः॥ २

નારદજી પાસેથી ગર્ભમાં (રહીને) મેં આ શ્રવણ કર્યું હતું, એ કહેવા માટે પોતે કરેલા શ્રવણના પ્રસંગની કથાને વિદ્વાન પ્રહ્‌લાદજી સોળ શ્લોકો દ્વારા કહે છે. ।।૨।।

नारद उवाच

एवं दैत्यसुतैः पृष्टो महाभागवतोऽसुरः।
उवाच स्मयमानांस्तान्स्मरन् मदनुभाषितम्॥ १
॥ १ ॥

નારદજી બોલ્યા – (હે યુધિષ્ઠિર,) દૈત્યકુમારો દ્વારા જેમને આ પ્રમાણે પૂછવામાં આવ્યું તે મહાન ભગવદ્‌ભક્ત અસુર(શ્રેષ્ઠ) પ્રહ્‌લાદજી આશ્ચર્યચકિત થયેલા તે દૈત્યકુમારોને (પૂર્વે) મેં કહેલા ઉપદેશનું સ્મરણ કરતા કહેવા લાગ્યા.।।૧।।૧।।

प्रह्लाद उवाच

पितरि प्रस्थितेऽस्माकं तपसे मन्दराचलम्।
युद्धोद्यमं परं चक्रुर्विबुधा दानवान्प्रति॥ २

पिपीलिकैरहिरिव दिष्ट्या लोकोपतापनः।
पापेन पापोऽभक्षीति वादिनो वासवादयः॥ ३

પ્રહ્‌લાદજી બોલ્યા – અમારા પિતા (હિરણ્યકશિપુ)એ તપ કરવા માટે મંદરાચળ ઉપર પ્રસ્થાન કર્યું ત્યારે, 'કીડીઓ દ્વારા જેમ સાપ ખાઈ જવામાં આવે તેમ (પોતે જ કરેલા) પાપ વડે, લોકોને દુઃખ દેનાર પાપી હિરણ્યકશિપુ ખાઈ જવામાં આવ્યો, એ સારું થયું.' એમ (હર્ષથી) બોલતા વાસવ (ઈન્દ્ર) વગેરે દેવોએ દાનવો સામે યુદ્ધ કરવાનો મહાન ઉદ્યમ કર્યો.।।૨।।૩।।

अस्माकं पितरि हिरण्यकशिपौ। स्वकृतेनैव पापेन पापोऽसावभक्षि भक्षित इति हर्षेण वदन्तो युद्धोद्यमं चक्रुः ॥ २ ॥ ३ ॥

અમારા પિતા હિરણ્યકશિપુએ (પ્રસ્થાન કર્યું) ત્યારે, પોતે જ કરેલા પાપ વડે પાપી એવો એ હિરણ્યકશિપુ '**अभक्षि**' ખાઈ જવામાં આવ્યો, એમ હર્ષથી બોલતા દેવોએ યુદ્ધ કરવાનો ઉદ્યમ કર્યો.।।૨।।૩।।

तेषामतिबलोद्योगं निशम्यासुरयूथपाः ।
वध्यमानाः सुरैर्भीता दुद्रुवुः सर्वतोदिशम् ॥ ४ ॥ ४ ॥

તે દેવોનો (યુદ્ધ માટેનો) અતિ બળવાન ઉદ્યમ જોઈને દેવો દ્વારા વધ કરાતા, ભયભીત થયેલા અસુર સેનાધિપતિઓ સર્વ દિશાઓમાં પલાયન થઈ ગયા.।।૪।।૪।।

कलत्रपुत्रमित्राप्तान्गृहान्पशुपरिच्छदान् ।
नावेक्षमाणास्त्वरिताः सर्वे प्राणपरीप्सवः ॥ ५ ॥ ५ ॥

પત્ની, પુત્ર, મિત્ર, વિશ્વસનીય જનો, ઘર, પશુ, સાજ-સામાન (કશાય)ની દરકાર ન કરતા (કેવળ) પ્રાણ ટકાવવા ઈચ્છતા સર્વે (અસુરો) ઉતાવળા થઈ (નાઠા).।।૫।।૫।।

व्यलुम्पन् राजशिबिरममरा जयकाङ्क्षिणः ।
इन्द्रस्तु राजमहिषीं मातरं मम चाग्रहीत् ॥ ६

વિજયની આકાંક્ષાવાળા દેવોએ રાજનિવાસને લૂંટી લીધો અને ઈન્દ્રે તો રાજરાણી મારી માતા (કયાધૂ)ને પકડી લીધી.।।૬।।

राज्ञः शिबिरमावासं व्यलुम्पन्सर्वस्वापहारेण नाशितवन्तः ॥ ६ ॥

રાજાના '**शिबिरम्**' નિવાસને– '**व्यलुम्पन्**' સર્વસ્વ લૂંટીને નષ્ટ કર્યો ।।૬।।

नीयमानां भयोद्विग्नां रुदतीं कुररीमिव ।
यदृच्छयाऽऽगतस्तत्र देवर्षिर्ददृशे पथि ॥ ७ ॥ ७ ॥

ભયથી ઉદ્વેગ પામેલી માદા ક્રૌંચ પંખીની જેમ આક્રંદ કરતી, (ઈન્દ્ર દ્વારા પરાણે) લઈ જવામાં આવતી (મારી માતા)ને ત્યાં રસ્તામાં દૈવેચ્છાથી આવી ચડેલા દેવર્ષિ નારદજીએ જોઈ.।।૭।।૭।।

प्राह मैनां सुरपते नेतुमर्हस्यनागसम् ।
मुञ्च मुञ्च महाभाग सतीं परपरिग्रहम् ॥ ८

અને કહ્યું, 'હે સુરપતિ, આ નિરપરાધી સ્ત્રીને લઈ જવાનું તને શોભતું નથી. હે મહાભાગ્યવાન, સતી એવી આ પરસ્ત્રીને તું છોડી દે, છોડી દે.'।।૮।।

अनागसं निरपराधामेनां नेतुं माऽर्हसीति प्राह ॥ ८ ॥

'**अनागसम्**' નિર્દોષ એવી આને લઈ જવાને તું યોગ્ય નથી, એમ કહ્યું.।।૮।।

इन्द्र उवाच

आस्तेऽस्या जठरे वीर्यमविषह्यं सुरद्विषः ।
आस्यतां यावत्प्रसवं मोक्ष्येऽर्थपदवीं गतः ॥ ९

ઈન્દ્ર બોલ્યા – આના પેટમાં દેવદ્રોહી હિરણ્યકશિપુનું અસહ્ય વીર્ય રહેલું છે. આથી પ્રસવ થાય ત્યાં સુધી ભલે અહીં રહે. (મારું) કાર્ય સાધી, તેને હું છોડી મૂકીશ.।।૯।।

अविषह्यं दुःसहम्। अतोऽनया प्रसवपर्यन्तमत्रास्यताम्। ततश्चार्थस्य पदवीं मार्गं गतः प्राप्तः सन्। जातं पुत्रं हत्वा मोक्ष्यामीत्यर्थः ॥ ९ ॥

'अविषह्यम्' અસહ્ય, વીર્ય ધારણ કરનારી હોવાથી પ્રસવ થાય ત્યાં સુધી આના દ્વારા અહીં (મારા કારાગારમાં) રહેવામાં આવે. પછી કાર્યના **'पदवीम्'** માર્ગને **'गतः'** પ્રાપ્ત થઈ, અર્થાત્ પ્રયોજન સાધી, જન્મેલો પુત્ર હણીને છોડી મૂકીશ, એમ અર્થ છે.।।૯।।

नारद उवाच

अयं निष्किल्बिषः साक्षान्महाभागवतो महान्।
त्वया न प्राप्स्यते संस्थामनन्तानुचरो बली ॥ ॥ १० ॥

નારદજી બોલ્યા – આ નિષ્પાપ (શિશુ) તારાથી મૃત્યુ નહીં પામે, (કારણ કે) આ (બાળક પોતાના ગુણોથી) મહાન છે, મહા (પ્રભાવશાળી) ભગવદ્ભક્ત છે (ભગવાન દ્વારા સ્વકીયરૂપે અંગીકાર કરવામાં આવેલો છે.), અનંત ભગવાનનો દાસ છે અને મહાબળસંપન્ન છે.।।૧૦।।

साक्षात्स्वगुणैरेव महान्न तु पित्रादि-संबन्धात्। त्वया हेतुभूतेन संस्थां मृत्युं न यास्यति। तत्र हेतवः—निष्किल्बिष इत्यादयः ॥ १० ॥

'साक्षात्' પોતાના જ ગુણોથી મહાન છે, નહીં કે પિતા વગેરેના સંબંધને કારણે– **'त्वया'** તારા કારણે આ **'संस्थाम्'** મૃત્યુ નહીં પામે. તે માટેનાં કારણો– સકળ દોષોથી રહિત છે વગેરે ।।૧૦।।

इत्युक्तस्तां विहायेन्द्रो देवर्षेर्मानयन्वचः।
अनन्तप्रियभक्त्यैनां परिक्रम्य दिवं ययौ ॥ ११

આમ, કહેવામાં આવેલો અને દેવર્ષિ નારદના વચનને માન આપતો ઈન્દ્ર તેને છોડીને, (ગર્ભમાં) અનંત ભગવાનનો પ્રિય ભક્ત છે, એવા મારા માટેના ભાવને કારણે એની (કયાધૂની) પ્રદક્ષિણા કરીને સ્વર્ગમાં ગયો. ।।૧૧।।

अनन्तस्य प्रियो योऽहं, स वा प्रियो यस्य तस्य मम भक्त्या एनां प्रदक्षिणीकृत्य ॥ ११ ॥

અનંત ભગવાનને પ્રિય એવો જે હું છું અથવા તે અનંત ભગવાન જેને પ્રિય છે તેવા મારા માટેના ભાવને કારણે એની (કયાધૂની) પ્રદક્ષિણા કરીને।।૧૧।।

ततो नो मातरमृषिः समानीय निजाश्रमम्।
आश्वास्येहोष्यतां वत्से यावत् ते भर्तुरागमः ॥ १२

પછી ઋષિ નારદજીએ અમારી માતાને પોતાના આશ્રમમાં સન્માનપૂર્વક લઈ જઈ આશ્વાસન આપી કહ્યું, 'દીકરી, તારો પતિ (પાછો) આવે ત્યાં સુધી તું અહીં રહેજે.'।।૧૨।।

इहोच्यतामित्याहेति शेषः ॥ १२ ॥

અહીં રહેજે. 'એમ કહ્યું,' એટલું શેષ છે. (તે ઉમેરવું.)।।૧૨।।

(उष्यताम्—वस् नुं भावे, आज्ञार्थ त्रीजो पु. એ.વ.)

वंशीधरी—'निजाश्रमम्' यद्यपि दक्षशापान्नारदस्याश्रमो नास्ति तथापि तत्कृपया तदैवाश्रमं कल्पयित्वा तां तत्र नीतवान्।

यद्वा—निजानां स्वीयानामृषीणामाश्रमो निजाश्रमस्तं निजस्य स्वस्यात्मभूतस्य हरेराश्रमो गन्धमादनादिर्निजाश्रमस्तमिति वा।

यद्वा—निजस्य स्वस्यैवाश्रमस्तम्।
'श्रुत्वैतन्नारदो वाक्यं नरनारायणोदितम्।
हिमवन्तं जगामाशु यत्रास्य स्वक आश्रमः'॥
इति शान्तिपर्वणि नारायणीयोपाख्यानोक्तेः।

यद्वा—'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बिनी' इति न्यायात् 'अविभक्तधनाः सन्तः' इति न्यायात् वा यस्य कस्याप्याश्रमो निजाश्रम एव।

तथेत्यवात्सीद् देवर्षेरन्ति साप्यकुतोभया।
यावद् दैत्यपतिर्घोरात् तपसो न न्यवर्तत॥ १३

अन्ति समीपे॥ १३॥

ऋषिं पर्यचरत् तत्र भक्त्या परमया सती।
अन्तर्वत्नी स्वगर्भस्य क्षेमायेच्छाप्रसूतये॥ १४

अन्तर्वत्नी गर्भिणी। इच्छया भर्तुरागमनानन्तरं प्रसूतये। एवमपि स्वगर्भस्य क्षेमाय॥ १४॥

(**उष्यताम्—** $\sqrt{\text{वस्}}$ नुं भावे, आज्ञार्थ त्रीजो पु. એ.વ.)

જો કે દક્ષના શાપને કારણે નારદજીનો આશ્રમ હતો જ નહીં, તેમ છતાં તે શ્રીહરિની કૃપાથી તે જ સ્થળે આશ્રમ રચીને તે (કયાધૂ)ને ત્યાં લઈ ગયા.

અથવા– પોતાના ઋષિઓનો આશ્રમ એટલે '**निज-आश्रमः**' અથવા પોતાના આત્મસ્વરૂપ શ્રીહરિનો ગંધમાદનાદિ પર્વતરૂપી આશ્રમ એ પોતાનો આશ્રમ.

અથવા 'નરનારાયણે કહેલું વચન સાંભળીને નારદજી શીઘ્ર હિમાલય ઉપર ગયા, જ્યાં તેમનો પોતાનો આશ્રમ છે.' એમ (મહાભારતના) શાંતિપર્વના નારાયણીય ઉપાખ્યાનમાં કહેવામાં આવ્યું છે.

અથવા– 'વિશાળ હૃદયવાળા જનો માટે તો સમગ્ર ભૂતળ જ એક પરિવાર છે.' (હિતોપદેશ) એ ન્યાયથી અથવા 'સન્તોના ધનના ભાગલા ન પડે. એ ન્યાયે જે કોઈનો પણ આશ્રમ હોય તે પોતાનો જ આશ્રમ.

'ભલે' એમ કહી નિર્ભય બનેલી તે મારી માતા પણ જ્યાં સુધી દૈત્યપતિ (મારા પિતા) ઘોર તપશ્ચર્યાથી પાછા ન ફર્યા ત્યાં સુધી દેવર્ષિ પાસે રહેવા લાગી.।।૧૩।।

'**अन्ति**' પાસે ।।૧૩।।

તે ગર્ભવતી સતી તે સમયે પોતાના ગર્ભના કલ્યાણ માટે અને ઈચ્છાનુસાર પ્રસૂતિ થાય, તે માટે પરમ ભક્તિપૂર્વક દેવર્ષિની સેવા કરતી હતી.।।૧૪।।

'**अन्तर्वत्नी**' ગર્ભવતી– પતિના આગમન પછી ઈચ્છાનુસાર પ્રસૂતિ થાય, તે માટે– '**एवम्-अपि**' (ઈચ્છાનુસાર પ્રસૂતિ થાય તે માટે તથા) પોતાના ગર્ભના કલ્યાણ માટે પણ ।।૧૪।।

ऋषिः कारुणिकस्तस्याः प्रादादुभयमीश्वरः।
धर्मस्य तत्त्वं ज्ञानं च मामप्युद्दिश्य निर्मलम्॥
॥ १५ ॥

કરુણા કરનારા સમર્થ નારદ ઋષિએ તેને (તથા) (ગર્ભમાં રહેલા) મને પણ ઉદ્દેશીને (તેના શોકને શાંત કરવા માટે) ધર્મનું ભક્તિના લક્ષણરૂપ તત્ત્વ તથા આત્મ-અનાત્મ-વિવેકરૂપ નિર્મળ જ્ઞાન– એ બંનેનો ઉપદેશ કર્યો.।।૧૫।।

तस्याः शोकशान्त्यै धर्मस्य तत्त्वं भक्तिलक्षणं, ज्ञानमात्मानात्मविवेकस्तदुभयं प्रादात्। ईश्वरः समर्थः॥ १५॥

'तस्याः' તેના શોકને શાંત કરવા માટે ધર્મનું ભક્તિના લક્ષણરૂપ તત્ત્વ તથા આત્મ-અનાત્મ-વિવેકરૂપ જ્ઞાન, એ બંને પ્રદાન કર્યાં. **'ईश्वरः'** સમર્થ નારદ ઋષિ।।૧૫।।

तत्तु कालस्य दीर्घत्वात् स्त्रीत्वान्मातुस्तिरोदधे।
ऋषिणानुगृहीतं मां नाधुनाप्यजहात् स्मृतिः॥
॥ १६ ॥

લાંબો સમય વીતી જવાને કારણે અને સ્ત્રી હોવાને કારણે માતાને તે જ્ઞાનની વિસ્મૃતિ થઈ ગઈ, પરંતુ નારદજી દ્વારા અનુગ્રહ પામેલા મને હજી પણ તે જ્ઞાનની સ્મૃતિ છોડીને નથી ગઈ. (અર્થાત્ મને તે જ્ઞાન વિસ્મૃત નથી થયું.)।।૧૬।।૧૬।।

भवतामपि भूयान्मे यदि श्रद्दधते वचः।
वैशारदी धीः श्रद्धातः स्त्रीबालानां च मे यथा॥
॥ १७ ॥

જો મારા વચન ઉપર આપ શ્રદ્ધા રાખો તો તમને પણ (દેહાદિ ઉપરના અહંભાવનો નાશ કરવામાં સમર્થ એવી) વૈશારદી– વૈદુષ્યપૂર્ણ બુદ્ધિ પ્રાપ્ત થાય, (કારણ કે) શ્રદ્ધાથી સ્ત્રીઓ તથા બાળકોને પણ મારા જેવી બુદ્ધિ (પ્રાપ્ત) થાય છે.

भूयाद्भवेत्। वैशारदी। स्वार्थे तद्धितः। देहाद्यहंकारच्छेदनिपुणेत्यर्थः॥ १७॥

'भूयात्' (થાઓ-આશીર્લિંગ છે, પણ અહીં વિધ્યર્થ પ્રમાણે **भवेत्** થાય, એમ અર્થ છે.) **'वैशारदी'** વિશારદ શબ્દના પોતાના મૂળ અર્થમાં તદ્ધિત પ્રત્યય લાગ્યો છે. દેહાદિ ઉપરના અહંભાવનો નાશ કરવામાં સમર્થ એવી વૈશારદી બુદ્ધિ, એમ અર્થ છે.।।૧૭।।

वंशीधरी—'श्रद्धात इति 'श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्' इति श्रीमुखोक्तेः।'

वंशीधरी—'स्वामिभिस्तु विशरणं विशारोऽहङ्कारस्तं द्यति खण्डयतीति विशारदा सैव वैशारदी।'

'શ્રદ્ધાવાળો મનુષ્ય જ્ઞાનને પામે છે.' (ગીતા ૪/૩૯) એમ શ્રીમુખની વાણી છે.

શ્રીધર સ્વામી દ્વારા તો વિશારદનો અર્થ આમ છે– **'विशारः'** એટલે અહંકાર, તેનો નાશ કરે તે વિશારદા, તે જ વૈશારદી બુદ્ધિ.

अथवा विशारदो भगवांस्तद्विषया।

અથવા વિશારદ એટલે ભગવાન, ભગવદ્-વિષયક બુદ્ધિ તે વૈશારદી.

कासौ वैशारदी धीरित्यपेक्षायां नारदोक्तमेव देहात्मविवेकप्रकारमाह—**जन्मेति** दशभिः।

એ વૈશારદી બુદ્ધિ કઈ છે એવી કોઈને અપેક્ષા હોય તો તે માટે નારદજી દ્વારા કહેવાયેલ દેહ અને આત્માના વિવેકનો પ્રકાર દસ શ્લોકોથી જણાવે છે— **'जन्मः इति।'**

जन्माद्याः षडिमे भावा दृष्टा देहस्य नात्मनः।
फलानामिव वृक्षस्य कालेनेश्वरमूर्तिना॥ १८

(વૃક્ષ હોય ત્યારે) વૃક્ષનાં ફળો દેખાય છે તેમ ઈશ્વરની મૂર્તિરૂપ કાળને લીધે જન્માદિ આ છ વિકારો * દેહના દેખાય છે. (તે વિકારો) આત્માના નથી.।।૧૮।।

जन्माद्या जायते अस्ति वर्धते विपरिणमतेऽपक्षीयते नश्यतीत्येवंभूता इमे षड्भावा विकारा वृक्षे सत्येव यथा फलानां दृश्यन्ते तद्वदात्मनि तथैव स्थिते देहस्य दृष्टा इत्यर्थः। ईश्वरी विकारसमर्था मूर्तिर्यस्य तेन॥ १८॥

'जन्माद्याः' ઉત્પન્ન થવું, હોવું, વધવું, પરિણામ પામવું, ઘટવું અને નાશ પામવું – એવા આ છ **'भावाः'** અર્થાત્ વિકારો. *વૃક્ષ હોય છે ત્યારે જ જેમ ફળોનાં વિકારો દેખાય છે, તેમ આત્મા સ્થિત હોય ત્યારે રહેલા દેહના વિકારો દેખાય છે, એમ અર્થ છે. **'ईश्वरी'** વિકાર (ફેરફાર) કરવા માટે સમર્થ કાળરૂપી મૂર્તિ જેમની છે તે કાળરૂપી પરમાત્માથી।।૧૮।।

यद्वा ईश्वरस्य मूर्तिः समष्टिव्यष्ट्यात्मकं शरीरं यतो भवति तेन।

અથવા ઈશ્વરની મૂર્તિ– સમષ્ટિવ્યષ્ટ્યાત્મક શરીર જેમાંથી ઉત્પન્ન થાય છે તેને (કાળને) લીધે–

भ.मनो.—आत्मव्यतिरिक्तस्य स्थिरस्यैकरूपस्य वस्तुनोऽभावात् कथंचित् प्रदर्शनार्थमस्थिरः षड्भावविकारवानपि वृक्ष आत्मस्थानीयत्वेन निदर्शितः।

આત્મા સિવાય એકરૂપે સ્થિર વસ્તુનો અભાવ હોવાથી કોઈક રીતે ઉદાહરણ આપવા માટે અસ્થિર અને છ વિકારવાળું હોવા છતાં વૃક્ષને આત્માના સ્થાને દર્શાવ્યું છે.

तदेवं देहधर्मैस्तद्वैलक्षण्येनात्मनो देहाद्भेदो दर्शितः, इदानीमात्मधर्मैरेव भेदं स्फुटयंस्तदहंकारादिकं त्याजयति—**आत्मेति**।

તે પ્રમાણે દેહધર્મોથી તે (દેહમાં અહંકારાદિ)ની વિલક્ષણતા દ્વારા આત્માનો દેહથી ભેદ દર્શાવ્યો. હવે આત્માના ધર્મો દ્વારા જ ભેદ પ્રતીત કરાવતાં, તે અહંકારાદિનો ત્યાગ કરાવે છે— **'आत्मा इति।'**

* યાસ્કમુનિના નિરુક્ત ૧/૧/૩ શ્લોક ૧૮માં જન્માદિ વિકારોનું નિરૂપણ છે, પરંતુ ક્રમમાં સહેજ ફેરફાર છે.

आत्मा नित्योऽव्ययः शुद्ध एकः क्षेत्रज्ञ आश्रयः।
अविक्रियः स्वदृग् हेतुर्व्यापकोऽसङ्ग्यनावृतः॥ १९

આત્મા નિત્ય, અવિનાશી, શુદ્ધ, એક, ક્ષેત્રજ્ઞ, આશ્રય, નિર્વિકાર, સ્વયંપ્રકાશ, સર્વના કારણરૂપ, વ્યાપક, અસંગ તથા આવરણરહિત છે.।।૧૯।।

आत्मा नित्यः। 'अविनाशी वारेऽयमात्मा' इति श्रुतेः।

'आत्मा नित्यः' પરમાત્મા નિત્ય છે. 'અરે, આ આત્મા અવિનાશી છે.' (બૃહદા.ઉપ.૪/૫/૧૪)

अव्ययोऽपक्षयशून्यः।

'अव्ययः' અપક્ષયરહિત.

'ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्' इति श्रुतेः। (यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः। यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति॥)

ઋગ્વેદમાં નિરૂપિત પરબ્રહ્મમાં, કે જેમાં બધા દેવો રહેલા છે તે અક્ષરને જે ન જાણે તે ઋચાથી શું કરવાનો? (ઋગ્વેદ.૧/૧૬૪/૩૯) (શ્વેતા.ઉપ.૪/૮)

शुद्धः 'निरवद्यं निरञ्जनम्' इति श्रुतेः।

'शुद्धः' નિર્દોષ અને ન લેપાયેલું. (શ્વેતા.ઉપ.૬/૧૯)

एकः 'एकमेवाद्वितीयम्' इति श्रुतेः।

'एकः' એક જ અને અદ્વિતીય. (છાં.ઉપ.૬/૨/૧)

क्षेत्रज्ञः 'विज्ञातारमरे केन विजानीयात्' इति श्रुतेः।

'क्षेत्रज्ञः' અરે, (મૈત્રેયી,) જાણનારો આત્મા એક જ છે. તેને જાણનારો બીજો પદાર્થ કયાંથી હોઈ શકે? (બૃહદા.ઉપ.૨/૪/૧૪, ૪/૫/૧૫)

आश्रयः 'यस्मिन्द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षम्' इति श्रुतेः।

'आश्रयः' જે પરમાત્મામાં દ્યુલોક, પૃથ્વી અને અંતરિક્ષ રહેલાં છે. (મું.ઉપ.૨/૨/૫)

अविक्रियः 'निष्कलं निष्क्रियं शान्तम्' इति श्रुतेः।

'अविक्रियः' અંશરહિત, ક્રિયારહિત અને શાંત. (શ્વેતા.ઉપ.૬/૧૯)

स्वदृक् 'आत्मज्योतिः सम्राडिति होवाच' इति श्रुतेः।

'स्वदृक्' હે સમ્રાટ, સ્વયંપ્રકાશ આત્મજ્યોતિ, એમ શ્રુતિ છે. (બૃહદા.ઉપ.૪/૩/૬)

हेतुः 'स इमाँल्लोकानसृजत' इति श्रुतेः।

'हेतुः' તેણે આ લોકોનું સર્જન કર્યું. (ઐ.ઉપ.૧/૨)

व्यापकः 'सत्यं ज्ञानमनन्तम्' इति श्रुतेः।

'व्यापकः' સત્ય, જ્ઞાનસ્વરૂપ અને અનંત. (તૈત્તિ.ઉપ.૨/૧/૧)

असङ्गी 'असङ्गो ह्ययं पुरुषः' इति श्रुतेः।

'असङ्गी' ખરેખર, આ પુરુષ અસંગ છે. (બૃહદા.ઉપ.૪/૩/૧૫,૧૬)

अनावृतः 'पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥' इति श्रुतेः॥ १९॥

'अनावृतः' પૂર્ણ(કાર્યબ્રહ્મ) નું પૂર્ણત્વ લઈને (પોતાનામાં લીન કરીને) પણ પૂર્ણ (પરબ્રહ્મ) જ શેષ રહે છે– (શત.બ્રા.૧૪/૮/૫/૧, બૃહદા.ઉપ. ૫/૧/૧)।।૧૯।।

एतैर्द्वादशभिर्विद्वानात्मनो लक्षणैः परैः।
अहं ममेत्यसद्भावं देहादौ मोहजं त्यजेत्॥ २०

આત્માનાં (નિત્ય વગેરે) આ બાર શ્રેષ્ઠ લક્ષણો દ્વારા આત્માને (દેહથી પૃથક્) જાણનાર મનુષ્યે દેહાદિ ઉપર મોહથી ઉત્પન્ન થનારો 'હું અને મારું' એવો મિથ્યા આગ્રહ છોડી દેવો જોઈએ.।।૨૦।।

एतैर्द्वादशभिरात्मनो लक्षणैः परैः श्रेष्ठैर्विवेकसमर्थैर्देहाद्भेदं विद्वानसद्भावं मिथ्याबुद्धिं त्यजेत्॥ २०॥

આત્માનાં આ બાર લક્ષણો દ્વારા– **'परैः'** શ્રેષ્ઠ, દેહ અને આત્માનો વિવેક કરવામાં સમર્થ એવાં શ્રેષ્ઠ લક્ષણો દ્વારા આત્માને દેહથી પૃથક્ જાણનાર મનુષ્યે **'असद्भावम्'** મિથ્યા બુદ્ધિ છોડી દેવી જોઈએ.।।૨૦।।

नन्वेवं विविक्तात्मज्ञानिनोऽप्यपरोक्षानुभवेन ब्रह्मताप्राप्तिः कथं स्याद्यतोऽहंकारादिकं त्यजेदित्यपेक्षायां तत्प्राप्तिप्रकारं सदृष्टान्तमाह—

શંકા કરવામાં આવી છે કે આમ, (શાસ્ત્રાનુસાર) વિવેકથી પૃથક્ કરવામાં આવેલા આત્માના જ્ઞાનવાળાને અપરોક્ષ અનુભવ દ્વારા બ્રહ્મસ્વરૂપની પ્રાપ્તિ કેવી રીતે થાય? જે બ્રહ્મસ્વરૂપની પ્રાપ્તિથી મનુષ્ય અહંકારાદિ છોડી દે એવી અપેક્ષા થાય, ત્યારે તે બ્રહ્મની પ્રાપ્તિનો પ્રકાર દૃષ્ટાન્તસહિત વર્ણવે છે.

स्वर्णं यथा ग्रावसु हेमकारः
क्षेत्रेषु योगैस्तदभिज्ञ आप्नुयात्।
क्षेत्रेषु देहेषु तथाऽऽत्मयोगै-
रध्यात्मविद् ब्रह्मगतिं लभेत॥ २१

જેવી રીતે (સોનું પ્રાપ્ત કરવાના) ઉપાયોને જાણનાર સુવર્ણકાર તે ઉપાયોથી (સોનાની ખાણવાળા પ્રદેશોમાં) પથ્થરોમાં(થી) સુવર્ણ પ્રાપ્ત કરે (છે), તેવી રીતે અધ્યાત્મવેત્તા મનુષ્ય આત્મપ્રાપ્તિના ઉપાયોથી દેહરૂપ ક્ષેત્રમાં બ્રહ્મપદનો સાક્ષાત્કાર કરે (છે).।।૨૧।।

स्वर्णाकरक्षेत्रेषु स्फुरत्स्वर्णकणेषु ग्रावसु योगैर्धमनाद्युपायैस्तदभिज्ञ उपायाभिज्ञो हेमकारो यथा स्वर्णं प्राप्नुयात्। आत्मयोगैरात्मप्राप्त्युपायैः।

સોનાની ખાણવાળા પ્રદેશોમાં ચળકતા સોનાના કણોવાળા પથ્થરોમાં **'योगैः'** ધમણ વગેરે ઉપાયોથી **'तत्-अभिज्ञः'** તે ઉપાયોનો જાણકાર સુવર્ણકાર જેવી રીતે સુવર્ણને પ્રાપ્ત કરે છે.

ब्रह्मगतिं ब्रह्मताम्। अध्यात्मवित् आत्माधिकृत-कार्यकारणसंघातज्ञाता॥ २१॥

वंशीधरी—'आत्मयोगैः' आत्मप्राप्त्युपायै-श्चिन्तनाद्यैरित्यर्थः।

अन्वि.—तत्त्वविवेकादिभिः।

विजय.—औत्पत्तिकभक्त्यादि उपायैः।

सि.प्र.—तत्स्वरूपगुणादिश्रवणमननादिरूपैर्यो-गैरुपायैः।

अध्यात्मविवेकमात्मप्राप्त्युपायमाह—**अष्टाविति** त्रिभिः।

अष्टौ प्रकृतयः प्रोक्तास्त्रय एव हि तद्गुणाः।
विकाराः षोडशाचार्यैः पुमानेकः समन्वयात्॥ २२

मूलप्रकृतिर्महदहंकारौ पञ्चतन्मात्राणि चेत्यष्टौ। त्रयः सत्त्वादयस्ते च प्रकृतिगुणा एव, न तु भिन्नाः। एकादशेन्द्रियाणि पञ्चमहाभूतानि चेति षोडश। पुमानात्मा एकः प्रोक्तः कपिलादिभिराचार्यैः। एकत्वे हेतुः—एषु साक्षित्वेनान्वयात्। तदुक्तम् 'मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः

'**आत्मयोगैः**' આત્મપ્રાપ્તિના ઉપાયોથી '**ब्रह्मगतिम्**' બ્રહ્મસ્વરૂપને પ્રાપ્ત કરે છે. '**अध्यात्मवित्**' આત્મારૂપ અધિકરણમાં રહેલા કાર્ય-કારણ સંઘાતનો જ્ઞાતા।।૨૧।।

'**आत्मयोगैः**' ચિંતન વગેરે આત્મપ્રાપ્તિના ઉપાયોથી બ્રહ્મસ્વરૂપને પામે છે. એમ અર્થ છે.

તત્ત્વના વિવેક વગેરે ઉપાયોથી બ્રહ્મને પામે છે.

સહજ ભક્તિ વગેરે ઉપાયોથી બ્રહ્મને પામે છે.

તે ભગવાનનાં સ્વરૂપ, ગુણાદિનાં શ્રવણ, મનનાદિરૂપ ઉપાયોથી બ્રહ્મને પામે છે.

દેહથી વિલક્ષણ એવા આત્માના યથાર્થ સાધનરૂપ ઉપાયોથી (અધ્યાત્મવેત્તા બ્રહ્મસાક્ષાત્કાર કરે છે.)

અધ્યાત્મના વિવેકરૂપ આત્મપ્રાપ્તિનો ઉપાય ત્રણ શ્લોકોથી જણાવે છે– '**अष्टौ इति।**'

(કપિલ વગેરે) આચાર્યો દ્વારા કહેવામાં આવ્યું છે કે પ્રકૃતિઓ આઠ છે, તેના જ ત્રણ ગુણો છે, સોળ વિકારો છે અને (એ સર્વમાં) (અનુસ્યૂત) સાક્ષીરૂપે રહેલો એક જ પુરુષ (આત્મા) છે.।।૨૨।।

મૂળ પ્રકૃતિ, મહત્તત્વ અને અહંકાર તથા પાંચ તન્માત્રાઓ– એમ આઠ પ્રકૃતિઓ છે. તેમ જ '**त्रयः**' સત્ત્વ, રજસ્ અને તમસ્ તે સર્વ પ્રકૃતિના જ ગુણો છે, પણ પ્રકૃતિથી જુદા નથી. અગિયાર ઈન્દ્રિયો અને પંચમહાભૂતો, એમ સોળ વિકારો છે. કપિલ મુનિ વગેરે આચાર્યો દ્વારા '**पुमान्**' પુરુષ, આત્મા એક જ કહેવામાં આવ્યો છે. એક હોવા માટેનું કારણ– એ સર્વમાં આત્મા સાક્ષીરૂપે જોડાયેલો છે. તે જ કહેવામાં આવ્યું છે, 'સર્વજનિકા પ્રકૃતિ એટલે અવિકૃતિ છે. (જે કોઈનું કાર્ય નથી.) '**महदाद्याः**' મહત્તત્વ, અહંકાર,

प्रकृतिविकृतयः सप्त। षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः॥' इति॥ २२॥

પાંચ તન્માત્રાઓ— એમ સાત પ્રકૃતિવિકૃતિઓ છે. '**षोडशकः**' અગિયાર ઈન્દ્રિયો અને પાંચ મહાભૂતો સોળ વિકારો છે. (માત્ર કાર્ય જ છે,) પુરુષ એટલે કે આત્મા નથી પ્રકૃતિ કે નથી વિકૃતિ.' (ઈશ્વરકૃષ્ણની સાંખ્યકારિકા-૩)।।૨૨।।

देहस्तु सर्वसंघातो जगत् तस्थुरिति द्विधा।
अत्रैव मृग्यः पुरुषो नेति नेतीत्यतत् त्यजन्॥ २३

(પ્રકૃતિ વગેરે) સર્વના સંઘાતરૂપ દેહ તો જંગમ અને સ્થાવર— એમ બે પ્રકારનો છે. આ દેહમાં જ 'આ નહીં, આ નહીં' એમ આત્માથી ભિન્ન વસ્તુનો ત્યાગ કરતાં, આત્મા અન્વેષણ કરવા યોગ્ય છે.।।૨૩।।

जगज्जङ्गमम्। तस्थुः स्थावरम्। अत्रैव सर्वसंघातात्मके देह एव पुरुषो मृग्योऽन्वेष्टव्यः। सुशकं चैतदित्याह—नेति नेतीत्यन्यापोहे क्रियमाणे स्वयमेवातत्त्यजन्। अनात्मवर्गात्पृथ-गुपलभ्यमान इत्यर्थः॥ २३॥

'**जगत्**' જંગમ, '**तस्थुः**' સ્થાવર. (પ્રકૃતિ વગેરે) સર્વના સંઘાતરૂપ '**अत्र-एव**' અહીં દેહમાં જ આત્મા (પુરુષ) '**मृग्यः**' અન્વેષણ કરવા યોગ્ય છે અને એ સરળતાથી થઈ શકે તેમ છે, એમ કહે છે— '**न इति न इति इति**' આ નહીં, આ નહીં— એમ આત્માથી અન્ય વસ્તુનો ત્યાગ કરતાં '**अतत्-त्यजन्**' તેનાથી ભિન્ન વસ્તુનો ત્યાગ કરતાં આપોઆપ જ આત્મપ્રાપ્તિ થાય છે. (દેહ, ઈન્દ્રિય, મન, બુદ્ધિ, પ્રાણાદિ) અનાત્મવર્ગથી જુદો જ એવો આત્મા પ્રાપ્ત થાય છે, એમ અર્થ છે.।।૨૩।।

अन्वयव्यतिरेकेण विवेकेनोशताऽऽत्मना।
सर्गस्थानसमाम्नायैर्विमृशद्भिरसत्वरैः ॥ २४

અન્વય અને વ્યતિરેકરૂપ વિવેકથી શુદ્ધ થયેલા મનથી (જગતની) ઉત્પત્તિ, સ્થિતિ અને લયના અનુસંધાનપૂર્વક વિચાર કરનારા ધીર પુરુષો દ્વારા (આત્મા) અવ્યગ્રચિત્તે (અન્વેષણ કરવા યોગ્ય છે.)।।૨૪।।

मणिषु सूत्रमिव सर्वत्रानुस्यूतत्वेनान्वयः। अत एव मणिभ्यः सूत्रस्येवैकैकव्यतिरेकश्च।

(માળાના) મણકાઓમાં દોરો પરોવાયેલો હોય તેમ આત્મા સર્વત્ર અનુસ્યૂત હોવાથી સર્વ પદાર્થો સાથે તેનો સંબંધ છે. આથી જ પ્રત્યેક મણકાથી જેમ સૂત્રનો ભેદ છે તેમ દરેક પદાર્થથી આત્માનો ભેદ છે.

तयोर्द्वन्द्वैक्यम्। तेन यो विवेकः पूर्वोक्तो वा तेन उशता शुद्धेनात्मना मनसा। सर्गस्थानसमाम्नायैः सृष्टिस्थितिसंहारैः। 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते।' इत्यादिश्रुत्युक्त-सर्गाद्यनुसंधानेनेत्यर्थः। विमृशद्भिर्विचारयद्भिः असत्त्वैरव्यग्रैर्मृग्य इति पूर्वेणान्वयः॥ २४॥

'तयोः द्वन्द्वैक्यम्' અન્વય અને વ્યતિરેક– આ બે શબ્દો સમાસમાં હોય ત્યારે દ્વિ.વ.નો પ્રયોગ થાય છે, જેમ કે **'रामलक्ष्मणाभ्याम्।'** તેમ અહીં પણ **'अन्वयव्यतिरेकाभ्याम्'** એમ પ્રયોગ થવો જોઈએ, પરંતુ તે બંનેને એક ગણીને સમાસ એ.વ.માં આપેલો છે. તે અન્વય-વ્યતિરેક દ્વારા થયેલા જ્ઞાનથી અથવા પૂર્વે કહેલા આત્મ-અનાત્મના ભેદથી જે વિવેક થાય છે, તેનાથી **'उशता'** શુદ્ધ **'आत्मना'** મનથી– **'सर्गस्थान-समाम्नायैः'** સૃષ્ટિ, સ્થિતિ અને લય દ્વારા (અનુસંધાનપૂર્વક વિચાર કરનારાઓ દ્વારા) 'જેનાથી બ્રહ્માદિ સ્તમ્બપર્યન્ત સર્વ પ્રાણીઓ ઉત્પન્ન થયા છે.' (તૈત્તિ.ઉપ.૩/૧/૧) વગેરે શ્રુતિએ કહેલા સર્ગાદિના અનુસંધાન દ્વારા– એમ અર્થ છે. **'विमृशद्भिः'** વિચાર કરતા ધીર પુરુષો દ્વારા (આત્મા) **'असत्त्वैः'** અવ્યગ્ર ચિત્તવાળાઓથી અન્વેષણ કરવા યોગ્ય છે, એમ પૂર્વના શ્લોક (૨૩) સાથે સંબંધ છે.।।૨૪।।

विमर्शप्रकारमाह—**बुद्धेरिति** द्वाभ्याम्।

વિચાર કરવાની રીત બે શ્લોકોથી બતાવે છે– **'बुद्धेः इति।'**

बुद्धेर्जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिरिति वृत्तयः।
ता येनैवानुभूयन्ते सोऽध्यक्षः पुरुषः परः॥ २५

જાગ્રત્, સ્વપ્ન અને સુષુપ્તિ– એ (ત્રણ) બુદ્ધિની વૃત્તિઓ છે. આ વૃત્તિઓનો જેના દ્વારા અનુભવ થાય છે, તે જ (સર્વનો) સાક્ષી અને પરમ આત્મા છે.।।૨૫।।

अध्यक्षः साक्षी॥ २५॥

'अध्यक्षः' સાક્ષી ।।૨૫।।

अत एभिर्बुद्धिभेदैः परिणामैः पर्यस्तैः परितः क्षिप्तैरनात्मधर्मत्वेन निरस्तैः। बुद्धिधर्मत्वे हेतुः—

આથી આ **'बुद्धिभेदैः'** બુદ્ધિની (જાગ્રત્, સ્વપ્ન, સુષુપ્તિ) અવસ્થાઓરૂપ પરિણામ દ્વારા– **'पर्यस्तैः'** આત્માના ધર્મો ન હોવાથી સર્વ રીતે આત્માથી દૂર કરવામાં આવેલી અવસ્થાઓ દ્વારા– (આ અવસ્થાઓ) બુદ્ધિના ધર્મો હોવા માટેનું કારણ–

एभिस्त्रिवर्णैः पर्यस्तैर्बुद्धिभेदैः क्रियोद्भवैः।
स्वरूपमात्मनो बुध्येद् गन्धैर्वायुमिवान्वयात्॥ २६

જેમ ગંધ દ્વારા (તે ગંધના આશ્રયરૂપ) વાયુનું જ્ઞાન થાય છે, તેમ બુદ્ધિની, ક્રિયાથી ઉત્પન્ન થનારી અને (આત્માના ધર્મો ન હોવાથી આત્માથી) દૂર કરવામાં આવેલી બુદ્ધિની આ ત્રિગુણાત્મક અવસ્થાઓ દ્વારા તેઓમાં (સાક્ષીરૂપે) અનુગત આત્માના સ્વરૂપને જાણવું જોઈએ.।।૨૬।।

त्रिवर्णैस्त्रिगुणात्मकैः। क्रियोद्भवैः कर्मजन्यैः। बुद्धेरेव त्रिगुणात्मकत्वात्कर्मकर्तृत्वाच्च तस्या एवैता अवस्थाः।

'**त्रिवर्णैः**' ત્રણ ગુણોવાળા બુદ્ધિના ભેદો અને '**क्रियोद्भवैः**' ક્રિયાથી ઉત્પન્ન થનારા બુદ્ધિના ધર્મો– બુદ્ધિની જ આ અવસ્થાઓ છે, કારણ કે બુદ્ધિ જ ત્રણ ગુણોના સ્વરૂપવાળી છે અને કર્મ કરનારી છે.

आत्मा तु बुद्ध्यन्वयात्तदवस्थावानिवाभाति न तत्त्वत इत्यात्मनःस्वरूपं बुध्येज्जानीयादित्यर्थः।

આત્મા તો બુદ્ધિની અવસ્થાઓમાં (સાક્ષીરૂપે) અનુગત હોવાથી તે અવસ્થાઓવાળો ભાસે છે, તત્ત્વતઃ તે આ અવસ્થાઓથી જુદો છે. એ રીતે આત્માના સ્વરૂપને જાણવું જોઈએ, એમ અર્થ છે.

अत्र दृष्टान्तः—कुसुमधर्मैर्गन्धैस्तदाश्रयं वायुमिव॥ २६॥

અહીં દૃષ્ટાન્ત આપવામાં આવ્યું છે— પુષ્પના ધર્મરૂપ ગંધ દ્વારા જેમ તે ગંધના આશ્રયરૂપ ભાસતા વાયુનું જ્ઞાન થાય છે તેમ.।।૨૬।।

वंशीधरी—'इत्यर्थः इति। बुद्ध्यध्यासकृतं एवात्मनोऽवस्थावत्त्वमिति भावः।'

બુદ્ધિના અધ્યાસને કારણે આત્મા અવસ્થાઓવાળો (જણાય) છે, એવો ભાવ છે. (બુદ્ધિ એ જ હું આત્મા છું, એવો અધ્યાસ)

ननु तर्हि यथा कुसुमोपाधिकोऽपि वायोर्गन्धो विवेकज्ञानेन निवर्तते एवमात्मानः संसारो न निवर्तत इत्याशङ्क्याह—

શંકા કરવામાં આવી છે કે ત્યારે જે રીતે પુષ્પની ઉપાધિવાળા વાયુમાંથી પણ વિવેકજ્ઞાનપૂર્વક ગંધ દૂર કરી શકાય છે, એ રીતે આત્મામાંથી સંસાર દૂર કરી શકાતો નથી. એવી આશંકા કરીને કહે છે–

एतद्द्वारो हि संसारो गुणकर्मनिबन्धनः।
अज्ञानमूलोऽपार्थोऽपि पुंसः स्वप्न इवेष्यते॥ २७

સંસાર આ બુદ્ધિની અવસ્થાઓ દ્વારા થયેલો છે. બુદ્ધિના ગુણો અને કર્મો દ્વારા રચાયેલો હોવાથી અજ્ઞાનરૂપ મૂળવાળો છે અને તેથી મિથ્યાભૂત હોવા છતાં પણ પુરુષને સ્વપ્ન જેવો દેખાય છે.।।૨૭।।

एतद्द्वारो बुद्धिद्वारकस्तदवस्थाद्वारको वा संसारो न स्वतः। हि यस्माद्बुद्धेर्ये गुणाः कर्माणि च तैर्निबध्यत इति। तथा स चाज्ञानमूलोऽतोऽपार्थो मिथ्याभूतोऽपि स्वप्न इवेष्यते।

'एतत्-द्वारः' બુદ્ધિના દ્વારવાળો અથવા તેની અવસ્થાઓના દ્વારવાળો સંસાર છે. પોતાની જાતે થયેલો નથી. **'हि'** કારણ કે બુદ્ધિના જે ગુણો અને કર્મો છે તેમના દ્વારા સંસાર રચાયેલો છે અને તે તો અજ્ઞાનરૂપ મૂળવાળો છે અને તેથી **'अपार्थः'** મિથ્યાભૂત છે, છતાં પણ સ્વપ્ન જેવો દેખાય છે.

वायोस्तु गन्धद्रव्यसंबन्धस्य वास्तवत्वाद्विषमो दृष्टान्तः ॥ २७ ॥

ગંધદ્રવ્યના સંબંધવાળો વાયુ તો વાસ્તવિક છે, તેથી વિષમ દૃષ્ટાન્ત છે.।।૨૭।।

तस्माद्भवद्भिः कर्तव्यं कर्मणां त्रिगुणात्मनाम्।
बीजनिर्हरणं योगः प्रवाहोपरमो धियः ॥ २८

તેથી ત્રિગુણાત્મક કર્મોના (અજ્ઞાનરૂપ) બીજને બાળવું, તે જ યોગ છે. બુદ્ધિના (જાગ્રત્ આદિ અવસ્થાઓરૂપ) પ્રવાહને અટકાવનારો બીજદહનરૂપ યોગ આપના દ્વારા અનુષ્ઠિત થવા યોગ્ય છે.।।૨૮।।

यस्मादेवं निवृत्तिर्घटते तस्माद्बीजमज्ञानं तस्य निर्हरणं दहनम्। किं तत्। योगः। कथंभूतः। धियः प्रवाहं जाग्रदादिरूपमुपरमयतीति तथा॥ २८ ॥

જે કારણે આમ, સંસારમાંથી નિવૃત્ત થવાય છે તેથી, **'बीजम्'** અજ્ઞાન, તેનું **'निर्हरणम्'** દહન, તે શું છે? તે (ભક્તિ)યોગ છે. કેવો (ભક્તિ)યોગ? બુદ્ધિના જાગ્રત્ આદિ અવસ્થારૂપ પ્રવાહને અટકાવે તેવો ભક્તિયોગ।।૨૮।।

तदेवं ज्ञानप्रकारमुक्त्वा तत्साधनं धर्मस्य तत्त्वं नारदोक्तमेवाह—**तत्रेति** पञ्चभिः।

તો આ પ્રમાણે જ્ઞાનનો પ્રકાર કહીને નારદોક્ત ધર્મના તત્ત્વરૂપ તેનું સાધન પણ પાંચ શ્લોકો દ્વારા કહે છે— **'तत्र इति।'**

तत्रोपायसहस्राणामयं भगवतोदितः।
यदीश्वरे भगवति यथा यैरञ्जसा रतिः ॥ २९

તે (ત્રિગુણાત્મક કર્મોના બીજને બાળવા) માટેના હજારો ઉપાયોમાંથી ભગવાન નારદ દ્વારા આ ઉપાય કહેવામાં આવ્યો છે, કે જે ધર્મોના યથાવત્ અનુષ્ઠાનથી સર્વશક્તિમાન ભગવાન શ્રીનારાયણમાં અનાયાસે રતિ થાય છે.।।૨૯।।

यैर्धर्मैर्यथा यथावदनुष्ठितैर्वा भगवति श्रीनारायणे रतिरिति यदयमुपायो भगवतोक्तः। तथा च गीतासूक्तम्—

'यैः' જે ધર્મોથી અથવા જે ધર્મોના **'यथा'** યથાવત્ અનુષ્ઠાનથી ભગવાન શ્રીનારાયણમાં રતિ થાય છે; આ જે ઉપાય છે તે ભગવાન નારદજીએ કહેલો છે. તે અનુસાર ગીતામાં પણ કહેવાયું છે—

'यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥'

इति। 'भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।' इत्यादि च॥ २९॥

'હે અર્જુન, તું જે કરે છે, જે ભોજન કરે છે, જે હોમ કરે છે, જે દાન કરે છે, જે તપ કરે છે તે (સર્વ) મને અર્પણ કર' (ગીતા ૯/૨૭) તથા 'તત્ત્વથી જે અને જેવો હું છું (તેવો) મને (પરા) ભક્તિ વડે સારી રીતે જાણે છે.' (ગીતા ૧૮/૫૫) વગેરે।।૨૯।।

तत्रैवान्तरङ्गान्धर्मानाह—

તે માટે (ભગવાનમાં પ્રેમ થાય તે માટે) જ અંતરંગ ધર્મોનું વર્ણન કરે છે—

गुरुशुश्रूषया भक्त्या सर्वलब्धार्पणेन च।
सङ्गेन साधुभक्तानामीश्वराराधनेन च॥ ३०

ગુરુની સેવા, (પોતાને) પ્રાપ્ત થયેલી સર્વ વસ્તુનું (ભગવાનને) ભક્તિથી પ્રેમપૂર્વક સમર્પણ, ભગવત્પ્રેમી મહાત્માઓનો સત્સંગ, ઈશ્વરની આરાધના,।।૩૦।।

श्रद्धया तत्कथायां च कीर्तनैर्गुणकर्मणाम्।
तत्पादाम्बुरुहध्यानात् तल्लिङ्गेक्षार्हणादिभिः॥ ३१

તેમની કથામાં શ્રદ્ધા, તેમના ગુણો અને કર્મોનું કીર્તન, તેમનાં ચરણકમળનું ધ્યાન તેમ જ તેમની મૂર્તિઓનાં દર્શન, પૂજન વગેરે સાધનો દ્વારા (મનુષ્ય ભગવાનમાં અનાયાસે રતિ પ્રાપ્ત કરે છે).।।૩૧।।

गुरोः शुश्रूषया भक्त्या प्रेम्णा सर्वेषां लब्धानामर्पणेन च॥ ३०॥

ગુરુની '**भक्त्या**' સેવા કરવાથી તથા પ્રાપ્ત થયેલું સર્વ કાંઈ ભગવાનને પ્રેમપૂર્વક અર્પણ કરવાથી।।૩૦।।

तस्य लिङ्गानां मूर्तीनामीक्षणमर्हणमादिर्येषां वन्दनादीनां तैश्च॥ ३१॥

તેમની '**लिङ्गानाम्**' મૂર્તિઓનાં દર્શન, પૂજન જેમના આરંભમાં છે તે વંદન (પ્રણામ, પરિક્રમા) વગેરે, તેમનાં દ્વારા પણ।।૩૧।।

हरिः सर्वेषु भूतेषु भगवानास्त ईश्वरः।
इति भूतानि मनसा कामैस्तैः साधु मानयेत्॥ ३२

॥ ३२॥

સર્વસમર્થ ભગવાન શ્રીહરિ સર્વ પ્રાણીઓમાં રહેલા છે એવા અભિપ્રાયથી તે તે પ્રાણીઓની કામનાપૂર્તિ દ્વારા તેમને સારી રીતે મનથી માન આપવું.।।૩૨।।૩૨।।

एवं निर्जितषड्वर्गैः क्रियते भक्तिरीश्वरे।
वासुदेवे भगवति यया संलभते रतिम्॥ ३३

આ પ્રમાણે જેમના દ્વારા (કામ, ક્રોધ, લોભ, મોહ, મદ અને મત્સર— એમ) છ (શત્રુઓ)નો સમૂહ જીતી લેવામાં આવ્યો છે, તેમના દ્વારા ઈશ્વર પ્રત્યે ભક્તિ કરવામાં આવે છે, કે જે (સાધન) ભક્તિથી (મનુષ્ય) વસુદેવનંદન ભગવાન શ્રીકૃષ્ણમાં પ્રીતિ પ્રાપ્ત કરે છે.।।૩૩।।

निर्जितः षण्णां कामक्रोधलोभमोहमद-मत्सराणामिन्द्रियाणां वा वर्गो यैः ॥ ३३ ॥

જીતી લેવામાં આવ્યો છે કામ, ક્રોધ, લોભ, મોહ, મદ, મત્સર– એ છયેનો સમૂહ અથવા (પાંચ ઈન્દ્રિયો અને મન) છ ઈન્દ્રિયોનો સમૂહ જેમના દ્વારા ।।૩૩।।

अन्वि.—'रतिं परमप्रेमलक्षणां सम्यक् निश्चलात्मिकां पुमाँल्लभते।'

શ્રીકૃષ્ણ ભગવાનમાં મનુષ્ય પરમ પ્રેમલક્ષણા અને નિશ્ચલાત્મિકા ભક્તિ પ્રાપ્ત કરે છે.

भगवद्रतेर्लिङ्गान्याह—**निशम्येति** त्रिभिः।

ભગવાનમાં પ્રીતિ પ્રાપ્ત થઈ હોવાનાં ચિહ્નો ત્રણ શ્લોકો વડે જણાવે છે– '**निशम्य इति।**'

निशम्य कर्माणि गुणानतुल्यान्
वीर्याणि लीलातनुभिः कृतानि।
यदाऽतिहर्षोत्पुलकाश्रुगद्गदं
प्रोत्कण्ठ उद्गायति रौति नृत्यति॥ ३४

(માખણચોરી વગેરે) લીલાઓ, (ભક્ત-વત્સલતા વગેરે) અનુપમ ગુણો તથા લીલાથી ધારણ કરેલા (રામકૃષ્ણાદિ) અવતારો દ્વારા કરાયેલાં અદ્ભુત પરાક્રમોનું શ્રવણ કરીને મનુષ્ય જ્યારે અતિ હર્ષથી પુલકિત થઈ ઊઠે છે, અશ્રુબિંદુઓને કારણે ગળગળો થઈ જાય તે રીતે મુક્ત કંઠે ઊંચેથી ગાન કરે છે, રુદન કરે છે, નૃત્ય કરવા લાગે છે. (ત્યારે તેને ભગવાનમાં પ્રીતિ પ્રાપ્ત થઈ, એમ કહી શકાય.)।।૩૪।।

गुणान्भक्तवात्सल्यादीन्। अतिहर्षेणोंद्-गताः पुलका अश्रूणि च तैर्गद्गदं यथा भवत्येवं प्रोत्कण्ठो मुक्तकण्ठ उद्गायति ॥ ३४ ॥

ભક્તવત્સલતા વગેરે ગુણોને (સાંભળીને), અતિ હર્ષથી પુલકિત થઈ ઊઠે છે રૂંવાડાં તથા સરી પડે છે હર્ષાશ્રુઓ– તેમને કારણે (કંઠ) ગદ્ ગદ્ જેમ થાય તેમ– તથા '**प्रोत्कण्ठः**' મુક્તકંઠે ઉદ્ગાન કરવા લાગે છે.।।૩૪।।

यदा ग्रहग्रस्त इव क्वचिद्धस-
त्याक्रन्दते ध्यायति वन्दते जनम्।
मुहुः श्वसन्वक्ति हरे जगत्पते
नारायणेत्यात्ममतिर्गततत्रपः ॥ ३५

॥ ३५ ॥

ગ્રહથી ગ્રસ્ત થયો હોય તેમ તે જ્યારે કોઈ વાર હસવા લાગે છે, રડવા લાગે છે, ધ્યાન કરવા માંડે છે, (ભગવદ્ભાવથી) લોકોને વંદન કરવા માંડે છે, વારંવાર નિઃશ્વાસ નાખતાં 'હે હરિ, હે જગત્પતિ, હે નારાયણ' એમ લજ્જારહિત થઈ બોલે છે (ત્યારે તે પરમાત્મામાં બુદ્ધિવાળો થયો છે એમ કહી શકાય).।।૩૫।।૩૫।।

तदा पुमान्मुक्तसमस्तबन्धन-
स्तद्भावभावानुकृताशयाकृतिः ।
निर्दग्धबीजानुशयो महीयसा
भक्तिप्रयोगेण समेत्यधोक्षजम्॥ ३६

तस्य भावश्चेष्टादिस्तस्य भावो भावना तेनानुकृते आशयाकृती मनःशरीरे यस्य। निर्दग्धं बीजमज्ञानमनुशयो वासना च यस्य सः सम्यगेति प्राप्नोति॥ ३६ ॥

તે સમયે મનુષ્ય સર્વ બંધનોથી મુક્ત થઈ જાય છે, તે ભગવાનની લીલાની ભાવનાથી તેનાં મન અને શરીર તદાકાર (ભગવન્મય) થાય છે તથા અજ્ઞાન અને વાસના જેનાં સંપૂર્ણપણે બળી જાય છે તેવો તે વધારે મહાન (સર્વોત્તમ અતિવેગવાન) ભક્તિયોગના ઉપાયથી ભગવાન અધોક્ષજને સમ્યક્ રીતે પ્રાપ્ત કરે છે.।।૩૬।।

તે ભગવાનની '**भावः**' લીલા વગેરે, તેની '**भावः**' ભાવના, (તે લીલાઓનું ચિંતન) તેનાથી જ્યારે તદાકાર થાય છે '**आशय-आकृती**' મન અને શરીર જેનાં– સંપૂર્ણપણે બળી જાય છે '**बीजम्**' અજ્ઞાન તથા '**अनुशयः**' વાસના જેનાં, તે મનુષ્ય ભગવાન અધોક્ષજને '**सम्यक्-एति**' સમ્યક્ રીતે પ્રાપ્ત કરે છે.।।૩૬।।

ततः किमत आह—

अधोक्षजालम्भमिहाशुभात्मनः
शरीरिणः संसृतिचक्रशातनम्।
तद् ब्रह्मनिर्वाणसुखं विदुर्बुधा-
स्ततो भजध्वं हृदये हृदीश्वरम्॥ ३७

અધોક્ષજાલમ્ભમ્...

ત્યાર પછી શું, તે હવે કહે છે—

આ સંસારમાં અધોક્ષજ ભગવાનનો મનથી કરેલો સ્પર્શ (ધ્યાન), રાગાદિયુક્ત અશુભ મનવાળા મનુષ્યના સંસારચક્રનો નાશ કરનારો છે. વિદ્વજ્જનો તેને જ બ્રહ્મનિર્વાણરૂપ સુખ જાણે છે, માટે (તમે સૌ પોતાના) હૃદયમાં હૃદયેશ્વર ભગવાનનું ભજન કરો.।।૩૭।।

अधोक्षजस्यालम्भं मनसा स्पर्शम्। पाठान्तरे तस्याश्रयणम्। अशुभात्मनः अशुभो रागादियुक्त आत्मा मनो यस्य। संसृतिचक्र-शातनं तन्निवर्तकं बुधा विदुस्तदेव ब्रह्मणि निर्वाणं लयो मोक्षस्तदात्मकं सुखं विदुः। हृदीश्वरमन्तर्यामिणम्॥ ३७ ॥

અધોક્ષજનો '**आलम्भम्**' મનથી સ્પર્શ– પાઠાન્તરમાં '**अधोक्षज-आलम्बम्**' તેમનો આશ્રય, '**अशुभात्मनः**' અશુભ એટલે રાગાદિથી યુક્ત આત્મા અર્થાત્ મન છે જેનું, તેના '**संसृतिचक्रशातनम्**' સંસારચક્રનો નાશ કરનારો છે. '**बुधाः विदुः**' વિદ્વાનો તેને જ બ્રહ્મમાં '**निर्वाणम्**' લય, મોક્ષ, બ્રહ્મનિર્વાણ– તદાત્મક એવા તે સુખને જાણે છે. '**हृदि-ईश्वरम्**' અન્તર્યામીને।।૩૭।।

भक्तिरशक्येति च न मन्तव्यमित्याह— **क इति।**

ભક્તિ કરવી અશક્ય છે, એમ માનવા યોગ્ય નથી, એમ કહે છે— '**कः इति।**'

कोऽतिप्रयासोऽसुरबालका हरे-
रुपासने स्वे हृदि छिद्रवत् सतः।
स्वस्यात्मनः सख्युरशेषदेहिनां
सामान्यतः किं विषयोपपादनैः॥ ३८

હે અસુર બાળકો! પોતાના હૃદયમાં આકાશની જેમ રહેલા, આપણા પોતાના આત્મારૂપ અને (પરમ)મિત્ર શ્રીહરિની ઉપાસના કરવામાં કયો મોટો પરિશ્રમ છે? (સર્વ પ્રાણીઓ વિષયોન્મુખ હોવાથી) સર્વ પ્રાણીઓમાં સમાન સ્થિતિ હોવાથી એવા વિષયોની પ્રાપ્તિથી શું પ્રયોજન સિદ્ધ થવાનું છે?।।૩૮।।

छिद्रवदाकाशवद्धृदि तिष्ठतः। विषयाणामुपपादनैरर्जनैः किम्। तत्र हेतुः—सर्वदेहिनां सामान्यतः विषयनिष्ठत्वे सूकरादिसाधारण्यापत्तेरित्यर्थः। न चैवमादौ पौनरुक्त्यदोषः, नारदोक्तानुवादरूपत्वादस्य प्रकरणस्य॥ ३८॥

'छिद्रवत्' આકાશની જેમ હૃદયમાં (હૃદયાકાશમાં) રહેનારનું– વિષયોની **'उप-पादनैः'** પ્રાપ્તિથી શું પ્રયોજન સિદ્ધ થવાનું છે? તે (વિષયોપાર્જનની નિરર્થકતા) માટેનું કારણ– સામાન્ય રીતે સર્વ પ્રાણીઓ વિષયોમાં રત હોવાથી મનુષ્ય ભૂંડ વગેરે (પશુ-પક્ષી) સમાન બની જાય એવો પ્રસંગ ઊભો થાય, એમ અર્થ છે. વળી, **('कौमार आचरेत्' (७/६/१) 'न ह्यच्युतं प्रीणयतो बह्वायासः'** (૬/૬/૧૯) વગેરે પૂર્વના શ્લોકો છે. અહીં) પુનરુક્તિ દોષ નહીં આવે કારણ કે નારદજી દ્વારા કહેવામાં આવેલાના અનુવાદરૂપ આ પ્રકરણનો (દોષ નથી). ।।૩૮।।

वंशीधरी—'आत्मनो जीवस्य सख्युः 'सयुजा सखाया' इति श्रुतेः। न हि सख्युरुपासने किञ्चित्कष्टमिति भावः।'

જીવના સખા આત્માની (ઉપાસના સરળ છે). 'સર્વદા સાથે રહેનારાં, સમાન સ્વભાવવાળાં બે પક્ષીઓ (જીવાત્મા અને પરમાત્મા) એક શરીરરૂપી વૃક્ષના આશ્રિત છે.'(મુંડક.ઉપ.૩/૧) મિત્રસેવા કરવામાં કંઈ પણ કષ્ટ ન જ હોય, એવો ભાવ છે.

'इत्यर्थः इति। हरिभजनं विना केवलविषयसेविनस्तु द्विपदपशव एवेति भावः।'
'ये मानुष्यं सर्वयत्नैरलभ्यं
सम्प्राप्यापि श्रीहरिन्नो भजन्ते।
ते विज्ञेया मानवाः शृङ्गपुच्छै-
र्हीना लोके सैरिभा ऐन्द्रियाक्ताः॥'
इत्यभियुक्तोक्तेः'।

શ્રીહરિના ભજન વિના કેવળ વિષયોનું સેવન કરનારાઓ તો બેપગાં પશુઓ જ છે, એવો ભાવ છે.

'સર્વ પ્રયત્નોથી પ્રાપ્ત ન કરી શકાય તેવું મનુષ્યત્વ પ્રાપ્ત કરીને પણ જે મનુષ્યો શ્રીહરિને ભજતા નથી, તેઓ આ સંસારમાં શિંગડાં અને પૂંછડાં વગરના અને ઈન્દ્રિયસુખમાં ખરડાયેલા પાડા છે.' એ આરોપ યોગ્ય છે.

सि.प्र.—'स्वे हृदि तु छिद्रवत् छिद्रे इव सतः चोरो यथा महता यत्नेन छिद्रे धनलोभेन धनिकगृहछिद्रे प्रविष्टो भवति तद्वद्भक्तिरस-लोभेन स्वभक्तहृदि प्रविष्टस्य' इति सिद्धां.।

अनर्थकं विषयार्जनमित्याह—

रायः कलत्रं पशवः सुतादयो
गृहा मही कुञ्जरकोशभूतयः।
सर्वेऽर्थकामाः क्षणभङ्गुरायुषः
कुर्वन्ति मर्त्यस्य कियत् प्रियं चलाः॥ ३९

रायोऽर्थाः क्षणभङ्गुरमायुर्यस्य तस्यैते कियत्प्रियं कुर्वन्ति। तदुक्तमितिहासेषु

'धनं हि पुरुषो लोके पुरुषं धनमेव वा।
अवश्यमेकं त्यजति तस्मात्किं धनतृष्णया॥'
इति॥ ३९॥

'यन्न दुःखेन संभिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम्।
अभिलाषोपपन्नं च सुखं स्वर्गपदास्पदम्॥'

इत्येवंभूताः स्वर्गादिभोगा अपि न सेवार्हा इत्याह—**एवं हीति**।

एवं हि लोकाः क्रतुभिः कृता अमी
क्षयिष्णवः सातिशया न निर्मलाः।
तस्माददृष्टश्रुतदूषणं परं
भक्त्यैकयेशं भजतात्मलब्धये॥ ४०

જેમ ચોરો મહાપ્રયત્નથી ધનના લોભે ધનિકના ઘરના છિદ્રમાં પ્રવિષ્ટ થાય, તેવી રીતે પોતાના હૃદયમાં છિદ્ર હોય ત્યારે ભક્તિરસના લોભથી પોતાના ભક્તના હૃદયાકાશમાં પ્રવિષ્ટ થયેલા ભગવાનની (ઉપાસનામાં કયો મોટો પરિશ્રમ છે?)

વિષયોની પ્રાપ્તિ નિરર્થક છે, એમ કહે છે–

ધન, ભાર્યા, (ગાય, ઘોડા વગેરે) પશુઓ, પુત્ર વગેરે (સગાં-સંબંધીઓ), ઘર, ભૂમિ (આજીવિકાનાં સાધનો), હાથીઓ, ખજાના, ઉપભોગનાં સાધન-સામગ્રી, સર્વ પદાર્થો અને કામનાઓ અસ્થિર છે. ક્ષણભંગુર આયુષ્યવાળા મનુષ્યનું તે બધાં કેટલું પ્રિય કરે છે? (કંઈ જ નહીં).।।૩૯।।

'**रायः**' ધન (**रै**) સમ્પત્તિઓ, જેનું આયુષ્ય ક્ષણભંગુર છે તેનું આ બધા પદાર્થો કેટલું પ્રિય કરે છે? ઈતિહાસોમાં તે (જ) કહેવામાં આવ્યું છે, 'ખરેખર, આ સંસારમાં પુરુષ ધનનો ત્યાગ કરે છે અથવા તો ધન પુરુષનો ત્યાગ કરે છે. (કોઈ પણ એક) અવશ્ય અન્યનો ત્યાગ કરે છે, તેથી ધનની તૃષ્ણાથી શું પ્રયોજન છે?'।।૩૯।।

'સ્વર્ગના સ્થાનનું સુખ કે જે દુઃખથી મિશ્ર નથી કે નથી તત્કાળ નાશ પામતું, તે સુખ તો અભિલાષાથી તદનુસાર પ્રાપ્ત થયેલું છે, માટે આવા સ્વર્ગાદિ ભોગો પણ સેવવા યોગ્ય નથી, એમ કહે છે– '**एवं हि इति।**'

એ જ રીતે (જેમ આ લોકની સંપત્તિ નાશવંત છે તેમ) યજ્ઞોથી પ્રાપ્ત થનારા તે સ્વર્ગાદિ લોક (પુણ્યના ઓછાવત્તાપણાથી અન્ય કરતાં) અધિક ઐશ્વર્યવાળા અને વિનાશી હોવા છતાં નિર્મળ નથી. (સ્પર્ધા વગેરે દોષવાળા, મલિન તથા દુઃખમિશ્રિત છે, કેવળ પરમાત્મા જ નિર્મળ, નિર્દોષ છે.) માટે જેમનામાં (કોઈ પણ પ્રકારનાં) દૂષણ જોયાં કે સાંભળ્યાં નથી, તેવા પરમેશ્વરનું આત્માની પ્રાપ્તિ માટે અનન્ય ભક્તિપૂર્વક ભજન કરો.।।૪૦।।

क्षयिष्णुत्वे हेतुः—क्रतुभिः कृता इति। 'तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयत एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते' इति श्रुतेः। अत एव पुण्यतारतम्येन सातिशयाः न च निर्मलाः, स्पर्धादिमत्त्वात्। न विद्यते दृष्टं श्रुतं च दूषणं यस्मिन्॥ ४०॥

(સ્વર્ગાદિ ભોગો) નાશવંત હોવા માટેનું કારણ— (તે ભોગો) યજ્ઞો દ્વારા પ્રાપ્ત થનારા છે. 'જેમ આ લોકમાં કર્મ દ્વારા પ્રાપ્ત કરવામાં આવેલો લોક નાશ પામે છે, તેમ પરલોકમાં પુણ્યથી પ્રાપ્ત કરેલો લોક નાશ પામે છે.' (છાં.ઉપ.૮/૧/૬) આથી જ પુણ્યના ઓછા-વત્તાપણાને કારણે સ્વર્ગાદિ લોકો '**सातिशयाः**' અધિક ઐશ્વર્યવાળા છે, નિર્મળ નથી, કારણ કે સ્પર્ધાદિવાળા છે. (તેનાથી અધિક સુખવાળા લોક હોય છે.) જેમનામાં કોઈ પણ પ્રકારનાં દૂષણ નથી જોયાં કે નથી (શ્રુતિ અને સ્મૃતિમાં) સાંભળ્યાં (તેવા પરમાત્માને પ્રીતિ કરો).।।૪૦।।

यदध्यर्थ्येह कर्माणि विद्वन्मान्यसकृन्नरः।
करोत्यतो विपर्यासममोघं विन्दते फलम्॥ ४१

પોતાને વિદ્વાન માનનારો મનુષ્ય આ સંસારમાં (વૈષયિક સુખની લિપ્સાથી) જે (યજ્ઞયાગાદિ કર્મો)નો સંકલ્પ કરીને વારંવાર (યજ્ઞાદિ) કર્મો કરે છે, તેના (અભિલષિત સુખાદિ) કરતાં વિપરીત (દુઃખાદિ ફળને જ) અવશ્ય પ્રાપ્ત કરે છે.।।૪૧।।

किंच यदध्यर्थ्य यत्संकल्प्य। अतः संकल्पिताद्विपर्यासं विपरीतं फलममोघमवश्यं प्राप्नोति॥ ४१॥

વળી, (ભગવાનને અર્પણ ન કરી હોય તેવી બુદ્ધિથી અનુષ્ઠાન કરવામાં આવેલાં) '**यत्**' જે (કર્મો)નો '**अध्यर्थ्य**' સંકલ્પ કરીને— '**अतः**' આ સંકલ્પ કરેલા કર્મ કરતાં '**विपर्यासम्**' ઊલટા ફળને (જ) '**अमोघम्**' અવશ્ય પ્રાપ્ત કરે છે. ।।૪૧।।

तदेव दर्शयति—**सुखायेति**।

तद् તે ફળની વિપરીતતા જ દર્શાવે છે— '**सुखाय इति।**'

सुखाय दुःखमोक्षाय सङ्कल्प इह कर्मिणः।
सदाऽऽप्नोतीहया दुःखमनीहायाः सुखावृतः॥ ४२

અહીં (કર્મમાર્ગમાં) કર્મ કરનાર મનુષ્યનો સંકલ્પ સુખ પામવા માટે અને દુઃખથી છૂટવા માટે હોય છે. (પહેલાં જે મનુષ્ય) કામના ન હોવાને કારણે સુખથી ભરપૂર હતો, તે કામનાને કારણે સદા દુઃખ જ પ્રાપ્ત કરે છે.।।૪૨।।

ईहया इच्छया क्रियया वा। यः पूर्वमनीहाया हेतोः सुखेनावृतो व्याप्त आसीत्स ईहया दुःखमाप्नोत्येव ॥ ४२ ॥

विजय.—ब्रह्मार्पणलक्षणेन करणमनीहा। तदुक्तम् 'अप्रयत्नेन करणमनीहा प्रोच्यते बुधैः।' इति।

कामान्कामयते काम्यैर्यदर्थमिह पूरुषः।
स वै देहस्तु पारक्यो भङ्गुरो यात्युपैति च ॥ ४३

किंच कामान्भोगान्। काम्यैर्विषयैः कर्मभिर्वा। पारक्यः श्वादिभोग्यो न त्वात्मीयो भङ्गुरश्च ॥ ४३ ॥

वंशीधरी—याति नश्यति। उपैति पुनर्दुःख-दानायोत्पाद्यायाति।

किमु व्यवहितापत्यदारागारधनादयः।
राज्यं कोशगजामात्यभृत्याप्ता ममतास्पदाः ॥ ४४

किमु देहाद्व्यवहिता अपत्यादयो ममता-विषयाः पारक्या इति वक्तव्यम् ॥ ४४ ॥

किंच स्वयं पुरुषार्थरूपस्य किमेतैरतितुच्छै-रित्याह—**किमेतैरिति**।

किमेतैरात्मनस्तुच्छैः सह देहेन नश्वरैः।
अनर्थैरर्थसंकाशैर्नित्यानन्दमहोदधेः ॥ ४५

॥ ४५ ॥

'**ईहया**' કર્મફળની કામના કે ક્રિયાને કારણે, પૂર્વે જે મનુષ્ય કામના ન હોવાને કારણે સુખથી '**आवृतः**' ભરપૂર હતો, તે કામનાને કારણે દુઃખ જ પ્રાપ્ત કરે છે.।।૪૨।।

ભગવદર્પણ લક્ષણ (કે બુદ્ધિ)થી કરવામાં આવેલું કર્મ નિષ્કામ છે. તે જ કહેવાયું છે– (ધનાર્જન, યાગાદિ અનુષ્ઠાન વગેરે) પ્રયત્ન કર્યા વિના કરવામાં આવેલા કર્મને વિદ્વજ્જનો દ્વારા નિષ્કામ કર્મ કહેવામાં આવ્યું છે.

આ લોકમાં પુરુષ જેને માટે કામ્ય કર્મો કરી કામનાઓ ઈચ્છે છે, તે શરીર પારકું છે, નાશવંત છે, જાય છે અને આવે છે.।।૪૩।।

વળી, '**कामान्**' ભોગોને– કામ્ય વિષયો અથવા કર્મો કરવા દ્વારા– '**पारक्यः**' કૂતરા વગેરેને ખાવા યોગ્ય શરીર પારકું છે, પરંતુ આત્મીય, પોતાનું નથી, વળી નાશવંત છે.।।૪૩।।

(શરીર) નાશ પામે છે અને ફરી પાછું દુઃખ આપવા માટે ઉત્પન્ન થઈને આવે છે.

(આપણું શરીર જ પારકું છે ત્યારે એ શરીરથી) અલગ સંતાન, પત્ની, ઘર, ધન, (મિત્ર) વગેરે, રાજ્ય, ખજાનો, હાથી, મંત્રી, સેવક, વિશ્વસનીય (ગુરુજનો) મમતાના સ્થાન (હોવા છતાં પારકાં છે), એમાં શું કહેવું?।।૪૪।।

દેહથી જુદાં સંતાન વગેરે મમતાના વિષયો (હોવા છતાં) પારકાં છે, એમાં શું કહેવું?।।૪૪।।

વળી, સ્વયં (પરમ) પુરુષાર્થરૂપ આત્માને આ બધા અતિતુચ્છ પદાર્થોથી શું પ્રયોજન છે, એમ કહે છે– '**किम् एतैः इति।**'

નિત્ય આનંદના મહાસાગર (એવા આત્મા)ને દેહની સાથે નાશ પામતા અને પુરુષાર્થરૂપ જેવા ભાસતા આ અનર્થરૂપ (અતિશય) તુચ્છ પદાર્થોથી શું પ્રયોજન છે?।।૪૫।।૪૫।।

वि.चक्र.—नित्यो भजनरूप आनन्दरसोदधिर्यस्य तस्य भक्तजनस्य।

નિત્ય ભજનરૂપ આનન્દરસનો સમુદ્ર જેનો છે તે ભક્તજનને (તુચ્છ પદાર્થોથી શું પ્રયોજન છે?)

भोगावसराभावाच्चैतैः क उपयोग इत्याह—**निरूप्यतामिति**।

(**कर्मभिः क्लिश्यमानस्य** કર્મોથી ક્લેશ પામતા જીવને) ભોગો ભોગવવાનો અવસર ન મળવાથી પણ આ બધા પદાર્થોથી શું ઉપયોગ છે, એમ કહે છે— '**निरूप्यताम् इति।**'

निरूप्यतामिह स्वार्थः कियान्देहभृतोऽसुराः।
निषेकादिष्ववस्थासु क्लिश्यमानस्य कर्मभिः॥ ४६

હે અસુરો, (પૂર્વજન્મનાં) કર્મોને કારણે ગર્ભાધાન વગેરેથી (માંડીને અંતે સ્મશાન સુધીની) અવસ્થાઓમાં ક્લેશ પામતા દેહધારી (જીવ)ને આ સંસારમાં કેટલો સ્વાર્થ સધાવાનો છે, તે તમે જણાવો.।।૪૬।।

प्राचीनैः कर्मभिः क्लिश्यमानस्य। कर्मभिः कियान्स्वार्थ इति वाऽन्वयः॥ ४६॥

પૂર્વજન્મનાં કર્મોને કારણે ક્લેશ પામતા દેહધારી (જીવ)ને, અથવા બીજો અન્વયઃ— **(कर्मभिः कियान् स्वार्थः)** કર્મ કરવાની અપેક્ષાની નિવૃત્તિ ન થવાને કારણે કહે છે કે કર્મ કરતા રહેવાથી આ સંસારમાં કેટલો સ્વાર્થ સધાવાનો છે?।।૪૬।।

ननु कर्मसु समाप्तेषु भोगावसरः स्यात्तत्राह—**कर्माणीति**।

શંકા કરવામાં આવી છે કે કર્મો સમાપ્ત થશે ત્યારે ભોગ ભોગવવાનો અવસર પ્રાપ્ત થશે, તે માટે કહે છે— '**कर्माणि इति।**'

कर्माण्यारभते देही देहेनात्मानुवर्तिना।
कर्मभिस्तनुते देहमुभयं त्वविवेकतः॥ ४७

આત્માને અનુસરતા દેહ વડે જીવ કર્મો કરે છે અને કર્મો વડે (ફરી) દેહ પામે છે. (કર્મ અને શરીર, આ) બંને કેવળ અવિવેક (અજ્ઞાન)ને કારણે વિસ્તરે છે.।।૪૭।।

न चेदं कर्म तस्य फलं देहादिकं च परमार्थ इत्याह—उभयं कर्म च देहं च। अविवेकतोऽज्ञानेनैव तनुते॥ ४७॥

આ કર્મ કે તેના ફળરૂપ દેહ વગેરે પારમાર્થિક નથી, એમ કહે છે— '**उभयम्**' કર્મ અને શરીર— આ બંને '**अविवेकतः**' અવિવેકરૂપ અજ્ઞાનને કારણે જ વિસ્તાર પામે છે.।।૪૭।।

तस्मादर्थाश्च कामाश्च धर्माश्च यदपाश्रयाः।
भजतानीहयाऽऽत्मानमनीहं हरिमीश्वरम्॥ ४८

માટે (સર્વ) અર્થ, કામ અને ધર્મ જેમને અધીન છે તે સર્વના આત્મસ્વરૂપ નિરપેક્ષ ઈશ્વર શ્રીહરિનું તમે નિષ્કામ ભાવે ભજન કરો.।।૪૮।।

अर्थादयो यदपाश्रया यदधीनाः ॥ ४८ ॥

अनीहया ऐहिकामुष्मिकपदार्थवासना-त्यागेन। अनीहं निरपेक्षम्।

सर्वेषामपि भूतानां हरिरात्मेश्वरः प्रियः।
भूतैर्महद्भिः स्वकृतैः कृतानां जीवसंज्ञितः ॥ ४९

भूतानां प्राणिनाम्। जीवसंज्ञितोऽन्तर्यामी ॥ ४९ ॥

असुराणामस्माकम् अत्राऽनधिकार इत्यपि न वाच्यमित्याह—**देव इति** पञ्चभिः।

देवोऽसुरो मनुष्यो वा यक्षो गन्धर्व एव च।
भजन् मुकुन्दचरणं स्वस्तिमान् स्याद्यथा वयम्॥ ५०

॥ ५० ॥

नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वासुरात्मजाः।
प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न बहुज्ञता॥ ५१

॥ ५१ ॥

न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च।
प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद् विडम्बनम्॥ ५२

अमलया निष्कामया। अन्यद्विडम्बनं नटनमात्रम्॥ ५२ ॥

ततो हरौ भगवति भक्तिं कुरुत दानवाः।
आत्मौपम्येन सर्वत्र सर्वभूतात्मनीश्वरे॥ ५३

॥ ५३ ॥

અર્થ વગેરે '**यत्-अपाश्रयाः**' જેમને અધીન છે.।।૪૮।।

આ લોક અને પરલોકના પદાર્થોની વાસનાના ત્યાગ વડે '**अनीहम्**' નિરપેક્ષ શ્રીહરિને (ભજો).

ભગવાન શ્રીહરિ પોતે સર્જેલાં (પંચ) મહાભૂતોથી કરેલાં સમસ્ત પ્રાણીઓના પ્રિય, આત્મા, ઈશ્વર, જીવ સંજ્ઞાવાળા અંતર્યામી છે.।।૪૯।।

'**भूतानाम्**' (દેવ, અસુર, મનુષ્ય, પશુ, પક્ષી વગેરે સર્વ) પ્રાણીઓના '**जीवसंज्ञितः**' જીવ સંજ્ઞાવાળા અંતર્યામી છે.।।૪૯।।

આપણો અસુરોનો શ્રીહરિની ભક્તિમાં અધિકાર નથી એમ પણ ન સમજવું જોઈએ, એમ પાંચ શ્લોકો વડે કહે છે— '**देवः इति।**'

(સંસારના દુ:ખમાંથી મુક્ત કરનાર) મુકુન્દ ભગવાનના ચરણનું ભજન કરનાર (હર કોઈ) દેવ, અસુર, મનુષ્ય, યક્ષ કે ગંધર્વ આપણી જેમ કલ્યાણ પામે જ છે.।।૫૦।।૫૦।।

હે અસુરપુત્રો, મુકુન્દ ભગવાનને પ્રસન્ન કરવા માટે દ્વિજત્વ, દેવત્વ, ઋષિત્વ (બ્રાહ્મણત્વ), પાંડિત્ય કે (વર્ણાશ્રમનો ક્રિયારૂપ) આચાર જરૂરી નથી.।।૫૧।।૫૧।।

શ્રીહરિને ન દાન પ્રસન્ન કરી શકે, ન તપ, ન યજ્ઞ, ન પવિત્રતા કે ન વ્રતો. (કેવળ નિષ્કામ) વિશુદ્ધ ભક્તિથી શ્રીહરિ પ્રસન્ન થાય છે, બીજું બધું તો નાટક છે.।।૫૨।।

'**अमलया**' નિષ્કામ વિશુદ્ધ ભક્તિથી, બીજું માત્ર '**विडम्बनम्**' નાટક છે.।।૫૨।।

આથી હે દાનવો, સર્વ પ્રાણીઓને પોતાના સમાન સમજીને, સર્વ પ્રાણીઓના આત્મા (સર્વશક્તિમાન) ભગવાન શ્રીહરિ પ્રત્યે ભક્તિ કરો.।।૫૩।।૫૩।।

आत्मौपम्येनेत्यत्र सुखदुःखादिदृष्ट्येत्यर्थः।

'आत्मौपम्येन' અહીં સુખ-દુઃખ વગેરે દૃષ્ટિથી એમ અર્થ છે.(જેમ પોતાને સુખ-દુઃખ વગેરે થાય છે તેમ સર્વ પ્રાણીઓને પણ થાય છે, તેવી દૃષ્ટિ રાખી સર્વ ઉપર સ્નેહ રાખવો.)

दैतेया यक्षरक्षांसि स्त्रियः शूद्रा व्रजौकसः।
खगा मृगाः पापजीवाः सन्ति ह्यच्युततां गताः॥
॥ ५४॥

(ભગવાન શ્રીહરિની ભક્તિના પ્રભાવથી) દૈત્યો, યક્ષો, રાક્ષસો, સ્ત્રીઓ, શૂદ્રો, વ્રજવાસીઓ, પક્ષીઓ, મૃગો (વગેરે) પાપી જીવો પણ અમૃતત્વને (અચ્યુતત્વને) પામ્યા છે.।।૫૪।।

अच्युततामममृतत्वम्॥ ५४॥

'अच्युतताम्' અમૃતત્વને।।૫૪।।

बा.प्र.—'दैतेयाः तृणावर्तादयः। यक्षाः शङ्खचूडादयः। रक्षांसि विभीषणादयः। स्त्रियः ताटकापूतनादयः। शूद्राश्चाणूरादयः। व्रजौकसो वनवासिनो यमलार्जुनवृक्षादयोऽपि। खगा बकजटायुप्रभृतयः। मृगा मारीचकेश्यादयः।'

તૃણાવર્ત વગેરે દૈત્યો, શંખચૂડ વગેરે યક્ષો, વિભીષણાદિ રાક્ષસો, તાડકા અને પૂતના વગેરે સ્ત્રીઓ, ચાણૂર વગેરે શૂદ્રો, વ્રજવાસીઓ, વનવાસીઓ તથા યમલાર્જુન વૃક્ષો વગેરે બક, જટાયુ વગેરે પક્ષીઓ, મારીચ, કેશી વગેરે મૃગો, આવા પાપી જીવો (પણ ભગવાનના સાધર્મ્યને પામ્યા છે– અમૃતત્વને પામ્યા છે.)

अध्यायद्वयोक्तमुपसंहरति—**एतावानिति**।

(છઠ્ઠા અને સાતમા, એમ) બે અધ્યાયમાં કહેવામાં આવ્યું તેનો ઉપસંહાર કરે છે— **'एतावान् इति।'**

एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसः स्वार्थः परः स्मृतः।
एकान्तभक्तिर्गोविन्दे यत् सर्वत्र तदीक्षणम्॥ ५५

આ સંસારમાં (અથવા આ મનુષ્યશરીરમાં) જીવનો સૌથી મોટો સ્વાર્થ (એકમાત્ર પરમાર્થ) એટલો જ કહ્યો છે, કે શ્રીગોવિંદ ભગવાન પ્રત્યે અનન્ય ભક્તિ કરવી અને સર્વત્ર તે ભગવાનનાં જ દર્શન કરવાં. (અર્થાત્ સર્વને ભગવદ્દૃષ્ટિથી સન્માન આપવું.)।।૫૫।।

तदीक्षणं गोविन्ददृष्ट्या सम्माननम्॥ ५५॥

'तत्-ईक्षणम्' તે ગોવિંદ ભગવાનની દૃષ્ટિથી સર્વમાં (સ્થાવર-જંગમ વસ્તુઓમાં) ભગવદ્દર્શન કરી સર્વને સમ્માન આપવું.।।૫૫।।

क्रम.—तस्य भगवत एव ईक्षणं स्फूर्तिः 'सर्वभूतेषु यः पश्येत्' इत्यादेः।

તે ભગવાનનું જ સ્ફુરણ, પ્રકટીકરણ. 'જે સર્વ પ્રાણીઓમાં (ભગવાનનાં) દર્શન કરે છે.' વગેરે વચન હોવાથી.

भगवतो भावनापरिपाकेन भगवदीक्षणं यदुक्तम्
'नारायणमयं धीराः पश्यन्ति परमार्थिनः।
जगद्धनमयं लुब्धः कामुकः कामिनीमयम्।'
इति। यथा प्रह्लादोऽयं स्तम्भेऽपि भगवन्तमपश्यत्।

ભગવદ્ભાવની પરિપક્વતાથી ભગવદ્દર્શન એટલે '**तदीक्षणम्**' જે અનુસાર કહેવામાં આવ્યું છે કે "ધીર પરમાર્થી પુરુષો જગતને નારાયણમય જુએ છે, લોભી જગતને ધનમય અને કામી જગતને કામિનીમય જુએ છે." જેમ આ પ્રહ્લાદજીએ થાંભલામાં પણ ભગવાનને જોયા હતા.

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे प्रह्लादानुचरिते दैत्यपुत्रानुशासनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

*****

अथाष्टमोऽध्यायः

નરસિંહ ભગવાનનો પ્રાદુર્ભાવ, હિરણ્યકશિપુનો વધ અને ભગવાનની સ્તુતિ

अष्टमेऽतिरुषा सूनुं निघ्नन् दैत्यो हतः स्वयम्।
आविर्भूय नृसिंहेन स च ब्रह्मादिभिः स्तुतः॥ १

અત્યંત ક્રોધથી પુત્રને મારવા જતો દૈત્ય (હિરણ્યકશિપુ) શ્રીનરસિંહ દ્વારા સ્વયં પ્રકટ થઈને હણાયો તથા બ્રહ્માદિ (દેવો) દ્વારા તે નરસિંહ સ્તુતિ કરાયા, એ (કથા) આઠમા અધ્યાયમાં છે.।।૧।।

अन्तः कृपासुधापूर्णो बहिः क्रोधो नृकेसरी।
दैत्येन्द्रमरिभावेन भजन्तं समभावयत्॥ २

અંદર કૃપામૃતપૂર્ણ અને બહાર ક્રોધપૂર્ણ એવા નરકેસરીએ વેરભાવથી ભજતા દૈત્યેન્દ્રને માર્યો.।।૨।।

नारद उवाच

अथ दैत्यसुताः सर्वे श्रुत्वा तदनुवर्णितम्।
जगृहुर्निरवद्यत्वान्नैव गुर्वनुशिक्षितम्॥ १ ॥ १ ॥

નારદજી બોલ્યા – (પ્રહ્લાદજીએ ઉપદેશ આપ્યો) ત્યાર પછી સર્વ દૈત્યપુત્રોએ તેમનો ઉપદેશ સાંભળીને નિર્દોષ હોવાથી તે જ ગ્રહણ કર્યો, પરંતુ (દૈત્યોના) ગુરુએ શીખવેલું ગ્રહણ કર્યું જ નહીં.।।૧।।૧।।

अथाचार्यसुतस्तेषां बुद्धिमेकान्तसंस्थिताम्।
आलक्ष्य भीतस्त्वरितो राज्ञ आवेदयद् यथा॥ २

હવે ભયભીત થયેલા ગુરુપુત્રે તે દૈત્ય-બાળકોની બુદ્ધિ એક માત્ર ભગવાનમાં જ સ્થિર થયેલી જોઈ રાજાને જેમ હતું તેમ ત્વરાથી જણાવી દીધું.।।૨।।

एकान्तसंस्थितां प्रत्यङ्निष्ठाम्। यथा यथावत्॥ २॥

'**एकान्तसंस्थिताम्**' એક માત્ર ભગવાનમાં જ જે સમાવિષ્ટ થઈ છે તેવી અન્તર્નિષ્ઠ બુદ્ધિ– '**यथा**' જેમ હતું તેમ।।૨।।

श्रुत्वा तदप्रियं दैत्यो दुःसहं तनयानयम्।
कोपावेशचलद्गात्रः पुत्रं हन्तुं मनो दधे॥ ३

स च पुत्रं हन्तुं मनो दधे। कथंभूतः। कोपस्यावेशेनोद्रेकेण चलद्गात्रं वपुर्यस्य सः ॥ ३ ॥

અપ્રિય અને અસહ્ય એવી પુત્રની તે અનીતિ સાંભળીને ક્રોધાવેશથી ધ્રૂજતા શરીરવાળા દૈત્યે પુત્રને હણવા માટે મનસૂબો ઘડ્યો.।।૩।।

અને તેણે પુત્રને હણવા માટે નિશ્ચય કર્યો. તે હિરણ્યકશિપુ કેવો? ક્રોધના '**आवेशेन**' ઉદ્રેકથી, ક્રોધ વધી જવાથી ધ્રૂજતું '**गात्रम्**' શરીર છે જેનું તેવો તે।।૩।।

क्षिप्त्वा परुषया वाचा प्रह्लादमतदर्हणम्।
आहेक्षमाणः पापेन तिरश्चीनेन चक्षुषा॥ ४
प्रश्रयावनतं दान्तं बद्धाञ्जलिमवस्थितम्।
सर्पः पदाहत इव श्वसन्प्रकृतिदारुणः॥ ५

क्षिप्त्वा तिरस्कृत्य। पापेन सरोषेण। तिरश्चीनेन वक्रेण॥ ४॥ ५॥

મન અને ઇન્દ્રિયોને વશમાં રાખનાર, બે હાથ જોડીને ઊભેલા અને વિનયપૂર્વક નમેલા તેમ જ તિરસ્કારને (સર્વથા) અયોગ્ય એવા પ્રહ્‌લાદજીનો કઠોર વાણીથી તિરસ્કાર કરી, પગથી ઠેસ વાગેલા સર્પની જેમ ફૂંફાડા મારતો અને રોષભરી વક્ર દૃષ્ટિથી જોતો, સ્વભાવથી જ ક્રૂર હિરણ્યકશિપુ કહેવા લાગ્યો.।।૪।।૫।।

'**क्षिप्त्वा**' તિરસ્કાર કરીને– '**पापेन**' રોષસભર વક્ર દૃષ્ટિથી।।૪।।૫।।

हे दुर्विनीत मन्दात्मन्कुलभेदकराधम।
स्तब्धं मच्छासनोद्धूतं नेष्ये त्वाऽद्य यमक्षयम्॥ ६

हे मन्दात्मन्नल्पबुद्धे, मदाज्ञातिलङ्घिनं त्वामद्य यमालयं नेष्यामि॥ ६ ॥

અરે ઓ ઉદ્ધત! મંદબુદ્ધિ! કુળનો નાશ કરનાર અધમ! મારી આજ્ઞાનું ઉલ્લંઘન કરનાર અભિમાની એવા તને હું હમણાં (જ) યમસદન લઈ જઈશ.।।૬।।

'**हे मन्दात्मन्**' હે મંદબુદ્ધિ, મારી આજ્ઞાનું ઉલ્લંઘન કરનાર તને હમણાં યમસદન લઈ જઈશ.।।૬।।

क्रुद्धस्य यस्य कम्पन्ते त्रयो लोकाः सहेश्वराः।
तस्य मेऽभीतवन्मूढ शासनं किम्बलोऽत्यगाः॥ ७

अभीतवत्। किं बलं यस्य स किंबलः॥ ७॥

ક્રોધે ભરાયેલા એવા જેના (ભય)થી લોકપાલો સહિત ત્રણેય લોક ધ્રૂજે છે, તેવા મારી આજ્ઞાનું અરે ઓ મૂઢ! કોના બળના આધારે તેં નિર્ભયની જેમ ઉલ્લંઘન કર્યું છે?।।૭।।

નિર્ભયની જેમ– કોનું બળ છે જેને તે '**किंबलः**'।।૭।।

प्रह्लाद उवाच

न केवलं मे भवतश्च राजन्
स वै बलं बलिनां चापरेषाम्।
परेऽवरेऽमी स्थिरजङ्गमा ये
ब्रह्मादयो येन वशं प्रणीताः॥ ८॥ ८॥

વશં પ્રણીતા इत्यत्र हेतुः—**स ईश्वर इति।**

स ईश्वरः काल उरुक्रमोऽसा-
वोजःसहःसत्त्वबलेन्द्रियात्मा ।
स एव विश्वं परमः स्वशक्तिभिः
सृजत्यवत्यत्ति गुणत्रयेशः॥ ९

उरवः क्रमाः पादविक्षेपा यस्य। बहुपराक्रम इति वा। ओजआदिरूपः। सत्त्वं धैर्यं बुद्धिर्वा॥ ९॥

ननु मच्छत्रुरसौ कथं ममापि स एव बलं स्यादत आह—**जहीति।**

जह्यासुरं भावमिमं त्वमात्मनः
समं मनो धत्स्व न सन्ति विद्विषः।
ऋतेऽजितादात्मन उत्पथस्थितात्
तद्धि ह्यनन्तस्य महत् समर्हणम्॥ १०

आत्मनः स्वस्य भावं स्वभावं त्यज। यतोऽजितादात्मनो मनस ऋते विनाऽन्ये विद्विषो न सन्ति। किंच तद्धि तदेव हि साम्येन मनसो धारणमेव समर्हणमाराधनम् ॥ १०॥

પ્રહ્‌લાદજી બોલ્યા – હે રાજા, તે બ્રહ્મા વગેરે જે મહાન અને અલ્પ, ચર અને અચર જીવો છે, તે (સર્વ) જેમના દ્વારા પોતાના વશમાં કરવામાં આવ્યા છે તે (પરમેશ્વર) કેવળ મારા અને તમારા જ બળરૂપ નથી, પણ અન્ય સર્વ બળવાનોના પણ બળરૂપ છે.।।૮।।૮।।

(સર્વ પ્રાણીઓને ઈશ્વરે પોતાના) વશમાં રાખ્યા છે, એ માટે અહીં કારણ આપે છે— **'सः ईश्वरः इति।'**

તે કાળરૂપ ઈશ્વર વિરાટ પગલાંવાળા (મહાપરાક્રમી), ઈન્દ્રિયબળરૂપ, મનોબળરૂપ, ધૈર્યરૂપ, દેહશક્તિરૂપ અને ઈન્દ્રિયરૂપ છે. (ત્રણે) ગુણોના નિયંતા તે જ પરમેશ્વર પોતાની શક્તિઓ દ્વારા વિશ્વનું સર્જન, પાલન અને સંહાર કરે છે.।।૯।।

વિરાટ **'क्रमाः'** પગલાં છે જેમનાં અથવા મહાપરાક્રમી– ઈન્દ્રિયબળરૂપ વગેરે– **'सत्त्वम्'** ધૈર્ય અથવા બુદ્ધિ ।।૯।।

(હિરણ્યકશિપુ) શંકા કરે છે કે મારો શત્રુ તે (વિષ્ણુ) મારું જ બળ કેવી રીતે હોઈ શકે? માટે કહે છે– **'जहि इति।'**

તમે પોતાના આ આસુરીભાવનો ત્યાગ કરો. પોતાનાથી ન જિતાયેલા અને તેથી જ અવળા માર્ગે રહેલા મન સિવાય બીજા કોઈ શત્રુઓ નથી. આથી મનને સમભાવમાં સ્થિર કરો, એ જ અનંત ભગવાનની સર્વોત્કૃષ્ટ આરાધના છે.।।૧૦।।

'आत्मनः' પોતાનો **'भावम्'** સ્વભાવ, પોતાનો આસુરીભાવ છોડો, કારણ કે પોતાના વશમાં ન રહેનાર અજિતેન્દ્રિય **'आत्मनः ऋते'** મન સિવાય બીજા કોઈ શત્રુઓ નથી. આથી મનને સમભાવમાં સ્થિર કરવું એ જ અનંત ભગવાનની **'समर्हणम्'** સર્વોત્કૃષ્ટ આરાધના છે.।।૧૦।।

ननु मया दिग्विजये सर्वे रिपवो जिता अतः सांप्रतं विद्विषो न सन्तीति चेत्सत्यं, तत्राह—**दस्यूनिति**।

(હિરણ્યકશિપુ) શંકા કરે કે દિગ્વિજયમાં મેં બધા શત્રુઓને જીતી લીધા છે, એટલે અત્યારે કોઈ શત્રુ છે જ નહીં, એ ખરું, પણ તે માટે કહે છે— '**दस्यून् इति**।'

दस्यून्पुरा षण्णविजित्य लुम्पतो
मन्यन्त एके स्वजिता दिशो दश।
जितात्मनो ज्ञस्य समस्य देहिनां
साधोः स्वमोहप्रभवाः कुतः परे॥ ११

પહેલાં (પોતાના શરીરમાં જ રહેલા અને આત્માના ઐશ્વર્યાદિ ધનને) લૂંટતા છ ઇન્દ્રિયોરૂપી ચોર (શત્રુઓ)ને જીત્યા વગર કેટલાક દશે દિશાઓને પોતે જીતી લીધેલી માને છે. પોતાના મનને જીતી લેનાર (અને તેથી) પ્રાણીઓ ઉપર સમભાવ રાખનાર જ્ઞાની સત્પુરુષને પોતાના (દેહાદિને આત્મા માનવારૂપ) અજ્ઞાનથી કલ્પાયેલા શત્રુઓ કેવી રીતે હોય?।।૧૧।।

एके भवादृशा मन्दाः पुरा आदौ लुम्पतः सर्वस्वं हरतः षडिन्द्रियलक्षणान् शत्रून्नविजित्याजित्वा दश दिशः स्वयं जिता मन्यन्ते। साधोस्तु जितचित्तस्य। देहिनां समस्य ज्ञस्य विदुषः स्वाज्ञानकल्पिताः परे शत्रवः कुतः स्युः॥ ११॥

'**एके**' કેટલાક તમારા જેવા મંદ લોકો '**पुरा**' પહેલાં '**लुम्पतः**' (સર્વસ્વ) લૂંટતા છ ઇન્દ્રિયોના લક્ષણવાળા શત્રુઓને '**अविजित्य**' જીત્યા વગર દશે દિશાઓને પોતે જીતી લીધેલી માને છે. મનને જીતી લેનારા અને પ્રાણીઓ ઉપર સમાન ભાવ રાખનારા '**ज्ञस्य**' જ્ઞાની સાધુને તો પોતાના અજ્ઞાનથી કલ્પાયેલા '**परे**' શત્રુઓ ક્યાંથી હોય?।।૧૧।।

वंशीधरी—आन्तरशत्रुजयं विना बाह्यशत्रु-जयमानी केवलमुपहासपदमाप्नोतीति भावः।

આંતરિક શત્રુઓને જીત્યા વિના બહારના શત્રુઓને જીતી લીધેલા માનનાર મનુષ્ય કેવળ હાંસીને પાત્ર થાય છે, તેવો ભાવ છે.

बा.प्र.—मनोजयिन एव कृतार्था न भवादृशा दिग्विजयित्वाभिमानिन इत्याह।

મનોજયી જનો જ કૃતાર્થ છે, નહીં કે તમારા જેવા દિગ્વિજયી હોવાનું અભિમાન કરનારા, એમ કહે છે.

हिरण्यकशिपुरुवाच

व्यक्तं त्वं मर्तुकामोऽसि योऽतिमात्रं विकत्थसे।
मुमूर्षूणां हि मन्दात्मन् ननु स्युर्विप्लवा गिरः॥ १२

હિરણ્યકશિપુ બોલ્યો – અરે મંદબુદ્ધિ! નક્કી તું મરવા ઇચ્છે છે, કે જે તું અત્યંત બડાઈ કરે છે, કારણ કે મરવા પડેલાની વાણી જ અસંબદ્ધ હોય છે!।।૧૨।।

व्यक्तं निश्चितम्। विप्लवा अनन्विता इत्यर्थः॥ १२॥

'**व्यक्तम्**' ચોક્કસ, '**विप्लवाः**' અસમ્બદ્ધ, એમ અર્થ છે.।।૧૨।।

यस्त्वया मन्दभाग्योक्तो मदन्यो जगदीश्वरः ।
क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात् स्तम्भे न दृश्यते ॥ १३

हे मन्दभाग्य, मदन्यो जगदीश्वरो यद्यस्ति तर्ह्यसौ क्वास्ति। प्रह्लाद आह—स सर्वत्रास्ति। हिरण्यकशिपुराह—तर्हि कस्मात् स्तम्भे नास्ति। प्रह्लादस्तु तं स्तम्भं निरीक्षमाणो नमस्यन्नाह—दृश्यत इति॥ १३ ॥

हिरण्यकशिपुस्तु तत्र तमपश्यन्नाह—**सोऽहमिति।**

सोऽहं विकत्थमानस्य शिरः कायाद्धरामि ते ।
गोपायेत हरिस्त्वाद्य यस्ते शरणमीप्सितम् ॥ १४

विकत्थमानस्य विपरीतं ब्रुवाणस्य ते शिरः कायाद्धरामि पृथक्करोमि॥ १४॥

एवं दुरुक्तैर्मुहुरर्दयन् रुषा
सुतं महाभागवतं महासुरः ।
खड्गं प्रगृह्योत्पतितो वरासनात्
स्तम्भं तताडातिबलः स्वमुष्टिना ॥ १५

प्रह्लादेन मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिना निरीक्ष्यमाणं स्तम्भं मुष्टिना ताडितवान्॥ १५ ॥

तदैव तस्मिन् निनदोऽतिभीषणो
बभूव येनाण्डकटाहमस्फुटत् ।
यं वै स्वधिष्ण्योपगतं त्वजादयः
श्रुत्वा स्वधामाप्ययमङ्ग मेनिरे ॥ १६

॥ १६ ॥

અરે ઓ અભાગિયા! મારા સિવાય બીજો, જગતનો સ્વામી જે તેં કહ્યો, તે ક્યાં છે? જો તે સર્વ સ્થળે છે, તો (આ) થાંભલામાં કેમ દેખાતો નથી?।।૧૩।।

હે મંદભાગી, મારા સિવાય બીજો, જગતનો ઈશ્વર જો છે તો તે ક્યાં છે? પ્રહ્લાદજી કહે છે— તે સર્વત્ર છે. હિરણ્યકશિપુ કહે છે— તો પછી (આ) થાંભલામાં કેમ નથી? પ્રહ્લાદજી તો એ થાંભલાનું નિરીક્ષણ કરતા, નમન કરતા કહે છે— (આ થાંભલામાં પણ) દેખાય છે.।।૧૩।।

પણ હિરણ્યકશિપુએ તે થાંભલામાં તેમને (શ્રીહરિને) ન જોતાં કહ્યું— **'सः अहम् इति।'**

તે (સર્વેશ્વર તરીકે પ્રસિદ્ધ એવો) હું બડાશ હાંકતા એવા તારું મસ્તક ધડથી છૂટું પાડું છું. (હું પણ જરા જોઉં કે) પ્રાપ્ત કરવા ઈચ્છેલા તારા રક્ષક શ્રીહરિ આજે તને (કેવો) બચાવે (છે)?।।૧૪।।

'विकत्थमानस्य' બડાશ હાંકતા એવા તારું મસ્તક ધડથી **'हरामि'** જુદું કરું છું.।।૧૪।।

આમ ક્રોધથી વારંવાર કઠોર વચનો વડે ભગવાનના મહાન ભક્ત, પુત્ર પ્રહ્લાદને પીડા પહોંચાડતા, હાથમાં ખડ્ગ લઈને શ્રેષ્ઠ સિંહાસન પરથી કૂદતા અત્યંત બળવાન મહાદૈત્યે પોતાની મુઠ્ઠીથી થાંભલા ઉપર પ્રહાર કર્યો.।।૧૫।।

મસ્તક ઉપર હાથ જોડીને (ઊભેલા) પ્રહ્લાદજી દ્વારા નિહાળવામાં આવતા થાંભલા પર (હિરણ્ય-કશિપુએ) મુઠ્ઠીથી પ્રહાર કર્યો.।।૧૫।।

(નારદજી કહે છે કે) પ્રિય (યુધિષ્ઠિર), તે જ વખતે તેમાંથી (થાંભલામાંથી) (ગલ્ ગલ્ ગલ્ ગલ્ ગલ્ ગલ્ કરતો) અત્યંત ભીષણ શબ્દ થયો, જેનાથી (જાણે કે) બ્રહ્માંડનું કડાયું ફાટી ગયું! પોતાના સ્થાનમાં થયેલો જે ધ્વનિ સાંભળીને બ્રહ્માદિ દેવતાઓએ માન્યું કે પોતાના ધામનો પણ પ્રલય થઈ રહ્યો છે!।।૧૬।।૧૬।।

बा.प्र.—अङ्ग युधिष्ठिरेति स्नेहेन सम्बोधयन्नसम्भावना न कर्तव्येति सूचयति।

પ્રિય યુધિષ્ઠિર, એમ સ્નેહથી સંબોધન કરતા (નારદજી) સૂચવે છે, કે આવું ન બની શકે એમ માનવા યોગ્ય નથી.

स विक्रमन् पुत्रवधेप्सुरोजसा
निशम्य निर्ह्रादमपूर्वमद्‌भुतम्।
अन्तःसभायां न ददर्श तत्पदं
वितत्रसुर्येन सुरारियूथपाः॥ १७

બળપૂર્વક ધસી જતો, પુત્રને મારવાની ઈચ્છાવાળો તે અસુર જે ધ્વનિને કારણે અસુરોના સેનાપતિઓ પણ ત્રાસી ગયા, તે અપૂર્વ, અદ્‌ભુત ધ્વનિને સાંભળીને સભાની અંદર (જોવા લાગ્યો, પણ) તેણે તે ધ્વનિના આશ્રયને જોયો નહીં.।।૧૭।।

तत्पदं तस्य ध्वनेराश्रयम्। येन नादेन ॥ १७॥

‘**तत्-पदम्**’ તે ધ્વનિના આશ્રયને (તે ધ્વનિ કરનારને) ‘**येन नादेन**’ જે ધ્વનિને કારણે।।૧૭।।

सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितं
व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः।
अदृश्यतात्यद्‌भुतरूपमुद्वहन्
स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम्॥ १८

પોતાના ભક્તના વચનને સત્ય કરવા અને સમસ્ત પદાર્થોમાં પોતાની વ્યાપકતા સિદ્ધ કરવા માટે, નહીં સિંહનું કે નહીં મનુષ્યનું એવું અદ્‌ભુત રૂપ ધારણ કરતા ભગવાન સભાની વચ્ચે સ્તમ્ભમાં પ્રકટ થયા.।।૧૮।।

भगवांस्तदा स्तम्भं विदार्यादृश्यत दृश्यो बभूव। किमर्थम्। निजभृत्येन प्रह्लादेन यद्भाषितं दृश्यत इति तत्सत्यं विधातुं कर्तुम्।

તે સમયે ભગવાન થાંભલો ફાડીને ‘**अदृश्यत**’ પ્રકટ થયા. શા માટે? પોતાના સેવક પ્રહ્‌લાદ દ્વારા જે કહેવામાં આવ્યું હતું કે ‘**दृश्यते इति**’ દેખાય છે, તે વચનને સત્ય ‘**विधातुम्**’ કરવા માટે (ભગવાન પ્રકટ થયા).

तथाऽखिलेषु भूतेष्वात्मनो व्याप्तिं च सत्यां कर्तुं स्तम्भेऽदृश्यत। तत्किमर्थम्। ‘भौतिकेषु च भावेषु भूतेष्वथ महत्सु च॥ भगवानास्ते’ इति तेनैव भृत्येन यद्भाषितं तत्सत्यं कर्तुम्।

વળી, સમસ્ત પ્રાણીઓમાં (પદાર્થોમાં) પોતાની વ્યાપકતાને પણ સત્ય કરવા માટે સ્તમ્ભમાં દેખાયા. તે શા માટે? ‘બ્રહ્માથી માંડીને તણખલા સુધીનાં ચર-અચર સમસ્ત પ્રાણીઓમાં, પંચ-મહાભૂતો અને મહત્તત્ત્વમાં ભગવાન રહેલા છે.’ (૭/૬/૨૦,૨૧) એમ તે જ ભક્ત (પ્રહ્‌લાદજી) દ્વારા જે કહેવામાં આવ્યું હતું, તેને સત્ય કરવા માટે (ભગવાન પ્રકટ થયા).

तथाऽत्यद्भुतं दैत्यघातकमतिघोरं रूपमुद्वहन् दधत्। तत्किमर्थम्। निजभृत्यैः सनकादिभिः शापानन्तरमनुतप्तैर्भाषितं यत्, 'त्रिभिर्जन्मभिः शापमोक्षो भवतु' इति तत्सत्यं कर्तुम्।

તથા '**अति-अद्भुतम्**' દૈત્યનો વધ કરનારું અતિ ભયંકર રૂપ '**उद्वहन्**' ધારણ કરતા (ભગવાને) તેવું રૂપ શા માટે ધારણ કર્યું ? '**निजभृत्यैः**' શાપ આપ્યા પછી પશ્ચાત્તાપ કરતા પોતાના ભક્તો સનત્કુમારો દ્વારા જે કહેવામાં આવ્યું હતું, કે ત્રણ જન્મો પછી શાપથી મુક્તિ થશે, તે સત્ય કરવા માટે.

तथाऽत्यद्भुतं रूपं ब्रह्मसृष्टावदृष्टमश्रुतं च रूपमुद्वहन्। तच्च न मृगाकारं न च मनुष्याकारमुद्वहन्। सभायां मध्येऽदृश्यत तत्किमर्थम्।

તેમ જ '**अति-अद्भुतं रूपम्**' બ્રહ્માજીની સૃષ્ટિમાં ન જોયેલું અને ન સાંભળેલું રૂપ ધારણ કરતા ભગવાન, તે પણ નહીં સિંહના આકારને કે નહીં મનુષ્યના આકારને ધારણ કરતા ભગવાન સભાની વચ્ચે દેખાયા. તે શા માટે?

निजभृत्येन हिरण्यकशिपुना ब्रह्माणं प्रति यद्भाषितम्, 'भूतेभ्यस्त्वद्विसृष्टेभ्यो मृत्युर्मा भून्मम प्रभो' इति, तथा 'नान्तर्न बहिः' इति, 'न नरैर्न मृगैरपि' इति च। ब्रह्मणा च निजभृत्येन तथास्त्विति यद्भाषितं तदुभयोर्वाक्यं सत्यं कर्तुम्।

(પૂર્વ જન્મના) પોતાના (પાર્ષદ) એવા હિરણ્યકશિપુ દ્વારા બ્રહ્માજીને જે કહેવામાં આવ્યું હતું, કે 'આપે (બ્રહ્માજીએ) સર્જેલાં કોઈ પણ પ્રાણીથી મારું મૃત્યુ ન થાઓ!' 'ન બહાર કે ન અંદર,' 'ન મનુષ્યોથી કે ન પશુઓથી' (૭/૩/૩૫,૩૬) પોતાના સેવક બ્રહ્માજી દ્વારા '**तथास्तु**' (૭/૪/૨) એમ તે બંનેનાં વાક્યોને સત્ય કરવા માટે કહેવામાં આવ્યું હતું.

न हि तद्ब्रह्मसृष्टं भूतं न च नरो वा मृगो वा न च सभागृहस्यान्तः न च प्राङ्गणवद्बहिः एवं ताभ्यां यद्भाषितं तत्सत्यं कर्तुम्।

તે નૃસિંહરૂપ સાચે જ બ્રહ્માજી દ્વારા સર્જાયેલું ન હતું. તે ન તો મનુષ્ય હતા કે ન પશુ હતા, ન તો તે સ્થાન સભાગૃહની અંદર હતું કે ન તે આંગણામાં હોય તેમ બહાર હતું. એમ હિરણ્યકશિપુ અને બ્રહ્માજી, તે બંનેની વાણીને સત્ય કરવા માટે.

यच्च हिरण्यकशिपुना भाषितम्, 'नूनमेतद्विरोधेन मृत्युर्मे भविता' इति, 'अकुतश्चिद्भयोऽमरः' इति च। यच्च नारदेन निजभृत्येन भाषितमिन्द्रं प्रति 'अयं महांस्त्वया संस्थां न

વળી, હિરણ્યકશિપુ દ્વારા જે કહેવામાં આવ્યું કે 'નક્કી આનો વિરોધ કરવાથી જ મારું મૃત્યુ થશે.' (૭/૫/૪૭), 'આ (પ્રહ્લાદ)ને કોઈનાથી ભય નથી અને આ મૃત્યુથી રહિત છે.'(૭/૫/૪૭) તેમ જ પોતાના સેવક નારદજી દ્વારા ઈન્દ્રને જે કહેવામાં આવ્યું હતું કે 'આ

प्राप्स्यति' 'अनन्तानुचरः' इत्यनेन स्वभक्तपक्षपातित्वं च यद्भाषितं तच्च सत्यं कर्तुं तथा अदृश्यत।

પ્રહ્લાદ મહાભક્ત થશે અને તારાથી મૃત્યુ પામશે નહીં.' (૭/૭/૧૦) 'અનન્ત ભગવાનનો અનુચર થશે.' (૭/૭/૧૦) એ દ્વારા પોતાના ભક્તને માટેનો જે પક્ષપાત કહેવામાં આવ્યો હતો, તેને પણ સત્ય કરવા માટે તે રીતે પ્રકટ થયા.

चकारान्निजभाषितं च। किं तत्। 'कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥' इति, तथा 'तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।' इत्यादि तच्च सत्यं कर्तुमदृश्यतेति द्रष्टव्यम्। अलमतिविस्तरेण॥ १८॥

'**च**' કારથી પોતાનું વચન પણ સત્ય કર્યું. તે કયું વચન? 'હે અર્જુન, નિશ્ચયપૂર્વક જાણ કે મારો ભક્ત નાશ પામતો નથી.' (ગીતા. ૯/૩૧) 'મૃત્યુરૂપ સંસારસાગરમાંથી તેઓનો (મારામાં મન રાખનારાઓનો) હું ઉદ્ધાર કરું છું.' (ગીતા. ૧૨/૭) વગેરે (વાક્યો)ને સત્ય કરવા માટે પ્રકટ થયા, એમ સમજવું જોઈએ. અતિ વિસ્તારથી હવે બસ.।।૧૮।।

स सत्त्वमेवं परितोऽपि पश्यन्
स्तम्भस्य मध्यादनु निर्जिहानम्।
नायं मृगो नापि नरो विचित्र-
महो किमेतन्नृमृगेन्द्ररूपम्॥ १९

આમ, (અદ્‌ભુત ધ્વનિ સાંભળી) ચોતરફ જોતા (ખોળતા) તેણે થાંભલાની વચ્ચેથી નીકળતા પ્રાણીને (જોઈને વિચાર કર્યો), 'અરે, આ નથી પશુ (સિંહ) કે નથી મનુષ્ય. નર અને સિંહનું (મિશ્ર એવું) આ કયું અદ્‌ભુત રૂપ છે?'।।૧૯।।

स दैत्य एवमद्भुतं ध्वनिं श्रुत्वा तदाश्रयं सत्त्वं प्राणिविशेषं सर्वतो विलोकयन् स्तम्भमध्यान्निर्गच्छत् नृमृगेन्द्रयोर्मिश्रं रूपमहो किमेतदिति मीमांसितवानिति शेषः॥ १९॥

આ પ્રમાણે અદ્‌ભુત ધ્વનિ સાંભળીને (તે ક્યાંથી આવે છે તે નક્કી કરવા માટે) તેના આશ્રયરૂપ '**सत्त्वम्**' વિશિષ્ટ પ્રાણીને ચોતરફ ખોળતા તેણે થાંભલાની વચ્ચેથી નીકળતા પ્રાણી વિષે અહો! નર અને સિંહનું મિશ્ર એવું આ શું છે? આ કયું અદ્‌ભુત રૂપ છે? એમ 'વિચાર કરવા લાગ્યો', એટલું બાકી છે. (તે ઉમેરવું.)।।૧૯।।

तस्यैवमलं भयानकं तन्नृसिंहरूपं मीमांसमानस्याग्रतो नृसिंहरूपो हरिः समुत्थितः। भयानकत्वमेव दर्शयंस्तद्रूपमनुवर्णयति—प्रतप्तेत्यादिना विद्रावितदैत्यदानवमित्यन्तेन।

અત્યંત ભયંકર એવા તે નરસિંહરૂપનો વિચાર કરતા તેની સામે જ નૃસિંહરૂપ હરિ ઊભા રહ્યા. તે રૂપની ભયાનકતા દર્શાવતા તેનું વર્ણન કરે છે— '**प्रतप्त**' (શ્લોક-૨૦) વગેરેથી '**विद्रावितदैत्यदानवम्**' (શ્લોક-૨૩) સુધી.

मीमांसमानस्य समुत्थितोऽग्रतो
नृसिंहरूपस्तदलं भयानकम्।
प्रतप्तचामीकरचण्डलोचनं
स्फुरत्सटाकेसरजृम्भिताननम् ॥ २०

करालदंष्ट्रं करवालचञ्चल-
क्षुरान्तजिह्वं भ्रुकुटीमुखोल्बणम्।
स्तब्धोर्ध्वकर्णं गिरिकन्दराद्भुत-
व्यात्तास्यनासं हनुभेदभीषणम्॥ २१

दिविस्पृशत्कायमदीर्घपीवर-
ग्रीवोरुवक्षःस्थलमल्पमध्यमम् ।
चन्द्रांशुगौरैश्छुरितं तनूरुहै-
र्विष्वग्भुजानीकशतं नखायुधम्॥ २२

दुरासदं सर्वनिजेतरायुध-
प्रवेकविद्रावितदैत्यदानवम् ।
प्रायेण मेऽयं हरिणोरुमायिना
वधः स्मृतोऽनेन समुद्यतेन किम्॥ २३

प्रतप्तं चामीकरं सुवर्णं तद्वत्पिङ्गानि चण्डानि लोचनानि यस्मिन्। सटा जटाः, केसराः कण्ठरोमाणि, स्फुरद्भिः सटाकेसरै- र्जृम्भितं साटोपमाननं यस्मिन्॥ २०॥

અત્યંત ભયંકર તે (નરસિંહરૂપ)નો વિચાર કરતા તેની સામે નરસિંહરૂપ શ્રીહરિ ઊભા રહ્યા. તપાવેલાં સુવર્ણ જેવાં પ્રચંડ નેત્રો જેમાં છે તેવા, ચળકતી જટા તથા કેશવાળીને કારણે વિસ્ફારિત મુખવાળા,।।૨૦।।

વિકરાળ દાઢોવાળા, તલવાર જેવી તરવરતી અને અસ્ત્રા જેવી તીક્ષ્ણ જિહ્‌વાવાળા, ભ્રૂકુટિથી ભયંકર મુખવાળા, નિશ્ચળ અને ઉન્નત કર્ણોવાળા, ગિરિકંદરા જેવાં ફાડેલાં અદ્‌ભુત મુખ અને નાસિકાવાળા, ફાડેલાં જડબાંને કારણે ભયંકર,।।૨૧।।

સ્વર્ગને સ્પર્શતા શરીરવાળા, ટૂંકી અને પુષ્ટ ગ્રીવાવાળા, વિશાળ વક્ષ:સ્થળ અને અલ્પ ઉદરવાળા, ચંદ્રનાં કિરણો જેવી ઉજ્જ્વળ રોમાવલિથી વ્યાપેલા, સર્વ તરફ ફેલાયેલી સેંકડો ભુજાઓના સમૂહોવાળા, નખરૂપી આયુધોવાળા, ।।૨૨।।

પાસે જવા માટે અશક્ય તેમ જ પોતાનાં (ચક્ર વગેરે) અન્ય (વજ્રાદિ) સર્વશ્રેષ્ઠ શસ્ત્રોથી ભગાડી મૂકવામાં આવ્યા છે દૈત્યો અને દાનવો જેના દ્વારા તેવા (નરસિંહરૂપ શ્રીહરિ તેની સામે આવીને ઊભા રહ્યા.) મહામાયાવી શ્રીહરિ દ્વારા આવી રીતે મારો નાશ ઘણું કરીને વિચારવામાં આવ્યો છે, પણ આ ઉદ્યત થયેલા હરિથી શું થવાનું છે?।।૨૩।।

તપાવેલું **'चामीकरम्'** સુવર્ણ, તેના જેવાં પીળાં પ્રચંડ નેત્રો છે જે મુખમાં– **'सटाः'** જટા, **'केसराः'** ગળામાં આવેલી કેશવાળી, ચળકતી જટા અને કેશવાળીને કારણે **'जृम्भितम्'** પહોળું થયું છે મુખ જે નરસિંહરૂપમાં।।૨૦।।

करालास्तुङ्गा दंष्ट्रा यस्मिन्। करवालः खड्गस्तद्वच्चञ्चला क्षुरान्तवत्तीक्ष्णा च जिह्वा यस्मिन्। भ्रुकुटीयुक्तेन मुखेनोल्बणम्। स्तब्धावुन्नतौ शङ्कुवदूर्ध्वौ कर्णौ यस्मिन्। गिरिकन्दरवदद्भुतं व्यात्तं प्रसृतमास्यं नासे च यस्मिन्। हनू कपोलप्रान्तौ तयोर्भेदेन विदारणेन भीषणम्। कर्णान्तमुखविस्तारमित्यर्थः ॥ २१ ॥

'**करालाः**' વિકરાળ દાઢો છે જેમાં, '**करवालः**' તલવાર જેવી તરવરતી અને અસ્ત્રાની ધાર જેવી તીક્ષ્ણ જિહ્‌વા છે જેમાં, ભ્રૂકુટિયુક્ત મુખથી ભયંકર, સ્થિર શંકુ જેવા ઊંચા કર્ણો છે જેમાં, ગિરિકંદરા જેવાં '**व्यात्तम्**' ફાડેલાં અદ્‌ભુત મુખ અને નાસિકા છે જેમાં, '**हनू**' બન્ને ગાલના અંતનો ભાગ, તે બંનેને '**भेदेन**' ફાડવાથી ભયંકર, છેક કાન સુધી ફેલાયેલો મુખનો વિસ્તાર, એમ અર્થ છે.।।૨૧।।

दिविस्पृशत् कायो यस्मिन्, अलुक्समासः। अदीर्घा ह्रस्वा पीवरा च स्थूला ग्रीवा यस्मिन्, उरु विशालं वक्षःस्थलं यस्मिंस्तच्च तच्च। अल्पं मध्यममुदरं यस्मिन्। चन्द्रांशुवद् गौरैस्तनूरुहैर्लोमभिश्छुरितं व्याप्तम्। विष्वञ्चः सर्वतः प्रसृता भुजास्तेषामनीकानि स्तोमास्तेषां शतानि यस्मिन्। नखान्येवायुधानि यस्मिन् ॥ २२ ॥

સ્વર્ગને સ્પર્શતી કાયા છે જેમાં– **(दिविस्पृशत्)** અલુક્ સમાસ છે, (જેમાં પ્રથમ સામાસિક શબ્દની વિભક્તિનો લોપ નથી થતો.) '**अदीर्घा**' ટૂંકી અને પુષ્ટ ગ્રીવા છે જેમાં તેવું અને '**उरु**' વિશાળ વક્ષઃસ્થળ છે જેમાં તેવું, અલ્પ છે '**मध्यमम्**' મધ્યભાગ– ઉદર જેમાં તેવું સ્વરૂપ, ચન્દ્રનાં કિરણો જેવી ઉજ્જ્વળ '**तनूरुहैः**' રોમાવલિથી '**छुरितम्**' વ્યાપ્ત– '**विष्वञ्चः**' સર્વ તરફ ફેલાયેલી ભુજાઓ, તેમની '**अनीकानि**' પંક્તિઓ, તેમના સેંકડો સમૂહો છે જેમાં, નખ એ જ આયુધો છે જેમાં।।૨૨।।

दुरासदं प्राप्तुमशक्यम्। सर्वाणि च निजानि चक्रादीनीतराणि वज्रादीनि त एवायुधप्रवेकाः शस्त्रोत्तमास्तैर्विद्राविता दैत्यदानवा येन तद्रूपं मीमांसमानस्याग्रतः समुत्थित इति पूर्वेणैवान्वयः।

'**दुरासदम्**' પાસે જવા માટે અશક્ય, પોતાનાં ચક્ર વગેરે '**इतराणि**' બીજાં વજ્રાદિ, તે જ '**आयुधप्रवेकाः**' અત્યંત શ્રેષ્ઠ શસ્ત્રો, તેમનાંથી ભગાડી મૂકવામાં આવેલા છે દૈત્યો અને દાનવો જેના દ્વારા તેવા રૂપનો વિચાર કરતા હિરણ્યકશિપુની આગળ (શ્રીનરહરિ) ઊભા રહ્યા, એમ પૂર્વના શ્લોક સાથે અન્વય છે.

तदाविर्भावप्रयोजनविमर्शपूर्वकं तेन सह दैत्यस्य युद्धमाह सप्तभिः। प्रायेण महामायिना

તેમના આવિર્ભાવના પ્રયોજનને તથા તે સાથે દૈત્યના યુદ્ધને સાત શ્લોકો વડે વિચારપૂર્વક વર્ણવે છે. કદાચ મહામાયાવી શ્રીહરિ દ્વારા '**अयम्**' આ આમ '**वधः**' મૃત્યુનું કારણ '**स्मृतः**'

हरिणा मेऽयमेवंभूतो वधो मृत्युहेतुः स्मृतश्चिन्तितस्तथाप्यनेन समुद्यतेन किं न किंचित्स्यादित्येवं ब्रुवन्नभ्यपतदित्यन्वयः ॥ २३ ॥

વિચારવામાં આવ્યું છે, છતાં પણ પ્રયત્ન કરનાર એવા આનાથી શું થવાનું છે? કંઈ જ નથી થવાનું, એમ બોલતો દૈત્ય હિરણ્યકશિપુ ભગવાનની **'अभ्यपतत्'** (શ્લોક-૨૪) સામે ધસ્યો, એમ અન્વય છે.।।૨૩।।

एवं ब्रुवंस्त्वभ्यपतद् गदायुधो
नदन् नृसिंहं प्रति दैत्यकुञ्जरः ।
अलक्षितोऽग्नौ पतितः पतङ्गमो
यथा नृसिंहौजसि सोऽसुरस्तदा ॥ २४

(હાથમાં) ગદાના આયુધવાળો દૈત્યકુંજર (હાથી જેવો દૈત્ય) આમ ગર્જના કરતો, નરસિંહ ભગવાન તરફ ધસ્યો. પતંગિયું અગ્નિમાં પડીને અદૃશ્ય થઈ જાય તેમ તે સમયે ભગવાન નરસિંહની દીપ્તિમાં તે અસુર અદૃશ્ય થઈ ગયો.।।૨૪।।

तदा सोऽसुरो नृसिंहस्यौजसि दीप्तौ पतितः सन्नलक्षितोऽदृष्टोऽभूत् ॥ २४ ॥

ત્યારે તે અસુર, નરસિંહ ભગવાનની **'ओजसि'** દીપ્તિમાં પડેલો હોઈ **'अलक्षितः'** અદૃશ્ય થઈ ગયો.।।૨૪।।

न तद् विचित्रं खलु सत्त्वधामनि
स्वतेजसा यो नु पुराऽपिबत् तमः ।
ततोऽभिपद्याभ्यहनन्महासुरो
रुषा नृसिंहं गदयोरुवेगया ॥ २५

અહો! જે શ્રીહરિએ (સૃષ્ટિના) આદિકાળમાં પોતાના તેજથી પ્રલયકાલીન અંધકારનું પાન કર્યું હતું, તે સત્ત્વગુણરૂપ પ્રકાશમય શ્રીહરિમાં (સામે પડેલા તમોગુણરૂપ દૈત્યનું અદર્શન) એ આશ્ચર્યજનક નથી. ત્યાર પછી તે મહાદૈત્ય સામે આવીને ક્રોધથી પ્રચંડ વેગવાળી ગદા દ્વારા નરહરિને મારવા લાગ્યો.।।૨૫।।

सत्त्वधामनि सत्त्वप्रकाशे हरौ पतितस्य तमोमयस्यादर्शनं तद्विचित्रं न भवति। तत्र हेतुः—यो हरिः पुरा सृष्ट्यादौ प्रलयकालीनं तमः नु अहो अपिबत्तस्मिन् ॥ २५ ॥

'सत्त्वधामनि' સત્ત્વગુણરૂપ પ્રકાશમય શ્રીહરિ સામે પડેલા તમોગુણરૂપ દૈત્યનું અદર્શન એ આશ્ચર્યજનક નથી. તે માટેનું કારણ– જે શ્રીહરિએ **'पुरा'** સૃષ્ટિના આદિકાળમાં પ્રલયકાલીન અંધકારનું **'नु'** અહો! પાન કર્યું હતું તે શ્રીહરિ સામે।।૨૫।।

तं विक्रमन्तं सगदं गदाधरो
महोरगं तार्क्ष्यसुतो यथाऽग्रहीत् ।
स तस्य हस्तोत्कलितस्तदाऽसुरो
विक्रीडतो यद्वदहिर्गरुत्मतः ॥ २६

તાર્ક્ષ્યપુત્ર ગરુડ જેમ મહાસર્પને પકડે તેમ ગદાધારી ભગવાને પ્રહાર કરતા તે દૈત્યને ગદાસહિત પકડી લીધો. પરંતુ ક્રીડા કરતા ગરુડ પાસેથી જેમ સાપ છટકી જાય, તેમ તે શ્રીહરિના હાથમાંથી તે સમયે તે અસુર છટકી ગયો.।।૨૬।।

विक्रमन्तं ततस्ततः प्रहरन्तम्। हस्तादुत्कलितो निःसृतः ॥ २६ ॥

'**विक्रमन्तम्**' જ્યાં ત્યાં પ્રહાર કરતા તે દૈત્યને– હાથમાંથી '**उत्कलितः**' છટકી ગયો.।।૨૬।।

असाध्वमन्यन्त हृतौकसोऽमरा
घनच्छदा भारत सर्वधिष्ण्यपाः।
तं मन्यमानो निजवीर्यशङ्कितं
यद्धस्तमुक्तो नृहरिं महासुरः।
पुनस्तमासज्जत खड्गचर्मणी
प्रगृह्य वेगेन जितश्रमो मृधे॥ २७

હે ભારત (યુધિષ્ઠિર), જેમનાં સ્થાનો હિરણ્યકશિપુ દ્વારા છિનવાઈ ગયાં છે તેવા, (તે દૈત્યના ભયથી) તે સમયે વાદળાં પાછળ છુપાયેલા દેવો અને સર્વ લોકપાલો (દૈત્ય છટકી ગયો તેને) અશુભ માનવા લાગ્યા, કારણ કે જેમના હાથમાંથી પોતે છૂટી ગયો તે નરહરિ ભગવાનને (મહાદૈત્ય) પોતાના પરાક્રમથી ભયભીત થયેલા માનવા લાગ્યો. યુદ્ધમાં શ્રમરહિત બનેલો તે મહાદૈત્ય ઢાલ અને તલવાર લઈને વેગથી પુનઃ તે ભગવાનની સામે ધસ્યો.।।૨૭।।

तदा अमरा देवाः सर्वे घिष्ण्यपा असाध्वमन्यन्त। हृतान्योकांसि स्थानानि येषां ते।

तद्भिया घनच्छदा मेघान्तरिताः सन्तः। यस्य हस्तात्स्वयं मुक्तस्तं नृहरिं स्ववीर्याच्छङ्कितं मन्यमानः खड्गचर्मणी प्रगृह्य पुनस्तमासज्जताभ्यपद्यतेत्यन्वयः ॥ २७ ॥

તે સમયે '**अमराः**' દેવો અને સર્વ લોકપાલો અશુભ માનવા લાગ્યા. '**हृतानि**' છિનવાઈ ગયાં છે '**ओकांसि**' સ્થાનો જેમનાં તેઓ–

તે દૈત્યના ભયથી '**घनच्छदाः**' વાદળાંની પાછળ છુપાયેલા હોય તેવા– જેમના હાથમાંથી પોતે છૂટી ગયો તે નરહરિને પોતાના પરાક્રમથી ભયભીત થયેલા માનતો મહાદૈત્ય ઢાલ-તલવાર લઈને ફરીથી તેમની '**आसज्जत**' સામે ધસ્યો, એમ અન્વય છે.।।૨૭।।

तं श्येनवेगं शतचन्द्रवर्त्मभि-
श्चरन्तमच्छिद्रमुपर्यधो हरिः।
कृत्वाट्टहासं खरमुत्स्वनोल्बणं
निमीलिताक्षं जगृहे महाजवः॥ २८

અત્યંત ગતિવાળા શ્રીહરિએ અત્યંત ભયંકર ઉચ્ચ સ્વરે અટ્ટહાસ્ય કરીને બાજ જેવા વેગવાળા, ઢાલ-તલવારના પેંતરાઓથી ઉપર-નીચે એકધારું ઘૂમતા અને (શ્રીહરિના તેજથી) મિચાઈ ગયેલી આંખોવાળા તે (દૈત્ય)ને પકડ્યો.।।૨૮।।

वंशीधरी—शतचन्द्रशब्दो हि खड्गे चर्मणि चोभयस्मिन्नर्थेऽस्ति।

શતચંદ્ર શબ્દ તલવાર અને ઢાલ એ બંનેના અર્થમાં છે.

श्येनस्येव वेगो यस्य तम्। शतचन्द्रवर्त्मभिः खड्गचर्ममार्गैरच्छिद्रं यथा भवत्येवमुपर्यधश्च-रन्तम्। अट्टहासमेवाह—खरं तीव्रम्। उत्स्वनेन महाशब्देनोल्बणं भयंकरम्। तद्भयेन हरेस्तेजसा च निमीलिते अक्षिणी यस्य॥ २८॥

ભયંકર બાજ જેવો વેગ છે જેનો તેને, '**शतचन्द्रवर्त्मभिः**' તલવાર અને ઢાલ ફેરવવાથી જે રીતે સતત એકધારું થાય તેમ ઉપર-નીચે ઘૂમતા દૈત્યને– અટ્ટહાસ્યનું જ વર્ણન કરે છે– '**खरम्**' તીવ્ર, અત્યંત '**उत्स्वनेन**' ઉચ્ચ સ્વરે '**उल्बणम्**' ભયંકર (અટ્ટહાસ્ય કરીને), તે અટ્ટહાસ્યના ભયથી અને શ્રીહરિના તેજથી મિચાઈ ગઈ છે બંને આંખો જેની.।।૨૮।।

विष्वक् स्फुरन्तं ग्रहणातुरं हरि-
र्व्यालो यथाऽऽखुं कुलिशाक्षतत्वचम्।
द्वार्यूर आपात्य ददार लीलया
नखैर्यथाऽहिं गरुडो महाविषम्॥ २९

(ઇન્દ્રના) વજ્રથી જેની ત્વચા (પણ) વિક્ષત થઈ ન હતી તેવા, સાપે પકડેલા ઉંદરની જેમ (છૂટવા માટે) સર્વ તરફથી ધમપછાડા કરતા અને પકડવાથી વિવશ બનેલા દૈત્યને શ્રીહરિએ ઊંબરામાં પોતાની સાથળ ઉપર પાડીને, મહાવિષધર સર્પને ગરુડ ચીરી નાખે તેમ નખો વડે રમતમાં વિદારી નાખ્યો.।।૨૯।।

ग्रहणे दृष्टान्तः—व्यालो यथा आखुं मूषकम्। विदारणे दृष्टान्तः—अहिं गरुड इवेति। विष्वक् सर्वतः स्फुरन्तं निःसरन्तम्। ग्रहणेनातुरं विवशम्। इन्द्रेण सह युद्धे तत्प्रयुक्तेन कुलिशेन न क्षता त्वगपि यस्य।

પકડવા માટે દૃષ્ટાન્ત– સાપે પકડેલા '**आखुम्**' ઉંદરની જેમ. ચીરી નાખવા માટે દૃષ્ટાન્ત– સર્પને જેમ ગરુડ (ચીરી નાખે તેમ). '**विष्वक्**' સર્વ તરફથી છૂટવા '**स्फुरन्तम्**' પછાડા મારતા દૈત્યને– પકડાવાથી '**आतुरम्**' વિવશ થઈ ગયેલા દૈત્યને– ઇન્દ્રની સાથે યુદ્ધમાં ઇન્દ્ર દ્વારા પ્રયુક્ત વજ્રથી જેની ત્વચા પણ વિક્ષત થઈ ન હતી.

द्वारि सभायां नान्तर्न बहिः। ऊरे ऊरौ निपात्य, न भूमौ न चाम्बरे। नखैर्न व्यसुभिरसुमद्भिर्वा। एवं दिवानक्तपरिहाराय सन्ध्यायामिति द्रष्टव्यम्॥ २९॥

'**द्वारि**' સભાના દ્વાર ઉપર, ઊંબરામાં, ન અંદર કે ન બહાર. '**ऊरे**' સાથળ ઉપર પાડીને, ન ભૂમિ ઉપર કે ન આકાશમાં, '**नखैः**' ન પ્રાણવિહીન કે ન પ્રાણવાન એવા નખો વડે, એ જ પ્રમાણે દિવસ અને રાત ન લેવા માટે સંધ્યાકાળે, એમ સમજવું. ।।૨૯।।

दैत्यवधमुक्त्वा तद्भृत्यवधमाह द्वाभ्याम्।

દૈત્યના વધનું વર્ણન કરીને તેના સેવકોના વધનું બે શ્લોકોથી વર્ણન કરે છે.

संरम्भदुष्प्रेक्ष्यकराललोचनो
व्यात्ताननान्तं विलिहन्स्वजिह्वया।
असृग्लवाक्तारुणकेसराननो
यथाऽन्त्रमाली द्विपहत्यया हरिः॥ ३०

ક્રોધને કારણે જોઈ ન શકાય તેવાં વિકરાળ લોચનોવાળા, ફાડેલા મુખના ખૂણાઓને પોતાની જિહ્વાથી ચાટતા, રક્તબિંદુઓથી સિંચિત થવાને કારણે લાલ કેશવાળી અને લાલ મુખવાળા, અન્ત્રમાલી ભગવાન નરસિંહ હાથીનો વધ કરીને દેખાતા સિંહ જેવા (શોભતા હતા).।।૩૦।।

संरम्भेण दुष्प्रेक्ष्याणि करालानि लोचनानि यस्य। असृजो रक्तस्य लवैर्बिन्दुभी रक्ताः सिक्ता अत एवारुणाः केसरा आननं च यस्य सः।

क इव। द्विपहत्यया गजवधेन हरिः सिंहो यथा एवंभूतस्तस्यानुचरानहन्नित्युत्तरेणान्वयः। अन्त्राणां माला कण्ठे विद्यते यस्य॥ ३०॥

ક્રોધને કારણે જોઈ ન શકાય તેવાં વિકરાળ લોચનો છે જેમનાં, '**असृजः**' રક્તનાં '**लवैः**' બિંદુઓથી '**रक्ताः**' રંજિત અને આથી જ લાલ કેશવાળી અને લાલ મુખ છે જેમનું.

નૃસિંહ ભગવાન કોના જેવા દેખાતા હતા? '**द्विपहत्यया**' હાથીનો વધ કરીને '**हरिः**' સિંહ દેખાય તેવા દેખાતા હતા. આવા તેમણે તે દૈત્યના અનુચરોને હણ્યા, એમ આ પછીના શ્લોક (૩૧) સાથે અન્વય છે. આંતરડાની માળા જેમના કંઠમાં વિરાજમાન છે તેવા અન્ત્રમાલી।।૩૦।।

મૂળ પાઠમાં '**अक्तः**' શબ્દ છે, પરંતુ ટીકામાં '**रक्ताः**' શબ્દ છે. '**अक्तः**' પાઠ જ હોવો જોઈએ.

नखाङ्कुरोत्पाटितहृत्सरोरुहं
विसृज्य तस्यानुचरानुदायुधान्।
अहन् समन्तान्नखशस्त्रपार्ष्णिभि-
र्दोर्दण्डयूथोऽनुपथान् सहस्रशः॥ ३१

તીક્ષ્ણ નહોરોથી જેનું હૃદયકમળ ચિરાઈ ગયું છે તેવા દૈત્યને ફેંકીને બાહુઓના સમૂહોવાળા નરહરિ તે દૈત્યના માર્ગને અનુસરનારાઓને તથા ઉગામેલાં આયુધોવાળા હજારો અનુચરોને પોતાનાં નહોરરૂપી શસ્ત્રોથી અને પગની પાનીઓ વડે ચોતરફથી હણવા લાગ્યા.।।૩૧।।

नखाङ्कुरैरुत्पाटितं हृत्सरोरुहं यस्य तम्। दोर्दण्डानां यूथानि समूहा यस्य सः। तं दैत्येन्द्रमनु पन्था येषां तान् अन्यानपि तत्पक्षपातिन इत्यर्थः॥ ३१॥

તીક્ષ્ણ નહોરોથી ચિરાઈ ગયું છે હૃદયકમળ જેનું તેને– બાહુઓના '**यूथानि**' સમૂહો છે જેમના તે, તે દૈત્યેન્દ્રને અનુસરનારો માર્ગ છે જેમનો તેમને, તેના બીજા પક્ષપાતીઓને પણ, એમ અર્થ છે.।।૩૧।।

दैत्यवधव्यग्रस्य नृहरेराटोपमाह द्वाभ्याम्।

દૈત્યના વધથી વ્યગ્ર એવા નરહરિ ભગવાનના કોપાવેશનું બે શ્લોકોથી વર્ણન કરે છે.

सटावधूता जलदाः परापतन्
ग्रहाश्च तद्दृष्टिविमुष्टरोचिषः।
अम्भोधयः श्वासहता विचुक्षुभु-
र्निर्ह्लादभीता दिगिभा विचुक्रुशुः॥ ३२

सटाभिरवधूताः प्रकम्पिता जलदा मेघाः परापतन् व्यशीर्यन्त। (अनेन ये मेघान्तरिता देवास्ते स्पष्टं पश्यन्त्वित्याज्ञां दत्तवानित्यर्थः।) तस्य दृष्ट्या विमुष्टं रोचिर्येषां ग्रहाणां ते तिरस्कृतप्रभा अभवन्निति शेषः। दिगिभा दिग्गजाः॥ ३२॥

નરહરિ ભગવાનની કેશવાળીઓ(ના ફટકાર)થી ધ્રુજાવેલાં વાદળાં વીખરાઈ ગયાં. તેમની દૃષ્ટિથી ગ્રહો હરાઈ ગયેલી કાંતિવાળા બન્યા. તેમના શ્વાસના ધક્કાથી સમુદ્રો ખળભળી ઊઠ્યા. તેમની ગર્જનાથી ભયભીત બનેલા દિગ્ગજો ચિત્કાર કરવા લાગ્યા.।।૩૨।।

કેશવાળીઓથી '**अवधूताः**' ધ્રુજાવેલા '**जलदाः**' વાદળાં '**परापतन्**' વીખરાઈ ગયાં. (આનાથી જે દેવો વાદળોની પાછળ છુપાયા હતા તેઓ સ્પષ્ટ જુએ, એવી આજ્ઞા આપી, એમ અર્થ છે.) તેમની દૃષ્ટિથી હરાઈ ગઈ છે કાન્તિ જે ગ્રહોની, તેઓ ઢંકાયેલી પ્રભાવાળા (નિસ્તેજ), 'બન્યા' એટલું શેષ છે. '**दिगिभाः**' દિગ્ગજો

द्यौस्तत्सटोत्क्षिप्तविमानसङ्कुला
***प्रोत्सर्पत क्ष्मा च पदाऽतिपीडिता।**
शैलाः समुत्पेतुरमुष्य रंहसा
तत्तेजसा खं ककुभो न रेजिरे॥ ३३

तस्य सटाभिरुत्क्षिप्तानि विमानानि तैः संकुला व्याप्ता सती प्रोत्सर्पत स्वस्थानात् प्रकर्षेणोदसर्पच्चलिता॥ ३३॥

તેમની કેશવાળીઓ(ના ફટકા)થી ઊછળી પડેલાં વિમાનોથી વ્યાપેલું આકાશ અત્યંત ડગમગવા લાગ્યું. તેમના ચરણ(ના આઘાત)થી પૃથ્વી ખૂબ જ પીડાવા લાગી. પર્વતો તેમના વેગથી ઊડવા લાગ્યા. તેમના તેજથી આકાશ અને દિશાઓ શોભતાં ન હતાં.।।૩૩।।

તેમની કેશવાળીઓથી ઊછળી પડેલાં વિમાનો, તેમનાથી '**संकुला**' વ્યાપ્ત થયેલું આકાશ * '**प्रोत्सर्पत प्रकर्षेण उदसर्पत्**' અત્યંત ડગમગવા લાગ્યું.।।૩૩।।

ततः सभायामुपविष्टमुत्तमे
नृपासने संभृततेजसं विभुम्।
अलक्षितद्वैरथमत्यमर्षणं
प्रचण्डवक्त्रं न बभाज कश्चन॥ ३४

(દૈત્યના વધ) પછી સભામાં શ્રેષ્ઠ નૃપાસન ઉપર બેઠેલા, પ્રકાશથી પરિપૂર્ણ, અત્યંત ક્રોધભર્યા, પ્રચંડ મુખવાળા તથા પ્રતિસ્પર્ધી જેમના દ્વારા જોવામાં આવતો ન હતો તેવા વિભુ નરહરિની (ભયને કારણે) કોઈએ સેવા (કરવાની હિંમત) કરી નહીં.।।૩૪।।

* '**प्रोत्सर्पत**' = **प्र** + **उत्** + **सर्पत्** અહીં **असर्पत्** રૂપ થાય. **अ** નો અભાવ આર્ષ છે. **प्रोदसर्पत्** રૂપ થવું જોઈએ.

स्वभृत्यैश्वर्यमाश्चर्यमिव मत्वा कौतूहलेन तस्यासने उपविष्टं भयात्कोऽपि न बभाज नासेवत। न लक्षितो द्वैरथः प्रतियोद्धा येन ॥ ३४ ॥

वंशीधरी—अयं प्रह्लादो मद्दत्तं स्वपित्र्यं सिंहासनमिति न ग्रहीष्यत्ययं मत्पिता भगवन्निन्दकत्वान्महापातक्यस्त्येतदाक्रान्तं सिंहासनमतीवाशुच्यस्ति तत्रोपवेशनेन स्वयमेवाहं शोधयामि ततश्च मत्प्रसादभूतं ग्रहीष्यत्येव।'

निशम्य लोकत्रयमस्तकज्वरं
तमादिदैत्यं हरिणा हतं मृधे।
प्रहर्षवेगोत्कलितानना मुहुः
प्रसूनवर्षैर्ववृषुः सुरस्त्रियः ॥ ३५

लोकत्रयस्य मस्तकज्वरं शिरोव्यथेव दुःसहम्। प्रहर्षस्य वेगेनोत्कलितानि विकसितान्याननानि यासां ताः सुरस्त्रियः पुष्पवर्षैर्नृहरिं ववृषुः ॥ ३५ ॥

तदा विमानावलिभिर्नभस्तलं
दिदृक्षतां संकुलमास नाकिनाम्।
सुरानका दुन्दुभयोऽथ जघ्निरे
गन्धर्वमुख्या ननृतुर्जगुः स्त्रियः ॥ ३६

नाकिनां देवानां विमानावलिभिर्नभस्तलं संकीर्णमास। सुराणामानकाः पटहास्तैर्जघ्निरे वादिताः। स्त्रियोऽप्सरसो ननृतुः। गन्धर्वा जगुः ॥ ३६ ॥

પોતાના સેવકના ઐશ્વર્યને આશ્ચર્ય હોય તેમ માનીને કુતૂહલતાથી તેના આસન ઉપર બેઠેલા નરહરિને ભયને કારણે કોઈએ પણ '**न बभाज**' સેવ્યા નહીં. જોવામાં આવતો ન હતો '**द्वैरथः**' પ્રતિસ્પર્ધી જેમના દ્વારા.।।૩૪।।

આ પ્રહ્લાદ મારું આપેલું પોતાના પિતૃઓનું સિંહાસન સ્વીકારશે નહીં. 'આ મારા પિતા ભગવાનની નિંદા કરનાર હોવાથી મહાપાપી હતા.' આ અન્યથી આક્રાન્ત સિંહાસન અત્યંત અપવિત્ર છે. તેની ઉપર બેસીને સ્વયં હું જ તેને શુદ્ધ કરું છું અને પછી મારા પ્રસાદરૂપ સિંહાસનનો તે સ્વીકાર કરશે જ.

ત્રણેય લોકના જાણે કે માથાના દુઃખાવારૂપ તે આદિદૈત્ય હિરણ્યકશિપુને શ્રીહરિ દ્વારા યુદ્ધમાં હણવામાં આવ્યો છે તે સાંભળીને અત્યંત હર્ષના વેગથી પ્રફુલ્લ મુખવાળી દેવાંગનાઓ નરસિંહ ભગવાન ઉપર વારંવાર પુષ્પવૃષ્ટિ દ્વારા વર્ષણ કરવા લાગી.।।૩૫।।

ત્રણેય લોકના જાણે કે '**मस्तकज्वरम्**' દુઃસહ શિરોવેદનારૂપ દૈત્યને— અત્યંત હર્ષના વેગથી '**उत्कलितानि**' વિકસિત થયાં છે મુખડાં જેમનાં તે દેવાંગનાઓ પુષ્પવૃષ્ટિ દ્વારા નરસિંહ ઉપર વર્ષણ કરવા લાગી.।।૩૫।।

તે સમયે ભગવાનનાં દર્શનની ઈચ્છાવાળા દેવોનાં વિમાનોની હારમાળાઓથી આકાશ છવાઈ ગયું. તે સમયે દેવોનાં ઢોલ-નગારાં વાગવા લાગ્યાં. શ્રેષ્ઠ ગંધર્વો ગાન કરવા લાગ્યા અને દેવાંગનાઓ નૃત્ય કરવા લાગી.।।૩૬।।

'**नाकिनाम्**' દેવોનાં વિમાનોની હારમાળાઓથી આકાશ છવાઈ ગયું. દેવોનાં '**आनकाः**' નગારાં પોતાની જાતે વાગવા લાગ્યાં. '**स्त्रियः**' અપ્સરાઓ નૃત્ય કરવા લાગી. ગંધર્વો ગાન કરવા લાગ્યા.।।૩૬।।

तत्रोपव्रज्य विबुधा ब्रह्मेन्द्रगिरिशादयः।
ऋषयः पितरः सिद्धा विद्याधरमहोरगाः॥ ३७
मनवः प्रजानां पतयो गन्धर्वाप्सरचारणाः।
यक्षाः किम्पुरुषास्तात वेतालाः सिद्धकिन्नराः॥
॥ ३८ ॥
ते विष्णुपार्षदाः सर्वे सुनन्दकुमुदादयः।
मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिपुटा आसीनं तीव्रतेजसम्।
ईडिरे नरशार्दूलं नातिदूरचराः पृथक्॥ ३९

બ્રહ્મા, ઈન્દ્ર, શંકર વગેરે દેવતાઓ, ઋષિઓ, પિતૃઓ, સિદ્ધો, વિદ્યાધરો, મહાસર્પો.।।૩૭।।૩૭।।

મનુઓ, પ્રજાપતિઓ, ગંધર્વો, અપ્સરાઓ, ચારણો, યક્ષો, કિંપુરુષો, વેતાળો, સિદ્ધો, કિન્નરો, ।।૩૮।।

સુનંદ, કુમુદ વગેરે વિષ્ણુ ભગવાનના પાર્ષદો, હે તાત યુધિષ્ઠિર, ત્યાં આવીને, મસ્તક ઉપર બે હાથ જોડીને (સિંહાસન પર) બેઠેલા અત્યંત તેજસ્વી પુરુષોત્તમ નરસિંહની તેમનાથી થોડે દૂર ઊભા રહીને અલગ-અલગ સ્તુતિ કરવા લાગ્યા.।।૩૯।।

॥ ३७ ॥ गन्धर्वाप्सरसश्चारणाश्चेत्यर्थः ॥ ३८ ॥

।।૩૭।। ગંધર્વો, અપ્સરાઓ અને ચારણો– એમ અર્થ છે.।।૩૮।।

नरशार्दूलं पुरुषोत्तमम्॥ ३९ ॥

'नरशार्दूलम्' પુરુષોત્તમ ભગવાનની (સ્તુતિ). ।।૩૯।।

अप्सरःशब्दस्यादन्तत्वमार्षम्।

મૂળ શબ્દ **'अप्सरस्'** છે. **'गन्धर्वाप्सरचारणाः'** માં **अप्सरः** શબ્દનું અદન્તત્વ આર્ષ છે. **'गन्धर्वाप्सर-श्चारणाः'** રૂપ થાય.

ब्रह्मादयो नृसिंहस्य शङ्कयाकुलचेतसः।
आरादेवास्तुवन्सप्तदशश्लोकैः पृथक् पृथक्॥ १

ભયથી વ્યાકુળ થયેલા ચિત્તવાળા બ્રહ્માજી વગેરે (દેવો)એ નરસિંહ ભગવાનની સત્તર શ્લોકો દ્વારા દૂરથી જ જુદી જુદી સ્તુતિ કરી.।।૧।।

ब्रह्मोवाच

नतोऽस्म्यनन्ताय दुरन्तशक्तये
विचित्रवीर्याय पवित्रकर्मणे।
विश्वस्य सर्गस्थितिसंयमान् गुणैः
स्वलीलया संदधतेऽव्ययात्मने॥ ४०

બ્રહ્માજી બોલ્યા – (શ્રવણ માત્રથી) પવિત્ર કરનારી લીલાઓવાળા, પોતાની લીલાથી ગુણો વડે વિશ્વની સૃષ્ટિ, સ્થિતિ અને લય કરનારા, (તેમ હોવા છતાં) નિર્વિકાર સ્વરૂપવાળા, અદ્‌ભુત પ્રભાવવાળા અને દુષ્પાર શક્તિઓવાળા અનંત ભગવાનને હું નમસ્કાર કરું છું.।।૪૦।।

अनन्तायानन्तं त्वां प्रसादयितुं नतोऽस्मि। अनन्तत्वे हेतुः—दुरन्ताः शक्तयो यस्य। तत्कुतः। विचित्राणि वीर्याणि प्रभावा यस्य।

'अनन्ताय' અનન્ત એવા આપને પ્રસન્ન કરવા માટે હું નમસ્કાર કરું છું. અનન્ત હોવા માટેનું કારણ– દુષ્પાર શક્તિઓ છે જેમની, તે કેવી રીતે? અદ્‌ભુત **'वीर्याणि'** પ્રભાવ છે જેમનો.

तत्किमर्थम्। पवित्राणि श्रवणमात्रेण शोधकानि कर्माणि यस्य। विचित्रवीर्यत्वमेवाह—**विश्वस्येति**।

संदधते सम्यक्कुर्वते। एवमप्यव्ययात्मनेऽप्रच्युतस्वरूपाय॥ ४०॥

वंशीधरी—'नतोऽस्मीति'—सनकादीन्कोपयसि, स्वभक्तौ भ्रंशयसि, मया वरान्दापयसि, दैत्यगृहे भक्तराजमाविर्भावयसि, दैत्येन भक्तं जिघांसयसि, भक्तरक्षार्थं स्वयमेवाविर्भवसीति तव विधित्सितं न कोऽपि वेत्तीत्याह—**नतोऽस्मीति**।

वंशीधरी—'वदन्ति वंशस्थमिदं जतौ जरौ' इति लक्षणाद्वंशस्थच्छन्दः।'

रुद्रस्तु तत्कोपकालाभिज्ञो नायं कोपावसर इति तं प्रार्थयते—**कोपेति**।

श्रीरुद्र उवाच

कोपकालो युगान्तस्ते हतोऽयमसुरोऽल्पकः।
तत्सुतं पाह्युपसृतं भक्तं ते भक्तवत्सल॥ ४१

सहस्रयुगान्तस्तव कोपस्य कालः, कोपायोग्यश्चायमित्याह—अल्पकोऽत्यल्पः। अतः कोपानिवृत्त्या प्रह्लादं मा हिंसीरित्याह—तत्सुतमिति। यद्वा अकालेऽप्ययं कोपोऽस्य भक्तस्य रक्षणार्थमिति चेत्तर्हीदानीं कोपं त्यक्त्वेमं पाहीत्यर्थः॥ ४१॥

અદ્‌ભુત પ્રભાવ શા માટે છે? '**पवित्राणि**' શ્રવણમાત્રથી શુદ્ધ કરનારાં કર્મો છે જેમનાં. ભગવાનના અદ્‌ભુત પ્રભાવનું જ વર્ણન કરે છે— '**विश्वस्य इति**।'

'**संदधते**' યથોચિત રીતે કરનારને, આમ હોવા છતાં પણ '**अव्यय-आत्मने**' અપ્રચ્યુત, નિર્વિકાર સ્વરૂપવાળાને (નમસ્કાર કરું છું.)।।૪૦।।

સનકાદિ કુમારોને કોપ કરાવો છો, પોતાના બન્ને પાર્ષદોનું પતન કરાવો છો, મારા દ્વારા (બ્રહ્માજી દ્વારા) વરદાન અપાવો છો, દૈત્યના ઘરમાં ભક્તરાજ પ્રહ્‌લાદનો આવિર્ભાવ કરાવો છો, દૈત્ય દ્વારા ભક્તને મારવાની ઈચ્છા કરાવો છો, ભક્તની રક્ષા માટે પોતે જ આવિર્ભાવ પામો છો, આપની કરવા ઈચ્છેલી લીલાને કોઈ પણ જાણતું નથી, એટલે કહે છે— '**नतः अस्मि इति**।'

(૧૨ અક્ષરોવાળા) આ 'જ ત જ ર' ગણમાપના લક્ષણથી **વંશસ્થ છંદ** છે.

તે ભગવાનના ક્રોધ કરવાના સમયથી અભિજ્ઞ એવા રુદ્ર તો આ ક્રોધનો સમય નથી, એટલે તેમને પ્રાર્થના કરે છે— '**कोपः इति**।'

શ્રીરુદ્ર બોલ્યા – આપનો ક્રોધ કરવાનો સમય તો કલ્પના અંતમાં હોય છે. (આ દૈત્યને મારવા માટે જ જો આપે ક્રોધ કર્યો છે તો) આ તુચ્છ દૈત્ય હણાઈ ચૂક્યો છે, તો હે ભક્તવત્સલ, શરણે આવેલા તેના પુત્ર એવા આપના ભક્તનું રક્ષણ કરો.।।૪૧।।

હજાર યુગોનો અંત થાય ત્યારે આપનો ક્રોધ કરવાનો સમય થાય છે. આ તો ક્રોધ કરવા માટે અયોગ્ય સમય છે, એમ કહે છે. (આ દૈત્ય તો) '**अल्पकः**' અતિ અલ્પ છે. આથી કોપ નિવૃત્ત ન થવાને કારણે પ્રહ્‌લાદને ન મારશો, એમ કહે છે— '**तत्सुतम् इति**।' અથવા અકાળે થયેલો ક્રોધ પણ આ ભક્તના રક્ષણ માટે જો હોય, તો હવે ક્રોધનો ત્યાગ કરીને આનું રક્ષણ કરો, એમ અર્થ છે.।।૪૧।।

इन्द्र उवाच

प्रत्यानीताः परम भवता त्रायता नः स्वभागा
दैत्याक्रान्तं हृदयकमलं त्वद्गृहं प्रत्यबोधि।
कालग्रस्तं कियदिदमहो नाथ शुश्रूषतां ते
मुक्तिस्तेषां न हि बहुमता नारसिंहापरैः किम्॥ ४२

ઈન્દ્ર બોલ્યા – હે પરમ, અમારું રક્ષણ કરનાર આપે પોતાના જ યજ્ઞભાગો પાછા આણ્યા છે. દૈત્ય(ના આતંક)થી જકડાઈ ગયેલા એવા આપના નિવાસસ્થાનરૂપ અમારા હૃદય-કમળને આપે વિકસિત કર્યું છે. અહો નાથ, હે નારસિંહ, આપની સેવા કરનારાઓને માટે કાળના કોળિયારૂપ આ (ઈન્દ્રપદ)નું શું (કેટલું) પ્રયોજન છે? ખરેખર, તેમને માટે તો મોક્ષ પણ મૂલ્યવાન નથી, તો અન્ય સ્વર્ગાદિથી શું પ્રયોજન છે? ॥૪૨॥

इन्द्रस्तु नास्माकं हविर्भागादिलाभः पुरुषार्थः किंतु त्वत्परिचर्यैव। भवता पुनरनेन संरम्भेण स्वकार्यमेव साधितं तस्य च सिद्धत्वादुपसंहरैनं क्रोधमित्याशयेनाह—हे परम, नोऽस्मांस्त्रायता रक्षता भवता स्वीया एव भागा दैत्यात्प्रत्याहृताः, अन्तर्यामिणस्तवैव यज्ञेषु भोक्तृत्वात्।

ઈન્દ્ર તો (કહે છે,) અમારા યજ્ઞભાગાદિની પ્રાપ્તિ એ (પરમ) પુરુષાર્થ નથી, પરંતુ આપની પરિચર્યા જ (પરમ પુરુષાર્થ) છે. વળી, આ ક્રોધથી આપે પોતાનું કાર્ય જ સિદ્ધ કર્યું છે અને તે સિદ્ધ થઈ ગયું હોવાથી (હવે) આ ક્રોધનો ત્યાગ કરો, એ આશયથી કહે છે– હે પરમ, '**नः**' અમને '**त्रायता**' રક્ષતા એવા આપે પોતાના જ યજ્ઞભાગો દૈત્ય પાસેથી પાછા આણ્યા છે, કારણ કે (સર્વના) અંતર્યામી એવા આપ જ યજ્ઞોના ભોક્તા છો.

अस्मदीयं हृदयकमलं त्वद्गृहमेवैतावत्पर्यन्तं भयहेतुत्वेनास्मत्स्मृतिपथे नित्यं स्थितेन दैत्येनाक्रान्तं व्याप्तं सत्प्रत्यबोधि भयापाकरणेन विकासं नीतम्। ननु तव त्रैलोक्यैश्वर्यसाधनार्थमयमुद्यम इति चेत्तत्राह—कालग्रस्तमिति। ते त्वाम्। हे नारसिंह, नरस्य सिंहस्य चाकाराभ्यामाविर्भूत, अपरैः स्वर्गादिभिः किम्॥ ४२॥

અમારું હૃદયકમળ આપનું જ નિવાસસ્થાન છે, પણ અત્યાર સુધી દૈત્યના ભયને લીધે અમારા સ્મૃતિપટ ઉપર નિત્ય રહેલા દૈત્યથી '**आक्रान्तम्**' જકડાયેલા એવા તેને '**प्रत्यबोधि**' ભય દૂર કરવા દ્વારા આપે વિકસિત કર્યું છે. શંકા કરવામાં આવી છે કે (જો ઈન્દ્રને કહેવામાં આવે કે) તારું ત્રિલોકનું ઐશ્વર્ય સિદ્ધ કરવા માટે આ ઉદ્યમ કર્યો છે તો તે માટે ઈન્દ્ર કહે છે– '**कालग्रस्तम् इति**।' '**ते**' આપને, '**हे नारसिंह**' નરના અને સિંહના આકારમાં આવિર્ભૂત થયેલા– '**अपरैः**' અન્ય સ્વર્ગાદિથી શું પ્રયોજન છે?॥૪૨॥

वं.—हे परमेति! परो मा यस्मात् स परमः। 'पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः ॥' इति श्रुतेः।

જેનાથી શ્રેષ્ઠ અન્ય કાંઈ નથી તે પરમ. (સંપૂર્ણ જગતના બીજરૂપ અવ્યક્ત અવ્યાકૃત પ્રકૃતિ મહત્તત્ત્વથી સૂક્ષ્મતર છે અને અવ્યક્તથી સૂક્ષ્મતર એવા) 'શ્રેષ્ઠ પુરુષથી પર અન્ય કાંઈ જ નથી. તે જ પરાકાષ્ઠા છે અને તે જ સર્વોત્કૃષ્ટ ગતિ છે.' (કઠ.ઉપ.૧/૩/૧૧) એમ શ્રુતિ છે.

सि.प्र.—प्रत्यबोधि त्वत्स्वरूपगुणग्राहकं कृतम्।

આપના સ્વરૂપ અને ગુણોને ગ્રહણ કરનારું બનાવ્યું છે. (**अबोधि—√बुध** અદ્ય. ભૂ. ત્રી.પુ.એ.વ. કર્મણિ)

वंशीधरी—मन्दाक्रान्ता छन्दः 'मन्दाक्रान्ताम्बुधि-रसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्'

મન્દાક્રાન્તા છંદ, ૧૭ અક્ષરોવાળો, સમવૃત્ત, ગણમાપ મ ભ ન ત ત ગ ગા

ऋषयस्तु तपःप्रवर्तनेनास्माकं महाननुग्रहः कृत इत्याहुः—

વળી, ઋષિઓ કહે છે– તપના પ્રવર્તન દ્વારા અમારી ઉપર મહાન અનુગ્રહ કરવામાં આવ્યો છે–

ऋषय ऊचुः

त्वं नस्तपः परममात्थ यदात्मतेजो
येनेदमादिपुरुषात्मगतं ससर्ज।
तद् विप्रलुप्तममुनाद्य शरण्यपाल
रक्षागृहीतवपुषा पुनरन्वमंस्थाः॥ ४३

ઋષિઓ બોલ્યા – હે આદિ પુરુષ, આપે અમને પોતાના પ્રભાવરૂપ, ધ્યાનના લક્ષણરૂપ જે (પરમ) તપનો ઉપદેશ કર્યો હતો તથા જે તપથી પોતાનામાં લીન થયેલા આ વિશ્વનું આપે સર્જન કર્યું હતું, તે તપ આ દૈત્યને કારણે કુંઠિત થયું હતું. હે શરણ ગ્રહણ કરવા યોગ્ય પાલક, હમણાં રક્ષા કાજે ધારણ કરેલા વિગ્રહ દ્વારા આપે પુનઃ તે તપ કરવાની અનુજ્ઞા આપી છે. (તેવા આપને નમસ્કાર.)।।૪૩।।

त्वं नो यदात्थ परमं ध्यानलक्षणं तपः। परमत्वे हेतुः—आत्मनस्तव तेजः प्रभावरूपम्। तदेवाहुः—येन तपसात्मनि लीनमिदं विश्वं ससर्ज सृष्टवानसि तदमुना दैत्येन विप्रलुप्तं कुण्ठितं सत्। हे शरण्यपाल, अद्य रक्षार्थं

આપે જ્યારે અમને '**परमम्**' ધ્યાનના લક્ષણરૂપ તપનો ઉપદેશ કર્યો. પરમત્વ (સર્વ સાધનોથી ઉત્કૃષ્ટ) હોવા માટેનું કારણ– '**आत्मनः**' પોતાના– આપના '**तेजः**' પ્રભાવરૂપ છે. તે જ કહે છે– જે તપથી પોતાનામાં લીન થયેલા આ વિશ્વનું '**ससर्ज**' સર્જન કર્યું, તે તપ આ દૈત્યને કારણે '**विप्रलुप्तम्**' કુંઠિત થયું હતું. હે

गृहीतेनानेन वपुषा पुनरपि तपः कुरुतेत्यनुज्ञातवानसि तस्मै ते नम इत्युत्तरश्लोकचतुर्थपादस्यानुषङ्गः ॥ ४३ ॥

शरण्यपाल, આજે રક્ષા કાજે ધારણ કરેલા આ વિગ્રહથી 'વળી પાછા તમે તપ કરો.' એમ આપે અનુજ્ઞા આપી છે, તેવા આપને નમસ્કાર. એમ આ પછીના શ્લોક (૪૪)ના ચોથા ચરણ સાથે સંબંધ છે.।।૪૩।।

वंशीधरी—वसन्ततिलका छन्दः 'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः'

ત ભ જ જ ગા ગા લક્ષણવાળો વસન્તતિલકા છંદ છે: ૧૪ અક્ષરવાળો સમવૃત્ત છંદ, ગણમાપ ત ભ જ જ ગા ગા.

पितर ऊचुः

श्राद्धानि नोऽधिबुभुजे प्रसभं तनूजै-
र्दत्तानि तीर्थसमयेऽप्यपिबत् तिलाम्बु।
तस्योदरान्नखविदीर्णवपाद् य आर्च्छत्
तस्मै नमो नृहरयेऽखिलधर्मगोप्त्रे ॥ ४४

પિતૃઓ બોલ્યા – પુત્રો દ્વારા આપવામાં આવેલા શ્રદ્ધાયુક્ત પિંડાદિને (આ દૈત્ય) અમારી પાસેથી બળપૂર્વક પોતે જ અધિકાર પ્રાપ્ત કરીને ખાઈ જતો હતો. તીર્થસ્નાનસમયે આપવામાં આવેલી તિલાંજલિ પણ પી જતો હતો. નખો વડે વિદારી નાખેલા મેદવાળા તેના ઉદરમાંથી તે સર્વ જેમણે પાછાં લાવી આપ્યાં છે, તેવા સમગ્ર ધર્મના (એક માત્ર) રક્ષક નૃસિંહદેવને નમસ્કાર.।।૪૪।।

पितरस्तु श्राद्धोद्धरणेन परमोपकारिणं श्रीनृसिंहं प्रणमन्ति। श्राद्धानि श्रद्धायुक्तानि पिण्डादीनि नोऽस्मभ्यं पुत्रैर्दत्तानि प्रसभं बलाद्यः स्वयमधिकृत्य बुभुजे। किंच तीर्थस्नानसमये दत्तं तिलोदकमप्यपिबत्। तानि च तस्योदराद्य आर्च्छदाहृतवान्। कथंभूतात्। नखैर्विदीर्णा वपा यस्य तस्मात्। वपाविदारणस्य तद्गतपिण्डोद्धरणमेव फलमिति भावः ॥ ४४ ॥

પિતૃઓ પણ શ્રાદ્ધનો ઉદ્ધાર થવાથી પરમ ઉપકારી શ્રીનૃસિંહને પ્રણામ કરે છે. પુત્રો દ્વારા આપવામાં આવેલા '**श्राद्धानि**' શ્રદ્ધાયુક્ત પિંડાદિ '**नः**' અમારી પાસેથી '**प्रसभम्**' બળજબરીથી પોતે જ અધિકાર પ્રાપ્ત કરીને ખાઈ જતો હતો. વળી, તીર્થસ્નાનસમયે આપવામાં આવેલી તિલાંજલિ પણ પી જતો હતો. તે પિંડો અને તિલાંજલિ તેના ઉદરમાંથી જેમણે '**आर्च्छत्**' પાછાં લાવી આપ્યાં છે. કેવા ઉદરમાંથી? નખો દ્વારા વિદારવામાં આવ્યો છે મેદ જેનો તેવા ઉદરમાંથી. મેદનું વિદારણ તેમાં રહેલા પિંડોના ઉદ્ધારરૂપ ફળ જ છે, એવો ભાવ છે.।।૪૪।।

वंशीधरी—'छन्दः प्राग्वत्'

પૂર્વના શ્લોક જેવો વસંતતિલકા છંદ છે.

सिद्धा ऊचुः

यो नो गतिं योगसिद्धामसाधु-
रहारषीद् योगतपोबलेन।
नानादर्पं तं नखैर्निर्ददार
तस्मै तुभ्यं प्रणताः स्मो नृसिंह॥ ४५

योगसिद्धां गतिमणिमादिसिद्धिम्। नाना अनेके दर्पा यस्य तम्। तस्मै तुभ्यं तं त्वामुद्दिश्य॥ ४५॥

अन्वि.—शालिनीच्छन्दोभङ्गः।

विद्याधरा ऊचुः

विद्यां पृथग्धारणयाऽनुराद्धां
न्यषेधदज्ञो बलवीर्यदृप्तः।
स येन संख्ये पशुवद्धतस्तं
मायानृसिंहं प्रणताः स्म नित्यम्॥ ४६

विद्यामन्तर्धानादिलक्षणाम्। अनुराद्धां संप्राप्ताम्। संख्ये युद्धे॥ ४६॥

वं.—मायानृसिंहं कृपाप्रधानं नृसिंहम्।

वं.—इन्द्रवज्रा छन्दः 'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः' इति लक्षणात्।

नागा ऊचुः

येन पापेन रत्नानि स्त्रीरत्नानि हृतानि नः।
तद्वक्षःपाटनेनासां दत्तानन्द नमोऽस्तु ते॥ ४७

સિદ્ધો બોલ્યા – હે નૃસિંહદેવ, જે દુષ્ટ દૈત્યે યોગ અને તપના બળથી અમારી યોગ દ્વારા સિદ્ધ થયેલી (અણિમાદિ સિદ્ધિરૂપ) ગતિને હરી લીધી હતી, તે અનેક પ્રકારના (ધન-જનાદિજનિત) ઘમંડવાળા દૈત્યને જેમણે નખોથી વિદારી નાખ્યો, તે આપને અમે પ્રણામ કરીએ છીએ.।।૪૫।।

યોગ વડે સિદ્ધ થયેલી અણિમાદિ સિદ્ધિરૂપ ગતિને– '**नाना**' અનેક પ્રકારના ઘમંડ છે જેને તેને, '**तस्मै तुभ्यम्**' તે આપને ઉદ્દેશીને।।૪૫।। ('**तस्मै**' નો અર્થ '**तम्**' અને '**तुभ्यम्**' નો અર્થ '**त्वाम्**' કરવો કારણ કે '**प्रणताः**' શબ્દ છે, '**नमः**' શબ્દ નથી.)

(ગણમાપ મ ત ત ગ ગ, ૧૧ અક્ષર, સમવૃત્ત છંદ) શાલિની, અહીં છન્દોભંગ દોષ છે.

વિદ્યાધરો બોલ્યા – બળ અને પરાક્રમથી ગર્વિષ્ઠ બનેલા જે મૂર્ખ દૈત્યે જુદી જુદી ધારણાઓથી પ્રાપ્ત કરેલી અમારી (અંતર્ધાનાદિ) વિદ્યાને અવરુદ્ધ કરી હતી, તેને જેમણે (દ્વન્દ્વ)યુદ્ધમાં પશુની જેમ હણ્યો તેવા, (માયાથી) લીલાથી નૃસિંહ બનેલા તે આપને અમે નિત્ય નમસ્કાર કરીએ છીએ.।।૪૬।।

અન્તર્ધાન વગેરે લક્ષણવાળી વિદ્યાને, '**अनुराद्धाम्**' સારી રીતે પ્રાપ્ત કરવામાં આવેલી વિદ્યાને, '**संख्ये**' યુદ્ધમાં।।૪૬।।

કૃપાપ્રધાન નરસિંહને (નમસ્કાર)

૧૧ અક્ષરોવાળો સમવૃત્ત છંદ– ઈન્દ્રવજ્રા ગણમાપ ત ત જ ગા ગા

નાગો બોલ્યા – જે પાપી દૈત્ય દ્વારા અમારાં (ફેણ ઉપર રહેલાં) રત્નો અને સ્ત્રીરત્નોને હરી લેવામાં આવ્યાં છે, તેના વક્ષ:સ્થળને વિદારીને આ ઉત્તમ સ્ત્રીઓને આનંદ આપનાર હે નૃસિંહ દેવ, આપને નમસ્કાર.।।૪૭।।

रत्नानि फणासु स्थितानि तथा स्त्रीरत्नानि चोत्तमाः स्त्रियः। आसां स्त्रीणां दत्त आनन्दो येन तत्संबोधनम्। पाठान्तरेऽस्माकं दत्त आनन्दो येनेति ॥ ४७ ॥

ફેણો ઉપર રહેલાં રત્નોને તથા '**स्त्रीरत्नानि**' ઉત્તમ સ્ત્રીઓને, આ સ્ત્રીઓને જેમણે આનંદ આપ્યો છે તેવા હે નરસિંહદેવ, એમ સંબોધન છે. '**तद्वक्षःपाटनेनास्मद्दत्तानन्द**' એ પાઠાન્તરમાં, અમને જેમણે આનંદ આપ્યો છે તેવા, ।।૪૭।।

मनव ऊचुः

मनवो वयं तव निदेशकारिणो
दितिजेन देव परिभूतसेतवः।
भवता खलः स उपसंहृतः प्रभो
करवाम ते किमनुशाधि किङ्करान्॥ ४८

મનુઓ બોલ્યા – હે દેવ, આપના આજ્ઞાંકિત અમે મનુઓ, દિતિપુત્ર દ્વારા જેમની વર્ણાશ્રમધર્મની મર્યાદાઓ નષ્ટ કરવામાં આવી હતી તેવા અમે, હવે તે દુષ્ટ આપના દ્વારા હણાયો છે (ત્યારે) હે પ્રભુ, આપની શી સેવા કરીએ? અમને કિંકરોને આજ્ઞા આપો.।।૪૮।।

नृसिंहेनावलोकिताः सन्तो मूर्ध्नि बद्धाञ्जलयो मनवः प्रोचुः—मनवो वयं धर्मपालकाः। परिभूताः सेतवो वर्णाश्रमधर्ममर्यादा येषां ते। अनुशाध्यनुशिक्षय॥ ४८ ॥

નૃસિંહ ભગવાન દ્વારા અચાનક જેમની ઉપર દૃષ્ટિપાત થયો તેવા મનુઓ મસ્તક ઉપર હાથ જોડીને બોલ્યા– અમે મનુઓ, ધર્મરક્ષકો, જેમની '**सेतवः**' વર્ણાશ્રમધર્મની મર્યાદાઓ નષ્ટ કરવામાં આવી હતી. '**अनुशाधि**' આજ્ઞા આપો.।।૪૮।।

वं.—मनवोऽत्र वर्त्तमानमनुसहितास्तपःस्थिता अतीता इत्यर्थः। ते च भाविनोऽप्यात्मानमेनं मत्वा निवेदयन्ति स्मेति ज्ञेयम्।

અહીં વર્તમાન મનુ સાથે તપ કરવા બેઠેલા અતીતમાં થઈ ગયેલા અને હવે પછી ભવિષ્યમાં થનારા મનુઓ પણ આ નરસિંહ ભગવાનને પરમાત્મા જાણીને નિવેદન કરતા હતા, એમ સમજવું.

मंजुभाषिणी छन्दः 'सजसा जगौ च यदि मंजुभाषिणी।'

મંજુભાષિણી છંદ, ૧૩ અક્ષરવાળા ચાર ચરણ, સમવૃત્ત છંદ, ગણમાપ– સ જ સ જ ગા

प्रजापतय ऊचुः

प्रजेशा वयं ते परेशाभिसृष्टा
न येन प्रजा वै सृजामो निषिद्धाः।
स एष त्वया भिन्नवक्षा नु शेते
जगन्मङ्गलं सत्त्वमूर्तेऽवतारः॥ ४९

પ્રજાપતિઓ બોલ્યા – હે પરેશ, (પ્રજાસર્જન માટે) ઉત્પન્ન કરવામાં આવેલા અમે પ્રજાપતિઓ જેના દ્વારા અટકાવવામાં આવેલા હોઈ પ્રજાનું સર્જન કરતા ન હતા, તમારા દ્વારા તે ચિરાઈ ગયેલી છાતીવાળો આ દૈત્ય મૃત્યુ જ પામ્યો! હે સત્ત્વમૂર્તિ, (આપનો) અવતાર જગતના મંગળરૂપ છે.।।૪૯।।

प्रजापतयोऽपि तदवलोकिताः प्रोचुः—हे परेश, ते त्वया अभिसृष्टा वयं प्रजेशा येन निषिद्धाः सन्तः प्रजा न सृजामः स एष भिन्नं वक्षो यस्य नु निश्चितं शेते मृतः। अतःपरं प्रजाः सृजाम इति हृष्यन्तः प्राहुः—हे सत्त्वमूर्ते, तवायमवतारो जगतो मङ्गलम्॥ ४९॥

પ્રજાપતિઓ પણ તેમના દ્વારા નિહાળવામાં આવ્યા. તેઓ બોલ્યા— હે પરેશ, 'ते' આપના દ્વારા પ્રજાસર્જન માટે ઉત્પન્ન કરવામાં આવેલા અમે પ્રજાપતિઓ જેના દ્વારા અટકાવવામાં આવેલા હોઈ પ્રજાનું સર્જન કરતા નથી, તે આ, જેની છાતી ચિરાઈ ગઈ છે તે 'नु' અવશ્ય 'शेते' મૃત્યુ પામ્યો છે. હવે પછી અમે પ્રજાઓનું સર્જન કરીશું, એમ હર્ષ પામતા કહે છે— હે સત્ત્વમૂર્તિ, આપનો આ અવતાર જગતના મંગળરૂપ છે.।।૪૯।।

वंशीधरी—भुजङ्गप्रयातं छन्दः 'चतुर्भिर्यकारैर्भुजङ्गप्रयातम्'।

૧૨ અક્ષરવાળો, સમવૃત્ત છંદ, ય ય ય ય ગણમાપવાળો ભુજંગપ્રયાત છંદ છે.

गन्धर्वा ऊचुः

वयं विभो ते नटनाट्यगायका
येनात्मसाद् वीर्यबलौजसा कृताः।
स एष नीतो भवता दशामिमां
किमुत्पथस्थः कुशलाय कल्पते॥ ५०

ગંધર્વો બોલ્યા – હે વિભુ, નૃત્ય કરનારા અને નૃત્યમાં ગાન કરનારા અમે, શૌર્ય અને શક્તિના પ્રભાવવાળા જે દૈત્ય દ્વારા વશ કરાયા હતા, તે આ દૈત્ય આપના દ્વારા આ દશાને પ્રાપ્ત થયો છે. અવળે માર્ગે જનારનું કલ્યાણ થાય ખરું?।।૫૦।।

गन्धर्वा अपि तदवलोकिताः प्रोचुः—हे विभो, वयं ते त्वदीया नटा नर्तका नाट्ये नृत्ये गायकाश्च येन स्वाधीनाः कृताः। कथंभूतेन। वीर्यं शौर्यं बलं शक्तिस्ताभ्यामोजः प्रभावो यस्य तेन। स एष भवता इमां दशां मृतिं नीतः। उचितं चैतदित्याहुः—किमिति॥ ५०॥

ગંધર્વો પણ તેમના દ્વારા નિહાળવામાં આવ્યા. તેઓ બોલ્યા— હે વિભુ, અમે 'ते' આપના '**नटाः**' નૃત્ય કરનારા અને '**नाट्ये**' નૃત્યમાં ગાન કરનારા, જે દૈત્ય દ્વારા અધીન કરવામાં આવ્યા હતા. કેવા દૈત્ય દ્વારા? '**वीर्यम्**' શૌર્ય, '**बलम्**' શક્તિ, તે બંનેથી '**ओजः**' પ્રભાવ છે જેનો, તેવો આ દૈત્ય આપના દ્વારા આ '**दशाम्**' મૃત્યુની દશાને પામ્યો છે અને તે ઉચિત જ છે, એમ તેઓ કહે છે— '**किम् इति।**'।।૫૦।।

वंशीधरी—'वंशस्थं छन्दः 'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ।'

વંશસ્થ છંદ ૧૨ અક્ષરોવાળા, સમવૃત્ત છંદ– ગણમાપ– જ ત જ ર

चारणा ऊचुः

हरे तवांघ्रिपङ्कजं भवापवर्गमाश्रिताः।
यदेष साधुहृच्छयस्त्वयाऽसुरः समापितः॥ ५१

ચારણો બોલ્યા – હે હરિ, સંસારમાંથી છોડાવનારા આપનાં ચરણકમળનો અમે આશ્રય કર્યો છે, કારણ કે સત્પુરુષોનાં હૃદયમાં ભય ઉત્પન્ન કરનાર તરીકે રહેતો આ અસુર આપના દ્વારા અંત પામ્યો છે.।।૫૧।।

भवापवर्गं संसारनिवर्तकम्। आश्रयणे हेतुः—यद्यस्मात्साधूनां हृदि भयजनकत्वेन शेते तिष्ठतीति तथा स एषोऽसुरस्त्वया समापितोऽन्तं नीतः॥ ५१ ॥

वंशीधरी—'प्रमाणिका जरौ लगौ।'

'दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानाम् उत्त-रोत्तरापाये तदनन्तरापायाद् अपवर्गः।'

यक्षा ऊचुः

वयमनुचरमुख्याः कर्मभिस्ते मनोज्ञै-
स्त इह दितिसुतेन प्रापिता वाहकत्वम्।
स तु जनपरितापं तत्कृतं जानता ते
नरहर उपनीतः पञ्चतां पञ्चविंश॥ ५२

मनोज्ञैः कर्मभिस्तवानुचरेषु मुख्यास्ते वयं दितिसुतेन शिबिकावाहकत्वं प्रापिताः। पञ्चतां मृत्युम्। हे पञ्चविंश चतुर्विंशतितत्त्व-नियामक॥ ५२ ॥

सि.प्र.—पञ्चविंश! प्रकृतिर्महत्तत्त्वमहंकारश्चेति त्रिकम् पञ्च तन्मात्राणि पञ्च महाभूतानि एकादशेन्द्रियाणि चेति चतुर्विंशतिप्राकृत-पदार्थनियन्तः।

किंपुरुषास्तु त्वां स्तोतुं के वयं वराका इत्याहुः—**वयमिति**।

'भव-अपवर्गम्' સંસારમાંથી છોડાવનારા– આશ્રય કરવા માટેનું કારણ– **'यत्'** કારણ કે સત્પુરુષોનાં હૃદયમાં ભય ઉત્પન્ન કરનાર તરીકે **'शेते'** શયન કરતો રહેતો આ અસુર આપના દ્વારા **'समापितः'** અંત પામ્યો છે.।।૫૧।।

જ ર લ ગ ગણ, ૮-૮ અક્ષરવાળા ૪ ચરણ, છંદ– પ્રમાણિકા

'દુઃખ, જન્મ, પ્રવૃત્તિ, દોષ અને મિથ્યા જ્ઞાન ઉત્તરોત્તર દૂર થાય અને ત્યાર બાદ તેનો નાશ થવાથી મોક્ષ થાય છે.' (અક્ષપાદમુનિ ન્યાયસૂત્ર ૧/૧/૨).

યક્ષો બોલ્યા – હે ચોવીસ તત્ત્વોના નિયામક, મનોહર કર્મોને કારણે આપના સેવકોમાં મુખ્ય એવા તે અમે દિતિપુત્ર દ્વારા પાલખી ઊંચકનારા બનાવાયા હતા. તે દૈત્યને કારણે થયેલા દુઃખને જાણતા એવા હે નરહર, આપના દ્વારા તે મૃત્યુ પામ્યો છે.।।૫૨।।

મનોહર કર્મો દ્વારા આપના સેવકોમાં મુખ્ય એવા તે અમે, દિતિપુત્ર દ્વારા પાલખી ઊંચકનારા બનાવવામાં આવ્યા હતા. **'पञ्चताम्'** મૃત્યુને– **'हे पञ्चविंश'** ચોવીસ તત્ત્વોના નિયામક એવા હે પંચવિંશ।।૫૨।।

'पञ्चविंश' પ્રકૃતિ, મહત્તત્ત્વ અને અહંકાર એમ ત્રણ, પાંચ તન્માત્રાઓ, પંચમહાભૂતો અને અગિયાર ઇન્દ્રિયો– એમ ચોવીસ પ્રકૃતિના પદાર્થોના (પચ્ચીસમા) હે નિયંતા!

(૧૫ અક્ષરોવાળો સમવૃત્ત છંદ-માલિની, ન ન મ ય ય ગણ, ૮મા અને ૭મા અક્ષર પછી યતિવાળા ચાર ચરણ)

કિંપુરુષો કહે છે કે આપની સ્તુતિ કરવા માટે દયનીય એવા અમે કોણ?– **'वयम् इति।'**

किम्पुरुषा ऊचुः

वयं किम्पुरुषास्त्वं तु महापुरुष ईश्वरः।
अयं कुपुरुषो नष्टो धिक्कृतः साधुभिर्यदा॥ ५३

કિંપુરુષો બોલ્યા – અમે તુચ્છ પ્રાણીઓ અને આપ તો અદ્‌ભુત પ્રભાવવાળા સર્વનિયન્તા પુરુષોત્તમ! જ્યારે ભગવદ્‌ભક્તો દ્વારા આ કુપુરુષ તિરસ્કૃત થયો, ત્યારે જ તે નાશ પામ્યો હતો. ।।૫૩।।

वयं किंपुरुषास्तुच्छप्राणिनस्त्वं तु महानद्भुतप्रभावः पुरुषः।

અમે '**किम्पुरुषाः**' તુચ્છ પ્રાણીઓ અને આપ તો '**महान्**' અદ્‌ભુત પ્રભાવવાળા પુરુષોત્તમ (અચિન્ત્ય ગુણોથી પરિપૂર્ણ સર્વનિયન્તા પૂર્ણ-પુરુષોત્તમ)!

नन्वयं महान्दैत्यो हत इति किं न वर्ण्यत इत्याशङ्क्य कियदेतदित्याहुः—**अयमिति**।

આ મહાન દૈત્ય હણાયો એ ગાથા કેમ ગવાતી નથી, એવી આશંકા કરીને (કિંપુરુષોને) કહેવામાં આવતાં તેઓ કહે છે કે આ (અમારી) શી વિસાત?– '**अयम् इति**।'

यदा साधुभिर्भगवद्भक्तैस्तिरस्कृतस्तदैव नष्टः॥ ५३॥

જ્યારે '**साधुभिः**' ભગવદ્‌ભક્તો દ્વારા આ કુપુરુષ તિરસ્કૃત થયો, ત્યારે જ નાશ પામ્યો હતો.।।૫૩।।

अन्वि.—'अतस्तद्वधे किं माहात्म्यं वर्णनीय-मिति भावः।'

આથી તેનો વધ કરવામાં કયું માહાત્મ્ય વર્ણવવા જેવું છે, એવો ભાવ છે.

वैतालिका ऊचुः

सभासु सत्रेषु तवामलं यशो
गीत्वा सपर्यां महतीं लभामहे।
यस्तां व्यनैषीद् भृशमेष दुर्जनो
दिष्ट्या हतस्ते भगवन्यथाऽऽमयः॥ ५४

વૈતાલિકો બોલ્યા – હે ભગવાન, સભાઓમાં અને યજ્ઞોમાં આપનો (સકળ પાપને દૂર કરનારો) અમલ યશ ગાઈને અમે ખૂબ જ સત્કાર (અને સમ્પત્તિ) પ્રાપ્ત કરતા. જેણે તે સત્કારને નષ્ટ કર્યો એવો આ દુર્જન આપના દ્વારા રોગની જેમ નાશ પામ્યો, તે આપે ઘણું સારું કર્યું.।।૫૪।।

सत्रेषु यज्ञेषु। ते त्वया हतः एतद्दिष्ट्या भद्रं कृतम्॥ ५४॥

'**सत्रेषु**' યજ્ઞોમાં, '**ते**' આપના દ્વારા હણાયો એ '**दिष्ट्या**' કલ્યાણ કર્યું.।।૫૪।।

(૧૨ અક્ષરો ૪ ચરણ, જ જ જ ર, વિધારિતા છંદ)

किन्नरा ऊचुः

वयमीश किन्नरगणास्तवानुगा
दितिजेन विष्टिममुनाऽनु कारिताः।
भवता हरे स वृजिनोऽवसादितो
नरसिंह नाथ विभवाय नो भव॥५५

અમુના દિતિજેન વિષ્ટિં નિર્મૂલ્યં કર્માનુ નિરન્તરં કારિતાઃ, અતઃ પરં નો વિભવાય સમૃદ્ધયે ભવ॥ ૫૫ ॥

કિન્નરો બોલ્યા – હે ઈશ, આપના સેવકો અમને કિન્નરગણોને આ દિતિપુત્ર દ્વારા નિરંતર નિઃશુલ્ક વેઠ કરાવવામાં આવતી હતી. હે હરિ, હે નાથ, હે નરસિંહ, આપના દ્વારા તે પાપાત્મા નષ્ટ થયો છે. હવેથી અમારા અભ્યુદય માટે (આપ) થાઓ.।।૫૫।।

આ દિતિપુત્ર દ્વારા (અમારી પાસે) '**વિષ્ટિમ્**' નિઃશુલ્ક કર્મ '**અનુ**' નિરંતર કરાવવામાં આવ્યું. હવેથી અમારા '**વિભવાય**' અભ્યુદય માટે આપ થાઓ.।।૫૫।।

છંદ–મંજુભાષિણી (જુઓ શ્લોક-૪૮)

विष्णुपार्षदा ऊचुः

अद्यैतद्धरिनररूपमद्भुतं ते
दृष्टं नः शरणद सर्वलोकशर्म।
सोऽयं ते विधिकर ईश विप्रशप्त-
स्तस्येदं निधनमनुग्रहाय विद्मः॥५६

नोऽस्माकं भक्तानां हे शरणद आश्रयप्रद, सर्वेषां लोकानां शर्म मङ्गल-मेतदद्भुतं रूपमद्यैव दृष्टं न तु पूर्वम्। विधिकरः किङ्करः॥५६॥

ભગવાન વિષ્ણુના પાર્ષદો બોલ્યા – અમને (ભક્તોને) આશ્રય પ્રદાન કરનાર, હે ઈશ, સંપૂર્ણ લોકોને શાંતિ આપનારું આપનું આ અદ્ભુત નરહરિરૂપ આજે જ (અમારા દ્વારા) જોવામાં આવ્યું. આપનો તે આ સેવક જ વિપ્રો (સનકાદિ) દ્વારા શાપ પામીને દૈત્ય થયો હતો. તેનું આ મરણ તેના ઉપર અનુગ્રહ કરવા માટે છે, તે અમે જાણીએ છીએ.।।૫૬।।

'**नः**' અમને ભક્તોને '**हे शरणद**' આશ્રય આપનાર હે આશ્રયદાતા, સર્વ લોકોને શાંતિ, મંગળ (આપનારું) આ અદ્ભુત રૂપ આજે જ જોવામાં આવ્યું, પૂર્વે કદી જોયું નથી. '**विधिकरः**' સેવક।।૫૬।

वंशीधरी—प्रहर्षिणीछन्दः त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणी।

પ્રહર્ષિણી છંદ, ૧૩ અક્ષર, ગણમાપ– મ ન જ ર ગા.

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे प्रह्लादानुचरिते दैत्यराजवधे नृसिंहस्तवो नामाष्टमोऽध्यायः॥८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां अष्टमोऽध्यायः॥८॥

*****

अथ नवमोऽध्यायः

પ્રહ્લાદજી દ્વારા નરસિંહ ભગવાનની સ્તુતિ

नवमे ब्रह्मणा भीत्या चोदितोऽसुरबालकः।
कोपं प्रशमयन्नस्तौन्नृसिंहमतिभीषणम्॥ १

‘उग्रोऽप्यनुग्र एवायं स्वभक्तानां नृकेसरी।
केसरीव स्वपोतानामन्येषामुग्रविग्रहः॥’

इत्याद्यागमोक्तां भक्तानुकम्पितामाह—**एवमिति** सप्तभिः।

नारद उवाच

एवं सुरादयः सर्वे ब्रह्मरुद्रपुरःसराः।
नोपैतुमशकन्मन्युसंरम्भं सुदुरासदम्॥ १

एवं दूरत एव स्थित्वा स्तुवन्तः मन्युना संरम्भ आवेशो यस्य तम्। उप समीपे गन्तुं नाशक्नुवन्॥ १॥

साक्षाच्छ्रीः प्रेषिता देवैर्दृष्ट्वा तन्महदद्भुतम्।
अदृष्टाश्रुतपूर्वत्वात् सा नोपेयाय शङ्किता॥ २

श्रीर्लक्ष्मीर्देवैः प्रेषितापि महदद्भुतं तद्रूपं दृष्ट्वा शङ्किता सती तं नोपजगाम। अद्भुतत्वे हेतुः—**अदृष्टेति**॥ २॥

प्रह्लादं प्रेषयामास ब्रह्मावस्थितमन्तिके।
तात प्रशमयोपेहि स्वपित्रे कुपितं प्रभुम्॥ ३

બ્રહ્માજીએ ભયને કારણે પ્રેરેલા અસુર બાળક પ્રહ્લાદજીએ (નરસિંહ ભગવાનના) કોપને શાંત કરતાં, અતિભીષણ નરસિંહ ભગવાનની સ્તુતિ કરી, તે (કથા) નવમા અધ્યાયમાં છે.॥ ૧॥

‘બીજાને ભયંકર સ્વરૂપવાળો લાગતો સિંહ તેના પોતાના બાળકોને જેમ પ્રિય લાગે છે, તેમ (અતિ) ભયંકર સ્વરૂપવાળા નરકેસરી ભગવાન પોતાના ભક્તોને પ્રિય જ લાગે છે.’ વગેરે ધર્મશાસ્ત્રોમાં કહેવાયેલી ભક્તવત્સલતાનું સાત શ્લોકો દ્વારા વર્ણન કરે છે— **‘एवम् इति।’**

નારદજી બોલ્યા – આમ, બ્રહ્માજી અને રુદ્રદેવ જેમાં મુખ્ય છે તે સર્વ દેવો વગેરે ક્રોધના આવેશવાળા અને અતિદુર્ગમ (નરહરિ ભગવાનની) પાસે જવા માટે સમર્થ થયા નહીં.॥ ૧॥

આમ, દૂર જ (છેટા) રહીને સ્તુતિ કરતા (બ્રહ્માદિ દેવો)– ક્રોધથી ક્રોધનો (‘**संरम्भः**’) આવેશ છે જેમને તેમની ‘**उप**’ સમીપે જવા માટે સમર્થ થયા નહીં.॥ ૧॥

દેવો દ્વારા મોકલવામાં આવેલાં સાક્ષાત્ શ્રીદેવી તે મહા અદ્ભુત રૂપ જોઈને, પૂર્વે જોયું કે સાંભળ્યું ન હોવાથી, ભયભીત થઈ તેમની પાસે ગયાં નહીં.॥ ૨॥

‘**श्रीः**’ લક્ષ્મીદેવી દેવો દ્વારા મોકલવામાં આવ્યાં હોવા છતાં પણ મહા અદ્ભુત એવું તે રૂપ જોઈને ભયભીત થઈને તેમની પાસે ગયાં નહીં. અદ્ભુત હોવા માટેનું કારણ— ‘**अदृष्ट इति।**’॥ ૨॥

બ્રહ્માજીએ પાસે રહેલા પ્રહ્લાદજીને (આમ કહી) મોકલ્યા, ‘બેટા, તારા પોતાના પિતા ઉપર કોપાયમાન થયેલા પ્રભુની પાસે જા અને (તેમને) શાંત કર.’॥ ૩॥

उपेह्युपगच्छ॥ ३ ॥

तथेति शनकै राजन्महाभागवतोऽर्भकः ।
उपेत्य भुवि कायेन ननाम विधृताञ्जलिः ॥ ४ ॥ ४ ॥

शिरसि विधृताञ्जलिः कायेन भुवि ननामेत्यन्वयः ।

स्वपादमूले पतितं तमर्भकं
विलोक्य देवः कृपया परिप्लुतः ।
उत्थाप्य तच्छीर्ष्ण्यदधात् कराम्बुजं
कालाहिवित्रस्तधियां कृताभयम् ॥ ५

काल एवाहिस्तस्माद्वित्रस्ता धीर्येषां तेषां कृतमभयं येन तत्कराम्बुजम् ॥ ५ ॥

स तत्करस्पर्शधुताखिलाशुभः
सपद्यभिव्यक्तपरात्मदर्शनः ।
तत्पादपद्मं हृदि निर्वृतो दधौ
हृष्यत्तनुः क्लिन्नहृदश्रुलोचनः ॥ ६

तस्य श्रीनृसिंहस्य करस्पर्शेन धुतं निरस्तमखिलमशुभं यस्य। सपदि तत्क्षण-मेवाभिव्यक्तमपरोक्षीभूतं परात्मदर्शनं ब्रह्मज्ञानं यस्य। निर्वृतः सन् हृदि दधौ। हृष्यन्ती रोमाञ्चिता तनुर्यस्य। क्लिन्नं प्रेमार्द्रं हृत् यस्य। अश्रूणि लोचनयोर्यस्य। परमपुरुषार्थतया दधौ न साधनत्वेनेत्यर्थः ॥ ६ ॥

'उप-इहि' પાસે જા ॥ ૩ ॥

હે રાજા યુધિષ્ઠિર, ભગવાનના મહાન ભક્ત બાળક પ્રહ્‌લાદજી 'જેવી આજ્ઞા' એમ (કહી) ધીરેથી (ભગવાન) પાસે જઈ (મસ્તક ઉપર) બે હાથ જોડી, શરીરથી પૃથ્વી ઉપર (દંડવત્) નમી પડ્યા. ॥ ૪ ॥ ૪ ॥

મસ્તક પર બે હાથ જોડીને શરીર વડે ભૂમિ પર નમી પડ્યા, એમ અન્વય છે.

પોતાના ચરણ પાસે પડેલા તે બાળકને જોઈને કૃપાથી ઊભરાતા નૃસિંહદેવે પ્રહ્‌લાદજીને ઊભા કરી તેના મસ્તક ઉપર, કાળરૂપી સર્પથી ત્રસ્ત થયેલી બુદ્ધિવાળા મનુષ્યોને અભય પ્રદાન કરનાર હસ્તકમળ મૂક્યું. ॥ ૫ ॥

કાળ એ જ સર્પ, તેનાથી ત્રસ્ત થયેલી બુદ્ધિ છે જેમની તેમને અભયદાન જેનાથી મળે તેવું કરકમળ ॥ ૫ ॥

તે શ્રીનૃસિંહ પ્રભુના કરસ્પર્શથી જેમનું સમસ્ત પાપ દૂર થયું અને તે જ ક્ષણે જેમને બ્રહ્મજ્ઞાન પ્રકટ થયું, તેવા હર્ષથી રોમાંચિત થતા શરીરવાળા, પ્રેમાર્દ્ર હૃદયવાળા અને અશ્રુપૂર્ણ લોચનવાળા તે પ્રહ્‌લાદજીએ પરમાનંદપૂર્ણ થઈ તે ભગવાનનાં ચરણકમળ હૃદયમાં સ્થાપ્યાં. ॥ ૬ ॥

तस्य (**'तत्'**) તેમના, શ્રીનૃસિંહ પ્રભુના કરસ્પર્શથી **'धुतम्'** દૂર થયું છે સમસ્ત પાપ જેમનું– **'सपदि'** તે જ ક્ષણે **'अभिव्यक्तम्'** અપરોક્ષ થયું છે **'परात्मदर्शनम्'** બ્રહ્મજ્ઞાન જેમને, (આથી જ) પરમાનંદપૂર્ણ થઈ (પ્રહ્‌લાદજીએ પ્રભુનાં ચરણ-કમળ) હૃદયમાં સ્થાપ્યાં. **'हृष्यन्ती'** (**'हृष्यत्'**) રોમાંચિત થતી કાયા છે જેમની, પ્રેમથી **'क्लिन्नम्'** ભીનું છે હૃદય જેમનું– બંને લોચનમાં (હર્ષનાં) અશ્રુઓ છે જેમનાં– ભગવાનનાં ચરણકમળ પરમ પુરુષાર્થ તરીકે ધારણ કર્યાં, સાધનરૂપે નહીં, એમ અર્થ છે. ॥ ૬ ॥

वंशीधरी—भगवत्पादपद्मध्यानेनैव भगवत्प्राप्तिर्भवतीति साधनत्वेनापि तदिष्यते।

ભગવાનનાં ચરણકમળના ધ્યાનથી જ ભગવત્પ્રાપ્તિ થાય છે, એટલે સાધન તરીકે પણ ઈચ્છવામાં આવે છે. (ભગવાનનાં ચરણકમળનું ધ્યાન સાધન છે અને તેમની પ્રાપ્તિ સાધ્ય છે.)

अस्तौषीद्धरिमेकाग्रमनसा सुसमाहितः।
प्रेमगद्‌गदया वाचा तन्न्यस्तहृद्येक्षणः॥ ७

તે શ્રીનૃહરિમાં હૃદય અને નેત્ર જેમણે સમર્પિત કર્યાં છે તેવા સુસમાધિસ્થ થયેલા પ્રહ્‌લાદજી એકાગ્ર મનથી પ્રેમને કારણે સ્ખલિત થતી વાણીથી શ્રીહરિની સ્તુતિ કરવા લાગ્યા. ॥ ७ ॥

सुसमाधिमेवाह—तस्मिन्नेव न्यस्तं हृदयमीक्षणं च येनेति॥ ७॥

પ્રહ્‌લાદજીની સુંદર સમાધિનું જ વર્ણન કરે છે— તે નૃહરિ પ્રભુમાં જ સ્થાપ્યાં છે હૃદય અને દૃષ્ટિ જેમણે॥ ७॥

'स्वस्मिन्निव समस्तेषु तत्कृपामृतदृष्टये।
प्रह्लादः स्तौति सत्पद्यैर्द्विचत्वारिंशता हरिम्॥'
इति।

પોતાના ઉપર હોય તેવી સમસ્ત જીવો ઉપર તે નૃસિંહ પ્રભુની કૃપામૃતદષ્ટિ માટે બેંતાલીસ સુંદર પદ્યો દ્વારા પ્રહ્‌લાદજી શ્રીહરિનું સ્તવન કરે છે.

तत्र तावदात्मनो भगवत्स्तुतावनधिकारमिवाशङ्क्याधिकारं संभावयन्नाह—**ब्रह्मादय इति** पञ्चभिः।

તેમાં ભગવાનની સ્તુતિ કરવા માટે પોતાનો અધિકાર નથી, તેવી શંકા કરીને પોતાના અધિકાર(ની યોગ્યતા)નો વિચાર કરતાં પાંચ શ્લોકોથી કહે છે— '**ब्रह्मादयः इति।**'

प्रह्लाद उवाच

ब्रह्मादयः सुरगणा मुनयोऽथ सिद्धाः
सत्त्वैकतानमतयो वचसां प्रवाहैः।
नाराधितुं पुरुगुणैरधुनापि पिप्रुः
किं तोष्टुमर्हति स मे हरिरुग्रजातेः॥ ८

પ્રહ્‌લાદજી બોલ્યા – (ધર્મ, જ્ઞાન, તપરૂપ) સત્ત્વ(ગુણનાં ક્ષેત્ર)માં જ જેમની મતિ અનન્યપણે પ્રવર્તે (વિસ્તરે) છે તેવા બ્રહ્માદિ દેવગણો, (સનકાદિ, પરાશરાદિ મનનશીલ) મુનિઓ અને (કપિલાદિ સિદ્ધ) જ્ઞાનીઓ (ધ્વનિ, ગુણ, અલંકારયુક્ત) અનેક ગુણોના નિરૂપણથી તથા વાણીના (શીતળ, મધુર, પવિત્ર ધારા)પ્રવાહથી જે શ્રીહરિની આરાધના કરવા માટે હજી સુધી પણ સમર્થ થયા નથી, તે શ્રીહરિ અસુરજાતિમાં ઉત્પન્ન થયેલા એવા મારા સ્તુતિવચનથી શું સંતુષ્ટ થઈ શકે ખરા? ॥ ८ ॥

मुनयो मननशीलाः। सिद्धा ज्ञानिनोऽपि। कथंभूताः। सत्त्व एवैकस्मिंस्तानो विस्तारो यस्याः सा मतिर्येषां तथाविधा अपि वचसां प्रवाहैरपि तथा बहुभिर्वक्ष्यमाणैर्गुणैरपि यमाराधयितुं न पिप्रुर्न पूर्णाः, न शक्ता इत्यर्थः। स हरिर्मे मम कथं तोषं प्राप्तुमर्हति। तत्र हेतुः—उग्रजातेः उग्रा घोरा आसुरी जातिर्यस्य ॥८॥

'**मुनयः**' મનનશીલ જનો, '**सिद्धाः**' જ્ઞાની જનો પણ, (બ્રહ્માદિ આ સર્વે જનો) કેવા છે? એક માત્ર સત્ત્વગુણમાં જ '**तानः**' વિસ્તાર છે જેનો તેવી બુદ્ધિ છે જેમની, તેવા હોવા છતાં તેઓ '**वचसां प्रवाहैः**' વાણીના ધારાપ્રવાહોથી પણ તથા અનેક રીતે કહેવામાં આવનારા ગુણોથી પણ, જેમની આરાધના કરવા માટે '**न पिप्रुः**'* પૂર્ણ નથી, સમર્થ નથી, એમ અર્થ છે. તે શ્રીહરિ '**मे**' મારા સ્તુતિવચનથી કેવી રીતે સંતોષ પામશે? તે માટેનું (શ્રીહરિના સંતોષના અભાવ માટેનું) કારણ— '**उग्रजातेः**' ઉગ્ર, ભયંકર, આસુરી જાતિ છે જેની ॥૮॥

वंशीधरी—द्विचत्वारिंशतेति। अष्टादशपुराण-षट्शास्त्रषड्वेदांगवेदचतुष्टयोपवेदचतुष्टयेति-हासागमधर्मशास्त्रार्थशास्त्राणि मिलित्वा द्वि-चत्वारिंशद्भवन्तीत्येतत् सर्वशास्त्रसिद्धान्त-तात्पर्यरूपेण तावद्भिरेव पद्यैस्तं स्तौतीति तत्त्वम्।

અઢાર પુરાણ, છ શાસ્ત્ર, છ વેદાંગ, ચાર વેદ, ચાર ઉપવેદ, ઈતિહાસ, આગમ, ધર્મશાસ્ત્ર અને અર્થશાસ્ત્ર મળીને બેંતાલીસ થાય છે. એટલે આ સર્વ શાસ્ત્રોના સિદ્ધાન્તના તાત્પર્યરૂપે તેટલાં જ પદો દ્વારા તેમની સ્તુતિ કરે છે, એમ રહસ્ય છે.

एवं हरितोषणे स्वस्यायोग्यतामाशङ्क्य योग्यतां संभावयति—**मन्य इति** द्वाभ्याम्।

આમ, શ્રીહરિને તુષ્ટ કરવામાં પોતાની અયોગ્યતાની આશંકા કરીને યોગ્યતાનો બે શ્લોકોથી વિચાર કરે છે— '**मन्ये इति।**'

मन्ये धनाभिजनरूपतपःश्रुतौज-
स्तेजःप्रभावबलपौरुषबुद्धियोगाः।
नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो
भक्त्या तुतोष भगवान्गजयूथपाय॥ ९

હું માનું છું કે ધન, સત્કુળમાં જન્મ, સૌન્દર્ય, તપ, પાંડિત્ય, ઈન્દ્રિયોની શક્તિ, દેહકાન્તિ, પ્રતાપ, દેહશક્તિ, ઉદ્યમ, પ્રજ્ઞા અને અષ્ટાંગયોગ (આ બારેય ગુણો) પરમ પુરુષને પ્રસન્ન કરવા માટે (સમર્થ) નથી, કારણ કે ભગવાન (કેવળ) ભક્તિથી (જ) ગજેન્દ્ર ઉપર પ્રસન્ન થયા હતા. ॥૯॥

*'**अपिप्रुः**' ને બદલે '**पिप्रुः**' હ્ય.ભૂ.કા.ત્રીજો પુ.બ.વ. છે તે આર્ષપ્રયોગ છે. હ્ય.ભૂ.કા.નો **अ** લાગ્યો નથી.

अभिजनः सत्कुले जन्म। रूपं सौन्दर्यम्। श्रुतं पाण्डित्यम्। ओज इन्द्रियनैपुणम्। तेजः कान्तिः। प्रभावः प्रतापः। पौरुषमुद्यमः। बुद्धिः प्रज्ञा। योगोऽष्टाङ्गः।

एते धनादयो द्वादशापि गुणाः परस्य पुंस आराधनाय न भवन्ति। हि यतः केवलया भक्त्यैव गजेन्द्राय तुष्टोऽभवत्॥ ९॥

वंशीधरी—तदुक्तं शिष्टैः—

'व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का का जातिर्विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषम्। कुब्जायाः किमु तत्र रूपमधिकं किं तत्सुदाम्नो धनं भक्त्या तुष्यति केवलं परमया भक्तिप्रियो माधवः॥

इति।

भक्तिं विना सुशरीरादेरपि वैयर्थ्यमेवाभियुक्तैरुक्तम्—

शरीरं सुरूपं तथा वा कलत्रं
धनं मेरुतुल्यं वचः काकुचित्रम्।
हरेरंघ्रियुग्मे मनश्चेन्न दत्तं
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥

इति।

एवं भक्त्यैव केवलया हरेस्तोषः संभवतीत्युक्तमिदानीं भक्तिं विना नान्यत्किंचित्तत्तोषहेतुरित्याह—**विप्रादिति**।

विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ-
पादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम्।
मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थ-
प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः॥ १०

'**अभिजनः**' સત્કુળમાં જન્મ, '**रूपम्**' સૌંદર્ય, '**श्रुतम्**' પાંડિત્ય, '**ओजः**' ઇન્દ્રિયોની કુશળતા, '**तेजः**' કાન્તિ, '**प्रभावः**' પ્રતાપ, '**पौरुषम्**' ઉદ્યમ, '**बुद्धिः**' પ્રજ્ઞા, '**योगः**' અષ્ટાંગયોગ

ધન વગેરે આ બારેય ગુણો પરમ પુરુષને પ્રસન્ન કરવા માટે નથી, '**हि**' કારણ કે ભગવાન શ્રીહરિ કેવળ ભક્તિથી જ ગજેન્દ્ર ઉપર પ્રસન્ન થયા હતા.॥ ૯॥

શિષ્ટજનો દ્વારા તે કહેવામાં આવ્યું છે–

'વ્યાધનું કયું આચરણ હતું? ધ્રુવજીની કઈ ઉંમર હતી? ગજેન્દ્રની કઈ વિદ્યા હતી? વિદુરજીની કઈ જાતિ હતી? યાદવપતિ ઉગ્રસેનનું કયું પૌરુષ હતું? કુબ્જાનું રૂપ શું અધિક હતું? સુદામાજી પાસે કયું ધન હતું? ભક્તિના પ્રેમી માધવ તો કેવળ પરમ ભક્તિથી જ પ્રસન્ન થાય છે.'

ભક્તિ વિના સુંદર દેહાદિ પણ નિરર્થક જ છે, એમ વિદ્વાનો દ્વારા કહેવાયું છે. સુડોળ શરીર, સુંદર પત્ની, મેરુ જેટલું ધન અને વક્રોક્તિયુક્ત અદ્ભુત વાણી હોય, પણ શ્રીહરિનાં ચરણયુગલમાં જો મન ન લગાડ્યું તો સુંદર દેહથી શું? વળી પત્નીથી શું? ધનના ડુંગરથી શું? અને વક્રોક્તિવાળી વાણીથી શું?

આમ કેવળ ભક્તિથી જ શ્રીહરિની પ્રસન્નતા સંભવે છે, એમ કહીને હવે ભક્તિ સિવાય અન્ય કાંઈ પણ તેમની પ્રસન્નતાનું કારણ નથી, એમ કહે છે— '**विप्रात् इति**।'

અરવિંદનાભ ભગવાનનાં ચરણારવિંદથી વિમુખ એવો બ્રાહ્મણ દ્વાદશ ગુણોથી યુક્ત હોય, તો પણ તેવા બ્રાહ્મણ કરતાં તે ભગવાનમાં જેણે મન, વચન, કર્મ, ધન તથા પ્રાણનું પણ સમર્પણ કર્યું છે, તેવા ચાંડાળને હું શ્રેષ્ઠ માનું છું. તે ચાંડાળ કુળને પવિત્ર કરે છે, પણ જેને અતિગર્વ છે તેવો બ્રાહ્મણ તો પોતાને પણ પવિત્ર કરતો નથી.॥ ૧૦॥

पूर्वोक्ता धनादयो द्विषट् द्वादश गुणास्तै-र्युक्ताद्विप्रादपि श्वपचं वरिष्ठं मन्ये।

यद्वा सनत्सुजातोक्ता द्वादश धर्मादयो गुणा द्रष्टव्याः। तदुक्तम्—

'धर्मश्च सत्यं च दमस्तपश्च
अमात्सर्यं ह्रीस्तितिक्षाऽनसूया।
यज्ञश्च दानं च धृतिः श्रुतं च
व्रतानि वै द्वादश ब्राह्मणस्य॥'

इति। यद्वा—

'शमो दमस्तपः शौचं क्षान्त्यार्जवविरक्तताः।
ज्ञानविज्ञानसंतोषाः सत्यास्तिक्ये द्विषड्गुणाः॥'

इति।

कथंभूताद्विप्रात्। अरविन्दनाभस्य पादार-विन्दाद्विमुखात्। कथंभूतं श्वपचम्। तस्मिन्नर-विन्दनाभेऽर्पिता मनआदयो येन तम्। ईहितं कर्म। वरिष्ठत्वे हेतुः—स एवंभूतः श्वपचः सर्वं कुलं पुनाति।

भूरिर्मानो गर्वो यस्य स तु विप्र आत्मानमपि न पुनाति। कुतः कुलम्। यतो भक्तिहीनस्यैते गुणा गर्वायैव भवन्ति न तु शुद्धये। अतो हीन इति भावः॥ १०॥

अन्वि.—'तदर्पितमनोवचनेहितार्थप्राणम् इति।' मनसोऽर्पणं तद्व्यतिरिक्तस्याचिन्तनं तद्वार्त्ता-कथनातिरिक्ताकथनमीहितं कर्म तदर्पणं तत्प्रीतये आचरणं न स्वार्थम्। अर्थो वित्तं तस्यार्पणं तदर्थे विनियोगः प्राणस्य जीवन-स्यार्पणं नाम यावज्जीवं तत्सेवादि इति।

પૂર્વે (શ્લોક-૯ માં) કહેલા ધનાદિ '**द्विषट्**' બાર ગુણો, તેમનાથી યુક્ત હોય તેવા બ્રાહ્મણ કરતાં ચાંડાળને હું શ્રેષ્ઠ માનું છું.

અથવા સનત્સુજાતે કહેલા ધર્માદિ બાર ગુણો જોવા યોગ્ય છે, તે કહેવામાં આવ્યા છે. 'ધર્મ, સત્ય, દમ, તપ, અમાત્સર્ય, લજ્જા, તિતિક્ષા, અનસૂયા, યજ્ઞ, દાન, ધૈર્ય, વેદાધ્યયન– એમ બાર વ્રતો બ્રાહ્મણનાં છે.' (મહા.ભા., સનત્સુજાત-આખ્યાન ૪૫/૫)

અથવા 'શમ, દમ, તપ, શૌચ, સહનશીલતા, સરળતા, વિરક્તિ, જ્ઞાન, વિજ્ઞાન, સંતોષ, સત્ય અને આસ્તિકતા– એમ બાર ગુણો છે.'

કેવા વિપ્ર કરતાં ચાંડાળ શ્રેષ્ઠ છે? કમળનાભ ભગવાનનાં ચરણારવિંદથી વિમુખ હોય તેવા બ્રાહ્મણ કરતાં, કેવા ચાંડાળને (શ્રેષ્ઠ માન્યો છે)? તે કમળનાભ ભગવાનમાં જેણે મન વગેરે સમર્પિત કર્યાં છે તેવા ચાંડાળને (શ્રેષ્ઠ માન્યો છે). '**ईहितम्**' કર્મ, તે શ્રેષ્ઠ હોવા માટેનું કારણ— આવો સમર્પિત ચાંડાળ સમગ્ર કુળને પવિત્ર કરે છે.

'**भूरिमानः**' (**भूरिर्मानः**) જેને અતિગર્વ છે તેવો બ્રાહ્મણ તો પોતાને પણ પવિત્ર કરતો નથી, તો કુળને તો ક્યાંથી પવિત્ર કરે? કારણ કે ભક્તિહીન મનુષ્યના આ ગુણો તો અભિમાન માટેનું જ કારણ બને છે, નહીં કે શુદ્ધિ માટેનું. આથી (તેવો બ્રાહ્મણ) હીન છે, એવો ભાવ છે.॥ ૧૦॥

મનને સમર્પિત કરવું એટલે તેના સિવાયનું ચિંતન ન કરવું તે. તેની કથા કહેવા સિવાયનું બોલવું નહીં, તે વાણીનું સમર્પણ છે. તેને કર્મ અર્પણ કરવું અર્થાત્ તેની પ્રીતિ માટે આચરણ કરવું, પોતાને માટે નહીં. ધનનું સમર્પણ તેના માટે ધનનો વિનિયોગ કરવાથી થાય છે અને પ્રાણનું સમર્પણ એટલે જીવનનું સમર્પણ, અર્થાત્ જીવીએ ત્યાં સુધી તેની સેવા વગેરે કરવાં.

तर्हि किं धनाद्यर्पणेन सम्मानं प्राकृत इव भगवानपेक्षते नेत्याह—**नैवेति**।

नैवात्मनः प्रभुरयं निजलाभपूर्णो
मानं जनादविदुषः करुणो वृणीते।
यद् यज्जनो भगवते विदधीत मानं
तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः॥ ११

अयं प्रभुरीश्वरोऽविदुषोऽल्पकाज्जनान्मानं पूजामात्मनोऽर्थे न वृणीते नेच्छति। यतो निजलाभेनैव पूर्णः।

तर्हि पूजां नेच्छत्येव तत्राह—करुणः कृपालुरतो वृणीते च। तत्र हेतुः—यद्यदिति। यं यं मानम्। यद्वा यद्यस्माद्येन धनादिना भगवते मानं विदधीत तदेवात्मने भवति नान्यत्। यथा मुखे कृतैव तिलकादिश्रीः शोभा प्रतिबिम्बस्य भवति न तु साक्षात्तस्यैव कर्तुं शक्यते तद्वत्॥ ११॥

तस्मादहं विगतविक्लव ईश्वरस्य
सर्वात्मना महि गृणामि यथामनीषम्।
नीचोऽजया गुणविसर्गमनुप्रविष्टः
पूयेत येन हि पुमाननुवर्णितेन॥ १२

તો પછી ધનાદિ અર્પણ કરવાથી થતા સન્માનની ભગવાન શું સામાન્ય મનુષ્યની જેમ અપેક્ષા રાખે છે? તે માટે ઉત્તર આપે છે કે ના— **'न-एव इति।'**

પોતાના (સ્વરૂપાનંદની પ્રાપ્તિના લાભથી) પરિપૂર્ણ અને કૃપાળુ એવા આ ઈશ્વર અલ્પજ્ઞ મનુષ્ય પાસેથી પોતાને માટે માન (પૂજા) નથી ઈચ્છતા. પસંદ કરતા. મનુષ્ય ભગવાનને જે જે માન આપે છે તે પોતાને જ પ્રાપ્ત થાય છે, જેમ મુખ ઉપર કરેલી શોભા પ્રતિબિંબને પ્રાપ્ત થાય છે તેમ!॥ ૧૧॥

આ **'प्रभुः'** ઈશ્વર **'अविदुषः'** અજ્ઞ, અલ્પ મનુષ્ય પાસેથી **'मानम्'** પૂજા પોતાને માટે **'न वृणीते'** નથી ઈચ્છતા કારણ કે (**'निजलाभेन'**) પોતાના આનંદસ્વરૂપના લાભથી ભગવાન પરિપૂર્ણ છે.

તો પછી શું પૂજા જ ઈચ્છતા નથી? તે માટે કહે છે— **'करुणः'** કૃપાળુ છે અને તેથી (તેઓ પૂજા) સ્વીકારે છે. તે માટેનું કારણ— **'यत्-यत् इति।'** **'यत्-यस्मात्।'** કારણ કે **'येन'** જે ધનાદિથી મનુષ્ય ભગવાનને જે જે માન આપે છે તે જ પોતાને પ્રાપ્ત થાય છે, બીજું નહીં. જેમ મુખ ઉપર કરવામાં આવેલી તિલક વગેરે શોભા મુખના પ્રતિબિંબને પ્રાપ્ત થાય છે, પરંતુ સાક્ષાત્ તે (પ્રતિબિંબ)ને જ શોભા કરવી શક્ય નથી, તેવી રીતે॥ ૧૧॥

તેથી નીચ (જાતિમાં જન્મેલો) હું (અધિકાર ન હોવાના) ભયથી રહિત થઈને ઈશ્વરના મહિમાને સર્વ પ્રયત્નો દ્વારા યથામતિ વર્ણવું છું. જે (મહિમાગાનના) અનુવર્ણનથી જ, અવિદ્યાને કારણે સંસારચક્રમાં પડેલો મનુષ્ય પવિત્ર થાય (છે).॥ ૧૨॥

यस्मादेवं भगवान् भक्त्यैव तुष्यति तस्मादहं नीचोऽपि विगतविक्लवो गतशङ्कः सन्नीश्वरस्य महि महिमानं सर्वप्रयत्नेन स्वमनीषानुसारेणानुवर्णयामि।

अजानतोऽपि स्तुतिकरणे हेतुमाह—येनैव महिम्नानुवर्णितेनाविद्यया संसारमनुप्रविष्टः पुमान् पूयेत शुध्येत तन्महि अन्यस्य तथा शोधकत्वाभावादित्यर्थः॥ १२॥

तदेवमात्मनः स्तुतावनधिकारं परिहृत्येदानीं तं स्तुवन्कोपोपसंहारं प्रार्थयते—**सर्वे हीति** द्वाभ्याम्।

सर्वे ह्यमी विधिकरास्तव सत्त्वधाम्नो
ब्रह्मादयो वयमिवेश न चोद्विजन्तः।
क्षेमाय भूतय उतात्मसुखाय चास्य
विक्रीडितं भगवतो रुचिरावतारैः॥ १३

भो ईश, अमी उद्विजन्तो बिभ्यतः सर्वे ब्रह्मादयः सत्त्वमूर्तेस्तव विधिकरास्त्वन्नियोग-कर्तारो भक्ता एव नान्ये। न च वयमसुरा इव वैरभावेनैते भक्ताः किंतु श्रद्धयैव। तव रुचिरैरवतारैर्विविधं क्रीडनमस्य विश्वस्य क्षेमादिप्रयोजनाय न तु भयोत्पादनाय॥ १३॥

તેથી હું નીચ હોવા છતાં પણ '**विगतविक्लवः**' (અધિકાર ન હોવાના) ભયથી રહિત થઈને ઈશ્વરના '**महि**' મહિમાને સર્વ પ્રયત્નોથી પોતાની મનીષા (બુદ્ધિ) અનુસાર વર્ણવું છું.

ન જાણતો હોવા છતાં સ્તુતિ કરવા માટેનું કારણ કહે છે— '**येन**' જે વર્ણવાયેલા મહિમાથી અવિદ્યાને કારણે સંસાર(ચક્ર)માં પડેલો મનુષ્ય '**पूयेत**' પવિત્ર થાય (છે), કારણ કે તે મહિમાના ગાન સિવાય અન્ય (કાંઈ પણ) તેવું શુદ્ધિકારક છે નહીં, એમ અર્થ છે.॥ ૧૨॥

તે અનુસાર પોતાનો સ્તુતિ કરવા માટેનો અધિકાર નથી. તે (વાત) છોડીને હવે તેમની સ્તુતિ કરતા, ક્રોધના શમન માટે પ્રાર્થના બે શ્લોકોથી કરે છે— '**सर्वे हि इति।**'

હે ઈશ, ભય પામતા આ બ્રહ્માદિ સર્વ (દેવો) સત્ત્વમૂર્તિ એવા આપના આજ્ઞાંકિત ભક્તો જ છે, અમારા જેવા નથી. ભગવાનના રુચિર અવતારો દ્વારા થતી લીલા આ વિશ્વનાં નિઃશ્રેયસ, અભ્યુદય અને આત્મસુખ(ની પ્રાપ્તિ) માટે જ છે.॥ ૧૩॥

હે ઈશ, આ '**उद्विजन्तः**' ભય પામતા બ્રહ્માદિ સર્વ દેવો સત્ત્વમૂર્તિ એવા '**विधिकराः**' આપની આજ્ઞા પાળનારા ભક્તો જ છે, બીજા કોઈ નથી અને '**वयम्**' અમ અસુરો જેવા વેરભાવથી (ભજનારા) નથી પરંતુ શ્રદ્ધાથી જ આ ભક્તો (આપને ભજે છે). આપના સુંદર અવતારો દ્વારા થતી વિવિધ લીલા '**अस्य**' આ વિશ્વનાં ક્ષેમાદિ પ્રયોજન માટે છે, નહીં કે ભય ઉત્પન્ન કરવા માટે.॥ ૧૩॥

तद् यच्छ मन्युमसुरश्च हतस्त्वयाद्य
मोदेत साधुरपि वृश्चिकसर्पहत्या।
लोकाश्च निर्वृतिमिताः प्रतियन्ति सर्वे
रूपं नृसिंह विभयाय जनाः स्मरन्ति॥ १४

તેથી આપ ક્રોધને શાંત કરો. આજે જ આપના દ્વારા અસુર હણાયો છે. સજ્જન પણ વીંછી, સાપ (વગેરે હિંસક પ્રાણીઓ)ની હત્યાથી સુખી થાય (છે), (તેવી જ રીતે) સર્વ લોકો શાંતિ પામ્યા છે અને (તેથી ક્રોધ શાંત થાય તેની) પ્રતીક્ષા કરી રહ્યા છે. 'હે નૃસિંહ' (એમ નામ લઈને) ભય દૂર કરવા લોકો (નૃસિંહ)રૂપનું સ્મરણ કરશે.॥ ૧૪॥

तत्तस्मादेषां भयपरिहाराय मन्युं यच्छोपसंहर। यदर्थमयं मन्युः स चासुरः साधूनां संतोषार्थमद्य हतः। अतः परं क्रोधेन कार्याभावात्तं नियच्छ।

'**तत्**' તેથી આ બ્રહ્માદિ દેવોનો ભય દૂર કરવા માટે ક્રોધને '**यच्छ**' સંયમિત કરો. જેને કારણે આ ક્રોધ કર્યો હતો તે અસુર તો સજ્જનોની પ્રસન્નતા માટે આજે હણાઈ ગયો છે. હવે પછી ક્રોધથી કાંઈ કરવા જેવું છે નહીં, તેથી તેને શાંત કરો.

नन्वन्येषां वधेन साधुः किं मोदेत तत्राह—वृश्चिकादेः परोपद्रवकारिणोऽन्यतो जातया हत्या वधेन तस्यैव तद्भद्रं जातमिति साधुरपि मोदेतैव।

શંકા કરવામાં આવી છે કે બીજાના વધથી સજ્જન શું પ્રસન્ન થાય ખરો? તે માટે કહે છે— બીજાને ઉપદ્રવ કરનારા વીંછી વગેરેના અન્ય દ્વારા થયેલા '**हत्या**' વધથી તે પ્રાણીનું જ કલ્યાણ થાય છે અને એટલે જ સજ્જન પણ સુખી થાય છે.

तर्हि बहूनां सुखावहत्वादमुं क्रोधं न त्यजामीति चेत्तत्राह—लोकाश्च निर्वृतिमिताः प्राप्ताः सन्तः प्रतियन्ति क्रोधोपसंहारं प्रतीक्षन्ते।

(જો નૃસિંહ ભગવાન કહે કે) તો પછી અનેક લોકોને સુખ આપનાર હોવાથી આ ક્રોધને હું ત્યાગું નહીં! તો તે માટે કહે છે— લોકો પણ શાંતિને '**इताः**' પ્રાપ્ત થયા હોઈ '**प्रतियन्ति**' ક્રોધ શાંત થાય તેની પ્રતીક્ષા કરે છે.

तर्हि जनानां पुनर्भयाभावाय मन्युं धारयामीति चेत्तत्राह—**रूपमिति**। विभयाय भयनिवृत्त्यै।

(ભગવાન આક્ષેપ કરે કે) તો પછી લોકોને ફરીથી ભય ન થાય તે માટે ક્રોધ ધારણ કરું છું. તો તે માટે કહે છે— '**रूपम् इति।**' '**विभयाय**' ભય દૂર કરવા માટે (લોકો આ રૂપનું સ્મરણ કરશે).

एतद्रूपस्मरणादेव भयनिवृत्तेर्न मन्युधारणेन कृत्यमस्तीत्यर्थः॥ १४॥

આ રૂપના સ્મરણમાત્રથી જ ભય દૂર થતો હોવાથી ક્રોધ ધારણ કરવા યોગ્ય નથી, એમ અર્થ છે.॥ ૧૪॥

त्वं चेद्बिभेषि तर्हि त्यजामीति चेत्तत्राह— **नाहमिति**।

(નૃસિંહ ભગવાન પ્રહ્લાદજીને કહે છે કે બ્રહ્માદિ દેવોની જેમ) જો તને ભય લાગતો હોય તો (આ રૂપનો) હું ત્યાગ કરું છું. તે માટે પ્રહ્લાદજી કહે છે— **'न-अहम् इति।'**

नाहं बिभेम्यजित तेऽतिभयानकास्य-
जिह्वार्कनेत्रभ्रुकुटीरभसोग्रदंष्ट्रात् ।
आन्त्रस्त्रजः क्षतजकेसरशङ्कुकर्णा-
न्निर्ह्रादभीतदिगिभादरिभिन्नखाग्रात् ॥ १५

હે અજિત! અતિ ભયાનક મુખ, જિહ્વા, સૂર્ય જેવાં નેત્રો, ઊંચી ચડાવેલી (વક્ર) ભ્રૂકુટિઓ, ભયંકર દાઢો, આંતરડાની માળા, રક્તરંજિત કેશવાળીઓ અને ઊંચા, અક્કડ શંકુ જેવા કર્ણો દિગ્ગજોને ભયભીત કરનાર સિંહનાદ અને શત્રુઓને ફાડી નાખે તેવા નખોનો અગ્રભાગ છે જેમાં, તે રૂપ ભયંકર હોવા છતાં, તેવા રૂપથી પણ હું ભય પામતો નથી. ॥ ૧૫ ॥

भो अजित, तेऽस्माद्रूपादहं न बिभेमि। कथंभूतात्। आस्यं च जिह्वा चार्कसदृशनेत्राणि च भ्रुकुटीनां रभस आटोपश्च उग्रा दंष्ट्राश्च एतान्यतिभयानकानि यस्मिंस्तस्मात्। अन्त्रमय्यः स्त्रजो यस्मिंस्तदान्त्रस्त्रक् तस्मात्। क्षतजाक्ताः केसरा यस्मिन्, शङ्कुवदुन्नतौ स्तब्धौ कर्णौ यस्मिन्, तच्च तच्च तस्मात्। निर्ह्रादेन भीता दिगिभा यस्मात्। अरीन् भिन्दन्तीत्यरिभिन्दितानि नखाग्राणि यस्मिन्। एवंभूतादपि ते रूपादहं न बिभेमि ॥ १५ ॥

હે અજિત! આપના આ રૂપથી હું ભય પામતો નથી. કેવા રૂપથી? (ભયાનક) મુખ, જિહ્વા, સૂર્ય જેવાં નેત્રો, ભ્રૂકુટિઓના **'रभसः'** ઊર્ધ્વ ચલન, વિકરાળ દાઢો– અતિ ભયંકર એવાં આ સર્વ જેમાં છે તેવા રૂપથી– આંતરડાંની માળા છે જેમાં તે **'आन्त्रस्त्रक्'** તેનાથી તથા રક્તરંજિત કેશવાળીઓ છે જેમાં તેવા અને શંકુ જેવા ઊંચા, અક્કડ બે કર્ણો છે જેમાં તેવા રૂપથી– સિંહનાદથી ભયભીત થયેલા દિગ્ગજો છે જેમાં, શત્રુઓને ફાડી નાખે તેવા નખોના અગ્રભાગો છે જેમાં– આવા રૂપથી પણ હું ભય પામતો નથી. ॥ ૧૫ ॥

वंशीधरी—यश्च केनापि न जीयते तस्मात्सर्वे बिभ्यतीति प्रसिद्धिर्यद्यप्यस्ति तथापि मे त्वत्कृपयैव न भयमिति भावः।

જે પુરુષ કોઈનાથી પણ જીતી ન શકાય તેવો હોવાથી તેનાથી સર્વે ભય પામે છે, એવી પ્રસિદ્ધિ હોવા છતાં પણ કેવળ આપની કૃપાથી જ મને ભય લાગતો નથી, એવો ભાવ છે.

महद्भयं त्वन्यदस्तीत्याह—**त्रस्तोऽस्मीति**।

(પ્રહ્લાદજી) કહે છે કે મોટો ભય તો બીજો છે— **'त्रस्तः अस्मि इति।'**

त्रस्तोऽस्म्यहं कृपणवत्सल दुःसहोग्र-
संसारचक्रकदनाद् ग्रसतां प्रणीतः।
बद्धः स्वकर्मभिरुशत्तम तेऽङ्घ्रिमूलं
प्रीतोऽपवर्गशरणं ह्वयसे कदा नु॥ १६

હે દીનવત્સલ, દુઃસહ અને ઉગ્ર એવા સંસારચક્ર(માં પિસાવા)ના દુઃખથી હું ત્રસ્ત છું. પોતાનાં કર્મોથી બંધાયેલો હું હિંસક અસુરોની વચ્ચે ફેંકાઈ ગયો છું. હે કમનીયતમ, (જીવોના એકમાત્ર) મોક્ષરૂપ શરણ એવા આપનાં ચરણ-કમળમાં (મારે માટે અતિશય) પ્રીતિવાળા આપ મને ક્યારે બોલાવશો?॥ ૧૬॥

दुःसहं यदुग्रं संसारचक्रे कदनं दुःखं तस्मादहं त्रस्तोऽस्मि। तत्र च ग्रसतां हिंस्राणां मध्ये स्वकर्मभिर्बद्धः सन्प्रणीतो निक्षिप्तोऽस्मि।

हे कृपणवत्सल, हे उशत्तम, कदा नु त्वं प्रीतः सन्नपवर्गभूतं शरणं तवाङ्घ्रिकमलं प्रति ह्वयसे मामाह्वयसि॥ १६॥

સંસારચક્રમાં દુઃસહ અને જે ઉગ્ર છે તેવું **'कदनम्'** દુઃખ, તેનાથી હું ત્રાસેલો છું. વળી, તેમાં **'ग्रसताम्'** હિંસક અસુરોની વચ્ચે પોતાનાં કર્મો વડે બંધાયેલો હોઈ હું **'प्रणीतः'** ફેંકાયો છું.

હે દીનવત્સલ, હે કમનીયતમ, (મારે માટે અતિશય) પ્રીતિવાળા આપ મને ક્યારે (જીવોના એકમાત્ર) શરણ અને મોક્ષસ્વરૂપ એવા આપના ચરણકમળમાં બોલાવશો?॥ ૧૬॥

वंशीधरी—अङ्घ्रिमूलमङ्घ्रिकमलं कमलस्यैव हरिनाभ्युद्भूतस्य सर्वमूलत्वान्मूलपदेन कमल-पदावबोधो न विरुद्धः।

ચરણમૂળ અર્થાત્ ચરણકમળ. શ્રીહરિની નાભિમાંથી ઉત્પન્ન થયેલું કમળ જ સર્વનું મૂળ હોવાથી 'મૂળ' પદથી 'કમળ' પદનું જ્ઞાન થાય તેમાં વિરોધ નથી.

बा.प्र.—तव प्राप्तिरेव परमानन्दजनिका सकलदुःखनिवर्तिका नान्यदित्याशयेन सम्बोधयति—हे उशत्तम अतिकमनीयेति।

આપની પ્રાપ્તિ જ પરમાનંદ ઉત્પન્ન કરનારી છે, સકળ દુઃખોને દૂર કરનારી છે, અન્ય કંઈ જ નહીં, એ આશયથી **'हे उशत्तम'**, એમ સંબોધન કરે છે.

भ.मनो.—यावत्त्वदङ्घ्रिमूलं मां न प्रापयिष्यसि तावत्। मां भयं सर्वथानुवर्त्तते इति भावः।

જ્યાં સુધી આપનું ચરણકમળ આપ મને પ્રાપ્ત નહીં કરાવો ત્યાં સુધી ભય સદાય મારી પાછળ જ પડેલો છે, એવો ભાવ છે.

यस्मात् प्रियाप्रियवियोगसयोगजन्म-
शोकाग्निना सकलयोनिषु दह्यमानः।
दुःखौषधं तदपि दुःखमतद्धियाहं
भूमन्भ्रमामि वद मे तव दास्ययोगम्॥ १७

જે કારણે પ્રિય પદાર્થોના વિયોગ અને અપ્રિય પદાર્થોના સંયોગથી જન્મતા શોકાગ્નિથી સર્વ યોનિઓમાં તપાવવામાં આવતો હું, તે દુઃખનો પ્રતિકાર પણ દુઃખરૂપ જ હોવા છતાં પણ 'તે દુઃખરૂપ નથી' એવી (દેહાભિમાનવાળી) બુદ્ધિથી ભટકું છું, આથી હે વિભુ, મને આપનો દાસ્ય(ભક્તિ)રૂપ ઉપદેશ આપો.॥ ૧૭॥

दास्ये सति मत्प्रीतिरिति चेत्तर्हि नानायोनिषु क्लिश्यमानस्य मम दास्यज्ञानाभावात्त्वमेव तदुपदिशेति प्रार्थयते।

જો ભગવાન કહે કે જ્યારે દાસ્યભાવ હોય ત્યારે મારી પ્રીતિ થાય છે, તો તે માટે પ્રહ્‌લાદજી પ્રાર્થના કરે છે. જુદી જુદી યોનિઓમાં ક્લેશ પામતા મને દાસ્ય (ભક્તિ)ના જ્ઞાનનો જ અભાવ હોવાથી આપ મને તેનો ઉપદેશ આપો.

यस्मात्प्रियैरप्रियैश्च यथासंख्यं वियोगसंयोगाभ्यां जन्म यस्य तेन शोकाग्निना सकलयोनिषु दह्यमानोऽस्मि।

જે (કર્મથી હું બદ્ધ છું તે કર્મને) કારણે અનુક્રમે પ્રિય પદાર્થોના વિયોગ અને અપ્રિય પદાર્થોના સંયોગથી જેની ઉત્પત્તિ થાય છે, તે શોકાગ્નિથી સર્વ યોનિઓમાં તપાવવામાં આવ્યો છું.

दुःखस्य प्रतीकारः कार्य इति चेत्तत्राह— दुःखस्यौषधं प्रतीकारस्तदपि दुःखमेव। एवमप्यतद्धिया देहाद्यभिमानेन मुह्यामि। अतो हे भूमन्विभो, मे तव दास्यरूपं योगं निस्तारोपायं वद॥ १७॥

દુઃખનો પ્રતિકાર કરવો જોઈએ, એમ જો કોઈ કહે તો તે માટે ઉત્તર આપે છે— દુઃખનો '**औषधम्**' પ્રતિકાર, તે પણ દુઃખરૂપ જ છે. આમ તે દુઃખરૂપ હોવા છતાં પણ 'તે દુઃખરૂપ નથી' એવા દેહાદિના અભિમાનથી હું મોહ પામું છું. આથી '**हे भूमन्**' હે વિભુ, મને આપનો દાસ્ય(ભક્તિ)રૂપ '**योगम्**' ઉપાય (તરવાનો ઉપદેશ) જણાવો.॥ ૧૭॥

वंशीधरी—हे भूमन्निति। भूम्नो दास्यं को न वाञ्छतीति भावः। दासस्यैव परमपुरुषार्थत्वात्तदुक्तं ब्रह्मवैवर्ते।

'कृष्णे भक्तिः कृष्णदास्यं वरेषु परमं वरम्।
श्रेष्ठा पञ्चविधा मुक्तेर्हरिभक्तिर्गरीयसी॥
ब्रह्मत्वादपि देवत्वादिन्द्रत्वादमरादपि।
अमृतात्सिद्धिलाभाच्च हरिदास्यं सुदुर्लभम्॥'

इति।

ભૂમા (અત્યંત મહાન)નું દાસ્ય કોણ ન ઈચ્છે? એવો ભાવ છે. શ્રીહરિના દાસ હોવું તે જ પરમ પુરુષાર્થરૂપ હોવાથી બ્રહ્મવૈવર્તપુરાણમાં તે કહેવાયું છેઃ 'શ્રીકૃષ્ણમાં ભક્તિ હોવી અને શ્રીકૃષ્ણના દાસ હોવું તે સર્વ વરદાનોમાં શ્રેષ્ઠ વરદાન છે. શ્રેષ્ઠ એવી શ્રીહરિની ભક્તિ પાંચેય પ્રકારની સાયુજ્ય, સારૂપ્ય, સાલોક્ય, સામીપ્ય, સાર્ષ્ટિ મુક્તિઓ કરતાં શ્રેષ્ઠ છે. બ્રહ્મત્વ, દેવત્વ, ઈન્દ્રત્વ, અમરત્વ, અમૃતત્વ અને સિદ્ધિલાભ કરતાં પણ શ્રીહરિનું દાસ્ય અત્યંત દુર્લભ છે.'

बा.प्र.—दास्ययोगम्—सर्वदुःखकारणसंसार-निवर्तकं तव दास्यरूपं योगमुपायं वद। ननु त्वमेतज्जानास्येवेति तदनुष्ठानं कुरु किमेवं प्रार्थनेनेत्याशङ्क्य त्वत्कृपां विना न हि कोऽपि दास्ये समर्थो भवति मायानिवृत्त्यभावादित्या-शयेनाह—त्वमेव जीवानां बन्धने मोचने च समर्थोऽसीति।

भ.मनो.—नित्यप्रबुद्धत्वद्दास्यसम्बन्धवान् यथा भवेयं तथा मामनुगृहाणेत्यर्थः।

ननु दास्ययोगेन प्रवृत्तस्यापि तदन्तराय-भूतानां पूर्वोक्तनानादुःखानां कुतः परिहारस्त-त्राह—

सोऽहं प्रियस्य सुहृदः परदेवताया
लीलाकथास्तव नृसिंह विरिञ्चगीताः।
अञ्जस्तितर्म्यनुगृणन्गुणविप्रमुक्तो
दुर्गाणि ते पदयुगालयहंससङ्गः॥ १८

सोऽहं त्वद्दासः सन् भो नृसिंह, तव लीलाकथा अनुगृणन्दुर्गाणि महादुःखान्यञ्जसा तितर्मि तरामि। न गणयिष्यामीत्यर्थः।

तत्र हेतुः—गुणै रागादिभिर्विशेषेण प्रमुक्तः सन्। तत्कुतः। ते पदयुगमेवालयो येषां भक्तानां त एव हंसा ज्ञानिनस्तैः सङ्गो यस्य मम सोऽहम्।

સર્વ દુઃખોના કારણરૂપ સંસારને દૂર કરનારો એવો આપનો દાસ્યરૂપ ઉપાય કહો. હવે જો કહેવામાં આવે કે એ દાસ્યરૂપ યોગ તો તું જાણે જ છે, તેનું અનુષ્ઠાન કર. આમ, પ્રાર્થના કરવાથી શું વળે? તેવી આશંકા કરીને કહે છે કે આપની કૃપા વિના કોઈ પણ દાસ્યભક્તિ કરવાને સમર્થ થતું નથી, કારણ કે માયા દૂર થતી નથી એવા આશયથી કહે છે— જીવોનાં બંધન અને મોક્ષ માટે આપ જ સમર્થ છો.

આપના, સદાય સાવધાન એવા દાસ્યના સંબંધવાળો હું જે રીતે બનું તે રીતે મને અનુગૃહીત કરો, એમ અર્થ છે.

(ભગવાન) પ્રશ્ન કરે છે કે મારા દાસપણાનો ઉપાય કરવા માટે તૈયાર થાય, તો પણ તેને વિઘ્નરૂપ થતાં પૂર્વોક્ત અનેક પ્રકારનાં (સાંસારિક) દુઃખો કેવી રીતે દૂર થાય? તે માટે પ્રહ્‌લાદજી ઉત્તર આપે છે—

હે નૃસિંહ, (રાગાદિ) ગુણોથી વિશેષરૂપે વિમુક્ત થઈને આપના ચરણયુગલનો આશ્રય કરનારા જ્ઞાનીઓના સંગવાળો તે હું પ્રહ્‌લાદ, પ્રિય સુહૃદ પરમેશ્વર એવા આપની, બ્રહ્માજી દ્વારા ગવાયેલી લીલાકથાઓનું ગાન કરતો, અનાયાસે મહાદુઃખો તરી જઈશ.॥ १८॥

તે હું પ્રહ્‌લાદ, આપનો દાસ હોઈ, હે નૃસિંહ, આપની લીલાકથાઓનું ગાન કરતો '**दुर्गाणि**' મહાદુઃખો અનાયાસે જ '**तितर्मि**' તરી જાઉં છું, દુઃખને ગણકારીશ જ નહીં, એમ અર્થ છે.

તે માટેનું કારણ— '**गुणैः**' રાગાદિ (પ્રાકૃત) ગુણોથી વિશેષરૂપે વિમુક્ત થઈને, તે કેવી રીતે? આપનું ચરણયુગલ જ આશ્રય છે જે ભક્તોનો તેઓ જ '**हंसाः**' જ્ઞાનીઓ છે. તેમની સાથે સંગ છે જેનો–મારો–તે હું

कथंभूतस्य कथास्तत्राह—प्रियस्येत्यादि। कुतो ज्ञाताः। विरिञ्चेन गीतास्तत् संप्रदाय-प्रवृत्ताः।

તથા चाथर्वणी श्रुतिः—'देवा ह वै प्रजापतिमब्रुवन्' इत्यादि।

दास्ये प्रवृत्तस्य भवदनुग्रहेण सत्सङ्ग-स्ततो वीतरागतया भगवद्गुणानुवर्णनं ततश्च न दुःखाभिभवः स्यादिति वाक्यार्थः॥ १८॥

ननु दुःखैस्तप्तस्य तत्प्रतीकारो लोके प्रसिद्ध एव किं मद्दास्यादिना तत्राह—**बालस्येति**।

बालस्य नेह शरणं पितरौ नृसिंह
नार्तस्य चागदमुदन्वति मज्जतो नौः।
तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्य इहाञ्जसेष्ट-
स्तावद् विभो तनुभृतां त्वदुपेक्षितानाम्॥ १९

भो नृसिंह, तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्दुःख-प्रतीकार इह लोके योऽञ्जसेष्टः स त्वयोपेक्षितानां तावदेव क्षणमात्रमेव न त्वात्यन्तिकः।

કેવા ભગવાનની લીલાકથાઓ? તે માટે કહે છે— '**प्रियस्य इति**।' વગેરે. પ્રિય સુહૃદ પરમેશ્વરની કથાઓ કોની પાસેથી જાણવામાં આવી? બ્રહ્માજી દ્વારા ગવાયેલી તેમના સંપ્રદાય દ્વારા પ્રવૃત્ત થયેલી કથાઓ

તે અનુસાર અથર્વવેદની શ્રુતિ છે— 'ઈન્દ્રાદિ દેવોએ પ્રજાપતિ બ્રહ્માજીને આ પ્રમાણે જ કહ્યું.' ઈત્યાદિ.

દાસ્યમાં પ્રવૃત્ત થયેલા મને આપના અનુગ્રહથી સત્સંગ થશે, તેને કારણે વીતરાગ (રાગદ્વેષરહિત) થવાથી ભગવાનના ગુણોનું વર્ણન થશે અને તેના દ્વારા દુઃખથી પરાભવ થશે નહીં, એમ વાક્યાર્થ છે.॥ ૧૮॥

શંકા કરવામાં આવી છે કે દુઃખોથી દુઃખી થયેલા મનુષ્યે દુઃખ દૂર કરવાનો પ્રયત્ન કરવો જોઈએ, એ તો સંસારમાં સૌ જાણે જ છે, (તો તેને માટે) મારું દાસત્વ વગેરે કરવાથી શું વળવાનું છે? તે માટે (આ શ્લોકથી) ઉત્તર આપે છે— '**बालस्य इति**।'

હે નૃસિંહ, આ સંસારમાં માતા-પિતા બાળકના રક્ષકો નથી, ઔષધ રોગીની રક્ષા કરતું નથી અને સમુદ્રમાં ડૂબતાને નાવડી બચાવી શકતી નથી. આ સંસારમાં હે વિભુ, દુઃખનો જે ઉપાય મનાય છે, તે આપના દ્વારા ઉપેક્ષા પામેલા શરીરધારીઓનું દુઃખ સાક્ષાત્ દૂર કરી શકે છે ખરો?॥ ૧૯॥ (નથી જ કરી શકતો.)

હે નૃસિંહ, '**इह**' આ સંસારમાં દુઃખી થયેલા મનુષ્યને '**तत्-प्रतिविधिः**' તે દુઃખનો ઉપાય જે દૂર કરવા માટે સાક્ષાત્ ઈષ્ટ હોય, તે આપના દ્વારા ઉપેક્ષિત થયેલાઓને માટે '**तावत्**' ક્ષણ જેટલો જ હોય છે, નિત્ય સ્થાયી નથી હોતો.

तदेवाह—बालस्य पितरौ शरणं रक्षकाविह न भवतः, ताभ्यां पाल्यमानस्यापि तस्य दुःखदर्शनात्, क्वचिदजीगर्तादिषु ताभ्यामेव तद्वधदर्शनाच्च।

તે જ કહે છે— આ સંસારમાં માતા-પિતા બાળકના **'शरणम्'** રક્ષકો નથી હોતાં, કારણ કે તેમના દ્વારા પાલન થતું હોવા છતાં પણ બાળકને દુઃખ થાય છે. કારણ કે ક્યારેક અજીગર્ત વગેરેના કિસ્સામાં તે માતા-પિતા દ્વારા જ બાળકનો વધ થતો પણ જણાય છે.

न चार्तस्य रोगिणोऽगदमौषधं शरणम्, कृतेऽप्यौषधे मृत्युदर्शनात्। न चोदन्वति समुद्रे मज्जतः पुंसो नौः शरणम्, तया सह मज्जन-दर्शनात्। अतस्त्वमेव शरणमित्यर्थः।

વળી, **'आर्तस्य'** રોગીને **'अगदम्'** દવા સહાય કરતી નથી, કારણ કે દવા કરવા છતાં રોગીનું મૃત્યુ થતું દેખાય છે. વળી, **'उदन्वति'** સમુદ્રમાં ડૂબતા મનુષ્યને નાવડી બચાવી શકતી નથી, કારણ કે તે નાવડી સાથે મનુષ્ય ડૂબેલો જણાય છે. આથી આપ જ શરણ છો, (આપની કૃપા જ સાક્ષાત્ કારણ છે.) એમ અર્થ છે.

अथवैवं काक्वा व्याख्येयम्।

અથવા વક્રોક્તિથી આ રીતે વ્યાખ્યા કરવા યોગ્ય છે—

तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्य इह तावत्प्रसिद्धः स त्वदुपेक्षितानां किमञ्जसेष्टोऽपितु नेष्ट एव।

આ સંસારમાં દુઃખી મનુષ્યને તેના દુઃખનો જે ઉપાય છે તે ક્ષણ માટે જ સફળ છે. તે ઉપાય આપની ઉપેક્ષા પામેલા મનુષ્યોને સાક્ષાત્ દુઃખ દૂર કરવા માટે શું ઈચ્છવા યોગ્ય છે? નથી જ.

यद्वा यस्तावदिह प्रतिविधिरिष्टः स किमञ्जसा नैवाञ्जसेत्यादि योज्यम्। बालस्ये-त्यादि पूर्ववदेव॥ १९॥

અથવા આ સંસારમાં જે ઉપાય છે તે શું દુઃખ દૂર કરવા માટે ઈષ્ટ છે? તે શું સરળતાથી દુઃખ દૂર કરી શકે છે? નથી જ કરી શકતો, એમ યોજવું. બાળકના (રક્ષકો) માતા-પિતા નહીં પણ આપની કૃપા જ છે, વગેરે પૂર્વની જેમ જ સમજવું.॥ ૧૯॥

ननु क्वचित्कुतश्चित्केनचित्कदाचित्क-श्चिद्रक्षकोऽपि दृश्यत एवेत्याशङ्क्य तत्रापि तत्तद्रूपेण त्वमेव रक्षक इत्युरीकृत्य तस्यैव सर्वात्मतामाह—**यस्मिन्निति**।

કોઈક સ્થળે, ક્યાંકથી, કોઈના દ્વારા, ક્યારેક કોઈક રક્ષક પણ દેખાય જ છે, એવી શંકા કરવામાં આવી છે. તેના ઉત્તરરૂપે, ત્યાં પણ તે તે રૂપે આપ જ રક્ષક છો, એમ સ્વીકારીને તે ભગવાનની જ સર્વરૂપતા વર્ણવે છે— **'यस्मिन् इति।'**

यस्मिन्यतो यर्हि येन च यस्य यस्माद्
यस्मै यथा यदुत यस्त्वपरः परो वा।
भावः करोति विकरोति पृथक्स्वभावः
सञ्चोदितस्तदखिलं भवतः स्वरूपम्॥ २०

(સત્ત્વાદિ) જુદી જુદી પ્રકૃતિવાળા જે કનિષ્ઠ કે શ્રેષ્ઠ (બ્રહ્માદિ) કર્તારૂપે જેમના દ્વારા પ્રેરાઈને, જે આધારમાં રહીને, જે નિમિત્તથી, જે સમયે, જે સાધનથી, જેના સંબંધથી, જે ઉપાદાનમાંથી, જેના માટે, જે કંઈ, જે પ્રકારે ઉત્પન્ન કરે છે અને રૂપાંતરને પ્રાપ્ત કરાવે છે, તે સર્વ આપનું જ સ્વરૂપ છે.॥૨૦॥

अपरोऽर्वाचीनः पित्रादिः परो ब्रह्मादिर्वा भावः कर्ता तत्तत्कारकैर्यद्यत्करोति तत्सर्वं भवत एव स्वरूपं न तु पृथक्।

'**अपरः**' અત્યારે છે તે માતા-પિતા વગેરે (કનિષ્ઠ) અથવા '**परः**' શ્રેષ્ઠ, પૂર્વના બ્રહ્માજી વગેરે '**भावः**' કર્તા તે તે કારકો દ્વારા જે જે કરે છે, તે સર્વ આપનું જ સ્વરૂપ છે પણ આપનાથી પૃથક્ નથી.

यस्मिन्नधिकरणे, यतो निमित्तात्, यर्हि यस्मिन्काले, येन करणेन, येन हेतुकर्त्रा संचोदितश्च, यस्य संबन्धि यस्मादपादानात्, यस्मै संप्रदानाय, यदीप्सिततमं, यः कर्ता, इत्येवं सप्त विभक्त्यर्थाः।

'**यस्मिन्**' જે આધારમાં રહીને, '**यतः**' જે નિમિત્તથી, '**यर्हि**' જે સમયે, '**येन**' જે સાધનથી, જે કોઈ કરાવનાર દ્વારા પ્રેરિત થઈ, '**यस्य**' જેના સંબંધથી, '**यस्मात्**' જે અપાદાનમાંથી, '**यस्मै**' જેને માટે, '**यत्**' જે અત્યંત પ્રાપ્ત કરવા ઈષ્ટ છે. (કર્મ), '**यः**' જે કર્તા છે— આ પ્રમાણે સાત વિભક્તિઓના અર્થ છે.

यथा येन प्रकारेणेति क्रियाविशेषण-भूतानामव्ययानामर्थः। पृथक्स्वभावः सत्त्वादि-प्रकृतिः। करोत्युत्पादयति विकरोति रूपान्तरं नयतीति ॥ २० ॥

'**यथा**' જે પ્રકારે— એમ ક્રિયાવિશેષણરૂપ અવ્યયોનો અર્થ છે. '**पृथक् स्वभावः**' સત્ત્વાદિ જુદી જુદી પ્રકૃતિવાળો (કર્તા) '**करोति**' ઉત્પન્ન કરે છે, રૂપાન્તરને પ્રાપ્ત કરાવે છે.॥૨૦॥

सि.प्र.—'ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्' इति श्रुतेः (छांदोग्य. ६।८।७)

'આ બધું આ બ્રહ્મના સ્વરૂપવાળું છે.' એમ શ્રુતિ છે. (છાં.ઉપ.૬/૮/૭)

अतोऽन्यस्य रक्षकस्याभावादसंसारि-त्वाच्च नित्यमुक्तस्त्वमेव मां शरणागतं रक्षेति प्रार्थयते—**मायेति** द्वाभ्याम्।

(આપ જ સર્વસ્વરૂપ છો.) આથી બીજો રક્ષક છે જ નહીં તથા અસંસારી હોવાથી નિત્યમુક્ત એવા આપ જ શરણાગત એવા મારું રક્ષણ કરો, એમ બે શ્લોકોથી પ્રાર્થના કરે છે— '**माया इति**।'

माया मनः सृजति कर्ममयं बलीयः
कालेन चोदितगुणानुमतेन पुंसः।
छन्दोमयं यदजयाऽर्पितषोडशारं
संसारचक्रमज कोऽतितरेत् त्वदन्यः॥ २१

(સાંખ્યદર્શનમાં મનાતા) (આપના અંશરૂપ) પુરુષના ઈક્ષણરૂપ અનુગ્રહથી કાળ દ્વારા જેના ગુણોમાં ક્ષોભ થયો છે તેવી માયા કર્મમય (કારણરૂપ) છંદોમય અને અવિદ્યા વડે કલ્પિત સોળ (વિકારોરૂપ) આરાઓવાળા સંસારચક્રરૂપ જે મનઃપ્રધાન લિંગશરીરનું સર્જન કરે છે તેને, હે અજન્મા ભગવાન, આપનાથી પૃથક્ રહેતો કયો મનુષ્ય પાર કરી શકે?॥ ૨૧॥

त्वदंशस्य पुंसोऽनुमतेनेक्षणरूपेणानुग्रहेण मनो मन:प्रधानं लिङ्गं माया सृजति।

આપના અંશરૂપ પુરુષના '**अनुमतेन**' ઈક્ષણરૂપ અનુગ્રહથી માયા '**मनः**' મનઃપ્રધાન લિંગશરીરનું સર્જન કરે છે.

कथंभूता। कालेन चोदिताः क्षोभिता गुणा यस्याः। कथंभूतं मनः।

કેવી માયા? કાળ દ્વારા '**चोदिताः**' ક્ષોભ પામ્યા છે ગુણો જે માયાના તેવી માયા. કેવા મનનું સર્જન કરે છે?

कर्ममयं कुर्वद्रूपम्।

'**कर्ममयम्**' કારણરૂપ

बलीयो दुर्जयम्। छन्दोमयं वेदोक्त-कर्मप्रधानं च। अजया जीवस्याविद्यया तद्भोगार्थमर्पिताः षोडश अरा विकारा यस्मिन्। यदेवंभूतं संसारचक्रात्मकं मनस्तत्कोऽतितरेत्। भो अज, त्वदन्यस्त्वत्तः पृथक् स्थितः त्वामभजन्नित्यर्थः॥ २१॥

'**बलीयः**' વધારે બળવાન, દુર્જય (નિગ્રહ કરવા માટે દુષ્કર), '**छन्दोमयम्**' વેદોક્ત કર્મપ્રધાન, '**अजया**' જીવની અવિદ્યાથી તેના ભોગ માટે અર્પિત થયા છે સોળ '**अराः**' વિકારો જેમાં (પાંચ કર્મેન્દ્રિયો, પાંચ જ્ઞાનેન્દ્રિયો, પાંચ મહાભૂતો અને મન). આવા પ્રકારનું સંસારચક્રરૂપ જે મન છે તેને કોણ પાર કરે? હે અજ, '**त्वत्-अन्यः**' આપનાથી પૃથક્ રહેનાર, આપનું ભજન ન કરતો મનુષ્ય, એમ અર્થ છે.॥ ૨૧॥

वंशीधरी—'त्वद्भक्तस्तु 'मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥' इति त्वदुक्तेरेव तां तरत्येवेति भावः।'

'મને જ જેઓ (નિરંતર) ભજે છે તેઓ આ માયાને તરી જાય છે.' (ગીતા. ૭/૧૪) એમ આપે કહ્યું છે. તેથી જ આપનો ભક્ત તો તે માયાને તરી જ જાય છે, એવો ભાવ છે.

ननु ममापि मायासंबन्धात्कर्तृत्वाद्य-विशेषाच्च त्वत्तः को विशेष इत्याह—**स इति**।

જો ભગવાન કહે કે માયાના સંબંધને કારણે મારામાં પણ કર્તાપણું વગેરે સામાન્ય રીતે છે જ, તેથી તારાથી મારામાં શું વિશેષ છે? તો તેવી શંકા માટે કહે છે— '**सः इति**।'

स त्वं हि नित्यविजितात्मगुणः स्वधाम्ना
कालो वशीकृतविसृज्यविसर्गशक्तिः।
चक्रे विसृष्टमजयेश्वर षोडशारे
निष्पीड्यमानमुपकर्ष विभो प्रपन्नम्॥ २२

स्वधाम्ना चिच्छक्त्या नित्यं विजिता आत्मनो बुद्धेर्गुणा येन स हि त्वम्। यतः कालो मायाप्रेरकः। अत एव वशीकृता विसृज्यानां कार्याणां विसर्गाणां साधनानां च शक्तयो येन।

अत इक्षुदण्डवन्निष्पीड्यमानं मामुपकर्ष स्वसमीपं नय॥ २२॥

कविः कालिदासः—ममापि च क्षपयतु नीललोहितः पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः। (अभि.शा. ७।३५)

ननु लोकपालानां भोगान्भुङ्क्ष्व पित्र्यं वा राज्यमिदं दास्यामि किमिति संसारादुद्विजसे तत्राह—**दृष्टा इति** त्रिभिः।

दृष्टा मया दिवि विभोऽखिलधिष्ण्यपाना-
मायुः श्रियो विभव इच्छति याञ्जनोऽयम्।
येऽस्मत्पितुः कुपितहासविजृम्भितभ्रू-
विस्फूर्जितेन लुलिताः स तु ते निरस्तः॥ २३

પોતાની ચૈતન્યશક્તિથી બુદ્ધિના ગુણોને જેમણે સર્વદા પરાસ્ત કર્યા છે તેવા કાળરૂપ આપે (માયાનાં) કાર્યો અને કારણોની શક્તિઓને વશ કરી છે, તેવા હે સર્વના શાસક વિભુ, અજા (માયા) વડે સોળ વિકારવાળા સંસારચક્રમાં નાખવામાં આવેલા અને (શેરડીના સાંઠાની જેમ) પિલાતા, શરણે આવેલા મને પોતાની સમીપમાં લઈ લો!॥ ૨૨॥

‘**स्वधाम्ना**’ પોતાની ચૈતન્યશક્તિથી સર્વદા જીતી લીધા છે ‘**आत्मनः**’ બુદ્ધિના ગુણો જેમણે તે જ આપ છો, કારણ કે ‘**कालः**’ માયાના પ્રેરક (નિયંતા) છો, કાળરૂપ છો. આથી જ વશ કરી છે ‘**विसृज्यानाम्**’ (માયાનાં) કાર્યોની અને ‘**विसर्गाणाम्**’ (અવિદ્યારૂપ) કારણોની શક્તિઓ જેમણે.

આથી શેરડીના સાંઠાની જેમ પિલાતા મને ‘**उपकर्ष**’ પોતાની સમીપમાં લઈ લો.॥ ૨૨॥

પોતાની મેળે પ્રકટ થનારા અને ચારે તરફ પોતાની શક્તિ ફેલાવનારા ભગવાન નીલલોહિત (મહાદેવજી) મારો પણ પુનર્જન્મ ટાળે.

(ભગવાન જો પ્રહ્‌લાદજીને કહે કે) તું લોકપાલોના ભોગો ભોગવ અથવા (તારા) પિતાનું આ રાજ્ય તને હું આપીશ. સંસારથી ભય શા માટે પામે છે? તે માટે પ્રહ્‌લાદજી ત્રણ શ્લોકોથી કહે છે— ‘**दृष्टाः इति।**’

હે વિભુ, આ (સંસારી) મનુષ્ય જેમની કામના કરે છે તેવાં સ્વર્ગમાં (પ્રાપ્ત થનારાં) સમસ્ત લોકપાલોનાં આયુષ્ય, સમૃદ્ધિઓ તથા વૈભવ મેં જોઈ લીધાં છે કે જે સર્વ અમારા પિતાના કોપયુક્ત હાસ્યથી વિકૃત થયેલી ભ્રૂકુટિના સંકોચમાત્રથી ધ્વસ્ત થયાં હતાં. તેવા (સમર્થ) મારા પિતા પણ આપના દ્વારા હણાયા છે.॥ ૨૩॥

श्रियः संपदः। विभव उद्भवः। आयुरादयो दृष्टा इति काक्वा तुच्छत्वमुक्तम्।

'श्रियः' સમૃદ્ધિઓ, **'विभवः'** ઉત્પત્તિ–ત્રિલોકનું આધિપત્ય, આયુષ્ય વગેરે મેં જોઈ લીધાં છે, એમ વક્રોક્તિથી તુચ્છતાનો નિર્દેશ કરે છે (કે આ સર્વ તો તુચ્છ છે).

तदेवाह—येऽस्मत्पितुः कोपहासविकृत-भ्रूभङ्गमात्रेण विध्वस्ताः। स च त्वया निरस्तः ॥ २३ ॥

તે જ કહે છે— સ્વર્ગના જે સર્વ પદાર્થો અમારા પિતાના કોપયુક્ત હાસ્યથી વિકૃત થયેલી ભ્રૂકુટિના સંકોચમાત્રથી ધ્વસ્ત થયા હતા, (તેવા સમર્થ અમારા પિતા) તે પણ આપના દ્વારા નાશ પામ્યા છે. ॥ ૨૩ ॥

तस्मादमूस्तनुभृतामहमाशिषो ज्ञ
आयुः श्रियं विभवमैन्द्रियमा विरिञ्चात्।
नेच्छामि ते विलुलितानुरुविक्रमेण
कालात्मनोपनय मां निजभृत्यपार्श्वम्॥ २४

તેથી દેહધારીઓના આ ભોગો(ના પરિણામ)ને જાણતો હું, (દીર્ઘ) આયુષ્ય, સંપત્તિ તથા બ્રહ્માજીના વૈભવથી માંડીને ઇન્દ્રિયભોગ્ય કોઈ પણ વૈભવ કે કાળસ્વરૂપ આપના વિપુલ પરાક્રમથી વિધ્વંસ પામનારી (અણિમાદિ સિદ્ધિઓને) પણ ઇચ્છતો નથી. મને તો આપના દાસજનોની સન્નિધિમાં આપ લઈ જાઓ. ॥ ૨૪ ॥

यस्मादेवं तस्मादाशिषो भोगान् ज्ञस्तत्परिपाकं विद्वानहमैन्द्रियमिन्द्रियैर्भोग्यं ब्रह्मणो भोगमभिव्याप्य किमपि नेच्छामि। ते कालात्मनो विक्रमेण विलुलितान्विध्वस्ता-नणिमादीनपि ॥ २४ ॥

જે કારણે આમ છે (સર્વ ઐશ્વર્યો નશ્વર છે, એવો નિશ્ચય થવાથી તે સર્વ હોવા છતાં મારા પિતા નાશ પામ્યા), તેથી **'आशिषः'** ભોગોને, તે ભોગોના પરિણામને **'ज्ञः'** જાણતો હું બ્રહ્માજીના વૈભવથી માંડીને **'ऐन्द्रियम्'** ઇન્દ્રિયો દ્વારા ભોગવવા યોગ્ય કોઈ પણ ભોગ ઇચ્છતો નથી. કાળસ્વરૂપ એવા આપના મહાન પરાક્રમથી નાશ થનારી અણિમાદિ સિદ્ધિઓને પણ હું ઇચ્છતો નથી. ॥ ૨૪ ॥

किंच वर्तमानकालेऽपि न भोगार्हा इत्याह—**कुत्रेति**।

વળી, કામનાઓ વર્તમાનકાળમાં પણ ભોગવવા યોગ્ય નથી, એમ કહે છે— **'कुत्र इति।'**

कुत्राशिषः श्रुतिसुखा मृगतृष्णिरूपाः
क्वेदं कलेवरमशेषरुजां विरोहः।
निर्विद्यते न तु जनो यदपीति विद्वान्
कामानलं मधुलवैः शमयन्दुरापैः॥ २५

श्रुतिः श्रवणं तदेव सुखं यासु ताः। मृगतृष्णिकावन्मिथ्याभूताश्चाशिषः क्व। अशेषाणां रुजां रोगाणां विरोह उद्भवस्थानं क्व चेदं कलेवरम्।

एवं चेत्सर्वोऽपि जनः किं न विरज्यते तत्राह—यदपि यद्यपि इति एवं विद्वानयं जनस्तथापि न निर्विद्यते विरक्तो न भवति। कुतः। काम एवानलस्तम्। मधुतुल्यैः सुखलवै-र्दुःसाध्यैरपि शमयन्। कामाग्निशमनव्यग्रस्य निर्वेदावकाशो नास्तीत्यर्थः। यद्वा अचिन्त्यमिदं त्वन्मायाचेष्टितमिति भावः॥ २५॥

तर्हि त्वं कथं निर्विण्णोऽसि। अनर्हेऽपि मयि प्रवृत्तया त्वत्कृपयैवेत्या-शयेनाह—**क्वेति**।

(માત્ર) સાંભળવામાં સુખ આપનારી, ઝાંઝવાંના જળ જેવી (નિતાન્ત) મિથ્યા કામનાઓ ક્યાં અને સમગ્ર રોગોના ઉદ્‌ભવસ્થાનરૂપ આ શરીર ક્યાં? એમ જાણતો હોવા છતાં પણ દુઃખથી પ્રાપ્ત થનારાં મધુબિંદુઓ (અલ્પસુખો)થી કામાગ્નિને શાંત કરતો જનસમુદાય તેનાથી વિરક્ત થતો નથી.॥ ૨૫॥

‘**श्रुतिः**’ સાંભળવું, તે જ સુખ છે જેમનામાં તે કામનાઓ– ઝાંઝવાંના જળની જેમ મિથ્યારૂપ (આ) કામનાઓ ક્યાં અને સર્વ ‘**रुजाम्**’ રોગોનું ‘**विरोहः**’ ઉદ્‌ભવસ્થાન આ શરીર ક્યાં? (આ વિષમ અલંકાર છે)

આમ, હોવા છતાં પણ સર્વ જનસમુદાય કેમ વિરક્ત નથી થતો, તે માટે કહે છે— ‘**यदपि**’ (**यद्यपि**) જો કે આ મનુષ્ય આમ જાણે છે, તેમ છતાં પણ ‘**न निर्विद्यते**’ વિરક્ત થતો નથી. શા માટે? કામ એ જ અગ્નિ છે, ‘**मधुलवैः**’ મધનાં ટીપાંરૂપ અલ્પ સુખોથી, દુઃખથી પ્રાપ્ત થનારાં હોવા છતાં પણ તેનાથી તે કામાગ્નિને શાંત કરતો જનસમુદાય— કામાગ્નિ શાંત કરવામાં વ્યગ્ર એવા તેને વૈરાગ્ય માટે અવકાશ જ નથી, એમ અર્થ છે. અથવા આપની માયાની આ ગતિવિધિ અચિન્ત્ય છે, એવો ભાવ છે.॥ ૨૫॥

(ભગવાન પ્રહ્‌લાદજીને કહે કે) તો પછી તું કેમ નિર્વેદ (વિષાદ) પામે છે? તે માટે પ્રહ્‌લાદજી કહે છે કે હું યોગ્ય નથી ત્યારે પણ પ્રવૃત્ત થયેલી આપની કૃપાથી જ (અધમ એવા મને આપે સર્વોત્તમ બનાવ્યો છે), એ આશયથી કહે છે— ‘**क्व इति**।’

क्वाहं रजःप्रभव ईश तमोऽधिकेऽस्मिन्
जातः सुरेतरकुले क्व तवानुकम्पा।
न ब्रह्मणो न तु भवस्य न वै रमाया
यन्मेऽर्पितः शिरसि पद्मकरः प्रसादः॥ २६

હે ઈશ, તમોગુણની અધિકતાવાળા આ રાક્ષસકુળમાં રજોગુણથી ઉત્પન્ન થયેલો હું ક્યાં અને આપની અનુકંપા ક્યાં? જે અનુકંપાથી આપે મારા મસ્તક ઉપર આપના પરમ પ્રસાદરૂપ હસ્તકમળ પધરાવ્યું છે, બ્રહ્માજી, શિવજી અને લક્ષ્મીજીના મસ્તક ઉપર (પણ) તેવી અનુકંપાથી પધરાવ્યું નથી!॥ २६॥

रजसैव प्रभवो जन्म यस्य सः। सप्तम्यन्तं वा कुलविशेषणम्। तमोऽधिकं यस्मिंस्तस्मिन्नसुराणां कुले जातोऽहं क्व। क्व च तवानुकम्पा।

રજોગુણથી જ '**प्रभवः**' જન્મ છે જેનો તે (હું) અથવા '**रजःप्रभवे**' એમ સાતમી વિભક્તિનો પ્રત્યય અંતે હોય તો કુળનું વિશેષણ બને છે. ('**रजःप्रभवे सुरेतरकुले**' રજોગુણથી ઉત્પન્ન થયેલા અસુર કુળમાં), તમોગુણ (અજ્ઞાન) અધિક છે જેમાં તેવા રાક્ષસકુળમાં ઉત્પન્ન થયેલો હું ક્યાં અને આપની અનુકંપા ક્યાં?

तामेवाह—ब्रह्मादीनां शिरसि यो नैवार्पितः स पद्मवत्सकलसंतापहरः करः प्रसादः पुरुषार्थरूपो मे शिरस्यर्पित इति यत्। यद्वयाऽनुकम्पयेति वा॥ २६॥

તે જ કહે છે— બ્રહ્માજી વગેરેના મસ્તક ઉપર જે ક્યારેય મૂકવામાં નથી આવ્યો તેવો કમળની જેમ સકળ સંતાપ હરનાર પરમ પુરુષાર્થસ્વરૂપ હસ્તરૂપી પ્રસાદ '**यत्**' જે મારા મસ્તક ઉપર મૂક્યો છે. અથવા '**यत्**' જે અનુકંપાથી (મારા ઉપર મૂક્યો છે!)॥ २६॥

न च त्वयीदमतिचित्रमित्याह—**नैषेति**।

(અધમ એવા મારા ઉપર આપનો અનુગ્રહ થયો છે.) આ વિષે પરમાત્મા એવા આપને માટે અતિ આશ્ચર્ય નથી, એમ કહે છે— '**न-एषा इति।**'

नैषा परावरमतिर्भवतो ननु स्या-
ज्जन्तोर्यथाऽऽत्मसुहृदो जगतस्तथापि।
संसेवया सुरतरोरिव ते प्रसादः
सेवानुरूपमुदयो न परावरत्वम्॥ २७

આ ઉચ્ચ-નીચની બુદ્ધિ જેમ પ્રાકૃત પુરુષને હોય છે તેમ જગતના આત્મા અને સુહૃદ એવા આપને નથી જ. તેમ છતાં પણ કલ્પતરુની જેમ (તેનો સંકલ્પ કરનારને ફળ મળે છે તેમ) આપની સેવા કરવાથી આપની કૃપા થાય છે અને તેમાં સેવાને અનુરૂપ ધર્મનો ઉદય થાય છે. તેમાં ઉચ્ચ-નીચનું કારણ નથી.॥ २७॥

एते ब्रह्मादय उत्तमा अयमसुरो नीच इत्येषा परावरमतिर्जन्तोः प्राकृतस्य यथा तथा भवतो नैव स्यात्।

અા બ્રહ્માજી વગેરે ઉત્તમ છે, આ અસુર નીચ છે એવી આ '**पर-अवर-मतिः**' મોટા-નાનાની (ભેદ)બુદ્ધિ જે સામાન્ય મનુષ્યને હોય છે, તેવી આપને નથી જ.

अत्र हेतुः—जगत आत्मनः सुहृदश्च।

આ માટેનું કારણ— જગતના '**आत्मनः सुहृदः च**' આત્મા અને સુહૃદ એવા આપને (ભેદબુદ્ધિ નથી).

तर्हि सर्वत्र मत्प्रसाद एवंरूपश्च किं न स्यात्तत्राह—संसेवया तव प्रसादो भवति, तत्र च सेवानुरूपं तत्तदिच्छानुसारेण धर्मादीनामुदयो भवति।

તો પછી સર્વ ઠેકાણે મારી આવા પ્રકારની જ કૃપા કેમ નથી થતી, (એમ જો ભગવાન કહે તો) તે માટે ઉત્તર આપે છે— સેવા કરવાથી આપની કૃપા થાય છે. વળી, તેમાં સેવાને અનુરૂપ તે તે ભક્તની ઈચ્છાનુસાર ધર્મ વગેરેનો ઉદય થાય છે.

एवं सत्यपि वैषम्याभावे दृष्टान्तः—सुरतरुर्यथा सेवकस्यैव संकल्पानुसारेण फलं ददाति न च विषमस्तद्वत्। न परावरत्वमत्र कारणमिति शेषः॥ २७॥

આમ હોવા છતાં પણ (ભગવાનમાં) વૈષમ્ય ન હોવા માટેનું દૃષ્ટાન્ત— જેવી રીતે કલ્પતરુ સેવકને જ સંકલ્પાનુસાર ફળ આપે છે, અવળું નહીં, તેવી રીતે– અહીં ઉત્તમપણું અને અધમપણું એ કારણ નથી, એટલું શેષ છે.॥ ૨૭॥

एतच्च त्वद्भृत्यकृपया मया प्राप्तमिति त्वद्भृत्यपार्श्वमेव मां नयेत्याशयेनाह—**एवमिति**।

અને આ (આપની કૃપા પ્રાપ્ત કરાવનારી સેવા) આપના સેવકની કૃપાથી મને પ્રાપ્ત થઈ છે એટલે આપના સેવકની પાસે જ મને લઈ જાઓ, એ આશયથી કહે છે— '**एवम् इति**।'

एवं जनं निपतितं प्रभवाहिकूपे
कामाभिकाममनु यः प्रपतन्प्रसङ्गात्।
कृत्वाऽऽत्मसात् सुरर्षिणा भगवन् गृहीतः
सोऽहं कथं नु विसृजे तव भृत्यसेवाम्॥ २८

હે ભગવાન, આમ, સંસારરૂપી સર્પવાળા કૂવામાં પડેલા અને ચોમેરથી વિષયભોગોની કામના કરતા મનુષ્યના સંગથી તેની પાછળ (કૂવામાં) પડતો જે હું દેવર્ષિ (નારદજી) દ્વારા તેમનો સ્વકીય કરીને અંગીકાર કરવામાં આવ્યો, તે હું આપના દાસની સેવા કેમ કરીને છોડું?॥ ૨૮॥

यथा त्वयानुकम्पितोऽस्म्येवं नारदे-नात्मसात् कृत्वा पूर्वमनुगृहीतः सोऽहं कथं नु त्वद्भृत्यसेवां विसृजामि।

જેવી રીતે આપના દ્વારા હું અનુકંપાને પામ્યો છું, એવી રીતે નારદજી દ્વારા તેમનો સ્વકીય કરીને પૂર્વે અનુગૃહીત કરવામાં આવેલો તે હું આપના દાસની સેવા કેમ કરીને છોડું?

कथंभूतोऽनुगृहीतोऽस्मि। प्रभव एवाहियुक्तः कूपस्तस्मिन्कामानभितः कामयमानं जनं निपतितमनु तत्प्रसङ्गात्प्रपतन्योऽहम्। तदेवं त्वद्भृत्यस्य नारदस्यानुग्रहेण त्वयात्यन्तमनुकम्पितोऽस्म्ययमेव च मम परमोऽनुग्रहो न पुनरिदमतितुच्छं मत्प्राणरक्षणादि॥ २८॥

કેવી રીતે હું અનુગૃહીત થયો છું ? '**પ્રભવઃ**' (સંસાર) એ જ સર્પવાળો કૂવો. તેમાં પડેલા, સર્વ તરફથી વિષયભોગોની કામના કરતા મનુષ્યની પાછળ તેના સંગથી (કૂવામાં) પડતો જે હું આપના દાસ નારદજીના અનુગ્રહથી આપના દ્વારા અત્યંત અનુકમ્પા પામ્યો છું, એ જ મારા ઉપર પરમ અનુગ્રહ છે, નહીં કે અતિતુચ્છ એવા મારા પ્રાણનાં રક્ષણાદિ.॥ ૨૮॥

वंशीधरी—'एवं त्वत्कृपायोग्यं यथा स्यात्तथाऽनुगृहीतो यः सोऽहं दृष्टभगवद्भृत्यातिशयत्वात्कथं विसृजे त्यक्तुं शक्नोमि। नैवेत्यर्थः।'

આમ, આપની કૃપાને પાત્ર જે રીતે થવાય તે રીતે અનુગ્રહ પામેલો હું કે જેણે ભગવાનના દાસની ઉત્કૃષ્ટતા જોઈ છે. તેથી તેમનો કેવી રીતે ત્યાગ કરી શકું? ન જ કરી શકું, એમ અર્થ છે.

न चेदं त्वया मदनुग्रहार्थं कृतं किं त्वन्यार्थमित्याह—

આપે આ (મારા પ્રાણની રક્ષા વગેરે) કરી તે મારા ઉપર અનુગ્રહ કરવા માટે નહીં, પણ અન્ય કારણસર કરી છે, એમ કહે છે—

मत्प्राणरक्षणमनन्त पितुर्वधश्च
मन्ये स्वभृत्यऋषिवाक्यमृतं विधातुम्।
खड्गं प्रगृह्य यदवोचदसद्विधित्सु-
स्त्वामीश्वरो मदपरोऽवतु कं हरामि॥ २९

હે અનંત, અયોગ્ય કરવાની ઈચ્છાવાળા મારા પિતા તલવાર ધારણ કરીને 'મારા સિવાય બીજો ઈશ્વર (હોય તો તે) તારી રક્ષા કરે. હું તારું મસ્તક કાપું છું.' એમ જ્યારે બોલ્યા, ત્યારે આપે મારા પ્રાણની રક્ષા અને પિતાનો વધ (એ બંને) કર્યાં, તે પોતાના સેવક (સનકાદિ) ઋષિઓનું વાક્ય સત્ય કરવા માટે કર્યાં છે, એમ હું માનું છું.॥ ૨૯॥

भो अनन्त, यदेतन्मत्प्राणरक्षणं मां हन्तुमुद्यतस्य मत्पितुर्वधश्च तदुभयं स्वभृत्यऋषिवाक्यमृतं सत्यं विधातुमित्यहं मन्ये। कुतः। यद्यस्मादसदयुक्तं विधित्सुः

હે અનંત, આ જે મારા પ્રાણનું રક્ષણ કર્યું અને મને હણવા ઉદ્યત થયેલા મારા પિતાનો વધ કર્યો, તે બંને પોતાના સેવક (સનકાદિ) ઋષિઓનું વાક્ય '**ऋतम्**' સત્ય કરવા માટે કર્યાં છે, એમ હું માનું છું. કેમ? '**यत्**' કારણ કે

खड्गं प्रगृह्यावोचत्। किम्। मदपरो मद्व्यतिरिक्तश्चेदीश्वरोऽस्ति तर्हि त्वामिदानीमवतु तव कं शिरोऽहं हरामीति।

પિતા ખડ્ગ ધારણ કરીને બોલ્યા, શું બોલ્યા? **'મત્-અપરઃ'** 'મારા સિવાય બીજો ઈશ્વર હોય તો અત્યારે તારું રક્ષણ કરે. હું તારું મસ્તક કાપું છું.'

'असत्' અયોગ્ય કરવાની ઈચ્છાવાળા મારા

पाठान्तरेऽप्ययमेवार्थः।

પાઠાન્તર (**कं निहन्मि**) હોય તો પણ આ જ અર્થ છે.

यद्यदाऽवोचत्तदा मत्प्राणरक्षणमिति वान्वयः। एतच्च 'सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितम्' इत्यत्रैव बहुधा व्याख्यातम्॥ २९॥

'यत्' જ્યારે બોલ્યા ત્યારે મારા પ્રાણની રક્ષા કરી, એમ પણ અન્વય છે. વળી, 'પોતાના સેવકનું વચન સત્ય કરવા માટે' (શ્રીમદ્ ભા. ૭/૮/૧૮) એમ અહીં જ ઘણી રીતે વ્યાખ્યા કરવામાં આવી છે.॥ ૨૯॥

न चेदं पक्षपातेन रक्षणं दैत्यहननं च त्वयि स्वाभाविकं किंतु मायागुणोपाधिकम्, सर्वात्मके त्वयि स्वतस्तदयोगादित्याह— **एक इति**।

પક્ષપાત કરીને (એકનું) રક્ષણ કરવું અને (બીજાનો) દૈત્યોનો નાશ કરવો એ આપના વિષે સ્વાભાવિક નથી, પરંતુ માયાના ગુણરૂપ ઉપાધિને લીધે છે, કારણ કે સર્વના આત્મારૂપ આપને વિષે તે પક્ષપાત સંભવી શકે નહીં, એમ કહે છે— **'एकः इति।'**

एकस्त्वमेव जगदेतदमुष्य यत् त्व-
माद्यन्तयोः पृथगवस्यसि मध्यतश्च।
सृष्ट्वा गुणव्यतिकरं निजमाययेदं
नानेव तैरवसितस्तदनुप्रविष्टः॥ ३०

આ (સમગ્ર) જગત કેવળ એક આપ જ છો, કારણ કે આ જગતના આદિમાં કારણરૂપ અને અંતમાં અવધિરૂપે આપ જ રહો છો, (અને તેથી) મધ્યમાં પણ આપ જ પૃથક્ રહીને વિરામ કરો છો. પોતાની માયાથી ગુણોના (મિશ્રણ) પરિણામરૂપે આ જગતનું સર્જન કરીને, તેમાં જ પ્રવિષ્ટ થઈ, તે ગુણો દ્વારા અનેક રૂપે હોય તેમ પ્રતીત થાઓ છો.॥ ૩૦॥

एतच्च जगत् त्वमेवैकः। यद्यतः अमुष्यादावन्ते च पृथगवस्यसि विरामं करोषि। सन्मात्रतया कारणत्वेनावधित्वेन च वर्तस इत्यर्थः। अतो मध्यतश्च त्वमेव।

આ જગત કેવળ એક આપ જ છો, **'यत्'** કારણ કે આ જગતની પૂર્વે અને અંતે **'पृथक्-अवस्यसि'** (પોતાના કાર્યરૂપ જગતથી) ભિન્ન રહીને વિરામ કરો છો. અસ્તિત્વમાત્રથી કારણરૂપે અને અવધિરૂપે રહો છો, એમ અર્થ છે. આથી મધ્યમાં પણ આપ જ છો.

कुतस्तर्हि भेदप्रतीतिस्तत्राह— निजमायया गुणपरिणामात्मकमिदं जगत्सृष्ट्वा तदनुप्रविष्टस्त्वं तैर्गुणैर्हेतुभूतैर्नानेव रक्षक इव हन्तेव चावसितः प्रतीतः।

તો પછી ભેદની પ્રતીતિ કેમ થાય છે? તે માટે ઉત્તર આપે છે— પોતાની માયા વડે ગુણોના પરિણામરૂપ આ જગતનું સર્જન કરીને, તેમાં પ્રવિષ્ટ થયેલા આપ કારણરૂપ એવા તે ગુણો દ્વારા અનેક રૂપે રહ્યો હોવ તેવા રક્ષક અને સંહારક જેવા '**अवसितः**' જણાઓ છો.

तदुक्तं स्कन्धोपक्रमे—
'निर्गुणोऽपि ह्यजोऽव्यक्तो भगवान्प्रकृतेः परः।
स्वमायागुणमाविश्य बाध्यबाधकतां गतः॥'
इत्यादिना॥ ३०॥

સ્કંધના આરંભમાં તે જ કહેવાયું છે, 'વાસ્તવમાં ભગવાન પ્રકૃતિથી પર હોવાથી નિર્ગુણ, અજન્મા અને અવ્યક્ત છે, છતાં પણ પોતાની માયાના (સત્ત્વાદિ) ગુણોમાં અધિષ્ઠિત થઈ પીડા પામનાર અને પીડા આપનારના ભાવને પામ્યા છે.' (શ્રીમદ્ભા.૭/૧/૬) વગેરે દ્વારા॥ ૩૦॥

वंशीधरी—'यस्तु यस्यादिरन्तश्च स वै मध्यं च तस्य च' इति न्यायेन इति भावः।

'જે વસ્તુ જેનો આદિ અને અંત છે તે જ તેનો મધ્ય છે. એ ન્યાયથી આ જગત પણ આપ જ છો, એવો ભાવ છે.'

ननु यद्येतज्जगदहमेव तर्हि जगतो वैषम्येण मम वैषम्यमपि किं न स्यादित्यत आह—

(ભગવાન કહે છે કે) જો આ જગત હું જ છું તો જગતના વૈષમ્ય દ્વારા મારામાં પણ વિષમતા કેમ ન હોય? તેવી શંકા માટે કહે છે–

त्वं वा इदं सदसदीश भवांस्ततोऽन्यो
माया यदात्मपरबुद्धिरियं ह्यपार्था।
यद् यस्य जन्म निधनं स्थितिरीक्षणं च
तद् वै तदेव वसुकालवदष्टितर्वोः॥ ३१

હે ઈશ, આ કાર્ય-કારણરૂપ જગત આપ જ છો પરંતુ આપ તેનાથી જુદા છો, તેથી આ પોતાનું છે અને આ પારકું છે એવી બુદ્ધિ નિરર્થક માયા જ છે. જેનાથી જેનો જન્મ અને પ્રકાશ છે તથા સ્થિતિ અને લય છે, તે વસ્તુ તેનું જ સ્વરૂપ છે. જેમ વૃક્ષ પૃથ્વીમય બીરૂપ છે અને બી સૂક્ષ્મભૂતરૂપ છે (તેમ સર્વ કાર્ય-કારણરૂપ જગત પરમકારણરૂપ પરબ્રહ્મ છે).॥ ૩૧॥

त्वं वै त्वमेवेदं सदसत्कार्य-कारणात्मकं जगन्न तु त्वत्तः पृथक्। भवांस्तु ततोऽन्यः। आद्यन्तयोः पृथगवस्थानात्।

'**त्वं वै**' આપ જ આ '**सत्-असत्**' કાર્ય-કારણરૂપ જગત છો. આપનાથી જગત ભિન્ન નથી, પરંતુ આપ તેનાથી અલગ છો, કારણ કે જગતના આદિ અને અંતમાં આપ તેનાથી જુદા સ્વરૂપે રહો છો.

यद्यस्मादेवमतोऽयमात्मीयोऽयं पर इति या बुद्धिः साऽपार्था मायैव। कार्यकारणाभेदं दृष्टान्तेन साधयति। यद्यतो यस्य जन्म ईक्षणं प्रकाशश्च। यस्मिन्निधनं च स्थितिश्च तद्वै तदेव।

'यत्' જે કારણે આમ છે, તેથી આ પોતાનો છે અને આ પારકો છે એવી જે બુદ્ધિ છે, તે કેવળ નિરર્થક માયા જ છે. કાર્ય અને કારણના અભેદને દૃષ્ટાંત દ્વારા સિદ્ધ કરે છે. '**यत्**' જેનાથી જેનો જન્મ અને '**ईक्षणम्**' પ્રકાશ છે તથા જેનામાં લય અને સ્થિતિ છે, તે વસ્તુ તેનું જ સ્વરૂપ છે.

अष्टिर्बीजं कारणं, तरुः कार्यं, तयोर्यथा वसुकालमात्रत्वम्।

'**अष्टिः**' બી કારણ છે અને વૃક્ષ કાર્ય છે. એ બંને જેમ માત્ર વસુકાળરૂપ છે.

अयमर्थः—कालशब्देन नीलत्वाद्यसाधारणगुणयोगात्पृथ्वी। वसुशब्देन वस्तुमात्रं भूतसूक्ष्मम्। तत्र तरोर्यथा पृथ्वीमयबीजमात्रत्वं तस्य च यथा भूतसूक्ष्ममात्रत्वमेवं सर्वमपि कार्यकारणात्मकं जगत् परमकारणात्मकमेवेति।

તેનો અર્થ આ પ્રમાણે છે— કાળ શબ્દ દ્વારા નીલત્વ વગેરે અસાધારણ ગુણના યોગથી પૃથ્વી અને વસુ શબ્દ દ્વારા સૂક્ષ્મભૂતરૂપ વસ્તુમાત્ર. તેમાં વૃક્ષ પૃથ્વીમય બીરૂપ છે અને તે બી જેમ કેવળ સૂક્ષ્મભૂતરૂપ છે, એમ સર્વ કાર્ય-કારણાત્મક જગત પરમકારણરૂપ બ્રહ્મ જ છે.

तथा च पारमर्षं सूत्रम् 'तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः' इति। श्रुतिश्च—'वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्' इति॥ ३१॥

એ અનુસાર પરમ ઋષિ વ્યાસજીનું સૂત્ર છે. 'કોઈ પણ કારણ તેના કાર્યથી જુદું હોતું નથી.' (બ્ર.સૂ.૨/૧/૧૪) શ્રુતિ પણ છે— 'ઘડો વગેરે નામ એ વાણીના આરંભરૂપ વિકાર જ છે, મૂળ માટી જ સત્ય વસ્તુ છે.' (છાં.ઉપ.૬/૧/૪)

वंशीधरी—'परमर्षेः साक्षान्नारायणावतारस्यर्षेः श्रीव्यासदेवस्येत्यर्थः।'

સાક્ષાત્ નારાયણના અવતાર પરમ ઋષિ શ્રીવ્યાસદેવનું બ્રહ્મસૂત્ર છે, એમ અર્થ છે.

वंशीधरी—तेन पार्थिवपदार्थानां काष्ठपाषाणादीनां वैषम्येऽपि तत्परमकारणस्य गंधस्य न वैषम्यं तथैव जगतो वैषम्येऽपि न भगवत इति।

લાકડું, પથ્થર વગેરે પૃથ્વીના પદાર્થો વિષમ(જુદા) હોવા છતાં પણ પૃથ્વીના પરમકારણ ગંધમાં જેમ વિષમતા નથી, તેમ જગતમાં વિષમતા હોવા છતાં પણ ભગવાનમાં વિષમતા નથી.

तत्र तावदन्ते पृथगवस्थानं दर्शयति—**न्यस्येदमिति**।

આદિ, અંત અને મધ્યમાં પૃથક્ અવસ્થાન (વં.) અર્થાત્ જગતથી અળગા રહો છો, તે દર્શાવે છે— '**न्यस्य-इदम् इति**।'

न्यस्येदमात्मनि जगद् विलयाम्बुमध्ये
शेषेऽऽत्मना निजसुखानुभवो निरीहः।
योगेन मीलितदृगात्मनिपीतनिद्र-
स्तुर्ये स्थितो न तु तमो न गुणांश्च युङ्क्षे॥ ३२

આ જગતને પોતાના દ્વારા પોતાનામાં સ્થાપીને સ્વાત્મસુખના અનુભવવાળા આપ સર્વ ક્રિયાથી રહિત (નિઃસ્પૃહ) થઈને પ્રલયકાલીન જળમધ્યે શયન કરો છો. યોગ દ્વારા નેત્રો નિમીલિત કરો છો તથા સ્વરૂપના પ્રકાશથી નિદ્રાને વિલીન કરી તુરીય અવસ્થામાં રહેલા આપ નથી તમોગુણમાં યુક્ત થતા કે નથી વિષયોને જોતા.॥ ૩૨॥

इदं जगदात्मनैवात्मनि निक्षिप्य स्वसुखमेवानुभवन्निष्क्रियः सन्प्रलयोदक-मध्ये शयनं करोषि।

આ જગતને પોતાના દ્વારા પોતાનામાં સ્થાપીને સ્વાત્મસુખનો જ અનુભવ કરતા (સર્વ) ક્રિયાથી રહિત થઈ પ્રલયકાલીન જળમાં પોઢો છો.

तर्हि किं जीवस्येव ममापि तमोवृत्तिरूपा निद्रास्ति।

(ભગવાન કહે છેઃ) તો શું જીવની જેમ મને પણ અજ્ઞાનની વૃત્તિરૂપ નિદ્રા છે? (તે માટે ઉત્તર આપે છે.)

न हि न हि। योग एव तु बहिर्वृत्त्यभाव-साम्यान्निद्रोच्यत इत्याह—योगेन मीलिते दृशौ येन। आत्मनः स्वरूपप्रकाशेन निपीता निद्रा येन। यतस्तुर्येऽवस्थात्रयातीते स्वरूपे स्थितस्त्वं न तु सुप्त इवात्मना तमो युङ्क्षे योजयसि न पश्यसि न जाग्रत्स्वप्नयोरिव गुणान्विषयांश्चेत्यर्थः ॥ ३२॥

નથી જ, આપને અજ્ઞાનરૂપ નિદ્રા નથી જ. બહિર્વૃત્તિના અભાવનું સામ્ય હોવાથી યોગ એ જ નિદ્રા કહેવાય છે, એમ કહે છે— યોગથી જેમણે નેત્રો બંધ કર્યાં છે. '**आत्मनः**' સ્વરૂપના પ્રકાશથી જેમણે નિદ્રા વિલીન કરી છે, કારણ કે '**तुर्ये**' (જાગ્રત્, સ્વપ્ન, સુષુપ્તિ) ત્રણેય અવસ્થાથી પર એવી ચોથી સ્વરૂપાવસ્થામાં રહેલા આપ તો નિદ્રાધીન થયેલા મનુષ્યની જેમ પોતાની જાતે તમોગુણમાં યુક્ત થતા નથી તેમ જ જાગ્રત્ અને સ્વપ્નાવસ્થાવાળાની જેમ આપ '**गुणान्**' વિષયોને પણ જોતા નથી, એમ અર્થ છે.॥ ૩૨॥

'शेषेऽऽत्मना इत्यत्र 'मन्त्रेष्वाङ्या-देरात्मनः' आकारलोपः।' 'मन्त्रेषु आङ्यादेः आत्मनः।'

જ્યારે વિભક્તિ-પ્રત્યય (**आङ्**) **आ** આવે ત્યારે '**आत्मन्**' શબ્દના આદિ **आ** નો લોપ થાય છે. માત્ર તૃતીયા એ.વ.માં આવું બને છે. (અહીં **शेष आत्मना** એવી સામાન્ય સંધિ નથી.) (પા.સૂ. ૬/૪/૧૪૧)

इदानीं कारणत्वेनादावपि पृथगवस्थानं दर्शयन्मध्यतश्च त्वमेवेत्येतत्प्रपञ्चयति चतुर्भिः।

હવે સૃષ્ટિના આદિમાં પણ કારણરૂપે અલગ અવસ્થાન દર્શાવતાં, મધ્ય અવસ્થામાં પણ આપ જ છો, એ વાત ચાર શ્લોકો વડે વિસ્તારપૂર્વક સમજાવે છે.

तस्यैव ते वपुरिदं निजकालशक्त्या
सञ्चोदितप्रकृतिधर्मण आत्मगूढम्।
अम्भस्यनन्तशयनाद् विरमत्समाधे-
र्नाभेरभूत् स्वकणिकावटवन्महाब्जम्॥ ३३

પોતાની કાળશક્તિથી જેના દ્વારા પ્રકૃતિના (સત્ત્વાદિ) ધર્મો પ્રેરિત કરવામાં આવ્યા છે તેવા તે આપનું જ શરીર આ જગત છે, (કારણ કે) શેષશય્યાથી (યોગ)સમાધિ(રૂપ નિદ્રાનાટ્ય) વિરામ પામતાં, આપની નાભિમાંથી પ્રલયકાલીન સમુદ્રના કારણજળમાં પોતાનામાં જ સૂક્ષ્મરૂપે રહેલું લોકમય મહાપદ્મ, વડના પોતાના સૂક્ષ્મ બીમાંથી જેમ મહાવટવૃક્ષ ઉત્પન્ન થાય તેમ ઉત્પન્ન થયું હતું.॥ ૩૩॥

यस्त्वमम्भसि शेषे तस्यैव ते इदं जगद्वपुः स्वरूपं नान्यस्य, यतस्त्वं मध्यतोऽपि तस्य। कथंभूतस्य। निजया कालशक्त्या संचोदिताः प्रकृतेर्धर्माः सत्त्वादयो येन।

જે આપ પ્રલયકાલીન જળમાં પોઢો છો તે જગતરૂપ શરીર આપનું જ સ્વરૂપ છે, અન્યનું નહીં, કારણ કે જગત (આદિ, અંત અને) મધ્યમાં પણ આપના સ્વરૂપવાળું છે. કેવા આપનું? પોતાની કાળશક્તિ દ્વારા પ્રેરિત કરવામાં આવ્યા છે પ્રકૃતિના સત્ત્વાદિ ધર્મો જેમના દ્વારા તેવા આપનું સ્વરૂપ.

स्वरूपत्वे हेतुः—अनन्तशयनाच्छेष-पर्यङ्काद्विरमन्समाधिर्यस्य तस्य तव नाभेः सकाशात् एकार्णवोदके महाब्जं लोक-पद्ममभूत्। कथंभूतम्। आत्मनि त्वय्येव गूढं सत्। स्वकणिकातः सूक्ष्माद्वटबीजान्महावट इव॥ ३३॥

આ વિશ્વ આપનું સ્વરૂપ હોવા માટેનું કારણ— **'अनन्तशयनात्'** શેષશય્યાથી જેમની સમાધિ વિરામ પામતાં, **'तस्य'** (તે આપની) નાભિમાંથી પ્રલયકાલીન એકાર્ણવના કારણ-જળમાં **'महा-अब्जम्'** મહાન લોકમય કમળ ઉત્પન્ન થયું હતું. કેવું કમળ? કે જે **'आत्मनि'** પોતાનામાં- આપનામાં જ **'गूढम्'** સૂક્ષ્મરૂપે અવસ્થિત હતું. **'स्वकणिकातः'** વડના પોતાના સૂક્ષ્મ બીમાંથી જેમ મહાવટવૃક્ષ ઉત્પન્ન થાય તેમ!॥ ૩૩॥

तदेवं कारणत्वेनानुगतः सन्मध्यतश्च त्वमेव वर्तस इत्युक्तमेतदेव शुद्धसत्त्वस्य ब्रह्मणोऽनुभवेन स्फुटयितुं तस्य प्राक्तनीमवस्थामाह—

तत्सम्भवः कविरतोऽन्यदपश्यमान-
स्त्वां बीजमात्मनि ततं स्वबहिर्विचिन्त्य।
नाविन्ददब्दशतमप्सु निमज्जमानो
जातेऽङ्कुरे कथमु होपलभेत बीजम्॥ ३४

તો આમ, કારણરૂપે અનુગત રહીને મધ્યમાં પણ આપ જ રહો છો, એમ કહીને એ જ વાતને શુદ્ધ સત્ત્વસ્વરૂપ બ્રહ્માજીના અનુભવથી સ્પષ્ટ કરવા માટે બ્રહ્માજીની પૂર્વની અવસ્થાનું વર્ણન કરે છે.

તે કમળમાં ઉત્પન્ન થયેલા (સૂક્ષ્મદર્શી કવિ) બ્રહ્માજીએ એ કમળ સિવાય અન્ય કાંઈ પણ ન જોતાં જળમાં સો વર્ષ સુધી ડૂબેલા રહીને પોતાનામાં બીજરૂપે વ્યાપેલા આપને પોતાનાથી બહાર ખોળ્યા હતા, પરંતુ આપ પ્રાપ્ત થયા નહીં. અહો! અંકુર ઉત્પન્ન થાય ત્યારે તેના કારણરૂપે રહેલા બીને કોઈ તેનાથી જુદું કેવી રીતે જોઈ શકે?॥ ૩૪॥

तस्मिन्नब्जे संभवो यस्य। कविर्ब्रह्मा। अतः पद्मादन्यदपश्यन् बीजमुपादानकारणभूतं त्वां स्वस्मिन्व्याप्तं सन्तमपि नाविन्दत्। युक्तं चैतत्। उह अहो। अङ्कुरे जाते सति बीजं तदनुगतं कारणं पृथक्कथं नाम पुमान्पश्येत्॥ ३४॥

તે કમળમાં ઉત્પત્તિ છે જેની– '**कविः**' બ્રહ્મ– આથી કમળ સિવાય અન્ય કાંઈ ન જોતાં બ્રહ્માજીએ '**बीजम्**' ઉપાદાન કારણરૂપ આપને પોતાનામાં વ્યાપેલા હોવા છતાં પણ પ્રાપ્ત કર્યા નહીં. અને એ યોગ્ય છે. '**उह**' અહો! અંકુર ઉત્પન્ન થાય ત્યારે તેના કારણરૂપે રહેલા બીને કોઈ પુરુષ તેનાથી જુદું કેવી રીતે જોઈ શકે?॥ ૩૪॥

बा.प्र.—'एवं सर्वात्मकतया सर्वत्र सर्वदा विद्यमानोऽपि भगवान् स्वकृपयैव सुलभः। अन्यथा तु साक्षात्स्वत उत्पन्नस्य ब्रह्मणोऽपि दुर्लभ एवेति दर्शयति।'

આમ, સર્વસ્વરૂપે સર્વત્ર સર્વદા વિદ્યમાન હોવા છતાં પણ ભગવાન પોતાની કૃપાથી જ સુલભ છે, નહીં તો સાક્ષાત્ પોતાનામાંથી ઉત્પન્ન થયેલા બ્રહ્માજીને પણ દુર્લભ જ છે, એમ દર્શાવે છે.

भवदुपासनया तु स्वस्मिन्नेव दृष्टवानित्याह—**स त्विति**।

આપની ઉપાસના (રૂપકૃપા)થી પોતાનામાં જ બ્રહ્માજીને દર્શન થયાં, એમ કહે છે— '**सः तु इति**।'

स त्वात्मयोनिरतिविस्मित आस्थितोऽब्जं
कालेन तीव्रतपसा परिशुद्धभावः।
त्वामात्मनीश भुवि गन्धमिवातिसूक्ष्मं
भूतेन्द्रियाशयमये विततं ददर्श॥ ३५

હે ઈશ, કમળમાં બેસી રહેલા અતિવિસ્મિત તે આત્મયોનિ બ્રહ્માજી દીર્ઘકાળના તીવ્ર તપથી શુદ્ધ અંત:કરણવાળા બન્યા. (અને તેથી) પૃથ્વીમાં વ્યાપેલી તેની અતિ સૂક્ષ્મ (તન્માત્રા) ગંધનો સાક્ષાત્કાર થાય તેમ તેમને ભૂત, ઈન્દ્રિય અને અન્ત:કરણરૂપ પોતાનામાં જ વ્યાપેલા આપના સૂક્ષ્મ રૂપનો સાક્ષાત્કાર થયો.॥ ૩૫॥

परावृत्याब्जमास्थितः सन्। तीव्रेण तपसा ध्यानेन। अनेन सन्मात्ररूपेणो-पादानतया दर्शनमुक्तम् ॥ ३५॥

(જળની તપશ્ચર્યાથી) પાછા ફરીને કમળમાં બેસી રહીને, તીવ્ર '**तपसा**' ધ્યાનથી– આ દ્વારા સત્તામાત્રરૂપે, ઉપાદાનરૂપે દર્શન કહેવામાં આવ્યાં છે.॥ ૩૫॥

ईश्वरत्वेन च दृष्ट्वा कृतार्थोऽभव-दित्याह—

અને ઈશ્વરરૂપે (અપ્રાકૃત વિગ્રહરૂપે) દર્શન કરીને બ્રહ્માજી કૃતાર્થ થયા, એમ કહે છે—

एवं सहस्रवदनाङ्घ्रिशिरःकरोरु-
नासास्यकर्णनयनाभरणायुधाढ्यम्।
मायामयं सदुपलक्षितसंनिवेशं
दृष्ट्वा महापुरुषमाप मुदं विरिञ्चः॥ ३६

આ પ્રકારે બ્રહ્માજી હજારો વદન, ચરણ, મસ્તક, હસ્ત, ઊરુ, નાસિકા, મુખ, કર્ણ, નેત્ર, અલંકાર અને આયુધોથી સમૃદ્ધ, માયાપ્રધાન (તથા વિવિધ અંગોરૂપે શોભતા ચૌદ લોકરૂપ) પ્રપંચથી ઉપલક્ષિત થતા અવયવસંસ્થાનયુક્ત મહાપુરુષને નિહાળી હર્ષ પામ્યા.॥ ૩૬॥

एवमनेन प्रकारेण सहस्रमपरिमितानि यानि वदनादीनि तैराढ्यं समृद्धम्। मायामयं मायाप्रधानम्। सता प्रपञ्चेनोपलक्षितः संनिवेशः पादादिरचना यस्य॥ ३६॥

'**एवम्**' (જેવી રીતે સૂક્ષ્મ રૂપે દર્શન કર્યાં) એ રીતે– '**सहस्रम्**' અપરિમિત જે મુખ વગેરે છે, તેમનાથી '**आढ्यम्**' સમૃદ્ધ એવા મહાપુરુષને, '**मायामयम्**' માયાપ્રધાન, પ્રકૃતિપ્રધાન મહાપુરુષને– '**सता**' પ્રપંચથી ઉપલક્ષિત થતી ચરણાદિની રચના છે જેમની (અર્થાત્ સપ્ત પાતાળ વગેરે પ્રપંચથી સૂચિત થતું અવયવસંસ્થાન જેમનું છે તેવા વૈરાજ-વિરાટ મહાપુરુષને નિહાળ્યા.)॥ ૩૬॥

तदा च भवांस्तस्यानुग्रहं कृतवानित्याह—**तस्मा इति**।

વળી, સૃષ્ટિકાળે આપે તે બ્રહ્માજીને અનુગૃહીત કર્યા હતા, એમ કહે છે—'**तस्मै इति**।'

तस्मै भवान्हयशिरस्तनुवं च बिभ्रद्
वेदद्रुहावतिबलौ मधुकैटभाख्यौ।
हत्वाऽऽनयच्छ्रुतिगणांस्तु रजस्तमश्च
सत्त्वं तव प्रियतमां तनुमामनन्ति॥ ३७

વળી, આપે હયગ્રીવસ્વરૂપ ધારણ કરીને રજોગુણ અને તમોગુણરૂપ, વેદનો દ્રોહ કરનારા, અતિબળવાન, મધુ અને કૈટભ નામના અસુરોનો સંહાર કરીને તે બ્રહ્માજીને (સત્ત્વગુણરૂપ) વેદોના સમૂહો સમર્પિત કર્યા હતા, કારણ કે (વિદ્વજ્જનો) કહે છે કે સત્ત્વગુણ આપનું અત્યંત પ્રિય શરીર છે.॥ ૩૭॥

हयग्रीवमूर्तिं बिभ्रत्सन् रजस्तमोरूपौ मधुकैटभाख्यौ हत्वा तस्मै श्रुतिगणान् समर्पितवान्। तत्र हेतुः—**सत्त्वमिति**॥ ३७॥

હયગ્રીવસ્વરૂપ ધારણ કરીને રજોગુણ અને તમોગુણરૂપ મધુ અને કૈટભ નામના અસુરોનો નાશ કરીને તે બ્રહ્માજીને વેદોના સમૂહો સમર્પિત કર્યા હતા. તે માટેનું કારણ— '**सत्त्वम् इति।**'॥ ૩૭॥

एकस्त्वमेवेत्यादिभिरष्टभिः श्लोकैर्यदुक्तं पक्षपातेन रक्षणं तद्विपक्षवधश्च सत्त्वौपाधिको न तु स्वत इति तदुपसंहरति—**इत्थमिति**।

'**एकस्त्वमेव इति।**' (શ્લોક-૩૦) વગેરે આઠ શ્લોકો વડે પક્ષપાત દ્વારા કરવામાં આવેલું રક્ષણ અને તેના વિપક્ષનો વધ સત્ત્વગુણની ઉપાધિવાળા હોવાને કારણે થયો છે પરંતુ સ્વતઃ નથી, એ રીતે તેનો ઉપસંહાર કરે છે— '**इत्थम् इति।**'

इत्थं नृतिर्यगृषिदेवझषावतारै-
र्लोकान् विभावयसि हंसि जगत्प्रतीपान्।
धर्मं महापुरुष पासि युगानुवृत्तं
छन्नः कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ स त्वम्॥ ३८

હે મહાપુરુષ! આમ, મનુષ્ય, પશુ-પક્ષી, ઋષિ, દેવ, જળચર– એવા અવતારો દ્વારા આપ લોકોનું પાલન કરો છો તથા જગતના શત્રુઓનો નાશ કરો છો તેમ જ યુગને અનુરૂપ ધર્મનું પાલન કરો છો, પરંતુ કળિયુગમાં આપ ગુપ્ત રહો છો. આથી (ત્રણ યુગોમાં પ્રકટ થવાને કારણે) આપ ત્રિયુગ નામે (પ્રસિદ્ધ) છો.॥ ૩૮॥

विभावयसि पालयसि। हंसि घातयसि। कलौ तु तन्न करोषि। यतस्तदा त्वं छन्नोऽभवः। अतस्त्रिष्वपि युगेष्वाविर्भावात्स एवंभूतस्त्वं त्रियुग इति प्रसिद्धः॥ ३८॥

'**विभावयसि**' પાલન કરો છો, '**हंसि**' નાશ કરો છો, પરંતુ કળિયુગમાં તેમ નથી કરતા, કારણ કે તે સમયે આપ ગુપ્ત રહો છો. આથી ત્રણ યુગોમાં આવિર્ભાવ પામવાને કારણે, તે આવા આપ ત્રિયુગ નામે પ્રસિદ્ધ છો.॥ ૩૮॥

बा.प्र.—'नृष्ववतारा रामकृष्णादयः, तिर्यक्षु वराहादयः, ऋषिषु परशुरामादयः, देवेषु वामनादयः, झषेषु मत्स्यकूर्मादयः।'

મનુષ્યોમાં રામ, કૃષ્ણાદિ અવતારો, તિર્યક્‌માં વરાહ વગેરે, ઋષિઓમાં પરશુરામ વગેરે, દેવોમાં વામનાદિ, જળચરોમાં મત્સ્ય, કૂર્મ વગેરે (અવતારો છે).

तदेवं भगवतस्तत्त्वं निरूप्य स्वस्य च तद्विचारायोग्यतां निवेदयन्प्रार्थयते—**नैतदिति** त्रिभिः।

नैतन्मनस्तव कथासु विकुण्ठनाथ
सम्प्रीयते दुरितदुष्टमसाधु तीव्रम्।
कामातुरं हर्षशोकभयैषणार्तं
तस्मिन्कथं तव गतिं विमृशामि दीनः ॥ ३९

असाधु बहिर्मुखम्। तीव्रं दुर्धरम्। हर्षशोकभयैरेषणात्रयेण चार्तं दुःखितमपि त्वत्कथासु न संप्रीयते तस्मिन्नेवंभूते मनसि सति कथं तव तत्त्वं विचारयामि॥ ३९ ॥

वंशीधरी—हे विकुण्ठनाथेति। विशेषेण कुण्ठा विषयेष्वाकुला विकुण्ठा मादृशास्तेषां नाथो रक्षकस्त्वमेवासीति भावः।

भ.मनो.—'कामातुरम् विषयैकप्रवणम्'

वंशीधरी—'यद्यपि महाभागवतप्रह्लादस्य मनो न प्राकृतमेतादृशम् 'त्वद्वीर्यगायनरसामृतमग्न-चित्तः' इत्यग्रिमतदुक्तेस्तदपि प्रेम्णो विविधा-विचित्रतरंगवत्त्वेनातिदैन्यादेव प्रेमिलोकस्यैव-मुक्तिर्न विरुध्यते।'

આ પ્રમાણે ભગવત્તત્ત્વનું નિરૂપણ કરીને પોતાની તે માટેની વિચાર કરવાની અયોગ્યતાનું નિવેદન કરીને ત્રણ શ્લોકોથી પ્રાર્થના કરે છે— **'न-एतत्-इति।'**

હે વિકુંઠનાથ! પાપી, દુષ્ટ, બહિર્મુખ, દુઃસહ, કામાતુર તથા એષણાઓથી તેમ જ હર્ષ, શોક અને ભયથી દુઃખી એવું આ (મારું) મન આપની કથાઓમાં અત્યંત પ્રસન્ન થતું નથી. તે મન દુષ્ટ છે ત્યારે (તે મનને અધીન) દીન એવો હું આપના તત્ત્વનો વિચાર કેવી રીતે કરું? ॥ ૩૯ ॥

'असाधु' બહિર્મુખ, **'तीव्रम्'** દુઃસહ, હર્ષ, શોક અને ભય તેમ જ (પુત્ર, વિત્ત અને લોક– એમ) ત્રણ એષણાઓને કારણે **'आर्तम्'** દુઃખી હોવા છતાં પણ (મન) આપની કથાઓમાં અત્યંત પ્રસન્ન થતું નથી. તે મન આવું છે ત્યારે આપના તત્ત્વનો વિચાર હું કેવી રીતે કરું? ॥ ૩૯ ॥

વિષયો પ્રત્યે વ્યાકુળ મારા જેવા જે છે તેમના રક્ષક આપ જ છો, એવો ભાવ છે.

એક માત્ર વિષયો તરફ ઢળેલું અર્થાત્ કામાતુર એવું આ (મન દુષ્ટ છે).

જો કે મહાભાગવત પ્રહ્‍લાદજીનું મન આવું પ્રાકૃત ન હતું, કારણ કે 'આપની લીલાઓના ગાનરૂપ શ્રેષ્ઠ અમૃતમાં જેમનું ચિત્ત મગ્ન છે.' (શ્લોક-૪૩) એમ હવે પછી કહેવામાં આવ્યું છે. તે પણ પ્રેમના વિવિધ અદ્‌ભુત તરંગો હોવાને કારણે અતિ દૈન્યથી જ કહેવાયું છે. પ્રેમીજનને જ મુક્તિ પ્રાપ્ત થાય એમાં વિરોધ આવતો નથી.

जिह्वैकतोऽच्युत विकर्षति माऽवितृप्ता
शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित्।
घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्ति-
र्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति॥ ४०

હે અચ્યુત, અપરિતૃપ્ત જિહ્‌વા મને (મધુરાદિ રસ તરફ) એક બાજુથી ખેંચે છે, ગુહ્યેન્દ્રિય બીજી તરફ (વિષયાદિ ભોગો બાજુ) ખેંચે છે, ત્વચા (સ્પર્શસુખ તરફ), ઉદર (આહાર તરફ), શ્રવણેન્દ્રિય (મધુર શબ્દ તરફ) અને ઘ્રાણેન્દ્રિય બીજે ક્યાંક ખેંચે છે. અન્ય તરફથી ચપળ ચક્ષુ (સુંદર રૂપ તરફ) ખેંચે છે. અનેક સપત્નીઓ જેમ ગૃહસ્થને (પોતાના શયનખંડમાં લઈ જવા માટે ખેંચતાણ કરે,) તેમ કર્મેન્દ્રિયો અલગ-અલગ તરફથી મને ખેંચી રહી છે. ॥ ૪૦ ॥

किंच जिह्वा अवितृप्ता सती भो अच्युत, मा मां यतो मधुरादिरसस्तत आकर्षति। उदरं तु क्षुधासंतप्तं सत् सद्य एव यत्किंचिदाहार-मात्रं प्रति। चपला दृक् चक्षुः। कर्मशक्तिः कर्मेन्द्रियाणि लुनन्ति त्रोटयन्ति॥ ४०॥

વળી, જિહ્‌વા અપરિતૃપ્ત હોઈ, હે અચ્યુત, '**મા**' મને જ્યાં મધુરાદિ રસ છે ત્યાં આકર્ષે છે. ઉદર તો ક્ષુધાથી સંતપ્ત થઈ તરત જ જે કાંઈ માત્ર આહાર છે તેના તરફ – ચપળ '**दृक्**' ચક્ષુ, '**कर्मशक्तिः**' કર્મેન્દ્રિયો '**लुनन्ति**' (અલગ-અલગ દિશામાં) ખેંચે છે. ॥ ૪૦ ॥

वंशीधरी—अतस्त्वत्कीर्तनादाववकाशमेव न प्राप्नोमीति भावः।

આમ, ઈન્દ્રિયો ચોતરફથી ખેંચતાણ કરતી હોવાથી આપના કીર્તનાદિ માટે મને અવકાશ જ પ્રાપ્ત થતો નથી, એવો ભાવ છે.

न केवलमहमेक एवैवं कष्टां दशामापन्नः किंतु महाजनोऽप्येवमेव क्लिश्यत्यतः सर्वं जनं पालयेति प्रार्थयते—**एवमिति**।

કેવળ હું જ એક આવી દુઃખી દશાને પ્રાપ્ત નથી થયો, પરંતુ મોટો જનસમુદાય પણ આ પ્રમાણે ક્લેશ પામે છે. આથી આપ સર્વ જનની રક્ષા કરો, એમ પ્રાર્થના કરે છે— '**एवम् इति**।'

एवं स्वकर्मपतितं भववैतरण्या-
मन्योन्यजन्ममरणाशनभीतभीतम्।
पश्यन् जनं स्वपरविग्रहवैरमैत्रं
हन्तेति पारचर पीपृहि मूढमद्य॥ ४१

આમ, સંસારરૂપી વૈતરણીમાં પોતપોતાનાં કર્મોને કારણે પડેલો મનુષ્ય એકબીજાથી થતાં જન્મ, મરણ અને કર્મભોગથી અત્યંત ભયભીત છે. પોતાનાં અને પારકાનાં શરીરો ઉપર (ભેદભાવથી) કોઈની સાથે વેર અને કોઈની સાથે મૈત્રી કરતા મૂઢ મનુષ્યની (દુર્દશા) જોતા એવા હે નિત્યમુક્ત (પ્રભુ), 'અરેરે, (આને કેવું કષ્ટ છે!'– એમ અનુકંપા કરીને આપ) હમણાં જ (આ) મૂઢ મનુષ્યને ઉગારો. ॥ ૪૧ ॥

भवः संसार एव वैतरणी यमद्वारनदी तस्याम्। अन्योन्यतो यानि जन्मादीनि तेभ्योऽतिभीतम्। स्वेषां परेषां च विग्रहेषु यथायथं वैरं मैत्रं च यस्य। एवं मूढं जनं पश्यंस्त्वम्। हे पारचर, तस्याः पारे स्थित नित्यमुक्त। हन्तेति अहो कष्टमित्येवमनुकम्प्याद्य पीपृहि वैतरणीमुत्तार्य पालय॥ ४१ ॥

'**भवः**' સંસાર એ જ '**वैतरणी**' યમલોકના દ્વારે આવેલી વૈતરણી નદી. તેમાં (કર્મવશાત્) પરસ્પર જે જન્માદિ છે તેનાથી મનુષ્ય અતિ ભયભીત છે. પોતાનાં અને પારકાનાં શરીરો ઉપર ભેદભાવથી કોઈની સાથે વેર અને કોઈની સાથે મૈત્રી છે જેની એવા મૂઢ મનુષ્યની (દુર્દશા) જોતા એવા આપ, '**हे पारचर**' નદીની પારે વિરાજતા હે નિત્યમુક્ત પ્રભુ, '**हन्त इति**। 'અહો! આને કેવું કષ્ટ છે!' એમ અનુકંપા કરીને હમણાં જ વૈતરણી નદીને પાર કરાવીને આપ મૂઢ મનુષ્યની '**पीपृहि**' રક્ષા કરો.॥ ૪૧ ॥

(**पॄ** ધાતુ ગણ-૩, '**पीपृहि**' આજ્ઞાર્થ બી.પુ.એ.વ.)

वंशीधरी—एवमिन्द्रियपरत्वेन क्लिश्यमानम्। पारचरेति। संसारवैतरणीपारचरितक्रीडस्त्व-मेवासीति हेतोरेतं जनमपि तारयेति भावः। 'यस्तस्य पारेऽभिविराजते विभुः' इति गजेन्द्रोक्तेः।' 'आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्' इति श्रुतेश्च।

આમ, મનુષ્ય ઈન્દ્રિયપરાયણ હોવાથી ક્લેશ પામતો હોઈ હે પારચર, સંસારરૂપી વૈતરણીને પારે ક્રીડા કરનાર આપ જ છો, આ કારણે આ મનુષ્યને પણ ઉગારો, એવો ભાવ છે. 'તે અંધકારની પણ પેલી પાર જે વ્યાપક દેવ સર્વ તરફ પ્રકાશે છે.'– (શ્રીમદ્ ભા.૮/૩/૫) એમ ગજેન્દ્રની ઉક્તિ છે તથા શ્રુતિ પણ છે— 'સૂર્ય સમાન તેજસ્વી, અંધકારથી પેલે પાર'— (શુ. ય. મા. સં. ૩૧/૧૮) તથા (તૈ.આ. ૩/૧૨,૧૩)

एकेन मया कथं सर्वो जनस्तारणीय इति चेत्तत्राह—**को न्विति**।

'એકલા મારે સર્વ જનોને કેવી રીતે તારવા?' એમ જો ભગવાન કહે, તો તે માટે પ્રહ્લાદજી કહે છે— '**कः नु इति**।'

को न्वत्र तेऽखिलगुरो भगवन्प्रयास
उत्तारणेऽस्य भवसम्भवलोपहेतोः।
मूढेषु वै महदनुग्रह आर्तबन्धो
किं तेन ते प्रियजनाननुसेवतां नः॥ ४२

હે સમગ્ર જગતના ગુરુ, હે સર્વસમર્થ (ભગવાન), આ વિશ્વની ઉત્પત્તિ, સ્થિતિ અને સંહારના કારણરૂપ આપને આ જગતનો ઉદ્ધાર કરવામાં શો પ્રયત્ન કરવાનો છે? હે દીનબંધુ, મૂઢ જનો ઉપર મહાન પુરુષોનો અનુગ્રહ (ઉચિત જ છે, કારણ કે) આપના પ્રિય ભક્તોની સેવા કરનારાઓ એવા અમને આપ તે સંસારથી તારો એમાં શું આશ્ચર્ય છે?॥ ૪૨ ॥

को नु ते अत्र सर्वजनोत्तारणे प्रयासो न कोऽपि। कुतः।

अस्य विश्वस्य भवसंभवलोपानामुत्पत्ति-स्थितिसंहाराणां हेतोः ततोऽपि किमेतद्दुष्कर-मिति भावः। उचितं चैतदित्याह—**मूढेष्विति**।

त्वां च त्वदीयांश्च तारयिष्यामीमं दुराग्रहं मा कृथा इति चेत्तत्राह—तव ये प्रियजना भक्तास्ताननुसेवमानानां नोऽस्माकं तेनोत्तारणेन किम्।

*'कोऽतिप्रयासोऽसुरबालका हरेः
को न्वत्र तेऽखिलगुरो भगवन्प्रयासः।
प्रह्राद इत्थमुपमन्त्र्य मिथो नराणा-
मीशेन सख्यमकरोदपनीय मायाम्'॥ ४२॥

वत्स प्रह्राद, त्वां तावत्तारयिष्यामि तावतैव कृतार्थः स्याः, किमनेन निर्बन्धेनेत्यत आह—**नैवेति**।

'**अत्र**' સર્વ જનોનો ઉદ્ધાર કરવામાં આપને શો પ્રયત્ન કરવાનો છે? કશો જ નહીં. શા માટે?

આ વિશ્વની '**भवसम्भवलोपानाम्**' ઉત્પત્તિ, સ્થિતિ અને સંહારના કારણરૂપ એવા આપને આ કાર્ય તેનાથી પણ શું દુષ્કર છે, એવો ભાવ છે અને આ ઉચિત જ છે, એમ કહે છે—'**मूढेषु इति**।'

'તને તથા તારા પોતાના જનોને હું તારીશ, એવો દુરાગ્રહ કરીશ નહીં.' એમ જો ભગવાન કહે, તો તે માટે કહે છે— આપના જે '**प्रियजनाः**' ભક્તો છે તેમની સદાય સેવા કરનારા '**नः**' અમને '**तेन**' તે (સંસારથી) તારવામાં શું આશ્ચર્ય છે? (આપના પ્રિયજનોની સેવાથી અમારો ઉદ્ધાર થાય તેમાં આશ્ચર્ય નથી.)

'હે અસુર બાળકો, શ્રીહરિની ઉપાસના કરવામાં એવો કયો મોટો શ્રમ છે?' (શ્રીમદ્ ભા.૭/૭/૩૮) (એમ પ્રહ્લાદજી એકબાજુ અસુર બાળકોને કહે છે અને તેઓ બીજી બાજુ ભગવાનને પણ કહે છે કે) હે અખિલગુરુ, સર્વ જનોને તારવામાં આપને શો પ્રયત્ન કરવાનો છે? આમ, વિચારીને પ્રહ્લાદજી મનુષ્ય અને ભગવાન વચ્ચે માયા દૂર કરીને સખ્ય(ની ભાવના ઉત્પન્ન) કરે છે.॥ ૪૨॥

વત્સ પ્રહ્લાદ, તને હું અવશ્ય તારીશ, માટે એટલાથી જ તું પોતાને કૃતાર્થ માન. (અન્ય જનો માટે આવો) આ આગ્રહ શા માટે રાખે છે? આ માટે પ્રહ્લાદજી કહે છે—'**न-एव इति**।'

* પહેલું ચરણ ઇન્દ્રવંસાનું છે, પણ બાકીનાં ત્રણ ચરણ વસંતતિલકાનાં છે. શ્રીધરસ્વામીનો આ શ્લોક છે. પ્રથમ બે ચરણ ભાગવતનાં છે, ૭/૭/૩૮ અને ૭/૯/૪૨ બાકીનાં બે ચરણ શ્રીધરસ્વામીનાં.

नैवोद्विजे पर दुरत्ययवैतरण्या-
स्त्वद्वीर्यगायनमहामृतमग्नचित्तः।
शोचे ततो विमुखचेतस इन्द्रियार्थ-
मायासुखाय भरमुद्वहतो विमूढान्॥ ४३

હે સર્વોત્તમ, આપના પ્રભાવના ગાનરૂપ શ્રેષ્ઠ અમૃતમાં જેનું ચિત્ત મગ્ન છે એવો હું સંસારરૂપી દુસ્તર વૈતરણીથી ભય પામતો જ નથી. તે શ્રેષ્ઠ અમૃતથી જેમનું ચિત્ત વિમુખ છે તેવા, ઇન્દ્રિયોના વિષયોના મિથ્યા સુખ માટે (કુટુમ્બાદિનો) ભાર ઉપાડનારા મૂઢ મનુષ્યોને માટે હું શોક કરું છું.॥૪૩॥

हे पर सर्वोत्तम, त्वद्वीर्यगायनमेव महामृतं तस्मिन्मग्नं चित्तं यस्य सोऽहं भववैतरण्याः नैवोद्विजे किंतु विमूढान्शोचामि। तानेवाह— ततो महामृताद्विमुखं चेतो येषाम्। प्रत्युतेन्द्रि-यार्थनिमित्तं यन्मायासुखं तदर्थं भरं कुटुम्बादिभारमुद्वहतः॥ ४३॥

‘**हे पर**’ હે સર્વોત્તમ, આપના પ્રભાવનું ગાન એ જ શ્રેષ્ઠ અમૃત, તેમાં જેનું ચિત્ત મગ્ન છે એવો હું સંસારરૂપી વૈતરણીથી ભય પામતો જ નથી, પરંતુ હું તો અતિમૂઢ જનોને માટે શોક કરું છું. તેમને માટે જ કહે છે— ‘**ततः**’ તે શ્રેષ્ઠ અમૃતથી વિમુખ છે ચિત્ત જેમનું– ઊલટું, ઇન્દ્રિયોના વિષયો માટે જે મિથ્યા સુખ છે, તે માટે ‘**भरम्**’ કુટુંબ વગેરેનો ભાર તેઓ ઉપાડે છે, તેમને માટે (હું શોક કરું છું).॥૪૩॥

त्वं तावन्मुक्तिं गृहाण तांस्तु तत्त्वज्ञा मुनय उपदेक्ष्यन्तीति चेत्तत्राह—**प्रायेणेति**।

‘તું પહેલાં મુક્તિ લઈ લે. તે મૂઢ જનોને તો તત્ત્વજ્ઞાની મુનિજનો ઉપદેશ આપશે.’ એમ જો (ભગવાન) કહે, તો તે માટે પ્રહ્‌લાદજી કહે છે— ‘**प्रायेण इति।**’

प्रायेण देव मुनयः स्वविमुक्तिकामा
मौनं चरन्ति विजने न परार्थनिष्ठाः।
नैतान्विहाय कृपणान्विमुमुक्ष एको
नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये॥ ४४

હે દેવ, પોતાની મુક્તિ ઇચ્છનારા મુનિઓ મૌન ધારણ કરીને એકાંતમાં વિચરે છે. ઘણું કરીને તેઓ પરોપકાર માટે તત્પર હોતા નથી. આ દીનજનોને છોડીને હું એકલો જ મુક્તિ ઇચ્છતો નથી. (સંસારમાં) ભટકતા આ (અસહાય જનસમુદાય)નું આપના સિવાય અન્ય કોઈ શરણ હું જોતો નથી.॥૪૪॥

न विमुमुक्षे विमुक्तिं नेच्छामि। तर्ह्यन्यं कमपि प्रार्थय मामेव किमिति। निर्बध्नासीति चेदत आह—त्वत्तोऽन्यमस्य जनस्य शरणं न पश्यामि॥ ४४॥

‘**न विमुमुक्षे**’ મુક્તિ ઇચ્છતો નથી. ‘તો પછી બીજા કોઈને પ્રાર્થના કર, શા માટે મને જ આગ્રહ કરે છે?’ એમ જો ભગવાન કહે, તો તે માટે જણાવે છે— આ જનસમુદાયનું આપના સિવાય અન્ય કોઈ શરણ હું જોતો નથી.॥૪૪॥

अन्वि.—प्रायग्रहणान्नारदादीनां परार्थनिष्ठत्वं सूचितम्।

નારદજી વગેરે મુનિજનો બીજાના ઉદ્ધાર માટે તત્પર હોય છે, માટે '**प्रायः**' શબ્દ ગ્રહણ કરવામાં આવ્યો છે.

नन्वेते स्त्रीसंभोगादिना सुखिन एव न कृपणास्तत्राह—**यदिति**।

શંકા કરવામાં આવી છે કે આ (સંસારીઓ) સ્ત્રીસંભોગ વગેરે દ્વારા સુખી જ છે, (જરાય) દીન નથી. તે માટે કહે છે— '**यत् इति**।'

यन्मैथुनादि गृहमेधिसुखं हि तुच्छं
कण्डूयनेन करयोरिव दुःखदुःखम्।
तृप्यन्ति नेह कृपणा बहुदुःखभाजः
कण्डूतिवन्मनसिजं विषहेत धीरः॥ ४५

ગૃહસ્થનું જે મૈથુનાદિ સુખ છે તે તુચ્છ જ છે. બંને હાથથી ખણવાને કારણે જેમ દુઃખ ઉપર દુઃખ જ ઉત્પન્ન થાય છે, તેમ મૈથુનાદિ સુખ (રોગરૂપ) દુઃખ જ દુઃખ ઉત્પન્ન કરાવે છે. વિષયાસક્ત મનુષ્યો અતિદુઃખના ભાગીદાર થવા છતાં આ સુખોથી ધરાતા નથી. કોઈક ધૈર્યવાન મનુષ્ય જ ખંજવાળની જેમ કામ(ના વેગ)ને સહન કરે છે. ॥ ૪૫ ॥

करयोः कण्डूयनेन संघर्षणेनेव दुःखमनु दुःखं यस्मिन्।

'**करयोः**' બંને હાથથી '**कण्डूयनेन**' ખણવાને કારણે ઘર્ષણ થવાથી, (પહેલાં થોડા સુખનો ભ્રમ થાય પણ) પાછળથી જેમાં દુઃખ ઉપર દુઃખ જ ઉત્પન્ન થાય છે.

तर्हि दुःखत्वादेव ततो निर्विद्य मुच्येरंस्तत्राह—कृपणाः कामुका बहुदुःख-भाजोऽपीह गृहमेधिसुखे न तृप्यन्त्यलमिति न मन्यन्ते। कण्डूतिवत्कामस्य दुःसहत्वात्।

તો પછી દુઃખરૂપ હોવાથી તેનાથી કંટાળીને સંસારીઓએ છૂટી જવું જોઈએ. તો તે માટે કહે છે— '**कृपणाः**' (વિષયાસક્ત હોવાથી તેઓ) બિચારા અતિ દુઃખના ભાગીદાર થવા છતાં પણ આ સંસારમાં ગૃહસ્થનાં સુખોથી ધરાતા નથી. 'હવે બહુ થયું, બસ' એમ સમજતા નથી, કારણ કે ખંજવાળની જેમ કામ દુઃસહ છે.

ननु केचित्कण्डूतिमपि सहन्ते कामं चेत्यत्राह—त्वत्प्रसादात्तु कश्चिद्धीर एव मनसिजं कामं विषहेत न तु सर्वे। अत्रापि कण्डूतिवदिति दृष्टान्तः॥ ४५॥

(પ્રશ્ન કરે છે કે) કેટલાક ખંજવાળની જેમ કામને પણ સહન કરે જ છે ને? તો તે માટે ઉત્તર આપે છે— આપની કૃપાથી જ કોઈક ધીર '**मनसिजम्**' કામને સહન કરે છે, પરંતુ સર્વે સહન કરી શકતા નથી. અહીં પણ ખંજવાળની જેમ, એ પ્રમાણે દૃષ્ટાન્ત લેવું! ॥ ૪૫ ॥

'कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्॥' (कठ. २।१।१)

ननु मौनादिभिर्मोक्षसाधनैः सुलभैव तेषामपि मुक्तिस्तत्राह—**मौनेति**।

मौनव्रतश्रुततपोऽध्ययनस्वधर्म-
व्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्याः।
प्रायः परं पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणां
वार्ता भवन्त्युत न वात्र तु दाम्भिकानाम्॥ ४६

हे पुरुष अन्तर्यामिन्, ये मौनादयो दश आपवर्ग्या अपवर्गहेतवः प्रसिद्धाः। रहो विविक्तवासः। ते तु प्रायशोऽजितेन्द्रियाणामिन्द्रियभोगायार्थार्थं विक्रीणतां वार्ता जीवनोपाया भवन्ति। दाम्भिकानां तु वार्ता अपि भवन्ति वा न वा। दम्भस्यानियतफलत्वात्॥ ४६॥

बा.प्र.—केषाञ्चिद्भगवदनुगृहीतानां जितेन्द्रियाणां तु मौनादयो दशधर्माः मोक्षहेतवोऽपि भवन्तीति प्रायोग्रहणम्।

मौनं तूष्णीम्भावः। व्रतानि एकादश्युपवासादीनि। श्रुतं कथाश्रवणम्। तपः कृच्छ्रादि। शास्त्राध्ययनम्। स्वस्ववर्णा-

અમરત્વની ઈચ્છા કરતો મનુષ્ય પોતાની ઈન્દ્રિયોને રોકી લે છે. તેવો કોઈ વિવેકી પુરુષ જ અન્તરાત્માને જોઈ શકે છે.

શંકા કરવામાં આવી છે કે મૌન વગેરે મોક્ષનાં સાધનો દ્વારા તો તે સંસારીઓને પણ મુક્તિ સુલભ છે. તે માટે ઉત્તર આપે છે—**'मौन इति।'**

હે અંતર્યામી! મૌન, વ્રત, શ્રવણ, તપ, અધ્યયન, સ્વધર્માચરણ, શાસ્ત્રોની વ્યાખ્યા, એકાંતવાસ, જપ તથા સમાધિ (આ દસ) મોક્ષનાં સાધનો છે, તે તો આ સંસારમાં ઘણું કરીને અજિતેન્દ્રિય પુરુષો માટે કેવળ આજીવિકાનાં સાધનો બને છે. દંભીજનો માટે તો તે આજીવિકાનાં સાધનો બને કે ન પણ બને.॥ ૪૬॥

'हे पुरुष' હે અંતર્યામી, મૌન વગેરે **'आपवर्ग्याः'** મોક્ષ પ્રાપ્ત કરવા માટેનાં જે દસ પ્રસિદ્ધ ઉપાયો છે. **'रहः'** એકાંતવાસ– તે ઉપાયો તો ઘણું કરીને અજિતેન્દ્રિય મનુષ્યોના ઈન્દ્રિયભોગ માટે, ધન માટે તેમને વેચનારાઓની **'वार्ताः'** આજીવિકાનાં સાધનો બને છે. દંભી મનુષ્યોને તો તે ઉપાયો આજીવિકાનાં સાધનરૂપ બને કે ન પણ બને, કારણ કે (દંભ ઉઘાડો પડી જતાં આજીવિકા ન થવાથી) દંભનું ફળ ચોક્કસ નથી હોતું.॥ ૪૬॥

ભગવદનુગ્રહ પામેલા કેટલાક જિતેન્દ્રિય મનુષ્યો માટે મૌન વગેરે દસ ધર્મો મોક્ષનાં કારણો પણ બને છે એટલે **'प्रायः'** શબ્દ લેવામાં આવ્યો છે.

શાન્ત રહેવાનો ભાવ એટલે મૌન, એકાદશી વગેરે ઉપવાસો કરવા એટલે વ્રતો, ભગવાનની કથા સાંભળવી એટલે શ્રવણ, કૃચ્છ્ર ચાન્દ્રાયણાદિ વ્રતો કરવાં એટલે તપ, અધ્યયન

श्रमानुसारेण विहितो धर्मः। व्याख्या ग्रन्थव्याख्यानम्। रहो विविक्तवासः। जपो मन्त्रानुष्ठानम्। समाधिर्मनस ऐकाग्र्यतया (ऐकाग्र्येण) देवताचिन्तनम्।

એટલે શાસ્ત્રોનું અધ્યયન, સ્વધર્મ એટલે પોત-પોતાના વર્ણ અને આશ્રમ અનુસાર શાસ્ત્ર દ્વારા કહેવામાં આવેલો ધર્મ, વ્યાખ્યા એટલે ધર્મગ્રન્થોનું વ્યાખ્યાન, રહઃ એટલે એકાંતવાસ, જપ એટલે મંત્રનું અનુષ્ઠાન, સમાધિ એટલે મનનું એકાગ્રતાપૂર્વક ભગવચ્ચિંતન.

त्वज्ज्ञानं भक्तिं विना सकामैर्मौनादिभिर्न भवत्येवेत्याह—**रूपे इति** त्रिभिः।

સકામ મનુષ્યો દ્વારા ભક્તિ વિના કરવામાં આવેલાં મૌનાદિ સાધનો દ્વારા આપનું જ્ઞાન થતું નથી, એમ ત્રણ શ્લોકોથી કહે છે— '**रूपे इति।**'

रूपे इमे सदसती तव वेदसृष्टे
बीजाङ्कुराविव न चान्यदरूपकस्य।
युक्ताः समक्षमुभयत्र विचिन्वते त्वां
योगेन वह्निमिव दारुषु नान्यतः स्यात्॥ ४७

(બીમાંથી અંકુર અને અંકુરમાંથી બી, એમ) બી અને અંકુર જેવાં કારણ અને કાર્ય, આ જ આપનાં બે સ્વરૂપો વેદે પ્રકાશિત કર્યાં છે. પ્રાકૃતરૂપાદિથી રહિત એવા આપનું બીજું કોઈ સ્વરૂપ નથી. જિતેન્દ્રિય ભક્તો જ ભક્તિયોગથી, કાષ્ઠમાં (મંથન દ્વારા) અગ્નિ પ્રાપ્ત થાય તેમ કાર્ય અને કારણ– બંનેમાં અનુગત રહેલા આપને પ્રત્યક્ષ નિહાળે છે. (આમ, ભક્તિ સિવાય) બીજી કોઈ રીતે આપનું જ્ઞાન થતું નથી.॥ ૪૭॥

बीजाङ्कुराविव प्रवाहापन्ने इमे सदसती कार्यकारणे एव ते रूपे उपलक्षणभूते वेदेन सृष्टे प्रकाशिते, न च अन्यत् स्वसमवेतं गौरत्वादिकमिव देवदत्तादेः।

બી અને અંકુરની જેમ પ્રવાહમાં આવેલાં '**सत्-असती**' કારણ અને કાર્ય, આ બે જ તરીકે ઉપલક્ષિત થતાં આપનાં રૂપો વેદ દ્વારા '**सृष्टे**' પ્રકાશિત કરવામાં આવ્યાં છે. દેવદત્ત વગેરેનાં પોતાની સાથે સમવાય સંબંધથી જોડાયેલાં ગૌરત્વ (શ્યામત્વ) વગેરે જેવાં અન્ય રૂપો ભગવાનને ન હોય.

कुतः। अरूपकस्य प्राकृतरूपादिशून्यस्य, अतो युक्ताः संयता एव भक्तियोगेन प्रत्यक्षं त्वामुभयत्र कार्ये कारणे

શા માટે? '**अरूपकस्य**' પ્રાકૃતરૂપાદિથી રહિત એવા આપનું (બીજું કોઈ રૂપ નથી.), આથી '**युक्ताः**' જિતેન્દ્રિય ભક્તો જ ભક્તિયોગથી '**उभयत्र**' કાર્ય અને કારણ– બંનેમાં અનુગત રહેલા

चानुगतं पश्यन्ति मथनेन दारुषु वह्निमिव। नान्यतः स्यात्त्वज्ज्ञानमिति शेषः।

આપને કાષ્ઠમાં મંથન કરવાથી અગ્નિ પ્રાપ્ત થાય તેમ નિહાળે છે. **'न-अन्यतः'** (ભક્તિ સિવાય) બીજી કોઈ રીતે આપનું જ્ઞાન થતું નથી, એટલું શેષ છે.

यद्वा ज्ञानप्रकारमेवाह—एतदुभयमन्यतः प्रधानपरमाण्वादेर्न स्यात्। 'स ऐक्षत' इत्यादि-श्रुतेः। अतस्त्वमेव कारणत्वात्सर्वत्रानुस्यूत इति ॥ ४७ ॥

અથવા જ્ઞાનનો પ્રકાર જ જણાવે છે. આ બંને કાર્ય-કારણરૂપ જગત **'अन्यतः'** પ્રધાન (સાંખ્ય) કે પરમાણુ (વૈશેષિક) વગેરેથી ઉત્પન્ન થતું નથી. 'તે પરમાત્માએ વિચાર કર્યો' (માત્ર ચૈતન્ય જ વિચાર કરી શકે) (બૃહદા.ઉપ.૧/૨/૫) વગેરે શ્રુતિ છે. આથી આપ જ કારણરૂપે સર્વત્ર વ્યાપેલા છો. ॥ ૪૭ ॥

तदेवाह—**त्वं वायुरिति**।

'तत्' તે (સર્વસ્વરૂપ) આપ જ છો, એમ કહે છે— **'त्वं वायुः इति।'**

त्वं वायुरग्निरवनिर्वियदम्बुमात्राः
प्राणेन्द्रियाणि हृदयं चिदनुग्रहश्च।
सर्वं त्वमेव सगुणो विगुणश्च भूमन्
नान्यत् त्वदस्त्यपि मनोवचसा निरुक्तम्॥ ४८

હે (મહત્તમ) ભૂમા! વાયુ, અગ્નિ, પૃથ્વી, આકાશ, જળ, શબ્દાદિ (પાંચ) વિષયો, પ્રાણ, ઈન્દ્રિયો, મન, ચિત્ત અને અહંકાર, સ્થૂળ અને સૂક્ષ્મ સર્વ કાંઈ આપ જ છો. મન અને વાણી દ્વારા જે કાંઈ નિરૂપિત કરવામાં આવે છે, તે સર્વ આપનાથી જુદું નથી. ॥ ૪૮ ॥

हृदयं मनः। चिच्चित्तम्। अनुग्रहोऽहंकारो देवतावर्गो वा। सगुणः स्थूलः। विगुणः सूक्ष्मः। मनश्च वचश्च मनोवचस्तेन निरुक्तं प्रकाशितं किमपि त्वत्तोऽन्यन्नास्ति॥ ४८ ॥

'हृदयम्' મન, **'चित्'** ચિત્ત, **'अनुग्रहः'** અહંકાર અથવા દેવતાવર્ગ, **'सगुणः'** સ્થૂળ, **'विगुणः'** સૂક્ષ્મ– **'मनोवचः'** મન અને વાણી (સમાહાર દ્વન્દ્વ સમાસ), તેના દ્વારા **'निरुक्तम्'** પ્રકાશિત જે કાંઈ છે તે આપનાથી જુદું નથી. ॥ ૪૮ ॥

वंशीधरी—सर्वस्वरूपत्वादेव तव भूमत्वम-स्तीति भावः।

સર્વસ્વરૂપત્વ હોવાથી જ આપનું ભૂમત્વ (અનંતત્વ, મહત્તમત્વ) છે, એવો ભાવ છે.

अभक्तास्तु स्वस्मिन्ननुगतमपि त्वां न जानन्तीत्याह—**नैत इति**।

પોતાની અંદર જ રહેલા હોવા છતાં અભક્તો આપને જાણી શકતા નથી, એમ કહે છે— **'न-एते इति।'**

नैते गुणा न गुणिनो महदादयो ये
सर्वे मनःप्रभृतयः सहदेवमर्त्याः।
आद्यन्तवन्त उरुगाय विदन्ति हि त्वा-
मेवं विमृश्य सुधियो विरमन्ति शब्दात्॥ ४९

જેમની કીર્તિનું શાસ્ત્રોમાં અનેક રીતે ગાન કરવામાં આવ્યું છે તેવા હે (અનંતકીર્તિ સર્વાત્મા), આ (સત્ત્વાદિ ત્રણ) ગુણો, તેમના અભિમાની દેવતાઓ, જે મહત્ વગેરે તત્ત્વો છે તે, દેવતા અને મનુષ્યો સહિત મન (બુદ્ધિ, ઈન્દ્રિયો) વગેરે આદિ અને અંતવાળાં સર્વ કોઈ (આદિ અને અંતરહિત એવા) આપને જાણી શકતાં નથી. આમ, વિચાર કરીને વિદ્વાનો શબ્દ(ની માયા)થી ઉપરત થઈ જાય છે.॥ ૪૯॥

एते गुणाद्यभिमानिनो देवा आद्यन्तवन्तो जडोपाधित्वादनाद्यन्तं निरुपाधिं त्वां न विदन्ति।

આ (સત્ત્વાદિ ત્રણ) ગુણો, ગુણો વગેરેના અભિમાની દેવતાઓ જડની ઉપાધિવાળા હોવાથી તેઓ આદિ અને અંતવાળા છે. અનાદિ, અનંત, નિરુપાધિ એવા આપને તેઓ જાણી શકતા નથી.

हि यस्मात्सुधियो विद्वांस एवं विचार्य शब्दादध्ययनादिव्यापारादुपरमन्ति। त्वामेव समाधिनोपासत इत्यर्थः।

'**हि**' આથી જ '**सुधियः**' વિદ્વાનો આમ વિચારીને '**शब्दात्**' અધ્યયન (અધ્યાપન) વગેરે કાર્યથી ઉપરત થઈ જાય છે. સમાધિ (ચિત્તની એકાગ્રતા) દ્વારા કેવળ આપની જ ઉપાસના કરે છે, એમ અર્થ છે.

तथा च श्रुतिः—'किमर्था वयमध्येष्यामहे किमर्था वयं यक्ष्यामहे' इति।

તે અનુસાર શ્રુતિ છે— 'આપણે શા માટે અભ્યાસ કરીશું? આપણે શા માટે યજ્ઞ કરીશું?' (૩/ઐત.૨/૬/૩)

(तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणाः।)
'नानुध्यायेद्बहून् शब्दान्वाचो विग्लापनं हि तत्' इति।

(બુદ્ધિમાન બ્રાહ્મણે તે બ્રહ્મને જ જાણીને તેનામાં જ બુદ્ધિ પરોવવી જોઈએ.) 'ઘણાં શબ્દોનો વિચાર કરવો નહીં, કારણ કે તે વાણીને કેવળ શ્રમ અને પીડા આપનારા છે.' (બૃહદા.ઉપ.૪/૪/૨૧)

स्मृतिश्च—
'यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च॥'
इत्यादिः॥ ४९॥

સ્મૃતિ (ગીતા) પણ કહે છે— '(હે અર્જુન,) જ્યારે તારી બુદ્ધિ મોહરૂપી કળણ (અજ્ઞાનજન્ય મલિનતા, હું અને મારું– એવા અજ્ઞાનથી ઉત્પન્ન થતા કળણ)ને સંપૂર્ણપણે તરી જશે, ત્યારે તું સાંભળવા યોગ્ય અને સાંભળેલા (શબ્દજાળરૂપ શાસ્ત્રો)થી વૈતૃષ્ણ્ય-નિર્વેદ (કંટાળો) પ્રાપ્ત કરીશ.' (ગીતા.૨/૫૨) વગેરે॥ ૪૯॥

वंशीधरी—हे उरुगायेति। सर्ववेदशास्त्रेतिहासपुराणादिभिर्यो गीयते तमहं कथं स्तौमीति भावः।

જેમની કીર્તિગાથા સર્વ વેદ, શાસ્ત્ર, ઈતિહાસ, પુરાણ વગેરે દ્વારા ગવાય છે, તે ઉરુગાય ભગવાનનું હું કેવી રીતે સ્તવન કરું, એવો ભાવ છે.

उपसंहरति—**तदिति**।

ઉપસંહાર કરે છે— '**तत् इति।**'

तत् तेऽर्हत्तम नमःस्तुतिकर्मपूजाः
कर्म स्मृतिश्चरणयोः श्रवणं कथायाम्।
संसेवया त्वयि विनेति षडङ्गया किं
भक्तिं जनः परमहंसगतौ लभेत॥ ५०

તેથી હે પૂજ્યતમ! નમસ્કાર, સ્તુતિ, સમસ્ત કર્મોનું સમર્પણ, સમુચિત સેવા, આપનાં ચરણકમળોનું ચિંતન અને આપની લીલાકથાઓનું શ્રવણ– આ છ અંગોવાળી આપની સુંદર સેવા વિના મનુષ્ય પરમહંસોને પામવા યોગ્ય એવા આપના વિષે ભક્તિ કેવી રીતે પ્રાપ્ત કરે? ॥ ૫૦॥

हे अर्हत्तम, नमःस्तुतिकर्मपूजाः प्रणिपातस्तुतिसर्वकर्मार्पणानि, कर्म च परिचर्या, चरणयोः स्मृतिश्च, कथायां श्रवणं चेत्येवं षडङ्गया सम्यक्सेवया विना परमहंसानां गतौ प्राप्ये त्वयि जनः कथं भक्तिं लभेत। यस्मादेवं भक्तिं विना न मोक्षो न च भक्तिः संसेवया विना, अतः प्राक् प्रार्थितं त्वद्दास्ययोगमेव देहीति प्रकरणार्थः॥ ५०॥

હે પૂજ્યતમ, '**नमः स्तुतिकर्मपूजाः**' (૧) **नमः** એટલે પ્રણિપાત– નમસ્કાર, (૨) સ્તુતિ (૩) આપને જ સર્વ કર્મોના સમર્પણરૂપ પૂજા (૪) અને કર્મ એટલે પરિચર્યા (સેવા) (૫) આપનાં ચરણોનું સ્મરણ તથા (૬) આપની કથાઓનું શ્રવણ. આમ, છ અંગોવાળી આપની સમુચિત સેવા વિના મનુષ્ય '**परमहंसानां गतौ**' પરમહંસોને પામવા યોગ્ય એવા આપના વિષે ભક્તિ કેવી રીતે પ્રાપ્ત કરે? આમ હોવાથી ભક્તિ વિના મોક્ષ ન હોઈ શકે અને આપની સુંદર સેવા વિના ભક્તિ ન હોઈ શકે, આથી પહેલાં માગવામાં આવેલો આપનો દાસ્યયોગ જ મને આપો, એમ પ્રકરણનો અર્થ છે.॥ ૫૦॥

'महत्तम' इति वीर. पाठः।

'**तत्तेऽर्हत्तम**' ને બદલે વીર. ની ટીકામાં '**तत्ते महत्तम**' પાઠ છે.

नारद उवाच

एतावद्वर्णितगुणो भक्त्या भक्तेन निर्गुणः।
प्रह्लादं प्रणतं प्रीतो यतमन्युरभाषत॥ ५१

નારદજી બોલ્યા – ભક્ત દ્વારા ભક્તિપૂર્વક જેમના આટલા (અનંત) ગુણો વર્ણવવામાં આવ્યા છે, તે પ્રસન્ન થયેલા નિર્ગુણ ભગવાન ક્રોધ શાંત કરી, પ્રણત થયેલા પ્રહ્લાદજીને કહેવા લાગ્યા.॥ ૫૧॥

एतावन्तो वर्णिता गुणा यस्य।
यतमन्युरुपसंहृतकोपः ॥ ५१ ॥

बा.प्र.—‘एतावच्छब्देन गुणानामानन्त्यं सूचितम्। ननु वर्णितगुण इत्युक्तेर्भगवतोऽपि किं प्राकृतगुणवत्त्वमस्तीत्यपेक्षायामाह—निर्गुण इति प्राकृतगुणरहित इत्यर्थः।’

श्रीभगवानुवाच

प्रह्लाद भद्र भद्रं ते प्रीतोऽहं तेऽसुरोत्तम।
वरं वृणीष्वाभिमतं कामपूरोऽस्म्यहं नृणाम्॥ ५२

कामान्पूरयतीति तथा। यद्वा पुरुषार्थ-प्रवाहोऽस्मीत्यर्थः ॥ ५२ ॥

मामप्रीणत आयुष्मन्दर्शनं दुर्लभं हि मे।
दृष्ट्वा मां न पुनर्जन्तुरात्मानं तप्तुमर्हति॥ ५३

अप्रीणतः अप्रीणयतः। तप्तुमपूर्णकाम-त्वेन शोचितुम्॥ ५३ ॥

प्रीणन्ति ह्यथ मां धीराः सर्वभावेन साधवः।
श्रेयस्कामा महाभागाः सर्वासामाशिषां पतिम्॥ ५४

प्रीणन्ति तोषयन्ति॥ ५४ ॥

एवं प्रलोभ्यमानोऽपि वरैर्लोकप्रलोभनैः।
एकान्तित्वाद् भगवति नैच्छत् तानसुरोत्तमः॥ ५५

एकान्तित्वान्निरुपाधिभक्तत्वात्॥ ५५ ॥

આટલા ગુણો જેમના વર્ણવવામાં આવ્યા છે તેવા તથા ‘**यतमन्युः**’ જેમણે ક્રોધને શાંત કર્યો છે તેવા ભગવાન॥ ૫૧ ॥

આટલા ગુણો– શબ્દ દ્વારા ભગવાનના ગુણોનું આનન્ત્ય સૂચિત થાય છે. શંકા કરવામાં આવી છે કે વર્ણવવામાં આવેલા ગુણો, એમ કહેવાથી શું ભગવાન પણ પ્રાકૃત ગુણોવાળા છે? તે માટે કહે છે કે ભગવાન નિર્ગુણ છે અર્થાત્ પ્રાકૃત ગુણોથી રહિત છે.

શ્રીભગવાન બોલ્યા – હેકલ્યાણકારી પ્રહ્‌લાદ, તારું કલ્યાણ થાઓ! હે અસુરશ્રેષ્ઠ, હું તારી ઉપર પ્રસન્ન થયો છું. તું ઈચ્છિત વર માગ. હું ભક્તોની કામનાઓ પૂર્ણ કરનાર પ્રવાહરૂપ છું.॥ ૫૨ ॥

કામનાઓ પૂર્ણ કરે તેવા ભગવાન અથવા હું ચાર પ્રકારના પુરુષાર્થોનો ‘**पूरः**’ પ્રવાહ છું, એમ અર્થ છે.॥ ૫૨ ॥

હે આયુષ્યમાન, મને પ્રસન્ન ન કરનાર મનુષ્યને મારાં દર્શન દુર્લભ જ છે. મારાં દર્શન કર્યા પછી મનુષ્ય પોતાને (અપૂર્ણકામ તરીકે) શોક કરવા યોગ્ય રહેતો નથી.॥ ૫૩ ॥

‘**अप्रीणतः**’ **अप्रीणयतः** મને પ્રસન્ન ન કરતા મનુષ્યને, ‘**तप्तुम्**’ અપૂર્ણકામ તરીકે શોક કરવા માટે॥ ૫૩ ॥

આથી જ કલ્યાણકામી, મહાભાગ્યશાળી, જિતેન્દ્રિય સાધુજનો (દાસ્ય, સખ્ય વગેરે) સર્વ ભાવોથી સમસ્ત કામનાઓના સ્વામી એવા મને પ્રસન્ન કરે છે.॥ ૫૪ ॥

‘**प्रीणन्ति**’ પ્રસન્ન કરે છે.॥ ૫૪ ॥

આ પ્રમાણે લોકોને પ્રલોભનમાં નાખનારાં વરદાનોથી પ્રલોભિત કરવામાં આવેલા અસુર-શિરોમણિ પ્રહ્‌લાદજી ભગવાનમાં અનન્ય ભક્તિ-વાળા હોવાથી તેમણે તે વરદાનોની ઈચ્છા કરી નહીં.॥ ૫૫ ॥

'एकान्तिनो यस्य न कञ्चनार्थं वांच्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः।' (श्रीमद्भा. ८।३।२०)

'एकान्तित्वात्' એકમાં જ અંતવાળા હોવાથી, નિષ્કપટ (નિષ્કામ, નૈસર્ગિક, અનન્ય પ્રયોજનવાળી) ભક્તિથી યુક્ત હોવાથી– જેઓ ભગવાનના શરણાગત, નિષ્કપટ ભક્તો છે, તેઓ (આપના સિવાય બીજો) કોઈ પણ પદાર્થ ઈચ્છતા જ નથી.

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे प्रह्लादचरिते भगवत्स्तवो नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां नवमोऽध्यायः॥ ९॥

❋❋❋❋❋

अथ दशमोऽध्यायः

પ્રહ્લાદજીનો રાજ્યાભિષેક તથા ત્રિપુરદહન કથા

दशमे त्वनुगृह्यामुं भक्तमन्तर्हिते हरौ।
प्रसङ्गाद्धरिणा रुद्रे कृतोऽनुग्रह ईर्यते॥ १

આ ભક્ત પ્રહ્લાદ ઉપર અનુગ્રહ કરીને જ્યારે શ્રીહરિ અંતર્ધાન થયા, ત્યારે પ્રસંગોપાત્ત શ્રીહરિ દ્વારા રુદ્રદેવ ઉપર કરવામાં આવેલો અનુગ્રહ દસમા અધ્યાયમાં વર્ણવાય છે.॥ ૧ ॥

नारद उवाच

भक्तियोगस्य तत् सर्वमन्तरायतयार्भकः।
मन्यमानो हृषीकेशं स्मयमान उवाच ह॥ १

નારદજી બોલ્યા – તે સર્વ (વરદાનો)ને ભક્તિયોગના અંતરાય તરીકે માનતા બાળક પ્રહ્લાદજીએ ઇન્દ્રિયોના સ્વામી (અન્તર્યામી ભગવાન)ને સ્મિત કરતાં કહ્યું.॥ ૧ ॥

तत्सर्वं वरजातम्॥ १॥

'तत्सर्वम्' તે સર્વ વરદાનોના સમૂહને॥ ૧ ॥

बा.प्र.—अर्भकः बालकोऽपि प्रह्लादः स्मयमानः अहो अन्तःकरणसाक्षितया मदभिप्रायज्ञोऽपि मां कथमेवं प्रलोभयतीत्याश्चर्यं कुर्वन् तं हृषीकेशमन्तर्यामिणं भगवन्तं ह स्फुटं निर्भयमुवाचेत्यन्वयः।

અરે, અન્તઃકરણના સાક્ષીરૂપે ભગવાન મારો અભિપ્રાય જાણતા હોવા છતાં પણ મને આમ કેમ પ્રલોભિત કરે છે, એમ બાળક હોવા છતાં પણ આશ્ચર્ય પામતા પ્રહ્લાદજીએ હસતાં હસતાં હૃષીકેશ એવા અંતર્યામી ભગવાનને નિર્ભયપણે કહ્યું, એમ અન્વય છે.

प्रह्राद उवाच

मा मां प्रलोभयोत्पत्त्याऽऽसक्तं कामेषु तैर्वरैः।
तत्सङ्गभीतो निर्विण्णो मुमुक्षुस्त्वामुपाश्रितः॥ २

પ્રહ્લાદજી બોલ્યા – સ્વભાવથી જ વિષયોમાં આસક્ત એવા મને તે કામનાઓરૂપ વરદાનોથી લોભાવશો નહીં, (કારણ કે) તે કામનાઓની આસક્તિથી ભયભીત એવો હું વિરક્ત થઈ તેનાથી છૂટવાની ઈચ્છાવાળો હોઈ આપને શરણે આવ્યો છું.॥ ૨ ॥

उत्पत्त्या स्वभावेनैवासक्तं माम्। तेषां कामानां सङ्गाद्भीतः ॥ २ ॥

बा.प्र.—अत्रापि लोकवृत्तान्तमात्मन्यारोप्य लोकशिक्षार्थमुत्पत्त्या कामेष्वासक्तमिति प्रह्लादवचनं, वस्तुतस्तु तस्य निष्कामत्वं 'अहं त्वकामस्त्वद्भक्तः' इत्यादिनाऽग्रे स्पष्टमेवेति ज्ञेयम्।

ननु किमहं भक्तं प्रलोभयामि। न हि किंतु वरं वृणीष्वेति वदतस्तवाभिप्रायोऽन्य एवेत्याह—**भृत्यलक्षणेति**।

भृत्यलक्षणजिज्ञासुर्भक्तं कामेष्वचोदयत्।
भवान् संसारबीजेषु हृदयग्रन्थिषु प्रभो॥ ३

हृदयस्य ग्रन्थिवद्बन्धकेषु॥ ३ ॥

वंशीधरी—स्वभृत्यस्य सर्वोत्कृष्टां निष्ठां लोके ख्यापयसीति मया दीयमानान्वरान्कथं न गृह्णासीत्युक्ते मद्भृत्य एव लक्षणं कथयिष्य-सीत्यभिप्रायस्तवावगम्यते इति भावः।

'**उत्पत्त्या**' સ્વભાવથી જ આસક્તિવાળા મને– તે કામનાઓની આસક્તિથી ભયભીત એવો હું॥ ૨ ॥

અહીં પણ લોક-વ્યવહાર પોતાની ઉપર આરોપીને લોકોને ઉપદેશ આપવા માટે 'સ્વભાવથી જ કામનાઓમાં આસક્ત એવા મને' એમ પ્રહ્‌લાદજી કહે છે, પરંતુ વાસ્તવમાં તો તેઓ નિષ્કામ છે. 'હું આપનો નિષ્કામ ભક્ત' (શ્રીમદ્ ભા.૭/૧૦/૬) વગેરે દ્વારા તેમનું નિષ્કામત્વ આગળ સ્પષ્ટ જ છે, એમ જાણવું.

શંકા કરવામાં આવી છે કે ભગવાન જો એમ કહે કે શું હું ભક્તને પ્રલોભનો આપું છું? તે માટે ઉત્તર આપે છે કે ના ના, પ્રભુ, આપ પ્રલોભન આપતા જ નથી, પરંતુ 'વરદાન માગ'– એમ કહેતા આપનો અભિપ્રાય અન્ય જ છે, એમ કહે છે— '**भृत्यलक्षण इति।**'

હે પ્રભુ, આપ સેવકનાં લક્ષણો જાણવાની ઈચ્છાવાળા છો, તેથી આપ સંસારનાં બીજરૂપ (વારંવાર જન્મ-મૃત્યુના ફેરામાં નાખનારી) અને હૃદયને ગાંઠની જેમ બંધન કરનારી કામનાઓ પ્રત્યે આપના સેવકને પ્રેરો છો.॥ ૩ ॥

હૃદયને ગાંઠની જેમ બંધન કરનારી કામનાઓ તરફ (આપ પ્રેરો છો).॥ ૩ ॥

આપ પોતાના ભક્તની સર્વોત્કૃષ્ટ નિષ્ઠાને સંસારમાં પ્રખ્યાત કરો છો, એટલે 'મારા દ્વારા આપવામાં આવેલાં વરદાનોને તું કેમ સ્વીકારતો નથી?' એમ કહેવાથી મારો સેવક જ સેવકનું લક્ષણ જણાવશે એટલે તારો અભિપ્રાય જાણવામાં આવશે, એવો ભાવ છે.

नान्यथा तेऽखिलगुरो घटेत करुणात्मनः।
यस्त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक्॥ ४

हे સમગ્ર જગતના ગુરુ, (વરદાન માગવારૂપ) અનર્થના સાધન પ્રત્યે ભક્તને પ્રવૃત્ત કરવો તે, કરુણાસાગર એવા આપને ઘટતું નથી. જે સેવક આપની પાસેથી (સેવાના બદલામાં) કામનાઓની આશા રાખે છે, તે સેવક નથી પણ વાણિયો (વ્યાપારી) જ છે.॥ ૪॥

अन्यथाऽनर्थसाधने प्रवर्तनं न घटेतेत्यर्थः। कथमेवं भृत्यलक्षणज्ञानं स्यात्तत्राह—**य इति**। ते त्वत्तः॥ ४॥

(વરદાન માગવારૂપ) '**अन्यथा**' અનર્થના સાધન પ્રત્યે ભક્તને પ્રવૃત્ત કરવો તે આપને ઘટતું નથી, એમ અર્થ છે. તો સેવકના લક્ષણનું જ્ઞાન કેવી રીતે થાય? તે માટે કહે છે— '**यः इति।**' '**ते**' **त्वत्तः** આપની પાસેથી॥ ૪॥

वंशीधरी—अखिलगुरोः सर्वहितोपदेष्टुस्तव ब्रह्मरुद्रादीनामिव यथेप्सितं न ददासि किन्तु हितकरमेवेति भावः। तत्र हेतुः करुणात्मनः दयालुशिरोमणेः।

સર્વના હિતનો ઉપદેશ કરનાર આપ બ્રહ્મા, રુદ્ર વગેરેની જેમ પ્રાપ્ત કરવા ઈચ્છેલ અનુસાર વરદાન નથી આપતા, પરંતુ હિતકારી હોય તે જ પ્રદાન કરો છો એવો ભાવ છે, કારણ કે આપ દયાળુઓમાં શિરોમણિ છો.

ननु कामनयापि सेव्यसेवकयोः स्वामि-भृत्यभावः प्रसिद्धः। सत्यम्। सोपाधिकोऽसौ न तु तात्त्विक इत्याह—

શંકા કરે છે કે (સંસારમાં) કામનાપૂર્તિની આશાથી પણ સ્વામી અને સેવક વચ્ચે સ્વામિ-સેવકભાવ પ્રસિદ્ધ છે. તે માટે કહે છે કે એ સાચું છે, પણ લોકમાં જે સ્વામિ-સેવકભાવ છે તે કપટવાળો છે પણ સાચો નથી. (બિનશરતી નથી.)

आशासानो न वै भृत्यः स्वामिन्याशिष आत्मनः।
न स्वामी भृत्यतः स्वाम्यमिच्छन् यो राति चाशिषः॥ ५

સ્વામી પાસેથી પોતાની કામના(પૂર્તિ)ની આશા રાખનારો (સાચો) સેવક જ નથી અને સેવક પાસેથી સ્વામિત્વ ઈચ્છતો તેની કામના (પૂર્તિ) કરનારો (સાચો) સ્વામી જ નથી.॥ ૫॥

स्वामिन्यात्मन आशिषोऽपेक्षमाणो नैव भृत्यः। भृत्यहेतुकमात्मनः स्वाम्यमिच्छन्यो भृत्याय ददाति स च नैव स्वामी॥ ५॥

સ્વામી પાસેથી પોતાની કામનાઓની અપેક્ષા રાખતો સેવક સાચો સેવક જ નથી અને સેવક પાસેથી સ્વામિત્વ ઈચ્છતો સ્વામી તેની કામનાપૂર્તિ કરે તો તે સાચો સ્વામી જ નથી.॥ ૫॥

आवयोस्तु तात्त्विकोऽसावित्याह—**अहं त्विति**।

એ સ્વામિસેવકભાવ આપણા બે વચ્ચે યથાર્થ છે, એમ કહે છે— '**अहं तु इति।**'

अहं त्वकामस्त्वद्भक्तस्त्वं च स्वाम्यनपाश्रयः।
नान्यथेहावयोरर्थो राजसेवकयोरिव॥ ६

હું આપનો નિષ્કામ ભક્ત છું અને આપ સેવકને અધીન ન હોય તેવા (ઉત્કૃષ્ટ ઐશ્વર્યવાળા) નિરપેક્ષ સ્વામી છો. આ સંસારમાં રાજા અને સેવક જેવું અન્ય રીતે (કોઈ પણ) પ્રયોજન આપણા બંને વચ્ચે નથી.॥ ૬॥

अनपाश्रयो निरभिसन्धिः। अन्यथा कामाद्यभिसन्धिनार्थः प्रयोजनं नास्ति॥ ६॥

‘**अनपाश्रयः**’ કામના વગેરે અપેક્ષારહિત ‘**अर्थः**’ પ્રયોજન નથી.॥ ૬॥

ननु तथापि परमोदारस्य मम संतोषार्थं किमपि वृणीष्वेति चेदत आह—**यदीति**।

શંકા કરવામાં આવી છે કે જો ભગવાન કહે કે (તું નિષ્કામ ભક્ત હોવા) છતાં પણ પરમ ઉદાર એવા મારી પાસેથી મારા સંતોષ ખાતર કંઈ પણ વરદાન માગ, તો તે માટે કહે છે — ‘**यदि इति।**’

यदि रासीश मे कामान् वरांस्त्वं वरदर्षभ।
कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम्॥ ७

હે સર્વસમર્થ, હે વરદાન આપનારાઓમાં શિરોમણિ, જો આપ મને વરદાન આપો છો તો હું આપની પાસેથી, મારા હૃદયમાં કામનાઓના અંકુરોની ઉત્પત્તિ જ ન થાઓ તે વરદાન માગું છું.॥ ૭॥

कामाङ्कुराणामसंरोहमनुत्पत्तिम्। भवतः सकाशात्॥ ७॥

કામનાઓના અંકુરોની ‘**असंरोहम्**’ ઉત્પત્તિ જ ન થાઓ, તે વરદાન આપની પાસેથી (માગું છું).॥ ૭॥

वीर.—धर्मादिपुरुषार्थेच्छानुदयरूपं वरं याच इत्यर्थः।

ધર્માદિ પુરુષાર્થો માટેની ઈચ્છાનો ઉદય ન થાય તે વરદાન હું માગું છું, એમ અર્થ છે.

ननु कामोत्पत्तौ सत्यां को दोषस्तत्राह—

શંકા કરવામાં આવી છે કે કામનાની ઉત્પત્તિ થાય ત્યારે કયો દોષ (થાય) છે?

इन्द्रियाणि मनः प्राण आत्मा धर्मो धृतिर्मतिः।
ह्रीः श्रीस्तेजः स्मृतिः सत्यं यस्य नश्यन्ति जन्मना॥ ८

જે (કામનારૂપી અંકુર)ના જન્મથી ઈન્દ્રિયો, મન, પ્રાણ, દેહ, ધર્મ, ધૈર્ય, બુદ્ધિ, લજ્જા, શ્રી, તેજ, સ્મરણશક્તિ તથા સત્ય નાશ પામે છે.॥ ૮॥

इन्द्रियादीनि यस्य जन्मना नश्यन्ति। आत्मा देहः॥ ८॥

તે માટે ઉત્તર આપે છે કે જેના જન્મથી ઈન્દ્રિયો વગેરે નાશ પામે છે. ‘**आत्मा**’ દેહ॥ ૮॥

सि.प्र.—

देहीति वचनं श्रुत्वा देहस्थाः पञ्च देवताः।
तत्क्षणादेव गच्छन्ति धीश्रीह्रीधृतिकीर्त्तयः॥

‘આપો, એમ વચન સાંભળીને દેહમાં રહેલા બુદ્ધિ, શ્રી, લજ્જા, ધૈર્ય અને કીર્તિરૂપ પાંચ દેવતાઓ તે જ ક્ષણે ચાલ્યા જાય છે.’

'श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।'—(कठ. १।१।२६)

'હે યમરાજ, (હે અંત કરનાર,) કાલ સુધી જેમનું અસ્તિત્વ રહેશે કે નહીં તેવા અનિત્ય ભોગો મનુષ્યની સર્વ ઈન્દ્રિયોના તેજને જીર્ણ-શીર્ણ કરી નાખે છે.'

बा.प्र.—तत्रेन्द्रियाणां नाशो भगवत्सेवाकथा-दावक्षमता, मनसो नाशो भगवद्बहिर्मुखत्वं, प्राणनाशो जीवन्मृतत्वं, आत्मा जीवस्तस्य नाशो नरकादौ भ्रमणम्।

તેમાં ઈન્દ્રિયોનો નાશ એટલે ભગવાનની સેવા-કથા વગેરેમાં અક્ષમતા, મનનો નાશ એટલે ભગવાનથી બહિર્મુખતા (વિમુખતા), પ્રાણનો નાશ એટલે જીવતું મરણ, આત્મા અર્થાત્ જીવનો નાશ એટલે નરકાદિમાં ભ્રમણ.

धर्मो वर्णाश्रमविहितः, धृतिः द्वन्द्व-सहिष्णुत्वं, मतिः सारासारविवेकः, ह्रीरनुचित-कर्मणि लज्जा, श्रीरैश्वर्यं, तेजः प्रतापः, स्मृतिर्भगवदनुसन्धानं, सत्यं यथार्थवचनम्।

ધર્મ એટલે વર્ણ અને આશ્રમ અનુસાર કરવામાં આવતું અનુષ્ઠાન, ધૃતિ એટલે દ્વન્દ્વો પ્રત્યે સહિષ્ણુતા, મતિ એટલે સાર-અસારનો વિવેક, હ્રી એટલે અનુચિત કર્મમાં લજ્જા, શ્રી એટલે ઐશ્વર્ય, તેજ એટલે પ્રતાપ, સ્મૃતિ એટલે ભગવાનનું અનુસંધાન, સત્ય એટલે યથાર્થવચન.

कामाभावे गुणमाह—**विमुञ्चतीति**।

કામનાના અભાવનું ફળ કહે છે— '**विमुञ्चति इति**।'

विमुञ्चति यदा कामान्मानवो मनसि स्थितान्।
तर्ह्येव पुण्डरीकाक्ष भगवत्त्वाय कल्पते॥ ९

હે કમલનયન, મનુષ્ય જ્યારે મનમાં રહેલી કામનાઓનો પરિત્યાગ કરે છે, ત્યારે જ ભગવત્ત્વને (પ્રાપ્ત કરવા) માટે સમર્થ થાય છે.॥૯॥

भगवत्त्वाय त्वत्समानैश्वर्याय। तथा च श्रुतिः—
'यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते॥'
इति॥ ९॥

'**भगवत्त्वाय**' આપ સમાન ઐશ્વર્યને યોગ્ય બને છે. તે જ અનુસાર શ્રુતિ છે— "જ્યારે મનુષ્યના હૃદયમાં રહેલી સર્વ કામનાઓ છૂટી જાય છે, ત્યારે મનુષ્ય અમર બને છે અને આ લોકમાં જ બ્રહ્મને પ્રાપ્ત થાય છે."
(કઠ.ઉપ.૨/૬/૧૪)॥૯॥

निर्दोषान्कामान्दातुमिच्छन्तं प्रत्याख्या-स्यन्नमस्यति—**नम इति**।

દોષરહિત કામનાઓ આપવા ઈચ્છતા ભગવાનને કામનાઓનો અસ્વીકાર કરતાં પ્રહ્‌લાદજી નમસ્કાર કરે છે— '**नमः इति**।'

नमो भगवते तुभ्यं पुरुषाय महात्मने।
हरयेऽद्भुतसिंहाय ब्रह्मणे परमात्मने॥ १०
॥ १० ॥

(ઐશ્વર્ય, વીર્ય, જ્ઞાન, વૈરાગ્ય, યશ, શ્રી– છ પ્રકારના) ભગવાળા, સર્વાન્તર્યામી, (ભક્તો ઉપર) ઉદાર ચિત્તવાળા, (આશ્રિત જનોનાં દુઃખો) હરનારા, (મારા રક્ષણ માટે) અદ્ભુત નરસિંહરૂપ ધારણ કરનાર, (સ્વરૂપ અને ગુણથી નિરતિશય) બૃહદ્ પરમાત્મા એવા આપને નમસ્કાર હો. ॥ ૧૦ ॥ ૧૦ ॥

सत्यमेकान्तभक्तस्त्वं तथापि मदाज्ञा करणीयेत्याह—**नेति**।

સત્ય છે કે તું મારો અનન્ય ભક્ત છે તેમ છતાં પણ મારી આજ્ઞાનું પાલન કરવા યોગ્ય છે, એમ કહે છે— **'न इति।'**

नृसिंह उवाच

नैकान्तिनो मे मयि जात्विहाशिष
आशासतेऽमुत्र च ये भवद्विधाः।
अथापि मन्वन्तरमेतदत्र
दैत्येश्वराणामनुभुङ्क्ष्व भोगान्॥ ११

શ્રીનરસિંહ ભગવાન બોલ્યા – જેઓ તારા જેવા મારા અનન્ય ભક્તો છે, તેઓ ક્યારેય પણ આ લોક અને પરલોકની કામનાઓને ઈચ્છતા નથી. તેમ છતાં પણ આ મન્વન્તર પર્યંત અહીં (પૃથ્વી ઉપર) દૈત્યાધિપતિઓના ભોગોને તું ભોગવ. ॥ ૧૧ ॥

मे एकान्तिनः कदाचिदपि इहामुत्र च मय्याशिषो न वाञ्छन्त्येव तथाप्येतन्मन्वन्तरमात्रं भोगान्भुङ्क्ष्व॥ ११ ॥

મારા અનન્ય ભક્તો મારી પાસેથી ક્યારેય પણ આ લોક અને પરલોકની કામનાઓ ઈચ્છતા જ નથી, તેમ છતાં પણ માત્ર આ એક મન્વન્તર પર્યન્ત તું ભોગોને ભોગવ. ॥ ૧૧ ॥

ननु तर्हि बन्धः स्यादित्यत आह—**कथा इति** द्वाभ्याम्।

શંકા કરવામાં આવી છે કે તો પછી બંધન થાય! તે માટે બે શ્લોકોથી ઉત્તર આપે છે— **'कथा इति।'**

कथा मदीया जुषमाणः प्रियास्त्व-
मावेश्य मामात्मनि सन्तमेकम्।
सर्वेषु भूतेष्वधियज्ञमीशं
यजस्व योगेन च कर्म हिन्वन्॥ १२

પરમાનંદ આપનારી મારી કથાઓ શ્રવણ કરતો તું સર્વ પ્રાણીઓમાં રહેલા યજ્ઞના અધિષ્ઠાતા, એકમાત્ર સત્તાવાળા મને ઈશ્વરને આત્મામાં (હૃદયમાં) સ્થાપીને, (સર્વ કર્મ) મને અર્પણ કરવા દ્વારા કર્મનો ત્યાગ કરતા, મારી આરાધના કર. ॥ ૧૨ ॥

सर्वेषु भूतेषु संतमेकमीशं यज्ञाधिष्ठातारं मामात्मन्यावेश्य यजस्व, तर्ह्यनेनैवापि कर्मणा बन्धः स्यान्नेत्याह—योगेन मय्यर्पणेन कर्म हिन्वंस्त्यजन् यजस्व॥ १२॥

સર્વ પ્રાણીઓમાં અસ્તિત્વરૂપે રહેલા ઈશ્વર, યજ્ઞના અધિષ્ઠાતા એવા મને એકને જ આત્મામાં (હૃદયમાં) સ્થાપી મારું આરાધન કર. તો પછી આ કર્મથી પણ બંધન થાય! તો તેના ઉત્તરમાં કહે છે કે ના, '**योगेन**' કર્મ અર્પણ કરવા દ્વારા કર્મનો '**हिन्वन्**' ત્યાગ કરતા મારી આરાધના કર!॥ ૧૨॥ ($\sqrt{\text{अस्}}$ નું વ.કૃ. **सत्-सन्तम्)**

बा.प्र.—'यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।' इति गीतासु स्पष्टोक्तेः।

'યજ્ઞ(રૂપ પરમેશ્વર) માટે કરેલાં કર્મો સિવાય બીજાં કર્મોથી આ લોક બંધાયેલો છે.' (ગીતા. ૩/૯) એમ ગીતામાં સ્પષ્ટ કહેવામાં આવ્યું છે તેથી (ફળની આશા છોડીને ઈશ્વરાર્પણ ભાવથી કર્મ કર.)

भोगेन पुण्यं कुशलेन पापं
कलेवरं कालजवेन हित्वा।
कीर्तिं विशुद्धां सुरलोकगीतां
विताय मामेष्यसि मुक्तबन्धः॥ १३

સુખનો અનુભવ કરી પ્રારબ્ધરૂપ પુણ્યનો અને પુણ્યના આચરણ દ્વારા પાપનો ત્યાગ કરી, સ્વર્ગલોક સુધી ગવાતી વિશુદ્ધ કીર્તિ ફેલાવી, કાળના વેગથી શરીર છોડી, (સર્વ) બંધનોથી મુક્ત થયેલો તું મને પ્રાપ્ત થઈશ.॥ ૧૩॥

किंच—भोगेन सुखानुभवेन प्रारब्धं पुण्यं हित्वा मुक्तबन्धः सन् लोकानुग्रहार्थं कीर्तिं च विस्तार्य मां प्राप्स्यसि। कुशलेन पुण्याचरणेन पापं हित्वेति बिभीषामात्रम्। अन्यथा तस्य राज्येऽप्रवृत्तेः।

વળી, '**भोगेन**' સુખના અનુભવ દ્વારા પ્રારબ્ધરૂપ પુણ્યનો ત્યાગ કરી, બંધનમુક્ત થઈ તથા લોકો ઉપર અનુગ્રહ કરવા માટે કીર્તિ ફેલાવી તું મને પ્રાપ્ત થઈશ. '**कुशलेन**' પુણ્યના આચરણ દ્વારા પાપનો ત્યાગ કરીને, એમ (જે કહ્યું તે) કેવળ પાપનો ભય છે. નહીં તો (અધિક પાપ થઈ જવાની શંકાથી) પ્રહ્લાદજી રાજ્ય કરવા માટે પ્રવૃત્ત ન થાય.

न तु तस्य प्राचीनं पापमस्ति।

'तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात्' इति न्यायात्।

તેમનું પ્રાચીન પાપ તો હતું જ નહીં.

'તે બ્રહ્મનું જ્ઞાન થાય ત્યારે બ્રહ્મજ્ઞાન થયા પછીનાં પાપોનો બ્રહ્મજ્ઞાની સાથે સંબંધ થતો નથી અને બ્રહ્મજ્ઞાન થયા પૂર્વેનાં પાપોનો વિનાશ થાય છે.' તે બંને વિષે શ્રુતિમાં નિર્દેશ છે. (બ્રહ્મસૂત્ર.૪/૧/૧૩)

'तत्सुकृतदुष्कृते विधुनुतः' इति श्रुतेश्च।

'તેનાં પાપ અને પુણ્ય ખરી પડે છે.' (કૌ.ઉપ.૧/૪)

न चेदं प्रारब्धपापाभिप्रायम्, तस्य भोगेनैव क्षयात्, कुशलेन हित्वेति वचनानुपपत्तेः।

અને આ વચનનો અભિપ્રાય પ્રારબ્ધના પાપનો નથી, કારણ કે તેનો તો ભોગથી જ ક્ષય થાય છે, તેથી 'પુણ્યના આચરણથી પાપનો ત્યાગ કરીને' એ વચન સુસંગત નથી.

न चासावविद्वानिति वाच्यम्, भगवतैव कृतार्थत्वस्यानन्तरं वक्ष्यमाणत्वात्।

વળી તેઓ (પ્રહ્લાદજી) આ જાણતા ન હતા એમ કહેવા યોગ્ય નથી, એમ અર્થ છે, કારણ કે ભગવાન દ્વારા જ કૃતાર્થ થયા છે તેમ આગળ કહેવામાં આવશે.

वंशीधरी—

यत्र यत्र च मद्भक्ताः प्रशान्ताः समदर्शिनः।
साधवः समुदाचारास्ते पूयन्त्यपि कीकटाः॥

અત્યંત શાન્ત, સમદૃષ્ટિવાળા અને ઉત્તમ આચારવાળા મારા સજ્જન ભક્તો જ્યાં જ્યાં જન્મે છે, તે કીકટ જેવા અપવિત્ર દેશો અને તેવા વંશો પણ પવિત્ર થાય છે. (શ્રીમદ્ ભા.૭/૧૦/૧૯)

अत एव योगेन कर्म हिन्वन्नितीदमपि लोकसंग्रहार्थे कर्मणि प्रवर्तितस्यानुद्वेगमात्रायेति सर्वमनवद्यम्॥ १३॥

આથી '**योगेन कर्म हिन्वन्**' એમ જે કહ્યું, તે પણ લોકસંગ્રહ માટે કર્મમાં પ્રવૃત્ત કરાયેલા પ્રહ્લાદજીને ઉદ્વેગ ન થાય તે માટે જ છે, આમ સર્વ કાંઈ દોષરહિત છે.॥ ૧૩॥

'यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा॥'

હે અર્જુન, જેમ પ્રજ્વલિત અગ્નિ લાકડાંને (બાળીને) ભસ્મ કરે છે, તેમ જ્ઞાનરૂપી અગ્નિ (પાપ, પુણ્યરૂપ) સર્વ કર્મોને ભસ્મ કરે છે. (ગીતા. ૪/૩૭)

वंशीधरी—प्रारब्धाद्यभावे प्रमाणमाह—**तदधीति**। तस्य ब्रह्मणोऽधिगमे उत्तराघस्याश्लेषः। पूर्वाघस्य विनाशः कुतः तद्व्यपदेशात्।

પ્રારબ્ધાદિ ન હોવાનું પ્રમાણ આપે છે— '**तत्-अधि इति**।' તે બ્રહ્મનું જ્ઞાન થાય ત્યારે બ્રહ્મજ્ઞાન થયા પછીનું પાપ બ્રહ્મજ્ઞાનીને સ્પર્શી શકતું નથી અને બ્રહ્મજ્ઞાન થયા પૂર્વેના પાપનો વિનાશ થાય છે. કેવી રીતે? કારણ કે તે બંને વિષે શ્રુતિમાં નિર્દેશ છે.

तयोरश्लेषविनाशयोर्व्यपदेश उपदेशः। अश्लेषस्य तद्यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्ते एवमेवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यते यद्यपि प्रह्लादस्य सदाचारित्वेन पापाभावस्तथापि बिभीषामात्रं न तु पापनिवृत्तिरिति प्रतिपाद्यते इत्यर्थः।

'**तयोः**' પછીનાં પાપોનો સંબંધ ન થવો અને પૂર્વનાં પાપોનો વિનાશ થવો– એ બંનેનો નિર્દેશ છે. જેમ કમળની પાંખડી જળથી અલિપ્ત જ રહે છે, તેમ બ્રહ્મજ્ઞાનીમાં પાપ ચોંટતું જ નથી. જો કે પ્રહ્લાદજી સદાચારી હોવાથી પાપ હતું જ નહીં, તેમ છતાં પણ અહીં પાપની ભીતિ છે, પાપની નિવૃત્તિની વાત નથી, એમ સિદ્ધ કરે છે, એમ અર્થ છે.

किंच—**य इति**।

य एतत् कीर्तयेन्मह्यं त्वया गीतमिदं नरः।
त्वां च मां च स्मरन्काले कर्मबन्धात् प्रमुच्यते॥ १४

त्वां च मां चेदं मच्चरित्रं च स्मरन्नेत-त्स्तोत्रं यः कीर्तयेत् सोऽपि कर्मबन्धाद्विमुच्यते कुतस्तव बन्धशङ्केत्यर्थः॥ १४॥

ईश्वराज्ञया प्राप्तकर्माधिकारः सन्पितु-र्निष्कृतिं प्रार्थयते त्रिभिः।

प्रह्लाद उवाच

वरं वरय एतत् ते वरदेशान्महेश्वर।
यदनिन्दत् पिता मे त्वामविद्वांस्तेज ऐश्वरम्॥ १५

विद्धामर्षाशयः साक्षात् सर्वलोकगुरुं प्रभुम्।
भ्रातृहेति मृषादृष्टिस्त्वद्भक्ते मयि चाघवान्॥ १६

तस्मात्पिता मे पूयेत दुरन्ताद् दुस्तरादघात्।
पूतस्तेऽपाङ्गसंदृष्टस्तदा कृपणवत्सल॥ १७

वरं वरणीयमेतदपरं वृणे। ते त्वत्तः॥ १५॥

विद्धोऽमर्षेण क्रोधेनाशयो यस्य॥ १६॥

વળી, (**वंशीधरी—तव कर्मबंधाभावे कैमुत्यं शृणिवत्याह—किञ्चेति**। તારું કર્મબંધન ન હોવા વિષે કૈમુત્ય ન્યાય સાંભળ, એમ કહે છે)— **यः इति**।

જે મનુષ્ય મારું અને તારું તથા આ ચરિત્રનું સ્મરણ કરતાં તારા દ્વારા ગાવામાં આવેલા આ સ્તોત્રનું મને પ્રસન્ન કરવા માટે અંતકાળે કીર્તન કરે, તે (પણ) કર્મના બંધનથી છૂટી જાય છે.॥ ૧૪॥

તને તથા મને અને મારા આ ચરિત્રને સ્મરતાં આ સ્તોત્રનું જે કીર્તન કરે, તે પણ કર્મના બંધનથી છૂટી જાય છે, તો તારા બંધનની શંકા કેવી રીતે કરાય? એમ અર્થ છે.॥ ૧૪॥

ઈશ્વરની આજ્ઞાથી જેમણે (દૈત્યોના અધિપતિ તરીકે) કર્મ કરવાનો અધિકાર પ્રાપ્ત કર્યો હતો, તે પ્રહ્લાદજી પિતાના દોષનિવારણ માટે ત્રણ શ્લોકો દ્વારા પ્રાર્થના કરે છે.

પ્રહ્લાદજી બોલ્યા – હે મહેશ્વર, વરદાન આપનારા (બ્રહ્માદિ)ના પણ ઈશ્વર એવા આપની પાસે હું આ (બીજું) વરદાન માગું છું. આપના ઈશ્વરી તેજને ન જાણતા એવા જેમનું અન્તઃકરણ ક્રોધથી વીંધાઈ ગયું હતું તેમ જ 'મારા ભાઈનો હણનારો (વિષ્ણુ)' એમ મિથ્યાદષ્ટિવાળા જેમણે આપના ભક્ત મારા પ્રત્યે પણ દ્રોહ કર્યો હતો, તે મારા પિતા તે (મરણ) સમયે આપના (કૃપા) કટાક્ષ વડે દષ્ટિપૂત થયા છે, તેમ છતાં સર્વ લોકના ગુરુ સાક્ષાત્ પ્રભુ એવા આપની મારા પિતાએ જે નિંદા કરી, તે દુરન્ત, દુસ્તર પાપથી હે દીનવત્સલ, તેઓ પવિત્ર થાય.॥ ૧૫॥ ૧૬॥ ૧૭॥

વરદાન માગવા જેવું આ બીજું વરદાન માગું છું. '**ते**' આપની પાસેથી॥ ૧૫॥

'**अमर्षेण**' ક્રોધથી વીંધાઈ ગયું છે અંતઃકરણ જેનું તે॥ ૧૬॥

तेऽपाङ्गेन संदृष्टोऽतः पूत एव तथापि भो कृपणवत्सल, कार्पण्येन प्रार्थय इत्यर्थः ॥ १७ ॥

श्रीभगवानुवाच

त्रिःसप्तभिः पिता पूतः पितृभिः सह तेऽनघ ।
यत् साधोऽस्य गृहे जातो भवान्वै कुलपावनः ॥ १८

यद्यपि कश्यपो मरीचिर्ब्रह्मा चेति तत्पितुस्त्रय एव पूर्वजास्तथापि त्रिःसप्तभिः सहेति प्राक्कल्पगतपित्रभिप्रायेणोक्तम् । यद्यस्मात् ॥ १८ ॥

वि.चक्र.—त्रिस्सप्तभिरित्यस्मिन् जन्मन्ययं तव पिता पूत इति किं वक्तव्यं तव त्रिस्सप्तजन्मसु ये त्रिस्सप्तसङ्ख्याः पितरोऽभूवन् तेऽपि पूता इत्यर्थः ।

वंशीधरी—पितृमात्रादिकुलमपि पावितमिति भावः । यद्वा—त्रिस्सप्तभिः पितृभिः सहितोऽपि यदि स्यात्ते पिता तदापि पूतो भवेत्तस्य तु त्रय एव कश्यपमरीचिब्रह्माण इति पितरोऽभूवन् प्राक्कल्पीयानामधुना पितृत्वानुपपत्तेः जयविजययोश्चापरजन्माश्रवणाच्च ।

यत्र यत्र च मद्भक्ताः प्रशान्ताः समदर्शिनः ।
साधवः समुदाचारास्ते पूयन्त्यपि कीकटाः ॥ १९

આપના નેત્રકટાક્ષ વડે સારી રીતે જોવામાં આવ્યા છે અને આથી મારા પિતા પવિત્ર જ થયા છે, તેમ છતાં પણ હે દીનવત્સલ, દીનતાપૂર્વક હું પ્રાર્થના કરું છું, એમ અર્થ છે. ॥ ૧૭ ॥

શ્રીભગવાન બોલ્યા – હે નિષ્પાપ પ્રહ્‌લાદ, તારા એકવીસ પિતૃઓ સહિત તારા પિતા પવિત્ર થયા છે, કારણ કે હે સાધુ, આ (દૈત્ય)ના ઘરમાં કુળને પવિત્ર કરનારા આપ જન્મ્યા છો. ॥ ૧૮ ॥

જો કે કશ્યપ ઋષિ, મરીચિ ઋષિ અને બ્રહ્માજી એ ત્રણ જ તારા પિતાના પૂર્વજો છે, છતાં પણ (તારા પિતા) એકવીસ પિતૃઓ સાથે (પવિત્ર થયા છે) તે પૂર્વ કલ્પમાં થઈ ગયેલા પિતૃઓના અભિપ્રાયથી કહેવામાં આવ્યું છે. **'यत्'** કારણ કે ॥ ૧૮ ॥

આ જન્મમાં આ તારા પિતા પવિત્ર થયા છે એમાં શું કહેવાનું? તારા એકવીસ જન્મોમાં જે એકવીસ સંખ્યા જેટલા પિતાઓ થયા છે, તેઓ પણ પવિત્ર થયા છે, એમ અર્થ છે.

પિતા, માતા વગેરેનાં કુળ પણ પવિત્ર થયાં છે, એવો ભાવ છે. અથવા એકવીસ પિતૃઓ સહિત પણ જો હોત, તો પણ તારા પિતા પવિત્ર થાત! તારા તો કશ્યપ, મરીચિ, બ્રહ્મા. એમ ત્રણ જ પિતા થયા છે. પૂર્વ કલ્પના પિતાઓ હોય તે અત્યારે સુસંગત નથી, કારણ કે જય-વિજયના બીજા જન્મોનું શ્રવણ કરવામાં આવ્યું નથી. (ત્રણ જન્મો સિવાય)

જ્યાં જ્યાં (કામ, ક્રોધ, લોભાદિથી રહિત એવા) પ્રશાંત, (સર્વત્ર મારાં દર્શન કરનારા) સમદષ્ટિવાળા, (પરોપકારી સ્વભાવવાળા) સાધુજનો અને (ઉત્તમ આચરણ કરનારા) સદાચારી એવા મારા ભક્તો હોય છે, ત્યાં ત્યાં તે કીકટ જેવા (અપવિત્ર) દેશો પણ પવિત્ર થઈ જાય છે. ॥ ૧૯ ॥

सम्यगुत्तम आचारो येषां ते, कीकटा अपि देशास्तत्तुल्यवंशाश्च पूयन्ते शुद्धा भवन्ति ॥ १९ ॥

'**सम्यक्**' ઉત્તમ આચરણ છે જેમનું તે (ભક્તો), કીકટ (જેવા દેશો) તથા તેના જેવા અપવિત્ર વંશો પણ '**पूयन्ते**' શુદ્ધ થાય છે. ॥ ૧૯ ॥

ननु त्वद्भक्तानामयं महिमेति न चित्रम्, अहं तु तादृशो न भवामीति चेत्तत्राह— **सर्वात्मनेति** द्वाभ्याम्।

જો પ્રહ્‌લાદજી દ્વારા શંકા કરવામાં આવે કે આપના ભક્તોનો આ મહિમા છે, તેમાં આશ્ચર્ય નથી પરંતુ હું એવો નથી બન્યો, તે માટે એમ બે શ્લોકોથી ઉત્તર આપે છે— '**सर्वात्मना इति**।'

सर्वात्मना न हिंसन्ति भूतग्रामेषु किञ्चन।
उच्चावचेषु दैत्येन्द्र मद्भावेन गतस्पृहाः ॥ २०

હે દૈત્યેન્દ્ર, મારા ઉપરની ભક્તિને કારણે જેઓ નિઃસ્પૃહ બન્યા છે તેઓ નાના-મોટા પ્રાણીસમૂહ ઉપર સર્વાત્મભાવ થઈ જવાને કારણે કોઈની પણ હિંસા કરતા નથી. ॥ ૨૦ ॥

मद्भावेन मद्भक्त्या विगता स्पृहा येषाम् ॥ २० ॥

'**मद्-भावेन**' મારી ભક્તિને કારણે જેમની સ્પૃહા દૂર થઈ છે ॥ ૨૦ ॥

भवन्ति पुरुषा लोके मद्भक्तास्त्वामनुव्रताः।
भवान्मे खलु भक्तानां सर्वेषां प्रतिरूपधृक् ॥ २१

સંસારમાં તને અનુસરનારા મનુષ્યો મારા ભક્તો થશે. આપ મારા સર્વ ભક્તોને માટે દૃષ્ટાન્તરૂપ છો. ॥ ૨૧ ॥

त्वामनुगता ये केचित्पुरुषास्तेऽप्येवं-लक्षणाः सन्तो मद्भक्ता भवन्त्यतो भवान्मे भक्तानां सर्वेषां प्रतिरूपधृगुपमानास्पदम्। श्रेष्ठः खल्वित्यर्थः ॥ २१ ॥

તને અનુસરનારા જે કોઈ મનુષ્યો છે તેઓ પણ આવાં લક્ષણોવાળા થઈ મારા ભક્તો થશે. આથી આપ મારા સર્વ ભક્તોના '**प्रतिरूपधृक्**' દૃષ્ટાન્તના આશ્રયરૂપ છો, ઉપમાનના સ્થાનરૂપ છો. ખરેખર શ્રેષ્ઠ છો, એમ અર્થ છે. ॥ ૨૧ ॥

कुरु त्वं प्रेतकार्याणि पितुः पूतस्य सर्वशः।
मदङ्गस्पर्शनेनाङ्ग लोकान्यास्यति सुप्रजाः ॥ २२

હે પ્રિય પ્રહ્‌લાદ, મારા શરીરના સ્પર્શથી સર્વ પ્રકારે પવિત્ર થયેલા તારા પિતાની મરણોત્તર ક્રિયા કર. (તારા જેવા) શ્રેષ્ઠ સંતાનવાળો તે (પુણ્ય) લોકને પ્રાપ્ત કરશે. ॥ ૨૨ ॥

मदङ्गस्पर्शनेन सर्वशः पूतस्य ते पितुः पापशङ्कैव नास्ति। केवलं पुत्रकृत्यानि प्रेतकार्याणि कुरु॥ २२ ॥

મારા શરીરના સ્પર્શથી સર્વ પ્રકારે પવિત્ર થયેલા તારા પિતાને માટે પાપમાંથી પવિત્ર થવા માટે શંકા જ નથી. હવે કેવળ '**पुत्रकृत्यानि**' પુત્ર દ્વારા કરવા યોગ્ય મરણોત્તર ક્રિયાઓ કર. ॥ ૨૨ ॥

पित्र्यं च स्थानमातिष्ठ यथोक्तं ब्रह्मवादिभिः ।
मय्यावेश्य मनस्तात कुरु कर्माणि मत्परः ॥ २३

પ્રિય પ્રહ્લાદ, (તારા) પિતાના સ્થાન ઉપર બેસ. વેદવાદી મુનિઓ દ્વારા કહેવામાં આવેલાં વચનોનું અતિક્રમણ કર્યા વિના મારામાં મન સ્થાપી હું જ જેના પરમ ફળરૂપ છું તેવો થઈ કર્મો કર. ॥ ૨૩ ॥

ब्रह्मवादिभिर्वेदवादिभिः । उक्तमनतिक्रम्य मत्परः सन्कर्माणि कुरु ॥ २३ ॥

'**ब्रह्मवादिभिः**' વેદવાદી મુનિઓ દ્વારા કહેવામાં આવેલાં વચનોનું અતિક્રમણ કર્યા વિના મારા પરાયણ થઈ કર્મો કર. ॥ ૨૩ ॥

नारद उवाच

प्रह्लादोऽपि तथा चक्रे पितुर्यत्साम्परायिकम् ।
यथाऽऽह भगवान् राजन्नभिषिक्तो द्विजोत्तमैः ॥ २४

॥ २४ ॥

નારદજી બોલ્યા – હે રાજા યુધિષ્ઠિર, પ્રહ્લાદે પણ પિતાની જે પારલૌકિક ક્રિયાઓ હતી તે કરી અને ભગવાને જેમ કહ્યું હતું તેમ ઉત્તમ બ્રાહ્મણો દ્વારા તેમનો અભિષેક કરવામાં આવ્યો. ॥ ૨૪ ॥ ૨૪ ॥

एतदग्रे—
'**महाभागवतः सोऽथ चक्रे राजन्वतीं भुवम्**'
इत्यर्धमधिकं क्वचित् ।

આના પછી (૨૪મા શ્લોક પછી) 'હવે તે મહાભાગવત પ્રહ્લાદજીએ પૃથ્વીને ઉત્તમ રાજા દ્વારા શાસિત કરી.' એટલો અર્ધો શ્લોક ક્યાંક વધારે છે.

प्रसादसुमुखं दृष्ट्वा ब्रह्मा नरहरिं हरिम् ।
स्तुत्वा वाग्भिः पवित्राभिः प्राह देवादिभिर्वृतः ॥ २५

॥ २५ ॥

નરહરિરૂપ શ્રીહરિને પ્રસન્નતાને કારણે સૌમ્ય મુખવાળા જોઈને, દેવો વગેરેથી વીંટળાયેલા બ્રહ્માજીએ પવિત્ર વચનોથી (તેમની) સ્તુતિ કરીને કહ્યું. ॥ ૨૫ ॥ ૨૫ ॥

ब्रह्मोवाच

देवदेवाखिलाध्यक्ष भूतभावनपूर्वज ।
दिष्ट्या ते निहतः पापो लोकसन्तापनोऽसुरः ॥ २६

॥ २६ ॥

બ્રહ્માજી બોલ્યા – હે દેવાધિદેવ, હે અખિલ સૃષ્ટિના અધ્યક્ષ, પ્રાણીમાત્રને ઉત્પન્ન કરનાર હે પૂર્વજ, લોકોને સંતાપ આપનારો પાપી અસુર આપે હણ્યો તે (ઘણું) સારું થયું. ॥ ૨૬ ॥ ૨૬ ॥

योऽसौ लब्धवरो मत्तो न वध्यो मम सृष्टिभिः ।
तपोयोगबलोन्नद्धः समस्तनिगमानहन् ॥ २७

મારાં સર્જેલાં પ્રાણીઓ દ્વારા વધ પામવાને અશક્ય એવો જે અસુર મારી પાસેથી વરદાન પામ્યો હતો, તેણે તપ અને યોગના બળથી ગર્વિષ્ઠ થઈ સમગ્ર ધર્મોનો નાશ કર્યો હતો, (તેને આપે હણ્યો તે સારું થયું.) ॥ ૨૭ ॥

मम सृष्टिभिर्मया सृष्टैर्भूतैः। समस्तान्निगमान् धर्मानित्यर्थः। अहन् हतवान्। स त्वया हतः एतद्दिष्ट्या भद्रम्॥ २७॥

દિષ્ટ્યાસ્ય —

दिष्ट्यास्य तनयः साधुर्महाभागवतोऽर्भकः।
त्वया विमोचितो मृत्योर्दिष्ट्या त्वां समितोऽधुना॥ २८

समितः सम्यक् प्राप्तः॥ २८॥

एतद् वपुस्ते भगवन्ध्यायतः प्रयतात्मनः।
सर्वतो गोप्तृ संत्रासान्मृत्योरपि जिघांसतः॥ २९

सर्वतः संत्रासात्। गोप्तृ रक्षकम्॥ २९॥

नृसिंह उवाच

मैवं वरोऽसुराणां ते प्रदेयः पद्मसम्भव।
वरः क्रूरनिसर्गाणामहीनाममृतं यथा॥ ३०

एवं वरस्त्वया न प्रदेयः। क्रूरो निसर्गः स्वभावो येषाम्। अमृतं क्षीरम्॥ ३०॥

नारद उवाच

इत्युक्त्वा भगवान्राजंस्तत्रैवान्तर्दधे हरिः।
अदृश्यः सर्वभूतानां पूजितः परमेष्ठिना॥ ३१
॥ ३१॥

ततः सम्पूज्य शिरसा ववन्दे परमेष्ठिनम्।
भवं प्रजापतीन्देवान्प्रह्लादो भगवत्कलाः॥ ३२
॥ ३२॥

'मम सृष्टिभिः' મારાં સર્જેલાં પ્રાણીઓ દ્વારા– સમસ્ત **'निगमान्'** ધર્મોનો, એમ અર્થ છે. **'अहन्'** નાશ કર્યો હતો, તે આપના દ્વારા હણાયો એ **'दिष्ट्या'** સારું થયું.॥ ૨૭॥

પરમ ભાગવત સદ્‌ગુણી બાળક એવો આનો પુત્ર મૃત્યુ(ના મુખ)માંથી આપના દ્વારા ઉગારવામાં આવ્યો છે, તે હવે આપને પ્રાપ્ત થયો છે (આપના શરણમાં છે), તે બહુ સારું થયું છે.॥ ૨૮॥

'समितः' આપને સારી રીતે પ્રાપ્ત થયો છે.॥ ૨૮॥

હે ભગવાન, આપનું આ નૃસિંહરૂપ એકાગ્રચિત્તે ધ્યાન કરનારની સર્વ પ્રકારના ભયથી અને મારવા ઈચ્છતા મૃત્યુથી પણ રક્ષા કરનારું છે.॥ ૨૯॥

સર્વ પ્રકારના ભયથી **'गोप्तृ'** રક્ષણ કરનારું નૃસિંહરૂપ ॥ ૨૯॥

શ્રીનરસિંહ ભગવાન બોલ્યા – હે કમળયોનિ (બ્રહ્મા), અસુરોને તમારે આવું વરદાન ન આપવું જોઈએ. ક્રૂર સ્વભાવવાળાઓને આપેલું વરદાન સર્પોને દૂધ પિવડાવવા જેવું છે.॥ ૩૦॥

આવું વરદાન આપવું તમને ઘટતું નથી. ક્રૂર **'निसर्गः'** સ્વભાવ છે જેમનો, **'अमृतम्'** દૂધ॥ ૩૦॥

નારદજી બોલ્યા – હે રાજા યુધિષ્ઠિર, એમ કહી પરમેષ્ઠી બ્રહ્માજી દ્વારા પૂજાયેલા ભગવાન શ્રીહરિ ત્યાં જ અન્તર્ધાન થઈ ગયા અને સર્વ પ્રાણીઓને માટે અદશ્ય બની ગયા.॥ ૩૧॥ ૩૧॥

ત્યાર પછી પ્રહ્‌લાદજીએ ભગવાનના અંશરૂપ પરમેષ્ઠી બ્રહ્માજી, ભગવાન ભવ (શંકર), પ્રજાપતિઓ તથા દેવોની સારી રીતે પૂજા કરીને મસ્તકથી પ્રણામ કર્યા.॥ ૩૨॥ ૩૨॥

इदं प्राजापत्यादीनां विशेषणम्। एकवचनान्तपाठे प्रह्लादविशेषणम्।

‘**भगवत्कलाः**’ એમ બહુવચનાન્ત પાઠ હોય તો પ્રજાપતિઓનું વિશેષણ છે અને ‘**भगवत्कलः**’ એમ એકવચનાન્ત પાઠ હોય તો પ્રહ્‌લાદજીનું વિશેષણ છે.

ततः काव्यादिभिः सार्धं मुनिभिः कमलासनः।
दैत्यानां दानवानां च प्रह्लादमकरोत् पतिम्॥ ३३

॥ ३३ ॥

પછી શુક્રાચાર્ય વગેરે મુનિઓ સાથે બ્રહ્માજીએ પ્રહ્‌લાદજીને દૈત્યો અને દાનવોના રાજા બનાવ્યા.॥ ૩૩ ॥ ૩૩ ॥

प्रतिनन्द्य ततो देवाः प्रयुज्य परमाशिषः।
स्वधामानि ययू राजन्ब्रह्माद्याः प्रतिपूजिताः॥ ३४

॥ ३४ ॥

હે રાજા યુધિષ્ઠિર, પછી સત્કાર પામેલા બ્રહ્માદિ દેવોએ પ્રહ્‌લાદજીને અભિનંદન અને ઉત્તમ આશિષો આપીને પોતાના ધામમાં પ્રયાણ કર્યું.॥ ૩૪ ॥ ૩૪ ॥

शिशुपालदन्तवक्त्रयोर्द्विषतोः श्रीकृष्णसायुज्यं कथमिति यत्पृष्टं तदेव तयोः पूर्वजन्मकथनादिभिरुपपादितमुपसंहरति— **एवमिति** सप्तभिः।

દ્વેષ કરતા શિશુપાલ અને દંતવક્ત્ર શ્રીકૃષ્ણ સાથે સાયુજ્ય કેવી રીતે પામ્યા, એમ જે પૂછવામાં આવ્યું, તેને જ તે બંનેના પૂર્વ જન્મના કથન વગેરે દ્વારા સિદ્ધ કરીને સાત શ્લોકોથી ઉપસંહાર કરે છે— ‘**एवम् इति**।’

एवं तौ पार्षदौ विष्णोः पुत्रत्वं प्रापितौ दितेः।
हृदि स्थितेन हरिणा वैरभावेन तौ हतौ॥ ३५

(પૂર્વ જન્મમાં જય-વિજય નામના) વિષ્ણુ ભગવાનના તે પાર્ષદો વિપ્રશાપથી દિતિના પુત્રો થયા હતા. વેરભાવને કારણે હૃદયમાં રહેલા (નરહરિરૂપ ધારણ કરેલા) શ્રીહરિ દ્વારા તે બંને હણાયા હતા.॥ ૩૫ ॥

दितेः पुत्रत्वं प्रापितौ। विप्रशापेनेत्युत्तरस्यानुषङ्गः॥ ३५॥

જય-વિજય વિપ્રના શાપને કારણે દિતિના પુત્રો થયા હતા, એમ આ પછીના શ્લોક(૩૬) સાથે સંબંધ છે.॥ ૩૫ ॥

पुनश्च विप्रशापेन राक्षसौ तौ बभूवतुः।
कुम्भकर्णदशग्रीवौ हतौ तौ रामविक्रमैः॥ ३६

॥ ३६ ॥

વળી, પાછા વિપ્રશાપને કારણે તે બંને (પાર્ષદો) કુંભકર્ણ અને રાવણ નામના રાક્ષસો થયા હતા અને ભગવાન રામચન્દ્રનાં પરાક્રમોથી તે બંને નાશ પામ્યા હતા.॥ ૩૬ ॥ ૩૬ ॥

शयानौ युधि निर्भिन्नहृदयौ रामसायकैः।
तच्चित्तौ जहतुर्देहं यथा प्राक्तनजन्मनि॥ ३७

(કાળાન્તરે) શ્રીરામચન્દ્રજીનાં બાણોથી વીંધાયેલા હૃદયવાળા તે બંને, પૂર્વજન્મમાં થયું હતું તેમ યુદ્ધમાં ઢળી પડ્યા હતા ત્યારે તેમનામાં (શ્રીરામચન્દ્રજીમાં જ) ચિત્તવાળા તે બંને એ શરીર છોડ્યું હતું.॥ ૩૭ ॥

तच्चित्तौ श्रीरामे चित्तं ययोस्तौ ॥ ३७ ॥

'तत्-चित्तौ' શ્રીરામમાં જ ચિત્ત છે જે બંનેનું તેઓ ॥ ૩૭ ॥

ताविहाथ पुनर्जातौ शिशुपालकरूषजौ ।
हरौ वैरानुबन्धेन पश्यतस्ते समीयतुः ॥ ३८

ત્યાર પછી તે બંને (ત્રીજા જન્મમાં) પુનઃ શિશુપાળ અને દન્તવક્ત્રરૂપે જન્મ્યા અને શ્રીહરિમાં વેરભાવ રાખીને તમારા દેખતાં જ શ્રીહરિમાં સાયુજ્યને પ્રાપ્ત થયા. ॥ ૩૮ ॥

करूषजो दन्तवक्त्रः। हरौ सायुज्यं समीयतुः ॥ ३८ ॥

'करूषजः' દન્તવક્ત્ર, શ્રીહરિમાં (તે બંને) સાયુજ્યને પ્રાપ્ત થયા. ॥ ૩૮ ॥

एनः पूर्वकृतं यत् तद् राजानः कृष्णवैरिणः ।
जहुस्त्वन्ते तदात्मानः कीटः पेशस्कृतो यथा ॥ ३९

જેમ કીડો ભમરીનું ધ્યાન કરવાથી તદ્રૂપ થાય છે તેમ શ્રીકૃષ્ણની સાથે વેર રાખનારા જે રાજાઓ હતા, તેઓ અંત સમયે શ્રીહરિનું ધ્યાન કરવાથી ભગવદ્રૂપ થવાને કારણે પૂર્વે કરેલા પાપથી છૂટી ગયા હતા. ॥ ૩૯ ॥

कृष्णनिन्दादिना पूर्वकृतं च यदेनः पापं तद्ध्यानेन तदात्मानः सन्तो जहुः। तदात्मत्वे दृष्टान्तः—कीटः पेशस्कृतो ध्यानेन यथा तदात्मा भवतीति ॥ ३९ ॥

કૃષ્ણનિંદા વગેરે દ્વારા પૂર્વે કરવામાં આવેલું જે **'एनः'** પાપ હતું, **'तद्-आत्मानः'** શ્રીહરિનું ધ્યાન કરવાને કારણે ભગવદ્રૂપ થઈ (તે પાપથી) છૂટી ગયા હતા. તદ્રૂપ થવા માટેનું દૃષ્ટાન્ત– કીડો ભમરીનું ધ્યાન કરવાથી તદ્રૂપ થાય છે તેમ. (**कीटभ्रमरन्यायः**) ॥ ૩૯ ॥

यथा यथा भगवतो भक्त्या परमयाभिदा ।
नृपाश्चैद्यादयः सात्म्यं हरेस्तच्चिन्तया ययुः ॥ ४०

ભગવાનની ભેદદર્શનરહિત પરમ ભક્તિથી તેમના ભક્તો જેમ શ્રીહરિનું સારૂપ્ય પામે છે તેમ શિશુપાળ વગેરે રાજાઓ તેમના(વેરભાવજનિત) ચિન્તનથી શ્રીહરિનું સારૂપ્ય પામે છે. ॥ ૪૦ ॥

अभिदा भेददर्शनशून्यया। हरेः सात्म्यं सारूप्यम् ॥ ४० ॥

'अभिदा' ભેદદર્શનથી રહિત (પરમ ભક્તિ)થી– શ્રીહરિના **'सात्म्यम्'** સારૂપ્યને પ્રાપ્ત થાય છે. ॥ ૪૦ ॥

आख्यातं सर्वमेतत् ते यन्मां त्वं परिपृष्टवान् ।
दमघोषसुतादीनां हरेः सात्म्यमपि द्विषाम् ॥ ४१

॥ ४१ ॥

ભગવાન સાથે દ્વેષ કરનારા હોવા છતાં પણ દમઘોષના પુત્ર શિશુપાળ વગેરેનું શ્રીહરિની સાથે સારૂપ્ય (કેવી રીતે થયું એ) જ તમે મને પૂછ્યું હતું, એ સર્વ (મેં) તમને કહ્યું. ॥ ૪૧ ॥ ૪૧ ॥

प्रह्लादचरितार्थमुपसंहरति—**एषेति** चतुर्भिः।

પ્રહ્‌લાદચરિત્રના તાત્પર્યનો ચાર શ્લોકો વડે ઉપસંહાર કરે છે— **'एषा इति।'**

एषा ब्रह्मण्यदेवस्य कृष्णस्य च महात्मनः।
अवतारकथा पुण्या वधो यत्रादिदैत्ययोः॥ ४२

બ્રાહ્મણો ઉપર પ્રેમ રાખનાર મહાત્મા શ્રીકૃષ્ણદેવના (નરસિંહ) અવતારની આ પવિત્ર કથા છે, જેમાં આદિદૈત્યો (હિરણ્યકશિપુ અને હિરણ્યાક્ષ)નો વધ (વર્ણવવામાં આવ્યો) છે.॥ ૪૨ ॥

अवतारः श्रीनृसिंहरूपस्तस्य कथा आख्यातेति शेषः॥ ४२॥

'**अवतारः**' શ્રીનૃસિંહરૂપ અવતાર, તેની કથા 'કહેવામાં આવી છે', એટલું શેષ છે.॥ ૪૨ ॥

प्रह्लादस्यानुचरितं महाभागवतस्य च।
भक्तिर्ज्ञानं विरक्तिश्च याथात्म्यं चास्य वै हरेः॥ ४३
सर्गस्थित्यप्ययेशस्य गुणकर्मानुवर्णनम्।
परावरेषां स्थानानां कालेन व्यत्ययो महान्॥ ४४

ભગવાનના પરમ ભક્ત પ્રહ્લાદજીનું ચરિત્ર, ભક્તિ, જ્ઞાન, વૈરાગ્ય, જગતની ઉત્પત્તિ, સ્થિતિ અને સંહારના નિયંતા શ્રીહરિનું યથાર્થ સ્વરૂપ, તેમના ગુણો અને કર્મોનું વર્ણન તથા દેવો અને દૈત્યાદિનાં સ્થાનોમાં કાળક્રમે મહાન પરિવર્તન થાય છે (તે આ દ્વારા વર્ણવવામાં આવ્યું છે).॥ ૪૩ ॥ ૪૪ ॥

प्रह्लादस्यानुचरितमित्यादेः समाम्नातमिति तृतीयेनान्वयः। अस्येत्यनेनोक्तं सर्गस्थित्यप्ययानामीशस्य हरेर्याथात्म्यं तत्त्वम्, अनेन कृतं हरेर्गुणकर्मानुवर्णनं चेत्यर्थः॥ ४३॥

પ્રહ્લાદજીનું ચરિત્ર વગેરે '**समाम्नातम्**' કહેવામાં આવ્યું છે– એમ આનાથી ત્રીજા શ્લોક(૪૫) સાથે અન્વય છે. '**अस्य इति।**' ષષ્ઠી વિભક્તિ છે, તે '**अनेन**' તૃતીયાના અર્થમાં છે. આ દ્વારા સૃષ્ટિ, સ્થિતિ અને સંહારના નિયંતા શ્રીહરિનું '**याथात्म्यम्**' યથાર્થ સ્વરૂપ તથા શ્રીહરિનાં ગુણ અને કર્મોનું વર્ણન કરવામાં આવેલું છે, એમ અર્થ છે.॥ ૪૩ ॥

परावरेषां देवदैत्यादीनां यानि स्थानानि तेषां व्यत्ययो विपर्यासः॥ ४४॥

'**परावरेषाम्**' દેવ અને દૈત્યાદિનાં જે સ્થાનો છે તેમનું '**व्यत्ययः**' પરિવર્તન॥ ૪૪ ॥

धर्मो भागवतानां च भगवान्येन गम्यते।
आख्यानेऽस्मिन्समाम्नातमाध्यात्मिकमशेषतः॥ ४५

જેનાથી ભગવાનનું જ્ઞાન થાય છે તે ભગવદ્ભક્તોનો ધર્મ તથા આત્મ-અનાત્મનો વિવેક વગેરેનું આ આખ્યાનમાં સંપૂર્ણપણે નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે.॥ ૪૫ ॥

आध्यात्मिकमात्मानात्मविवेकादि॥ ४५॥

'**आध्यात्मिकम्**' આત્મ-અનાત્મનો વિવેક વગેરે॥ ૪૫ ॥

एतच्छ्रवणादिफलमाह—**य इति** द्वाभ्याम्।

આ આખ્યાનનાં શ્રવણાદિનું ફળ બે શ્લોકો દ્વારા કહે છે— '**यः इति।**'

य एतत् पुण्यमाख्यानं विष्णोर्वीर्योपबृंहितम्।
कीर्तयेच्छ्रद्धया श्रुत्वा कर्मपाशैर्विमुच्यते॥ ४६

भगवान विष्णुना पराक्रमथी विस्तार पामेला आ पवित्र आख्याननुं जे मनुष्य श्रवण करीने श्रद्धाथी कीर्तन करे (छे), ते कर्मबंधनथी मुक्त थाय छे.॥ ४६॥

एतच्छ्रुत्वा यः कीर्तयेत्॥ ४६॥

આ આખ્યાનનું શ્રવણ કરીને જે કીર્તન કરે ॥ ૪૬ ॥

एतद् य आदिपुरुषस्य मृगेन्द्रलीलां
दैत्येन्द्रयूथपवधं प्रयतः पठेत।
दैत्यात्मजस्य च सतां प्रवरस्य पुण्यं
श्रुत्वाऽनुभावमकुतोभयमेति लोकम्॥ ४७

જે મનુષ્ય આદિપુરુષ પરમાત્માની આ મૃગેન્દ્રલીલા (નૃસિંહલીલા), સેનાપતિઓ સહિત દૈત્યેન્દ્ર હિરણ્યકશિપુનો વધ તથા સંતશિરોમણિ દૈત્યપુત્ર પ્રહ્‌લાદજીના પવિત્ર પ્રભાવનું પવિત્ર થઈ શ્રવણ કરીને પાઠ કરે છે, તે ભગવાનના અભયપદરૂપ વૈકુંઠલોકને પ્રાપ્ત કરે છે.॥ ૪૭॥

एतदेतां मृगेन्द्रस्य लीलाम्। तामेवाह— दैत्येन्द्रस्य यूथपानां च वधम्। यः शुचिः सन्पठेत। पुण्यमनुभावं प्रभावं मतिनिश्चयं वा। लोकं वैकुण्ठम्॥ ४७॥

'एतत्' एताम् (**एतत्** નું સ્ત્રી.દ્વિ.એ.વ. **एताम्** રૂપ થાય.) આ મૃગેન્દ્ર(નરસિંહ)ની લીલાને, તે લીલાનું જ વર્ણન કરે છે— દૈત્યેન્દ્ર હિરણ્યકશિપુ અને સેનાપતિઓના વધનો જે પવિત્ર થઈ પાઠ કરે પવિત્ર **'अनुभावम्'** પ્રભાવને અથવા બુદ્ધિના નિશ્ચયને— **'लोकम्'** વૈકુંઠલોકને,॥ ૪૭॥

अहो प्रह्लादस्य भाग्यं येन देवो दृष्टो वयं तु मन्दभाग्या इति विषीदन्तं प्रत्याह— **यूयमिति** त्रिभिः।

અહો! પ્રહ્‌લાદનું ભાગ્ય છે કે જેણે શ્રીકૃષ્ણદેવનાં દર્શન કર્યાં, અમે તો મંદભાગી છીએ, એમ વિષાદ કરતા યુધિષ્ઠિરને ત્રણ શ્લોકો દ્વારા નારદજી કહે છે— **'यूयम् इति।'**

यूयं नृलोके बत भूरिभागा
लोकं पुनाना मुनयोऽभियन्ति।
येषां गृहानावसतीति साक्षाद्
गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम्॥ ४८

(હે રાજા યુધિષ્ઠિર,) સાનંદાશ્ચર્યની વાત છે! મનુષ્યલોકમાં તમે અતિભાગ્યશાળી છો કે જે તમારાં ઘરોમાં મનુષ્યસ્વરૂપે ગુપ્ત રહીને (શ્રીકૃષ્ણ નામના) સાક્ષાત્ પરબ્રહ્મ પરમાત્મા વસે છે. તેથી જગતને પવિત્ર કરનારા મુનિજનો (પણ) સર્વ સ્થળેથી તમારા ઘરમાં આવે છે.॥ ૪૮॥

येषां युष्माकं गृहान्मुनयोऽभियन्ति सर्वतः समायान्ति। तत्कस्य हेतोः, येषु गृहेषु नराकारं गूढं सच्छ्रीकृष्णाख्यं परं ब्रह्म साक्षाद्वसतीति॥ ४८॥

'येषाम्' युष्माकम् જે તમારા ઘરમાં મુનિઓ **'अभियन्ति'** સર્વ તરફથી આવે છે, તે કોના કારણે? જેમનાં ઘરોમાં મનુષ્યસ્વરૂપે ગુપ્ત રહીને શ્રીકૃષ્ણ નામના સાક્ષાત્ પરબ્રહ્મ પરમાત્મા વસે છે માટે.॥ ૪૮॥

ननु कृष्णोऽस्माकं मातुलेयः कथं ब्रह्मेत्युच्यते तत्राह—**स वा इति**।

स वा अयं ब्रह्म महद्विमृग्य-
कैवल्यनिर्वाणसुखानुभूतिः ।
प्रियः सुहृद् वः खलु मातुलेय
आत्मार्हणीयो विधिकृद् गुरुश्च॥ ४९

सोऽयं ब्रह्मैव। कथंभूतः। महद्भिर्विमृग्यं यत्कैवल्यनिर्वाणसुखं निरुपाधिः परमानन्द-स्तदनुभूतिरूपो वो युष्माकं खलु प्रियः सुहृदित्यादिरूपो भवति। विधिकृदाज्ञानुवर्ती ॥ ४९ ॥

ननु परं ब्रह्म चेत्कथं द्व्यष्टसहस्रस्त्रीषु रतिः, कथं वाऽधर्माद्याचरणं तस्येत्यत आह—**नेति**।

न यस्य साक्षाद् भवपद्मजादिभी
रूपं धिया वस्तुतयोपवर्णितम्।
मौनेन भक्त्योपशमेन पूजितः
प्रसीदतामेष स सात्वतां पतिः॥ ५०

यस्य रूपं तत्त्वं भवादिभिरपि धिया स्वबुद्ध्या वस्तुतयेदमित्थमिति साक्षान्नोपवर्णितं स युष्माकं स्वयमेव प्रसन्नः। अस्माकं तु मौनादिसाधनैस्तत्प्रसादः प्रार्थनीय एवेत्याह—मौनेनेति।

શંકા કરવામાં આવી છે કે કૃષ્ણ તો અમારા મામાના દીકરા છે, બ્રહ્મ કેમ કહેવાય છે? તે માટે ઉત્તર આપે છે— '**सः वै इति**।'

તમારા મામાના દીકરા, પ્રિય, સુહૃદ અને આજ્ઞાંકિત આ (જે) શ્રીકૃષ્ણ છે, તે વાસ્તવમાં મહાપુરુષો દ્વારા શોધવાયોગ્ય, નિરુપાધિ પરમાનંદના અનુભવસ્વરૂપ પરબ્રહ્મ, (સર્વના) આત્મા, ગુરુ અને પૂજવાયોગ્ય છે. ॥ ૪૯ ॥

તે આ શ્રીકૃષ્ણ બ્રહ્મ જ છે. કેવા છે આ શ્રીકૃષ્ણ? મહાપુરષો દ્વારા શોધવા યોગ્ય, જે '**कैवल्यनिर्वाणसुखम्**' નિરુપાધિ પરમાનંદ છે, તેની અનુભૂતિરૂપ છે. '**वः**' તમારા તો પ્રિય, સુહૃદ વગેરે થાય છે. '**विधिकृत्**' આજ્ઞાંકિત ॥ ૪૯ ॥

શંકા કરવામાં આવી છે કે જો તે શ્રીકૃષ્ણ પરબ્રહ્મ છે, તો શા માટે સોળ હજાર સ્ત્રીઓમાં પ્રેમ રાખે છે? અને કેમ અધર્માદિ આચરણ કરે છે? આ માટે ઉત્તર આપે છે— '**न इति**।'

જેમના તત્ત્વને ભગવાન શંકર, બ્રહ્માજી વગેરે પણ પોતાની બુદ્ધિથી યથાર્થરૂપે વર્ણવી શકતા નથી, મૌન, ભક્તિ અને સંયમ દ્વારા પૂજાયેલા તે આ ભક્તપાલક ભગવાન (અમારા ઉપર) પ્રસન્ન થાઓ! ॥ ૫૦ ॥

જેમનું '**रूपम्**' તત્ત્વ ભગવાન શંકર વગેરે પણ '**धिया**' પોતાની બુદ્ધિથી વસ્તુતઃ 'આ આવા પ્રકારનું છે' એમ યથાર્થરૂપે વર્ણવી શકતા નથી, તે જ ભગવાન તમારા ઉપર સ્વયં પ્રસન્ન છે. અમારે તો મૌનાદિ સાધનો દ્વારા તેમની કૃપા જ પ્રાર્થના કરવા યોગ્ય છે, એમ કહે છે— '**मौनेन इति**।'

स एष सात्वतां पतिर्नः प्रसीदतु। न हि प्रह्लादस्य गृहेषु परं ब्रह्म वसति, न च तद्दर्शनाय मुनयस्तद्गृहानभियन्ति, न च तस्य ब्रह्म मातुलेयादिरूपेण वर्तते, न च स्वयमेव प्रसन्नमतो यूयमेव ततोप्यस्मत्तोऽपि भूरिभागा इति भावः॥५०॥

તે આ ભક્તપાલક ભગવાન અમારી ઉપર પ્રસન્ન થાઓ! પ્રહ્‌લાદજીના ઘરમાં પરબ્રહ્મ પરમેશ્વર રહેતા ન હતા, કે જેથી ન તો મુનિજનો તેમનાં દર્શન માટે તેમને ઘરે જતા હતા. વળી, તે પરબ્રહ્મ તેમના મામાના દીકરા વગેરે સગા પણ થતા ન હતા. વળી, ભગવાન તેમની ઉપર સ્વયં પ્રસન્ન પણ થયા ન હતા. આથી તમે તો પ્રહ્‌લાદજી કરતાં અને અમારા કરતાં પણ અતિશય ભાગ્યશાળી છો, એવો ભાવ છે.॥૫૦॥

नन्वन्यैर्दुष्करं त्रिपुरभेदादिकं श्रीरुद्रः कृतवान् स एवंभूत ईश्वरोऽप्यस्य तत्त्वं न जानातीति कथमित्यपेक्षायां तस्याप्येतत्साहाय्यादेवासौ प्रभावो न केवलस्येति वक्तुमाख्यानमुपक्षिपति—**स एष इति**।

શંકા કરવામાં આવી છે કે ત્રણ નગરોનો નાશ વગેરે અન્યો દ્વારા દુષ્કર (કાર્ય) શ્રીરુદ્રે કર્યું હતું. આવા ઈશ્વર હોવા છતાં પણ તેઓ આ શ્રીહરિનું સ્વરૂપ જાણે નહીં એવું કેવી રીતે હોઈ શકે, એવી અપેક્ષા માટે કહે છે, કે તેમની (શ્રીહરિની) સહાયને કારણે જ આ પ્રભાવ છે, કેવળ રુદ્રનો આ પ્રભાવ નથી, એમ કહેવા માટે આખ્યાન પ્રકટ કરે છે — **'सः एषः इति।'**

स एष भगवान् राजन्व्यतनोद्विहतं यशः।
पुरा रुद्रस्य देवस्य मयेनानन्तमायिना॥५१
॥५१॥

હે રાજા, પૂર્વે અનંત માયાવાળા મયદાનવ દ્વારા રુદ્રદેવના નાશ પામેલા યશને તે આ જ ભગવાને ફેલાવ્યો હતો.॥૫૧॥૫૧॥

राजोवाच

कस्मिन् कर्मणि देवस्य मयोऽहन् जगदीशितुः।
यथा चोपचिता कीर्तिः कृष्णेनानेन कथ्यताम्॥५२

રાજા યુધિષ્ઠિર બોલ્યા – (હે નારદજી), મય દાનવે જગદીશ્વર રુદ્રદેવની કીર્તિનો કયા કર્મમાં નાશ કર્યો હતો? આ શ્રીકૃષ્ણ દ્વારા જે રીતે તેમની કીર્તિ વધારવામાં આવી હતી, તે કહો.॥૫૨॥

राजा युधिष्ठिर उवाच। जगदीशितुर्देवस्य कीर्तिं कस्मिन्कर्मणि मयो हतवान्॥५२॥

'राजा' યુધિષ્ઠિર બોલ્યા. જગદીશ્વર રુદ્રદેવની કીર્તિ કયા કર્મમાં મયદાનવે નષ્ટ કરી હતી?॥૫૨॥

नारद उवाच

निर्जिता असुरा देवैर्युध्यनेनोपबृंहितैः।
मायिनां परमाचार्यं मयं शरणमाययुः॥ ५३

નારદજી બોલ્યા – આ (શ્રીકૃષ્ણ ભગવાન) દ્વારા બળવાન બનાવવામાં આવેલા દેવો દ્વારા યુદ્ધમાં જીતી લેવામાં આવેલા અસુરો માયાવીઓના મહાન આચાર્ય મય દાનવને શરણે ગયા.॥ ૫૩॥

अनेन श्रीकृष्णेनोपबृंहितैः संवर्धितैः ॥ ५३ ॥

'**अनेन**' આ શ્રીકૃષ્ણ ભગવાન દ્વારા '**उपबृंहितैः**' બળવાન બનાવવામાં આવેલા (દેવો) દ્વારા ॥ ૫૩ ॥

स निर्माय पुरस्तिस्त्रो हैमीरौप्यायसीर्विभुः।
दुर्लक्ष्यापायसंयोगा दुर्वितर्क्यपरिच्छदाः॥ ५४

તે સમર્થ મયદાનવે અસુરોને સોનાનું, રૂપાનું અને લોઢાનું– એમ ત્રણ નગરો નિર્માણ કરીને (આપ્યાં હતાં), જેમના આવિર્ભાવ અને તિરોભાવ જાણી ન શકાય તેવા હતા તથા જેમાં દુર્વિતર્ક્ય સાધન-સામગ્રીઓ હતી.॥ ૫૪॥

हैमी च रौप्या चायसी चेति तिस्त्रः पुरो निर्माय तेभ्यो ददाविति शेषः। दुर्लक्ष्यावपाय-संयोगौ गमनागमने यासाम्। दुर्वितर्क्याः परिच्छदा यासु॥ ५४॥

સોનાનું, રૂપાનું અને લોઢાનું– એમ ત્રણ નગરો બનાવીને તેમને આપ્યાં, એટલું શેષ છે. જેમનું '**दुर्लक्ष्यौ अपाय-संयोगौ**' જવું (તિરોભાવ) અને આવવું (આવિર્ભાવ) લક્ષમાં લેવું દુષ્કર હતું. જેમાં તર્ક કરી ન શકાય તેવી સાધન-સામગ્રીઓ હતી.॥ ૫૪॥

ताभिस्तेऽसुरसेनान्यो लोकांस्त्रीन् सेश्वरान् नृप।
स्मरन्तो नाशयाञ्चक्रुः पूर्ववैरमलक्षिताः॥ ५५

હે રાજા, તે (વિમાનરૂપી) નગરીઓ દ્વારા (તેમનામાં છુપાઈને) પૂર્વના વેરનું સ્મરણ કરતા અસુર સેનાપતિઓ લોકપાલો સહિત ત્રણે લોકનો નાશ કરવા લાગ્યા.॥ ૫૫॥

सेनान्यः सेनापतयः। पूर्ववैरं स्मरन्तः ॥ ५५ ॥

'**सेनान्यः**' સેનાપતિઓ, પૂર્વના વેરનું સ્મરણ કરતા ॥ ૫૫ ॥

ततस्ते सेश्वरा लोका उपासाद्येश्वरं विभो।
त्राहि नस्तावकान्देव विनष्टांस्त्रिपुरालयैः॥ ५६

॥ ५६ ॥

તે સમયે (ઈન્દ્રાદિ) લોકપાલો સહિત સર્વ લોક ભગવાન શંકરને શરણે જઈ (તેમને પ્રાર્થના કરવા લાગ્યા કે) હે વિભુ, હે દેવ, ત્રણે નગરોમાં રહેતા અસુરો દ્વારા નાશ પામેલા તમારા ભક્તોની આપ રક્ષા કરો.॥ ૫૬॥ ૫૬॥

अथानुगृह्य भगवान्मा भैष्टेति सुरान्विभुः।
शरं धनुषि सन्धाय पुरेष्वस्त्रं व्यमुञ्चत॥ ५७

(પ્રાર્થના સાંભળીને) પછી 'તમે ભય પામશો નહીં' એમ કૃપા કરીને દેવોને (કહી), ધનુષ્યમાં અભિમંત્રિત કરેલા બાણનું સંધાન કરીને ત્રણે નગરો ઉપર છોડ્યું.॥ ૫૭॥

अस्त्रमभिमन्त्रितं शरं पुरेषु व्यमुञ्चत ॥ ५७ ॥

ततोऽग्निवर्णा इषव उत्पेतुः सूर्यमण्डलात्।
यथा मयूखसंदोहा नादृश्यन्त पुरो यतः ॥ ५८

ततः शरात्। सूर्यमण्डलान्मयूखसंदोहा रश्मिसमूहा इव। यतो येभ्यः ॥ ५८ ॥

तैः स्पृष्टा व्यसवः सर्वे निपेतुः स्म पुरौकसः।
तानानीय महायोगी मयः कूपरसेऽक्षिपत् ॥ ५९

कूपरसे स्वयं निर्मितकूपामृते ॥ ५९ ॥

सिद्धामृतरसस्पृष्टा वज्रसारा महौजसः।
उत्तस्थुर्मेघदलना वैद्युता इव वह्नयः ॥ ६०

वज्रसाराः वज्रवद्दृढाङ्गाः। महौजसो महाबलाः। मेघदलना मेघभेदिनो विद्युद्रूपा वह्नय इव ॥ ६० ॥

विलोक्य भग्नसङ्कल्पं विमनस्कं वृषध्वजम्।
तदायं भगवान्विष्णुस्तत्रोपायमकल्पयत् ॥ ६१

॥ ६१ ॥

वत्स आसीत्तदा ब्रह्मा स्वयं विष्णुरयं हि गौः।
प्रविश्य त्रिपुरं काले रसकूपामृतं पपौ ॥ ६२

'**अस्त्रम्**' અભિમંત્રિત કરેલું બાણ નગરો ઉપર છોડ્યું. ॥ ૫૭ ॥

સૂર્યમંડળમાંથી કિરણસમૂહો નીકળે તેમ તે બાણમાંથી (અનેક) અગ્નિવર્ણા બાણસમૂહો નીકળી પડ્યા, જેમનાથી (તે) નગરો દેખાતાં બંધ થઈ ગયાં. ॥ ૫૮ ॥

તે બાણમાંથી, સૂર્યમંડળમાંથી '**મયૂખ-સન્દોહાः**' કિરણસમૂહો નીકળે તેમ– '**યતः**' **યેभ्यः** જેમનામાંથી ॥ ૫૮ ॥

નગરમાં વસતા તે બાણોથી સ્પર્શાયેલા સર્વ અસુરો નિષ્પ્રાણ થઈને પડી ગયા. મહાયોગી મયે તેમને લાવીને અમૃતસંજીવન રસના કૂવામાં નાખી દીધા. ॥ ૫૯ ॥

'**कूपरसे**' પોતે નિર્માણ કરેલા અમૃતરસના કૂવામાં ॥ ૫૯ ॥

સિદ્ધ અમૃતરસનો સ્પર્શ પામેલા તે અસુરો વજ્ર જેવાં દૃઢ શરીરવાળા મહાબળવાન થઈ મેઘમંડળને વિદારી નાખનાર વીજળીરૂપી અગ્નિઓની જેમ (જીવતા થઈ) ઊભા થવા લાગ્યા. ॥ ૬૦ ॥

'**वज्रसाराः**' વજ્ર જેવાં દૃઢ શરીરવાળા, '**महा-ओजसः**' મહા બળવાન, '**मेघदलनाः**' વાદળોને વિદારી નાખનાર વીજળીરૂપી '**वह्नयः**' અગ્નિઓની જેમ ॥ ૬૦ ॥

જેમનો સંકલ્પ ભાંગી પડ્યો છે તેવા ઉદાસ મનવાળા ભગવાન વૃષધ્વજ શંકરને જોઈને આ ભગવાન વિષ્ણુએ ત્યારે તે માટે (અમૃતરસના વિનાશ માટે એક) ઉપાય કર્યો. ॥ ૬૧ ॥ ૬૧ ॥

તે સમયે બ્રહ્માજી વાછરડો થયા અને આ વિષ્ણુ ભગવાન સ્વયં ગાય થયા. મધ્યાહ્નકાળે ત્રણે નગરોમાં પ્રવેશીને અમૃતરસના કૂવામાંથી અમૃત પી ગયા. ॥ ૬૨ ॥

काले मध्याह्ने॥ ६२ ॥

काले मध्याह्न इत्यर्थः, अग्रे मुहूर्तेऽभिजितीश्वर इत्युक्तेः।

तेऽसुरा ह्यपि पश्यन्तो न न्यषेधन्विमोहिताः।
तद् विज्ञाय महायोगी रसपालानिदं जगौ॥ ६३ ॥ ६३ ॥

स्वयं विशोकः शोकार्तान्स्मरन्दैवगतिं च ताम्।
देवोऽसुरो नरोऽन्यो वा नेश्वरोऽस्तीह कश्चन॥ ६४ ॥ ६४ ॥

आत्मनोऽन्यस्य वा दिष्टं दैवेनापोहितुं द्वयोः।
अथासौ शक्तिभिः स्वाभिः शम्भोः प्राधनिकं व्यधात्॥ ६५
धर्मज्ञानविरक्त्यृद्धितपोविद्याक्रियादिभिः।
रथं सूतं ध्वजं वाहान्धनुर्वर्म शरादि यत्॥ ६६

आत्मनो वा अन्यस्य वा द्वयोरपि वा दैवेन दिष्टमुपकल्पितमपोहितुं परिहर्तुमिह कश्चिदपीश्वरः समर्थो नास्ति असौ श्रीकृष्णः। प्रधनं संग्रामस्तत्साधनम्॥ ६५ ॥ ६६ ॥

सन्नद्धो रथमास्थाय शरं धनुरुपाददे।
शरं धनुषि सन्धाय मुहूर्तेऽभिजितीश्वरः॥ ६७

ददाह तेन दुर्भेद्या हरोऽथ त्रिपुरो नृप।
दिवि दुन्दुभयो नेदुर्विमानशतसंकुलाः॥ ६८

देवर्षिपितृसिद्धेशा जयेति कुसुमोत्करैः।
अवाकिरन् जगुर्हृष्टा ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥ ६९

'काले' મધ્યાહ્નકાળે ॥ ૬૨ ॥

'काले' મધ્યાહ્નકાળે, એમ અર્થ છે, કારણ કે આગળ(૬૭માં) 'અભિજિત મુહૂર્તમાં ભગવાન શંકરે,' એમ કહેવામાં આવ્યું છે.

(અમૃતપાન કરતી ગાયને) જોતા હોવા છતાં પણ અત્યંત મોહિત થયેલા તે (રક્ષક) અસુરોએ તેમને અટકાવ્યા નહીં. તે જાણીને જેને શોક ન થયો તેવા મહાયોગી મયે શોકથી પીડાતા અમૃતરસના તે રક્ષકોને ભગવાનની લીલાનું સ્મરણ કરતાં આ પ્રમાણે કહ્યું– 'આ સંસારમાં દેવ, અસુર, મનુષ્ય કે અન્ય કોઈ પણ પોતાના, બીજાના કે બંનેના દૈવ દ્વારા નિર્માણ કરાયેલું દૂર કરવાને સમર્થ નથી.' ત્યાર પછી તે વિષ્ણુ ભગવાને ધર્મ, જ્ઞાન, વૈરાગ્ય, સમૃદ્ધિ, તપ, વિદ્યા, ક્રિયા વગેરે પોતાની શક્તિઓ વડે શંકર ભગવાનને રથ, સારથિ, ધજા, ઘોડા, ધનુષ્ય, બખ્તર, બાણ વગેરે જે યુદ્ધની સામગ્રી જોઈએ, તે તૈયાર કરી આપી. ॥ ૬૩ ॥ ૬૩ ॥ ૬૪ ॥ ૬૪ ॥ ૬૫ ॥ ૬૬ ॥

પોતાના, બીજાના કે બંનેના દૈવ દ્વારા **'दिष्टम्'** નિર્માણ કરાયેલું **'अपोहितुम्'** દૂર કરવાને કોઈ પણ **'ईश्वरः'** સમર્થ નથી. **'असौ'** તે શ્રીકૃષ્ણ, **'प्रधनम्'** સંગ્રામ, તેની સામગ્રી ॥ ૬૫ ॥ ૬૬ ॥

(તે સામગ્રીઓથી) તૈયાર થયેલા ભગવાન શંકરે રથમાં બેસી ધનુષ્ય-બાણ ધારણ કર્યાં. (મધ્યાહ્ને) અભિજિત મુહૂર્તમાં ધનુષ્યમાં બાણનું સંધાન કરીને, હે રાજા ! તેના દ્વારા દુર્ભેદ્ય એવાં ત્રણે નગરોને ભગવાન હરે પછી બાળી નાખ્યાં. સ્વર્ગમાં દુંદુભિઓ વાગ્યાં. ખીચોખીચ ભરેલાં સેંકડો વિમાનોવાળા દેવો, ઋષિઓ, પિતૃઓ અને સિદ્ધેશ્વરોએ જય જયકાર બોલતાં (ભગવાન શંકરને) પુષ્પપુંજો વડે આચ્છન્ન કરી દીધા (ઢાંકી દીધા) અને હર્ષ પામેલી અપ્સરાઓનું વૃન્દ ગાવા લાગ્યું અને નૃત્ય કરવા લાગ્યું. ॥ ૬૭ ॥ ૬૮ ॥ ૬૯ ॥

अभिजिति मध्याह्ने॥ ६७॥ विमानशतानि संकुलानि संकीर्णानि येषां ते देवादयः॥ ६८॥ ६९॥

अभिजिति મધ્યાહ્‌ને અભિજિત મુહૂર્તમાં ॥ ૬૭॥ સેંકડો વિમાનો **'सङ्कुलानि'** ટોળે વળ્યાં છે જેમનાં તે દેવો વગેરે॥ ૬૮॥ ૬૯॥

एवं दग्ध्वा पुरस्तिस्रो भगवान्पुरहा नृप।
ब्रह्मादिभिः स्तूयमानः स्वधाम प्रत्यपद्यत॥ ७०

॥ ७०॥

હે રાજા, આ રીતે ત્રણે નગરો બાળીને ત્રિપુરનાશક ભગવાન શંકર બ્રહ્માજી વગેરે દ્વારા સ્તુતિ કરાતા સ્વધામ પધાર્યા.॥ ૭૦॥ ૭૦॥

आदित आरभ्य स्कन्धार्थं निगमयति—**एवंविधानीति।**

પહેલેથી માંડીને સ્કન્ધાર્થનો ઉપસંહાર કરે છે— **'एवंविधानि इति।'**

एवंविधान्यस्य हरेः स्वमायया
विडम्बमानस्य नृलोकमात्मनः।
वीर्याणि गीतान्यृषिभिर्जगद्गुरो-
र्लोकान् पुनानान्यपरं वदामि किम्॥ ७१

પોતાની માયાથી મનુષ્યલોકનું અનુકરણ કરતા જગદ્‌ગુરુ, સર્વાત્મા એવા આ શ્રીહરિનાં, લોકોને પવિત્ર કરનારાં પરાક્રમો ઋષિઓ દ્વારા ગાવામાં આવ્યાં છે. (હવે હું તમને) બીજું શું કહું?॥ ૭૧॥

नृलोकं नराकारमात्मनो विडम्बमानस्यानुकुर्वतः॥ ७१॥

'नृलोकम्' મનુષ્યાકારમાં **'विडम्बमानस्य'** અનુકરણ કરતા આત્મસ્વરૂપ શ્રીહરિનાં (પરાક્રમો) ॥ ૭૧॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवादे त्रिपुरविजयो नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां दशमोऽध्यायः॥ १०॥

❋❋❋❋❋

अथैकादशोऽध्यायः

માનવધર્મ, વર્ણધર્મ અને સ્ત્રીધર્મનું નિરૂપણ

तदेवं दशभिर्ज्ञानभक्तियोगावुदीरितौ।
अथ पञ्चभिरध्यायैः कर्मयोगोऽनुवर्ण्यते॥ १

આમ, (આગળ વર્ણવ્યા પ્રમાણે સપ્તમ સ્કંધના) દસ અધ્યાયો દ્વારા જ્ઞાનયોગ અને ભક્તિયોગ કહેવામાં આવ્યા. હવે પાંચ અધ્યાય દ્વારા કર્મયોગ વર્ણવવામાં આવે છે.॥ ૧॥

एकादशे नृणां धर्माः साधारण्येन वर्णिताः।
विशेषेण च वर्णानां मुख्यामुख्याश्च योषिताम्॥ २

અગિયારમા અધ્યાયમાં મનુષ્યોના ધર્મો સાધારણ રીતે તથા વર્ણાશ્રમના ધર્મો વિશેષરૂપે વર્ણવવામાં આવ્યા છે તેમ જ સ્ત્રીઓના મુખ્ય અને ગૌણ ધર્મો કહેવામાં આવ્યા છે.॥ ૨॥

श्रीशुक उवाच

श्रुत्वेहितं साधुसभासभाजितं
महत्तमाग्रण्य उरुक्रमात्मनः।
युधिष्ठिरो दैत्यपतेर्मुदा युतः
पप्रच्छ भूयस्तनयं स्वयम्भुवः॥ १

दैत्यपतेः प्रह्लादस्य। साधूनां सभासु सभाजितं सत्कृतमीहितं चरितं श्रुत्वा पुनर्नारदं पप्रच्छ। कथंभूतस्येहितम्। महत्तमानामग्रण्यो मुख्यस्य। तत्र हेतुः—उरुक्रमे आत्मा मनो यस्य॥ १॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – જેનું મન ઉરુક્રમ ભગવાન વિષ્ણુમાં છે અને (તેથી જ) અત્યંત મહાન ભગવદ્ભક્તોમાં શ્રેષ્ઠ દૈત્યપતિ પ્રહ્લાદજીનું (બ્રહ્માદિ) સાધુજનોની સભાઓમાં સત્કાર પામેલું ચરિત્ર સાંભળીને હર્ષયુક્ત થયેલા યુધિષ્ઠિરે સ્વયમ્ભૂ (બ્રહ્માજી)ના પુત્ર નારદજીને ફરીથી પૂછ્યું.॥ ૧॥

'दैत्यपतेः' દૈત્યપતિ પ્રહ્લાદજીનું સાધુજનોની સભાઓમાં **'सभाजितम्'** સત્કાર પામેલું **'ईहितम्'** ચરિત્ર સાંભળીને ફરીથી નારદજીને પૂછયું. કેવું ચરિત્ર? અત્યંત મહાન ભગવદ્ભક્તોમાં **'अग्रण्यः'** મુખ્ય એવા પ્રહ્લાદજીનું ચરિત્ર. તે માટેનું કારણ— ઉરુક્રમ ભગવાનમાં **'आत्मा'** મન છે જેમનું॥ ૧॥

युधिष्ठिर उवाच

भगवन् श्रोतुमिच्छामि नृणां धर्मं सनातनम्।
वर्णाश्रमाचारयुतं यत् पुमान्विन्दते परम्॥ २

श्रवणेच्छायां हेतुः—यद्यतो धर्मादनुष्ठितात्परं ज्ञानं भक्तिं च विन्दते॥ २॥

યુધિષ્ઠિર બોલ્યા – હે ભગવાન નારદજી, વર્ણ અને આશ્રમના સદાચાર સાથે મનુષ્યોના સનાતન ધર્મનું શ્રવણ કરવા હું ઇચ્છું છું, કે જે ધર્મના અનુષ્ઠાનથી મનુષ્ય જ્ઞાન અને ભક્તિ પ્રાપ્ત કરે છે.॥ ૨॥

શ્રવણેચ્છા માટેનું કારણ— **'यत्'** અનુષ્ઠાન કરેલા જે ધર્મથી મનુષ્ય **'परम्'** જ્ઞાન અને ભક્તિ પ્રાપ્ત કરે છે.॥ ૨॥

भवान्प्रजापतेः साक्षादात्मजः परमेष्ठिनः।
सुतानां सम्मतो ब्रह्मंस्तपोयोगसमाधिभिः॥ ३

॥ ३॥

હે બ્રહ્મન્ નારદજી, આપ પરમેષ્ઠી પ્રજાપતિ સાક્ષાત્ બ્રહ્માજીના આત્મજ છો. તપ, યોગ અને સમાધિ દ્વારા તેમના પુત્રોમાં શ્રેષ્ઠ તરીકે સંમત છો.॥ ૩॥ ૩॥

ननु स्मृतिकारैर्धर्म उक्त एव तत्राह— **नारायणपरा इति।**

શંકા કરવામાં આવી છે કે સ્મૃતિકારો દ્વારા ધર્મ કહેવામાં આવ્યો જ છે ને? તે માટે ઉત્તર આપે છે— **'नारायणपराः इति।'**

नारायणपरा विप्रा धर्मं गुह्यं परं विदुः।
करुणाः साधवः शान्तास्त्वद्विधा न तथापरे॥ ४

॥ ४॥

આપના જેવા નારાયણપરાયણ, દયાળુ, (સ્વાર્થનિરપેક્ષ, પરોપકારશીલ) સાધુ, શાંત, વિપ્રો પરમ ગુહ્ય ધર્મને જે રીતે (યથાર્થરૂપે) જાણે છે, તે રીતે બીજાઓ જાણતા નથી.॥ ૪॥ ૪॥

नारद उवाच

नत्वा भगवतेऽजाय लोकानां धर्महेतवे।
वक्ष्ये सनातनं धर्मं नारायणमुखाच्छ्रुतम्॥ ५

अजाय श्रीनारायणाय। तस्यैव मुखाच्छ्रुतम् ॥ ५ ॥

નારદજી બોલ્યા – લોકોના ધર્મના (મૂળ) કારણરૂપ અજન્મા ભગવાનને નમસ્કાર કરીને તે જ ભગવાન નારાયણના મુખથી શ્રવણ કરેલો સનાતન ધર્મ હું કહીશ. ॥ ૫ ॥

'अजाय' અજન્મા શ્રીનારાયણને (**बा.प्र.— 'जीववत्कर्माधीनजन्मरहिताय'**— જીવની જેમ કર્મને અધીન થઈ લેવામાં આવેલા જન્મથી રહિત નારાયણને) તેમના જ મુખથી શ્રવણ કરેલા ધર્મને (હું કહીશ). ॥ ૫ ॥

तन्मुखादात्मनः श्रवणं संभावयन्विशिनष्टि— **य इति**।

योऽवतीर्यात्मनोंऽशेन दाक्षायण्यां तु धर्मतः।
लोकानां स्वस्तयेऽध्यास्ते तपो बदरिकाश्रमे॥ ६

॥ ६ ॥

તેમના મુખથી પોતાના શ્રવણની શક્યતા ઘટાવતા વિશેષણપૂર્વક કહે છે— **'यः इति।'**

જે ભગવાન નારાયણ પોતાના અંશરૂપ નર સાથે ધર્મ (નામના પ્રજાપતિ)થી દક્ષપુત્રી (મૂર્તિ)માં અવતરી લોકોના કલ્યાણ માટે બદરિકાશ્રમમાં (અત્યારે પણ) તપ કરે છે. ॥ ૬ ॥ ૬ ॥

प्रथमं तावद्धर्मे प्रमाणमाह—**धर्मेति**।

धर्ममूलं हि भगवान्सर्ववेदमयो हरिः।
स्मृतं च तद्विदां राजन्येन चात्मा प्रसीदति॥ ७

પ્રથમ ધર્મ સંબંધી પ્રમાણ જણાવે છે— **'धर्मः इति।'**

હે રાજા યુધિષ્ઠિર, સર્વ દેવમય (સર્વ વેદમય) ભગવાન શ્રીહરિ જ ધર્મનું મૂળ છે તથા વેદવેત્તા જનોએ રચેલી સ્મૃતિઓ અને જેનાથી મન પ્રસન્ન થાય તે પણ ધર્મનું મૂળ છે. ॥ ૭ ॥

धर्मस्य मूलं प्रमाणम्। स्मृतं च स्मृतिः तद्विदां वेदविदाम्। येन चात्मा मनः प्रसीदति तुष्यति च। तथा च याज्ञवल्क्यः—

'श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
सम्यक्संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम्॥'

इति।

मनुश्च—

ધર્મનું **'मूलम्'** પ્રમાણ તથા **'स्मृतम्'** સ્મૃતિઓ, **'तत्-विदाम्'** તે જાણનારાઓની, વેદવેત્તાઓની અને જેનાથી **'आत्मा'** મન **'प्रसीदति'** સન્તુષ્ટ થાય. તે અનુસાર યાજ્ઞવલ્ક્ય સ્મૃતિ છે–

'વેદ, સ્મૃતિ, સદાચાર, પોતાના આત્માને પ્રિય હોય તે અને સત્ય સંકલ્પથી થનારી શ્રેષ્ઠ કામના– આ ધર્મનાં મૂળ જાણવા.'(યા.સ્મૃ.૧/૭)

મનુસ્મૃતિમાં મનુ મહારાજ પણ કહે છે–

'वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च॥'
इति॥७॥

'સમગ્ર વેદ ધર્મનું મૂળ છે. વેદ જાણનારાઓની સ્મૃતિ, ચરિત્ર, સત્પુરુષોનો આચાર તથા મનનો સંતોષ ધર્મનાં મૂળ છે.' (મ.સ્મૃ.૨/૬)॥૭॥

वंशीधरी—तत्र धर्मकथनप्रस्तावे। तावदादौ धर्मं भक्तियोगम्।

તે ધર્મકથનના પ્રસ્તાવમાં સૌ પ્રથમ ભક્તિયોગરૂપ ધર્મનું વર્ણન કરે છે.

तत्र तावन्नरमात्रसाधारणधर्ममाह— **सत्यमिति** पञ्चभिः।

તેમાં મનુષ્ય માત્રના સાધારણ ધર્મનું પાંચ શ્લોકોથી કથન કરે છે— '**सत्यम् इति**।'

सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः।
अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम्॥ ८

સત્ય, દયા, તપ, પવિત્રતા, સહનશીલતા, યોગ્ય-અયોગ્યનો વિવેક, મનનો સંયમ, ઇન્દ્રિયોનો સંયમ, અહિંસા, બ્રહ્મચર્ય, ત્યાગ, સ્વાધ્યાય અને સરળતા,॥૮॥

तप एकादश्युपवासादि। ईक्षा युक्तायुक्तविवेकः। शमो मनसः संयमः। दमो बाह्येन्द्रियाणाम्। त्यागो दानम्। स्वाध्यायो यथोचितजपः॥८॥

'**तपः**' એકાદશીનો ઉપવાસ વગેરે, '**ईक्षा**' યોગ્ય અને અયોગ્ય વચ્ચેનો વિવેક, '**शमः**' મનનો સંયમ, '**दमः**' બહારની ઇન્દ્રિયોનો સંયમ, '**त्यागः**' દાન, '**स्वाध्यायः**' યથોચિત જપ,॥૮॥

तत्र सत्याद्या एकविंशतिर्भक्त्युपकरणी-भूताः। श्रवणाद्या नव तु साक्षाद्भक्तिरेवेति ज्ञेयम् इति चक्र.।

એમાં સત્ય વગેરે એકવીસ (લક્ષણો) ભક્તિનાં ઉપકારક (સાધનરૂપ) છે. શ્રવણાદિ (શ્રવણથી માંડી આત્મનિવેદન એમ કુલ) નવ તો સાક્ષાત્ ભક્તિ જ છે, એમ જાણવું.

सन्तोषः समदृक् सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः।
नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम्॥ ९

સંતોષ, સમદષ્ટિવાળા(મહાત્મા)ઓની સેવા, સાંસારિક પ્રવૃત્તિ અને કર્મોમાંથી ક્રમશઃ નિવૃત્તિ, મનુષ્યોની નિષ્ફળ ક્રિયાઓની સમીક્ષા, મૌન, આત્મચિંતન,॥૯॥

संतोषो दैवलब्धेनालंबुद्धिः। समदृशां महतां सेवा। ग्राम्येहोपरमः प्रवृत्तकर्मभ्यो निवृत्तिः। विपर्ययेहेक्षा निष्फलक्रियाणामीक्षणम्। मौनं वृथालापनिवृत्तिः। आत्मविमर्शनं देहादिव्यतिरिक्तात्मानुसंधानम्॥९॥

'**सन्तोषः**' દૈવ દ્વારા પ્રાપ્ત થયેલ પદાર્થોમાં 'આટલું પર્યાપ્ત છે.' તેવી બુદ્ધિ રાખવી, '**समदृशाम्**' સમદષ્ટિવાળા મહાત્માઓની સેવા કરવી, '**ग्राम्य-ईहा-उपरमः**' સાંસારિક પ્રવૃત્તિ અને કર્મોમાંથી નિવૃત્તિ, '**विपर्यय-ईहा-ईक्षा**' અવળાં ફળવાળી નિષ્ફળ ક્રિયાઓની સમીક્ષા, '**मौनम्**' વ્યર્થ ભાષણથી નિવૃત્તિ, '**आत्मविमर्शनम्**' દેહાદિથી જુદા આત્માનું અનુસંધાન કરવું,॥૯॥

अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः ।
तेष्वात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव ॥ १०

बीजां प्राणीओने अन्न वगेरेनुं यथायोग्य विभाजन करीने प्रदान करवुं, हे पांडव युधिष्ठिर, ते सर्व प्राणीओमां आत्मा तथा भगवान छे एवी बुद्धि राखवी, ॥ १० ॥

आत्मेति देवतेति च बुद्धिः ॥ १० ॥

सर्व प्राणीओमां आत्मा छे तथा भगवान छे तेवी भावना (बुद्धि) राखवी. ॥ १० ॥

श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः ।
सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम् ॥ ११

महापुरुषोनी गतिरूप आ श्रीकृष्ण भगवाननुं श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवा, पूजा, नमस्कार, तेमनुं दासत्व, सख्य अने आत्म-समर्पण ॥ ११ ॥

अस्य श्रीकृष्णस्य श्रवणादयो नव। इज्याऽर्चनम् ॥ ११ ॥

'**अस्य**' आ श्रीकृष्ण भगवाननुं श्रवण वगेरे नव (प्रकारनी भक्ति करवी), '**इज्या**' अर्चन ॥ ११ ॥

नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः ।
त्रिंशल्लक्षणवान्राजन्सर्वात्मा येन तुष्यति ॥ १२

हे राजा, सर्व मनुष्यो माटे आ त्रीस लक्षणवाळो * धर्म (ऋषिओ द्वारा) सामान्य रीते श्रेष्ठ कहेवामां आव्यो छे, जेनाथी सर्वात्मा भगवान प्रसन्न थाय छे. ॥ १२ ॥

एवं त्रिंशल्लक्षणवान् ॥ १२ ॥

आ प्रमाणे त्रीस लक्षणवाळो धर्म ॥ १२ ॥

इदानीं वर्णधर्मान्वक्तुं द्विजानां लक्षण-माह—

हवे वर्णाश्रमना धर्मोनुं निरूपण करवा माटे द्विजोनुं लक्षण जणावे छे–

संस्कारा यत्राविच्छिन्नाः स द्विजोऽजो जगाद यम् ।
इज्याध्ययनदानानि विहितानि द्विजन्मनाम् ।
जन्मकर्मावदातानां क्रियाश्चाश्रमचोदिताः ॥
॥ १३ ॥

जे (वंश)मां (मंत्रयुक्त गर्भाधानादि सोळ) संस्कारो अखंडरूपे थाय छे अने जेने ब्रह्माजीए (आवा संस्कारने योग्य) कह्यो छे ते द्विज छे. जन्म अने कर्मथी शुद्ध द्विजोने माटे यज्ञ, वेदाध्ययन अने दान शास्त्रमां कहेलां छे तथा ब्रह्मचर्यादि आश्रमोमां द्विजोनी क्रियाओ कहेली छे. ॥ १३ ॥

* १. सत्य, २. दया, ३. तप, ४. पवित्रता, ५. तितिक्षा, ६. योग्यायोग्य विवेक, ७. शम, ८. दम, ९. अहिंसा, १०. ब्रह्मचर्य, ११. त्याग, १२. स्वाध्याय, १३. सरळता, १४. संतोष, १५. महापुरुषोनी सेवा, १६. सांसारिक सुखमांथी निवृत्ति, १७. मनुष्योनी निष्फळ क्रियाओनी समीक्षा, १८. मौन, १९. आत्मचिंतन, २०. अन्नादिनुं यथायोग्य विभाजन, २१. सर्व प्राणीओमां भगवद्बुद्धि, २२. भगवाननुं श्रवण, २३. कीर्तन, २४. स्मरण, २५. सेवा, २६. पूजा, २७. नमस्कार, २८. दास्य, २९. सख्य अने ३०. आत्मनिवेदन.

संस्कारा मन्त्रवन्तो गर्भाधानादयो यस्मिन्नविच्छिन्नाः स द्विजः।

तर्हि शूद्रस्यापि संस्काराविच्छेदे सति द्विजत्वं स्यात्तत्राह—अजो ब्रह्मा यमेवंभूतसंस्कारयुक्तं जगाद स द्विजः। शूद्रं तु न मन्त्रवत्संस्कारयुक्तं जगाद न चोपनयनवन्तमतो नासौ द्विजः। तथा च स्मृतिः—

'विवाहमात्रसंस्कारं शूद्रोऽपि लभतां सदा।
न केनचित्समसृजच्छन्दसा तं प्रजापतिः॥'
इति।

श्रुतिश्च—'गायत्र्या ब्राह्मणमसृजत्। त्रिष्टुभा राजन्यम्। जगत्या वैश्यम्। न केनचिच्छूद्रम्' इति।

अतो विवाहव्यतिरिक्तसंस्कारस्यानावश्यकत्वादुपनयनस्य तु सर्वथा निषेधान्न तस्य द्विजत्वमित्यर्थः।

पाठान्तरे वैदिकादय इति गर्भाधानादय इत्यर्थः।

त्रैवर्णिकानामावश्यकान्धर्मानाह—इज्येति। जन्मना विशुद्धेन कुलेन कर्मणा चाचारेणावदातानां शुद्धानाम्। दुष्कुलानां दुराचाराणां च नैतानि विहितानीत्यर्थः। ब्रह्मचर्याद्याश्रमविहिताः क्रियाश्च। शूद्रस्य तु वर्णधर्मा एव, आश्रमभेदकृतविशेषाभावात्॥ १३॥

જે (વંશ)માં મંત્રયુક્ત ગર્ભાધાનાદિ સંસ્કારો અવિચ્છિન્નરૂપે કરવામાં આવે છે, તે દ્વિજ (બ્રાહ્મણ, ક્ષત્રિય, વૈશ્ય) છે.

તો પછી શૂદ્રના પણ અવિચ્છિન્ન સંસ્કારો કરવામાં આવ્યા હોય તો તે પણ દ્વિજ ગણાય? તે માટે ઉત્તર આપે છે— '**अजः**' બ્રહ્માજીએ જેને આવા સંસ્કારને યોગ્ય કહ્યો છે તે દ્વિજ છે, પરંતુ શૂદ્રને મંત્રયુક્ત સંસ્કારને યોગ્ય નથી કહ્યો. વળી તેને ઉપનયનવાળો કહ્યો નથી, આથી તે દ્વિજ નથી. તે અનુસાર સ્મૃતિ છે— 'તે પ્રસંગમાં શૂદ્ર માત્ર વિવાહ-સંસ્કાર ભલે પ્રાપ્ત કરે. પ્રજાપતિ બ્રહ્માજીએ કોઈ પણ છંદથી તે શૂદ્રને સર્જ્યો નથી.'

શ્રુતિ પણ છે— 'ગાયત્રીથી બ્રાહ્મણનું સર્જન કર્યું, ત્રિષ્ટુભ્‌થી ક્ષત્રિયનું સર્જન કર્યું, જગતી છંદથી વૈશ્યનું સર્જન કર્યું, તે શૂદ્રને કોઈ પણ છંદથી સર્જ્યો નહીં.'

એટલે વિવાહ સિવાયના સંસ્કારો અનાવશ્યક હોવાથી ઉપનયનનો તો સર્વથા નિષેધ થઈ જાય છે, તેથી તે શૂદ્રને દ્વિજત્વ પ્રાપ્ત થતું નથી, એમ અર્થ છે.

'**स द्विजो वैदिकादयः**' એ પાઠાંતરમાં '**वैदिकादयः**'નો અર્થ ગર્ભાધાનાદિ સંસ્કારો થાય છે.

ત્રણ વર્ણોનો આવશ્યક ધર્મ જણાવે છે— '**इज्या इति।**' જન્મથી વિશુદ્ધ કુળવાળા અને '**कर्मणा**' આચારથી '**अवदातानाम्**' શુદ્ધ દ્વિજોને (યજ્ઞાદિ વિહિત છે). નીચ કુળવાળા દુરાચારીઓને આ વિહિત નથી, એમ અર્થ છે. બ્રહ્મચર્યાદિ આશ્રમોમાં કહેલી ક્રિયાઓ પણ (શૂદ્રો માટે વિહિત નથી). શૂદ્રને માટે તો વર્ણના ધર્મો જ છે. આશ્રમોમાં ભેદ કરી શકાય તેવો વિશેષ ભેદ તેને માટે નથી.॥ ૧૩॥

ब्राह्मणादीनां चतुर्णामपि वृत्तिरूपान् धर्मानाह—**विप्रस्येति** सार्धैः सप्तभिः।

બ્રાહ્મણાદિ ચારેય વર્ણોના આજીવિકારૂપ ધર્મોનું સાડા સાત શ્લોકો દ્વારા વર્ણન કરે છે— '**विप्रस्य इति।**'

विप्रस्याध्ययनादीनि षडन्यस्याप्रतिग्रहः।
राज्ञो वृत्तिः प्रजागोप्तुरविप्राद् वा करादिभिः॥ १४

વિપ્રને અધ્યયન (અધ્યાપન, યજન, યાજન, દાન લેવું અને દાન આપવું– એમ) છ કર્મો વિહિત છે. બીજા વર્ણ(ક્ષત્રિય)ને દાન લેવા સિવાયનાં કર્મો વિહિત છે. પ્રજાપાલક રાજાની આજીવિકા બ્રાહ્મણેતર પાસેથી કર વગેરે લેવા દ્વારા કહેવામાં આવી છે.॥ ૧૪॥

विप्रस्य षट् कर्माणि विहितानीत्यनुषङ्गः। तत्र त्वध्यापनं याजनं प्रतिग्रहश्च जीविका। यथाह मनुः—'षण्णां तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका। याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः॥' इति।

બ્રાહ્મણને માટે છ કર્મો વિહિત છે, એમ જોડવું. પરંતુ તેમાં અધ્યાપન કરવું, યજ્ઞ કરાવવો અને દાન લેવું– એ (ત્રણ) આજીવિકા માટે છે. તે અનુસાર મનુ મહારાજ કહે છે— 'છ કર્મોમાંનાં ત્રણ કર્મો આજીવિકા માટે છે. યાજન, અધ્યાપન અને વિશુદ્ધ મનુષ્ય પાસેથી દાન લેવું.' (મ.સ્મૃ.૧૦/૭૬)

अन्यस्य क्षत्रियस्य अप्रतिग्रह इति प्रतिग्रहातिरिक्तं याजनमध्यापनं चापद्यनुजानाति।

'**अन्यस्य**' બીજા વર્ણ ક્ષત્રિયને '**अप्रतिग्रहः इति।**' દાન લેવા સિવાયનાં કર્મો વિહિત છે. આપત્તિકાળમાં ક્ષત્રિયોને યાજન અને અધ્યાપનની અનુજ્ઞા આપવામાં આવેલી છે.

वक्ष्यति चानन्तरमेव—ऋते राजन्यमिति। श्रूयते चाश्वपतिकैकयप्रभृतीनां क्षत्रियाणामुपदेष्टृत्वादि। प्रजापालनेऽधिकृतस्य क्षत्रियस्य वृत्त्यन्तरमाह—राज्ञ इति। आदिशब्देन दण्डशुल्कादि॥ १४॥

હવે પછી '**ऋते राजन्यम् इति।**' (શ્લોક-૧૭)થી આ જ કહેશે. વળી, શ્રુતિમાં કહ્યું છે કે અશ્વપતિ કેકયનરેશ વગેરે ક્ષત્રિયો ઉપદેશ કરતા જ હતા વગેરે. (છાં.ઉપ.૫/૧૧/૭) પ્રજાનું પાલન કરવામાં અધિકારી ક્ષત્રિયની બીજી આજીવિકા બ્રાહ્મણેતર પાસેથી કર વગેરે લેવા દ્વારા કહેવામાં આવી છે. '**आदि**' શબ્દથી દંડ, શુલ્ક વગેરે સમજવાં.॥ ૧૪॥

वैश्यस्तु वार्तावृत्तिश्च नित्यं ब्रह्मकुलानुगः।
शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा वृत्तिश्च स्वामिनो भवेत्॥ १५

વૈશ્ય ખેતી અને વેપાર વગેરેની આજીવિકાવાળો અને સદાય બ્રહ્મકુળને અનુસરનારો થાય. શૂદ્રને માટે દ્વિજ (બ્રાહ્મણ, ક્ષત્રિય અને વૈશ્ય)ની શુશ્રૂષા વિહિત છે. સ્વામી દ્વિજની સેવા શૂદ્રને માટે આજીવિકા છે.॥ ૧૫॥

वार्ता कृषिवाणिज्यादिलक्षणा वृत्तिर्यस्य। शूद्रस्य द्विजानां शुश्रूषा विहिता। स्वामिनो द्विजस्य तु शुश्रूषा वृत्तिश्च भवेत्॥ १५॥

विप्रस्य मुख्यानुकल्पभेदेन वृत्त्यन्तराण्याह—**वार्तेति**।

वार्ता विचित्रा शालीनयायावरशिलोञ्छनम्।
विप्रवृत्तिश्चतुर्धेयं श्रेयसी चोत्तरोत्तरा॥ १६

वार्ता विचित्रा कृष्यादिरूपा। शालीनं धार्ष्ट्यं विनैव प्राप्तमयाचितम्। यायावरं प्रत्यहं धान्ययाच्ञा। शिलं शालिक्षेत्रादौ स्वामित्यक्तकणिशोपादानम्। उञ्छनमापणादिपतितकणोपादानम्। शिलोञ्छनद्वयमेकीकृत्य चतुर्धेत्युक्तम्। श्रेयसी उत्तमा॥ १६॥

वृत्तिष्वेव व्यवस्थां दर्शयन्नापद्वृत्तीराह—

जघन्यो नोत्तमां वृत्तिमनापदि भजेन्नरः।
ऋते राजन्यमापत्सु सर्वेषामपि सर्वशः॥ १७

'**वार्ता**' કૃષિ, વાણિજ્ય (ગોરક્ષા, શાહુકારી) વગેરે લક્ષણવાળી આજીવિકા છે જેની, શૂદ્રને દ્વિજોની સેવા વિહિત છે તથા '**स्वामिनः**' દ્વિજની શુશ્રૂષા શૂદ્રની આજીવિકા બને.॥ ૧૫॥

મુખ્ય અને વૈકલ્પિક ભેદ પ્રમાણે વિપ્રની અન્ય આજીવિકાઓનું વર્ણન કરે છે— '**वार्ता इति।**'

(ખેતી વગેરે) અનેક પ્રકારની આજીવિકાઓ, (માગ્યા વગર પ્રાપ્ત થાય તે) શાલીન, (દરરોજ ધાન્ય માગી લાવવું તે) યાયાવર અને (ખેતર કે બજારમાં પડી રહેલા દાણા વીણી લાવવા તે) શિલોંછન– આ ચાર પ્રકારની આજીવિકા વિપ્રની છે અને તે ઉત્તરોત્તર ઉત્તમ છે.॥ ૧૬॥

ખેતી વગેરેરૂપ અનેક પ્રકારની આજીવિકાઓ, '**शालीनम्**' ધૃષ્ટતા કે માગ્યા વગર જ પ્રાપ્ત થયું હોય તે, '**यायावरम्**' દરરોજ ધાન્ય માગી લાવવું તે, '**शिलम्**' ડાંગરના ખેતર વગેરેમાં માલિક દ્વારા પડી ગયેલા દાણા વીણી લાવવા તે, '**उञ्छनम्**' બજારમાં (અનાજના વેપારીઓની દુકાન આગળ) પડી રહેલા દાણા વીણી લાવવા તે, શિલ અને ઉંછન એ બંનેને એક કરીને મૂળમાં શિલોંછન આપેલું છે, પરંતુ બંને જુદાં ગણ્યાં છે. એમ ચાર પ્રકારની આજીવિકા કહેવામાં આવી છે. '**श्रेयसी**' વધારે સારી॥ ૧૬॥

આજીવિકાઓમાં જ વ્યવસ્થા દર્શાવતાં આપત્તિકાળની આજીવિકાઓનું વર્ણન કરે છે—

નીચલા વર્ણના મનુષ્યે આપત્તિકાળ વિના (અધ્યાપનાદિ) ઉત્તમ વર્ણની આજીવિકા કરવી નહીં. આપત્તિકાળમાં તો ક્ષત્રિય સિવાયના સર્વ વર્ણોની સર્વ પ્રકારની આજીવિકા છે.॥ ૧૭॥

जघन्यो नीचः। उत्तमामध्यापनादिरूपाम्। ऋते राजन्यम्। क्षत्रियस्तु प्रतिग्रहादन्यां भजेत्॥ १७॥

चतुर्विधां पूर्वोक्तां विप्रवृत्तिमितरेषामपि दर्शयन्नाह—**ऋतामृताभ्यामिति**।

ऋतामृताभ्यां जीवेत मृतेन प्रमृतेन वा।
सत्यानृताभ्यां जीवेत न श्ववृत्त्या कथञ्चन॥ १८
॥ १८॥

श्लोकं व्याचष्टे—**ऋतमिति**।

ऋतमुञ्छशिलं प्रोक्तममृतं यदयाचितम्।
मृतं तु नित्ययाच्ञा स्यात् प्रमृतं कर्षणं स्मृतम्॥ १९
॥ १९॥

सत्यानृतं तु वाणिज्यं श्ववृत्तिर्नीचसेवनम्।
वर्जयेत् तां सदा विप्रो राजन्यश्च जुगुप्सिताम्।
सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेवमयो नृपः॥ २०

तयोस्तद्वर्जने हेतुमाह—सर्ववेदमय इति ॥ २०॥

'**જઘન્યઃ**' નીચલા વર્ણનો મનુષ્ય, '**ઉત્તમામ્**' ભણાવવું વગેરેરૂપ ઉત્તમ આજીવિકા (ન કરે). ક્ષત્રિય સિવાયના (સર્વ વર્ણો), પરંતુ ક્ષત્રિય દાન લેવા સિવાયની બીજી આજીવિકા કરે.॥ ૧૭॥

પૂર્વે જણાવેલી વિપ્રની ચાર પ્રકારની આજીવિકાઓને બીજા વર્ણોની પણ દર્શાવતાં કહે છે— '**ऋतामृताभ्याम् इति**।'

ઋત કે અમૃતથી આજીવિકા કરવી અથવા મૃત કે પ્રમૃતથી આજીવિકા કરવી અથવા તો સત્ય કે અસત્યથી આજીવિકા કરવી, પરંતુ શ્વાનવૃત્તિથી કયારેય પણ આજીવિકા કરવી નહીં.॥ ૧૮॥ ૧૮॥

શ્લોક (૧૮) ની વ્યાખ્યા કરે છે— '**ऋतम् इति**।'

બજારમાં પડી રહેલા દાણા (ઉંછ) તથા ખેતરમાં પડી રહેલા દાણા (શિલ)ને વીણીને શિલોંછ વૃત્તિથી જીવન-નિર્વાહ કરવો તે 'ઋત' છે. માગ્યા વિના મળે એમ અયાચક વૃત્તિ દ્વારા જીવન-નિર્વાહ કરવો તે (શાલીન વૃત્તિ) 'અમૃત' છે. નિત્ય માગીને જીવન-નિર્વાહ કરવો તે (યાયાવર વૃત્તિ) 'મૃત' છે. ખેતી દ્વારા કરાતી આજીવિકાને 'પ્રમૃત' કહેવામાં આવી છે. ॥ ૧૯॥ ૧૯॥

વેપાર સત્યાનૃત પ્રકારની આજીવિકા છે. નીચ વર્ણની સેવા શ્વાનવૃત્તિ છે. વિપ્ર અને ક્ષત્રિય નિંદિત એવી તે શ્વાનવૃત્તિનો સદાય ત્યાગ કરે, (કારણ કે) વિપ્ર સર્વવેદમય છે અને ક્ષત્રિય સર્વદેવમય છે.॥ ૨૦॥

વિપ્ર અને ક્ષત્રિય, તે બંને દ્વારા તે શ્વાનવૃત્તિના ત્યાગ માટેનું કારણ કહે છે— '**સર્વવેદમયઃ**'॥ ૨૦॥

वर्णानामभिव्यञ्जकरूपान्धर्मानाह—**शम इति** चतुर्भिः।

शमो दमस्तपः शौचं संतोषः क्षान्तिरार्जवम्।
ज्ञानं दयाच्युतात्मत्वं सत्यं च ब्रह्मलक्षणम्॥ २१

अच्युतात्मत्वं श्रीविष्णुपरत्वम्॥ २१॥

शौर्यं वीर्यं धृतिस्तेजस्त्याग आत्मजयः क्षमा।
ब्रह्मण्यता प्रसादश्च रक्षा च क्षत्रलक्षणम्॥ २२

शौर्यं युद्धोत्साहः। वीर्यं प्रभावः। तेजः प्रागल्भ्यम्। त्यागो दानम्। आत्मनो मनसो जयः॥ २२॥

देवगुर्वच्युते भक्तिस्त्रिवर्गपरिपोषणम्।
आस्तिक्यमुद्यमो नित्यं नैपुणं वैश्यलक्षणम्॥ २३

॥ २३॥

शूद्रस्य संनतिः शौचं सेवा स्वामिन्यमायया।
अमन्त्रयज्ञो ह्यस्तेयं सत्यं गोविप्ररक्षणम्॥ २४

अमन्त्रयज्ञो नमस्कारेणैव पञ्चयज्ञानुष्ठानम्। तथा च याज्ञवल्क्यः—'नमस्कारेण मन्त्रेण पञ्चयज्ञान्न हापयेत्।' इति॥ २४॥

वंशीधरी—'नमस्कारमन्त्रेण प्रणवरहितनमोऽन्तचतुर्थ्यन्तमन्त्रेण देवेभ्यो नमः पितृभ्यो नमः इदमन्नमित्येवंरूपेणेत्यर्थः।'

ચારેય વર્ણોને અભિવ્યક્ત કરવારૂપ ધર્મોનું ચાર શ્લોકો વડે વર્ણન કરે છે— '**शमः इति।**'

શમ, દમ, તપ, શૌચ, સંતોષ, ક્ષમા, સરળતા, જ્ઞાન, દયા, ભગવત્પરાયણતા અને સત્ય– આ બ્રાહ્મણનાં લક્ષણો છે.॥ ૨૧॥

'**अच्युतात्मत्वम्**' શ્રીવિષ્ણુપરાયણતા॥ ૨૧॥

યુદ્ધમાં ઉત્સાહ, પ્રભાવ, ધૈર્ય, તેજ, દાન, મનોજય, ક્ષમા, બ્રાહ્મણો પ્રત્યે ભક્તિ, પ્રસન્નતા અને (પ્રજાની) રક્ષા– આ ક્ષત્રિયનાં લક્ષણો છે.॥ ૨૨॥

'**शौर्यम्**' યુદ્ધમાં ઉત્સાહ, '**वीर्यम्**' પ્રભાવ, '**तेजः**' કૌશલ્ય (શત્રુને અભિભૂત કરવાનું સામર્થ્ય), '**त्यागः**' દાન, '**आत्मनः**' મનનો જય,॥ ૨૨॥

દેવ, ગુરુ અને ભગવાન પ્રત્યે ભક્તિ, (ધર્મ-અર્થ-કામ– આ) ત્રણ પુરુષાર્થોનું પોષણ, આસ્તિકતા, ઉદ્યમ અને નિત્ય કાર્યકુશળતા– આ વૈશ્યનાં લક્ષણો છે.॥ ૨૩॥ ૨૩॥

બ્રાહ્મણાદિ ત્રણે વર્ણો પ્રત્યે નમ્રતા, પવિત્રતા, સ્વામીની નિષ્કપટ સેવા, વૈદિક મંત્રોચ્ચાર વિના યજ્ઞો કરવા, ચોરી ન કરવી, સત્ય તથા ગાયો અને બ્રાહ્મણોનું રક્ષણ કરવું– આ શૂદ્રનાં લક્ષણો છે.॥ ૨૪॥

'**अमन्त्रयज्ञः**' મંત્રરહિત યજ્ઞ કરવો, નમસ્કારથી જ પાંચ મહાયજ્ઞોનું અનુષ્ઠાન કરવું. વળી, યાજ્ઞવલ્ક્ય એ અનુસાર કહે છે— નમસ્કારમંત્રથી કરવામાં આવતા પાંચ યજ્ઞો છોડવા નહીં.॥ ૨૪॥

નમસ્કારમંત્રથી અર્થાત્ પ્રણવરહિત નમઃ અંતવાળી ચતુર્થી વિભક્તિના અંતવાળા મંત્રથી દેવોને નમસ્કાર, પિતૃઓને નમસ્કાર. આ અન્ન (તેમને માટે છે.), એ પ્રમાણે (યજ્ઞો કરવા), એમ અર્થ છે.

स्त्रीधर्मानाह—**स्त्रीणामिति** पञ्चभिः।

स्त्रीणां च पतिदेवानां तच्छुश्रूषानुकूलता।
तद्बन्धुष्वनुवृत्तिश्च नित्यं तद्व्रतधारणम्॥ २५

पतिरेव देवो यासाम्। तस्य पत्युरेव शुश्रूषा पादसंवाहनादिभिः। तदनुकूलता च हिताचरणम्। तस्य यद्व्रतं नियमस्तस्य धारणमाचरणम्। एतच्चतुष्टयं पतिव्रतानां लक्षणं धर्मश्च॥ २५॥

संमार्जनोपलेपाभ्यां गृहमण्डलवर्तनैः।
स्वयं च मण्डिता नित्यं परिमृष्टपरिच्छदा॥ २६

किंच संमार्जनोपलेपाभ्यामित्यादेः पतिं भजेदित्युत्तरेणान्वयः। परिमृष्टा उद्वर्तनादिना निर्मलीकृताः परिच्छदा गृहोपकरणानि यया॥ २६॥

कामैरुच्चावचैः साध्वी प्रश्रयेण दमेन च।
वाक्यैः सत्यैः प्रियैः प्रेम्णा काले काले भजेत् पतिम्॥ २७

॥ २७॥

संतुष्टाऽलोलुपा दक्षा धर्मज्ञा प्रियसत्यवाक्।
अप्रमत्ता शुचिः स्निग्धा पतिं त्वपतितं भजेत्॥ २८

किंच संतुष्टा यथालाभेन। तावन्मात्रभोगेऽप्यलोलुपा। दक्षा अनलसा। प्रिया सत्या

સ્ત્રીઓના ધર્મો પાંચ શ્લોકોથી જણાવે છે— **'स्त्रीणाम् इति।'**

પતિ જેમના ભગવાન છે તેવી સ્ત્રીઓના ધર્મો છે— પતિની સેવા કરવી, તેને અનુકૂળ રહેવું, તે પતિના સંબંધીઓની સેવા તથા પતિનો જે નિયમ હોય તેનું આચરણ કરવું.॥ ૨૫॥

પતિ જ જેમના દેવ છે, '**तस्य**' તે પતિની જ ચરણ પસવારવા વગેરે દ્વારા સેવા તથા '**तत्-अनुकूलता**' પતિનું હિત થાય તેવું આચરણ કરવું, તેનો જે '**व्रतम्**' નિયમ હોય તેનું '**धारणम्**' આચરણ કરવું. આ ચાર લક્ષણ અને ધર્મ પતિવ્રતાનાં છે.॥ ૨૫॥

ઘરમાં બુહારીને અને લીંપણ તથા આંગણામાં રંગથી વેલ, મંડળો વગેરે દ્વારા (પતિને પ્રસન્ન કરવા), પોતે પણ અલંકૃત રહેવું અને ઘરવખરી પણ સદાય સ્વચ્છ રાખવી.॥ ૨૬॥

વળી, વાળવું, લીંપણ કરવું વગેરેથી પતિની સેવા કરવી, એમ પછીના શ્લોક (૨૭) સાથે અન્વય છે. '**परिमृष्टाः**' સુગંધિત દ્રવ્યાદિ દ્વારા સ્વચ્છ કરવામાં આવ્યું છે '**परिच्छदाः**' ઘરનું રાચ-રચીલું જેના દ્વારા॥ ૨૬॥

(પતિની) નાની-મોટી ઈચ્છાઓને સમયાનુસાર પૂર્ણ કરવા દ્વારા તથા વિનય, ઈન્દ્રિયનિગ્રહ અને સત્ય, પ્રિય વચનો દ્વારા સાધ્વી સ્ત્રી પતિની પ્રેમપૂર્વક સેવા કરે.॥ ૨૭॥ ૨૭॥

સંતુષ્ટ, અલોલુપ, આળસરહિત, ધર્મજ્ઞ, પ્રિય-સત્ય વાણી બોલનારી, સાવધાન, પવિત્ર, સ્નેહાળ સ્ત્રી પતિત ન હોય તેવા પતિની સેવા કરે.॥ ૨૮॥

વળી, '**सन्तुष्टा**' જે મળે તેનાથી સન્તુષ્ટ રહેનારી, પ્રાપ્ત થયા હોય તેટલા ભોગોમાં પણ લોલુપ ન થનારી, '**दक्षा**' આળસરહિત, પ્રિય અને સત્ય વાણી છે જેની તેવી, સર્વ

च वाग्यस्याः। सर्वत्राप्यप्रमत्ताऽवहिता। अपतितं महापातकशून्यम्। यथाह याज्ञवल्क्यः—'आशुद्धेः संप्रतीक्ष्यो हि महापातकदूषितः।' इति॥ २८॥

કર્તવ્યોમાં પણ '**अप्रमत्ता**' સાવધાન એવી સ્ત્રી '**अपतितम्**' મહાપાપથી રહિત હોય તેવા અપતિત પતિની સેવા કરે. જેમ કે યાજ્ઞવલ્ક્ય મુનિ કહે છે— '(બ્રહ્મહત્યાદિ) મહાપાપથી દૂષિત થયેલો પતિ શુદ્ધ થાય ત્યાં સુધી પ્રતીક્ષા કરવી જ જોઈએ.'॥ ૨૮॥

वंशीधरी—प्रायश्चित्तेन शुद्धं पुनर्भजेदित्यर्थः।

પ્રાયશ્ચિત્તથી શુદ્ધ થયેલા પતિની પુનઃ સેવા કરવી, એમ અર્થ છે. (એટલે ત્યાં સુધી તેની સેવા ન કરવી.)

या पतिं हरिभावेन भजेच्छ्रीरिव तत्परा।
हर्यात्मना हरेर्लोके पत्या श्रीरिव मोदते॥ २९

જે સ્ત્રી તે પતિને પરાયણ થઈને, લક્ષ્મી જેમ શ્રીહરિની સેવા કરે છે તેમ પતિને શ્રીહરિના ભાવથી ભજે, તે સ્ત્રી શ્રીહરિના લોકમાં શ્રીહરિરૂપ થયેલા પતિ સાથે લક્ષ્મીની જેમ આનંદ કરે છે.॥ ૨૯॥

तत्परा सती भजेत्। श्रीर्हरिमिव। हर्यात्मना पत्या सह॥ २९॥

જે સ્ત્રી પતિપરાયણ થઈ ભજે– લક્ષ્મી જેમ શ્રીહરિની સેવા કરે છે તેમ– શ્રીહરિરૂપ થયેલા પતિ સાથે (લક્ષ્મીની જેમ આનંદ કરે છે.)॥ ૨૯॥

प्रतिलोमजानुलोमजानां वृत्तिमाह— **वृत्तिरिति**।

પ્રતિલોમથી જન્મેલા અને અનુલોમથી જન્મેલાઓની જીવિકાનું વર્ણન કરે છે— '**वृत्तिः इति**।'

वृत्तिः सङ्करजातीनां तत्तत्कुलकृता भवेत्।
अचौराणामपापानामन्त्यजान्तेऽवसायिनाम्॥ ३०

ચોરી ન કરનારા અને પાપકર્મ ન કરનારા અંત્યજ અને અંતેવસાયી વર્ણસંકર જાતિના લોકોની આજીવિકા પોતપોતાના કુળની પરમ્પરા અનુસાર પ્રાપ્ત થયેલી હોય છે.॥ ૩૦॥

तत्तत्कुलकृता कुलपरम्पराप्राप्ता। परम्परा-प्राप्तमपि चौर्यं हिंसादिकं च प्रतिषेधति— अचौराणामपापानां चेति। तत्प्रदर्शनार्थं कांश्चित् प्रतिलोमजविशेषानाह—**अन्त्यजेति**।
'रजकश्चर्मकारश्च नटो बुरुड एव च।
कैवर्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते अन्त्यजाः स्मृताः॥'
इति।

'**तत्-तत्-कुलकृता**' તે તે કુળની પરંપરાથી પ્રાપ્ત થયેલી આજીવિકા– કુળની પરંપરાથી પ્રાપ્ત થઈ હોવા છતાં ચોરી, હિંસા વગેરેનો નિષેધ કરે છે— '**अचौराणाम् अपापानाम् च इति**' તે દર્શાવવા માટે કેટલીક પ્રતિલોમથી જન્મેલી વિશેષ જાતિઓનું વર્ણન કરે છે— '**अन्त्यजः इति**।' 'ધોબી, મોચી, નટ, બુરુડ, કૈવર્ત, મેદ અને ભીલ– આ સાતને અન્ત્યજો જાણવા.'

अन्तेवसायिनस्तु चाण्डालपुल्कसमातङ्गादयः। तेषां परम्पराप्राप्तैव वस्त्रनिर्णेजनादिवृत्तिरित्यर्थः ॥ ३० ॥

ચાંડાલ, પુલ્કસ, માતંગ વગેરે અંતેવસાયીઓ છે. તેમની કુળ પરંપરાથી પ્રાપ્ત થયેલી, વસ્ત્રો ધોવા વગેરે આજીવિકાઓ છે, એમ અર્થ છે. ॥ ૩૦ ॥

अन्वि.—संकरजातयस्तु प्रतिलोमजाः अनुलोमजाश्चेति द्विविधाः। तत्रावरवर्णात् प्रकृष्टवर्णायां स्त्रियां जाताः प्रतिलोमजाः। प्रकृष्टवर्णादवरवर्णायां जातास्त्वनुलोमजाः।

પ્રતિલોમથી જન્મેલા અને અનુલોમથી જન્મેલા એમ બે પ્રકારના વર્ણસંકર હોય છે. તેમાં નીચલા વર્ણથી શ્રેષ્ઠ વર્ણની સ્ત્રીમાં જન્મેલા પ્રતિલોમ વર્ણસંકર છે અને શ્રેષ્ઠ વર્ણથી નીચલા વર્ણની સ્ત્રીમાં જન્મેલા અનુલોમ વર્ણસંકર છે.

श्रेष्ठादपि परधर्मान्नीचोऽपि स्वधर्म एव श्रेयानित्याह—**प्राय इति**।

શ્રેષ્ઠ પરધર્મ કરતાં ઊતરતો હોવા છતાં પણ સ્વધર્મ જ કલ્યાણકારી છે, એમ કહે છે— '**प्रायः इति**।'

प्रायः स्वभावविहितो नृणां धर्मो युगे युगे।
वेददृग्भिः स्मृतो राजन्प्रेत्य चेह च शर्मकृत्॥ ३१

હે રાજા, યુગે યુગે મનુષ્યોની સત્ત્વાદિ પ્રકૃતિથી રચાયેલો ધર્મ આ લોકમાં તથા મૃત્યુ પછી પરલોકમાં ઘણું કરીને સુખનું કારણ થાય છે, એમ વેદ જ જેમનાં ચક્ષુ છે તેવા ઋષિ-મુનિઓ દ્વારા કહેવામાં આવ્યું છે. ॥ ૩૧ ॥

स्वभावेन सत्त्वादिप्रकृत्या विहितो धर्मः शर्मकृत् सुखहेतुः स्मृतः। कैः। वेद एव दृक् चक्षुर्येषां तैः। भगवता चोक्तम्—
'श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।'
इति ॥ ३१ ॥

'**स्वभावेन**' સત્ત્વાદિ પ્રકૃતિથી રચાયેલો ધર્મ '**शर्मकृत्**' સુખનું કારણ થાય છે, એમ કહેવામાં આવ્યું છે. કોના દ્વારા? વેદ જ '**दृक्**' ચક્ષુ છે જેમનાં તે ઋષિઓ દ્વારા. ભગવાન દ્વારા પણ કહેવાયું છે— 'સારી રીતે આચરણ કરેલા પરધર્મ કરતાં ગુણરહિત એવો પોતાનો ધર્મ વધારે કલ્યાણકારક છે.' (ગીતા. ૩/૩૫,૧૮/૪૭) ॥ ૩૧ ॥

ननु स्वाभाविकस्य कर्मणो बन्धहेतुत्वात्कथं सुखहेतुत्वं तत्राह—**वृत्त्येति**।

શંકા કરવામાં આવી છે કે સ્વાભાવિક કર્મ બંધનના કારણરૂપ હોવાથી સુખના કારણરૂપ કેવી રીતે થાય? તે માટે ઉત્તર આપે છે— '**वृत्त्या इति**।'

वृत्त्या स्वभावकृतया वर्तमानः स्वकर्मकृत्।
हित्वा स्वभावजं कर्म शनैर्निर्गुणतामियात्॥ ३२
॥ ३२ ॥

(વર્ણાશ્રમાદિ) સ્વભાવથી નક્કી કરવામાં આવેલી આજીવિકાથી જીવનનિર્વાહ કરનારો મનુષ્ય સ્વધર્મનું પાલન કરતાં ધીમે ધીમે સ્વાભાવિક કર્મ છોડીને નિર્ગુણતા પ્રાપ્ત કરે છે. ॥ ૩૨ ॥ ૩૨ ॥

शनैर्बहुजन्मान्त एव 'स्वधर्मनिष्ठः शतजन्मभिः पुमान् विरिञ्चतामेति ततः परं हि माम्।' (श्रीमद्भा. ४।२४।२९)

'**શનૈઃ**' ધીરે ધીરે બહુ જન્મોના અંતે જ, 'સ્વધર્મનિષ્ઠ મનુષ્ય સેંકડો જન્મ લીધા પછી બ્રહ્માજીના પદને પામે છે અને તે પછી મને પામે છે.' (શ્રીમદ્ભા.૪/૨૪/૨૯)

ननु काम्यानि कर्माणि कुर्वतस्तत्फल-भोगपरस्य कथं नैर्गुण्यं स्यात्। तदुक्तं प्रह्लादेन—'औपस्थ्यजैह्व्यं बहुमन्यमानः कथं विरज्येत दुरन्तमोहः ॥' इत्यादि। तत्राधिकारि-भेदेन व्यवस्थां सदृष्टान्तामाह—**उप्यमानमिति** द्वाभ्याम्।

શંકા કરવામાં આવી છે કે કામ્ય કર્મો કરતા અને તેના ફળભોગ માટે તત્પર રહેતા મનુષ્યને નિર્ગુણતા કેવી રીતે પ્રાપ્ત થાય? પ્રહ્‌લાદજી દ્વારા તે જ કહેવામાં આવ્યું છે— 'જનનેન્દ્રિય અને રસનેન્દ્રિયના ભોગોને સર્વશ્રેષ્ઠ માનનારો અને દુષ્પરિણામવાળા મોહથી યુક્ત એવો મનુષ્ય કેવી રીતે વૈરાગ્ય પામે?' (શ્રીમદ્ ભા.૭/૯/૧૩) વગેરે. આના સમાધાન માટે જુદા જુદા અધિકારીઓ માટે દૃષ્ટાન્તસહિત બે શ્લોકો દ્વારા વ્યવસ્થા કહે છે— '**उप्यमानम् इति।**'

उप्यमानं मुहुः क्षेत्रं स्वयं निर्वीर्यतामियात्।
न कल्पते पुनः सूत्या उप्तं बीजं च नश्यति॥ ३३

જેમાં વારંવાર વાવણી કરવામાં આવતી હોય તે ખેતર પોતાની જાતે જ રસહીનતાને પ્રાપ્ત થાય છે, ફરીથી ધાન્યની ઉત્પત્તિ માટે તે સક્ષમ રહેતું નથી અને તેમાં વાવવામાં આવેલું બી પણ નાશ પામે છે.॥ ૩૩॥

पुनः सूत्यै सस्यप्रसवाय॥ ३३॥

ફરીથી '**सूत्यै**' ધાન્યની ઉત્પત્તિ માટે (ક્ષમતા રહેતી નથી.)॥ ૩૩॥

एवं कामाशयं चित्तं कामानामतिसेवया।
विरज्येत यथा राजन्नाग्निवत् कामबिन्दुभिः॥ ३४

હે રાજા (યુધિષ્ઠિર), એ જ પ્રમાણે જેમાં અત્યંત કામનાઓ વાસનારૂપે રહેલી હોય તેવું મન કામનાઓના અતિસેવનથી વિરક્ત થઈ જાય છે. (ઘીનાં) ટીપાંઓથી જેમ અગ્નિ શાંત નથી થતો. (પરંતુ મોટી ધારે ઘી પૂરવાથી અગ્નિ શાંત થઈ જાય છે, તેમ વિષયોના અત્યંત સેવનથી મન ઉબાઈ જાય છે.)॥ ૩૪॥

कामा आशेरते वासनारूपेण यस्मिंस्तत्। अयं भावः—उत्कटवासनाविष्टस्य सहसैव कामत्यागासंभवाद्वेदोक्तनियमेन बहुशः कामान् भुञ्जानस्यैव नित्यनैमित्तिकैर्विशुद्धचेतसस्तद्दोष-दर्शनेन ययातिसौभरिप्रमुखानामिव शनैर्विरागो भवति, यथा सवीर्यं क्षेत्रं शनैर्निर्वीर्यं भवति, यथा च प्रज्वलितोऽग्निर्न घृतबिन्दुभिः शाम्यति, महता तु घृतपूरेण शाम्यत्येव तद्वत्।

અત્યંત કામનાઓ વાસનારૂપે જેમાં સૂતેલી (રહેલી) હોય તેવું મન, શ્લોકનો ભાવ આ પ્રમાણે છે— ઉત્કટ વાસનાઓથી ઘેરાયેલો મનુષ્ય એકાએક કામનાઓનો ત્યાગ કરે તે અસંભવ છે, તેથી વેદોક્ત નિયમ પ્રમાણે અનેક જાતની કામનાઓ ભોગવનારો મનુષ્ય જ નિત્ય, નૈમિત્તિક કર્મોના આચરણ દ્વારા ચિત્ત શુદ્ધ થતાં, તે કામોપભોગોમાં દોષદર્શન થવાથી યયાતિ, સૌભરિ વગેરે મનુષ્યોની જેમ ધીમે ધીમે વિરક્ત થાય છે. જેવી રીતે રસાળ ખેતર ધીમે ધીમે રસહીન થાય છે તેમ તથા જેવી રીતે પ્રજ્વલિત થયેલો અગ્નિ ઘીનાં ટીપાંઓથી શાંત નથી થતો, પરંતુ મોટી ધારથી ઘી પૂરવાથી શાંત થઈ જાય છે તેમ!

प्रह्लादकृतस्तुतौ कौमार एव निवृत्त्युपदेशो मन्दवासनानामधिकारेण। तदुक्तं तत्रैव—

'बाला न दूषितधियो द्वन्द्वारामेरितेहितैः॥' इति।

પ્રહ્‌લાદજીએ કરેલી સ્તુતિમાં બાલ્યાવસ્થામાં જ નિવૃત્તિનો ઉપદેશ છે, તે મંદ વાસનાવાળાઓના અધિકાર માટે છે. ત્યાં જ કહેવાયું છે— 'બાળકોની બુદ્ધિ રાગદ્વેષાદિ દ્વંદ્વોમાં રમણ કરનારા મનુષ્યોની પ્રેરણાઓ અને ચેષ્ટાઓથી દૂષિત નથી.' (શ્રીમદ્ ભા.૭/૫/૫૬)

अतः सर्वमनवद्यम्॥ ३४॥

આથી સર્વ નિરૂપણ દોષરહિત છે.॥ ૩૪॥

(સ્કંધ ૯, અ-૬ માં સૌભરિ ઋષિની તથા સ્કંધ ૯, અ-૧૯ માં યયાતિની કથા આવે છે.)

कामानामतिसेवया यथा चित्तं विरज्येत तथा कामबिन्दुभिः कामलेशैरग्निवन्न विरज्येते-त्यन्वयः।

કામ્યવિષયોનું વધુ પડતું સેવન કરવાથી જેમ ચિત્ત તેમનાથી ઉબાઈ જાય છે, તેમ '**कामबिन्दुभिः**' થોડા થોડા કામ્ય વિષયોનું સેવન કરવાથી (થોડું થોડું ઘી હોમવાથી ન ઓલવાતા) અગ્નિની જેમ વૈરાગ્ય જન્મતો નથી, એમ અન્વય છે.

शमादिभिरेव ब्राह्मणादिव्यवहारो मुख्यो न जातिमात्रादित्याह—**यस्येति**।

બ્રાહ્મણ વગેરે વિભાગ શમ, દમાદિ લક્ષણોથી જ મુખ્ય છે, નહીં કે માત્ર જાતિથી, એમ કહે છે— '**यस्य इति**।'

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम्।
यदन्यत्रापि दृश्येत तत् तेनैव विनिर्दिशेत्॥ ३५

જે મનુષ્યના વર્ણને દર્શાવનારું જે લક્ષણ કહેવામાં આવ્યું છે તે જો અન્ય વર્ણમાં પણ જણાય, તો તે લક્ષણ ઉપરથી જ તેને તે વર્ણનો કહેવો.॥ ૩૫॥

यद्यदि अन्यत्र वर्णान्तरेऽपि दृश्येत तद्वर्णान्तरं तेनैव लक्षणनिमित्तेनैव वर्णेन विनिर्दिशेत्। न तज्जातिनिमित्तेनेत्यर्थः॥ ३५॥

'**यत्**' જો '**अन्यत्र**' બીજા વર્ણમાં પણ જણાય તો તે બીજા વર્ણના મનુષ્યને '**तेन-एव**' તે લક્ષણને કારણે જ તે જ વર્ણનો ગણવો. તેની જાતિને કારણે તેને તે જ જાતિનો ન ગણવો, એમ અર્થ છે.॥ ૩૫॥

वंशीधरी—

'अहिंसासत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता।
भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः॥'

इत्येकादशे श्रीकृष्णोक्तेः। अत्र विशेषमाह देहान्तरं विना धर्मसादृश्येनापि वर्णता।

'અહિંસા, સત્ય, અસ્તેય, કામ-ક્રોધ-લોભરાહિત્ય અને પ્રાણીમાત્રનું પ્રિય તથા હિત કરવાની ઈચ્છા– આ સર્વ વર્ણોનો ધર્મ છે.' (શ્રીમદ્‌ભા.૧૧/૧૭/૨૧) એમ એકાદશ સ્કંધમાં ભગવાને કહ્યું છે. અહીં વિશેષ કહે છે– 'બીજા શરીર વિના સમાન ધર્મથી પણ વર્ણત્વ પ્રાપ્ત થાય છે.'

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवादे सदाचारनिर्णयो नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां एकादशोऽध्यायः॥ ११॥

❋❋❋❋❋

अथ द्वादशोऽध्यायः

બ્રહ્મચાર્યશ્રમ અને વાનપ્રસ્થાશ્રમના નિયમો

द्वादशे वर्ण्यते धर्मो ब्रह्मचारिवनस्थयोः।
चतुर्णामाश्रमाणां च साधारण्येन कश्चन॥ १

બારમા અધ્યાયમાં બ્રહ્મચારી અને વાનપ્રસ્થીનો ધર્મ વર્ણવવામાં આવે છે તેમ જ ચારે આશ્રમોના કેટલાક ધર્મો સાધારણ રીતે વર્ણવાયા છે.॥ ૧॥

वर्णादीनां धर्मा उक्ताः, इदानीमाश्रमधर्मा उच्यन्ते। तत्रास्मिन्द्वादशेऽध्याये ब्रह्मचारिवान-प्रस्थयोरसाधारणाश्चतुर्णां साधारणाश्चोच्यन्ते।

વર્ણ વગેરેના ધર્મો કહેવાયા, હવે આશ્રમોના ધર્મો કહેવામાં આવે છે. તેમાં આ બારમા અધ્યાયમાં બ્રહ્મચારી અને વાનપ્રસ્થીઓના અસાધારણ ધર્મો અને ચારે આશ્રમોના સાધારણ ધર્મો કહેવામાં આવે છે.

त्रयोदशे यतेर्धर्माः। चतुर्दशे गृहस्थस्य। पञ्चदशे सर्वधर्मसारसंग्रहः।

तेरमा अध्यायमां संन्यासीना धर्मो, चौदमामां गृहस्थना धर्मो अने पंदरमामां सर्व धर्मोना सारनो संग्रह छे.

नारद उवाच

ब्रह्मचारी गुरुकुले वसन्दान्तो गुरोर्हितम्।
आचरन्दासवन्नीचो गुरौ सुदृढसौहृदः॥ १

सायं प्रातरुपासीत गुर्वग्न्यर्कसुरोत्तमान्।
उभे सन्ध्ये च यतवाग् जपन्ब्रह्म समाहितः॥ २

नारदजी बोल्या – गुरुकुळमां वसतो, गुरुना हितनुं आचरण करतो, बंने संध्यासमये वाणी संयमित करी, मौन थई मनने एकाग्र करी गायत्रीनो जप करतो ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय अने दास जेवो नम्र थई तेम ज गुरु उपर सुदृढ अनुरागवाळो थई, सवार-सांज गुरु, अग्नि, सूर्य अने श्रेष्ठ देवोनी उपासना करे.॥१॥२॥

ब्रह्मचारी गुरुकुले वसन्गुर्वादीनुपासीतेत्युत्तरेणान्वयः॥ १॥

गुरुकुळमां वसतो ब्रह्मचारी गुरु वगेरेनी उपासना करे, एम पछीना श्लोक (२) साथे अन्वय छे.॥१॥

तानाह—**सायमिति**। ब्रह्म गायत्रीं जपन् सन्ध्यात्रयमुपासीत। उभे सन्ध्ये तु यतवाक् सायम्प्रातः सन्ध्याकालनिमित्तं मौनं कुर्यादित्यर्थः॥ २॥

ते (धर्मो)नुं ज वर्णन करे छे— '**सायम् इति**।' '**ब्रह्म**' गायत्रीनो जप करतो त्रणे संधिकाळे उपासना करे, सवार-सांज बंने संध्यासमये तो वाणी संयमित करी संध्याकाळनिमित्तनुं मौन राखे, एम अर्थ छे.॥२॥

छन्दांस्यधीयीत गुरोराहूतश्चेत् सुयन्त्रितः।
उपक्रमेऽवसाने च चरणौ शिरसा नमेत्॥ ३

गुरुजी बोलावे त्यारे संपूर्णपणे अनुशासनमां रही वेदोनुं अध्ययन करे अने अध्ययनना आरंभमां तथा अंतमां शिष्य गुरुजीना चरणोमां मस्तक वडे प्रणाम करे.॥३॥

उपक्रमे आदाववसाने अन्ते गुरोश्चरणौ नमेत्॥ ३॥

'**उपक्रमे**' आरंभमां अने '**अवसाने**' अंतमां गुरुजीना चरणोमां नमन करे.॥३॥

मेखलाजिनवासांसि जटादण्डकमण्डलून्।
बिभृयादुपवीतं च दर्भपाणिर्यथोदितम्॥ ४

जेना हाथमां दर्भ (कुश) छे तेवो ब्रह्मचारी (शास्त्रमां) जेम कहेवामां आव्युं छे तेम मेखला, मृगचर्म, वस्त्र, जटा, दंड, कमंडलु तथा जनोई धारण करे.॥४॥

यथोदितमिति। पालाशो दण्डो ब्राह्मणस्येत्यादिनियममनतिक्रम्य। जटाधारणं तु केशप्रसाधनाभावमात्रम्॥ ४॥

'**यथा-उदितम् इति**।' पलाशनो दंड ब्राह्मणनो, वगेरे नियमनुं अतिक्रमण कर्या विना– केशनी सजावट करवानी न होवाथी मात्र जटा धारण करे.॥४॥

वंशीधरी—पालाशो विप्रस्य बैल्वः क्षत्रियस्यौदुम्बरो वैश्यस्य इति पराशरः।

પલાશનો દંડ બ્રાહ્મણનો, બીલીનો દંડ ક્ષત્રિયનો અને ઉમરડાનો દંડ વૈશ્યનો, એમ પરાશરજીનું વચન છે.

सायं प्रातश्चरेद्भैक्षं गुरवे तन्निवेदयेत्।
भुञ्जीत यद्यनुज्ञातो नो चेदुपवसेत् क्वचित्॥ ५ ॥ ५ ॥

સાંજે અને સવારે ભિક્ષા માગી લાવે અને તે ગુરુને સમર્પિત કરે. જો ગુરુજી અનુજ્ઞા આપે તો બ્રહ્મચારી ભોજન કરે અને નહિતર ક્યારેક ઉપવાસ કરે.॥ ૫ ॥ ૫ ॥

सुशीलो मितभुग् दक्षः श्रद्दधानो जितेन्द्रियः।
यावदर्थं व्यवहरेत् स्त्रीषु स्त्रीनिर्जितेषु च॥ ६

સુશીલ, મિતાહારી, નિપુણ, શ્રદ્ધાળુ અને જિતેન્દ્રિય થઈ સ્ત્રીઓ સાથે અને સ્ત્રીઓના વશમાં રહેનારાઓ સાથે આવશ્યકતા હોય તેટલો જ વ્યવહાર કરે.॥ ૬ ॥

यावदर्थं यथोपयोगमेव॥ ६॥

'यावदर्थम्' આવશ્યકતા જેટલો જ (વ્યવહાર કરે).॥ ૬ ॥

वर्जयेत् प्रमदागाथामगृहस्थो बृहद्व्रतः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्त्यपि यतेर्मनः॥ ७

(બ્રહ્મચર્યના) મહાન વ્રતવાળો બ્રહ્મચારી અને ગૃહસ્થ સિવાયના સર્વ આશ્રમી સ્ત્રીઓની વાત પણ ત્યજે (કારણ કે) બળવાન ઈન્દ્રિયો સંન્યાસીનું મન પણ હરી લે છે.॥ ૭ ॥

बृहद्व्रतो ब्रह्मचर्यवान् गृहस्थव्यतिरिक्तः सर्वोऽपि प्रमदागाथां वर्जयेत्। तत्र हेतुः—इन्द्रियाणि बलवन्ति संयतस्यापि मनो हरन्तीति ॥ ७ ॥

'हरन्ति प्रसभं मनः' इति पाठः।

'बृहत्-व्रतः' બ્રહ્મચર્યવાળો, ગૃહસ્થ ન હોય તેવા બધા જ સ્ત્રીઓની વાતનો ત્યાગ કરે, તે માટેનું કારણ— ઈન્દ્રિયો બળવાન હોઈ જિતેન્દ્રિયનું મન પણ હરી લે છે.॥ ૭ ॥

'हरन्त्यपि यतेर्मनः' ને બદલે **'हरन्ति प्रसभं मनः'** (ગીતા. ૨/૬૦) એ પ્રમાણે પાઠ છે અર્થાત્ 'ઈન્દ્રિયો મનને પરાણે હરી લે છે.'

केशप्रसाधनोन्मर्दस्नपनाभ्यञ्जनादिकम्।
गुरुस्त्रीभिर्युवतिभिः कारयेन्नात्मनो युवा॥ ८ ॥ ८ ॥

યુવાન બ્રહ્મચારી ગુરુજીની યુવાન સ્ત્રીઓ (દીકરીઓ) પાસે પોતાના કેશ-ગુંફન, મર્દન, સ્નાન, અંજન વગેરે ન કરાવે.॥ ૮ ॥ ૮ ॥

न कारयेदित्यत्र हेतुः—**नन्विति**।

(કેશપ્રસાધનાદિ) ન કરાવવાં, એમ કહ્યું તે માટેનું કારણ— **'ननु इति।'**

नन्वग्निः प्रमदा नाम घृतकुम्भसमः पुमान्।
सुतामपि रहो जह्यादन्यदा यावदर्थकृत्॥ ९

ખરેખર, સ્ત્રી અગ્નિરૂપ છે અને પુરુષ ઘીના ઘડા જેવો છે, માટે એકાન્તમાં પુત્રીને પણ ત્યજવી. એકાન્ત ન હોય ત્યારે (સમૂહમાં) પણ (બ્રહ્મચારી) જરૂર જેટલો જ વ્યવહાર કરનારો (બને).॥ ૯ ॥

रहः एकान्ते। अन्यदा केशप्रसाधनादिव्यतिरिक्तावसरे अनेकान्तावसरे वा। यावदर्थं तदुक्तं कुर्यात्॥ ९॥

'रहः' એકાન્તમાં, 'अन्यदा' કેશપ્રસાધનાદિ ઉપરાંત બાકીના સમયે પણ અથવા એકાન્ત ન હોય ત્યારે પણ, જેટલું પ્રયોજન હોય તેટલું તે શાસ્ત્રમાં કહ્યા પ્રમાણે કરે.॥ ૯॥

ननु मिथ्यात्वादतिकश्मलत्वाच्च स्वयं त्यक्तप्रायं स्त्र्यादि जह्यादिति कोऽयमतिनिर्बन्धस्तत्राह—**कल्पयित्वेति**।

શંકા કરવામાં આવી છે કે (સ્ત્રી વગેરે) મિથ્યા અને અતિ મલિન હોવાથી (જિતેન્દ્રિય, જ્ઞાની મનુષ્યે) પોતાની જાતે જ ઘણું કરીને તે સર્વનો ત્યાગ કર્યો હોય છે, તો પછી સ્ત્રી વગેરેનો ત્યાગ કરવો જોઈએ, એવો અતિ આગ્રહ શા માટે? તો તે માટે ઉત્તર આપે છે— '**कल्पयित्वा इति**।'

कल्पयित्वाऽऽत्मना यावदाभासमिदमीश्वरः।
द्वैतं तावन्न विरमेत् ततो ह्यस्य विपर्ययः॥ १०

આત્મસાક્ષાત્કાર દ્વારા જ્યાં સુધી આ (દેહ, ઈન્દ્રિયાદિ) આભાસમાત્ર છે એવો નિશ્ચય કરીને આ જીવ (ઈશ્વર) સ્વતન્ત્ર ન બને, ત્યાં સુધી (આ સ્ત્રી, આ પુરુષ– એવું) દ્વૈત દૂર થતું નથી, તેથી (ભેદ દૂર ન થવાથી) આ જીવને ઉલટાની ભોગ્યબુદ્ધિ જ થાય છે.॥ ૧૦॥

आत्मना स्वरूपसाक्षात्कारेणेदं देहेन्द्रियाद्याभासमात्रं कल्पयित्वा निश्चित्य यावदसौ जीव ईश्वरः स्वतन्त्रो न भवेत्तावद् द्वैतं अयं पुमानियं स्त्रीत्यादिभेदो न विरमेत्।

'**आत्मना**' આત્મસાક્ષાત્કાર દ્વારા '**इदम्**' આ દેહ, ઈન્દ્રિયાદિ આભાસમાત્ર છે, એવો '**कल्पयित्वा**' નિશ્ચય કરીને આ જીવ '**ईश्वरः**' સ્વતન્ત્ર ન બને ત્યાં સુધી 'આ પુરુષ, આ સ્ત્રી' એવો ભેદ દૂર થતો નથી.

ततः किमत आह—ततो हि द्वैतात् विपर्ययो गुणाध्यासेन भोग्यताबुद्धिः।* अतो जह्यादेवेत्यर्थः॥ १०॥

'**ततः**' તે ભેદ દૂર ન થવાથી શું, તે હવે કહે છે– તે દ્વૈતબુદ્ધિને કારણે '**विपर्ययः**' ગુણોમાં અધ્યાસ થવાથી ભોગ્યતાબુદ્ધિ* થાય છે, આથી ત્યાગ જ કરવો, એમ અર્થ છે.॥ ૧૦॥

एतत् सर्वं गृहस्थस्य समाम्नातं यतेरपि।
गुरुवृत्तिर्विकल्पेन गृहस्थस्यर्तुगामिनः॥ ११

આ સર્વ કહેવામાં આવેલા નિયમો ગૃહસ્થને માટે છે તેમ જ સંન્યાસી માટે પણ છે. ઋતુગામી ગૃહસ્થને માટે ગુરુની સેવા વૈકલ્પિક છે.॥ ૧૧॥

* અમુક પદાર્થ ભોગ્ય છે એવી સ્થિતિવાળી બુદ્ધિ એટલે ભોગ્યતાબુદ્ધિ.

एतत्सर्वं सुशील इत्याद्युक्तम्। गृहस्थस्य विशेषमाह—गुरुवृत्तिरिति॥ ११॥

'**सुशीलः**' વગેરે (શ્લોક-૬) કહેવામાં આવેલું આ સર્વ (સંન્યાસીને પણ લાગુ પડે છે). ગૃહસ્થને માટે વિશેષ કહે છે— '**गुरुवृत्तिः इति।**'॥ ૧૧॥

(સ્ત્રી, પુત્રાદિના પાલનમાં વ્યગ્ર એવા ગૃહસ્થ માટે ગુરુની સેવા-શુશ્રૂષા ક્યારેક થાય કે ક્યારેક ન પણ થાય, તેથી વૈકલ્પિક કહેવામાં આવી છે. જ્યારે તક મળે ત્યારે ગુરુસેવા કરવી જોઈએ, એમ કહેવા માગે છે.)

अञ्जनाभ्यञ्जनोन्मर्दस्त्र्यवलेखामिषं मधु।
स्त्रग्गन्धलेपालंकारांस्त्यजेयुर्ये धृतव्रताः॥ १२

જેઓ (બ્રહ્મચર્યનું) વ્રત ધારણ કરનારાઓ છે તેઓ (શરીર ઉપર) અંજન, (મસ્તકનું તેલ વગેરેથી) અભ્યંજન, (ઉબટનથી) મર્દન, સ્ત્રીઓનાં ચિત્રો કરવાં (અથવા સ્ત્રીઓનું નિરીક્ષણ કરવું), માંસ, મદિરા, પુષ્પમાળા, ચંદન, વિલેપન તથા અલંકારોનો ત્યાગ કરે.॥ ૧૨॥

अञ्जनादीनामामिषान्तानां द्वन्द्वैक्यम्।

'**अञ्जन**' થી માંડીને '**आमिषम्**' સુધી દ્વન્દ્વૈક્ય સમાસ છે. (સમાહાર દ્વન્દ્વ સમાસ)

अञ्जनं शरीरस्य। अभ्यञ्जनं शिरसः। स्त्रियं चावलेखां च चित्रकर्म स्त्रीणां कुड्यादौ लेखनं वा तन्निरीक्षणं वा।

શરીરનું અંજન, મસ્તકનું અભ્યંજન તથા સ્ત્રીનું '**अवलेखां च**' ચિત્ર કરવું, ભીંત વગેરે ઉપર સ્ત્રીઓનાં ચિત્રો કરવાં અથવા તેમનું નિરીક્ષણ કરવું (વગેરેનો ત્યાગ કરે.)

अत्राभ्यङ्गादि स्वरूपतो निषिध्यते। पूर्वं तु कथंचिदापदि प्राप्तमपि स्त्रीकर्तृकं निषिद्धमिति भेदः॥ १२॥

અહીં અભ્યંગ વગેરેનો સ્વરૂપતઃ નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે. (એ કરવાં જ નહીં.) પહેલાં (શ્લોક-૮) તો (ગુરુજીની યુવાન દીકરીઓ પાસે કેશપ્રસાધનાદિ ન કરાવવાં, એમ હતું.) અહીં આપત્તિકાળમાં અભ્યંગાદિ કરાવવાનો પ્રસંગ આવી પડે ત્યારે પણ કોઈપણ સ્ત્રીઓ પાસે તે ન કરાવવાં, એટલો ભેદ છે.॥ ૧૨॥

उषित्वैवं गुरुकुले द्विजोऽधीत्यावबुध्य च।
त्रयीं साङ्गोपनिषदं यावदर्थं यथाबलम्॥ १३

આ પ્રમાણે દ્વિજ (બ્રાહ્મણ, ક્ષત્રિય, વૈશ્ય) ગુરુકુળમાં રહી શિક્ષા વગેરે અંગો (શિક્ષા, વ્યાકરણ, કલ્પ, જ્યોતિષ, નિરુક્ત, છંદ) અને ઉપનિષદો સહિત ત્રણે વેદોનું પોતાના અધિકાર પ્રમાણે અને શક્તિ પ્રમાણે અધ્યયન કરી તેમ જ અર્થનું જ્ઞાન મેળવી,॥ ૧૩॥

दत्त्वा वरमनुज्ञातो गुरोः कामं यदीश्वरः।
गृहं वनं वा प्रविशेत् प्रव्रजेत् तत्र वा वसेत्॥ १४

જો સમર્થ હોય તો ગુરુની અપેક્ષા અનુસાર દક્ષિણા આપી, ગુરુની આજ્ઞા જેણે પ્રાપ્ત કરી હોય તેવો બ્રહ્મચારી ગૃહસ્થાશ્રમમાં પ્રવેશે અથવા વાનપ્રસ્થાશ્રમમાં પ્રવેશે અથવા સંન્યસ્તાશ્રમ સ્વીકારે અથવા ત્યાં જ (નૈષ્ઠિક બ્રહ્મચારી તરીકે) વાસ કરે.॥ ૧૪॥

अङ्गैः शिक्षादिभिरुपनिषद्भिश्च सहितां वेदत्रयीमधीत्यावबुध्य च तदर्थं च विचार्य। यावदर्थं स्वाधिकारानुसारेण॥ १३॥

'अङ्गैः' શિક્ષા વગેરે વેદનાં અંગો તથા ઉપનિષદો સહિત ત્રણે વેદોનું અધ્યયન કરી **'अवबुध्य'** અને તેમના અર્થને વિચારી **'यावत्-अर्थम्'** પોતાના અધિકાર પ્રમાણે॥ ૧૩॥

यदीश्वरः शक्तस्तर्हि गुरोः काममपेक्षितं वरं दत्त्वा यथाधिकारं गृहस्थाद्याश्रमं स्वीकुर्यात्प्रव्रजेत् वा तत्रैव वा वसेत् नैष्ठिकः स्यादित्यर्थः॥ १४॥

જો **'ईश्वरः'** સમર્થ હોય તો ગુરુની **'कामम्'** અપેક્ષા અનુસાર દક્ષિણા આપીને પોતાના અધિકાર પ્રમાણે ગૃહસ્થાશ્રમાદિનો સ્વીકાર કરે અથવા પ્રવ્રજ્યા (સંન્યસ્ત) સ્વીકારે અથવા ત્યાં જ વસે, નૈષ્ઠિક બ્રહ્મચારી થાય, એમ અર્થ છે.॥ ૧૪॥

बा.प्र.—यदि वेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत्। गृहाद्वा वनाद्वा।

જો અન્ય રીતે હોય તો (કોઈને તીવ્ર વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થાય તો) બ્રહ્મચર્યાશ્રમમાંથી જ પ્રવ્રજ્યા લે અથવા ગૃહસ્થ બન્યા પછી સંન્યાસ લે અથવા વાનપ્રસ્થ પછી સંન્યાસ લે. (જાબાલ ઉપ. ૪)

अग्नौ गुरावात्मनि च सर्वभूतेष्वधोक्षजम्।
भूतैः स्वधामभिः पश्येदप्रविष्टं प्रविष्टवत्॥ १५

અગ્નિમાં, ગુરુમાં, પોતાનામાં તથા સર્વ પ્રાણીઓમાં (પહેલેથી જ ઉપાદાનરૂપે રહેલા હોવા છતાં) પોતાના (અધોક્ષજ ભગવાનના) આશ્રયવાળા જીવોની સાથે તેઓના નિયંતારૂપે પ્રવેશેલા હોય તેમ (અરીસામાં પ્રતિબિંબ પ્રવેશે તેમ) જણાતા, પરંતુ વાસ્તવમાં ન પ્રવેશેલા અધોક્ષજ ભગવાનને જોવા જોઈએ.॥ ૧૫॥

स्वधामभिः स्वाश्रयैर्भूतैर्जीवैः सह तन्नियन्तृतया॥ १५॥

'स्वधामभिः' પોતાના આશ્રયરૂપ જીવો સાથે તેમના નિયન્તારૂપે (પ્રવેશેલા હોય તેમ જણાતા અધોક્ષજ ભગવાનને જુએ.)॥ ૧૫॥

एवंविधो ब्रह्मचारी वानप्रस्थो यतिर्गृही।
चरन्विदितविज्ञानः परं ब्रह्माधिगच्छति॥ १६

આ પ્રમાણે આચરણ કરતો બ્રહ્મચારી, વાનપ્રસ્થી, સંન્યાસી કે ગૃહસ્થ, કે જેણે જાણવાયોગ્ય વિજ્ઞાન (પરમતત્ત્વનો અનુભવ) મેળવ્યું છે તે, પરબ્રહ્મને પ્રાપ્ત કરે છે.॥ ૧૬॥

चरन्नेवमाचरन्। विदितं विज्ञानं विज्ञेयं येन सः॥ १६॥

वानप्रस्थस्य वक्ष्यामि नियमान्मुनिसम्मतान्।
यानातिष्ठन् मुनिर्गच्छेदृषिलोकमिहाञ्जसा॥ १७

ऋषिलोकं महर्लोकम्॥ १७॥

न कृष्टपच्यमश्नीयादकृष्टं चाप्यकालतः।
अग्निपक्वमथामं वा अर्कपक्वमुताहरेत्॥ १८

अकृष्टमकृष्टपच्यम्। अकालतः पाककालात् पूर्वमेव निष्पन्नमित्यर्थः। अर्कपक्वं फलादि। आहरेदश्नीयात्॥ १८॥

वन्यैश्चरुपुरोडाशान् निर्वपेत् कालचोदितान्।
लब्धे नवे नवेऽन्नाद्ये पुराणं तु परित्यजेत्॥ १९

वन्यैर्नीवारादिभिश्चरुपुरोडाशान्। कालचोदितान्नित्यान्। पुराणं पूर्वसंचितम्॥ १९॥

अग्न्यर्थमेव शरणमुटजं वाद्रिकन्दराम्।
श्रयेत हिमवाय्वग्निवर्षार्कातपषाट् स्वयम्॥ २०

हिमादीन्सहत इति तथा॥ २०॥

'**चरन्**' આ પ્રમાણે આચરણ કરતો— જાણ્યું છે જાણવાયોગ્ય વિજ્ઞાન જેણે તે॥ ૧૬॥

(હવે) વાનપ્રસ્થ આશ્રમના, મુનિઓ દ્વારા માન્ય કરવામાં આવેલા નિયમો (હું તમને) કહીશ, કે જેમનું આ લોકમાં આચરણ કરતો મુનિ અનાયાસે (ઋષિઓના) મહર્લોકમાં જાય છે.॥ ૧૭॥

'**ऋषिलोकम्**' મહર્લોકમાં॥ ૧૭॥

વાનપ્રસ્થાશ્રમી ખેડીને પકવેલું ધાન્ય ન ખાય અને ખેડ્યા વગર પકવેલું પણ ન ખાય, કસમયે પાકેલું ધાન્ય ન ખાય તથા અગ્નિથી પકવેલું અને કાચું અન્ન પણ ન ખાય, પરંતુ સૂર્યથી પાકેલું અન્ન ખાય.॥ ૧૮॥

'**अकृष्टम्**' (**अकृष्टपच्यम्**) ખેડ્યા વગર પકવેલું— '**अकालतः**' પાકવાના સમય પૂર્વે જ તેયાર કરાયેલું, એમ અર્થ છે. સૂર્યથી પાકેલાં ફળાદિ '**आहरेत्**' ખાય.॥ ૧૮॥

(જાતે ઊગી નીકળેલાં) જંગલી ધાન્યોથી શાસ્ત્રમાં કહ્યા પ્રમાણે (નિત્ય, નૈમિત્તિક) ચરુ તથા પુરોડાશો સમ્પન્ન કરે તથા નવું નવું ખાવા યોગ્ય અન્ન વગેરે પ્રાપ્ત થાય ત્યારે પહેલાં એકઠા કરેલા જૂના અન્નનો ત્યાગ કરે.॥ ૧૯॥

'**वन्यैः**' જંગલમાં જાતે ઊગી નીકળેલાં ધાન્યોથી ચરુ અને પુરોડાશોને, '**कालचोदितान्**' શાસ્ત્રમાં કહ્યા પ્રમાણે '**पुराणम्**' પૂર્વે એકઠા કરેલા અન્નનો ત્યાગ કરે.॥ ૧૯॥

અગ્નિના (રક્ષણ) માટે જ ઝૂંપડી કે ગિરિકંદરા (ગુફા)રૂપી શરણનો આશ્રય કરે. પોતે ટાઢ, પવન, અગ્નિ, વરસાદ, સૂર્યનો તડકો સહન કરનારો બને.॥ ૨૦॥

ટાઢ વગેરે સહન કરે તેવો થાય.॥ ૨૦॥

केशरोमनखश्मश्रुमलानि जटिलो दधत्।
कमण्डल्वजिने दण्डवल्कलाग्निपरिच्छदान्॥ २१

चरेद् वने द्वादशाब्दानष्टौ वा चतुरो मुनिः।
द्वावेकं वा यथा बुद्धिर्न विपद्येत कृच्छ्रतः॥ २२

કેશ, રોમ, નખ તથા દાઢીમૂછ વગેરે મળ, કમંડળ, મૃગચર્મ, દંડ, વલ્કલ, અગ્નિહોત્રની (દર્ભ, સમિધા વગેરે) સામગ્રીઓ ધારણ કરતો જટાધારી મુનિ બાર, આઠ, ચાર, બે કે એક વર્ષ સુધી તપના ક્લેશથી બુદ્ધિ નષ્ટ ન થાય તેમ વનમાં વિચરણ કરે.॥ ૨૧॥ ૨૨॥

केशादीन्मलं चाप्रक्षालनेन धारयन्। कमण्डल्वादींश्च दधत्॥ २१॥

कृच्छ्रतस्तपःक्लेशाद्यथा बुद्धिर्न नश्येत्तथा चरेत्॥ २२॥

કેશાદિના મળ પ્રક્ષાલન કર્યા વિના ધારણ કરતો તથા કમંડળ વગેરે પણ ધારણ કરતો॥ ૨૧॥

'**कृच्छ्रतः**' તપના ક્લેશથી જેમ બુદ્ધિ નષ્ટ ન થાય તેમ વિચરણ કરે.॥ ૨૨॥

यदाऽकल्पः स्वक्रियायां व्याधिभिर्जरयाथवा।
आन्वीक्षिक्यां वा विद्यायां कुर्यादनशनादिकम्॥ २३

રોગોને કારણે કે વૃદ્ધાવસ્થાને કારણે સ્વકીય ધર્માચરણમાં અથવા (આત્મવિદ્યારૂપ) જ્ઞાનાભ્યાસમાં જ્યારે અસમર્થ થઈ જાય, ત્યારે તે અનશનાદિ કરે.॥ ૨૩॥

द्वादशाब्दाद्यनन्तरमपि यदि स्वधर्मानुष्ठाने शक्तस्तर्हि वन एव वसेत्। यदि तु ज्ञानाभ्यासे योग्यस्तर्हि संन्यसेदित्युत्तराध्याये वक्ष्यति। तदुभयरहितस्य तु यत्कृत्यं तदाह यदाऽकल्पोऽसमर्थः। आन्वीक्षिक्यां विद्यायां ज्ञानाभ्यासे॥ २३॥

બાર વર્ષો વગેરે પછી પણ સ્વધર્મનું અનુષ્ઠાન કરવામાં સમર્થ હોય, તો વનમાં જ વાસ કરવો જોઈએ. જો જ્ઞાનાભ્યાસ માટે યોગ્ય હોય તો સંન્યાસ લેવો, એમ પછીના અધ્યાય (૧૩)માં કહેશે. તે બંને (સ્વધર્માચરણ અને જ્ઞાનાભ્યાસ)થી રહિત એવા વાનપ્રસ્થીને માટે જે કરવા યોગ્ય છે, તે કહે છે. '**यदा-अकल्पः**' જ્યારે અસમર્થ (થઈ જાય ત્યારે)— '**आन्वीक्षिक्यां विद्यायाम्**' આત્મવિચારરૂપ વિદ્યાના જ્ઞાનાભ્યાસ માટે॥ ૨૩॥

अनशनादि करिष्यतः पूर्वकृत्यमाह— **आत्मनीत्यादि** यावत्समाप्ति।

અનશનાદિ કરતાં પહેલાં (શું) કરવું જોઈએ તે અધ્યાય સમાપ્ત થાય ત્યાં સુધી કહે છે— '**आत्मनि**' વગેરે.

आत्मन्यग्नीन् समारोप्य संन्यस्याहंममात्मताम्।
कारणेषु न्यसेत् सम्यक् संघातं तु यथार्हतः॥ २४

(આહવનીયાદિ) અગ્નિઓને આત્મામાં લીન કરી, અહંતા-મમતાનો પરિત્યાગ કરી ભૂતસંઘાતરૂપ શરીર-ઈન્દ્રિયાદિને તેમનાં કારણરૂપ તત્ત્વોમાં યથાયોગ્ય સમ્યક્ રીતે વિલીન કરે.॥ ૨૪॥

यथार्हतो यथायोग्यं स्वकारणेष्वाकाशादिषु सङ्घातं देहं न्यसेत्प्रविलापयेत्॥ २४॥

'**यथा-अर्हतः**' યથાયોગ્ય રીતે– આકાશાદિ પોતાનાં કારણોમાં '**सङ्घातम्**' શરીરને '**न्यसेत्**' વિલીન કરે.॥ ૨૪॥

तदेव विभज्य दर्शयति—

તેને (લય કરવાની પ્રક્રિયાને) જ વિભાગ કરીને દર્શાવે છે–

खे खानि वायौ निःश्वासांस्तेजस्यूष्माणमात्मवान्।
अप्स्वसृक्श्लेष्मपूयानि क्षितौ शेषं यथोद्भवम्॥
॥ २५ ॥

બુદ્ધિમાન (મુનિ) દેહમાં રહેલાં છિદ્રોનો આકાશમાં, (પ્રાણ-અપાન વગેરે) નિઃશ્વાસોનો વાયુમાં, (શરીરની) ઉષ્માનો અગ્નિમાં, રક્ત, કફ અને પરુનો જળમાં તથા (અસ્થિ, માંસ વગેરે કઠિન) બાકીના ભાગનો પૃથ્વીમાં જેમ ઉત્પન્ન થયાં હોય તેમ લય કરે.॥ ૨૫॥

खे आकाशे खानि देहगतच्छिद्राणि। आत्मवान् धीमान्। शेषमस्थिमांसादिकठिनांशम् ॥ २५ ॥

'**खे**' આકાશમાં '**खानि**' શરીરમાં રહેલાં છિદ્રોનો '**आत्मवान्**' બુદ્ધિમાન (મુનિ), '**शेषम्**' બાકીના અસ્થિ, માંસ વગેરે કઠિન ભાગનો॥ ૨૫॥

एवं स्थूलशरीरस्य लयमुक्त्वा लिङ्ग-शरीररूपस्याध्यात्मादित्रयस्य लयमाह— **वाचमित्यादिना**।

આ પ્રમાણે સ્થૂળ શરીરનો લય કહીને લિંગશરીરરૂપ અધ્યાત્માદિ (અધિદૈવ અને અધિભૂત) એ ત્રણેના લયનું વર્ણન કરે છે— '**वाचम्**' ઈત્યાદિથી.

वाचमग्नौ सवक्तव्यामिन्द्रे शिल्पं करावपि।
पदानि गत्या वयसि रत्योपस्थं प्रजापतौ॥ २६

(વાણીના કર્મરૂપ) વક્તવ્ય (ભાષણ) સહિત વાણીનો લય અગ્નિમાં કરવો. (હાથના કર્મ) કળા-કૌશલ્ય સહિત બંને હાથનો લય ઈન્દ્રમાં કરવો. (પગના કર્મ) ગતિ સહિત બંને પગનો લય તેના (અધિષ્ઠાયક દેવ) વિષ્ણુમાં કરવો તેમ જ રતિ સહિત ઉપસ્થનો લય પ્રજાપતિમાં કરવો.॥ ૨૬॥

तत्र यद्यपि यथोद्भवं लयस्य युक्तत्वादध्यात्मादीनां स्वस्वकारणेषु राज-साहंकारादिषु लयो वाच्यस्तथापीह तेषां लयभावनेयमद्वितीयात्मप्रतिपत्तिपरेति यथा-कथंचिल्लये भाव्ये देवतानां प्रवर्तकत्वेन

જો કે ઉત્પત્તિ થઈ હોય એ પ્રમાણે જ લય કહેવો તે યોગ્ય છે. તેથી અધ્યાત્મ વગેરેનો પોતપોતાના કારણ રાજસાદિ અહંકારોમાં લય કહેવો જોઈએ, છતાં પણ અહીં તેમના (વાક્ વગેરે ઈન્દ્રિયોના) લયની કલ્પના અદ્વિતીય પરમાત્માના જ્ઞાનપરક છે. એટલે કોઈ પણ રીતે લય થાય ત્યારે ઈન્દ્રિયોના દેવતાઓ

प्राधान्यादिन्द्रियतद्विषययोर्देवतासु लयः कथ्यते। वक्तव्यसहितां वाचमग्नौ न्यसेत्। एवं सर्वत्र। पदानि पादौ। वयसि विष्णौ ॥ २६ ॥

તેમના પ્રવર્તક હોવાથી ઇન્દ્રિયોના દેવતાઓનું પ્રાધાન્ય છે. તેથી તે તે ઇન્દ્રિય અને તેના વિષયનો લય તો દેવતાઓમાં કહેવામાં આવ્યો છે. ભાષણસહિત વાણીનો લય અગ્નિમાં કરવો જોઈએ. આ પ્રમાણે સર્વત્ર સમજવું. **'पदानि'** ચરણોનો, **'वयसि'** કાળસ્વરૂપ વિષ્ણુમાં ॥ ૨૬ ॥

मृत्यौ पायुं विसर्गं च यथास्थानं विनिर्दिशेत्।
दिक्षु श्रोत्रं सनादेन स्पर्शमध्यात्मनि त्वचम्॥ २७

ગુદા તથા મળોત્સર્ગનો લય તેના આશ્રય અનુસાર મૃત્યુમાં કરવો. (શ્રોત્રેન્દ્રિયના કર્મ) શબ્દ સહિત શ્રોત્રેન્દ્રિયનો દિશાઓમાં, ત્વચા અને સ્પર્શનો વાયુમાં લય કરવો. ॥ ૨૭ ॥

सनादेन शब्देन सह। अध्यात्मनि वायौ। अध्यात्मविदिति पाठे वायाविति ज्ञातव्यम्॥ २७॥

'सनादेन' શબ્દ સહિત, **'अध्यात्मनि'** વાયુમાં, **'अध्यात्मविद्'** પાઠમાં, વાયુમાં સમજવું. (આ પાઠાન્તર અને તેનો અર્થ શંકાસ્પદ છે. અન્ય ટીકાકારોએ આ સંદર્ભમાં પ્રકાશ પાડ્યો નથી.)

रूपाणि चक्षुषा राजन् ज्योतिष्यभिनिवेशयेत्।
अप्सु प्रचेतसा जिह्वां घ्रेयैर्घ्राणं क्षितौ न्यसेत्॥ २८

હે રાજા, ચક્ષુ સહિત રૂપનો જ્યોતિ (સૂર્ય)માં લય કરવો. વરુણદેવ સહિત રસનેન્દ્રિયનો જળમાં તથા ઘ્રાણેન્દ્રિયનો અને (તેના કર્મ) ગંધગ્રહણનો (તેના અધિષ્ઠાયક દેવો બંને અશ્વિનીકુમારો સાથે) પૃથ્વીમાં લય કરવો. ॥ ૨૮ ॥

ज्योतिष्यादित्ये। रसगन्धयोस्त्विन्द्रियाद्याकर्षकत्वेन प्राधान्यविवक्षया देवतासहितस्येन्द्रियस्य विषये लयमाह—

'ज्योतिषि' આદિત્યમાં, (વરુણદેવથી લયની પ્રક્રિયા બદલાય છે.) રસ અને ગંધ– એ બે વિષયો ઇન્દ્રિયો વગેરેનું આકર્ષણ કરનારા હોવાથી તેમનું પ્રાધાન્ય કહેવાની ઇચ્છાથી દેવતાસહિત ઇન્દ્રિયનો વિષયમાં લય કહે છે.

प्रचेतसा सह जिह्वां रसनमप्सु रसरूपासु। घ्राणशब्देनाश्विनोरप्युपलक्षणम्। अश्विभ्यां सह घ्राणं घ्रेयैर्गन्धैरुपलक्षितायां क्षिताविर्त्यर्थः ॥ २८ ॥

વરુણદેવ સહિત **'जिह्वाम्'** જિહ્વાનો **'अप्सु'** રસરૂપ જળમાં (લય કરવો). ઘ્રાણ શબ્દ દ્વારા ઘ્રાણેન્દ્રિય સહિત બંને અશ્વિનીકુમારો પણ સૂચિત થાય છે. અશ્વિનીકુમારો સહિત ઘ્રાણેન્દ્રિયનો **'घ्रेयैः'** (વિવિધ) ગંધ દ્વારા સૂચિત થતી **'क्षितौ'** પૃથ્વીમાં લય કરવો, એમ અર્થ છે. ॥ ૨૮ ॥ (**उपलक्षितायाम्?** કારણ કે **'क्षितौ'** શબ્દ સ્પષ્ટ મૂળમાં છે.)

वि.चक्र.—प्रकृष्टं चेतो यत्र स प्रचेताः मधुरादिरसस्तेन सह जिह्वां अप्सु जलाधिष्ठातरि वरुणे (अभिनिवेशयेत्)।

अभिनिवेशयेदित्युत्तरेणैव सर्वेषामन्वयः।

मनो मनोरथैश्चन्द्रे बुद्धिं बोध्यैः कवौ परे।
कर्माण्यध्यात्मना रुद्रे यदहंममताक्रिया।
सत्त्वेन चित्तं क्षेत्रज्ञे गुणैर्वैकारिकं परे॥ २९

पर कवौ ब्रह्मणि।

अध्यात्मनाऽहंकारेण। अध्यात्मतामिति पाठे कर्माण्यहंकारं चेत्यर्थः।

कथंभूते रुद्रे। यद्यस्मादहंममतापूर्विका क्रिया भवति तस्मिन्।

सत्त्वेन चेतनया। गुणैर्गुणकार्यैः प्राग-वशिष्टैर्देवैः सह। यद्वा सत्त्वादिभिर्गुणैर्हेतुभूतैः।

वैकारिकं भोक्तृत्वादिविकारवन्तं क्षेत्रज्ञं परे निर्विकारे ब्रह्मणि॥ २९॥

ननु विकारवतः कथं परेऽविकारे लयः स्यात्।

જેના તરફ ચિત્ત અધિક આકૃષ્ટ થાય તે મધુરાદિ રસ '**प्रचेतस्**' છે. તેની સાથે જિહ્વાનો જળમાં અર્થાત્ જળના અધિષ્ઠાતા દેવ વરુણમાં લય કરવો.

'**अभिनिवेशयेत्**' લય કરવો, એમ પછીના શ્લોક સાથે જ સર્વનો અન્વય છે.

મનોરથો સહિત મનનો ચન્દ્રમાં લય કરવો. જાણવાયોગ્ય વિષયો સહિત બુદ્ધિનો શ્રેષ્ઠ કવિ બ્રહ્માજીમાં લય કરવો. અહંકાર સહિત સર્વ કર્મોનો (તેમના અધિષ્ઠાતા) દેવ, જેમનાથી અહંતા-મમતાપૂર્વક ક્રિયાઓ થાય છે તે રુદ્રમાં લય કરવો. ચેતના સહિત ચિત્તનો ગુણોના કાર્યરૂપ (બાકીના દેવો) સાથે ક્ષેત્રજ્ઞમાં લય કરવો તથા ભોક્તૃત્વાદિ ગુણો સાથે વિકારવાળા ક્ષેત્રજ્ઞનો (જીવનો) નિર્વિકાર પરબ્રહ્મમાં લય કરવો.॥ २९॥

'**परे कवौ**' શ્રેષ્ઠ કવિ (ચતુર્મુખ) બ્રહ્માજીમાં

'**अध्यात्मना**' અહંકાર સહિત '**अध्यात्मताम्**' પાઠમાં, કર્મો અને અહંકારને, એમ અર્થ છે.

કેવા રુદ્રમાં? '**यत्**' જેનાથી અહંતા-મમતાપૂર્વક ક્રિયાઓ થાય છે તેવા રુદ્રમાં (લય કરવો).

'**सत्त्वेन**' ચેતના સહિત, '**गुणैः**' ગુણોના કાર્યરૂપ બાકીના દેવો સાથે (ક્ષેત્રજ્ઞમાં લય કરવો). અથવા સત્ત્વાદિ ગુણોના કારણરૂપ દેવો સાથે (ક્ષેત્રજ્ઞમાં લય કરવો).

'**वैकारिकम्**' ભોક્તૃત્વ વગેરે વિકારવાળા ક્ષેત્રજ્ઞનો '**परे**' (જીવાત્માનો) નિર્વિકાર બ્રહ્મમાં લય કરવો॥ २९॥

શંકા કરવામાં આવી છે કે વિકારવાળા ક્ષેત્રજ્ઞનો નિર્વિકાર બ્રહ્મમાં કેવી રીતે લય થાય?

विकारहेतूनां सर्वोपाधीनां लयद्वारेणेत्याह— **अप्स्विति**।

(આ માટે) વિકારના કારણરૂપ સર્વ ઉપાધિઓના લય દ્વારા નિર્વિકારમાં લય કરવો, એમ ઉત્તર આપે છે— '**अप्सु इति।**'

वीर.—वैकारिकाहङ्कारस्य महति लयाऽनुसन्धानमुक्तं। तामसाहङ्कारस्य महति लयाऽनुसन्धानप्रकारमाह—**अप्स्वित्यादिना**।

સાત્ત્વિક અહંકારનો મહત્તત્ત્વમાં લય કહીને તામસ અહંકારના મહત્તત્ત્વમાં લયનો પ્રકાર કહે છે— '**अप्सु इति।**' વગેરે દ્વારા

अप्सु क्षितिमपो ज्योतिष्यदो वायौ नभस्यमुम्।
कूटस्थे तच्च महति तदव्यक्तेऽक्षरे च तत्॥ ३०

પૃથ્વીનો જળમાં, જળનો તેજમાં, તે તેજનો વાયુમાં, તે વાયુનો આકાશમાં તથા તે આકાશનો અહંકારમાં, તે અહંકારનો મહત્તત્ત્વમાં, તે મહત્તત્ત્વનો પ્રકૃતિમાં અને તે પ્રકૃતિનો અવિનાશી પરમાત્મામાં લય કરવો.॥ ૩૦॥

अदो ज्योतिः। तच्च नभः कूटस्थेऽहंतत्त्वे। तच्च कूटस्थं महति महत्तत्त्वे। तदव्यक्ते प्रधाने। तच्च अव्यक्तमक्षरे परमात्मनि॥ ३०॥

'**अदः**' તે તેજનો (વાયુમાં લય કરવો) તથા તે આકાશનો '**कूटस्थे**' અહંકારમાં. વળી, તે અહંકારનો મહત્તત્ત્વમાં, તે મહત્તત્ત્વનો '**अव्यक्ते**' પ્રકૃતિમાં અને તે પ્રકૃતિનો '**अक्षरे**' અવિનાશી પરમાત્મામાં લય કરવો.॥ ૩૦॥

इत्यक्षरतयाऽऽत्मानं चिन्मात्रमवशेषितम्।
ज्ञात्वाद्वयोऽथ विरमेद् दग्धयोनिरिवानलः॥ ३१

આ પ્રમાણે શેષ રહેલા ચૈતન્યરૂપ ક્ષેત્રજ્ઞને અવિનાશી પરમાત્મા તરીકે જાણીને અદ્વૈતસ્વરૂપ થવું અને પછી લાકડું જેનું ઉત્પત્તિસ્થાન છે તે બળી જતાં અગ્નિ શાંત થાય તેમ ઉપરત થવું.॥ ૩૧॥

इति सर्वोपाधिलयाद्धेतोरवशेषितं चिन्मात्रमात्मानं क्षेत्रज्ञमक्षरतया ज्ञात्वाऽद्वयः सन्विरमेत्। दग्धकाष्ठो यथाऽनलः॥ ३१॥

સર્વ ઉપાધિઓનો લય થવાના કારણે શેષ રહેલા ચૈતન્યરૂપ '**आत्मानम्**' ક્ષેત્રજ્ઞને અવિનાશી પરમાત્મા તરીકે જાણીને અદ્વિતીય થઈ શાંત થઈ જવું, જેમ લાકડું બળી જતાં અગ્નિ (શાંત થાય તેમ). (અનશન કરતાં પહેલાં કરવાની આ પ્રક્રિયા છે. આ પ્રક્રિયા પછી અનશન કરવું.)॥ ૩૧॥

वीर.—धर्मानुष्ठानेऽशक्तो वानप्रस्थ एवमनुसन्दधानो देहत्यागायानशनव्रतं कुर्यादित्यर्थः।

ધર્મનું અનુષ્ઠાન કરવાને અશક્ત એવો વાનપ્રસ્થી આ પ્રમાણે અનુસંધાન કરીને દેહનો ત્યાગ કરવા માટે અનશન વ્રત કરે, એમ અર્થ છે.

विजय.—'न हरिस्मरतः कृत्यं दग्धेन्धनहुताशवत्' इति वचनात्।

'બળી ગયેલાં ઈંધણવાળા અગ્નિની જેમ હરિનું સ્મરણ કરનારને (કંઈ પણ) કરવા યોગ્ય નથી.'

भ.मनो.—'अनशनव्रतप्रकारः 'पक्षे गते वा प्राश्नीयात् मासे वाहनि वा गते।' इत्यादिना याज्ञवल्क्येनोक्तो बोध्यः।'

અનશન વ્રતનો પ્રકાર– પક્ષ પૂરો થાય ત્યારે ભોજન કરે અથવા મહિનો કે દિવસ પૂરો થાય ત્યારે, વગેરે યાજ્ઞવલ્ક્યજી દ્વારા કહેવામાં આવેલું જાણવા યોગ્ય છે.

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवादे सदाचारनिर्णयो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

❋❋❋❋❋

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

યતિધર્મનું નિરૂપણ તથા અવધૂત-પ્રહ્લાદનો સંવાદ

त्रयोदशे यतेर्धर्मः साधकस्योच्यते महान्।
अवधूतेतिहासेन सिद्धावस्था च वर्ण्यते॥ १

તેરમા અધ્યાયમાં સાધક સંન્યાસીનો મહાન ધર્મ કહેવામાં આવ્યો છે તથા અવધૂતના ઈતિહાસ દ્વારા સિદ્ધાવસ્થા વર્ણવવામાં આવી છે. ॥ ૧ ॥

नारद उवाच

कल्पस्त्वेवं परिव्रज्य देहमात्रावशेषितः।
ग्रामैकरात्रविधिना निरपेक्षश्चरेन्महीम्॥ १

નારદજી બોલ્યા – (જે મનુષ્ય વાનપ્રસ્થાશ્રમના ધર્માચરણમાં તથા બ્રહ્મવિચારમાં) સમર્થ હોય, તે તો આ પ્રમાણે (પોતાના આત્માનું અદ્વિતીયરૂપે) અનુસંધાન કરીને માત્ર દેહ શેષ રહે તેમ (બાકી બધું છોડીને) સંન્યાસ ધારણ કરીને (વિષયોની) અપેક્ષારહિત થઈ (પ્રત્યેક) ગામમાં એક જ રાત્રિ ગાળવાના નિયમથી પૃથ્વી ઉપર વિચરણ કરે. ॥ ૧ ॥

एवं ध्यात्वाऽकल्पोऽनशनादिकं कुर्यात्। आन्वीक्षिक्यां कल्पस्त्वेवं ध्यात्वा परिव्रज्येति संबन्धः।

આ પ્રમાણે (અદ્વૈતસ્વરૂપનું) ધ્યાન કરી (વાનપ્રસ્થાશ્રમના ધર્માચરણમાં તથા બ્રહ્મવિચારમાં) અસમર્થ હોય તે નિરાહાર રહે, પરંતુ બ્રહ્મવિચારમાં સમર્થ હોય તે આ પ્રમાણે (પોતાના આત્માનું અદ્વિતીયરૂપે) અનુસંધાન કરીને સંન્યાસ ધારણ કરીને, એમ સંબંધ છે.

कियदत्र त्याज्यम्। देहव्यतिरिक्तं सर्वमित्याह—देहमात्रेति। तस्य धर्मानाह—ग्रामैकरात्रेति नवभिः॥ १॥

बिभृयाद् यद्यसौ वासः कौपीनाच्छादनं परम्।
त्यक्तं न दण्डलिङ्गादेरन्यत् किञ्चिदनापदि॥ २

कौपीनं गुह्यमाच्छाद्यते यावता तावन्मात्रम्। परं केवलमन्यदिति वा। त्यक्तं प्रेषोच्चारणात्पूर्वमेव॥ २॥

एक एव चरेद् भिक्षुरात्मारामोऽनपाश्रयः।
सर्वभूतसुहृच्छान्तो नारायणपरायणः॥ ३
॥ ३॥

पश्येदात्मन्यदो विश्वं परे सदसतोऽव्यये।
आत्मानं च परं ब्रह्म सर्वत्र सदसन्मये॥ ४

सदसतः परे कार्यकारणव्यतिरिक्ते॥ ४॥

नन्वात्मानं परं ब्रह्मेति कथं सामानाधिकरण्यनिर्देशः। न हि बद्धमुक्तयोरैक्यं संभवति तत्राह—**सुप्तेति**।

અહીં કેટલું ત્યાગવું જોઈએ? દેહ સિવાય બધું જ ત્યાગવું જોઈએ, એમ કહે છે—**'देहमात्र-इति।'** તે (યતિ)ના ધર્મોનું નવ શ્લોકો દ્વારા વર્ણન કરે છે— **'ग्राम-एकरात्र'**॥ ૧॥

જો એ સંન્યાસી વસ્ત્ર ધારણ કરે તો માત્ર (ગુપ્તભાગ ઢંકાય) તેટલા કૌપીનના આવરણને જ ધારણ કરે. આપત્તિનો પ્રસંગ ન હોય તો દંડ તથા સંન્યાસનાં ચિહ્નાદિ સિવાય (સંન્યાસની પૂર્વે) ત્યજી દીધેલું બીજું કંઈ પણ ધારણ કરે નહીં.॥ ૨॥

જેટલાથી માત્ર ગુપ્તભાગ ઢંકાય તેટલા કૌપીનને જ (ધારણ કરે). **'परम्'** કેવળ અથવા (દંડ તથા સંન્યાસનાં ચિહ્નાદિ સિવાય) અને **'त्यक्तम्'** (સંન્યાસ) પ્રેરક મંત્ર ઉચ્ચારણથી પૂર્વે જ ત્યજી દીધેલું (અન્ય કંઈ પણ ગ્રહણ કરે નહીં.)॥ ૨॥

પોતાના આત્મામાં જ રમણ કરનાર અને કોઈનો પણ આશ્રય ન લેનાર, સર્વ પ્રાણીઓનો સુહૃદ, શાંત, નારાયણપરાયણ ભિક્ષુક થઈ તે એકલો જ વિચરણ કરે.॥ ૩॥ ૩॥

કાર્ય-કારણથી પર એવા અવિનાશી આત્મામાં વિશ્વને જોવું જોઈએ તથા કાર્ય-કારણમય સર્વ સ્થળે પરબ્રહ્મરૂપ આત્માને જોવો જોઈએ.॥ ૪॥

'सत्-असतः परे' કાર્ય-કારણથી પર (આત્મા) માં॥ ૪॥

શંકા કરવામાં આવી છે કે (શ્લોક-૪માં) આત્મા અને પરબ્રહ્મનો સમાન વિભક્તિમાં (**'आत्मानं'** અને **'परब्रह्म'** બંનેનો બીજી વિ. માં) કેવી રીતે નિર્દેશ થાય? કારણ કે બદ્ધ અને મુક્તનું ઐક્ય સંભવિત નથી. (સમાન વિભક્તિ હોય ત્યારે બંને પદાર્થો અભિન્ન ગણાય. તો બ્રહ્મ અને જીવાત્મા અભિન્ન કેવી રીતે?) તે માટે ઉત્તર આપે છે— **'सुप्त इति।'**

सुप्तप्रबोधयोः सन्धावात्मनो गतिमात्मदृक्।
पश्यन्बन्धं च मोक्षं च मायामात्रं न वस्तुतः॥ ५

आત્મતત્ત્વને લક્ષ્ય કરી સ્થિત થનારો મુનિ જાગ્રત્ અને નિદ્રા અવસ્થાઓના સંધિકાળમાં આત્મતત્ત્વને જોનારો, બંધ અને મોક્ષને કેવળ માયારૂપ જોનારો, વાસ્તવિકરૂપે ન જોનારો (પરબ્રહ્મરૂપ આત્માને સર્વત્ર જુએ).॥ ૫॥

सुषुप्तौ हि तमसावृतमात्मतत्त्वं जाग्रत्स्वप्नयोस्तु विक्षिप्तं प्रकाशते। सन्धौ तु न तमो नापि विक्षेपः। अतस्तदा आत्मदृगात्मानं लक्षीकृत्य स्थितः सन्नात्मनो गतिं तत्त्वं पश्यन्। अत एव बन्धं मोक्षं च मायामात्रं पश्यन् आत्मानं परं ब्रह्म सर्वत्र पश्येदित्यन्वयः।

સુષુપ્ત અવસ્થામાં આત્મતત્ત્વ અજ્ઞાનથી આચ્છાદિત હોય છે તથા જાગ્રત્ અને સ્વપ્નાવસ્થામાં વિક્ષિપ્ત (ચંચળ) જણાય છે. પરંતુ જાગ્રત્ અને સુષુપ્તિના સંધિકાળમાં અજ્ઞાન નથી હોતું અને વિક્ષેપ પણ નથી હોતો. આથી તે બંનેના સંધિકાળમાં '**आत्मदृक्**' આત્મતત્ત્વને લક્ષ્ય કરી સ્થિત થનારો મુનિ આત્માના '**गतिम्**' તત્ત્વને જોતો અને તેથી જ બંધ અને મોક્ષને કેવળ માયારૂપ જોતો, પરબ્રહ્મરૂપ આત્માને સર્વત્ર જુએ, એમ અન્વય છે.

तदुक्तं योगग्रन्थे—
'निद्रादौ जागरस्यान्ते यो भाव उपजायते।
तं भावं भावयन्नित्यं मुच्यते नेतरो यतिः॥'
इति॥ ५॥

યોગગ્રન્થમાં તે કહેવાયું છે— 'નિદ્રાવસ્થાની શરૂઆતમાં અને જાગ્રદવસ્થાના અંતમાં જે ભાવ ઉત્પન્ન થાય છે, તે ભાવનું નિત્ય ધ્યાન કરતો યતિ મુક્ત થાય છે, તેનાથી ભિન્ન હોય તે મુક્ત થતો નથી.'॥ ૫॥

नाभिनन्देद् ध्रुवं मृत्युमध्रुवं वास्य जीवितम्।
कालं परं प्रतीक्षेत भूतानां प्रभवाप्ययम्॥ ६

સંન્યાસી આ શરીરના અવશ્યંભાવિ મૃત્યુની કામના ન કરે કે ન અસ્થિર જીવનની કામના કરે. (સર્વ) પ્રાણીઓની ઉત્પત્તિ અને વિનાશ જેનાથી થાય છે તે માત્ર કાળની જ પ્રતીક્ષા કરે.॥ ૬॥

अस्य देहस्य। प्रभवोऽप्ययश्च यस्मात्तं कालम्॥ ६॥

'**अस्य**' આ શરીરના– ઉત્પત્તિ અને વિનાશ જેનાથી થાય છે તે કાળની॥ ૬॥

नासच्छास्त्रेषु सज्जेत नोपजीवेत जीविकाम्।
वादवादांस्त्यजेत् तर्कान्पक्षं कंच न संश्रयेत्॥ ७

આધ્યાત્મિક ન હોય તેવાં શાસ્ત્રોમાં સંન્યાસી આસક્ત ન થાય. (જ્યોતિષ વગેરે કોઈ પણ) આજીવિકાનો આશ્રય ન કરે. (જલ્પ અને વિતંડાવાદ વગેરે સંબંધી) વાદ-વિવાદોનો ત્યાગ કરે. કોઈ પણ પક્ષનો આશ્રય ન કરે.॥ ૭॥

असच्छास्त्रेष्वनात्मपरेषु। जीविकां नक्षत्रविद्यादिवृत्तिम्। वादवादान् जल्पवितण्डा-दिनिष्ठान्। कंच कमपि पक्षं निर्बन्धेन न संश्रयेत्॥ ७॥

‘**असत्-शास्त्रेषु**’ અનાત્મપરક શાસ્ત્રોમાં– ‘**जीविकाम्**’ જ્યોતિષવિદ્યા વગેરે આજીવિકાને– ‘**वादवादान्**’ જલ્પ, વિતંડા વગેરે સંબંધી વાદ-વિવાદો કરનારાઓને– ‘**कंच**’ કોઈ પણ પક્ષનો આગ્રહપૂર્વક આશ્રય ન કરે.॥ ૭॥

बा.प्र.—असच्छास्त्रेषु ‘सा विद्या तन्मतिर्यया॥’ ‘कुपथं तं विजानीयार्गोविन्दरहितागमम्’ इत्यादि वचनात् भगवद्गुणादिनिरूपकाति-रिक्तशास्त्रेषु न सज्जेत।

‘જેનાથી તે શ્રીહરિમાં ચિત્ત ચોંટે તે વિદ્યા’ (શ્રીમદ્ ભા.૪/૨૯/૪૯) ‘શ્રીગોવિંદ ભગવાન(નાં નામ, રૂપ, ગુણ, લીલા અને ધામ)થી રહિત શાસ્ત્ર હોય તેને કુપથ જાણવો.’ (વિષ્ણુસહસ્રનામની ફળશ્રુતિ) વગેરે વચન હોવાથી ભગવાનના ગુણ વગેરેનું નિરૂપણ કરનારાં સિવાયનાં શાસ્ત્રોમાં આસક્ત ન થાય.

न शिष्याननुबध्नीत ग्रन्थान्नैवाभ्यसेद् बहून्।
न व्याख्यामुपयुञ्जीत नारम्भानारभेत् क्वचित्॥ ८

(પ્રલોભન વગેરે દ્વારા) બળપૂર્વક શિષ્યો ન બનાવે. બહુ ગ્રન્થોનો અભ્યાસ ન જ કરે. (વેદાન્ત સિવાયના ગ્રન્થોની) વ્યાખ્યાનો ઉપયોગ ન કરે (અધ્યયન ન કરે અને બીજાને અધ્યાપન ન કરાવે) તેમ જ મઠાદિ વ્યાપારનો કદીયે આરંભ ન કરે.॥ ૮॥

शिष्यान्नानुबध्नीत प्रलोभनादिना बलान्ना-पादयेत्। आरम्भान् मठादिव्यापारान्॥ ८॥

પ્રલોભનાદિ દ્વારા બળપૂર્વક શિષ્યો ન બનાવે. ‘**आरम्भान्**’ મઠ બાંધવા વગેરે આજીવિકાના વ્યાપારનો આશ્રય ન કરે.॥ ૮॥

परमहंसस्य विशेषमाह—

પરમહંસનું વિશેષ લક્ષણ જણાવે છે—

न यतेराश्रमः प्रायो धर्महेतुर्महात्मनः।
शान्तस्य समचित्तस्य बिभृयादुत वा त्यजेत्॥ ९

(જેનું ચિત્ત અતિ શુદ્ધ છે તેવા) શાંત, સમદર્શી ચિત્તવાળા મહાત્મા યતિ માટે આશ્રમ પ્રાયઃ ધર્મનું કારણ નથી, તેથી (લોકસંગ્રહ માટે તે પરમહંસ પોતાના આશ્રમનાં ચિહ્નોને) ધારણ કરે અથવા તેમનો ત્યાગ પણ કરી દે.॥ ૯॥

न यतेराश्रमो धर्मार्थः। कथंभूतस्य यतेः। महात्मनः। तस्य लक्षणम्—शान्तस्येत्यादि।

સંન્યાસી માટે આશ્રમ ધર્મનું કારણ નથી. કેવા સંન્યાસી માટે? ‘**महात्मनः**’ જેનું ચિત્ત અતિ શુદ્ધ છે તેવા પરમહંસ મહાત્માને માટે– તેમનું લક્ષણ– ‘**शान्तस्य**’ વગેરે

प्राय इत्यस्यायं भावः—ज्ञानोत्पत्ति-पर्यन्तं बहूदकादिलिङ्गमाश्रित्य सत्त्वशुद्ध्यर्थं यमान्नियमांश्चाचरन्नेव ज्ञानोत्पत्तौ यतेत।

'प्रायः इति।' નો ભાવ આ પ્રમાણે છે—જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય ત્યાં સુધી બહૂદક (બહૂદક, કુટીચક, હંસ, પરમહંસ) વગેરે ચિહ્નનો આશ્રય કરીને સત્ત્વશુદ્ધિ માટે યમો અને નિયમોનું આચરણ કરતાં જ જ્ઞાનોત્પત્તિ માટે યત્ન કરવો જોઈએ.

उत्पन्ने तु ज्ञाने न नियमैः कृत्यमस्ति। यमाश्च स्वत एव स्युः। अतस्तदा लिङ्गादिभिः प्रयोजनाभावाल्लोकसंग्रहार्थं धारयेद्वा त्यजेद्वेति ॥ ९ ॥

જ્ઞાન ઉત્પન્ન થતાં નિયમો (તપ, સન્તોષ, શૌચ, સ્વાધ્યાય, ઈશ્વરપ્રણિધાન)નું પ્રયોજન હોતું નથી. યમો (સત્ય, અહિંસા, અસ્તેય, અપરિગ્રહ, બ્રહ્મચર્ય) તો '**स्वतः**' આપમેળે જ થતાં હોય છે. આથી તે સમયે ચિહ્નાદિનું પ્રયોજન ન હોવાથી લોકસંગ્રહ માટે યતિ તેમને ધારણ કરે કે ત્યાગ કરે.॥ ૯ ॥

'तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः।
नानुध्यायाद्बहूञ्छब्दान्वाचो विग्लापनं हि तदिति'॥

'બુદ્ધિમાન બ્રાહ્મણે એ બ્રહ્મને જ જાણીને તેનામાં જ બુદ્ધિ પરોવવી જોઈએ. ઘણા શબ્દોનું ચિન્તન તે ન કરે, કારણ કે તે તો વાણીનો માત્ર પરિશ્રમ જ છે.' (બૃહદા.ઉપ.૪/૪/૨૧)

સંન્યાસીના ચાર પ્રકાર છે: ૧. બહૂદક (ઘણું પાણી પીતા રહે તેવા ફરનારા) ૨. કુટીચક (સ્થિર થઈને રહેનારા) ૩. હંસ (આત્મા-અનાત્માનો વિચાર કરનારા) ૪. પરમહંસ (જે સૌથી શ્રેષ્ઠ હોય છે).

तस्यैव ज्ञानदार्ढ्याभावे योगभ्रंशपरिहा-रार्थमाह—

તે યોગીના જ જ્ઞાનની દઢતા ન થઈ હોવાથી તે યોગભ્રષ્ટ ન થાય તે માટે કહે છે—

अव्यक्तलिङ्गो व्यक्तार्थो मनीष्युन्मत्तबालवत्।
कविर्मूकवदात्मानं स दृष्ट्या दर्शयेन्नृणाम्॥ १०

(બહારથી) જેનું (આશ્રમનું) ચિહ્ન પ્રકટ ન થતું હોય પરંતુ આત્માનુસંધાનરૂપ પ્રયોજન પ્રકટ થતું હોય તેવો પરમહંસ સંન્યાસી વિચારશીલ, વિદ્વાન (હોવા છતાં) સામાન્ય મનુષ્યોની દષ્ટિએ પોતાને મૂંગો હોય તેમ દર્શાવે.॥ ૧૦॥

न बहिर्व्यक्तं लिङ्गं यस्य व्यक्तोऽर्थः प्रयोजनमात्मानुसंधानं यस्य स मनीष्यप्यु-न्मत्तवद्बालवच्च कविरपि मूकवदात्मानं

બહારથી જેનું (આશ્રમનું) ચિહ્ન પ્રકટ ન થતું હોય, પરંતુ જેનું આત્માનુસંધાનરૂપ '**अर्थः**' પ્રયોજન પ્રકટ થતું હોય તે (પરમહંસ સંન્યાસી) વિચારશીલ હોવા છતાં ઉન્મત્ત અને બાળક જેવો અને વિદ્વાન હોવા છતાં સામાન્ય

नृणां दृष्ट्या दर्शयेत्। ते यथोन्मत्तादिरूपं मन्येरंस्तथा वर्तेत।

स्वदृष्ट्येति पाठे बाह्यानुसंधानाभावेनेत्यर्थः ॥ १० ॥

वंशीधरी—लोकसंगपरिहारार्थमेवेत्थमाचरेदिति भावः।

परमहंसधर्ममेवेतिहासेन स्फुटयति—**अत्रापीति** यावदध्यायसमाप्ति।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
प्रह्लादस्य च संवादं मुनेराजगरस्य च॥ ११

अजगरव्रतस्य मुनेश्च॥ ११ ॥

वंशीधरी—अजगरवृत्तिः। आजगरव्रतं नामैकत्र स्थित्या प्रारब्धकर्मभोगः।

तं शयानं धरोपस्थे कावेर्यां सह्यसानुनि।
रजस्वलैस्तनूदेशैर्निगूढामलतेजसम् ॥ १२
ददर्श लोकान्विचरल्ँलोकतत्त्वविवित्सया।
वृतोऽमात्यैः कतिपयैः प्रह्लादो भगवत्प्रियः॥ १३

धरोपस्थे भूपृष्ठे। सह्याद्रेस्तटे। रजोभि-र्धूसरैस्तनूदेशैर्देहावयवैर्निगूढममलं तेजो यस्य तम्॥ १२॥ १३॥

कर्मणाऽऽकृतिभिर्वाचा लिङ्गैर्वर्णाश्रमादिभिः।
न विदन्ति जना यं वै सोऽसाविति न वेति च॥ १४
तं नत्वाऽभ्यर्च्य विधिवत् पादयोः शिरसा स्पृशन्।
विवित्सुरिदमप्राक्षीन्महाभागवतोऽसुरः ॥
॥ १५ ॥

મનુષ્યોની દૃષ્ટિએ પોતાને મૂંગો હોય તેમ દર્શાવે. તે લોકો તેને ઉન્મત્ત વગેરે રૂપે માને તેમ તે વર્તન કરે.

'**स्वदृष्ट्या**' પાઠમાં, બહારના અનુસંધાનના અભાવને કારણે, એમ અર્થ છે.॥ ૧૦॥

લોકોનો સંપર્ક છોડવા માટે જ આવું આચરણ કરે, એવો ભાવ છે.

પરમહંસોનો ધર્મ જ અધ્યાય સમાપ્ત ત્યાં સુધી ઈતિહાસરૂપે પ્રકટ કરે છે— '**अत्र-अपि इति**।'

અહીં પ્રહ્‌લાદજી અને અજગરવ્રતધારી મુનિના સંવાદરૂપ આ પુરાતન ઈતિહાસને પણ (મહાત્માઓ) ઉદાહરણરૂપે કહે છે.॥ ૧૧॥

અજગરવ્રતધારી મુનિના (સંવાદરૂપ)॥ ૧૧॥

આજગરવ્રત એટલે (અજગરની જેમ) એક જ સ્થળે રહીને પ્રારબ્ધકર્મનો ભોગ કરવો.

(એક વખત) લોકવ્યવહાર જાણવાની ઈચ્છાથી કેટલાક મંત્રીઓથી વીંટળાયેલા, ભગવાનના પ્રિય પ્રહ્‌લાદજીએ લોકોમાં વિચરણ કરતાં, સહ્ય અદ્રિની તળેટીમાં કાવેરી નદીના કિનારે પૃથ્વી પર પડેલા, ધૂળથી ધૂસરિત થયેલાં શરીરનાં અંગોને કારણે જેમનું નિર્મળ તેજ ઢંકાઈ ગયું હતું તેમને (મુનિને) જોયા.॥ ૧૨॥ ૧૩॥

'**धरा-उपस्थे**' ભૂપૃષ્ઠ (પૃથ્વી) પર, સહ્ય અદ્રિની તળેટીમાં, ધૂળથી ધૂસરિત થયેલાં '**तनूदेशैः**' શરીરનાં અંગોને કારણે જેમનું નિર્મળ તેજ ઢંકાઈ ગયું હતું તેમને (જોયા).॥ ૧૨॥ ૧૩॥

કર્મ, આકાર, વાણી કે વર્ણાશ્રમ વગેરેનાં ચિહ્‌નોથી લોકો જેમને 'તે એ (સિદ્ધ પુરુષ) છે કે નહીં' એમ જાણી શકતા ન હતા. તેમની વિધિવત્ અર્ચના કરી, ચરણોમાં મસ્તક અડાડતાં પ્રણામ કરીને જાણવાની ઈચ્છાવાળા મહાન ભગવદ્‌ભક્ત અસુર પ્રહ્‌લાદજીએ આ પ્રમાણે પૂછ્યું.॥ ૧૪॥ ૧૫॥

कर्मादिभिर्जना यं न विदुस्तं पादयोः शिरसा स्पृशन्नत्वा अप्राक्षीदित्युत्तरेणान्वयः ॥ १४ ॥ १५ ॥

કર્મ વગેરે દ્વારા લોકો જેમને જાણતા ન હતા, તેમના ચરણોમાં મસ્તક અડાડતાં પ્રણામ કરીને પૂછ્યું, એમ પછીના શ્લોક(૧૫) સાથે અન્વય છે. ॥ ૧૪ ॥ ૧૫ ॥

बिभर्षि कायं पीवानं सोद्यमो भोगवान्यथा।
वित्तं चैवोद्यमवतां भोगो वित्तवतामिह।
भोगिनां खलु देहोऽयं पीवा भवति नान्यथा॥ १६

ઉદ્યમયુક્ત ભોગ કરનાર મનુષ્યની જેમ આપ સ્થૂળ શરીર ધારણ કરો છો. આ સંસારમાં ઉદ્યમ કરનારાઓને જ ધન મળે છે અને ધનવાનોને ભોગ મળે છે. ભોગીજનોનું જ આ શરીર સ્થૂળ થાય છે, બીજા કારણે સ્થૂળ થતું નથી. ॥ ૧૬ ॥

उद्यमसहित इव भोगवानिव पीवानं स्थूलं देहं धारयसि। तत्र हेतुं वदेति तृतीयेनान्वयः।

ઉદ્યમ સાથે ભોગ કરનારની જેમ **'पीवानम्'** સ્થૂળ દેહ ધારણ કરો છો, તે માટેનું કારણ કહો, એમ આનાથી ત્રીજા શ્લોક (૧૮) સાથે અન્વય છે.

उद्यमं विनैव मम भोगोऽस्तीति चेत्तत्राह—**वित्तं चेति** ॥ १६ ॥

જો (તે સિદ્ધ પુરુષ કહે કે) મને તો ઉદ્યમ કર્યા વિના જ ભોગ પ્રાપ્ત થાય છે, તો તે માટે કહે છે— **'वित्तं च इति।'** ॥ ૧૬ ॥

न ते शयानस्य निरुद्यमस्य
ब्रह्मन् नु हार्थो यत एव भोगः।
अभोगिनोऽयं तव विप्र देहः
पीवा यतस्तद्वद नः क्षमं चेत्॥ १७

હે ભૂદેવ, ઉદ્યમરહિત પડી રહેલા એવા આપને જેનાથી (ધનથી) જ ભોગ પ્રાપ્ત થાય છે તે તો છે જ નહીં. હે વિપ્ર, અભોગી એવા આપનો આ દેહ જે કારણે પુષ્ટ છે, તે જો કહેવા યોગ્ય હોય તો અમને કહો. ॥ ૧૭ ॥

नु इति निश्चये। ह इति प्रसिद्धौ। तवार्थो नास्तीति प्रसिद्धमेवेत्यर्थः। यतोऽर्थादेव। यतो हेतोः पीवा। क्षमं योग्यं चेत्॥ १७॥

'नु' નિશ્ચય જ, **'ह'** આપની પાસે ધન નથી તે તો પ્રસિદ્ધ જ છે, એમ અર્થ છે. **'यतः'** જે ધનથી જ (ભોગ પ્રાપ્ત થાય છે) કે જેનાથી આપ સ્થૂળ છો. (જો કહેવા) **'क्षमम्'** યોગ્ય હોય તો (કહો). ॥ ૧૭ ॥

किंच—वित्तार्जनाद्यसमर्थोऽप्ययं जनस्तदर्थमुद्यमं करोति त्वं तु समर्थोऽपि किमिति न करोषीत्याह—

વળી, ધન ઉપાર્જન કરવા વગેરે માટે અસમર્થ હોવા છતાં આ જનસમુદાય તેને માટે ઉદ્યમ કરે છે! આપ તો સમર્થ હોવા છતાં પણ કેમ (કાંઈ) કરતા નથી, એમ કહે છે—

कविः कल्पो निपुणदृक् चित्रप्रियकथः समः।
लोकस्य कुर्वतः कर्म शेषे तद्वीक्षितापि वा॥ १८

(આપ) વિદ્વાન, દક્ષ, ચતુર, સમભાવવાળા અને જાતજાતની લોકરંજક કથા કહેનાર હોવા છતાં, લોકો કર્મ કરે છે ત્યારે તે (સર્વ) જોવા છતાં પણ આપ પડી રહો છો!॥૧૮॥

कविर्विद्वान्। कल्पो दक्षः। निपुणदृक् चतुरः। चित्राः प्रिया लोकरञ्जनाः कथा यस्य। तथापि लोकस्य कर्म कुर्वतः सतः शेषे।

'**कविः**' વિદ્વાન, '**કલ્પઃ**' દક્ષ, '**निपुणदृक्**' ચતુર, '**चित्राः**' જાતજાતની '**प्रियाः**' લોકરંજક કથાઓ છે જેની– (આમ, આપ સક્ષમ હોવા) છતાં પણ લોકો કર્મ કરે છે ત્યારે આપ પડી રહો છો!

तद्वीक्षितापि तत्सर्वं पश्यन्नपि। पाठान्तरे न द्वेक्षि तत्कर्म न द्वेक्षि नौषि वा न च स्तौषीत्यर्थः॥ १८॥

'**तद्-वीक्षिता-अपि**' તે બધું જોતા હોવા છતાં, પાઠાન્તરમાં '**शेषे तद्-वीक्षिता-अपि वा**' ને બદલે '**शेषे न द्वेक्षि नौषि वा**' આપ નથી દ્વેષ કરતા કે નથી પ્રશંસા કરતા, એમ અર્થ છે.॥૧૮॥

नारद उवाच

स इत्थं दैत्यपतिना परिपृष्टो महामुनिः।
स्मयमानस्तमभ्याह तद्वागमृतयन्त्रितः॥ १९

નારદજી બોલ્યા – આ પ્રમાણે દૈત્યપતિ પ્રહ્લાદજી દ્વારા જેમને પૂછવામાં આવ્યું છે તે મહામુનિ તેમના વાણીરૂપ અમૃતથી વશ થઈ સ્મિત કરતાં, તેમને કહેવા લાગ્યા.॥૧૯॥

तस्य वागेवामृतं तेन यन्त्रितो वशीकृतः सन्प्राह॥ १९॥

તેમની વાણી એ જ અમૃત, તેનાથી '**यन्त्रितः**' વશીભૂત થઈ કહેવા લાગ્યા.॥૧૯॥

ब्राह्मण उवाच

वेदेदमसुरश्रेष्ठ भवान् नन्वार्यसम्मतः।
ईहोपरमयोर्नृणां पदान्यध्यात्मचक्षुषा॥ २०

ભૂદેવ બોલ્યા – હે અસુરશ્રેષ્ઠ, જ્ઞાનીઓમાં (સર્વજ્ઞ તરીકે) સમ્મત એવા આપ અંતર્દષ્ટિથી આ અવશ્ય જાણો છો કે મનુષ્યોની પ્રવૃત્તિ અને નિવૃત્તિથી (કયાં) ફળો મળે છે.॥૨૦॥

अध्यात्मचक्षुषाऽन्तर्दृष्ट्या भवान् वेदैव। आर्याणां ज्ञानिनां संमतो ननु भवान्। इदमिति यदुक्तं तदेवाह—नृणामीहोपरमयोः प्रवृत्तिनिवृत्त्योः पदानि स्थानानि फलानीत्यर्थः॥ २०॥

'**अध्यात्मचक्षुषा**' અંતર્દષ્ટિથી આપ જાણો જ છો. '**आर्याणाम्**' જ્ઞાનીઓમાં (સર્વજ્ઞ તરીકે) સમ્મત એવા આપ અવશ્ય (જાણો છો). '**इदम् इति**।'થી જે કહ્યું તે જ જણાવે છે— મનુષ્યોની '**ईहा-उपरमयोः**' પ્રવૃત્તિ અને નિવૃત્તિથી '**पदानि**' સ્થાનો (અહીં) ફળો, એમ અર્થ છે.॥૨૦॥

वेदेत्यत्र हेतुः—**यस्येति**।

'આપ જાણો છો.' એમ જે કહ્યું, તે માટેનું કારણ આ શ્લોકમાં આપે છે— '**यस्य इति**।'

यस्य नारायणो देवो भगवान्हृद्गतः सदा।
भक्त्या केवलयाज्ञानं धुनोति ध्वान्तमर्कवत्॥ २१

કેવળ (અનન્ય પ્રયોજનવાળી) ભક્તિથી જે આપના હૃદયમાં પ્રવિષ્ટ થઈ દેવાધિદેવ ભગવાન નારાયણ, જેમ સૂર્ય (બહારનો) અંધકાર નષ્ટ કરે છે તેમ સદાય અજ્ઞાન દૂર કરે છે.॥ ૨૧॥

हृदि प्रविष्टः सन्नज्ञानं धुनोति। अर्को यथा बहिर्ध्वान्तम्॥ २१॥

હૃદયમાં પ્રવિષ્ટ થઈ (શ્રીનારાયણ) અજ્ઞાન નષ્ટ કરે છે, જેમ સૂર્ય બહારનો અંધકાર (નષ્ટ કરે તેમ!)॥ ૨૧॥

अथापि ब्रूमहे प्रश्नांस्तव राजन्यथाश्रुतम्।
सम्भावनीयो हि भवानात्मनः शुद्धिमिच्छताम्॥ २२

તેમ છતાં હે રાજા, મેં જેમ (શાસ્ત્રનું) શ્રવણ કર્યું છે તેમ તમારા પ્રશ્નોના ઉત્તર આપું છું, કારણ કે આત્મશુદ્ધિ ઇચ્છનારા પુરુષોમાં આપ સમ્માનનીય છો.॥ ૨૨॥

यथाश्रुतमित्यौद्धत्यपरिहारायोक्तम्॥ २२॥

‘**यथाश्रुतम्**’ (શાસ્ત્ર) શ્રવણ કર્યા અનુસાર, એમ કહ્યું તે ઉદ્ધતાઈનું નિવારણ કરવા માટે કહેવાયું છે.॥ ૨૨॥

लोकः कर्मसु प्रवर्तते त्वं तु निवृत्तः सन्किं शेषे इति यदुक्तं तत्राह—**तृष्णयेति** चतुर्भिः।

‘મનુષ્યો કર્મમાં પ્રવૃત્ત થાય છે પરંતુ આપ નિવૃત્ત થઈ કેમ પડી રહો છો?’ એમ જે પૂછવામાં આવ્યું તેનો ઉત્તર ચાર શ્લોકોથી આપે છે— ‘**तृष्णया इति।**’

तृष्णया भववाहिन्या योग्यैः कामैरपूरया।
कर्माणि कार्यमाणोऽहं नानायोनिषु योजितः॥ २३

યથોચિત ભોગોથી પણ પૂરી કરવા માટે અશક્ય અને જન્મમરણરૂપ સંસારનું વહન કરનારી તૃષ્ણાથી કર્મોમાં જોતરાયેલો હું (પૂર્વે) જુદી જુદી યોનિઓમાં ભટક્યો છું.॥ ૨૩॥

भवप्रवाहकारिण्या यथोचितैरपि विषयैः पूरयितुमशक्यया तृष्णया कर्मसु प्रवर्त्यमानोऽहं पूर्वं नानायोनिषु प्रवेशितः॥ २३॥

જન્મ-મરણરૂપ સંસારનું વહન કરનારી અને યથોચિત ભોગોથી પણ પૂરી કરવા માટે અશક્ય એવી તૃષ્ણાથી કર્મોમાં જોતરાયેલો હું પૂર્વે જાતજાતની યોનિઓમાં પ્રવેશ્યો છું.॥ ૨૩॥

यदृच्छया लोकमिमं प्रापितः कर्मभिर्भ्रमन्।
स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं तिरश्चां पुनरस्य च॥ २४

કર્મોને કારણે ભટકતો એવો હું સ્વર્ગ, મોક્ષ, તિર્યક્ યોનિ અને આ મનુષ્યત્વના સાધનરૂપ એવા આ મનુષ્યદેહને ફરી પાછો દૈવેચ્છાથી પ્રાપ્ત થયો છું.॥ ૨૪॥

तयैव तृष्णयेमं लोकं मनुष्यदेहं यदृच्छया प्रापितः।

તે જ તૃષ્ણાને કારણે આ ‘**लोकम्**’ મનુષ્યદેહને હું દૈવેચ્છાથી પ્રાપ્ત થયો છું.

कथंभूतं लोकम्। धर्मेण स्वर्गस्य द्वारं साधनम्। अधर्मेण तिरश्चां श्वसूकरादि-योनेर्द्वारम्। मिश्राभ्यां ताभ्यां पुनरप्यस्य मनुष्यत्वस्य द्वारम्। सर्वतो निवृत्त्यापवर्गस्य द्वारमित्यर्थः ॥ २४ ॥

કેવા મનુષ્યદેહને? ધર્મથી સ્વર્ગના '**द्वारम्**' સાધનરૂપ, અધર્મથી '**तिरश्चाम्**' કૂતરાં-ભૂંડ વગેરે તિર્યક્ યોનિના સાધનરૂપ, (ધર્મ અને અધર્મ, બંનેના) મિશ્રણથી વળી પાછો '**अस्य**' આ મનુષ્યત્વના સાધનરૂપ અને સર્વ રીતે નિવૃત્ત થવાથી (જ્ઞાન અને ભક્તિ દ્વારા) મોક્ષના સાધનરૂપ (આ મનુષ્યદેહને પ્રાપ્ત થયો છું), એમ અર્થ છે. ॥ ૨૪ ॥

अत्रापि दम्पतीनां च सुखायान्यापनुत्तये।
कर्माणि कुर्वतां दृष्ट्वा निवृत्तोऽस्मि विपर्ययम्॥ २५

આ મનુષ્યપણામાં પણ સુખ પ્રાપ્ત કરવા માટે અને (સુખથી) અન્ય (દુઃખ) દૂર કરવા માટે કર્મો કરતાં પતિ-પત્નીઓને (સુખ માટે કરાયેલાં કર્મોથી દુઃખપ્રાપ્તિરૂપ) ઊલટું ફળ મળતું જોઈને હું (સર્વ કર્મોથી) નિવૃત્ત થયો છું. ॥ ૨૫ ॥

अत्रापि मनुष्यत्वेऽपि। अन्यापनुत्तये दुःख-निवृत्त्यै विपर्ययं दृष्ट्वा निवृत्तोऽस्मि॥ २५ ॥

'**अत्र-अपि**' આ મનુષ્યપણામાં પણ '**अन्य-अपनुत्तये**' સુખથી અન્ય એવું દુઃખ દૂર કરવા માટે '**विपर्ययम्**' ઊલટું ફળ મળતું જોઈ હું નિવૃત્ત થયો છું. ॥ ૨૫ ॥ (**अप**+**नुद्**+**ति** ની ચતુર્થી વિ. **अपनुत्तये**)

ननु प्रवृत्त्या कदाचित्सुखं स्यान्निवृत्त्या तु किं स्यादिति चेत्तत्राह—

કોઈ શંકા કરે કે પ્રવૃત્તિથી કદાચ સુખ મળે, પણ નિવૃત્તિથી શું થવાનું છે? તે માટે ઉત્તર આપે છે—

सुखमस्यात्मनो रूपं सर्वेहोपरतिस्तनुः।
मनःसंस्पर्शजान् दृष्ट्वा भोगान्स्वप्स्यामि संविशन्॥
॥ २६ ॥

સુખ આ જીવાત્માનું સ્વરૂપ છે. સર્વ કર્મોની નિવૃત્તિ તેનું પ્રકાશક (શરીર) છે, (આથી કેવળ) મનોરથોથી ઉત્પન્ન થનારા ભોગોને જોઈને, પ્રારબ્ધ ભોગોનો ભોગ કરતો હું પડ્યો છું. (સૂતો છું.) ॥ ૨૬ ॥

सुखमस्य जीवस्य स्वरूपमेव। तर्हि किं न प्रकाशते तत्राह—सर्वेति। तनोतीति तनुः। सर्वक्रियानिवृत्तौ स्वत एव प्रकाशत इत्यर्थः।

સુખ '**अस्य**' આ જીવાત્માનું સ્વરૂપ જ છે તો પછી કેમ પ્રકાશતું નથી? તે માટે કહે છે— '**सर्व-ईहा-उपरतिः।**' વિસ્તરે છે તે '**तनुः**' સર્વ કર્મો(ના કારણરૂપ તૃષ્ણા)ની નિવૃત્તિ થતાં સુખ '**स्वतः**' આપમેળે જ પ્રકાશે છે, એમ અર્થ છે.

भोगांश्च मनःसंस्पर्शजान् मनोरथमात्रजा-नशाश्वतान् दृष्ट्वा स्वप्स्यामि। निरुद्यमोऽस्मीत्यर्थः।

આથી '**મનઃસંસ્પર્શજાન્**' કેવળ મનોરથોથી ઉત્પન્ન થનારા, ક્ષણભંગુર ભોગોને જોઈને (**वंशीधरी—तत्रारुचिरेव जातेति भावः।**—મને તેમાં અરુચિ થાય છે.) હું પડયો રહું છું અને ઉદ્યમ કરતો નથી, એમ અર્થ છે.

तर्हि कदाचित्कथं भुङ्क्षे तत्राह। संविशन्। प्रारब्धभोगान्भुञ्जान इत्यर्थः॥ २६॥

તો પછી ક્યારેક કેમ ભોગોને ભોગવો છો? તે માટે ઉત્તર આપે છે. પ્રારબ્ધ ભોગોનો '**संविशन्**' ભોગ કરતો હું પડયો છું. (કારણ કે પ્રારબ્ધ ભોગો અવશ્ય ભોગવવા પડે છે.)॥ ૨૬॥

एवं चेत्कोऽपि संसारं न प्राप्नुयात्तत्राह—

આમ, જો (આત્મા સુખરૂપ) હોય તો કોઈ પણ સંસારમાં પડે જ નહીં! તે માટે કહે છે—

इत्येतदात्मनः स्वार्थं सन्तं विस्मृत्य वै पुमान्।
विचित्रामसति द्वैते घोरामाप्नोति संसृतिम्॥ २७

આમ, આ આત્માના પોતાનામાં જ રહેલા (સુખાત્મકરૂપ) પુરુષાર્થને વિસરી જઈને, મિથ્યા હોવા છતાં (દેહાદિ) દ્વૈતમાં પરિનિષ્ઠિત થઈ મનુષ્ય (જન્મ-મરણાદિથી) ભયંકર અને (દેવ, પશુ-પક્ષી, નરાદિ જુદાં જુદાં રૂપવાળા) વિચિત્ર સંસારને પ્રાપ્ત કરે છે.॥ ૨૭॥

इत्येतदात्मनः सुखात्मकं रूपं स्वार्थं स्वस्मिन्नेव सन्तं पुरुषार्थं विस्मृत्य। असत्यपि द्वैते॥ २७॥

આમ, આ આત્માના સુખાત્મક રૂપ '**स्वार्थम्**' પોતાના વિષે જ રહેલા પુરુષાર્થને વિસરી જઈને, મિથ્યા હોવા છતાં (દેહાદિ) દ્વૈતમાં પરિનિષ્ઠિત થઈ મનુષ્ય ભયંકર અને વિચિત્ર સંસારને પ્રાપ્ત કરે છે.॥ ૨૭॥

एतदेव दृष्टान्तेन स्पष्टयति—**जलमिति**।

આ જ વાતને દૃષ્ટાન્તથી સ્પષ્ટ કરે છે— '**जलम् इति।**'

जलं तदुद्भवैश्छन्नं हित्वाज्ञो जलकाम्यया।
मृगतृष्णामुपाधावेद् यथान्यत्रार्थदृक् स्वतः॥ २८

તે જળમાં ઉત્પન્ન થયેલા (ઘાસ, શેવાળ વગેરે) પદાર્થોથી ઢંકાઈ ગયેલું જળ છોડીને જળની ઈચ્છાથી અજ્ઞ મનુષ્ય જેમ મૃગજળ તરફ દોડે, તેમ આત્મસ્વરૂપથી અન્યત્ર પુરુષાર્થને જોતો અજ્ઞાની (વિષયો તરફ) દોડે છે.॥ ૨૮॥

तदुद्भवैस्तृणशैवालादिभिः जलकाम्यया जलेच्छया। स्वत आत्मस्वरूपादन्यत्र पुरुषार्थं पश्यन्॥ २८॥

एवं स्वस्य निरुद्यमत्वे कारणमुक्त्वा विपर्ययं दृष्ट्वेति यदुक्तं तद्विवृणोति— **देहादिभिरिति** पञ्चभिः।

देहादिभिर्दैवतन्त्रैरात्मनः सुखमीहतः।
दुःखात्ययं चानीशस्य क्रिया मोघाः कृताः कृताः॥
॥ २९ ॥

ईहत इच्छतः। अनीशस्य निर्दैवस्य। पुनःपुनः प्रारब्धाः क्रिया मोघा विफला एव भवन्ति॥ २९॥

क्रियाणां सफलत्वेऽपि फलस्यानुपयोगमाह—**आध्यात्मिकादिभिरिति**।

आध्यात्मिकादिभिर्दुःखैरविमुक्तस्य कर्हिचित्।
मर्त्यस्य कृच्छ्रोपनतैरर्थैः कामैः क्रियेत किम्॥
॥ ३० ॥

मर्त्यस्य मरिष्यतः। कृच्छ्रेण दुःखेनोपनतैः प्राप्तैः॥ ३०॥

कृच्छ्रं विनैव प्राप्तेऽप्यर्थे दुःखं तदवस्थमित्याह—**पश्यामीति**।

તે જળમાં ઉત્પન્ન થયેલાં ઘાસ, શેવાળ વગેરેથી (ઢંકાયેલા જળને છોડીને) **'जलकाम्यया'** જળની ઈચ્છાથી– **'स्वतः'** આત્મસ્વરૂપથી અન્યત્ર (**'अर्थदृक्'**) પુરુષાર્થને જોતો મનુષ્ય॥ ૨૮॥

આમ પોતાની નિષ્ક્રિયતાનું કારણ કહીને **'विपर्ययम् दृष्ट्वा'** (શ્લોક-૨૫) એમ જે કહેવામાં આવ્યું, તેનું વિવરણ પાંચ શ્લોકો વડે કરે છે— **'देहादिभिः इति।'**

પ્રારબ્ધને અધીન શરીરાદિ દ્વારા પોતાને સુખ મળે અને દુઃખનો નાશ થાય, એમ ઈચ્છતા ભાગ્યહીન (અસમર્થ) મનુષ્યનાં વારંવાર કરવામાં આવેલાં કર્મો વિફળ થાય છે.॥ ૨૯॥

'ईहतः' (સુખપ્રાપ્તિ અને દુઃખનિવૃત્તિ) ઈચ્છતા મનુષ્યનાં, **'अनीशस्य'** (**सि.प्र.—ईश्वरादन्यत्राऽर्थदृशः**—ઈશ્વરથી અન્યત્ર પુરુષાર્થ જોનાર) ભાગ્યહીન મનુષ્યનાં વારંવાર આરંભાયેલાં કર્મો **'मोघाः'** વિફળ જ થાય છે.॥ ૨૯॥

કર્મો સફળ થાય તો પણ તેમનાં ફળની અનુપયોગિતા જણાવે છે— **'आध्यात्मिकादिभिः इति।'**

આધ્યાત્મિક વગેરે (આધિભૌતિક અને આધિદૈવિક) દુઃખોથી ક્યારેય પણ ન છૂટી શકનાર મરણશીલ મનુષ્યને મહાકષ્ટથી પ્રાપ્ત થયેલા ધન અને ભોગોથી કેટલું સુખ મેળવી શકાય?॥ ૩૦॥

'मर्त्यस्य' (અચાનક ગમે ત્યારે) મરી જનાર મનુષ્યના— **'कृच्छ्रेण'** કષ્ટથી **'उपनतैः'** પ્રાપ્ત થયેલા ધન અને ભોગોથી॥ ૩૦॥

કષ્ટ વિના પણ પ્રાપ્ત થયેલ ધન (હોવા)માં ધનિકોને થતા ક્લેશનું વર્ણન કરે છે— **'पश्यामि इति।'**

पश्यामि धनिनां क्लेशं लुब्धानामजितात्मनाम्।
भयादलब्धनिद्राणां सर्वतोऽभिविशङ्किनाम्॥ ३१
॥ ३१ ॥

અજિતેન્દ્રિય, લોભી અને (ધન હરાઈ જવાના) ભયથી જેમને નિદ્રા (પણ) નથી પ્રાપ્ત થતી તેવા તેમ જ સર્વ તરફ શંકા કરનારા ધનિકોનો ક્લેશ હું જોઈ રહ્યો છું.॥ ૩૧ ॥ ૩૧ ॥

भयं प्रपञ्चयति—**राजत इति**।

ભયનું વર્ણન કરે છે— '**राजतः इति।**'

राजतश्चोरतः शत्रोः स्वजनात्पशुपक्षितः।
अर्थिभ्यः कालतः स्वस्मान्नित्यं प्राणार्थवद्भयम्॥ ३२

પ્રાણવાન અને ધનવાન જનોને હંમેશા રાજાથી, ચોરથી, શત્રુથી, સ્વજનથી, પશુ-પક્ષીથી, યાચકોથી, કાળથી અને પોતાનાથી ભય રહ્યા કરે છે.॥ ૩૨ ॥

स्वस्मान्मत्त एव कथंचित्त्यागभोग-विस्मरणादिना नाशः स्यादिति प्राणवतामर्थवतां च भयं नित्यम्॥ ३२॥

'**स्वस्मात्**' મારાથી કોઈ રીતે દાનમાં ત્યાગ થવાથી, (વધારે) ભોગવાઈ જવાથી કે ભૂલી જવા વગેરેથી (ધન કે પ્રાણનો) નાશ થઈ જશે, એમ પ્રાણવાન અને ધનવાન જનોને હંમેશા ભય હોય છે.॥ ૩૨ ॥

अतोऽनर्थहेतुत्वात्प्राणेऽर्थे च स्पृहा न कार्येत्याह—**शोकेति**।

આથી અનર્થના કારણરૂપ હોવાથી પ્રાણ અને ધન માટેની સ્પૃહા ન કરવી જોઈએ, એમ કહે છે— '**शोक इति।**'

शोकमोहभयक्रोधरागक्लैब्यश्रमादयः।
यन्मूलाः स्युर्नृणां जह्यात् स्पृहां प्राणार्थयोर्बुधः॥ ३३
॥ ३३ ॥

જે પ્રાણ અને ધનને કારણે મનુષ્યોને શોક, મોહ, ભય, ક્રોધ, રાગ, કાયરતા અને શ્રમ વગેરે થાય છે, તે (અનર્થના કારણરૂપ) પ્રાણ અને ધનની સ્પૃહા બુદ્ધિમાન મનુષ્યે ત્યજવી જોઈએ.॥ ૩૩ ॥ ૩૩ ॥

नन्वेवमनर्थाननुभवन्तोऽपि न केचिद्विरज्यन्ते, न च यथालाभेन तुष्यन्ति, त्वं तु कथं वैराग्यादिकं प्राप्तोऽसि तत्राह—**मधुकारेति**।

શંકા કરવામાં આવી છે કે આમ અનર્થ અનુભવતા છતાં કેટલાક વૈરાગ્યને પામતા નથી કે જેટલું પ્રાપ્ત થાય તેટલાથી સંતોષ પણ પામતા નથી, તો તમે વૈરાગ્ય વગેરેને કેવી રીતે પ્રાપ્ત થયા? તે માટે ઉત્તર આપે છે— '**मधुकार इति।**'

मधुकारमहासर्पौ लोकेऽस्मिन्नो गुरूत्तमौ।
वैराग्यं परितोषं च प्राप्ता यच्छिक्षया वयम्॥ ३४

આ લોકમાં મધમાખી અને અજગર એ બે અમારા શ્રેષ્ઠ ગુરુઓ છે, કે જે બંનેના શિક્ષણથી અમે વૈરાગ્ય તથા સંતોષ પામ્યા છીએ.॥ ૩૪ ॥

मधुमक्षिकाऽजगरौ। ययोः शिक्षया वृत्त-पर्यालोचनया॥ ३४॥

મધમાખી અને અજગર, જે બંનેની '**शिक्षया**' જીવનચર્યાની સમીક્ષા દ્વારા શીખવાથી॥ ૩૪॥

मधुकाराच्छिक्षितमाह—**विराग इति**।

મધમાખી પાસેથી પોતે જે શીખ્યા તે વર્ણવે છે— '**विरागः इति**।'

विरागः सर्वकामेभ्यः शिक्षितो मे मधुव्रतात्।
कृच्छ्राप्तं मधुवद् वित्तं हत्वाप्यन्यो हरेत्पतिम्॥ ३५

મધમાખીએ મહામહેનતે મેળવેલા મધને જેમ બીજું જ કોઈ લઈ જાય છે, તેમ મહાકષ્ટથી પ્રાપ્ત કરેલા (ધનરાશિના) માલિકને મારી નાખીને બીજું કોઈ ધન હરી લે છે. આથી મધમાખી પાસેથી એ સર્વ વિષયભોગોથી વિરક્ત થવાનું શીખી લીધું છે.॥ ૩૫॥

वित्तपतिं हत्वाऽन्यो वित्तं हरेदित्येवम् ॥ ३५॥

ધનના માલિકને મારી નાખીને બીજું કોઈ ધન હરી લે છે એ જ રીતે॥ ૩૫॥

अजगराच्छिक्षितमाह—**अनीह इति**।

અજગર પાસેથી પોતે જે શીખ્યા તે કહે છે— '**अनीहः इति**।'

अनीहः परितुष्टात्मा यदृच्छोपनतादहम्।
नो चेच्छये बह्वहानि महाहिरिव सत्त्ववान्॥ ३६

અજગરની જેમ હું પણ (પેટ ભરવાનો પ્રયત્ન કરવાની) ચેષ્ટારહિત, દૈવેચ્છાથી જે કાંઈ મળી જાય તેનાથી પરિતૃપ્ત મનવાળો અને જો કાંઈ ન મળે ત્યારે ધૈર્ય ધારણ કરનારો થઈ ઘણા દિવસો સુધી પડ્યો રહું છું.॥ ૩૬॥

सत्त्ववान् धैर्यवान्॥ ३६॥

'**सत्त्ववान्**' ધૈર્યવાન॥ ૩૬॥

पीनत्वे हेतुं वदन् यदृच्छया प्राप्तात्परितोषं प्रपञ्चयति—**क्वचिदल्पमिति** षड्भिः।

પુષ્ટ હોવાનું કારણ કહેતાં, દૈવેચ્છાથી પ્રાપ્ત થયેલા (અન્ન)થી થતા સંતોષને વિસ્તારપૂર્વક છ શ્લોકો વડે સમજાવે છે— '**क्वचित् अल्पम्** इति।'

क्वचिदल्पं क्वचिद् भूरि भुञ्जेऽन्नं स्वाद्वस्वादु वा।
क्वचिद् भूरिगुणोपेतं गुणहीनमुत क्वचित्॥
॥ ३७॥ ३७॥

કોઈ વાર થોડું તો કોઈ વાર ઘણું, સ્વાદિષ્ટ કે બેસ્વાદ, કોઈ વાર ઘણા ગુણયુક્ત તો કોઈ વાર ગુણહીન અન્ન હું જમું છું.॥ ૩૭॥ ૩૭॥

श्रद्धयोपाहृतं क्वापि कदाचिन्मानवर्जितम्।
भुञ्जे भुक्त्वाथ कस्मिंश्चिद् दिवा नक्तं यदृच्छया॥
॥ ३८॥ ३८॥

દૈવેચ્છાથી શ્રદ્ધાપૂર્વક લવાયેલું અન્ન ખાઈને તો ક્યારેક માન વગર અપાયેલું અન્ન જમું છું. કોઈક સ્થળે દિવસે જમું છું તો કોઈક સ્થળે રાત્રે જમું છું.॥ ૩૮॥ ૩૮॥

क्षौमं दुकूलमजिनं चीरं वल्कलमेव वा।
वसेऽन्यदपि सम्प्राप्तं दिष्टभुक् तुष्टधीरहम्॥ ३९

પ્રારબ્ધ કર્મનાં ફળ ભોગવનાર હું રેશમી, સુતરાઉ, મૃગચર્મ, ચીંથરું, વલ્કલ કે બીજું જે મળે તે પહેરી લઉં છું અને સંતુષ્ટ બુદ્ધિવાળો રહું છું.॥ ૩૯॥

चीरं जीर्णवस्त्रखण्डम्। वसे परिदधे। दिष्टभुक् प्रारब्धकर्मफलभोगी॥ ३९॥

'चीरम्' જીર્ણ વસ્ત્રનો કકડો કે ચીંથરું **'वसे'** પરિધાન કરું છું, **'दिष्टभुक्'** પ્રારબ્ધ કર્મનાં ફળ ભોગવનાર॥ ૩૯॥

क्वचिच्छये धरोपस्थे तृणपर्णाश्मभस्मसु।
क्वचित् प्रासादपर्यङ्के कशिपौ वा परेच्छया॥ ४०

કોઈ વખત હું ધરતીના ખોળામાં કે ઘાસ, પાંદડાં, પથ્થર કે રાખમાં, તો કોઈ વખત બીજાની ઈચ્છાથી મહેલમાં પલંગ ઉપર મશરૂની તળાઈ પર પોઢું છું.॥ ૪૦॥

प्रासादमध्ये पर्यङ्के। तत्रापि कशिपौ तूलिकायाम्॥ ४०॥

મહેલની અંદર પલંગ ઉપર, તેમાં પણ **'कशिपौ'** મશરૂની તળાઈ પર॥ ૪૦॥

क्वचित् स्नातोऽनुलिप्ताङ्गः सुवासाः स्रग्व्यलंकृतः।
रथेभाश्वैश्चरे क्वापि दिग्वासा ग्रहवद् विभो॥
॥ ४१ ॥

હે વિભુ પ્રહ્‌લાદ, કોઈ વખત સ્નાન કરી, શરીરે (ચંદનનો) લેપ લગાવી, સુંદર વસ્ત્રો પહેરી, પુષ્પમાળાઓથી સુશોભિત થઈ હું રથ, હાથી કે ઘોડા ઉપર ફરું છું, તો કોઈ વખત પિશાચની જેમ દિગમ્બર (થઈને) વિચરું છું.॥ ૪૧॥

चरे विचरामि। क्वचिद्ग्रहवद्दिगम्बरो विचरामि॥ ४१॥

'चरे' વિચરું છું. કોઈ વખત પિશાચની જેમ દિગમ્બર વિચરું છું.॥ ૪૧॥

न च मानापमानकर्तृषु मम वैषम्य-मित्याह—**नाहमिति**।

વળી, માન-અપમાન કરનારાઓ પ્રત્યે મારો ભાવ સમાન છે— **'न-अहम् इति।'**

नाहं निन्दे न च स्तौमि स्वभावविषमं जनम्।
एतेषां श्रेय आशासे उतैकात्म्यं महात्मनि॥ ४२

(સત્ત્વાદિ ગુણોને કારણે) અસમાન સ્વભાવવાળા (સર્વ) જનસમુદાયની હું નિંદા કે સ્તુતિ કરતો નથી, પરંતુ એ સર્વનું પરમાત્મા વિષ્ણુમાં ઐકાત્મ્ય (એકચિત્તત્વ અથવા મોક્ષરૂપ) કલ્યાણ ઈચ્છું છું.॥ ૪૨॥

नाहं निन्दामि न च स्तौमि। महात्मनि विष्णौ॥ ४२॥

નથી હું નિંદા કરતો કે નથી કોઈની સ્તુતિ કરતો– **'महात्मनि'** પરમાત્મા વિષ્ણુમાં॥ ૪૨॥

एवंभूतत्वेन स्थितावुपायमाह—**विकल्पमिति** द्वाभ्याम्।

આવી પરિસ્થિતિ હોવાથી બીજા મનુષ્યની તેમાં સ્થિતિ થાય તે માટે ઉપાય બે શ્લોકોથી કહે છે— **'विकल्पम् इति।'**

विकल्पं जुहुयाच्चित्तौ तां मनस्यर्थविभ्रमे।
मनो वैकारिके हुत्वा तन्मायायां जुहोत्यनु॥ ४३

(જાતિ, રૂપ વગેરે) વિકલ્પનો ભેદ ગ્રહણ કરનારી મનોવૃત્તિમાં હવન કરવો. તે મનોવૃત્તિનો પદાર્થરૂપ વિવિધ ભ્રમવાળા મનમાં હવન કરવો. મનનો સાત્ત્વિક અહંકારમાં હવન કર્યા પછી તે અહંકારનો માયામાં હવન કરવો.॥૪૩॥

चित्तौ भेदग्राहकमनोवृत्तौ। अर्थरूपो विभ्रमो यस्मिन्मनसि तन्मनो वैकारिकेऽहंकारे। तमहंकारमन्वनन्तरं महत्तत्त्वद्वारेणेत्यर्थः॥ ४३॥

'चित्तौ' ભેદ ગ્રહણ કરનારી મનોવૃત્તિમાં– પદાર્થરૂપ વિવિધ ભ્રમ છે જે મનમાં તે મનનો સાત્ત્વિક અહંકારમાં, તે અહંકારનો **'अनु'** ત્યાર પછી મહત્તત્ત્વ દ્વારા (માયામાં લય કરવો), એમ અર્થ છે.॥૪૩॥

आत्मानुभूतौ तां मायां जुहुयात् सत्यदृङ्मुनिः।
ततो निरीहो विरमेत् स्वानुभूत्याऽऽत्मनि स्थितः॥
॥ ४४॥

સત્યનું દર્શન કરનાર મુનિ તે માયાનો આત્માનુભૂતિમાં હોમ કરે અને પછી નિષ્ક્રિય થઈ આત્મસાક્ષાત્કાર દ્વારા આત્મસ્વરૂપમાં સ્થિત થઈ ઉપરત થઈ જાય.॥૪૪॥

सत्यमेव पश्यतीति तथा॥ ४४॥

સત્યનું જ દર્શન કરે છે તેવો મુનિ॥૪૪॥

स्वात्मवृत्तं मयेत्थं ते सुगुप्तमपि वर्णितम्।
व्यपेतं लोकशास्त्राभ्यां भवान् हि भगवत्परः॥ ४५

લોક અને શાસ્ત્ર(ની મર્યાદા)થી રહિત (પર) અને અત્યંત ગુપ્ત હોવા છતાં મારું પોતાનું આત્મવૃત્તાન્ત મેં તમને આ પ્રમાણે વર્ણવ્યું, કારણ કે આપ ભગવાનના પરમ ભક્ત છો॥૪૫॥

मन्ददृष्ट्या लोकशास्त्राभ्यां व्यपेतं न तु तत्त्वदृष्ट्या। यतो भवान्भगवत्परः॥ ४५॥

મંદદષ્ટિથી વિચારતાં આ વૃત્તાન્ત લોક અને શાસ્ત્રથી રહિત (પર) છે, પણ તત્ત્વદષ્ટિથી નહીં; આપ ભગવત્પરાયણ છો તેથી (વર્ણવ્યું).॥૪૫॥

नारद उवाच

धर्मं पारमहंस्यं वै मुनेः श्रुत्वाऽसुरेश्वरः।
पूजयित्वा ततः प्रीत आमन्त्र्य प्रययौ गृहम्॥ ४६
॥ ४६॥

નારદજી બોલ્યા – (દત્તાત્રેય) મુનિ પાસેથી પરમહંસોનો ધર્મ સાંભળીને દૈત્યરાજ પ્રહ્‌લાદજી તેમનું પૂજન કરી, તેમની આજ્ઞા લઈ, પ્રસન્ન થઈ ઘેર ગયા.॥૪૬॥૪૬॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवादे यतिधर्मे त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां
भावार्थदीपिकायां टीकायां त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

❋❋❋❋❋

अथ चतुर्दशोऽध्यायः
ગૃહસ્થનો સદાચાર

चतुर्दशे गृहस्थस्य परमो धर्म ईर्यते।
देशकालादिभेदेन पुनः श्रेयोविशेषकृत्॥ १

ચૌદમા અધ્યાયમાં દેશ અને કાળ વગેરેના ભેદપૂર્વક ગૃહસ્થનો વિશેષ કલ્યાણકારી મુખ્ય ધર્મ કહેવાય છે.॥ १ ॥

गृहस्थमुल्लङ्घ्य मोक्षं प्रत्यन्तरङ्गत्वेन प्रथमं वनस्थयतिधर्मेष्वभिहितेषु, तर्हि गृहस्थस्य मोक्षो न स्यादिति शङ्कितचित्तः पृच्छति—**गृहस्थ इति**।

ગૃહસ્થના ધર્મોનું નિરૂપણ છોડી દઈને, મોક્ષ માટેના આવશ્યક ભાગરૂપે પ્રથમ જ્યારે વાનપ્રસ્થ અને સંન્યાસીના ધર્મો કહેવામાં આવ્યા, ત્યારે ગૃહસ્થનો મોક્ષ ન થાય! એવા શંકાયુક્ત મનવાળા યુધિષ્ઠિર પૂછે છે— '**गृहस्थः इति।**'

युधिष्ठिर उवाच

गृहस्थ एतां पदवीं विधिना येन चाञ्जसा।
याति देवऋषे ब्रूहि मादृशो गृहमूढधीः॥ १
॥ १ ॥

યુધિષ્ઠિર બોલ્યા – હે દેવર્ષિ, ઘરમાં આસક્ત બુદ્ધિવાળો મારા જેવો ગૃહસ્થ આ મોક્ષપદને જે વિધિથી અનાયાસે પ્રાપ્ત કરે તે (આપ મને) કહો.॥ १ ॥ १ ॥

तस्य मोक्षधर्मानाह—**गृहेष्वित्यादि** यावदध्यायसमाप्ति।

તે ગૃહસ્થના મોક્ષ પ્રાપ્ત કરવાના ધર્મો અધ્યાય સમાપ્ત થાય ત્યાં સુધી વર્ણવે છે— '**गृहेषु**' વગેરે

नारद उवाच

गृहेष्ववस्थितो राजन्क्रियाः कुर्वन्गृहोचिताः।
वासुदेवार्पणं साक्षादुपासीत महामुनीन्॥ २

નારદજી કહે છે – હે રાજા યુધિષ્ઠિર, ઘરમાં રહેલા ગૃહસ્થે (ગૃહસ્થધર્મ અનુસાર) ગૃહોચિત (સ્નાન, તર્પણ, સન્ધ્યોપાસના, પંચમહાયજ્ઞાદિરૂપ) ક્રિયાઓ (ફળ પ્રાપ્ત કરવાના સંકલ્પ વિના) સાક્ષાત્ ભગવાન વાસુદેવને જે રીતે અર્પણ થાય તે રીતે કરતાં મોટા મોટા મુનિજનોની ઉપાસના (સેવા) કરવી જોઈએ.॥ २ ॥

साक्षाद्वासुदेवार्पणं यथा भवत्येवं कुर्वन्नुपासीत॥ २॥

સાક્ષાત્ વાસુદેવ ભગવાનને જે રીતે અર્પણ થાય તે રીતે કરતાં, (મુનિજનોની) સેવા કરવી જોઈએ.॥ २ ॥ (મનુષ્ય, ભૂત, પિતૃ, ઋષિ, દેવ– એમ પંચમહાયજ્ઞો છે.)

शृण्वन्भगवतोऽभीक्ष्णमवतारकथामृतम्।
श्रद्दधानो यथाकालमुपशान्तजनावृतः॥ ३
॥ ३ ॥

(આવશ્યક કર્મોનું અનુષ્ઠાન કર્યા પછી શેષ રહેલા) યથાયોગ્ય સમયે (શાન્ત) ભગવદ્‌ભક્તોથી વીંટળાયેલો શ્રદ્ધાવાન મનુષ્ય ભગવાનના અવતારોના કથારૂપી અમૃતનું વારંવાર શ્રવણ કરતો, (આસક્તિનો ત્યાગ કરે.)॥ ૩ ॥

सत्सङ्गाच्छनकैः सङ्गमात्मजायात्मजादिषु।
विमुच्येन्मुच्यमानेषु स्वयं स्वप्नवदुत्थितः ॥ ४

જેમ (સ્વપ્નમાંથી) જાગેલો મનુષ્ય (સ્વપ્નમાં જોયેલા) પુત્રાદિમાં આસક્તિ ત્યજે છે તેમ, સત્સંગથી ધીમે ધીમે જાતે જ છૂટાં પડતાં શરીર, પત્ની, પુત્રાદિમાં મનુષ્ય આસક્તિનો ત્યાગ કરે. ॥ ४ ॥

स्वयमेव मुच्यमानेषु वियुज्यमानेषु। यथा स्वप्नादुत्थितः पुमान् स्वप्नदृष्टेषु पुत्रादिषु सङ्गं विमुञ्चति तद्वत् ॥ ४ ॥

જાતે જ '**मुच्यमानेषु**' છૂટાં પડતાં (પુત્રાદિ)માં– જેમ સ્વપ્નમાંથી જાગેલો મનુષ્ય સ્વપ્નમાં જોયેલા પુત્રાદિમાં આસક્તિ છોડે તેમ ॥ ४ ॥

नन्वेवंभूतस्य दुर्जनैरभिभूयमानस्य कुतो गृहोचिताः क्रियाः स्युस्तत्राह—**यावदर्थमिति**।

પ્રશ્ન કરવામાં આવ્યો છે કે દુર્જનો દ્વારા ત્રાસ પામતા આવા ગૃહસ્થની ગૃહોચિત ક્રિયાઓ કેવી રીતે થાય? તે માટે ઉત્તર આપે છે— '**यावत्-अर्थम्-इति।**'

यावदर्थमुपासीनो देहे गेहे च पण्डितः।
विरक्तो रक्तवत् तत्र नृलोके नरतां न्यसेत् ॥ ५

દેહ અને ગેહના વિષયમાં પ્રયોજન જેટલા જ (ભોગ્ય) પદાર્થો સ્વીકારતો બુદ્ધિમાન મનુષ્ય (મનથી) અનાસક્ત (પરંતુ બહારથી) તેમાં આસક્ત હોય તેમ ત્યાં મનુષ્યલોકમાં સામાન્ય મનુષ્ય જેવો વ્યવહાર કરે. ॥ ५ ॥

अन्तस्त्वनासक्तो बहिस्त्वासक्त इव नृलोके जनमध्ये नरतां मनुष्यतां न्यसेत्। पुरुषकारमाविष्कुर्यादित्यर्थः ॥ ५ ॥

અંદરથી અનાસક્ત, પરંતુ બહારથી તેમાં (દેહ-ગેહમાં) આસક્ત હોય તેમ '**नृलोके**' મનુષ્યલોકમાં '**नरताम्**' મનુષ્યત્વ '**न्यसेत्**' સ્થાપે, પુરુષાર્થ પ્રકટ કરે, એમ અર્થ છે. ॥ ५ ॥

आग्रहं तु क्वापि न कुर्यादित्याह— **ज्ञातय इति**।

પરંતુ ક્યારેય પણ આગ્રહ ન કરવો જોઈએ, એમ કહે છે— '**ज्ञातयः इति।**'

ज्ञातयः पितरौ पुत्रा भ्रातरः सुहृदोऽपरे।
यद् वदन्ति यदिच्छन्ति चानुमोदेत निर्ममः ॥ ६
॥ ६ ॥

જ્ઞાતિજનો, માતા-પિતા, પુત્રો, ભાઈઓ, મિત્રો અને અન્ય જનો જે કહે અને જે ઇચ્છે, તેનું અનાસક્ત થઈ અનુમોદન કરે. ॥ ६ ॥ ६ ॥

नन्वेवं सर्वानुमोदने वित्तक्षयप्रसङ्गात्कुतो जीवनं कुतो वा कर्मकरणं तत्राह—

શંકા કરવામાં આવી છે કે આમ સર્વને અનુમોદન આપવામાં ધન વપરાઈ જવાની સંભાવનાને કારણે જીવનનિર્વાહ કેવી રીતે થાય? અથવા કર્મ કરવાનું સાધન કેવી રીતે પ્રાપ્ત થાય? તે માટે ઉત્તર આપે છે–

दिव्यं भौमं चान्तरिक्षं वित्तमच्युतनिर्मितम्।
तत् सर्वमुपभुञ्जान एतत् कुर्यात् स्वतो बुधः ॥ ७

આકાશમાંથી થતી વૃષ્ટિ વગેરેથી ઉત્પન્ન થયેલ (ધાન્યાદિ), ભૂમિમાંથી પ્રાપ્ત થયેલ (સુવર્ણાદિ ખજાનો) તથા અકસ્માત જ મળેલું ધન, એમ પોતાની જાતે જ જે અચ્યુત ભગવાન દ્વારા (પ્રારબ્ધથી) નિર્માણ થયેલ છે, તે સર્વ સ્વીકારતો બુદ્ધિમાન મનુષ્ય આ (પૂર્વોક્ત કર્મો) કરે.।।૭।।

दिव्यं वृष्ट्यादिभिर्जातं धान्यादि। भौमं निधानादि। आन्तरिक्षमकस्मादेव प्राप्तम्। एवं स्वत एवाच्युतनिर्मितदैवलब्धं यत् एतत्पूर्वोक्तं कर्मादि॥ ७॥

'**दिव्यम्**' આકાશમાંથી થતી વૃષ્ટિ વગેરેથી ઉત્પન્ન થયેલ ધાન્યાદિ, '**भौमम्**' ભૂમિમાંથી પ્રાપ્ત થયેલ ખજાનો વગેરે '**आन्तरिक्षम्**' અકસ્માત જ પ્રાપ્ત થયેલ ધનને આમ '**स्वतः**' પોતાની જાતે જ '**अच्युतनिर्मितम्**' પોતાના પ્રારબ્ધ અનુસાર જે પ્રાપ્ત થયું છે, તે સર્વ સ્વીકારતો બુદ્ધિમાન પુરુષ '**एतत्**' આ પૂર્વોક્ત (નિત્ય-નૈમિત્તિકાદિ) કર્મો કરે.॥ ૭॥

दैवाद्भूरिलाभे जातेऽपि तत्राभिमानो न कार्य इत्याह—**यावदिति**।

ભાગ્યથી અધિક લાભ થાય ત્યારે પણ તે માટે અભિમાન ન કરવું જોઈએ, એમ કહે છે— '**यावत् इति**।'

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥ ८

જેટલાથી પેટ ભરાય તેટલાં જ (અન્નાદિ) શરીરધારીઓનાં પોતાનાં છે, તેનાથી અધિક (ધાન્યાદિ)ને જે પોતાના માની લે છે, તે ચોર (છે અને તે) દંડને પાત્ર છે.॥ ૮॥

भ्रियेत पूर्येत॥ ८॥

'**भ्रियेत**' ભરાય॥ ૮॥

अत एव यं कमपि स्वगृहं क्षेत्रं वा प्रविश्य भुञ्जानं न निवारयेदित्याह—**मृगेति**।

આથી જ જે કોઈ પણ પોતાના ઘરમાં કે ખેતરમાં આવીને ખાતો હોય તેને રોકવો ન જોઈએ, એમ કહે છે— '**मृग इति**।'

मृगोष्ट्रखरमर्काखुसरीसृप्खगमक्षिकाः ।
आत्मनः पुत्रवत् पश्येत्तैरेषामन्तरं कियत्॥ ९

મૃગ, ઊંટ, ગધેડો, વાંદરો, ઉંદર, સાપ, પક્ષી, માખી (વગેરે)ને ગૃહસ્થે પોતાનાં પુત્ર સમાન ગણવાં જોઈએ. તે પુત્રોમાં અને આ પશુઓમાં કેટલું અંતર છે? (અંતર નથી, સમાન જ છે.)॥ ૯॥

मर्को मर्कटः। सरीसृप् सर्पः। मक्षिकाश्च। तैः पुत्रैरेषां मृगादीनां कियदन्तरम्॥ ९॥

त्रिवर्गं नातिकृच्छ्रेण भजेत गृहमेध्यपि।
यथादेशं यथाकालं यावद्दैवोपपादितम्॥ १०

अतिकृच्छ्रेणापाद्य न भजेत्किंतु यावद्दैव-प्रापितं तावदेव भजेत्॥ १०॥

आश्वाघान्तेऽवसायिभ्यः कामान्संविभजेद् यथा।
अप्येकामात्मनो दारां नृणां स्वत्वग्रहो यतः॥ ११

श्वानश्च अघाश्च पतिताः अन्तेवसायिन-श्चाण्डालादयस्तानभिव्याप्य यथार्हं कामान्सं-विभजेत्स्वभोज्याद्विभज्य दद्यात्।

यद्यप्येकैवात्मनो दारा भार्या तस्यामतिथि-शुश्रूषणे नियुक्तायां स्वस्य शुश्रूषा हीयेत। यस्यां च नृणां स्वत्वग्रहो ममैवेयमित्या-ग्रहस्तामेकामपि संविभजेत्। अतिथिशुश्रूषणे नियुञ्जीतेत्यर्थः। न त्वन्यथा मन्तव्यम्। यथार्हं विभजेदित्युक्तत्वात्॥ ११॥

'**मर्कः**' વાંદરો, '**सरीसृप्**' પેટથી ચાલનારો સર્પ અને માખીઓ પણ. તે પુત્રોથી આ મૃગાદિ પશુઓ કેટલાં પારકાં છે? (પારકાં નથી.)॥ ૯॥

ગૃહસ્થે પણ અતિ કષ્ટથી (ધર્મ, અર્થ, કામરૂપ) ત્રિવર્ગ સેવવો જોઈએ નહીં. (પરંતુ) દેશ અને કાળ અનુસાર જેટલું પ્રારબ્ધથી પ્રાપ્ત થાય (તેટલું જ ભોગવવું જોઈએ).॥ ૧૦॥

અતિ કષ્ટથી પ્રાપ્ત કરીને (ત્રિવર્ગ) સેવવો જોઈએ નહીં, પરંતુ જેટલું ભાગ્યથી પ્રાપ્ત થયું હોય તેટલું જ ભોગવવું જોઈએ.॥ ૧૦॥

કૂતરાં, પાપીઓ અને ચાંડાળ પર્યન્ત સર્વ પ્રાણીઓને યથોચિત (અન્નાદિ) ભોગોની યોગ્ય વહેંચણી કરવી જોઈએ. જેના માટે પુરુષોને પોતાનાપણાનો આગ્રહ હોય છે, તે એકમાત્ર પોતાની ભાર્યાને પણ (અતિથિસેવામાં નિયુક્ત કરવી જોઈએ).॥ ૧૧॥

કૂતરાં '**अघाः च**' તથા પાપીઓ '**अन्तेवसायिनः**' નગર કે ગામને છેડે રહેનારા ચાંડાળ વગેરેને સમાવીને તેમના સુધીનાં સર્વ પ્રાણીઓને યથોચિત ભોગોની વહેંચણી કરવી જોઈએ. પોતાના ભોજનમાંથી ભાગ કાઢીને આપવો જોઈએ.

જો કે પોતાની '**दारा**' ભાર્યા, માત્ર એક જ હોવા છતાં તે જ્યારે અતિથિસેવામાં નિયુક્ત હોય ત્યારે પોતાની સેવા છૂટી જાય. જેના વિષે પુરુષોને '**स्वत्वग्रहः**' આ મારી જ છે એવો પોતાનાપણાનો આગ્રહ હોય છે તે માત્ર પોતાની સ્ત્રીને પણ '**संविभजेत्**' અતિથિસેવામાં જોડે, એમ અર્થ છે. બીજો અર્થ કરવો નહીં, કારણ કે યથોચિત ભાગ કરે, એમ કહેવામાં આવ્યું છે.॥ ૧૧॥

एवं चेत्तेनेश्वरो वशीकृतः स्यादित्याह—**जह्यादिति।**

जो આમ થાય (પત્નીમાંથી આસક્તિ છૂટી જાય), તો તે ગૃહસ્થ દ્વારા ઈશ્વર વશીભૂત થઈ જાય, એમ કહે છે— **'जह्यात् इति।'**

जह्याद् यदर्थे स्वप्राणान्हन्याद् वा पितरं गुरुम्।
तस्यां स्वत्वं स्त्रियां जह्याद् यस्तेन ह्यजितो जितः॥ १२

જે પત્નીને કારણે પુરુષ પોતાના પ્રાણ ત્યાગે (છે) અને માતા-પિતા કે ગુરુને (પણ) મારી નાખે (છે), તે સ્ત્રી પ્રત્યેનું મમત્વ જે પુરુષ છોડે તેનાથી તો અજિત પણ જિતાય છે.॥ ૧૨ ॥

यदर्थे यन्निमित्तम्। अन्यैरजितोऽपीश्वरस्तेन जित एव॥ १२॥

'यत्-अर्थे' જેના કારણે– બીજાઓ દ્વારા ન જિતાય તે અજિત એવા ઈશ્વર પણ તેના દ્વારા જિતાય છે. (અર્થાત્ તેણે અજિતને પણ જીતી લીધા છે.)॥ ૧૨ ॥

ननु कथमेवं तस्यां स्वत्वाभिमानो हातुं शक्यस्तत्त्वविचारेणेत्याह—

કોઈ પૂછે કે સ્ત્રી પ્રત્યેનું મમત્વરૂપ અભિમાન છોડવા માટે આમ કેવી રીતે શક્ય બને? તે માટે ઉત્તર આપે છે કે તત્ત્વનો વિચાર કરવાથી તે શક્ય બને છે–

कृमिविड्भस्मनिष्ठान्तं क्वेदं तुच्छं कलेवरम्।
क्व तदीयरतिर्भार्या क्वायमात्मा नभश्छदिः॥ १३

અંતમાં કીડા, વિષ્ઠા કે ભસ્મમાં પરિણામ પામનારું ક્યાં આ તુચ્છ શરીર? તે જ શરીર માટે જેમાં પ્રીતિ કરાય છે તે સ્ત્રી ક્યાં અને ક્યાં આકાશને (પણ) ઢાંકી દેનારો આ આત્મા?॥ ૧૩ ॥

कृमिविड्भस्मसु निष्ठा पर्यवसानमन्ते यस्य। तदीया देहार्था रतिर्यस्यां सा स्वमहिम्ना नभोऽपि च्छादयतीति तथा॥ १३॥

કીડા, વિષ્ઠા કે ભસ્મમાં **'निष्ठा'** પર્યવસાન, પરિણામ અંતે છે જે શરીરનું– **'तदीया'** તે શરીર માટે જેમાં પ્રીતિ કરાય છે તે સ્ત્રી– પોતાના મહિમાથી આકાશને ઢાંકી દે તેવો (આત્મા)॥ ૧૩ ॥ (આ વિષમ અલંકાર છે.)

सिद्धैर्यज्ञावशिष्टार्थैः कल्पयेद् वृत्तिमात्मनः।
शेषे स्वत्वं त्यजन्प्राज्ञः पदवीं महतामियात्॥ १४

બુદ્ધિમાન મનુષ્ય દૈવયોગે પ્રાપ્ત થયેલા ધનથી તથા પંચયજ્ઞ કરતાં બાકી રહેલા અન્નાદિથી પોતાની આજીવિકા કરે. બાકીના ધન ઉપર મમત્વ ત્યજતો તે પરમહંસોની ગતિ પ્રાપ્ત કરે (છે).॥ ૧૪ ॥

किंच—सिद्धैर्दैवलब्धैर्यज्ञावशिष्टार्थैः पञ्च-यज्ञशेषैरन्नादिभिः। महतां निवृत्तानाम्॥ १४॥

વળી, '**सिद्धैः**' દૈવયોગે પ્રાપ્ત થયેલા (ધન)થી, '**यज्ञ-अवशिष्ट-अर्थैः**' પંચયજ્ઞ કરતાં બાકી રહેલા અન્નાદિથી– '**महताम्**' મહાન પુરુષોની, સંસારથી નિવૃત્ત થયેલા પરમહંસોની॥ ૧૪॥

एतद्विवृण्वन्नाह—

એ જ વાતનું વિવરણ કરતાં કહે છે—

देवानृषीन् नृभूतानि पितृनात्मानमन्वहम्।
स्ववृत्त्यागतवित्तेन यजेत पुरुषं पृथक्॥ १५

દેવો, ઋષિઓ, મનુષ્યો, ભૂતો અને પિતૃઓ તથા પોતાના આત્માનું પોતાની આજીવિકાથી પ્રાપ્ત થયેલા ધન દ્વારા પ્રતિદિન (યજન કરતાં) તેણે એક અન્તર્યામીને જ જુદા જુદા રૂપે પૂજવા જોઈએ.॥ ૧૫॥

देवादीन्पञ्चयज्ञदेवताः आत्मानं च। एवं पृथक् पुरुषमन्तर्यामिणमेव यजेत॥ १५॥

દેવો વગેરે પંચયજ્ઞના દેવતાઓ તથા આત્માનું (યજન કરતાં)– એમ (એક) '**पुरुषम्**' અન્તર્યામીને જ જુદા જુદા રૂપે પૂજવા જોઈએ.॥ ૧૫॥

यर्ह्यात्मनोऽधिकाराद्याः सर्वाः स्युर्यज्ञसम्पदः।
वैतानिकेन विधिना अग्निहोत्रादिना यजेत्॥ १६

॥ १६॥

જો પોતાની પાસે યજ્ઞ માટે (આવશ્યક) અધિકારાદિ સર્વ સંપત્તિઓ હોય, તો (શ્રૌત, કલ્પસૂત્રાદિરૂપ ગ્રંથોમાં કહેવાયેલી) વૈદિક વિધિથી અગ્નિહોત્રાદિ (કર્મ) દ્વારા યજન કરવું.॥ ૧૬॥ ૧૬॥

न पुनरतिनिर्बन्धो यज्ञार्थं कार्य इत्याह—**न हीति**।

વળી, યજ્ઞ કરવા માટે અતિ આગ્રહ ન કરવો જોઈએ, એમ કહે છે— '**न हि-इति**।'

न ह्यग्निमुखतोऽयं वै भगवान्सर्वयज्ञभुक्।
इज्येत हविषा राजन्यथा विप्रमुखे हुतैः॥ १७

હે રાજા, સર્વ યજ્ઞોના ભોક્તા આ ભગવાન ખરેખર, વિપ્રના મુખમાં હોમેલા (અન્નાદિ) દ્વારા જેવા પૂજાય (છે) (તૃપ્ત થાય છે) તેવા અગ્નિરૂપ મુખમાં હવન કરવાથી નથી પૂજાતા.॥ ૧૭॥

विप्रमुखे हुतैरन्नादिभिर्यथा इज्येत पूज्येत न तथाग्निमुखतो हविषा इज्येत॥ १७॥

વિપ્રના મુખમાં હોમેલા અન્નાદિ દ્વારા (ભગવાન) જેવા '**इज्येत**' પૂજાય છે, તેવા અગ્નિરૂપ મુખમાં હવન કરવાથી નથી જ પૂજાતા.॥ ૧૭॥

तस्माद् ब्राह्मणदेवेषु मर्त्यादिषु यथार्हतः।
तैस्तैः कामैर्यजस्वैनं क्षेत्रज्ञं ब्राह्मणाननु॥ १८

માટે બ્રાહ્મણોમાં, પંચયજ્ઞ દેવતાઓમાં તથા મનુષ્યો વગેરેમાં (અન્તર્યામીરૂપે) રહેલા એ ક્ષેત્રજ્ઞનું તેમની જુદી જુદી કામનાઓ પૂર્ણ કરવા દ્વારા યોગ્યતા અનુસાર બ્રાહ્મણોના પૂજન પછી પૂજન કરો.॥ ૧૮॥

ब्राह्मणेषु च देवेषु पञ्चयज्ञदेवतासु च मर्त्यादिष्वन्येष्वपि नरेषु पश्वादिषु च। क्षेत्रज्ञमन्तर्यामिणम्। ब्राह्मणाननु मर्त्यादियजने ब्राह्मणयजनानन्तरमन्येषु यजस्व।

પાઠાન્તરે ब्राह्मणा आननं यस्य तम्॥ १८॥

कुर्यादापरपक्षीयं मासि प्रौष्ठपदे द्विजः।
श्राद्धं पित्रोर्यथावित्तं तद्बन्धूनां च वित्तवान्॥ १९

प्रौष्ठपदे भाद्रपदे॥ १९॥

सि.प्र.—प्रौष्ठपदे भाद्रपदे मासि अत्रामावास्या-पर्यन्तो मासो बोध्यः।

वंशीधरी—अन्यथा वित्तवानिति विशेषणाद्दरिद्रेण तु यथाकथञ्चित्पित्रोरेव तत्कार्यमित्यर्थः।

अयने विषुवे कुर्याद् व्यतीपाते दिनक्षये।
चन्द्रादित्योपरागे च द्वादशीश्रवणेषु च॥ २०

॥ २०॥

तृतीयायां शुक्लपक्षे नवम्यामथ कार्तिके।
चतसृष्वप्यष्टकासु हेमन्ते शिशिरे तथा॥ २१

બ્રાહ્મણોમાં તથા '**देवेषु**' પંચયજ્ઞના દેવોમાં તેમ જ '**मर्त्यादिषु**' બીજા મનુષ્યોમાં અને પશુ વગેરેમાં પણ રહેલા '**क्षेत्रज्ञम्**' અંતર્યામીનું (પૂજન કરો). '**ब्राह्मणान्-अनु**' મનુષ્યોના પૂજનમાં બ્રાહ્મણોના પૂજન પછી અન્ય સર્વનું પૂજન કરો.

પાઠાન્તરમાં, ('**ब्राह्मणाननु**' ને બદલે '**ब्राह्मणाननम्**' હોય તો) બ્રાહ્મણો જેનું મુખ છે તે ક્ષેત્રજ્ઞનું પૂજન કરો.॥ ૧૮॥

ધનવાન દ્વિજ (બ્રાહ્મણ, ક્ષત્રિય, વૈશ્ય) ભાદરવા માસના કૃષ્ણપક્ષમાં પોતાના ધન અનુસાર માતા-પિતાનું અને તેમના સંબંધીઓનું (મહાલય) શ્રાદ્ધ કરે.॥ ૧૯॥

'**प्रौष्ठपदे**' ભાદરવામાં॥ ૧૯॥

ભાદરવા મહિનામાં, અહીં અમાસ સુધીનો મહિનો સમજવો જોઈએ.

'ધનવાન' એ વિશેષણ દ્વારા દરિદ્ર મનુષ્ય પણ કોઈ પણ રીતે જેમ થાય તેમ માતાપિતા માટે (શ્રાદ્ધ) કરે, એમ અર્થ છે.

અયન (કર્ક સંક્રાન્તિ અને મકર સંક્રાન્તિ)માં, વિષુવ (મેષ સંક્રાન્તિ અને તુલા સંક્રાન્તિ)માં, વ્યતીપાતમાં, ક્ષયતિથિના દિવસે, ચન્દ્રગ્રહણ અને સૂર્યગ્રહણના સમયે, દ્વાદશીયુક્ત શ્રવણ નક્ષત્રોમાં,॥ ૨૦॥ ૨૦॥

વૈશાખ સુદ ત્રીજ (અક્ષયતૃતીયા)ના દિવસે, વળી, કારતક સુદ નોમ (અક્ષયનવમી)ના દિવસે, હેમંત અને શિશિર ઋતુ (માગશર, પોષ, મહા, ફાગણ)ની ચારેય અષ્ટકા (વદ આઠમ)ના દિવસે,॥ ૨૧॥

माघे च सितसप्तम्यां मघाराकासमागमे।
राकया चानुमत्या वा मासर्क्षाणि युतान्यपि॥ २२

મહાસુદ સાતમે, મહા મહિનાની મઘા નક્ષત્રયુક્ત પૂર્ણચંદ્રયુક્ત પૂર્ણિમાના દિવસે, અથવા જે નક્ષત્રો ઉપરથી મહિનાઓનાં નામ (ચિત્રા ઉપરથી ચૈત્ર, વિશાખા ઉપરથી વૈશાખ, જ્યેષ્ઠા ઉપરથી જેઠ) પડેલાં છે, તે નક્ષત્રયુક્ત તે મહિનાની પૂર્ણિમા અને અનુમતિ (ચતુર્દશીયુક્ત પૂર્ણિમા) હોય ત્યારે,॥ ૨૨ ॥

द्वादश्यामनुराधा स्याच्छ्रवणस्तिस्र उत्तराः।
तिसृष्वेकादशी वाऽऽसु जन्मर्क्षश्रोणयोगयुक्॥ २३

અનુરાધા, શ્રવણ, ઉત્તરાફાલ્ગુની, ઉત્તરાષાઢા અને ઉત્તરાભાદ્રપદા નક્ષત્રયુક્ત દ્વાદશીને દિવસે આ ત્રણ ઉત્તરા નક્ષત્રયુક્ત એકાદશીના દિવસે, જન્મનક્ષત્ર અને શ્રવણ નક્ષત્રના યોગથી યુક્ત દિવસ હોય, ત્યારે (શ્રાદ્ધ કરવું).॥ ૨૩॥

शुक्लपक्षे। अक्षय्यतृतीयायामित्यर्थः। हेमन्ते शिशिरे च मार्गशीर्षादिमासचतुष्टयेऽपि याश्चतस्रोऽष्टकास्तासु॥ २१॥

'**शुक्लपक्षे**' અક્ષયતૃતીયાના દિવસે, એમ અર્થ છે. '**हेमन्ते शिशिरे**' માગશર વગેરે ચારેય મહિનાઓની જે ચાર વદ અષ્ટમીઓ હોય તેમાં॥ ૨૧॥

संपूर्णचन्द्रा पौर्णमासी राका। न्यूनचन्द्रा सैवानुमतिः। तथा मासर्क्षाणि तत्तन्मासनाम-प्रवृत्तिनिमित्तानि नक्षत्राणि युतानि यदा स्युस्तदा। तदुक्तं त्रिकाण्ड्याम्—

'पुष्ययुक्ता पौर्णमासी पौषी मासे तु यत्र सा।
नाम्ना स पौषो माघाद्याश्चैवमेकादशापरे॥'
इति॥ २२॥

સંપૂર્ણ ચન્દ્રવાળી પૂર્ણિમા એટલે '**राका**', (ચતુર્દશીયુક્ત) અપૂર્ણ ચન્દ્રવાળી જે છે તે અનુમતિ તથા '**मास-ऋक्षाणि**' જ્યારે તે તે મહિનાઓનાં નામ પડવાના નિમિત્તરૂપ નક્ષત્રોથી યુક્ત તે મહિનાઓ હોય, ત્યારે (શ્રાદ્ધ કરવું). ત્રિકાંડીમાં તે કહેવાયું છે—

'ચંદ્ર પુષ્ય નક્ષત્રના તારાસમૂહમાં આવે તેવી પોષ મહિનાની પોષી પૂનમ હોય, ત્યારે એવો આખો મહિનો પોષ નામનો છે. મહા વગેરે બીજા અગિયાર મહિનાઓનાં નામ આ પ્રમાણે થયાં છે.' (અમરકોશ, ૧/૪/૪૨,૪૩)॥ ૨૨॥

अनुराधा श्रवण उत्तराफाल्गुनी उत्तराषाढा उत्तराभाद्रपदा वा द्वादश्यां यदा स्यात्। आसूत्तरास्वेकादशी वा यदा स्यात्तदा च। जन्मर्क्षश्रोणयोगयुक् जन्मनक्षत्रस्य श्रवणस्य

અનુરાધા, શ્રવણ, ઉત્તરાફાલ્ગુની, ઉત્તરાષાઢા કે ઉત્તરાભાદ્રપદા નક્ષત્ર જ્યારે બારશના દિવસે હોય અથવા આ ત્રણે ઉત્તરા નક્ષત્રોમાં એકાદશી હોય, ત્યારે પણ '**जन्मर्क्षश्रोणयोगयुक्**' જ્યારે જન્મનક્ષત્ર કે શ્રવણ નક્ષત્રના યોગથી યુક્ત

वा योगेन युक्तं दिनं यदा तदा। योगग्रहणं संबन्धबाहुल्यार्थम्॥ २३॥

દિવસ હોય, ત્યારે (શ્રાદ્ધ કે સત્કર્મ માટે શુભ સમય ગણાય.), મૂળ શ્લોકમાં **'योग'** શબ્દ સૂચવે છે કે શ્રવણ નક્ષત્ર અને અગિયારશ-બારશનો સંબંધ ઘણી વાર થાય છે.॥ ૨૩॥

द्वादश्यां श्रवणयोगकथनं पुण्यातिशय-सूचनाय।

દ્વાદશીમાં શ્રવણ નક્ષત્રના યોગનું કથન પુણ્યની અભિવૃદ્ધિ કરનાર (કલ્યાણકારી) સમયનું સૂચન કરવા માટે છે.

न केवलं श्राद्धस्यैवैते कालाः किंतु धर्ममात्रस्येत्याह—**त एत इति** द्वाभ्याम्।

આ દિવસો કેવળ શ્રાદ્ધના જ નથી, પરંતુ સર્વ ધર્મકાર્યો માટેના પણ છે, એમ બે શ્લોકો વડે કહે છે— **'ते एते'**

त एते श्रेयसः काला नृणां श्रेयोविवर्धनाः।
कुर्यात् सर्वात्मनैतेषु श्रेयोऽमोघं तदायुषः॥ २४

આ (ઉપર કહેલા) તે (સર્વ) સમયો મનુષ્યોના પુણ્યની અભિવૃદ્ધિ કરનારા કલ્યાણકારી સમયો છે. (માટે) એ સમયોમાં સંપૂર્ણ પ્રયત્નપૂર્વક શુભ કર્મ કરવાં જોઈએ. તે જ જીવનની (અમોઘ) સફળતા છે.॥ ૨૪॥

तदेवायुषः अमोघं साफल्यमित्यर्थः॥ २४॥

તે જ જીવનનું **'अमोघम्'** કદી નિષ્ફળ ન જનારું સાફલ્ય છે, એમ અર્થ છે.॥ ૨૪॥

एषु स्नानं जपो होमो व्रतं देवद्विजार्चनम्।
पितृदेवनृभूतेभ्यो यद् दत्तं तद्ध्यनश्वरम्॥ २५

॥ २५॥

આ (શુભ) યોગોમાં સ્નાન, જપ, હોમ, વ્રત, દેવપૂજન, બ્રાહ્મણપૂજન તથા પિતૃઓ, દેવો, મનુષ્યો અને પ્રાણીઓને જે આપવામાં આવ્યું હોય છે, તે ખરેખર, અક્ષય (ફળના સાધનરૂપ) બને છે.॥ ૨૫॥ ૨૫॥

संस्कारकालो जायाया अपत्यस्यात्मनस्तथा।
प्रेतसंस्था मृताहश्च कर्मण्यभ्युदये नृप॥ २६

હે નૃપ, પત્નીના (પુંસવનાદિ), સંતાનના (જાતકર્માદિ) તથા પોતાના (યજ્ઞદીક્ષાદિ) સંસ્કારના સમયે, મૃતની દહનક્રિયાના દિવસે તથા મૃતના સાંવત્સરિક શ્રાદ્ધના દિવસે, તથા બીજું પણ અભ્યુદય માટેનું કર્મ કરવાનો સમય હોય ત્યારે (પુણ્ય કર્મ) કરવું જોઈએ.॥ ૨૬॥

संस्कारकाल इति। जायायाः पुंसवनादि। अपत्यस्य जातकर्मादि। आत्मनो यज्ञदीक्षादि। प्रेतस्य संस्था दहनादि। मृताहश्च सांवत्सरिकं यदा। अन्यस्मिन्नप्यभ्युदयार्थे कर्मणि श्रेयः कुर्यादित्यनुषङ्गः॥ २६॥

'संस्कारकालः इति।' પત્નીનો પુંસવનાદિ, સંતાનનો જાતકર્માદિ, પોતાનો યજ્ઞદીક્ષાદિ, મૃત્યુ પામેલાનો **'संस्था'** દહનાદિ તથા **'मृतः अहः'** મૃતનો વાર્ષિક શ્રાદ્ધનો દિવસ હોય ત્યારે, બીજાં પણ અભ્યુદય માટેનાં કર્મમાં શ્રેય કરવું જોઈએ, એમ સંદર્ભ છે.॥ ૨૬॥

अथ देशान्प्रवक्ष्यामि धर्मादिश्रेयआवहान्।
स वै पुण्यतमो देशः सत्पात्रं यत्र लभ्यते॥ २७

बिम्बं भगवतो यत्र सर्वमेतच्चराचरम्।
यत्र ह ब्राह्मणकुलं तपोविद्यादयान्वितम्॥ २८

यत्र यत्र हरेरर्चा स देशः श्रेयसां पदम्।
यत्र गङ्गादयो नद्यः पुराणेषु च विश्रुताः॥ २९

यत्र यस्मिन्नेतच्चराचरमस्ति तस्य भगवतो बिम्बं रूपं सत्पात्रं यत्र लभ्यते स वै पुण्यतमो देशः॥ २७॥ २८॥ २९॥

सरांसि पुष्करादीनि क्षेत्राण्यर्हाश्रितान्युत।
कुरुक्षेत्रं गयशिरः प्रयागः पुलहाश्रमः॥ ३०
नैमिषं फाल्गुनं सेतुः प्रभासोऽथ कुशस्थली।
वाराणसी मधुपुरी पम्पा बिन्दुसरस्तथा॥ ३१

अर्हैरुत्तमैराश्रितानि॥ ३०॥ ३१॥

नारायणाश्रमो नन्दा सीतारामाश्रमादयः।
सर्वे कुलाचला राजन्महेन्द्रमलयादयः॥ ३२
एते पुण्यतमा देशा हरेरर्चाश्रिताश्च ये।
एतान्देशान् निषेवेत श्रेयस्कामो ह्यभीक्ष्णशः।
धर्मो ह्यत्रेहितः पुंसां सहस्त्राधिफलोदयः॥ ३३

હવે ધર્માદિ કલ્યાણની પ્રાપ્તિ કરાવનારાં સ્થાનોને હું દર્શાવું છું. જેમાં સુપાત્ર પ્રાપ્ત થાય તે જ અત્યંત પવિત્ર સ્થાન છે.॥ ૨૭॥

જેમનામાં આ સંપૂર્ણ ચરાચર જગત રહેલું છે તે ભગવાનની મૂર્તિ જે દેશમાં હોય અને જ્યાં તપ, વિદ્યા, દયાથી યુક્ત બ્રાહ્મણકુળ હોય,॥ ૨૮॥ જ્યાં જ્યાં શ્રીહરિની અર્ચા (મૂર્તિ) હોય તે તથા જ્યાં પુરાણોમાં પ્રસિદ્ધ એવી ગંગા વગેરે નદીઓ છે, તે શ્રેય (પુણ્ય)નું અનુષ્ઠાન કરવા માટેનું સ્થાન છે.॥ ૨૯॥

'यत्र' જે શ્રીહરિમાં આ ચરાચર વિશ્વ છે તે ભગવાનની **'बिम्बम्'** મૂર્તિ–સ્વરૂપ જ્યાં છે તથા જ્યાં સુપાત્ર પ્રાપ્ત થાય છે, તે અત્યંત પવિત્ર સ્થાન છે.॥ ૨૭॥ ૨૮॥ ૨૯॥

પુષ્કર વગેરે સરોવરો, ઉત્તમ જનો દ્વારા આશ્રય લેવાયેલાં કુરુક્ષેત્ર, ગયા, પ્રયાગ, પુલહાશ્રમ *,॥ ૩૦॥ નૈમિષારણ્ય, ફાલ્ગુનક્ષેત્ર, રામેશ્વરનો સેતુ, પ્રભાસ, દ્વારકા, કાશી, મથુરા, પંપા સરોવર તથા બિંદુ સરોવર॥ ૩૧॥

'अर्हैः' ઉત્તમ જનો દ્વારા આશ્રય કરાયેલાં સ્થાનો॥ ૩૦॥ ૩૧॥

શ્રીનારાયણનો બદરિકાશ્રમ, અલકનંદા નદી, સીતાજીનો અને રામજીનો આશ્રમ (ચિત્રકૂટ), હે રાજા યુધિષ્ઠિર, મહેન્દ્ર, મલય વગેરે સમગ્ર કુલ પર્વતો (કુલાચલ),॥ ૩૨॥ શ્રીહરિની પ્રતિમાના આશ્રયવાળાં જે આ સ્થાનો છે, તે અત્યંત પવિત્ર છે. કલ્યાણવાંચ્છુ મનુષ્યે આ સ્થળોનું વારંવાર સેવન કરવું જોઈએ. અહીં કરવામાં આવેલો ધર્મ મનુષ્યોને હજાર ગણા કરતાં પણ અધિક ફળ આપનારો છે.॥ ૩૩॥

* **'पुलहाश्रमः'** પુલહ ઋષિનો આશ્રમ શાલગ્રામક્ષેત્ર, **'प्रयागः'** ગંગા-યમુનાનું સંગમસ્થાન, **'बिन्दुसरः'** બિંદુ સરોવર (સિદ્ધપુર) કર્દમ ઋષિનો આશ્રમ.

सीताया रामस्य चाश्रम आदिर्येषाम्। द्वयोः पृथग्ग्रहणं वियोगकालाभिप्रायेण॥ ३२॥

સીતાજીનો અને રામજીનો આશ્રમ મુખ્ય છે જેમનામાં એવા આશ્રમો, સીતા અને રામના વિયોગના સમયને ધ્યાનમાં લઈને બંનેના આશ્રમોનો જુદો ઉલ્લેખ છે.॥ ૩૨॥

अर्चाश्रिताश्च स्थिरप्रतिमाश्रिताः। पूर्वं तु शालग्रामशिलाद्यर्चनदेश उक्त इत्यपौन-रुक्त्यम्। अत्र एषु देशेषु ईहितः कृतः। सहस्रगुणमधिकस्य फलस्योदयो यस्मात्स तथा॥ ३३॥

'अर्चा-आश्रिताः' શ્રીહરિની અચળ પ્રતિમાના આશ્રયવાળાં સ્થાનો, પૂર્વે (શ્લોક-૩૧માં) શાલગ્રામ-શિલા વગેરેની અર્ચનાવાળાં સ્થાનોનો ઉલ્લેખ કર્યો હોવાથી પુનરુક્તિ નથી. **'अत्र'** આ દેશોમાં **'ईहितः'** કરવામાં આવેલો (ધર્મ), હજાર ગણા કરતાં પણ અધિક ફળનો ઉદય છે જેનાથી તેવાં સ્થાનો॥ ૩૩॥

अथ पात्रमाह—

पात्रं त्वत्र निरुक्तं वै कविभिः पात्रवित्तमैः।
हरिरेवैक उर्वीश यन्मयं वै चराचरम्॥ ३४

હવે પાત્રનું વર્ણન કરે છે—

હે પૃથ્વીશ યુધિષ્ઠિર, આ જગતમાં ઉત્તમ પાત્રને જાણનારા વિદ્વાનો દ્વારા ચરાચર જગત જેમનાથી પૂર્ણ છે, તે એક શ્રીહરિ જ (સર્વપૂજ્ય) પાત્ર તરીકે નિર્ણીત કરવામાં આવ્યા છે.॥ ૩૪॥

हरिरेव पात्रं निरुक्तं निर्णीतम्॥ ३४॥

શ્રીહરિ જ (સર્વપૂજ્ય) પાત્ર તરીકે **'निरुक्तम्'** નિર્ણીત કરવામાં આવ્યા છે.॥ ૩૪॥

तदेवाह—

देवर्ष्यर्हत्सु वै सत्सु तत्र ब्रह्मात्मजादिषु।
राजन्यदग्रपूजायां मतः पात्रतयाऽच्युतः॥ ३५

તે જ કહે છે—

દેવો, ઋષિઓ, પૂજ્યજનો તેમ જ તપ, યોગાદિથી સિદ્ધ એવા બ્રહ્મપુત્રો સનકાદિ મુનિઓ હોવા છતાં પણ, તેથી આપના રાજસૂય યજ્ઞમાં હે રાજા યુધિષ્ઠિર, અચ્યુત ભગવાન જ (અગ્રપૂજામાં) પાત્ર તરીકે સર્વસંમત મનાયા હતા.॥ ૩૫॥

देवेषु च ऋषिषु चार्हत्सु च तपोयोगादि-सिद्धेषु ब्रह्मात्मजादिषु सनकादिष्वपि सत्सु तत्र त्वदीये राजसूये यद्यस्मादच्युत एव पात्रतया संमतः॥ ३५॥

દેવો, ઋષિઓ, સિદ્ધો તેમ જ તપ, યોગાદિથી સિદ્ધ એવા બ્રહ્મપુત્રો સનકાદિ મુનીશ્વરો હોવા છતાં પણ **'तत्र'** ત્યાં આપના રાજસૂય યજ્ઞમાં **'यत्'** જે કારણે અચ્યુત જ (અગ્રપૂજામાં) શ્રેષ્ઠ પાત્ર તરીકે સર્વસંમત મનાયા હતા.॥ ૩૫॥

संमतत्वे हेतुमाह—

जीवराशिभिराकीर्ण आण्डकोशाङ्घ्रिपो मह्नन्।
तन्मूलत्वादच्युतेज्या सर्वजीवात्मतर्पणम्॥
॥ ३६ ॥

जीवराशिभिर्व्याप्तो ब्रह्माण्डकोश एव योऽङ्घ्रिपः। सर्वजीवानामात्मनश्च तर्पणम् ॥ ३६ ॥

एतदेव पुरुषनामनिरुक्त्या द्रढयति— **पुराणीति।**

पुराण्यनेन सृष्टानि नृतिर्यगृषिदेवताः।
शेते जीवेन रूपेण पुरेषु पुरुषो ह्यसौ॥ ३७

नृतिर्यगादिरूपाणि पुराणि शरीराणि तेष्वन्तर्यामिरूपेण प्रत्यगंशेन च यतः शेतेऽतः पुरुष इति प्रसिद्धः॥ ३७॥

तेष्वेषु भगवान् राजंस्तारतम्येन वर्तते।
तस्मात् पात्रं हि पुरुषो यावानात्मा यथेयते॥ ३८

तारतम्येन तिर्यगादिभ्यः पुरुषे यस्मादाधिक्येन वर्तते तस्मात्पुरुषः पात्रम्। तत्रापि यावानात्मा ज्ञानांशो यथा यथा ईयते तपआदियोगेन यत्र यत्र प्रतीयते तथा तथासौ पात्रमित्यर्थः। तथा च श्रुतिः—'पुरुषत्वे चाविस्तरामात्मा' इत्यादि॥ ३८॥

ભગવાન અચ્યુત સર્વસંમત હોવા માટેનું કારણ—

બ્રહ્માંડકોશરૂપી (મહા)વૃક્ષ જીવોના સમૂહથી વ્યાપ્ત છે. ભગવાન અચ્યુતની પૂજા તે વૃક્ષનું મૂળ હોવાથી (અચ્યુતપૂજનથી) જ સર્વ જીવોનો આત્મા તૃપ્ત થાય છે.॥ ૩૬॥

જીવોના સમૂહથી વ્યાપ્ત એવો બ્રહ્માંડકોશ જ જે વૃક્ષ છે– સર્વ જીવોના આત્માની પણ તૃપ્તિ થાય છે.॥ ૩૬॥

(સર્વ જીવોના આત્માની તૃપ્તિ, એમ જે કહેવાયું) એ વાતને જ 'પુરુષ' નામની વ્યુત્પત્તિથી દૃઢ કરે છે— **'पुराणि इति।'**

આ ભગવાન દ્વારા મનુષ્યો, પશુ-પક્ષીઓ, ઋષિઓ તથા દેવોરૂપી શરીરો ઉત્પન્ન કરવામાં આવ્યાં છે. તે પુરુષ જ જીવરૂપે આ શરીરોમાં પોઢે છે.॥ ૩૭॥

મનુષ્ય, પશુ-પક્ષી વગેરેરૂપી **'पुराणि'** શરીરો, તેમનામાં અંતર્યામીરૂપે અને પ્રત્યક્-અંશરૂપે જે કારણે પોઢે છે, આથી 'પુરુષ' એ નામથી પ્રસિદ્ધ છે.॥ ૩૭॥

હે રાજા, તે આ (**'नृतिर्यगृषिदेवताः'**) શરીરોમાં ભગવાન ન્યૂન–અધિકરૂપે વિરાજે છે, તેથી મનુષ્ય(યોનિ) શ્રેષ્ઠ છે. (તેમાં પણ) જેટલો જ્ઞાનાંશ (અધિક) તેટલી જ પરમાત્માની પ્રતીતિ (અધિક) થાય છે.॥ ૩૮॥

ન્યૂનાધિકતાને કારણે પશુ-પક્ષીઓ કરતાં મનુષ્યમાં જે કારણે ભગવાનનું જ્ઞાન અધિક હોય છે, તેથી મનુષ્ય (તેમનાં કરતાં) શ્રેષ્ઠ છે. તેમાં પણ જેટલો **'आत्मा'** જ્ઞાનાંશ જેમ જેમ તપ વગેરે યોગથી જ્યાં જ્યાં **'ईयते'** પ્રતીત થાય છે, તેમ તેમ તે શ્રેષ્ઠ ગણાય છે, એમ અર્થ છે. તે અનુસાર જ શ્રુતિ છે— 'મનુષ્યરૂપે આત્મા વધારે પ્રકટ થયેલો છે'.॥ ૩૮॥

वंशीधरी—आत्मशब्दस्य ज्ञानवाचकत्वं कोशादवसेयम्।

तर्हि प्रतिमादौ हरेः किमिति पूजां कुर्वन्ति तत्राह—**दृष्ट्वेति** द्वाभ्याम्।

दृष्ट्वा तेषां मिथो नृणामवज्ञानात्मतां नृप।
त्रेतादिषु हरेरर्चा क्रियायै कविभिः कृता॥ ३९

मिथोऽवज्ञानमसन्मानस्तस्मिन्नात्मा बुद्धिर्येषां तेषां भावं दृष्ट्वा। क्रियायै पूजाद्यर्थम् ॥ ३९ ॥

ततोऽर्चायां हरिं केचित् संश्रद्धाय सपर्यया।
उपासत उपास्तापि नार्थदा पुरुषद्विषाम्॥ ४०

हरिमुपासते। उपासिताप्यर्चा पुरुषद्वेषिणामर्थदा न भवति। पुरुषेषु द्वेषं हित्वाऽर्चिता सती सापि मन्दाधिकारिणां पुरुषार्थप्रदा भवत्येवेत्यर्थः॥ ४० ॥

पुरुषेष्वेव जात्या तपआदिभिश्च पुनर्विशेषान्तरमाह—**पुरुषेष्वपीति**।

पुरुषेष्वपि राजेन्द्र सुपात्रं ब्राह्मणं विदुः।
तपसा विद्यया तुष्ट्या धत्ते वेदं हरेस्तनुम्॥ ४१

આત્મન્ શબ્દ જ્ઞાનવાચક છે, એમ શબ્દકોશમાંથી નિશ્ચિત કરવા યોગ્ય છે.

(ભગવાન જ સર્વ પ્રાણીઓમાં રહેલા છે) તો પછી શ્રીહરિની મૂર્તિ વગેરેની લોકો શા માટે પૂજા કરે છે? તે માટે બે શ્લોકોથી ઉત્તર આપે છે— ‘**दृष्ट्वा इति।**’

હે નૃપ, તે મનુષ્યોની પરસ્પર અપમાન કરવાની બુદ્ધિ (‘**आत्मताम्**’) જોઈને વિદ્વાનો દ્વારા ત્રેતાયુગથી માંડીને પૂજા વગેરે માટે શ્રીહરિની મૂર્તિ (પ્રતિષ્ઠિત) રાખવામાં આવી છે.॥ ૩૯॥

પરસ્પર ‘**अवज्ञानम्**’ અપમાન, તેમાં (અપમાનમાં) ‘**आत्मा**’ બુદ્ધિ છે જેમની, તેમનો ભાવ જોઈને ‘**क्रियायै**’ પૂજા વગેરે માટે મૂર્તિપૂજા શરૂ થઈ છે.॥ ૩૯॥

તેથી કેટલાક મનુષ્યો (શ્રીહરિની) મૂર્તિમાં શ્રદ્ધા રાખી પૂજા કરવા દ્વારા આરાધના કરે છે, પરંતુ આરાધિત મૂર્તિ પણ મનુષ્યોનો દ્વેષ કરનારાઓને ફળપ્રદ થતી નથી.॥ ૪૦॥

(કેટલાક) શ્રીહરિની આરાધના કરે છે. આરાધિત મૂર્તિ પણ મનુષ્યોનો દ્વેષ કરનારાઓને ફળ આપનારી થતી નથી. મનુષ્યોમાં દ્વેષ તજીને મૂર્તિને આરાધવામાં આવે, ત્યારે તો તે પણ મંદ અધિકારીઓને ફળ આપનારી જ બને છે, એમ અર્થ છે.॥ ૪૦॥

મનુષ્યોમાં પણ જાતિ દ્વારા તથા તપ વગેરે દ્વારા વળી વિશેષ અંતર જણાવે છે— ‘**पुरुषेषु अपि इति।**’

હે રાજેન્દ્ર, મનુષ્યોમાં પણ તપ, વિદ્યા અને સંતોષ દ્વારા ભગવાન શ્રીહરિના શરીરરૂપ વેદને ધારણ કરે છે, તે બ્રાહ્મણને (વિદ્વાનો) સુપાત્ર જાણે છે.॥ ૪૧॥

यो धत्ते तं सुपात्रं विदुः ॥ ४१ ॥

જેઓ શ્રીહરિના વેદરૂપ તનુને ધારણ કરે છે તેને (વિદ્વાનો) સુપાત્ર જાણે છે. ॥ ૪૧ ॥

एतदेव कैमुत्यन्यायेन द्रढयति— **नन्वस्येति।**

(ભૂદેવો ભગવાનના પરમ આરાધ્ય ઈષ્ટદેવો છે.) એ જ વાત કૈમુત્યન્યાયથી દૃઢ કરે છે— **'નનુ અસ્ય इति।'**

नन्वस्य ब्राह्मणा राजन्कृष्णस्य जगदात्मनः।
पुनन्तः पादरजसा त्रिलोकीं दैवतं महत्॥ ४२ ॥ ४२ ॥

હે રાજા, પોતાની ચરણરજથી ત્રિભુવનને પાવન કરતા બ્રાહ્મણો તો જગતના આત્મા એવા આ શ્રીકૃષ્ણ ભગવાનના પણ પરમ ઈષ્ટદેવ છે. (તો તે ભૂદેવો આપણા દેવ ગણાય તેમાં શું કહેવાનું હોય?) ॥ ૪૨ ॥ ૪૨ ॥

'ब्रह्मण्यस्य परं दैवं ब्राह्मणाः किल ते प्रभो।' इति सनकाद्युक्तेश्च।

'હે પ્રભુ, બ્રાહ્મણમાં શ્રદ્ધા રાખનાર આપને માટે બ્રાહ્મણ પરમ દેવતા છે.' (શ્રીમદ્ ભા.૩/૧૬/૧૭) કારણ કે એમ સનકાદિ દ્વારા કહેવામાં આવ્યું છે.

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे सदाचारनिर्णयो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां
भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

*****

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

ગૃહસ્થો માટે મોક્ષધર્મનું વર્ણન

ततः पञ्चदशे सर्ववर्णाश्रमनिबन्धनम्।
सारतः संग्रहेणाथ वर्ण्यते मोक्षलक्षणम्॥ १

(ગૃહસ્થધર્મના નિરૂપણ) પછી હવે પંદરમા અધ્યાયમાં સર્વ વર્ણાશ્રમોની રચના અને મોક્ષલક્ષણને સારરૂપે સંક્ષેપથી વર્ણવવામાં આવે છે. ॥ ૧ ॥

सर्वेषामपि मोक्षधर्माणां सारसंग्रहार्थ-मध्यायप्रारम्भः। तत्र श्राद्धगतान्विशेषानाह— **कर्मनिष्ठा इति।**

બધા જ મોક્ષધર્મોના સારસંગ્રહ માટે અધ્યાયનો પ્રારંભ થયો છે. તેમાં શ્રાદ્ધને લગતા વિશેષ ધર્મોને જણાવે છે— **'कर्मनिष्ठा इति।'**

नारद उवाच

कर्मनिष्ठा द्विजाः केचित् तपोनिष्ठा नृपापरे।
स्वाध्यायेऽन्ये प्रवचने ये केचिज्ज्ञानयोगयोः॥ १

નારદજી બોલ્યા – હે નૃપ યુધિષ્ઠિર, કેટલાક દ્વિજ કર્મનિષ્ઠ હોય છે, બીજા કેટલાક તપોનિષ્ઠ હોય છે, કેટલાક વેદાધ્યયનમાં, પ્રવચનમાં અને અધ્યાપનમાં તથા જે બીજા કેટલાક છે તેઓ જ્ઞાન અને યોગમાં નિષ્ઠાવાળા હોય છે. ॥ ૧ ॥

स्वाध्यायादिषु परिनिष्ठिता इति शेषः ॥ १ ॥

કેટલાક અધ્યયન વગેરેમાં પૂર્ણરૂપે કુશળ હોય છે, એટલું શેષ છે. ॥ ૧ ॥

ज्ञाननिष्ठाय देयानि कव्यान्यानन्त्यमिच्छता ।
दैवे च तदभावे स्यादितरेभ्यो यथार्हतः ॥ २

અનંત ફળ મેળવવાની ઈચ્છાવાળા મનુષ્યે પિતૃઓને ઉદ્દેશીને (અપાતાં) કવ્ય અને દેવોને ઉદ્દેશીને (અપાતાં હવ્ય) જ્ઞાનનિષ્ઠ બ્રાહ્મણને આપવાં. તે ન મળે તો બીજા બ્રાહ્મણોને યોગ્યતા પ્રમાણે આપવાં. ॥ ૨ ॥

कव्यानि पितृनुद्दिश्य देयानि। दैवे च हव्यान्यपि तस्मै देयानि। यथार्हत इति सर्वत्र ज्ञानादितारतम्येन ॥ २ ॥

પિતૃઓને ઉદ્દેશીને કવ્ય અને દેવોને અપાતાં હવ્ય પણ તે બ્રાહ્મણને આપવાં. જ્ઞાનાદિના વત્તા-ઓછા પ્રમાણ અનુસાર **'यथा-अर्हतः'** યોગ્યતા પ્રમાણે આપવું, એમ સર્વત્ર સમજવું. ॥ ૨ ॥

द्वौ दैवे पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा ।
भोजयेत् सुसमृद्धोऽपि श्राद्धे कुर्यान्न विस्तरम् ॥ ३ ॥ ३ ॥

દેવકાર્યમાં બે અને પિતૃકાર્યમાં ત્રણ અથવા બન્નેમાં એક-એક બ્રાહ્મણને ભોજન કરાવવું જોઈએ. અતિ ધનવાન હોય તેણે પણ શ્રાદ્ધમાં વિસ્તાર કરવો જોઈએ નહીં. ॥ ૩ ॥ ૩ ॥

विस्तरं भोक्तृबाहुल्यम्।

'विस्तरम्' ઘણા ભોજન કરનારાઓનો વિસ્તાર (ન કરવો જોઈએ).

ननु विस्तरः कुतः प्राप्तो येन निषिध्यते तत्राह—

પ્રશ્ન કરે છે કે વિસ્તાર ક્યાંથી પ્રાપ્ત થયો છે, કે જેથી નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે? તે માટે કહે છે—

देशकालोचितश्रद्धाद्रव्यपात्रार्हणानि च ।
सम्यग् भवन्ति नैतानि विस्तरात् स्वजनार्पणात् ॥ ४

સ્વજનોને (અન્નાદિ) આપવાથી થતા વિસ્તારને કારણે દેશ-કાળ પ્રમાણે ઉચિત શ્રદ્ધા, દ્રવ્ય, પાત્ર અને પૂજન યોગ્ય રીતે થતાં નથી. ॥ ૪ ॥

स्वजनानामर्पणात्। जामाता चेन्निमन्त्र्यते तत्पित्रादयः कथं वर्ज्या इत्येवं प्राप्ताद्विस्तरा- दित्यर्थः ॥ ४ ॥

સ્વજનોને આપવાથી થતા વિસ્તારને કારણે નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે. જો જમાઈને નોતરવામાં આવે તો તેના પિતા વગેરેને કેવી રીતે મૂકી દેવાય? એ રીતે પ્રાપ્ત થતા વિસ્તારને કારણે, એમ અર્થ છે. ॥ ૪ ॥

देशे काले च सम्प्राप्ते मुन्यन्नं हरिदैवतम् ।
श्रद्धया विधिवत् पात्रे न्यस्तं कामधुगक्षयम् ॥ ५

(પવિત્ર) સ્થાન અને (પવિત્ર) કાળ પ્રાપ્ત થતાં મુનિઓનું હવિષ્યાન્ન શ્રીહરિને નિવેદન કરીને શ્રદ્ધાપૂર્વક વિધિવત્ સુપાત્રને આપવામાં આવે, તો તે (સકામને માટે) કામનાઓ પૂર્ણ કરનારું અને (નિષ્કામને માટે) મોક્ષફળ આપનારું બને છે. ॥ ૫ ॥

मुन्यन्नमारण्यं व्रीह्यादि। हरिदैवतं हरये निवेदितं सत्॥ ५॥

देवर्षिपितृभूतेभ्य आत्मने स्वजनाय च।
अन्नं संविभजन्पश्येत् सर्वं तत् पुरुषात्मकम्॥ ६

पुरुषात्मकमीश्वरस्वरूपम्॥ ६॥

न दद्यादामिषं श्राद्धे न चाद्याद् धर्मतत्त्ववित्।
मुन्यन्नैः स्यात्परा प्रीतिर्यथा न पशुहिंसया॥ ७

॥ ७॥

नैतादृशः परो धर्मो नृणां सद्धर्ममिच्छताम्।
न्यासो दण्डस्य भूतेषु मनोवाक्कायजस्य यः॥ ८

दण्डस्य न्यासो हिंसायास्त्यागो य एतादृशोऽन्यो धर्मो नास्ति॥ ८॥

अत एवोत्तमाधिकारिणो बाह्यानि कर्माणि त्यजन्तीत्याह—**एक इति**।

एके कर्ममयान् यज्ञान् ज्ञानिनो यज्ञवित्तमाः।
आत्मसंयमनेऽनीहा जुह्वति ज्ञानदीपिते॥ ९

अनीहा निष्कर्माः। ज्ञानदीपिते आत्मस्फूर्तिमत्यात्मसंयमने जुह्वति। मनो नियम्य तदन्तरायतया त्यजन्तीत्यर्थः। तदुक्तं सर्वज्ञसूक्तैः—

'मुनि-अन्नम्' અરણ્યમાં થતાં ડાંગર વગેરે મુનિજનોનું અન્ન, **'हरिदैवतम्'** શ્રીહરિને નૈવેદ્ય તરીકે અર્પણ કરેલું॥ ૫॥

દેવ, ઋષિ, પિતૃ, પ્રાણી, સ્વજન અને પોતાને માટે પણ અન્નનું વિભાજન કરતાં, સર્વને તે ઈશ્વરસ્વરૂપ જોવાં.॥ ૬॥

'पुरुष-आत्मकम्' ઈશ્વરસ્વરૂપ॥ ૬॥

ધર્મનું તત્ત્વ જાણનાર મનુષ્યે શ્રાદ્ધમાં માંસ આપવું નહીં અને પોતે પણ ખાવું નહીં. મુનિઓનાં અન્નથી (પિતૃઓને) જેવી તૃપ્તિ થાય છે તેવી પશુહિંસાથી થતી નથી.॥ ૭॥ ૭॥

પ્રાણીઓમાં મન, વચન અને શરીરથી થતી હિંસાનો જે ત્યાગ છે, એના જેવો શ્રેષ્ઠ ધર્મ સદ્ધર્મની ઈચ્છા રાખનારા મનુષ્યો માટે બીજો કોઈ નથી.॥ ૮॥

'दण्डस्य न्यासः' હિંસાનો જે ત્યાગ છે એના જેવો બીજો ધર્મ નથી.॥ ૮॥

આથી જ ઉત્તમ અધિકારીઓ બાહ્ય કર્મો ત્યજે છે, એમ કહે છે— **'एके इति।'**

કેટલાક નિષ્કર્મ, શ્રેષ્ઠ યજ્ઞવેત્તા જ્ઞાનીજનો (આત્મસ્વરૂપ) જ્ઞાનથી પ્રજ્વલિત થયેલા આત્મસંયમ (રૂપ અગ્નિ)માં કર્મમય યજ્ઞો હોમી દે છે.॥ ૯॥

'अनीहाः' નિષ્કર્મ (જ્ઞાની)જનો **'ज्ञानदीपिते'** (આત્મસ્વરૂપ) જ્ઞાનથી પ્રજ્વલિત થયેલા આત્મસંયમ (રૂપ અગ્નિ)માં કર્મમય યજ્ઞો હોમી દે છે. મનને સંયમિત કરી મનોનિગ્રહના વિઘ્નરૂપ હોવાથી (કર્મયજ્ઞોને) ત્યજી દે છે, એમ અર્થ છે. સર્વજ્ઞસૂક્તો દ્વારા તે જ કહેવાયું છે—

'प्रत्यक्स्फूर्तिरसत्स्फूर्तिस्तनुनिष्ठाविघातकम् ।
सँल्लक्ष्य संत्यजेत्कर्म त्यजन्विघ्नहतोऽन्यथा॥'
इति॥ ९॥

"જેને બ્રહ્મની સ્ફુરણા થઈ હોય અને જેને જગતની સ્ફુરણા ન થતી હોય તેવા મનુષ્યે સૂક્ષ્મ એવા બ્રહ્મમાં જે નિષ્ઠા હોય તેનો ઘાત કરનારા કર્મને જોઈને (વિચારીને) તેને છોડી દેવું જોઈએ, તેમ જ બીજી રીતે અર્થાત્ બ્રહ્મની સ્ફુરણા ન થઈ હોય તેવો મનુષ્ય જો કર્મ છોડી દે તો તે વિઘ્નોથી હણાય છે." ॥૯॥

द्रव्ययज्ञैर्यक्ष्यमाणं दृष्ट्वा भूतानि बिभ्यति।
एष माऽकरुणो हन्यादतज्ज्ञो ह्यसुतृब् ध्रुवम्॥ १०

દ્રવ્યમય યજ્ઞોથી યજન કરનાર મનુષ્યને જોઈને પ્રાણીઓ ભય પામે છે (અને વિચારે છે) કે પોતાના પ્રાણને તૃપ્ત કરનારો અને આત્મતત્ત્વથી અનભિજ્ઞ એવો આ નિર્દયી મને અવશ્ય હણશે.॥૧૦॥

मा मामेष ध्रुवं हन्यादिति। कुतः, अकरुणः। तत्कुतः, असुतृप् प्राणतर्पकः। तत्किम्, अतज्ज्ञः आत्मतत्त्वानभिज्ञः।

'**मा**' મને આ અવશ્ય હણશે. શા માટે? કારણ કે નિર્દયી છે. તેવો શા માટે છે? '**असुतृप्**' પોતાના પ્રાણને તૃપ્ત કરનારો છે. તેવો કેમ છે? '**अतत्-ज्ञः**' આત્મતત્ત્વથી અનભિજ્ઞ છે.

तथा च श्रुतिः—
'न तं विदाथ य इमा जजाना-
न्यद्युष्माकमन्तरं बभूव।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या
चा सुतृप् उक्थशासश्चरन्ति॥'
इति॥ १०॥

તે અનુસાર શ્રુતિ છે— 'જે વિશ્વકર્માએ આ ભૂતોનું સર્જન કર્યું છે તેને તમે જાણતા નથી. જીવોનું વાસ્તવિક સ્વરૂપ જુદું છે. જાણવાયોગ્ય ઈશ્વરતત્ત્વ જ તે વિશ્વકર્મા બનેલો છે. ઝાકળ જેવા અજ્ઞાનથી તમારું મન ઢંકાયેલું છે. (હું અને મારું એમ) બબડાટ કરનારા અને પ્રાણને તૃપ્ત કરનારા તમે ઈશ્વરતત્ત્વને વિચારવાની પ્રવૃત્તિ કરતા નથી, સ્વર્ગપ્રાપ્તિ માટે તમે સ્તોત્ર ગાનારા અને આમતેમ ફરનારા છો.' (શુ.ય.મા.સં ૧૭/૩૧)

प्रस्तुतमनुवर्तयति—**तस्मादिति**।

પ્રસ્તુત વાતને અનુસરે છે— '**तस्मात् इति**।'

तस्माद् दैवोपपन्नेन मुन्यन्नेनापि धर्मवित्।
सन्तुष्टोऽहरहः कुर्यान्नित्यनैमित्तिकीः क्रियाः॥
॥ ११॥ ११॥

માટે ધર્મજ્ઞ મનુષ્ય પ્રારબ્ધ અનુસાર પ્રાપ્ત થયેલા, ઋષિ-મુનિઓને ઉચિત એવા અન્નથી સંતુષ્ટ થઈ પ્રતિદિન નિત્ય-નૈમિત્તિક ક્રિયાઓ કરે.॥૧૧॥૧૧॥

विधर्मः परधर्मश्च आभास उपमा छलः ।
अधर्मशाखाः पञ्चेमा धर्मज्ञोऽधर्मवत् त्यजेत् ॥ १२

અધર્મવત્સાક્ષાન્નિષિદ્ધવત્ ॥ १२ ॥

क्रममनादृत्य पञ्चापि व्याचष्टे।
धर्मबाधो विधर्मः स्यात् परधर्मोऽन्यचोदितः ।
उपधर्मस्तु पाखण्डो दम्भो वा शब्दभिच्छलः ॥ १३

धर्मबाधो धर्मबुद्ध्यापि यस्मिन् क्रियमाणे स्वधर्मबाधः। अन्यस्य चोदितोऽन्यस्य परधर्मः। उपमेति व्याचष्टे—**उपधर्मस्त्विति**।

शब्दस्य भित् भेदोऽन्यथाव्याख्यानं यस्मिन्। यथा दशावरान्भोजयेदित्युक्ते दशभ्योऽवरानिति। शब्दभृदिति पाठे धर्म-शब्दमात्रं बिभर्तीति तथा। यथा गां दद्यादि-त्युक्ते मरिष्यन्त्या गोर्दानम्॥ १३ ॥

વિધર્મ, પરધર્મ, આભાસ, ઉપમા અને છળ– આ પાંચ અધર્મની શાખાઓ છે, ધર્મજ્ઞ મનુષ્યે તેનો (સ્પષ્ટ નિષેધ હોય તેમ) અધર્મની જેમ ત્યાગ કરવો જોઈએ. ॥ ૧૨ ॥

'**अधर्मवत्**' સાક્ષાત્ (સ્પષ્ટ) નિષેધ હોય તેમ, અધર્મની જેમ (ત્યાગ કરવો જોઈએ). ॥ ૧૨ ॥

ક્રમને અવગણીને પાંચેયની વ્યાખ્યા કરે છે.

(ધર્મબુદ્ધિથી પણ જેને આચરવામાં પોતાના) ધર્મનો બાધ થાય તે વિધર્મ છે. બીજા (વર્ણ માટે)નો વિહિત ધર્મ તેનાથી અન્ય (વર્ણ) માટે પરધર્મ છે. ઉપધર્મ (ઉપમા) એટલે પાખંડ કે દંભ. શાસ્ત્ર-વચનનું અન્યથા અર્થઘટન એટલે છળ. ॥ ૧૩ ॥

ધર્મબુદ્ધિથી જે આચરવામાં પોતાના ધર્મનો બાધ થાય તે સ્વધર્મબાધ (એટલે વિધર્મ). બીજા વર્ણ (ક્ષત્રિય) માટેનો વિહિત ધર્મ તેનાથી અન્ય વર્ણ (બ્રાહ્મણ) માટે પરધર્મ છે. ઉપમાની વ્યાખ્યા કરે છે. (ઉપમા એટલે ધર્મની ઉપમા પણ ધર્મ નહીં અને ઉપધર્મ એટલે દંભ.)— '**उपधर्मः तु इति।**'

શબ્દનો '**भित्**' ભેદ અર્થાત્ શાસ્ત્રવચનનું ખોટી રીતે અર્થઘટન એટલે છળ. જેમ કે ઓછામાં ઓછા દસ બ્રાહ્મણોને જમાડવા જોઈએ, એમ કહેવાયું હોય ત્યારે દસથી ઓછા (આઠ કે નવ)ને જમાડવા તે છળ કહેવાય. ('**दशावरान्**' '**दश अवराः येषां ते**'—બહુ. સમાસ લેવો. '**दशभ्यः अवराः**' (દસથી ઓછા) પંચમી તત્પુ. ન લેવો.) ('**शब्दभित्**'ને બદલે) '**शब्दभृत्**' પાઠમાં '**धर्म**' એમ માત્ર શબ્દને જ પકડે તેને છળ કહેવાય. જેમકે, 'ગાય આપવી' એમ કહેવાયું હોય ત્યારે મરવા પડેલી ગાયનું દાન કરે. (જ્યાં વસ્તુતઃ ધર્મ ન હોય, માત્ર ધર્મ શબ્દનો પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો હોય, તે છળ છે.) ॥ ૧૩ ॥

यस्त्विच्छया कृतः पुम्भिराभासो ह्याश्रमात् पृथक्।
स्वभावविहितो धर्मः कस्य नेष्टः प्रशान्तये॥
॥ १४ ॥

મનુષ્યો દ્વારા પોતાના આશ્રમથી અન્ય, સ્વેચ્છાથી કરવામાં આવેલો ધર્મ એટલે ધર્માભાસ. પોતપોતાના સ્વભાવ પ્રમાણે કહેલો (વર્ણાશ્રમોચિત) ધર્મ કોને શાંતિ પ્રાપ્ત કરાવવા માટે સમર્થ થતો નથી ? ॥ ૧૪ ॥

स्वधर्मानुष्ठानानन्तरं धर्मभूयस्त्वार्थमपि परधर्मो नानुष्ठेयोऽनुपयोगादित्याह—स्वभावविहित इति॥ १४॥

સ્વધર્મના અનુષ્ઠાન પછી વધારે ધર્મ કરવા માટે પણ પરધર્મ અનુષ્ઠાન કરવા યોગ્ય નથી, કારણ કે તેની જરૂર નથી, તે કહે છે— '**स्वभावविहितः इति।**' ॥ ૧૪ ॥

विजय.—
'धर्मो भवत्यधर्मोऽपि कृतो भक्तैस्तवाच्युत।
पापं भवति धर्मोऽपि यो न भक्तैः कृतो हरे।'

'હે અચ્યુત, ભક્તો દ્વારા તારે માટે કરવામાં આવેલો અધર્મ પણ ધર્મ બને છે. હે હરિ, અભક્તો દ્વારા કરવામાં આવ્યો હોય તો ધર્મ પણ પાપ બની જાય છે.'

धर्मार्थमपि नेहेत यात्रार्थं वाऽधनो धनम्।
अनीहानीहमानस्य महाहेरिव वृत्तिदा॥ १५

(ધર્માત્મા) મનુષ્ય નિર્ધન હોય તો તેણે ધર્મ કરવા માટે કે યાત્રા કરવા માટે પણ ધનની ઈચ્છા ન કરવી જોઈએ. (આજીવિકા માટે) ચેષ્ટા ન કરનાર અજગરને ચેષ્ટાનો અભાવ જ આજીવિકા આપનાર બને છે તેમ (આજીવિકા માટે કોઈ પણ રીતે પ્રવૃત્ત ન થનારને તેની પ્રવૃત્તિનો અભાવ જ આજીવિકા આપનાર બને છે). ॥ ૧૫ ॥

किंच—अधनो धर्मार्थं धनं नेहेत नापेक्षेत, धनार्थं न व्याप्रियेतेति वा। दैवोपपन्नेनैव स्वधर्मसिद्धेरुक्तत्वात्। यात्रार्थमपि नेहेतेत्येतत्प्रपञ्चयति—अनीहेति सार्धैः षड्भिः ॥ १५ ॥

વળી, નિર્ધન મનુષ્ય ધર્મ કરવા માટે પણ ધનની '**न-ईहेत**' ઈચ્છા ન રાખે કે ધન માટે વ્યાપાર ન કરે, કારણ કે ભાગ્યવશાત્ પ્રાપ્ત થયેલા ધનથી જ (શાસ્ત્રમાં) સ્વધર્મસિદ્ધિ કહેવાઈ છે. યાત્રા કરવા માટે પણ અપેક્ષા ન રાખે, એ વાતને સાડા છ શ્લોકો દ્વારા વિસ્તારપૂર્વક સમજાવે છે— '**अनीहा इति।**' ॥ ૧૫ ॥

सन्तुष्टस्य निरीहस्य स्वात्मारामस्य यत् सुखम्।
कुतस्तत् कामलोभेन धावतोऽर्थेहया दिशः॥ १६
॥ १६ ॥

સંતુષ્ટ, નિરુદ્યમી અને પોતાના આત્મામાં રમણ કરનાર (ધ્યાનનિષ્ઠ) મનુષ્યને જે સુખ મળે છે, તે સુખ (શબ્દાદિ) વિષયોના લોભથી અને ધન મેળવવાની ઈચ્છાથી ચારે દિશામાં દોડતા મનુષ્યને ક્યાંથી હોય ? ॥ ૧૬ ॥ ૧૬ ॥

सदा सन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः।
शर्कराकण्टकादिभ्यो यथोपानत्पदः शिवम्॥ १७

उपानहौ पादयोर्यस्य स उपानत्पात्तस्य ॥ १७॥

જેના પગમાં પગરખાં છે તેને કાંકરા, કાંટાથી (ભય નથી) તેવી રીતે સદા સંતુષ્ટ મનવાળા મનુષ્યને સર્વ દિશા સુખમય છે.॥ ૧૭॥

પગરખાં પગમાં છે જેના તે, **उपानत्पात् तस्य ('उपानत्पदः')** તેને (કાંકરા-કાંટાથી ભય નથી).॥ ૧૭॥ **('उपानह्'—સ્ત્રી. પગરખું)**

सन्तुष्टः केन वा राजन्न वर्तेतापि वारिणा।
औपस्थ्यजैह्व्यकार्पण्याद् गृहपालायते जनः॥ १८

હે રાજા, સંતોષી મનુષ્ય કઈ વસ્તુથી ચલાવી લેતો નથી? (તે તો માત્ર) જળથી પણ ચલાવી લે છે. ઉપસ્થ અને જિહ્વાજન્ય સુખના લોભને કારણે માણસો ઘરનું પાલન કરનારા કૂતરાની જેમ વર્તે છે.॥ ૧૮॥

गृहपालः श्वा तद्वदाचरति॥ १८॥

'गृहपालः' કૂતરો, તેની જેમ વર્તે છે.॥ ૧૮॥

असन्तुष्टस्य विप्रस्य तेजो विद्या तपो यशः।
स्रवन्तीन्द्रियलौल्येन ज्ञानं चैवावकीर्यते॥ १९

અસંતોષી વિપ્રનાં તેજ, વિદ્યા, તપ અને યશ ક્ષીણ થઈ જાય છે અને ઈન્દ્રિયોની લોલુપતાથી તેનું જ્ઞાન પણ નાશ પામે છે.॥ ૧૯॥

॥ १९ ॥ 'सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः'—

॥ ૧૯॥ '(આ અનિત્ય ભોગો) સર્વ ઈન્દ્રિયોના તેજને જીર્ણ—શીર્ણ કરી નાખે છે.' (કઠ.ઉપ. ૧/૧/૨૬)

कामस्यान्तं च क्षुत्तृड्भ्यां क्रोधस्यैतत्फलोदयात्।
जनो याति न लोभस्य जित्वा भुक्त्वा दिशो भुवः॥
॥ २० ॥

ભૂખ અને તરસ (શાંત થવા)થી (મનુષ્યની અન્ન-જળ વિષયક) કામનાનો અંત આવે છે. (આ) ક્રોધનું આ (પરપીડાદિરૂપ) ફળ મળતાં જ (ક્રોધ શાંત થઈ જાય છે, પરંતુ સર્વ) દિશાઓ જીતીને અને સમગ્ર પૃથ્વીઓને ભોગવીને પણ મનુષ્ય લોભનો અંત પામતો નથી.॥ ૨૦॥

क्षुधा तृषा च जनः कामस्यान्तं याति, अन्नोदकातिरिक्तकामान्तराभावात्। क्रोधस्य वाऽन्तं याति। एतस्य क्रोधस्य यत्फलं हिंसा तस्योदयान्निष्पत्तेः। दिशो जित्वाऽपि भुवो भुक्त्वाऽपि लोभस्य नैवान्तं यातीत्यर्थः॥ २०॥

ભૂખ (શાંત થવા)થી અને તરસ (શાંત થવા)થી મનુષ્યની કામનાનો અંત આવે છે, કારણ કે અન્ન અને જળ ઉપરાંત બીજી કોઈ ઈચ્છા નથી હોતી. ક્રોધનો પણ અંત આવે છે. આ ક્રોધનું જે ફળ છે—(પરપીડારૂપ) હિંસા, તેની **'उदयात्'** પૂર્તિ થવાથી (ક્રોધ શાંત થાય છે). દિશાઓને જીતી લેવાથી અને પૃથ્વીઓને ભોગવવાથી પણ લોભનો અંત આવતો જ નથી, એમ અર્થ છે.॥ ૨૦॥

पण्डिता बहवो राजन्बहुज्ञाः संशयच्छिदः ।
सदसस्पतयोऽप्येके असन्तोषात् पतन्त्यधः ॥ २१
॥ २१ ॥

હે રાજા, અનેક વિષયોના જ્ઞાતા તેમજ શંકાનું નિવારણ કરનારા પંડિતો અને કેટલાક વિદ્વત્સભાના સભાપતિઓનું પણ અસંતોષને કારણે અધ:પતન થાય છે, (નરકમાં પડે છે.) ॥ ૨૧ ॥ ૨૧ ॥

इदानीं कामादिजयोपायानाह—**असंकल्पादिति** चतुर्भिः ।

હવે કામાદિ જીતી લેવાના ઉપાયો ચાર શ્લોકો દ્વારા જણાવે છે— '**असंकल्पात् इति**।'

असङ्कल्पाज्जयेत् कामं क्रोधं कामविवर्जनात् ।
अर्थानर्थेक्षया लोभं भयं तत्त्वावमर्शनात् ॥ २२

સંકલ્પ ન કરવાથી કામને જીતવો જોઈએ. કામનાઓના ત્યાગથી ક્રોધને જીતવો જોઈએ. અર્થ (ધન)માં અનર્થની દૃષ્ટિ કરવાથી લોભને જીતવો જોઈએ તથા અદ્વૈતના અનુસંધાન દ્વારા ભયને જીતવો જોઈએ. ॥ ૨૨ ॥

जयेदिति यथापेक्षमन्वेति। अर्थेऽनर्थ-दर्शनेन। तत्त्वावमर्शनादद्वैतानुसंधानेन ॥ २२ ॥

'**जयेत्**' શબ્દ અપેક્ષા અનુસાર જોડાય છે. અર્થમાં અનર્થના દર્શન દ્વારા (લોભને જીતવો જોઈએ). '**तत्त्व-अवमर्शनात्**' અદ્વૈતના અનુસંધાન દ્વારા (ભયને જીતવો જોઈએ). ॥ ૨૨ ॥

वि.चक्र.—
असंकल्पात् स्त्रीस्मरणादिना कामोत्पत्तावपि नैव भोक्तव्येति संकल्पसदृशान्निश्चयात् इति।

'**असंकल्पात्**' સ્ત્રીસ્મરણ વગેરેથી કામવાસના ઉત્પન્ન થવા છતાં પણ તેનો ભોગ કરવા યોગ્ય નથી જ એવા સંકલ્પપૂર્વકના નિશ્ચયથી

आन्वीक्षिक्या शोकमोहौ दम्भं महदुपासया ।
योगान्तरायान् मौनेन हिंसां कायाद्यनीहया ॥ २३

આત્મા અને અનાત્માના વિવેક (અધ્યાત્મ-વિદ્યા) દ્વારા શોક અને મોહને જીતવા જોઈએ. સંતોની સેવા દ્વારા દમ્ભને જીતવો જોઈએ. યોગનાં વિઘ્નોને મૌન દ્વારા અને શરીરાદિમાં સ્પૃહા ન રાખવા દ્વારા હિંસાને જીતવી જોઈએ. ॥ ૨૩ ॥

आन्वीक्षिक्या आत्मानात्मविवेकेन। महतां सात्त्विकानां सेवया। योगस्यान्तरायान् लोकवार्तादीन् ॥ २३ ॥

'**आन्वीक्षिक्या**' આત્મા અને અનાત્માના વિવેક દ્વારા (શોક અને મોહને જીતવા). '**महताम्**' સાત્ત્વિક જનોની સેવાથી (દંભને જીતવો). યોગનાં '**अन्तरायान्**' વિઘ્નોને, લોકો સાથે ચર્ચા વગેરે અંતરાયોને (મૌન દ્વારા જીતવા). ॥ ૨૩ ॥

वंशीधरी—मौनिनः पार्श्वे लोकाः प्रायो न गच्छन्ति ततः स्वयमेव लोकवार्ताद्यभावोऽपि भवतीति भावः ।

મૌન ધારણ કરનારની પાસે ઘણું કરીને લોકો જતા નથી, તેથી તેની મેળે જ લોકો સાથે વાતચીત વગેરે પણ થતાં નથી, એવો ભાવ છે.

कृपया भूतजं दुःखं दैवं जह्यात् समाधिना।
आत्मजं योगवीर्येण निद्रां सत्त्वनिषेवया॥ २४

પ્રાણીને કારણે થતા દુઃખનો તેમની ઉપર દયા કરવાથી ત્યાગ કરવો. આધિદૈવિક દુઃખનો (તેની અનિવાર્યતાનું મન સાથે) સમાધાન કરવા દ્વારા ત્યાગ કરવો. (વ્યાધિ વગેરે) દેહને કારણે જન્મેલા દુઃખનો યોગબળથી ત્યાગ કરવો તથા સાત્ત્વિક આહારાદિથી નિદ્રાનો ત્યાગ કરવો (અથવા નિદ્રાને જીતવી).॥ ૨૪॥

येभ्यो भूतेभ्यो भयं जायेत तेष्वेव कृपया हिताचरणेन। दैवं देवोपसर्गनिमित्तं वृथा मनःपीडादि। तदुक्तं याज्ञवल्क्येन—'विमना विफलारम्भः संसीदत्यनिमित्ततः' इति।

જે પ્રાણીઓને કારણે ભય ઉત્પન્ન થયો હોય તેમની ઉપર જ '**कृपया**' દયા કરવાથી, તેમનું ભલું કરવાથી (પ્રાણીજન્ય દુઃખને દૂર કરવું). '**दैवम्**' આધિદૈવિક કારણે થતી મનની વ્યર્થ પીડા વગેરેને (સમાધાનથી), (ત્યાગવી). યાજ્ઞવલ્ક્ય દ્વારા તે કહેવામાં આવ્યું છે—'મિથ્યા શોક કરનાર અને નિષ્ફળ કર્મ કરનાર મનુષ્ય કોઈ પણ નિમિત્ત વગર ભાંગી પડે છે.'

आत्मजं देहजम्। योगवीर्येण प्राणायामादिबलेन। सत्त्वनिषेवया सात्त्विकाहारादिना॥ २४॥

'**आत्मजम्**' દેહને કારણે થતા દુઃખને '**योगवीर्येण**' પ્રાણાયામ વગેરે યોગબળથી જીતવું. '**सत्त्वनिषेवया**' સાત્ત્વિક આહારાદિ દ્વારા (નિદ્રાનો જય કરવો).॥ ૨૪॥

विजय.—सत्त्वनिषेवया सात्त्विकपुरुषनिषेवया निद्रामज्ञानम्।

સાત્ત્વિક જનોની સેવા દ્વારા અજ્ઞાનરૂપી નિદ્રાને જીતવી.

रजस्तमश्च सत्त्वेन सत्त्वं चोपशमेन च।
एतत् सर्वं गुरौ भक्त्या पुरुषो ह्यञ्जसा जयेत्॥ २५
॥ २५॥

સત્ત્વગુણ(ની અધિકતા)થી રજોગુણ અને તમોગુણ જીતવા અને સત્ત્વગુણને શાન્તિથી જીતવો. આ સર્વ દોષોને મનુષ્ય (કેવળ) ગુરુ ઉપરની ભક્તિથી અનાયાસે જીતી શકે છે. ॥ ૨૫॥ ૨૫॥

ननु कथं गुरौ भक्त्या सर्वस्य जयः स्यात्तस्यापि मनुष्यत्वेन तदवस्थत्वात्तत्राह—**यस्येति**।

શંકા કરવામાં આવી છે કે ગુરુ ઉપરની ભક્તિથી બધાને કેવી રીતે જીતી શકાય? કારણ કે ગુરુ પણ મનુષ્ય હોવાથી તેવી અવસ્થાવાળો રહે છે! તે માટે ઉત્તર આપે છે— '**यस्य इति।**'

यस्य साक्षाद् भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ।
मर्त्यासद्धीः श्रुतं तस्य सर्वं कुञ्जरशौचवत्॥ २६

જ્ઞાનદીપ (પ્રકટાવી) આપનાર સાક્ષાત્ ભગવાન એવા ગુરુ પ્રત્યે (આ આપણા જેવો) મરણશીલ મનુષ્ય છે એવી જેની કુમતિ છે, તેનું શાસ્ત્રશ્રવણ હાથીના સ્નાનની જેમ વ્યર્થ છે.॥ ૨૬॥

मर्त्यासद्धीर्मनुष्य इति दुर्बुद्धिः। तस्य शास्त्रश्रवणं कुञ्जरस्नानवद् व्यर्थम्॥ २६॥

'मर्त्य-असत्-धीः' મનુષ્ય છે એવી દુર્બુદ્ધિ– તેવા દુર્બુદ્ધિ મનુષ્યનું શાસ્ત્રશ્રવણ હાથીના સ્નાનની જેમ વ્યર્થ છે.॥ ૨૬॥

एष वै भगवान्साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरः।
योगेश्वरैर्विमृग्याङ्घ्रिर्लोको यं मन्यते नरम्॥ २७

જેમનાં ચરણકમળ યોગેશ્વરો દ્વારા શોધવા યોગ્ય છે તેવા પ્રકૃતિ અને પુરુષના નિયંતા આ (શ્રીકૃષ્ણ) સાક્ષાત્ ભગવાન જ છે. (છતાં અજ્ઞાની) લોકો (ભ્રમથી) તેમને મનુષ્ય જ માને છે.॥ ૨૭॥

ननु गुरोरपि पुत्रादयस्तं नरमेव मन्यन्तेऽत आह—एष गुरुः साक्षाद्भगवानेव भवेत्।

શંકા કરવામાં આવી છે કે ગુરુને પણ પુત્રો વગેરે હોય છે. તેમને લોકો મનુષ્ય જ માને છે. તે માટે ઉત્તર આપે છે— સાક્ષાત્ ભગવાન જ આ ગુરુ બને છે.

लोकस्य नरोऽसाविति बुद्धिर्भ्रान्तिरित्यर्थः। यद्वा न हि तत्पुत्रादेर्मनुष्यबुद्ध्या प्रतीयमानोऽपि गुरुर्भगवान्न भवेत्। यथैष श्रीकृष्ण इत्यर्थः॥ २७॥

'આ મનુષ્ય છે.' એવી લોકોની બુદ્ધિ એ ભ્રમ છે, એમ અર્થ છે. અથવા તેમને પુત્રો વગેરે હોવાથી મનુષ્ય છે, તેવી બુદ્ધિથી પ્રતીત થતા હોવા છતાં પણ ગુરુ ભગવાન ન હોય એવું નથી જ. જેમ કે આ શ્રીકૃષ્ણ (તેમને પુત્રાદિ હોવા છતાં તે જગદ્ગુરુ છે), એમ અર્થ છે.॥ ૨૭॥

एवं सर्वैरुपायैः कामादिवेगं जित्वा नियतेन्द्रियो भूत्वा ध्यानपरो भवेत्।

આ પ્રમાણે સર્વ ઉપાયો વડે કામાદિવેગને જીતીને સંયમિત ઇન્દ્રિયોવાળા થઈ ધ્યાનપરાયણ થવું જોઈએ.

अन्यथा तं प्रति सर्वशास्त्रवैफल्यं स्यादित्याह—**षड्वर्गेति**।

તે (ધ્યાન) ન થઈ શકે તો જિતેન્દ્રિય મનુષ્ય માટે પણ સર્વ શાસ્ત્રો નિષ્ફળ બને છે, એમ કહે છે— **'षड्वर्ग इति।'**

षड्वर्गसंयमैकान्ताः सर्वा नियमचोदनाः ।
तदन्ता यदि नो योगानावहेयुः श्रमावहाः ॥ २८

(શાસ્ત્રના) સર્વ નિયમોની આજ્ઞા (પાંચ ઇન્દ્રિયો અને મન– એમ) છ ઇન્દ્રિયવર્ગના એક માત્ર સંયમમાં જ પરિસમાપ્ત થનારી છે. (અર્થાત્ શાસ્ત્રની આજ્ઞા છ ઇન્દ્રિયવર્ગને વશમાં કરવા માટે જ છે.) છ ઇન્દ્રિયવર્ગના એકમાત્ર સંયમના જ અંત (તાત્પર્ય)વાળી હોવા છતાં જો તે (ભગવાનનાં ધારણા, ધ્યાન, સમાધિરૂપ) યોગને ન સાધે, તો તે કેવળ પરિશ્રમ આપનારી જ છે. ॥ ૨૮ ॥

सर्वापि नियमचोदना इष्टापूर्तादिविधयः षडिन्द्रियवर्गस्य यः संयमस्तस्मिन्नेवैकस्मिन्नन्तो यासाम्। तदेकपरा इत्यर्थः।

બધા જ નિયમોની આજ્ઞા, ઇષ્ટપૂર્તાદિ વિધિઓ (પાંચ ઇન્દ્રિયો અને મન– એમ) છ ઇન્દ્રિયવર્ગનો જે સંયમ છે, તેનામાં જ એકમાત્ર પ્રયોજન (અંત) છે જેમનું તેવી છે. તે સર્વ આજ્ઞાઓ ષડ્વર્ગના એકમાત્ર સંયમના તાત્પર્યવાળી છે, એમ અર્થ છે.

न च तावतापि चरितार्था इत्याह— तदन्ताः सत्योऽपि यदि योगान्धारणाध्यानसमाधीन्नो आवहेयुर्न साधयेयुस्तर्हि केवलं श्रमावहा एवेत्यर्थः ॥ २८ ॥

પરંતુ તે આજ્ઞાઓ (છ ઇન્દ્રિયવર્ગને વશ કરે) ત્યારે પણ કૃતાર્થ થતી નથી, એમ કહે છે— '**तत्-अन्ताः**' એક માત્ર છ ઇન્દ્રિયવર્ગના સંયમમાં જ અંતવાળી હોવા છતાં પણ જો તે (ભગવાનનાં) ધારણા, ધ્યાન, સમાધિરૂપ યોગને ન સાધે, તો તે કેવળ પરિશ્રમ આપનારી જ થાય છે, એમ અર્થ છે. ॥ ૨૮ ॥

एतदेव दृष्टान्तेनाह—

(ભગવદ્ધ્યાનયોગ વિનાનો સંયમ પરિશ્રમ આપનારો જ છે.) એ જ વાતને દૃષ્ટાન્ત દ્વારા કહે છે–

यथा वार्तादयो ह्यर्था योगस्यार्थं न बिभ्रति ।
अनर्थाय भवेयुस्ते पूर्तमिष्टं तथाऽसतः ॥ २९

જેમ ખેતી વગેરે અને (ભોગ્ય સાધનોરૂપ) તેનાં ફળો યોગસાધનાનું ફળ (ભગવત્પ્રાપ્તિ અથવા) મોક્ષ સાધી આપતાં નથી, ઊલટાં અનર્થરૂપ સંસારને માટે (ફળરૂપ) થાય છે, તેવી રીતે બહિર્મુખ મનુષ્યનાં ઇષ્ટ (યજ્ઞ-યાગાદિ) કર્મ અને પૂર્ત (વાવ, કૂવા, ધર્મશાળાઓ બંધાવવી વગેરે) કર્મ (સંસારરૂપી) અનર્થ માટે થાય (છે). ॥ ૨૯ ॥

यथा वार्तादयः कृष्यादयोऽर्थास्तत्फलानि च योगस्यार्थं मोक्षं न साधयन्ति प्रत्युतानर्थाय संसारायैव। असतो बहिर्मुखस्येष्टापूर्ताद्यपि तथा॥ २९॥

જેમ '**वार्तादयः**' ખેતી વગેરે તથા (ભોગ્ય સાધનોરૂપ) તેનાં ફળો યોગસાધનાના ફળરૂપ (ભગવત્પ્રાપ્તિ કે) મોક્ષ સાધી આપતાં નથી, ઊલટાં '**अनर्थाय**' અનર્થરૂપ સંસાર માટે જ ફળરૂપ બને છે, તેવી રીતે '**असतः**' બહિર્મુખ મનુષ્યને ઈષ્ટ-પૂર્ત કર્મ સંસાર માટે થાય છે.॥ ૨૯॥

यश्चित्तविजये यत्तः स्यान्निःसङ्गोऽपरिग्रहः।
एको विविक्तशरणो भिक्षुर्भिक्षामिताशनः॥ ३०

જે મનુષ્ય પોતાના મન ઉપર વિજય પ્રાપ્ત કરવા ઉદ્યત થયો હોય તે અનાસક્ત અને અપરિગ્રહી થાય, નિર્જન સ્થળે એકલો જ રહે, સંન્યાસ ધારણ કરે અને ભિક્ષા દ્વારા પ્રાપ્ત થયું હોય તે પણ મિત ભોજન કરે.॥ ૩૦॥

एवं योगं युञ्जतोऽपि यस्य कुटुम्बादि-सङ्गेन चित्तं विक्षिप्येत तस्य कृत्यमाह—

આમ યોગમાં ચિત્તવૃત્તિ એકાગ્ર કરતો હોવા છતાં પણ કુટુંબાદિની આસક્તિથી જેનું મન વિક્ષિપ્ત થાય તેણે (શું) કરવું જોઈએ તે કહે છે–

यश्चित्तस्य विजये यत्त उद्युक्तः स भिक्षुः स्यात् संन्यसेत्। तथा च स्मृतिः—
'द्वन्द्वाहतस्य गार्हस्थ्यं ध्यानभङ्गादि कारणम्।
लक्षयित्वा गृही स्पष्टं संन्यसेदविचारयन्॥'
इति।
भिक्षया प्राप्तं मितमशनं यस्य सः॥ ३०॥

જે મનુષ્ય પોતાના મન ઉપર વિજય પ્રાપ્ત કરવા માટે '**यतः**' ઉદ્યત થયો હોય તે '**भिक्षुः स्यात्**' સંન્યાસ ધારણ કરે. તે અનુસાર સ્મૃતિ છે— '(રાગ-દ્વેષાદિ) દ્વન્દ્વોથી વ્યાકુળ મનુષ્યને ગૃહસ્થાશ્રમ ધ્યાનભંગ વગેરેમાં કારણરૂપ થાય છે, એમ સ્પષ્ટ જાણીને વિચાર કર્યા વિના ગૃહસ્થ સંન્યાસ ધારણ કરે.' (મૂળ પ્રાપ્ત થયું નથી.) ભિક્ષાથી પ્રાપ્ત થયેલો મિતાહાર છે જેનો તે॥ ૩૦॥

देशे शुचौ समे राजन्संस्थाप्यासनमात्मनः।
स्थिरं समं सुखं तस्मिन्नासीतर्ज्वङ्ग ओमिति॥ ३१

હે રાજા, પવિત્ર અને સમતળ ભૂમિ ઉપર પોતાનું આસન પાથરી, સીધું (ટટ્ટાર) શરીર રાખી, ઓમ્‌નું (ઉચ્ચારણ કરતાં) સ્થિર અને સમાન ભાવે સુખ થાય તેમ બેસવું.॥ ૩૧॥

ऋजु सममङ्गं यस्य सः सुखं यथा भवत्येवमासीत। ओमित्युच्चारयन्निति शेषः॥ ३१॥

'**ऋजु**' સીધું (ટટ્ટાર) શરીર છે જેનું તે. જે રીતે સુખ (આરામ) થાય તેમ બેસવું જોઈએ. ઓમ્‌કારનું ઉચ્ચારણ કરતાં, એટલું શેષ છે. (તે ઉમેરવું.)॥ ૩૧॥

प्राणापानौ सन्निरुन्ध्यात् पूरकुम्भकरेचकैः ।
यावन्मनस्त्यजेत् कामान् स्वनासाग्रनिरीक्षणः ॥ ३२

॥ ३२ ॥

જ્યાં સુધી મન (સર્વ) કામનાઓ ત્યજે ત્યાં સુધી પોતાની નાસિકાના અગ્ર ભાગ પર દૃષ્ટિ રાખી પૂરક, કુંભક અને રેચકથી પ્રાણ અને અપાનની ગતિ રોકવી. ॥ ૩૨ ॥ ૩૨ ॥

यतो यतो निःसरति मनः कामहतं भ्रमत् ।
ततस्तत उपाहृत्य हृदि रुन्ध्याच्छनैर्बुधः ॥ ३३

॥ ३३ ॥

કામનાથી વિક્ષિપ્ત થવાને કારણે ભટકતું મન જ્યાં જ્યાંથી બહાર નીકળે (જેને વિષયરૂપ બનાવે), ત્યાં ત્યાંથી (તે તે વિષયમાંથી) પાછું ખેંચી બુદ્ધિમાન મનુષ્ય તેને ધીમે ધીમે હૃદયમાં રોકે. ॥ ૩૩ ॥ ૩૩ ॥

एवमभ्यसतश्चित्तं कालेनाल्पीयसा यतेः ।
अनिशं तस्य निर्वाणं यात्यनिन्धनवह्निवत् ॥ ३४

આમ, નિરંતર અભ્યાસ કરતા તે યતિનું ચિત્ત અલ્પકાળમાં લાકડાં વિનાના અગ્નિની જેમ શાન્તિ પામે છે. ॥ ૩૪ ॥

एवमनिशमभ्यस्यतस्तस्य यतेश्चित्तं निर्वाणं शान्तिं याति ॥ ३४ ॥

આમ, નિરંતર અભ્યાસ કરતા તે યતિનું ચિત્ત શાન્તિ પામે છે. ॥ ૩૪ ॥

न च पुनर्विक्षिप्येतेत्याह—

અને તે ચિત્ત ફરીથી વિક્ષિપ્ત થાય નહીં, એમ કહે છે—

कामादिभिरनाविद्धं प्रशान्ताखिलवृत्ति यत् ।
चित्तं ब्रह्मसुखस्पृष्टं नैवोत्तिष्ठेत कर्हिचित् ॥ ३५

બ્રહ્માનન્દનો સંસ્પર્શ પામેલું (હોવાથી) જેની અખિલ વૃત્તિઓ પ્રશાંત છે, (તેથી) વિષયાદિથી ક્ષુભિત ન થયેલું (તે) ચિત્ત ક્યારેય (બ્રહ્માનંદમાંથી) ઉત્થાન પામે નહીં. ॥ ૩૫ ॥

कामादिभिरक्षुभितं यच्चित्तं तन्नोत्तिष्ठेत्। यतः—प्रशान्ता अखिला वृत्तयो यस्य। कुतः। ब्रह्मसुखेन स्पृष्टम् ॥ ३५ ॥

વિષયાદિથી ક્ષુભિત ન થયેલું જે ચિત્ત છે તે (બ્રહ્માનંદમાંથી) ઉત્થાન પામે નહીં, કારણ કે— જેની અખિલ વૃત્તિઓ પ્રશાંત છે. કેમ? કારણ કે બ્રહ્માનન્દથી સ્પર્શ પામેલું ચિત્ત છે. ॥ ૩૫ ॥

यस्तु प्रव्रज्यां कृत्वापि भोगमपि भोगमभिलिप्सुः स्यात्तं निन्दति—**य इति**।

પરંતુ જે ભિક્ષુ સંન્યાસ ધારણ કરીને પણ ભોગને જ પ્રાપ્ત કરવાની ઈચ્છા રાખનાર થાય, તેની નિન્દા કરે છે— '**यः इति।**'

यः प्रव्रज्य गृहात् पूर्वं त्रिवर्गावपनात् पुनः ।
यदि सेवेत तान्भिक्षुः स वै वान्ताश्यपत्रपः ॥ ३६

જે ભિક્ષુ ત્રિવર્ગ (ધર્મ, અર્થ, કામ)નાં બીજ જેમાં વાવવામાં આવે છે તેવા ક્ષેત્રરૂપ ઘરમાંથી પહેલાં તો (પરિત્યાગ કરીને) સંન્યાસ લઈ જો ફરી પાછો તેમનું (તે ધર્માદિનું) સેવન કરે, તો તે નિર્લજ્જ ઓકેલું ખાનાર (કૂતરો) જ છે. ॥ ૩૬ ॥

त्रयाणां धर्मादीनां वर्ग आ समन्तादुप्यते यस्मिंस्तस्माद्गृहात् तान्धर्मादीन्। वान्ताशी छर्दितभोजी निर्लज्जश्च॥ ३६॥

જેમાં ત્રણેય ધર્માદિ વર્ગ(નાં બીજ) **'आ'** સર્વ રીતે વાવવામાં આવે છે તે ઘરમાંથી (નીકળી જઈને પણ) **'तान्'** તે ધર્માદિ ત્રણ પુરુષાર્થોનું સેવન કરે, તો તે **'वान्ताशी'** ઓકેલું ખાનારો અને બેશરમ છે.॥ ૩૬॥

न चेदमघटितं दृष्टत्वादित्याह—

વળી, આમ બનતું નથી એમ નહીં, કારણ કે જોવામાં આવ્યું છે, એમ કહે છે—

यैः स्वदेहः स्मृतो नात्मा मर्त्यो विट्कृमिभस्मसात्।
त एनमात्मसात्कृत्वा श्लाघयन्ति ह्यसत्तमाः॥
॥ ३७॥ ३७॥

જે મનુષ્યો દ્વારા પોતાનો દેહ અનાત્મા, મરણધર્મા તેમ જ વિષ્ટા, કીડા અને ભસ્મ થનારો મનાયો છે, તે જ મૂઢ જનો આ દેહને આત્મા માની પ્રશંસા કરાવે છે.॥ ૩૭॥

यैः पूर्वं स्वदेहोऽनात्मादिरूपः स्मृतश्चिन्तितस्त एव पुनरेनमात्मेति मत्वा श्लाघयन्ति स्तावयन्ति हि॥ ३७॥

જેમના દ્વારા પોતાનો દેહ પૂર્વે અનાત્મા વગેરેરૂપ **'स्मृतः'** મનાયો, તે જ મૂર્ખજનો ફરીથી આ દેહને આત્મા માનીને **'श्लाघयन्ति'** પ્રશંસા કરાવે છે.॥ ૩૭॥

यतिमुपलक्षणीकृत्यान्यानपि स्वधर्मत्यागिनो निन्दति—**गृहस्थस्येति** द्वाभ्याम्।

સંન્યાસીના ધર્મોનું પ્રતિપાદન કરીને સ્વધર્મનો ત્યાગ કરનારા અન્ય આશ્રમીઓની બે શ્લોકો વડે નિંદા કરે છે— **'गृहस्थस्य इति।'**

गृहस्थस्य क्रियात्यागो व्रतत्यागो बटोरपि।
तपस्विनो ग्रामसेवा भिक्षोरिन्द्रियलोलता॥ ३८
॥ ३८॥

ગૃહસ્થનો (નિત્ય-નૈમિત્તિકાદિ) કર્મત્યાગ, બ્રહ્મચારીનો પણ (ગુરુકુળવાસ, ગુરુસેવા વગેરે) વ્રતત્યાગ, તપસ્વીનું પુનઃ ગ્રામસેવન (ગ્રામનિવાસ) તથા સંન્યાસીની ઈન્દ્રિયલોલુપતા (આ બધું જ અનર્થકારી છે).॥ ૩૮॥ ૩૮॥

आश्रमापसदा ह्येते खल्वाश्रमविडम्बकाः।
देवमायाविमूढांस्तानुपेक्षेतानुकम्पया ॥ ३९
॥ ३९॥

આ સર્વે અધમ આશ્રમીઓ જ છે અને ખરેખર આશ્રમધર્મનો ઢોંગ કરનારા છે. પરમાત્માની માયાથી મૂઢ બનેલા એવા તેમની દયાપૂર્વક ઉપેક્ષા કરવી જોઈએ.॥ ૩૯॥ ૩૯॥

नन्वात्मतत्त्वज्ञस्य भिक्षोरिन्द्रियलौल्येऽपि को दोषस्तत्राह—

શંકા કરવામાં આવી છે કે આત્મતત્ત્વને જાણનાર યતિની ઈન્દ્રિયલોલુપતા હોવામાં દોષ પણ કયો છે?

बा.प्र.—'आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय॥'

(હે ધનંજય, આત્મવાન મનુષ્યને કર્મો બાંધતાં નથી. (ગીતા.૪/૪૧)) તે માટે ઉત્તર આપે છે—

आत्मानं चेद् विजानीयात् परं ज्ञानधुताशयः।
किमिच्छन्कस्य वा हेतोर्देहं पुष्णाति लम्पटः॥ ४०

જેની વાસનાઓ જ્ઞાનથી દૂર થઈ છે તેવો મનુષ્ય જો આત્માને પરબ્રહ્મસ્વરૂપ જાણી લે તો કયા વિષયની ઈચ્છા કરતો તે ઈન્દ્રિયલોલુપ થઈ કોને માટે (કયા ભોક્તાની તૃપ્તિ માટે) પોતાના શરીરનું પોષણ કરે?॥૪૦॥

आत्मानं परं ब्रह्म चेज्जानीयात्। ज्ञानेन धुता निरस्ता आशया वासना यस्य, तस्य ज्ञानिनो लौल्यमेव न संभवतीत्यर्थः।

જો મનુષ્ય આત્માને પરબ્રહ્મસ્વરૂપ જાણી લે, તો જ્ઞાનથી '**धुताः**' દૂર થઈ છે '**आशयाः**' વાસનાઓ જેની તે જ્ઞાનીને ઈન્દ્રિયલોલુપતા સંભવતી જ નથી. (કારણ કે **वंशीधरी— 'लौल्यहेतोरज्ञानस्य नष्टत्वादिति भावः'—** લોલુપતાના મૂળ કારણરૂપ અજ્ઞાન જ નષ્ટ થઈ ગયું હોય છે.) એમ અર્થ છે.

तथा च श्रुतिः—
'आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः।
किमिच्छन्कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्॥'
इति॥ ४०॥

તે અનુસાર જ શ્રુતિ છે. 'હું આ (નિત્ય, શુદ્ધ, બુદ્ધ, મુક્ત બ્રહ્મ) છું એમ આત્માને પુરુષ જો જાણી લે, તો કયા વિષયને ઈચ્છતો તે કયા ભોગ માટે શરીર પાછળ દુઃખી થાય?' (બૃહદા.ઉપ.૪/૪/૧૨) ॥૪૦॥

अज्ञस्य तु लौल्येन नरकपातापत्तेरप्रमत्तेन सदा तत्त्वज्ञाने यतितव्यमितीममर्थं 'आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च।' इत्यादिश्रुत्युक्त-रथरूपकद्वारेणाह—**आहुरिति** षड्भिः।

અજ્ઞાની મનુષ્યને તો ઈન્દ્રિયોની લોલુપતાને કારણે નરકમાં પડવાનો પ્રસંગ આવી પડવાથી તેણે સદાય સાવધાનીપૂર્વક તત્ત્વજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવા માટે પ્રયત્ન કરવો જોઈએ. એ જ આશય 'આત્માને રથી અને શરીરને રથ જાણ.' (કઠ.ઉપ. ૧/૩/૩) વગેરે શ્રુતિમાં કહેવામાં આવેલા રથના રૂપક દ્વારા છ શ્લોકોથી કહે છે— '**आहुः इति।**'

आहुः शरीरं रथमिन्द्रियाणि
हयानभीषून् मन इन्द्रियेशम्।
वर्त्मानि मात्रा धिषणां च सूतं
सत्त्वं बृहद् बन्धुरमीशसृष्टम्॥ ४१

(વિદ્વાનો) શરીરને રથ કહે છે, ઈન્દ્રિયોને ઘોડા, ઈન્દ્રિયોના નિયન્તા મનને લગામ, શબ્દાદિ વિષયોને (જુદા જુદા) માર્ગો, બુદ્ધિને સારથિ અને ચિત્તને (દેહરૂપે વ્યાપેલું) ઈશ્વરનિર્મિત વિશાળ દોરડું કહે છે.॥૪૧॥

इन्द्रियेशं मनोऽभीषून् रश्मीनाहुः—मात्राः शब्दादीन्वर्त्मानि गन्तव्यदेशानाहुः। सत्त्वं चित्तं बृहद्देहव्यापि बन्धुरं बन्धनम्। चित्तं विना ह्यनिबद्धमिव शरीरं भवति। ईशसृष्टमिति, बन्धनकर्ता त्वीश एवेत्यर्थः॥ ४१ ॥

'इन्द्रियेशम्' ઇન્દ્રિયોના નિયંતા મનને **'अभीषून्'** લગામ કહે છે— **'मात्राः'** શબ્દાદિ વિષયોને **'वर्त्मानि'** (જુદા જુદા) માર્ગો, જવા યોગ્ય દેશ કહે છે. **'सत्त्वम्'** ચિત્તને **'बृहत्'** દેહરૂપે વ્યાપેલું વિશાળ **'बन्धुरम्'** બંધન (દોરડું). ખરેખર, ચિત્ત વિના શરીર અસમ્બદ્ધ બને છે. **'ईशसृष्टम् इति।'** ઈશ્વર દ્વારા જ સર્જાયેલું બંધન છે, એમ અર્થ છે. (**वंशीधरी—'ईश्वरमायया बद्धत्वेऽपि तदाश्रयत्वादीश उपचर्यत इति भावः'**—ઈશ્વરની માયાથી બદ્ધ હોવા છતાં તે ચિત્ત ઈશ્વરનો આશ્રય હોવાથી ચિત્તને લક્ષણાથી ઈશ્વર કહેવાય એવો ભાવ છે.)

अक्षं दशप्राणमधर्मधर्मौ
चक्रेऽभिमानं रथिनं च जीवम्।
धनुर्हि तस्य प्रणवं पठन्ति
शरं तु जीवं परमेव लक्ष्यम्॥ ४२

(વિદ્વાનો) દશ પ્રાણને (રથની) ધરી કહે છે, ધર્મ અને અધર્મને (રથનાં બે) પૈડાં કહે છે, અભિમાની જીવને રથી કહે છે, પ્રણવ (ૐકાર)ને તે જીવનું ધનુષ્ય, (શુદ્ધ) જીવને બાણ અને પરબ્રહ્મને લક્ષ્ય કહે છે.॥ ૪૨ ॥

प्राणादयः पञ्च 'नागः कूर्मश्च कृकलो देवदत्तो धनंजयः' इत्येवं दशविधं प्राणमक्षम्। अभिमानं साहंकारं जीवं रथिनम्। शुद्धं जीवं शरम्। परं ब्रह्म लक्ष्यम्। यथा धनुषा शरो लक्ष्ये निपात्यते तथा प्रणवेन जीवो ब्रह्मणि निपात्यत इत्यर्थः॥ ४२ ॥

પાંચ પ્રાણ (પ્રાણ, અપાન, વ્યાન, સમાન, ઉદાન) તથા નાગ, કૂર્મ, કૃકલ, દેવદત્ત, ધનંજય— એમ દશ પ્રકારના પ્રાણને રથની ધરી (કહે છે). **'अभिमानम्'** અહંકારસહિત જીવને રથમાં બેસનારો (રથી કહે છે). શુદ્ધ જીવને બાણ કહે છે. પરબ્રહ્મને લક્ષ્ય કહે છે. જેવી રીતે ધનુષ્યથી બાણ લક્ષ્ય ઉપર છોડવામાં આવે છે, તેમ પ્રણવ દ્વારા જીવ બ્રહ્મમાં પ્રવેશ પામે છે, એમ અર્થ છે.॥ ૪૨ ॥

वीर.—
'प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥'
इति।

'(હે સોમ્ય), ઓંકાર ધનુષ્ય છે, સોપાધિક આત્મા જ બાણ છે અને અક્ષર બ્રહ્મ તેનું લક્ષ્ય કહેવામાં આવ્યું છે. સાવધાનીથી એ લક્ષ્યનો વેધ કરવો જોઈએ (અને લક્ષ્યવેધ પછી) બાણની જેમ જ લક્ષ્યની સાથે તન્મય થઈ જવું જોઈએ.' (મું.ઉપ.૨/૨/૪)

ह्यन्यत्राप्युक्तं विप्रकृष्टयोः शरलक्ष्ययोरिव जीवपरयोः सम्बन्धज्ञानहेतुत्वात्प्रणवो धनुरुक्तम्।'

रागो द्वेषश्च लोभश्च शोकमोहौ भयं मदः।
मानोऽवमानोऽसूया च माया हिंसा च मत्सरः॥ ४३
रजः प्रमादः क्षुन्निद्रा शत्रवस्त्वेवमादयः।
रजस्तमःप्रकृतयः सत्त्वप्रकृतयः क्वचित्॥ ४४

રાગ, દ્વેષ અને લોભ, શોક અને મોહ, ભય, મદ, માન, અપમાન, અસૂયા (બીજાના ગુણોમાં દોષારોપણ), માયા, હિંસા અને મત્સર (બીજાની ઉન્નતિ સહન ન કરવી તે),॥ ૪૩॥ (અભિનિવેશ) આસક્તિ, પ્રમાદ, ક્ષુધા, નિદ્રા વગેરે એવા બીજા પણ શત્રુઓ છે. કેટલીક વાર રજોગુણ અને તમોગુણ જેમનું મૂળ કારણ છે તેવી પ્રવૃત્તિઓ અને કેટલીક વાર સત્ત્વગુણ જેમનું મૂળ કારણ છે તેવી પ્રવૃત્તિઓ પણ શત્રુરૂપ થાય છે.॥ ૪૪॥

रागादयो जेतव्याः शत्रवः॥ ४३॥

तत्र रजोऽभिनिवेशः। क्वचिदारूढसमाधेः सत्त्वप्रकृतयोऽपि परोपकारादिप्रवृत्तयः शत्रवः॥ ४४॥

રાગાદિ જીતવા યોગ્ય શત્રુઓ છે.॥ ૪૩॥

'तत्र' તે બધામાં **'रजः'** આસક્તિ– કેટલીક વાર **'आरूढसमाधेः'** સમાધિમાં આરૂઢ થયેલાની પણ **'सत्त्वप्रकृतयः'** પરોપકારાદિ પ્રવૃત્તિઓ શત્રુઓ છે.॥ ૪૪॥

यावन्नृकायरथमात्मवशोपकल्पं
धत्ते गरिष्ठचरणार्चनया निशातम्।
ज्ञानासिमच्युतबलो दधदस्तशत्रुः
स्वाराज्यतुष्ट उपशान्त इदं विजह्यात्॥ ४५

પોતાને વશ એવા ઇન્દ્રિયાદિ સમૂહવાળા મનુષ્યશરીરરૂપી રથને જ્યાં સુધી મનુષ્ય ધારણ કરે છે, ત્યાં સુધીમાં જ શ્રેષ્ઠ ગુરુજનોના ચરણોની સેવાથી તીક્ષ્ણ કરેલી જ્ઞાનરૂપી તલવાર ધારણ કરી, (કેવળ) શ્રીઅચ્યુત ભગવાનના આશ્રયવાળા થઈ, શત્રુઓનો નાશ કરી, શાંતચિત્ત થઈ અને નિજાનંદથી તુષ્ટ થઈ આ (શરીરરૂપી) રથનો ત્યાગ કરવો.॥ ૪૫॥

नृकायरूपं रथमात्मवशः उपकल्प इन्द्रियादिपरिकरो यस्मिंस्तथाभूतं यावद्धत्ते तावदेव गरिष्ठानां गुरूणां चरणसेवया निशितं

પોતાને વશ મનુષ્યશરીરરૂપી રથને, જેમાં ઇન્દ્રિયાદિ સમૂહ સમર્થ છે, તેવો થઈ જ્યાં સુધી મનુષ્ય ધારણ કરે છે, ત્યાં સુધીમાં જ **'गरिष्ठानाम्'** શ્રેષ્ઠ ગુરુજનોના ચરણોની સેવાથી

ज्ञानखड्गं बिभ्रदच्युताश्रयः सन्निरस्तशत्रुरुपशान्तः स्वानन्देन तुष्टो भूत्वेदं रथादिकमुपेक्षेतेत्यर्थः ॥ ४५ ॥

તીક્ષ્ણ કરેલી જ્ઞાનરૂપી તલવાર ધારણ કરી, શ્રીઅચ્યુત ભગવાનના આશ્રયવાળા થઈ, શત્રુઓનો નાશ કરી, શાંત ચિત્તવાળા થઈ અને નિજાનંદથી તુષ્ટ થઈ આ (શરીરરૂપી) રથની ઉપેક્ષા કરવી, એમ અર્થ છે. ॥ ૪૫ ॥

अच्युताश्रयाभावे बाधकमाह—**नो चेदिति**।

શ્રીઅચ્યુત ભગવાનના આશ્રય વિના સાધ્ય સિદ્ધ નહીં થાય, એમ કહે છે—**'नो चेत् इति।'**

नो चेत् प्रमत्तमसदिन्द्रियवाजिसूता
नीत्वोत्पथं विषयदस्युषु निक्षिपन्ति।
ते दस्यवः सहयसूतममुं तमोऽन्धे
संसारकूप उरुमृत्युभये क्षिपन्ति॥ ४६

જો એમ નહીં હોય તો (જો રથીને અચ્યુત ભગવાનની ભક્તિનું બળ નહીં હોય તો) દુષ્ટ (ઇન્દ્રિયોરૂપી) ઘોડા અને (બુદ્ધિરૂપી) સારથિ તે અસાવધાન જીવને અવળે માર્ગે લઈ જઈને વિષયોરૂપી લૂંટારાઓ વચ્ચે લાવી મૂકે છે. તે લૂંટારાઓ ઘોડાઓ અને સારથિ સાથે રહેલા એ જીવને અંધકારથી વ્યાપ્ત અને મૃત્યુથી અત્યંત ભયાનક એવા સંસારરૂપી કૂવામાં ફેંકે છે. ॥ ૪૬ ॥

असन्तो बहिर्मुखा ये इन्द्रियवाजिनः सूतश्च ते उत्पथं प्रवृत्तिमार्गं नीत्वा विषयाख्येषु दस्युषु निक्षिपन्ति। हयैः सूतेन च सह वर्तमानम्। तमोऽन्धे तमसा व्याप्ते। उरु मृत्युभयं यस्मिन्॥ ४६ ॥

દુષ્ટ, બહિર્મુખ એવા જે ઇન્દ્રિયોરૂપી ઘોડાઓ અને (બુદ્ધિરૂપી) સારથિ છે, તેઓ **'उत्पथम्'** અવળે માર્ગે, પ્રવૃત્તિના માર્ગે લઈ જઈને વિષયોરૂપી લૂંટારાઓ વચ્ચે લાવી મૂકે છે. (તે લૂંટારાઓ) ઘોડાઓ અને સારથિ સાથે રહેલા એ જીવને **'तमःअन्धे'** અંધકારથી વ્યાપેલા, જેમાં મૃત્યુનો અત્યંત ભય છે તેવા સંસારરૂપી કૂવામાં ફેંકે છે. ॥ ૪૬ ॥

ननु वेदविहितेष्टापूर्तादिकारिणः पुंसः कथमेवमनर्थप्राप्तिः स्यादित्याशङ्क्य वेदोक्तकर्मणां द्वैविध्यं दर्शयन्फलभेदमाह—**प्रवृत्तं चेति** दशभिः।

શંકા કરવામાં આવી છે કે વેદમાં કહેલાં ઇષ્ટ અને પૂર્ત વગેરે કર્મો કરનાર મનુષ્યને અનર્થની પ્રાપ્તિ થાય જ કેવી રીતે? આવી શંકા કરીને વેદોક્ત કર્મની દ્વિવિધતા દર્શાવતાં દશ શ્લોકો દ્વારા ફળભેદ જણાવે છે— **'प्रवृत्तं च इति।'**

प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम्।
आवर्तेत प्रवृत्तेन निवृत्तेनाश्नुतेऽमृतम्॥ ४७ ॥ ४७ ॥

વૈદિક કર્મો બે પ્રકારનાં છે, પ્રવૃત્તિપરક અને નિવૃત્તિપરક. પ્રવૃત્તિપરક કર્મથી મનુષ્ય સંસારમાં પાછો ફરે છે અને નિવૃત્તિપરક કર્મથી મનુષ્ય પરમાત્માને પ્રાપ્ત કરે છે.॥ ૪૭ ॥ ૪૭ ॥

हिंस्रं द्रव्यमयं काम्यमग्निहोत्राद्यशान्तिदम्।
दर्शश्च पूर्णमासश्च चातुर्मास्यं पशुः सुतः॥ ४८

(શ્યેનયાગાદિ) હિંસામય કર્મ, અશાંતિ આપનાર દ્રવ્યમય અગ્નિહોત્રાદિ કર્મ, દર્શ, પૂર્ણમાસ, ચાતુર્માસયાગ, પશુયાગ, સોમયાગ, ॥ ૪૮ ॥

एतदिष्टं प्रवृत्ताख्यं हुतं प्रहुतमेव च।
पूर्तं सुरालयारामकूपाजीव्यादिलक्षणम्॥ ४९

વૈશ્વદેવ અને બલિહરણ વગેરે દ્રવ્યમય સકામ કર્મને ઈષ્ટ કહેવાય છે તથા દેવાલય, બગીચા, કૂવા બંધાવવા, પરબ બેસાડવી વગેરે કર્મને પૂર્ત કહેવાય છે. ઈષ્ટ અને પૂર્ત– આ કર્મ પ્રવૃત્તિપરક કહેવાય છે. (અને જો સકામ હોય તો અશાંતિ આપનારું છે.)॥ ૪૯ ॥

हिंस्रं श्येनादिकर्म। अशान्तिदमत्यासक्तियुक्तम्। आदिशब्दार्थविवरणं दर्शश्चेति। पशुः पशुयागः। सुतः सोमयागः॥ ४८ ॥

‘**हिंस्रम्**’ શ્યેનયાગાદિ હિંસામય કર્મ ‘**अशान्तिदम्**’ અશાંતિ આપનારું, અત્યંત આસક્તિથી યુક્ત છે. ‘**आदि**’ શબ્દના અર્થનું વિવરણ ‘**दर्शः च इति।**’માં કરવામાં આવ્યું છે. ‘**पशुः**’ પશુયાગ, ‘**सुतः**’ સોમયાગ॥ ૪૮ ॥

हुतं वैश्वदेवम्। प्रहुतं बलिहरणम्। एतत्सर्वमिष्टमुच्यते—एतदेव यदि काम्यमशान्तिदं च तर्हि प्रवृत्ताख्यमपीत्यर्थः। आजीव्यं प्रपादि॥ ४९ ॥

‘**हुतम्**’ વૈશ્વદેવ, ‘**प्रहुतम्**’ બલિહરણ– આ સર્વ ઈષ્ટકર્મ કહેવાય છે– આ જ જો સકામ હોય તો અશાન્તિ આપનારું છે અને તેથી પ્રવૃત્તિપરક પણ કહેવાય છે, એમ અર્થ છે. ‘**आजीव्यम्**’ પરબ વગેરે॥ ૪૯ ॥

द्रव्यसूक्ष्मविपाकश्च धूमो रात्रिरपक्षयः।
अयनं दक्षिणं सोमो दर्श ओषधिवीरुधः॥ ५०

પ્રવૃત્તિપરાયણ મનુષ્ય (ચરુપુરોડાશાદિ યજ્ઞીય) દ્રવ્યના સૂક્ષ્મ વિપાકથી યુક્ત થઈ ધૂમાભિમાની દેવતાઓ પાસે જાય છે. (પછી ત્યાંથી) રાત્રિના, કૃષ્ણપક્ષના અને દક્ષિણાયનના અભિમાની દેવતાઓ પાસે જાય છે અને ત્યાંથી ચન્દ્રલોકને પ્રાપ્ત થાય છે. ચંદ્રલોકમાં ભોગ સમાપ્ત થતાં અમાવસ્યાના ચંદ્રની જેમ ક્ષીણ થઈ વિલીન થયેલા દેહવાળો તે વૃષ્ટિ દ્વારા ઔષધિ, લતા,.........॥ ૫૦ ॥

अन्नं रेत इति क्ष्मेश पितृयानं पुनर्भवः।
एकैकश्येनानुपूर्वं भूत्वा भूत्वेह जायते॥ ५१

અન્ન, વીર્ય– એમ એક પછી એક ક્રમશઃ પ્રત્યેકની સાથે સામીપ્ય પામીને પિતૃયાનમાર્ગથી આ લોકમાં જ હે પૃથ્વીપતિ, પુનર્જન્મ પામે છે.॥ ૫૧ ॥

प्रवृत्तेन कर्मणा आरोहावरोहाभ्यामावृत्ति-प्रकारमाह—

પ્રવૃત્તિવાળા કર્મથી ઊર્ધ્વગમન અને અધોગમન દ્વારા (આ લોકમાં) પાછા ફરવાનો પ્રકાર જણાવે છે–

द्रव्यस्य चरुपुरोडाशादेः सूक्ष्मो विपाकः। परिणामो देहान्तरारम्भको येन संपरिष्वक्तो गच्छति य एव श्रुतौ अप्शब्देनोक्तः। 'इति तु पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्ति' इति।

'**द्रव्यस्य**' ચરુ, પુરોડાશ વગેરે દ્રવ્યનો સૂક્ષ્મ ભાગ, '**विपाकः**' પરિણામ પામે છે અને બીજા દેહનો આરંભ કરનાર બને છે, કે જેનાથી વીંટળાઈને પુરુષ જાય છે. તે જ પદાર્થ શ્રુતિમાં '**अप्**' શબ્દથી કહેવામાં આવ્યો છે. 'આ પ્રમાણે પાંચમી આહુતિમાં પાણી મનુષ્યની સંજ્ઞાવાળું બને છે.' (છાં.ઉપ.૫/૯/૧)

पाठान्तरे द्रव्यशब्देन तेजोमात्राशब्दोक्ता-नीन्द्रियाणि। ऊष्मविपाकशब्देन हृदयाग्रप्रद्योतः। तथा च श्रुतिः—

પાઠાન્તરમાં '**द्रव्यसूक्ष्मविपाकश्च**' ને બદલે (**द्रव्यमूष्मविपाकश्च** હોય તો) દ્રવ્ય શબ્દથી (શ્રુતિમાં કહેલ) '**तेजोमात्रा**' શબ્દથી ઈન્દ્રિયોનું ગ્રહણ કરવું. '**ऊष्मविपाक**' શબ્દ દ્વારા, મૃત્યુ સમયે હૃદયની આગળ થતો પ્રકાશ, સમજવું. તે અનુસાર જ શ્રુતિ છે–

'स इमास्तेजोमात्राः समभ्याददानो हृदयमेवान्वक्रामत्' इति, तथा—'तस्य हैतस्य हृदयाग्रं प्रद्योतते तेनैष आत्मा निष्क्रामति' इति।

'તે જીવાત્મા ઈન્દ્રિયોને સમ્યક્ રીતે ગ્રહણ કરીને હૃદયમાં પ્રવિષ્ટ થાય છે.'– (બૃહદા.ઉપ.૪/૪/૧) તથા 'તે સમયે હૃદયમાં ઈન્દ્રિયોનો ઉપસંહાર થઈ જતાં હૃદયચ્છિદ્રનું નિર્ગમનદ્વાર જ્ઞાનવાન (અત્યંત પ્રકાશિત) થવા લાગે છે. (ભાવિદેહવિષયક જ્ઞાન થાય છે.) તેનાથી આ આત્મા બહાર નીકળે છે.' (બૃહદા.ઉપ. ૪/૪/૨)

धूमादिशब्दैस्तत्तदभिमानिन्यो देवताः तत्रापक्षयः कृष्णपक्षः। सोमः सोमलोकः।

ધૂમાદિ શબ્દો દ્વારા તે સર્વના અભિમાની દેવતાઓ સમજવા. તેમાં '**अपक्षयः**' કૃષ્ણપક્ષ, '**सोमः**' ચન્દ્રલોક

तत्र भुक्तभोगस्यावरोहणप्रकारमाह—दर्श इत्यादि। विपरीतलक्षणया विशिष्टभोगक्षय-शोकाग्निना देहलयेनादर्शनमुच्यते।

તે ચંદ્રલોકમાં ભોગો ભોગવી ચૂકેલા જીવના અવરોહણનો પ્રકાર કહે છે— **'दर्शः इत्यादि।'** દર્શ શબ્દ દ્વારા વિપરીત લક્ષણાથી વિશિષ્ટ ભોગોનો ક્ષય થવાથી થતા શોકાગ્નિ દ્વારા દેહનો લય થવાથી અદર્શન કહેવામાં આવ્યું છે.

(**अन्वि.**—यद्वा चन्द्रक्षयवत्या अमावास्यया देहक्षयो लक्षितः।)

(અથવા ચન્દ્રના ક્ષયવાળી અમાવાસ્યાથી દેહનો ક્ષય લક્ષિત થાય છે.)

एतदुक्तं भवति—भूतसूक्ष्मयुक्तो धूमाद्यातिवाहिकदेवताभिः सोमलोकं प्रापितस्तद्भोगावसाने विलीनदेहो वृष्टिद्वारेणौषधि-वीरुधादिसाम्यापत्तिक्रमेण जायते।

એ જ કહેવામાં આવ્યું છે— ભૂતસૂક્ષ્મથી યુક્ત થયેલો જીવ ધૂમાદિ (આગળ વહન કરાવનારા) આતિવાહિક દેવતાઓ દ્વારા ચન્દ્રલોકને પ્રાપ્ત થયો હોય છે. ત્યાં ભોગ સમાપ્ત થતાં વિલીન થયેલા દેહવાળો તે વૃષ્ટિ દ્વારા ઔષધિ, લતા વગેરે સામ્યની પ્રાપ્તિ કરતાં કરતાં ક્રમથી જન્મે છે.

एवं पुनर्भवहेतुः—पितृयानं प्रवृत्तकर्ममार्ग इति॥ ५०॥

આમ, પિતૃયાન પ્રવૃત્તકર્મમાર્ગ હોવાથી પુનર્જન્મનું કારણ છે.॥ ૫૦॥

क्ष्मेश हे भूपते। पुनर्भवमेवाह—एकैकश्येन प्रत्येकं क्रमेण भूत्वा तत्तत्सान्निध्यं प्राप्येह भूमौ जायते॥ ५१॥

'क्ष्मा-ईश' હે પૃથ્વીપતિ. પુનર્જન્મનું જ વર્ણન કરે છે— **'एकैकश्येन'** (ઔષધિ, લતા, અન્ન, વીર્ય એમ) એક પછી એક પ્રત્યેકમાં ક્રમશઃ તે તેની સાથે સાન્નિધ્ય પ્રાપ્ત કરીને **'इह'** અહીં પૃથ્વી ઉપર જન્મે છે.॥ ૫૧॥

एतत्तृतीयस्कन्धे 'गत्वा चान्द्रमसं लोकं सोमपाः पुनरेष्यति'—

'ચંદ્રલોકમાં જઈ સોમરસનું પાન કરનાર થઈ જીવ ત્યાંથી પાછો આ લોકમાં આવે છે.' (શ્રીમદ્ભા.૩/૩૨/૩)

तत्राधिकारिणमाह—**निषेकादीति**।

तत्र તે પ્રવૃત્તિમાર્ગમાં અધિકારીનું વર્ણન કરે છે— **'निषेकादि इति।'**

निषेकादिश्मशानान्तैः संस्कारैः संस्कृतो द्विजः।
इन्द्रियेषु क्रियायज्ञान् ज्ञानदीपेषु जुह्वति॥ ५२

ગર્ભાધાનથી સ્મશાન સુધીના સંસ્કારોથી સંસ્કૃત થયેલો દ્વિજ (પ્રવૃત્તિમાર્ગનો અધિકારી છે). (નિવૃત્તકર્મમાં નિષ્ઠ હોય તે મનુષ્ય) જ્ઞાનથી તેજસ્વી થઈ હોય તેવી જ્ઞાનેન્દ્રિયોમાં (ઇષ્ટપૂર્તાદિ) ક્રિયાયજ્ઞોને હોમી દે છે.॥ ૫૨॥

अन्यस्त्विष्टादिकार्यप्येवं जन्म न लभत इत्यर्थः।

બીજો (વિવેકી) તો (નિવૃત્તકર્મનિષ્ઠ આસક્તિનો અભાવ હોવાથી) ઈષ્ટાદિ કર્મ કરનાર હોવા છતાં આ પ્રમાણે જન્મ નથી પામતો, એમ અર્થ છે.

निवृत्तकर्मनिष्ठस्योपासनादिविशेषमुपदिशन्नर्चिरादिमार्गेण ब्रह्मलोकप्राप्तिमाह—इन्द्रियेष्वित्यादिना। यद्वा द्रव्ययज्ञेषु हिंसाया दुर्निवारत्वादतिमुख्यं निवृत्तं कर्मैव दर्शयन्नाह।

નિવૃત્તકર્મનિષ્ઠ મનુષ્યને વિશિષ્ટ ઉપાસનાદિનો ઉપદેશ કરીને અર્ચિ વગેરે માર્ગથી બ્રહ્મલોકની પ્રાપ્તિ જણાવે છે— **'इन्द्रियेषु'** ઈત્યાદિથી, અથવા દ્રવ્યયજ્ઞોમાં હિંસા મુશ્કેલીથી નિવારી શકાતી હોવાથી અતિમુખ્ય નિવૃત્ત કર્મ જ દર્શાવતાં કહે છે.

ज्ञानेन दीप्यन्त इति तथा तेषु। इन्द्रियव्यापाराणामिष्टापूर्तादीनामिन्द्रियतावन्मात्रतां भावयन्तीत्यर्थः। एवमुत्तरत्रापि॥५२॥

'ज्ञानेन दीप्यन्ते इति।' જ્ઞાનથી તેજસ્વી થઈ હોય તેવી જ્ઞાનેન્દ્રિયોમાં (ઈષ્ટપૂર્તાદિ ક્રિયાયજ્ઞોને હોમી દે છે). ઈન્દ્રિયોના વ્યાપારરૂપ ઈષ્ટપૂર્તાદિ સર્વ પ્રવૃત્તકર્મોને ઈન્દ્રિયરૂપ જ માને છે, એમ અર્થ છે. પછીના ભાગમાં (શ્લોક-૫૩થી) આ પ્રમાણે સમજવું.॥૫૨॥

(શ્લોક-૫૨ માં) કર્તા **'द्विजः'** એકવચન છે અને ક્રિયાપદ **'जुह्वति'** બહુવચન છે. તેથી **'द्विजः एतन्मार्गं प्राप्नोतीति शेषः'** એટલું શેષ છે તે ઉમેરવું. શ્લોકના ઉત્તરાર્ધમાં **तत् सदृशाः द्विजाः**—એમ કર્તા ઉમેરીને તેની સાથે **जुह्वति** ક્રિયાપદ જોડીએ છીએ.

इन्द्रियाणि मनस्यूर्मौ वाचि वैकारिकं मनः।
वाचं वर्णसमाम्नाये तमोङ्कारे स्वरे न्यसेत्।
ओङ्कारं बिन्दौ नादे तं तं तु प्राणे महत्यमुम्॥५३

(ચક્ષુ વગેરે) ઈન્દ્રિયોને દર્શન આદિના સંકલ્પરૂપ મનમાં, વિકારયુક્ત મનને (પરા) વાણીમાં, (પરા) વાણીને વર્ણોના સમુદાયમાં, વર્ણોના તે સમુદાયને ઓંકારસ્વરમાં, ઓંકારને બિંદુમાં, તે બિંદુને નાદમાં, તે નાદને સૂત્રાત્મક પ્રાણમાં અને તે પ્રાણને પરબ્રહ્મમાં લય કરે છે. (હોમે છે.)॥૫૩॥

ऊर्मौ दर्शनादिसंकल्परूपे मनसि। वैकारिकं विकारयुक्तं मनो वाचि। विध्यादिलक्षणया वाचा हि मनः कर्तृत्वादिविकारं भजति। वर्णानां समाम्नाये समुदाये। तद्विशेषत्वाद्वाचः।

'ऊर्मौ' દર્શનાદિ સંકલ્પરૂપ મનમાં ઈન્દ્રિયોને, **'वैकारिकम्'** વિકારયુક્ત મનને વાણીમાં– વિધિ વગેરે લક્ષણવાળી વાણીથી જ મન કર્તૃત્વાદિ વિકાર સેવે છે. (વાણીને) વર્ણોના **'समाम्नाये'** સમુદાયમાં લય કરે છે, કારણ કે તે વર્ણસમુદાય વાણીના વિશેષરૂપ છે.

स्वरे अकारादिस्वरत्रयात्मके। ओकारं बिन्दौ, तं च नादे। प्राणे सूत्रात्मनि। महति ब्रह्मणि ॥ ५३ ॥

(વર્ણસમુદાયને) **'स्वरे' अ** કારાદિ **('अ उ म्')** ત્રણ સ્વરરૂપ (ઓંકારમાં), ઓંકારને બિંદુમાં, તે બિંદુને નાદમાં, નાદને સૂત્રાત્મક પ્રાણમાં અને પ્રાણને **'महति'** પરબ્રહ્મમાં લય કરે છે. ॥ ૫૩ ॥

अग्निः सूर्यो दिवा प्राह्णः शुक्लो राकोत्तरं स्वराट्।
विश्वश्च तैजसः प्राज्ञस्तुर्य आत्मा समन्वयात्॥
॥ ५४ ॥

(નિવૃત્ત કર્મનિષ્ઠ જ્ઞાની) અગ્નિ, સૂર્ય, દિવસ, સાયંકાળ, શુક્લપક્ષ, પૂર્ણિમા અને ઉત્તરાયણના અભિમાની દેવતાઓ જે છે, તેમને પ્રાપ્ત થઈ (બ્રહ્મલોકમાં) બ્રહ્મદેવને પ્રાપ્ત થાય છે. (ત્યાં ભોગ સમાપ્ત કરીને) પછી વિશ્વ, તૈજસ, પ્રાજ્ઞરૂપ થઈ સર્વના સાક્ષીરૂપે અનુસરતા સાક્ષીસ્વરૂપમાં (કારણોપાધિક પ્રાજ્ઞરૂપ વિલીન કરી) તુરીયરૂપ શુદ્ધાત્મા બને છે. ॥ ૫૪ ॥

अग्निरिति। तत्तदभिमानिन्यो देवतास्ताः। प्राप्नोतीति पूर्ववत्। दिवाऽहः। प्राह्णस्तस्यैवान्तः। राका शुक्लपक्षस्यान्तः। यद्वा प्राह्णो राका इति च पुराणमतम्।

'अग्निः इति।' તે તે (અગ્નિ વગેરે) અભિમાની દેવતાઓ– તેમને જ્ઞાની પ્રાપ્ત થાય છે, એ પૂર્વવત્ છે. **'दिवा'** દિવસ, (બીજી વિભક્તિ છે) **'प्राह्णः'** તેનો (તે દિવસનો) જ અંત (સાયંકાળ), **'राका'** શુક્લપક્ષનો અંત– પૂર્ણિમા, અથવા **'प्राह्णो' 'राका'** પ્રાહ્ણ એ જ રાકા છે, એમ પુરાણમત છે.

उत्तरं त्वयनम्। स्वराट् ब्रह्मा। एवं ब्रह्मलोकं गतस्य भोगावसाने मोक्षप्रकारमाह—**विश्व इति**। विश्वः स्थूलोपाधिः स स्थूलं सूक्ष्मे विलाप्य सूक्ष्मोपाधिस्तैजसो भवति। सूक्ष्मं कारणे विलाप्य कारणोपाधिः प्राज्ञो भवति। कारणं च सर्वसाक्षित्वेनान्वयात्साक्षिस्वरूपे विलाप्य तुर्यो भवति। तेषां च व्यभिचारिणां साक्ष्याणां लये शुद्ध आत्मा भवति। मुच्यत इत्यर्थः ॥ ५४ ॥

'उत्तरम्' ઉત્તરાયણ– **'स्वराट्'** બ્રહ્મા– આમ, બ્રહ્મલોકમાં ગયેલા જ્ઞાનીનો ભોગ પૂરો થતાં તેના મોક્ષનો પ્રકાર વર્ણવે છે— **'विश्वः इति।' 'विश्वः'** સ્થૂળોપાધિક એવો તે સ્થૂળ ઉપાધિને સૂક્ષ્મમાં વિલીન કરી સૂક્ષ્મ ઉપાધિવાળો તૈજસ બને છે. સૂક્ષ્મ ઉપાધિને (મનને પણ) કારણમાં વિલીન કરી (અજ્ઞાનરૂપ) કારણરૂપ ઉપાધિવાળો પ્રાજ્ઞ બને છે. પછી **'समन्वयात्'** કારણને (અજ્ઞાનને) **'समन्वयात्'** સાક્ષીરૂપે અનુસરતા સાક્ષીસ્વરૂપમાં વિલીન કરીને તુરીયરૂપ બને છે. તે તે (ઉપાધિરૂપ) મિથ્યા સાક્ષીઓનો લય થતાં શુદ્ધ આત્મા બને છે, મુક્ત થાય છે, એમ અર્થ છે. ॥ ૫૪ ॥

देवयानमिदं प्राहुर्भूत्वा भूत्वाऽनुपूर्वशः ।
आत्मयाज्युपशान्तात्मा ह्यात्मस्थो न निवर्तते ॥ ५५

આ માર્ગને (વિદ્વાનો) દેવયાન કહે છે. (જેમ ધૂમાદિ માર્ગે જનારો બીજો કર્મનિષ્ઠ) એક પછી એક દેવતાઓની પાસે તે તે સ્વરૂપ થઈ થઈને પાછો ફરે છે, તેમ (આત્માનું યજન કરનાર) પરમાત્માનો ઉપાસક, શાંતચિત્ત, આત્મનિષ્ઠ (જ્ઞાની) (એક પછી એક ક્રમશઃ દેવતાઓની પાસેથી) બ્રહ્મલોકમાં જઈ પાછો ફરતો નથી. ॥ ૫૫ ॥

यथेतरो भूत्वा निवर्तते तथा न निवर्तत इत्यर्थः ॥ ५५ ॥

જેમ બીજો (એટલે કે ધૂમાદિ માર્ગે જનારો કર્મનિષ્ઠ એક પછી એક દેવતાઓની પાસે તે તે સ્વરૂપ થઈ થઈને) પાછો ફરે છે, તેમ (આત્મસ્થ જ્ઞાની) પાછો ફરતો નથી, એમ અર્થ છે. ॥ ૫૫ ॥

य एते पितृदेवानामयने वेदनिर्मिते ।
शास्त्रेण चक्षुषा वेद जनस्थोऽपि न मुह्यति ॥ ५६

વેદ દ્વારા પ્રકાશિત કરવામાં આવેલા પિતૃયાન અને દેવયાન– આ બંને માર્ગોને જે મનુષ્ય શાસ્ત્રની દૃષ્ટિથી (યથાર્થસ્વરૂપે તત્ત્વતઃ) જાણે છે, તે શરીરમાં રહ્યો હોવા છતાં મોહ પામતો નથી. ॥ ૫૬ ॥

वेदेन निर्मिते 'ते धूममभिसंभवन्ति' इत्यादिना, 'ते अर्चिरभिसंभवन्ति' इत्यादिना च निश्चयेन विविच्य ज्ञापिते इत्यर्थः । जनस्थोऽपि देहस्थोऽपि न मुह्यति ॥ ५६ ॥

વેદ દ્વારા '**निर्मिते**' પ્રકાશિત એવા પિતૃયાન અને દેવયાન એ બંને માર્ગોને તે સકામ યજ્ઞાદિ કરનાર જીવાત્માઓ ધૂમના અભિમાની દેવતા સાથે એકરૂપ બને છે. (છાં. ૫/૧૦/૩) તે નિષ્કામ કર્મ કરનારા જ્યોતિના અભિમાની દેવતા સાથે એકરૂપ બને છે (છાં. ૫/૧૦/૧) વગેરે દ્વારા નિશ્ચયપૂર્વક વિભેદ કરીને તે બે માર્ગોનું જ્ઞાન કરાવવામાં આવ્યું છે, એમ અર્થ છે. '**जनस्थः अपि**' દેહમાં રહેલો હોવા છતાં પણ તે મનુષ્ય મોહ પામતો નથી. ॥ ૫૬ ॥

	વ્યષ્ટિ	સમષ્ટિ
જાગ્રત્ –	વિશ્વ –	વિરાટ
સ્વપ્ન –	તૈજસ –	હિરણ્યગર્ભ
સુષુપ્તિ –	પ્રાજ્ઞ –	ઈશ્વર
તુર્ય –	આનંદ	

સુષુપ્તિ – અજ્ઞાનરૂપ કારણ ઉપાધિ હોય છે.

तत्र हेतुमाह—**आदाविति।**

आदावन्ते जनानां सद् बहिरन्तः परावरम्।
ज्ञानं ज्ञेयं वचो वाच्यं तमो ज्योतिस्त्वयं स्वयम्॥ ५७

(તે જ્ઞાની મોહ નથી પામતો,) તે માટેનું કારણ આપે છે— **'आदौ इति।'**

ઉત્પન્ન થનારાં શરીરોની પહેલાં પણ કારણરૂપે અને તેમનો અંત થઈ જાય ત્યારે પણ અવધિરૂપે જે સ્વયં વિદ્યમાન છે, જે ભોગ્યરૂપે બહાર અને ભોક્તારૂપે અંદર છે તથા જે ઊંચ અને નીચ, જ્ઞાનરૂપ અને જ્ઞેયરૂપ, વચનરૂપ (શબ્દ) અને વાચ્યરૂપ (અર્થ) તથા અપ્રકાશરૂપ અને પ્રકાશરૂપ છે તે સર્વ સ્વયં આ (તત્ત્વવેત્તા જ્ઞાની) જ છે.॥ ૫૭॥

जनानां देहानामादौ कारणत्वेनान्ते चाऽवधित्वेन यत्सत्तथा बहिर्भोग्यमन्तर्भोक्तृ परमवरं चोच्चनीचम्। तमोऽप्रकाशः। ज्योतिः प्रकाशः। तत्तु सर्वमयं ज्ञानी स्वयमेव न तस्माद्व्यतिरिक्तं वस्तु किंचिदस्ति येन मुह्येदित्यर्थः॥ ५७॥

'जनानाम्' ઉત્પન્ન થનારાં શરીરોની પહેલાં કારણરૂપે અને અંતમાં પણ અવધિરૂપે જે વિદ્યમાન છે તથા બહાર ભોગ્યરૂપે અને અંદર ભોક્તા રૂપે છે. **'परम्-अवरम्'** તથા જે ઊંચ અને નીચ છે, **'तमः'** અપ્રકાશ, **'ज्योतिः'** પ્રકાશ, તે સર્વ કાંઈ **'अयम्'** આ જ્ઞાની સ્વયં જ છે. તેના સિવાયની અન્ય કોઈપણ વસ્તુ (જગતમાં) છે નહીં, કે જેનાથી તે મોહ પામે.॥ ૫૭॥

ननु तर्हि कथं पृथगर्थस्तस्यापि प्रतीयते तत्राह—

आबाधितोऽपि ह्याभासो यथा वस्तुतया स्मृतः।
दुर्घटत्वादैन्द्रियकं तद्वदर्थविकल्पितम्॥
॥ ५८॥

પણ તો પછી તેને (જ્ઞાનીને) માટે પણ પોતાનાથી ભિન્ન વસ્તુઓ શાથી પ્રતીત થાય છે? આ શંકાના ઉત્તરમાં કહે છે—

(દર્પણાદિમાં દેખાતું) પ્રતિબિંબ (વિચાર અને યુક્તિથી) પૂરેપૂરું બાધિત થાય છે. (દર્પણાદિમાં તેનું અસ્તિત્વ નથી.) છતાં તે જેવી રીતે વસ્તુના રૂપમાં દેખાય છે, તેવી રીતે ઈન્દ્રિયોથી જેનું ગ્રહણ થાય છે તે વસ્તુઓનો ભેદભાવ (પણ યુક્તિ અને અનુભવથી) અસંભવ હોવાને કારણે (બાધિત છે, સત્ય નથી).॥ ૫૮॥

आबाधितस्तर्कविरोधेन सर्वतो बाधितोऽप्याभासः प्रतिबिम्बादिर्वस्तुतया यथा स्मृतस्तद्वदैन्द्रियकं सर्वमर्थत्वेन विकल्पितं न तु परमार्थतः, दुर्घटत्वात्॥ ५८॥

'**आबाधितः**' તર્ક સાથે વિરોધ થતો હોવાને કારણે સર્વ રીતે બાધિત (જેની સ્વતંત્ર સત્–તા = હોવાપણાનો નિરાસ થયો છે તેવું) હોવા છતાં '**आभासः**' પ્રતિબિંબાદિ (બિંબ કરતાં અલગ પ્રકાશતાં દેખાય છે તેથી) વસ્તુ (સ્વતંત્ર પદાર્થ) તરીકે '**स्मृतः**' કલ્પિત છે. તેવી રીતે ઈન્દ્રિયથી જેનું ગ્રહણ થાય છે તે સર્વ (મૂઢ મનુષ્યો દ્વારા) (સ્વતંત્ર) પદાર્થ તરીકે વિવિધ રૂપથી કલ્પિત છે. પણ તે પરમાર્થ દૃષ્ટિથી તેવું નથી કારણ કે (તેના સ્વતંત્ર અસ્તિત્વનું નિરૂપણ) થઈ શકે તેમ નથી. ॥ ૫૮ ॥

तदेवाह—

તે (દુર્ઘટત્વ) જ કહે છે—

क्षित्यादीनामिहार्थानां छाया न कतमापि हि।
न संघातो विकारोऽपि न पृथङ्नान्वितो मृषा॥
॥ ५९ ॥

પૃથ્વી વગેરે પાંચ ભૂતોમાંથી કોઈ પણ રીતે આ શરીરનું નિર્માણ નથી થયું. (શરીર) (પંચમહાભૂતોનો) સંઘાત નથી કે વિકાર નથી, (કારણ કે) (તે અવયવોથી) પૃથક્ નથી કે (તેમાં) અનુગત પણ નથી, આથી શરીર મૃષા છે. ॥ ૫૯ ॥

क्षित्यादीनां पञ्चभूतानां छाया ऐक्यबुद्ध्यालम्बनरूपं देहादिसङ्घातारम्भपरिणामानां मध्ये कतमाप्यन्यतमापि न भवति।

પૃથ્વી વગેરે પાંચ ભૂતોની *'**छाया**' ઐક્યબુદ્ધિથી આલંબનરૂપ જે આ શરીર છે, તે દેહાદિ સંઘાત કે આરંભ કે પરિણામમાંથી '**कतमापि**' એક પણ છે નહીં.

न तावत्तेषां सङ्घातो वृक्षाणामिव वनम्। एकदेशाकर्षणे सर्वाकर्षणानुपपत्तेः। न ह्येकस्मिन्वृक्ष आकृष्टे सर्वं वनमाकृष्यते।

પહેલાં તો વૃક્ષોનો સંઘાત જેમ વન છે તેવી રીતે તેમનો (ભૂતોનો) સંઘાત (શરીર છે એવું) નથી. કારણ કે જો એવો સંઘાત હોય તો તેના એક ભાગને ખેંચવાથી આખું શરીર ન ખેંચાય. એક વૃક્ષ ખેંચવાથી આખું વન ખેંચાતું નથી. (પણ એક ભૂત (પૃથ્વી અંશ) ખેંચીએ તો આખું શરીર ખેંચાય છે.) માટે સંઘાત નથી. (ભદંત, ચાર્વાક પક્ષ).

न च विकार आरब्धोऽवयवी।

શરીર એ પાંચ મહાભૂતોમાંથી ઉત્પન્ન થયેલ વિકારરૂપ કે અવયવીરૂપ પદાર્થ પણ નથી. (કણાદ પક્ષ, વૈશેષિક)

* '**छाया**' દર્પણમાં ન હોવા છતાં પ્રતિબિંબ દેખાય છે, તે રીતે ઐક્યબુદ્ધિના આલંબનરૂપ શરીર વાસ્તવમાં છે જ નહીં, માત્ર પ્રતીત થાય છે, તેથી તેને 'છાયા' કહ્યું છે– બ્રહ્માત્મૈક્ય જ્ઞાન.

अपिशब्दान्न परिणामोऽपि। कुतः। स किं स्वावयवेभ्यः परिणतेभ्यो वा पृथक् तदन्वितो वा। न तावदत्यन्तं पृथक्। तथाऽप्रतीतेः। न चान्वितः। स किं प्रत्यवयवं सर्वोऽप्यन्वेत्यंशेन वा। आद्ये अङ्गुलिमात्रेऽपि देहबुद्धिः स्यात्। द्वितीये तस्याप्यंशाङ्गीकारे सत्यनवस्था स्यादतो मृषैवेत्यर्थः॥५९॥

'अपि' શબ્દથી (સમજાય છે કે) પરિણામ પણ નથી. શાથી? (પરિણામરૂપ શરીર) શું પરિણામ પામેલા પોતાના અવયવો કરતાં ભિન્ન છે? કે તેમાં અનુગત છે? અત્યંત ભિન્ન નથી, કારણ કે અત્યંત પૃથક્ દેખાતું નથી અનુગત પણ નથી. (જો અનુગત હોય તો) દરેક અવયવમાં તે દેહ આખેઆખો અનુગત છે? કે અંશરૂપથી? પહેલા પક્ષમાં, (જો દરેક અવયવમાં આખો અનુગત હોય તો) માત્ર આંગળીમાં પણ (આખા) દેહની બુદ્ધિ થાત (અને તો આંગળીના નાશથી દેહનો નાશ પણ થાત). બીજા પક્ષમાં (અંશરૂપથી અનુગત હોય તો) તે (અંશમાં) પણ અંશરૂપથી (અને વળી તેના પણ અંશરૂપથી...) એમ અનવસ્થા થાત (સાંખ્યપક્ષ). આથી મિથ્યા જ છે, એમ અર્થ છે. (પાંચ ભૂતોનો અન્યથાભાવ= શરીરરૂપે દેખાવું અતાત્ત્વિક છે, વિવર્ત છે. (વેદાંતપક્ષ). (અવયવી વગર અવયવ શી રીતે સિદ્ધ થાય એમ અર્થ છે.)॥૫૯॥

एवं देहादेर्मिथ्यात्वमुक्त्वा तद्धेतूनां क्षित्यादीनामपि मिथ्यात्वमाह—

આ રીતે દેહાદિનું મિથ્યાત્વ કહીને તે (દેહાદિ)ના હેતુરૂપ ક્ષિતિ (પૃથ્વી) આદિનું પણ મિથ્યાત્વ કહે છે—

धातवोऽवयवित्वाच्च तन्मात्रावयवैर्विना।
न स्युर्ह्यसत्यवयविन्यसन्नवयवोऽन्ततः॥ ६०

(તેવી જ રીતે) ધાતુઓ (પંચમહાભૂતો) અવયવી છે, માટે તેમના અવયવરૂપ માત્રાઓ (સૂક્ષ્મ ભૂતો)થી ભિન્ન નથી. અંતમાં તો અવયવી અસત્ છે, એટલે પછી અવયવ પણ અસત્ છે.

धारयन्तीति धातवो महाभूतानि तन्मात्रैः सूक्ष्मैरवयवैर्विना न स्युः। अवयवित्वात्तेषामपि। तर्ह्यवयवः सत्य इति चेत्तत्राह—उक्त-प्रकारेणावयविन्यसत्यवयवोऽप्यन्ततोऽसन्नेव स्यात्।

જે ધારણ કરે તે ધાતુઓ છે. (આ અર્થમાં) મહાભૂતો (ધાતુઓ છે. તે) તન્માત્ર સૂક્ષ્મ અવયવો વગર ન હોય, કારણ કે તે (પાંચ મહાભૂતો) પણ અવયવી છે. તો પછી અવયવ સત્ય છે, એમ હોય તો? એ શંકાના ઉત્તરમાં કહે છે— આગળ કહ્યું તે પ્રમાણે જો અવયવી અસત્ હોય, તો અવયવ પણ અંતે અસત્ જ હોય.

अवयविप्रतीत्यन्यथानुपपत्तिं विना तत्सद्भावे प्रमाणाभावादित्यर्थः। तदुक्तं पञ्चमस्कन्धे—'एवं निरुक्तं क्षितिशब्दवृत्तम्' इत्यादि॥ ६०॥

અવયવીની પ્રતીતિની અન્યથા અનુપપત્તિ વગર તેના હોવા માટે બીજું કોઈ પ્રમાણ નથી તેથી, એમ અર્થ છે. પાંચમા સ્કંધમાં (૫/૧૨/૯) આ જ કહ્યું છે– 'આમ, પૃથ્વીવાચક પદાર્થ પણ અર્થશૂન્ય (મિથ્યા) છે, વગેરે.'॥ ૬૦॥

नन्ववयविनोऽभावे आगमापायिषु बाल्यादिषु सोऽयं देवदत्त इति प्रत्यभिज्ञानं न स्यात्। तदुक्तं भट्टैः—'आविर्भावतिरोभाव-धर्मकेष्वनपायि यत्। तद्धर्मि' इति तत्राह— **स्यादिति**।

પરંતુ અવયવી (દેવદત્ત) ન હોય તો આવવા–જવાવાળી બાલ્યાદિ અવસ્થાઓમાં 'તે આ દેવદત્ત છે.' ઈત્યાદિ પ્રત્યભિજ્ઞાન ન થાય. (મીમાંસક) કુમારિલ ભટ્ટે તે કહ્યું છે— 'આવિર્ભાવ અને તિરોભાવ ધર્મ ધરાવનારાઓમાં જે અવિનાશી છે તે ધર્મી છે.' આ શંકાના ઉત્તરમાં કહે છે— '**स्यात् इति**।'

स्यात् सादृश्यभ्रमस्तावद् विकल्पे सति वस्तुनः।
जाग्रत्स्वापौ यथा स्वप्ने तथा विधिनिषेधता॥ ६१

જ્યાં સુધી (પરમાત્મ)વસ્તુમાં (અનેકતાનો) ભેદ જણાય છે ત્યાં સુધી સાદૃશ્ય (પહેલાં જે વસ્તુઓ હતી તે જ આ છે તે)નો ભ્રમ રહે છે અને સ્વપ્નમાં જેવી રીતે જાગ્રત્, સ્વપ્ન (અથવા સુષુપ્તિ) વગેરે અવસ્થાઓ(નો અનુભવ થાય) છે, તેવી રીતે વિધિનિષેધની વ્યવસ્થા સમજવી.॥ ૬૧॥

वस्तुनः परमात्मनो विकल्पे भेदेऽसति। यद्वा वस्तुनोऽविद्यया विकल्पे सति पूर्वपूर्वारोपसा-दृश्यात्स एवेति भ्रमः स्यात्। स च तावदेव यावदविद्यानिवृत्तिः।

'**वस्तुनः**' પરમાત્મામાં '**विकल्पेऽसति**' ભેદ નથી ત્યારે, અથવા '**विकल्पे सति**' પરમાત્મવસ્તુમાં અવિદ્યાને કારણે વિકલ્પ છે ત્યારે પૂર્વ-પૂર્વ આરોપ (પહેલાં કરેલા અધ્યારોપ) સાથે સમાનતાને કારણે 'તે જ છે' એવો ભ્રમ થાય છે, સત્ય નથી અને તે ત્યાં સુધી જ થાય છે જ્યાં સુધી અવિદ્યાની નિવૃત્તિ થતી નથી.

ननु सर्वमिथ्यात्वे शास्त्रस्य विधि-निषेधकता कथं तत्राह—स्वप्नमध्ये जाग्रत्स्वापव्यवस्था यथेति॥ ६१॥

પરંતુ બધું મિથ્યા હોય તો શાસ્ત્રમાં વિધિનિષેધના વિધાન કરવાપણું શી રીતે હોય? આ શંકાના ઉત્તરમાં કહે છે— સ્વપ્નમાં જાગ્રત્ અને સ્વપ્નની વ્યવસ્થા જેવી રીતે હોય છે તેવી રીતે (મિથ્યા જગતમાં મિથ્યા શાસ્ત્રનાં મિથ્યા વિધિનિષેધવિધાન છે.)॥ ૬૧॥

इदानीमुक्तमेवाद्वैतं भावनात्रयोपदेशेन दृढीकरोति—**भावाद्वैतमिति** चतुर्भिः।

भावाद्वैतं क्रियाद्वैतं द्रव्याद्वैतं तथाऽऽत्मनः।
वर्तयन्स्वानुभूत्येह त्रीन्स्वप्नान्धुनुते मुनिः॥ ६२

वर्तयन्नालोचयन्। स्वानुभूत्या आत्मतत्त्वानुभवेन। त्रीन् जाग्रदादीन्। 'त्रय आवसथास्त्रयः स्वप्नाः' इति श्रुतेः।

यद्वा वस्तुभेदबुद्धिरेकः स्वप्नः। ततस्तत्तदधिकारभेदेन कर्मभेदबुद्धिर्द्वितीयः। ततो मत्कर्मसाधितमेतत्फलं ममैव भोग्यमिति तृतीयः। तान्धुनुते निवर्तयति॥ ६२॥

હવે કહેવામાં આવેલું અદ્વૈત જ ત્રણ ભાવનાઓના ઉપદેશ દ્વારા ચાર શ્લોકો વડે દઢ કરે છે— '**भाव-अद्वैतम् इति।**'

આત્માના ભાવાદ્વૈત, ક્રિયાદ્વૈત અને દ્રવ્યાદ્વૈતનો વિચાર કરતો મનનશીલ સાધક આત્મતત્ત્વના અનુભવથી આ શરીરમાં જાગ્રત્, સ્વપ્ન અને સુષુપ્તિ– એ ત્રણ (સ્વપ્નોને) અવસ્થાઓને દૂર કરે છે.॥ ૬૨॥

'**वर्तयन्**' વિચાર કરતો ('**मुनिः**' મનનશીલ સાધક) '**स्व-अनुभूत्या**' આત્મતત્ત્વના અનુભવથી '**त्रीन्**' (ત્રણ સ્વપ્નોને) જાગ્રત વગેરે ત્રણ અવસ્થાઓને 'ત્રણ આવાસો ત્રણ સ્વપ્નો છે.' એમ શ્રુતિ છે.

અથવા વસ્તુભેદબુદ્ધિ એ પહેલું (એક) સ્વપ્ન છે. (**वंशीधरी—वस्तुनि ब्रह्मणि भेदबुद्धिः—** વસ્તુરૂપ બ્રહ્મમાં ભેદબુદ્ધિ.) તે ભેદબુદ્ધિથી તે તે અધિકારભેદને કારણે કર્મભેદબુદ્ધિ એ બીજું સ્વપ્ન છે. તે અધિકાર-ભેદને કારણે મેં કર્મ કરી આ ફળ મેળવ્યું છે અને તેથી તે મારે જ ભોગવવું જોઈએ, એ ત્રીજું સ્વપ્ન છે. તે ત્રણેયને '**धुनुते**' દૂર કરે છે.॥ ૬૨॥

कार्यकारणवस्त्वैक्यमर्शनं पटतन्तुवत्।
अवस्तुत्वाद् विकल्पस्य भावाद्वैतं तदुच्यते॥ ६३

कार्यकारणयोर्वस्त्वैक्यस्य मर्शनमालोचनं तन्तुरेव न पट इति॥ ६३॥

(કાર્ય-કારણનો) ભેદ વાસ્તવિક ન હોવાથી વસ્ત્ર અને તંતુની જેમ કાર્ય-કારણમાં વસ્તુના ઐક્યનો વિચાર તે ભાવાદ્વૈત કહેવાય છે.॥ ૬૩॥

કાર્ય અને કારણમાં વસ્તુના ઐક્યનો '**मर्शनम्**' વિચારવસ્ત્રમાં તંતુ જ વાસ્તવિક છે, વસ્ત્ર વાસ્તવિક નથી.॥ ૬૩॥

यद् ब्रह्मणि परे साक्षात् सर्वकर्मसमर्पणम्।
मनोवाक्तनुभिः पार्थ क्रियाद्वैतं तदुच्यते॥ ६४

હે પૃથાપુત્ર યુધિષ્ઠિર, મન, વચન અને કાયાથી કરાયેલાં સર્વ કર્મોનું સાક્ષાત્ પરબ્રહ્મ પરમાત્મામાં સમર્પણ, તેને જ ક્રિયાદ્વૈત કહે છે.॥ ૬૪॥

मनोवाक्तनुभिः कृतानां कर्मणां समर्पणं, तैः समर्पणमिति वा।

મન, વચન અને કાયા વડે કરાયેલાં કર્મોનું સમર્પણ અથવા (**तैः**) તે મન, વચન અને કાયાથી સમર્પણ.

उद्देश्यफलभेदो हि क्रियाभेदे हेतुः—ईश्वरार्पणे च तदभावात् क्रियाणामद्वैतम्॥ ६४॥

ફળના ઉદ્દેશ્યનો ભેદ જ ક્રિયાઓના ભેદ માટે કારણરૂપ છે. ઈશ્વરને કર્મો અર્પણ કરવાથી ફળનો ઉદ્દેશ્ય ન હોવાને કારણે અદ્વૈત થાય છે.॥ ૬૪॥

आत्मजायासुतादीनामन्येषां सर्वदेहिनाम्।
यत् स्वार्थकामयोरैक्यं द्रव्याद्वैतं तदुच्यते॥ ६५

પોતાનાં અને પત્ની, પુત્ર વગેરેનાં તથા બીજા સર્વ દેહધારીઓનાં પોતપોતાનાં ધન અને ભોગનું જે ઐક્ય છે, તેને દ્રવ્યાદ્વૈત કહેવાય છે.॥ ૬૫॥

आत्मनः स्वस्य जायादीनां च स्वार्थश्च कामश्च तयोः देहादीनां पञ्चभूतात्मकत्वेन भोक्तुश्च परमात्मत्वेनाभेदालोचनेनार्थकामयो-र्यदैक्यदर्शनमित्यर्थः॥ ६५॥

'**आत्मनः**' પોતાનાં અને પત્ની વગેરેનાં ધન અને ઈચ્છા (ભોગ) તે બંનેનું (ઐક્ય)—દેહધારીઓ પંચમહાભૂતસ્વરૂપ હોવાથી અને જીવ પરમાત્માનો અંશ હોવાથી તેમનામાં અભેદદર્શન દ્વારા ધન અને ઈચ્છા (ભોગ)નું ઐક્યદર્શન, એમ અર્થ છે.॥ ૬૫॥

(પોતાના અને પારકાનો ભેદ ન હોય તે દ્રવ્યાદ્વૈત)

उक्तानाश्रमधर्मान्संक्षिप्याह—**यदिति**।

કહેવામાં આવેલા આશ્રમધર્મોને સંક્ષિપ્ત કરીને કહે છે— '**यद् इति।**'

यद् यस्य वानिषिद्धं स्याद् येन यत्र यतो नृप।
स तेनेहेत कर्माणि नरो नान्यैरनापदि॥ ६६

હે નૃપ, જે મનુષ્યને માટે જે દ્રવ્ય જે સમયે જે ઉપાયથી જેની પાસેથી ગ્રહણ કરવું શાસ્ત્ર દ્વારા નિષિદ્ધ ન હોય, તે મનુષ્યે તે દ્રવ્યથી પોતાનાં કાર્યો કરવાં જોઈએ. આપત્તિકાળ સિવાય અન્ય ઉપાયોથી મેળવેલા દ્રવ્ય વડે કાર્યો કરવાં જોઈએ નહીં.॥ ૬૬॥

यद्द्रव्यम्। येनोपायेन। यतः सकाशात् ॥ ६६॥

જે દ્રવ્ય જે ઉપાયથી જેની પાસેથી॥ ૬૬॥

प्रस्तुतमुपसंहरति—**एतैरिति**।

પ્રસ્તુત વાતનો ઉપસંહાર કરે છે— '**एतैः इति।**'

एतैरन्यैश्च वेदोक्तैर्वर्तमानः स्वकर्मभिः।
गृहेऽप्यस्य गतिं यायाद् राजंस्तद्भक्तिभाङ्नरः॥ ६७

હે રાજા, ભગવદ્ભક્ત મનુષ્ય વેદોક્ત કર્મો અને અન્યાન્ય સ્વકર્મો(ના અનુષ્ઠાન) દ્વારા ઘરમાં રહીને પણ આ શ્રીકૃષ્ણ ભગવાનની ગતિને પ્રાપ્ત થાય (છે).॥ ૬૭॥

अस्य श्रीकृष्णस्य गतिम्। तद्भक्तिभाक् तस्य भक्तः॥ ६७॥

'**अस्य**' આ શ્રીકૃષ્ણની ગતિને, '**तद्भक्तिभाक्**' તે ભગવાનનો ભક્ત॥ ૬૭॥

एतत्सर्वसाधारणमुक्तम्, भक्तस्य तु भक्तिरेव सर्वपुरुषार्थहेतुरिति पाण्डवानेव लक्षीकृत्याह—**यथा हीति**।

આ (પાંચ અધ્યાયોનું પ્રકરણ) સર્વને સામાન્યરૂપે કહેવામાં આવ્યું છે, પરંતુ ભક્તને તો ભક્તિ જ સર્વ પુરુષાર્થના કારણરૂપ છે, એમ પાંડવોને અનુલક્ષીને કહે છે— '**यथा हि इति**।'

यथा हि यूयं नृपदेव दुस्त्यजा-
दापद्गणादुत्तरतात्मनः प्रभोः।
यत्पादपङ्केरुहसेवया भवा-
नहार्षीन्निर्जितदिग्गजः क्रतून्॥ ६८

હે નૃપદેવ, (ઉદાહરણ તરીકે) જેમ તમે પરમાત્મા શ્રીકૃષ્ણ પ્રભુને કારણે જ દુસ્ત્યજ આપત્તિઓના સમૂહમાંથી ઉત્તીર્ણ થયા છો તથા જે શ્રીકૃષ્ણ પરમાત્માનાં ચરણકમળની સેવાથી દિગ્ગજો (જેવા બળવાન રાજાઓ)ને જીતી લેનાર તમે (રાજસૂય, અશ્વમેધાદિ) યજ્ઞો કર્યા છે.॥ ૬૮॥

हे नृपदेव, नृपैर्देवैश्च सहायैर्दुस्त्यजादिति वा। आत्मनः श्रीकृष्णादेव प्रभोर्हेतोः।

હે નૃપદેવ! (એ સંબોધન છે.) અથવા રાજાઓ અને દેવોની સહાયથી પણ છૂટવા માટે અત્યંત કઠણ એવી દુસ્ત્યજ આપત્તિઓના સમૂહમાંથી તમે પરમાત્મા શ્રીકૃષ્ણ પ્રભુને કારણે જ તરી ગયા છો.

अडभाव आर्षः। उत्कर्षेणातरतेत्यर्थः।

(**उत्तरत** માં) અડ્નો અભાવ આર્ષ છે. (**उत्+अतरत=उदतरत** રૂપ થાય.) ઉત્કર્ષપૂર્વક તરી ગયા છો, એમ અર્થ છે.

यथा यथावत् तमेव भजतेति शेषः। यद्वा यथा आपद्गणादुत्तीर्णस्त्वम्। यथा च क्रतूनहार्षीत्तथा श्रीकृष्णादेव तारकात्संसाराद-प्युत्तरतेत्यर्थः॥ ६८॥

'**यथा**' યથોચિતરૂપે તે ભગવાનની જ તમે સેવા કરો, એટલું શેષ છે. અથવા તમે જેમ આપત્તિઓના સમૂહને તરી ગયા છો તથા તમે જેમ યજ્ઞો કર્યા છે તેમ શ્રીકૃષ્ણ ભગવાન થકી જ, તે તારણહાર હોવાથી સંસાર (સાગર)ને પણ તરી જાઓ, એમ અર્થ છે.॥ ૬૮॥

वंशीधरी—श्रीकृष्णपोते सति संसारार्णवतरण-चिन्ता न कार्येति भावः।

भ.मनो.—तस्य सेवयैव मोक्ष्यसे इत्यध्याहारः।

सि.प्र.—अन्योऽपि गृहे वर्त्तमानः तद्भक्त्या कृतार्थः स्यादिति भावः।

श्रीकृष्णसेवा महतामवज्ञया भ्रश्यति तत्कृपया च सिध्यतीति दर्शयन्पूर्ववृत्तान्तमाह—**अहमिति** सार्धैः पञ्चभिः।

अहं पुराऽभवं कश्चिद् गन्धर्व उपबर्हणः।
नाम्नाऽतीते महाकल्पे गन्धर्वाणां सुसम्मतः॥ ६९

नाम्ना उपबर्हणः॥ ६९॥

रूपपेशलमाधुर्यसौगन्ध्यप्रियदर्शनः।
स्त्रीणां प्रियतमो नित्यं मत्तस्तु पुरुलम्पटः॥ ७०

पेशलं सौकुमार्यं रूपादिभिः प्रियं दर्शनं यस्य॥ ७०॥

एकदा देवसत्रे तु गन्धर्वाप्सरसां गणाः।
उपहूता विश्वसृग्भिर्हरिगाथोपगायने॥ ७१
॥ ७१ ॥

वंशीधरी—विश्वसृजः मरीच्यादयः।

अहं च गायंस्तद्विद्वान् स्त्रीभिः परिवृतो गतः।
ज्ञात्वा विश्वसृजस्तन्मे हेलनं शेपुरोजसा।
याहि त्वं शूद्रतामाशु नष्टश्रीःकृतहेलनः॥ ७२

શ્રીકૃષ્ણરૂપી નૌકા છે ત્યારે સંસારસાગરને તરી જવાની ચિંતા કરવા જેવી નથી, એવો ભાવ છે.

તે શ્રીકૃષ્ણ પ્રભુની સેવાથી જ તમે મોક્ષ પામશો, એટલું અધ્યાહાર છે.

ઘરમાં રહેનારો બીજો સામાન્ય મનુષ્ય પણ તેની ભક્તિથી કૃતાર્થ થાય છે, એવો ભાવ છે.

મહાપુરુષોનું અપમાન કરવાથી મનુષ્ય શ્રીકૃષ્ણસેવાથી ભ્રષ્ટ થાય છે અને મહાપુરુષોની કૃપાથી શ્રીકૃષ્ણસેવા સિદ્ધ થાય છે, એમ દર્શાવતાં નારદજી પોતાનો પૂર્વવૃત્તાન્ત સાડા પાંચ શ્લોકો દ્વારા કહે છે— **'अहम् इति।'**

પૂર્વે વીતી ગયેલા મહાકલ્પમાં ગંધર્વોમાં માનીતો એવો ઉપબર્હણ નામનો હું એક ગંધર્વ હતો.॥ ૬૯॥

ઉપબર્હણ નામનો (ગંધર્વ હતો).॥ ૬૯॥

સુંદરતા, સુકુમારતા, મધુરતા અને સુગંધિતતાને કારણે જેનું દર્શન સૌને પ્રિય હતું તેવો હું સ્ત્રીઓનો અત્યંત પ્રિય હતો, સદાય પ્રમત્ત અને તે સ્ત્રીઓમાં અત્યંત આસક્ત હતો.॥ ૭૦॥

'पेशलम्' કોમળતા, રૂપ વગેરે દ્વારા જેનું દર્શન પ્રિય છે તેવો **'प्रियदर्शनः'**॥ ૭૦॥

એક વાર દેવતાઓના (જ્ઞાન)સત્રમાં શ્રીહરિની લીલાનું ગાન કરવા માટે પ્રજાપતિઓએ ગંધર્વો અને અપ્સરાઓના ગણોને બોલાવ્યા. ॥ ૭૧ ॥ ૭૧ ॥

વિશ્વનું સર્જન કરનારા મરીચિ (દક્ષ) વગેરે પ્રજાપતિઓ તે (આમંત્રણ શ્રીહરિગાથાગાન કરવા માટેનું છે એમ) જાણતો હોવા છતાં સ્ત્રીઓથી વીંટળાયેલો હું (લૌકિક) ગીતો ગાતો (ત્યાં) ગયો. તેથી મારાથી થયેલી અવજ્ઞા જાણીને પ્રજાપતિઓએ ક્રોધના વેગથી (મને) શાપ આપ્યો, 'અવજ્ઞા કરનાર તું શ્રીહીન થઈ શીઘ્ર શૂદ્રત્વને પ્રાપ્ત થા!' ॥ ૭૨ ॥

तदाह्वानं विद्वान्। उन्मत्तः सन् गायन्नेव गतः ॥ ७२ ॥

તે આમંત્રણ (શ્રીહરિગાથાગાન કરવા માટે છે એમ) જાણતો હું ઉન્મત્ત થઈ (લૌકિક) ગીતો ગાતાં ગાતાં જ ગયો. ॥ ૭૨ ॥

तावद्दास्यामहं जज्ञे तत्रापि ब्रह्मवादिनाम्।
शुश्रूषयानुषङ्गेण प्राप्तोऽहं ब्रह्मपुत्रताम्॥ ७३

॥ ७३ ॥

તે જ ક્ષણે હું એક દાસીમાં જન્મ્યો. ત્યાં પણ બ્રહ્મવાદી મુનિઓની સેવાથી અને તેમના સત્સંગથી હું બ્રહ્માજીના પુત્રત્વને પ્રાપ્ત થયો. ॥ ૭૩ ॥ ૭૩ ॥

धर्मस्ते गृहमेधीयो वर्णितः पापनाशनः।
गृहस्थो येन पदवीमञ्जसा न्यासिनामियात्॥ ७४

॥ ७४ ॥

ગૃહસ્થસંબંધી પાપનાશક ધર્મ તમારી આગળ વર્ણવવામાં આવ્યો, જે ધર્મથી ગૃહસ્થ (પણ) સંન્યાસીઓની ગતિ અનાયાસે પ્રાપ્ત કરે છે. ॥ ૭૪ ॥ ૭૪ ॥

त्वं तु कृतार्थ एवेति हर्षेण पुनः पूर्वश्लोकानेव पठति—**यूयमिति**।

તમે તો કૃતાર્થ જ છો, એમ હર્ષપૂર્વક ફરીથી પહેલાંના શ્લોકો જ ગાય છે— **'यूयम् इति।'** (શ્રીમદ્ ભા.૭/૧૦/૪૮)

यूयं नृलोके बत भूरिभागा
लोकं पुनाना मुनयोऽभियन्ति।
येषां गृहानावसतीति साक्षाद्
गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम्॥ ७५

(હે રાજા યુધિષ્ઠિર,) સાનંદાશ્ચર્યની વાત છે! મનુષ્યલોકમાં તમે અતિભાગ્યશાળી છો કે જે તમારાં ઘરોમાં મનુષ્યસ્વરૂપે ગુપ્ત રહીને (શ્રીકૃષ્ણ નામના) સાક્ષાત્ પરબ્રહ્મ પરમાત્મા વસે છે. તેથી જગતને પવિત્ર કરનારા મુનિજનો (પણ) ચોતરફથી તમારા ઘરમાં આવે છે. ॥ ૭૫ ॥

शेषं स्पष्टम्॥ ७५ ॥

શેષ સ્પષ્ટ છે. ॥ ૭૫ ॥

स वा अयं ब्रह्म महद्विमृग्यं
कैवल्यनिर्वाणसुखानुभूतिः ।
प्रियः सुहृद् वः खलु मातुलेय
आत्मार्हणीयो विधिकृद् गुरुश्च॥ ७६

॥ ७६ ॥

તમારા મામાના દીકરા, પ્રિય, સુહૃદ અને આજ્ઞાંકિત આ બ્રહ્મ (શ્રીકૃષ્ણ) છે. તે વાસ્તવમાં મહાપુરુષો દ્વારા શોધવા યોગ્ય, નિરુપાધિ પરમાનંદના અનુભવસ્વરૂપ પરબ્રહ્મ છે, (સર્વના) આત્મા, ગુરુ અને પૂજવાયોગ્ય છે. ॥ ૭૬ ॥ ૭૬ ॥

न यस्य साक्षाद्भवपद्मजादिभी
रूपं धिया वस्तुतयोपवर्णितम्।
मौनेन भक्त्योपशमेन पूजितः
प्रसीदतामेष स सात्वतां पतिः॥ ७७
॥ ७७ ॥

જેમના સ્વરૂપ (તત્ત્વ)ને ભગવાન શંકર, બ્રહ્માજી વગેરે પણ પોતાની બુદ્ધિથી યથાર્થરૂપે વર્ણવી શકતા નથી, મૌન, ભક્તિ અને સંયમ દ્વારા પૂજાયેલા તે આ ભક્તપાલક ભગવાન (અમારા ઉપર) પ્રસન્ન થાઓ!॥ ૭૭ ॥ ૭૭ ॥

(આ ત્રણેય શ્લોકોની અહીં પણ નારદજી દ્વારા જ પુનરુક્તિ થાય છે.)

श्रीशुक उवाच

इति देवर्षिणा प्रोक्तं निशम्य भरतर्षभः।
पूजयामास सुप्रीतः कृष्णं च प्रेमविह्वलः॥ ७८
॥ ७८ ॥

શુકદેવજી બોલ્યા – આમ, દેવર્ષિ નારદજી દ્વારા કહેવામાં આવેલું (ધર્મનું રહસ્ય) સાંભળીને અત્યંત પ્રસન્ન અને પ્રેમથી વિહ્વળ થયેલા ભરતશ્રેષ્ઠ યુધિષ્ઠિરે દેવર્ષિ નારદ અને શ્રીકૃષ્ણની પૂજા કરી.॥ ૭૮ ॥ ૭૮ ॥

कृष्णपार्थावुपामन्त्र्य पूजितः प्रययौ मुनिः।
श्रुत्वा कृष्णं परं ब्रह्म पार्थः परमविस्मितः॥ ७९
॥ ७९ ॥

શ્રીકૃષ્ણ તથા યુધિષ્ઠિરની અનુમતિ લઈ સત્કાર પામેલા નારદમુનિએ ત્યાંથી પ્રયાણ કર્યું. શ્રીકૃષ્ણ પરબ્રહ્મ છે એ સાંભળી યુધિષ્ઠિર અત્યંત વિસ્મિત થયા.॥ ૭૯ ॥ ૭૯ ॥

इति दाक्षायणीनां ते पृथग्वंशाः प्रकीर्तिताः।
देवासुरमनुष्याद्या लोका यत्र चराचराः॥ ८०
॥ ८० ॥

આ પ્રમાણે દક્ષની પુત્રીઓના જુદા જુદા વંશો તમને કહેવામાં આવ્યા, કે જેમાં દેવો, અસુરો, મનુષ્યો વગેરે તેમ જ સ્થાવર અને જંગમ લોક (સૃષ્ટિ) (ઉત્પન્ન થઈ) છે.॥૮૦॥૮૦॥

सप्तमस्कन्धगूढार्थपदभावार्थदीपिका ।
संसेव्यतां सदा सद्भिर्यतिश्रीधरनिर्मिता॥ १

શ્રીધરયતિ દ્વારા રચાયેલી, સપ્તમ સ્કંધના પદોના ગૂઢાર્થની ભાવાર્થ દીપિકા સજ્જનો દ્વારા સદાય સારી રીતે સેવવામાં આવે. ॥ ૧ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यामष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे प्रह्लादानुचरिते युधिष्ठिरनारदसंवादे सदाचारनिर्णयो नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

*****

॥ इति सप्तमः स्कन्धः समाप्तः॥

॥ हरिः ॐ तत्सत्॥

*****

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

अष्टमः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

મન્વન્તરોનું વર્ણન

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

नमः श्रीपरमहंसास्वादितचरणकमलचिन्मकरन्दाय भक्तजनमानसनिवासाय श्रीरामचन्द्राय ॥

॥ શ્રીગણેશજીને નમસ્કાર ॥

જેમનાં ચરણકમળના ચૈતન્યરૂપ પુષ્પરસનું પરમહંસો દ્વારા આસ્વાદન કરવામાં આવ્યું છે તથા જે ભક્તજનોના ચિત્તમાં નિવાસ કરનાર છે તેવા શ્રીરામચંદ્ર ભગવાનને નમસ્કાર.

अथाष्टमे चतुर्विंशत्यध्यायैर्मनुवर्णनम् ।
तत्सुतैर्ऋषिदेवेन्द्रैर्मूर्तिभिश्च हरेः सह ॥ १ ॥

હવે આઠમા સ્કંધમાં ચોવીસ અધ્યાયો દ્વારા મનુના પુત્રો, ઋષિઓ, દેવો, ઈન્દ્રો અને શ્રીહરિની મૂર્તિઓ સહિત મનુઓનું વર્ણન છે. ॥ ૧ ॥

प्रतिमन्वन्तरं चैव मन्वाद्याः षट् पृथक्पृथक् ।
प्रवर्तयन्ति सद्धर्मान्पालयन्त्याचरन्ति च ॥ २ ॥

પ્રત્યેક મન્વન્તરમાં મનુ વગેરે છ (તેમના પુત્રો, ઋષિઓ, દેવો, ઈન્દ્રો, શ્રીહરિની મૂર્તિઓ) જુદા જુદા સદ્ધર્મોને પ્રવર્તાવે છે, પાલન કરાવે છે અને આચરણ પણ કરે છે. ॥ ૨ ॥

अतो मन्वन्तरस्योक्तं सद्धर्म इति लक्षणम् ।
येन वै क्रियमाणेन नरो न निरयं व्रजेत् ॥ ३ ॥

માટે મન્વન્તરનું ‘સદ્‌ધર્મ’ એવું લક્ષણ કહેવામાં આવ્યું છે, જેનું આચરણ કરવાથી મનુષ્ય નરકમાં જતો જ નથી. ॥ ૩ ॥

तत्र तु प्रथमे स्वायंभुवः स्वारोचिषस्तथा ।
उत्तमस्तामसश्चेति चतुर्मनुनिरूपणम् ॥ ४ ॥

તે (ચોવીસ અધ્યાયો)માં પ્રથમ અધ્યાયમાં સ્વાયંભુવ, સ્વારોચિષ, ઉત્તમ અને તામસ નામના ચાર મનુઓનું નિરૂપણ છે. ॥ ૪ ॥

स्वायंभुवेऽन्तरेऽनन्तदुरन्तगुणवर्णनात् ।
मुदितः परिपप्रच्छ सर्वमन्वन्तरस्थितिम् ॥ ५ ॥

સ્વાયંભુવ મન્વન્તરમાં શ્રીહરિના અનંત અને અપાર ગુણોનું વર્ણન શ્રવણ કરવાથી (અનશન ક્લેશ વિસ્મૃત થઈ જવાથી) પ્રસન્ન એવા પરીક્ષિત રાજાએ સર્વ મન્વન્તરના મર્યાદાપાલન વિષે પૂછ્યું. ॥ ૫ ॥

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय॥

स्वायंभुवस्येति त्रिभिः—

राजोवाच

स्वायम्भुवस्येह गुरो वंशोऽयं विस्तराच्छ्रुतः।
यत्र विश्वसृजां सर्गो मनूनन्यान्वदस्व नः॥ १

यत्र विश्वसृजां मरीच्यादीनां मनुकन्यासु पुत्रपौत्रादिसर्गः॥ १॥

यत्र यत्र हरेर्जन्म कर्माणि च महीयसः।
गृणन्ति कवयो ब्रह्मंस्तानि नो वद शृण्वताम्॥ २

महीयसो हरेः। अत्र क्वचिद्बहु पाठान्तरमस्ति तदुपेक्षितमस्माभिः॥ २॥

यद्यस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्भगवान्विश्वभावनः।
कृतवान्कुरुते कर्ता ह्यतीतेऽनागतेऽद्य वा॥ ३

यस्मिन्नतीते यत्कृतवान्, यस्मिन्ननागते यत्कर्ता करिष्यति, अद्य वा वर्तमाने यत्कुरुते तद्वदेत्यन्वयः॥ ३॥

ऋषिरुवाच

मनवोऽस्मिन्व्यतीताः षट् कल्पे स्वायम्भुवादयः।
आद्यस्ते कथितो यत्र देवादीनां च सम्भवः॥ ४

अस्मिन्कल्पे षण्मनवो व्यतीताः॥ ४॥

आकूत्यां देवहूत्यां च दुहित्रोस्तस्य वै मनोः।
धर्मज्ञानोपदेशार्थं भगवान्पुत्रतां गतः॥ ५

॥ભગવાન શ્રીવાસુદેવને નમસ્કાર॥

'स्वायंभुवस्य इति।' ત્રણ શ્લોકો વડે–

રાજા પરીક્ષિત બોલ્યા – હે ગુરુ, અહીં સ્વાયંભુવ મનુનો આ વંશ વિસ્તારપૂર્વક શ્રવણ કરવામાં આવ્યો, કે જે વંશમાં (મનુની કન્યાઓમાં) (મરીચિ વગેરે) પ્રજાપતિઓની (પુત્ર-પૌત્રાદિ) સૃષ્ટિ (વર્ણવી) છે. હવે બીજા મનુઓ(ના વંશો) અમને કહો.॥૧॥

જે વંશમાં મનુની કન્યાઓમાં મરીચિ વગેરે પ્રજાપતિઓની પુત્રપૌત્રાદિ સૃષ્ટિ (વર્ણવી).॥૧॥

હે બ્રહ્મન્, જે જે મન્વન્તરમાં અત્યંત મહાન શ્રીહરિનાં જન્મ અને કર્મો વિદ્વજ્જનો ગાય છે, તે કર્મો, શ્રવણ કરતા એવા અમને કહો.॥૨॥

અત્યંત મહાન શ્રીહરિનાં (જન્મ અને કર્મો) અહીં ક્યાંક ક્યાંક ઘણાં પાઠાંતર છે, તેમની અમારા દ્વારા (શ્રીધરસ્વામી દ્વારા) ઉપેક્ષા કરવામાં આવી છે.॥૨॥

હે બ્રહ્મન્, જગતનું પાલન કરનારા ભગવાને ભૂતકાળના જે મન્વન્તરમાં જે કર્યું હતું, ભવિષ્યકાળના જે મન્વન્તરમાં જે કરશે અને વર્તમાન મન્વન્તરમાં જે કરી રહ્યા છે (તે અમને કહો).॥૩॥

ભૂતકાળના જે મન્વન્તરમાં જે કર્યું હતું, ભવિષ્યકાળના જે મન્વન્તરમાં જે કરશે અને **'अद्य'** વર્તમાનમાં જે કરે છે તે કહો, એમ અન્વય છે.॥૩॥

ઋષિ (શુકદેવજી) બોલ્યા – આ કલ્પમાં સ્વાયંભુવ વગેરે છ મનુઓ વીતી ગયા, જેમાંના પ્રથમ સ્વાયંભુવ મનુ અને દેવતા વગેરેની ઉત્પત્તિ વિષે મેં તમને કહ્યું.॥૪॥

આ કલ્પમાં છ મનુઓ વીતી ગયા.॥૪॥

તે સ્વાયંભુવ મનુની આકૂતિ અને દેવહૂતિ (નામની) બે પુત્રીઓમાં ધર્મ અને જ્ઞાનનો ઉપદેશ આપવા માટે ભગવાન (યજ્ઞમૂર્તિ અને કપિલદેવ નામે) પુત્રત્વ પામ્યા હતા.॥૫॥

तस्य मनोर्दुहित्रोः कपिलयज्ञमूर्तिभ्यां पुत्रतां गतः प्राप्तः ॥ ५ ॥

તે મનુની બે પુત્રીઓમાં (આકૂતિમાં ધર્મોપદેશ કરવા માટે) યજ્ઞમૂર્તિરૂપે અને (દેવહૂતિમાં જ્ઞાનોપદેશ કરવા માટે) કપિલરૂપે પુત્રત્વને '**ગતઃ**' પ્રાપ્ત થયા હતા. ॥ ५ ॥

कृतं पुरा भगवतः कपिलस्यानुवर्णितम्।
आख्यास्ये भगवान्यज्ञो यच्चकार कुरूद्वह॥ ६
॥ ६ ॥

હે કુરુવંશી પરીક્ષિત, ભગવાન કપિલદેવનું ચરિત્ર પહેલાં જ (ત્રીજા સ્કંધમાં) વર્ણવવામાં આવ્યું. (હવે) ભગવાન યજ્ઞે જે કર્મો કર્યાં તે (હું) કહીશ. ॥ ६ ॥ ६ ॥

विरक्तः कामभोगेषु शतरूपापतिः प्रभुः।
विसृज्य राज्यं तपसे सभार्यो वनमाविशत्॥ ७
॥ ७ ॥

કામભોગો પ્રત્યે વિરક્ત થયેલા શતરૂપાના સમર્થ પતિ સ્વાયંભુવ મનુ રાજ્ય છોડીને ભાર્યા સહિત તપ કરવા માટે વનમાં આવી વસ્યા. ॥ ७ ॥ ७ ॥

सुनन्दायां वर्षशतं पदैकेन भुवं स्पृशन्।
तप्यमानस्ततो घोरमिदमन्वाह भारत॥ ८

હે ભરતવંશી પરીક્ષિત, સુનંદા (ગંગા) નદીને કિનારે સો વર્ષ સુધી એક પગથી પૃથ્વીનો સ્પર્શ કરતા, દુષ્કર તપ કરતા મનુ મહારાજ આ પ્રમાણે જપ કરતા હતા. ॥ ८ ॥

घोरं दुश्चरं तपस्तप्यमानः समाधावनुभूतमिदं वक्ष्यमाणं निद्रितोच्छ्वसितवद्विस्मित इवोपदिशन्निवानुवदन्निव चाष्टभिः श्लोकैरन्वाह॥ ८ ॥

'**ઘોરમ્**' મહામુશ્કેલ તપ કરતાં, સમાધિમાં અનુભવેલ, (હવે) આ કહેવામાં આવનાર (સ્તુતિ કરતા હતા). નિદ્રામાં ઉચ્છ્વાસ લેતા હોય તેમ વિસ્મિત મનુષ્યની જેમ ઉપદેશ કરતા હોય તેમ આઠ શ્લોકો દ્વારા રટણ કરતાં કહેતા હતા. ॥ ८ ॥

वंशीधरी—त्रिधा भिन्ना विष्णुपदी सुनंदेति प्रकीर्तिता इति तीर्थः।

निद्रितस्य योगनिद्रानिमीलिताक्षस्य हरेरुच्छ्वसितं वेदस्तद्वत् वेदस्य साक्षाद्धरेरुच्छ्वसितत्वादत्र वतिना निर्देशः।

वेदश्लाघ्यत्वान्मनूक्तेः 'यन्मनुरवदत्तद्भेषजम्' इति श्रुतेर्वेदतुल्यत्वम्। भगवदैश्वर्यस्मरणाद्विस्मित

વિષ્ણુપદી ગંગાજી ત્રણ ધારાઓમાં જુદાં પડે છે, તે સુનંદા કહેવાય છે, એમ તીર્થ કહે છે.

નિદ્રિત એટલે યોગનિદ્રામાં જેમણે નેત્રો બંધ કર્યાં છે એવા શ્રીહરિનો ઉચ્છ્વાસ એ જ વેદ છે તેની જેમ. વેદ એ સાક્ષાત્ શ્રીહરિનો ઉચ્છ્વાસ છે. તેથી અહીં ટીકામાં '**निद्रितोच्छ्वसितवत्**' એવો '**वत्**' પ્રત્યયવાળો શબ્દપ્રયોગ કર્યો છે. (જેમ વેદ ઉચ્છ્વાસમાંથી પ્રકટ થયા તેમ હવે આવતી સ્તુતિ પણ સાક્ષાત્ શ્રીહરિના ઉચ્છ્વાસરૂપ છે, એમ અહીં '**वत्**' પ્રત્યયથી નિર્દેશ કર્યો છે.) વેદ પ્રશંસનીય હોવાથી આ સ્તુતિ પણ પ્રશંસનીય છે. મનુની જે ઉક્તિ છે તે વેદતુલ્ય છે. કારણ કે એમ દર્શાવતી શ્રુતિ છે. 'મનુ જે બોલ્યા તે ઔષધ છે.'

इव उपदिष्टस्य 'ईशावास्यम्' इत्यादिना प्राग्वेदेनोक्तस्योपदेशादुपदिशन् इव कथित-कथनस्यैव कथनादनुवदन्निवेति चोक्तिः।

(૧) ભગવાનના ઐશ્વર્યના સ્મરણથી આશ્ચર્યચકિત થયેલા મનુએ, **'ईशावास्यमिदम्'** વગેરેથી પૂર્વે જે કહેલું છે તે, ઉપદેશના આધારે ઉપદેશ આપતા હોય તેમ, કથિતનું જ કથન કર્યું હોય તેમ જણાય છે, એવી શ્રીધરજીની ઉક્તિ છે.

(આઠ પદ્યો દ્વારા મનુ મહારાજે કરેલી સ્તુતિ હવે શરૂ થાય છે.)

मनुरुवाच

येन चेतयते विश्वं विश्वं चेतयते न यम्।
यो जागर्ति शयानेऽस्मिन्नायं तं वेद वेद सः॥ ९

મનુમહારાજ (સ્તુતિ કરતા) કહે છે – જેમનાથી વિશ્વ ચેતન બની જાય છે, પરંતુ વિશ્વ જેમને ચેતના નથી આપી શકતું, આ જગત (પ્રલયકાળે) સૂઈ જાય છે ત્યારે જે (સાક્ષીરૂપે) જાગે છે તેમને આ જનસમૂહ જાણતો નથી, પણ તે તો આ જનસમૂહને જાણે છે.॥૯॥

येन चिदात्मना विश्वं चेतयते चेतनीभवति। विश्वं तु यं न चेतयते न चेतनीकरोति। स्वत एव चिद्रूपत्वात्। तत्र हेतुः—अस्मिन् शयाने स्वपति यो जागर्ति साक्षितया वर्तते। अहो चित्रं नायं जनस्तं वेद। स तु इमं वेद॥ ९॥

જેમના ચેતનસ્વરૂપ(ના સ્પર્શ) દ્વારા વિશ્વ **'चेतयते'** ચેતન બની જાય છે, પરંતુ વિશ્વ જેમને ચેતના નથી આપી શકતું, કારણ કે તે પોતાની મેળે જ ચિદ્રૂપ છે. તે માટેનું કારણ— આ જગત **'शयाने'** સૂઈ જાય છે, ત્યારે જે **'जागर्ति'** સાક્ષીરૂપે રહે છે. અહો! આશ્ચર્ય છે કે આ જનસમૂહ તેમને જાણતો નથી, પરંતુ તે આ જનસમૂહને જાણે છે.॥૯॥

तस्येश्वरत्वं दर्शयन् लोकस्य हितमुपदिशति—

તેમનું ઈશ્વરત્વ દર્શાવતાં, લોકોના હિતનો ઉપદેશ કરે છે–

आत्मावास्यमिदं विश्वं यत् किञ्चिज्जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥
॥ १०॥

જગતમાં જે કોઈ પ્રાણીઓ અને પદાર્થો છે, એ સર્વ ઈશ્વર(ની સત્તા અને ચૈતન્ય)થી વ્યાપ્ત છે. તે ઈશ્વર દ્વારા આપવામાં આવેલા (ધન)થી જ ભોગોને તું ભોગવ. બીજા કોઈના પણ ધનની તૃષ્ણા ન રાખ.॥૧૦॥

आत्मना ईश्वरेणावास्यं सत्ताचैतन्याभ्यां संव्याप्यं विश्वं सर्वं जगत्यां लोके यत्किंचिज्जगद्भूतजातं अतस्तेनैवेश्वरेण यत् किंचित्त्यक्तं दत्तं धनं तेनैव भुञ्जीथाः भोगान्भुङ्क्ष्व। यद्वा तेन हेतुना त्यक्तेनेश्वरार्पणेन

'आत्मना' ઈશ્વર દ્વારા **'आवास्यम्'** સત્તા અને ચૈતન્યરૂપે વ્યાપેલું છે **'विश्वम्'** સર્વ **'जगत्याम्'** જગતીમાં (પૃથ્વીમાં) જે કોઈ **'जगत्'** જે કોઈ જગતરૂપ બનેલ પદાર્થસમૂહ છે તે બધા જ આથી તે જ ઈશ્વરથી (વ્યાપ્ત છે) ઈશ્વર દ્વારા જે કંઈ **'त्यक्तम्'** આપવામાં આવેલું ધન છે તેનાથી જ

भुञ्जीथा न स्वार्थम्। कस्यस्वित्कस्यचिदपि धनं मा गृधो माऽभिकाङ्क्षीः।

'**भुञ्जीथाः**' ભોગોને ભોગવ. અથવા '**तेन**' ઈશ્વરાર્પણના હેતુથી '**त्यक्तेन**' ઈશ્વરને અર્પણ કરવા દ્વારા ભોગો ભોગવ, (માત્ર) સ્વાર્થ માટે નહીં. '**कस्यस्वित्**' કોઈના પણ ધનની '**मा गृधः**' લાલચ ન રાખ.

यद्वा कस्यस्विदिति कस्यान्यस्य धनमस्ति, यतो धनकाङ्क्षा क्रियेतेत्यर्थः। तथा च श्रुतिः— 'ईशावास्यम्' इति यथाश्लोकमेव॥ १०॥

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम्॥

અથવા '**कस्यस्वित् इति।**' '**कस्य**' બીજા કોનું ધન છે, જેને માટે આકાંક્ષા કરાય છે? એમ અર્થ છે. તે અનુસાર જ શ્રુતિ છે.॥ ૧૦॥

જગતમાં જે કંઈ સ્થાવર-જંગમ સંસાર છે, તે સર્વ ઈશ્વરથી આચ્છાદનીય છે. (આ રીતે સર્વત્ર બ્રહ્મદષ્ટિથી મિથ્યા નામ-રૂપાત્મક જગતનો ત્યાગ થઈ જાય છે.) તે જ ત્યાગભાવથી તું આત્માનું પાલન કર, કોઈના ધનની ઈચ્છા ન કર. (શુ.ય.મા.સં ૪૦/૧) શુ.ય. કાણ્વ સંહિતામાં પણ આ ઉપ. પ્રાપ્ત થાય છે.

ननु यदि सर्वं व्याप्नोति तर्हि चक्षुरादिभिः किं न प्रतीयते तत्राह—

શંકા કરવામાં આવી છે કે જો પરમાત્મા સર્વમાં વ્યાપેલા છે તો ચક્ષુ વગેરે દ્વારા કેમ પ્રતીત નથી થતા? તે માટે ઉત્તર આપે છે—

यं न पश्यति पश्यन्तं चक्षुर्यस्य न रिष्यति।
तं भूतनिलयं देवं सुपर्णमुपधावत॥ ११

(સર્વને) જોનારા જે ઈશ્વરને મનુષ્ય જોતો નથી તથા જેમનું (ચક્ષુ=)જ્ઞાન નાશ પામતું નથી, તે (સર્વ) પ્રાણીઓમાં નિવાસ કરનારા (હોવા છતાં જે અસંગ છે તેવા જીવાત્માના સખારૂપ પરમાત્મા) સુપર્ણદેવનું ભજન કર.॥ ૧૧॥

यं पश्यन्तं जनश्चक्षुर्वा न पश्यति, चक्षुराद्यविषयत्वात्। न हि प्रमातारं प्रमाणं विषयीकरोतीति भावः। तथा च श्रुतिः— 'चक्षुषश्चक्षुरुत श्रोत्रस्य श्रोत्रम्' इत्यादि।

જે જોનારાને મનુષ્ય અથવા ચક્ષુ જોતાં નથી, કારણ કે ચક્ષુ વગેરેના તેઓ અવિષય છે. પ્રમાતા (ચૈતન્યરૂપ આત્મા)ને પ્રમાણ વિષય ન બનાવી શકે એવો ભાવ છે. શ્રુતિ પણ તે અનુસાર છે— 'પરમાત્મા ચક્ષુનું પણ ચક્ષુ છે અને શ્રોત્રનો પણ શ્રોત્ર છે.' (બૃહદા.ઉપ.૪/૪/૧૮)

ननु तर्हि घटनाशे देवदत्तस्य तद्विषयं चाक्षुषं ज्ञानमिवेश्वरस्यापि स्वरूपभूतं तद्विषयं ज्ञानं नश्येत्तत्राह—यस्य तु पश्यतश्चक्षुर्ज्ञानं न

કોઈ શંકા કરે કે ઘડો ફૂટી જાય ત્યારે દેવદત્તનું તે (ઘટ) વિષયક ચક્ષુજ્ઞાન નાશ પામે છે, તેમ ઈશ્વરનું પણ સ્વરૂપભૂત જ્ઞાન નાશ પામે. તે માટે ઉત્તર આપે છે— જે જોનારાનું '**चक्षुः**' જ્ઞાન

रिष्यति न नश्यति। तत्तदाकारेणोत्पन्नाया वृत्तेरेव नाशो न स्वत:सिद्धज्ञानस्य। न हि सवितृप्रकाशः प्रकाश्यनाशे नश्यतीति भावः।

'**न रिष्यति**' નાશ પામતું નથી. તે તે આકારે ઉત્પન્ન થતા ઘટ-પટાદિ વૃત્તિજ્ઞાનનો નાશ થાય છે, સ્વતઃસિદ્ધ જ્ઞાનનો નાશ નથી થતો. સૂર્યપ્રકાશથી પ્રકાશિત થનારી વસ્તુનો નાશ થતાં સૂર્યપ્રકાશ નાશ પામતો નથી, એવો ભાવ છે.

भूतानि निलयो यस्य तं सर्वान्तर्यामिणं, तथापि सुपर्णं शोभनपतनमसङ्गमुपधावत भजध्वम् ॥ ११ ॥

પ્રાણીઓ જેમનો નિવાસ છે તે સર્વાન્તર્યામીને (ભજો). અંતર્યામી હોવા છતાં પણ '**सुपर्णम्**' સુંદર પાંખોવાળા, જીવાત્માના અસંગ સખાની '**उपधावत**' તમે સેવા કરો. ॥ ૧૧ ॥

तस्य स्वरूपस्य नित्यत्वमेवोपपादयन्नाह— **न यस्येति**।

તે પરમાત્માના સ્વરૂપની નિત્યતા જ સિદ્ધ કરતાં કહે છે— '**न यस्य इति।**'

न यस्याद्यन्तौ मध्यं च स्वः परो नान्तरं बहिः।
विश्वस्यामूनि यद् यस्माद् विश्वं च तदृतं महत्॥
॥ १२ ॥

જે પરમાત્માને આદિ, અંત અને મધ્ય નથી, નથી કોઈ પોતાનાં કે પારકાં, તેમ જ જે નથી અંદર કે બહાર, વળી જે પરમાત્માને કારણે જગતનાં તે (આદિ, અંત, મધ્ય, પોતાનાં, પારકાં, અંદર, બહાર) થાય છે તથા આ જગત જેમનું સ્વરૂપ છે, તે પરમાત્મા સત્યસ્વરૂપ અને પરિપૂર્ણ બ્રહ્મ છે. ॥ ૧૨ ॥

अमून्याद्यन्तादीनि विश्वस्य यस्माद्भवन्ति विश्वं च यत् यद्रूपम्। अत *एवाव्यभिचारित्वात्तदृतं सत्यम्। महत् परिपूर्णं ब्रह्म॥ १२ ॥

વિશ્વનાં '**अमूनि**' તે આદિ, અંત વગેરે (મધ્ય, પોતાનાં, પારકાં, અંદર, બહાર) જે પરમાત્માને કારણે થાય છે તથા વિશ્વ '**यत्**' જેમનું સ્વરૂપ છે. આથી જ એટલે કે બ્રહ્મરૂપ હોવાથી, જગતના પ્રત્યેક પદાર્થ સાથે નિયતરૂપે* રહેતા હોવાથી તે પરમાત્મા '**ऋतम्**' સત્ય છે, '**महत्**' પરિપૂર્ણ બ્રહ્મ છે. ॥ ૧૨ ॥

ननु विश्वं चेत्तद्रूपं तर्हि तस्य कुतो जन्माद्यभावः स्वप्रकाशत्वं वा, कथं वा जगज्जन्मादिकर्तृत्वेन विकारिणः सत्यत्वं पूर्णत्वं च तत्राह—

કોઈ શંકા કરે કે જો આ જગત પરમાત્માનું સ્વરૂપ છે તો પછી તેમને (પરમાત્માને) જન્માદિ કેમ નથી? વળી તે સ્વપ્રકાશ કેમ છે? અને જગતનાં જન્માદિના કર્તા હોવાથી વિકારવાન એવા તે સત્ય અને પૂર્ણ કેવી રીતે છે? તે માટે ઉત્તર આપે છે–

---

* પદાર્થ હોય ત્યાં પરમાત્મા હોય જ એ સહચાર છે, પરંતુ પરમાત્મા હોય ત્યાં પદાર્થ હોય જ એમ નહીં, તે વ્યભિચાર છે.

स विश्वकायः पुरुहूत ईशः
सत्यः स्वयंज्योतिरजः पुराणः।
धत्तेऽस्य जन्माद्यजयाऽऽत्मशक्त्या
तां विद्ययोदस्य निरीह आस्ते॥ १३

તે પરમાત્મા અજન્મા છે, સત્યસ્વરૂપ છે, સ્વયંપ્રકાશ છે, પુરાણ (જગતના કારણરૂપ અથવા પુરાતન હોવા છતાં નિત્યનૂતન) છે, વિશ્વરૂપી કાયાવાળા છે, અનેક (અનંત) નામોવાળા છે, ઈશ્વર છે, તેઓ આ વિશ્વના જન્માદિ પોતાની માયાશક્તિથી ધારણ કરે છે અને તે માયાને જ્ઞાનવિદ્યાથી ત્યાગીને પોતે ક્રિયારહિત જ રહે છે. ॥ ૧૩ ॥

स ईशोऽजः सत्यश्च स्वप्रकाशश्च पुराणश्च निर्विकारः। विश्वं कायो यस्य। पुरूणि हूतानि नामानि यस्य तथाविधोऽपि यतोऽस्य विश्वस्य जन्मादि स्वशक्त्या मायया धत्ते। तां च नित्यसिद्धया विद्ययोदस्य हित्वा निष्क्रिय एवास्ते॥ १३ ॥

તે ઈશ્વર અજન્મા છે, સત્યસ્વરૂપ છે, સ્વપ્રકાશ છે, પુરાણ છે, નિર્વિકાર છે, જગત જેમનું શરીર છે, જેમનાં અનેક '**हूतानि**' નામો છે, તેવા હોવા છતાં પણ આ વિશ્વનાં જન્માદિ પોતાની માયાશક્તિથી ધારણ કરે છે અને તે માયાશક્તિને નિત્યસિદ્ધ એવી જ્ઞાનવિદ્યાથી '**उदस्य**' (**उत्**+**अस्** નું ભૂ.કૃ.) ત્યાગ કરીને પોતે ક્રિયારહિત જ રહે છે. ॥ ૧૩ ॥

अथाग्रे ऋषयः कर्माणीहन्तेऽकर्महेतवे।
ईहमानो हि पुरुषः प्रायोऽनीहां प्रपद्यते॥ १४

આથી ઋષિઓ મોક્ષ મેળવવા માટે પહેલાં કર્મો કરે છે, કારણ કે કર્મ કરનારો મનુષ્ય ઘણું કરીને નૈષ્કર્મ્યને પ્રાપ્ત થાય છે. ॥ ૧૪ ॥

यस्मादेवमीश्वरः कर्म कृत्वा संत्यज्य नैष्कर्म्येणास्ते, अथास्माद्धेतोः ऋषयोऽप्यग्रे आदौ कर्माणि कुर्वन्ति। किमर्थम्। अकर्महेतवे मोक्षार्थम्। पाठान्तरे कर्मनाशाय। हि यस्मात्॥ १४ ॥

જે કારણે ઈશ્વર કર્મ કરી તેનો ત્યાગ કરી ક્રિયારહિત (અકર્મની સ્થિતિમાં) રહે છે, તે કારણે ઋષિઓ પણ '**अग्रे**' પહેલાં કર્મો કરે છે. શા માટે? '**अकर्महेतवे**' મોક્ષ માટે. પાઠાંતરમાં ('**कर्महन्तवे**') કર્મનાશ માટે– '**हि**' કારણ કે ॥ ૧૪ ॥

(વેદમાં હેત્વર્થ કૃદન્તમાં '**तुम्**' પ્રત્યયને બદલે '**तवे**' પ્રત્યય લાગે છે). ('**हन्तुम्**' - '**हन्तवे**')

नन्वीहमानः कर्मभिरवगुण्ठितः कोशकार इव बध्येतैव तत्राह—**ईहत इति**।

કોઈ શંકા કરે કે '**ईहमानः**' કર્મોથી ઘેરાયેલો મનુષ્ય કોશેટાની જેમ બંધાઈ જ જાય ને! તો તે માટે ઉત્તર આપે છે— '**ईहते इति**।'

ईहते भगवानीशो न हि तत्र विषज्जते।
आत्मलाभेन पूर्णार्थो नावसीदन्ति येऽनु तम्॥
॥ १५ ॥

(પરમાનંદરૂપ) આત્મલાભથી પૂર્ણકામ એવા ભગવાન ઈશ (સૃષ્ટિ વગેરે) કર્મો કરે છે, પરંતુ તે કર્મોમાં આસક્ત નથી થતા. આથી તે ભગવાનને જેઓ અનુસરે છે તેઓ (પણ) કર્મોમાં આસક્ત થતા નથી. ॥ ૧૫ ॥

अतस्तमनुवर्तमाना ये ते नावसीदन्ति न विषज्जन्ते॥ १५॥

वंशीधरी—तस्य कर्माणि लोकसंग्रहार्थानि न त्वासक्तिपूर्वकाणीति वदति।

वंशीधरी—एतेन कैमुत्यमुक्तं ये तमनुवर्त्तमानास्तेऽपि नावसीदन्ति किमुतेश इति।

सि.प्र.—भगवत्स्वभावानुवर्त्तिनः सुखिनो भवन्तीत्याह।

तदेवं लोकानुग्रहाय विश्वसृष्ट्यादि यः करोति श्रीरामकृष्णाद्यवतारैश्च वेदोक्तमप्याचरति तं शरणं व्रजामीत्याह—**तमिति**।

तमीहमानं निरहङ्कृतं बुधं
निराशिषं पूर्णमनन्यचोदितम्।
नृञ्छिक्षयन्तं निजवर्त्मसंस्थितं
प्रभुं प्रपद्येऽखिलधर्मभावनम्॥ १६

निजं वर्त्म नरावतारानुरूपो मार्गस्तत्र सम्यक् स्थितम्। अत ईहमानं कर्माचरन्तम्। तथापि जीववैलक्षण्यमाह—निरहंकृतं निराशिषमनन्यचोदितमिति च। निरहंकारत्वे

આથી તે ભગવાનને જેઓ અનુસરે છે તેઓ (પણ) **'न-अवसीदन्ति'** આસક્ત થતા નથી.॥ ૧૫॥

ભગવાનનાં કર્મો લોકસંગ્રહ માટે છે, આસક્તિપૂર્વક કરાયેલાં નથી, એમ કહે છે.

આ શ્લોક દ્વારા કૈમુત્યન્યાય કહેવામાં આવ્યો છે. તે ઈશ્વરને અનુસરીને રહેનારા ભક્તો પણ કર્મોમાં આસક્ત થતા નથી, તો ઈશ્વર આસક્ત ન થાય તેમાં શું કહેવાનું?

ભગવાનના સ્વભાવને અનુસરનારા સુખી થાય છે, એમ કહે છે.

તે પ્રમાણે લોકો ઉપર અનુગ્રહ કરવા માટે વિશ્વનું જે સર્જન વગેરે કરે છે, શ્રીરામકૃષ્ણાદિ અવતારો દ્વારા અને વેદમાં કહ્યા પ્રમાણે પણ જે આચરણ કરે છે, તેમને શરણે હું જાઉં છું, એમ કહે છે— **'तम् इति।'**

(જે ભગવાન મનુષ્યાવતારને અનુરૂપ) પોતાના માર્ગ ઉપર સારી રીતે રહેલા છે, (અને તેથી જ) કર્મો કરનાર છે, (છતાં પણ) નિરહંકારી છે, (કારણ કે) જ્ઞાની છે, ફળની ઈચ્છા રાખનારા નથી, (કારણ કે) પૂર્ણ છે, બીજા કોઈના દ્વારા પ્રયુક્ત કરાયેલા નથી, (કારણ કે) સમર્થ છે, (તેમ છતાં પણ) મનુષ્યોને શિક્ષણ આપતાં, સમગ્ર ધર્મોનું પ્રવર્તન કરે છે તે ભગવાનને શરણે હું જાઉં છું.॥ ૧૬॥

'निजं वर्त्म' મનુષ્યાવતારને અનુરૂપ પોતાનો માર્ગ, તેમાં સારી રીતે સ્થિત થયેલા ભગવાનને (શરણે), મનુષ્ય અવતારને અનુરૂપ માર્ગમાં સ્થિત હોવાથી **'ईहमानम्'** કર્મોનું આચરણ કરતા ભગવાનને (શરણે), કર્મ કરતા હોવા છતાં પણ જીવથી વિલક્ષણતા કહે છે— **'निरहङ्कृतम्'** નિરહંકારીને, **'निराशिषम्'** ફળની ઈચ્છા ન રાખનારાને, **'अनन्यचोदितम् च'** તથા જેમને બીજા કોઈએ પ્રેરણા કરવી પડતી નથી તેવાને (શરણે). નિરહંકારિત્વ હોવા માટેનું કારણ–

हेतुः—बुधम्। निराशीष्ट्वे हेतुः—पूर्णम्। अनन्यनियुक्तत्वे हेतुः—प्रभुम्। तथापि कर्मानुष्ठाने हेतुः—नृन्स्वाचारेण शिक्षयन्तम्। तत्किमर्थं तत्राह—अखिलान् धर्मान् भावयति प्रवर्तयतीति तथा तम्॥ १६॥

'**बुधम्**' જ્ઞાનીને, ફળની કામના ન હોવા માટેનું કારણ— પૂર્ણને, બીજા કોઈના દ્વારા પ્રયુક્ત ન હોવા માટેનું કારણ— સમર્થને, આવા હોવા છતાં પણ કર્મોનું અનુષ્ઠાન કરવા માટેનું કારણ— મનુષ્યોને પોતાના આચરણ દ્વારા શિક્ષણ આપતા ભગવાનને (શરણે) મનુષ્યોને શિક્ષણ શા માટે આપે છે? તે માટે ઉત્તર આપે છે— સમગ્ર ધર્મોનું '**भावयति**' પ્રવર્તન કરે છે તેવા તે ભગવાનને (શરણે હું જાઉં છું).॥ ૧૬॥

श्रीशुक उवाच

इति मन्त्रोपनिषदं व्याहरन्तं समाहितम्।
दृष्ट्वासुरा यातुधाना जग्धुमभ्यद्रवन् क्षुधा॥ १७

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — આ પ્રમાણે સમાધિસ્થ હોવા છતાં પણ મંત્રોપનિષદ્ ઉચ્ચારતા મનુ મહારાજને જોઈને અસુરો અને રાક્ષસો ભૂખને કારણે તેમને ખાવા દોડ્યા.॥ ૧૭॥

समाहितमपि सन्तं मन्त्रोपनिषदं व्याहरन्तं दृष्ट्वा सुप्तोच्छ्वसितवद्विवशमिव मन्वाना असुरा यातुधानाश्च क्षुधानिमित्तेन जग्धुमत्तुमभ्यद्रवन्नभिदुद्रुवुः॥ १७॥

સમાધિમાં હોવા છતાં પણ મંત્રોપનિષદ ઉચ્ચારતા જોઈને સૂતેલા અને ઉચ્છ્વાસ કાઢતા જેમ વિવશ હોય તેવા તેમને માનતા અસુરો અને રાક્ષસો ભૂખને કારણે '**जग्धुम्**' ખાવા માટે '**अभ्यद्रवन्**' દોડ્યા.॥ ૧૭॥

तांस्तथावसितान् वीक्ष्य यज्ञः सर्वगतो हरिः।
यामैः परिवृतो देवैर्हत्वाशासत् त्रिविष्टपम्॥ १८

સર્વવ્યાપક યજ્ઞભગવાન શ્રીહરિએ તેવા (મનુને ખાઈ જવાના) નિશ્ચયવાળા (અસુરો અને રાક્ષસો)ને જોઈ, તેમનો નાશ કરી, (પોતાના પુત્રો) યામદેવોથી સેવિત થઈ સ્વર્ગનું શાસન કર્યું હતું.॥ ૧૮॥

यामैः स्वपुत्रैः। त्रिविष्टपं स्वर्गमपालयत्। स्वयमेवेन्द्रो बभूवेत्यर्थः। तत्र प्रतिमन्वन्तरं मन्वादयः षडन्येऽन्ये भवन्ति। तथा हि सूतो द्वादशे वक्ष्यति—'मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वराः। ऋषयोंऽशावतारश्च हरेः षड्विधमुच्यते॥' इति।

'**यामैः**' પોતાના પુત્રોથી સેવિત થઈ શ્રીહરિએ '**त्रिविष्टपम्**' સ્વર્ગનું શાસન કર્યું હતું. શ્રીહરિ પોતે જ ઈન્દ્ર બન્યા હતા, એમ અર્થ છે. તેમાં (ચૌદ મન્વન્તરોમાં) પ્રત્યેક મન્વન્તરમાં મનુ વગેરે છ જુદા જુદા હોય છે. તે જ પ્રમાણે બારમા સ્કંધમાં સૂતજી કહેશે— '(દરેક) મન્વન્તરમાં મનુ, દેવો, મનુપુત્રો, ઈન્દ્ર, ઋષિઓ અને શ્રીહરિનો અંશાવતાર– એમ છ પ્રકારનાં રૂપો કહેવામાં આવ્યાં છે.' (શ્રીમદ્ ભા.૧૨/૭/૧૫)

तत्राद्ये स्वायंभुवो मनुः। प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ। यामादयो देवाः। मरीचिप्रमुखाः सप्तऋषयः। यज्ञो हरेरवतारः। इन्द्रश्च स एवेति। तन्मन्वन्तरं पञ्चविधमेव तच्चतुर्थस्कन्धोपक्रमे निरूपितम् ॥ १८ ॥

यामदेवाः—

तोषः प्रतोषः संतोषो भद्रः शान्तिरिडस्पतिः।
इध्मः कविर्विभुः स्वह्नः सुदेवो रोचनो द्विषट्॥

(श्रीमद्भा. ४/१/७)

अन्वि.—'मरीचिरत्रिर्भगवानङ्गिरा पुलहः क्रतुः। पुलस्त्यश्च वशिष्ठश्च सप्तैते ब्रह्मणः सुताः॥' इति हरिवंशोक्ताः सप्तर्षयः।

अन्वि.—'तुषिता नाम ते देवा आसन् स्वायंभुवान्तरे।' इति चतुर्थस्कंधवचनं तु कल्पान्तरीयमिति ज्ञेयम्।

તે (ચૌદ મનુઓ)માં પ્રથમ સ્વાયંભુવ મનુ છે. પ્રિયવ્રત અને ઉત્તાનપાદ, એ બે મનુપુત્રો, યામ વગેરે દેવો, જેમાં મરીચિ મુખ્ય છે તે સાત ઋષિઓ અને '**यज्ञः**' શ્રીહરિનો (અંશ) અવતાર. તે શ્રીહરિ જ ઈન્દ્ર (બન્યા હતા). તે મન્વન્તરમાં પાંચ પ્રકારનાં રૂપો હતાં, તે ચોથા સ્કંધમાં વર્ણવ્યું છે. (શ્રીમદ્ ભા.૪/૧/૮)॥ ૧૮॥

'તોષ, પ્રતોષ, સંતોષ, ભદ્ર, શાંતિ, ઈડસ્પતિ, ઈધ્મ, કવિ, વિભુ, સ્વહ્ન, સુદેવ, રોચન–એમ બાર યામદેવો છે.' (યજ્ઞભગવાન અને દક્ષિણાના બાર પુત્રો)

'મરીચિ, અત્રિ, ભગવાન અંગિરા, પુલહ, ક્રતુ, પુલસ્ત્ય અને વશિષ્ઠ–આ સાત બ્રહ્માજીના પુત્રો (સપ્તર્ષિઓ) છે.' (હરિવંશ ૧૧/૮)

'સ્વાયંભુવ મન્વન્તરમાં તેઓ તુષિત નામના દેવો હતા.' એ ચતુર્થ સ્કંધનું વચન બીજા કલ્પને માટે છે એમ સમજવું. (કારણ કે ઉપર્યુક્ત શ્લોકમાં સ્વાયંભુવ મન્વન્તરમાં યામ વગેરે દેવો કહેવામાં આવ્યા છે.)

स्वारोचिषो द्वितीयस्तु मनुरग्नेः सुतोऽभवत्।
द्युमत्सुषेणरोचिष्मत्प्रमुखास्तस्य चात्मजाः॥ १९

बीજા સ્વારોચિષ મનુ તો અગ્નિના પુત્ર હતા તથા દ્યુમત્, સુષેણ અને રોચિષ્માન્ જેમાં મુખ્ય છે તેઓ તેમના (મનુના) પુત્રો હતા.॥ ૧૯॥

द्वितीयादिषु त्रिषु मन्वन्तरेषु मन्वादिषट्कमाह—स्वारोचिषो द्वितीयस्त्विति यावद्गजेन्द्रमोक्षप्रश्नम् ॥ १९ ॥

બીજાથી માંડીને ત્રણ મન્વન્તરોમાં મનુ વગેરે છનું ષટ્ક વર્ણવે છે— '**स्वारोचिषो द्वितीयस्तु**' થી માંડી જ્યાં સુધી ગજેન્દ્રમોક્ષનો પ્રશ્ન કરવામાં આવ્યો છે ત્યાં સુધી. (શ્લોક ૩૦ સુધી ચાર મનુઓનું વર્ણન છે.)॥ ૧૯॥

तत्रेन्द्रो रोचनस्त्वासीद् देवाश्च तुषितादयः।
ऊर्जस्तम्भादयः सप्त ऋषयो ब्रह्मवादिनः॥ २०

॥ २० ॥

તે મન્વન્તરમાં રોચન (નામના) ઈન્દ્ર હતા, તુષિત વગેરે દેવો, ઊર્જસ્તંભ વગેરે સાત બ્રહ્મવાદી ઋષિઓ હતા.॥ ૨૦॥ ૨૦॥

ऋषेस्तु वेदशिरसस्तुषिता नाम पत्न्यभूत्।
तस्यां जज्ञे ततो देवो विभुरित्यभिविश्रुतः॥ २१

॥ २१ ॥

વેદશિરા ઋષિની તુષિતા નામની પત્ની હતી. તે વેદશિરાથી તે તુષિતા(ના ગર્ભ)માં વિભુ નામથી પ્રસિદ્ધ થયેલા દેવાધિદેવ શ્રીહરિ જન્મ્યા હતા.॥ ૨૧॥ ૨૧॥

विभोरसाधारणं चरितमाह—**अष्टाशीतिसहस्त्राणीति।**

अष्टाशीतिसहस्त्राणि मुनयो ये धृतव्रताः।
अन्वशिक्षन्व्रतं तस्य कौमारब्रह्मचारिणः॥ २२

॥ २२ ॥

तृतीय उत्तमो नाम प्रियव्रतसुतो मनुः।
पवनः सृञ्जयो यज्ञहोत्राद्यास्तत्सुता नृप॥ २३

॥ २३ ॥

वसिष्ठतनयाः सप्त ऋषयः प्रमदादयः।
सत्या वेदश्रुता भद्रा देवा इन्द्रस्तु सत्यजित्॥ २४

॥ २४ ॥

धर्मस्य सूनृतायां तु भगवान्पुरुषोत्तमः।
सत्यसेन इति ख्यातो जातः सत्यव्रतैः सह॥ २५

॥ २५ ॥

सोऽनृतव्रतदुःशीलानसतो यक्षराक्षसान्।
भूतद्रुहो भूतगणांस्त्ववधीत् सत्यजित्सखः॥ २६

सत्यजित् इन्द्रस्य सखा सन्॥ २६ ॥

चतुर्थ उत्तमभ्राता मनुर्नाम्ना च तामसः।
पृथुः ख्यातिर्नरः केतुरित्याद्या दश तत्सुताः॥ २७

उत्तमस्तृतीयो मनुस्तस्य भ्राता तामसश्चतुर्थो मनुः॥ २७॥

सत्यका हरयो वीरा देवास्त्रिशिख ईश्वरः।
ज्योतिर्धामादयः सप्त ऋषयस्तामसेऽन्तरे॥ २८

त्रिशिख ईश्वर इन्द्रः॥ २८॥

अन्यानपि विशिष्टपराक्रमान्देवानाह—**देवा वैधृतय इति।**

देवा वैधृतयो नाम विधृतेस्तनया नृप।
नष्टाः कालेन यैर्वेदा विधृताः स्वेन तेजसा॥ २९

॥ २९ ॥

વિભુનું અસાધારણ ચરિત્ર જણાવે છે— **'अष्टाशीतिसहस्त्राणि इति।'**

(યમ, નિયમાદિ સાધનથી સંપન્ન એવા) જે અઠ્યાશી હજાર વ્રતધારી મુનિઓ હતા, તેઓ તે બાલબ્રહ્મચારી વિભુનો આચાર શીખ્યા હતા.॥ ૨૨ ॥ ૨૨ ॥

હે રાજા પરીક્ષિત, પ્રિયવ્રતના ઉત્તમ નામના પુત્ર ત્રીજા મનુ થયા હતા. તેમના પવન, સૃંજય, યજ્ઞહોત્ર વગેરે પુત્રો હતા.॥ ૨૩ ॥ ૨૩ ॥

વસિષ્ઠના પ્રમદ વગેરે પુત્રો સપ્ત ઋષિઓ હતા. સત્ય, વેદશ્રુત અને ભદ્ર દેવો હતા તથા સત્યજિત નામના ઈન્દ્ર હતા.॥ ૨૪ ॥ ૨૪ ॥

ધર્મની (પત્ની) સૂનૃતા વિષે સત્યવ્રત નામના દેવોની સાથે સત્યસેન નામે પ્રખ્યાત એવા ભગવાન પુરુષોત્તમ જન્મ્યા હતા.॥ ૨૫ ॥ ૨૫ ॥

તે ભગવાન સત્યસેને સત્યજિત ઈન્દ્રના સખા બની અસત્યપરાયણ દુષ્ટ સ્વભાવવાળા, અસાધુ યક્ષો અને રાક્ષસો તથા પ્રાણીઓનો દ્રોહ કરનારા ભૂતગણોનો વધ કર્યો.॥ ૨૬ ॥

સત્યજિત ઈન્દ્રના સખા હતા.॥ ૨૬ ॥

ત્યાર પછી તામસ નામના ઉત્તમના ભાઈ ચોથા મનુ થયા. પૃથુ, ખ્યાતિ, નર, કેતુ વગેરે દશ તેમના પુત્રો થયા.॥ ૨૭ ॥

ઉત્તમ ત્રીજા મનુ હતા. તેમના ભાઈ તામસ ચોથા મનુ થયા.॥ ૨૭ ॥

તામસ મન્વન્તરમાં સત્યક, હરિ, વીર (નામના) દેવો, ત્રિશિખ નામના ઈન્દ્ર અને જયોતિર્ધામ વગેરે સપ્તર્ષિઓ થયા.॥ ૨૮ ॥

ત્રિશિખ નામના **'ईश्वरः'** ઈન્દ્ર॥ ૨૮ ॥

વિશિષ્ટ પરાક્રમવાળા બીજા દેવોનું પણ વર્ણન કરે છે— વૈધૃતિ નામના દેવો.

હે રાજા, વિધૃતિના વૈધૃતિ નામના પુત્રો (પણ બીજા દેવો હતા), જેમના દ્વારા કાળને કારણે નષ્ટ થયેલા વેદો પોતાના તેજથી ધારણ કરવામાં આવ્યા હતા.॥ ૨૯ ॥ ૨૯ ॥

तत्रापि जज्ञे भगवान्हरिण्यां हरिमेधसः।
हरिरित्याहृतो येन गजेन्द्रो मोचितो ग्रहात्॥ ३०

તે મન્વન્તરમાં પણ હરિમેધા ઋષિનાં પત્ની હરિણી વિષે 'હરિ' નામથી કહેવાતા ભગવાન અવતર્યા હતા, જેમણે ગજેન્દ્રને ગ્રાહ પાસેથી છોડાવ્યો હતો.॥ ૩૦॥

हरिरित्याहृतो व्याहृतः। ग्रहात् ग्राहात् ॥ ३० ॥

'**हरि**' નામથી '**आहृतः**' કહેવાતા, '**ग्रहात्**' ગ્રાહ પાસેથી॥ ૩૦॥

राजोवाच

बादरायण एतत् ते श्रोतुमिच्छामहे वयम्।
हरिर्यथा गजपतिं ग्राहग्रस्तममूमुचत्॥ ३१

રાજા પરીક્ષિત બોલ્યા – હે બાદરાયણ, ગ્રાહ દ્વારા ગ્રસ્ત થયેલા ગજેન્દ્રને શ્રીહરિએ જે રીતે છોડાવ્યો, એ કથા અમે આપની પાસેથી સાંભળવા ઈચ્છીએ છીએ.॥ ૩૧ ॥

अमूमुचत् मोचयामास॥ ३१ ॥

'**अमूमुचत्**' છોડાવ્યો,॥ ૩૧ ॥

($\sqrt{\text{मुच्}}$ નું અદ્યતન ભૂ.કા **लुङ्** ૩ જો પુ.એવ.)

श्रवणेच्छायां हेतुः—

શ્રીહરિની કથા શ્રવણ કરવાની ઈચ્છા થવા માટેનું કારણ–

तत्कथा सुमहत् पुण्यं धन्यं स्वस्त्ययनं शुभम्।
यत्र यत्रोत्तमश्लोको भगवान्गीयते हरिः॥ ३२

(સર્વ કથાઓમાં) તે જ કથા પરમ પુણ્યમય, પ્રશંસનીય, કલ્યાણકારી અને શુભ છે, જેમાં ઉત્તમ કીર્તિવાળા ભગવાન શ્રીહરિ(ના ગુણો)નું ગાન થાય છે.॥ ૩૨॥

तत्कथासु तासु कथासु। सा कथैव वा सुमहत् पुण्यम्। पुण्यस्य विशेषणं धन्यमित्यादि॥ ३२॥

'**तत्कथासु**' તે કથાઓમાં અથવા તે કથા જ અતિ મહાન પુણ્યરૂપ છે. ('**तत्कथासु महत्**' અથવા '**तत्कथा सुमहत्**' એમ બે અર્થ છે.)॥ ૩૨ ॥

सूत उवाच

परीक्षितैवं स तु बादरायणिः
प्रायोपविष्टेन कथासु चोदितः।
उवाच विप्राः प्रतिनन्द्य पार्थिवं
मुदा मुनीनां सदसि स्म शृण्वताम्॥ ३३

॥ ३३ ॥

સૂતજી બોલ્યા – હે વિપ્રો, આમરણ અનશન કરીને બેઠેલા રાજા પરીક્ષિત દ્વારા કથા કહેવા માટે આ રીતે પ્રેરાયેલા તે વ્યાસનંદન શુકદેવજી પ્રસન્નતાપૂર્વક રાજાની પ્રશંસા કરીને સભાની વચ્ચે મુનિઓના સાંભળતાં કહેવા લાગ્યા.

॥ ૩૩ ॥ ૩૩ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे मन्वन्तरानुचरिते प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

*****

अथ द्वितीयोऽध्यायः

ગજગ્રાહયુદ્ધનું વર્ણન

तुर्ये मन्वन्तरे प्रोक्तं गजेन्द्रस्य विमोक्षणम्।
द्वितीयादित्रिभिस्तत्तु विस्तरेणोपवर्ण्यते ॥ १ ॥

ચોથા મન્વન્તરમાં ગજેન્દ્રની મુક્તિ કહેવામાં આવી છે. બીજા અધ્યાયથી માંડી ત્રણ અધ્યાય સુધી (અ.૨,૩,૪) તે (ગજેન્દ્રમોક્ષ)નું જ વિસ્તારપૂર્વક વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે. ॥ ૧ ॥

द्वितीये तु गजेन्द्रस्य गजीभिः क्रीडतो जले।
दैवाद्ग्राहगृहीतस्य हरिस्मृतिरुदीर्यते ॥ २ ॥

બીજા અધ્યાયમાં જળમાં હાથણીઓ સાથે ક્રીડા કરતા, દૈવયોગે મગર દ્વારા પકડવામાં આવેલા ગજેન્દ્રને શ્રીહરિનું સ્મરણ થયું, તે કહેવામાં આવ્યું છે. ॥ ૧ ॥

श्रीशुक उवाच

आसीद् गिरिवरो राजंस्त्रिकूट इति विश्रुतः।
क्षीरोदेनावृतः श्रीमान्योजनायुतमुच्छ्रितः ॥ १

आसीदस्ति ॥ १ ॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – હે રાજા પરીક્ષિત, ક્ષીરસાગરથી વીંટાયેલો, દસહજાર યોજન ઊંચો ત્રિકૂટ નામે પ્રખ્યાત (એક) શ્રેષ્ઠ પર્વત છે. ॥ ૧ ॥

'**आसीत्**' છે. ॥ ૧ ॥

तावता विस्तृतः पर्यक् त्रिभिः शृङ्गैः पयोनिधिम्।
दिशः खं रोचयन्नास्ते रौप्यायसहिरण्मयैः ॥ २

तावता योजनायुतेन। पर्यक् परितः। त्रिकूटसमाख्याबीजमाह—त्रिभिः शृङ्गैर्मुख्यैः ॥ २ ॥

ચોતરફથી તેટલા જ (દસહજાર) યોજન જેનો વિસ્તાર છે તે ત્રિકૂટ પર્વત ચાંદી, લોખંડ અને સુવર્ણમય ત્રણ શિખરોથી દિશાઓ, આકાશ અને સાગરને પ્રકાશિત કરતો રહે છે. ॥ ૨ ॥

તેટલા જ (દસહજાર) યોજન, '**पर्यक्**' ચોતરફ– 'ત્રિકૂટ' નામ માટેનું કારણ કહે છે— ત્રણ મુખ્ય શિખરોથી (પ્રકાશિત કરતો) ॥ ૨ ॥

अन्यैश्च ककुभः सर्वा रत्नधातुविचित्रितैः।
नानाद्रुमलतागुल्मैर्निर्घोषैर्निर्झराम्भसाम् ॥ ३

अन्यैश्च शृङ्गैर्निर्झराम्भसां निर्घोषैश्च ककुभः सर्वा रोचयन्नास्त इति पूर्वेणैवान्वयः। कथंभूतैः शृङ्गैः। रत्नैर्धातुभिश्च विचित्रितैः। नानाविधानां द्रुमलतानां गुल्मा येषु तैः ॥ ३ ॥

રત્નો અને ધાતુઓ વડે રંગબેરંગી (જણાતાં અન્ય) શિખરોથી તથા જાતજાતનાં વૃક્ષો અને લતાઓનાં ઝુંડોથી તેમ જ ઝરણાંઓના જળના નિનાદથી સર્વ દિશાઓને (પ્રકાશિત અને ગુંજાયમાન કરતો રહે છે). ॥ ૩ ॥

અન્ય શિખરોથી પણ અને ઝરણાંઓના જળના નિનાદથી સર્વ દિશાઓને પ્રકાશિત કરતો રહે છે, એમ પૂર્વના શ્લોક સાથે અન્વય છે. કેવાં શિખરોથી? રત્નો અને ધાતુઓ દ્વારા રંગબેરંગી શિખરોથી, જાતજાતનાં વૃક્ષો અને લતાઓનાં ઝુંડો છે જે શિખરોમાં, તેમનાંથી ॥ ૩ ॥

स चावनिज्यमानाङ्घ्रिः समन्तात् पयऊर्मिभिः ।
करोति श्यामलां भूमिं हरिन्मरकताश्मभिः ॥ ४

પયસ ऊर्मिभिः समन्तादवनिज्यमाना अङ्घ्रयो मूलप्रान्ता यस्य। हरिद्भिः पलाशवर्णैः ॥ ४ ॥

વળી, ચોતરફથી દૂધના (જેવા) તરંગોથી જેની નીચેની સપાટી (જેના ચરણ) પ્રક્ષાલિત થઈ રહી છે તે (ત્રિકૂટ) પર્વત હરિયાળા મરકત મણિઓથી ભૂમિને શ્યામવર્ણી કરી રહ્યો છે. ॥ ૪ ॥

ચોતરફથી દૂધના તરંગોથી પખાળવામાં આવી રહી છે '**अङ्घ्रयः**' નીચેની સપાટી જેની, '**हरिद्भिः**' ખાખરા જેવા હરિયાળા મરકત મણિઓથી ॥ ૪ ॥

सिद्धचारणगन्धर्वविद्याधरमहोरगैः ।
किन्नरैरप्सरोभिश्च क्रीडद्भिर्जुष्टकन्दरः ॥ ५

॥ ५ ॥

ક્રીડા કરતા સિદ્ધો, ચારણો, ગંધર્વો, વિદ્યાધરો, મોટા સર્પો, કિન્નરો અને અપ્સરાઓથી જેની કંદરાઓ સેવવામાં આવે છે (તેવો તે પર્વત છે). ॥ ૫ ॥ ૫ ॥

यत्र संगीतसन्नादैर्नदद्गुहममर्षया ।
अभिगर्जन्ति हरयः श्लाघिनः परशङ्कया ॥ ६

किन्नरादीनां संगीतसंनादैर्नदन्त्यो गुहा यस्मिन् प्रदेशे तमभिगर्जन्ति। हरयः सिंहाः। अमर्षया असहनेन ॥ ६ ॥

જે પર્વત પર (કિન્નરાદિનાં) સંગીતના ધ્વનિઓથી ગાજતી ગુફાઓ છે તે પ્રદેશની સામે (પોતાનાં પરાક્રમોનો) ગર્વ કરનારા સિંહો બીજા સિંહની શંકા થવાથી સહન ન કરવાને કારણે ગર્જનાઓ કરે છે. ॥ ૬ ॥

કિન્નરાદિના સંગીતના ધ્વનિઓથી ગાજતી ગુફાઓ જે પ્રદેશમાં છે, તેની સામે ગર્જનાઓ કરે છે. '**हरयः**' સિંહો, '**अमर्षया**' સહન ન થવાથી ॥ ૬ ॥

नानारण्यपशुव्रातसङ्कुलद्रोण्यलङ्कृतः ।
चित्रद्रुमसुरोद्यानकलकण्ठविहङ्गमः ॥ ७

नाना ये आरण्याः पशवस्तेषां व्रातैः संकुलाभिर्द्रोणीभिरलंकृत आस्ते। किंच चित्रा द्रुमा येषु तेषु सुरोद्यानेषु कलकण्ठा मधुरस्वना विहङ्गमा यस्मिन् ॥ ७ ॥

અનેક વન્ય પશુઓનાં ઝુંડોથી છવાયેલી પર્વતની તળેટીઓથી (પર્વત) અલંકૃત છે, જાતજાતનાં વૃક્ષોવાળા દેવોના ઉદ્યાનમાં મધુર (કલ)રવ કરતાં પક્ષીઓ તે પર્વતમાં છે. ॥ ૭ ॥

અનેક જાતનાં જે વન્ય પશુઓ છે તેમનાં ઝુંડોથી છવાયેલી (પર્વતની) તળેટીઓથી અલંકૃત પર્વત છે. વળી, જાતજાતનાં વૃક્ષો છે જેમનામાં તે દેવોના ઉદ્યાનમાં '**कलकण्ठाः**' મધુર (કલ)રવ કરતાં પક્ષીઓ જેમાં છે તે પર્વત ॥ ૭ ॥

सरित्सरोभिरच्छोदैः पुलिनैर्मणिवालुकैः ।
देवस्त्रीमज्जनामोदसौरभाम्ब्वनिलैर्युतः ॥ ८

સ્વચ્છ જળવાળાં સરોવરો અને સરિતાઓથી તથા મણિઓ જેવી (ચળકતી) વાલુકાવાળા કિનારાઓથી અને દેવોની પત્નીઓનાં સ્નાનની સુગંધથી સુરભિત થયેલાં જળ અને વાયુથી તે પર્વત યુક્ત છે. ॥ ૮ ॥

किंच स्वच्छोदकैः सरित्सरोभिर्युतः। मणय इव वालुका येषु तैः पुलिनैश्च युतः। देवस्त्रीणां मज्जनेन य आमोदस्तेन सौरभयुक्तान्यम्बून्यनिलाश्च तैश्च युत आस्ते॥ ८॥

વળી, સ્વચ્છ જળવાળાં સરોવરો અને સરિતાઓથી તે યુક્ત છે. મણિઓ જેવી રેતી જેમનામાં છે તેવા કિનારાઓથી પણ યુક્ત છે. દેવોની પત્નીઓનાં સ્નાન કરવાથી જે સુગંધ, તેનાથી સુરભિત જળ અને વાયુ, તેમનાથી પણ યુક્ત છે.॥ ૮॥

तस्य द्रोण्यां भगवतो वरुणस्य महात्मनः।
उद्यानमृतुमन्नाम आक्रीडं सुरयोषिताम्॥ ९

તે પર્વતની તળેટીમાં મહાત્મા વરુણ ભગવાનનો 'ઋતુમાન' નામનો ઉદ્યાન છે, જે દેવાંગનાઓનું ક્રીડાસ્થળ છે.॥ ૯॥

तस्य द्रोण्यां वरुणस्योद्यानमास्ते॥ ९॥

તેની તળેટીમાં વરુણદેવનો ઉદ્યાન છે.॥ ૯॥

गिरिवनादि सर्वं ध्येयमिति वक्ष्यत्यतो गिरिमुपवर्ण्य वनं वर्णयति—**सर्वतोऽलंकृतमिति**।

ગિરિ, વન વગેરે સર્વ ધ્યાન કરવાને યોગ્ય છે, એમ કહેશે. (અ-૪/૧૭ થી ૨૪) આથી ગિરિનું વર્ણન કરીને વનનું વર્ણન કરે છે— સર્વ તરફથી સુશોભિત છે.

सर्वतोऽलंकृतं दिव्यैर्नित्यं पुष्पफलद्रुमैः।
मन्दारैः पारिजातैश्च पाटलाशोकचम्पकैः॥ १०
चूतैः प्रियालैः पनसैराम्रैराम्रातकैरपि।
क्रमुकैर्नालिकेरैश्च खर्जूरैर्बीजपूरकैः॥ ११
मधूकैः सालतालैश्च तमालैरसनार्जुनैः।
अरिष्टोदुम्बरप्लक्षैर्वटैः किंशुकचन्दनैः॥ १२
पिचुमन्दैः कोविदारैः सरलैः सुरदारुभिः।
द्राक्षेक्षुरम्भाजम्बूभिर्बदर्यक्षाभयामलैः॥ १३
बिल्वैः कपित्थैर्जम्बीरैर्वृतो भल्लातकादिभिः।
तस्मिन्सरः सुविपुलं लसत्काञ्चनपङ्कजम्॥ १४

ચોતરફ મંદાર, પારિજાત, પાટલ, આસોપાલવ, ચમ્પા, ॥૧૦॥ ખાટી કેરીના આંબા, પ્રિયાલ (રાયણ), ફણસ, મીઠી કેરીના આંબા, અંભેડા, સોપારી, નારિયેળ, ખજૂરી, બિજોરાં, ॥૧૧॥ મહુડા, સાગ, તાડ, તમાલ, અસન, અર્જુન, અરીઠા, ઉંબરા, પીપળા, વડ, ખાખરા, ચંદન, ॥૧૨॥ લીંબડા, કંચનાર, ગૂગળ, દેવદાર, દ્રાક્ષ(લતા), શેરડી, કેળ, જાંબુડી, બોરડી, રુદ્રાક્ષ, હરીતકિ, આંબળાં, ॥૧૩॥ બીલી, કોઠી, લીંબુડી, ભિલામા વગેરે (જાતજાતનાં વૃક્ષો) દિવ્ય ફળફૂલનાં વૃક્ષોથી સદાય છવાયેલો સુશોભિત (પર્વત) છે. તેમાં એક અતિ વિશાળ ચળકતાં સોનેરી કમળોવાળું સરોવર છે.॥ ૧૪॥

पुनर्गिरिं वर्णयति—मन्दारैरिति चतुर्भिः। मन्दारादिभिर्वृत इत्यन्वयः॥ १०॥ ११॥ १२॥ १३॥

ફરીથી ગિરિનું ચાર શ્લોકો વડે વર્ણન કરે છે— '**मन्दारैः इति**।' મંદાર વગેરે વૃક્ષોથી છવાયેલો પર્વત, એમ અન્વય છે.॥ ૧૦॥ ૧૧॥ ૧૨॥ ૧૩॥

तस्मिन् गिरौ सर आस्ते। तद्वर्णयति– सुविपुलमित्यादि सार्धैः पञ्चभिः। लसन्ति काञ्चनपङ्कजानि यस्मिन्॥ १४॥

તે પર્વત ઉપર સરોવર છે. તેનું સાડા પાંચ શ્લોકો દ્વારા વર્ણન કરે છે— '**सुविपुलम् इति**।' વગેરે ચળકતાં સોનેરી કમળો છે જે સરોવરમાં॥ ૧૪॥

वंशीधरी—चूतैः अम्लैः आम्रैः मधुरैः।

कुमुदोत्पलकह्लारशतपत्रश्रियोर्जितम् ।
मत्तषट्पदनिर्घुष्टं शकुन्तैश्च कलस्वनैः॥ १५
हंसकारण्डवाकीर्णं चक्राह्वैः सारसैरपि।
जलकुक्कुटकोयष्टिदात्यूहकुलकूजितम्॥ १६

कुमुदादीनां श्रिया ऊर्जितम्। कलः स्वनो येषां तैः शकुन्तैश्च निर्घुष्टम्॥ १५॥

चक्राह्वैः सारसैरप्याकीर्णम्। जलकुक्कुटादीनां कुलैः कूजितम्॥ १६॥

मत्स्यकच्छपसञ्चारचलत्पद्मरजःपयः ।
कदम्बवेतसनलनीपवञ्जुलकैर्वृतम् ॥ १७

कुन्दैः कुरबकाशोकैः शिरीषैः कुटजेङ्गुदैः।
कुब्जकैः स्वर्णयूथीभिर्नागपुन्नागजातिभिः॥ १८

मल्लिकाशतपत्रैश्च माधवीजालकादिभिः।
शोभितं तीरजैश्चान्यैर्नित्यर्तुभिरलं द्रुमैः॥ १९

मत्स्यानां कच्छपानां च संचारेण चलतां पद्मानां रजसा युक्तं पयो यस्मिंस्तत्॥ १७॥ १८॥

नित्यमृतवः फलपुष्पादिसंपत्तिहेतवो येषां तैरलं शोभितम्॥ १९॥

तत्रैकदा तद्गिरिकाननाश्रयः
करेणुभिर्वारणयूथपश्चरन् ।
सकण्टकान् कीचकवेणुवेत्रवद्
विशालगुल्मं प्ररुजन्वनस्पतीन्॥ २०

'**चूतैः**' એટલે ખાટી કેરીના આંબાઓથી તથા '**આમ્રૈઃ**' એટલે મીઠી કેરીના આંબાઓથી.

પોયણાં, નીલકમળ, શ્વેતકમળ, શતપત્રકમળની શોભાથી શોભતું, મત્ત ભમરાઓથી અને મધુર કલરવ કરતાં પક્ષીઓથી ગૂંજતું, હંસ અને બતકથી ભરેલું, ચક્રવાક, સારસ, જળકૂકડાં, કોયલ વૃંદના કલરવથી કૂજિત (સરોવર છે).॥ ૧૫॥ ૧૬॥

કુમુદ વગેરેની શોભાથી શોભતું, કલરવ (અસ્પષ્ટ મધુર કૂજન) છે જેમનો તે પક્ષીઓથી ગુંજિત॥ ૧૫॥

ચક્રવાક અને સારસોથી પણ ભરેલું, જળકૂકડાં વગેરેના સમૂહથી કૂજિત (સરોવર)॥ ૧૬॥

માછલાં અને કાચબાઓના ચાલવાથી હાલતાં કમળોની રજવાળું જળ છે જેમાં, કદમ્બ, નેતર, નરકુલ, કદમ્બલતા, આસોપાલવથી ઘેરાયેલું, ॥ ૧૭॥

મોગરા, કાંટાસરિયા, અશોક, શિરીષ, ગિરિમલ્લિકા, ઈંગોરિયા (તાપસતરુ), સેવંતી, સોનજૂઈ, નાગચંપા, પુન્નાગ, જાઈ॥ ૧૮॥

મલ્લિકા, શતપત્ર, માધવીની મુકુલિત લતાઓ અને કિનારે ઊગેલાં સર્વ ઋતુઓમાં (હર્યાં-ભર્યાં રહેનારાં) વૃક્ષોથી તે સરોવર અત્યંત શોભતું હતું.॥ ૧૯॥

માછલાં અને કાચબાના ચાલવાથી હાલતાં કમળોની રજવાળું જળ છે જેમાં તે સરોવર॥ ૧૭॥ ૧૮॥

ફળ, પુષ્પ વગેરે સંપત્તિના કારણરૂપ ઋતુઓ જેમની નિત્ય હોય છે તેમનાથી અત્યંત શોભાયમાન સરોવર॥ ૧૯॥

એક વખત તે ગિરિકાનનમાં રહેતો હાથીઓના જૂથનો નાયક હાથણીઓ સાથે ફરતો કાંટાવાળી વનસ્પતિ અને પોલા તથા નક્કર વાંસવાળી વિશાળ ઝાડીને ભાંગતો, (તે સરોવરની પાસે પહોંચ્યો.)॥ ૨૦॥

तत्रैवं सत्येकदा तद्गिरिकाननाश्रयो वारणयूथपः करेणुभिश्चरंस्तृषार्दितेन स्वयूथेन वृतः सरोवरस्याभ्याशं समीपमगमदिति पञ्चमेनान्वयः। किं कुर्वन्। कीचकवेणुवेत्रवन्तं विशालं गुल्मं लतादिसंदर्भं वनस्पतींश्च प्ररुजन्प्रभञ्जन्॥ २०॥

ત્યાં આમ હતું, ત્યારે એક વખત તે ગિરિકાનનના આશ્રયવાળો (ગિરિકાનનમાં રહેતો), હાથીઓના જૂથનો નાયક, હાથણીઓ સાથે ફરતો તૃષાતુર થવાથી પોતાના જૂથથી વીંટળાઈને સરોવરની '**अभ्याशम्**' પાસે જઈ પહોંચ્યો, એમ આનાથી પાંચમા શ્લોક (૨૪) સાથે અન્વય છે. શું કરતો? પોલા તથા નક્કર વાંસવાળી વિશાળ ઝાડીને તથા લતાદિના સંબંધવાળી વનસ્પતિને '**प्ररुजन्**' ભાંગતો॥ ૨૦॥

यद्गन्धमात्राद्धरयो गजेन्द्रा
व्याघ्रादयो व्यालमृगाः सखड्गाः।
महोरगाश्चापि भयाद् द्रवन्ति
सगौरकृष्णाः शरभाश्चमर्यः॥ २१

જે હાથીની ગંધ માત્રથી જ સિંહો, મોટા હાથીઓ, ગેંડા સહિત વાઘ વગેરે, સર્પાકાર મૃગો, મોટા સર્પો, ધોળા અને કાળા મૃગો સહિત અષ્ટપદો અને ચમરી ગાય (વગેરે) ભયથી ભાગી છૂટતાં,॥ ૨૧॥

कथंभूतः। यस्य गन्धमात्राद्धरयः सिंहा गजेन्द्रादयश्च भयाद्द्रवन्ति पलायन्ते॥ २१॥

કેવો હાથી? જેની ગંધ માત્રથી જ '**हरयः**' સિંહો અને મોટા હાથી વગેરે પશુઓ ભયથી '**द्रवन्ति**' ભાગી જાય છે (જતાં).॥ ૨૧॥

वंशीधरी—'व्यालमृगाः सर्पाकारा मृगाः'।

વ્યાલમૃગો એટલે સર્પાકાર મૃગો.

वृका वराहा महिषर्क्षशल्या
गोपुच्छसालावृकमर्कटाश्च ।
अन्यत्र क्षुद्रा हरिणाः शशादय-
श्चरन्त्यभीता यदनुग्रहेण॥ २२

વરુઓ, ભૂંડો, પાડા, રીંછો, શેઢાઈઓ, વાંદરા, કૂતરાં, માંકડાં, હરણો અને સસલાં વગેરે ક્ષુદ્ર પશુઓ જે હાથીની કૃપાથી (વનમાં) બીજે સ્થળે નિર્ભય થઈને ફરતાં,॥ ૨૨॥

वृकादयः क्षुद्रा अल्पाः प्राणिनोऽन्यत्र तद्दृष्टिपथं त्यक्त्वा चरन्ति॥ २२॥

વરુ વગેરે '**क्षुद्राः**' તુચ્છ પ્રાણીઓ તેની નજર ચૂકવીને બીજે ફરતાં॥ ૨૨॥

स घर्मतप्तः करिभिः करेणुभि-
र्वृतो मदच्युत्कलभैरनुद्रुतः।
गिरिं गरिम्णा परितः प्रकम्पयन्
निषेव्यमाणोऽलिकुलैर्मदाशनैः ॥ २३
सरोऽनिलं पङ्कजरेणुरूषितं
जिघ्रन्विदूरान्मदविह्वलेक्षणः ।
वृतः स्वयूथेन तृषार्दितेन तत्
सरोवराभ्याशमथागमद् द्रुतम्॥ २४

(સૂર્યના) તડકાથી તપેલો, હાથીઓ અને હાથણીઓથી વીંટળાયેલો, મદનિયાં દ્વારા અનુસરાતો, (પોતાની) સ્થૂળતાથી પર્વતને ચોતરફ કંપાવતો, મદપાન કરનારાં ભ્રમરવૃંદોથી સેવાતો, મદથી વિહ્વળ બનેલાં નેત્રોવાળો, પોતાના જૂથ વડે ઘેરાયેલો તે મદઝરતો તૃષાતુર ગજેન્દ્ર કમળની રજથી વ્યાપેલા તે સરોવરના વાયુને દૂરથી જ સૂંઘતો ત્વરાપૂર્વક તે સરોવર પાસે ગયો.॥ ૨૩॥ ૨૪॥

पुनः कीदृशः घर्मतप्तः। मदच्युन्मदस्त्रावी। मदमश्नन्तीति तथा तैः॥ २३॥ २४॥

વળી, કેવો હતો તે હાથી? તડકાથી તપેલો, **'मदच्युत्'** મદ ઝરતો, **('मद-अशनैः')** મદનું પાન કરે છે તેવા ભમરાઓનાં વૃંદો દ્વારા (સેવાતો ગજેન્દ્ર)॥ ૨૩॥ ૨૪॥

विगाह्य तस्मिन्नमृताम्बु निर्मलं
हेमारविन्दोत्पलरेणुवासितम्।
पपौ निकामं निजपुष्करोद्धृत-
मात्मानमद्भिः स्नपयन्गतक्लमः॥ २५

તે સરોવરમાં પ્રવિષ્ટ થઈ જળથી પોતાને સ્નાન કરાવી શ્રમરહિત થઈ, પોતાની સૂંઢ(ના અગ્ર ભાગ)થી ખેંચેલું, સોનેરી અને નીલકમળોની પરાગરજથી સુવાસિત થયેલું અમૃત જેવું નિર્મળ જળ પોતાની ઈચ્છા મુજબ પીધું.॥ ૨૫॥

निजेन पुष्करेण कराग्रेणोद्धृतम्। गतक्लमः सन्निकामं पपौ॥ २५॥

પોતાની સૂંઢથી, સૂંઢના અગ્ર ભાગથી ઉપર ખેંચેલું જળ શ્રમરહિત થઈ ઈચ્છા મુજબ પીધું.॥ ૨૫॥

स्वपुष्करेणोद्धृतशीकराम्बुभि-
र्निपाययन्संस्नपयन् यथा गृही।
घृणी करेणूः कलभांश्च दुर्मदो
नाचष्ट कृच्छ्रं कृपणोऽजमायया॥ २६
॥ २६॥

હાથણીઓ અને મદનિયાંઓને પોતાની સૂંઢથી ખેંચેલાં જળબિંદુઓથી, ગૃહાદિમાં આસક્ત મનુષ્યની જેમ જળ પિવડાવતા અને સ્નાન કરાવતા મત્ત અને મૂઢ બનેલા બિચારા ગજેન્દ્રે અજન્મા ભગવાન શ્રીહરિની માયાથી (પોતાની ઉપર આવનારા) સંકટને ન જોયું.॥ ૨૬॥ ૨૬॥

तं तत्र कश्चिन्नृप दैवचोदितो
ग्राहो बलीयांश्चरणे रुषाऽग्रहीत्।
यदृच्छयैवं व्यसनं गतो गजो
यथाबलं सोऽतिबलो विचक्रमे॥ २७
॥ २७॥

હે રાજા, તે સ્થળે દૈવથી પ્રેરાયેલા કોઈ મહાબળવાન મગરે ક્રોધથી (તે હાથીનો) પગ પકડ્યો. દૈવેચ્છાથી આ રીતે સંકટમાં આવી પડેલો તે અતિ બળવાન હાથી પોતાના બળ પ્રમાણે (છૂટવાનો) પ્રયત્ન કરવા લાગ્યો.॥ ૨૭॥॥ ૨૭॥

तथाऽऽतुरं यूथपतिं करेणवो
विकृष्यमाणं तरसा बलीयसा।
विचुक्रुशुर्दीनधियोऽपरे गजाः
पार्ष्णिग्रहास्तारयितुं न चाशकन्॥ २८

બળવાન મગર વડે બળપૂર્વક તે રીતે ખેંચાતા દુઃખી ગજેન્દ્રને (જોઈ) દીનબુદ્ધિ થયેલી હાથણીઓ ચિત્કાર કરવા લાગી તેમ જ તેની પાછળ સહાય કરનારા બીજા હાથીઓ તેને છોડાવવા માટે સમર્થ થયા નહીં.॥ ૨૮॥

दीनधियः करेणवस्तं केवलं विचुक्रुशुः॥ २८॥

દીનબુદ્ધિની હાથણીઓએ તેને માટે કેવળ આક્રોશ કર્યો.॥ ૨૮॥

नियुध्यतोरेवमिभेन्द्रनक्रयो-
र्विकर्षतोरन्तरतो बहिर्मिथः।
समाः सहस्त्रं व्यगमन् महीपते
सप्राणयोश्चित्रममंसतामराः॥ २९
॥ २९॥

હે પૃથ્વીપતિ, આ પ્રમાણે જ્યારે યુદ્ધ કરતા સમાન બળવાળા ગજેન્દ્ર અને મગર એકબીજાને અંદર અને બહાર ખેંચતા હતા, ત્યારે હજાર વર્ષ વીતી ગયાં. (તે જોઈને) દેવોએ (પણ) તેને આશ્ચર્યકારક માન્યું.॥ ૨૯॥॥ ૨૯॥

ततो गजेन्द्रस्य मनोबलौजसां
कालेन दीर्घेण महानभूद् व्ययः।
विकृष्यमाणस्य जलेऽवसीदतो
विपर्ययोऽभूत् सकलं जलौकसः॥ ३०

मन उत्साहशक्तिः, बलं शारीरम्, ओजः ऐन्द्रियं तेषाम्। सकलं बलादि। विपर्ययो विपरीतमधिकम्। जलौकसो ग्राहस्य॥ ३०॥

इत्थं गजेन्द्रः स यदाऽऽप संकटं
प्राणस्य देही विवशो यदृच्छया।
अपारयन्नात्मविमोक्षणे चिरं
दध्याविमां बुद्धिमथाभ्यपद्यत॥ ३१

स इत्थं यदा प्राणस्य संकटमाप। यतो देही॥ ३१॥

बुद्धिमेवाह—**न मामिति**।

न मामिमे ज्ञातय आतुरं गजाः
कुतः करिण्यः प्रभवन्ति मोचितुम्।
ग्राहेण पाशेन विधातुरावृतो-
ऽप्यहं च तं यामि परं परायणम्॥ ३२

अहं न च प्रभवामि। यतो ग्राहरूपेण केवलं विधातुः पाशेनावृतः। तथापि तं परं परमेश्वरं परेषां ब्रह्मादीनामयनमाश्रयभूतं शरणं यामि॥ ३२॥

कोऽसौ यं शरणं यासि तत्राह—**यः कश्चनेति**।

ત્યાર પછી દીર્ઘકાળ સુધી જળમાં ખેંચાતા અને દુઃખી થતા ગજેન્દ્રના મનની ઉત્સાહશક્તિ, શારીરિક બળ અને ઇન્દ્રિયબળનો અત્યંત હ્રાસ થઈ ગયો અને જળચર એવા ગ્રાહની શક્તિઓમાં તો બળ વગેરે સકળ ઊલટું અધિક થયું.॥ ૩૦॥

‘**मनः**’ ઉત્સાહશક્તિ, ‘**बलम्**’ શરીરબળ, ‘**ओजः**’ ઇન્દ્રિયબળ, તે ત્રણેય બળ વગેરે ‘**सकलम्**’ સકળ ‘**विपर्ययः**’ ઊલટું અધિક થયું, જળચર એવા ગ્રાહનું (બળ)॥ ૩૦॥

વિવશ બની ગયેલો તે ગજેન્દ્ર દૈવેચ્છાથી આ પ્રમાણે જ્યારે પ્રાણના સંકટને પ્રાપ્ત થયો, ત્યારે દેહધારી હોઈ (આહારાદિ ન મળવાથી) પોતાને છોડાવવા માટે અસમર્થ થઈ ગયો. દીર્ઘકાળ પર્યન્ત તેણે વિચાર કર્યો અને તેથી તે આ બુદ્ધિને પ્રાપ્ત થયો.॥ ૩૧॥

તે આ પ્રમાણે જ્યારે પ્રાણના સંકટને પ્રાપ્ત થયો, કારણ કે દેહધારી હતો.॥ ૩૧॥

જે બુદ્ધિ પ્રાપ્ત થઈ તેને જ જણાવે છે— ‘**न माम् इति।**’

આ (મારા) જાતભાઈ એવા હાથીઓ દુઃખી એવા મને છોડાવવા સમર્થ નથી, તો હાથણીઓ તો ક્યાંથી (મને છોડાવવા સમર્થ થાય)? ગ્રાહરૂપે વિધાતાના પાશથી પકડાયેલો હું હવે બ્રહ્માદિના પણ આશ્રયરૂપ તે પરમેશ્વરને જ શરણે જાઉં છું.॥ ૩૨॥

હું પણ (મને છોડાવવા) શક્તિમાન નથી, કારણ કે ગ્રાહરૂપે કેવળ વિધાતાના પાશથી પકડાયેલો હું, તેમ છતાં ‘**तं परं**’ તે પરમેશ્વરને શરણે, ‘**परेषाम्**’ બ્રહ્માદિના ‘**अयनम्**’ આશ્રયરૂપ પરમેશ્વરને શરણે જાઉં છું.॥ ૩૨॥

એ કોણ છે જેને શરણે તું જાય છે? તે માટે ઉત્તર આપે છે— ‘**यः कश्चन इति।**’

यः कश्चनेशो बलिनोऽन्तकोरगात्
प्रचण्डवेगादभिधावतो भृशम्।
भीतं प्रपन्नं परिपाति यद्भया-
न्मृत्युः प्रधावत्यरणं तमीमहि॥ ३३

(અતિ) બળવાન, પ્રચંડ વેગવાળા અને સામેથી દોડી આવતા વિનાશક મૃત્યુરૂપી સર્પથી અત્યંત ભય પામેલા પોતાના શરણાગતનું જે કોઈ ઈશ્વર સર્વ રીતે રક્ષણ કરે છે અને જેમના ભયથી મૃત્યુ પણ ભાગી જાય છે, તેમને (પરમેશ્વરને) શરણે અમે જઈએ છીએ. ॥ ૩૩ ॥

अन्तक एवोरगस्तस्मात्। तं शरणमीमहि व्रजेम। यद्भयादित्यत्र श्रुतिः—

વિનાશ કરે છે તે '**अन्तकः**' મૃત્યુ, એ જ સર્પ, તેનાથી જે (રક્ષણ કરે છે), તેમને શરણે '**ईमहि**' અમે જઈએ છીએ. જેમના ભયથી આ જ વિષયમાં શ્રુતિ છે—

'भीषाऽस्माद्वातः पवते। भीषोदेति सूर्यः। भीषाऽस्मादग्निश्चेन्द्रश्च। मृत्युर्धावति पञ्चमः।' इति॥ ३३ ॥

'આ પરમેશ્વરના ભયથી વાયુ વાય છે, એમના ભયથી સૂર્ય ઉદય પામે છે, એમના જ ભયથી અગ્નિ, ઈન્દ્ર અને પાંચમું મૃત્યુ દોડે છે.' (તૈત્તિ.ઉપ.૨/૮/૧) ॥ ૩૩ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे मन्वन्तरानुवर्णने गजेन्द्रोपाख्याने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

ગજેન્દ્રમોક્ષ સ્તોત્ર

तृतीये तु गजेन्द्रेण स्तुतो हरिरुपेत्य तम्।
समुद्दधार तं ग्राहाद्ग्राहं देवलशापतः॥ १ ॥

ત્રીજા અધ્યાયમાં ગજેન્દ્ર દ્વારા સ્તુતિ કરાયેલા શ્રીહરિએ આવીને તે ગજેન્દ્રનો ગ્રાહથી અને ગ્રાહનો પણ દેવલ ઋષિના શાપથી ઉદ્ધાર કર્યો. ॥ ૧ ॥

श्रीशुक उवाच

एवं व्यवसितो बुद्ध्या समाधाय मनो हृदि।
जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम्॥ १

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – આ પ્રમાણે કૃતનિશ્ચય થયેલા ગજેન્દ્રે બુદ્ધિથી મનને હૃદયમાં સ્થિર કરી પૂર્વજન્મમાં શીખેલા જપ કરવા યોગ્ય શ્રેષ્ઠ સ્તોત્રનો જપ કરવા માંડયો. ॥ ૧ ॥

जाप्यं जप्यं स्तोत्रम्। प्राग्जन्मनि इन्द्रद्युम्नसंज्ञे॥ १ ॥

'**जाप्यम्**' જપવા યોગ્ય સ્તોત્રનો– 'ઈન્દ્રદ્યુમ્ન' નામવાળા પૂર્વજન્મમાં ॥ ૧ ॥

वीर.—'तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन॥
पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।'

'હે કુરુનંદન, (તે પુરુષ) ત્યાં તે પૂર્વ દેહમાં સાધન કરેલા સમબુદ્ધિયોગના સંસ્કારોને પામે છે અને તેમના પ્રભાવથી તે ફરી (ભગવત્પ્રાપ્તિરૂપ) સિદ્ધિ માટે પ્રયત્ન કરે છે, કેમ કે તે (યોગભ્રષ્ટ પુરુષ) અસંયમી (હોવા છતાં) પણ તે પૂર્વના અભ્યાસ વડે (ઈશ્વર તરફ) ખેંચાય છે જ.' એમ ગીતામાં (૬/૪૩, ૪૪) ભગવાને જ કહ્યું છે.

गजेन्द्र उवाच

ॐ नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम्।
पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि॥ २

ગજેન્દ્ર બોલ્યો – જેમને (ચૈતન્યસ્વરૂપને) કારણે આ (દેહાદિ) ચેતનરૂપ બને છે તે, (સર્વનાં) શરીરમાં કારણરૂપે રહેલા પ્રકૃતિ-પુરુષરૂપ ભગવાનને અને સમસ્ત જગતના એકમાત્ર ઈશ્વરને અમે ધ્યાનરૂપે નમસ્કાર કરીએ (છીએ). ॥ ૨ ॥

तस्मै नमो नमनमभिधीमह्यभिध्यायेम केवलम्। ग्राहगृहीतत्वेन कायप्रणतेरशक्यत्वात्। स्वस्य तज्ज्ञानं भावयितुं विशिनष्टि। यतश्चिद्रूपादे-तद्देहादिचिदात्मकं चेतनं भवति। तदुक्तम्—'येन चेतयते विश्वम्' इति। तत्र हेतुः—पुरुषाय पूर्षु कारणत्वेन प्रविष्टाय। ननु प्रकृतिपुरुषौ कारणमिति प्रसिद्धं तत्राह—

'तस्मै नमः' તેમને નમસ્કાર કેવળ **'अभिधीमहि'** ધ્યાન(રૂપે) કરીએ (છીએ), કારણ કે ગ્રાહ દ્વારા પોતાને પકડવામાં આવ્યો હોવાથી શરીરથી પ્રણત થવું અશક્ય છે. પોતાનું તે જ્ઞાન સાકાર કરવા માટે વિશેષણપૂર્વક કહે છે— જે ચૈતન્યસ્વરૂપને કારણે **'एतत्'** આ દેહાદિ **'चिदात्मकम्'** ચેતનરૂપ બને છે. તે જ કહેવાયું છે, 'જેમની ચેતનાના સ્પર્શમાત્રથી વિશ્વ ચેતન થઈ જાય છે.' (શ્રીમદ્ ભા.૮/૧/૯) તે માટેનું (વિશ્વ ચેતનપ્રદાયક હોવા માટે)નું કારણ— **'पुरुषाय'** શરીરોમાં કારણરૂપે પ્રવિષ્ટ થનારને (નમસ્કાર). શંકા કરવામાં આવી છે કે પ્રકૃતિ અને પુરુષ કારણરૂપ છે, એમ પ્રસિદ્ધ છે. તે માટે ઉત્તર આપે છે—

आदिः प्रकृतिर्बीजं पुरुषस्तद्रूपाय। प्रविष्टत्वेऽपि जीववत्पारतन्त्र्यं वारयति—परेशायेति ॥ २ ॥

'आदिः' પ્રકૃતિ, **'बीजम्'** પુરુષ, તે પ્રકૃતિ-પુરુષસ્વરૂપને (નમસ્કાર). સર્વમાં પ્રવિષ્ટ હોવા છતાં પણ જીવના જેવી પરતંત્રતાને નકારે છે— **'परेशाय इति।'** ॥ ૨ ॥

परमैश्वर्यं विवृण्वन्नाह यावत्समाप्ति।

અધ્યાય સમાપ્ત થાય ત્યાં સુધી ઈશ્વરના પરમ ઐશ્વર્યનું વિવરણ કરતાં કહે છે.

यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम्।
योऽस्मात् परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयम्भुवम्॥ ३

यस्मिन्नधिष्ठाने, यत उपादानात्, येन कर्त्रा, यश्च स्वयमेवेदं विश्वं भवति। अस्मात्कार्यात्पर-स्मात्कारणाच्च यः परस्तं स्वयंभुवं स्वतःसिद्धं प्रपद्ये शरणं व्रजामि॥ ३॥

वंशीधरी—यस्मिन्नधिष्ठाने—'परमे व्योमन् सर्वा भूतानि।'

यतश्चेदं—'यतो वा इमानि'

येनेदं—'येन जातानि जीवन्ति'

य इदं—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'

'यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥'
इति श्रीमुखोक्तेः।

विश्वहेतुत्वं स्वतःसिद्धत्वं चोक्तम्, इदानीं विश्वप्रकाशकत्वं स्वप्रकाशत्वं च वर्णयन् प्रार्थयते—**यः स्वात्मनीति**।

જે અધિષ્ઠાનમાં આ વિશ્વ રહેલું છે, જે ઉપાદાનથી આ વિશ્વ બને છે, જે કર્તા દ્વારા આ વિશ્વ રચાય છે, જે પોતે જ આ વિશ્વરૂપ બને છે, જે આ જગતરૂપ સ્થૂળ કાર્ય અને સૂક્ષ્મ કારણથી પર છે, તે સ્વતઃસિદ્ધ ભગવાનને શરણે હું જાઉં છું.॥ ૩॥

'**यस्मिन्**' જે અધિષ્ઠાનમાં આ વિશ્વ રહેલું છે, '**यतः**' જે ઉપાદાનથી આ વિશ્વ બનાવવામાં આવે છે, '**येन**' જે કર્તા દ્વારા આ વિશ્વ રચાય છે, જે પોતે જ આ વિશ્વરૂપ બને છે, '**अस्मात्**' આ સ્થૂળ કાર્ય અને '**परस्मात्**' સૂક્ષ્મ કારણથી (જે) પર છે, તે '**स्वयम्भुवम्**' સ્વતઃસિદ્ધ ભગવાનને '**प्रपद्ये**' શરણે હું જાઉં છું.॥ ૩॥

(મૂળ મળ્યું નથી, તેને મળતું તૈત્તિ.ઉપ.૩/૬ માં વાક્ય છે.) હૃદયાકાશમાં બ્રહ્મવિદ્યા સ્થિત છે.

નિશ્ચય જ જેમનાથી બ્રહ્માજીથી માંડીને સ્તમ્બ-પર્યન્ત સર્વ પ્રાણીઓ ઉત્પન્ન થાય છે.(તૈત્તિ.ઉપ.૩/૧)

ઉત્પન્ન થઈને જેમના આશ્રયથી તેઓ પ્રાણ ધારણ કરે છે. (તૈત્તિ.ઉપ.૩/૧)

આ સમગ્ર જગત બ્રહ્મ છે. (છાં.ઉપ.૩/૧૪/૧)

'કારણ કે હું નાશવાન (ક્ષેત્ર)થી અતીત (છું) અને અવિનાશી માયાથી (કે જીવાત્માથી) પણ ઉત્તમ (છું), તેથી લોકમાં તથા વેદમાં (પણ) પુરુષોત્તમ (નામથી) પ્રસિદ્ધ છું.' એમ શ્રીમુખે કહેવાયું છે. (ગીતા ૧૫/૧૮)

'**अक्षरात्परतः परः**' એ અક્ષરબ્રહ્મ શ્રેષ્ઠ અક્ષર (અવ્યાકૃત પ્રકૃતિ)થી પણ ઉત્કૃષ્ટ છે. (મુંડક.ઉપ. ૨/૧/૨)

પરમાત્મા વિશ્વનું કારણ છે અને સ્વયંસિદ્ધ છે તે કહેવામાં આવ્યું. હવે તે વિશ્વના પ્રકાશક છે તથા સ્વપ્રકાશરૂપ છે તે વર્ણવતાં પ્રાર્થના કરે છે—**'यः स्व-आत्मनि इति।'**

यः स्वात्मनीदं निजमाययार्पितं
क्वचिद् विभातं क्व च तत् तिरोहितम्।
अविद्धदृक् साक्ष्युभयं तदीक्षते
स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः॥ ४

પોતાનામાં જ રહેલા, પોતાની માયાએ રચેલા, ક્યારેક (સ્થૂળરૂપે) અભિવ્યક્ત થતા અને ક્યારેક (સૂક્ષ્મરૂપે) તિરોહિત થતા બંને કાર્યકારણરૂપ તે વિશ્વને સાક્ષી બનીને જે જુએ છે, તે અલુપ્ત દૃષ્ટિવાળા, સ્વયંપ્રકાશ અને ચક્ષુ વગેરેના પણ પ્રકાશક પરમાત્મા મારું રક્ષણ કરો.॥ ૪॥

विभातमभिव्यक्तं सत्, क्वचित्प्रलये तिरोहितं लीनं सत्, तदुभयं कार्यं कारणं च साक्षी सन्नीक्षते। साक्षित्वे हेतुः—अविद्धदृगलुप्तदृष्टिः। आत्ममूलः स्वयंप्रकाशः। कुतः। परात्प्रकाश-काच्चक्षुरादेरपि परः। तस्यापि प्रकाशक इत्यर्थः। 'चक्षुषश्चक्षुः' इत्यादिश्रुतेः॥ ४॥

'**विभातम्**' અભિવ્યક્ત થઈ– '**क्वचित्**' કયારેક પ્રલયસમયે '**तिरोहितम्**' લીન થઈ '**उभयम्**' કાર્ય-કારણ એવા તે બંનેને સાક્ષી બનીને જુએ છે. સાક્ષી હોવા માટેનું કારણ— '**अविद्धदृक्**' અલુપ્ત દૃષ્ટિવાળા છે. '**आत्ममूलः**' સ્વયંપ્રકાશ છે. કેમ? કારણ કે '**परात्**' ચક્ષુ વગેરે પ્રકાશકથી પણ પર છે, તેના પણ પ્રકાશક છે, એમ અર્થ છે. '(પરમાત્મા) ચક્ષુના પણ ચક્ષુ છે.' (કેન.ઉપ. ૧/૨) વગેરે શ્રુતિ છે.॥ ૪॥

वंशीधरी—'पुरुषात् न परं किञ्चित्' इति श्रुतेश्च'

પુરુષથી પર અન્ય કંઈ પણ નથી. (કઠ.ઉપ. ૩/૧૧)

तिरोहितमीक्षत इत्येतत्प्रपञ्चपूर्वकं दुर्ज्ञेयत्वं वदन्प्रार्थयते—**कालेनेति** द्वाभ्याम्।

'**तिरोहितं ईक्षते इति**' (શ્લોક-૪) પરમાત્માની દુર્જ્ઞેયતાને બે શ્લોકથી વિસ્તારપૂર્વક કહેતાં પ્રાર્થના કરે છે— '**कालेन इति।**'

कालेन पञ्चत्वमितेषु कृत्स्नशो
लोकेषु पालेषु च सर्वहेतुषु।
तमस्तदाऽऽसीद् गहनं गभीरं
यस्तस्य पारेऽभिविराजते विभुः॥ ५

સમગ્ર લોકો, લોકપાલો અને તેઓનાં (મહત્ વગેરે) સર્વ કારણો કાળે કરીને નાશ પામ્યાં ત્યારે ગહન, ગંભીર અંધકાર હતો. તે અંધકારની પેલે પાર જે વ્યાપક દેવ સર્વ તરફ પ્રકાશે છે (તે મારી રક્ષા કરો).॥ ૫॥

पञ्चत्वमितेषु नाशं प्राप्तेषु गहनं दुरवगाहम्। गभीरमनन्तम्। तस्य तमसः। 'आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्' इति श्रुतेः॥ ५॥

'**पञ्चत्वम् इतेषु**' નાશ પામ્યા (પંચત્વને પામ્યા) ત્યારે '**गहनम्**' અતાગ, '**गभीरम्**' અનંત અંધકારની (પેલે પાર)– 'સૂર્ય સમાન તેજસ્વી (પુરુષને હું જાણું છું જે) અંધકારની પેલે પાર છે.'॥ ૫॥ (શુ.ય.મા.સં. ૩૧/૧૮, શ્વેતા. ૩/૮)

न यस्य देवा ऋषयः पदं विदु-
र्जन्तुः पुनः कोऽर्हति गन्तुमीरितुम्।
यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो
दुरत्ययानुक्रमणः स माऽवतु॥ ६

જેમ (જુદા જુદા) વેષો દ્વારા અભિનય કરતા નટ(ના મૂળ સ્વરૂપ)ને જાણી શકાતું નથી, તેમ જેમના વાસ્તવિક સ્વરૂપને દેવો અને ઋષિઓ પણ જાણી શકતા નથી, તો કયો જીવ તેમને જાણવા કે વર્ણવવા માટે યોગ્ય છે? આવા દુર્ગમ ચરિત્રવાળા તે પરમેશ્વર મારી રક્ષા કરો.॥ ૬॥

अत एव देवादयो यस्य स्वरूपं न विदुः। जन्तुरर्वाचीनः कोऽपि गन्तुं ज्ञातुमीरितुं वक्तुं वा। दुरत्ययं दुर्गममनुक्रमणं चरितं कथनं वा यस्य सः। मा माम्॥ ६॥

આથી જ દેવો વગેરે જેમનું સ્વરૂપ જાણતા નથી, તો કયો '**जन्तुः**' અર્વાચીન જીવ '**गन्तुम्**' જાણવા માટે '**ईरितुम्**' વર્ણવવા માટે (યોગ્ય છે?)– '**दुरत्ययम्**' દુર્ગમ '**अनुक्रमणम्**' ચરિત્ર કે વર્ણન છે જેમનું તે '**मा**' મારું રક્ષણ કરો.॥ ૬॥

कथं तर्हि—'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति' इत्यादिश्रुतिरित्याशङ्क्य तज्ज्ञानोपायं कथयन्नाह— **दिदृक्षव इति**।

(જો એ સર્વથા દુર્જ્ઞેય હોય) તો પછી 'તે પરમાત્માને જાણી મૃત્યુને અતિક્રમી જાય છે.' (શ્વેતા.૩/૮, શુ.ય.મા.સં.૩૧/૧૮) વગેરે શ્રુતિ છે. દુર્જ્ઞેય છે તો '**विदित्वा**' જાણીને, એમ શ્રુતિ કેમ કહે છે, એવી આશંકા કરીને તેના જ્ઞાનનો ઉપાય કહેતાં જણાવે છે— '**दिदृक्षवः इति**।'

दिदृक्षवो यस्य पदं सुमङ्गलं
विमुक्तसङ्गा मुनयः सुसाधवः।
चरन्त्यलोकव्रतमव्रणं वने
भूतात्मभूताः सुहृदः स मे गतिः॥ ७

(સંસારની સર્વ) આસક્તિ છોડી દેનારા, સદાચારમાં અતિશય પ્રવૃત્ત થનારા, સમસ્ત પ્રાણીઓમાં આત્મદૃષ્ટિ કરનારા દયાળુ મુનિજનો જે અમંગળહારી ભગવાનના સ્વરૂપનું દર્શન કરવાની ઈચ્છાવાળા થઈ વનમાં (બ્રહ્મચર્યરૂપ) અલોકવ્રતનું અસ્ખલિત આચરણ કરે છે, તે ભગવાન મારું શરણ થાઓ!॥ ૭॥

अलोकव्रतं ब्रह्मचर्यादि। अव्रणमच्छिद्रम्। भूतानामात्मभूता भूतेष्वात्मदृष्टयः सन्तः। स मे गतिरस्तु॥ ७॥

'**अलोकव्रतम्**' આ લોકમાં આચરવા માટે દુષ્કર એવું બ્રહ્મચર્યાદિ વ્રત– '**अव्रणम्**' છિદ્રરહિત, અસ્ખલિત–('**भूतात्मभूताः**' શબ્દ સમજાવે છે.) **भूतानाम् आत्मभूताः** પ્રાણીઓમાં આત્મદૃષ્ટિ કરનારા મુનિઓ– તે ભગવાન મારું શરણ થાઓ!॥ ૭॥

दुरत्ययानुक्रमणत्वं प्रपञ्चयन्प्रणमति— **न विद्यत** इत्यादिना।

પરમાત્માના દુર્ગમ ચરિત્રને વિસ્તારપૂર્વક સમજાવતાં પ્રણામ કરે છે— '**न विद्यते इति**।' વગેરે દ્વારા.

न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा
न नामरूपे गुणदोष एव वा।
तथापि लोकाप्ययसंभवाय यः
स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति॥ ८

લોકાનામપ્યયઃ પ્રલયઃ, સંભવો જન્મ, તયોર્દ્વન્દ્વૈક્યમ્। તદર્થં યસ્તાનિ જન્માદીનિ સ્વીકરોતિ તસ્મૈ નમ ઇત્યુત્તરેણાન્વયઃ॥ ૮॥

जेमने जन्म अने कर्म नथी के नथी नाम अने रूप के नथी गुणसहित दोष, तेम छतां समयानुसार विश्वनां सर्जन अने संहार माटे जे भगवान पोतानी मायाथी ते सर्व (जन्म-कर्म, नाम-रूप, गुण-दोष) स्वीकारे छे. (ते भगवानने मारा नमस्कार हो.)॥ ८॥

લોકોના (વિશ્વના) '**અપ્યયઃ**' પ્રલય, '**સંભવઃ**' જન્મ, તે બંનેનો દ્વન્દ્વૈક્ય સમાસ છે. (દ્વન્દ્વૈક્ય સમાસમાં ઐક્ય ગણીને એ.વ. લીધું છે '**अप्ययसंभवाभ्याम्**' એમ હોવું જોઈએ.) તે માટે જે ભગવાન તે જન્માદિ સ્વીકારે છે, તેમને નમસ્કાર, એમ પછીના શ્લોક (૯) સાથે અન્વય છે.॥ ૮॥

तस्मै नमः परेशाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये।
अरूपायोरुरूपाय नम आश्चर्यकर्मणे॥ ९

ब्रह्मणे अरूपाय। अनन्तशक्तये उरुरूपाय। अत आश्चर्याणि कर्माणि यस्य तस्मै परेशाय नमः॥ ९॥

રૂપરહિત બ્રહ્મને નમસ્કાર. અનેકરૂપ ધારણ કરનાર અનંત શક્તિવાળાને નમસ્કાર. આશ્ચર્યકારક કર્મો કરનારને નમસ્કાર. બ્રહ્માદિના પણ ઈશ્વરને નમસ્કાર.॥ ૯॥

રૂપરહિત બ્રહ્મને નમસ્કાર. અનેક રૂપ ધારણ કરનાર અનંત શક્તિવાળાને નમસ્કાર અને તેથી આશ્ચર્યકારક કર્મો છે જેમનાં તેવા, બ્રહ્માદિના પણ ઈશ્વરને નમસ્કાર.॥ ૯॥

वि. चक.—अरूपाय प्राकृतरूपरहिताय। उरुरूपाय अप्राकृतचिन्मयरामकृष्णादिबहुरूपाय नमः।

परेषां ब्रह्मादीनामीशः। परश्चासावीशश्चेति वा तथा तस्मै।

પ્રાકૃતરૂપરહિત પરમેશ્વરને નમસ્કાર. રામ, કૃષ્ણ વગેરે અપ્રાકૃત, ચિન્મય, અનેક રૂપવાળા પરમેશ્વરને નમસ્કાર.

બ્રહ્મા વગેરેના ઈશ્વર એટલે પરેશ. અથવા જે શ્રેષ્ઠ પણ છે અને જે ઈશ્વર પણ છે તેવા તેમને નમસ્કાર.

नम आत्मप्रदीपाय साक्षिणे परमात्मने।
नमो गिरां विदूराय मनसश्चेतसामपि॥ १०

આત્મપ્રદીપાય પ્રકાશાન્તરસ્યાવિષયાય। કુતઃ। સાક્ષિણે પ્રકાશકાય। પરમાત્મને જીવ-

અન્ય પ્રકાશના અવિષય, (સર્વના) પ્રકાશક, વાણી, મન અને ચિત્તને પણ અપ્રાપ્ય એવા જીવોના નિયન્તા (પરમેશ્વર)ને નમસ્કાર, નમસ્કાર.॥ ૧૦॥

'**आत्मप्रदीपाय**' અન્ય પ્રકાશના અવિષય (**વં.**-'**सूर्यादेरगोचराय**' સૂર્યાદિના અવિષય પરમાત્માને નમસ્કાર.) શા માટે? '**साक्षिणे**' પ્રકાશકને નમસ્કાર.

नियन्त्रे। अत एव गिरां विदूरायाप्राप्याय। चेतसां चित्तवृत्तीनाम्। तथा च श्रुतिः—'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।' इति॥ १०॥

'**परमात्मने**' જીવોના નિયન્તાને નમસ્કાર, આથી જ વાણીને '**विदूराय**' અપ્રાપ્ય એવા પરમાત્માને (નમસ્કાર.) '**चेतसाम्**' ચિત્તવૃત્તિઓને (અપ્રાપ્ય એવા પરમાત્માને નમસ્કાર.), તે અનુસાર શ્રુતિ છે— 'વાણી અને મન જે પરમેશ્વરને પામ્યા વિના જ પાછાં ફરે છે.' (તૈત્તિ. ઉપ.૨/૯) ॥ ૧૦॥

सत्त्वेन प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता।
नमः कैवल्यनाथाय निर्वाणसुखसंविदे॥ ११

નિપુણ (વિવેકી) જનો દ્વારા શુદ્ધ સંન્યાસ **(નૈષ્કર્મ્ય)** વડે અંતરાત્મારૂપે પ્રાપ્ત કરવા યોગ્ય (પરમતત્ત્વ)ને નમસ્કાર. મોક્ષાનંદની અનુભૂતિરૂપને અને મોક્ષના સ્વામીને નમસ્કાર.॥ ૧૧॥

एवमपि विपश्चिता निपुणेन। नैष्कर्म्येण संन्यासेन। सत्त्वेन शुद्धेन। 'संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः।' इति श्रुतेः।

આમ (વાણી વગેરેનો અવિષય) હોવા છતાં પણ '**विपश्चिताः**' નિપુણ (વિવેકી) જનો દ્વારા '**नैष्कर्म्येण**' સંન્યાસ વડે, '**सत्त्वेन**' શુદ્ધ (સંન્યાસ) વડે, (ભગવાન પ્રાપ્ત થાય છે) કારણ કે શ્રુતિ છે– વિશુદ્ધ અંતઃકરણવાળા યતિ (યત્નશીલ) જનો સંન્યાસયોગના માર્ગ દ્વારા (મુક્ત થઈ જાય છે). (અથર્વવેદમાં કૈવલ્યોપનિષદ-૪)

प्रतिलभ्याय प्रत्यक्त्वेन प्राप्याय।
निर्वाणसुखसंविदे मोक्षानन्दानुभूतये॥ ११॥

'**प्रतिलभ्याय**' અંતરાત્મારૂપે પ્રાપ્ત કરવા યોગ્યને (નમસ્કાર).

'**निर्वाणसुखसंविदे**' મોક્ષાનંદની અનુભૂતિરૂપ (પરમાત્મા)ને (નમસ્કાર).॥ ૧૧॥

नमः शान्ताय घोराय मूढाय गुणधर्मिणे।
निर्विशेषाय साम्याय नमो ज्ञानघनाय च॥ १२

(ત્રણેય) ગુણોનો ધર્મ સ્વીકારનાર શાન્ત, ઘોર અને મૂઢ સ્વરૂપને નમસ્કાર. નિર્વિશેષ અર્થાત્ પ્રકૃતિથી પર અને સામ્ય અર્થાત્ સમાનરૂપે સર્વત્ર વ્યાપ્ત એવા જ્ઞાનસ્વરૂપને નમસ્કાર.॥ ૧૨॥

गुणधर्मिणे सत्त्वादिधर्मानुकारिणे। ज्ञानघनाय चेति निर्विशेषत्वेऽपि प्रधानवैलक्षण्यमुक्तम्॥ १२॥

'**गुणधर्मिणे**' સત્ત્વાદિ ત્રણ ગુણોનો ધર્મ સ્વીકાર કરનારને (સત્ત્વપ્રધાન શાન્તસ્વરૂપનો, રજઃપ્રધાન ઘોર સ્વરૂપનો અને તમઃપ્રધાન મૂઢ સ્વરૂપનો સ્વીકાર કરનારને નમસ્કાર). '**ज्ञानघनाय च इति।**' જ્ઞાનસ્વરૂપને (નમસ્કાર) એમ, વિશેષરહિત હોવા છતાં મુખ્ય વિલક્ષણતા કહેવામાં આવી છે.॥ ૧૨॥

भ.मनो.—शान्ताय अशनायापिपासाशोकमोह-रहिताय, घोराय विमुखानां भयंकरत्वेन प्रतीयमानाय, गूढाय अज्ञानिनां परमेश्वरत्वेना-प्रकाशाय।

'શાન્તાય' ભૂખ, તરસ, શોક, મોહથીરહિત શાન્ત સ્વરૂપને, **'ઘોરાય'** ભગવદ્‌વિમુખ જીવોને ભયંકરરૂપે પ્રતીત થનાર ઘોર સ્વરૂપને, **'ગૂઢાય'** અજ્ઞાનીઓને પરમેશ્વરરૂપે પ્રકાશ ન થનાર ગૂઢ સ્વરૂપને નમસ્કાર હો.

(અહીં **મૂઢાય** ને બદલે **'ગૂઢાય'** પણ પાઠાન્તર મળે છે.)

क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्यं सर्वाध्यक्षाय साक्षिणे।
पुरुषायात्ममूलाय मूलप्रकृतये नमः॥ १३

સર્વ (પ્રાણીઓ)ના અધિપતિને, (સર્વના) દ્રષ્ટાને નમસ્કાર. શરીર, ઈન્દ્રિયાદિ સંઘાતના જાણનાર (ક્ષેત્રજ્ઞ)ને અને ક્ષેત્રજ્ઞના મૂળ સ્વરૂપને નમસ્કાર. મૂળ પ્રકૃતિના પરમ કારણરૂપને અને પૂર્વકાળથી જ જે છે તે પુરુષ એવા આપને મારા નમસ્કાર હો.॥ ૧૩॥

साक्षिण इति सर्वाध्यक्षत्वेऽपि निर्विकारत्वमुक्तम्। आत्मनां क्षेत्रज्ञानां मूलाय। मूलस्य प्रधानस्यापि प्रकृतये उद्भवहेतवे। तत्र हेतुः—पुरुषाय पूर्वमेव सते। तथा च श्रुतिः- 'पूर्वमेवाहमिहासम्' इति 'तत्पुरुषस्य पुरुषत्वम्' इति 'पूर्णाय' इति वा॥ १३॥

'साक्षिणे इति।' સર્વ પ્રાણીઓના અધિપતિ હોવા છતાં પણ સર્વના દ્રષ્ટાને (નમસ્કાર), એમ પરમાત્માનું નિર્વિકારત્વ (સાક્ષિત્વ) કહેવાયું છે. (**'आत्ममूलाय'** શબ્દ સમજાવે છે.) શરીર, ઈન્દ્રિયાદિ સંઘાતને જાણનાર અન્તર્યામીના મૂળ સ્વરૂપને (નમસ્કાર). (**'मूलप्रकृतये'** સમજાવે છે.) સર્વની મૂળ એવી પ્રકૃતિના **'प्रकृतये'** ઉદ્‌ભવના પણ (પરમ) કારણરૂપને (નમસ્કાર). તે માટેનું કારણ— **'पुरुषाय'** પૂર્વકાળથી જે છે તે પુરુષને (નમસ્કાર). તે અનુસાર જ શ્રુતિ છે— 'પૂર્વેથી જ હું અહીં હતો.' 'તે પુરુષનું પુરુષત્વ છે' (મૂળ મળ્યું નથી.) અર્થાત્ પૂર્વેથી જ સત્તામાં હોવાને કારણે પુરુષ એવો વ્યુત્પત્તિ-અર્થ છે. અથવા પુરુષ શબ્દનો બીજો અર્થ છે પૂર્ણ.

सर्वेन्द्रियगुणद्रष्ट्रे सर्वप्रत्ययहेतवे।
असताच्छाययोक्ताय सदाभासाय ते नमः॥ १४

સર્વ ઈન્દ્રિયોના વિષયોના દ્રષ્ટાને અને સર્વ ઈન્દ્રિયોની વૃત્તિઓના કારણને નમસ્કાર. (વિષયોમાં) સદ્રૂપે જેમનો આભાસ છે તેમને (અને તેથી) મિથ્યાસ્વરૂપ અહંકારાદિ પ્રપંચ દ્વારા અને અસદ્‌રૂપે પ્રતિબિંબથી સૂચિત થનાર આપને નમસ્કાર.॥ ૧૪॥

सर्वेन्द्रियाणां ये गुणा विषयास्तेषां द्रष्ट्रे। सर्वे प्रत्यया इन्द्रियवृत्तयो हेतवो ज्ञापका यस्य तस्मै। तदेवाह—असताहंकारादिप्रपञ्चेन। छायया-ऽसद्रूपाय उक्ताय प्रतिबिम्बेन बिम्बमिव सूचिताय। तत्र हेतुः—सद्रूपो विषयेष्वाभासो यस्य तस्मै। तदुक्तं तृतीये—'यथा जलस्थ आभासः' इत्यादिना।

સર્વ ઇન્દ્રિયોના જે **'ગુણાઃ'** વિષયો છે તેમના દ્રષ્ટાને નમસ્કાર. સર્વે **'પ્રત્યયાઃ'** ઇન્દ્રિયોની વૃત્તિઓ **'हेतवः'** (જ્ઞાન) સૂચક હેતુઓ જેમના છે તેમને. તે જ કહે છે— મિથ્યા અહંકારાદિ પ્રપંચ દ્વારા અને **'छायया'** અસદ્રૂપ એવી છાયાથી **'उक्ताय'** પ્રતિબિંબ દ્વારા જેમ બિમ્બ સૂચિત થાય તેમ સૂચિત થનારને (નમસ્કાર). તે માટેનું કારણ— વિષયોમાં સદ્રૂપે (અસ્તિત્વરૂપે) જેમનો આભાસ છે તેમને (નમસ્કાર). ત્રીજા સ્કંધમાં તે જ કહેવામાં આવ્યું છે– 'જેમ સ્થળ (ભીંત) ઉપર પડેલા પ્રતિબિંબથી જળમાં રહેલું સૂર્યનું પ્રતિબિંબ દેખાય છે અને જેમ જળમાં રહેલા પ્રતિબિંબ વડે આકાશમાં રહેલ સૂર્ય દેખાય છે, એ જ પ્રમાણે મહાભૂતો, ઇન્દ્રિયો અને મનમાં પડેલા આત્માના પ્રતિબિંબ વડે ત્રિગુણાત્મક અહંકાર જણાય છે અને આ અહંકાર વડે પરમાર્થજ્ઞાનસ્વરૂપ આત્માનું જ્ઞાન થાય છે.' (શ્રીમદ્ ભા.૩/૨૭/૧૨,૧૩)

पाठान्तरे असत्यस्य छाययाऽध्यासेनाक्ताय युक्ताय, तदधिष्ठानायेत्यर्थः ॥ १४ ॥

પાઠાંતરમાં **'असताच्छायया उक्ताय'** ને બદલે **'असत्यच्छाययाऽक्ताय'** હોય તો, અસત્યના **'छायया'** અધ્યાસથી **'अक्ताय'** (**√अञ्ज** નું ભૂ.કૃ. **'अक्त'**) યુક્ત એવા તે અધિષ્ઠાનને નમસ્કાર, એમ અર્થ છે. ॥ ૧૪ ॥

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय
निष्कारणायाद्भुतकारणाय ।
सर्वागमाम्नायमहार्णवाय
नमोऽपवर्गाय परायणाय॥ १५

સર્વના (મૂળ) કારણરૂપને, (અને તેથી) જેમનું કોઈ કારણ નથી તેવા નિષ્કારણ (પરમાત્મા)ને નમસ્કાર. (કારણ હોવા છતાં પણ જેમનામાં કોઈ વિકાર નથી, રૂપાંતર નથી તેવા) અદ્ભુત કારણરૂપ (પરમાત્મા)ને નમસ્કાર. સર્વ શાસ્ત્રો અને વેદોના મહાસાગરને, મોક્ષસ્વરૂપને તથા શ્રેષ્ઠ જનોના આશ્રયરૂપ (પરમાત્મા)ને નમસ્કાર. ॥ ૧૫ ॥

अखिलकारणाय सर्वकारणरूपाय। अत एव स्वयं निष्कारणाय। कारणत्वेऽपि मृदादिवद्विकारं वारयति—अद्भुतकारणायेति। एवंभूतत्वे प्रमाण-माह—सर्वे आगमाः पञ्चरात्रादय आम्नायाश्च वेदास्तेषां महार्णवाय स्रोतसामिव पर्यवसान-स्थानाय। अपवर्गाय मोक्षरूपाय। अतः परायणा-योत्तमानामाश्रयाय॥ १५॥

'अखिलकारणाय' સર્વના (મૂળ) કારણરૂપને (નમસ્કાર). આથી જ જેમનું કોઈ કારણ નથી તેવા સ્વયં નિષ્કારણ (પરમાત્મા)ને નમસ્કાર. કારણરૂપ હોવા છતાં પણ માટી વગેરેની જેમ જેમાં વિકાર કે પરિણામને વારે છે, અદ્ભુત કારણરૂપ (પરમાત્મા)ને **'अद्भुतकारणाय इति।'** આમ હોવા માટેનું પ્રમાણ જણાવે છે— સર્વ **'आगमाः'** પંચરાત્ર વગેરે શાસ્ત્રો અને **'आम्नायाः'** વેદો, તેમના **'महार्णवाय'** નદીઓની જેમ પરમ આશ્રયસ્થાનરૂપ મહાસાગરને, અર્થાત્ સર્વ શાસ્ત્રોનાં તાત્પર્યના સ્થાનરૂપ (પરમાત્મા)ને નમસ્કાર. **'अपवर्गाय'** મોક્ષરૂપને (નમસ્કાર). આથી **'परायणाय'** શ્રેષ્ઠ જનોના આશ્રયરૂપ (પરમાત્મા)ને (નમસ્કાર)॥ ૧૫॥

गुणारणिच्छन्नचिदूष्मपाय
तत्क्षोभविस्फूर्जितमानसाय ।
नैष्कर्म्यभावेन विवर्जितागम-
स्वयंप्रकाशाय नमस्करोमि॥ १६

(સત્ત્વાદિ) ગુણોરૂપી અરણિમાં ગુપ્ત રહેલા જ્ઞાનાગ્નિ(રૂપ પરમાત્મા)ને નમસ્કાર. તે ગુણોના કાર્યરૂપ જગતમાં સ્ફુરિત થાય છે સંકલ્પ જેમનો તેમને નમસ્કાર. આત્મતત્ત્વની ભાવનાથી છોડી દેવામાં આવ્યાં છે વિધિનિષેધનાં લક્ષણરૂપ શાસ્ત્રો જેમના દ્વારા તેમનાંમાં (જ્ઞાનીજનોમાં) પોતાની મેળે જ જેમનો પ્રકાશ છે તેમને (નમસ્કાર).॥ ૧૬॥

गुणा एवारणिस्तयाच्छन्नश्चिदूष्मपो ज्ञानाग्निस्तस्मै।

(સત્ત્વાદિ) ગુણો જ અરણિ, તેનામાં ગુપ્ત રહેલો **'चित्-ऊष्मपः'** જ્ઞાનાગ્નિ, તેનું પાન કરનાર જ્ઞાનાગ્નિ તેને (નમસ્કાર).

तेषां गुणानां क्षोभे कार्ये विस्फूर्जितं बहिर्वृत्तिकं मानसं यस्य। 'सोऽकामयत बहु स्याम्' इति श्रुतेः।

તે ગુણોના **'क्षोभे'** કાર્યરૂપ જગતમાં **'विस्फूर्जितम्'** સ્ફુરિત થાય છે બાહ્યવૃત્તિવાળો સંકલ્પ જેમનો, તેમને નમસ્કાર.

'તે પરમાત્માએ કામના કરી કે હું એક અનેક થાઉં.' (તૈત્તિ.ઉપ.૨/૬)

नैष्कर्म्यमात्मतत्त्वं तस्य भावेन भावनया विवर्जिता आगमा विधिनिषेधलक्षणा यैस्तेषु स्वयमेव प्रकाशो यस्य तस्मै॥ १६॥

'नैष्कर्म्यम्' આત્મતત્ત્વ, તેની ભાવનાથી છોડી દેવામાં આવ્યાં છે વિધિનિષેધનાં લક્ષણરૂપ શાસ્ત્રો જેમના દ્વારા તેમનામાં (જ્ઞાનીજનોમાં) પોતાની મેળે જેમનો પ્રકાશ છે તેમને (નમસ્કાર).॥ ૧૬॥

मादृक्प्रपन्नपशुपाशविमोक्षणाय
मुक्ताय भूरिकरुणाय नमोऽलयाय।
स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीत-
प्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते॥ १७

મારા જેવા શરણે આવેલા પશુના (અવિદ્યારૂપી) પાશમાંથી છોડાવનારને અને જે પોતે મુક્ત છે તેમને તથા જે અત્યંત કરુણાવાન છે તેમને નમસ્કાર. (જીવને છોડાવવા માટે જે) આળસરહિત છે તેમને નમસ્કાર. પોતાના અંતર્યામીરૂપ અંશથી સર્વ શરીરધારીઓના મનમાં પ્રતીત થતા અંતર્જ્ઞાનસ્વરૂપ (પરમાત્મા)ને નમસ્કાર. (સર્વ શરીરધારીઓનું નિયમન કરવા માટે) સમર્થ અને (મનમાં રહેલા હોવા છતાં પણ) અસીમ (એવા પરમાત્મા)ને નમસ્કાર.॥ ૧૭॥

मादृक् मद्विधश्चासौ प्रपन्नः पशुस्तस्य पाशोऽविद्या तस्य विशेषेण मोक्षणं येन। तत्र योग्यतामाह—मुक्ताय। मोचने हेतुः—भूरिः करुणा यस्य। अतस्तत्रार्थेऽलयायानलसाय। स्वांशेनान्तर्यामिरूपेण सर्वेषां तनुभृतां मनसि प्रतीता प्रख्याता या प्रत्यग्दृक्तस्मै तथा च श्रुतिः—'य आत्मनि तिष्ठन्नात्मानमन्तरो यमयति' इति।

'मादृक्' મારા જેવો અને શરણાગત એવો પશુ, તેનો **'पाशः'** અવિદ્યારૂપ પાશ, તેને વિશેષરૂપે છોડવામાં આવ્યો છે જેમના દ્વારા. તે છોડાવવા માટેની યોગ્યતા વર્ણવે છે— **'मुक्ताय'** (જે સ્વયં મુક્ત છે, અવિદ્યાની પરવશતાથી રહિત છે તે) મુક્ત (પરમાત્મા)ને (નમસ્કાર). મુક્ત કરવા માટેનું કારણ— અત્યંત કરુણા છે જેમને, અત્યંત દયાળુ હોવાથી જીવના મોક્ષ માટે **'अलयाय'** આળસરહિત એવા આપને નમસ્કાર. **'स्व-अंशेन'** પોતાના અંતર્યામીરૂપથી સર્વ શરીરધારીઓનાં મનમાં **'प्रतीता'** પ્રખ્યાત એવી અંતર્દષ્ટિ છે જેમની તેમને (નમસ્કાર). તે અનુસાર શ્રુતિ છે. 'જે જીવાત્મામાં રહીને જીવાત્માનું અંદરથી નિયમન કરે છે.' (બૃહદા.ઉપ. ૩/૭/૩૦)

भगवते सर्वेषां तनुभृतां नियमने समर्थाय। तेषां मनःस्थितत्वेऽपि बृहतेऽपरिच्छिन्नाय॥ १७॥

'भगवते' સર્વ શરીરધારીઓનું નિયમન કરવા માટે સમર્થ (એવા ભગવાન)ને નમસ્કાર. તેઓ મનમાં સ્થિત હોવા છતાં પણ **'बृहते'** અમર્યાદિત (છે તેવા) અસીમ (પરમાત્મા)ને નમસ્કાર.॥ ૧૭॥

आत्मात्मजाप्तगृहवित्तजनेषु सक्तै-
र्दुष्प्रापणाय गुणसङ्गविवर्जिताय।
मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय
ज्ञानात्मने भगवते नम ईश्वराय॥ १८

દેહ, પુત્ર, ગુરુજન, ગૃહ, સંપત્તિ અને સ્વજનોમાં આસક્ત મનુષ્યો દ્વારા પ્રાપ્ત કરવાને અશક્ય અને ગુણોની આસક્તિથી રહિતને તથા દેહાદિમાં અનાસક્ત (જીવન્મુક્ત) પુરુષો દ્વારા પોતાના હૃદયમાં નિરંતર ચિંતન કરવામાં આવેલા (ઈશ્વર)ને નમસ્કાર. જ્ઞાનસ્વરૂપ, અચિન્ત્ય, અનંત ગુણગણપૂર્ણ ઈશ્વરને નમસ્કાર.॥ ૧૮॥

अन्तःस्थत्वेऽपि देहादिष्वासक्तैर्दुष्प्रापणाया-मुमशक्याय। तत्र हेतुः—गुणसङ्गेन विवर्जिताय। अत एव मुक्तात्मभिर्देहादिष्वनासक्तैश्चिन्तिताय। तैः परिभावितं रूपमाह—ज्ञानात्मन इत्यादि॥ १८॥

અંદર રહેલા હોવા છતાં પણ દેહાદિમાં આસક્ત મનુષ્યો દ્વારા '**दुष्प्रापणाय**' પ્રાપ્ત કરવાને અશક્ય એવા (ઈશ્વર)ને (નમસ્કાર). પ્રાપ્ત કરવાને અશક્ય હોવા માટેનું કારણ– ગુણોના (શબ્દાદિ વિષયોના) સંગથી રહિત એવા (ઈશ્વર)ને (નમસ્કાર). અને તેથી જ– '**मुक्तात्मभिः**' દેહાદિમાં અનાસક્ત જનો દ્વારા ચિંતન કરવામાં આવેલા (ઈશ્વર)ને (નમસ્કાર). તેમના દ્વારા નિરંતર ચિંતન કરવામાં આવેલા રૂપનું વર્ણન કરે છે— '**ज्ञानात्मने इति।**'॥ ૧૮॥

यं धर्मकामार्थविमुक्तिकामा
भजन्त इष्टां गतिमाप्नुवन्ति।
किं त्वाशिषो रात्यपि देहमव्ययं
करोतु मेऽदभ्रदयो विमोक्षणम्॥ १९

ધર્મ, કામ, અર્થ તથા મોક્ષની ઈચ્છાવાળા મનુષ્યો જેમનું ભજન કરતાં પ્રાપ્ત કરવા ઈચ્છેલ ગતિ પ્રાપ્ત કરે છે. (એટલું જ નહીં,) પરંતુ (તેમના દ્વારા કામના ન કરવામાં આવેલા સામીપ્યાદિ તથા અન્ય) આશિષો અને અનશ્વર દેહ પણ (જે ભગવાન તેમને) પ્રદાન કરે છે, તે અત્યંત કૃપાળુ ભગવાન મને મુક્ત કરો.॥ ૧૯॥

इष्टां गतिं कामितं धर्मादिफलं प्राप्नुवन्त्येव, न तु तावदेव, किंतु यास्तैरकामिता अन्या अप्याशिषो राति। देहमप्यव्ययं राति। एवं योऽदभ्रदयः स मे विमोक्षणमेव केवलं करोतु नाधिकं प्रार्थये॥ १९॥

'**इष्टां गतिम्**' પ્રાપ્ત કરવા ઈચ્છેલ ધર્માદિ ફળ પ્રાપ્ત કરે જ છે એટલું જ નહીં, પણ તેમના દ્વારા કામનાઓ ન કરવામાં આવી હોય તે અન્ય (સામીપ્યાદિ) અભીષ્ટ પણ આપે છે, અનશ્વર દેહ (પાર્ષદ શરીર) પણ પ્રદાન કરે છે. જે આવા અત્યંત કૃપાળુ છે તે માત્ર (ગ્રાહથી અને સંસારથી) છોડાવે, હું અધિક પ્રાર્થના કરતો નથી.॥ ૧૯॥

एकान्तिनो यस्य न कञ्चनार्थं
वाञ्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः।
अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमङ्गलं
गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नाः॥ २०

(તેમને શરણે હું જાઉં છું) જે આપના શરણાગત અને અનન્ય ભક્તો કંઈ પણ વસ્તુ ઈચ્છતા નથી. તેઓ તો તેમની (આપની) અતિ અદ્ભુત દિવ્ય મંગળમયી લીલાઓનું ગાન કરતાં આનંદસમુદ્રમાં જ નિમગ્ન રહે છે.॥ ૨૦॥

एतावदप्यहं भक्तिसुखानभिज्ञत्वेन वाञ्छामि। यस्यैकान्तभक्ता न कंचिदर्थं वाञ्छन्ति तं परेशं परमेश्वरमीडे स्तौमीत्युत्तरेणान्वयः।

ભક્તિસુખથી અનભિજ્ઞ હોવાથી હું તો આટલું જ ઈચ્છું છું. જેમના અનન્ય ભક્તો (ધર્માદિ) કંઈ પણ વસ્તુ ઈચ્છતા નથી તે '**परेशम्**' પરમેશ્વરની હું '**ईडे**'

तेषां निष्कामत्वे हेतुः—ये वै भगवतः सर्वज्ञान्मुक्तान्प्रपन्नाः सेवितवन्तः ॥ २० ॥

સ્તુતિ કરું છું, એમ પછીના શ્લોક (૨૧) સાથે અન્વય છે. તે અનન્ય ભક્તો નિષ્કામ હોવા માટેનું કારણ– જેઓ ખરેખર, સર્વજ્ઞ એવા મુક્ત ભક્તજનોને શરણે ગયેલા છે. ॥ ૨૦ ॥

तमक्षरं ब्रह्म परं परेश-
मव्यक्तमाध्यात्मिकयोगगम्यम् ।
अतीन्द्रियं सूक्ष्ममिवातिदूर-
मनन्तमाद्यं परिपूर्णमीडे ॥ २१

(જે) અવિનાશી બ્રહ્મ અંદર અને બહાર વ્યાપ્ત, સર્વોત્તમ, બ્રહ્માદિના પણ નિયંતા, અવ્યક્ત હોવા છતાં ભક્તિયોગથી જાણવા યોગ્ય, સૂક્ષ્મ પરમાણુની જેમ ઈન્દ્રિયોથી પર, અત્યંત દૂર, વિનાશરહિત, સર્વના કારણ, પરિપૂર્ણ (છે,) તે પરમેશ્વરની હું સ્તુતિ કરું છું. ॥ ૨૧ ॥

अत्यद्भुतसुमङ्गलत्वप्रदर्शनार्थमक्षरत्वादीनि विशेषणानि ॥ २१ ॥

અતિ અદ્ભુતત્વ અને સુમંગલમયત્વ દર્શાવવા માટે અક્ષરત્વ વગેરે વિશેષણો છે. ॥ ૨૧ ॥

परिपूर्णत्वं प्रदर्शयन्नाह त्रिभिः—

ભગવાનની પરિપૂર્ણતા દર્શાવતાં ત્રણ શ્લોકોથી કહે છે–

यस्य ब्रह्मादयो देवा वेदा लोकाश्चराचराः ।
नामरूपविभेदेन फल्व्या च कलया कृताः ॥ २२

જેમના અતિ અલ્પ અંશ વડે નામ અને રૂપના ભેદથી બ્રહ્માદિ દેવો, વેદો અને સ્થાવર-જંગમ લોકો રચાયા છે (તે ભગવાન જય પામો). ॥ ૨૨ ॥

यस्य फल्व्या च स्वल्पयैव कलयांशेन कृताः स जयतादिति तृतीयेनान्वयः ॥ २२ ॥

જેમના '**फल्व्या**' (**फल्वी** સ્ત્રી.નું તૃ.એ.વ.) અતિ અલ્પ અંશ વડે (સર્વ) રચાયું છે, તે ભગવાન જય પામો, એમ આનાથી ત્રીજા શ્લોક (૨૪) સાથે અન્વય છે. ॥ ૨૨ ॥

वंशीधरी—'वेदास्तु तन्निःश्वासत्वेन तद्रूपत्वाद-फल्गव एवेत्याह।'

વેદો ભગવાનનો નિઃશ્વાસ હોવાથી ભગવત્સ્વરૂપ જ છે તેથી અનલ્પ છે, એમ કહે છે.

कथं कृता इत्यपेक्षायां दृष्टान्तौ।

(બ્રહ્માદિ દેવો, વેદો, લોકો વગેરે) કેવી રીતે સર્જાયા છે એવી અપેક્ષા માટે બે દૃષ્ટાંત (આપે છે).

यथार्चिषोऽग्नेः सवितुर्गभस्तयो
निर्यान्ति संयान्त्यसकृत् स्वरोचिषः ।
तथा यतोऽयं गुणसंप्रवाहो
बुद्धिर्मनः खानि शरीरसर्गाः ॥ २३

જેમ અગ્નિમાંથી જ્વાળાઓ અને સૂર્યમાંથી કિરણો ઉત્પન્ન થાય છે અને લય પામે છે, તેમ જે સ્વયંપ્રકાશ પરમાત્મામાંથી બુદ્ધિ, મન, ઈન્દ્રિયો તથા (દેવાદિ) શરીરસંઘાતરૂપ ગુણપ્રવાહ વારંવાર ઉત્પન્ન થાય છે અને લય પામે છે (તે પરમાત્મા જય પામો). ॥ ૨૩ ॥

यथार्चिषोऽग्नेरिति प्रवाहे दृष्टान्तः—सवितुर्गभस्तय इत्यानन्त्ये। निर्यान्त्युद्गच्छन्ति। संयान्ति लीयन्ते। गुणसंप्रवाहमेवाह—बुद्धिर्मन इति। खानि करणानि शरीरसर्गाः कार्यदेहप्रवाहाश्च यतो भवन्ति सः॥ २३॥

જેમ જ્વાળાઓ અગ્નિમાંથી નીકળે છે એ દૃષ્ટાન્ત ગુણોના પ્રવાહ માટે છે અને જેમ સૂર્યમાંથી કિરણો નીકળે છે એ દૃષ્ટાન્ત ઈશ્વરના આનન્ત્ય માટે છે. '**निर्यान्ति**' ઉત્પન્ન થાય છે. '**संयान्ति**' લીન થાય છે. ગુણોના પ્રવાહનું વર્ણન કરે છે— '**बुद्धिः मनः इति।**' '**खानि**' ઇન્દ્રિયો '**शरीरसर्गाः**' કાર્યરૂપ દેવાદિ શરીરસંઘાત જેમાંથી બને છે તે ગુણપ્રવાહ (ગુણોના પરિણામરૂપ પ્રપંચ).॥ ૨૩॥

स वै न देवासुरमर्त्यतिर्यङ्
न स्त्री न षण्ढो न पुमान् न जन्तुः।
नायं गुणः कर्म न सन्न चासन्-
निषेधशेषो जयतादशेषः॥ २४

તે ભગવાન નથી દેવ, અસુર, મનુષ્ય કે પશુ-પક્ષી. તે નથી સ્ત્રી, નથી પુરુષ, નથી નપુંસક કે નથી પ્રાણી. આ ભગવાન નથી ગુણ કે નથી કર્મ, નથી સ્થૂળ કાર્ય કે નથી સૂક્ષ્મ કારણ. સર્વનો નિષેધ કરતાં બાકી રહે તે માયાથી જે સર્વસ્વરૂપ છે, તે ભગવાન જય પામો.॥ ૨૪॥

अत एव देवादीनां मध्ये कोऽपि न भवति। न जन्तुर्लिङ्गत्रयशून्यं प्राणिमात्रमपि। किंतु सर्वस्य निषेधेऽवधित्वेनावशिष्यत इति निषेधशेषो मायया अशेषोऽशेषात्मकश्च जयतात् मद्विमोक्षणायाविर्भवतु॥ २४॥

આથી (ભગવાન સર્વના અધિષ્ઠાન હોવાથી) જ દેવ વગેરેમાંના કોઈ પણ નથી. '**न जन्तुः**' ત્રણે લિંગ વગરનું પણ કોઈ જ પ્રાણી નથી. પરંતુ સર્વનો નિષેધ કરતાં અવધિરૂપે બાકી રહે તે '**निषेधशेषः**' માયાથી '**अशेषः**' સર્વસ્વરૂપ પરમાત્મા જય પામો. મારા મોક્ષ માટે પ્રકટ થાઓ!॥ ૨૪॥

जिजीविषे नाहमिहामुया कि-
मन्तर्बहिश्चावृतयेभयोन्या।
इच्छामि कालेन न यस्य विप्लव-
स्तस्यात्मलोकावरणस्य मोक्षम्॥ २५

અંદર અને બહાર વ્યાપેલી આ હાથીની યોનિથી મારે શું પ્રયોજન છે? (ગ્રાહથી છૂટીને) આ યોનિમાં હું જીવવા ઇચ્છતો નથી. હું તો જેનો કાળ વડે (પણ કદી) નાશ નથી તેવા આત્મપ્રકાશના અજ્ઞાનરૂપી આવરણથી છૂટવા ઇચ્છું છું.॥ ૨૫॥

न च ग्राहाच्छरीरस्य मोक्षणेनाहं जीवितुमिच्छामि। तत्र हेतुः—अमुया अन्तर्बहिश्चाविवेकव्याप्तया गजजात्या किं प्रयोजनम्। आत्मलोकस्यात्मप्रकाशस्य यदावरणमज्ञानं तस्यैव तु मोक्षमिच्छामि। यस्य मोक्षस्य कालेन नाशो नास्ति। यद्वा देहस्य बन्धो देहनाशे नश्येदेव किं

ગ્રાહના શરીરની પકડમાંથી છૂટીને (પછી) હું જીવવા ઇચ્છતો નથી. તે માટેનું કારણ– અંદર અને બહાર અવિવેકથી ભરેલી હાથીની આ યોનિથી શું પ્રયોજન છે? '**आत्मलोकस्य**' આત્મપ્રકાશનું જે અજ્ઞાનરૂપી આવરણ છે તેનાથી હું મોક્ષ ઇચ્છું છું, કે જે મોક્ષનો કાળ દ્વારા નાશ નથી. અથવા શરીરનું બંધન તો શરીરનો નાશ થતાં નાશ પામે જ છે, તો તેનાથી છૂટવાની પ્રાર્થના કરવાથી શો

तन्मोक्षप्रार्थनेन। आत्मलोकावरणस्य तु कालेन विप्लवो नास्ति, ज्ञानैकनिवर्त्यत्वात्। अतस्तस्यैव मोक्षमिच्छामीत्यर्थः॥ २५॥

सोऽहं विश्वसृजं विश्वमविश्वं विश्ववेदसम्।
विश्वात्मानमजं ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परं पदम्॥ २६

सोऽहं मुमुक्षुः। विश्वं विश्वरूपम्। अविश्वं विश्वव्यतिरिक्तं च। विश्वं वेदो धनमुपकरणं यस्य तम्। विश्वस्यात्मानं च केवलं प्रणतोऽस्मि न तु तं जानामि॥ २६॥

वि.चक्र.—'विश्ववेदसं विश्वज्ञातारम्।'

योगं विना दुर्ज्ञेयत्वादित्याह—

योगरन्धितकर्माणो हृदि योगविभाविते।
योगिनो यं प्रपश्यन्ति योगेशं तं नतोऽस्म्यहम्॥ २७

योगेन भगवद्धर्मेण रन्धितानि दग्धानि कर्माणि येषां ते यं प्रपश्यन्ति॥ २७॥

तर्हि सर्वेऽपि योगमेव किं नास्थितास्तत्राह—**नम इति** द्वाभ्याम्।

नमो नमस्तुभ्यमसह्यवेग-
शक्तित्रयायाखिलधीगुणाय।
प्रपन्नपालाय दुरन्तशक्तये
कदिन्द्रियाणामनवाप्यवर्त्मने॥ २८

અર્થ સરવાનો છે? આત્મપ્રકાશના અજ્ઞાનરૂપી આવરણનો તો કાળ દ્વારા પણ નાશ નથી થતો, કારણ કે તે તો એક માત્ર જ્ઞાનથી જ દૂર કરી શકાય છે. આથી તે અજ્ઞાનરૂપી આવરણથી જ મોક્ષ ઈચ્છું છું, એમ અર્થ છે.॥ ૨૫॥

તે હું (મુમુક્ષુ) વિશ્વના સર્જનહાર, વિશ્વરૂપ, વિશ્વથી ભિન્ન, વિશ્વ જેમનું ધનરૂપી સાધન છે, વિશ્વના આત્મા (જે અંતર્યામી છે), જન્માદિ વિકારથી રહિત એવા સર્વવ્યાપક પરમપદરૂપ (પરમાત્મા)ને પ્રણમું છું.॥ ૨૬॥

તે હું મુમુક્ષુ '**विश्वम्**' વિશ્વરૂપને અને '**अविश्वम्**' વિશ્વથી ભિન્નને, (**'विश्ववेदसम्'**) વિશ્વ જેમની ક્રીડાનું '**वेदः**' ધન, સાધન છે તેમને, વિશ્વના આત્મા (અંતર્યામી)ને કેવળ પ્રણમું છું, પરંતુ તેમને જાણતો નથી.॥ ૨૬॥

વિશ્વના જ્ઞાતાને પ્રણામ.

યોગ વિના જેમને જાણવા અઘરા છે, તેથી કહે છે—

યોગ દ્વારા જેમનાં કર્મો નાશ પામ્યા છે તેવા, યોગીઓ પોતાના યોગશુદ્ધ હૃદયમાં જેમનો સાક્ષાત્કાર કરે છે તે યોગના ઈશ્વરને (યોગનું ફળ આપનારને) હું પ્રણમું છું.॥ ૨૭॥

'**योगेन**' ભગવદ્‌ધર્મ દ્વારા '**रन्धितानि**' બળી ગયાં છે કર્મો જેમનાં તે યોગીઓ જેમને જુએ છે॥ ૨૭॥

તો પછી બધા જ મનુષ્યો કેમ યોગમાં જ સ્થિત નથી થતા? તે માટે બે શ્લોકો કહે છે— '**नमः इति।**'

જેમની (સત્ત્વ, રજસ્, તમસ્ એ) ત્રણ શક્તિઓનો (રાગાદિ) વેગ અસહ્ય છે તેમને નમસ્કાર. સમગ્ર બુદ્ધિવૃત્તિઓને જે શબ્દાદિ વિષયોરૂપે પ્રતીત થાય છે એમને નમસ્કાર. દુષ્ટ ઈન્દ્રિયોવાળા મનુષ્યોને જેમનો માર્ગ પ્રાપ્ત કરવા યોગ્ય નથી તેમને (પરમાત્માને) નમસ્કાર. શરણાગતનું રક્ષણ કરનાર, અનંત શક્તિવાળા આપને નમસ્કાર હો. નમસ્કાર હો.॥ ૨૮॥

असह्यो वेगो रागादिलक्षणो यस्य तथाभूतं शक्तित्रयं यस्य तस्मै। बहिश्चाखिलधियां सर्वेन्द्रियाणां गुणाय शब्दादिरूपेण प्रतीयमानाय। अतः कदिन्द्रियाणां कुत्सितानीन्द्रियाणि येषां तेषामनवाप्यं वर्त्म यस्य॥ २८॥

રાગાદિ લક્ષણ છે જેનું તેવો અસહ્ય વેગ છે જેનો તેવી ત્રણ શક્તિઓ છે જેમની તેમને નમસ્કાર. બહાર પણ '**अखिलधियाम्**' સર્વ ઈન્દ્રિયોના '**गुणाय**' શબ્દાદિ વિષયોરૂપે પ્રતીત થનારને નમસ્કાર. આથી '**कदिन्द्रियाणाम्**' દુષ્ટ ઈન્દ્રિયો છે જેમની તેમને જે પરમાત્માનો માર્ગ પ્રાપ્ત કરવા યોગ્ય નથી થતો.॥ ૨૮॥

नायं वेद स्वमात्मानं यच्छक्त्याहंधिया हतम्।
तं दुरत्ययमाहात्म्यं भगवन्तमितोऽस्म्यहम्॥ २९

જેમની માયાશક્તિથી થતી અહંબુદ્ધિને કારણે ઢંકાયેલા પોતાના આત્મસ્વરૂપ ભગવાનને આ મનુષ્ય જાણતો નથી અને જેમનું માહાત્મ્ય જાણવું અત્યંત કઠણ છે, તે ભગવાનને શરણે ગયેલો હું છું.॥ ૨૯॥

यच्छक्त्या यस्य मायया या अहंधीस्तया हतमावृतमयं जनो न वेद। दुरत्ययं माहात्म्यं यस्य तम् इत आश्रितोऽस्मि॥ २९॥

'**यत्-शक्त्या**' જેમની માયાશક્તિથી જે અહંબુદ્ધિ (જન્મે છે), તેનાથી '**हतम्**' ઢંકાયેલા (પોતાના આત્મસ્વરૂપ ભગવાન)ને આ મનુષ્ય જાણતો નથી. જેમનું માહાત્મ્ય જાણવું દુષ્કર છે તે ભગવાનને '**इतः**' શરણે ગયેલો હું છું.॥ ૨૯॥

श्रीशुक उवाच

एवं गजेन्द्रमुपवर्णितनिर्विशेषं
ब्रह्मादयो विविधलिङ्गभिदाभिमानाः।
नैते यदोपससृपुर्निखिलात्मकत्वात्
तत्राखिलामरमयो हरिराविरासीत्॥ ३०

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — આ પ્રમાણે વિશિષ્ટ સ્વરૂપભેદ વિના જ (પરમ તત્ત્વની) જેણે સ્તુતિ કરી તે ગજેન્દ્રની પાસે (એને ઉગારવા) વિવિધસ્વરૂપના ભેદોમાં જેમનું અભિમાન છે તે બ્રહ્માદિ દેવો જ્યારે આવ્યા નહીં, ત્યારે સમગ્ર સ્વરૂપ હોવાથી સર્વદેવમયસ્વરૂપ શ્રીહરિ પ્રકટ થયા.॥ ૩૦॥

उपवर्णितं निर्विशेषं मूर्तिभेदं विना परं तत्त्वं येन तम्। विविधा चासौ लिङ्गभिदा मूर्तिभेदस्तस्यामभिमानो येषां ते। अत एते यदा नोपजग्मुः। तत्र तदा। अखिलामरमयः सर्वदेवमयमूर्तिः॥ ३०॥

જેના દ્વારા '**निर्विशेषम्**' વિશિષ્ટ સ્વરૂપભેદ વિના પરમ તત્ત્વને વર્ણવવામાં આવ્યું તે ગજેન્દ્રની પાસે– વિવિધ એવો લિંગભેદ અર્થાત્ મૂર્તિભેદ, તેમાં જેમને અભિમાન છે તેવા દેવો, આથી આ દેવો જ્યારે ન આવ્યા, '**तत्र**' ત્યારે સર્વદેવમયમૂર્તિ શ્રીહરિ પ્રકટ થયા.॥ ૩૦॥

तं तद्वदार्तमुपलभ्य जगन्निवासः
स्तोत्रं निशम्य दिविजैः सह संस्तुवद्भिः।
छन्दोमयेन गरुडेन समुह्यमान-
श्चक्रायुधोऽभ्यगमदाशु यतो गजेन्द्रः॥ ३१

જેમનામાં જગત રહેલું છે તેવા, સુદર્શનચક્રનું આયુધ ધારણ કરનારા અને (વેદમય) ગાયત્રી વગેરે છંદોથી યુક્ત ગરુડજી દ્વારા સુંદર રીતે વહન કરાયેલા શ્રીહરિ તે ગજેન્દ્રને તે રીતે (અત્યંત) પીડિત જાણી, (તેનું) સ્તોત્ર સાંભળી, સ્તુતિ કરતા દેવોની સાથે જ્યાં ગજેન્દ્ર હતો ત્યાં શીઘ્ર આવી પહોંચ્યા.॥ ૩૧ ॥

दिविजैर्देवैः सह। छन्दोमयेनेति शैघ्र्या-योक्तम्॥ ३१॥

'दिविजैः' દેવોની સાથે, **'छन्दोमयेन इति'** વેદમય ગરુડજી (સામમંત્રો જેનાં અંગોમાં છે.) એમ શીઘ્રતા માટે કહેવાયું છે.॥ ૩૧ ॥

(છંદો જેમ શીઘ્ર ગવાય તેમ ગરુડજી શીઘ્ર ગમનશીલ હોવા છતાં ભગવાનને તે મંદગતિવાળા લાગ્યા.)

सोऽन्तःसरस्युरुबलेन गृहीत आर्तो
दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्तचक्रम्।
उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाह कृच्छ्रा-
न्नारायणाखिलगुरो भगवन् नमस्ते॥ ३२

સરોવરની અંદર મહાબળવાન ગ્રાહ દ્વારા ગ્રહણ કરવામાં આવેલા, પીડિત એવા તે ગજેન્દ્રે આકાશમાં ગરુડજી ઉપર (વિરાજમાન) અને જેમના દ્વારા ચક્રને ઉદ્યત કરવામાં આવ્યું છે તેવા શ્રીહરિનાં દર્શન કરી, કમળસહિત સૂંઢ ઊંચી કરી કષ્ટપૂર્વક **'હે નારાયણ, હે અખિલગુરુ, હે ભગવાન, આપને નમસ્કાર'** એવી વાણી ઉચ્ચારી.॥ ૩૨ ॥

खे दृष्ट्वा। उपात्तमुद्यतं चक्रं येन॥ ३२॥

આકાશમાં દર્શન કરી, **'उप-आत्तम्'** ઉદ્યત કરવામાં આવ્યું છે ચક્ર જેમના દ્વારા॥ ૩૨ ॥

तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसावतीर्य
सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार।
ग्राहाद् विपाटितमुखादरिणा गजेन्द्रं
संपश्यतां हरिरमूमुचदुस्त्रियाणाम्॥ ३३

તે પીડિત ગજેન્દ્રને જોઈ અજન્મા શ્રીહરિએ (ગરુડ ઉપરથી) એકદમ નીચે ઊતરી, કૃપા કરી ગ્રાહસહિત ગજેન્દ્રને સરોવરમાંથી શીઘ્ર બહાર ખેંચી કાઢી દેવોના દેખતાં જ સુદર્શન ચક્ર વડે ચિરાઈ ગયેલા મુખવાળા ગ્રાહથી ગજેન્દ્રને છોડાવ્યો.॥ ૩૨ ॥

गरुडोऽपि मन्दगतिरिति ततः सहसाऽवतीर्यारिणा चक्रेण विपाटितं मुखं यस्य। उस्त्रियाणां देवानाम्॥ ३३॥

ગરુડજી પણ મંદ ગતિવાળા છે, તેથી એકદમ નીચે ઊતરીને **'अरिणा'** સુદર્શન ચક્ર વડે વિદારી નાખ્યું છે મુખ જેનું, **'उस्त्रियाणाम्'** દેવોના (દેખતાં)॥ ૩૩ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे गजेन्द्रमोक्षणे तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

*****

अथ चतुर्थोऽध्यायः

ગજ અને ગ્રાહનું પૂર્વચરિત્ર તથા તેમનો ઉદ્ધાર

चतुर्थे तु तयोर्ग्राहः प्राप गन्धर्वतां पुनः।
गजं स्वपार्षदं कृत्वा हरिर्निन्ये निजं पदम्॥ १॥

ગજ અને ગ્રાહ એ બેમાંથી ગ્રાહ ફરીથી ગંધર્વપણું પામ્યો અને ગજેન્દ્રને પોતાનો પાર્ષદ બનાવીને શ્રીહરિ નિજ ધામમાં લઈ ગયા.॥ ૧॥

श्रीशुक उवाच

तदा देवर्षिगन्धर्वा ब्रह्मेशानपुरोगमाः।
मुमुचुः कुसुमासारं शंसन्तः कर्म तद्धरेः॥ १॥ १॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — (શ્રીહરિએ ગજેન્દ્રનો મોક્ષ કર્યો) તે અવસરે બ્રહ્માજી અને શંકર ભગવાન જેમના અગ્રેસર હતા તે દેવો, ઋષિઓ, ગંધર્વો શ્રીહરિના તે (અદ્ભુત) કર્મની પ્રશંસા કરતાં કુસુમવર્ષા કરવા લાગ્યા.॥ ૧॥॥ ૧॥

नेदुर्दुन्दुभयो दिव्या गन्धर्वा ननृतुर्जगुः।
ऋषयश्चारणाः सिद्धास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम्॥ २॥ २॥

દેવોનાં નગારાં વાગવા લાગ્યાં, ગંધર્વો નાચવા લાગ્યા, ગાવા લાગ્યા. ઋષિઓ, સિદ્ધો, ચારણો પુરુષોત્તમ ભગવાનની સ્તુતિ કરવા લાગ્યા.॥ ૨॥॥ ૨॥

योऽसौ ग्राहः स वै सद्यः परमाश्चर्यरूपधृक्।
मुक्तो देवलशापेन हूहूर्गन्धर्वसत्तमः॥ ३
प्रणम्य शिरसाधीशमुत्तमश्लोकमव्ययम्।
अगायत यशोधाम कीर्तन्यगुणसत्कथम्॥ ४

જે આ ગ્રાહ હતો તે તો હૂહૂ નામનો શ્રેષ્ઠ ગંધર્વ હતો. દેવલ ઋષિના શાપથી તરત જ મુક્ત થઈ પરમ આશ્ચર્યમય રૂપ ધારણ કરી તેણે ઉત્તમ કીર્તિવાળા, અવિનાશી, યશના આશ્રયરૂપ, કીર્તન કરવા યોગ્ય ગુણો અને સત્ય કથા છે જેમની તેવા સર્વેશ્વર શ્રીહરિને મસ્તકથી પ્રણામ કરી સ્તુતિ કરી.॥ ૩॥ ૪॥

हूहूसंज्ञो गन्धर्वसत्तमः असौ देवलस्य शापेन ग्राहो जातः। स वै स तु ततः सद्यो मुक्तः सन्नुत्तमश्लोकमगायतेत्यन्वयः।

હૂહૂ નામનો એ શ્રેષ્ઠ ગંધર્વ દેવલ ઋષિના શાપથી ગ્રાહરૂપે જન્મ્યો હતો. **'सः वै'** તેણે તો ગ્રાહ યોનિમાંથી તરત જ મુક્ત થઈ ઉત્તમ કીર્તિવાળા ભગવાનની સ્તુતિ કરી, એમ અન્વય છે.

एवं हीतिहासोत्तमे कथा। सरसि स्त्रीभिः क्रीडन्नसौ स्नातुं प्रविष्टं देवलं पादे प्रगृह्य विचकर्ष। स च प्रकुपितो ग्राहो भवेति शशाप, तेन च प्रसादितः सन्नुवाच, एवमेव गजेन्द्रं गृह्णीष्व, ततश्च गजेन्द्रमुद्धरन्हरिस्त्वामपि मोचयिष्यतीति॥ ३॥

આ પ્રમાણે જ સુંદર ઐતિહાસિક કથા છે. સરોવરમાં સ્ત્રીઓ સાથે ક્રીડા કરતા એ ગંધર્વે સ્નાન કરવા માટે પ્રવેશેલા દેવલ ઋષિના (બંને) પગ પકડીને ખેંચ્યા. તે ઋષિએ અત્યંત ક્રોધિત થઈ 'તું ગ્રાહ થઈ જા.' એમ શાપ આપ્યો. પછી તે ગંધર્વ દ્વારા પ્રસન્ન કરવામાં આવેલા ઋષિ બોલ્યા: **'આ જ રીતે તું ગજેન્દ્રને પકડજે અને ત્યારે ગજેન્દ્રનો ઉદ્ધાર કરતાં શ્રીહરિ તને પણ છોડાવશે.'**॥ ૩॥

कथंभूतम्। यशसो धाम आश्रयम्। अतः कीर्तन्याः कीर्तनीया गुणाः सती कथा च यस्य तम्॥४॥

(હૂહૂ ગંધર્વે) કેવા ભગવાનની (સ્તુતિ કરી)? યશના **'धाम'** આશ્રય– આથી **'कीर्तन्याः'** કીર્તન કરવા યોગ્ય ગુણો અને સત્ય કથા છે જેમની તે શ્રીહરિની સ્તુતિ કરી.॥૪॥

सोऽनुकम्पित ईशेन परिक्रम्य प्रणम्य तम्।
लोकस्य पश्यतो लोकं स्वमगान्मुक्तकिल्बिषः॥५

ઈશ્વર દ્વારા અનુકંપાનો વિષય બનેલો તે ગંધર્વ પાપમાંથી મુક્ત થઈ તેમની પરિક્રમા કરી, પ્રણામ કરી લોકોના દેખતાં પોતાના સ્થાનમાં ગયો.॥૫॥

स्वं लोकं गन्धर्वलोकम्॥५॥

'स्वं लोकम्' પોતાના સ્થાન ગંધર્વલોકમાં॥૫॥

गजेन्द्रो भगवत्स्पर्शाद् विमुक्तोऽज्ञानबन्धनात्।
प्राप्तो भगवतो रूपं पीतवासाश्चतुर्भुजः॥६
॥६॥

ભગવાનના સ્પર્શને કારણે અજ્ઞાનના બંધનમાંથી મુક્ત થયેલો ગજેન્દ્ર પીતાંબરધારી, ચતુર્ભુજધારી થઈ ભગવાનના રૂપને પ્રાપ્ત થયો.॥૬॥॥૬॥

स वै पूर्वमभूद् राजा पाण्ड्यो द्रविडसत्तमः।
इन्द्रद्युम्न इति ख्यातो विष्णुव्रतपरायणः॥७
॥७॥

તે ગજેન્દ્ર પૂર્વે (પૂર્વજન્મમાં) (દ્રવિડદેશમાં આવેલા) પાંડ્યદેશનો, ઈન્દ્રદ્યુમ્ન નામનો, દ્રવિડોમાં શ્રેષ્ઠ, વિષ્ણુવ્રતપરાયણ રાજા હતો. ॥૭॥॥૭॥

स एकदाऽऽराधनकाल आत्मवान्
गृहीतमौनव्रत ईश्वरं हरिम्।
जटाधरस्तापस आप्लुतोऽच्युतं
समर्चयामास कुलाचलाश्रमः॥८

મલય પર્વત ઉપર જેનો આશ્રમ છે તે જટાધારી, તપોનિષ્ઠ રાજા ઈન્દ્રદ્યુમ્ન એક વખત સ્નાન કરી, આરાધના કરવાના સમયે ચિત્તને વશ કરી, મૌનવ્રત ગ્રહણ કરી અસ્ખલિત સ્વરૂપવાળા, સર્વશક્તિમાન શ્રીહરિનું સુંદર રીતે પૂજન કરતો હતો.॥૮॥

कुलाचले मलयाद्रावाश्रमो यस्य॥८॥

'कुल-अचले' મલય અદ્રિ ઉપર આશ્રમ છે જેનો॥૮॥

यदृच्छया तत्र महायशा मुनिः
समागमच्छिष्यगणैः परिश्रितः।
तं वीक्ष्य तूष्णीमकृतार्हणादिकं
रहस्युपासीनमृषिश्चुकोप ह॥९

તે સમયે શિષ્યગણોથી વીંટળાયેલા પરમ યશસ્વી મુનિ (અગસ્ત્ય) દૈવેચ્છાથી (ત્યાં) આવી પહોંચ્યા. એકાંતમાં મૌન થઈ ઉપાસના કરતા તે રાજાને (ગૃહસ્થોચિત, અતિથિના) પૂજાસત્કારાદિ ન કરતા જોઈને તેઓ ક્રોધિત થઈ ગયા.॥૯॥

तूष्णीं रहस्युपासीनं वीक्ष्य॥९॥

એકાંતમાં મૌન થઈને ઉપાસના કરતા જોઈને॥૯॥

तस्मा इमं शापमदादसाधु-
रयं दुरात्माकृतबुद्धिरद्य।
विप्रावमन्ता विशतां तमोऽन्धं
यथा गजः स्तब्धमतिः स एव॥ १०

શાપમેવાહ—અસાધુરિત્યાદિ। અકૃતાઽશિક્ષિતા બુદ્ધિર્યસ્ય। ગજો યથા સ્તબ્ધમતિસ્તથૈવાયમ્। અતઃ સ એવ ગજ એવ, ભવત્વિતિ શેષઃ॥ ૧૦॥

તેમણે તે રાજાને આ શાપ આપ્યો– 'દુર્જન, દુષ્ટાત્મા, અશિક્ષિત બુદ્ધિવાળો, વિપ્રોનું અપમાન કરનાર આ રાજા હાથી જેવો જડબુદ્ધિ છે. તે આજે જ અંધતમસ્‌માં પ્રવેશો.' (અજ્ઞાનમયી હાથીની યોનિને જ પ્રાપ્ત થાઓ) (તે હાથી જ બની જાઓ!)॥ ૧૦॥

શાપનું જ વર્ણન કરે છે— '**असाधुः**' વગેરે– '**अकृता**' અશિક્ષિત બુદ્ધિ છે જેની. હાથી જેવો જડબુદ્ધિ હોય છે તેવો જ આ છે. આથી તે હાથી જ, બની જાઓ, એટલું શેષ છે.॥ ૧૦॥

श्रीशुक उवाच

एवं शप्त्वा गतोऽगस्त्यो भगवान् नृप सानुगः।
इन्द्रद्युम्नोऽपि राजर्षिर्दिष्टं तदुपधारयन्॥ ११

आपन्नः कौञ्जरीं योनिमात्मस्मृतिविनाशिनीम्।
हर्यर्चनानुभावेन यद्गजत्वेऽप्यनुस्मृतिः॥ १२

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — હે નૃપ પરીક્ષિત, આમ શાપ આપીને ભગવાન અગસ્ત્ય શિષ્યો સાથે ત્યાંથી ચાલ્યા ગયા. રાજર્ષિ ઈન્દ્રદ્યુમ્ન પણ તેને (આવી પડેલી શાપ-પ્રાપ્તિને) પ્રારબ્ધનું ફળ માનીને આત્માના સ્વરૂપની સ્મૃતિનો નાશ કરનારી હાથીની યોનિને પ્રાપ્ત થયો, પરંતુ શ્રીહરિની આરાધનાના પ્રભાવથી જે હાથી હોવા છતાં પણ તેને (પાછળથી) પૂર્વજન્મનું સ્મરણ થયું હતું.॥ ૧૧॥ ૧૨॥

दिष्टं दैवप्रापितं तदुपधारयन्नालोचयन्॥ ११॥

'**दिष्टम्**' પ્રારબ્ધથી પ્રાપ્ત થયેલ તે ફળ, '**उपधारयन्**' માનીને॥ ૧૧॥

कौञ्जरीं योनिमापन्नः। तर्हि पश्चात्कथं स्मृतिर्जाता तत्राह—हरेरर्चनस्यानुभावेनेति॥ १२॥

હાથીની યોનિને પ્રાપ્ત થયો, તો પછી પાછળથી કેવી રીતે સ્મૃતિ થઈ? તે માટે ઉત્તર આપે છે— શ્રીહરિની આરાધનાના પ્રભાવથી॥ ૧૨॥

एवं विमोक्ष्य गजयूथपमब्जनाभ-
स्तेनापि पार्षदगतिं गमितेन युक्तः।
गन्धर्वसिद्धविबुधैरुपगीयमान-
कर्माऽद्भुतं स्वभवनं गरुडासनोऽगात्॥ १३

આ પ્રમાણે ગજયૂથપતિને છોડાવી, પાર્ષદગતિ પ્રાપ્ત કરાયેલા એવા તેની સાથે, ગંધર્વો, સિદ્ધો અને દેવો દ્વારા જેમની લીલાનું ગાન કરવામાં આવે છે તેવા ગરુડ ઉપર બેઠેલા પદ્મનાભ પ્રભુ પોતાના અલૌકિક વૈકુંઠધામમાં પધાર્યા.॥ ૧૩॥

अद्भुतं स्वभवनमगात्॥ १३॥

પોતાના અલૌકિક વૈકુંઠ ધામમાં પધાર્યા.॥ ૧૩॥

एतन्महाराज तवेरितो मया
कृष्णानुभावो गजराजमोक्षणम्।
स्वर्ग्यं यशस्यं कलिकल्मषापहं
दुःस्वप्ननाशं कुरुवर्य शृण्वताम्॥ १४

एतद्गजराजमोक्षणं नाम कृष्णानुभावस्तवेरितः। कथंभूतं तत्राह—स्वर्ग्यमित्यादि। दुःस्वप्नं नाशयतीति तथा॥ १४॥

હે મહારાજ, આ ગજેન્દ્રમોક્ષરૂપ કૃષ્ણ ભગવાનનો પ્રભાવ મારા દ્વારા તમને કહેવામાં આવ્યો. હે કુરુશ્રેષ્ઠ પરીક્ષિત, (આ ચરિત્ર) શ્રવણ કરનારા મનુષ્યોને સ્વર્ગ તથા યશ આપનારું છે, કળિયુગના મેલને દૂર કરનારું અને દુઃસ્વપ્નનો નાશ કરનારું છે.॥ ૧૪॥

આ ગજેન્દ્રમોક્ષ નામનો શ્રીકૃષ્ણ ભગવાનનો પ્રભાવ તમને કહેવામાં આવ્યો. આ ચિરત્ર કેવું છે, તે કહે છે— સ્વર્ગ આપનારું વગેરે. દુઃસ્વપ્નનો નાશ કરનારું.॥ ૧૪॥

यथानुकीर्तयन्त्येतच्छ्रेयस्कामा द्विजातयः।
शुचयः प्रातरुत्थाय दुःस्वप्नाद्युपशान्तये॥ १५

अतः श्रेयस्कामा ये एतद्यथावदनुकीर्तयन्ति॥ १५॥

अनेन श्रेयो भवतीति कुतो ज्ञातम्, साक्षाद् भगवद्वचनादेवेत्याह—**इदमाहेत्यादि** यावत्समाप्ति।

કલ્યાણકામી બ્રાહ્મણો, ક્ષત્રિયો અને વૈશ્યો પ્રાતઃકાળમાં ઊઠી, પવિત્ર થઈ, દુઃસ્વપ્નની શાંતિ માટે આ ગજેન્દ્રમોક્ષનો યથાવત્ પાઠ કરે છે.॥ ૧૫॥

આથી કલ્યાણની કામના કરનારા જે લોકો આ ગજેન્દ્રમોક્ષનો યથાવત્ પાઠ કરે છે.॥ ૧૫॥

આનાથી કલ્યાણ થાય છે એવું ક્યાંથી જ્ઞાન થયું? સાક્ષાત્ ભગવાનનાં વચનથી જ (જ્ઞાન થયું), એમ કહે છે— '**इदम्-आह इति आदि।**'થી અધ્યાય સમાપ્ત થાય ત્યાં સુધી.

इदमाह हरिः प्रीतो गजेन्द्रं कुरुसत्तम।
शृण्वतां सर्वभूतानां सर्वभूतमयो विभुः॥ १६

॥ १६॥

હે કુરુશ્રેષ્ઠ પરીક્ષિત, સર્વભૂતસ્વરૂપ, સર્વવ્યાપક ભગવાન શ્રીહરિએ પ્રસન્ન થઈ સર્વ પ્રાણીઓના સાંભળતાં, ગજેન્દ્રને આ પ્રમાણે કહ્યું હતું.॥ ૧૬॥॥ ૧૬॥

श्रीभगवानुवाच

ये मां त्वां च सरश्चेदं गिरिकन्दरकाननम्।
वेत्रकीचकवेणूनां गुल्मानि सुरपादपान्॥ १७

शृङ्गाणीमानि धिष्ण्यानि ब्रह्मणो मे शिवस्य च।
क्षीरोदं मे प्रियं धाम श्वेतद्वीपं च भास्वरम्॥ १८

श्रीवत्सं कौस्तुभं मालां गदां कौमोदकीं मम।
सुदर्शनं पाञ्चजन्यं सुपर्णं पतगेश्वरम्॥ १९

શ્રીભગવાન બોલ્યા – જે મનુષ્યો મને, તને અને આ સરોવરને, પર્વતને, કન્દરાને અને વનને, નેતર, પોલા વાંસ અને નક્કર વાંસની ઝાડીઓને, દિવ્ય વૃક્ષોને,॥ ૧૭॥

આ શિખરોને, મારાં, બ્રહ્માજીનાં તથા શંકરનાં સ્થાનોને, મારા પ્રિય સ્થાન ક્ષીર સમુદ્રને, દેદીપ્યમાન શ્વેતદ્વીપને,॥ ૧૮॥ શ્રીવત્સને, કૌસ્તુભ મણિને, વનમાળાને, મારી કૌમોદકી ગદાને, સુદર્શન ચક્રને, પાંચજન્ય શંખને, પક્ષીરાજ ગરુડને,॥ ૧૯॥

शेषं च मत्कलां सूक्ष्मां श्रियं देवीं मदाश्रयाम्।
ब्रह्माणं नारदमृषिं भवं प्रह्रादमेव च॥ २०

मत्स्यकूर्मवराहाद्यैरवतारैः कृतानि मे।
कर्माण्यनन्तपुण्यानि सूर्यं सोमं हुताशनम्॥ २१

प्रणवं सत्यमव्यक्तं गोविप्रान् धर्ममव्ययम्।
दाक्षायणीर्धर्मपत्नीः सोमकश्यपयोरपि॥ २२

गङ्गां सरस्वतीं नन्दां कालिन्दीं सितवारणम्।
ध्रुवं ब्रह्मऋषीन्सप्त पुण्यश्लोकांश्च मानवान्॥ २३

મારા સૂક્ષ્મ અંશરૂપ શેષનાગને, મારો આશ્રય કરનારાં લક્ષ્મીદેવીને, બ્રહ્માજીને, નારદ ઋષિને, શંકરને, પ્રહ્લાદજીને ॥ ૨૦॥ મત્સ્ય-કૂર્મ-વરાહાદિ અવતારોમાં કરેલાં મારાં અનંત પુણ્યવાળાં કર્મોને, સૂર્યને, ચંદ્રને, અગ્નિને, ॥ ૨૧ ॥ ઓમ્કારને, સત્યને, માયાને, ગાયો અને બ્રાહ્મણોને, અવિનાશી સનાતન ધર્મને, સોમ, કશ્યપ અને ધર્મની પત્ની (દાક્ષાયણી) દક્ષપુત્રીઓને, ॥ ૨૨ ॥ ગંગા-સરસ્વતી-નંદા-યમુનાને, ઐરાવત હાથીને, ધ્રુવને, સાત બ્રહ્મર્ષિઓને તથા પુણ્યકીર્તિવાળા (નળ, યુધિષ્ઠિર, જનક વગેરે) મહાપુરુષોને ॥ ૨૩ ॥

प्रसङ्गादन्यस्यापि स्मरणे फलमुच्यते। सर्वेषां द्वितीयान्तानां स्मरन्तीत्यष्टमेनान्वयः ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

પ્રસંગોપાત્ત અન્યના સ્મરણનું પણ ફળ કહે છે. સર્વ દ્વિતીયાંત વિભક્તિવાળી વ્યક્તિઓને સ્મરે છે– એમ આનાથી આઠમા શ્લોક (૨૪) સાથે અન્વય છે. ॥ ૧૭ ॥ ૧૮ ॥ ૧૯ ॥ ૨૦ ॥ ૨૧ ॥

अव्यक्तं मायाम्। अव्ययं धर्मं भक्तिलक्षणम्। सोमकश्यपयोरपि पत्नीर्दाक्षायणीः ॥ २२ ॥

'अव्यक्तम्' માયાને, **'अव्ययम् धर्मम्'** ભક્તિના લક્ષણવાળા અવિનાશી ધર્મને, સોમ અને કશ્યપની પત્નીઓ એવી દક્ષપુત્રીઓને ॥ ૨૨ ॥

सितवारणमैरावतम् ॥ २३ ॥

'सितवारणम्' (શ્વેત) ઐરાવતને ॥ ૨૩ ॥

उत्थायापररात्रान्ते प्रयताः सुसमाहिताः।
स्मरन्ति मम रूपाणि मुच्यन्ते ह्येनसोऽखिलात्॥ २४

પાછલી રાતના અંતે (પ્રભાતે) ઊઠી જિતેન્દ્રિય અને એકાગ્રચિત્ત થઈ મારાં સ્વરૂપોને સ્મરે છે, તેઓ સર્વ પાપથી નિશ્ચિતરૂપે છૂટી જાય છે. ॥ ૨૪ ॥

सुसमाहिता एकाग्रचित्ताः। मम रूपाणि मद्विभूतीः ॥ २४ ॥

'सुसमाहिताः' એકાગ્રચિત્ત થઈ મારી **'रूपाणि'** વિભૂતિઓનું ॥ ૨૪ ॥

ये मां स्तुवन्त्यनेनाङ्ग प्रतिबुध्य निशात्यये।
तेषां प्राणात्यये चाहं ददामि विमलां मतिम्॥ २५

॥ २५ ॥

હે પ્રિય ગજેન્દ્ર, જે મનુષ્યો બ્રાહ્મ મુહૂર્તમાં જાગી આ સ્તોત્ર દ્વારા મારી સ્તુતિ કરે છે તેમને પ્રાણના પ્રયાણકાળે હું નિર્મળ મતિ પ્રદાન કરું છું. ॥ ૨૫ ॥ ॥ ૨૫ ॥

वंशीधरी—निशात्यये परराात्रान्ते।

રાત્રિના અંતે અર્થાત્ અપરરાત્રિના સમયે અને પરરાત્રિના અંતે.

श्रीशुक उवाच

इत्यादिश्य हृषीकेशः प्रध्माय जलजोत्तमम्।
हर्षयन्विबुधानीकमारुरोह खगाधिपम्॥ २६

जलजोत्तमं शङ्खवरं प्रध्माय वादयित्वा॥ २६॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — આ પ્રમાણે (ગજેન્દ્રને કહી) ભગવાન હૃષીકેશ શ્રેષ્ઠ શંખ પાંચજન્યનો ધ્વનિ કરી, દેવસમૂહને હર્ષ ઉપજાવતા, પક્ષીરાજ ગરુડ ઉપર બિરાજ્યા (અને સ્વધામ પધાર્યા).॥ ૨૬॥

'जलज-उत्तमम्' શ્રેષ્ઠ શંખ **'प्रध्माय'** વગાડીને ॥ ૨૬॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे गजेन्द्रमोक्षणं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

❋❋❋❋❋

अथ पञ्चमोऽध्यायः

અસુરોથી પરાજિત થયેલા દેવતાઓ સહિત બ્રહ્માજી દ્વારા ભગવાનની સ્તુતિ

अमृताख्यानमष्टाभिरध्यायैरनुवर्ण्यते।
स्वभक्तपक्षपातेन यत्र योषायितं प्रभोः॥ १॥

(હવે) આઠ અધ્યાયો દ્વારા અમૃતાખ્યાન વર્ણવવામાં આવે છે. પોતાના ભક્તો ઉપર પક્ષપાત કરવા દ્વારા જે અમૃતાખ્યાનમાં પ્રભુ શ્રીહરિની સ્ત્રી જેવી લીલા છે.॥ ૧॥

पञ्चमे पञ्चमं चाथ षष्ठं चाकथयन्मनुम्।
विप्रशापाच्च निःश्रीकैः कृतां देवैर्हरेः स्तुतिम्॥ २॥

હવે પાંચમા અધ્યાયમાં પાંચમા અને છઠ્ઠા મનુની કથા કહી છે. તથા (સનકાદિ) વિપ્રોના શાપને કારણે શ્રીહીન કરવામાં આવેલા દેવો દ્વારા શ્રીહરિની સ્તુતિ (કરવામાં આવી છે.)॥ ૨॥

श्रीशुक उवाच

राजन्नुदितमेतत् ते हरेः कर्माघनाशनम्।
गजेन्द्रमोक्षणं पुण्यं रैवतं त्वन्तरं शृणु॥ १

॥ १॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — હે રાજા, પાપનો નાશ કરનારું શ્રીહરિનું આ ગજેન્દ્રમોક્ષરૂપ પુણ્યકર્મ તમને કહેવામાં આવ્યું. હવે રૈવત મન્વન્તરનું શ્રવણ કરો.॥ ૧॥॥ ૧॥

पञ्चमो रैवतो नाम मनुस्तामससोदरः।
बलिविन्ध्यादयस्तस्य सुता अर्जुनपूर्वकाः॥ २

तामसश्चतुर्थो मनुस्तस्य सोदरो भ्राता॥ २॥

તામસ મનુના સહોદર રૈવત નામના પાંચમા મનુ થયા. અર્જુન જેમનામાં પ્રથમ છે તેવા બલિ, વિંધ્ય વગેરે તેમના પુત્રો થયા.॥ ૨॥

ચોથા મનુ તામસ, તેમના સહોદર ભાઈ રૈવત॥ ૨॥

विभुरिन्द्रः सुरगणा राजन्भूतरयादयः।
हिरण्यरोमा वेदशिरा ऊर्ध्वबाह्वादयो द्विजाः॥ ३

॥ ३॥

હે રાજા, (એ મન્વન્તરમાં) વિભુ નામના ઈન્દ્ર હતા, ભૂતરય વગેરે દેવગણો હતા અને હિરણ્યરોમા તથા વેદશિરા તેમ જ ઊર્ધ્વબાહુ વગેરે બ્રાહ્મણો (સપ્તર્ષિ) હતા.॥ ૩॥॥ ૩॥

पत्नी विकुण्ठा शुभ्रस्य वैकुण्ठैः सुरसत्तमैः ।
तयोः स्वकलया जज्ञे वैकुण्ठो भगवान्स्वयम् ॥ ४
॥ ४ ॥

શુભ્ર ઋષિની વિકુંઠા નામની પત્ની હતી. તે બંનેથી ભગવાન વૈકુંઠ સ્વયં, વૈકુંઠ નામના ઉત્તમ દેવો સાથે પોતાના અંશથી જન્મ્યા હતા. ॥ ૪ ॥ ॥ ૪ ॥

वैकुण्ठः कल्पितो येन लोको लोकनमस्कृतः ।
रमया प्रार्थ्यमानेन देव्या तत्प्रियकाम्यया ॥ ५
॥ ५ ॥

દેવી રમા દ્વારા પ્રાર્થના કરવામાં આવેલા જે વૈકુંઠ ભગવાને તેમને પ્રસન્ન કરવા માટે સર્વ લોકમાં રહેલા જનો દ્વારા પ્રાર્થનીય એવો (નમસ્કાર કરાયેલો) વૈકુંઠ લોક નિર્માણ કર્યો, ॥ ૫ ॥ ॥ ૫ ॥

तस्यानुभावः कथितो गुणाश्च परमोदयाः ।
भौमान् रेणून्स विममे यो विष्णोर्वर्णयेद् गुणान् ॥ ६

તે વૈકુંઠ ભગવાનનો પ્રભાવ, મહાન સમૃદ્ધિ તથા ગુણો કહેવામાં આવ્યા. ભગવાન વિષ્ણુના ગુણો તે વર્ણવી શકે, જે પૃથ્વીના પરમાણુઓને ગણી શકે. ॥ ૬ ॥

तस्य वैकुण्ठसंज्ञस्य हरेरनुभावः सनकादिशापेन दैत्यतां प्राप्ताभ्यां स्वपार्षदाभ्यां वराहादिरूपेण युद्धादिलक्षणः, गुणाश्च ब्रह्मण्यतादयः, परमोदयाश्च महर्द्धयः कथिताः तृतीयस्कन्धादिषु ॥ ६ ॥

તે વૈકુંઠ નામના શ્રીહરિનો '**अनुभावः**' સનકાદિના શાપથી દૈત્યત્વને પ્રાપ્ત થયેલા પોતાના પાર્ષદો સાથે વરાહાદિરૂપે યુદ્ધાદિ કરવાના લક્ષણરૂપ પ્રભાવ, બ્રહ્મણ્યતાદિ ગુણો, '**परमोदयाः**' મહાન સમૃદ્ધિઓ ત્રીજા સ્કંધ વગેરેમાં કહેવામાં આવ્યાં. ॥ ૬ ॥

षष्ठश्च चक्षुषः पुत्रश्चाक्षुषो नाम वै मनुः ।
पूरुपूरुषसुद्युम्नप्रमुखाश्चाक्षुषात्मजाः ॥ ७
॥ ७ ॥

ચક્ષુના ચાક્ષુષ નામના પુત્ર જ છઠ્ઠા મનુ થયા. પૂરુ, પૂરુષ, સુદ્યુમ્ન જેમનામાં મુખ્ય હતા, તે ચાક્ષુષ મનુના પુત્રો થયા. ॥ ૭ ॥ ॥ ૭ ॥

इन्द्रो मन्त्रद्रुमस्तत्र देवा आप्यादयो गणाः ।
मुनयस्तत्र वै राजन्हविष्मद्वीरकादयः ॥ ८
॥ ८ ॥

હે રાજા, તે સમયે (ચાક્ષુષ મન્વન્તરમાં) મંત્રદ્રુમ ઈન્દ્ર હતા, આપ્ય (પરાવત, તુષિતા) વગેરે દેવગણો હતા. હવિષ્માન, વીરક (ભૃગુ) વગેરે સપ્તર્ષિઓ હતા. ॥ ૮ ॥ ॥ ૮ ॥

तत्रापि देवः सम्भूत्यां वैराजस्याभवत् सुतः ।
अजितो नाम भगवानंशेन जगतः पतिः ॥ ९
॥ ९ ॥

ત્યારે પણ (પરમ ઐશ્વર્યથી) પ્રકાશતા દેવ, જગતના પાલક ભગવાન શ્રીહરિ વૈરાજની સંભૂતિ (નામની ભાર્યા)માં પોતાના અંશથી અજિત નામના પુત્ર થયા હતા, ॥ ૯ ॥ ॥ ૯ ॥

पयोधिं येन निर्मथ्य सुराणां साधिता सुधा ।
भ्रममाणोऽम्भसि धृतः कूर्मरूपेण मन्दरः ॥ १०
॥ १० ॥

જેમણે સમુદ્રનું મંથન કરીને દેવોને અમૃત સિદ્ધ કરાવ્યું હતું તથા જેમણે જળમાં ભમતા મંદર પર્વતને કાચબારૂપે ધારણ કર્યો હતો. ॥ ૧૦ ॥ ॥ ૧૦ ॥

राजोवाच

यथा भगवता ब्रह्मन्मथितः क्षीरसागरः ।
यदर्थं वा यतश्चाद्रिं दधाराम्बुचरात्मना ॥ ११

यतो हेतोः । अम्बुचरात्मना कूर्मरूपेण ॥ ११ ॥

યથામૃતં सुरैः प्राप्तं किञ्चान्यदभवत् ततः ।
एतद् भगवतः कर्म वदस्व परमाद्भुतम् ॥ १२

'सुराणां साधिता सुधा' इत्युक्त्या युद्धाद्यपि सूचितम्, अतः पृच्छति—किं चान्यदिति ॥ १२ ॥

त्वया सङ्कथ्यमानेन महिम्ना सात्वतां पतेः ।
नातितृप्यति मे चित्तं सुचिरं तापतापितम् ॥ १३
॥ १३ ॥

सूत उवाच

सम्पृष्टो भगवानेवं द्वैपायनसुतो द्विजाः ।
अभिनन्द्य हरेर्वीर्यमभ्याचष्टुं प्रचक्रमे ॥ १४
॥ १४ ॥

श्रीशुक उवाच

यदा युद्धेऽसुरैर्देवा बाध्यमानाः शितायुधैः ।
गतासवो निपतिता नोत्तिष्ठेरन् स्म भूयशः ॥ १५

नोत्तिष्ठेरन्न पुनर्जीवन्ति स्मेत्यर्थः ॥ १५ ॥

दुर्वाससा हि कदाचिन्मार्गे गच्छन्तमिन्द्रं दृष्ट्वा स्वकण्ठस्था माला तस्मै दत्ता, तेन च श्रीमदेनानादृत्यैरावतस्य कुम्भयोर्निक्षिप्ता, स च

રાજા પરીક્ષિત બોલ્યા – હે બ્રહ્મન્, ભગવાન દ્વારા જે પ્રકારે અને જે પ્રયોજનથી ક્ષીરસાગરનું મંથન કરવામાં આવ્યું તથા જે કારણે જળચર (કાચબા)રૂપે મંદરાદ્રિ ધારણ કરવામાં આવ્યો હતો, ॥ ૧૧ ॥

જે કારણે '**अम्बुचर-आत्मना**' જળચર કૂર્મરૂપે ॥ ૧૧ ॥

દેવો દ્વારા જે પ્રકારે અમૃત પ્રાપ્ત કરવામાં આવ્યું તથા (અમૃતમંથન ઉપરાંત) બીજું પણ શું થયું હતું? એ (સર્વ), ભગવાનનું પરમ અદ્ભુત કર્મ કહો. ॥ ૧૨ ॥

'**सुराणां साधिता सुरा**' (શ્લોક-૧૦) એમ કહેવાથી યુદ્ધ વગેરે બીજું પણ કંઈક સૂચિત થાય છે, આથી પૂછે છે— '**किं च अन्यत् इति**' ॥ ૧૨ ॥

આપના દ્વારા સુંદર રીતે વર્ણવાયેલા, ભક્તોના પાલક ભગવાનના મહિમાથી, અતિ દીર્ઘકાળથી (ત્રિવિધ) તાપથી તપ્ત થયેલું મારું મન જરાય તૃપ્ત થતું નથી. ॥ ૧૩ ॥ ॥ ૧૩ ॥

સૂતજી બોલ્યા – હે (શૌનકાદિ) ઋષિઓ, આ પ્રમાણે જેમને પૂછવામાં આવ્યું તે વ્યાસપુત્ર ભગવાન શુકે (રાજાને) અભિનંદન આપી શ્રીહરિનું (સમુદ્રમંથનરૂપ) પરાક્રમ (માહાત્મ્ય) કહેવાનો પ્રારંભ કર્યો. ॥ ૧૪ ॥ ॥ ૧૪ ॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – જ્યારે યુદ્ધમાં અસુરો દ્વારા તીક્ષ્ણ આયુધોથી પરાજિત થયેલા દેવો નિષ્પ્રાણ થઈ ઢળી પડ્યા, ત્યારે ઘણા ખરા પાછા જીવતા જ ન થયા. ॥ ૧૫ ॥

'**न-उत्तिष्ठेरन्**' પુનઃ જીવિત થયા જ નહીં, એમ અર્થ છે. ॥ ૧૫ ॥

કોઈ એક સમયે દુર્વાસા મુનિએ રસ્તામાં ઈન્દ્રને જતા જોઈને પોતાના કંઠમાં રહેલી માળા તેને આપી. ઈન્દ્રે લક્ષ્મીના મદથી તેનો અનાદર કરીને ઐરાવતના ગંડસ્થળમાં નાખી. તે ઉન્મત્ત હાથીએ તે

गजो मत्तः पद्भ्यां तां मालां चूर्णीचकार, ततः कुपितो दुर्वासास्तं शशाप त्रिभिर्लोकैः सह त्वं निःश्रीको भवेति। तदेतदाह—**यदा दुर्वाससः शापादिति।**

यदा दुर्वाससः शापात् सेन्द्रा लोकास्त्रयो नृप।
निःश्रीकाश्चाभवंस्तत्र नेशुरिज्यादयः क्रियाः ॥ १६

इज्यादयो यागाद्याः ॥ १६ ॥

निशाम्यैतत् सुरगणा महेन्द्रवरुणादयः।
नाध्यगच्छन्स्वयं मन्त्रैर्मन्त्रयन्तो विनिश्चयम् ॥ १७

॥ १७ ॥

ततो ब्रह्मसभां जग्मुर्मेरोर्मूर्धनि सर्वशः।
सर्वं विज्ञापयाञ्चक्रुः प्रणताः परमेष्ठिने ॥ १८

॥ १८ ॥

स विलोक्येन्द्रवाय्वादीन् निःसत्त्वान्विगतप्रभान्।
लोकानमङ्गलप्रायानसुरानयथा विभुः ॥ १९
समाहितेन मनसा संस्मरन्पुरुषं परम्।
उवाचोत्फुल्लवदनो देवान्स भगवान्परः ॥ २०

असुरान् अयथा देववैलक्षण्येन। बलपुष्ट्यादियुक्तान्विलोक्येत्यर्थः ॥ १९ ॥

हरिं शरणं गताः सन्तो यथापूर्वं सर्वं प्राप्स्याम इति हर्षेणोत्फुल्लं विकसितं वदनं यस्य ॥ २० ॥

अहं भवो यूयमथोऽसुरादयो
मनुष्यतिर्यग्द्रुमघर्मजातयः ।
यस्यावतारांशकलाविसर्जिता
व्रजाम सर्वे शरणं तमव्ययम् ॥ २१

માળાનો બે પગથી ચૂરો કરી નાખ્યો. તેથી ક્રોધે ભરાયેલા દુર્વાસાએ તેને શાપ આપ્યો, 'ત્રણ લોક સહિત તું શ્રીહીન થઈ જા.' તેથી આ પ્રમાણે કહે છે— **'यदा दुर्वाससः शापात् इति।'**

હે નૃપ, જ્યારે દુર્વાસાના શાપથી ઈન્દ્ર સહિત ત્રણે લોકો શ્રીહીન થયા, ત્યારે યજ્ઞ-યાગાદિ ક્રિયાઓ નાશ પામી. ॥ ૧૬ ॥

'इज्यादयः' યજ્ઞ વગેરે ॥ ૧૬ ॥

આ સાંભળીને ઈન્દ્ર, વરુણ વગેરે દેવગણો પોતે મંત્રણા કરીને વિચાર કરવા છતાં કોઈ નિશ્ચય કરી ન શક્યા. ॥ ૧૭ ॥ ॥ ૧૭ ॥

ત્યારે મેરુ પર્વતના શિખર ઉપર બ્રહ્માજીની સભામાં તેઓ સર્વે ગયા અને પ્રણામ કરતા તેમણે સર્વ નિવેદન કર્યું. ॥ ૧૮ ॥ ॥ ૧૮ ॥

ઈન્દ્ર, વાયુ વગેરેને બળહીન અને નિસ્તેજ તથા લોકોને મંગળરહિત હોય તેવા અને અસુરોને દેવોથી વિપરીત લક્ષણોવાળા જોઈને, એકાગ્ર મનથી પરમેશ્વરનું સ્મરણ કરતા, ઐશ્વર્યમાન, સમર્થ, દેવશ્રેષ્ઠ, પ્રસન્ન-વદન એવા તે બ્રહ્માજીએ દેવોને કહ્યું. ॥ ૧૯ ॥ ૨૦ ॥

અસુરોને **'अयथा'** દેવોથી વિપરીત લક્ષણવાળા, બળ, તેજ વગેરેથી યુક્ત અસુરોને જોઈને, એમ અર્થ છે. ॥ ૧૯ ॥

શ્રીહરિને શરણે જતા હોઈ પૂર્વની પેઠે સર્વ પ્રાપ્ત કરીશું, એમ હર્ષથી **'उत्फुल्लम्'** પ્રફુલ્લ વદન છે જે બ્રહ્માજીનું ॥ ૨૦ ॥

હું, શંકર, તમે, અસુર વગેરે, મનુષ્યો, પશુ-પક્ષીઓ, વૃક્ષો, સ્વેદજ જાતિઓ તે પરમાત્માના પુરુષાવતારના અંશના પણ અંશથી ઉત્પન્ન થયા છીએ. માટે તે અવિનાશી પરમાત્માને શરણે આપણે સર્વ જઈએ. ॥ ૨૧ ॥

मनुष्यादयो जरायुजाण्डजोद्भिज्जस्वेदजाः। यस्यावतारः पुरुषस्तस्यांशो ब्रह्मा तस्य कला मरीच्यादयस्ताभिर्विसर्जिताः पुत्रपौत्रादिद्वारा जनिताः ॥ २१ ॥

મનુષ્ય વગેરે જરાયુજ, અંડજ, ઉદ્ભિજ્જ અને સ્વેદજ જીવો (સર્વે ભગવાનના સ્વલ્પાતિસ્વલ્પ અંશો છે.) જેમનો '**अवतारः**' પુરુષાવતાર, તેમનો અંશ બ્રહ્માજી, તેમનો અંશ મરીચિ વગેરે ઋષિઓ, તેમનાથી '**विसर्जिताः**' પુત્રપૌત્રાદિ દ્વારા જન્મ પામેલા સર્વે છીએ. ॥ ૨૧ ॥

ननु तर्हि सर्वेष्वसौ समः स्यात्किं तच्छरणाश्रयेण, सत्यम्, यद्यप्येवं तथाप्यस्मत्पक्षपाती भविष्यतीत्याशयेनाह—**न यस्येति** द्वाभ्याम्।

શંકા કરવામાં આવી છે કે જો ભગવાન સર્વ પ્રત્યે સમાન હોય, તો તેમના શરણમાં આશ્રય લેવાનું શું પ્રયોજન છે? આ સાચું છે. જો કે આમ હોવા છતાં પણ આપણા પક્ષપાતી થશે, એ આશયથી બે શ્લોકો વડે કહે છે— '**न यस्य इति।**'

न यस्य वध्यो न च रक्षणीयो
नोपेक्षणीयादरणीयपक्षः ।
अथापि सर्गस्थितिसंयमार्थं
धत्ते रजःसत्त्वतमांसि काले॥ २२
॥ २२ ॥

જે ભગવાનને માટે નથી કોઈ વધ કરવા યોગ્ય કે નથી કોઈ રક્ષણ કરવા યોગ્ય, નથી કોઈ ઉપેક્ષા કરવા યોગ્ય કે નથી કોઈ આદર કરવા યોગ્ય પક્ષ. તેમ છતાં પણ ભગવાન સૃષ્ટિ, સ્થિતિ અને લય કરવા માટે યોગ્ય કાળે રજોગુણ, સત્ત્વગુણ અને તમોગુણ ધારણ કરે છે. ॥ ૨૨ ॥॥ ૨૨ ॥

अयं च तस्य स्थितिपालनक्षणः
सत्त्वं जुषाणस्य भवाय देहिनाम्।
तस्माद् व्रजामः शरणं जगद्गुरुं
स्वानां स नो धास्यति शं सुरप्रियः॥ २३

દેહધારીઓના કલ્યાણ માટે સત્ત્વગુણનો સ્વીકાર કરનારા તે ભગવાન શ્રીહરિનો આ સ્થિતિરૂપ પાલન કરવાનો સમય છે, તેથી જગદ્ગુરુ એવા તેમને શરણે આપણે જઈએ. (આથી) દેવો જેમને પ્રિય છે એવા તે, નિજજનો એવા આપણું કલ્યાણ કરશે. ॥ ૨૩ ॥

स्थितिपालनस्य क्षणः कालः। अतः सुरप्रियः सन्स्वीयानां नः शं सुखं करिष्यति॥ २३॥

સ્થિતિરૂપ પાલનનો '**क्षणः**' સમય છે. આથી દેવો જેમને પ્રિય છે તેવા હોઈ તે, નિજજનો એવા આપણું '**शम्**' કલ્યાણ કરશે. ॥ ૨૩ ॥

श्रीशुक उवाच

इत्याभाष्य सुरान्वेधाः सह देवैररिंदम।
अजितस्य पदं साक्षाज्जगाम तमसः परम्॥ २४

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – હે શત્રુદમન પરીક્ષિત, દેવોને આ પ્રમાણે કહીને બ્રહ્માજી દેવોની સાથે અંધકારની પેલે પાર આવેલા શ્રીઅજિત ભગવાનના સાક્ષાત્ ધામમાં ગયા. ॥ ૨૪ ॥

यत्र क्षीराब्धौ हरेर्वासस्तदेव तमसः परं स्थानम्। यद्वा लोकालोकात्परतो यत्तमस्ततः परं स्थानं जगाम॥ २४॥

तत्रादृष्टस्वरूपाय श्रुतपूर्वाय वै विभो।
स्तुतिमब्रूत दैवीभिर्गीर्भिस्त्ववहितेन्द्रियः॥ २५

दैवीभिर्लोकेऽप्रसिद्धाभिर्वैदिकीभिर्गीर्भिः स्तुतिमकरोत्॥ २५॥

ब्रह्मोवाच

अविक्रियं सत्यमनन्तमाद्यं
गुहाशयं निष्कलमप्रतर्क्यम्।
मनोऽग्रयानं वचसाऽनिरुक्तं
नमामहे देववरं वरेण्यम्॥ २६

देववरं त्वां नमामहे नमाम। हे देव, वरं त्वां नमामेति वा। वरत्वे हेतुः—सत्यम्। कुतः। अविक्रियम्। तत्कुतः। अनन्तमाद्यं चानादिम्। आद्यन्तवन्तो हि वृद्ध्यादिविक्रियायुक्ता भवन्ति। किं च—गुहाशयं सर्वान्तरम्। कुतः। निष्कलं निरुपाधिम्। तत्कुतः। अप्रतर्क्यम्। तत्कुतः। मनोऽग्रयानं मनसोऽपि जविष्ठम्, मनःप्राप्ये स्थाने ततः प्रागेव विद्यमानत्वात्।

જે ક્ષીરસાગરમાં શ્રીહરિનો નિવાસ છે તે જ અંધકારની પેલી પારના સ્થાનમાં, અથવા લોકાલોક પર્વતની પેલી પાર જ્યાં અંધકાર છે તેનાથી પણ પર એવા સ્થાનમાં ગયા.॥ ૨૪॥

હે વિભુ, તે સ્થાનમાં, જેમનું સ્વરૂપ પૂર્વે જોયું નથી, પણ (સર્વ વેદો દ્વારા પ્રતિપાદન કરાયું હોવાથી) પૂર્વે શ્રવણ કર્યું છે તેવા શ્રીહરિની, એકાગ્ર ઇન્દ્રિયોવાળા થઈ બ્રહ્માજીએ દૈવી (વેદ) વાણી વડે સ્તુતિ કરવા માંડી.॥ ૨૫॥

'दैवीभिः' લોકમાં અપ્રસિદ્ધ એવી વેદવાણી દ્વારા સ્તુતિ કરી.॥ ૨૫॥

બ્રહ્માજી સ્તુતિ કરે છે – સર્વ વિકારથી રહિત, સત્યસ્વરૂપ, અંતરહિત, સર્વના મૂળ કારણરૂપ, સર્વની હૃદયગુહામાં પોઢેલા, ઉપાધિથી રહિત, તર્ક કરવા માટે અશક્ય, મનથી પણ આગળ જનાર, વાણીથી વર્ણવવાને અશક્ય, (આપત્તિકાળે સર્વ રીતે રક્ષક હોવાથી) વરણ કરવા યોગ્ય શ્રેષ્ઠ દેવને અમે નમીએ છીએ.॥ ૨૬॥

શ્રેષ્ઠ દેવ એવા આપને **'नमामहे'** નમીએ છીએ. અથવા હે દેવ, શ્રેષ્ઠ એવા આપને નમીએ છીએ. શ્રેષ્ઠ હોવા માટેનું કારણ— **'सत्यम्'** સત્યસ્વરૂપને (નમીએ છીએ). શા માટે? **'अविक्रियम्'** વિકારરહિતને, શા માટે? **'अनन्तम् आद्यम्'** અંતરહિતને અને સર્વના મૂળ કારણને તથા અનાદિને (નમીએ છીએ). આદિ અને અંતવાળા હોય તેઓ જ વૃદ્ધિ વગેરે વિકારોથી યુક્ત હોય છે. વળી, **'गुहाशयम्'** સર્વની હૃદયગુહામાં પોઢેલાને. શા માટે? **'निष्कलम्'** ઉપાધિથી રહિતને, તે કેવી રીતે? **'अप्रतर्क्यम्'** તર્ક કરવા માટે અશક્ય એવા ભગવાનને, તે કેવી રીતે? **'मनोऽग्रयानम्' (मनसः अग्रे यानं यस्य)** મનથી પણ વેગવાન. મનને પ્રાપ્ત કરવા યોગ્ય સ્થાને પહેલેથી જ વિદ્યમાન હોવાથી.

तथा च श्रुतिः—'अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत्। तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्' इति।

વચસા अनिरुक्तम्, अविषयत्वात् 'यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते' इति श्रुतेः।

मनोवचसोरगोचरत्वादप्रतर्क्यम्। यथेष्टं वा सर्वेषां हेतुहेतुमद्भावः *॥ २६ ॥

विपश्चितं प्राणमनोधियात्मना-
मर्थेन्द्रियाभासमनिद्रमव्रणम् ।
छायातपौ यत्र न गृध्रपक्षौ
तमक्षरं खं त्रियुगं व्रजामहे॥ २७

किंच—प्राणादीनां विपश्चितं ज्ञातारम्। आत्माहंकारो देहो वा। न तु तद्व्यतिरिक्तं ज्ञेयमस्तीत्याह—अर्थो विषयः। इन्द्रियाणि तद्ग्राहकाणि तदुभयरूपेणाभासत इति तथा तम्। तथाप्यनिद्रं स्वप्नद्रष्टृवदज्ञानरहितम्। कुतः। अव्रणमदेहम्। अत एवाक्षरं खमिव व्यापिनं च।

તે અનુસાર શ્રુતિ છે— 'તે પરમાત્મા અચળ, મન કરતાં વધુ વેગવાળા, પહેલેથી જ પહોંચી ગયેલા છે. તેથી ઈન્દ્રિયોથી પામી ન શકાય તેવા, પોતે સ્થિર હોવા છતાં પણ અન્ય ગતિશીલને આંબી જનારા છે.' (ઈશ.- ૪)

વાણીથી વર્ણવવાને અશક્ય, કારણ કે વાણીના અવિષય છે. જે (ચૈતન્યમાત્ર સત્તાસ્વરૂપ બ્રહ્મ) વાણીથી પ્રકાશિત નથી થતું. (કેન.ઉપ.૧/૪)

મન અને વાણીના અવિષય હોવાથી '**अप्रतर्क्यम्**' છે અથવા ઈચ્છાનુસાર સર્વનો કાર્યકારણભાવ * જોડી શકાય.॥ ૨૬ ॥

જે પરમાત્મા વિષે ગીધરૂપ જીવની બે પાંખો (અવિદ્યા અને વિદ્યા) નથી, જે પરમાત્મા પ્રાણ, મન, બુદ્ધિ અને અહંકારના જ્ઞાતા છે, જે વિષયો અને ઈન્દ્રિયોરૂપે ભાસે છે, જે અજ્ઞાનથી રહિત છે, દેહથી રહિત છે, પરિપૂર્ણ અને આકાશની જેમ વ્યાપક છે તે, ત્રણે યુગમાં આવિર્ભાવ પામનારા ભગવાનને શરણે અમે જઈએ છીએ.॥ ૨૭॥

વળી, પ્રાણાદિના '**विपश्चितम्**' જ્ઞાતાને (શરણે), **आत्मा** અર્થાત્ અહંકાર અથવા દેહ. તેમના સિવાય કંઈ જ જાણવા જેવું છે નહીં, એમ કહે છે— '**अर्थः**' વિષય, ઈન્દ્રિયો તે વિષયોનું ગ્રહણ કરનારી છે, તે અર્થ અને ઈન્દ્રિયો બંને રૂપે ભાસે છે તેવા તેમના (શરણે), તેમ છતાં '**अनिद्रम्**' સ્વપ્ન જોનાર દ્રષ્ટાની જેમ અજ્ઞાનથી જે રહિત છે તેમને (શરણે). શા માટે? '**अव्रणम्**' દેહરહિતને, અને આથી જ '**अक्षरम्**' પરિપૂર્ણને (અન્વિતાર્થ) અને આકાશની જેમ વ્યાપક પરમાત્માને (શરણે).

* '**हेतुहेतुमद्भावः**' જેમ કે ભગવાન અવિકારી છે, કારણ કે તે સત્ય છે. તે સત્ય છે, કારણ કે તે અનંત છે. તે અનંત છે, કારણ કે આદ્ય છે. તે આદ્ય છે, કારણ કે સર્વની હૃદયગુહામાં પોઢેલા છે. તે સર્વની હૃદયગુહામાં પોઢેલા છે, કારણ કે નિષ્કલ છે. તે નિષ્કલ છે, કારણ કે અતર્ક્ય છે. તે અતર્ક્ય છે, કારણ કે મનોગ્રયાન છે. તે મનોગ્રયાન છે, કારણ કે વાણીથી વર્ણવવા અશક્ય છે. તે વાણીથી વર્ણવવા અશક્ય છે, કારણ કે વરણ કરવા યોગ્ય શ્રેષ્ઠ દેવ છે.

सर्वत्र हेतुः—यत्र यस्मिन्गृध्रपक्षौ जीवपक्षपातिनौ छायातपाववविद्या च तन्निवर्तिका विद्या च नास्ति तं त्रियुगं त्रिषु युगेष्वाविर्भवन्तं शरणं व्रजाम॥ २७॥

સર્વ વિશેષણોના હેતુરૂપ આ છે– **'यत्र'** જે પરમાત્મા વિષે **'गृध्रपक्षौ'** (રાગાદિવાળા) જીવના પક્ષમાં રહેલી **'छाया-आतपौ'** અવિદ્યા અને તેને દૂર કરનાર વિદ્યા રહેલી નથી, તે **'त्रियुगम्'** ત્રણે યુગમાં આવિર્ભાવ પામનારા ભગવાનને શરણે અમે જઈએ છીએ.॥ ૨૭॥

तदेवमविक्रियत्वादिभिः सर्वज्ञत्वादिभिश्च सत्यत्वं वरेण्यत्वं चोक्तम्, संसारचक्राधारत्वेनापि तदेव दर्शयन्नाह—

આમ, તે અવિકારિત્વ અને સર્વજ્ઞત્વ વગેરે દ્વારા સત્યત્વ અને વરેણ્યત્વ પણ કહેવામાં આવ્યાં. સંસારચક્રના આધારરૂપે પણ તે સત્યત્વ અને વરેણ્યત્વ દર્શાવતાં કહે છે—

अजस्य चक्रं त्वजयेर्यमाणं
मनोमयं पञ्चदशारमाशु।
त्रिणाभि विद्युच्चलमष्टनेमि
यदक्षमाहुस्तमृतं प्रपद्ये॥ २८

માયાથી પ્રવર્તમાન થયેલું, પંદર આરાઓવાળું, શીઘ્ર ગતિ કરનારું, (સત્ત્વાદિ) ત્રણ ગુણોની નાભિવાળું, વીજળી જેવું ચંચળ, આઠ પ્રકૃતિઓરૂપી આવરણોવાળું, જીવનું મનોમય ચક્ર છે કે જેની ધરીરૂપ પરમાત્મા છે એમ (વેદો) જેમને કહે છે, તે સત્યસ્વરૂપ પરમાત્માને શરણે હું જાઉં છું.॥ ૨૮॥

अजस्य जीवस्य चक्रं चक्रवदावर्तमानं देहाद्यजया मायया प्रेर्यमाणम्। योऽक्षो यस्य यदधिष्ठानमाहुस्तमृतं सत्यं प्रपद्ये।

'अजस्य' જીવના **'चक्रम्'** ચક્રની જેમ આવર્તન પામતા દેહાદિ **'अजया'** માયાથી પ્રેરિત (પ્રવર્તિત) થાય છે **'यः'** જે પરમાત્માને જે ચક્રનું **'अक्षः'** ધરીરૂપ અધિષ્ઠાન કહે છે તે **'ऋतम्'** સત્યને શરણે હું જાઉં છું.

कथंभूतं चक्रम्। मनोमयं मनःप्रधानम्। दशेन्द्रियाणि पञ्चप्राणाश्चेत्येवं पञ्चदश अरा यस्य। आशु शीघ्रगम्। त्रयो गुणा नाभिरिव मध्ये यस्य। विद्युदिव चलम्। अष्टौ प्रकृतयो नेमय इवावरणानि यस्य॥ २८॥

કેવું ચક્ર? **'मनोमयम्'** મનઃપ્રધાન ચક્ર. પાંચ જ્ઞાનેન્દ્રિયો, પાંચ કર્મેન્દ્રિયો અને પાંચ પ્રાણ એમ પંદર આરાઓ છે જેના. **'आशु'** શીઘ્ર ગતિ કરનારું. સત્ત્વ, રજસ્ અને તમસ્– એ ત્રણ ગુણો નાભિની જેમ જેની વચમાં છે. જે વીજળી જેવું ચંચળ છે. આઠ પ્રકૃતિઓ (પૃથ્વી, જળ, તેજ, વાયુ, આકાશ, મન, બુદ્ધિ તથા અહંકાર) **'नेमयः'** (પરિઘ) આવરણો છે જેનાં॥ ૨૮॥

'भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥'

પૃથ્વી, જળ, અગ્નિ, વાયુ, આકાશ તથા મન, બુદ્ધિ અને અહંકાર એ પ્રમાણે મારી આ પ્રકૃતિ આઠ પ્રકારે વહેંચાયેલી છે. (ગીતા ૭/૪)

सर्वजीवनियन्तृत्वादिना च वरिष्ठत्वमाह— **य इति।**

સર્વ જીવોના નિયંતારૂપ હોવા વગેરે દ્વારા પરમાત્મા વરિષ્ઠ છે, એમ કહે છે— **'यः इति।'**

य एकवर्णं तमसः परं त-
दलोकमव्यक्तमनन्तपारम् ।
आसाञ्चकारोपसुपर्णमेन-
मुपासते योगरथेन धीराः ॥ २९

જે કેવળ જ્ઞાનસ્વરૂપ, પ્રકૃતિથી પર, અદૃશ્ય, નિર્વિકલ્પ (રાગાદિ દોષથી રહિત) અને દેશ-કાળથી અમર્યાદિત છે તે, જીવની સમીપે તેના નિયંતારૂપે બેઠેલા છે. આમને (પરમાત્માને) ધીર પુરુષો યોગરૂપી રથ (સાધન) દ્વારા ઉપાસે છે. ॥ ૨૯ ॥

य उपसुपर्णं जीवसमीपे तन्नियन्तृत्वेना-सांचकारास्ते स्म। 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।' इति श्रुतेः।

જે '**उपसुपर्णम्**' જીવની સમીપે તેના નિયંતારૂપે '**आसांचकार**' બેઠેલા છે. 'સુંદર પાંખોવાળાં, હંમેશાં એકબીજા સાથે જોડાયેલાં, સમાન ખ્યાતિવાળાં બે પક્ષી એક વૃક્ષ પર રહેલાં છે.' (મુંડક.ઉપ.૩/૧/૧) એમ શ્રુતિ હોવાથી.

यद्वा भक्तरक्षणार्थं गरुडस्योपरि य उपविष्ट इत्यर्थः। तर्हि देहस्थत्वाद्भक्तरक्षणादिक्रिया-वेशाज्जीवसाम्यं स्यात्तत्राह—

एकवर्णं ज्ञानैकस्वरूपं, तमसः प्रकृतेः परम्, अलोकमदृश्यमव्यक्तं निर्विकल्पम्, अनन्तपारं कालतो देशतश्चापरिच्छिन्नं तद्ब्रह्मैव यः। अप्रच्युतस्वरूपत्वान्न जीवसाम्यम्। 'तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥' इति विशेषश्रवणादित्यर्थः।

અથવા (સુપર્ણનો બીજો અર્થ ગરુડ કરે છે.) ભક્તની રક્ષા કરવા માટે ગરુડજી ઉપર જે વિરાજમાન છે, એમ અર્થ છે. તો પછી દેહમાં રહેલા હોવાથી ભક્તનું રક્ષણ વગેરે ક્રિયાઓના આવેશથી જીવની સાથે સામ્ય થઈ જાય. તે માટે કહે છે— '**एकवर्णम्**' કેવળ જ્ઞાનસ્વરૂપ, '**तमसः**' પ્રકૃતિથી પર, '**अलोकम्**' અદૃશ્ય, '**अव्यक्तम्**' નિર્વિકલ્પ (રાગાદિ દોષથી રહિત), '**अनन्तपारम्**' કાળથી અને દેશથી અમર્યાદિત જે છે તે જ બ્રહ્મ છે. અપ્રચ્યુત, અવિનાશી સ્વરૂપવાળા હોવાથી જીવ સાથે સામ્ય નથી. 'એ બેમાંથી એક પક્ષી (વૃક્ષનાં) સ્વાદિષ્ટ ફળોનો ઉપભોગ કરે છે, જ્યારે ઉપભોગ ન કરતું બીજું પક્ષી કેવળ જોયા કરે છે.' (મુંડક.ઉપ.૩/૧/૧), કારણ કે એમ વિશેષ શ્રવણ કરવામાં આવ્યું છે, એમ અર્થ છે.

अत एव यमेनं धीरा योगेन रथेन प्राप्तिसाधनेनोपासते भजन्ते तं नमामेत्युत्तरेणान्वयः ॥ २९ ॥

આથી જ, જે (આવા જ્ઞાનસ્વરૂપ વગેરે છે) આ પરમાત્માને ધીર પુરુષો યોગરૂપી '**रथेन**' પ્રાપ્તિના સાધનથી '**उपासते**' ભજે છે, તેમને અમે નમસ્કાર કરીએ છીએ, એમ આના પછીના શ્લોક (૩૦) સાથે અન્વય છે. ॥ ૨૯ ॥

मायानियन्तृत्वेनापि जीवसाम्यं परिहरन्वरिष्ठ-त्वमाह—

માયાના નિયંતા તરીકે પણ જીવ સાથે પરમાત્માનું સામ્ય દૂર કરતાં, તેમનું વરિષ્ઠત્વ જણાવે છે—

न यस्य कश्चातितितर्ति मायां
यया जनो मुह्यति वेद नार्थम्।
तं निर्जितात्मात्मगुणं परेशं
नमाम भूतेषु समं चरन्तम्॥ ३०

यस्य मायां कश्च कश्चिदपि नातितितर्ति नातिक्रामति। कथंभूताम्। जनो यया मुह्यति। अर्थमात्मस्वरूपं न तु वेद। निर्जित आत्मात्म-शक्तिर्माया च तद्‌गुणाश्च येन तम्॥ ३०॥

जे माया वडे मनुष्य मोह पामे छे, जेने कारणे मनुष्य (पोताना) आत्मस्वरूपने जाणी शकतो नथी तथा जेमनी मायानो कोई पण मनुष्य पार पामी शकतो नथी, ते पोतानी आत्मशक्तिरूप माया तथा तेना गुणो जेमणे जीती लीधा छे तेवा, सर्व प्राणीओमां समानरूपे रहेला परमेश्वरने अमे नमन करीए (छीए). ॥ ३० ॥

जेमनी मायानो '**कः च**' कोई पण मनुष्य '**न-अतितितर्ति**' पार पामी शकतो नथी. केवी मायाने? जेना द्वारा मनुष्य मोह पामे छे. '**अर्थम्**' आत्मस्वरूपने जाणी शकतो नथी. जीती लीधी छे '**आत्मा**' आत्मशक्तिने –मायाने तथा तेना गुणोने जेमणे ते परमात्माने (अमे नमस्कार करीए छीए). ॥ ३० ॥

'अर्थं न वेद' इति यदुक्तं तत्प्रपञ्चयन्नाह—

'**अर्थं न वेद**' (श्लोक-३०) एम जे कह्युं, तेने विस्तारपूर्वक समजावतां कहे छे–

इमे वयं यत्प्रिययैव तन्वा
सत्त्वेन सृष्टा बहिरन्तराविः।
गतिं न सूक्ष्मामृषयश्च विद्महे
कुतोऽसुराद्या इतरप्रधानाः॥ ३१

आ अमे देवो अने ऋषिओ जेमना प्रिय सत्त्वमय शरीरथी ज सर्जाया छीए, तो पण बहार अने अंदर प्रकट होवा छतां जेमना निरुपाधिक स्वरूपने जाणी शकता नथी, तो सत्त्वथी ईतर (रजस्, तमस्) जेमनामां मुख्य छे तेवा असुरो तो परमात्माना स्वरूपने केवी रीते जाणी शके? ॥ ३१ ॥

इमे वयं देवा ऋषयश्च यस्य प्रियया तन्वा सत्त्वेनैव सृष्टा अपि बहिरन्तश्च सत्ता-प्रकाशाभ्यामाविः प्रकटामपि सूक्ष्मां गतिं निरुपाधि-स्वरूपं न विद्मः। इतरप्रधाना रजस्तमोमयाः कुतो विदुः। तं नमामेति पूर्वेणान्वयः॥ ३१ ॥

आ अमे देवो अने ऋषिओ जेमना प्रिय सत्त्वमय शरीरथी ज सर्जाया छीए, तो पण बहार सत्तारूपे अने अंदर प्रकाशरूपे (बा.प्र.–बहार काळरूपे अने अंदर अंतर्यामीरूपे) '**आविः**' प्रकट होवा छतां जेमना '**सूक्ष्मां गतिम्**' निरुपाधिक स्वरूपने जाणी शकता नथी तो '**इतरप्रधानाः**' सत्त्वथी ईतर (रजोगुण अने तमोगुण) जेमनामां मुख्य छे तेवा असुरो वगेरे तो परमात्माना स्वरूपने केवी रीते जाणी शके? तेमने नमीए, एम पूर्वना श्लोक (३०) साथे अन्वय छे. ॥ ३१ ॥

इदानीं वैराजरूपेण स्तुवन्प्रार्थयते। **पादौ महीति** द्वादशभिः।

हवे विराटरूपे स्तुति करतां बार श्लोको द्वारा प्रार्थना करे छे— '**पादौ मही इति।**'

पादौ महीयं स्वकृतैव यस्य
चतुर्विधो यत्र हि भूतसर्गः।
स वै महापूरुष आत्मतन्त्रः
प्रसीदतां ब्रह्म महाविभूतिः॥ ३२

यत्र मह्यां जरायुजादिभूतसर्गः सा मही यस्य पादौ स नः प्रसीदतु। आत्मतन्त्रः पादादिमत्त्वेऽपि न तत्परतन्त्रः। कुतः। ब्रह्म अप्रच्युतरूपः। तत्कुतः। महती विभूतिरैश्वर्यं यस्य सः॥ ३२॥

પોતે જ સર્જેલી આ પૃથ્વી જેમના ચરણો છે કે જ્યાં ચાર પ્રકારની પ્રાણીઓની સૃષ્ટિ છે. તે (સર્વદા) સ્વતંત્ર અને અસ્ખલિત સ્વરૂપવાળા પરમ ઐશ્વર્યવાન મહાપુરુષ અમારી ઉપર પ્રસન્ન થાઓ.॥ ૩૨॥

જે પૃથ્વી ઉપર ઉદ્ભિજ્જ, સ્વેદજ, અંડજ અને જરાયુજ પ્રાણીઓની સૃષ્ટિ છે, તે પૃથ્વી જેમના બંને ચરણો છે તે મહાપુરુષ અમારી ઉપર પ્રસન્ન થાઓ. '**आत्मतन्त्रः**' સ્વતંત્ર, ચરણાદિવાળા હોવા છતાં પણ તેઓ પરતંત્ર નથી. કેમ? '**ब्रह्म**' અસ્ખલિત સ્વરૂપવાળા છે. તે કેવી રીતે? મહાન '**विभूतिः**' ઐશ્વર્ય જેમનું છે તે॥ ૩૨॥

अम्भस्तु यद्रेत उदारवीर्यं
सिध्यन्ति जीवन्त्युत वर्धमानाः।
लोकास्त्रयोऽथाखिललोकपालाः
प्रसीदतां ब्रह्म महाविभूतिः॥ ३३

उदारं वीर्यं शक्तिर्यस्य तदम्भो यस्य रेतः स नः प्रसीदतु। उदारवीर्यतामाह—यतोऽम्भसो लोकादयः सिध्यन्ति जायन्ते॥ ३३॥

જે જળથી ત્રણે લોક અને સર્વ લોકપાલો જન્મે છે, જીવે છે અને વૃદ્ધિ પામે છે, તે પરમ શક્તિશાળી જળ જેમનું વીર્ય છે તે પરમ ઐશ્વર્યવાન પરબ્રહ્મ અમારા ઉપર પ્રસન્ન થાઓ.॥ ૩૩॥

પરમ '**वीर्यम्**' શક્તિ છે જેની તે જળ જેમનું વીર્ય છે તે અમારા પર પ્રસન્ન થાઓ! પરમ શક્તિનું વર્ણન કરે છે— જે જળથી ત્રણે લોક વગેરે '**सिध्यन्ति**' જન્મે છે.॥ ૩૩॥

सोमं मनो यस्य समामनन्ति
दिवौकसां वै बलमन्ध आयुः।
ईशो नगानां प्रजनः प्रजानां
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः॥ ३४

यः सोमो देवानामन्धोऽन्नम्। अत एव बलमायुश्च। नगानां वृक्षाणाम्। प्रकर्षेण जनयति वर्धयतीति प्रजनः। तं यस्य मनः समामनन्ति स नः प्रसीदतु॥ ३४॥

જે ચન્દ્રમા દેવોનું અન્ન હોઈ બળ તથા આયુષ્ય છે, વળી જે ચન્દ્રમા વૃક્ષોના અધિપતિ છે તેમ જ પ્રજાઓને ઉત્પન્ન કરનાર અને વૃદ્ધિ કરનાર છે, તે ચન્દ્રમાને (વેદો) જેમનું મન કહે છે તે મહાઐશ્વર્યવાન પરમાત્મા અમારા પર પ્રસન્ન થાઓ!॥ ૩૪॥

જે ચન્દ્ર દેવોનું '**अन्धः**' અન્ન છે અને તેથી જ તેમનું બળ અને આયુષ્ય છે. '**नगानाम्**' વૃક્ષોના (અધિપતિ છે). ઉત્કૃષ્ટ રીતે ઉત્પન્ન કરે, વૃદ્ધિ કરે તે '**प्रजनः**', વેદો તે ચન્દ્રમાને જેમનું મન કહે છે તે અમારા પર પ્રસન્ન થાઓ.॥ ૩૪॥

अग्निर्मुखं यस्य तु जातवेदा
जातः क्रियाकाण्डनिमित्तजन्मा।
अन्तःसमुद्रेऽनुपचन् स्वधातून्
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः॥ ३५

અગ્નિર્યસ્ય તુ મુખં જાતઃ। કથંભૂતઃ। જાતં વેદો ધનં યસ્માત્। ક્રિયાકાણ્ડં તત્પ્રતિપાદ્યં કર્મ તન્નિમિત્તં જન્મ યસ્ય। અન્તઃસમુદ્રે ઉદરમધ્યે સ્વધાતૂન્ પાકાર્હાનેવાન્નાદીનનુપચન્। પ્રસિદ્ધ-સમુદ્રેઽપિ વાડવરૂપેણોદકાન્યેવાનુપચન્નગ્નિઃ ॥ ૩૫ ॥

अग्निर्यस्य तु मुखं जातः। कथंभूतः। जातं वेदो धनं यस्मात्। क्रियाकाण्डं तत्प्रतिपाद्यं कर्म तन्निमित्तं जन्म यस्य। अन्तःसमुद्रे उदरमध्ये स्वधातून् पाकार्हानेवान्नादीननुपचन्। प्रसिद्ध-समुद्रेऽपि वाडवरूपेणोदकान्येवानुपचन्नग्निः ॥ ३५ ॥

જેનાથી ધન ઉત્પન્ન થયું છે, ક્રિયાકાંડથી સંપન્ન થતા કર્મ નિમિત્તે જેનો જન્મ છે, પ્રાણીઓનાં ઉદરમાં પકવવાને યોગ્ય (અન્નાદિ) ધાતુઓને પચાવતો અને સમુદ્રની અંદર પણ વડવાગ્નિરૂપે જળનું શોષણ કરતો અગ્નિ તો જેમનું મુખ થયો છે, તે પરમ ઐશ્વર્યવાન પરમાત્મા અમારી પર પ્રસન્ન થાઓ! ॥ ૩૫ ॥

અગ્નિ જેમનું મુખ થયો છે. કેવો અગ્નિ? જેનાથી **'वेदः'** ધન ઉત્પન્ન થયું છે. ક્રિયાકાંડ, તેનાથી સંપન્ન થતું કર્મ, તે નિમિત્તે જન્મ છે જેનો. **'अन्तःसमुद्रे'** ઉદરની મધ્યમાં પકવવાને યોગ્ય અન્નાદિ ધાતુઓને પચાવતો (પાચન), લોકમાં પ્રસિદ્ધ એવા સમુદ્રમાં પણ વડવાગ્નિરૂપે જળનું જ શોષણ (પાચન) કરતો અગ્નિ ॥ ૩૫ ॥

यच्चक्षुरासीत् तरणिर्देवयानं
त्रयीमयो ब्रह्मण एष धिष्ण्यम्।
द्वारं च मुक्तेरमृतं च मृत्युः
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः॥ ३६

एष तरणिर्यस्य चक्षुरासीत्। कथंभूतः। देवयानमर्चिरादिमार्गदेवता। त्रयीमयः 'सैषा त्रय्येव विद्या तपति' इति श्रुतेः। ब्रह्मणो धिष्ण्यमुपासनास्थानम्।

'य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषः' इति श्रुतेः। मुक्तेर्द्वारं देवयानत्वात्। अमृतं च पुण्य-लोकत्वात्। मृत्युश्च कालात्मकत्वात्। एवंभूतस्त-रणिर्यस्य चक्षुः स प्रसीदतु॥ ३६ ॥

દેવલોકની પ્રાપ્તિના માર્ગના અધિષ્ઠાતા દેવ (અને તેથી મુક્તિના દ્વારરૂપ), ઋક્, યજુસ્, સામ–એમ ત્રણે વેદમય, પરબ્રહ્મની ઉપાસના કરવાના સ્થાનરૂપ, (પુણ્યલોકને પ્રાપ્ત કરાવનાર હોવાથી) અમૃતરૂપ, (કાળરૂપ હોવાથી) મૃત્યુરૂપ આ સૂર્ય જેમનું ચક્ષુ છે, તે પરમ ઐશ્વર્યવાન પરમાત્મા અમારા પર પ્રસન્ન થાઓ. ॥ ૩૬ ॥

આ સૂર્ય જેમનું ચક્ષુ થયું છે. કેવો સૂર્ય? **'देवयानम्'** અર્ચિષ્ વગેરે દેવલોકની પ્રાપ્તિના માર્ગના અધિષ્ઠાતા દેવ, ત્રણે વેદમય, કારણ કે શ્રુતિ છે: 'તે આ ત્રણ વેદોરૂપી વિદ્યા સૂર્યરૂપે તપે છે.' પરબ્રહ્મની **'धिष्ण्यम्'** ઉપાસના કરવાના સ્થાનરૂપ,

કારણ કે શ્રુતિ છે, 'આદિત્યમાં જે આ હિરણ્મય પુરુષ છે.' (મૈ.ઉપ.૬/૧) દેવલોકની પ્રાપ્તિના માર્ગરૂપ હોવાથી મુક્તિના દ્વારરૂપ, પુણ્યલોકને પ્રાપ્ત કરાવનાર હોવાથી અમૃતરૂપ અને કાળરૂપ હોવાથી મૃત્યુરૂપ, આવો સૂર્ય જેમનું ચક્ષુ છે તે પરમાત્મા અમારા પર પ્રસન્ન થાઓ. ॥ ૩૬ ॥

प्राणादभूद् यस्य चराचराणां
प्राणः सहो बलमोजश्च वायुः।
अन्वास्म सम्राजमिवानुगा वयं
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः॥ ३७

જે વાયુ ચર અને અચર પ્રાણીઓના પ્રાણરૂપ, માનસિક શક્તિરૂપ (**सहस्**), શારીરિક બળરૂપ અને ઈન્દ્રિયોના તેજરૂપ છે તથા જેમ સમ્રાટને તેના સેવકો અનુસરે તેમ જે પ્રાણને અમે (બુદ્ધિ વગેરેના અધિષ્ઠાતા દેવો) અનુસરી રહ્યા છીએ, તે વાયુ જે ભગવાનના પ્રાણથી ઉત્પન્ન થયો છે, તે મહાન ઐશ્વર્યવાન પરમાત્મા અમારા પર પ્રસન્ન થાઓ.॥ ૩૭॥

कथंभूतो वायुः। चराचराणां सहआदिधर्मवान् प्राणः, यं प्राणं वयं बुद्ध्याद्यधिष्ठातारो देवाः सम्राजं भृत्या इवास्माननुसृत्य स्थिताः। एवंभूतो वायुर्यस्य प्राणादभूत्सः॥ ३७॥

કેવો વાયુ? જંગમ અને સ્થાવર પ્રાણીઓનાં સહસ્, બળ અને ઓજસ્ વગેરે ધર્મવાળો પ્રાણ, જે પ્રાણને બુદ્ધિ વગેરેના અધિષ્ઠાતા દેવો એવા '**वयम्**' અમે, સમ્રાટને સેવકો જેમ '**अनु-आस्म**' અનુસરે તેમ, અનુસરીને રહ્યા છીએ. આવો વાયુ જેમના પ્રાણમાંથી ઉત્પન્ન થયો છે, તે મહાન ઐશ્વર્યશાળી પરમાત્મા॥ ૩૭॥

श्रोत्राद् दिशो यस्य हृदश्च खानि
प्रजज्ञिरे खं पुरुषस्य नाभ्याः।
प्राणेन्द्रियात्मासुशरीरकेतं
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः॥ ३८

જે મહાપુરુષના કાનમાંથી દિશાઓ, હૃદયમાંથી શરીરનાં છિદ્રો અને નાભિમાંથી પ્રાણ, ઈન્દ્રિયો, મન, અસુ અને શરીરના આશ્રયરૂપ આકાશ ઉત્પન્ન થયાં છે, તે પરમ ઐશ્વર્યવાન પરમાત્મા અમારા પર પ્રસન્ન થાઓ.॥ ૩૮॥ (અહીં '**प्राणः**' મુખ્ય પાંચ પ્રાણ અને **असवः** પાંચ ગૌણ પ્રાણ)

खानि देहगतानि च्छिद्राणि, प्राणः पञ्चवृत्तिः, इन्द्रियाणि च, आत्मा मनश्च, असवो नागकूर्मादयः, शरीरं च, तेषां केतमाश्रयभूतं खं यस्य पुरुषस्य नाभ्याः प्रजज्ञे सः॥ ३८॥

'**खानि**' દેહમાં રહેલાં છિદ્રો (ઈન્દ્રિયોનાં ગોલકો), '**प्राणः**' પાંચ વૃત્તિ કરનારા (પ્રાણ, અપાન, ઉદાન, સમાન, વ્યાન) પાંચ પ્રાણ, (દસ) ઈન્દ્રિયો, '**आत्मा**' મન, '**असवः**' નાગ, કૂર્મ (કૃકલ, દેવદત્ત, ધનંજય) તથા શરીર– તે સર્વના '**केतम्**' આશ્રયરૂપ આકાશ, જે મહાપુરુષની નાભિમાંથી ઉત્પન્ન થયાં છે, તે પરમાત્મા ॥ ૩૮॥

बलान्महेन्द्रस्त्रिदशाः प्रसादा-
न्मन्योर्गिरीशो धिषणाद् विरिञ्चः।
खेभ्यश्च छन्दांस्यृषयो मेढ्रतः कः
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः॥ ३९

જેમના બળમાંથી ઈન્દ્ર, પ્રસન્નતામાંથી દેવો, ક્રોધમાંથી શંકર, બુદ્ધિમાંથી બ્રહ્મા, ઈન્દ્રિયોમાંથી છંદો અને ઋષિઓ તથા લિંગમાંથી પ્રજાપતિ ઉત્પન્ન થયા છે, તે પરમ ઐશ્વર્યવાન પરમાત્મા અમારા પર પ્રસન્ન થાઓ.॥ ૩૯॥

यस्य बलान्महेन्द्रो जज्ञे। छन्दांसि ऋषयश्च खेभ्यः। कः प्रजापतिः ॥ ३९ ॥

श्रीर्वक्षसः पितरश्छाययाऽऽसन्
धर्मः स्तनादितरः पृष्ठतोऽभूत्।
द्यौर्यस्य शीर्ष्णोऽप्सरसो विहारात्
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४०

इतरोऽधर्मः ॥ ४० ॥

विप्रो मुखं ब्रह्म च यस्य गुह्यं
राजन्य आसीद् भुजयोर्बलं च।
ऊर्वोर्विडोजोऽङ्घ्रिरवेदशूद्रौ
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४१

विड्वैश्यः। ओजो नैपुणं तस्य वृत्तिः अङ्घ्रिः। अङ्घ्रिजावित्यर्थः। अवेदशूद्रौ अवेदो वेदव्यतिरिक्ता शुश्रूषा तद्वृत्तिमान् शूद्रश्च। पाठान्तरं सुगमम् ॥ ४१ ॥

लोभोऽधरात् प्रीतिरुपर्यभूद् द्युति-
र्नस्तः पशव्यः स्पर्शेन कामः।
भ्रुवोर्यमः पक्ष्मभवस्तु कालः
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४२

उपर्युत्तरोष्ठात्। नस्तो नासिकातः। द्युतिः कान्तिः। पशव्यः पशूनां हितः कामः स्पर्शेनाभूत् ॥ ४२ ॥

જેમના બળમાંથી ઈન્દ્ર ઉત્પન્ન થયા, ગાયત્રી વગેરે છંદો અને ઋષિઓ ઈન્દ્રિયોમાંથી ઉત્પન્ન થયા. '**कः**' પ્રજાપતિ ॥ ૩૯ ॥

જેમના વક્ષ:સ્થળમાંથી લક્ષ્મી, છાયામાંથી પિતૃઓ, સ્તનમાંથી ધર્મ, પીઠમાંથી અધર્મ, મસ્તકમાંથી સ્વર્ગ અને વિહારમાંથી અપ્સરાઓ ઉત્પન્ન થયાં, તે પરમ ઐશ્વર્યવાન પરમેશ્વર અમારા પર પ્રસન્ન થાઓ! ॥ ૪૦ ॥

'**इतरः**' ધર્મથી ઈતર અર્થાત્ અધર્મ ॥ ૪૦ ॥

જેમના મુખમાંથી બ્રાહ્મણો તથા રહસ્યમય વેદો ઉત્પન્ન થયા, ભુજાઓમાંથી ક્ષત્રિયો અને બળ, સાથળોમાંથી વૈશ્યો અને (તેમની વૃત્તિ) વ્યાપારકુશળતા તથા ચરણોમાંથી વેદબાહ્ય સાંભળવાની ઈચ્છાવાળા અવેદ અને શૂદ્રો ઉત્પન્ન થયા, તે પરમ ઐશ્વર્યવાન પરમાત્મા અમારા પર પ્રસન્ન થાઓ! ॥ ૪૧ ॥

'**विड्**' વૈશ્ય, '**ओजः**' વ્યાપારકુશળતારૂપ તેની વૃત્તિ, '**अङ्घ्रिः**' નો '**अङ्घ्रिजौ**' ચરણોમાંથી જન્મેલા, એમ અર્થ છે. '**अवेदशूद्रौ**' અવેદ અને શૂદ્ર– વેદથી ભિન્ન, તેને સાંભળવાની ઈચ્છા, તેવી વૃત્તિવાળો તે અવેદ અને શૂદ્ર. પાઠાન્તરમાં, '**ऊर्वोर्विशोऽङ्घ्रेरभवन्स्म शूद्राः**' અર્થ સરળ છે. સાથળમાંથી વૈશ્યો અને ચરણમાંથી શૂદ્રો ઉત્પન્ન થયા. ॥ ૪૧ ॥

જેમના નીચલા હોઠમાંથી લોભ, ઉપલા હોઠમાંથી પ્રીતિ, નાસિકામાંથી કાંતિ, સ્પર્શમાંથી અજ્ઞાનીઓનો પ્રિય કામ, બંને ભ્રૂકુટિમાંથી યમદેવ અને પાંપણોમાંથી કાળ ઉત્પન્ન થયા છે, તે પરમ ઐશ્વર્યવાન પરમાત્મા અમારા પર પ્રસન્ન થાઓ! ॥ ૪૨ ॥

'**उपरि**' ઉપલા હોઠમાંથી (પ્રીતિ), '**नस्तः**' નાસિકામાંથી '**द्युतिः**' કાંતિ, '**पशव्यः**' પશુઓને અર્થાત્ અજ્ઞાનીઓને પ્રિય એવો કામ સ્પર્શમાંથી ઉત્પન્ન થયો. ॥ ૪૨ ॥

द्रव्यं वयः कर्म गुणान् विशेषं
यद्योगमायाविहितान् वदन्ति।
यद् दुर्विभाव्यं प्रबुधापबाधं
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः॥ ४३

દ્રવ્યં ભૂતાનિ। વયઃ કાલમ્। વિશેષં ભૌતિકપ્રપઞ્ચમ્। યદ્યસ્માદ્દુર્વિભાવ્યમ્। કુતઃ। પ્રબુધાપબાધં વિદ્વદ્ભિરપોહ્યમાનમ્। પાઠાન્તરે પ્રબુધાનાં માયેત્યવબોધો યસ્મિન્નિત્યર્થઃ॥ ४३॥

पंच મહાભૂતો, કાળ, કર્મ, ગુણો તથા ભૌતિક પ્રપંચ જે કારણે (માયામય છે, તેથી) જાણવાં અશક્ય છે અને વિદ્વજ્જનો દ્વારા નિષેધ કરાયેલ છે. (આ સર્વ) ભૌતિક પ્રપંચને (વિદ્વાનો) જેમની યોગમાયાથી રચાયેલો કહે છે, તે પરમ ઐશ્વર્યવાન પરમાત્મા અમારા પર પ્રસન્ન થાઓ. ॥ ४३ ॥

'**द्रव्यम्**' પંચ મહાભૂતો, '**वयः**' કાળ, '**विशेषम्**' (કાર્ય-કારણાત્મક) ભૌતિક પ્રપંચ '**यत्**' જેને કારણે જાણવાં અઘરાં છે. શા માટે? '**प्रबुध-अपबाधम्**' વિદ્વજ્જનો દ્વારા '**नेति नेति**' એમ કહીને, એ સર્વનો (ત્યાગ) નિષેધ કરાયેલો છે. '**प्रबुध-अवबोधम्**' પાઠાન્તરમાં, 'આ માયા છે.' એવું જ્ઞાન વિદ્વજ્જનોને પરમાત્માએ રચેલા જે પદાર્થસમૂહ વિષે થાય છે, એમ અર્થ છે. ॥ ४३ ॥

तदेवं सप्रपञ्चमुपवर्ण्य निष्प्रपञ्चमनुवर्णयन् प्रणमति—**नमोऽस्त्विति**।

આ પ્રમાણે સગુણ સ્વરૂપનું વર્ણન કરી હવે નિર્ગુણ સ્વરૂપનું વર્ણન કરતાં પ્રણામ કરે છે— '**नमः अस्तु इति।**'

नमोऽस्तु तस्मा उपशान्तशक्तये
स्वाराज्यलाभप्रतिपूरितात्मने ।
गुणेषु मायारचितेषु वृत्तिभि-
र्न सज्जमानाय नभस्वदूतये॥ ४४

वृत्तिभिर्दर्शनादिभिः। नभस्वान्वायुस्तस्येव ऊतिर्लीला यस्य तस्मै॥ ४४॥

જેમનામાં (સત્ત્વાદિ) ગુણોરૂપ શક્તિઓ નિવૃત્ત થઈ છે, જેમનું સ્વરૂપ પરમાનંદરૂપી સ્વરાજ્યના લાભથી પરિપૂર્ણ છે, જેઓ માયાથી રચાયેલા ગુણોમાં (દર્શનાદિ) વૃત્તિઓ દ્વારા આસક્ત નથી થતા તેવા, વાયુ જેવી લીલાવાળા પરમાત્માને નમસ્કાર. ॥ ४४ ॥

દર્શનાદિ વૃત્તિઓ દ્વારા— '**नभस्वान्**' વાયુ, તેના જેવી '**ऊतिः**' લીલા છે જેમની તેમને (નમસ્કાર). ॥ ४४ ॥

स त्वं नो दर्शयात्मानमस्मत्करणगोचरम्।
प्रपन्नानां दिदृक्षूणां सस्मितं ते मुखाम्बुजम्॥ ४५

सस्मितं मुखाम्बुजं दिदृक्षूणां नोऽस्मच्चक्षुरादिकरणगोचरं यथा भवत्येवं चात्मानं दर्शय॥ ४५॥

તે (ભક્તવત્સલ) આપ આપના મંદહાસ્યયુક્ત મુખકમળનાં દર્શન કરવાની ઈચ્છાવાળા શરણાગત એવા અમને ચક્ષુ વગેરે ઈન્દ્રિયોનો વિષય જે રીતે થાય તે રીતે સ્વસ્વરૂપ દર્શાવો. ॥ ४५ ॥

મંદહાસ્યયુક્ત મુખકમળનાં દર્શન કરવાની ઈચ્છાવાળા અમને ચક્ષુ વગેરે ઈન્દ્રિયોનો વિષય જે રીતે થાય તે જ રીતે સ્વસ્વરૂપ દર્શાવો. ॥ ४५ ॥

भक्तेच्छानुवर्तित्वं च तव बहुशो दृष्टमेवेत्याह—**तैस्तैरिति**।

तैस्तैः स्वेच्छाधृतै रूपैः काले काले स्वयं विभो।
कर्म दुर्विषहं यन्नो भगवांस्तत् करोति हि॥
॥ ४६ ॥

यन्नो दुर्विषहमशक्यं कर्म तद्भगवान्स्वयमेव करोति हि॥ ४६ ॥

न च बहिर्मुखानामिव त्वद्भक्तानामस्माकं त्वय्यर्पितानि पूर्वपुण्यानि विपरीतफलानि भवितुमर्हन्तीत्याह—

क्लेशभूर्यल्पसाराणि कर्माणि विफलानि वा।
देहिनां विषयार्तानां न तथैवार्पितं त्वयि॥ ४७

क्लेशो भूरिर्येषु। अल्पं सारं फलं येषु। यद्वा विफलान्येव सकामानां कर्माणि। त्वय्यर्पितं तु नैव तथा॥ ४७॥

तत्रावैफल्यमुपपादयति—

नावमः कर्मकल्पोऽपि विफलायेश्वरार्पितः।
कल्पते पुरुषस्यैष स ह्यात्मा दयितो हितः॥ ४८

अवमोऽल्पोऽपि कर्मकल्पः कर्माभासोऽपीश्वरार्पितश्चेद्विफलायायासाय न कल्पते। हि यस्मात्स एष ईश्वरः पुरुषस्यात्मा। अत एव दयितो हितश्च। न ह्यात्मनि दयिते हिते चार्पितं निष्फलं स्यात्॥ ४८॥

આપ ભક્તની ઈચ્છાને અનુસરો છો એવું અનેક વાર જોવામાં આવ્યું છે, એમ કહે છે— '**तैः तैः इति**।'

હે વિભુ, (સર્વથા સર્વ કરવા માટે સમર્થ એવા) ભગવાન સમયે સમયે પોતાના ભક્તોની ઈચ્છાથી ધારણ કરેલાં તે તે (મત્સ્ય, કૂર્માદિ) રૂપો વડે પોતે જ અમારાથી કરવા માટે અશક્ય હોય તે કર્મ કરે છે.॥ ૪૬॥

જે અમારાથી કરવા માટે '**दुर्विषहम्**' અશક્ય છે, તે કર્મ ભગવાન સ્વયં જ કરે છે.॥ ૪૬॥

વળી, બહિર્મુખ જનોની જેમ આપના ભક્તો એવા અમને, આપને અર્પણ કરાયેલાં પૂર્વનાં પુણ્યકર્મો વિપરીત ફળવાળાં થવા યોગ્ય નથી, એમ કહે છે–

વિષયોથી પીડાતા શરીરધારીઓનાં કર્મો (સકામ હોવાથી) અત્યંત ક્લેશવાળાં, અલ્પ ફળવાળાં અથવા નિષ્ફળ જ હોય છે, પરંતુ આપને અર્પણ કરેલું નિષ્કામ કર્મ તેવું હોતું નથી.॥ ૪૭॥

જે કર્મોમાં અત્યંત ક્લેશ છે, જેમનામાં અલ્પ '**सारम्**' ફળ છે અથવા જેઓ નિષ્ફળ જ છે તેવાં સકામ કર્મો– આપને અર્પણ કરવામાં આવેલું કર્મ તેવું હોતું નથી.॥ ૪૭॥

તે (ભગવદર્પિત કર્મ)માં સાફલ્ય છે, એમ સિદ્ધ કરે છે—

ભગવાનને સમર્પિત કરવામાં આવેલું નાનામાં નાનું, આભાસરૂપ કર્મ પણ નિષ્ફળ જતું નથી, કારણ કે તે આ ઈશ્વર મનુષ્યનો આત્મા, (પરમ) પ્રિયતમ અને પરમ હિતૈષી છે.॥ ૪૮॥

'**अवमः**' અલ્પ હોય તો પણ, '**कर्मकल्पः**' કર્મનો આભાસ હોય તો પણ જો ઈશ્વરને અર્પણ કરવામાં આવ્યું હોય તો તે કર્મ '**विफलाय**' નિષ્ફળ થતું નથી. '**हि**' કારણ કે તે આ ઈશ્વર મનુષ્યનો આત્મા છે, આથી જ પરમ પ્રિયતમ છે અને (પરમ) હિતૈષી છે. પરમ પ્રિય, હિતૈષી આત્મસ્વરૂપને અર્પણ કરવામાં આવેલું કર્મ નિષ્ફળ ન જાય.॥ ૪૮॥

अनन्तफलत्वमाह—

यथा हि स्कन्धशाखानां तरोर्मूलावसेचनम्।
एवमाराधनं विष्णोः सर्वेषामात्मनश्च हि॥ ४९

यथा हि मूलावसेचनं स्कन्धानां शाखानां च भवति॥ ४९॥

ભગવદ્ભજનથી અનંત ફળરૂપતા કહે છે–

જેમ વૃક્ષના મૂળમાં જળનું સિંચન (કરવાથી) થડ અને ડાળીઓનું પણ સિંચન થઈ જાય છે, એ જ રીતે શ્રીવિષ્ણુની આરાધના સર્વ પ્રાણીઓની અને પોતાની પણ આરાધના છે.॥ ૪૯॥

જેમ (વૃક્ષના) મૂળમાં જળનું સિંચન કરવાથી થડ અને ડાળીઓનું પણ સિંચન થઈ જાય છે.

(આવા અર્થવાળો શ્લોક જુઓ શ્રીમદ્ ભા. ૪/૩૧/૧૪)॥ ૪૯॥

एवं सत्यपि त्वदर्पितकर्मणां त्वद्भक्तानामस्माकं किंनिमित्तमिदं दुःखमिति त्वमेव वेत्सीत्याशयेनाह—**नम इति**।

नमस्तुभ्यमनन्ताय दुर्वितर्क्यात्मकर्मणे।
निर्गुणाय गुणेशाय सत्त्वस्थाय च साम्प्रतम्॥ ५०

दुर्वितर्क्याण्यात्मकर्माणि स्वभावचेष्टितानि यस्य तस्मै॥ ५०॥

આમ હોવા છતાં, આપને કર્મો અર્પણ કરનારા આપના ભક્તો એવા અમને કયા કારણે આ દુઃખ છે એ આપ જ જાણો છો, એ આશયથી કહે છે— **'नमः इति।'**

જેમની સ્વાભાવિક લીલા તર્ક કરવી અઘરી છે, જે ગુણોથી પર હોવા છતાં ગુણોના સ્વામી છે તેમ જ આ સમયે સત્ત્વગુણમાં સ્થિત છે તેવા આપને નમસ્કાર.॥ ૫૦॥

તર્ક કરવી અઘરી **'आत्मकर्माणि'** સ્વાભાવિક લીલા છે જેમની તેમને (નમસ્કાર).॥ ૫૦॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धेऽमृतमथने पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

*****

अथ षष्ठोऽध्यायः

દેવોની દાનવો સાથે સંધિ અને સમુદ્રમંથન માટે ઉદ્યોગ

षष्ठे पुनः स्तुतिर्विष्णावाविर्भूते सुरैः कृता।
तन्मन्त्राच्चासुरैः साकममृतार्थे महोद्यमः॥ १॥

છઠ્ઠા અધ્યાયમાં ભગવાન વિષ્ણુ પ્રકટ થયા ત્યારે દેવો દ્વારા પુનઃ સ્તુતિ કરવામાં આવી અને તે વિષ્ણુ ભગવાનની સલાહથી અસુરો સાથે અમૃત(પ્રાપ્તિ) માટે મહાન ઉદ્યમ (કર્યો એ કથા કહેવાશે).॥ ૧॥

श्रीशुक उवाच

एवं स्तुतः सुरगणैर्भगवान् हरिरीश्वरः।
तेषामाविरभूद् राजन्सहस्रार्कोदयद्युतिः॥ १

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – હે રાજા (પરીક્ષિત), આ પ્રમાણે સ્તુતિ કરવામાં આવેલા, સહસ્ર સૂર્યોના ઉદય સમયે પ્રકાશ થાય તેવા પ્રકાશવાળા, સર્વશક્તિમાન ભગવાન શ્રીહરિ તે દેવોની વચ્ચે પ્રકટ થઈ ગયા.॥ ૧॥

सहस्त्रार्काणामुदये द्युतिरिव द्युतिर्यस्य ॥ १ ॥

तेनैव महसा सर्वे देवाः प्रतिहतेक्षणाः ।
नापश्यन्खं दिशः क्षोणिमात्मानं च कुतो विभुम् ॥ २

महसा तेजसा प्रतिहतानीक्षणानि चक्षूंषि येषाम् ॥ २ ॥

विरिञ्चो भगवान्दृष्ट्वा सह शर्वेण तां तनुम् ।
स्वच्छां मरकतश्यामां कञ्जगर्भारुणेक्षणाम् ॥ ३

तामाविर्भूतां तनुं विरिञ्चो दृष्ट्वा तुष्टावेति पञ्चमेनान्वयः । कञ्जगर्भवदरुणे ईक्षणे यस्य ॥ ३ ॥

तप्तहेमावदातेन लसत्कौशेयवाससा ।
प्रसन्नचारुसर्वाङ्गीं सुमुखीं सुन्दरभ्रुवम् ॥ ४

तप्तहेमवदवदातेन पीतेन लसता कौशेयवाससा युक्ताम् । प्रसन्नानि चारूणि सर्वाण्यङ्गानि यस्याः । शोभनं मुखं यस्याः । सुन्दरे भ्रुवौ यस्याः ॥ ४ ॥

महामणिकिरीटेन केयूराभ्यां च भूषिताम् ।
कर्णाभरणनिर्भातकपोलश्रीमुखाम्बुजाम् ॥ ५

महान्तो मणयो यस्मिंस्तेन किरीटेन । कर्णाभरणे कुण्डले ताभ्यां निर्भातौ यौ कपोलौ ताभ्यां श्रीर्मुखाम्बुजे यस्याः ॥ ५ ॥

काञ्चीकलापवलयहारनूपुरशोभिताम् ।
कौस्तुभाभरणां लक्ष्मीं बिभ्रतीं वनमालिनीम् ॥ ६

હજારો સૂર્યોના ઉદય સમયે પ્રકાશ થાય તેવો પ્રકાશ છે જે શ્રીહરિનો ॥ ૧ ॥

તે તેજથી જ અંજાઈ ગયેલી આંખોવાળા સર્વ દેવો આકાશ, દિશાઓ, પૃથ્વી અને પોતાને પણ ન જોઈ શક્યા, તો વિભુ શ્રીહરિને ક્યાંથી જોઈ શકે ? ॥ ૨ ॥

'महसा' તેજથી અંજાઈ ગયાં છે **'ईक्षणानि'** નેત્રો જેમનાં ॥ ૨ ॥

શંકર ભગવાન સહિત ભગવાન બ્રહ્માજીએ સ્વચ્છ, મરકતમણિ જેવા શ્યામ, કમળના મધ્યભાગ જેવાં રક્ત નેત્રોવાળા તે શ્રીવિગ્રહને જોઈને ॥ ૩ ॥

તે આવિર્ભાવ પામેલા શ્રીવિગ્રહને જોઈને બ્રહ્માજીએ સ્તુતિ કરી, એમ આનાથી પાંચમા શ્લોક (૭) સાથે અન્વય છે. કમળના મધ્યભાગ જેવાં રક્ત નેત્રો છે જેનાં. ॥ ૩ ॥

તપાવેલાં સુવર્ણ સમાન પ્રકાશતા રેશમી પીતાંબરથી યુક્ત, પ્રસન્ન અને મનોહર અંગોવાળા, સુંદર મુખ અને ભ્રૂકુટિવાળા, ॥ ૪ ॥

તપાવેલા સુર્વણ જેવા **'अवदातेन'** પીળા, પ્રકાશતા રેશમી વસ્ત્રથી યુક્ત, પ્રસન્ન અને મનોહર સર્વ અંગો છે જે (શ્રીઅંગ)ની, શોભતું મુખ અને સુંદર ભ્રૂકુટિઓ છે જેની ॥ ૪ ॥

ઉત્તમ મણિઓથી જડેલા મુકુટ અને બે બાજુબંધથી શોભતા, કાનનાં આભૂષણોથી શોભતા ગાલ વડે મુખકમળની શોભાવાળા, ॥ ૫ ॥

શ્રેષ્ઠ મણિઓ જેમાં છે તે મુકુટથી, **'कर्ण-आभरणे'** બંને કુંડળો, તેમનાથી શોભતા જે બે ગાલ છે, તેમનાથી જે શરીરના મુખકમળમાં શોભા છે. ॥ ૫ ॥

કંદોરાના કલાપ (આભૂષણ), કડાં, હાર અને નૂપુરથી શોભતા, (કંઠમાં) કૌસ્તુભમણિના આભૂષણવાળા, (વક્ષ:સ્થળ પર) લક્ષ્મીજીને ધારણ કરતા અને વનમાળાવાળા, ॥ ૬ ॥

कौस्तुभ आभरणं कण्ठे यस्याः। लक्ष्मीं वक्षसि बिभ्रतीम्॥ ६॥

सुदर्शनादिभिः स्वास्त्रैर्मूर्तिमद्भिरुपासिताम्।
तुष्टाव देवप्रवरः सशर्वः पुरुषं परम्।
सर्वामरगणैः साकं सर्वाङ्गैरवनिं गतैः॥ ७

देवप्रवरो ब्रह्मा। सर्वाङ्गैरवनिं गतैः साष्टाङ्गं प्रणतैः॥ ७॥

ब्रह्मोवाच

अजातजन्मस्थितिसंयमाया-
गुणाय निर्वाणसुखार्णवाय।
अणोरणिम्नेऽपरिगण्यधाम्ने
महानुभावाय नमो नमस्ते॥ ८

'अनाविराविरासेयं नाभूताभूदिति ब्रुवन्।
ब्रह्माऽभिप्रैति नित्यत्वविभुत्वे भगवत्तनोः॥'
इति।

श्रीमूर्तेरयमाविर्भाव एव न त्वस्मदादिवज्जन्मादि तवास्तीत्याह—

न जाता जन्मादयो यस्य। कुतः।

अगुणाय अतो निर्वाणसुखस्यार्णवाय। अपारमोक्षसुखरूपायेत्यर्थः। तथाप्यणोरप्यणिम्नेऽतिसूक्ष्माय, दुर्ज्ञानत्वात्। वस्तुतस्त्वपरिगण्यमियत्तातीतं धाम मूर्तिर्यस्य तस्मै। न चैतदसंभावितम्। यतो महानचिन्त्योऽनुभावो यस्य तस्मै॥ ८॥

જેમના કંઠમાં કૌસ્તુભમણિનું આભૂષણ છે, વક્ષ:સ્થળમાં લક્ષ્મીજીને ધારણ કરતા શ્રીવિગ્રહને (જોઈને). ॥ ६ ॥

મૂર્તિમાન થયેલાં, પોતાનાં સુદર્શનાદિ અસ્ત્રોથી સેવાતા (તે શ્રીવિગ્રહને જોઈને) શંકર ભગવાન સહિત દેવપ્રવર બ્રહ્માજીએ સર્વ દેવગણો સાથે પૃથ્વી પર પડી અર્થાત્ સાષ્ટાંગ દંડવત્ પ્રણામ કરી પરમ પુરુષ ભગવાનની સ્તુતિ કરવા માંડી. ॥ ७ ॥

'**देवप्रवरः**' શ્રેષ્ઠ દેવ બ્રહ્માજી '**सर्वाङ्गैः अवनिं गतैः**' સર્વ અંગોથી પૃથ્વી પર પડીને અર્થાત્ સાષ્ટાંગ દંડવત્ પ્રણામ કરીને ॥ ७ ॥

બ્રહ્માજી સ્તુતિ કરે છે — જેમનાં જન્મ, સ્થિતિ અને પ્રલય થતાં નથી તેવા, સત્ત્વાદિ ગુણોથી રહિત, મોક્ષસ્વરૂપ પરમાનંદના મહાસાગર, સૂક્ષ્મથી પણ અતિસૂક્ષ્મ, ઈયત્તા(સીમા)થી અતીત સ્વરૂપવાળા, અચિન્ત્ય પ્રભાવવાળા આપને નમસ્કાર, નમસ્કાર. ॥ ८ ॥

'પૂર્વે આવિર્ભાવ ન પામેલું આ સ્વરૂપ પૂર્વે હતું જ કે જે અત્યારે આવિર્ભાવ પામ્યું છે. પૂર્વે ન હતું અને પછી થયું, એમ નહીં.' એમ કહેતા બ્રહ્માજીને ભગવાનના સ્વરૂપનાં વિભુત્વ અને નિત્યત્વ અભિપ્રેત છે.' ભગવાનના સ્વરૂપનો જ આ આવિર્ભાવ છે, અમારી જેમ આપનાં જન્માદિ થતાં નથી, એમ કહે છે–

જેમનાં જન્માદિ થતાં નથી. કેમ?

'**अगुणाय**' સત્ત્વાદિ ગુણોથી રહિતને (નમસ્કાર), આથી '**निर्वाणसुखार्णवाय**' મોક્ષસુખના સાગરને, અપાર મોક્ષસુખસ્વરૂપને (નમસ્કાર), એમ અર્થ છે. તેમ છતાં સૂક્ષ્મથી પણ અતિસૂક્ષ્મને (નમસ્કાર), કારણ કે એમનું જ્ઞાન થવું દુષ્કર છે. વાસ્તવમાં તો '**अपरिगण्यम्**' ઈયત્તાથી અતીત, અનંત (આટલા માપથી રહિત) '**धाम**' (**धामन्**) સ્વરૂપ છે જેમનું તેમને (નમસ્કાર). અને '**एतत्**' આ અનંત સ્વરૂપ અસંભવિત નથી, કારણ કે '**महान्**' અચિન્ત્ય પ્રભાવ છે જેમનો, તેમને (નમસ્કાર). ॥ ८ ॥

बा.प्र.—'अणोरणिम्ने इति। अणोर्जीवादप्यणिम्ने अन्तर्यामितया तदन्तःप्रविष्टत्वादतिसूक्ष्मायेत्यर्थः।'

बा.प्र.—'नमस्कारद्विरुक्तिर्दुर्लभभगवद्दर्शनलाभेनादरसूचिका।'

तन्मूर्तेः सनातनत्वमपरिमेयत्वं चोपपादयति—**रूपमिति**।

रूपं तवैतत् पुरुषर्षभेज्यं
श्रेयोऽर्थिभिर्वैदिकतान्त्रिकेण ।
योगेन धातः सह नस्त्रिलोकान्
पश्याम्यमुष्मिन्नु ह विश्वमूर्तौ॥ ९

हे पुरुषर्षभ, हे धातः, एतत्तव रूपं वैदिकेन तान्त्रिकेण च योगेनोपायेन श्रेयोर्थिभिः सदेज्यं पूज्यम्। अतो नेदमिदानीमपूर्वं जातमिति भावः।

ननु यूयं देवाः पूज्यत्वेन प्रसिद्धाः, सत्यम्, सर्वेऽप्यत्रैवान्तर्भूता इत्याह—उ अहो। ह स्फुटम्। अमुष्मिंस्त्वयि नोऽस्मांस्त्रीन् लोकांश्च सह पश्यामि। तत्र हेतुः—विश्वं मूर्तौ यस्य। अतस्तवैतद्रूपं परिच्छिन्नमपि न भवतीति भावः॥ ९॥

विश्वमूर्तित्वमेवाह—**त्वयीति**।

त्वय्यग्र आसीत् त्वयि मध्य आसीत्
त्वय्यन्त आसीदिदमात्मतन्त्रे।
त्वमादिरन्तो जगतोऽस्य मध्यं
घटस्य मृत्स्नेव परः परस्मात्॥ १०

જીવથી પણ સૂક્ષ્મતર, કારણ કે અંતર્યામી તરીકે તે જીવની અંદર પ્રવિષ્ટ હોવાથી અતિસૂક્ષ્મને (નમસ્કાર), એમ અર્થ છે.

નમસ્કાર, નમસ્કાર–એમ પુનરુક્તિ ભગવાનનાં દર્શન દુર્લભ હોવાથી આદરસૂચક છે.

તે સ્વરૂપ શાશ્વત અને અપરિમેય (અમાપ, અનંત) છે, એમ સિદ્ધ કરે છે— **'रूपम् इति।'**

હે પુરુષશ્રેષ્ઠ, હે ધાતા, આપનું આ રૂપ કલ્યાણકામીઓ દ્વારા વૈદિક અને તાંત્રિક સાધનથી સદાય ઉપાસના કરવા યોગ્ય છે. અહો! (મને પણ ઉત્પન્ન કરનાર) આપના આ વિશ્વમય સ્વરૂપમાં હું અમને (સમસ્ત દેવગણોને) અને ત્રણેય લોકને એક સાથે જોઉં છું.॥ ૯॥

હે પુરુષશ્રેષ્ઠ, હે ધાતા, આપનું આ રૂપ વૈદિક અને તાંત્રિક **'योगेन'** સાધનથી કલ્યાણકામીઓ દ્વારા સદાય **'ईज्यम्'** ઉપાસના કરવા યોગ્ય છે. આથી આ અર્વાચીન સ્વરૂપ પૂર્વે ન થયું હોય તેવું નથી, એવો ભાવ છે.

શંકા કરે છે કે પૂજ્ય તરીકે તમે દેવો પ્રસિદ્ધ છો! સાચી વાત છે. સર્વ દેવો આ સ્વરૂપની અંદર જ રહેલા છે એમ કહે છે— **'उ'** અહો! **'ह'** સ્પષ્ટતાસૂચક અવ્યય છે. આપના આ સ્વરૂપમાં **'नः'** અમને અને ત્રણેય લોકને એક સાથે જોઉં છું. તે માટેનું કારણ— વિશ્વ જેમના સ્વરૂપમાં છે. આથી આપનું આ સ્વરૂપ અપરિમેય છે, એવો ભાવ છે.॥ ૯॥

વિશ્વમય સ્વરૂપનું જ વર્ણન કરે છે— **'त्वयि इति।'**

આ જગત સર્વ પ્રકારે સ્વતંત્ર એવા આપનામાં પૂર્વે (લીન) હતું, મધ્યમાં (પણ) આપનામાં સ્થિત છે અને અન્તમાં પણ આપનામાં (પુનઃ લીન) થશે. જેમ ઘડાના આદિ, મધ્ય અને અંત માટી છે તેમ આ જગતના આદિ, મધ્ય અને અંત પણ આપ જ છો, (કારણ કે) આપ સર્વથી પર એવી માયાથી પણ પર છો.॥ ૧૦॥

घटस्य मृत्तिका यथा आदिरन्तश्च मध्यं च तथा त्वमस्य जगतः। तत्र हेतुः—परस्मात् प्रधानादपि परः ॥ १० ॥

वंशीधरी—मृत्स्ना प्रशस्ता मृत् 'सस्नौ प्रशंसायाम्' इति सूत्रात्।

मृत्तिकादृष्टान्तेन परिणामं प्राप्तं वारयति—**त्वमिति**।

જેમ ઘડાના આદિ, મધ્ય અને અંત માટી છે, તેમ આ જગતના આદિ, મધ્ય અને અંત આપ જ છો. તે માટેનું કારણ— '**परस्मात्**' સર્વથી પર એવા પ્રધાનથી અર્થાત્ માયાથી પણ આપ પર છો. ॥ ૧૦ ॥

પ્રશંસનીય મૃત્તિકાને મૃત્સ્ના કહે છે. (પા.સૂ. ૫/૪/૪૦) (**मृत्सा=मृत्स्ना**)

માટીના દૃષ્ટાન્તથી (જેમ પરિણામ પામેલી માટી ઘડો બને છે, તેમ પરિણામ પામેલું બ્રહ્મ જ જગત બને છે તે) પ્રાપ્ત થતા પરિણામને નકારે છે— '**त्वम् इति।**' (માટી જેમ રૂપાંતર પામે છે તેમ બ્રહ્મ રૂપાંતર પામતું નથી.)

त्वं माययाऽऽत्माश्रयया स्वयेदं
निर्माय विश्वं तदनुप्रविष्टः।
पश्यन्ति युक्ता मनसा मनीषिणो
गुणव्यवायेऽप्यगुणं विपश्चितः॥ ११

પોતાના જ આશ્રયમાં રહેનારી, પોતાને અધીન એવી સ્વકીય માયાથી આપ આ વિશ્વનું સર્જન કરીને તેમાં પછી પ્રવેશ કરો છો. વિવેકી, શાસ્ત્રજ્ઞ યોગીજનો ગુણોના પરિણામ(રૂપ જગત)માં પણ અગુણ (ત્રિગુણાતીત) એવા આપને જ મનથી નિહાળે છે. ॥ ૧૧ ॥

स्वया स्वाधीनया। अत एव गुणानां व्यवाये परिणामेऽप्यगुणमेव त्वां युक्ताः पश्यन्ति। मनीषिणो विवेकिनः। विपश्चितः शास्त्रज्ञाः ॥ ११ ॥

'**स्वया**' પોતાને અધીન એવી સ્વકીય માયાથી (આપ વિશ્વનું સર્જન કરો છો). આથી જ ગુણોના '**व्यवाये**' પરિણામમાં પણ યોગીજનો અગુણ એવા આપને જ (એકાગ્ર બુદ્ધિથી) નિહાળે છે. '**मनीषिणः**' વિવેકી જનો, '**विपश्चितः**' શાસ્ત્રજ્ઞ જનો ॥ ૧૧ ॥

एतदेव सदृष्टान्तमाह—

(સર્વત્ર અનુપ્રવેશ) આ જ દૃષ્ટાંત સહિત વર્ણવે છે—

यथाग्निमेधस्यमृतं च गोषु
भुव्यन्नमम्बूद्यमने च वृत्तिम्।
योगैर्मनुष्या अधियन्ति हि त्वां
गुणेषु बुद्ध्या कवयो वदन्ति॥ १२

જેમ મનુષ્યો ઉપાયો દ્વારા લાકડામાંથી અગ્નિ, ગાયોમાંથી ઘી, પૃથ્વીમાંથી અન્ન અને જળ તથા ઉદ્યમ કરવાથી આજીવિકા પ્રાપ્ત કરે છે, તેમ વિદ્વાનો પણ બુદ્ધિથી (દેહાદિ) ગુણોમાં આપને પ્રાપ્ત કરે છે અને વર્ણવે છે. ॥ ૧૨ ॥

यथाग्निं काष्ठे मथनेन, अमृतमाज्यं गोषु दोहनादिना, भुव्यन्नं व्रीह्यादि कर्षणादिना, अम्बु च खननेन, उद्यमने पुरुषकारे वाणिज्यादिना।

જેમ મંથન કરવાથી લાકડામાં અગ્નિ, દોહવા વગેરેથી ગાયોમાંથી '**अमृतम्**' ઘી, ખેડવા વગેરેથી પૃથ્વીમાંથી ડાંગર વગેરે અન્ન તથા ખોદવાથી જળ,

वृत्तिं जीविकाम्। यद्वा अम्बु उद्यमने घटीयन्त्रादिनोद्धरणे। योगैरुपायैर्मनुष्या अधियन्ति प्राप्नुवन्ति, तथा कवयस्त्वां बुद्ध्या गुणेष्वधियन्ति वदन्ति च॥ १२॥

વેપાર વગેરે **'उद्यमने'** ઉદ્યમ કરવાથી **'वृत्तिम्'** આજીવિકા અથવા રેંટ વગેરે દ્વારા ઊંચે લાવવાના ઉદ્યમથી જળ– **'योगैः'** ઉપાયોથી મનુષ્યો **'अधियन्ति'** પ્રાપ્ત કરે છે, તેમ વિદ્વાનો આપને બુદ્ધિથી (દેહાદિ) ગુણોમાં પ્રાપ્ત કરે છે અને વર્ણવે છે.॥ ૧૨॥

तं त्वां वयं नाथ समुज्जिहानं
सरोजनाभातिचिरेप्सितार्थम् ।
दृष्ट्वा गता निर्वृतिमद्य सर्वे
गजा दवार्ता इव गाङ्गमम्भः॥ १३

(બ્રહ્માંડાત્મક કમળ જેમની નાભિમાં છે તેવા) હે પદ્મનાભ, હે નાથ, અતિ દીર્ઘકાળથી પ્રાપ્ત કરવા ઈચ્છેલ પરમ પુરુષાર્થરૂપ તે આપને પ્રત્યક્ષ આવિર્ભાવ પામેલા જોઈને, (વનના) દાવાનળથી પીડાયેલા હાથીઓ ગંગાજળ પ્રાપ્ત કરીને પરમ શાંતિ પામે તેમ અમે સર્વે આજે પરમ શાંતિ પામ્યા છીએ.॥ ૧૩॥

हे नाथ सरोजनाभ, अतिचिरादीप्सितमर्थं तं योगैकप्राप्यं त्वां सम्यगुज्जिहानमाविर्भवन्तं प्रत्यक्षतो दृष्ट्वाऽद्य वयं निर्वृतिं गताः। दवार्ता दावाग्निपीडिताः॥ १३॥

હે નાથ, હે કમળનાભ, અતિ દીર્ઘકાળથી પ્રાપ્ત કરવા ઈચ્છેલ પરમ પુરુષાર્થરૂપ, એકમાત્ર યોગથી પ્રાપ્ત કરવા યોગ્ય તે આપને પ્રત્યક્ષ **'उज्जिहानम्'** આવિર્ભાવ પામેલા જોઈને આજે અમે પરમ શાંતિને પ્રાપ્ત થયા છીએ. **'दव-आर्ताः'** દાવાનળના અગ્નિથી પીડાયેલા હાથીઓ।।૧૩।। (**हा** નું વ.કૃ **जिहान, सम्**+**उत्**+**जिहान** = **समुज्जिहान**)

यद्विधेयं तत्कथयेति चेत्तत्राह—

(જો ભગવાન કહે કે) જે કાર્ય સંપન્ન કરવાનું છે તે કહો, તો તે માટે ઉત્તર આપે છે–

स त्वं विधत्स्वाखिललोकपाला
वयं यदर्थास्तव पादमूलम्।
समागतास्ते बहिरन्तरात्मन्
किं वान्यविज्ञाप्यमशेषसाक्षिणः॥ १४

હે અંતરાત્મા, સમગ્ર લોકપાલો એવા અમે જે પ્રયોજનથી આપના ચરણમૂળમાં આવ્યા છીએ, તેને તે (સર્વજ્ઞ એવા) આપ સંપન્ન કરો. સર્વના સાક્ષી આપને બહારથી અન્યો દ્વારા શું નિવેદન કરવા યોગ્ય છે?॥ ૧૪॥

हे अन्तरात्मन्, अशेषसाक्षिणस्ते बहिः किं वान्यैर्विज्ञाप्यमस्ति॥ १४॥

હે અંતરાત્મા, સર્વના સાક્ષી (અંદર અને બહાર) એવા આપને બહારથી અન્યો દ્વારા શું નિવેદન કરવા યોગ્ય છે?॥ ૧૪॥

यूयमेव किंचित्कुरुतेति चेत्तत्राह— **अहमिति।**

જો ભગવાન કહે કે તમે જ કંઈક કરો, તો તે માટે કહે છે— **'अहम् इति।'**

अहं गिरित्रश्च सुरादयो ये
दक्षादयोऽग्नेरिव केतवस्ते।
किं वा विदामेश पृथग्विभाता
विधत्स्व शं नो द्विजदेवमन्त्रम्॥ १५

अग्नेः केतवो विस्फुलिङ्गा इव ते त्वत्तो वयं पृथग्विभाताः सन्तः आत्मनः शं श्रेयः किं वा विद्मः। अतस्त्वमेव द्विजानां देवानां च मन्त्रं विधत्स्व। इदं कुरुतेत्युपायमुपदिशेत्यर्थः॥ १५॥

હે ઈશ! હું, શંકર, દેવો વગેરે (મનુષ્યો, ગંધર્વો,) દક્ષ વગેરે જે (પ્રજાપતિઓ) છીએ, અગ્નિના તણખાઓ જેવા, આપનાથી જુદા જણાતા તે અમે અમારું કલ્યાણ શું જાણીએ? (માટે આપ જ) બ્રાહ્મણો તથા દેવોના કલ્યાણનો ઉપાય કરો.॥ ૧૫॥

અગ્નિના '**केतवः**' તણખા જેવા, '**ते**' આપનાથી અમે જુદા જણાતા હોઈ પોતાનું '**शम्**' કલ્યાણ શું જાણીએ? આથી આપ જ બ્રાહ્મણો અને દેવોના મંત્રનો-કલ્યાણનો ઉપાય કરો. 'આ પ્રમાણે કરો,' એમ ઉપાયનો ઉપદેશ કરો, એમ અર્થ છે.॥ ૧૫॥

श्रीशुक उवाच

एवं विरिञ्चादिभिरीडितस्तद्
विज्ञाय तेषां हृदयं तथैव।
जगाद जीमूतगभीरया गिरा
बद्धाञ्जलीन्संवृतसर्वकारकान् ॥ १६

हृदयं मन्त्र उपदेष्टव्य इत्यभिप्रेतं यथा तथैव विज्ञाय जगाद—संवृतानि नियमितानि सर्वाणि कारकाणीन्द्रियाणि यैस्तान्॥ १६॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – આ પ્રમાણે બ્રહ્માદિ દેવતાઓ દ્વારા સ્તુતિ કરાયેલા ભગવાન, તેમના તે અભિપ્રાયને તે જ પ્રમાણે જાણીને, સર્વ ઈન્દ્રિયોને જેમણે સંયત કરી છે અને બંને હાથ જોડીને ઊભા છે તેમને મેઘગંભીર વાણીથી કહેવા લાગ્યા.॥ ૧૬॥

'**हृदयम्**' (ઉપદેશવા યોગ્ય મન્ત્રણા એટલે કે) 'સલાહ આપો' એમ તેમના અભિપ્રાયને યથાવત્ જાણીને કહ્યું– '**संवृतानि**' સંયત કરી છે સર્વ '**कारकाणि**' ઈન્દ્રિયો જેમણે તેમને॥ ૧૬॥

ईश्वरस्यापि तथैवाभिप्रेतमित्याह—

ઈશ્વરને પણ જેમ દેવોને હતું તેમ જ અભિપ્રેત હતું, એમ કહે છે— '**एकः-एव ईश्वरः।**'

एक एवेश्वरस्तस्मिन्सुरकार्ये सुरेश्वरः।
विहर्तुकामस्तानाह समुद्रोन्मथनादिभिः॥ १७

एक एवेश्वरः समर्थोऽपि॥ १७॥

તે દેવકાર્યમાં દેવોના ઈશ્વર અને (જગતના) એક માત્ર ઈશ્વર જ (સમર્થ) હોવા છતાં સમુદ્રમંથન વગેરે (લીલાઓ) દ્વારા જેમને વિહાર કરવાની ઈચ્છા હતી, તેમણે તે દેવોને કહ્યું.॥ ૧૭॥

(જગતના) એક માત્ર ઈશ્વર સમર્થ હોવા છતાં (સમુદ્રમંથનની લીલા કરી, અન્યથા પરમાત્મા એકલા જ દૈત્યોને હણવા સમર્થ છે.) ॥ ૧૭॥

श्रीभगवानुवाच

हन्त ब्रह्मन्नहो शम्भो हे देवा मम भाषितम्।
शृणुतावहिताः सर्वे श्रेयो वः स्याद् यथा सुराः ॥ १८

हे सुराः, हे देवाः, अन्ये च गन्धर्वादयः ॥ १८ ॥

શ્રીભગવાન (પ્રસન્નતાથી) બોલ્યા – અહો! હે બ્રહ્મા, હે શંકર, હે સુરો, હે દેવો, જે રીતે તમારું કલ્યાણ થાય તેવું મારું કહેવું તમે બધા સાવધાન થઈ શ્રવણ કરો.॥ ૧૮॥

હે સુરો, હે દેવો તથા અન્ય ગંધર્વો વગેરે ॥ ૧૮ ॥

यात दानवदैतेयैस्तावत् सन्धिर्विधीयताम्।
कालेनानुगृहीतैस्तैर्यावद् वो भव आत्मनः ॥ १९

वः आत्मनः स्वतो यावद्भवो वृद्धिर्भवति ॥ १९ ॥

(તમે દૈત્યો પાસે) જાઓ. જ્યાં સુધી તમારો પોતાની જાતે અભ્યુદય થાય ત્યાં સુધી કાળ દ્વારા અનુગૃહીત થયેલા તે દાનવો અને દૈત્યો સાથે સંધિ કરો.॥ ૧૯॥

જ્યાં સુધી તમારો '**आत्मनः**' પોતાની જાતે '**भवः**' અભ્યુદય થાય.॥ ૧૯॥

अरयोऽपि हि सन्धेयाः सति कार्यार्थगौरवे।
अहिमूषकवद् देवा ह्यर्थस्य पदवीं गतैः ॥ २०

अर्थस्य प्रयोजनस्य पदवीं सिद्धिं प्राप्तैः पश्चादहिमूषकवद्वध्यघातकभावेन वर्तितव्यमिति शेषः। यद्वा पेटिकायां निरुद्धोऽहिर्यथा निर्गमद्वार-विधानार्थं प्रथमं मूषकेण संधिं विधत्ते पश्चात्तमेव कदाचिद्भक्षयति तथाऽर्थमार्गप्रवृत्तैः प्रथमं संधेया इत्यर्थः ॥ २० ॥

હે દેવો, કર્તવ્યનું પ્રયોજન મહાન હોય ત્યારે પ્રયોજનની સિદ્ધિ પ્રાપ્ત કરવા સાપ અને ઉંદરની જેમ શત્રુઓ સાથે પણ સંધિ કરવી જોઈએ.॥ ૨૦॥

'**अर्थस्य**' પ્રયોજનની '**पदवीम्**' સિદ્ધિ પ્રાપ્ત કર્યા પછી સાપ અને ઉંદર, હણનાર અને હણાવા યોગ્યની રીતે, વર્તવું જોઈએ એટલું શેષ છે. અથવા કરંડિયામાં પુરાયેલો સાપ જેમ બહાર નીકળવાનો માર્ગ બનાવવા માટે પહેલાં ઉંદર સાથે સંધિ કરે અને પછી તેને જ કદાચ ખાઈ જાય, તેમ પ્રયોજન સિદ્ધ કરવામાં પ્રવૃત્ત થયેલા મનુષ્યો દ્વારા પહેલાં શત્રુઓ સાથે પણ સંધિ કરવી જોઈએ.॥ ૨૦॥

ततस्तैः सह यत्कार्यं तदाह—**अमृतोत्पादन इति**।

ત્યાર પછી તે દૈત્યો સાથે જે કરવા યોગ્ય છે તે જણાવે છે— '**अमृत-उत्पादने इति।**'

अमृतोत्पादने यत्नः क्रियतामविलम्बितम्।
यस्य पीतस्य वै जन्तुर्मृत्युग्रस्तोऽमरो भवेत् ॥ २१

यस्यामृतस्य पीतस्य सतः ॥ २१ ॥

(તે દૈત્યો સાથે મળી) તમે વિલમ્બ કર્યા વિના અમૃત ઉત્પન્ન કરવાનો પ્રયત્ન કરો, કે જે અમૃત પીવામાં આવે ત્યારે મૃત્યુથી ઘેરાયેલો જીવ અમર થાય છે.॥ ૨૧॥

જે અમૃત પીવામાં આવે ત્યારે ॥ ૨૧ ॥

क्षिप्त्वा क्षीरोदधौ सर्वा वीरुत्तृणलतौषधीः ।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम् ॥ २२
सहायेन मया देवा निर्मन्थध्वमतन्द्रिताः ।
क्लेशभाजो भविष्यन्ति दैत्या यूयं फलग्रहाः ॥ २३

હે દેવો, ક્ષીરસાગરમાં બધા પ્રકારની ઝાડી, ઘાસ, લતાઓ અને ઔષધીઓ નાખી, મંદરાચલનો રવૈયો કરી, વાસુકિ નાગને નેતરું કરી, સાવધાન થઈ, મારી સહાયથી (સમુદ્રનું) મંથન કરો. દૈત્યો ક્લેશના ભાગી બનશે, ફળ મેળવનારા તમે થશો. ॥ ૨૨ ॥ ૨૩ ॥

नेत्रं रज्जुम् ॥ २२ ॥

ननु तर्हि तेऽप्यमृतपानेनामराः स्युस्तत्राह— क्लेशभाज इति ॥ २३ ॥

'नेत्रम्' નેતરું, દોરડું ॥ ૨૨ ॥

શંકા કરે છે કે (દૈત્યો સમુદ્રમંથન કરશે) તો તેઓ પણ અમૃતપાન કરવાથી અમર બની જશે. તે માટે કહે છે— **'कलेशभाजः इति ।'** ॥ ૨૩ ॥

बलिभिः सहकारिभिः साध्या अर्थास्तदनुसरणं विना न सिध्यन्तीति कृत्वा सामादिकमुपदिशति—**यूयमिति** द्वाभ्याम् ।

બળવાન સહકારીઓ દ્વારા સાધવા યોગ્ય કાર્યો તેમને અનુસર્યા વિના સિદ્ધ નથી થતાં, એવી નીતિ રાખીને શાંતિ વગેરેનો બે શ્લોકો વડે ઉપદેશ આપે છે— **'यूयम् इति ।'**

यूयं तदनुमोदध्वं यदिच्छन्त्यसुराः सुराः ।
न संरम्भेण सिध्यन्ति सर्वेऽर्थाः सान्त्वया यथा ॥ २४

હે દેવો, અસુરો જે ઇચ્છે તેને તમે અનુમોદન આપજો. સર્વ કાર્યો જેવાં શાંતિથી થાય છે તેવાં ક્રોધથી સિદ્ધ નથી થતાં. ॥ ૨૪ ॥

हे सुराः, संरम्भेण संभ्रमेण। सान्त्वया साममार्गेण यथा सिध्यन्ति ॥ २४ ॥

હે દેવો, **'संरम्भेण'** ક્રોધથી (કાર્યો સિદ્ધ થતાં નથી.), જેવાં **'सान्त्वया'** શાંતિના માર્ગે સિદ્ધ થાય છે. ॥ ૨૪ ॥

(**सान्त्वया** રૂપમાં સ્ત્રીલિંગ આર્ષ છે.)

न भेतव्यं कालकूटाद् विषाज्जलधिसम्भवात् ।
लोभः कार्यो न वो जातु रोषः कामस्तु वस्तुषु ॥
॥ २५ ॥

સમુદ્રમાંથી ઉત્પન્ન થયેલા કાળકૂટ વિષથી ભય પામશો નહીં. (મંથન કરવાથી) ઉત્પન્ન થયેલી વસ્તુઓ માટે તમારે લોભ, ક્રોધ કે લાલચ કરવા યોગ્ય નથી. ॥ ૨૫ ॥

वस्तुषु मथनादुत्पन्नेषु ॥ २५ ॥

મંથન કરવાથી ઉત્પન્ન થયેલી વસ્તુઓ માટે ॥ ૨૫ ॥

(**'जातु'** અવ્યય પાદપૂર્તિ માટે છે.)

श्रीशुक उवाच

इति देवान्समादिश्य भगवान्पुरुषोत्तमः ।
तेषामन्तर्दधे राजन्स्वच्छन्दगतिरीश्वरः ॥ २६

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – હે રાજા પરીક્ષિત, પોતાની ઈચ્છાનુસાર ગતિવાળા સર્વેશ્વર ભગવાન પુરુષોત્તમ દેવોને આ પ્રમાણે આદેશ આપી, તેમની વચ્ચેથી અંતર્ધાન થઈ ગયા. ॥ ૨૬ ॥

सुरास्तु बलिमुपेयुरुपजग्मुः ॥ २६ ॥

અને દેવો બલિરાજાની **'उपेयुः'** પાસે ગયા. ॥ ૨૬ ॥

अथ तस्मै भगवते नमस्कृत्य पितामहः ।
भवश्च जग्मतुः स्वं स्वं धामोपेयुर्बलिं सुराः ॥ २७ ॥ २७ ॥

ત્યાર પછી પિતામહ બ્રહ્મા અને શંકર તે ભગવાનને નમસ્કાર કરી પોતપોતાના ધામમાં ગયા અને દેવો બલિરાજાની પાસે ગયા. ॥ ૨૭ ॥ ૨૭ ॥

दृष्ट्वाऽरीनप्यसंयत्तान् जातक्षोभान्स्वनायकान् ।
न्यषेधद् दैत्यराट् श्लोक्यः सन्धिविग्रहकालवित् ॥ ॥ २८ ॥

શત્રુ દેવોને યુદ્ધ માટે તૈયાર ન હોવા છતાં (આવેલા) જોઈને સંધિ અને વિગ્રહના અવસરને જાણનાર અને પવિત્ર કીર્તિવાળા દૈત્યરાજ બલિએ (યુદ્ધ માટે) ખળભળી ઊઠેલા પોતાના સેનાપિતઓને અટકાવ્યા. ॥ ૨૮ ॥

असंयत्तानपि दृष्ट्वा। श्लोक्यः कीर्त्यर्हः ॥ २८ ॥

યુદ્ધ માટે તૈયાર ન હતા તેમ છતાં પણ તેવા દેવોને આવેલા જોઈને, **'श्लोक्यः'** કીર્તિને યોગ્ય ॥ ૨૮ ॥

ते वैरोचनिमासीनं गुप्तं चासुरयूथपैः ।
श्रिया परमया जुष्टं जिताशेषमुपागमन् ॥ २९

અસુર સેનાપતિઓ દ્વારા રક્ષાયેલા, ઉત્તમ રાજ્યલક્ષ્મીથી સેવાયેલા, જેના દ્વારા સંપૂર્ણ લોકો જીતી લેવામાં આવ્યા છે તેવા (ત્યાં) બેઠેલા વિરોચનપુત્ર બલિ પાસે તે દેવો ગયા. ॥ ૨૯ ॥

वैरोचनिं बलिम्। जितमशेषं त्रैलोक्यं येन तम् ॥ २९ ॥

'वैरोचनिम्' વિરોચનપુત્ર બલિ પાસે, જીતી લેવામાં આવ્યું છે **'अशेषम्'** સંપૂર્ણ ત્રિલોકનું રાજ્ય જેના દ્વારા તે બલિની પાસે ॥ ૨૯ ॥

महेन्द्रः श्लक्ष्णया वाचा सान्त्वयित्वा महामतिः ।
अभ्यभाषत तत् सर्वं शिक्षितं पुरुषोत्तमात् ॥ ३०

મહાબુદ્ધિશાળી ઈન્દ્રે મધુર વાણીથી સમજાવીને પુરુષોત્તમ ભગવાન પાસેથી શીખેલું તે (અમૃત-મંથનાદિ) સર્વ (તેમને) જણાવ્યું. ॥ ૩૦ ॥

तत्सर्वममृतोन्मथनादि ॥ ३० ॥

'तत्-सर्वम्' તે અમૃતમંથન વગેરે સર્વ ॥ ૩૦ ॥

तदरोचत दैत्यस्य तत्रान्ये येऽसुराधिपाः ।
शम्बरोऽरिष्टनेमिश्च ये च त्रिपुरवासिनः ॥ ३१

દૈત્યરાજ બલિને તથા શંબર, અરિષ્ટનેમિ, (પૌલોમ, કાલેય વગેરે) ત્યાં જે બીજા અસુર રાજાઓ હતા તેમને તથા ત્રિપુરવાસી દાનવોને પણ તે પસંદ પડ્યું. ॥ ૩૧ ॥

तत्र ये अन्ये चासुराधिपाः पौलोमकालेयादयः शम्बरादयश्च तेभ्यश्चारोचत ॥ ३१ ॥

ત્યાં જે બીજા પૌલોમ, કાલેય વગેરે અસુર રાજાઓ હતા તેમને પણ તે પસંદ પડ્યું. ॥ ૩૧ ॥

ततो देवासुराः कृत्वा संविदं कृतसौहृदाः ।
उद्यमं परमं चक्रुरमृतार्थे परन्तप ॥ ३२

(કામક્રોધાદિ) શત્રુઓને જીતી લેનાર હે રાજા, ત્યાર પછી દેવો અને દાનવોએ (આમ થશે તો આમ કરીશું–એવો) ઠરાવ કરી પરસ્પર મિત્રતા કરી અમૃત માટે મહાન ઉદ્યમ કર્યો ॥ ૩૨ ॥

संविदं समयम् ॥ ३२ ॥

'संविदम्' નિયમરૂપ નીતિ, ઠરાવ, કરાર. ॥ ૩૨ ॥

ततस्ते मन्दरगिरिमोजसोत्पाट्य दुर्मदाः ।
नदन्त उदधिं निन्युः शक्ताः परिघबाहवः ॥ ३३

ત્યાર પછી શક્તિશાળી, ગર્વિષ્ઠ અને પરિઘો જેવા બાહુઓવાળા, ગર્જના કરતા, તે દેવો અને અસુરો બળપૂર્વક મંદર ગિરિને ઉખાડી સમુદ્ર તરફ લઈ જવા માંડ્યા. ॥ ૩૩ ॥

परिघा इव बाहवो येषाम् ॥ ३३ ॥

પરિઘો જેવા બાહુઓ છે જેમના ॥ ૩૩ ॥

दूरभारोद्वहश्रान्ताः शक्रवैरोचनादयः ।
अपारयन्तस्तं वोढुं विवशा विजहुः पथि ॥ ३४

॥ ३४ ॥

દૂર સુધી (પર્વતનો) ભાર ઉપાડીને થાકી ગયેલા ઈન્દ્ર, બલિ વગેરે તેને ઉપાડવાને અશક્તિમાન હોઈ વિવશ થઈ તેમણે માર્ગમાં તે પર્વતને પડતો મૂક્યો. ॥ ૩૪ ॥ ૩૪ ॥

निपतन्स गिरिस्तत्र बहूनमरदानवान् ।
चूर्णयामास महता भारेण कनकाचलः ॥ ३५

॥ ३५ ॥

ત્યાં નીચે પડતા તે સુવર્ણગિરિએ અતિ ભારથી અનેક દેવો અને દાનવોને ચગદી નાખ્યા. ॥ ૩૫ ॥ ૩૫ ॥

तांस्तथा भग्नमनसो भग्नबाहूरुकन्धरान् ।
विज्ञाय भगवांस्तत्र बभूव गरुडध्वजः ॥ ३६

॥ ३६ ॥

જેમનાં બાહુ, સાથળ અને ડોક ભાંગી ગયા હતાં એવા તેમને ભગ્ન હૃદયવાળા જાણી, ગરુડધ્વજ ભગવાન ત્યાં પ્રકટ થયા. ॥ ૩૬ ॥ ૩૬ ॥

गिरिपातविनिष्पिष्टान्विलोक्यामरदानवान् ।
ईक्षया जीवयामास निर्जरान् निर्व्रणान्यथा ॥ ३७

॥ ३७ ॥

પર્વતના પડવાથી ચગદાઈ ગયેલા દેવો અને દાનવોને જોઈને દેવોને કૃપાદૃષ્ટિથી નિહાળીને (ભગવાને) જેવા હતા તેવા ઘારહિત કરીને જીવિત કર્યા. ॥ ૩૭ ॥ ૩૭ ॥

દેવોને કૃપાદૃષ્ટિથી ઘા વિનાના હોય તેવા કર્યા અને જીવાડ્યા પરંતુ અસુરોને ન જીવાડ્યા, એમ સમજવું જોઈએ.

गिरिं चारोप्य गरुडे हस्तेनैकेन लीलया ।
आरुह्य प्रययावब्धिं सुरासुरगणैर्वृतः ॥ ३८

॥ ३८ ॥

લીલાપૂર્વક એક હાથથી પર્વતને ગરુડજી ઉપર મૂકી, પોતે પણ આરુઢ થઈ દેવગણો અને અસુરગણો વચ્ચે વીંટળાયેલા ભગવાન ક્ષીરસાગર ઉપર ગયા. ॥ ૩૮ ॥ ૩૮ ॥

अवरोप्य गिरिं स्कन्धात् सुपर्णः पततां वरः ।
ययौ जलान्त उत्सृज्य हरिणा स विसर्जितः ॥ ३९

विसर्जितः प्रस्थापितः। सुपर्णे तत्र स्थिते वासुकेरागमनायोगादिति भावः ॥ ३९ ॥

પક્ષીરાજ એવા તે સુપર્ણ ગરુડજી પર્વતને કાંધેથી ઉતારીને જળની અંદર મૂકી, શ્રીહરિ દ્વારા પ્રસ્થાન માટે આજ્ઞા પામીને ત્યાંથી ગયા. ॥ ૩૯ ॥

'**विसर्जितः**' આજ્ઞા પામેલા ગરુડજી– (ભગવાને ગરુડજીને જવાની આજ્ઞા આપી, કારણ કે) જ્યારે સુપર્ણ ગરુડજી ત્યાં હોય ત્યારે વાસુકિ નાગનું આગમન થઈ શકે નહીં, એવો ભાવ છે. ॥ ૩૯ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धेऽमृतमथने मन्दराचलानयनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

*****

अथ सप्तमोऽध्यायः

સમુદ્રમંથનનો આરંભ અને ભગવાન શંકરનું વિષપાન

सप्तमे मथनोद्भूतविषभीत्याखिलैर्जनैः ।
स्तुतः सन्कृपया रुद्रः पपौ विषमितीर्यते ॥ १ ॥

સમુદ્રમંથનથી ઉત્પન્ન થયેલા વિષના ભયથી સર્વ જનો દ્વારા જેમની સ્તુતિ કરવામાં આવી તે ભગવાન રુદ્રે કૃપાપૂર્વક વિષપાન કર્યું, તે (કથા) સાતમા અધ્યાયમાં કહેવામાં આવે છે. ॥ ૧ ॥

श्रीशुक उवाच

ते नागराजमामन्त्र्य फलभागेन वासुकिम् ।
परिवीय गिरौ तस्मिन् नेत्रमब्धिं मुदान्विताः ॥ १
आरेभिरे सुसंयत्ता अमृतार्थं कुरूद्वह ।
हरिः पुरस्ताज्जगृहे पूर्वं देवास्ततोऽभवन् ॥ २

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – હે કુરુવંશી પરીક્ષિત, હર્ષાન્વિત થયેલા તે દેવો અને દાનવોએ અમૃતરૂપ ફળમાં (તમારો પણ ભાગ પડશે–એમ) ભાગ આપવા દ્વારા નાગરાજ વાસુકિ સાથે સમજૂતી કરી, તેને નેતરા તરીકે તે મંદરગિરિ પર વીંટી અમૃત માટે ઉદ્યત થઈ (સમુદ્રને મથવાનો) આરંભ કર્યો. (તે સમયે) શ્રીહરિએ સૌ પ્રથમ નાગને આગળથી (મુખથી) પકડ્યો એટલે દેવોએ (પણ) મુખ પકડ્યું. ॥ ૧ ॥ ૨ ॥

फलभागेन तवाप्यमृते भागो भविष्यती–त्यामन्त्र्य संमन्त्र्य वासुकिं नेत्रं गिरौ परिवीय संवेष्ट्याब्धिं मथितुमारेभिरे ॥ १ ॥

'**फलभागेन**' અમૃતરૂપ ફળમાં તમારો પણ ભાગ પડશે એમ મંત્રણા કરીને '**आमन्त्र्य**' સમજૂતી કરીને, વાસુકિને નેતરા તરીકે પર્વત પર '**परिवीय**' વીંટીને સમુદ્રને મથવાનો આરંભ કર્યો. ॥ ૧ ॥

वासुकेर्मुखं तीव्रं दैत्यान् ग्राहयितुमेव पूर्वं हरिः पुरस्तान्मुखे जगृहे। ततोऽभवन्मुखं जगृहुः ॥ २ ॥

વાસુકિ નાગનું (ઝેર ઓકતું) પ્રચંડ મુખ દૈત્યોને પકડાવવા માટે જ શ્રીહરિએ સૌ પ્રથમ '**पुरस्तात्**' મુખથી (આગળથી) પકડ્યો. ત્યાર પછી '**अभवन्**' (દેવો તેવા) થયા. (દેવોએ મુખ પકડ્યું.) ॥ ૨ ॥

तन्नैच्छन् दैत्यपतयो महापुरुषचेष्टितम् ।
न गृह्णीमो वयं पुच्छमहेरङ्गममङ्गलम् ॥ ३
॥ ३ ॥

स्वाध्यायश्रुतसम्पन्नाः प्रख्याता जन्मकर्मभिः ।
इति तूष्णीं स्थितान्दैत्यान् विलोक्य पुरुषोत्तमः ।
स्मयमानो विसृज्याग्रं पुच्छं जग्राह सामरः ॥ ४
॥ ४ ॥

कृतस्थानविभागास्त एवं कश्यपनन्दनाः ।
ममन्थुः परमायत्ता अमृतार्थं पयोनिधिम् ॥ ५

मथ्यमानेऽर्णवे सोऽद्रिरनाधारो ह्यपोऽविशत् ।
ध्रियमाणोऽपि बलिभिर्गौरवात् पाण्डुनन्दन ॥ ६

ते सुनिर्विण्णमनसः परिम्लानमुखश्रियः ।
आसन् स्वपौरुषे नष्टे दैवेनातिबलीयसा ॥ ७

कृतो धारणे स्थानविभागो यैः ॥ ५ ॥ ६ ॥

दैवेन हेतुना स्वपौरुषे नष्टे सति ॥ ७ ॥

विलोक्य विघ्नेशविधिं तदेश्वरो
दुरन्तवीर्योऽवितथाभिसन्धिः ।
कृत्वा वपुः काच्छपमद्भुतं महत्
प्रविश्य तोयं गिरिमुज्जहार * ॥ ८

विघ्नेशस्य विधिं तेन रचितं विघ्नम् । अवितथः सत्योऽभिसंधिः संकल्पो यस्य ॥ ८ ॥

अन्वि.—कच्छपजातेरेव जलाधोगतवस्तूद्धारणं स्वभावः ।

દૈત્યોના સેનાપતિઓને મહાપુરુષ શ્રીહરિની એ ચેષ્ટા પસંદ ન પડી. 'વેદાધ્યયન અને શાસ્ત્રજ્ઞાનથી સંપન્ન, જન્મ અને કર્મથી પ્રખ્યાત એવા અમે સાપનું અમંગળ અંગ પૂંછડું નહીં પકડીએ' એવા અભિપ્રાયથી ચૂપ થઈને ઊભેલા દૈત્યોને જોઈને સ્મિત કરતા, દેવો સહિત ભગવાન પુરુષોત્તમે મુખ છોડીને પૂંછડું પકડ્યું. આમ જેમણે પોતાનાં સ્થાનના ભાગ પાડ્યા તેવા કશ્યપકુમારો અત્યંત ઉદ્યમ કરનારા થઈ અમૃત માટે સમુદ્રનું મંથન કરવા લાગ્યા. હે પાંડુનંદન, સમુદ્રમંથન થવા માંડ્યું ત્યારે આધારરહિત એવો તે મંદરાચળ અતિબળવાન (દૈત્યો અને દેવો) દ્વારા પકડવામાં આવ્યો હોવા છતાં અત્યંત ભારવાળો હોવાથી પાણીમાં પ્રવેશવા માંડ્યો. મહાબળવાન દૈવ દ્વારા પોતાનો પુરુષાર્થ નષ્ટ થતાં તે દેવો અને દાનવો અત્યંત ઉદાસ મનવાળા અને ઝંખવાઈ ગયેલી મુખની શોભાવાળા થઈ ગયા. ॥ ૩ ॥ ૪ ॥ ૫ ॥ ૬ ॥ ૭ ॥

(નાગનું અંગ) ધારણ કરવામાં જેમના દ્વારા સ્થાનના વિભાગ કરવામાં આવ્યા છે. ॥ ૫ ॥ ૬ ॥

દૈવને કારણે પોતાનો પુરુષાર્થ નષ્ટ થતાં ॥ ૭ ॥

તે સમયે અનંત શક્તિવાળા, સત્યસંકલ્પ ઈશ્વર શ્રીહરિએ વિઘ્નેશ્વરનું વિઘ્ન જોઈને કાચબાનું મહાઅદ્ભુત શરીર ધારણ કરી, જળમાં પ્રવેશી મંદરગિરિને ઉપર લાવી દીધો. ॥ ૮ ॥

'**विघ्नेशस्य विधिम्**' વિઘ્નેશ્વર દ્વારા રચાયેલા વિઘ્નને, '**अवितथः**' સત્ય '**अभिसन्धिः**' સંકલ્પ છે જેમનો ॥ ૮ ॥

જળમાં નીચે ગયેલી વસ્તુને ઉપર લાવવાનો સ્વભાવ માત્ર કાચબાની જાતિનો જ હોય છે.

* (उद् + हृ નું પરોક્ષ ભૂ.કા. उज्जहार)

वंशीधरी—विघ्नेशस्य गणेशस्य विधिम् 'कार्यारम्भे गणेशश्च पूजनीयः प्रयत्नतः।' इत्यादिशास्त्रविहितपूजनलक्षणविधिं तदकरणात्तेन गणेशेन रचितं कृतम्।

વિઘ્નેશ્વર ગણેશજીના વિઘ્નને– 'કાર્યના આરંભમાં ગણેશજી પ્રયત્નપૂર્વક પૂજવા યોગ્ય છે.' વગેરે શાસ્ત્રમાં કહેલી પૂજાના લક્ષણવાળી વિધિ, તે ન કરવાથી ગણેશજી દ્વારા કરવામાં આવેલા વિઘ્નને

तमुत्थितं वीक्ष्य कुलाचलं पुनः
समुत्थिता निर्मथितुं सुरासुराः।
दधार पृष्ठेन स लक्षयोजन-
प्रस्तारिणा द्वीप इवापरो महान्॥ ९

તે કુલાચલ મંદરગિરિને ઉપર આવેલો જોઈને સુરો અને અસુરો ફરી પાછા સમુદ્રમંથન કરવા માટે ઊભા થઈ ગયા. બીજો મોટો દ્વીપ હોય તેવી એક લાખ યોજન વિસ્તારવાળી પોતાની પીઠ ઉપર તે કૂર્મરૂપ ભગવાન શ્રીહરિએ તે મંદરગિરિને ધારણ કરી રાખ્યો.॥ ૯॥

लक्षयोजनः प्रस्तारो विस्तारोऽस्यास्तीति तथा तेन पृष्ठेन॥ ९॥

એક લાખ યોજન '**प्रस्तारः**' વિસ્તાર છે આનો તેવી તે પીઠ ઉપર॥ ૯॥

सुरासुरेन्द्रैर्भुजवीर्यवेपितं
परिभ्रमन्तं गिरिमङ्ग पृष्ठतः।
बिभ्रत् तदावर्तनमादिकच्छपो
मेनेऽङ्गकण्डूयनमप्रमेयः * ॥ १०

હે પ્રિય પરીક્ષિત, શ્રેષ્ઠ સુરો અને અસુરો દ્વારા તેમના બાહુબળથી ધ્રુજાવવામાં આવતા અને પરિભ્રમણ કરતા મંદરગિરિને પીઠ ઉપર ધારણ કરતા અપ્રમેય* એવા આદિ કચ્છપ ભગવાન તે મંદરગિરિના ભ્રમણને શરીર ઉપરની ચળરૂપ માનતા હતા.॥ ૧૦॥

यस्य गिरेरावर्तनं भ्रमणमङ्गकण्डूयनं मेने ॥ १० ॥

જે મંદરગિરિના '**आवर्तनम्**' ભ્રમણને શરીર ઉપરની ચળરૂપ માનતા હતા.॥ ૧૦॥

तथाऽसुरानाविशदासुरेण
रूपेण तेषां बलवीर्यमीरयन्।
उद्दीपयन् देवगणांश्च विष्णु-
र्दैवेन नागेन्द्रमबोधरूपः॥ ११

(ત્યાર પછી મંથન કરવામાં તે બધાના સામર્થ્યનો અભાવ જોઈને) તેમનામાં બળ અને પ્રભાવ પ્રવર્તાવતા અને ઉદ્દીપિત કરતા ભગવાન વિષ્ણુ અસુરોમાં આસુરીરૂપે, દેવગણોમાં દૈવરૂપે અને નાગેન્દ્ર વાસુકિમાં અબોધરૂપ થઈ નિદ્રારૂપે પ્રવેશ્યા.॥ ૧૧ ॥

आसुरेणासुराकारेण दैवेन देवाकारेण रूपेणाविशत्॥ ११ ॥

'**आसुरेण**' આસુરીરૂપે, '**दैवेन**' દૈવરૂપે પ્રવેશ્યા. (**अन्वि.—'तेन तस्य कर्षणजन्यपीडानुभवो न स्यात्।'** તેનાથી તે નાગને ખેંચવાથી થતી પીડાનો અનુભવ ન થાય.)॥ ૧૧ ॥

* પ્રમાણ દ્વારા ન જાણી શકાય તે અપ્રમેય.

उपर्यगेन्द्रं गिरिराडिवान्य
आक्रम्य हस्तेन सहस्रबाहुः।
तस्थौ दिवि ब्रह्मभवेन्द्रमुख्यै-
***रभिष्टुवद्भिः सुमनोऽभिवृष्टः॥ १२**
॥ १२ ॥

આકાશમાં સ્તુતિ કરતા બ્રહ્મા, ભવ અને ઈન્દ્ર જેમનામાં મુખ્ય છે તેમના દ્વારા જેમના ઉપર સુમનોની અભિવૃષ્ટિ થઈ રહી હતી, તેવા હજાર હાથવાળા ભગવાન બીજા મહાન પર્વત જેવા થઈ એક હાથથી શ્રેષ્ઠ મંદરાચળને દબાવી તેની ઉપર સ્થિત થઈ ગયા.॥૧૨॥૧૨॥

उपर्यधश्चात्मनि गोत्रनेत्रयोः
परेण ते प्राविशता समेधिताः।
ममन्थुरब्धिं तरसा मदोत्कटा
महाद्रिणा क्षोभितनक्रचक्रम्॥ १३

આત્મનિ देवदैत्यमध्ये। गोत्रे दार्ढ्यरूपेण, नेत्रे अभेद्याबोधरूपेण, परेण हरिणा क्षोभितं नक्राणां चक्रं समूहो यस्मिन्॥ १३॥

પર્વતમાં (દઢતારૂપે) અને નેતરારૂપી સર્પમાં (નિદ્રારૂપે), ઉપર (સહસ્રબાહુસ્વરૂપે) અને નીચે (કચ્છપરૂપે), (દેવો અને દૈત્યોના) શરીરમાં (દૈવી અને આસુરી શક્તિરૂપે) પ્રવેશેલા પરમાત્મા દ્વારા ખૂબ વધી ગયેલા બળવાળા તથા મદોન્મત્ત થયેલા તે દેવો અને દૈત્યો મહાન મંદરગિરિ(ના ભ્રમણ)થી ક્ષોભ પામેલા મગરમચ્છોના સમૂહવાળા સાગરને બળપૂર્વક મથવા લાગ્યા.॥૧૩॥

દેવો અને દૈત્યોના શરીરમાં, **'गोत्रे'** પર્વતમાં દઢતારૂપે, **'नेत्रे'** વાસુકિ નાગરૂપ નેતરામાં અભેદ્ય બેભાન અવસ્થારૂપે, **'परेण'** પરમાત્મા શ્રીહરિ દ્વારા– ક્ષોભ પામ્યો છે મગરમચ્છોનો સમૂહ જેમાં ॥૧૩॥

अहीन्द्रसाहस्रकठोरदृङ्मुख-
श्वासाग्निधूमाहतवर्चसोऽसुराः ।
पौलोमकालेयबलील्वलादयो
दवाग्निदग्धाः सरला इवाभवन्॥ १४

दृशश्च मुखानि च श्वासाश्च। अहीन्द्रस्य साहस्रमपरिमिताः कठोरा ये दृगादयस्तेभ्यो निर्गताभ्यामग्निधूमाभ्यामाहतं वर्चो येषां ते सरला द्रुमविशेषाः॥ १४॥

નાગેન્દ્ર વાસુકિનાં હજારો કઠોર નેત્ર, મુખ અને શ્વાસમાંથી નીકળતા અગ્નિ અને ધૂમાડાથી જેમની કાન્તિ નષ્ટ થઈ છે તે પૌલોમ, કાલેય, બલિ, ઈલ્વલ વગેરે અસુરો દાવાનળથી બળી ગયેલાં દેવદારનાં વૃક્ષો જેવા થઈ ગયા.॥૧૪॥

નેત્રો, મુખો અને શ્વાસો– નાગેન્દ્ર વાસુકિનાં **'साहस्रम्'** અગણ્ય, કઠોર જે નેત્રાદિ હતાં, તેમાંથી નીકળતા અગ્નિ અને ધૂમાડાથી નષ્ટ થઈ છે કાંતિ જેમની તે અસુરો **'सरलाः'** દેવદાર નામનાં વિશિષ્ટ વૃક્ષો (જેવા થઈ ગયા).॥૧૪॥

* (अभि+स्तु નું વ.કૃ. अभिष्टुवत्), * તિમિ નામની વિશાળકાય માછલીને ગળી જાય તે તિમિંગિલ.

देवांश्च तच्छ्वासशिखाहतप्रभान्
धूम्राम्बरस्त्रग्वरकञ्चुकाननान् ।
समभ्यवर्षन्भगवद्वशा घना
ववुः समुद्रोर्म्युपगूढवायवः ॥ १५

देवांस्तु भगवद्वशा घनाः समभ्यवर्षन्। समुद्रोर्मिभिरुपगूढा वायवश्च शीतला ववुर्वान्ति स्म। कथंभूतान्। तस्याहीन्द्रस्य श्वासशिखाभिर्हता प्रभा येषाम्। धूम्राण्यम्बरादीनि येषाम्॥ १५ ॥

તે વાસુકિ નાગના નિઃશ્વાસની ઝાળથી હણાઈ ગયેલી કાંતિવાળા અને ધૂમાડિયાં વસ્ત્રો, પુષ્પમાળા, ઉત્તમ કવચ અને મુખવાળા દેવો ઉપર ભગવાનને વશ રહેનારાં વાદળાં વરસ્યાં અને સમુદ્રના તરંગો સાથે ભળેલા વાયુઓ (શીતળ) વાવા લાગ્યા.॥ ૧૫॥

દેવો ઉપર તો ભગવાનને વશ રહેનારાં વાદળાં વરસ્યાં. સમુદ્રના તરંગો સાથે ભળેલા વાયુઓ પણ શીતળ '**ववुः**' વાવા લાગ્યા. કેવા દેવો ઉપર? તે નાગેન્દ્રના નિઃશ્વાસની ઝાળથી હણાઈ છે કાંતિ જેમની, (તથા) ધૂમાડિયાં વસ્ત્રો વગેરે છે જેમનાં (તેવા દેવો ઉપર) ॥ ૧૫॥

मथ्यमानात् तथा सिन्धोर्देवासुरवरूथपैः ।
यदा सुधा न जायेत निर्ममन्थाजितः स्वयम्॥ १६

॥ १६ ॥

દેવો અને અસુરોના સેનાપતિઓ દ્વારા તે રીતે મંથન કરવામાં આવેલા સમુદ્રમાંથી જ્યારે અમૃત ઉત્પન્ન ન થયું, ત્યારે સ્વયં ભગવાન અજિત સમુદ્રમંથન કરવા લાગ્યા.॥ ૧૬॥॥ ૧૬॥

मेघश्यामः कनकपरिधिः कर्णविद्योतविद्यु-
न्मूर्ध्नि भ्राजद्विलुलितकचः स्त्रग्धरो रक्तनेत्रः ।
जैत्रैर्दोर्भिर्जगदभयदैर्दन्दशूकं गृहीत्वा
मथ्नन् मथ्ना प्रतिगिरिरिवाशोभताथो धृताद्रिः ॥ १७

ત્યાર પછી મેઘ સમાન નીલ, (શરીર પર) સોનેરી પીતાંબરવાળા, કર્ણોમાં ચમકતી કુંડળરૂપી વીજળીવાળા, મસ્તક ઉપર શોભતા લહેરાતા કેશવાળા, રક્ત નેત્રવાળા, (કૂર્મરૂપે) પર્વત ધારણ કરનારા, જગતને અભય આપનારા (વિશ્વ-) વિજયી ભુજદંડો વડે સર્પને પકડીને (મંદરાચળના) રવૈયા વડે (સમુદ્રને) મથતા વનમાળી ભગવાન પરમ પુરુષોત્તમ (બીજા નીલમણિમય) સામા પર્વતરાજ જેવા શોભતા હતા.॥ ૧૭॥ (છંદ– મંદાક્રાન્તા)

धृतोऽद्रिर्येन स धृताद्रिर्भगवान्परम-पुरुषोऽनन्तरमशोभतेत्यन्वयः ।

(કૂર્મરૂપે) ધારણ કર્યો છે પર્વત જેમણે તે '**धृत–अद्रिः**' ભગવાન પરમ પુરુષોત્તમ મંથનક્રિયા પછી શોભતા હતા, એમ અન્વય છે.

कथंभूतः। कनकपरिधिः पीतवासाः। कर्णयोर्विद्योतमाना विद्युत्कुण्डललक्षणा यस्य। तथा मूर्ध्नि भ्राजन्तो विलुलिताः कचा यस्य स तथा। जैत्रैर्जिष्णुभिः। दन्दशूकं सर्पम्। प्रतिगिरिः प्रतिद्वन्द्वी पर्वतः॥ १७॥

કેવા ભગવાન? '**कनकपरिधिः**' સોનેરી પીતાંબરવાળા, બંને કર્ણોમાં ઝળહળતી કુંડળરૂપી વીજળીવાળા, તે જ પ્રમાણે મસ્તક ઉપર શોભતા, લહેરાતા કેશ છે જેમના તેવા ભગવાન, '**जैत्रैः**' (વિશ્વ)વિજયી (ભુજદંડો) વડે '**दन्दशूकम्**' સર્પને (પકડીને) '**प्रतिगिरिः**' બીજા સામા પર્વતરાજ॥ ૧૭॥

निर्मथ्यमानादुदधेरभूद्विषं
महोल्बणं हालहलाह्वमग्रतः।
सम्भ्रान्तमीनोन्मकराहिकच्छपात्
तिमिद्विपग्राहतिमिङ्गिलाकुलात् ॥ १८

હાલાહલમિત્યાહ્વા नाम यस्य। संभ्रान्ता मीना उद्गता मकरादयश्च यस्मिंस्तस्मात् तिम्यादिभिराकुलाच्च ॥ १८ ॥

ભયભીત થયેલાં માછલાં, ઊંચે ગતિ કરનાર મગરમચ્છ, સાપ, કાચબા જેમાં છે તેવા અને તિમિ, સમુદ્રી હાથી, ગ્રાહ, તિમિ (નામની માછલી)ને ગળી જનારા તિમિંગિલો* વડે જે ખળભળી ઊઠ્યો છે તેવા મંથન કરાયેલા સમુદ્રમાંથી સૌ પ્રથમ અત્યંત તીવ્ર હળાહળ નામનું વિષ નીકળ્યું. ॥ ૧૮ ॥

'હળાહળ' એવું **'आह्वा'** નામ છે જેનું. ભયભીત માછલાં તથા ઉપર આવતા મગરો (મગરમચ્છો) જેમાં છે તે સમુદ્રમાંથી અને તિમિ વગેરે દ્વારા જે ખળભળી ઊઠ્યો છે તે સમુદ્રમાંથી ॥ ૧૮ ॥

तदुग्रवेगं दिशि दिश्युपर्यधो
विसर्पदुत्सर्पदसह्यमप्रति ।
भीताः प्रजा दुद्रुवुरङ्ग सेश्वरा
अरक्ष्यमाणाः शरणं सदाशिवम्॥ १९

तद्विषं अप्रति अप्रतिमं प्रतिक्रियाशून्यमिति वा। कुतः। उग्रो वेगो यस्य। तदेवाह—दिशि दिशीति। यद्वा उग्रा वेगा रोमाञ्चस्वेदादयो यस्मात्। अत एवासह्यं विलोक्य भीता अन्येन केनाप्य-रक्ष्यमाणाः सदाशिवं शरणं दुद्रुवुर्जग्मुः ॥ १९ ॥

હે રાજા (પરીક્ષિત), અસહ્ય વેગવાળા, જેનો પ્રતિકાર ન થઈ શકે તેવા અને સર્વ દિશાઓમાં ઉપર ઊડતા અને નીચે ફેલાતા તે અસહ્ય વિષ(ના પ્રભાવ)થી ભયભીત થયેલા અને અન્ય કોઈના પણ દ્વારા ન રક્ષાયેલા પ્રજાજનો લોકપાલો સહિત ભગવાન સદાશિવને શરણે ગયા. ॥ ૧૯ ॥

'तत्' તે વિષ **'अप्रति'** અપ્રતિમ અર્થાત્ અદ્ભુત અથવા પ્રતિક્રિયારહિત હતું. કેમ? જેનો વેગ અસહ્ય હતો. તે જ વર્ણવે છે— **'दिशि दिशि इति।'** અથવા અસહ્ય વેગો અર્થાત્ રૂંવાડાં ઊભા થવાં, પ્રસ્વેદ થવો વગેરે જેને કારણે થાય. આથી જ અસહ્ય (પ્રભાવી) જોઈને ભયભીત થયેલા અને અન્ય કોઈના પણ દ્વારા ન રક્ષાયેલા તે સૌ સદાશિવને શરણે **'दुद्रुवुः'** ગયા. ॥ ૧૯ ॥

विलोक्य तं देववरं त्रिलोक्या
भवाय देव्याभिमतं मुनीनाम्।
आसीनमद्रावपवर्गहेतो-
स्तपो जुषाणं स्तुतिभिः प्रणेमुः ॥ २०

ત્રણેય લોકના કલ્યાણ માટે ભવાની દેવી સાથે કૈલાસાદ્રિ ઉપર વિરાજમાન, મુનિઓને સમ્મત અને તેમના જ મોક્ષ માટે તપનું સેવન કરતા તે શ્રેષ્ઠ દેવ મહાદેવજીને જોઈને (પ્રજાપતિઓએ) સ્તુતિઓ દ્વારા તેમને પ્રસન્ન કર્યા અને પ્રણામ કર્યા. ॥ ૨૦ ॥

त्रिलोक्या उद्भवाय देव्या सहाद्रौ कैलासे आसीनं, तथापि मुनीनामभिमतं तेषामेवापवर्गाय तपोजुषाणम्॥ २०॥

ત્રણેય લોકના કલ્યાણ માટે ભવાની દેવી સાથે **'अद्रौ'** કૈલાસ પર્વત ઉપર વિરાજમાન મહાદેવજીને, તેમ છતાં મુનિઓને સમ્મત એવા મહાદેવજીને, તેમના (મુનિઓના) જ મોક્ષ માટે તપનું સેવન કરતા એવા તેમને ॥ ૨૦ ॥

प्रजापतय ऊचुः

देवदेव महादेव भूतात्मन् भूतभावन।
त्राहि नः शरणापन्नांस्त्रैलोक्यदहनाद् विषात्॥ २१

પ્રજાપતિઓ બોલ્યા – દેવોના આરાધ્ય દેવ હે મહાદેવ, પ્રાણીઓના આત્મા અને પ્રાણીઓના રક્ષક એવા હે દેવ, ત્રિલોકને બાળી નાખતા વિષથી, શરણે આવેલા એવા અમારું રક્ષણ કરો! ॥ ૨૧ ॥

'निर्गुणं सगुणं चैव शिवं हरिपराक्रमैः।
स्तुवन्तस्तु प्रजेशाना नामन्यन्ताऽन्तरं तयोः॥'
इति॥ २१॥

'શ્રીહરિનાં પરાક્રમો દ્વારા નિર્ગુણ તથા સગુણ શિવની સ્તુતિ કરતા પ્રજાપતિઓ તો તે શિવ અને વિષ્ણુ– બંનેનાં નામમાં અંતર માનતા ન હતા.' ॥ ૨૧ ॥

त्वमेकः सर्वजगत ईश्वरो बन्धमोक्षयोः।
तं त्वामर्चन्ति कुशलाः प्रपन्नार्तिहरं गुरुम्॥ २२

સંપૂર્ણ જગતનાં બંધન અને મોક્ષના એક આપ જ ઈશ્વર છો. (માટે) શરણે આવેલાઓનાં દુઃખોને હરનાર તે ગુરુ એવા આપનું વિવેકી જનો પૂજન કરે છે. ॥ ૨૨ ॥॥ ૨૨ ॥

नन्वेवंभूतो विष्णुरिति प्रसिद्धं तत्राहुः— **गुणमय्येति**।

કોઈ આક્ષેપ કરે કે જગતનાં બંધન અને મોક્ષના કર્તા તો વિષ્ણુ છે, એ પ્રસિદ્ધ છે. તે માટે ઉત્તર આપે છે— **'गुणमय्या इति।'**

गुणमय्या स्वशक्त्यास्य सर्गस्थित्यप्ययान्विभो।
धत्से यदा स्वदृग् भूमन्ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम्॥
॥ २३॥

હે સ્વતઃસિદ્ધજ્ઞાનવાન મહાન વિભુ, પોતાની ત્રિગુણાત્મક શક્તિથી આપ જ્યારે આ જગતનાં સર્જન, સ્થિતિ અને સંહાર કરો છો, ત્યારે આપ બ્રહ્મા, વિષ્ણુ, શિવ નામો ધારણ કરો છો. ॥ ૨૩ ॥

अस्य जगतो यदा सर्गादीन्धत्से तदा हे भूमन्, स्वदृक् स्वतःसिद्धज्ञानस्त्वं ब्रह्मादिसंज्ञां धत्से॥ २३॥

આપ જ્યારે આ જગતનાં સર્જન વગેરે ધારણ કરો છો ત્યારે હે મહાન્, **'स्वदृक्'** સ્વતઃસિદ્ધજ્ઞાનવાળા આપ બ્રહ્માદિ નામ ધારણ કરો છો. ॥ ૨૩ ॥

वंशीधरी—त्वमेव तत्तद्रूपेण प्रतीयसे न त्वत्तो विष्णुर्भिन्नोऽस्तीति भावः।

આપ જ તે તે સ્વરૂપે પ્રતીત થાઓ છો. વિષ્ણુ આપનાથી (વસ્તુતઃ) ભિન્ન નથી, એવો ભાવ છે.

तत्र हेतुः—**त्वं ब्रह्मेति**।

વિષ્ણુથી ભિન્ન હોવાનું કારણ— **'त्वं ब्रह्म इति।'**

त्वं ब्रह्म परमं गुह्यं सदसद्भावभावनः।
नानाशक्तिभिराभातस्त्वमात्मा जगदीश्वरः॥ २४

આપ પરમ રહસ્યમય બ્રહ્મતત્ત્વ છો. દેવ, પશુ-પક્ષી વગેરે રૂપોને ઉત્પન્ન કરો છો. આત્મા એવા આપ જુદી જુદી શક્તિઓ દ્વારા જગતરૂપે ભાસો છો, (તેથી) આપ જગતના ઈશ્વર છો. ॥ ૨૪॥

(કાર્યભેદ હોવાને કારણે જ નામભેદ છે, વસ્તુતઃ ભેદ નથી. શિવજીની નિર્વિશેષરૂપે સ્તુતિ કરે છે.)

सदसतो भावान्देवतिर्यगादिरूपान्भावयतीति तथा। सृज्यं तु त्वद्व्यतिरिक्तं नास्तीत्याहुः— आत्मैव त्वं नानाशक्तिभिर्जगद्रूपेणाभातस्तस्मादीश्वरः॥ २४॥

'सत्-असतः (भाव) भावान्' દેવ, (મનુષ્ય), પશુ-પક્ષી વગેરે રૂપોને ઉત્પન્ન કરો છો, તેમ જ સર્જન કરવા યોગ્ય કોઈ પણ જીવ આપનાથી અલગ નથી, એમ તેઓ કહે છે. આત્મા એવા આપ જુદી જુદી શક્તિઓ દ્વારા જગતરૂપે ભાસો છો, તેથી ઈશ્વર છો. ॥ ૨૪॥

स्वतःसिद्धज्ञानत्वमुपपादयन्तो जगदात्मना आभानप्रकारमाहुः—

ભગવાનનું સ્વતઃસિદ્ધજ્ઞાનપણું સિદ્ધ કરતાં જગતના આત્મારૂપે જાણવાનો પ્રકાર વર્ણવે છે.

त्वं शब्दयोनिर्जगदादिरात्मा
प्राणेन्द्रियद्रव्यगुणस्वभावः ।
कालः क्रतुः सत्यमृतं च धर्म-
स्त्वय्यक्षरं यत् त्रिवृदामनन्ति॥ २५

આપ વેદનું ઉત્પત્તિસ્થાન છો, મહત્તત્ત્વ છો, પ્રાણ, ઈન્દ્રિય અને પંચમહાભૂતોના મૂળ કારણરૂપ રાજસાદિ ત્રિવિધ ગુણો જેના છે તે અહંકાર, સ્વભાવાદિ પણ આપ જ છો. કાળ, ક્રતુ(રૂપ સંકલ્પ), સત્ય, ઋત, ધર્મ તથા જે ત્રિગુણાત્મક માયા છે તે આપનામાં જ રહેલી છે, એમ વિદ્વાનો કહે છે. ॥ ૨૫॥

त्वं शब्दस्य वेदस्य योनिः। अतः स्वतःसिद्धज्ञानः। त्वं जगदादिर्महत्तत्त्वम्। आत्मा चाहंकारः। कथंभूतः। प्राणेन्द्रियद्रव्याणां कारणभूता गुणा यस्य। राजसादित्रिविध इत्यर्थः। स्वभावादयश्च त्वमेव।

આપ **'शब्दस्य'** વેદનું ઉત્પત્તિસ્થાન છો. આથી આપ સ્વતઃસિદ્ધજ્ઞાનરૂપ છો. આપ **'जगत्-आदिः'** મહત્તત્ત્વ છો તથા **'आत्मा'** અહંકાર છો. કેવો અહંકાર? પ્રાણ, ઈન્દ્રિય અને પાંચ મહાભૂતોના મૂળ કારણરૂપ ગુણો છે જે અહંકારના. રાજસાદિ ત્રિવિધ ગુણો, એમ અર્થ છે અને સ્વભાવાદિ પણ આપ જ છો.

क्रतुः संकल्पः सत्यमृतं चेति यो धर्मः स त्वम्। महदादिस्वरूपत्वे हेतुः—त्रिवृत् त्रिगुणात्मकं यदक्षरं प्रधानं त्वयि त्वदाश्रयं

'क्रतुः' સંકલ્પ, **'सत्यम्'** યથાર્થ ભાષણ અને **'ऋतम्'** મધુર ભાષણ તથા જે યજ્ઞાદિરૂપ ધર્મ છે તે પણ આપ છો. મહત્તત્ત્વરૂપ હોવાનું કારણ— **'त्रिवृत्'** ત્રિગુણાત્મક જે **'अक्षरम्'** પ્રધાન અથવા પ્રકૃતિ કે

तदामनन्ति। यद्वा एवंभूते त्वयि त्रिवृदक्षरं प्रणवं प्रकाशकमाहुरित्यर्थः ॥ २५ ॥

માયા છે તેને આપનો જ આશ્રય છે, એમ (વિદ્વાનો) કહે છે. અથવા આવા આપનામાં **'त्रिवृत्-अक्षरम्' अ, उ, म्** એમ ત્રણ અક્ષરવાળો પ્રણવરૂપ પ્રકાશક રહેલો છે, એમ વિદ્વાનો કહે છે, એમ અર્થ છે. ॥ ૨૫ ॥ (ત્રિવૃત્ અહંકારનો એક અર્થ પ્રકૃતિ કર્યો અને બીજો અર્થ પ્રણવ કર્યો.)

वंशीधरी—'अस्य वै महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस' इत्यादिः। (बृह. २/४/१०)

'આ જે ઋગ્વેદ, યજુર્વેદ, સામવેદ, અથર્વવેદ ઈત્યાદિ (મંત્રસમુદાય) છે, તે આ મહદ્ભૂત પરમાત્માના શ્વાસ-પ્રશ્વાસ છે.' (બૃહદા.ઉપ.૨/૪/૧૦)

अग्निर्मुखं तेऽखिलदेवतात्मा
क्षितिं विदुर्लोकभवाङ्घ्रिपङ्कजम्।
कालं गतिं तेऽखिलदेवतात्मनो
दिशश्च कर्णौ रसनं जलेशम्॥ २६

સર્વદેવસ્વરૂપ અગ્નિ આપનું મુખ છે. હે લોકભવ, (વિદ્વજ્જનો) પૃથ્વીને આપનું ચરણકમળ, કાળને અખિલદેવસ્વરૂપ એવા આપની ગતિ, દિશાઓને કર્ણો અને જળના દેવ વરુણને આપની રસનેન્દ્રિય તરીકે જાણે છે. ॥ ૨૬ ॥

अखिलदेवतात्मा, 'अग्निः सर्वा देवताः' इति श्रुतेः। सोऽग्निस्ते मुखम्। हे लोकभव।

'अखिलदेवतात्मा' 'અગ્નિ સર્વદેવરૂપ છે.' (ગણેશોત્તરતાપિન્યુપનિષત્ ૪/૪) એમ શ્રુતિ છે. સર્વદેવરૂપ તે અગ્નિ આપનું મુખ છે. સર્વ લોક જેમનામાંથી ઉત્પન્ન થયા છે તેવા **'हे लोकभव'** હે મહાદેવ!

द्वितीयान्तेषु विदुरित्यस्य संबन्धः ॥ २६ ॥

क्षितिम्, अङ्घ्रिपङ्कजम्, कालम्, गतिम्, दिशः, कर्णौ, जलेशम्, वरुणम्, रसनेन्द्रियम्— આ સર્વ દ્વિતીયા વિભક્તિના અંતવાળાં પદોમાં **'विदुः'** એમ આનો સંબંધ છે. ॥ ૨૬ ॥

नाभिर्नभस्ते श्वसनं नभस्वान्
सूर्यश्च चक्षूंषि जलं स्म रेतः।
परावरात्माश्रयणं तवात्मा
सोमो मनो द्यौर्भगवन् शिरस्ते॥ २७

હે ભગવાન, આકાશ આપની નાભિ છે, વાયુ આપનો શ્વાસ છે, સૂર્ય આપનાં નેત્રો છે, જળ આપનું વીર્ય છે, ઊંચ, નીચ સર્વ જીવોનો આશ્રય આપનો (અહંકારરૂપ) આત્મા છે, ચન્દ્ર આપનું મન છે અને સ્વર્ગ આપનું મસ્તક છે. ॥ ૨૭ ॥

परे अवरे च ये आत्मानो जीवास्तेषामाश्रयस्तवात्माऽहंकारः ॥ २७ ॥

ઊંચ અને નીચ જે **'आत्मानः'** જીવો છે તેમનો આશ્રય આપનો **'आत्मा'** અહંકાર છે. ॥ ૨૭ ॥

कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थिसङ्घा
रोमाणि सर्वौषधिवीरुधस्ते।
छन्दांसि साक्षात् तव सप्त धातव-
स्त्रयीमयात्मन् हृदयं सर्वधर्मः॥ २८

त्रयीमयात्मन्वेदत्रयमूर्ते॥ २८॥

मुखानि पञ्चोपनिषदस्तवेश
यैस्त्रिंशदष्टोत्तरमन्त्रवर्गः ।
यत् तच्छिवाख्यं परमार्थतत्त्वं
देव स्वयंज्योतिरवस्थितिस्ते॥ २९

पञ्चोपनिषदस्तत्पुरुषाघोरसद्योजातवामदेवे-शानरूपा मन्त्राः।

यैर्मुखैरष्टोत्तरत्रिंशन्मन्त्राणां वर्गः तेषामेव मन्त्राणां पदच्छेदेनाष्टोत्तरत्रिंशत्कलात्मका मन्त्रा इत्यर्थः। अवस्थितिरुपरतावस्था॥ २९॥

હે વેદમૂર્તિ, સમુદ્ર આપનું ઉદર છે, પર્વતો અસ્થિસમૂહો છે, સર્વ પ્રકારની ઔષધિઓ અને લતાઓ આપનાં રૂંવાડાં છે, સાક્ષાત્ (ગાયત્રી વગેરે) છંદો આપની સાત ધાતુઓ છે અને સર્વ ધર્મ આપનું હૃદય છે.॥ ૨૮॥

'त्रयीमयात्मन्' ત્રણ વેદસ્વરૂપ વેદમૂર્તિ ભગવાન સદાશિવ॥ ૨૮॥

હે ઈશ, (તત્પુરુષાદિ) પાંચ ઉપનિષદો આપનાં (તત્પુરુષ, અઘોર, સદ્યોજાત, વામદેવ અને ઈશાન નામનાં) પાંચ મુખ છે, જેમના (પદવિભાગ કરવા)થી આડત્રીસ મંત્રોનો સમૂહ થાય છે. હે દેવ, (સમસ્ત પ્રપંચથી) ઉપરત (થઈ પોતાના સ્વરૂપમાં સ્થિત) થવાની જે અવસ્થા છે, તે જ શાસ્ત્રપ્રસિદ્ધ શિવ નામનું સ્વયંપ્રકાશ પરમાર્થતત્ત્વ છે.॥ ૨૯॥

'पञ्चोपनिषदः' પાંચ ઉપનિષદો– પાંચ બ્રહ્મમંત્ર નામે ઓળખાતા– **'तत्पुरुषः'** મહાદેવજીના તત્પુરુષ નામક પૂર્વરૂપના ધ્યાન માટેનો મંત્ર, **'अघोरः'** અઘોરેશ્વર અથવા દક્ષિણામૂર્તિ નામક દક્ષિણમુખસ્વરૂપ મહાદેવજીને નમસ્કાર માટેનો મંત્ર, **'सद्योजातः'** નામના પશ્ચિમ મુખરૂપ મહાદેવજીને નમસ્કાર માટેનો મંત્ર, **'वामदेवः'** નામના ઉત્તરમુખ-સ્વરૂપ મહાદેવજીને નમસ્કાર માટેનો મંત્ર, **'ईशानः'** ઈશાન નામક ઊર્ધ્વમુખ મહાદેવજીની પ્રાર્થના અને ધ્યાન માટેનો મંત્ર છે.

જે મુખો દ્વારા *આડત્રીસ મંત્રોનો સમૂહ થાય છે, તે જ મંત્રોનો પદવિભાગ કરવાથી આડત્રીસ કળારૂપ મંત્રો થાય છે, એમ અર્થ છે. **'अवस्थितिः'** પોતાના સ્વરૂપમાં સમસ્ત પ્રપંચથી ઉપરત થઈ સ્થિત થવાની અવસ્થા.॥ ૨૯॥

***वंशीधरी**—अष्टोत्तरत्रिंशन्मन्त्राः—

[**पूर्ववक्त्रमन्त्रः**]

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥ १॥

[**कलाः**]

१ तत्पुरुषाय विद्महे शान्त्यै

२ महादेवाय धीमहि विद्यायै

३ तन्नो रुद्रः प्रतिष्ठायै

४ प्रचोदयात् धृत्यै

[**दक्षिणवक्त्रमन्त्रः**]

ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः। सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥ २॥

[**कलाः**]

५ अघोरेभ्यस्तमा.

६ अथ घोरेभ्यो मोहा.

७ घोरेभ्यो रक्षा.

८ घोरतरेभ्यो निद्रा.

९ सर्वेभ्यः सर्वव्याध्यै

१० सर्वशर्वेभ्यो मृत्यवे

११ नमस्तेऽस्तु क्षुधा.

१२ रुद्ररूपेभ्यस्तृष्णा.

*આડત્રીસ મંત્રો–

'તત્પુરુષ' નામક પૂર્વરૂપના ધ્યાન માટેનો મંત્ર–

તે (આગમપ્રસિદ્ધ) પરમાત્મરૂપ (મહાદેવ)ને અમે (ગુરુ-શાસ્ત્ર દ્વારા) જાણીએ છીએ. (અને તે જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરીને) તે મહાદેવનું અમે ધ્યાન કરીએ છીએ. તેથી તે જ્ઞાનદાતા રુદ્ર અમને (જ્ઞાન અને ધ્યાનમાં) પ્રેરો.

એકત્રીસમા 'પીતવાસા' નામે કલ્પમાં પીતવસ્ત્રધારી 'તત્પુરુષ' નામે શિવજીનું પ્રાકટ્ય થયું. તેઓ ગુણોના આશ્રયરૂપ તથા ભોગ્ય સર્વજ્ઞમાં અધિષ્ઠિત છે અને ત્વક્, પાણિ અને સ્પર્શગુણવિશિષ્ટ વાયુના સ્વામી છે.

(શતરુદ્રસંહિતા અ-૧ અને લિંગ પુ. પૂર્વભાગ અ-૧૩)

'અઘોરેશ્વર અથવા દક્ષિણામૂર્તિ' નામક દક્ષિણ-મુખસ્વરૂપ મહાદેવજીને નમસ્કાર માટેનો મંત્ર–

હવે, (ભક્તોને અભીષ્ટ દાન કરવાને લીધે અનુકૂળ હોવાથી જે શાંત છે, સાત્ત્વિક છે, તે) અઘોરને, (રાજસ હોવાને કારણે જે ઉગ્ર છે તે) ઘોરને, (તામસ હોવાને કારણે જે ઉગ્રથી પણ વધુ ઉગ્ર છે, તે) ઘોરતરને નમસ્કાર. હે સર્વરૂપ, આપનાં સર્વ ઐશ્વર્યમય રુદ્રરૂપોને નમસ્કાર.

'પીતવાસા' કલ્પ પછી 'અસિત' કલ્પમાં કૃષ્ણ-વર્ણવાળા, મહાન્ વીર્યસંપન્ન, પોતાના તેજથી દેદીપ્યમાન, કૃષ્ણવર્ણનું વસ્ત્ર, પાઘડી તથા યજ્ઞોપવીત ધારણ કરેલા, કૃષ્ણમુકુટથી સુશોભિત, કૃષ્ણમાળા ધારણ કરેલ તથા કૃષ્ણ અંગરાગથી અનુલિપ્ત અંગોવાળા 'અઘોર' નામે શિવજીનું પ્રાકટ્ય થયું. તેઓ ધર્મ માટે અંગો સહિત બુદ્ધિતત્ત્વનો વિસ્તાર કરી તેમાં રહે છે. આ રૂપને શરીર, રસ, રૂપ અને અગ્નિના અધિષ્ઠાન કહે છે.

(શતરુદ્રસંહિતા અ-૧ અને લિંગ પુ. પૂર્વભાગ અ-૧૪)

[उत्तरवक्त्रमन्त्रः]

ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः ॥ ३ ॥

[कलाः]

१३ वामदेवाय रजा.	२० बलाय वृद्ध्यै.
१४ ज्येष्ठाय स्वाहा.	२१ बलच्छाया.
१५ श्रेष्ठाय रत्यै.	२२ प्रमथनाय धात्र्यै
१६ रुद्राय कल्याण्यै.	२३ सर्वभूतदमनाय भ्रामण्यै
१७ कालाय कामा.	२४ मनःशोषिण्यै.
१८ कलविकरणाय संधिन्यै.	२५ उन्मनाय ज्वरा.
१९ बलविकरणाय क्रिया.	

'વામદેવ' નામના ઉત્તરમુખસ્વરૂપ મહાદેવજીને નમસ્કાર માટેના મંત્ર–

સુંદર દેદીપ્યમાન રૂપવાળા (ઉત્તરમુખસ્વરૂપ) વામદેવને નમસ્કાર જ્યેષ્ઠને (સર્વપ્રથમ જન્મેલાને) નમસ્કાર. શ્રેષ્ઠને (સૌથી વધુ સ્તુત્યને) નમસ્કાર. રુદ્ર (સંહારકાળે જે રડાવે તેને) નમસ્કાર. કાળને (આયુષ્ય ક્ષીણ થવા માટે હેતુરૂપને) નમસ્કાર. કાળથી રક્ષણ કરનારને, દીર્ઘ આયુ આપનારને નમસ્કાર. ષટ્શત્રુનું બળ ઓછું કરનારને, બળ અર્પણ કરનારને નમસ્કાર, બળ-સ્વરૂપને નમસ્કાર, બળવાનને પણ પરાસ્ત કરનારને, અંકુશમાં રાખનારને નમસ્કાર. સર્વ પ્રાણીઓનું દમન કરનારને, નિયંતાને નમસ્કાર, મનને વશમાં કરી આત્મ-સ્વરૂપમાં લગાડનાર યોગીશ્વરને નમસ્કાર.

ત્રીસમા 'રક્તકલ્પ' નામે કલ્પમાં રક્તવર્ણનાં આભૂષણ, રક્તવર્ણની માળા તથા રક્તવર્ણનાં વસ્ત્ર ધારણ કરેલ, રક્તવર્ણના નેત્રવાળા 'વામદેવ' નામે શિવજીનું પ્રાકટ્ય થયું. તેઓ અહંકારના અધિષ્ઠાન છે. આ સ્વરૂપ રસના, પાયુ, રસ અને જળના સ્વામી છે.

(શતરુદ્રસંહિતા અ-૧ અને લિંગ પુ.પૂર્વભાગ અ-૧૨)

[पश्चिमवक्त्रमन्त्रः]

ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः। भवे भवे नातिभवे भवस्व मां। भवोद्भवाय नमः।

[कलाः]

२६ सद्योजातं प्रपद्यामि सिद्ध्यै	२७ सद्योजाताय वै नमः ऋद्ध्यै
२८ भवे दित्यै	२९ अभवे लक्ष्म्यै

'સદ્યોજાત' નામના પશ્ચિમમુખ મહાદેવજીને નમસ્કાર માટેના મંત્ર–

(સંસારની ઉત્પત્તિ માટે કારણભૂત એવા) સદ્યોજાત નામના (પશ્ચિમમુખરૂપી) પરમેશ્વરને હું ભજું છું. તે સદ્યોજાતને (પ્રસન્ન કરવા માટે) વારંવાર પ્રણામ કરું છું. હે સદ્યોજાત! ફરી ફરી મને જન્મ (મરણરૂપ સંસારચક્ર)માં ન પ્રેરીશ. મને અતિભવમાં (જન્મથી પર એવા મોક્ષમાં) દોરી જા. સંસારમાંથી ઉદ્ધાર કરનાર મહાદેવને હું નમસ્કાર કરું છું.

३० नातिभवे मेधा ३१ भजस्व मां कान्त्यै

३२ भव स्वधा ३३ उद्भवाय प्रभा.

[**ऊर्ध्ववक्त्रमन्त्रः**]

ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्॥ ५ ॥

३४ ईशानः सर्वविद्यानां शशिन्यै

३५ ईश्वरः सर्वभूतानाम् अभयदा

३६ ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मन् ब्रह्मेष्टदा

३७ शिवो मे अस्तु मरीच्यै

३८ सदाशिवः ज्वालिन्यै

'ईशानस्य कला पञ्च चतस्रः पुरुषस्य हि।
अष्टौ प्रोक्ता अघोरस्य वामस्याथ त्रयोदश।
सद्योजातकला अष्टावष्टत्रिंशत्कला इमाः॥'
इत्युक्तं पूर्त्तकमलाकरे।

छाया त्वधर्मोर्मिषु * यैर्विसर्गो
नेत्रत्रयं सत्त्वरजस्तमांसि।
सांख्यात्मनः शास्त्रकृतस्तवेक्षा
छन्दोमयो देव ऋषिः पुराणः॥ ३०

ઓગણત્રીસમો કલ્પ શ્વેતલોહિત નામે ઓળખાય છે. તેમાં શિખાધારી શ્વેતલોહિત વર્ણવાળા શિવજીનું પ્રાકટ્ય થયું. આ સ્વરૂપ પ્રાણ, ઉપસ્થ, ગંધ અને પૃથ્વીના સ્વામી છે.

(શતરુદ્રસંહિતા અ-૧ અને લિંગ પુ. પૂર્વભાગ અ-૧૧)

'ઈશાન' નામે ઊર્ધ્વમુખ મહાદેવજીની પ્રાર્થના અને ધ્યાન માટેનો મંત્ર–

સર્વ વિદ્યાના પ્રેરક, સર્વ ભૂતોના નિયામક, વેદના પાલક, જે બ્રહ્મ (હિરણ્યગર્ભ)ના સ્વામી છે, જે બ્રહ્મા (સર્વાધિક પરમાત્મા) છે, તે મારા પર અનુગ્રહ કરવા માટે શાંત થાઓ. તે જ સદાશિવ, સર્વદા કલ્યાણકારી, જેમનું આ પ્રમાણે વર્ણન કરવામાં આવ્યું અને જેમનું નામ ઓંકાર છે તે હું છું.

અસિત' કલ્પ પછી 'વિશ્વરૂપ' નામે તેત્રીસમા કલ્પ માં 'ઈશાન' નામે ભગવાન શિવજીનું પ્રાકટ્ય થયું. તેમનો વર્ણ શુદ્ધ સ્ફટિક સમાન ઉજ્જ્વળ હતો અને તેઓ સમસ્ત આભૂષણોથી વિભૂષિત હતા. તેઓ સાક્ષાત્ પ્રકૃતિના ભોક્તા ક્ષેત્રજ્ઞમાં નિવાસ કરે છે. આ સ્વરૂપ કર્ણ, વાણી અને સર્વવ્યાપી આકાશના સ્વામી છે. (શતરુદ્રસંહિતા અ-૧ અને લિંગ પુરાણ પૂર્વભાગ અ-૧૬)

'ઈશાનની પાંચ, પુરુષની ચાર, અઘોરની આઠ, વામદેવની તેર અને સદ્યોજાતની આઠ એમ આ આડત્રીસ કળાઓ છે.' એમ પૂર્તકમલાકરમાં કહેવાયું છે.

હે દેવ, (દંભ, લોભ વગેરે) અધર્મના તરંગોમાં આપની છાયા છે, જે દંભ વગેરે તરંગોથી સંહાર થાય છે. સત્ત્વ, રજસ્ અને તમસ્ જ્ઞાનસ્વરૂપ, વેદ ઉત્પન્ન કરનાર આપનાં ત્રણ નેત્રો છે. છંદપ્રચુર પુરાતન વેદ આપનું દર્શન છે.॥ ૩૦॥

* (**ऊर्मि** શબ્દ સ્ત્રી. અને પુ. બંને છે. અહીં પું. લઈને અર્થ કર્યો છે. **यैः अधर्म–ऊर्मिषु तव छाया, विसर्गः** (પ્રલય) અને બીજો અર્થ **सत्त्वरजस्तमांसि यैः विसर्गः** (સૃષ્ટિ) **तव नेत्रत्रयम्**)

अधर्मस्योर्मिषु दम्भलोभादिषु यैरूर्मिभिर्विसर्गः प्रतिसर्गः संहारः। यद्वा यैः सत्त्वादिभिर्विविधः सर्गस्तानि नेत्रत्रयम्। हे देव छन्दोमय, ऋषिर्वेदः स तवेक्षा ईक्षणम्। साक्षान्मनुरिति पाठे मनुर्वेदः। तमेवाह—छन्दोमय इति॥ ३०॥

અધર્મના દંભ, લોભ વગેરે તરંગોમાં આપની છાયા છે. જે તરંગો દ્વારા '**विसर्गः**' પ્રતિસર્ગ, સંહાર થાય છે, અથવા જે સત્ત્વાદિથી વિવિધ સૃષ્ટિ થાય છે, તે આપનાં ત્રણ નેત્ર છે. હે દેવ, (ગાયત્રી વગેરે) છંદપ્રચુર '**ऋषिः**' વેદ, તે આપનું '**ईक्षा**' દર્શન છે. '**सांख्यात्मनः**' ને બદલે '**साक्षान्मनुः**' પાઠમાં '**मनुः**' વેદ, તે વેદને જ વર્ણવે છે— '**छन्दोमयः इति।**' વેદ છંદપ્રચુર છે, ઋષિરૂપ છે, પુરાણો છે.॥ ૩૦॥

न ते गिरित्राखिललोकपाल-
विरिञ्चवैकुण्ठसुरेन्द्रगम्यम् ।
ज्योतिः परं यत्र रजस्तमश्च
सत्त्वं न यद् ब्रह्म निरस्तभेदम्॥ ३१

હે ગિરિત્ર, જેમાં રજોગુણ, તમોગુણ અને સત્ત્વગુણ નથી તથા જે સમસ્ત ભેદથી રહિત છે, તે આપનું પરમ જ્યોતિર્મય સ્વરૂપ સમસ્ત લોકપાલો, બ્રહ્મા, વિષ્ણુ અને દેવરાજ ઈન્દ્રને પણ જણાતું નથી.॥ ૩૧॥

हे गिरित्र, ते परं ज्योतिरखिलानां लोकपालादीनां गम्यं न भवति। कुतः। यत्र रजआदि नास्ति। किं तज्ज्योतिः। यन्निरस्तभेदं ब्रह्म॥ ३१॥

હે ગિરિત્ર, આપનું પરમ જ્યોતિર્મય સ્વરૂપ સમસ્ત લોકપાલાદિને પણ જણાતું નથી. કેમ? જેમાં રજસ્ વગેરે નથી. તે કેવું જ્યોતિર્મય સ્વરૂપ? જે સમસ્ત ભેદથી રહિત બ્રહ્મરૂપ છે.॥ ૩૧॥

वंशीधरी—तव भक्ताभीष्टदत्वात् पार्वतीप्रीतये दग्धो गिरिस्त्रातोऽतोऽस्मानपि त्राहीत्यभिप्रायेणाहुः—गिरित्रेति।

આપ ભક્તનું અભીષ્ટ આપનારા હોવાથી પાર્વતીજીની પ્રસન્નતા માટે આપે બળેલા પર્વતની રક્ષા કરી હતી. આથી અમારી રક્ષા પણ કરો, એ અભિપ્રાયથી કહે છે– હે ગિરિત્ર. (**गिरिं त्रायते इति गिरित्रः**)

भ.मनो.—अस्य प्रकरणस्य रुद्रशरीरकपरमात्मस्तुतिपरत्वात् परमात्मस्वरूपस्यापरिच्छिन्नत्वेन तेनापीयत्तयावगन्तुमशक्यत्वाद्वैकुण्ठेनाप्यगम्यमित्युक्तम्।

આ પ્રકરણ રુદ્રરૂપ પરમાત્માની સ્તુતિપરક હોવાથી તથા પરમાત્માનું સ્વરૂપ અમર્યાદિત હોવાથી અને તે પણ આટલું છે એમ જાણવા માટે અશક્ય હોવાથી તે ભગવાન વિષ્ણુ દ્વારા પણ અગમ્ય છે, એમ કહેવાયું છે.

कामाध्वरत्रिपुरकालगराद्यनेक-
भूतद्रुहः क्षपयतः स्तुतये न तत् ते।
यस्त्वन्तकाल इदमात्मकृतं स्वनेत्र-
वह्निस्फुलिङ्गशिखया भसितं न वेद॥ ३२

કામદેવ, દક્ષયજ્ઞ, ત્રિપુરાસુર, કાળકૂટ વિષ વગેરે અનેક જીવદ્રોહીઓનો સંહાર કરતા એવા આપનું તે કર્મ સ્તુતિને માટે પર્યાપ્ત નથી, (કારણ કે એ તો આપને માટે અતિતુચ્છ છે.) પ્રલયકાળે જે આપ તો પોતાના નેત્રના અગ્નિની ચિનગારીની લપટથી પોતે જ રચેલું આ (જગત) ભસ્મીભૂત થઈ ગયું છે, તે પણ જાણતા નથી.॥ ૩૨॥

कामश्चाध्वरश्च दक्षयज्ञस्त्रिपुरादयश्च ये अनेकभूतद्रुहस्तान् क्षपयतः संहरतस्ते तत्कर्म स्तुतये न भवति। अत्यल्पमेतदित्यर्थः। गरक्षपणस्याप्यवश्यंभावित्वेन सिद्धवन्निर्देशः। स्तुतयेऽलं न भवतीत्यत्र हेतुः—यस्तु भवान्स्वनेत्रवह्निविस्फुलिङ्गस्य शिखयेदं जगद्भसितं भस्मसाज्जातं न वेद नालोचयत्यपि ॥ ३२ ॥

वंशीधरी—इत्यर्थ इति। यथा त्रैलोक्यान्धकारहर्तू रवेर्गृहान्धकारशमकत्वं न स्तुतिस्तद्वदिति भावः।

अन्वि.—कालो गरश्च दैत्यविशेष आसीत् इत्यप्याहुः।

तदेवं नित्यं परानुग्रहव्यग्रं त्वां ये निन्दन्ति तेऽतिमूर्खा इत्याहुः—

ये त्वात्मरामगुरुभिर्हृदि चिन्तिताङ्घ्रि-
द्वन्द्वं चरन्तमुमया तपसाभितप्तम्।
कत्थन्त उग्रपरुषं निरतं श्मशाने
ते नूनमूतिमविदंस्तव हातलज्जाः॥ ३३

ये तु उमया सह चरन्तं तस्यां नितरां रतं कामिनं कत्थन्ते प्रलपन्ति। तथा श्मशाने चरन्तमुग्रं क्रूरं पुरुषं च हिंस्रं कत्थन्ते।

કામદેવ અને '**अध्वरः**' દક્ષયજ્ઞ તથા ત્રિપુરાસુર વગેરે જે અનેક જીવદ્રોહીઓનો '**क्षपयतः**' સંહાર કરતા એવા આપનું તે કર્મ સ્તુતિને માટે પર્યાપ્ત નથી, કારણ કે એ (તો આપને માટે) અતિતુચ્છ છે, એમ અર્થ છે. વિષનો નાશ (પાન) પણ અવશ્યંભાવિ જ હોવાથી તે કાર્ય સિદ્ધ થયું હોય તેમ નિર્દેશ છે. સ્તુતિ માટે પર્યાપ્ત ન હોવા માટેનું કારણ— જે આપ તો પોતાના નેત્રના અગ્નિની ચિનગારીની લપટથી આ જગત '**भसितम्**' ભસ્મસાત્ થઈ ગયું તે પણ '**न वेद**' જાણતા નથી, જોતા નથી. ॥ ૩૨ ॥

જેમ ત્રણેય લોકનો અંધકાર હરી લેનાર સૂર્ય ઘરનો અંધકાર શમાવે એ તેની સ્તુતિ નથી તેમ, એવો ભાવ છે.

કાળ અને ગર દૈત્યવિશેષ હતા, એમ પણ (વિદ્વાનો) કહે છે.

તો આમ, નિત્ય અન્યની ઉપર અનુગ્રહ કરવા માટે વ્યગ્ર એવા આપની જેઓ નિંદા કરે છે તેઓ અતિમૂર્ખ છે, એમ કહે છે—

આત્મારામ ગુરુજનો દ્વારા હૃદયમાં જેમના ચરણયુગલનું ચિંતન કરવામાં આવે છે એવા, તપથી અભિતપ્ત, ઉમાદેવી સાથે વિચરતા અને તેમનામાં અત્યન્ત રતિવાળા, સ્મશાનમાં રહેનારા આપને ક્રૂર અને હિંસક કહી જેઓ બબડાટ કરે છે, તે નિર્લજ્જ પ્રાણીઓ ખરેખર, શું આપની લીલાને જાણે છે? ॥ ૩૩ ॥

તેઓ તો આપને ઉમાદેવી સાથે વિચરતા, તેમનામાં સાવ રતિવાળા આસક્ત અને કામી છે, એમ '**कत्थन्ते**' બકે છે! વળી, સ્મશાનમાં રહેનારને '**उग्रम्**' ક્રૂર અને '**परुषम्**' હિંસક કહી બબડાટ કરે છે.

कथंभूतम्। आत्मारामाश्च ते गुरवो विश्वहितोपदेष्टारस्तैर्हृदि चिन्तितमङ्घ्रिद्वन्द्वं यस्य तथाभूतमपि तपसाभितप्तमपि। ते नूनं तवोतिमविदन्निति काकुः। त्वल्लीलां नैव विदुरित्यर्थः। अतो हातलज्जास्त्यक्तत्रपाः। कथमात्मारामैः सेवितचरणयुगलस्य ते कामित्वं संभवति, कथं वा तपसाभितप्तस्य शान्तस्योग्रत्वं परुषत्वं वा संभवतीत्यविचार्यैव प्रलापादित्यर्थः ॥ ३३ ॥

वंशीधरी—लोकसंग्रहार्थे तपोरतमपि। त्वन्निन्दका रवेरुलूका इव तव प्रभावं न जानन्ति इति भावः।

आस्तां तावन्निन्दकानां वार्ता, महान्तोऽपि तव तत्त्वं न जानन्तीत्याहुः—

तत् तस्य ते सदसतोः परतः परस्य
नाञ्जः स्वरूपगमने प्रभवन्ति भूम्नः।
ब्रह्मादयः किमुत संस्तवने वयं तु
तत्सर्गसर्गविषया अपि शक्तिमात्रम्॥ ३४

तत्तस्मात्तव स्वरूपस्य गमने ज्ञाने ब्रह्मा-दयोऽपि न समर्थाः, संस्तवने तु कुतः शक्ताः

કેવા શંકર ભગવાનને? આત્મામાં જ રમણ કરનાર જે (નારદાદિ) ગુરુજનો છે, જેઓ વિશ્વના હિત માટે ઉપદેશ કરનારાઓ છે, તેમના દ્વારા હૃદયમાં જેમના ચરણયુગલનું ચિંતન કરવામાં આવે છે, તેવા શંકર ભગવાન હોવા છતાં તથા જેઓ તપથી અભિતપ્ત થયેલા છે છતાં પણ ખરેખર, (આવા) આપની લીલાને તો શું તેઓ જાણે છે? એમ કાકુ (પ્રશ્નાર્થ) છે. આપની લીલાને તેઓ જાણતા જ નથી, એમ અર્થ છે. આથી તેઓ '**हातलज्जाः**' નિર્લજ્જ પ્રાણીઓ છે. આત્મારામ જનો દ્વારા જેમના ચરણયુગલનું ચિંતન કરવામાં આવે છે, તેવા આપનામાં કામિત્વ કેવી રીતે સંભવે? વળી, તપથી અભિતપ્ત થયેલા શાંતસ્વરૂપને ક્રૂરતા કે હિંસકતા ક્યાંથી સંભવે, એમ વિચાર કર્યા વિના જ કરેલા બબડાટથી શું થવાનું છે? એમ અર્થ છે. ॥ ૩૩ ॥

ઘુવડો સૂર્યનો પ્રભાવ જાણતાં નથી, તેમ આપની નિંદા કરનારાઓ લોકકલ્યાણ માટે નિરંતર તપમાં મગ્ન રહેનારા આપનો પ્રભાવ જાણતા નથી.

અરે, નિંદકોની વાત બાજુએ મૂકો. અત્યંત મહાન (સૂરિ) જનો પણ આપના તત્ત્વને જાણતા નથી, એમ (તેઓ) કહે છે—

કાર્ય અને કારણથી પર એવી માયાથી પણ પર અને વ્યાપક (અત્યંત મહાન) એવા તે આપના સ્વરૂપના જ્ઞાન માટે બ્રહ્માદિ પણ સહજતાથી સમર્થ નથી થતા, તો સ્તુતિ કરવા માટે ક્યાંથી સમર્થ થાય? તે બ્રહ્માજીએ સર્જેલી સૃષ્ટિ દ્વારા સર્જાયેલા પદાર્થરૂપ અમે (તેમના પુત્રોના પુત્રો છીએ, તો અમે ક્યાંથી સમર્થ હોઈએ?) માત્ર પોતાની શક્તિ અનુસાર જ સ્તવન કરીએ છીએ. ॥ ૩૪ ॥

'**तत्**' તેથી આપના સ્વરૂપના '**गमने**' જ્ઞાન માટે બ્રહ્માદિ પણ સમર્થ નથી, તો સુંદર રીતે સ્તુતિ કરવા માટે (તેઓ) ક્યાંથી સમર્થ થાય? તો પછી અમે કેવી

स्युः, तत्र वयं कथं प्रभवेम। यतस्तेषां सर्गेऽत्यन्तार्वाचीनाः। तथापि यदेतत्तव स्तवनमेतदात्मशक्तिपरिमितमात्रमित्यर्थः॥ ३४॥

રીતે (તે માટે) શક્તિમાન હોઈએ? '**યતઃ**' કારણ કે તે બ્રહ્માદિની સૃષ્ટિમાં અમે તો અત્યંત અર્વાચીન છીએ. તેમ છતાં પણ આપનું આ જે સ્તવન કરીએ છીએ, તે માત્ર પોતાની શક્તિના માપ પ્રમાણે જ કરીએ છીએ.॥ ૩૪॥

वंशीधरी—'नभः पतन्त्यात्मसमं पतत्त्रिणः' इति न्यायमाश्रित्यास्मत्स्तुतिर्भक्तिप्रकटनार्थेति भावः।

'આકાશમાં પક્ષીઓ પોતાની શક્તિ અનુસાર ઊડે છે.'–એ ન્યાયનો આશ્રય કરીને અમારી સ્તુતિ ભક્તિ પ્રકટ કરવા માટે છે, એવો ભાવ છે.

तदेवाहुः—**एतत्परमिति**।

દેવો તે (પોતાની શક્તિ) જ વર્ણવે છે— '**एतत् परम् इति।**'

एतत् परं प्रपश्यामो न परं ते महेश्वर।
मृडनाय हि लोकस्य व्यक्तिस्तेऽव्यक्तकर्मणः॥ ३५

હે મહેશ્વર, અમે કેવળ આપનું આ (લીલા-વિહારી સગુણ સ્વરૂપ જ) જોઈ શકીએ છીએ, આપના પરમ સ્વરૂપને અમે જોઈ શકતા નથી. અવ્યક્ત કર્મોવાળા આપનું પ્રકટ સ્વરૂપ ખરેખર, લોકોને સુખ આપવા માટે જ છે.॥ ૩૫॥

न परं रूपं तथापि त्वद्दर्शनादेव कृतार्था वयमित्याहुः—मृडनाय हीति॥ ३५॥

આપનું '**परम्**' (સર્વકારણભૂત અતિસૂક્ષ્મ) નિર્ગુણ સ્વરૂપ અમે જોઈ શકતા નથી, તેમ છતાં આપના દર્શનથી જ કૃતાર્થ એવા અમે કહીએ છીએ— '**मृडनाय हि इति।**'॥ ૩૫॥

बा.प्र.—अनेन विषपानेनास्मानपि सुखिनः कुर्विति सूचयन्ति।

આ વિષપાન કરીને અમને પણ સુખી કરો, એમ (દેવો) સૂચવે છે.

श्रीशुक उवाच

तद्वीक्ष्य व्यसनं तासां कृपया भृशपीडितः।
सर्वभूतसुहृद् देव इदमाह सतीं प्रियाम्॥ ३६

॥ ३६॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – તે પ્રજાઓનું તે સંકટ જોઈ, (નિષ્કારણ) કૃપાથી–કારુણ્યથી અત્યંત વ્યથિત એવા સમસ્ત પ્રાણીઓના હિતકર્તા દેવાધિદેવ મહાદેવજીએ (પોતાની) પ્રિયા સતીને આ પ્રમાણે કહ્યું.॥ ૩૬॥ ૩૬॥

मत्प्रभावमविचार्य विषपाने प्रवृत्तं मां कथंचिदियं प्रिया वारयेदिति शङ्क्या तामनुज्ञापयन्नाह—**अहो बतेति** सार्धैश्चतुर्भिः।

વિષપાન માટે પ્રવૃત્ત થયેલા એવા મારો પ્રભાવ વિચાર્યા વિના આ પ્રિયા કદાચ મને વારે, એવી શંકાથી તેમને જણાવતા શિવજી સાડા ચાર શ્લોકો દ્વાકા કહે છે— '**अहो बत इति।**'

शिव उवाच

अहो बत भवान्येतत् प्रजानां पश्य वैशसम्।
क्षीरोदमथनोद्भूतात् कालकूटादुपस्थितम्॥ ३७

वैशसं दुःखम्॥ ३७॥

શંકર ભગવાન બોલ્યા – અહો ભવાની, જુઓ, ક્ષીરસાગરના મંથનથી ઉત્પન્ન થયેલા કાળકૂટ વિષને કારણે પ્રજાઓ ઉપર આ દુઃખ આવી પડ્યું છે! ॥૩૭॥

'वैशसम्' દુઃખ॥૩૭॥

आसां प्राणपरीप्सूनां विधेयमभयं हि मे।
एतावान्हि प्रभोरर्थो यद् दीनपरिपालनम्॥ ३८

प्राणपरीप्सूनां प्राणरक्षणेच्छूनाम्। मे मया। प्रभोः समर्थस्य। अर्थः कार्यम्॥ ३८॥

પ્રાણની રક્ષા કરવા ઈચ્છતી આ પ્રજાઓને મારા દ્વારા નિર્ભયતા મળવી જોઈએ, કારણ કે સમર્થ મનુષ્યનું એટલું જ કર્તવ્ય છે કે દીનજનોનું રક્ષણ કરવું!॥૩૮॥

'प्राणपरीप्सूनाम्' પ્રાણનું રક્ષણ કરવા ઈચ્છતી આ પ્રજાઓને, **'मे'** મારા દ્વારા, **'प्रभोः'** સમર્થનું **'अर्थः'** કાર્ય, કર્તવ્ય॥૩૯॥

प्राणैः स्वैः प्राणिनः पान्ति साधवः क्षणभङ्गुरैः।
बद्धवैरेषु भूतेषु मोहितेष्वात्ममायया॥ ३९

किंच बद्धवैरेषु भूतेषु परस्परं जिघांसत्सु ॥ ३९॥

પરમાત્માની માયાથી મોહિત થયેલાં પ્રાણીઓ વેર બાંધી રહ્યાં છે ત્યારે સાધુપુરુષો પોતાના ક્ષણભંગુર પ્રાણથી (પણ) પ્રાણીઓની રક્ષા કરે છે.॥૩૯॥

વળી, **'बद्धवैरेषु भूतेषु'** જ્યારે પ્રાણીઓ પરસ્પરને મારવાની ઈચ્છાવાળા થયાં છે.॥૩૯॥

पुंसः कृपयतो भद्रे सर्वात्मा प्रीयते हरिः।
प्रीते हरौ भगवति प्रीयेऽहं सचराचरः।
तस्मादिदं गरं भुञ्जे प्रजानां स्वस्तिरस्तु मे॥ ४०

कृपयतः कृपां कुर्वतः पुंसः। मे मत्तः। स्वस्तिः शोभना सत्ता, सुखेन जीवितमस्त्वित्यर्थः ॥ ४०॥

હે કલ્યાણી, કૃપા કરનાર મનુષ્ય ઉપર સર્વના આત્મા ભગવાન શ્રીહરિ પ્રસન્ન થાય છે. ભગવાન શ્રીહરિ પ્રસન્ન થાય છે ત્યારે સ્થાવર-જંગમ સહિત હું પણ પ્રસન્ન થાઉં છું. તેથી હું આ વિષનું ભક્ષણ કરું છું. મારાથી પ્રજાઓનું કલ્યાણ થાઓ!॥૪૦॥

'कृपयतः' કૃપા કરનાર મનુષ્ય ઉપર– **'मे'** મારાથી– **'स्वस्तिः'** **सु-अस्तिः** સુંદર અસ્તિત્વ, જીવન સુખપૂર્ણ બનો, એમ અર્થ છે.॥૪૦॥

श्रीशुक उवाच

एवमामन्त्र्य भगवान्भवानीं विश्वभावनः।
तद् विषं जग्धुमारेभे प्रभावज्ञाऽन्वमोदत॥ ४१

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – ભગવાનના પ્રભાવને જાણતાં ભવાનીએ અનુમોદન આપ્યું. આમ ભવાનીની આજ્ઞા લઈ વિશ્વનું કલ્યાણ કરનાર ભગવાન શંકરે તે વિષભક્ષણ કરવા માટે આરંભ કર્યો.॥૪૧॥

जग्धुमत्तुम् ॥ ४१ ॥

वंशीधरी—प्रभावज्ञा संसारविषहर्तुरेतदकिंचित्कर-मिति जानती।

ततः करतलीकृत्य व्यापि हालाहलं विषम्।
अभक्षयन्महादेवः कृपया भूतभावनः॥ ४२

करतलीकृत्य करतलपरिमितमात्रं कृत्वा ॥ ४२ ॥

तस्यापि दर्शयामास स्ववीर्यं जलकल्मषः।
यच्चकार गलेनीलं तच्च साधोर्विभूषणम्॥ ४३

जलकल्मषो जलदोषो विषम्। यस्मात्तं गलेनीलं चकार। साधोः कृपालोः॥ ४३ ॥

तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः।
परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः॥ ४४
॥ ४४ ॥

बा.प्र.—सर्वात्मकत्वात् यस्य कस्याप्युपकारस्त-दाराधनतयैव प्रतिफलतीति भावः।

निशम्य कर्म तच्छम्भोर्देवदेवस्य मीढुषः।
प्रजा दाक्षायणी ब्रह्मा वैकुण्ठश्च शशंसिरे॥ ४५

वंशीधरी—'रुद्रस्य यशसे विष्णुर्न विषं पीतवान् स्वयम्।' इति ग्रन्थान्तरोक्तेः।

'**जग्धुम्**' ભક્ષણ કરવા માટે।। ૪૧।। (**अद्** નું હેત્વર્થ કૃદન્ત '**अत्तुम्**')

સંસારનું વિષ હરનારને સમુદ્રનું વિષ કંઈ ન કરી શકે, એવો પ્રભાવ જાણતાં ભવાનીએ તેમને અનુમોદન આપ્યું.

ત્યાર પછી (સર્વ) પ્રાણીઓને સુખ આપનારા મહાદેવજીએ (કેવળ) દયાથી સર્વ તરફ વ્યાપેલા હળાહળ વિષને હથેળી જેટલું પરિમિત (સીમિત) કરી, તેનું ભક્ષણ કર્યું,॥ ૪૨ ॥

'**करतलीकृत्य**' માત્ર હથેળી જેટલું સીમિત કરીને ॥ ૪૨ ॥

તે ભગવાન શંકરને પણ જળના દોષરૂપ વિષે પોતાનો પ્રભાવ દર્શાવ્યો, જેણે તેમના કંઠને નીલ (શ્યામ) રંગનો કર્યો, અને તે પરોપકારી શિવના ભૂષણરૂપ બની ગયો.॥ ૪૩ ॥

'**जलकल्मषः**' જળનો દોષ વિષ, જેને કારણે શિવજી '**गलेनीलम्**' નીલકંઠ થયા. '**साधोः**' પરોપકારી શિવના ॥ ૪૩ ॥

સાધુજનો ઘણું કરીને લોકોના દુઃખે દુઃખી થાય છે. (પરંતુ તે દુઃખ નથી,) તે તો સર્વના આત્મસ્વરૂપ પુરુષોત્તમ શ્રીહરિની શ્રેષ્ઠ આરાધના છે.॥ ૪૪ ॥ ૪૪ ॥

તે સર્વના હૃદયમાં રહેલા હોવાથી જે કોઈ પર કરેલો ઉપકાર તેમની જ આરાધના તરીકે સામે ફલિત થાય છે, એવો ભાવ છે.

કામનાઓનું વર્ષણ કરનારા, દેવાધિદેવ ભગવાન શંભુનું તે (અદ્‌ભુત) કર્મ સાંભળીને (સર્વ) પ્રજાઓ, દક્ષપુત્રી સતી, બ્રહ્માજી અને વૈકુંઠ શ્રીહરિ તેમની પ્રશંસા કરવા લાગ્યા.॥ ૪૫ ॥ ૪૫ ॥

(**मेह्–मीढ्वस्** નું ષષ્ઠી એ. વ. '**मीढुषः**')

'ભગવાન રુદ્રના યશને માટે ભગવાન વિષ્ણુએ પોતે વિષ ન પીધું.' એમ અન્ય ગ્રંથમાં કહેવામાં આવ્યું છે.

प्रस्कन्नं पिबतः पाणेर्यत् किञ्चिज्जगृहुः स्म तत्।
वृश्चिकाहिविषौषध्यो दन्दशूकाश्च येऽपरे॥
॥ ४६ ॥

प्रस्कन्नं गलितम्। अपरे ये सविषास्तेऽपि जगृहुः। अनेन विषस्य तीव्रतोक्ता॥ ४६ ॥

(ભગવાન શંકર) વિષપાન કરતા હતા ત્યારે હાથમાંથી જે થોડું વિષ ટપકી પડ્યું, તે વીંછી, સાપ, ઝેરી ઔષધિઓ અને જે બીજાં ઝેરી પ્રાણીઓ છે તેમણે ગ્રહણ કરી લીધું.॥ ૪૬ ॥

'प्रस्कन्नम्' ટપકી પડેલું– બીજા જે ઝેરી જીવો છે તેમણે પણ ગ્રહણ કરી લીધું. આ દ્વારા વિષની તીક્ષ્ણતા કહેવામાં આવી છે.॥ ૪૬ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धेऽमृतमथने सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

*****

अथाष्टमोऽध्यायः

સમુદ્રમાંથી અમૃતનું પ્રાકટ્ય અને ભગવાનનો મોહિની-અવતાર

अष्टमे मथ्यमानेऽब्धौ लक्ष्म्या विष्णौ वृतेऽसुरैः।
धन्वन्तरेर्हृते सोमे मोहिन्युद्भव ईर्यते॥ १ ॥

આઠમા અધ્યાયમાં, સમુદ્રમંથન થતું હતું ત્યારે લક્ષ્મીજી દ્વારા ભગવાન વિષ્ણુનું વરણ કરવામાં આવ્યું તથા અસુરો દ્વારા ધન્વન્તરિ પાસેથી અમૃત લઈ લેવામાં આવ્યું તે વખતે મોહિનીરૂપનું પ્રાકટ્ય થયું, તે વર્ણવવામાં આવે છે.

श्रीशुक उवाच

पीते गरे वृषाङ्केण प्रीतास्तेऽमरदानवाः।
ममन्थुस्तरसा सिन्धुं हविर्धानी ततोऽभवत्॥ १

હविર્धાની સુરભિઃ॥ ૧ ॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – ભગવાન વૃષાંક (શિવજી) દ્વારા ઝેર પી જવામાં આવ્યું ત્યારે તે દેવો અને દાનવો પ્રસન્ન થઈ ગયા અને વેગથી સમુદ્રનું મંથન કરવા લાગ્યા. તેમાંથી કામધેનુ સુરભિ ગાય પ્રકટ થઈ.॥ ૧ ॥

'हविर्धानी' સુરભિ ગાય॥ ૧ ॥

वंशीधरी—हविर्घृतं धीयते निधीयतेऽस्यामिति हविर्द्धानी कामधेनुः।

હવિ એટલે ઘી, ઘી આ (કામધેનુ)માં (દૂધ રૂપે) સ્થાપિત છે, આથી એને હવિર્ધાની (કામધેનુ) કહે છે.

तामग्निहोत्रीमृषयो जगृहुर्ब्रह्मवादिनः।
यज्ञस्य देवयानस्य मेध्याय हविषे नृप॥ २

હે રાજા પરીક્ષિત, અગ્નિહોત્રની સામગ્રી ઉત્પન્ન કરનારી તે કામધેનુને બ્રહ્મવાદી ઋષિઓએ બ્રહ્મલોકનો માર્ગ પ્રાપ્ત કરાવનાર યજ્ઞસંબંધી પવિત્ર હવિષ્ માટે ગ્રહણ કરી.॥ ૨ ॥

देवयानस्य ब्रह्मलोकमार्गप्रापकस्य। यज्ञस्य संबन्धिने हविषे॥ २ ॥

'देवयानस्य' બ્રહ્મલોકના માર્ગને પ્રાપ્ત કરાવનાર (યજ્ઞ)ના, યજ્ઞના સંબંધવાળા હવિષ્ માટે॥ ૨ ॥

तत उच्चैःश्रवा नाम हयोऽभूच्चन्द्रपाण्डुरः।
तस्मिन्बलिः स्पृहां चक्रे नेन्द्र ईश्वरशिक्षया॥ ३

પછી ચન્દ્ર જેવો ઉજ્જ્વળ ઉચ્ચૈઃશ્રવા નામનો અશ્વ પ્રકટ થયો. તે અશ્વમાં રાજા બલિએ સ્પૃહા રાખી. ઈશ્વર શ્રીહરિના શિક્ષણ અનુસાર ઈન્દ્રે તેની સ્પૃહા ન કરી.॥ ૩॥

ईश्वरशिक्षया प्रागेव कृतया॥ ३॥

પહેલેથી જ આપવામાં આવેલા ઈશ્વર શ્રીહરિના શિક્ષણ અનુસાર॥ ૩॥

अन्वि.—दैत्यानां मनोवर्द्धनार्थं प्रथममेवेश्वरेण कृतया 'यूयं तदनुमोदध्वं यदिच्छन्त्यसुराः सुराः।' इति शिक्षया हेतुना इन्द्रस्तु नैच्छत् किन्तु तूष्णीमास।

દૈત્યોનો ઉત્સાહ વધારવા માટે ભગવાન દ્વારા પહેલાં જ આપવામાં આવેલા શિક્ષણને કારણે ઈન્દ્રે તેની ઈચ્છા ન કરી અને મૌન બેઠા. 'હે દેવો, અસુરો જે ઈચ્છે તેને તમે અનુમોદન આપજો.' (શ્રીમદ્ભા. ૮/૬/૨૪)

तत ऐरावतो नाम वारणेन्द्रो विनिर्गतः।
दन्तैश्चतुर्भिः श्वेताद्रेर्हरन्भगवतो महिम्॥ ४

ત્યાર પછી પોતાના ચાર દાંતો વડે ભગવાન શંકરના શ્વેત કૈલાસ પર્વતનો મહિમા હરી લેતો, (ચન્દ્ર જેવો ઉજ્જ્વળ) ઐરાવત નામનો શ્રેષ્ઠ હાથી નીકળ્યો.॥ ૪॥

भगवतो यः श्वेताद्रिः कैलासस्तस्य महिं महिमानम्। दन्तैः शिखरकल्पैर्हरंश्चन्द्रवत्पाण्डुर इत्यनुषङ्गः॥ ४॥

ભગવાન શંકરનો જે '**श्वेताद्रिः**' શ્વેત કૈલાસ પર્વત છે તેના '**महिम्**' મહિમાને, પોતાના શિખર જેવા દાંતો વડે (શ્વેતાદ્રિનો મહિમા) હરી લેતો, ચન્દ્ર જેવો ઉજ્જ્વળ, એમ પૂર્વના શ્લોક (૩) સાથે સંબંધ છે.॥ ૪॥

कौस्तुभाख्यमभूद् रत्नं पद्मरागो महोदधेः।
तस्मिन्हरिः स्पृहां चक्रे वक्षोऽलङ्करणे मणौ॥ ५

॥ ५॥

મહાસાગરમાંથી પદ્મરાગમણિરૂપ કૌસ્તુભ નામનું રત્ન પ્રકટ થયું. શ્રીહરિએ (પોતાના) વક્ષઃસ્થળને અલંકૃત કરવા માટે તે મણિમાં સ્પૃહા કરી.॥ ૫॥ ૫॥

ततोऽभवत् पारिजातः सुरलोकविभूषणम्।
पूरयत्यर्थिनो योऽर्थैः शश्वद्भुवि यथा भवान्॥ ६

॥ ६॥

ત્યાર પછી પૃથ્વી ઉપર આપ જેમ યાચકોને કામનાઓથી પૂર્ણ કરો છો, તેમ જે વૃક્ષ સદાય યાચકોને કામનાઓથી પૂર્ણ કરે છે, તે દેવલોકના અલંકારરૂપ પારિજાત (નામનું કલ્પવૃક્ષ) પ્રકટ થયું.॥ ૬॥ ૬॥

ततश्चाप्सरसो जाता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः।
रमण्यः स्वर्गिणां वल्गुगतिलीलावलोकनैः॥ ७

ત્યાર પછી મનોહર ચાલ અને વિલાસભર્યા નેત્રકટાક્ષોથી સ્વર્ગમાં વસનારાઓને રતિ ઉત્પન્ન કરનારી, સુંદર વસ્ત્રોવાળી, કંઠમાં સુવર્ણના અલંકાર ધારણ કરેલી અપ્સરાઓ ઉત્પન્ન થઈ.॥ ૭॥

वल्गुभिर्गत्यादिभिः स्वर्गिणां रमण्यो रतिकर्त्र्यः ॥ ७ ॥

મનોહર ચાલ વગેરે દ્વારા સ્વર્ગમાં વસતા દેવોને **'रमण्यः'** રતિ ઉત્પન્ન કરનારી અપ્સરાઓ ॥ ૭ ॥

ततश्चाविरभूत् साक्षाच्छ्री रमा भगवत्परा।
रञ्जयन्ती दिशः कान्त्या विद्युत्सौदामनी यथा ॥ ८

ત્યાર પછી (સ્ફટિકમય સુદામા પર્વત પર અધિક ચમકતી) સૌદામની વીજળી જેવી કાંતિથી દિશાઓને ઝગમગાવતાં, સાક્ષાત્ મૂર્તિમંત થયેલી સંપત્તિરૂપા ભગવત્પરાયણા રમાદેવી (લક્ષ્મીજી) પ્રકટ થયાં. ॥ ૮ ॥

सुदामा पर्वतस्तत्रैकस्यां दिशि जाता सौदामनी। स्फटिकादिमयगिरिशृङ्गेष्वधिकं स्फुरन्ती विद्युदिव कान्त्या दिशो रञ्जयन्ती श्रीः संपत् साक्षान्मूर्तिधारिणी सती सैव भगवत्परा रमा आविरभूदित्यर्थः ॥ ८ ॥

'सुदामा' (**'सुदामन्'** નામનો સ્ફટિકનો) પર્વત– ત્યાં એક દિશામાં ઉત્પન્ન થયેલી **'सौदामनी'** સ્ફટિકાદિમય શિખરો પર અધિક ચમકતી વીજળી જેવી કાન્તિથી દિશાઓને ઝગમગાવતાં, **'श्रीः'** સંપત્તિ, સાક્ષાત્ મૂર્તિમંત થઈ, તે જ ભગવત્પરાયણા રમાદેવી પ્રકટ થયાં, એમ અર્થ છે. ॥ ૮ ॥

तस्यां चक्रुः स्पृहां सर्वे ससुरासुरमानवाः।
रूपौदार्यवयोवर्णमहिमाक्षिप्तचेतसः ॥ ९

(લક્ષ્મીદેવીનાં) રૂપ, ઔદાર્ય, વય, વર્ણ તથા મહિમાથી ખેંચાયેલાં મનવાળા દેવો, અસુરો અને માનવો સહિત સર્વ તેમની સ્પૃહા કરવા લાગ્યા. ॥ ૯ ॥

तस्या रूपादिमहिम्ना आक्षिप्तं चेतो येषाम् ॥ ९ ॥

તેમનાં રૂપાદિ મહિમાથી ખેંચાયેલાં મન છે જેમનાં ॥ ૯ ॥

भगवद्वक्षसि स्थितया श्रिया विलोकितानां सुराणां यथापूर्वं संपत्प्राप्तिमसुराणां च तद्विपर्ययं वक्तुमभिषेकादिमहोत्सवपूर्वकं ब्रह्मादिपरिहारेण भगवत्प्राप्तिप्रकारमाह—

ભગવાનના વક્ષઃસ્થળમાં રહેલાં શ્રીદેવી દ્વારા અવલોકિત થયેલા દેવોને પૂર્વવત્ સંપત્તિની પ્રાપ્તિ થઈ તે અને અસુરોને તેનાથી ઊલટું થયું તે કહેવા માટે અભિષેકાદિ મહોત્સવપૂર્વક (શ્રીદેવીએ) બ્રહ્માજી વગેરેને છોડી દઈને ભગવાનને (કેવી રીતે) પ્રાપ્ત કર્યા, તે પ્રકાર જણાવે છે—

तस्या आसनमानिन्ये महेन्द्रो महदद्भुतम्।
मूर्तिमत्यः सरिच्छ्रेष्ठा हेमकुम्भैर्जलं शुचि ॥ १०

તેમને માટે ઈન્દ્રે અત્યંત અદ્ભુત આસન આણ્યું. મૂર્તિમાન થયેલી શ્રેષ્ઠ સરિતાઓએ સુવર્ણના કળશોથી પવિત્ર જળ લાવી આપ્યું. ॥ ૧૦ ॥

तस्या आसनमित्यादिना अथासीद्वारुणीत्यतः प्राक्तनेन ग्रन्थेन ॥ १० ॥

તેમને માટે આસન વગેરે દ્વારા શ્લોક-૧૦ પછીના ગ્રન્થ દ્વારા **'अथ आसीत् वारुणी'** (શ્લોક-૩૦) સુધી (ભગવાનને કેવી રીતે પ્રાપ્ત કર્યા, તે પ્રકાર જણાવે છે.) ॥ ૧૦ ॥

आभिषेचनिका भूमिराहरत् सकलौषधीः।
गावः पञ्चपवित्राणि वसन्तो मधुमाधवौ॥ ११

આભિષેચનિકા અભિષેકોચિતાઃ। પઞ્ચ-

आभिषेचनिका अभिषेकोचिताः। पञ्च-पवित्राणि पञ्चगव्यानि। मधुमाधवौ चैत्रवैशाखभवं फलपुष्पादि। पाठान्तरेऽपि द्वन्द्वैक्ये स एवार्थः। मधुमासे भवं मध्विति वा॥ ११॥

वंशीधरी—आभिषेचनिकाः—

'कुष्ठं मांसी हरिद्रे द्वे मुरा शैलेयचन्दनम्।
वचाचम्पकमुस्ताश्च सर्वौषध्यो दश स्मृताः॥
विष्णुक्रान्ता सहदेवा तुलसी च शतावरी।
मूलानीमानि गृह्णीयात्सर्वाभावे विशेषतः॥'
इत्याद्युक्तेः।

*पञ्चगव्यम्—

'पयः काञ्चनवर्णायाः नीलायाश्च घृतं तथा।
दधि च कृष्णवर्णायाः श्वेताया गोमयं तथा।
गोमूत्रं ताम्रवर्णाया इत्येतत्पञ्चगव्यकम्॥'
इति स्मृतेः। पञ्चवर्णास्ता ग्राह्याः।

ऋषयः कल्पयाञ्चक्रुरभिषेकं यथाविधि।
जगुर्भद्राणि गन्धर्वा नट्यश्च ननृतुर्जगुः॥ १२

अभिषेकं अभिषेकोचितं विधिम्। नट्यो नटानां स्त्रियः॥ १२॥

मेघा मृदङ्गपणवमुरजानकगोमुखान्।
व्यनादयन् शङ्खवेणुवीणास्तुमुलनिःस्वनान्॥ १३

પૃથ્વીએ અભિષેકને યોગ્ય સર્વ ઔષધિઓ લાવી આપી. ગાયોએ પાંચ પવિત્ર સામગ્રીઓ (પંચગવ્ય *) આપી. વસંત ઋતુએ ચૈત્ર-વૈશાખમાં થતાં ફળો અને પુષ્પો લાવી આપ્યાં.॥ ૧૧॥

'**आभिषेचनिकाः**' અભિષેકને યોગ્ય સામગ્રીઓ– '**पञ्चपवित्राणि**' પવિત્ર પંચગવ્ય, '**मधुमाधवौ**' ચૈત્ર અને વૈશાખમાં થતાં ફળો અને ફૂલો– (**मधुमाधवौ** ને બદલે **मधुमाधवम्**) પાઠાંતરમાં પણ દ્વન્દ્વૈક્ય સમાસ પ્રમાણે તે જ અર્થ છે. અથવા મધુમાસમાં થતું મધ॥ ૧૧॥ (સમાસ દ્વિવચનમાં અપેક્ષિત હોય છતાં એ.વ. આવે તે દ્વન્દ્વૈક્ય સમાસ છે.)

અભિષેક કરવા માટેનાં દ્રવ્યો—

'કુષ્ઠ, જટામાંસી, લીલી હળદર અને આંબા હળદર, મુરા, શિલાજીત, ચંદન, વજ, ચંપક અને મુસ્તા– આ સર્વ દસ ઔષધિઓ સ્મૃતિ અનુસાર છે. તે સર્વના અભાવમાં વિષ્ણુક્રાન્તા (અપરાજિતા), સહદેવા, તુલસી અને શતાવરી– આ ઔષધિઓનાં મૂળ વિશેષરૂપે ગ્રહણ કરવાં' વગેરે કહેવાયું છે.

પંચગવ્ય *–'કંચનવર્ણી ગાયનું દૂધ, નીલવર્ણી ગાયનું ઘી, શ્યામવર્ણી ગાયનું દહીં, સફેદવર્ણી ગાયનું છાણ અને તાંબાવર્ણી ગાયનું ગોમૂત્ર– આ પંચગવ્ય છે. એમ સ્મૃતિ છે.' તે પાંચ વર્ણો ગ્રહણ કરવા યોગ્ય છે.

ઋષિઓએ વિધિ અનુસાર અભિષેક સંપન્ન કર્યો. ગંધર્વો માંગલિક ગીતો ગાવા લાગ્યા તથા નટોની સ્ત્રીઓ નાચવા લાગી અને ગાવા લાગી.॥ ૧૨॥

'**अभिषेकम्**' અભિષેકને યોગ્ય વિધિ, '**नट्यः**' નટોની સ્ત્રીઓ॥ ૧૨॥

વાદળો ભીષણ નાદ કરનારાં મૃદંગ, પણવ, ઢોલક, નગારાં, રણશિંગાં, શંખો, વાંસળીઓ તથા વીણા વગાડવા લાગ્યાં.॥ ૧૩॥

शङ्खवेणुवीणाश्च व्यनादयन्। तुमुलो निःस्वनो येषां तान् मृदङ्गादीन्॥ १३॥

भ.मनो.—मेघाः मूर्तिमन्तो घनाः व्यनादयन्।

(વાદળો) શંખો, વાંસળીઓ અને વીણા વગાડવા લાગ્યા. જેમનો ભીષણ નાદ છે તે મૃદંગ વગેરેને॥ ૧૩॥

વાદળો મૂર્તિમંત થઈ સદેહે વાદ્યો વગાડવા લાગ્યાં.

ततोऽभिषिषिचुर्देवीं श्रियं पद्मकरां सतीम्।
दिगिभाः पूर्णकलशैः सूक्तवाक्यैर्द्विजेरितैः॥ १४॥

॥ १४॥

ત્યાર પછી (ઐરાવત વગેરે) દિગ્ગજો (આકાશગંગાના જળથી ભરેલા) પૂર્ણકુંભો દ્વારા બ્રાહ્મણો વડે ઉચ્ચારણ કરવામાં આવેલા વેદમંત્રો સહિત પદ્મહસ્તા સતી શ્રીદેવીનો અભિષેક કરવા લાગ્યા.॥ ૧૪॥ ૧૪॥

समुद्रः पीतकौशेयवाससी समुपाहरत्।
वरुणः स्रजं वैजयन्तीं मधुना मत्तषट्पदाम्॥ १५॥

॥ १५॥

સમુદ્રે બે પીળાં રેશમી વસ્ત્રો આણ્યાં. વરુણે મધુમય સુગંધથી ઉન્મત્ત થયેલા ભમરાઓવાળી વૈજયન્તી માળા લાવી આપી.॥ ૧૫॥ ૧૫॥

वंशीधरी—अभिषेकानन्तरं पीतवस्त्रस्यैव विहितत्वात्।

અભિષેક પછી પીળાં વસ્ત્રોનું જ વિધાન કરવામાં આવ્યું હોવાથી (સમુદ્રે પીળાં વસ્ત્રો આણ્યાં).

भूषणानि विचित्राणि विश्वकर्मा प्रजापतिः।
हारं सरस्वती पद्ममजो नागाश्च कुण्डले॥ १६॥

॥ १६॥

પ્રજાપતિ વિશ્વકર્માએ જાતજાતનાં આભૂષણો, સરસ્વતી દેવીએ (મોતીનો) હાર, બ્રહ્માજીએ કમળ અને નાગોએ બે કુંડળો લાવી આપ્યાં.॥ ૧૬॥ ૧૬॥

ततः कृतस्वस्त्ययनोत्पलस्रजं
नदद्द्विरेफां परिगृह्य पाणिना।
चचाल वक्त्रं सुकपोलकुण्डलं
सव्रीडहासं दधती सुशोभनम्॥ १७॥

॥ १७॥

જેમનું (બ્રાહ્મણો દ્વારા) સ્વસ્તિવાચન કરવામાં આવ્યું છે તેવાં લક્ષ્મીજી હાથથી (હાથમાં) ગુંજારવ કરતા ભમરાઓવાળી પદ્મમાળા લઈ, સુંદર કપોલ ઉપર (લટકતાં) કુંડળ અને લજ્જાયુક્ત મંદસ્મિતવાળું અતિસુંદર મુખારવિંદ ધારણ કરતાં ચાલવા લાગ્યાં.॥ ૧૭॥ ૧૭॥

स्तनद्वयं चातिकृशोदरी समं
निरन्तरं चन्दनकुङ्कुमोक्षितम्।
ततस्ततो नूपुरवल्गुशिञ्जितै-
र्विसर्पती हेमलतेव सा बभौ॥ १८॥

॥ १८॥

અતિ કૃશ ઉદરવાળાં, જે બંને વચ્ચે અંતર નથી તેવાં સમાન અને ચંદન-કુંકુમથી પ્રોક્ષણ કરાયેલાં સ્તનદ્વય ધારણ કરતાં, ઝાંઝરના સુંદર ઝણકાર સાથે આમતેમ સરકતાં તે લક્ષ્મીજી સુવર્ણની લતા જેવાં શોભતાં હતાં.॥ ૧૮॥ ૧૮॥

विलोकयन्ती निरवद्यमात्मनः
पदं ध्रुवं चाव्यभिचारिसद्गुणम्।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धचारण-
त्रैविष्टपेयादिषु नान्वविन्दत॥ १९

સર્વદોષરહિત, વિનાશરહિત (નિત્ય) સ્થાયી ગુણોવાળા પોતાના આશ્રયસ્થાન (રૂપ પતિ)ને શોધતાં એવાં તેમને ગંધર્વો, યક્ષો, અસુરો, સિદ્ધો, ચારણો તથા દેવો વગેરેમાં કોઈ (સ્વમનોજ્ઞ વર) પ્રાપ્ત થયો નહીં.॥ ૧૯॥

पदमाश्रयम्। ध्रुवं नित्यम्। अव्यभिचारिणो नित्याः सन्तो गुणा यस्मिंस्तं नान्वविन्दत। क्वचित्कस्यचिद्दोषस्य सद्भावात्॥ १९॥

तदेवाह—**नूनमिति** त्रिभिः।

नूनं तपो यस्य न मन्युनिर्जयो
ज्ञानं क्वचित् तच्च न सङ्गवर्जितम्।
कश्चिन्महांस्तस्य न कामनिर्जयः
स ईश्वरः किं परतो व्यपाश्रयः॥ २०

मन्युनिर्जयो नास्ति दुर्वासःप्रभृतिषु। गुरुशुक्रादिषु सङ्गवर्जितं ज्ञानं नास्ति। महत्त्वेऽपि ब्रह्मसोमादौ न कामनिर्जयः। परतो व्यपाश्रयः परापेक्ष इन्द्रादिः स किमीश्वरः॥ २०॥

धर्मः क्वचित् तत्र न भूतसौहृदं
त्यागः क्वचित् तत्र न मुक्तिकारणम्।
वीर्यं न पुंसोऽस्त्यजवेगनिष्कृतं
न हि द्वितीयो गुणसङ्गवर्जितः॥ २१

न भूतसौहृदं परशुरामादिषु। न मुक्तिकारणं त्यागः शिबिप्रभृतिषु। पुंसः कार्तवीर्यादेर्वीर्यमस्ति। अजवेगनिष्कृतं कालवेगेन परिहृतं तु न भवति। गुणसङ्गवर्जितः सनकादिर्द्वितीयो मम वरो न हि, समाधिनिष्ठत्वात्॥ २१॥

क्वचिच्चिरायुर्न हि शीलमङ्गलं
क्वचित् तदप्यस्ति न वेद्यमायुषः।
यत्रोभयं कुत्र च सोऽप्यमङ्गलः
सुमङ्गलः कश्च न काङ्क्षते हि माम्॥ २२

‘**पदम्**’ આશ્રયને, ‘**ध्रुवम्**’ વિનાશરહિતને, ‘**अव्यभिचारिणः**’ સ્થાયી, બદલાય નહીં તેવા સદ્‌ગુણો છે જેમનામાં તેવું કોઈ મળ્યું નહીં, ક્યાંક કોઈક દોષ હોવાથી॥ ૧૯॥

(દોષ છે) તે ત્રણ શ્લોકો વડે જણાવે છે—‘**नूनम् इति।**’

ખરેખર, જેમનામાં તપ છે ત્યાં ક્રોધવિજય નથી. ક્યાંક જ્ઞાન છે તે આસક્તિરહિત નથી. કોઈ મહાન છે તેનામાં કામવિજય નથી. જેને બીજાનો આશ્રય લેવો પડે તે શું ઈશ્વર કહેવાય?॥ ૨૦॥

દુર્વાસા વગેરેમાં ક્રોધવિજય નથી. બૃહસ્પતિ, શુક્રાચાર્ય વગેરેમાં આસક્તિરહિત જ્ઞાન નથી. મહત્ત્વ હોવા છતાં પણ બ્રહ્માજી, ચન્દ્ર વગેરેમાં કામવિજય નથી. ઈન્દ્ર વગેરે ‘**परतः व्यपाश्रयः**’ બીજાનો આધાર રાખનાર છે, તે શું ઈશ્વર કહેવાય?॥ ૨૦॥

કોઈક સ્થળે ધર્મ છે, પણ ત્યાં પ્રાણીઓ પ્રત્યે મિત્રભાવ નથી. ક્યાંક ત્યાગ છે, પણ તે મુક્તિનું કારણ નથી. (કોઈ) મનુષ્યનું પરાક્રમ છે, પણ તે કાળના વેગથી મુક્ત નથી. ગુણસંગથી (વિષયાસક્તિથી) રહિત છે તે (શ્રીહરિ સિવાય) બીજો કોઈ (મારે યોગ્ય) નથી.॥ ૨૧॥

પરશુરામ વગેરેમાં પ્રાણીઓ પ્રત્યે મિત્રભાવ નથી. શિબિ વગેરેમાં ત્યાગ છે, પણ તે મુક્તિનું કારણ નથી. ‘**पुंसः**’ કાર્તવીર્યાદિ પુરુષમાં પરાક્રમ છે, પણ તે ‘**अजवेगनिष्कृतम्**’ કાળના વેગથી મુક્ત નથી. ગુણસંગથી રહિત સનકાદિ અદ્વૈતની સમાધિમાં પરિનિષ્ઠિત હોવાથી (શ્રીહરિ સિવાય) બીજો (કોઈ મારે યોગ્ય) નથી.॥ ૨૧॥

ક્યાંક દીર્ઘ આયુષ્ય છે, તો શીલ મંગળ નથી. ક્યાંક તો તે (શીલ મંગળ) પણ છે, પરંતુ આયુષ્યની (સ્થિરતા) જણાતી નથી. વળી, જ્યાં ક્યાંક (આ) બંને છે, તે પણ અમંગળ જ છે અને જે કોઈક સર્વ રીતે મંગળ છે, તે તો મારી આકાંક્ષા જ રાખતા નથી.॥ ૨૨॥

चिरायुष्यपि मार्कण्डेयादौ शीलमङ्गलं नास्ति, इन्द्रियदमनशीलत्वात्। क्वचित्तदप्यस्ति हिरण्यकशिपुप्रभृतौ, आयुषः स्थैर्यं न वेद्यं दुर्ज्ञातम्, भगवद्द्वेषेणाकस्मादेव मृत्युसंभवात्। यत्र कुत्र च श्रीरुद्रे मार्कण्डेयादिवदिन्द्रिय-दमनाद्यभावाच्छीलमङ्गलं चायुर्निश्चयश्चेत्युभय-मस्ति न चान्यः पूर्वोक्तः कश्चिद्दोषः। तथापि सोऽप्यमङ्गलः श्मशानवासाद्यमङ्गलचेष्टितः।

માર્કંડેય વગેરે દીર્ઘાયુષી છે પણ તેઓનું શીલ મંગળ નથી, કારણ કે તેઓ ઇન્દ્રિયોનું દમન કરનારા છે. હિરણ્યકશિપુ વગેરેમાં તે છે પણ આયુષ્યની સ્થિરતા **'न वेद्यम्'** જાણવી મુશ્કેલ છે, કારણ કે ભગવાન ઉપર દ્વેષ હોવાથી અચાનક મૃત્યુ થવાનો સંભવ છે. વળી, જ્યાં ક્યાંક માર્કંડેયાદિની જેમ ઇન્દ્રિયદમનાદિનો અભાવ હોવાથી શીલ પણ મંગળ છે અને આયુષ્યની પણ સ્થિરતા છે તેવા શ્રીરુદ્રમાં પૂર્વોક્ત કે અન્ય કોઈ દોષ નથી, તેમ છતાં તે પણ અમંગળ છે, સ્મશાનમાં નિવાસ વગેરે અમંગળ ચરિત્રવાળા છે.

श्रीमुकुन्दं लक्षीकृत्याह—कश्चेति। कश्चित् सुमङ्गलो निरवद्यश्च स तु मां न हि काङ्क्षते, आत्मारामत्वात्॥ २२॥

શ્રીમુકુંદ ભગવાનને અનુલક્ષીને કહે છે— **'कः च इति।'** કોઈક સર્વ રીતે મંગળ અને નિર્દોષ છે, પણ તે તો આત્મારામ હોવાથી મારી આકાંક્ષા જ રાખતા નથી.॥ २२॥

एवं विमृश्याव्यभिचारिसद्गुणै-
र्वरं निजैकाश्रयतागुणाश्रयम्।
वव्रे वरं सर्वगुणैरपेक्षितं
रमा मुकुन्दं निरपेक्षमीप्सितम्॥ २३

આમ, વિચારીને શ્રીરમાદેવી નિત્ય નિવાસ કરનારા શ્રેષ્ઠ ગુણો દ્વારા સ્વરૂપભૂત પરમાનંદના આશ્રયને કારણે અને અન્યની અપેક્ષારહિત હોવાથી સર્વોત્તમ, પ્રકૃતિના ગુણોથી રહિત, સર્વ અણિમાદિ સિદ્ધિઓ દ્વારા વરણ કરાયેલા, (રમાદેવીની) અપેક્ષા ન રાખનારા અને પોતે પ્રાપ્ત કરવા ઇચ્છેલા શ્રીમુકુન્દ ભગવાનને જ વરરૂપે વર્યાં.॥ ૨૩॥

एवं विमृश्य रमा निरपेक्षमपि मुकुन्दमेव वरं वव्रे। तत्किम्। अव्यभिचारिभिः सद्भिर्धर्म-ज्ञानादिभिर्गुणैर्निजैकाश्रयतया * च नैरपेक्ष्येण

આમ, વિચારીને શ્રીરમાદેવી નિરપેક્ષ એવા શ્રીમુકુન્દ ભગવાનને જ વરરૂપે વર્યાં. તે શા માટે? નિત્ય નિવાસ કરનારા ધર્મ, જ્ઞાનાદિ શ્રેષ્ઠ ગુણો દ્વારા સ્વરૂપભૂત પરમાનંદના આશ્રયને કારણે અને અન્યની

* નોંધ–અહીં શ્રીધરજીનો ઉપલબ્ધ પાઠ **'निजैकाश्रयतया'** છે. વંશીધરજીની ટીકામાં પાઠાંતર **'निजैकाश्रयता'** છે, જે બંને સમાન છે. એટલે વંશીધરજીનું પાઠાંતર જોતાં મૂળપાઠ **'निजैकाश्रयता'** હોવો જોઈએ. જો કે ભાગવતવિદ્યાપીઠ (સોલા) ની આવૃત્તિમાં અને અન્ય પાઠોમાં પણ **'निजैकाश्रयतया'** પાઠ જ પ્રાપ્ત થાય છે.

'निजैकाश्रयता' પાઠ લેવાથી ઇન્દ્રવંશા છંદ (૧૨ અક્ષર, ત ત જ ર) અનુસાર પાઠ છે. આ પાઠમાં પ્રથમા વિભક્તિનો પ્રયોગ આર્ષ છે. અહીં તૃતીયા વિભક્તિનો લોપ થયો છે, પણ તેનો ભાવ **'निजैकाश्रयतया'** પ્રમાણે જ લેવાનો છે. પ્રાચીન પાઠ **'निजैकाश्रयसद्गुणाश्रयम्'** પણ પ્રાપ્ત થાય છે.

वरं सर्वोत्तमम्। तत्र हेतुः—अगुणाश्रयं प्रकृतिगुणातीतम्। पाठान्तरेऽप्ययमेवार्थः। अत एव स्वस्य ईप्सितम्। किंच सर्वैर्गुणैरणिमादि-भिरपेक्षितं वृतम्।

અપેક્ષા ન હોવાથી **'वरम्'** સર્વોત્તમને (વર્યાં). તે માટેનું કારણ— **'अगुणाश्रयम्'** પ્રકૃતિના ગુણોથી રહિતને, પાઠાંતરમાં પણ આ જ અર્થ છે. આથી જ પોતાના પ્રાપ્ત કરવા ઈચ્છેલા (વરને વર્યાં). વળી **'सर्वगुणैः'** અણિમાદિ (સર્વ સિદ્ધિઓ) દ્વારા **'अपेक्षितम्'** વરણ કરવામાં આવેલા(ભગવાન)ને.

अयं भावः—यद्यपि स्वयमात्मारामत्वेनान्य-निरपेक्षस्तथाप्याश्रिता अणिमादिसिद्धीर्यथा नोपेक्षते तद्वन्मामपि नोपेक्षेत। तावतैव तत्सेवयाऽहं कृतार्था स्यां किमन्यैः प्राकृतैरिति तमेव वृतवतीति॥ २३॥

ભાવ આ પ્રમાણે છે— જો કે સ્વયં આત્મારામ હોવાથી ભગવાન અન્યથી નિરપેક્ષ છે, છતાં પણ પોતાનો આશ્રય કરનારી અણિમાદિ સિદ્ધિઓની તેઓ જેમ ઉપેક્ષા કરતા નથી, તેમ મારી પણ ઉપેક્ષા નહીં કરે. તેટલાથી જ તેમની સેવા કરીને હું કૃતાર્થ થઈશ. અન્ય પ્રાકૃત જનોથી મારે શું પ્રયોજન છે? એમ વિચારીને રમાદેવીએ ભગવાનનું વરણ કર્યું.॥ ૨૩॥

तदेवाह—

(શ્રીરમાદેવીના) તે (વરણનું) જ વર્ણન કરે છે.

तस्यांसदेश उशतीं नवकञ्जमालां
माद्यन्मधुव्रतवरूथगिरोपघुष्टाम् ।
तस्थौ निधाय निकटे तदुरःस्वधाम
सव्रीडहासविकसन्नयनेन याता॥ २४

તે ભગવાન વિષ્ણુના (સ્કંધદેશ) કંઠમાં મદોન્મત્ત ભ્રમરવૃન્દના ગુંજનથી ગુંજી રહેલી, નવીન કમળોની કમનીયમાળા પહેરાવીને, લજ્જાયુક્ત સ્મિતથી પ્રફુલ્લિત થતા નયને, ભગવાનના વક્ષઃસ્થળરૂપ સ્વધામ પાસે ગયાં અને તેમની નિકટમાં આવીને ઊભાં રહ્યાં.॥ ૨૪॥

तस्यांसदेशे कमनीयां नवकञ्जमालां निधाय तदनुग्रहं प्रतीक्षमाणा तूष्णीं तस्य निकटे तस्थौ। कथंभूतां मालाम्। माद्यन्तो ये मधुव्रतास्तेषां वरूथस्य गिरा उपघुष्टां नादिताम्।

તેમના સ્કંધદેશ (કંઠ)માં નૂતન કમળોની કમનીય માળા પહેરાવી, તેમના અનુગ્રહની પ્રતીક્ષા કરતાં, મૌન થઈ તેમની પાસે ઊભાં રહ્યાં. કેવી માળાને? ઉન્મત્ત થયેલા જે ભ્રમરો છે તેમના સમૂહના ગુંજનથી **'उपघुष्टाम्'** ગુંજતી માળાને.

कथंभूता श्रीः। सव्रीडहासेन विकसन्नयनं तेन तस्योरःस्वधाम याता सती। वक्षःप्रतीक्षमाणा तस्थावित्यर्थः॥ २४॥

કેવાં શ્રીરમાદેવી? લજ્જાયુક્ત સ્મિતથી પ્રફુલ્લિત થતાં નેત્રવાળાં રમાદેવી, તેમના વક્ષઃસ્થળરૂપ સ્વધામ પાસે ગયાં અને વક્ષઃસ્થળની પ્રતીક્ષા કરતાં ઊભાં રહ્યાં, એમ અર્થ છે.॥ ૨૪॥

वंशीधरी—तदुक्तम्—

'एष ब्रह्मातिवृद्धस्तपति दिनपति-
श्चञ्चलो मातरिश्वा
दिग्वासा नीलकण्ठः सुरपतिरसमो
गर्वितः क्षीयतेऽब्जः।
इत्थं देव्या विचिन्त्य भ्रमरकुलकला-
गीतशब्दप्रफुल्ला
दत्ता माला मुरारेः सुरतरुकुसुमा-
लङ्कृता पातु युष्मान्॥'

इत्युक्तमभियुक्तैः। (છંદ- સ્રગ્ધરા)

भगवानपि त्रैलोक्याभिवृद्धये स्ववक्षस्तस्याः स्थानं ददावित्याह—**तस्या इति**।

तस्याः श्रियस्त्रिजगतो जनको जनन्या
वक्षो निवासमकरोत् परमं विभूतेः।
श्रीः स्वाः प्रजाः सकरुणेन निरीक्षणेन
यत्र स्थितैधयत साधिपतींस्त्रिलोकान्॥ २५

विशिष्टा भूतयो विभवा यस्याः तस्यास्त्रिजगतो जनन्याः श्रियः। परमं सुस्थिरम्। ऐधयतावर्धयत्॥ २५॥

शङ्खतूर्यमृदङ्गानां वादित्राणां पृथुः स्वनः।
देवानुगानां सस्त्रीणां नृत्यतां गायतामभूत्॥ २६

॥ २६॥

ब्रह्मरुद्राङ्गिरोमुख्याः सर्वे विश्वसृजो विभुम्।
ईडिरेऽवितथैर्मन्त्रैस्तल्लिङ्गैः पुष्पवर्षिणः॥ २७

तल्लिङ्गैर्विष्णुप्रतिपादकैः। अवितथैर्यथार्थैः॥ २७॥

તે કહેવામાં આવ્યું છે— 'આ બ્રહ્માજી અતિ વૃદ્ધ છે. દિનપતિ સૂર્ય તપ્યા જ કરે છે. આકાશમાં વાતો વાયુ ચંચળ છે. નીલકંઠ મહાદેવજી દિગંબર છે. સુરપતિ ઈન્દ્ર વિષમ અને ગર્વીલા છે, ચન્દ્ર ક્ષીણ થાય છે. આમ વિચાર કરીને સુરતરુનાં કુસુમોથી અલંકૃત થયેલી અને ભ્રમરવૃંદના અસ્પષ્ટ મધુરગીતના ગુંજારવથી ખીલેલી શ્રીમુરારિને અર્પણ કરવામાં આવેલી માળા તમારું રક્ષણ કરો.' એમ સુવિજ્ઞજનો દ્વારા કહેવાયું છે.

શ્રીભગવાને પણ ત્રણેય લોકની અભિવૃદ્ધિ માટે પોતાના વક્ષ:સ્થળમાં તેમને સ્થાન આપ્યું, એમ કહે છે— **'तस्याः इति।'**

ત્રિજગત્પિતા શ્રીભગવાને વિશિષ્ટ વૈભવોવાળાં ત્રિભુવનજનની શ્રીદેવીને માટે પોતાના વક્ષ:સ્થળમાં સર્વકાલીન વાસ કરી આપ્યો. જ્યાં રહેલાં શ્રીદેવીએ પોતાના કરુણાભર્યા નિરીક્ષણથી લોકપાલો સહિત ત્રણેય લોક અને પોતાની પ્રજાઓની અભિવૃદ્ધિ કરી.॥ ૨૫॥

વિશિષ્ટ **'भूतयः'** વૈભવો છે જેમનાં તે ત્રણેય જગતનાં જનની શ્રીદેવીને માટે-**'परमम्'** સુસ્થિર, અવિચળ, સર્વકાલીન (વાસ કરી આપ્યો), **'ऐधयत'** અભિવૃદ્ધિ કરી.॥ ૨૫॥

(તે સમયે) સ્ત્રીઓ સહિત નૃત્ય કરતા અને ગાતા એવા દેવોના અનુચરોનો અને શંખો, તૂરિ, મૃદંગો અને વાજાંઓનો ભારે નાદ થવા લાગ્યો.॥ ૨૬॥ ૨૬॥

બ્રહ્માજી, શ્રીરુદ્ર અને અંગિરા જેમાં મુખ્ય છે તે પુષ્પવૃષ્ટિ કરતા સર્વ પ્રજાપતિઓ તે વિષ્ણુ ભગવાન(ના ગુણો)નું પ્રતિપાદન કરતા યથાર્થ મંત્રો વડે વિભુ શ્રીહરિની સ્તુતિ કરવા લાગ્યા.॥ ૨૭॥

'तत्-लिङ्गैः' તે વિષ્ણુ ભગવાન (નાં ગુણો, લીલા, સ્વરૂપ અને ધામ)નું પ્રતિપાદન કરતા મંત્રો દ્વારા, **'अवितथैः'** યથાર્થ મંત્રો વડે॥ ૨૭॥

श्रिया विलोकिता देवाः सप्रजापतयः प्रजाः ।
शीलादिगुणसम्पन्ना लेभिरे निर्वृतिं पराम् ॥ २८ ॥ २८ ॥

निःसत्त्वा लोलुपा राजन् निरुद्योगा गतत्रपाः ।
यदा चोपेक्षिता लक्ष्म्या बभूवुर्दैत्यदानवाः ॥ २९ ॥ २९ ॥

अथासीद् वारुणी देवी कन्या कमललोचना ।
असुरा जगृहुस्तां वै हरेरनुमतेन ते ॥ ३०

वारुणी वरुणदैवत्यं यदन्नं तन्मयी सुरा ॥ ३० ॥

अथोदधेर्मथ्यमानात् काश्यपैरमृतार्थिभिः ।
उदतिष्ठन्महाराज पुरुषः परमाद्भुतः ॥ ३१ ॥ ३१ ॥

दीर्घपीवरदोर्दण्डः कम्बुग्रीवोऽरुणेक्षणः ।
श्यामलस्तरुणः स्रग्वी सर्वाभरणभूषितः ॥ ३२

दीर्घौ पीवरौ दोर्दण्डौ यस्य। कम्बुग्रीवः शङ्खनाभिरिव त्रिरेखा सुवृत्ता ग्रीवा यस्य॥ ३२॥

पीतवासा महोरस्कः सुमृष्टमणिकुण्डलः ।
स्निग्धकुञ्चितकेशान्तः सुभगः सिंहविक्रमः ॥ ३३

स्निग्धः कुञ्चितः केशानामन्तो यस्य॥ ३३ ॥

अमृतापूर्णकलशं बिभ्रद् वलयभूषितः ।
स वै भगवतः साक्षाद्विष्णोरंशांशसम्भवः ॥ ३४ ॥ ३४ ॥

શ્રીદેવી દ્વારા અવલોકિત થયેલા પ્રજાપતિઓ સહિત દેવો અને પ્રજાઓ શીલ વગેરે ગુણોથી સમ્પન્ન થઈ પરમ શાન્તિ પામ્યા.॥ ૨૮ ॥ ૨૮ ॥

હે રાજા, જ્યારે લક્ષ્મીજી દ્વારા દૈત્યો અને દાનવો ઉપેક્ષિત થયા, ત્યારે તેઓ સત્ત્વહીન (નિર્બળ), લોલુપ, ઉદ્યોગરહિત અને નિર્લજ્જ થઈ ગયા.॥ ૨૯ ॥ ૨૯ ॥

ત્યાર પછી કમલનયની કન્યા વારુણી દેવી ઉત્પન્ન થઈ. શ્રીહરિની અનુમતિથી તે અસુરોએ જ તેને લઈ લીધી.॥ ૩૦ ॥

‘**वारुणी**’ વરુણદેવને માન્ય એવું જે અન્ન છે તે અન્નમયી સુરા ॥ ૩૦ ॥

હે મહારાજ (પરીક્ષિત), હવે અમૃતની ઈચ્છાવાળા કશ્યપ ઋષિના પુત્રો (દેવો અને દાનવો) દ્વારા મંથન કરવામાં આવતા સમુદ્રમાંથી (એક) પરમ અદ્ભુત પુરુષ ઉત્પન્ન થયા. ॥ ૩૧ ॥ ૩૧ ॥

દીર્ઘ અને પુષ્ટ ભુજદંડવાળા, શંખ જેવી ગ્રીવાવાળા, અરુણ નેત્રોવાળા, શ્યામ, તરુણ, પુષ્પમાળા ધારણ કરેલા, સર્વ અલંકારોથી સુશોભિત ॥ ૩૨ ॥

દીર્ઘ અને પુષ્ટ ભુજદંડ છે જેમના, ‘**कम्बुग्रीवः**’ શંખની નાભિ જેવી ત્રણ રેખાથી સારી રીતે વીંટાયેલી ગ્રીવા છે જેમની ॥ ૩૨ ॥

પીળાં વસ્ત્રોવાળા, વિશાળ છાતીવાળા, ચમકતા મણિનાં કુંડળવાળા, (સુંવાળા) ચળકતા અને વાંકડિયા કેશના છેડાવાળા, સુંદર અને સિંહ જેવા પરાક્રમવાળા, ॥ ૩૩ ॥

સુંવાળા, ચળકતા કેશના છેડા છે જેમના ॥ ૩૩ ॥

અમૃતથી ભરેલો કળશ ધારણ કરતા, કડાંથી શોભતા તે સાક્ષાત્ ભગવાન વિષ્ણુના અંશના અંશમાંથી ઉત્પન્ન થયા હતા.॥ ૩૪ ॥ ૩૪ ॥

धन्वन्तरिरिति ख्यात आयुर्वेददृगिज्यभाक्।
तमालोक्यासुराः सर्वे कलशं चामृताभृतम्॥ ३५

આયુર્વેદના દ્રષ્ટા અને યજ્ઞભાગના ભોક્તા તે 'ધન્વન્તરિ' નામથી પ્રસિદ્ધ થયા. તે અમૃતથી ભરેલા કળશને જોઈને॥ ૩૫॥

लिप्सन्तः सर्ववस्तूनि कलशं तरसाऽहरन्।
नीयमानेऽसुरैस्तस्मिन्कलशेऽमृतभाजने ॥ ३६

(કામધેનુ વગેરે) સર્વ વસ્તુઓ પડાવી લેવાની ઈચ્છા રાખતા સર્વ અસુરોએ ઝડપથી અમૃતનો કળશ ઝૂંટવી લીધો. અસુરો દ્વારા અમૃતપાત્ર કળશને ઝૂંટવી લેવામાં આવ્યો ત્યારે॥ ૩૬॥

विषण्णमनसो देवा हरिं शरणमाययुः।
इति तद्दैन्यमालोक्य भगवान्भृत्यकामकृत्।
मा खिद्यत मिथोऽर्थं वः साधयिष्ये स्वमायया॥ ३७

વિષાદયુક્ત મનવાળા દેવો શ્રીહરિને શરણે આવ્યા. પોતાના સેવકોની કામનાઓ પૂર્ણ કરનારા ભગવાને તેમનું આવું દૈન્ય જોઈને (કહ્યું કે હે દેવો!) મારી યોગમાયાથી હું તેમનામાં પરસ્પર (ક્લેશ ઉત્પન્ન કરાવી) તમારું પ્રયોજન સાધીશ. તમે ખેદ કરશો નહીં.॥ ૩૭॥

इज्यभाक् यज्ञभागभोक्ता। अमृतेन आभृतं परिपूर्णम्॥ ३५॥ ३६॥

'इज्यभाक्' યજ્ઞભાગના ભોક્તા– અમૃતથી **'आभृतम्'** પરિપૂર્ણ કળશને॥ ૩૫॥ ૩૬॥

मिथो दैत्यानां परस्परं कलहोत्पादनेन, योगमायया च मोहिन्या वोऽर्थं साधयिष्यामि। अतो मा खिद्यतेत्याहेति शेषः॥ ३७॥

'मिथः' દેવોમાં પરસ્પર કલહ ઉત્પન્ન કરીને તથા યોગમાયાથી અને મોહિની દ્વારા તમારું પ્રયોજન સાધીશ. આથી ખેદ કરશો નહીં. એમ કહ્યું, એટલું શેષ છે.॥ ૩૭॥

तदेवाह—**मिथ इति**।

તે કલહનું જ વર્ણન કરે છે— **'मिथः इति।'**

मिथः कलिरभूत्तेषां तदर्थे तर्षचेतसाम्।
अहं पूर्वमहं पूर्वं न त्वं न त्वमिति प्रभो॥ ३८

હે પ્રભુ (રાજા પરીક્ષિત), તે અમૃત માટે તૃષ્ણાયુક્ત મનવાળા તે દૈત્યોમાં 'હું પહેલાં, હું પહેલાં, તું નહીં, તું નહીં.' એમ પરસ્પર કલહ થયો.॥ ૩૮॥

तर्षः कामस्तद्युक्तानि चेतांसि येषाम्। इत्येवं समबलानां कलिरभूत्॥ ३८॥

'तर्षः' તૃષ્ણા, તેનાથી યુક્ત મન છે જેમનાં– આમ આ રીતે સમાન બળવાળાઓની વચ્ચે કલહ થયો.॥ ૩૮॥

दुर्बलानां त्वाक्रोशप्रकारमाह—**देवा इति** द्वाभ्याम्।

દુર્બળ દૈત્યોના આક્રોશનો પ્રકાર બે શ્લોકો વડે વર્ણવે છે— **'देवाः इति।'**

देवाः स्वं भागमर्हन्ति ये तुल्यायासहेतवः।
सत्रयाग इवैतस्मिन्नेष धर्मः सनातनः॥ ३९
इति स्वान्प्रत्यषेधन्वै दैतेया जातमत्सराः।
दुर्बलाः प्रबलान् राजन् गृहीतकलशान् मुहुः॥ ४०

હે રાજા, જેમને અદેખાઈ આવી તે દુર્બળ દૈત્યો અમૃતનો કળશ લઈ જનારા પોતાના જાતભાઈઓને વારંવાર રોકવા લાગ્યા (અને કહેવા લાગ્યા કે) આ અમૃતમાં જેમનો સમાન પરિશ્રમ અને (ધનાદિ) સાધન છે, તે દેવો પોતાના ભાગને યોગ્ય છે અને આ જ સનાતન ધર્મ છે.॥ ૩૯॥ ૪૦॥

ये देवास्तुल्येनायासेन हेतवः साधकाः। तुल्य आयासो हेतुश्च धनादिर्येषामिति वा। सत्रयागे यथा सर्वेषां समं फलं तद्वत्। तथा च श्रुतिः— 'ऋद्धिकामाः सत्रमासीरन्' इति, ये 'यजमानास्ते ऋत्विजः' इति च॥ ३९॥ ४०॥

જે દેવો સમાન પ્રયત્નથી '**હેતવઃ**' (અમૃતપ્રાપ્તિના) સાધન બન્યા અથવા સમાન પરિશ્રમ અને '**હેતુઃ**' ધનાદિ સાધન છે જેમનાં તે. સત્રયાગમાં જેમ સર્વને સમાન ફળ મળે તેમ (દેવો અને દૈત્યોને સમાન ફળ મળવું જોઈએ.) તે અનુસાર શ્રુતિ છે— સમૃદ્ધિની કામનાવાળા જનોએ યજ્ઞસત્રમાં બેસવું જોઈએ અને જે યજમાનો છે તે ઋત્વિજો છે અર્થાત્ યજમાનોને અને ઋત્વિજોને સમાન ફળ મળવું જોઈએ.॥ ૩૯॥ ૪૦॥

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुः सर्वोपायविदीश्वरः।
योषिद्रूपमनिर्देश्यं दधार परमाद्भुतम्॥ ४१

॥ ४१ ॥

આ સમયે સર્વ ઉપાય જાણનારા ભગવાન વિષ્ણુએ અવર્ણનીય, પરમ અદ્‌ભુત, સ્ત્રીરૂપ ધારણ કર્યું.॥ ૪૧॥ ૪૧॥

तद्रूपं वर्णयति पञ्चभिः—

प्रेक्षणीयोत्पलश्यामं सर्वावयवसुन्दरम्।
समानकर्णाभरणं सुकपोलोन्नसाननम्॥ ४२

नवयौवननिर्वृत्तस्तनभारकृशोदरम्।
मुखामोदानुरक्तालिझङ्कारोद्विग्नलोचनम्॥ ४३

बिभ्रत् स्वकेशभारेण मालामुत्फुल्लमल्लिकाम्।
सुग्रीवकण्ठाभरणं सुभुजाङ्गदभूषितम्॥ ४४

विरजाम्बरसंवीतनितम्बद्वीपशोभया।
काञ्च्या प्रविलसद्वल्गुचलच्चरणनूपुरम्॥ ४५

सव्रीडस्मितविक्षिप्तभ्रूविलासावलोकनैः।
दैत्ययूथपचेतःसु काममुद्दीपयन् मुहुः॥ ४६

તે રૂપનું પાંચ શ્લોકો દ્વારા વર્ણન કરે છે—

દર્શનીય નીલકમળ જેવું સુંદર અંગ-પ્રત્યંગવાળું, સમાન કર્ણોમાં આભૂષણવાળું, સુંદર કપોલ, ઉન્નત નાસિકા અને ઉત્કૃષ્ટ મુખવાળું, નવયૌવનને કારણે સંપન્ન સ્તનોના ભારથી કૃશ ઉદરવાળું, મુખની સુંગધથી આસક્ત થયેલા ભમરાઓના ગુંજનને કારણે ઉદ્વિગ્ન નયનોવાળું, ખીલેલી જૂઈની માળાને પોતાના કેશના ભારથી ધારણ કરતું, કંઠમાં આભૂષણયુક્ત સુંદર ગ્રીવાવાળું, સુંદર ભુજાઓમાં પહેરેલાં બાજુબંધથી શોભતું, સ્વચ્છ વસ્ત્રોથી આચ્છાદિત નિતંબરૂપ દ્વીપની સુંદરતાથી શોભતા કંદોરાથી શોભતું, સુંદર પગલાં માંડતાં ચરણમાં નૂપુરવાળું, સલજ્જ સ્મિતથી વિક્ષિપ્ત થતા ભ્રૂકુટિવિલાસયુક્ત દષ્ટિપાતથી દૈત્ય સેનાપતિઓનાં ચિત્તમાં વારંવાર કામોદ્દીપન કરતું (સ્ત્રીરૂપ ધારણ કર્યું).॥ ૪૨॥ ૪૩॥ ૪૪॥ ૪૫॥ ૪૬॥

प्रेक्षणीयमुत्पलमिव श्यामम्। सर्वेष्ववयवेषु सुन्दरम्। समानयोः कर्णयोराभरणे यस्मिन्। सुकपोलं च तदुत्कृष्टनासिकं चाननं यस्मिन्॥ ४२॥

દર્શનીય નીલકમળ જેવું, સર્વ અવયવોમાં સુંદરતાવાળું, બંને સમાન કર્ણોમાં બે આભૂષણો છે જે રૂપમાં, સુંદર કપોલ તથા ઉન્નત નાસિકા અને ઉત્કૃષ્ટ મુખ છે જેમાં॥ ૪૨॥

नवयौवननिर्वृत्तयोः स्तनयोर्भारेण च कृशमुदरं यस्मिन्॥ ४३॥

નવયૌવનને કારણે સંપન્ન બંને સ્તનોના ભારથી કૃશ છે ઉદર જે રૂપમાં॥ ૪૩॥

सुष्ठु ग्रीवा यस्मिन्, कण्ठे आभरणं यस्मिंस्तच्च तच्च। शोभना ग्रीवा येन तत्कण्ठाभरणं यस्मिन्निति वा। सुभुजयोरङ्गदाभ्यां भूषितम्॥ ४४॥

સુંદર ગ્રીવા છે જેમાં, કંઠમાં આભૂષણ છે તેવી ગ્રીવા અને તેવું રૂપ અથવા કંઠમાં આભૂષણ છે જેમાં તેવી સુંદર ગ્રીવા છે જે સ્વરૂપમાં, બન્ને બાજુબંધથી શોભતી સુંદર ભુજાઓવાળું॥ ૪૪॥

विरजाम्बरेण संवीतो नितम्ब एव द्वीपो विशालत्वात्तत्र शोभा यस्यास्तया काञ्च्या प्रकर्षेण विलसत्। वल्गु यथा भवत्येवं चलतोश्चरणयोर्नूपुरे यस्मिन्॥ ४५॥

સ્વચ્છ વસ્ત્રથી આચ્છાદિત નિતંબ એ જ દ્વીપ અને વિશાળ હોવાથી જેમાં શોભા છે જેની તે કંદોરાથી અત્યંત શોભતું, સુંદર જેમ હોય તેમ પગલાં માંડતા બંને ચરણોમાં નૂપુર છે જે રૂપમાં॥ ૪૫॥

सव्रीडेन स्मितेन सह विक्षिप्ता कम्पिता या भ्रूस्तस्या विलासेन सह यान्यवलोकितानि तैर्दैत्ययूथपानां चेतस्सु मुहुः काममुद्दीपयत्॥ ४६॥

લજ્જાયુક્ત સ્મિત સહિત **'विक्षिप्ता'** કંપતી જે ભ્રૂકુટિ છે, તેના વિલાસ સહિત જે અવલોકન પામેલા છે, તે દૃષ્ટિપાતોથી દૈત્ય સેનાપતિઓનાં ચિત્તમાં વારંવાર કામોદ્દીપન કરતું સ્ત્રીરૂપ॥ ૪૬॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे
भगवन्मायोपलम्भनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायामष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

❋❋❋❋❋

अथ नवमोऽध्यायः

મોહિનીરૂપ ભગવાનદ્વારા અમૃતની વહેંચણી

नवमे मोहितैर्दैत्यैरर्पितेऽमृतभाजने।
तद्वञ्चनेन देवेभ्योऽमृतं दत्तं तयेर्यते॥ १॥

મોહિત થયેલા દૈત્યો દ્વારા અમૃતનું પાત્ર (શ્રીહરિને) આપી દેવામાં આવ્યું ત્યારે તે દૈત્યોને છેતરીને તે મોહિની દ્વારા દેવોને અમૃત આપવામાં આવ્યું, તે (કથા) નવમા અધ્યાયમાં કહેવામાં આવે છે.॥ ૧॥

श्रीशुक उवाच

तेऽन्योन्यतोऽसुराः पात्रं हरन्तस्त्यक्तसौहृदाः।
क्षिपन्तो दस्युधर्माण आयान्तीं ददृशुः स्त्रियम्॥ १॥ १॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — પરસ્પર સ્નેહ છોડી દેનારા, અમૃતપાત્રને ઝૂંટવતા અને તિરસ્કાર કરતા, ચોર જેવી વર્તણૂકવાળા તે અસુરોએ (ત્યાં) આવતી સ્ત્રીને જોઈ.॥ ૧॥ ૧॥

अहो रूपमहो धाम अहो अस्या नवं वयः।
इति ते तामभिद्रुत्य पप्रच्छुर्जातहृच्छयाः॥ २

'અહો! કેવું રૂપ છે? અહો! કેવું તેજ છે? અહો! આની કેવી તરુણ વય છે?' એમ બોલતા એવા જેમના હૃદયમાં કામ ઉત્પન્ન થયો છે તેવા તે અસુરો તેની સામે દોડીને પૂછવા લાગ્યા.॥ ૨॥

अहो रूपं सौन्दर्यं धाम द्युतिरिति वदन्तः का त्वमित्यादि पप्रच्छुः॥ २॥

અહો! **'रूपम्'** કેવું સૌંદર્ય, **'धाम'** કેવું તેજ, એમ બોલતા 'તું કોણ છે?' વગેરે પૂછ્યું.॥ ૨॥

का त्वं कञ्जपलाशाक्षि कुतो वा किं चिकीर्षसि।
कस्यासि वद वामोरु मथ्नन्तीव मनांसि नः॥ ३

मथ्नन्तीव क्षोभयन्तीव॥ ३॥

कस्यासीत्ययुक्तमुक्तमस्माभिः, यतस्त्वं न केनचिद्भुक्तपूर्वेत्याहुः—**नेति** द्वाभ्याम्।

न वयं त्वाऽमरैर्दैत्यैः सिद्धगन्धर्वचारणैः।
नास्पृष्टपूर्वां जानीमो लोकेशैश्च कुतो नृभिः॥ ४

त्वा त्वाममरादिभिरस्पृष्टपूर्वां न जानीम इति न, अपितु जानीम एव॥ ४॥

आस्तामिदं, त्वद्दर्शनं त्वीश्वरेणैव संपादित-मित्याहुः—**नूनमिति**।

नूनं त्वं विधिना सुभ्रूः प्रेषितासि शरीरिणाम्।
सर्वेन्द्रियमनःप्रीतिं विधातुं सघृणेन किम्॥ ५

सर्वेन्द्रियाणां च मनसश्च प्रीतिं विधातुं सघृणेन प्रेषितासि किम्, वा यदृच्छयागतासि। नैवम्, नूनं प्रेषितैवेत्यर्थः॥ ५॥

सा त्वं नः स्पर्धमानानामेकवस्तुनि मानिनि।
ज्ञातीनां बद्धवैराणां शं विधत्स्व सुमध्यमे॥ ६

॥ ६ ॥

वयं कश्यपदायादा भ्रातरः कृतपौरुषाः।
विभजस्व यथान्यायं नैव भेदो यथा भवेत्॥ ७

હે કમલપલાશાક્ષિ, તું કોણ છે? અને ક્યાંથી આવી છે? તું શું કરવા ઇચ્છે છે? અમારાં મનને ક્ષોભ પમાડતી હોય તેવી હે સુંદર ઊરુવાળી! તું કોની કન્યા છે, તે કહે.॥ ૩॥

'મથ્નન્તી इव' ક્ષોભ પમાડતી હોય તેવી॥ ૩॥

'તું કોની છે?' એ અમારા દ્વારા અયોગ્ય કહેવાયું, કારણ કે તને પૂર્વે કોઈએ પણ ભોગવી નથી, એમ તેઓ બે શ્લોકો વડે કહે છે— **'न इति।'**

દેવો, દૈત્યો, સિદ્ધો, ગંધર્વો, ચારણો તથા લોકપાલો દ્વારા પૂર્વે તને સ્પર્શ પણ કરવામાં નથી આવ્યો એ અમે નથી જાણતા એવું નથી, તો મનુષ્યો દ્વારા તો ક્યાંથી તારો સ્પર્શ કરાયો હોય?॥ ૪॥

'त्वा' તને પૂર્વે દેવો વગેરે દ્વારા સ્પર્શ કરવામાં આવ્યો નથી એ અમે નથી જાણતા એવું નથી, પણ જાણીએ જ છીએ.॥ ૪॥

એ વાત બાજુએ મૂકો. તારાં દર્શન તો ભગવાને જ કરાવ્યાં છે, એમ તેઓ કહે છે— **'नूनम् इति।'**

હે સુંદર ભ્રૂકુટિવાળી, અવશ્ય દયાળુ વિધાતા દ્વારા શરીરધારીઓની સર્વ ઇન્દ્રિયો અને મનને પ્રસન્ન કરવા તને મોકલવામાં આવી છે! કે શું દૈવેચ્છાથી આવી છે?॥ ૫॥

સર્વ ઇન્દ્રિયો અને મનને પ્રસન્ન કરવા માટે દયાળુ બ્રહ્મા દ્વારા તને મોકલવામાં આવી છે કે દૈવેચ્છાથી આવી છે? ના, એમ નથી. અવશ્ય તને મોકલવામાં જ આવી છે, એમ અર્થ છે.॥ ૫॥

'सुभ्रु' પાઠ હોય તો સંબોધન છે.

હે માનિની, હે સુમધ્યમા, એક વસ્તુ ખાતર સ્પર્ધા કરતા અને પરસ્પર વેર બાંધતા જ્ઞાતિજનો એવા અમારું તું કલ્યાણ કર!॥ ૬॥ ૬॥

(અમૃત માટે સરખો) પ્રયત્ન કરનારા અમે કશ્યપના વારસદાર પુત્રો ભાઈઓ છીએ. અમારી વચ્ચે વિગ્રહ ન થાય તેમ ન્યાય અનુસાર (તું અમૃત) વહેંચી આપ.॥ ૭॥

भेदो विग्रहो यथा न भवेत्तथा॥७॥

'**ભેદઃ**' જેમ વિગ્રહ ન થાય તેમ॥૭॥

इत्युपामन्त्रितो दैत्यैर्मायायोषिद्वपुर्हरिः।
प्रहस्य रुचिरापाङ्गैर्निरीक्षन्निदमब्रवीत्॥८॥८॥

આમ, દૈત્યો દ્વારા પ્રાર્થના કરવામાં આવેલા, માયાથી સ્ત્રીનું શરીર ધારણ કરનાર શ્રીહરિએ હાસ્ય કરીને સુંદર નેત્રકટાક્ષથી નિરીક્ષણ કરતાં, આ પ્રમાણે કહ્યું.॥૮॥૮॥

श्रीभगवानुवाच

कथं कश्यपदायादाः पुंश्चल्यां मयि सङ्गताः।
विश्वासं पण्डितो जातु कामिनीषु न याति हि॥९

શ્રીભગવાન બોલ્યા – હે કશ્યપના વારસદાર પુત્રો, કુલટા એવી મને તમે કેમ અનુસરો છો? વિવેકી મનુષ્ય ખરેખર, સ્ત્રીઓમાં વિશ્વાસ નથી રાખતો.॥૯॥

सङ्गता अनुसृताः॥९॥

'**सङ्गताः**' અનુસરો છો. (વિશ્વાસ રાખો છો.)॥૯॥

सालावृकाणां स्त्रीणां च स्वैरिणीनां सुरद्विषः।
सख्यान्याहुरनित्यानि नूत्नं नूत्नं विचिन्वताम्॥१०

હે દૈત્યો, નવો નવો (શિકાર) શોધતાં વરુઓ અને સ્વચ્છંદ સ્ત્રીઓની મૈત્રી અનિત્ય હોય છે, એમ (વિદ્વાનો) કહે છે.॥૧૦॥

हे सुरद्विषः॥१०॥

'**हे सुरद्विषः**' હે દૈત્યો॥૧૦॥

'न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता।'

'સ્ત્રીઓ સાથે મૈત્રી હોય નહીં, કારણ કે તેમનાં હૃદય વરુ જેવાં હોય છે.' (ઋ. ૧૦ - ૧૪)

श्रीशुक उवाच

इति ते क्ष्वेलितैस्तस्या आश्वस्तमनसोऽसुराः।
जहसुर्भावगम्भीरं ददुश्चामृतभाजनम्॥११

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – આમ, તે મોહિનીની કપટયુક્ત વાણીથી જેમનાં મનમાં (પાકો) વિશ્વાસ બેસી ગયો તે અસુરો ગંભીર ભાવે હસ્યા અને અમૃતનું પાત્ર તેને આપી દીધું.॥૧૧॥

भावेन केनाप्यभिप्रायेण गम्भीरं यथा भवत्येवं जहसुः॥११॥

'**ભાવેન**' કોઈ પણ અભિપ્રાયથી ગંભીર જે રીતે થવાય એ રીતે હસ્યા.॥૧૧॥

ततो गृहीत्वाऽमृतभाजनं हरि-
र्बभाष ईषत्स्मितशोभया गिरा।
यद्यभ्युपेत क्व च साध्वसाधु वा
कृतं मया वो विभजे सुधामिमाम्॥१२

ત્યાર પછી અમૃતપાત્ર લઈને શ્રીહરિ મંદ સ્મિતથી શોભતી વાણીથી બોલ્યા, 'મારા દ્વારા ક્યાંય પણ કરવામાં આવેલું સારું કે ખોટું જો તમે સ્વીકારો, તો હું આ અમૃત તમને વહેંચી આપું.'॥૧૨॥

ईषत्स्मितेन शोभा यस्यास्तया। मया कृतं साधु वा असाधु यद्यभ्युपेताङ्गीकुरुत तर्हि विभजे॥१२॥

સહેજ સ્મિતની શોભા છે જેની તેવી વાણીથી બોલ્યા. મારા દ્વારા સારું કે ખોટું જે કરવામાં આવે તે જો તમે '**અભ્યુપેત**' સ્વીકારો, તો હું વહેંચી આપું.॥૧૨॥

इत्यभिव्याहृतं तस्या आकर्ण्यासुरपुङ्गवाः।
अप्रमाणविदस्तस्यास्तत् तथेत्यन्वमंसत॥ १३

असुरपुङ्गवा दैत्यश्रेष्ठाः। प्रमाणमियत्ताम-जानन्तः॥ १३॥

अथोपोष्य कृतस्नाना हुत्वा च हविषाऽनलम्।
दत्त्वा गोविप्रभूतेभ्यः कृतस्वस्त्ययना द्विजैः॥ १४
॥ १४॥
यथोपजोषं वासांसि परिधायाहतानि ते।
कुशेषु प्राविशन्सर्वे प्रागग्रेष्वभिभूषिताः॥ १५

यथोपजोषं यथाप्रीति। अहतस्य लक्षणम्—

'अहतं यन्त्रनिर्मुक्तमुक्तं वासः स्वयम्भुवा।
शस्तं तन्माङ्गलिकेषु तावन्मात्रे न सर्वदा॥'

इति।

प्रागग्रेषु कुशेषु विविशुः॥ १५॥

प्राङ्मुखेषूपविष्टेषु सुरेषु दितिजेषु च।
धूपामोदितशालायां जुष्टायां माल्यदीपकैः॥ १६

तस्यां नरेन्द्र करभोरुरुशद्दुकूल-
श्रोणीतटालसगतिर्मदविह्वलाक्षी।
सा कूजती कनकनूपुरशिञ्जितेन
कुम्भस्तनी कलशपाणिरथाविवेश॥ १७

धूपैरामोदितायां सुरभीकृतायां शालायाम्॥ १६॥

આમ, તે મોહિનીનું બોલાયેલું વચન સાંભળીને તેની મર્યાદા (અભિપ્રાય)ને ન જાણતા, અસુરોમાં શ્રેષ્ઠ એવા તેઓએ તે વચનને 'બહુ સારું' એમ કહીને સ્વીકારી લીધું.॥ ૧૩॥

આમ, તેનું વચન સાંભળીને તેની મર્યાદા (અભિપ્રાય)ને ન જાણતા અસુરશ્રેષ્ઠોએ 'બહુ સારું' એમ કહીને સ્વીકારી લીધું.॥ ૧૩॥

ત્યાર પછી જેમણે સ્નાન કર્યું તે સર્વે (દેવો અને અસુરો) ઉપવાસ કરીને હવિષ્યથી અગ્નિમાં હવન કરી, ગાય, બ્રાહ્મણ અને પ્રાણીઓને દાન કરી, બ્રાહ્મણો પાસે સ્વસ્તિવાચન કરાવી, પોતાની રુચિ અનુસાર નવીન વસ્ત્રો ધારણ કરી, અલંકારો પહેરી, પૂર્વમાં અગ્રભાગવાળા દર્ભાસન પર બેસી ગયા.॥ ૧૪॥ ૧૫॥ ૧૪॥

'યથા-ઉપજોષમ્' પોતાની રુચિ અનુસાર-નૂતન વસ્ત્રનું લક્ષણ—

'હાનિ ન પામેલું, સાળ (યંત્ર)થી મુક્ત થયેલું (નવું જ) વસ્ત્ર બ્રહ્માજી દ્વારા પ્રશંસા પામેલું છે. આવું વસ્ત્ર માંગલિક પ્રસંગોમાં જ પહેરવું, સર્વદા નહીં.'

પૂર્વમાં અગ્રભાગવાળા દર્ભાસન પર સર્વે બેસી ગયા.॥ ૧૫॥

પુષ્પમાળાઓ અને દીવડાઓથી સજાવેલી અને ધૂપથી સુરભિત કરાયેલા ભવનમાં દેવો અને દૈત્યો પૂર્વાભિમુખ થઈને બેઠા ત્યારે॥ ૧૬॥

હે નરેન્દ્ર (પરીક્ષિત), કરભ (હાથીની સૂંઢ) જેવી સાથળોવાળી, કમનીય ઝીણું રેશમી વસ્ત્ર જેમની ઉપર છે તે વિશાળ નિતંબપ્રદેશને કારણે મંદગતિવાળી, મદથી વિહ્વળ નેત્રોવાળી, સુવર્ણ નૂપુરના ઝણકારથી રૂમઝુમ કરતી, કળશ જેવા સ્તનોવાળી તે મોહિનીએ હાથમાં અમૃતકળશ લઈને પ્રવેશ કર્યો.॥ ૧૭॥

ધૂપથી **'आमोदितायाम्'** સુરભિત કરવામાં આવેલા ભવનમાં॥ ૧૬॥

अथ तस्यां शालायां हे नरेन्द्र सा कलशपाणिराविवेश। कथंभूता। 'मणिबन्धादाकनिष्ठं करस्य करभो बहिः' इति। करभसदृशौ सुवृत्तावूरू यस्याः सा। उशत् कमनीयं दुकूलं यस्मिंस्तेन श्रोणीतटेन विशालया श्रोण्या अलसा मन्दा गतिर्यस्याः। पाठान्तरे करभसदृशयोरूर्वोर्लसद्दुकूलं यस्याः सा चासौ श्रोणीतटेनालसगतिश्च। मदेन विह्वले अक्षिणी यस्याः॥ १७॥

તે સમયે જેના હાથમાં અમૃતકળશ છે તે મોહિનીએ હે નરેન્દ્ર, તે ભવનમાં પ્રવેશ કર્યો. કેવી મોહિની? 'મણિબંધ (કાંડા)થી લઈને કનિષ્ઠા (ટચલી) આંગળી સુધીના હાથના બહારના (છેડાના) ભાગને કરભ કહે છે.' કરભ જેવી અતિકોમળ બંને સાથળો છે જેની તે– '**उशत्**' કમનીય રેશમી વસ્ત્ર છે જેમની ઉપર તે '**श्रोणीतटेन**' વિશાળ નિતંબોથી '**अलसा**' મંદ ગતિ છે જેની– ('**करभोरुरुशद्**' ને બદલે '**करभोरुलसद्**') પાઠાંતરમાં, કરભ જેવી બંને સાથળો ઉપર શોભતું વસ્ત્ર છે જેનું તે અને એ વિશાળ નિતંબપ્રદેશથી મંદ ગતિ છે જેની, મદથી વિહ્વળ બંને નેત્રો છે જેનાં॥ ૧૭॥

तां श्रीसखीं कनककुण्डलचारुकर्ण-
नासाकपोलवदनां परदेवताख्याम्।
संवीक्ष्य सम्मुमुहुरुत्स्मितवीक्षणेन
देवासुरा विगलितस्तनपट्टिकान्ताम्॥ १८

જેની કંચુકી પરનો છેડો સરકી ગયો છે તેવી તે સુવર્ણમય કુંડળો તથા સુંદર કર્ણો-નાસિકા-કપોલ અને મુખવાળી શ્રેષ્ઠ દેવીરૂપ (સૌંદર્યમાં લક્ષ્મીજી જેવી દેખાતી) શ્રીદેવીની સખીને જોઈને તેના સુંદર સ્મિતયુક્ત દષ્ટિપાતથી દેવો અને અસુરો સંમોહિત થઈ ગયા.॥ ૧૮॥

तां श्रियः सखीं संवीक्ष्य देवासुराः संमुमुहुः। कथंभूताम्। कनकमये कुण्डले यस्याः सा चासौ चारवः कर्णादयो यस्याः सा च ताम्। विगलितः स्रस्तः स्तनपट्टिकाया अन्तो यस्याः॥ १८॥

તે શ્રીદેવીની સખીને જોઈને દેવો અને અસુરો સંમોહિત થઈ ગયા. કેવી શ્રીસખીને? જેનાં સુવર્ણમય કુંડળો છે તે તથા સુંદર કર્ણો વગેરે જેના છે તે, એવી તેને. '**विगलितः**' સરકી ગયો છે કંચુકીનો છેડો જેનો॥ ૧૮॥

एवं तान् मोहयित्वा यत्कृतवांस्तदाह त्रिभिः—

આ પ્રમાણે તેમને સંમોહિત કરીને ભગવાને જે કર્યું, તે ત્રણ શ્લોકો દ્વારા કહે છે–

असुराणां सुधादानं सर्पाणामिव दुर्नयम्।
मत्वा जातिनृशंसानां न तां व्यभजदच्युतः॥ १९

જાતિથી ક્રૂર એવા અસુરોને અમૃત આપવું એ સર્પોને (દૂધ) આપવા જેવું અન્યાયી માનીને અચ્યુત ભગવાને અસુરોને તે અમૃત વહેંચ્યું નહીં.॥ ૧૯॥

असुराणां सुधादानं सर्पाणां क्षीरदानमिव दुर्नयमन्याय्यं मत्वा तां सुधां तेभ्यो न व्यभजत्। अयं भावः—दैत्यैर्मदीयं साध्वसाधु

અસુરોને અમૃત આપવું એ સર્પોને દૂધ આપવા જેવું '**दुर्नयम्**' અન્યાયી માનીને તે અમૃત અસુરોને ન વહેંચ્યું. ભાવ આ પ્રમાણે છે— મારું સારું કે નરસું, દૈત્યો દ્વારા તો બધું જ સુસમ્મત છે. આથી મારા ભક્તો

वा सर्वमनुमतमेव, अतो मद्भक्तान् देवानेव सुधां पाययिष्यामि, किंच तैर्यथान्यायं विभजस्वेत्युक्तम्, न चैतेभ्यो जात्यैव क्रूरेभ्यो दानं न्याय्यम्, अतस्तेभ्यः सुधां न दद्यामिति ॥ १९ ॥

એવા દેવોને જ હું અમૃતપાન કરાવીશ. વળી, તે દૈત્યોએ કહ્યું જ છે કે યથાયોગ્ય રીતે વહેંચણી કરો અને જાતિથી ક્રૂર એવા તેમને સુધાદાન કરવું યોગ્ય નથી, આથી તેમને અમૃત નહીં આપું. ॥ ૧૯ ॥

कल्पयित्वा पृथक् पङ्क्तीरुभयेषां जगत्पतिः ।
तांश्चोपवेशयामास स्वेषु स्वेषु च पङ्क्तिषु ॥ २०

અને જગત્પતિ ભગવાને જુદી જુદી પંગતો કરીને તે બંને–દેવો અને અસુરોને પોતપોતાની પંગતમાં બેસાડ્યા. ॥ ૨૦ ॥

पङ्क्तीः पृथग्विविक्ताः कल्पयित्वा विधाय। तासु पङ्क्तिषु स्वेषु स्वेषु तत्समजातीयेषु तांश्चासुरानपि प्रतारणार्थमेवोपवेशयामास ॥ २० ॥

'**पृथक्**' જુદી જુદી પંગતો '**कल्पयित्वा**' કરીને તે પંગતોમાં '**स्वेषु स्वेषु**' પોતપોતાના જાતિભાઈઓની પંગતમાં, અને તે પણ અસુરોને છેતરવા માટે જ બેસાડ્યા. ॥ ૨૦ ॥

दैत्यान्गृहीतकलशो वञ्चयन्नुपसञ्चरैः ।
दूरस्थान् पाययामास जरामृत्युहरां सुधाम् ॥ २१

જેમણે અમૃતકળશ ધારણ કર્યો છે તેવા (મોહિનીરૂપધારી) ભગવાન શ્રીહરિએ (ભમરો નચાવવી, સ્મિત કરવું, લજ્જા પામવું, વસ્ત્રાભૂષણોના સંચલનપૂર્વક સુંદર ચાલવું,) બહુમાન આપીને, મધુરવાણીથી (નીચેનો સારભાગ તમને જ પિવડાવીશ– એમ નજીક બેઠેલા) દૈત્યોને છેતરતાં, દૂર બેઠેલા દેવોને જરા અને મૃત્યુને હરનારું અમૃત પિવડાવવા માંડ્યું. ॥ ૨૧ ॥

उपसंचरैर्बहुमानप्रियवाक्यादिना तानतिक्रम्यातिक्रम्य गमनैः दूरस्थानपि देवान् ॥ २१ ॥

'**उपसंचरैः**' (૧) બહુમાન, (૨) મધુરવાણીયુક્ત વાક્યો વગેરે દ્વારા તે દૈત્યોને છોડી છોડીને ઓળંગીને જવાથી, (દેવો) દૂર બેઠેલા હોવા છતાં દેવોને અમૃતપાન કરાવ્યું. ॥ ૨૧ ॥

ते पालयन्तः समयमसुराः स्वकृतं नृप ।
तूष्णीमासन्कृतस्नेहाः स्त्रीविवादजुगुप्सया ॥ २२

હે રાજા, (મોહિની દ્વારા) જેમની ઉપર સ્નેહ કરવામાં આવ્યો છે તેવા તે દૈત્યો પોતાની પ્રતિજ્ઞાનું પાલન કરતા, સ્ત્રી સાથે વિવાદ કરવાનું નિંદ્ય હોવાથી ચૂપચાપ બેસી રહ્યા. ॥ ૨૨ ॥

तया कृतः स्नेहो येषु। स्त्रिया सह विवादस्य जुगुप्सया ॥ २२ ॥

(૩) તે મોહિની દ્વારા કરવામાં આવ્યો છે સ્નેહ જે દૈત્યોની ઉપર– (૪) સ્ત્રી સાથે વિવાદ કરવાનું નિંદ્ય હોવાથી તેઓ ચૂપ બેઠા. ॥ ૨૨ ॥

तस्यां कृतातिप्रणयाः प्रणयापायकातराः ।
बहुमानेन चाबद्धा नोचुः किञ्चन विप्रियम् ॥ २३

તે મોહિની ઉપર જે દૈત્યો દ્વારા અતિ સ્નેહ કરવામાં આવ્યો છે (અને તેથી જો પોતે અપ્રિય બોલી બેસે તો) સ્નેહ તૂટવાના ભયથી ડરેલા તે દૈત્યો (મોહિનીનાં) અતિમાનદાયક વચનોથી બંધાઈ જઈ કંઈ પણ અપ્રિય બોલ્યા નહીં ॥ ૨૩ ॥

कृतोऽतिप्रणयः स्नेहो यैः । प्रणयापायेन कातरा भीताः । एते तावत्कृपणाः पूर्वं किंचित्पिबन्तु, यूयं तु धीराः क्षणं प्रतीक्षध्वमित्यादिबहुमानेनाबद्धा नियन्त्रिताः समयपालनादिभिः षड्भिरेतैः कारणैर-प्रियं किंचिदपि नोचुः, किंतु तूष्णीमासन् ॥ २३ ॥

જે દૈત્યો દ્વારા કરવામાં આવ્યો છે '**अतिप्रणयः**' અતિસ્નેહ (અને તેથી) (૫) સ્નેહ તૂટવાના ભયથી '**कातराः**' ડરેલા દૈત્યો– 'એ દેવો તો હલકા છે, તેથી પહેલાં ભલે થોડું પી લે. તમે તો ધીર છો, થોડીવાર પ્રતીક્ષા કરો' વગેરેથી બહુમાન આપવાથી '**आबद्धाः**' (૬) પ્રતિજ્ઞાપાલન વગેરે કરવાથી બંધાયેલા દૈત્યો, આ છ કારણોસર કંઈ પણ અપ્રિય બોલ્યા નહીં, પણ ચૂપ બેસી રહ્યા. ॥ ૨૩ ॥

देवलिङ्गप्रतिच्छन्नः स्वर्भानुर्देवसंसदि ।
प्रविष्टः सोमममपिबच्चन्द्रार्काभ्यां च सूचितः ॥ २४

(તે સમયે) દેવોના વેશમાં છુપાયેલો રાહુ દેવોની પંગતમાં પેઠો (સૂર્ય અને ચન્દ્રની વચ્ચે બેસી ગયો) અને અમૃત પીવા લાગ્યો. (તે જોઈ) સૂર્ય અને ચન્દ્ર દ્વારા (ભગવાનને તેના વિષે ભ્રૂભંગ દ્વારા) સૂચન કરવામાં આવ્યું. ॥ ૨૪ ॥

देवपङ्क्तौ चन्द्रार्कयोर्मध्ये प्रविष्टः सोमममृतमपिबत् ॥ २४ ॥

દેવોની પંગતમાં સૂર્ય અને ચન્દ્રની વચ્ચે પ્રવિષ્ટ થયેલો રાહુ '**सोमम्**' અમૃત પીવા લાગ્યો. ॥ ૨૪ ॥

चक्रेण क्षुरधारेण जहार पिबतः शिरः ।
हरिस्तस्य कबन्धस्तु सुधयाप्लावितोऽपतत् ॥ २५

અસ્ત્રા જેવી તીક્ષ્ણ ધારવાળા સુદર્શન ચક્રથી શ્રીહરિએ (અમૃત) પીતા તે રાહુનું મસ્તક હરી લીધું, પરંતુ અમૃતથી અસ્પૃષ્ટ રહેલું ધડ (નીચે) પડ્યું. ॥ ૨૫ ॥

हरिस्तस्य शिरो जहार । अप्लावितो-ऽसंस्पृष्टः ॥ २५ ॥

શ્રીહરિએ તે રાહુનું મસ્તક કાપી નાખ્યું. '**अप्लावितः**' અસ્પૃષ્ટ (સ્પર્શ ન પામેલું) ॥ ૨૫ ॥

शिरस्त्वमरतां नीतमजो ग्रहमचीक्लृपत् ।
यस्तु पर्वणि चन्द्रार्कावभिधावति वैरधीः ॥ २६

પરંતુ (અમૃતના સ્પર્શથી) અમરતાને પ્રાપ્ત થયેલા મસ્તકને અજન્મા (ભગવાન શ્રીહરિ)એ ગ્રહ બનાવ્યો, કે જે પર્વના દિવસોમાં (આજે પણ) વેર બુદ્ધિવાળો થઈ ચન્દ્ર અને સૂર્યની સામે દોડે છે. ॥ ૨૬ ॥

ग्रहं सूर्यादिवद्ग्रहत्वाधिकारिणम् ॥ २६ ॥

'**ग्रहम्**' સૂર્ય વગેરેની જેમ ગ્રહ થવાનો અધિકારી બનાવ્યો. ॥ ૨૬ ॥

वंशीधरी—केतुस्तु छायारूपो ग्रहो न तु कबन्धरूपः 'राहुच्छाया स्मृतः केतुः' इति भुवनदीपिकोक्तेः। पर्वणि पूर्णिमामावास्यारूपे।

पीतप्रायेऽमृते देवैर्भगवाँल्लोकभावनः।
पश्यतामसुरेन्द्राणां स्वं रूपं जगृहे हरिः॥ २७ ॥ २७॥

हरिभक्तानामेवोद्यमः फलति, नान्येषामित्येवमाख्यानतात्पर्यमाह—**एवमिति**।

एवं सुरासुरगणाः समदेशकाल-
हेत्वर्थकर्ममतयोऽपि फले विकल्पाः।
तत्रामृतं सुरगणाः फलमञ्जसाऽऽपु-
र्यत्पादपङ्कजरजःश्रयणान्न दैत्याः॥ २८

समा देशादयो येषाम्। हेतुर्मन्दराद्रिः। अर्थः समुद्रे क्षिप्तं वीरुदादि। विविधः कल्पः फलं केषांचिज्जातं केषांचिन्नेति वैचित्र्यं येषां ते। फलवैषम्यवन्तो बभूवुरित्यर्थः। तदेवाह—तत्र तेषु यस्य पादपङ्कजरजःश्रयणाद्देवा अमृतं फलमापुः स एव सेव्य इत्यर्थः।

अचीक्लृपत् क्लृप् = રચવું નું લુઙ્ અદ્યતન ભૂ.કા.ત્રી. પુ.એ.વ.

કેતુ તો છાયારૂપ ગ્રહ છે, પણ ધડરૂપ નથી. રાહુના પડછાયાને કેતુ જાણવો એમ ભુવનદીપિકામાં કહેવામાં આવ્યું છે. પૂર્ણિમા અને અમાસરૂપ પર્વોમાં (રાહુ સૂર્યચન્દ્ર સામે દોડે ત્યારે ચન્દ્રગ્રહણ અને સૂર્યગ્રહણ થાય છે.)

જ્યારે દેવોએ લગભગ બધું જ અમૃત પી લીધું, ત્યારે લોકોનું રક્ષણ કરનારા ભગવાન શ્રીહરિએ અસુરોના દેખતાં જ (મોહિનીરૂપ ત્યાગીને) પોતાનું સ્વરૂપ ધારણ કર્યું॥ ૨૭॥ ૨૭॥

શ્રીહરિના ભક્તોનો જ ઉદ્યમ ફળે છે, બીજાઓનો નહીં, એમ (આ) આખ્યાનનું તાત્પર્ય જણાવે છે—**'एवम् इति।'**

આમ, દેવગણ અને અસુરગણ સમાન દેશ, કાળ, હેતુ, અર્થ, કર્મ અને મતિવાળા હોવા છતાં ફળમાં ભેદો પડ્યા. તે દેવો અને અસુરગણોમાં, જેમના ચરણકમળની રજનો આશ્રય કરવાથી દેવોએ અમૃતરૂપ ફળને સરળતાથી પ્રાપ્ત કર્યું (તે શ્રીહરિ જ સેવવા યોગ્ય છે). દૈત્યો તે ફળ પામ્યા નહીં.॥ ૨૮॥

દેશ વગેરે સમાન છે જેમનાં. (એક જ સ્થાન ઉપર, એક જ સમયે, એક જ સાધન, એક જ પ્રકારની સામગ્રી તથા એક વસ્તુ માટે એક જ વિચારથી એક જ કર્મ કર્યું હોવા છતાં ફળમાં ભેદો પડ્યા.) **'हेतुः'** મંદર પર્વતરૂપ સાધન, **'अर्थः'** સમુદ્રમાં નાખવામાં આવેલાં લતા, ઔષધિઓરૂપ સામગ્રી, વિવિધ **'कल्पः'** ફળ કેટલાકને મળ્યું અને કેટલાકને ન મળ્યું, એમ ફળભેદ થયો છે જેમને તે દેવો અને અસુરો વિષમફળ પ્રાપ્ત કરનારા થયા, એમ અર્થ છે. તે જ કહે છે— **'तत्र'** તે દેવો અને અસુરોમાં, જે શ્રીહરિના ચરણકમળની રજનો આશ્રય કરવાથી દેવો અમૃતરૂપ ફળને પામ્યા, તે

*यत्तदोर्नित्यसंबन्धात्॥ २८॥

एतदेवोपपादयति—**यदिति**।

यद् युज्यतेऽसुवसुकर्ममनोवचोभि-
र्देहात्मजादिषु नृभिस्तदसत् पृथक्त्वात्।
तैरेव सद् भवति यत् क्रियतेऽपृथक्त्वात्
सर्वस्य तद् भवति मूलनिषेचनं यत्॥ २९

(છંદ– વસંતતિલકા)

असुः प्राणः। वसु धनम्। प्राणादिभि-र्देहात्मजादिषु नृभिर्यद्युज्यते प्रयुज्यते। देहाद्यर्थं यत्क्रियत इत्यर्थः, तदसद् व्यर्थं भवति। कुतः। पृथक्त्वाद्भेदाश्रयत्वात्। शाखानिषेचनवत्।

तैरेव प्राणादिभिरीश्वरोद्देशेन यत्क्रियते तत्तु सत् महाफलं भवति। अपृथक्त्वादीश्वरस्य सर्वत्रानुगतत्वात्। तत्र दृष्टान्तः—यत्तरोर्मूलनिषेचनं तद्यथा सर्वस्य स्कन्धशाखादेरपि भवतीति। यद्वा ल्यब्लोपे पञ्चम्यौ। पृथक्त्वं पर्यालोच्य भेददृष्ट्या देहाद्युद्देशेन यत्क्रियते तदसत्। अपृथक्त्वं

શ્રીહરિ જ સેવવા યોગ્ય છે, એમ અર્થ છે,* કારણ કે '**यत्**' અને '**तत्**' નો નિત્ય સંબંધ છે.॥ ૨૮॥

(શ્રીહરિ જ સેવવા યોગ્ય છે.) એ જ સિદ્ધ કરે છે— '**यत् इति**।'

મનુષ્યો દ્વારા શરીર અને પુત્રાદિ ખાતર પ્રાણ, ધન, કર્મ, મન અને વાણીથી જે કરવામાં આવે છે, તે (સર્વ) ભેદબુદ્ધિનો આશ્રય કરવાથી વ્યર્થ થાય છે. તે જ પ્રાણાદિ દ્વારા અભેદબુદ્ધિપૂર્વક જે કંઈ કરવામાં આવે છે, તે મહાન ફળદાયી થાય છે. જેમ વૃક્ષના મૂળનું સિંચન કરવાથી સર્વ (શાખાઓ અને થડ)નું પણ સિંચન થઈ જાય છે તેમ!॥ ૨૯॥

'**असुः**' પ્રાણ, '**वसु**' ધન, પ્રાણ વગેરે દ્વારા શરીર અને પુત્રાદિ ખાતર મનુષ્યો દ્વારા જે '**युज्यते**' પ્રયુક્ત કરવામાં આવે છે; દેહાદિ માટે જે કરવામાં આવે છે, એમ અર્થ છે. તે '**असत्**' વ્યર્થ થાય છે. શા માટે? '**पृथक्त्वात्**' ભેદ (બુદ્ધિ)નો આશ્રય કરવાથી, શાખાને પાણી સિંચવાની જેમ!

'**तैः**' તે જ પ્રાણાદિ દ્વારા ઈશ્વરને ઉદ્દેશીને જે કરવામાં આવે છે, તે તો '**सत्**' મહાન ફળદાયી થાય છે. '**अपृथक्त्वात्**' ઈશ્વર સર્વત્ર અનુગત રહેલા હોવાથી ભેદબુદ્ધિ થતી ન હોવાથી (તે મહાન ફળદાયી થાય છે). તે માટેનું દૃષ્ટાન્ત— જેમ વૃક્ષના મૂળનું સિંચન કરવાથી સર્વ શાખાઓ તથા થડનું પણ સિંચન થઈ જાય છે. અથવા '**ल्यब्लोपे पञ्चम्यौ**' (અર્થાત્ ય નો લોપ કરીએ તો કર્મ પંચમી વિભક્તિમાં લેવું. પા.સૂ.૧/૪/૩૧ નું કાત્યાયન મુનિનું વાર્તિક, (**पृथक्त्वात्** = **पृथक्त्वं पर्यालोच्य**) ભગવાનથી ભિન્નત્વ વિચારીને ભેદબુદ્ધિથી દેહ વગેરેને ઉદ્દેશીને જે કરવામાં આવે છે

* સંસ્કૃતમાં **यत्** શબ્દનું રૂપ આવે પછી **तत्** શબ્દનું રૂપ ન આવે તો વાક્ય અધુરું ગણાય. અહીં **यत्पादपङ्कजरजः....** પછી **तत्** વાળું પદ નથી, તેથી શ્રીધરસ્વામીને '**स एव सेव्य**' ઉમેરવું પડ્યું, કારણ કે યત્ અને તત્ નો નિત્ય સંબંધ છે.

पर्यालोच्येश्वरदृष्ट्या तैरेव तेष्वेव च यत्क्रियते तत्सद्भवतीति। शेषं समानम्॥ २९॥

તે વ્યર્થ થાય છે. (ભગવાનથી પુત્રાદિનું) અભિન્નત્વ વિચારીને ઈશ્વરદષ્ટિથી તે પ્રાણાદિ દ્વારા અને તે દેહાદિ વિષે જે કરવામાં આવે છે, તે **'सत्'** મહાન ફળદાયી બને છે. શેષ સમાન છે.॥ ૨૯॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धेऽमृतमथने नवमोऽध्यायः॥ ९॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां नवमोऽध्यायः॥ ९॥

❋❋❋❋❋

अथ दशमोऽध्यायः

દેવાસુરસંગ્રામ

दशमे मत्सराद्दैत्यैरारब्धे तु मृधे सुरैः।
दैत्यमायाविषण्णेषु देवेष्वाविर्बभौ हरिः॥ १॥

દેવોનો ઉત્કર્ષ સહન ન થવાથી દૈત્યો દ્વારા દેવો સાથે યુદ્ધ આરંભાયું ત્યારે, દૈત્યોની માયાથી દેવો જ્યારે વિષાદ પામ્યા તે સમયે શ્રીહરિ પ્રકટ થયા, તે દસમા અધ્યાયમાં છે.॥ ૧॥ **(भा** નું પરોક્ષ ભૂ.કા. ૩ પુ. એ.વ. **'बभौ'** પ્રકટ થયા)

तदेवममृतावाप्तिर्नाभक्तानामितीरितम्।
भक्तमत्सरतः प्राणहानिः पुनरुदीर्यते॥ २॥

વળી, આમ અભક્તો (એવા દૈત્યો) ને અમૃત ન મળ્યું, એમ કહેવામાં આવ્યું, પરંતુ ભક્તનો ઉત્કર્ષ સહન ન થવાથી દૈત્યોની પ્રાણહાનિ થઈ, એ પણ પુનઃ કહેવામાં આવે છે.॥ ૨॥

श्रीशुक उवाच

इति दानवदैतेया नाविन्दन्नमृतं नृप।
युक्ताः कर्मणि यत्ताश्च वासुदेवपराङ्मुखाः॥ १

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – હે રાજા પરીક્ષિત, દાનવો અને દૈત્યો (અમૃતમંથનરૂપ) કર્મમાં જોડાયા અને પ્રયત્ન પણ કર્યો, પરંતુ શ્રીવાસુદેવ ભગવાનથી તેઓ (દાનવો) વિમુખ હોઈ અમૃત પામ્યા નહીં.॥ ૧॥

साधयित्वामृतं राजन्पाययित्वा स्वकान्सुरान्।
पश्यतां सर्वभूतानां ययौ गरुडवाहनः॥ २

હે રાજા, ગરુડવાહન ભગવાન શ્રીહરિ અમૃત(પ્રાપ્તિનું કાર્ય) સિદ્ધ કરાવી, પોતાના દેવોને અમૃતપાન કરાવીને સર્વ પ્રાણીઓના દેખતાં (ત્યાંથી) પધારી ગયા.॥ ૨॥

सपत्नानां परामृद्धिं दृष्ट्वा ते दितिनन्दनाः।
अमृष्यमाणा उत्पेतुर्देवान्प्रत्युद्यतायुधाः॥ ३

શત્રુઓની ઉત્કૃષ્ટ સમૃદ્ધિ જોઈ, તેને સહન ન કરતા તે દિતિપુત્રો દેવોની સામે હથિયાર ઉગામીને ધસ્યા.॥ ૩॥

ततः सुरगणाः सर्वे सुधया पीतयैधिताः।
प्रतिसंयुयुधुः शस्त्रैर्नारायणपदाश्रयाः॥ ४
॥ १॥ २॥ ३॥ ४॥

ત્યાર પછી શ્રીનારાયણના ચરણનો આશ્રય કરનારા અને અમૃતપાન કરવાથી વધી ગયેલી શક્તિવાળા સર્વ દેવગણો શસ્ત્રોથી સામે યુદ્ધ કરવા લાગ્યા.॥ ૪॥ ૧॥ ૨॥ ૩॥ ૪॥

तत्र दैवासुरो नाम रणः परमदारुणः।
रोधस्युदन्वतो राजंस्तुमुलो रोमहर्षणः॥ ५

रणः संग्रामः। उदन्वतः समुद्रस्य रोधसि तीरे बभूव॥ ५॥

હે રાજા, ત્યારે ક્ષીરસાગરના તટ ઉપર 'દેવાસુરસંગ્રામ' નામનો અત્યંત ભયંકર, રોમાંચકારી, ભીષણ સંગ્રામ થયો.॥ ૫॥

'**रणः**' સંગ્રામ, '**उदन्वतः**' સમુદ્રના '**रोधसि**' તીરે થયો॥ ૫॥

तत्रान्योन्यं सपत्नास्ते संरब्धमनसो रणे।
समासाद्यासिभिर्बाणैर्निजघ्नुर्विविधायुधैः॥ ६

अन्योन्यं समासाद्य निजघ्नुः॥ ६॥

ત્યાં (સમુદ્રતીરે) ક્રોધથી વ્યાપેલા ચિત્તવાળા તે શત્રુઓ યુદ્ધમાં સામસામા થઈ તલવારો, બાણો અને અનેક આયુધોથી એકબીજાને મારવા લાગ્યા.॥ ૬॥

એકબીજાને સામસામા થઈ મારવા લાગ્યા. ॥ ૬॥

शङ्खतूर्यमृदङ्गानां भेरीडमरिणां महान्।
हस्त्यश्वरथपत्तीनां नदतां निस्वनोऽभवत्॥ ७

શંખ, તૂરિ, મૃદંગો, ભેરીઓ તથા ડમરુઓનો તેમ જ ગર્જના કરતા હાથીઓ, અશ્વો, રથો અને પાયદળોનો અત્યંત કોલાહલ મચી ગયો.॥ ૭॥

रथिनो रथिभिस्तत्र पत्तिभिः सह पत्तयः।
हया हयैरिभाश्चेभैः समसज्जन्त संयुगे॥ ८

ત્યાં રણભૂમિમાં રથીઓ રથીઓ સાથે, પાયદળો પાયદળો સાથે, ઘોડાસવારો ઘોડાસવારો સાથે, હાથીસવારો હાથીસવારો સાથે લડવા લાગ્યા.॥ ૮॥

उष्ट्रैः केचिदिभैः केचिदपरे युयुधुः खरैः।
केचिद् गौरमृगैर्ऋक्षैर्द्वीपिभिर्हरिभिर्भटाः॥ ९

કેટલાક સૈનિકો ઊંટો પર, કેટલાક હાથીઓ પર, બીજા કેટલાક સૈનિકો ગધેડાઓ ઉપર તો કેટલાક ગૌરમૃગો, રીંછો, વાઘો અને સિંહો ઉપર બેસી યુદ્ધ કરવા લાગ્યા.॥ ૯॥

गृध्रैः कङ्कैर्बकैरन्ये श्येनभासैस्तिमिङ्गिलैः।
शरभैर्महिषैः खड्गैर्गोवृषैर्गवयारुणैः॥ १०

બીજા (કેટલાક) ગીધ, કંક, બગલા, બાજ, ભાસ, મગરમચ્છ, અષ્ટાપદ, પાડા, ગેંડા, બળદ, નીલગાય, જંગલી સાંઢ ઉપર॥ ૧૦॥

शिवाभिराखुभिः केचित् कृकलासैः शशैर्नरैः।
बस्तैरेके कृष्णसारैर्हंसैरन्ये च सूकरैः॥ ११

કેટલાક શિયાળ, ઉંદર, કાચંડા, સસલા, મનુષ્યો, તો કેટલાક બોકડા, કૃષ્ણમૃગ, હંસ તથા ભૂંડ ઉપર॥ ૧૧॥

अन्ये जलस्थलखगैः सत्त्वैर्विकृतविग्रहैः ।
सेनयोरुभयो राजन्विविशुस्तेऽग्रतोऽग्रतः ॥ १२
॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

હે રાજા, બીજા કેટલાક (સૈનિકો) સ્થળચર, જળચર, ખેચર, ભયંકર શરીરવાળાં પ્રાણીઓ ઉપર બેસીને બંને સૈન્યોમાં આગળ આગળ પ્રવેશ્યા. ॥ ૧૨ ॥ ૭ ॥ ૮ ॥ ૯ ॥ ૧૦ ॥ ૧૧ ॥ ૧૨ ॥

चित्रध्वजपटै राजन्नातपत्रैः सितामलैः ।
महाधनैर्वज्रदण्डैर्व्यजनैर्बार्हचामरैः ॥ १३
वातोद्धूतोत्तरोष्णीषैरर्चिर्भिर्वर्मभूषणैः ।
स्फुरद्भिर्विशदैः शस्त्रैः सुतरां सूर्यरश्मिभिः ॥ १४
देवदानववीराणां ध्वजिन्यौ पाण्डुनन्दन ।
रेजतुर्वीरमालाभिर्यादसामिव सागरौ ॥ १५
॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥

હે પાંડુનંદન રાજા (પરીક્ષિત), રંગબેરંગી ધ્વજપતાકાઓ, શ્વેત નિર્મળ છત્રો, રત્નજડિત દંડવાળા બહુમૂલ્ય વીંઝણાઓ, મોરપંખનાં ચામરો, હવામાં ઊડતાં ઉપરણાં, પાઘડીઓ, ચળકતાં બખ્તરો, આભૂષણો અને પ્રકાશમાન સૂર્યકિરણો વડે અત્યંત ચળકતાં ઉજ્જ્વળ શસ્ત્રોથી દેવ અને દાનવ યોદ્ધાઓની બંને સેનાઓ, જળચરોની પંક્તિઓ વડે જેમ બે સમુદ્રો શોભે તેમ, વીરોની પંક્તિઓથી શોભતી હતી. ॥ ૧૩ ॥ ૧૪ ॥ ૧૫ ॥

चित्रध्वजपटादिभिश्च वीराणां मालाभिश्च राजिभिर्देवदानववीराणां ध्वजिन्यौ यादसां मालाभिः सागराविव रेजतुरिति त्रयाणामन्वयः । यादोभिरिति वा। सितैरमलैरातपत्रैश्च। बार्हैश्चामरैश्च व्यजनैश्च ॥ १३ ॥

રંગબેરંગી ધ્વજપતાકાઓ વગેરેથી અને વીર સૈનિકોની શોભતી પંક્તિઓથી દેવો અને દાનવોના યોદ્ધાઓની બંને સેનાઓ, જળચરોની પંક્તિઓથી બે સમુદ્રોની જેમ શોભતી હતી, એમ ત્રણેય શ્લોકોનો સંબંધ છે. અથવા '**यादोभिः इति**' જળચરોથી તથા શ્વેત, નિર્મળ છત્રોથી, મોરપંખનાં ચામરોથી અને વીંજણાઓથી (શોભતી હતી). ॥ ૧૩ ॥

वातेनोद्धूतैरुत्तरीयैरुष्णीषैश्च सूर्यरश्मिभिः सुतरां स्फुरद्भिः ॥ १४ ॥ १५ ॥

હવાથી ઊડતાં ઉપરણાં અને પાઘડીઓથી, સૂર્યકિરણો વડે અત્યંત ચળકતાં (શસ્ત્રોથી) ॥ ૧૪ ॥ ૧૫ ॥

वैरोचनो बलिः संख्ये सोऽसुराणां चमूपतिः ।
यानं वैहायसं नाम कामगं मयनिर्मितम् ॥ १६

सर्वसाङ्ग्रामिकोपेतं सर्वाश्चर्यमयं प्रभो ।
अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं दृश्यमानमदर्शनम् ॥ १७

आस्थितस्तद् विमानाग्र्यं सर्वानीकाधिपैर्वृतः ।
वालव्यजनछत्राग्र्यै रेजे चन्द्र इवोदये ॥ १८

હે રાજા, યુદ્ધમાં વિરોચનપુત્ર, અસુરોના સેનાપતિ તે (પ્રસિદ્ધ) રાજા બલિ ઈચ્છાનુસાર ગતિ કરનાર, મયદાનવ દ્વારા રચાયેલ, (યુદ્ધમાં અપેક્ષિત એવી) સર્વ સામગ્રીઓથી યુક્ત, આશ્ચર્યજનક, મનના અવિષયરૂપ, વાણીથી નિરૂપણ કરવા માટે અશક્ય, ક્યારેક દેખાતા અને ક્યારેક ન દેખાતા એવા વૈહાયસ નામના શ્રેષ્ઠ વિમાનમાં બેઠા હતા. સર્વ સેનાઓના અધિપતિઓથી વીંટાયેલા તે(રાજા બલિ) શ્રેષ્ઠ ચામરો અને છત્ર વડે ઉદયગિરિ શિખર ઉપર રહેલા ચન્દ્રની જેમ શોભતા હતા. ॥ ૧૬ ॥ ૧૭ ॥ ૧૮ ॥

असुराणां या चमूस्तस्याः पतिः स बलिर्यानमास्थितः ॥ १६ ॥ १७ ॥

उदये उदयगिरिशिखरे स्थितश्चन्द्र इव रेजे इति त्रयाणामन्वयः ॥ १८ ॥

तस्यासन्सर्वतो यानैर्यूथानां पतयोऽसुराः ।
नमुचिः शम्बरो बाणो विप्रचित्तिरयोमुखः ॥ १९
द्विमूर्धा कालनाभोऽथ प्रहेतिर्हेतिरिल्वलः ।
शकुनिर्भूतसंतापो वज्रदंष्ट्रो विरोचनः ॥ २०
हयग्रीवः शङ्कुशिराः कपिलो मेघदुन्दुभिः ।
तारकश्चक्रदृक् शुम्भो निशुम्भो जम्भ उत्कलः ॥ २१
अरिष्टोऽरिष्टनेमिश्च मयश्च त्रिपुराधिपः ।
अन्ये पौलोमकालेया निवातकवचादयः ॥ २२
अलब्धभागाः सोमस्य केवलं क्लेशभागिनः ।
सर्व एते रणमुखे बहुशो निर्जितामराः ॥ २३
सिंहनादान्विमुञ्चन्तः शङ्खान्दध्मुर्महारवान् ।
दृष्ट्वा सपत्नानुत्सिक्तान्बलभित् कुपितो भृशम् ॥ २४
॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥

ऐरावतं दिक्करिणमारूढः शुशुभे स्वराट् ।
यथा स्त्रवत्प्रस्त्रवणमुदयाद्रिमहर्पतिः ॥ २५

स्त्रवन्ति प्रस्त्रवणानि यस्मिन्निति मदधारासादृश्यम् ॥ २५ ॥

तस्यासन्सर्वतो देवा नानावाहध्वजायुधाः ।
लोकपालाः सह गणैर्वाय्वग्निवरुणादयः ॥ २६

વિરોચનપુત્ર, અસુરોના સેનાપતિ તે બલિરાજા યુદ્ધમાં વૈહાયસ નામના, ઈચ્છાનુસાર ગતિ કરનાર, મયરચિત વિમાનમાં બેઠા હતા. ॥ ૧૬ ॥ ૧૭ ॥

ઉદયગિરિ શિખર ઉપર રહેલા ચન્દ્રની જેમ શોભતા હતા, એમ ત્રણ શ્લોકોનો અન્વય છે. ॥ ૧૮ ॥

તે બલિરાજાની સર્વતરફ (પોતપોતાનાં) વિમાનો પર અસુરોની સેનાના નાયક અસુરો હતા. અમૃતરૂપ ભાગ જેમને પ્રાપ્ત ન થયો અને (માત્ર પરિશ્રમરૂપ) ક્લેશનો જ ભાગ જેમને પ્રાપ્ત થયો તેવા નમુચિ, શંબર, બાણાસુર, વિપ્રચિત્તિ, અયોમુખ, દ્વિમૂર્ધા, કાલનાભ, પ્રહેતિ, હેતિ, ઈલ્વલ, શકુનિ, ભૂતસન્તાપ, વજ્રદંષ્ટ્ર, વિરોચન, હયગ્રીવ, શંકુશિરા, કપિલ, મેઘદુંદુભિ, તારકાસુર, ચક્રદક્, શુંભ, નિશુંભ, જંભ, ઉત્કલ, અરિષ્ટ, અરિષ્ટનેમિ, ત્રિપુરાધિપતિ મય તથા બીજા પૌલોમ, કાલેય અને નિવાતકવચાદિ એ સર્વ દૈત્યો, જેમણે દેવોને અનેકવાર પરાજિત કર્યા હતા, તેઓએ સિંહનાદ કરતા, મોટા ધ્વનિવાળા શંખો ફૂંક્યા. (આમ પોતાના) શત્રુઓને ગર્વિષ્ઠ જોઈ ઈન્દ્ર અત્યંત કોપી ઊઠ્યો. ॥ ૧૯ ॥ ૨૦ ॥ ૨૧ ॥ ૨૨ ॥ ૨૩ ॥ ૨૪ ॥ ૧૯ ॥ ૨૦ ॥ ૨૧ ॥॥ ૨૨ ॥ ૨૩ ॥ ૨૪ ॥

જેના પર ઝરણાં વહી રહ્યાં છે તેવા ઉદયાચળ પર્વત પર જેમ દિનપતિ સૂર્ય શોભે છે, તેમ (મદ ઝરતા) ઐરાવત દિગ્ગજ ઉપર આરૂઢ થયેલા સ્વપ્રકાશ ઈન્દ્ર શોભતા હતા. ॥ ૨૫ ॥

વહી રહ્યાં છે ઝરણાં જેના પર એ ઉદયાચળ, એમ અહીં ઐરાવતની મદધારા સાથે પર્વતમાંથી વહેતાં ઝરણાંની સરખામણી છે. ॥ ૨૫ ॥

તે ઈન્દ્રની સર્વ તરફ અનેક જાતનાં વાહનો, ધજાઓ અને આયુધોવાળા વાયુ, અગ્નિ, વરુણ વગેરે લોકપાલો (પોતપોતાના) ગણો સાથે ગોઠવાયા હતા. ॥ ૨૬ ॥

नाना वाहनादीनि येषां ते देवा असुराश्च मिथो युयुधुः ॥ २६ ॥

तेऽन्योन्यमभिसंसृत्य क्षिपन्तो मर्मभिर्मिथः।
आह्वयन्तो विशन्तोऽग्रे युयुधुर्द्वन्द्वयोधिनः॥ २७ ॥ २७ ॥

द्वन्द्वान्येवाह—**युयोधेति** सप्तभिः।

युयोध बलिरिन्द्रेण तारकेण गुहोऽस्यत।
वरुणो हेतिनाऽयुध्यन्मित्रो राजन्प्रहेतिना॥ २८

अस्यत आस्यत्, अयुध्यतेत्यर्थः ॥ २८ ॥

यमस्तु कालनाभेन विश्वकर्मा मयेन वै।
शम्बरो युयुधे त्वष्ट्रा सवित्रा तु विरोचनः॥ २९ ॥ २९ ॥

अपराजितेन नमुचिरश्विनौ वृषपर्वणा।
सूर्यो बलिसुतैर्देवो बाणज्येष्ठैः शतेन च॥ ३०

सूर्यो देव एक एव शतेन बलिसुतैः बाणो ज्येष्ठो येषां तैः ॥ ३० ॥

राहुणा च तथा सोमः पुलोम्ना युयुधेऽनिलः।
निशुम्भशुम्भयोर्देवी भद्रकाली तरस्विनी॥ ३१

निशुम्भशुम्भाभ्यां देवी ॥ ३१ ॥

वृषाकपिस्तु जम्भेन महिषेण विभावसुः।
इल्वलः सह वातापिर्ब्रह्मपुत्रैररिन्दम॥ ३२

અનેક જાતનાં વાહનો વગેરે છે જેમનાં તે દેવો, અને અસુરોએ પરસ્પર યુદ્ધ કર્યું.॥ ૨૬ ॥

તે દ્વન્દ્વયોદ્ધાઓ એકબીજાની સામે ધસી જઈ, પરસ્પર મર્મવચનોથી તિરસ્કાર કરતા, એકબીજાને આહ્‌વાન કરતા, આગળ ધસતા યુદ્ધ કરવા લાગ્યા.॥ ૨૭ ॥ ૨૭ ॥

દ્વન્દ્વયુદ્ધનાં જોડકાંનું સાત શ્લોકો વડે વર્ણન કરે છે— **'युयोध इति।'**

હે રાજા, બલિ ઈન્દ્ર સાથે યુદ્ધ કરવા લાગ્યો. કાર્તિકસ્વામી તારકાસુર સાથે, વરુણ હેતિ સાથે, મિત્ર પ્રહેતિ સાથે યુદ્ધ કરવા લાગ્યા.॥ ૨૮ ॥

'अस्यत' आस्यत् રૂપ થાય. યુદ્ધ કરવા લાગ્યા, એમ અર્થ છે.॥ ૨૮ ॥

યમદેવ કાલનાભ સાથે, વિશ્વકર્મા મયદાનવ સાથે, શંબરાસુર ત્વષ્ટા સાથે તો વિરોચન સવિતા સાથે યુદ્ધ કરવા લાગ્યા.॥ ૨૯ ॥ ૨૯ ॥

નમુચિ અપરાજિત સાથે, અશ્વિનીકુમારો વૃષપર્વા સાથે, સૂર્યદેવ બાણાસુર જેમનામાં સૌથી મોટો હતો તે બલિરાજાના સો પુત્રો સાથે યુદ્ધ કરવા લાગ્યા.॥ ૩૦ ॥

બાણાસુર જેમનામાં સૌથી મોટો હતો તે સો બલિપુત્રો સાથે સૂર્યદેવ એકલા જ યુદ્ધ કરવા લાગ્યા.॥ ૩૦ ॥

તથા ચન્દ્ર રાહુ સાથે, વાયુ પુલોમા સાથે, મહાબળવાન દેવી ભદ્રકાળી શુંભ-નિશુંભ સાથે યુદ્ધ કરવા લાગ્યાં.॥ ૩૧ ॥

નિશુંભ અને શુંભ સાથે દેવી ભદ્રકાળી (યુદ્ધ કરવા લાગ્યાં).॥ ૩૧ ॥

હે શત્રુને તપાવનાર પરીક્ષિત, મહાદેવજી તો જંભાસુર સાથે, અગ્નિ મહિષાસુર સાથે, વાતાપિ સહિત ઈલ્વલ બ્રહ્માજીના વસિષ્ઠ આદિ પુત્રો સાથે (યુદ્ધ કરવા લાગ્યા).॥ ૩૨ ॥

कामदेवेन दुर्मर्ष उत्कलो मातृभिः सह।
बृहस्पतिश्चोशनसा नरकेण शनैश्चरः॥ ३३

દુર્મર્ષ કામદેવ સાથે, ઉત્કલ માતૃકાઓ સાથે, બૃહસ્પતિ શુક્રાચાર્ય સાથે અને શનિદેવ નરકાસુર સાથે,॥ ૩૩॥

मरुतो निवातकवचैः कालेयैर्वसवोऽमराः।
विश्वेदेवास्तु पौलोमै रुद्राः क्रोधवशैः सह॥ ३४

મરુદ્‌ગણો નિવાતકવચો સાથે, વસુદેવો કાલેયો સાથે, વિશ્વેદેવા પૌલોમો સાથે તથા રુદ્રો ક્રોધવશ નામના અસુરો સાથે॥ ૩૪॥

त एवमाजावसुराः सुरेन्द्रा
द्वन्द्वेन संहत्य च युध्यमानाः।
अन्योन्यमासाद्य निजघ्नुरोजसा
जिगीषवस्तीक्ष्णशरासितोमरैः॥ ३५

આ પ્રમાણે યુદ્ધમાં એકઠા થઈ, દ્વન્દ્વયુદ્ધ દ્વારા યુદ્ધ કરતા તે અસુરો અને શ્રેષ્ઠ દેવો એકબીજાને સામસામે પ્રાપ્ત કરીને તીક્ષ્ણ બાણો, તલવારો અને ભાલાઓથી બળપૂર્વક મારવા લાગ્યા.॥ ૩૫॥

भुशुण्डिभिश्चक्रगदर्ष्टिपट्टिशैः
शक्त्युल्मुकैः प्रासपरश्वधैरपि।
निस्त्रिंशभल्लैः परिघैः समुद्गरैः
सभिन्दिपालैश्च शिरांसि चिच्छिदुः॥ ३६
॥ ३२॥ ३३॥ ३४॥ ३५॥ ३६॥

ભુશુંડી, ચક્ર, ગદા, ઋષ્ટિ, પટ્ટિશ, શક્તિ, ઊંબાડિયાં, બરછી, ફરશી, તલવાર, ભાલા, મુદ્‌ગર તથા ગોફણ સહિત પરિઘો દ્વારા (તેઓ એકબીજાનાં) મસ્તકો કાપવા માંડ્યા.॥ ૩૬॥ (ઋષ્ટિ– બેધારી તલવાર)॥ ૩૨॥ ૩૩॥ ૩૪॥ ૩૫॥ ૩૬॥

गजास्तुरङ्गाः सरथाः पदातयः
सारोहवाहा विविधा विखण्डिताः।
निकृत्तबाहूरुशिरोधराङ्घ्रय-
श्छिन्नध्वजेष्वासतनुत्रभूषणाः॥ ३७

હાથી, ઘોડા, રથસહિત પાયદળ તથા પોતપોતાનાં જુદાં જુદાં સવારોસહિતનાં (ઊંટ વગેરે) વાહનો ટુકડે ટુકડા થઈ ગયાં. કેટલાકનાં બાહુ, સાથળ, ડોકાં, પગ કપાઈ ગયાં તથા કેટલાકનાં ધજા, ધનુષ્ય, કવચ તથા આભૂષણો તૂટી ગયાં.॥ ૩૭॥

आरोहन्तीत्यारोहास्तैः सहिता अन्ये च वाहाः। पूर्वं तु केवलं गजादय उक्ताः। कथंभूताः। निकृत्ता बाह्वादयो येषाम्। छिन्नानि ध्वजादीनि येषां ते॥ ३७॥ (**तनुत्रं कवचम्**)

સવારી કરે છે તે સવારો, તેમના સહિત બીજાં પણ વાહનો– શ્લોકના પૂર્વાર્ધમાં કેવળ ગજાદિનું વર્ણન કર્યું છે. યોદ્ધાઓ કેવા? જેમના બાહુઓ વગેરે કપાઈ ગયા છે તથા તૂટી ગયા છે ધ્વજ વગેરે જેમના તે યોદ્ધાઓ॥ ૩૭॥

तेषां पदाघातरथाङ्गचूर्णिता-
दायोधनादुल्बण उत्थितस्तदा।
रेणुर्दिशः खं द्युमणिं च छादयन्
न्यवर्ततासृक्स्रुतिभिः परिप्लुतात्॥ ३८

તે સમયે તે દેવો વગેરેના પગના પ્રહારોથી અને રથનાં પૈડાંઓથી (ભાંગીને) ભૂકો થઈ ગયેલી, રણભૂમિમાંથી ઊડતી તેમ જ દિશાઓ, આકાશ અને સૂર્યને ઢાંકતી અતિશય ધૂળ રક્તના છંટકાવથી તરબોળ થયેલી હોવાથી પાછી ફરતી હતી.॥ ૩૮॥

तेषां देवादीनां पदाघातैः रथाङ्गैश्च चूर्णिता-दायोधनाद्रणभूमेरुत्थितो रेणुर्दिशः खं द्युमणिं च सूर्यं छादयंस्तदैव खादेर्न्यवर्तत। कथंभूतात्। असृक्स्रुतिभिः रक्तक्षरणैः परिप्लुतात्सिक्तात्।

'तेषाम्' તે દેવો વગેરેના પગના પ્રહારોથી અને રથનાં પૈડાંઓથી (ભાંગીને) ભૂકો થઈ ગયેલી, **'आयोधनात्'** રણભૂમિમાંથી ઊડતી ધૂળ દિશાઓ, આકાશ અને **'द्युमणिम्'** સૂર્યને ઢાંકતી, તે જ સમયે આકાશ વગેરેમાં પાછી ફરતી હતી. કેવી રણભૂમિમાંથી? **'असृक्स्रुतिभिः'** રક્તના છંટકાવને કારણે **'परिप्लुतात्'** તરબોળ થયેલી રણભૂમિમાંથી

यद्वा परिप्लवनाद्धेतोर्न्यवर्तत। भावे क्तः। रक्तधाराणां तत्पर्यन्तमुच्छलनादित्यर्थः। प्रथमान्त-पाठे रेणोर्विशेषणम्॥ ३८॥

અથવા લોહીથી તરબોળ થઈ જવાને કારણે ઊડતી ધૂળ પાછી ફરતી હતી. **'भावे क्तः'** (પા.સૂ. ૩/૩/૧૧૪, નપુંસક લિંગમાં **क्तान्त-त** ના અંતવાળા શબ્દો ક્યારેક ક્યારેક એ ક્રિયાના બતાવેલા કાર્યને જ સૂચિત કરે છે; જેમ કે **गतम्** નું ગમન, અહીં **'परिप्लुत'** રણભૂમિનું વિશેષણ ન બને, પણ **'परिप्लवनम्'** એમ નામ બને.) રક્તની ધારાઓ તે દિશાઓ, સૂર્ય અને આકાશ પર્યન્ત ઊછળતી હોવાથી, એમ અર્થ છે. **'परिप्लुतः'** એમ પ્રથમાંત પાઠમાં તે ધૂળનું વિશેષણ બને છે. (પણ રણભૂમિનું વિશેષણ ન બને.)॥ ૩૮॥

शिरोभिरुद्धूतकिरीटकुण्डलैः
संरम्भदृग्भिः परिदष्टदच्छदैः।
महाभुजैः साभरणैः सहायुधैः
सा प्रास्तृता भूः करभोरुभिर्बभौ॥ ३९

જેમના (મસ્તક) પરથી મુકુટો અને કુંડળો પડી ગયાં છે, ક્રોધયુક્ત આંખો અને પીસેલા હોઠો છે તેવાં મસ્તકોથી, અંલકારો સહિત અને આયુધો સહિતની મોટી ભુજાઓથી તથા હાથીની સૂંઢ જેવી સાથળોથી અત્યંત છવાયેલી તે રણભૂમિ (ભીષણ) દેખાતી હતી.॥ ૩૯॥

शिरोभिर्महाभुजैश्च करभसदृशैरूरुभिश्च सा रणभूः प्रकर्षेणास्तृता सती बभौ। कथंभूतैः शिरोभिः। उद्धूतान्युत्पतितानि किरीटानि कुण्डलानि च येभ्यस्तैः। संरम्भयुक्ता दृशो येषु तैः। परिदष्टा दच्छदा ओष्ठा येषु तैः॥ ३९॥

મસ્તકોથી અને મોટી ભુજાઓથી તથા હાથીની સૂંઢ જેવી સાથળોથી તે રણભૂમિ અત્યંત છવાયેલી (હોઈ ભીષણ) દેખાતી હતી. કેવાં મસ્તકોથી? **'उद्धूतानि'** પડી ગયાં છે મુકુટો અને કુંડળો જેમનાં પરથી તેવાં મસ્તકોથી, ક્રોધયુક્ત આંખો છે જેમનામાં તે મસ્તકોથી, **'परिदष्टाः'** પીસેલા હોઠો છે જે મસ્તકોમાં તેમનાથી॥ ૩૯॥

कबन्धास्तत्र चोत्पेतुः पतितस्वशिरोऽक्षिभिः।
उद्यतायुधदोर्दण्डैराधावन्तो भटान् मृधे॥ ४०

વળી, ત્યાં યુદ્ધમાં પડી ગયેલાં પોતપોતાનાં મસ્તકો અને તેમાં રહેલી આંખોથી (જોતાં) અને ઉગામેલાં આયુધોયુક્ત ભુજંદડોવાળાં ધડો ચોતરફ દોડતા સૈનિકો તરફ (યુદ્ધ કરવા માટે) ઊઠવા લાગ્યાં.॥ ૪૦॥

पतितानि यानि स्वशिरांसि तत्रत्यैरक्षिभिस्तैः पश्यन्त इत्यर्थः। उद्यतान्यायुधानि यैस्तैर्दोर्दण्डैर्युक्ताः॥ ४०॥

પડી ગયેલાં પોતપોતાનાં જે મસ્તકો હતાં તેમાંની આંખોથી તેમના દ્વારા જોતાં ધડો, એમ અર્થ છે. ઉગામવામાં આવ્યાં છે આયુધો જેમના દ્વારા તેવા ભુજદંડોવાળાં ધડો॥ ૪૦॥

बलिर्महेन्द्रं दशभिस्त्रिभिरैरावतं शरैः।
चतुर्भिश्चतुरो वाहानेकेनारोहमार्च्छयत्॥ ४१

રાજા બલિએ દસ બાણોથી ઈન્દ્રને, ત્રણ બાણોથી ઐરાવતને, ચાર બાણોથી ઐરાવતના ચાર ચરણરક્ષકોને અને એક બાણથી હાથીના મહાવતને વીંધી નાખ્યા.॥ ૪૧॥

वाहानैरावतपादरक्षकान्। आरोहं गजयन्तारमार्च्छयद्विव्याध॥ ४१॥

'वाहान्' ઐરાવતના ચાર ચરણરક્ષકોને, **'आरोहम्'** હાથીના મહાવતને, **'आर्च्छयत्'** વીંધી નાખ્યા.॥ ૪૧॥

(એમ કુલ અઢાર બાણો માર્યાં.)

स तानापततः शक्रस्तावद्भिः शीघ्रविक्रमः।
चिच्छेद निशितैर्भल्लैरसम्प्राप्तान्हसन्निव॥ ४२
॥ ४२॥

(ધનુર્વિદ્યામાં કુશળ એવા) શીઘ્ર પરાક્રમ કરનાર તે ઈન્દ્રે સામે ધસી આવતાં તે બાણોને, પહોંચતાં પહેલાં જ તેટલા જ (અઢાર) તીક્ષ્ણ ભાલાઓથી હસતો હોય તેમ કાપી નાખ્યાં.॥ ૪૨॥ ૪૨॥

(**तान् शरान्** તે બાણોને)

तस्य कर्मोत्तमं वीक्ष्य दुर्मर्षः शक्तिमाददे।
तां ज्वलन्तीं महोल्काभां हस्तस्थामच्छिनद्धरिः॥ ४३

તેનું ઉત્તમ કર્મ જોઈ તેને સહન ન કરી શકતા બલિએ (તેને મારવા માટે) શક્તિ (હાથમાં) લીધી. મહાન ઉલ્કા જેવી આભાવાળી પ્રજ્વલિત તે શક્તિને ઈન્દ્રે (બલિના) હાથમાં રહેલી જ કાપી નાખી.॥ ૪૩॥

दुर्मर्षोऽसहनो बलिः॥ ४३॥

'दुर्मर्षः' સહન ન કરી શકતા બલિએ॥ ૪૩॥

ततः शूलं ततः प्रासं ततस्तोमरमृष्टयः।
यद् यच्छस्त्रं समादद्यात्सर्वं तदच्छिनद् विभुः॥ ४४
॥ ४४॥

(શક્તિને કાપ્યા) પછી ત્રિશૂળ, પછી પ્રાસ, પછી તોમર અને બેધારી તલવારો– એમ જે જે શસ્ત્રો બલિએ ઉપાડ્યાં, તે સર્વને સમર્થ ઈન્દ્રે કાપી નાખ્યાં.॥ ૪૪॥ ૪૪॥

वंशीधरी—ऋषयः ऋष्टीः।

સસર્જાથાસુરીં માયામન્તર્ધાનગતોऽસુરઃ।

ततः प्रादुरभूच्छैलः सुरानीकोपरि प्रभो॥ ४५

॥ ४५ ॥

ततो निपेतुस्तरवो दह्यमाना दवाग्निना।

शिलाः सटङ्कशिखराश्चूर्णयन्त्यो द्विषद्बलम्॥ ४६

टङ्कवत्तीक्ष्णाग्रैः शिखरैः सहिताः॥ ४६ ॥

महोरगाः समुत्पेतुर्दन्दशूकाः सवृश्चिकाः।

सिंहव्याघ्रवराहाश्च मर्दयन्तो महागजान्॥ ४७

यातुधान्यश्च शतशः शूलहस्ता विवाससः।

छिन्धि भिन्धीति वादिन्यस्तथा रक्षोगणाः प्रभो॥ ४८

॥ ४७ ॥ ४८ ॥

ततो महाघना व्योम्नि गम्भीरपरुषस्वनाः।

अङ्गारान्मुमुचुर्वातैराहताः स्तनयित्नवः॥ ४९

स्तनयित्नवश्चाङ्गारान्मुमुचुरित्यनुषङ्गः॥ ४९ ॥

सृष्टो दैत्येन सुमहान्वह्निः श्वसनसारथिः।

सांवर्तक इवात्युग्रो विबुधध्वजिनीमधाक्॥ ५०

अधाक् आर्षः। अधाक्षीदित्यर्थः॥ ५० ॥

અહીં '**ऋष्टयः**' પ્ર.બ.વ.ને બદલે દ્વિ.બ.વ. **ऋष्टीः** હોવું જોઈએ. બે ધારી તલવારોને

(સર્વ શસ્ત્રો કાપ્યા) પછી હે રાજા (પરીક્ષિત), અસુર બલિ અંતર્ધાન થઈ ગયો અને આસુરી માયા ઉત્પન્ન કરી, એટલે દેવોના સૈન્ય ઉપર પર્વત પ્રકટ થયો.॥ ૪૫॥ ૪૫॥

તે પર્વત ઉપરથી દાવાનળથી બળતાં વૃક્ષો અને શત્રુઓની સેનાનો ચૂરો કરી નાખતી, (પાષાણને તોડી નાખતાં) તીક્ષ્ણ અગ્રભાગવાળાં શિખરો સહિત શિલાઓ પડવા માંડી.॥ ૪૬॥

'**टङ्कवत्**' તીક્ષ્ણ અગ્રભાગવાળાં શિખરો સહિત,॥ ૪૬॥

અજગરો, વીંછીઓ સહિત ડંખ મારતા સર્પો તથા મોટા હાથીઓને ફાડી નાખતા સિંહો, વાઘો અને સૂવરો ધસી પડ્યા.॥ ૪૭॥

હે પરીક્ષિત, હાથમાં ત્રિશૂળ ધારણ કરતી અને 'કાપી નાખો, ફાડી નાખો' એમ બોલતી સેંકડો નગ્ન રાક્ષસીઓ અને રાક્ષસોનાં ટોળાં (ધસી પડ્યાં.)॥ ૪૮॥ ૪૭॥ ૪૮॥ ('**समुत्पेतुः**' શ્લોક-૪૭માંથી જોડવું.)

પછી ગહન અને કઠોર શબ્દવાળાં મોટાં વાદળો આકાશમાં વાયુઓથી અથડાઈને વીજળીઓ અને અંગારાઓ વરસાવવા લાગ્યાં.॥ ૪૯॥

વીજળીઓ અને અંગારાઓ વરસાવવા લાગ્યાં, એમ સંબંધ છે.॥ ૪૯॥

દૈત્ય બલિ દ્વારા સર્જન કરવામાં આવેલો અતિમહાન, પ્રલયકાળના અગ્નિ જેવો અતિભયંકર અને વાયુરૂપ સારથિવાળો અગ્નિ દેવોની સેનાને બાળવા લાગ્યો.॥ ૫૦॥

'**अधाक्**' આર્ષપ્રયોગ છે. **अधाक्षीत्** બાળવા લાગ્યો, એમ અર્થ છે.॥ ૫૦॥ ('**दह्**' નું અદ્યતન ભૂ.કા.ત્રી. પુ. એ.વ. '**अधाक्षीत्**')

ततः समुद्र उद्वेलः सर्वतः प्रत्यदृश्यत।
प्रचण्डवातैरुद्धूततरङ्गावर्तभीषणः ॥ ५१

ત્યાર પછી પોતાની મર્યાદાને ઓળંગતો અને પ્રચંડ આંધીથી ઊછળતા તરંગો અને ઘૂમરીઓથી (અત્યંત ભયંકર સમુદ્ર ચારે તરફ દેખાયો.) ॥ ૫૧ ॥

उद्धूतैस्तरङ्गैरावर्तैश्च भीषणः ॥ ५१ ॥

ઊછળતા તરંગો અને ઘૂમરીઓથી ભયંકર ॥ ૫૧ ॥

एवं दैत्यैर्महामायैरलक्ष्यगतिभीषणैः।
सृज्यमानासु मायासु विषेदुः सुरसैनिकाः ॥ ५२

આમ, મહામાયાવી અને કળી ન શકાય તેવી ગતિથી ભયંકર દૈત્યો દ્વારા માયાની સૃષ્ટિ કરવામાં આવી, ત્યારે દેવોના સૈનિકો દુઃખી થઈ ગયા. ॥ ૫૨ ॥

एवमन्यैश्च दैत्यैः सृज्यमानासु ॥ ५२ ॥

આમ અન્ય દૈત્યો દ્વારા પણ માયાની સૃષ્ટિ કરવામાં આવી ત્યારે ॥ ૫૨ ॥

(महती माया यस्य सः महामायः)

(જેની મહાન માયા છે તે મહામાયાવી.)

न तत्प्रतिविधिं यत्र विदुरिन्द्रादयो नृप।
ध्यातः प्रादुरभूत् तत्र भगवान्विश्वभावनः ॥ ५३

હે રાજા (પરીક્ષિત), જ્યારે ઈન્દ્રાદિ દેવો તે માયાનો પ્રતિકાર કરવાનો ઉપાય જાણી શક્યા નહીં, ત્યારે વિશ્વનું કલ્યાણ કરનારા ભગવાન શ્રીહરિ ધ્યાન કરવામાં આવેલા હોઈ (ત્યાં) આવિર્ભાવ પામ્યા. ॥ ૫૩ ॥

यत्र यदा। तत्र तदा। तैर्ध्यातः सन् ॥ ५३ ॥

'**यत्र**' જ્યારે, '**तत्र**' ત્યારે, તેમના દ્વારા ધ્યાન કરવામાં આવેલા હોઈ ॥ ૫૩ ॥

ततः सुपर्णांसकृताङ्घ्रिपल्लवः
पिशङ्गवासा नवकञ्जलोचनः।
अदृश्यताष्टायुधबाहुरुल्लस-
च्छ्रीकौस्तुभानर्घ्यकिरीटकुण्डलः ॥ ५४

જેમનાં ચરણપલ્લવ સુંદર પાંખોવાળા ગરુડજીની કાંધ ઉપર મૂકવામાં આવ્યાં છે તેવા, પીતાંબર ધારણ કરેલા, નવીન કમળ જેવાં (કોમળ) નેત્રોવાળા, આઠ બાહુઓમાં આઠ આયુધો ધારણ કરેલા, દેદીપ્યમાન શ્રીલક્ષ્મીજી–કૌસ્તુભમણિ–અમૂલ્ય મુકુટ અને કુંડળ ધારણ કરેલા ભગવાન શ્રીહરિ દૃષ્ટિગોચર બન્યા. ॥ ૫૪ ॥

अष्टावायुधयुक्ता बाहवो यस्य। श्रीश्च कौस्तुभश्च अनर्घ्यं किरीटं च कुण्डले च उल्लसन्ति श्रीकौस्तुभादीनि यस्मिन् ॥ ५४ ॥

(શંખ, ચક્ર, ઢાલ, તલવાર, ગદા, બાણ, ધનુષ્ય તથા પાશ એમ) આઠ આયુધોથી યુક્ત બાહુઓ છે જેમના, દેદીપ્યમાન શ્રીલક્ષ્મીજી તથા કૌસ્તુભમણિ તેમ જ અમૂલ્ય મુકુટ અને બંને કુંડળો વગેરે છે જેમનામાં તે શ્રીહરિ ॥ ૫૪ ॥

तस्मिन्प्रविष्टेऽसुरकूटकर्मजा
माया विनेशुर्महिना महीयसः।
स्वप्नो यथा हि प्रतिबोध आगते
हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्॥ ५५

ખરેખર, જેમ જાગી જતાં સ્વપ્ન નાશ પામે છે, તેમ તે શ્રીહરિ પ્રવિષ્ટ થતાં જ, સર્વથી વધારે મહાન એવા તેમના મહિમાથી અસુરોનાં કૂટકર્મોથી ઉત્પન્ન થયેલી માયા નાશ પામી. શ્રીહરિનું સ્મરણ સર્વ વિપત્તિઓમાંથી છોડાવનારું છે ॥ ૫૫ ॥

असुराणां कूटकर्म मन्त्रादिप्रयोगस्तस्माज्जाताः। महिना महिम्ना। हरेः स्मृतिरेव सर्वासां विपदां मोक्षणरूपा किमुत हरेः प्रवेश इत्यर्थः ॥ ५५ ॥

અસુરોના '**कूटकर्म**' મંત્રાદિ પ્રયોગથી જન્મેલી માયા– '**महिना**' મહિમાથી– શ્રીહરિનું સ્મરણ જ સર્વ આપત્તિઓમાંથી છોડાવનારું છે, તો શ્રીહરિનો પ્રવેશ સર્વ આપત્તિઓમાંથી છોડાવનારો હોય તેમાં શું કહેવાનું? એમ અર્થ છે. ॥ ૫૫ ॥

दृष्ट्वा मृधे गरुडवाहमिभारिवाह
आविध्य शूलमहिनोदथ कालनेमिः।
तल्लीलया गरुडमूर्ध्नि पतद् गृहीत्वा
तेनाहनन्नृप सवाहमरिं त्र्यधीशः॥ ५६

યુદ્ધમાં ગરુડવાહન શ્રીહરિને જોઈને સિંહના વાહનવાળા કાલનેમિએ ત્રિશૂળ ફેરવીને ફેંક્યું એટલે હે રાજા, ત્રિભુવનના નાથે ગરુડના મસ્તક પર પડતાં (પહેલાં જ) તેને રમતમાં ઝીલીને તેનાથી વાહન સહિત શત્રુ કાલનેમિને હણી નાખ્યો. ॥ ૫૬ ॥

इभारिवाहः सिंहवाहः। अहिनोच्चिक्षेप। लीलयैव तद्गृहीत्वा अहनदहन्। हे नृप॥ ५६ ॥

'**इभ-अरिवाहः**' હાથીનો શત્રુ સિંહ જેનું વાહન છે તે કાલનેમિ. '**अहिनोत्**' ફેંક્યું. રમતમાં જ તેને ઝીલીને '**अहनत्**' **अहन्** હણી નાખ્યો. હે રાજા ॥ ૫૬ ॥

(અતિબળવાન માલી અને સુમાલી ભગવાનને મારવા માટે યુદ્ધમાં આવ્યા, ત્યારે ભગવાને ચક્રથી તેમનાં મસ્તકો કાપી નાખ્યાં.)

माली सुमाल्यतिबलौ युधि पेततुर्य-
च्चक्रेण कृत्तशिरसावथ माल्यवांस्तम्।
आहत्य तिग्मगदयाहनदण्डजेन्द्रं
तावच्छिरोऽच्छिनदरेर्नदतोऽरिणाऽऽद्यः ॥ ५७

જેમના ચક્રથી છેદાઈ ગયેલાં મસ્તકોવાળા મહાબળવાન માલી અને સુમાલી બંને (કપાઈને) પડ્યા, તે ભગવાનને યુદ્ધમાં (સામે) પ્રાપ્ત કરીને માલ્યવાને તીક્ષ્ણ ગદાથી ગરુડજીને હણવા માટે ગદા ઉગામી, ત્યારે વિશ્વપૂર્વવર્તી (આદ્ય) શ્રીહરિએ ગર્જના કરતા શત્રુનું મસ્તક ચક્રથી કાપી નાખ્યું. ॥ ૫૭ ॥

यस्य चक्रेण कृत्तशिरसौ पेततुस्तं तथाभूतमप्याहत्य संघट्य अण्डजेन्द्रं गरुडमहनत्, तं हन्तुं गदामुन्निन्य इत्यर्थः। आद्यो हरिः॥ ५७॥

જેમના ચક્રથી છેદાઈ ગયેલાં મસ્તકોવાળા તે બંને પડ્યા, તે ભગવાન તેવા (ઉગ્ર) હોવા છતાં તેમને **'आहत्य'** પ્રાપ્ત કરીને (માલ્યવાને) **'अण्डजेन्द्रम्'** ગરુડજીને **'अहनत्'** મારવા માટે (ગદા) ઉગામી, એમ અર્થ છે. **'आद्यः'** વિશ્વપૂર્વવર્તી શ્રીહરિ ॥ ૫૭ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे
देवासुरसंग्रामे दशमोऽध्यायः॥ १०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां दशमोऽध्यायः॥ १०॥

❋❋❋❋❋

अथैकादशोऽध्यायः

દેવાસુરસંગ્રામની સમાપ્તિ

एकादशे तु देवेषु दैत्यघातिषु नारदः।
देवानवारयच्छुक्रो मृतान्दैत्यानजीवयत्॥ १॥

અગિયારમા અધ્યાયમાં દેવો દૈત્યોનો સંહાર કરવા લાગ્યા, ત્યારે નારદજીએ દેવોને અટકાવ્યા અને શુક્રાચાર્યે મરેલા દૈત્યોને સજીવન કર્યા (તે કથા કહેવાશે). ॥ ૧ ॥

श्रीशुक उवाच

अथो सुराः प्रत्युपलब्धचेतसः
परस्य पुंसः परयानुकम्पया।
जघ्नुर्भृशं शक्रसमीरणादय-
स्तांस्तान् रणे यैरभिसंहताः पुरा॥ १॥ ॥ १॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – (માલ્યવાનના મૃત્યુ) પછી ઈન્દ્ર, વાયુ વગેરે દેવો ભગવાન પરમ પુરુષની પરમ અનુકમ્પાથી પુનઃ ભાન પ્રાપ્ત કરી, પૂર્વે યુદ્ધમાં જેમનાથી આઘાત પામ્યા હતા, તે તે અસુરોને ખૂબ મારવા લાગ્યા. ॥ ૧ ॥ ૧ ॥

वैरोचनाय संरब्धो भगवान्पाकशासनः।
उदयच्छद् यदा वज्रं प्रजा हाहेति चुक्रुशुः॥ २

ઐશ્વર્યવાન ઈન્દ્રે ક્રોધિત થઈ વિરોચનપુત્ર બલિને (મારવા) માટે જ્યારે વજ્ર ઉગામ્યું, ત્યારે પ્રજા હાહાકાર કરવા લાગી. ॥ ૨ ॥

उदयच्छदुन्निन्ये॥ २॥

'उदयच्छत्' ઉગામ્યું ॥ ૨ ॥(**पाकशासनः**=ઈન્દ્ર)

वज्रपाणिस्तमाहेदं तिरस्कृत्य पुरःस्थितम्।
मनस्विनं सुसम्पन्नं विचरन्तं महामृधे॥ ३ ॥ ३॥

હાથમાં વજ્ર ધારણ કરનાર ઈન્દ્રે મહાયુદ્ધમાં નિર્ભયપણે ઘૂમતા, દૃઢ મનવાળા (ધૈર્યવાન), (યુદ્ધનાં શસ્ત્રાદિથી) સજ્જ અને આગળ ઊભેલા તે બલિનો તિરસ્કાર કરી આ પ્રમાણે કહ્યું. ॥ ૩ ॥ ૩ ॥

नटवन्मूढ मायाभिर्मायेशान् नो जिगीषसि।
जित्वा बालान् निबद्धाक्षान् नटो हरति तद्धनम्॥ ४

અરે મૂઢ! નજરબંધી કરવામાં આવેલા અજ્ઞાનીઓને છેતરીને (કપટથી જીતીને) જેમ નટ તેમનું ધન હરી લે છે, તેમ માયાઓ રચીને માયાના અધિપતિઓ એવા અમને તું જીતવા ઈચ્છે છે? ॥ ૪ ॥

निबद्धान्यक्षीणि येषां तान्बालाञ्जित्वा नटः कपटवृत्तिर्यथा तेषां धनं हरति तथा हे मूढ, मायेशानस्माञ्जेतुमिच्छसि ॥ ४ ॥

मत्प्रभावं शृण्वित्याह—

आरुरुक्षन्ति मायाभिरुत्सिसृप्सन्ति ये दिवम् ।
तान्दस्यून्विधुनोम्यज्ञान्पूर्वस्माच्च पदादधः ॥ ५

आरुरुक्षन्त्यारोढुमिच्छन्ति । ये चोत्सिसृप्सन्त्युल्लङ्घयितुमिच्छन्ति । मोक्षमिच्छन्तीत्यर्थः । अधो विधुनोमि पातयामि ॥ ५ ॥

सोऽहं दुर्मायिनस्तेऽद्य वज्रेण शतपर्वणा ।
शिरो हरिष्ये मन्दात्मन्घटस्व ज्ञातिभिः सह ॥ ६

॥ ६ ॥

बलिरुवाच

सङ्ग्रामे वर्तमानानां कालचोदितकर्मणाम् ।
कीर्तिर्जयोऽजयो मृत्युः सर्वेषां स्युरनुक्रमात् ॥ ७

॥ ७ ॥

तदिदं कालरशनं जनाः पश्यन्ति सूरयः ।
न हृष्यन्ति न शोचन्ति तत्र यूयमपण्डिताः ॥ ८

कालरशनं कालयन्त्रितम् । अतो न हृष्यन्ति । तत्र एवं विवेके यूयमपण्डिता अनिपुणाः ॥ ८ ॥

न वयं मन्यमानानामात्मानं तत्र साधनम् ।
गिरो वः साधुशोच्यानां गृह्णीमो मर्मताडनाः ॥ ९

જેમની નજરબંધી કરવામાં આવી છે તે અજ્ઞાનીઓને જીતીને (છેતરીને) કપટવૃત્તિવાળો નટ જેમ તેમનું ધન હરી લે છે, તેમ હે મૂઢ, માયાના અધિપતિઓ એવા અમને તું જીતવા ઈચ્છે છે ? ॥ ૪ ॥

મારો પ્રભાવ સાંભળ, એમ (ઈન્દ્ર) કહે છે—

જેઓ માયાઓ દ્વારા સ્વર્ગમાં ઊંચે ચઢવા ઈચ્છે છે, (અમને પણ) અતિક્રમીને (ઉત્તરોત્તર લોકમાં) જવા ઈચ્છે છે, તે મૂર્ખાઓને પહેલા સ્થાન (રસાતળ)થી પણ નીચે ધકેલી દઉં છું. ॥ ૫ ॥

‘**आरुरुक्षन्ति**’ ઊંચે ચઢવા ઈચ્છે છે તથા જેઓ ‘**उत्सिसृप्सन्ति**’ (અમને પણ) અતિક્રમીને ઉત્તરોત્તર લોકમાં જવા ઈચ્છે છે. મોક્ષની ઈચ્છા કરે છે, એમ અર્થ છે. નીચે ‘**विधुनोमि**’ ધકેલી દઉં છું. ॥ ૫ ॥

અરે ઓ મંદબુદ્ધિ, તે (આવા પ્રભાવવાળો) હું (ઈન્દ્ર) આજે સો ધારવાળા વજ્રથી, દુષ્ટ માયા ધારણ કરનાર એવા તારું મસ્તક હરી લઈશ. તારા જાતભાઈઓ સાથે (તારું) પરાક્રમ કરી બતાવ ! ॥ ૬ ॥ ૬ ॥

રાજા બલિ બોલ્યા – યુદ્ધમાં રહેલા જે મનુષ્યોનાં કર્મો કાળ દ્વારા પ્રેરિત (પ્રવર્તમાન) થાય છે, તે સર્વ જનોનાં કીર્તિ, જય, પરાજય અને મૃત્યુ ક્રમાનુસાર થાય છે. ॥ ૭ ॥ ૭ ॥

આ (કીર્તિ વગેરે સર્વ) કાળના પાશને અધીન છે એમ વિવેકી જનો જોઈ શકે છે, તેથી નથી હર્ષ પામતા કે નથી શોક કરતા, (પરંતુ) તે વિષયમાં તમે અજ્ઞાનીઓ છો. ॥ ૮ ॥

‘**कालरशनम्**’ કાળરૂપી દોરડાને અધીન છે, આથી હર્ષ નથી પામતા. ‘**तत्र**’ તે વિષયમાં, આ પ્રકારના વિવેકમાં તમે બધા ‘**अपण्डिताः**’ અનિપુણ, અજ્ઞાની છો. ॥ ૮ ॥

તે (કીર્તિ, જય વગેરે) વિષયમાં પોતાને કારણ માનનારા (અને આથી જ) સાધુજનો દ્વારા શોચનીય એવા તમારાં મર્મભેદક વચનોને અમે ગણકારતા નથી. ॥ ૯ ॥

तत्र कीर्तिर्जयादावात्मानं साधनं मन्यमानानां वो गिरो न गृह्णीमः। मर्मसु ताडनं याभिस्ताः ॥ ९ ॥

'**तत्र**' તે કીર્તિ, જય વગેરે વિષયમાં, પોતાને કારણ માનનારા એવા તમારાં વચનોને અમે ગણકારતા નથી, જેમનાથી મર્મસ્થાનોમાં પીડા થાય તેવાં વચનો ॥ ૯ ॥

श्रीशुक उवाच

इत्याक्षिप्य विभुं वीरो नाराचैर्वीरमर्दनः।
आकर्णपूर्णैरहनदाक्षेपैराहतं पुनः ॥ १०

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – વીરોનું મર્દન કરનાર વીર બલિએ દુર્વચનોથી ઘવાયેલા વિભુ ઈન્દ્ર પર છેક કાન સુધી ખેંચીને (નારાચ) બાણોથી પુનઃ પ્રહાર કર્યો. ॥ ૧૦ ॥

विभुमिन्द्रम्। वीरो बलिः ॥ १० ॥

'**विभुम्**' ઈન્દ્ર પર, '**वीरः**' વીર બલિએ ॥ ૧૦ ॥

एवं निराकृतो देवो वैरिणा तथ्यवादिना।
नामृष्यत् तदधिक्षेपं तोत्राहत इव द्विपः ॥ ११

સત્યવાદી શત્રુ દ્વારા આ રીતે તિરસ્કૃત થયેલા દેવ ઈન્દ્ર અંકુશથી મારવામાં આવેલા હાથીની જેમ તે આક્ષેપ સહન કરી શક્યા નહીં. ॥ ૧૧ ॥

तोत्रमङ्कुशस्तेनाहत इव ॥ ११ ॥

'**तोत्रम्**' અંકુશ, તેનાથી મારવામાં આવેલા હાથીની જેમ ॥ ૧૧ ॥

प्राहरत् कुलिशं तस्मा अमोघं परमर्दनः।
सयानो न्यपतद् भूमौ छिन्नपक्ष इवाचलः ॥ १२

શત્રુઓનું મર્દન કરનારા ઈન્દ્રે તે બલિની ઉપર અમોઘ વજ્રનો પ્રહાર કર્યો, (એટલે) કપાયેલી પાંખોવાળા પર્વતની જેમ (તે) વિમાન સહિત પૃથ્વી પર પડ્યો. ॥ ૧૨ ॥

सयानो विमानसहितः ॥ १२ ॥

'**सयानः**' વિમાન સહિત ॥ ૧૨ ॥

सखायं पतितं दृष्ट्वा जम्भो बलिसखः सुहृत्।
अभ्ययात् सौहृदं सख्युर्हतस्यापि समाचरन् ॥ १३

॥ १३ ॥

મિત્રને પડેલો જોઈ બલિનો મિત્ર જંભાસુર પડી ગયેલા મિત્રની મિત્રતા જાળવવા (ઈન્દ્ર) સામે ધસ્યો. ॥ ૧૩ ॥ ૧૩ ॥

स सिंहवाह आसाद्य गदामुद्यम्य रंहसा।
जत्रावताडयच्छक्रं गजं च सुमहाबलः ॥ १४

॥ १४ ॥

અત્યંત મહાબળવાન, સિંહના વાહનવાળા તેણે (જંભાસુરે) ઈન્દ્ર પાસે જઈ, ગદા ઉગામી અતિ વેગથી ઈન્દ્રની હાંસડી ઉપર મારી અને ઐરાવત હાથીને પણ માર્યો. ॥ ૧૪ ॥ ૧૪ ॥

गदाप्रहारव्यथितो भृशं विह्वलितो गजः।
जानुभ्यां धरणीं स्पृष्ट्वा कश्मलं परमं ययौ ॥ १५

॥ १५ ॥

ગદાના પ્રહારથી વ્યથિત થયેલો (અને તેથી) અત્યંત વિહ્‌વળ થયેલો હાથી ગોઠણભેર થઈ ધરતી પર ફસડાઈને ઘેરી મૂર્ચ્છાને પ્રાપ્ત થયો. ॥ ૧૫ ॥ ૧૫ ॥

ततो रथो मातलिना हरिभिर्दशशतैर्वृतः।
आनीतो द्विपमुत्सृज्य रथमारुरुहे विभुः ॥ १६

॥ १६ ॥

પછી માતલિ દ્વારા હજાર અશ્વોથી યુક્ત રથ આણવામાં આવ્યો. વિભુ (ઈન્દ્ર) હાથીને છોડી રથ ઉપર બેઠા. ॥ ૧૬ ॥ ૧૬ ॥

तस्य तत् पूजयन् कर्म यन्तुर्दानवसत्तमः।
शूलेन ज्वलता तं तु स्मयमानोऽहनन्मृधे॥ १७

(यन्तृ–સારથિ)॥ १७॥

તેના સારથિના તે કર્મની પ્રશંસા કરતા દાનવશ્રેષ્ઠ જંભાસુરે યુદ્ધમાં હસતાં હસતાં બળબળતા ત્રિશૂળથી તે માતલિને માર્યો.॥ ૧૭॥ ૧૭॥

सेहे रुजं सुदुर्मर्षां सत्त्वमालम्ब्य मातलिः।
इन्द्रो जम्भस्य संक्रुद्धो वज्रेणापाहरच्छिरः॥ १८

॥ १८॥

માતલિએ ધૈર્ય ધારણ કરીને અતિદુ:સહ પીડા સહન કરી. ઈન્દ્રે અત્યંત ક્રોધાયમાન થઈ વજ્રથી જમ્ભાસુરનું મસ્તક કાપી નાખ્યું.॥ ૧૮॥ ૧૮॥

जम्भं श्रुत्वा हतं तस्य ज्ञातयो नारदादृषेः।
नमुचिश्च बलः पाकस्तत्रापेतुस्त्वरान्विताः॥ १९

नमुचिर्बलः पाकश्चेति त्रय आजग्मुः॥ १९॥

નારદ ઋષિ પાસેથી જમ્ભને મરણ પામેલો સાંભળીને તેના જ્ઞાતિબંધુઓ નમુચિ, બળ અને પાક ત્યાં ત્વરાપૂર્વક આવી પહોંચ્યા.॥ ૧૯॥

નમુચિ, બળ અને પાક એ ત્રણ આવી પહોંચ્યા.॥ ૧૯॥

वचोभिः परुषैरिन्द्रमर्दयन्तोऽस्य मर्मसु।
शरैरवाकिरन् मेघा धाराभिरिव पर्वतम्॥ २०

॥ २०॥

કઠોર વચનોથી ઈન્દ્રને પીડતાં તે દૈત્યોએ મેઘો (મુસળધાર વરસાદ)ની ધારાઓ વડે પર્વતને ઢાંકી દે, તેમ આ ઈન્દ્રનાં મર્મસ્થાનો ઉપર બાણો વડે (ઝડી વરસાવી ઈન્દ્રને) ઢાંકી દીધો.॥ ૨૦॥ ૨૦॥

त्रयाणां पृथग्विक्रमानाह—**हरीनिति त्रिभिः**।

ત્રણેયનું પરાક્રમ ત્રણ શ્લોકો વડે જુદું જુદું વર્ણવે છે— **'हरीन् इति।'**

हरीन्दशशतान्याजौ हर्यश्वस्य बलः शरैः।
तावद्भिरर्दयामास युगपल्लघुहस्तवान्॥ २१

हर्यश्वस्येन्द्रस्य। तावद्भिर्दशभिः शतैः॥ २१॥

હસ્તલાઘવવાળા બળે (તે નામના દૈત્યે) યુદ્ધમાં ઈન્દ્રના હજાર ઘોડાઓને તેટલાં જ બાણોથી એક સાથે ઘાયલ કરી મૂક્યા.॥ ૨૧॥

'हर्यश्वस्य' ઈન્દ્રના, **'तावद्भिः'** તેટલાં જ અર્થાત્ હજાર બાણો વડે॥ ૨૧॥

शताभ्यां मातलिं पाको रथं सावयवं पृथक्।
सकृत्सन्धानमोक्षेण तदद्भुतमभूद् रणे॥ २२

॥ २२॥

પાક દૈત્યે (ધનુષ્યમાં) એક સાથે બસો બાણોનું સંધાન અને મોક્ષ કરીને માતલિને (પીડિત કર્યો) અને એકે એક અંગ સાથે રથને છૂટો કરી નાખ્યો. યુદ્ધમાં તે અદ્ભુત (ઘટના) બની.॥ ૨૨॥ ૨૨॥

नमुचिः पञ्चदशभिः स्वर्णपुङ्खैर्महेषुभिः।
आहत्य व्यनदत्संख्ये सतोय इव तोयदः॥ २३

आहत्येन्द्रं विद्ध्वा॥ २३॥

નમુચિએ સુવર્ણના પૂર્વભાગવાળાં મોટાં પંદર બાણો વડે (ઈન્દ્રને) મારી જળથી ભરેલા મેઘની જેમ મોટી ગર્જના કરી.॥ ૨૩॥

'आहत्य' (ઈન્દ્રને) વીંધીને॥ ૨૩॥

सर्वतः शरकूटेन शक्रं सरथसारथिम्।
छादयामासुरसुराः प्रावृट्सूर्यमिवाम्बुदाः॥ २४

અસુરોએ વર્ષાકાળના સૂર્યને વાદળો ઢાંકી દે તેમ બાણોની ઝડી વરસાવીને ઈન્દ્રને તેના રથ અને સારથિ સહિત ઢાંકી દીધો.॥ ૨૪॥

प्रावृट्कालीनं सूर्यम्॥ २४॥

अलक्षयन्तस्तममतीव विह्वला
विचुक्रुशुर्देवगणाः सहानुगाः।
अनायकाः शत्रुबलेन निर्जिता
वणिक्पथा भिन्ननवो यथाऽर्णवे॥ २५

वणिक्पथा वणिजः। भिन्ना नौर्येषां ते। भिन्ननाव इत्यर्थः॥ २५॥

ततस्तुराषाडिषुबद्धपञ्जराद्
विनिर्गतः साश्वरथध्वजाग्रणीः।
बभौ दिशः खं पृथिवीं च रोचयन्
स्वतेजसा सूर्य इव क्षपात्यये॥ २६

तुराषाडिन्द्रः। अश्वादिसहितो विनिर्गतः। अग्रणीः सारथिः॥ २६॥

निरीक्ष्य पृतनां देवः परैरभ्यर्दितां रणे।
उदयच्छद् रिपुं हन्तुं वज्रं वज्रधरो रुषा॥ २७

॥ २७॥

स तेनैवाष्टधारेण शिरसी बलपाकयोः।
ज्ञातीनां पश्यतां राजञ्जहार जनयन्भयम्॥ २८

॥ २८॥

नमुचिस्तद्वधं दृष्ट्वा शोकामर्षरुषान्वितः।
जिघांसुरिन्द्रं नृपते चकार परमोद्यमम्॥ २९

शोकामर्षाभ्यां युक्तया रुषा क्रोधेनान्वित इन्द्रं हन्तुं परमोद्योगं चकार॥ २९॥

अश्मसारमयं शूलं घण्टावद्धेमभूषणम्।
प्रगृह्याभ्यद्रवत् क्रुद्धो हतोऽसीति वितर्जयन्।
प्राहिणोद् देवराजाय निनदन् मृगराडिव॥ ३०

घण्टावद्घण्टाभिर्युक्तम्॥ ३०॥

વર્ષાકાળના સૂર્યને॥ ૨૪॥

(પોતાનું રક્ષણ કરનાર) નાયક વગરના, શત્રુસેના દ્વારા પરાજિત થયેલા દેવગણો અનુયાયીઓ સહિત સમુદ્રમાં ભાંગી ગયેલી નાવવાળા વેપારીઓની જેમ આક્રોશ કરવા લાગ્યા.॥ ૨૫॥

‘**वणिक्पथाः**’ વેપારીઓ, જેમની નાવડી ભાંગી ગઈ છે તેઓ, ભાંગી ગયેલી નાવવાળા, એમ અર્થ છે.॥ ૨૫॥

તેવામાં રાત્રિના અંતે પોતાના તેજથી દિશાઓ, આકાશ અને પૃથ્વીને પ્રકાશિત કરતો સૂર્ય શોભે તેમ અશ્વ, રથ, ધજા અને સારથિ સહિત બાણોથી બંધાયેલા પાંજરામાંથી ઈન્દ્ર બહાર નીકળ્યો અને શોભવા લાગ્યો.॥ ૨૬॥

‘**तुराषाट्**’ ઈન્દ્ર અશ્વાદિ સહિત બહાર નીકળ્યો– ‘**अग्रणीः**’ સારથિ॥ ૨૬॥

વજ્રધારી દેવ ઈન્દ્રે રણમાં સેનાને શત્રુઓથી પીડાતી જોઈ શત્રુનો નાશ કરવા માટે વજ્ર ઉગામ્યું.॥ ૨૭॥ ૨૭॥

હે રાજા, આઠ ધારવાળા તે વજ્ર વડે જ ભય ઉપજાવતા તે ઈન્દ્રે બળ અને પાકનાં મસ્તકો જ્ઞાતિજનોનાં દેખતાં કાપી નાખ્યાં.॥ ૨૮॥ ૨૮॥

હે નરપતિ (પરીક્ષિત), તેમનો વધ જોઈને શોક અને અસહિષ્ણુતાથી યુક્ત ક્રોધ વડે વ્યાપ્ત થઈ ઈન્દ્રને મારવાની ઈચ્છાવાળા નમુચિએ મહાન પ્રયત્ન કરવા માંડ્યો.॥ ૨૯॥

શોક અને અસહિષ્ણુતાથી યુક્ત ક્રોધ વડે વ્યાપ્ત થયેલા નમુચિએ ઈન્દ્રને મારવા માટે મહાન પ્રયત્ન કર્યો.॥ ૨૯॥

‘હવે તું મર્યો છે.’ એમ તિરસ્કાર કરતા, સિંહની જેમ ગર્જના કરતા ક્રોધિત એવા તે નમુચિએ ઘંટડીઓવાળા સુવર્ણભૂષિત લોઢાના ત્રિશૂળને લઈને દેવરાજ ઈન્દ્ર તરફ પ્રહાર કર્યો.॥૩૦॥

‘**घण्टावत्**’ ઘંટડીઓથી યુક્ત ॥૩૦॥

तदापतद् गगनतले महाजवं
विचिच्छिदे हरिरिषुभिः सहस्रधा।
तमाहनन्नृप कुलिशेन कन्धरे
रुषान्वितस्त्रिदशपतिः शिरो हरन्॥ ३१

॥ ३१ ॥

હે રાજા, ક્રોધાન્વિત દેવરાજ ઈન્દ્રે બાણો મારીને આકાશમાર્ગે આવતા અત્યંત વેગવાળા તે ત્રિશૂળના હજાર ટુકડા કરી નાખ્યા અને તેનું મસ્તક હરી લેતા તેની ડોક પર વજ્રથી પ્રહાર કર્યો. ॥ ૩૧ ॥ ૩૧ ॥

न तस्य हि त्वचमपि वज्र ऊर्जितो
बिभेद यः सुरपतिनौजसेरितः।
तदद्भुतं परमतिवीर्यवृत्रभित्
तिरस्कृतो नमुचिशिरोधरत्वचा॥ ३२

દેવરાજ ઈન્દ્ર દ્વારા બળપૂર્વક ફેંકવામાં આવેલું અતિપ્રભાવશાળી તે વજ્ર તે (નમુચિ)ની ત્વચાને પણ ચીરી ન શક્યું, તે પરમ આશ્ચર્યકારક હતું! (ઊલટું) અત્યંત પરાક્રમી વૃત્રને ચીરી નાખનારું વજ્ર નમુચિની ડોકમાં ત્વચા દ્વારા તિરસ્કૃત થયું! (અર્થાત્ તેની ડોકની ત્વચાથી તે બૂઠું થયું.) ॥ ૩૨ ॥

अतिवीर्यं वृत्रमभिनदिति तथा॥ ३२॥

અતિ પરાક્રમી વૃત્રને ચીરી નાખ્યો હતો તે વજ્ર ॥ ૩૨ ॥

तस्मादिन्द्रोऽबिभेच्छत्रोर्वज्रः प्रतिहतो यतः।
किमिदं दैवयोगेन भूतं लोकविमोहनम्॥ ३३

॥ ३३ ॥

જે શત્રુ પાસેથી વજ્ર પાછું પડ્યું તેનાથી ઈન્દ્ર ભયભીત થયો. (તેને આશ્ચર્ય થયું કે) દૈવયોગે સંસારને સંમોહિત કરનારું આ શું થયું ? ॥ ૩૩ ॥ ૩૩ ॥

येन मे पूर्वमद्रीणां पक्षच्छेदः प्रजात्यये।
कृतो निविशतां भारैः पतत्त्रैः पततां भुवि॥ ३४

(પોતાની) પાંખો વડે (જ્યાં ત્યાં) જતા અને પૃથ્વી પર પ્રવેશતા અને પડતા પર્વતોના ભારથી પ્રજાઓનો નાશ થવા માંડ્યો, ત્યારે જે વજ્રથી મારા વડે પૂર્વે પર્વતોની પાંખો કાપવામાં આવી હતી ! ॥ ૩૪ ॥

तपःसारमयं त्वाष्ट्रं वृत्रो येन विपाटितः।
अन्ये चापि बलोपेताः सर्वास्त्रैरक्षतत्वचः॥ ३५

ત્વષ્ટાની તપસ્યાના સારરૂપ (અતિ શક્તિમાન) વૃત્ર જે વજ્રથી મારા વડે કાપવામાં આવ્યો તેમ જ સર્વ અસ્ત્રોથી જેમની ત્વચા ઘવાતી ન હતી તેવા બીજા બળવાન અસુરો પણ જેનાથી કપાઈ ગયા ! ॥ ૩૫ ॥

सोऽयं प्रतिहतो वज्रो मया मुक्तोऽसुरेऽल्पके।
नाहं तदाददे दण्डं ब्रह्मतेजोऽप्यकारणम्॥ ३६

તે આ વજ્રને ક્ષુદ્ર અસુર ઉપર મેં છોડ્યું ! બ્રાહ્મણ દધીચિ ઋષિના સામર્થ્યરૂપ હોવા છતાં પણ નકામી લાકડી જેવું પાછું ફરેલું તે વજ્ર હું નહીં સ્વીકારું. ॥ ૩૬ ॥

तथा पतत्त्रैः पक्षैः॥ ३४॥

તથા '**પતત્ત્રૈઃ**' પાંખો વડે ॥ ૩૪ ॥

सारमयं वीर्याधिकं त्वाष्ट्रं तप एव वृत्रः स येन वज्रेण मया विपाटितः ॥ ३५ ॥

'સારમયમ્' અધિક શક્તિમાન ત્વષ્ટાનું તપ જ વૃત્ર, તે જે વજ્રથી મારા વડે કાપવામાં આવ્યો. ॥ ૩૫ ॥

दण्डं लगुडतुल्यं कुलिशम्। ब्रह्मतेजो दधीचेः सामर्थ्यम् ॥ ३६ ॥

'दण्डम्' લાકડી જેવું વજ્ર, **'ब्रह्मतेजः'** બ્રાહ્મણ દધીચિ ઋષિના સામર્થ્યરૂપ ॥ ૩૬ ॥

इति शक्रं विषीदन्तमाह वागशरीरिणी।
नायं शुष्कैरथो नार्द्रैर्वधमर्हति दानवः॥ ३७

॥ ३७ ॥

આમ, ખેદ કરતા ઈન્દ્રને જેનો વક્તા અદૃશ્ય છે તે વાણીએ કહ્યું, 'આ દાનવ શુષ્ક પદાર્થોથી વધ કરવા યોગ્ય નથી કે નથી આર્દ્ર પદાર્થોથી, ॥ ૩૭ ॥ ૩૭ ॥

मयास्मै यद् वरो दत्तो मृत्युर्नैवार्द्रशुष्कयोः।
अतोऽन्यश्चिन्तनीयस्ते उपायो मघवन् रिपोः॥ ३८

કારણ કે 'આર્દ્ર અને શુષ્ક પદાર્થોથી તારું મૃત્યુ નહીં થાય.' એવું વરદાન મારાથી અપાયું છે, માટે હે ઈન્દ્ર, શત્રુ(ના વધ માટે)નો અન્ય ઉપાય તારે વિચારવા જેવો છે.' ॥ ૩૮ ॥

आर्द्रशुष्काभ्यां मृत्युर्नैवेति ॥ ३८ ॥

'લીલા અને સૂકાથી મૃત્યુ નહીં થાય.' (એવું વરદાન) ॥ ૩૮ ॥

तां दैवीं गिरमाकर्ण्य मघवान्सुसमाहितः।
ध्यायन् फेनमथापश्यदुपायमुभयात्मकम्॥ ३९

॥ ३९ ॥

તે દૈવી વાણી સાંભળીને એકાગ્રચિત્તવાળા ઈન્દ્રે ધ્યાન ધરતાં (લીલા અને સૂકા) બંને સ્વરૂપવાળો ફીણરૂપ ઉપાય જાણ્યો. ॥ ૩૯ ॥ ૩૯ ॥

उभयात्मकत्वमेवाह—

ઉભયાત્મક સ્વરૂપનું જ વર્ણન કરે છે—

न शुष्केण न चार्द्रेण जहार नमुचेः शिरः।
तं तुष्टुवुर्मुनिगणा माल्यैश्चावाकिरन्विभुम्॥ ४०

નહીં શુષ્ક કે નહીં આર્દ્ર એવા (ફીણ)થી (ઈન્દ્રે) નમુચિનું મસ્તક હરી લીધું, (એટલે) મુનિગણોએ તે સમર્થ ઈન્દ્રની સ્તુતિ કરી અને પુષ્પોથી વૃષ્ટિ કરી. ॥ ૪૦ ॥

न शुष्केण न चार्द्रेण फेनेन। तथा च श्रुतिः—'अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयत्' इति ॥ ४० ॥

ન શુષ્ક કે ન આર્દ્ર એવા ફીણથી– તે અનુસાર શ્રુતિ છે— 'ઈન્દ્રે જળના ફીણથી નમુચિનું મસ્તક ઉડાવી દીધું.' (ઋ.૮/૧૪/૧૩) ॥ ૪૦ ॥

गन्धर्वमुख्यौ जगतुर्विश्वावसुपरावसू।
देवदुन्दुभयो नेदुर्नर्तक्यो ननृतुर्मुदा॥ ४१

॥ ४१ ॥

ગંધર્વશિરોમણિ વિશ્વાવસુ અને પરાવસુ ગાન કરવા લાગ્યા. દેવોની દુંદુભિઓ વાગવા લાગી. નર્તકીઓ આનંદથી નૃત્ય કરવા લાગી. ॥ ૪૧ ॥ ૪૧ ॥

अन्येऽप्येवं प्रतिद्वन्द्वान्वाय्वग्निवरुणादयः।
सूदयामासुरस्त्रौघैर्मृगान्केसरिणो यथा॥ ४२

॥ ४२ ॥

આમ, વાયુ, અગ્નિ, વરુણ વગેરે બીજા દેવો પણ, સિંહો જેમ મૃગોને મારે તેમ અસ્ત્રોના સમૂહથી શત્રુઓનો સંહાર કરવા માંડ્યા. ॥ ૪૨ ॥ ૪૨ ॥

ब्रह्मणा प्रेषितो देवान्देवर्षिर्नारदो नृप।
वारयामास विबुधान्दृष्ट्वा दानवसंक्षयम्॥ ४३

॥ ४३ ॥

हे राजा, दानवोनो संहार थतो जोईने ब्रह्माजी द्वारा (देवो पासे) मोकलवामां आवेला देवर्षि नारदजीए देवोने अने देवोना अनुचरोने अटकाव्या.॥ ४३ ॥ ४३ ॥

नारद उवाच

भवद्भिरमृतं प्राप्तं नारायणभुजाश्रयैः।
श्रिया समेधिताः सर्व उपारमत विग्रहात्॥ ४४

॥ ४४ ॥

नारदजी बोल्या – श्रीनारायणनी भुजाओनी छत्रछायामां रहेनारा आपे अमृत प्राप्त कर्युं छे अने श्रीलक्ष्मीजी द्वारा पण (कृपादष्टिथी) वृद्धि पाम्या छो, (माटे आप) सौ विग्रहथी विरमो. (लडाई बंध करो.)॥ ४४ ॥ ४४ ॥

श्रीशुक उवाच

संयम्य मन्युसंरम्भं मानयन्तो मुनेर्वचः।
उपगीयमानानुचरैर्ययुः सर्वे त्रिविष्टपम्॥ ४५

श्रीशुकदेवजी बोल्या – नारद मुनिना वचनने मान आपता सर्व देवो क्रोधना वेगने शांत करी अनुचरो द्वारा स्तुति कराता स्वर्गमां गया.॥ ४५ ॥

अनुचरैरनुगीयमाना इत्यर्थः। उपगीयमानैरनुचरैः सहेति वा॥ ४५ ॥

अनुचरो द्वारा स्तुति कराता, एम अर्थ छे. अथवा अनुचरो साथे गाता॥ ४५ ॥

येऽवशिष्टा रणे तस्मिन् नारदानुमतेन ते।
बलिं विपन्नमादाय अस्तं गिरिमुपागमन्॥ ४६

॥ ४६ ॥

ते युद्धमां जे दानवो बच्या तेओ नारदजीनी संमतिथी मृत्यु पामेला बलिने लईने अस्त पर्वत पर गया.॥ ४६ ॥ ४६ ॥

तत्राविनष्टावयवान् विद्यमानशिरोधरान्।
उशना जीवयामास संजीविन्या स्वविद्यया॥ ४७

त्यां जेमना अवयवो नाश पाम्या न हता तथा जेमनां डोकां विद्यमान हतां ते असुरोने शुक्राचार्ये पोतानी संजिविनी विद्याथी सजीवन कर्या.॥ ४७ ॥

अविनष्टा अवयवा येषाम्। विद्यमाना शिरोधरा येषां तान्॥ ४७ ॥

जेमना अवयवो नाश पाम्या न हता तथा जेमनां डोकां विद्यमान हतां ते असुरोने॥ ४७ ॥

बलिश्चोशनसा स्पृष्टः प्रत्यापन्नेन्द्रियस्मृतिः।
पराजितोऽपि नाखिद्यल्लोकतत्त्वविचक्षणः॥ ४८

वळी, शुक्राचार्य द्वारा स्पर्श पामेला बलिराजा पुनः ईन्द्रियो अने स्मृतिने प्राप्त थया तेम ज पराजित थवा छतां पण 'लोकोना जयादि कर्माधीन छे' ए विषयमां विचक्षण होई तेमणे खेद न कर्यो.॥ ४८ ॥

प्रत्यापन्नानि पुनः प्राप्तानीन्द्रियाणि स्मृतिश्च येन सः॥ ४८ ॥

'प्रति-आपन्नानि' पुनः प्राप्त करी छे ईन्द्रियो अने स्मृति जेमणे ते॥ ४८ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे देवासुरसंग्रामे एकादशोऽध्यायः॥ ११ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां एकादशोऽध्यायः॥ ११ ॥

❋❋❋❋❋

अथ द्वादशोऽध्यायः

ભગવાન શિવ દ્વારા મોહિનીરૂપના મહિમાનું પ્રાકટ્ય

द्वादशे मोहिनीरूपविभ्रमालोकनोत्सुकम्।
भवं संमोहयामास हरिः पुनरसान्त्वयत्॥ १॥

અમુહ્યન્નસુરા विष्णुमायया न तदद्भुतम्।
इति वक्तुं महादेवमोहोऽयमुपवर्ण्यते॥ २॥

મોહિનીરૂપનું લાલિત્ય નિહાળવાને ઉત્સુક એવા ભગવાન શંકરને શ્રીહરિએ સંમોહિત કર્યા અને ફરી શાન્ત કર્યા તે કથા બારમા અધ્યાયમાં (કહેવામાં આવશે).॥ ૧॥

ભગવાન વિષ્ણુની માયાથી અસુરો મોહ પામ્યા એ કાંઈ આશ્ચર્યની વાત નથી, એમ કહેવા માટે મહાદેવજીનો આ મોહ વર્ણવવામાં આવે છે.॥ ૨॥

श्रीबादरायणिरुवाच

वृषध्वजो निशम्येदं योषिद्रूपेण दानवान्।
मोहयित्वा सुरगणान्हरिः सोममपाययत्॥ १
वृषमारुह्य गिरिशः सर्वभूतगणैर्वृतः।
सह देव्या ययौ द्रष्टुं यत्रास्ते मधुसूदनः॥ २

हरिः सोममपाययदितीदं निशम्य स यत्रास्ते तत्र तद्रूपं द्रष्टुं ययावित्युत्तरेणान्वयः॥ १॥ २॥

શ્રીબાદરાયણપુત્ર (શુકદેવજી) બોલ્યા – શ્રીહરિએ સ્ત્રીરૂપે દાનવોને મોહિત કરી દેવગણોને અમૃતનું પાન કરાવ્યું, એ સાંભળીને દેવી ઉમા સહિત કૈલાસવાસી ભગવાન વૃષધ્વજ નંદી પર બેસી, સર્વ ભૂતગણોથી વીંટળાઈ જ્યાં ભગવાન મધુસૂદન બિરાજે છે ત્યાં (તે રૂપ) જોવા માટે ગયા.॥ ૧॥ ૨॥

શ્રીહરિએ અમૃતપાન કરાવ્યું, એમ સાંભળીને તેઓ જ્યાં બિરાજે છે ત્યાં તે રૂપ જોવા માટે ગયા, એમ પછીના શ્લોક(૨) સાથે અન્વય છે.॥ ૧॥ ૨॥

सभाजितो भगवता सादरं सोमया भवः।
सूपविष्ट उवाचेदं प्रतिपूज्य स्मयन्हरिम्॥ ३

सोमया उमया सह॥ ३॥

अन्वि.—सः उमया इति च्छेदः।‘सोऽचि लोपे चेत् पादपूरणम्’—इति सोर्लोपः।

ભગવાન શ્રીહરિ દ્વારા આદર સાથે સત્કાર પામેલા ઉમા સહિત તે ભગવાન ભવ સુંદર આસન પર બિરાજમાન થયા. શ્રીહરિનું સ્તુતિનમસ્કારાદિથી સમ્માન કરી હસતાં હસતાં આ પ્રમાણે બોલ્યા.॥ ૩॥

‘स+उमया’ ઉમાસહિત॥ ૩॥

ઉમા સાથે શંકર એમ પદચ્છેદ છે. **‘स+उमः=सोमः शिवः’ सः** પછી સ્વર આવે તો વિસર્ગનો લોપ થાય. અને પછી પાદપૂરણ કરવા માટે સંધિ થઈ શકે.– (પા.સૂ. ૬/૧/૧૩૪)

श्रीमहादेव उवाच

देवदेव जगद्व्यापिन् जगदीश जगन्मय।
सर्वेषामपि भावानां त्वमात्मा हेतुरीश्वरः॥ ४

શ્રીમહાદેવજી બોલ્યા – હે દેવાધિદેવ, હે જગદ્વ્યાપી, હે જગદીશ્વર, હે જગત્સ્વરૂપ, આપ સર્વ (ચરાચર) પદાર્થોનું મૂળ કારણ, ઈશ્વર અને આત્મા છો.॥ ૪॥

'त्वयि किंचिन्न चाश्चर्यं वयं त्वाश्चर्यमानसाः।
इति वक्ष्यन्महादेवस्तुष्टाव हरिमष्टभिः॥'
इति।

त्वयि महामायाविनि परमेश्वरे न हि किंचिद्-घटितमिव, वयं तु परमकौतूहलेन द्रष्टुमागता इति बहुधा संबोधयन्स्तौति। हे देवदेव। कुतोऽहं देव इत्यत आह—हे जगद्व्यापिन्। तत्कुतः। हे जगन्मय। तर्हि किं प्रधानम्, न हे जगदीश। तच्च कुतस्तत्राह—सर्वेषामपि त्वं हेतुः अत ईश्वरः। आत्मत्वाच्च न जडं प्रधानं त्वमित्यर्थः ॥ ४ ॥

ननु जगन्मयत्वोक्त्या जगत उत्पत्त्यादिना-ऽसत्यत्वेन जाड्येन च ममापि किं तथात्वं ब्रूषे। न हि न हीत्याह—

आद्यन्तावस्य यन्मध्यमिदमन्यदहं बहिः।
यतोऽव्ययस्य नैतानि तत् सत्यं ब्रह्म चिद् भवान्॥ ५

आद्यन्तौ मध्यं चास्य जगतो यतो ब्रह्मणो भवन्ति। यस्य चाव्ययस्यैतान्याद्यन्तमध्यानि न सन्ति। यच्च ब्रह्म, इदंकारास्पदं दृश्यम्, अहंकारास्पदं द्रष्टृ च, बहिर्भोग्यमन्यद्भोक्तृ च, तत्सत्यं च चिद्रूपं च ब्रह्मैव भवान्। अतो न तव विकारादिशङ्केत्यर्थः ॥ ५ ॥

'આપના વિષે કંઈ જ આશ્ચર્યકારક નથી, આશ્ચર્યચકિત ચિત્તવાળા તો અમે છીએ.' એમ કહેતા મહાદેવજી શ્રીહરિની આઠ શ્લોકો વડે સ્તુતિ કરે છે.' મહામાયાવી પરમેશ્વર એવા આપના વિષે કંઈ પણ ન ઘટી શકે એવું છે નહીં. અમે તો અત્યંત કુતૂહલતાથી દર્શન કરવા આવ્યા છીએ. એટલે અનેક રીતે સંબોધન કરતાં સ્તુતિ કરે છે. હે દેવોના આરાધ્ય દેવ! (શ્રીહરિ કહે છે) 'હું કેવી રીતે દેવોનો પણ દેવ?' તે માટે કહે છે— હે જગદ્વ્યાપી! તે કેવી રીતે? (તે માટે) હે જગત્સ્વરૂપ! (એમ સંબોધન કરે છે). (જગત્સ્વરૂપ છો તેથી વિશ્વવ્યાપી છો.) તો પછી શું તમે પ્રકૃતિ છો? તો તેને નકારે છે. હે જગદીશ, અને તે કેવી રીતે? તે માટે કહે છે— સમસ્ત જડ, ચેતનના પણ કારણરૂપ આપ છો, આથી ઈશ્વર છો તથા આત્મસ્વરૂપ હોવાથી આપ જ ચેતન છો, જડ પ્રકૃતિ નહીં, એમ અર્થ છે. ॥ ૪ ॥

(ભગવાન) આક્ષેપ કરે છે કે મને જગત્સ્વરૂપ કહેવાથી તો જગતનાં ઉત્પત્તિ વગેરે હોવાથી અને જગત અસત્ય અને જડ હોવાથી મારું પણ તેવું જ (અસત્ય, જડત્વ અને ઉત્પત્તિ વગેરે) હોવાનું કેમ કહો છો? તે માટે ઉત્તર આપે છે કે ના, એમ નથી—

જેનાથી આ જગતનાં આદિ, મધ્ય અને અંત થાય છે, જે અવિનાશીનાં આ (આદિ, મધ્ય અને અંત) નથી, જે હું (દ્રષ્ટા), આ (દૃશ્ય), અન્યત્ (ભોક્તા) અને બહિઃ (ભોગ્યરૂપ) છે, તે સત્યસ્વરૂપ અને જ્ઞાનસ્વરૂપ બ્રહ્મ આપ છો. ॥ ૫ ॥

આ જગતનાં આદિ, મધ્ય અને અંત જે બ્રહ્મથી થાય છે તથા જે અવિનાશીનાં '**एतानि**' આ સર્વ, આદિ-મધ્ય-અંત નથી. વળી, જે બ્રહ્મ '**इदम्**' ઈદંકારના સ્થાનરૂપ દૃશ્ય છે તથા '**अहम्**' અહંકારના સ્થાનરૂપ દ્રષ્ટા છે. જે '**बहिः**' પ્રત્યક્ષ રીતે ભોગ્ય છે અને '**अन्यत्**' ભોક્તા પણ છે, તે સત્યસ્વરૂપ અને જ્ઞાનસ્વરૂપ બ્રહ્મ આપ જ છો. આથી આપનામાં વિકારની શંકા નથી, એમ અર્થ છે. ॥ ૫ ॥

तवैवंभूतत्वे मुमुक्षूणामाचारः प्रमाण-मित्याह—**तवैवेति**।

आपના આવા (નિર્વિકાર બ્રહ્મરૂપ- વં.) હોવામાં મુમુક્ષુજનોનું આચરણ પ્રમાણરૂપ છે, એમ કહે છે— **'तव एव इति।'**

तवैव चरणाम्भोजं श्रेयस्कामा निराशिषः।
विसृज्योभयतः सङ्गं मुनयः समुपासते॥ ६

(ધન, પુત્રાદિની) અભિલાષાથી રહિત એવા કલ્યાણવાંચ્છુ મુનિજનો (આ લોક અને પરલોક) બંનેની આસક્તિ ત્યજીને આપનાં જ ચરણકમળની સુંદર ઉપાસના કરે છે.॥ ૬॥

उभयत इहामुत्र च सङ्गं त्यक्त्वा॥ ६॥

'उभयतः' આ લોક(નાં રાજ્યાદિ) તથા પરલોક (નાં સ્વર્ગાદિ) ની આસક્તિ ત્યજીને॥ ૬॥

ननु ब्रह्मैव चेदहं तर्ह्यसङ्गोदासीनस्य मम चरणाम्भोजोपासनया किं तेषां तत्राह—**त्वमिति**।

ભગવાન પુનઃ આક્ષેપ કરે છે કે, જો હું બ્રહ્મ જ છું તો અસંગ, ઉદાસીન એવાં મારાં ચરણકમળની ઉપાસનાથી તે મુનિઓનું શું કલ્યાણ થવાનું છે? તે માટે ઉત્તર આપે છે— **'त्वम् इति।'**

त्वं ब्रह्म पूर्णममृतं विगुणं विशोक-
मानन्दमात्रमविकारमनन्यदन्यत् ।
विश्वस्य हेतुरुदयस्थितिसंयमाना-
मात्मेश्वरश्च तदपेक्षतयाऽनपेक्षः॥ ७

આપ પરિપૂર્ણ, સુખસ્વરૂપ, નિર્વિકાર, ગુણાતીત, શોકરહિત, (નિત્ય) કેવળ આનંદસ્વરૂપ, જેનાથી ભિન્ન (અન્ય) કાંઈ જ નથી તેવા છતાં સર્વથી ભિન્ન એવા બ્રહ્મ છો. વિશ્વનાં ઉત્પત્તિ, સ્થિતિ અને લયના કારણરૂપ છો, (તે જીવો) દ્વારા (કર્મના ફળની) અપેક્ષા કરવામાં આવતી હોવાથી કર્મફળના દાતા એવા આપ જીવોના ઈશ્વર છો, છતાં નિરપેક્ષ છો. (આપને કોઈ ભક્ત કે સેવકની જરૂર નથી.)॥ ૭॥

ब्रह्मत्वेऽपि त्वं नात्यन्तमुदासीनः किंतु विश्वस्य प्रपञ्चस्योदयादीनां हेतुः—तदुपाधीना-मात्मनां जीवानामीश्वरश्च तत्तत्फलदाता।

બ્રહ્મ હોવા છતાં પણ આપ અત્યંત ઉદાસીન નથી, પરંતુ વિશ્વપ્રપંચનાં ઉત્પત્તિ વગેરેના કારણરૂપ છો. તે ઉત્પત્તિ વગેરે ઉપાધિઓના અને **'आत्मनाम्'** જીવોના ઈશ્વર તથા તે તે કર્માનુસાર ફળ આપનારા છો.

तर्हि किं राजादिवत्कयाप्यपेक्षया सेवकेभ्यः फलं ददामि, न हि न हि, अनपेक्ष एव त्वम्। तर्हि किमीश्वरत्वेन तत्राह—तैरात्मभिस्तत्फल-दानार्थमपेक्ष्यत इति तदपेक्षस्तस्य भावस्तदपेक्षता

'તો પછી શું હું રાજા વગેરેની જેમ કોઈ પણ અપેક્ષાથી સેવકોને ફળ આપું છું?' એમ ભગવાન કહે, તો તે માટે કહે છે કે ના, ના, આપ નિરપેક્ષ જ છો. 'તો પછી ઈશ્વર હોવાથી શું થાય?' તે માટે કહે છે— તે તે જીવો દ્વારા તે તે ફળના દાન માટે આપની અપેક્ષા કરવામાં આવે છે. તેવી અપેક્ષા રાખનાર તે

तया। अनपेक्षत्वमेव दर्शयितुं तदीयं ब्रह्मत्वं विशिनष्टि—पूर्णममृतं च सुखरूपम्। विषयसुखवैलक्षण्यार्थमाह—अविकारं नित्यमानन्दमात्रं च। कुतः। विशोकम्। तत्कुतः।

(જીવો) '**तत्-अपेक्षः**' તેવો ભાવ, '**तदपेक्षता**', તેવી અપેક્ષા હોવાથી, ભગવાનની નિરપેક્ષતા જ દર્શાવવા માટે તેમના બ્રહ્મત્વનું વિશેષણપૂર્વક વર્ણન કરે છે— '**पूर्णम्**' પરિપૂર્ણ તથા '**अमृतम्**' સુખસ્વરૂપ, વિષયસુખથી વિલક્ષણતા દર્શાવવા માટે કહે છે— નિર્વિકાર અને નિત્ય કેવળ આનંદરૂપ. શા માટે? '**विशोकम्**' શોકરહિત, તે કેવી રીતે?

विगुणम्। किंच अनन्यत्। न विद्यतेऽन्यद्यस्मात्, ब्रह्मव्यतिरिक्ताभावादपि निरपेक्षस्त्वमित्यर्थः। तर्हि सर्वात्मकत्वे तत्तद्विकारप्रसङ्गो दुर्वारस्तत्राह—अन्यत्सर्वतो व्यतिरिक्तं च, कारणत्वात्। नह्येवंभूतसुखात्मकब्रह्मस्वरूपस्य तवान्यापेक्षाऽस्ति। अतः केवलं भक्तानुग्रहार्थमेव तवैश्वर्यं न स्वार्थमित्यर्थः॥ ७॥

'**विगुणम्**' ગુણાતીત– વળી, '**अनन्यत्**' જેમનાથી અન્ય કાંઈ જ વિદ્યમાન નથી. બ્રહ્મથી વ્યતિરિક્તનો અભાવ હોવાથી પણ આપ નિરપેક્ષ છો, એમ અર્થ છે. તો પછી સર્વાત્મસ્વરૂપ હોવાથી જુદા જુદા વિકારના પ્રસંગો નિવારવા અઘરા પડે. તે માટે કહે છે કે '**अन्यत्**' આપ સર્વથી ભિન્ન છો, કારણ કે કારણરૂપ છો. આવા સુખસ્વરૂપ બ્રહ્મસ્વરૂપ એવા આપને અન્યની અપેક્ષા છે જ નહીં. આથી કેવળ ભક્ત ઉપર અનુગ્રહ કરવા માટે જ આપનું ઐશ્વર્ય છે, સ્વાર્થ માટે નહીં, એમ અર્થ છે.॥ ૭॥

अन्यत्वमनन्यत्वं चैकस्य कुत इत्याशङ्क्य दृष्टान्तेनोपपादयति—

એક જ પરમાત્માનું દ્વૈત અને અદ્વૈત ('**अन्यत्वम्**' '**अनन्यत्वम्-**' શ્લોક-૭) કેવી રીતે હોઈ શકે, એવી શંકા કરીને દૃષ્ટાન્તથી તે વાત સિદ્ધ કરે છે—

एकस्त्वमेव सदसद् द्वयमद्वयं च
स्वर्णं कृताकृतमिवेह न वस्तुभेदः।
अज्ञानतस्त्वयि जनैर्विहितो विकल्पो
यस्माद् गुणैर्व्यतिकरो निरुपाधिकस्य॥ ८

આ સંસારમાં જેમ કૃત (કુંડળ વગેરેરૂપે રહેલું સુવર્ણરૂપ દ્વૈત) અને અકૃત (આકૃતિ વગર રહેલું) સુવર્ણરૂપ (અદ્વૈત) એક જ છે, તેમ કાર્યકારણરૂપ દ્વૈત અને પરમકારણરૂપ અદ્વૈત કેવળ એક આપ જ છો. કોઈ પણ પ્રકારના ભેદરહિત એવા આપના વિષે લોકો દ્વારા અજ્ઞાનથી તે ભેદ કરવામાં આવે છે, (કારણ કે) કેવળ નિરુપાધિક એવા આપનો આ ભેદ ગુણોથી થાય છે.॥ ૮॥

सदसत्कारणरूपं द्वयमद्वयं च परमकारणं त्वमेवैकः। कृतं कुण्डलादिरूपं द्वयमकृतं च केवलमद्वयं स्वर्णं यथैकमेव तद्वदेवेह त्वयि

કાર્યકારણરૂપ '**द्वयम्**' દ્વૈત અને '**अद्वयम्**' પરમકારણરૂપ અદ્વૈત આપ એક જ છો. કુંડળ વગેરેરૂપે રહેલું સુવર્ણરૂપ દ્વૈત અને આકૃતિ વગર રહેલું સુવર્ણરૂપ અદ્વૈત જેમ એક જ છે, તેવી જ

वस्तुतो भेदो नास्ति। कथं तर्हि भेदप्रतीतिस्तत्राह—अज्ञानत इति। कुतः। यस्मान्निरुपाधिकस्यैव तवायं गुणैर्व्यतिकरो भेदो न स्वतः ॥ ८ ॥

રીતે આપનામાં વસ્તુતઃ ભેદ નથી. તો પછી ભેદની પ્રતીતિ કેવી રીતે થાય છે? તે માટે કહે છે— **'अज्ञानतः इति'** અજ્ઞાનથી. કેમ? **'यस्मात्'** કેવળ નિરુપાધિક એવા આપનો આ, ગુણોથી થતો ભેદ છે, સ્વતઃ નથી. ॥ ८ ॥

अत एव त्वां बहुधा वर्णयन्ति तत्त्वतस्तु केऽपि न जानन्तीत्याह द्वाभ्याम्।

આથી જ (વિદ્વાનો) આપને અનેક રીતે વર્ણવે છે, પરંતુ તત્ત્વતઃ કોઈ પણ જાણતું નથી, એમ બે શ્લોકો દ્વારા કહે છે.

त्वां ब्रह्म केचिदवयन्त्युत धर्ममेके
एके परं सदसतोः पुरुषं परेशम्।
अन्येऽवयन्ति नवशक्तियुतं परं त्वां
केचिन्महापुरुषमव्ययमात्मतन्त्रम् ॥ ९

કેટલાક (વેદાન્તીઓ) આપને બ્રહ્મ માને છે. કેટલાક (મીમાંસકો) આપને ધર્મ માને છે. કેટલાક (સાંખ્યમતવાળા) આપને પ્રકૃતિ (**'असत्'**) તથા (**सत्**) પુરુષથી પર રહેલા પરમેશ્વર માને છે. બીજા કેટલાક (પંચરાત્ર મતવાદીઓ) આપને નવશક્તિયુક્ત પરમેશ્વર માને છે. કેટલાક (પાતંજલ યોગીઓ) આપને સ્વતંત્ર, અવિનાશી મહાપુરુષ માને છે. ॥ ૯ ॥

नाहं परायुर्ऋषयो न मरीचिमुख्या
जानन्ति यद्विरचितं खलु सत्त्वसर्गाः।
यन्मायया मुषितचेतस ईश दैत्य-
मर्त्यादयः किमुत शश्वदभद्रवृत्ताः ॥ १०

હે ઈશ્વર, હું (મહાદેવ), દ્વિપરાર્ધ આયુષ્યવાળા બ્રહ્માજી, મરીચિ જેમાં મુખ્ય છે તેવા ઋષિઓ સત્ત્વગુણથી સર્જાયા હોવા છતાં જેમના રચેલા જગતને (પણ તત્ત્વતઃ) નથી જાણતા, તો પછી નિત્ય રજોગુણ અને તમોગુણમાંથી ઉત્પન્ન થનારા અને જેમની (આપની) માયાથી મોહિત થયેલા મનવાળા દૈત્યો અને મનુષ્યાદિ આપને તથા આપના રચેલા વિશ્વને ન જાણે, તેમાં શું કહેવાનું? ॥ ૧૦ ॥

त्वां ब्रह्म वेदान्तिनोऽवयन्ति मन्यन्ते। त्वामेव धर्मं मीमांसका मन्यन्ते। प्रकृतिपुरुषयोः परं पुमांसं सांख्याः। विमलोत्कर्षणी ज्ञाना क्रिया योगा प्रह्वी सत्या ईशाना अनुग्रहा चेत्येवं नवशक्तियुतं परं पाञ्चरात्राः। महापुरुषं पातञ्जलाः ॥ ९ ॥

વેદાન્તીઓ આપને બ્રહ્મ **'अवयन्ति'** માને છે. મીમાંસકો આપને જ ધર્મ માને છે. સાંખ્યમતવાદીઓ પ્રકૃતિ અને પુરુષથી પર રહેલા પરમેશ્વર માને છે. વિમલા, ઉત્કર્ષણી, જ્ઞાના, ક્રિયા, યોગા, પ્રહ્વી, સત્યા, ઈશાના અને અનુગ્રહા– એમ નવશક્તિયુક્ત પરમેશ્વરને પંચરાત્રમતવાદીઓ માને છે. પાતંજલ યોગીઓ આપને મહાપુરુષ માને છે. ॥ ૯ ॥

परायुर्ब्रह्मा। सत्त्वसर्गाः सत्त्वगुणेन स्त्रष्टा अपि येन त्वया विरचितं विश्वमपि खलु तत्त्वतो न जानन्ति, किं पुनस्त्वाम्। हे ईश, अभद्रं राजसं तामसं च वृत्तमुत्पत्तिर्येषां ते न जानन्तीति किमु वक्तव्यम्॥ १०॥

किंतु त्वं तत्सर्वं जानासीत्याह—

स त्वं समीहितमदः स्थितिजन्मनाशं
भूतेहितं च जगतो भवबन्धमोक्षौ।
वायुर्यथा विशति खं च चराचराख्यं
सर्वं तदात्मकतयाऽवगमोऽवरुन्त्से॥ ११

स त्वं सर्वमवरुन्त्से व्याप्नोषि जानासि। किं तत्सर्वम्। समीहितं स्वकृतमदः स्थिति-जन्मनाशममुष्य जगतो जन्मादि भूतानामीहितं च जगतो भवबन्धमोक्षौ च।

व्याप्तौ दृष्टान्तः—चराचराख्यं देहजातं खं च यथा वायुराविशति तथा। कथमवरुन्त्से। तदात्मकतया तस्य सर्वस्यात्मतयेत्यर्थः। आत्मत्वे हेतुः—अवगमो ज्ञानरूप इति॥ ११॥

एवं स्तुत्वा प्रस्तुतं विज्ञापयति—**अवतारा इति** द्वाभ्याम्।

अवतारा मया दृष्टा रममाणस्य ते गुणैः।
सोऽहं तद् द्रष्टुमिच्छामि यत्ते योषिद्वपुर्धृतम्॥ १२

'परायुः' દ્વિપરાર્ધ આયુષ્યવાળા બ્રહ્માજી, **'सत्त्वसर्गाः'** સત્ત્વગુણથી સર્જાયેલા હોવા છતાં જેઓ આપનાથી રચાયેલા વિશ્વને પણ **'खलु'** ખરેખર તત્ત્વતઃ જાણી શકતા નથી, તો આપને તો ક્યાંથી જાણે ? હે ઈશ્વર, **'अभद्रम्'** રજોગુણ અને તમોગુણમાં જેમની **'वृत्तम्'** ઉત્પત્તિ છે તેઓ આપના દ્વારા રચાયેલા વિશ્વને ન જાણે, તો પછી આપને ન જાણે તેમાં શું કહેવાનું ?॥ ૧૦॥

પરંતુ આપ તે સર્વ જાણો છો, એમ કહે છે–

જેમ વાયુ ચરાચર કહેવાતાં પ્રાણીઓમાં તથા આકાશમાં પ્રવેશે છે, તેમ જ્ઞાનસ્વરૂપ તે આપ સર્વમાં વ્યાપેલા છો તથા તે સર્વ પ્રાણીઓના આત્મા હોવાથી (પોતે સર્જેલા) જગતનાં જન્મ, સ્થિતિ, નાશ, પ્રાણીઓની ચેષ્ટા તથા (પ્રાણીઓનાં) સંસારનાં બંધન અને મોક્ષને જાણો છો અને સર્વમાં વ્યાપેલા છો.॥ ૧૧॥

તે આપ સર્વમાં **'अवरुन्त्से'** વ્યાપેલા છો અને સર્વ જાણો છો. તે સર્વ કયું ? **'समीहितम्'** કરેલા (પોતે સર્જેલા) **'अदः स्थितिजन्मनाशम्'** તે ઉત્પત્તિ, સ્થિતિ અને નાશ તથા પ્રાણીઓની ચેષ્ટા તેમ જ તે પ્રાણીઓનાં સંસારનાં બંધન અને મોક્ષ.

વ્યાપ્તિ માટેનું દૃષ્ટાન્ત— ચર અને અચર કહેવાતાં શરીરોમાં અને આકાશમાં વાયુ પ્રવેશ કરે છે તેમ આપ પ્રવેશો છો. આપ કેવી રીતે વ્યાપેલા છો ? **'तदात्मकतया'** તે સર્વના આત્મા હોવાથી, એમ અર્થ છે. આત્મા હોવા માટેનું કારણ— આપ **'अवगमः'** જ્ઞાનસ્વરૂપ છો.॥ ૧૧॥

આમ, સ્તુતિ કરીને પ્રસ્તુત વિનંતિ બે શ્લોકો દ્વારા કરે છે– **'अवताराः इति'**

(ગુણોનો સ્વીકાર કરીને) ગુણો સાથે ક્રીડા કરતા આપના અવતારોનાં મેં દર્શન કર્યાં છે, તે હું આપે જે સ્ત્રીરૂપ ધારણ કર્યું હતું તેનાં દર્શન કરવા ઈચ્છું છું.॥ ૧૨॥

येन सम्मोहिता दैत्याः पायिताश्चामृतं सुराः।
तद् दिदृक्षव आयाताः परं कौतूहलं हि नः॥ १३

જે સ્વરૂપથી દૈત્યોને સંમોહિત કર્યા અને દેવોને અમૃતપાન કરાવ્યું, તે સ્વરૂપ જોવાની ઈચ્છાથી (અમે) આવ્યા છીએ, કારણ કે અમને તે માટે ખૂબ જ ઉત્કંઠા છે.॥ ૧૩॥

श्रीशुक उवाच

एवमभ्यर्थितो विष्णुर्भगवान् शूलपाणिना।
प्रहस्य भावगम्भीरं गिरिशं प्रत्यभाषत॥ १४

॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – આમ, ત્રિશૂળધારી શંકર દ્વારા જેમને પ્રાર્થના કરવામાં આવી તે ભગવાન વિષ્ણુએ ગંભીર ભાવે મુક્ત હાસ્ય કરીને કૈલાસપતિ શંકરને કહ્યું.॥ ૧૪॥

॥ ૧૨ ॥ ૧૩ ॥ ૧૪ ॥

श्रीभगवानुवाच

कौतूहलाय दैत्यानां योषिद्वेषो मया कृतः।
पश्यता सुरकार्याणि गते पीयूषभाजने॥ १५

શ્રીભગવાન બોલ્યા – જ્યારે અમૃતનું પાત્ર (દૈત્યોના હાથમાં) ગયું, ત્યારે દેવોનાં કાર્યો તરફ જોતા એવા મેં દૈત્યોને સમ્મોહિત કરવા માટે સ્ત્રીરૂપ ધારણ કર્યું.॥ ૧૫॥

सुरकार्याणि योषिद्वेषेण भविष्यन्तीति पश्यता। अयं भावः—अवश्यं तावदुन्मत्तान्दैत्यान् वञ्चयित्वा देवेभ्योऽमृतं देयम्, न चैवं वैषम्यं रूपान्तरेण कर्तुमुचितम्, अतो वञ्चनमोहनादिसारं कामिनीरूपं मया धृतमिति॥ १५ ॥

દેવોનાં કાર્યો સ્ત્રીવેશથી સિદ્ધ થશે એમ જોતા (વિચારતા) મેં, ભાવ આ પ્રમાણે છે—આટલા ઉન્મત્ત દૈત્યોની વંચના કરીને દેવોને અમૃત અવશ્ય આપવા જેવું છે અને બીજા કોઈ રૂપથી આવી વિષમતા કરવા યોગ્ય નથી. આથી વંચના અને સંમોહન વગેરેના સારરૂપ કામિનીનું રૂપ મેં ધારણ કર્યું.॥ ૧૫॥

तत्तेऽहं दर्शयिष्यामि दिदृक्षोः सुरसत्तम।
कामिनां बहु मन्तव्यं सङ्कल्पप्रभवोदयम्॥ १६

હે દેવશિરોમણિ, કામીજનો માટે ખૂબ આદરણીય તથા કામદેવનો ઉદય કરનારા તે (રૂપ)ને જોવાની ઈચ્છા કરનારા આપને હું તે દર્શાવીશ.॥ ૧૬॥

तद्रूपं दर्शयिष्यामि। संकल्पप्रभवः कामस्तस्योदयो यस्मात्॥ १६ ॥

તે રૂપનાં દર્શન કરાવીશ. '**संकल्पप्रभवः**' સંકલ્પમાંથી ઉત્પન્ન થનાર કામદેવ, તેનો ઉદય છે જે રૂપથી॥ ૧૬॥

श्रीशुक उवाच

इति ब्रुवाणो भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत।
सर्वतश्चारयंश्चक्षुर्भव आस्ते सहोमया॥ १७

॥ १७ ॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – એમ કહેતાં કહેતાં ભગવાન વિષ્ણુ ત્યાં જ અંતર્ધાન થઈ ગયા અને ચોતરફ નજર નાખતા ભગવાન ભવ ઉમા સાથે (ત્યાં જ) બેસી રહ્યા.॥ ૧૭॥ ૧૭॥

ततो ददर्शोपवने वरस्त्रियं
विचित्रपुष्पारुणपल्लवद्रुमे ।
विक्रीडतीं कन्दुकलीलया लसद्-
दुकूलपर्यस्तनितम्बमेखलाम् ॥ १८

विचित्राणि पुष्पाण्यरुणाः पल्लवाश्च येषां ते द्रुमा यस्मिन्। लसद्दुकूलेन पर्यस्ते परिवृत्ते नितम्बे मेखला यस्यास्ताम्॥ १८॥

તેવામાં રંગબેરંગી પુષ્પો અને રાતી કૂંપળોથી છવાયેલાં વૃક્ષોવાળા ઉપવનમાં, શોભતા રેશમી દુપટાથી ઢંકાયેલા નિતંબ ઉપર લટકતા કંદોરાવાળી, દડો ઉછાળીને ક્રીડા કરતી સુંદર રમણીને ભગવાન શંકરે જોઈ.॥ ૧૮॥

રંગબેરંગી પુષ્પો અને રાતી કૂંપળો છે જેમની તે વૃક્ષો છે જેમાં તેવા ઉપવનમાં, શોભતા દુપટ્ટાથી '**पर्यस्ते**' વીંટળાયેલા બંને નિતંબ ઉપર લટકે છે કટિમેખલા જેની, તેને (જોઈ)॥ ૧૮॥

अन्वि.—'**विक्रीडतीम्**' આર્ષ છે. **विक्रीडन्तीम्** રૂપ થાય.

आवर्तनोद्वर्तनकम्पितस्तन-
प्रकृष्टहारोरुभरैः पदे पदे।
प्रभज्यमानामिव मध्यतश्चलत्-
पदप्रवालं नयतीं ततस्ततः॥ १९

ઊંચે ઊછળતા અને નીચે પડતા દડાની રમતમાં ઊંચે કૂદવાથી અને નીચે નમવાથી લચકાતાં સ્તનો ઉપરના શ્રેષ્ઠ હારના અતિ ભારથી પગલે પગલે કેડમાંથી જાણે ભાંગી જતી હોય તેવી, ચાલતાં કોમળ પદપલ્લવને આમ-તેમ મૂકતી,॥ ૧૯॥

दिक्षु भ्रमत्कन्दुकचापलैर्भृशं
प्रोद्विग्नतारायतलोललोचनाम् ।
स्वकर्णविभ्राजितकुण्डलोल्लसत्
कपोलनीलालकमण्डिताननाम् ॥ २०

(દશે) દિશાઓમાં ભમતા દડાની ચંચળતાને કારણે અત્યંત ઉદ્વિગ્ન કીકીઓવાળાં વિશાળ, ચંચળ લોચનોવાળી, પોતાના કાનનાં ઝળહળતાં કુંડળો(ની આભા)થી ચમકતા ગાલ અને તેમની ઉપર કાળા કેશથી શોભતા મુખવાળી,॥ ૨૦॥

श्लथद् दुकूलं कबरीं च विच्युतां
सन्नह्यतीं वामकरेण वल्गुना।
विनिघ्नतीमन्यकरेण कन्दुकं
विमोहयन्तीं जगदात्ममायया॥ २१

સરકી જતા દુપટ્ટાને અને વિખરાઈ જતા કેશકલાપને સુંદર, (ડાબા) હાથે બાંધતી અને બીજા હાથે દડાને મારતી, પોતાના ચમત્કાર(માયા)થી જગતને મોહિત કરતી (તેને જોઈને)॥ ૨૧॥

उत्पतत्पतत्कन्दुकलीलावशेन ये आवर्तनोद्वर्तने नमनोन्नमने ताभ्यां कम्पितयोः स्तनयोः प्रकृष्टहाराणां चोरुभारैः प्रतिपदं मध्ये प्रभज्यमानामिव। चलत्पदमेव प्रवालवत्कोमलं ततस्ततो नयन्तीम्॥ १९॥

ઊંચે ઊછળતા અને નીચે પડતા દડાની રમતને કારણે જે '**आवर्तन-उद्वर्तने**' નીચે નમવાનું અને ઊંચે કૂદવાનું– તેનાથી લચકાતાં સ્તનો ઉપરના શ્રેષ્ઠ હારના અતિ ભારથી પગલે પગલે કેડમાંથી જાણે ભાંગી જતી હોય તેવી, ચાલતાં કોમળ પદપલ્લવને જ આમ-તેમ મૂકતી॥ ૧૯॥

दिक्षु भ्रमतः कन्दुकस्य चापलैश्चाञ्चल्यैर्भृशं प्रोद्विग्नतारे आयते लोले चञ्चले लोचने यस्याः। स्वकर्णाभ्यां विभ्राजिते ये कुण्डले ताभ्यामुल्लसन्तौ कपोलौ ताभ्यां नीलालकैश्च मण्डितमाननं यस्याः॥ २०॥

संनह्यन्तीं बध्नन्तीम्। जगद्विमोहयन्तीम् ॥ २१॥

तां वीक्ष्य देव इति कन्दुकलीलयेषद्
व्रीडास्फुटस्मितविसृष्टकटाक्षमुष्टः।
स्त्रीप्रेक्षणप्रतिसमीक्षणविह्वलात्मा
नात्मानमन्तिक उमां स्वगणांश्च वेद॥ २२

तां वीक्ष्य देवः श्रीरुद्र आत्मानमन्तिके स्थितामुमां स्वगणांश्च न वेद।

कथंभूतः। इति एवंभूतया कन्दुकलीलया या ईषद्व्रीडा तयाऽस्फुटं स्मितं तेन सह विसृष्टो यः कटाक्षस्तेन मुष्टो वञ्चितः, अत एव स्वयं यत् स्त्रियाः प्रेक्षणं तया च प्रतिसमीक्षणं ताभ्यां विह्वल आत्मा मनो यस्य॥ २२॥

तस्याः कराग्रात् स तु कन्दुको यदा
गतो विदूरं तमनुव्रजत्स्त्रियाः।
वासः ससूत्रं लघु मारुतोऽहरद्
भवस्य देवस्य किलानुपश्यतः॥ २३

तं कन्दुकमनुव्रजन्त्याः स्त्रियाः। लघु सूक्ष्मं वासः। ससूत्रं काञ्चीसहितम्॥ २३॥

(દશે) દિશાઓમાં ભમતા દડાની '**चापलैः**' ચંચળતાને કારણે અત્યંત ઉદ્વિગ્ન કીકીઓવાળાં વિશાળ, '**लोले**' ચંચળ લોચનો છે જેનાં, પોતાના કાનનાં જે બે ઝળહળતાં કુંડળો છે તેમનાથી ચમકતાં ગાલ, તેમની ઉપર કાળા વાળથી શોભે છે મુખ જેનું॥ ૨૦॥

'**सन्नह्यन्तीम्**' બાંધતી અને જગતને મોહિત કરતી॥ ૨૧॥

તે મોહિનીને જોઈને, આવી કંદુકક્રીડાને કારણે આવેલી સહેજ લજ્જાથી અસ્પષ્ટ મંદ સ્મિત સાથે ફેંકાયેલા નેત્રકટાક્ષથી લોભાઈ ગયેલા શ્રીરુદ્રદેવ મોહિનીને નિહાળવાથી, તેના દ્વારા પણ સામે દૃષ્ટિ નાખવામાં આવી હોવાથી વિહ્વળ મનવાળા બન્યા અને પોતાની પાસે રહેલાં ઉમાદેવીને અને (નંદીશ્વરાદિ) પોતાના ગણોને વીસરી ગયા.॥ ૨૨॥

તે મોહિનીને જોઈને, '**देवः**' શ્રીરુદ્ર પોતાની પાસે રહેલાં ઉમાદેવીને અને (નંદીશ્વરાદિ) પોતાના ગણોને વીસરી ગયા.

કેવા શ્રીરુદ્રદેવ? આમ, આવી કંદુકક્રીડાને કારણે જે સહેજ લજ્જા આવે, તેનાથી મંદ સ્મિત, તે સહિત ફેંકાયેલો નેત્રકટાક્ષ, તેનાથી '**मुष्टः**' લોભાઈ ગયેલા શ્રીરુદ્રદેવ, અને આથી જ મોહિની તરફ દૃષ્ટિપાત કરવાથી તેના દ્વારા પણ સામે દૃષ્ટિ નાખવામાં આવી હોવાથી વિહ્વળ '**आत्मा**' મન છે જેમનું॥ ૨૨॥

તેના હાથમાંથી પેલો દડો જ્યારે ઘણે દૂર જઈ પડ્યો, ત્યારે દડાની પાછળ દોડતી મોહિનીના ઝીણા વસ્ત્રને કંદોરા સહિત વાયુદેવે મહાદેવજીના દેખતાં જ હરી લીધું.॥ ૨૩॥

તે દડાની પાછળ દોડતી સ્ત્રી મોહિનીના '**लघु**' ઝીણા વસ્ત્રને '**ससूत्रम्**' કંદોરા સહિત॥ ૨૩॥

एवं तां रुचिरापाङ्गीं दर्शनीयां मनोरमाम्।
दृष्ट्वा तस्यां मनश्चक्रे विषज्जन्त्यां भवः किल॥ २४

સુંદર નેત્રકટાક્ષવાળી, મનને આનંદ આપતી, દર્શન કરવા જેવી તેને આ પ્રમાણે જોઈને, (લજ્જાથી મહાદેવજીમાં) પોતાનો આસક્તિભાવ જણાવતી તે મોહિનીમાં ભગવાન શંકર આસક્ત થઈ ગયા.॥ ૨૪॥

विषज्जन्त्यां कुञ्चितकटाक्षैरात्मानं निरीक्षमाणायाम्॥ २४॥

'विषज्जन्त्याम्' આસક્તિભાવ જણાવતી મોહિનીમાં, કુટિલ કટાક્ષથી પોતાને (મહાદેવજીને) જોતી મોહિનીમાં॥ ૨૪॥

तयाऽपहृतविज्ञानस्तत्कृतस्मरविह्वलः ।
भवान्या अपि पश्यन्त्या गतह्रीस्तत्पदं ययौ॥ २५

તે મોહિની દ્વારા જેમનું જ્ઞાન હરી લેવામાં આવ્યું તેવા અને તેના દ્વારા ઉત્પન્ન કરવામાં આવેલા કામથી જે વિહ્વળ બન્યા તે ભગવાન ભવ લજ્જા ત્યજીને ભવાનીના દેખતાં તેની પાસે ગયા.॥ ૨૫॥

तत्पदं तस्याः समीपं ययौ॥ २५॥

'तत्-पदम्' તેની પાસે ગયા.॥ ૨૫॥

सा तमायान्तमालोक्य विवस्त्रा व्रीडिता भृशम्।
निलीयमाना वृक्षेषु हसन्ती नान्वतिष्ठत॥ २६

તે મહાદેવજીને આવતા જોઈ ઓઢણી વગરની તે અત્યંત લજ્જિત થઈ વૃક્ષોની પાછળ સંતાતી, હસતી (ક્યાંય) ઊભી ન રહી.॥ ૨૬॥

तामन्वगच्छद् भगवान् भवः प्रमुषितेन्द्रियः।
कामस्य च वशं नीतः करेणुमिव यूथपः॥ २७
सोऽनुव्रज्यातिवेगेन गृहीत्वानिच्छतीं स्त्रियम्।
केशबन्ध उपानीय बाहुभ्यां परिषस्वजे॥ २८

કામને વશ કરવામાં આવેલા અને વ્યાકુળ મનવાળા ભગવાન ભવ, ગજેન્દ્ર હાથણી પાછળ પડે તેમ તેની પાછળ દોડ્યા. ઈચ્છતી ન હોવા છતાં (તે) સ્ત્રીને અંબોડાથી પકડી, પાસે લઈ બંને ભુજાઓથી ભેટી પડ્યા.॥ ૨૭॥ ૨૮॥

सोपगूढा भगवता करिणा करिणी यथा।
इतस्ततः प्रसर्पन्ती विप्रकीर्णशिरोरुहा॥ २९
॥ २६॥ २७॥ २८॥ २९॥

ભગવાન રુદ્ર દ્વારા આલિંગન પામેલી તે મોહિની, હાથી દ્વારા (પકડાયેલી) હાથણીની જેમ (છૂટવા માટે) આમ તેમ સરકતી, વીખરાયેલા કેશવાળી થઈ ગઈ.॥ ૨૯॥
॥ ૨૬॥ ૨૭॥ ૨૮॥ ૨૯॥

आत्मानं मोचयित्वाङ्ग सुरर्षभभुजान्तरात्।
प्राद्रवत्सा पृथुश्रोणी माया देवविनिर्मिता॥ ३०

હે રાજા, ભગવાન દ્વારા રચાયેલી તે માયા દેવશ્રેષ્ઠ મહાદેવજીની ભુજાઓમાંથી પોતાને છોડાવી સ્થૂળ નિતંબવાળી (હોવા છતાં) દોડી ગઈ.॥ ૩૦॥

अङ्ग हे राजन्॥ ३०॥

'अङ्ग' હે રાજા॥ ૩૦॥

तस्यासौ पदवीं रुद्रो विष्णोरद्भुतकर्मणः।
प्रत्यपद्यत कामेन वैरिणेव विनिर्जितः॥ ३१

तस्यानुधावतो रेतश्चस्कन्दामोघरेतसः।
शुष्मिणो यूथपस्येव वासितामनु धावतः॥ ३२

यत्र यत्रापतन्मह्यां रेतस्तस्य महात्मनः।
तानि रूप्यस्य हेम्नश्च क्षेत्राण्यासन्महीपते॥ ३३

॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

सरित्सरस्सु शैलेषु वनेषूपवनेषु च।
यत्र क्व चासन्नृषयस्तत्र संनिहितो हरः॥ ३४

एवं तामनुधावन् हरः सरित्सरस्सु शैलादिषु च संनिहितो बभूव॥ ३४॥

वंशीधरी—यत्र सरिदादिषु ऋषय आसंस्तत्र सर्वत्र संनिहितो निकटः तत्र तत्र धावनं तु हरस्य योगभ्रंशमृषिभ्यो दर्शयितुमेवेति ध्वनिः। तेन योगारूढैरपि मुनिभिस्स्वजितमपि मनो युवतिषु न विश्वसनीयमित्यनुध्वनिः।

स्कन्ने रेतसि सोऽपश्यदात्मानं देवमायया।
जडीकृतं नृपश्रेष्ठ संन्यवर्तत कश्मलात्॥ ३५

॥ ३५ ॥

अथावगतमाहात्म्य आत्मनो जगदात्मनः।
अपरिज्ञेयवीर्यस्य न मेने तदुहाद्भुतम्॥ ३६

તે ભગવાન રુદ્ર, શત્રુ એવા કામદેવથી જિતાયા હોય તેમ, અદ્ભુત કર્મ કરનાર (મોહિનીરૂપધારી) વિષ્ણુ ભગવાનના માર્ગે દોડ્યા.॥ ૩૧॥

ગર્ભધારણને યોગ્ય એવી હાથણીની પાછળ મદોન્મત્ત હાથીની જેમ (મોહિની) પાછળ દોડતા અમોઘ વીર્યવાળા તે ભગવાન શંકરનું વીર્ય સ્ખલિત થઈ ગયું.॥ ૩૨॥

હે પૃથ્વીપતિ (પરીક્ષિત), પૃથ્વી ઉપર જ્યાં જ્યાં તે મહાત્મા શંકરનું વીર્ય પડ્યું, તે સર્વ રૂપાનાં અને સોનાનાં ક્ષેત્રો થયાં.॥ ૩૩॥

॥ ૩૧ ॥ ૩૨ ॥ ૩૩ ॥

નદીઓ, સરોવરો, પર્વતો, વનો અને ઉપવનોમાં જ્યાં ક્યાંય ઋષિઓ રહેતા હતા, ત્યાં ત્યાં ભગવાન શંકર (મોહિનીની) પાસે ગયા.॥ ૩૪॥

આમ, તેની પાછળ દોડતા ભગવાન શંકર નદીઓ, સરોવરો અને પર્વતોમાં પણ તેની સમીપમાં જ રહ્યા.॥ ૩૪॥

નદીઓ વગેરે સ્થાનોમાં જ્યાં જ્યાં ઋષિઓ રહેતા હતા, ત્યાં ત્યાં બધે જ ઠેકાણે ભગવાન શંકરનું દોડવું અને તેમનું યોગભ્રષ્ટ થવું, તે ઋષિઓને દર્શાવવા માટે જ છે, એમ સૂચન છે. તે દ્વારા યોગારૂઢ થયેલા મુનિઓ દ્વારા પણ પોતાનું જીતી લીધેલું મન હોવા છતાં પણ યુવતીઓના વિષયમાં મન વિશ્વસનીય નથી, એમ પણ સૂચિત થાય છે.

હે નૃપશ્રેષ્ઠ, વીર્યસ્રાવ થયો ત્યારે તે મહાદેવજીએ પોતાને દેવની માયા દ્વારા જડ કરવામાં આવેલા જોયા અને પછી પોતે મોહથી અટક્યા.॥ ૩૫॥ ૩૫॥

પછી જેમનું પરાક્રમ જાણવું અશક્ય છે તેવા જગતના આત્મા અને પોતાના પણ આત્મા એવા શ્રીહરિના મહિમાને જાણી લેનાર મહાદેવજીએ (મોહિનીરૂપી દેવમાયાથી પોતાને જે જડ કરવામાં આવ્યા હતા) તેને આશ્ચર્ય ન માન્યું॥ ૩૬॥

तदुह देवमायया जडीकरणम्॥ ३६॥

'**तत्-उह**' દેવમાયા દ્વારા પોતાને જડ કરવામાં આવ્યા હતા તેને॥ ૩૬॥

तमविक्लवमव्रीडमालक्ष्य मधुसूदनः।
उवाच परमप्रीतो बिभ्रत्स्वां पौरुषीं तनुम्॥ ३७
॥ ३७॥

તે શંકર ભગવાનને કામવિકારરહિત અને પોતાની વિકૃતિજન્ય વ્રીડાથી રહિત જોઈને અતિ પ્રસન્ન થયેલા ભગવાન મધુસૂદને પોતાનું પુરુષ-શરીર ધારણ કરતાં કહ્યું.॥ ૩૭॥ ૩૭॥

भ.मनो.—अविक्लवं कामविकाररहितं अव्रीडं स्वविकृतिजनितव्रीडारहितम्।

અવ્યાકુળ અર્થાત્ કામવિકારથી રહિત અને લજ્જારહિત અર્થાત્ સ્વવિકૃતિજનિત લજ્જાથી રહિત

श्रीभगवानुवाच

दिष्ट्या त्वं विबुधश्रेष्ठ स्वां निष्ठामात्मना स्थितः।
यन्मे स्त्रीरूपया स्वैरं मोहितोऽप्यङ्ग मायया॥ ३८

શ્રીભગવાન બોલ્યા – હે પ્રિય, હે દેવશિરોમણિ, મારી સ્ત્રીરૂપ માયાથી તમે સ્વેચ્છાથી જ મોહિત થયા અને તમે જાતે જ પોતાની (મૂળ) પ્રકૃતિને પ્રાપ્ત થયા, તે ઘણું સારું થયું.॥ ૩૮॥

स्वां निष्ठां प्रकृतिम्॥ ३८॥

'**स्वां निष्ठाम्**' પોતાની પ્રકૃતિને॥ ૩૮॥

को नु मेऽतितरेन्मायां विषक्तस्त्वदृते पुमान्।
तांस्तान्विसृजतीं भावान्दुस्तरामकृतात्मभिः॥ ३९
॥ ३९॥

અજિતેન્દ્રિય મનુષ્યો દ્વારા દુઃખથી તરી શકાય તેવી અને તે તે (જુદા જુદા) વિષયોને સર્જતી મારી માયાને આપના સિવાય કયો વિષયાસક્ત પુરુષ તરી શકે?॥ ૩૯॥ ૩૯॥

वंशीधरी—अन्यथा 'मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।' इत्युक्तिरसमञ्जसा स्यादिति भावः।

નહીં તો 'જે પુરુષો મને જ નિરંતર ભજે છે તેઓ આ માયાને તરી જાય છે,' (ગીતા-૭/૧૪) એ ઉક્તિ અયુક્ત થાય, એવો ભાવ છે.

सेयं गुणमयी माया न त्वामभिभविष्यति।
मया समेता कालेन कालरूपेण भागशः॥ ४०

(સૃષ્ટિ વગેરેના) કારણરૂપ તથા કાળરૂપ એવા મને આ ગુણમયી માયા (રજોગુણ વગેરેના) વિભાગસહિત અધીન હોઈ (હવે પછી આમ) આપનો પરાભવ નહીં કરે.॥ ૪૦॥

कालेन सृष्ट्यादिनिमित्तेन। मया कालरूपेण। भागशो रजआद्यंशेन समेता मदधीना सती॥ ४०॥

'**कालेन**' સૃષ્ટિ વગેરેના કારણરૂપ તથા કાળરૂપ એવા મને, '**भागशः**' રજોગુણ વગેરે વિભાગસહિત અધીન એવી માયા॥ ૪૦॥

श्रीशुक उवाच

एवं भगवता राजन् श्रीवत्साङ्केन सत्कृतः।
आमन्त्र्य तं परिक्रम्य सगणः स्वालयं ययौ॥ ४१
॥ ४१॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – હે રાજા, આમ, શ્રીવત્સચિહ્નવાળા ભગવાન શ્રીહરિ દ્વારા સત્કાર પામેલા ભગવાન શંકર તેમની આજ્ઞા લઈને, પ્રદક્ષિણા કરીને, પોતાના ગણો સાથે સ્વધામ પધાર્યા.॥ ૪૧॥ ૪૧॥

आत्मांशभूतां तां मायां भवानीं भगवान्भवः ।
शंसतामृषिमुख्यानां प्रीत्याऽऽचष्टाथ भारत ॥ ४२ ॥ ४२ ॥

હે ભરતવંશી રાજા, પછી ભગવાન શંકરે પોતાની સ્તુતિ કરતા મોટા મોટા ઋષિઓની વચ્ચે પરમાત્માના અંશરૂપ તે માયાનું ભવાનીને પ્રેમપૂર્વક વર્ણન કર્યું. ॥ ૪૨ ॥ ૪૨ ॥

अपि व्यपश्यस्त्वमजस्य मायां
परस्य पुंसः परदेवतायाः ।
अहं कलानामृषभो विमुह्ये
यया वशोऽन्ये किमुतास्वतन्त्राः ॥ ४३ ॥ ४३ ॥

સર્વોત્કૃષ્ટ દેવતા એવા અજન્મા પરમ પુરુષની માયાને (હે ભવાની) તમે નિહાળી ને? ભગવાનની કળાઓમાં શ્રેષ્ઠ એવો હું સ્વતંત્ર હોવા છતાં જે માયાથી વિમોહિત થયો, તો જે બીજાઓ સ્વતંત્ર નથી તેઓ મોહિત થાય તેમાં શું કહેવું? ॥ ૪૩ ॥ ૪૩ ॥

यं मामपृच्छस्त्वमुपेत्य योगात्
समासहस्रान्त उपारतं वै ।
स एष साक्षात् पुरुषः पुराणो
न यत्र कालो विशते न वेदः ॥ ४४ ॥ ४४ ॥

એક હજાર વર્ષને અંતે યોગથી વિરત થયેલા એવા મારી પાસે આવીને તમે જેમના વિષે પૂછ્યું હતું, તે જ આ સાક્ષાત્ પુરાણપુરુષ છે જ્યાં કાળ પ્રવેશી શકતો નથી અને (જેમને) વેદ વર્ણવી શકતા નથી. ॥ ૪૪ ॥ ૪૪ ॥

अष्टाध्यायार्थनिगमनम्—**इतीति**।

'इति' એમ કહીને આઠ અધ્યાયો (અ-૫ થી અ-૧૨)ના અર્થનો સાર આપે છે.

श्रीशुक उवाच

इति तेऽभिहितस्तात विक्रमः शार्ङ्गधन्वनः ।
सिन्धोर्निर्मथने येन धृतः पृष्ठे महाचलः ॥ ४५ ॥ ४५ ॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – હે પ્રિય પરીક્ષિત, આ પ્રમાણે શાર્ઙ્ગ ધનુષ્ય ધારણ કરનાર શ્રીહરિનું પરાક્રમ તમને કહેવામાં આવ્યું, જેમના દ્વારા સમુદ્રમંથન કરવામાં આવ્યું ત્યારે પીઠ ઉપર મહાન પર્વત ધારણ કરવામાં આવ્યો હતો. ॥ ૪૫ ॥ ૪૫ ॥

एतत्कीर्तनादौ फलमाह—**एतदिति**।

આ ભગવચ્ચરિત્રનાં કીર્તનાદિનું ફળ કહે છે— **'एतत् इति।'**

एतन्मुहुः कीर्तयतोऽनुशृण्वतो
न रिष्यते जातु समुद्यमः क्वचित् ।
यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनं
समस्तसंसारपरिश्रमापहम् ॥ ४६ ॥ ४६ ॥

આ (સમુદ્રમંથનાદિરૂપ ભગવચ્ચરિત્ર)નું વારંવાર કીર્તન તથા શ્રવણ કરનાર મનુષ્યનો સુંદર પ્રયત્ન ક્યારેય પણ નાશ નથી પામતો, કારણ કે ઉત્તમ કીર્તિવાળા ભગવાનના ગુણોનું વર્ણન સમગ્ર સંસારના શોક, મોહાદિરૂપ પરિશ્રમનો નાશ કરનારું છે. ॥ ૪૬ ॥ ૪૬ ॥

असदविषयमङ्घ्रिं भावगम्यं प्रपन्ना-
नमृतममरवर्यानाशयत् सिन्धुमथ्यम्।
कपटयुवतिवेषो मोहयन् यः सुरारीं-
स्तमहमुपसृतानां कामपूरं नतोऽस्मि॥ ४७

(मालिनी छन्दः)

भगवता कृतं भक्तपक्षपातं स्मरन्नमस्करोति —असतामविषयम्। भावो भजनं तेन गम्यमङ्घ्रिं प्रपन्नान् शरणागतान्सिन्धुमथ्यं सिन्धोर्मथनेन जातममृतं य आशयदभोजयत्॥ ४७॥

દેવોના શત્રુઓને મોહ ઉપજાવતા જે ભગવાને માયાથી યુવતીનો વેષ ધારણ કરી દુષ્ટ જનો માટે દુર્લભ અને ભજનથી પ્રાપ્ત કરવા યોગ્ય ચરણકમળનો આશ્રય કરનાર દેવશ્રેષ્ઠોને સમુદ્રમંથનથી ઉત્પન્ન થયેલા અમૃતનું પાન કરાવ્યું, તે શરણાગતોની કામના પૂર્ણ કરનાર ભગવાનને હું નમસ્કાર કરું છું.॥ ૪૭॥

ભગવાન દ્વારા કરવામાં આવેલા ભક્તોના પક્ષપાતનું સ્મરણ કરતા નમસ્કાર કરે છે— દુષ્ટ (અજિતેન્દ્રિય) જનો માટે દુર્લભ અથવા દુર્જ્ઞેય તથા '**भावः**' ભજન, તેનાથી પ્રાપ્ત કરવા યોગ્ય ચરણનો '**प्रपन्नान्**' આશ્રય કરનાર દેવોને '**सिन्धुमथ्यम्**' સમુદ્રના મંથનથી ઉત્પન્ન થયેલા અમૃતનું જે ભગવાને '**आशयत्**' પાન (ભોજન) કરાવ્યું.॥ ૪૭॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे शङ्करमायामोहनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

❋❋❋❋❋

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

આગામી સાત મન્વન્તરોનું વર્ણન

त्रयोदशे तु वर्ण्यन्ते सप्तमादीन्यनुक्रमात्।
मन्वन्तराणि सर्वाणि षड्विधानि पृथक्पृथक्॥ १॥

તેરમા અધ્યાયમાં સાતમા મન્વન્તરથી માંડીને છ પ્રકારના સર્વ મન્વન્તરોનું જુદું જુદું વર્ણન કરવામાં આવે છે.॥ ૧॥

सप्तमादिमन्वन्तराण्याह— मनुरित्यादिना यावदध्यायसमाप्ति।

સાતમા મન્વન્તરથી માંડીને મન્વન્તરોનું અધ્યાય સમાપ્ત થાય ત્યાં સુધી વર્ણન કરે છે— '**मनुः**' વગેરે દ્વારા

श्रीशुक उवाच

मनुर्विवस्वतः पुत्रः श्राद्धदेव इति श्रुतः।
सप्तमो वर्तमानो यस्तदपत्यानि मे शृणु॥ १

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — વિવસ્વાન સૂર્યના પુત્ર શ્રાદ્ધદેવ નામના પ્રખ્યાત સાતમા (વૈવસ્વત) મનુ જે હાલમાં છે, તેમનાં સન્તાનો વિષે મારી પાસેથી શ્રવણ કરો.॥ ૧॥

इक्ष्वाकुर्नभगश्चैव धृष्टः शर्यातिरेव च।
नरिष्यन्तोऽथ नाभागः सप्तमो दिष्ट उच्यते॥ २

ઈક્ષ્વાકુ, નભગ, ધૃષ્ટ, શર્યાતિ તેમ જ નરિષ્યન્ત, પછી નાભાગ અને સાતમો દિષ્ટ કહેવાય છે.॥ ૨॥

करूषश्च पृषध्रश्च दशमो वसुमान्स्मृतः।
मनोर्वैवस्वतस्यैते दश पुत्राः परन्तप॥ ३
॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

હે શત્રુને તપાવનાર પરીક્ષિત! કરૂષ, પૃષધ્ર અને દસમો વસુમાન–વૈવસ્વત મનુના આ દસ પુત્રો છે.॥ ૩॥॥ ૧ ॥ ૨ ॥ ૩ ॥

आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः।
अश्विनावृभवो राजन्निन्द्रस्तेषां पुरन्दरः॥ ४

હે રાજા, (આ મન્વન્તરમાં) આદિત્યો, વસુઓ, રુદ્રો, વિશ્વેદેવો, મરુદ્ગણો, અશ્વિનીકુમારો તથા ઋભુઓ દેવતાઓ છે અને તેમનો ઈન્દ્ર પુરન્દર છે.॥ ૪॥

आदित्यादयो देवा इत्यन्वयः॥ ४॥

આદિત્યો વગેરે દેવો છે, એમ અન્વય છે.॥ ૪॥

कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रोऽथ गौतमः।
जमदग्निर्भरद्वाज इति सप्तर्षयः स्मृताः॥ ५
॥ ५ ॥

કશ્યપ, અત્રિ, વસિષ્ઠ, વિશ્વામિત્ર, ગૌતમ, જમદગ્નિ અને ભરદ્વાજ– એ (સાત) સપ્તર્ષિઓ છે.॥ ૫ ॥ ૫ ॥

अत्रापि भगवज्जन्म कश्यपाददितेरभूत्।
आदित्यानामवरजो विष्णुर्वामनरूपधृक्॥ ६

આ મન્વન્તરમાં પણ પિતા કશ્યપથી માતા અદિતિની કૂખે ભગવાનનો પ્રાદુર્ભાવ થયો. (વિવસ્વાન, અર્યમા, પૂષા વગેરે જણાવેલા દ્વાદશ) આદિત્યોમાં સૌથી નાના, વામનરૂપ ધારણ કરનાર ભગવાન વિષ્ણુ હતા.॥ ૬॥

भगवतो जन्म अवतारः। तमेवाह— आदित्यानां विवस्वानर्यमा पूषेत्याद्युक्तानां मध्ये अवरं जन्म यस्य सः॥ ६॥

ભગવાનનો **'जन्म'** અવતાર, તેનું જ વર્ણન કરે છે— આદિત્યોમાં વિવસ્વાન, અર્યમા, પૂષા વગેરે જણાવેલા છે, તેમાં સૌથી નાના તરીકે જેમનો જન્મ થયો તે.॥ ૬॥

संक्षेपतो मयोक्तानि सप्त मन्वन्तराणि ते।
भविष्याण्यथ वक्ष्यामि विष्णोः शक्त्यान्वितानि च॥ ७

મારા દ્વારા તમને સાત મન્વન્તરો સંક્ષેપમાં કહેવામાં આવ્યા. હવે વિષ્ણુની શક્તિથી યુક્ત, ભવિષ્યમાં થનારા મન્વન્તરો હું કહીશ.॥ ૭॥

शक्त्याऽवतारेणान्वितानि॥ ७॥

'शक्त्या' શક્તિ સાથે અર્થાત્ અવતાર સાથે યુક્ત॥ ૭॥

अष्टमं मनुं वक्तुं कथामाह—**विवस्वत इति** त्रिभिः।

આઠમા મનુની વાત કરવા માટે ત્રણ શ્લોકો દ્વારા કથા કહે છે— **'विवस्वतः इति।'**

विवस्वतश्च द्वे जाये विश्वकर्मसुते उभे।
संज्ञा छाया च राजेन्द्र ये प्रागभिहिते तव॥ ८
॥ ८ ॥

હે રાજેન્દ્ર, વિશ્વકર્માની સંજ્ઞા અને છાયા નામની બે પુત્રીઓ વિવસ્વાન સૂર્યની બે પત્નીઓ છે, જે તમને પૂર્વે (છઠ્ઠા સ્કંધમાં) કહેવામાં આવી.॥ ૮ ॥ ૮ ॥

तृतीयां वडवामेके तासां संज्ञासुतास्त्रयः।
यमो यमी श्राद्धदेवश्छायायाश्च सुतान् शृणु॥ ९

एके वडवां तृतीयामाहुः—मम तु संज्ञैव वडवेति मतम्। तदुक्तं षष्ठे—'सैव भूत्वाथ वडवा नासत्यौ सुषुवे भुवि' इति। यमश्च यमी च यमुना श्राद्धदेवश्चेति त्रयः सुताः॥ ९॥

કેટલાક કહે છે કે (વિવસ્વાન સૂર્યને) વડવા નામની ત્રીજી પત્ની હતી. તે ત્રણે પત્નીઓમાં સંજ્ઞાનાં યમ, યમુના અને શ્રાદ્ધદેવ નામનાં ત્રણ સંતાનો થયાં. હવે છાયાનાં સંતાનો સાંભળો.॥ ૯॥

કેટલાક વડવાને ત્રીજી પત્ની કહે છે— પણ મારા મત પ્રમાણે સંજ્ઞા જ વડવા છે. તે છઠ્ઠા સ્કન્ધમાં કહેવામાં આવ્યું છે— 'પછી પૃથ્વી પર ઘોડી થઈને ગયેલી તે જ સંજ્ઞાએ (વિવસ્વાનથી જ) બે અશ્વિનીકુમારોને જન્મ આપ્યો.' **(**શ્રીમદ્ ભા.૬/૬/૪૦) યમ અને '**यमी**' યમુના તથા શ્રાદ્ધદેવ, એમ ત્રણ સંતાનો॥ ૯॥

सावर्णिस्तपती कन्या भार्या संवरणस्य या।
शनैश्चरस्तृतीयोऽभूदश्विनौ वडवात्मजौ॥ १०

सावर्णिः पुत्रः॥ १०॥

(છાયાનાં ત્રણ સંતાનો થયાં.) સાવર્ણિ, તપતી નામની કન્યા કે જે સંવરણની ભાર્યા થઈ હતી અને ત્રીજા ધીરે ચાલનારા શનૈશ્વર. બંને અશ્વિનીકુમારો વડવાના પુત્રો થયા.॥ ૧૦॥

'**सावर्णिः**' છાયાના પુત્ર॥ ૧૦॥

अष्टमेऽन्तर आयाते सावर्णिर्भविता मनुः।
निर्मोकविरजस्काद्याः सावर्णितनया नृप॥ ११

હે નૃપ (પરીક્ષિત), આઠમો મન્વન્તર આવશે ત્યારે સાવર્ણિ મનુ થશે. નિર્મોક, વિરજસ્ક વગેરે સાવર્ણિપુત્રો થશે.॥ ૧૧॥

तत्र देवाः सुतपसो विरजा अमृतप्रभाः।
तेषां विरोचनसुतो बलिरिन्द्रो भविष्यति॥ १२

॥ ११॥ १२॥

તે મન્વન્તરમાં સુતપા, વિરજ અને અમૃતપ્રભ નામના દેવગણો થશે અને વિરોચનપુત્ર બલિ તેમના ઈન્દ્ર થશે,॥ ૧૨॥ ૧૧॥ ૧૨॥

दत्त्वेमां याचमानाय विष्णवे यः पदत्रयम्।
राद्धमिन्द्रपदं हित्वा ततः सिद्धिमवाप्स्यति॥ १३

पदत्रयं याचमानायेमां सर्वां महीं सप्तमे मन्वन्तरे दत्त्वाऽष्टमे मन्वन्तरे विष्णोः प्रसादेन च राद्धं लब्धमिन्द्रपदं हित्वेत्यर्थः॥ १३॥

કે જે બલિરાજા, (સાતમા મન્વન્તરમાં) ત્રણ પગલાં માગતા વિષ્ણુ ભગવાનને આ (સમગ્ર) ભૂમિ આપીને (આઠમા મન્વન્તરમાં) પ્રાપ્ત કરેલું ઈન્દ્રપદ છોડીને પછી મોક્ષ પામશે. ॥ ૧૩॥

સાતમા મન્વન્તરમાં ત્રણ પગલાં માગતા '**इमाम्**' આ સંપૂર્ણ પૃથ્વી (વિષ્ણુ ભગવાનને) આપીને આઠમા મન્વન્તરમાં વિષ્ણુ ભગવાનની કૃપાથી '**राद्धम्**' પ્રાપ્ત કરેલું ઈન્દ્રપદ છોડીને, એમ અર્થ છે.॥ ૧૩॥ ('**राध्**' પૂર્ણ કરવું, સિદ્ધ કરવું)

योऽसौ भगवता बद्धः प्रीतेन सुतले पुनः ।
निवेशितोऽधिके स्वर्गादधुनाऽऽस्ते स्वराडिव ॥ १४ ॥ १४ ॥

ભગવાન દ્વારા જે બાંધવામાં આવેલા તે બલિરાજા અને પુનઃ પ્રસન્ન થયેલા તે ભગવાન દ્વારા જ સ્વર્ગથી પણ અધિક એવા સુતલમાં સ્થાપવામાં આવ્યા હતા, તે અત્યારે ઈન્દ્રની જેમ રહે છે. ॥ ૧૪ ॥ ૧૪ ॥

गालवो दीप्तिमान्रामो द्रोणपुत्रः कृपस्तथा ।
ऋष्यशृङ्गः पिताऽस्माकं भगवान्बादरायणः ॥ १५
इमे सप्तर्षयस्तत्र भविष्यन्ति स्वयोगतः ।
इदानीमासते राजन् स्वे स्व आश्रममण्डले ॥ १६

हे રાજા, તે (સાવર્ણિ મન્વન્તર)માં ગાલવ, દીપ્તિમાન, પરશુરામ, અશ્વત્થામા, કૃપાચાર્ય, ઋષ્યશૃંગ તથા અમારા પિતા ભગવાન બાદરાયણ– આ સાત ઋષિઓ થશે. અત્યારે તેઓ પોતપોતાના આશ્રમમંડળમાં પોતાના યોગપ્રભાવથી સ્થિત છે. ॥ ૧૫ ॥ ૧૬ ॥

रामः परशुरामः । द्रोणपुत्रोऽश्वत्थामा ॥ १५ ॥

'रामः' પરશુરામ, **'द्रोणपुत्रः'** અશ્વત્થામા ॥ ૧૫ ॥

इदानीं तु स्वयोगत आसते ॥ १६ ॥

અત્યારે તો તેઓ પોતાના યોગપ્રભાવથી સ્થિત છે. ॥ ૧૬ ॥

देवगुह्यात्सरस्वत्यां सार्वभौम इति प्रभुः ।
स्थानं पुरन्दराद्धृत्वा बलये दास्यतीश्वरः ॥ १७
नवमो दक्षसावर्णिर्मनुर्वरुणसम्भवः ।
भूतकेतुर्दीप्तकेतुरित्याद्यास्तत्सुता नृप ॥ १८ ॥ १७ ॥ १८ ॥

(પિતા) દેવગુહ્યથી (માતા) સરસ્વતીમાં સાર્વભૌમ પ્રભુ અવતાર લેશે અને એ જ ઈશ્વર (સાતમા મન્વન્તરના) ઈન્દ્ર (પુરન્દર) પાસેથી તેનું સ્થાન હરી લઈને બલિને આપશે. ॥ ૧૭ ॥

હે નૃપ, વરુણના પુત્ર દક્ષસાવર્ણિ નવમા મનુ થશે. ભૂતકેતુ, દીપ્તકેતુ વગેરે તેમના પુત્રો થશે. ॥ ૧૮ ॥ ૧૭ ॥ ૧૮ ॥

पारा मरीचिगर्भाद्या देवा इन्द्रोऽद्भुतः स्मृतः ।
द्युतिमत्प्रमुखास्तत्र भविष्यन्त्यृषयस्ततः ॥ १९

પાર, મરીચિગર્ભ વગેરે દેવો થશે. 'અદ્ભુત' નામના ઈન્દ્ર થશે તથા તે મન્વન્તરમાં દ્યુતિમાન જેમાં મુખ્ય છે તે ઋષિઓ થશે. ॥ ૧૯ ॥

अद्भुत इन्द्रः ॥ १९ ॥

'अद्भुतः' 'અદ્ભુત' નામના ઈન્દ્ર ॥ ૧૯ ॥

आयुष्मतोऽम्बुधारायामृषभो भगवत्कला ।
भविता येन संराद्धां त्रिलोकीं भोक्ष्यतेऽद्भुतः ॥ २०

(તે મન્વન્તરમાં) આયુષ્મ‌ાનથી અમ્બુધારામાં ભગવાનના અંશરૂપ ઋષભ થશે, જેમના દ્વારા આપવામાં આવેલું ત્રિલોકનું રાજ્ય 'અદ્ભુત' નામના ઈન્દ્ર ભોગવશે. ॥ ૨૦ ॥

दशमो ब्रह्मसावर्णिरुपश्लोकसुतो महान् ।
तत्सुता भूरिषेणाद्या हविष्मत्प्रमुखा द्विजाः ॥ २१ ॥ २० ॥ २१ ॥

ઉપશ્લોકના પુત્ર મહાન બ્રહ્મસાવર્ણિ દસમા મનુ થશે. ભૂરિષેણ વગેરે તેમના પુત્રો થશે તથા હવિષ્માન જેમાં મુખ્ય છે તે સપ્તર્ષિઓ થશે. ॥ ૨૧ ॥ ॥ ૨૦ ॥ ૨૧ ॥

हविष्मत्प्रमुखा इत्युक्तानामेव केषांचिन्नामान्याह—**हविष्मानिति** ।

હવિષ્માન જેમાં મુખ્ય છે તેમાંનાં જ કેટલાક નામો જણાવે છે— **'हविष्मान् इति ।'**

हविष्मान्सुकृतिः सत्यो जयो मूर्तिस्तदा द्विजाः ।
सुवासनविरुद्धाद्या देवाः शम्भुः सुरेश्वरः ॥ २२

॥ २२ ॥

विष्वक्सेनो विषूच्यां तु शम्भोः सख्यं करिष्यति ।
जातः स्वांशेन भगवान्गृहे विश्वसृजो विभुः ॥ २३

विषूच्यां जातः सन् ॥ २३ ॥

मनुर्वै धर्मसावर्णिरेकादशम आत्मवान् ।
अनागतास्तत्सुताश्च सत्यधर्मादयो दश ॥ २४

एकादशम इत्यादिरार्षः ॥ २४ ॥

वंशीधरी—अनागताः भविष्याः ।

विहङ्गमाः कामगमा निर्वाणरुचयः सुराः ।
इन्द्रश्च वैधृतस्तेषामृषयश्चारुणादयः ॥ २५
आर्यकस्य सुतस्तत्र धर्मसेतुरिति स्मृतः ।
वैधृतायां हरेरंशस्त्रिलोकीं धारयिष्यति ॥ २६
भविता रुद्रसावर्णी राजन्द्वादशमो मनुः ।
देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठादयः सुताः ॥ २७
ऋतधामा च तत्रेन्द्रो देवाश्च हरितादयः ।
ऋषयश्च तपोमूर्तिस्तपस्व्याग्नीध्रकादयः ॥ २८

॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

स्वधामाख्यो हरेरंशः साधयिष्यति तन्मनोः ।
अन्तरं सत्यसहसः सूनृतायाः सुतो विभुः ॥ २९

तस्य मनोरन्तरं साधयिष्यति—सत्यसहसः सूनृतायाश्च सुतः सन् ॥ २९ ॥

मनुस्त्रयोदशो भाव्यो देवसावर्णिरात्मवान् ।
चित्रसेनविचित्राद्या देवसावर्णिदेहजाः ॥ ३०

॥ ३० ॥

(તે મન્વન્તરમાં) હવિષ્માન, સુકૃતિ, સત્ય, જય, મૂર્તિ વગેરે સપ્તર્ષિઓ થશે. સુવાસન, વિરુદ્ધ વગેરે દેવો થશે તથા 'શંભુ' નામના ઈન્દ્ર થશે. ॥ ૨૨ ॥ ૨૨ ॥

સર્વસમર્થ ભગવાન વિષ્વક્સેન વિશ્વસૃજના ગૃહે વિષૂચિમાં પોતાના અંશરૂપે પ્રકટ થતાં 'શંભુ' નામના ઈન્દ્રને સહાય કરશે. ॥ ૨૩ ॥

વિષૂચિમાં જન્મીને ॥ ૨૩ ॥

આત્મવાન્ ધર્મસાવર્ણિ અગિયારમા મનુ થશે. સત્ય, ધર્મ વગેરે તેમના દસ અનાગત પુત્રો થશે. ॥ ૨૪ ॥

'एकादशः' ને બદલે **'एकादशमः'** છે તે આર્ષ છે. ॥ ૨૪ ॥

'अनागताः' થશે (થનારા)

તે (મન્વન્તરમાં) વિહંગમ, કામગમ, નિર્વાણરુચિ વગેરે દેવો થશે. વૈધૃત તેમના ઈન્દ્ર થશે અને અરુણાદિ સપ્તર્ષિઓ થશે. ॥ ૨૫ ॥

(તે અગિયારમા મન્વન્તર)માં વૈધૃતા વિષે આર્યકના પુત્ર ધર્મસેતુરૂપે શ્રીહરિનો અંશાવતાર થશે અને તે ત્રણેય લોકને ધારણ કરશે. ॥ ૨૬ ॥

હે રાજા, રુદ્રસાવર્ણિ બારમા મનુ થશે. દેવવાન, ઉપદેવ, દેવશ્રેષ્ઠ વગેરે તેમના પુત્રો થશે. ॥ ૨૭ ॥

તે મન્વન્તરમાં હરિતાદિ દેવો, ઋતધામા ઈન્દ્ર, તપોમૂર્તિ, તપસ્વી, આગ્નીધ્રક વગેરે સપ્તર્ષિઓ થશે. ॥ ૨૮ ॥ ॥ ૨૫ ॥ ૨૬ ॥ ૨૭ ॥ ૨૮ ॥

સત્યસહા અને સૂનૃતાના 'સ્વધામ' નામના, શ્રીહરિના અંશરૂપ સમર્થ પુત્ર તે મન્વન્તરનું પાલન કરશે. ॥ ૨૯ ॥

તે મનુના કાળનું પાલન કરશે– સત્યસહા અને સૂનૃતાના પુત્ર થઈને ॥ ૨૯ ॥

આત્મવાન દેવસાવર્ણિ તેરમા મનુ થશે. ચિત્રસેન, વિચિત્ર વગેરે દેવસાવર્ણિના પુત્રો થશે. ॥ ૩૦ ॥ ૩૦ ॥

देवाः सुकर्मसुत्रामसंज्ञा इन्द्रो दिवस्पतिः।
निर्मोकतत्त्वदर्शाद्या भविष्यन्त्यृषयस्तदा॥ ३१

॥ ३१ ॥

(તેરમા મન્વન્તરમાં) સુકર્મ અને સુત્રામ નામના દેવો, દિવસ્પતિ નામના ઈન્દ્ર તથા નિર્મોક, તત્ત્વદર્શી વગેરે સપ્તર્ષિઓ થશે. ॥ ૩૧ ॥ ૩૧ ॥

देवहोत्रस्य तनय उपहर्ता दिवस्पतेः।
योगेश्वरो हरेरंशो बृहत्यां सम्भविष्यति॥ ३२

दिवस्पतेरिन्द्रस्योपहर्ता संपादकः संभविष्यति ॥ ३२ ॥

બૃહતી (માતા)માં જન્મેલો, શ્રીહરિના અંશરૂપ, દેવહોત્રનો 'યોગેશ્વર' નામનો પુત્ર દિવસ્પતિ ઈન્દ્રને (ત્રિલોકીનું રાજ્ય) સંપાદન કરાવનારો બનશે. ॥ ૩૨ ॥

'**दिवस्पतेः**' દિવસ્પતિ નામના ઈન્દ્રને (ત્રિલોકીનું રાજ્ય) '**उपहर्ता**' સંપાદન કરાવનાર બનશે. ॥ ૩૨ ॥

मनुर्वा इन्द्रसावर्णिश्चतुर्दशम एष्यति।
उरुगम्भीरबुद्ध्याद्या इन्द्रसावर्णिवीर्यजाः॥ ३३

(પછી) ચૌદમા મનુ ઈન્દ્રસાવર્ણિ આવશે. ઉરુબુદ્ધિ, ગંભીરબુદ્ધિ વગેરે ઈન્દ્રસાવર્ણિના પુત્રો થશે. ॥ ૩૩ ॥

पवित्राश्चाक्षुषा देवाः शुचिरिन्द्रो भविष्यति।
अग्निर्बाहुः शुचिः शुद्धो मागधाद्यास्तपस्विनः॥ ३४

॥ ३३ ॥ ३४ ॥

(ચૌદમા મન્વન્તરમાં) પવિત્ર અને ચાક્ષુષ નામના દેવો થશે, શુચિ નામના ઈન્દ્ર થશે, અગ્નિ, બાહુ, શુચિ, શુદ્ધ, માગધ વગેરે સપ્તર્ષિઓ થશે. ॥ ૩૪ ॥ ॥ ૩૩ ॥ ૩૪ ॥

सत्रायणस्य तनयो बृहद्भानुस्तदा हरिः।
वितानायां महाराज क्रियातन्तून्वितायिता॥ ३५

क्रियातन्तून् कर्मसंततीः। वितायिता विस्तारयिष्यति ॥ ३५ ॥

હે મહારાજ, તે (ચૌદમા મન્વન્તર)માં (માતા) વિતાનામાં (પિતા) સત્રાયણના બૃહદ્‌ભાનુ નામના શ્રીહરિ વેદના કર્મમાર્ગનો વિસ્તાર કરશે. ॥ ૩૫ ॥

'**क्रियातन्तून्**' ક્રિયાસમુદાયનો '**वितायिता**' વિસ્તાર કરશે. ॥ ૩૫ ॥ (**वि+तन्**)

राजंश्चतुर्दशैतानि त्रिकालानुगतानि ते।
प्रोक्तान्येभिर्मितः कल्पो युगसाहस्रपर्ययः॥ ३६

युगसाहस्रेण पर्ययः परिवर्तो यस्य। युगसहस्रप्रमाण इत्यर्थः ॥ ३६ ॥

હે રાજા, ભૂત, વર્તમાન અને ભવિષ્યમાં થનારા આ ચૌદ મન્વન્તરો કહેવામાં આવ્યા. આ ચૌદ મન્વન્તરોથી સહસ્ર ચતુર્યુગવાળા કલ્પની ગણના કરવામાં આવે છે. ॥ ૩૬ ॥

હજાર ચતુર્યુગનો પર્યય એટલે પરિવર્તન છે જેનું, એક હજાર યુગ જેટલા સમયમાં ચૌદ મન્વન્તરો થાય છે. ॥ ૩૬ ॥ (તેટલા સમયને કલ્પ કહે છે. અર્થાત્ એક મનુનું રાજ્ય ૭૧ ચતુર્યુગી ઉપરાંત થોડા સમય પર્યન્ત હોય છે.)

(चतुर्दशमनूनां च कथां यः कीर्तयेन्नरः।
शृणुयाद्वापि राजेन्द्र तस्य विष्णुः प्रसीदति॥ ३७॥)

॥ ३७ ॥

હે રાજેન્દ્ર, વળી જે મનુષ્ય ચૌદ મનુઓની કથાનું કીર્તન કરે (છે) કે શ્રવણ કરે (છે), તેના ઉપર ભગવાન વિષ્ણુ પ્રસન્ન થાય છે. ॥ ૩૭ ॥ ૩૭ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे मन्वन्तरानुवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

મનુ વગેરેનાં ભિન્ન ભિન્ન કર્મોનું નિરૂપણ

चतुर्दशे तु सर्वेषां मन्वादीनां यथायथम्।
पृथक्कर्माणि वर्ण्यन्ते भगवद्वशवर्तिनाम्॥ १॥

ચૌદમા અધ્યાયમાં ભગવાનને વશ રહેનારા મનુ વગેરે સર્વનાં યથાયોગ્ય જુદાં જુદાં કર્મો વર્ણવવામાં આવે છે.॥ ૧॥

राजोवाच

मन्वन्तरेषु भगवन्यथा मन्वादयस्त्विमे।
यस्मिन्कर्मणि ये येन नियुक्तास्तद्वदस्व मे॥ १॥ १॥

રાજા (પરીક્ષિત) બોલ્યા – હે ભગવાન શુકદેવજી, (પોતપોતાના) મન્વન્તરોમાં જે આ મનુ વગેરે છે, કે જેમને જે કર્મમાં નિયુક્ત કરવામાં આવ્યા છે, તે (આપ કૃપા કરીને) મને કહો.॥ ૧॥ ૧॥

ऋषिरुवाच

मनवो मनुपुत्राश्च मुनयश्च महीपते।
इन्द्राः सुरगणाश्चैव सर्वे पुरुषशासनाः॥ २

ઋષિ (શુકદેવજી) બોલ્યા – હે પૃથ્વીપતિ (પરીક્ષિત)! મનુઓ, મનુપુત્રો, સપ્તર્ષિઓ, ઇન્દ્રો તથા દેવગણો, બધા જ (તે તે મન્વન્તરમાં થનારા) યજ્ઞાદિ અવતારો વડે ભગવાનની આજ્ઞામાં જ રહેનારા છે.॥ ૨॥

पुरुषेणेश्वरेण यज्ञाद्यवतारैः शास्यन्ते नियुज्यन्ते इति तथा॥ २॥

तदेवाह—**यज्ञादय इति**।

'पुरुषेण' ઈશ્વર દ્વારા, યજ્ઞાદિ અવતારો વડે **'शास्यन्ते'** નિયુક્ત કરવામાં આવે છે.॥ ૨॥

(મનુ વગેરે જગતનો નિર્વાહ કરે છે.) તે જ વાત કહે છે— **'यज्ञादयः इति।'**

यज्ञादयो याः कथिताः पौरुष्यस्तनवो नृप।
मन्वादयो जगद्यात्रां नयन्त्याभिः प्रचोदिताः॥ ३॥ ३॥

હે નૃપ, પરમેશ્વરના યજ્ઞ વગેરે જે જે પુરુષ-દેહધારી અવતારો કહેવામાં આવ્યા, એમના દ્વારા પ્રેરણા પામેલા મનુ વગેરે જગતનો નિર્વાહ કરે છે.॥ ૩॥ ૩॥

ऋष्यादीनां कर्माण्याह—**चतुर्युगान्त** इति चतुर्भिः —

સપ્તર્ષિઓનાં કર્મોનું ચાર શ્લોકો દ્વારા વર્ણન કરે છે— **'चतुर्युगान्ते इति।'**

चतुर्युगान्ते कालेन ग्रस्तान् श्रुतिगणान्यथा।
तपसा ऋषयोऽपश्यन्यतो धर्मः सनातनः॥ ४

ચાર યુગોને અંતે કાળ દ્વારા નષ્ટ થયેલા વેદસમૂહોનો સપ્તર્ષિઓ (પોતાના) તપોબળથી સાક્ષાત્કાર કરે છે, જે વેદસમૂહોથી સનાતન ધર્મ પ્રવર્તમાન થાય છે.॥ ૪॥

यतो येभ्यः श्रुतिगणेभ्यः॥ ४॥

'यतः' જે વેદસમૂહોથી॥ ૪॥

ततो धर्मं चतुष्पादं मनवो हरिणोदिताः।
युक्ताः सञ्चारयन्त्यद्धा स्वे स्वे काले महीं नृप॥ ५

હે નૃપ, પછી શ્રીહરિ દ્વારા આજ્ઞા આપવામાં આવેલા મનુઓ સાવધાન થઈને પોતપોતાના કાળમાં ચારે ચરણથી પરિપૂર્ણ ધર્મને સાક્ષાત્ પ્રવર્તાવે છે.॥ ૫॥

उदिता उक्ताः युक्ताः संयताः सन्तो महीं धर्मं संचारयन्ति। मह्यां धर्मं प्रवर्तयन्तीत्यर्थः ॥ ५ ॥

'उदिताः' આજ્ઞા આપવામાં આવેલા મનુઓ **'युक्ताः'** સાવધાન થઈ પૃથ્વી ઉપર ધર્મનો સંચાર કરે છે, પૃથ્વી ઉપર ધર્મ પ્રવર્તાવે છે, એમ અર્થ છે.॥ ૫॥

(તપ, પવિત્રતા, દયા અને સત્યરૂપ ચાર ચરણ)

पालयन्ति प्रजापाला यावदन्तं विभागशः।
यज्ञभागभुजो देवा ये च तत्रान्विताश्च तैः॥ ६

પ્રજાપાલન કરનારા મનુપુત્રો વગેરે અને યજ્ઞભાગ ભોગવનારા જે દેવો છે તથા જે બીજા દ્યુલોક, પૃથ્વીલોક વગેરે જે કર્મમાં ભોક્તા તરીકે જોડાયેલા છે, તે દ્યુલોકાદિની સાથે પુત્રપૌત્રાદિ ક્રમના વિભાગપૂર્વક મન્વન્તર પૂરો થાય ત્યાં સુધી ધર્મપાલન કરે છે.॥ ૬॥

प्रजापाला मनुपुत्रास्तं धर्मं पालयन्ति यावदन्तं यावन्मन्वन्तरावसानम्। विभागशः पुत्रपौत्रादि-क्रमेण। ये चान्ये द्यावापृथिव्यादयो यत्र कर्मणि भोक्तृत्वेनान्वितास्तैश्च सह॥ ६ ॥

'प्रजापालाः' પ્રજાપાલન કરનારા મનુપુત્રો તે ધર્મનું પાલન કરે છે. **'यावत्-अन्तम्'** મન્વન્તર પૂરો થાય ત્યાં સુધી– **'विभागशः'** પુત્રપૌત્રાદિ ક્રમથી તથા જે બીજા દ્યુલોક, પૃથ્વીલોક વગેરે **'यत्र'** જે કર્મમાં ભોક્તા તરીકે જોડાયેલા છે તે દ્યુલોક વગેરેની સાથે॥ ૬॥

इन्द्रो भगवता दत्तां त्रैलोक्यश्रियमूर्जिताम्।
भुञ्जानः पाति लोकांस्त्रीन् कामं लोके प्रवर्षति॥ ७

ભગવાન શ્રીહરિ દ્વારા આપવામાં આવેલી, ત્રણેય લોકની ઊર્જાવાળી સંપત્તિને ભોગવતો ઈન્દ્ર લોકમાં ઈચ્છાનુસાર જળવૃષ્ટિ કરે છે અને ત્રણેય લોકનું પાલન કરે છે.॥ ૭॥ ૭॥

प्रसङ्गाद् रूपान्तरैरपि जगद्यात्राप्रवर्तनमाह— **ज्ञानमिति** द्वाभ्याम्।

પ્રસંગોપાત્ત અન્ય રૂપો ધારણ કરીને પણ જગતયાત્રાનું પ્રવર્તન બે શ્લોકો વડે વર્ણવે છે— **'ज्ञानम् इति।'**

ज्ञानं चानुयुगं ब्रूते हरिः सिद्धस्वरूपधृक्।
ऋषिरूपधरः कर्म योगं योगेशरूपधृक्॥ ८

પ્રત્યેક યુગમાં શ્રીહરિ (સનકાદિ) સિદ્ધોનું રૂપ ધારણ કરીને જ્ઞાનનો, યાજ્ઞવલ્ક્યાદિ ઋષિઓનું રૂપ ધારણ કરીને કર્મનો અને દત્તાત્રેયાદિ યોગેશ્વરોનું રૂપ ધારણ કરીને યોગનો ઉપદેશ કરે છે.॥ ૮॥

सिद्धाः सनकादयः। ऋषयो याज्ञवल्क्यादयः। योगेशा दत्तात्रेयादयः। तत्तद्रूपः सन् ज्ञानं कर्म च योगं च ब्रूते॥ ८॥

'सिद्धाः' સનકાદિ સિદ્ધો, **'ऋषयः'** યાજ્ઞવલ્ક્યાદિ ઋષિઓ, **'योगेशाः'** દત્તાત્રેયાદિ, તે તે રૂપ ધારણ કરીને જ્ઞાન, કર્મ અને યોગનો ઉપદેશ કરે છે.॥ ૮॥

सर्गं प्रजेशरूपेण दस्यून्हन्यात् स्वराड्वपुः ।
कालरूपेण सर्वेषामभावाय पृथग्गुणः ॥ ९

(મરીચિ વગેરે) પ્રજાપતિઓનું રૂપ ધારણ કરીને પ્રજાસૃષ્ટિ કરે છે, સમ્રાટરૂપે ચોર-લૂંટારાઓનો નાશ કરે (છે) તથા (શીત, ઉષ્ણ આદિ) વિભિન્ન ગુણોને ધારણ કરીને કાળરૂપે સર્વના નાશ માટે થાય છે. ॥ ૯ ॥

प्रजेशा मरीच्यादयस्तेन रूपेण सर्गं करोतीति शेषः। स्वराड्वपू राजमूर्तिः। सर्वेषामभावाय भवति। पृथग्विधा गुणाः शीतोष्णादयो यस्य ॥ ९ ॥

'प्रजेशाः' મરીચિ વગેરે પ્રજાપતિઓ, તે રૂપે સૃષ્ટિ 'કરે છે', એટલું બાકી છે. **'स्वराड्वपुः'** રાજા વગેરે સમ્રાટરૂપે (ચોર-લૂંટારાઓનો નાશ કરે છે અને કાળરૂપે) સર્વના નાશ માટે થાય છે. શીત, ઉષ્ણ વગેરે વિભિન્ન ગુણો છે જેના તેવા બનીને ॥ ૯ ॥

स्तूयमानो जनैरेभिर्मायया नामरूपया।
विमोहितात्मभिर्नानादर्शनैर्न च दृश्यते ॥ १०

નામરૂપાત્મક માયાથી વિમોહિત થયેલા મનવાળા આ મનુષ્યો દ્વારા અનેક જુદાં જુદાં શાસ્ત્રો દ્વારા સ્તુતિ કરવામાં આવેલા હોવા છતાં પણ ભગવાનનું નિશ્ચયાત્મક જ્ઞાન થઈ શકતું નથી. ॥ ૧૦ ॥

नामरूपात्मिकया मायया विमोहितात्मभि-र्जनैर्नानादर्शनैः शास्त्रैः स्तूयमानो निरूप्यमाणोऽपि नैव दृश्यत इत्यर्थः ॥ १० ॥

નામરૂપાત્મક માયાથી વિમોહિત થયેલા મનવાળા મનુષ્યો દ્વારા જુદાં જુદાં અનેક **'दर्शनैः'** શાસ્ત્રો દ્વારા **'स्तूयमानः'** નિરૂપિત કરવામાં આવ્યા હોવા છતાં પણ તે ભગવાનના વાસ્તવિક સ્વરૂપનું નિશ્ચયાત્મક જ્ઞાન થઈ શકતું નથી. ॥ ૧૦ ॥

प्रासङ्गिकं निरूप्य प्रस्तुतमेवोपसंहरति—

પ્રસંગોપાત્ત મન્વન્તરનું કથન કરીને પ્રસ્તુત કલ્પનો ઉપસંહાર કરે છે–

एतत् कल्पविकल्पस्य प्रमाणं परिकीर्तितम्।
यत्र मन्वन्तराण्याहुश्चतुर्दश पुराविदः ॥ ११

(આ પ્રમાણે) મહાકલ્પ અને અવાન્તર કલ્પનું પ્રમાણ વર્ણવવામાં આવ્યું, કે જે અવાન્તર કલ્પમાં પુરાણતત્ત્વના વિદ્વાનો ચૌદ મન્વન્તરો જણાવે છે. ॥ ૧૧ ॥

एतत्कल्पविकल्पस्यावान्तरकल्पस्य ॥ ११ ॥

આ પ્રમાણે મહાકલ્પ અને **'विकल्पस्य'** અવાન્તર કલ્પનું (પ્રમાણ વર્ણવવામાં આવ્યું). ॥ ૧૧ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४॥

❋❋❋❋❋

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

રાજા બલિનો સ્વર્ગ પર વિજય

बलिं पञ्चदशे विश्वजिताचार्य अयाजयन्।
ततोऽसौ स्वर्गमजयद्भयाद्देवा निलिल्यिरे॥ १॥

શુક્રાચાર્ય વગેરે આચાર્યોએ બલિરાજા પાસે વિશ્વજિત યજ્ઞ કરાવ્યો અને તેનાથી તેણે સ્વર્ગ જીતી લીધું અને તેથી દેવો ભયથી છુપાઈ ગયા (એ કથા) પંદરમા અધ્યાયમાં છે.॥ ૧॥

अत्रेर्यते नवाध्याय्या* वामं वामनचेष्टितम्।
निग्रहच्छलतो यत्र बलेर्भूयाननुग्रहः॥ २॥

અહીંથી નવ અધ્યાય સુધી વામન ભગવાનની મનોહર લીલાનું વર્ણન કરવામાં આવે છે, જે વામન ભગવાનની લીલામાં છળપૂર્વકનું બંધન બલિરાજા માટે મહાન અનુગ્રહરૂપ બન્યું.॥ ૨॥

*नवानाम् अध्यायानां समाहारः नवाध्यायी तया नवाध्याय्या।

*નવ અધ્યાયોનો સમૂહ એટલે નવાધ્યાયી, તેની ત્રીજી વિભક્તિ નવ અધ્યાયથી

राजोवाच

बलेः पदत्रयं भूमेः कस्माद्धरिरयाचत।
भूत्वेश्वरः कृपणवल्लब्धार्थोऽपि बबन्ध तम्॥ १

રાજા (પરીક્ષિત) બોલ્યા – સર્વથા સમર્થ એવા શ્રીહરિએ બલિરાજા પાસે દીનની જેમ પૃથ્વીનાં ત્રણ પગલાં શા માટે માગ્યાં હતાં? ત્રણ લોકની પ્રાપ્તિરૂપ પ્રયોજન સિદ્ધ કરીને પણ ઈશ્વરે તે બલિને શા માટે બાંધ્યો હતો?॥ ૧॥

ईश्वरः स्वयं कृपणवत्कस्माद्धेतोरयाचत। लब्धार्थो भूत्वापि तं कस्माद्बबन्ध॥ १॥

સ્વયં સર્વસમર્થ હોવા છતાં પણ દીનની જેમ કયા કારણે માગ્યું? જેમનું પ્રયોજન સિદ્ધ થયું છે તેવા થવા છતાં પણ ઈશ્વરે તે બલિરાજાને શા માટે બાંધ્યો?॥ ૧॥

एतद् वेदितुमिच्छामो महत् कौतूहलं हि नः।
यज्ञेश्वरस्य पूर्णस्य बन्धनं चाप्यनागसः॥ २
॥ २॥

આ (વામનચરિત્ર) અમે જાણવા ઈચ્છીએ છીએ, કારણ કે પૂર્ણકામ અને યજ્ઞકર્મના ફળદાતા શ્રીહરિની યાચના અને નિરપરાધી હોવા છતાં બલિરાજાનું બંધન, એ અમારા માટે અત્યંત આશ્ચર્યરૂપ છે.॥ ૨॥ ૨॥

तत्र तावद्बलेस्त्रिलोकीमपहर्तुं याच्ञादिच्छलनं कृतवानिति वक्तुं ब्राह्मणाराधनेन बलेरकाण्ड एव स्वर्गविजयक्रममाह—पराजितश्रीरित्यादिना यावदध्यायसमाप्ति।

પહેલાં તો બલિ પાસેથી ત્રણેય લોક હરી લેવા માટે યાચના વગેરે છળ કર્યું, એમ કહેવા માટે, જ્યારે અવસર યોગ્ય ન હતો (બલિનો સમય સારો ન હતો) ત્યારે બ્રાહ્મણોની આરાધના દ્વારા જ તેણે સ્વર્ગ પર વિજય પ્રાપ્ત કર્યો, તે ક્રમ અધ્યાયની સમાપ્તિ સુધી કહે છે— '**पराजितश्रीः**' વગેરે દ્વારા

श्रीशुक उवाच

पराजितश्रीरसुभिश्च हापितो
हीन्द्रेण राजन् भृगुभिः स जीवितः।
सर्वात्मना तानभजद् भृगून् बलिः
शिष्यो महात्माऽर्थनिवेदनेन॥ ३

युद्धे पराजिता श्रीर्येन सः। इन्द्रेणासुभिश्च त्याजितः सन्। भृगून् भृगोर्वंश्यान् शुक्रादीन्। महात्मा उदारचित्तः। अर्थानां निवेदनेनार्पणेन ॥ ३ ॥

तं ब्राह्मणा भृगवः प्रीयमाणा
अयाजयन् विश्वजिता त्रिणाकम्।
जिगीषमाणं विधिनाऽभिषिच्य
महाभिषेकेण महानुभावाः॥ ४

त्रिणाकं स्वर्गं जेतुमिच्छन्तं विश्वजिता यागेनायाजयन् महाभिषेकेणैन्द्रेण बह्वृचब्राह्मण-प्रसिद्धेन॥ ४॥

ततो रथः काञ्चनपट्टनद्धो
हयाश्च हर्यश्वतुरङ्गवर्णाः ।
ध्वजश्च सिंहेन विराजमानो
हुताशनादास हविर्भिरिष्टात्॥ ५

हर्यश्वस्येन्द्रस्य ये तुरङ्गास्तेषामिव वर्णो हरितो येषाम्॥ ५॥

धनुश्च दिव्यं पुरटोपनद्धं
तूणावरिक्तौ कवचं च दिव्यम् ।
पितामहस्तस्य ददौ च माला-
मम्लानपुष्पां जलजं च शुक्रः॥ ६

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — હે રાજા, ઈન્દ્ર દ્વારા જેમની રાજ્યલક્ષ્મી હરી લેવામાં આવી તથા જેમના પ્રાણો પણ હરી લેવામાં આવ્યા તે બલિરાજા શુક્રાચાર્યના શિષ્ય હતા. ભૃગુવંશી શુક્રાચાર્ય વગેરે બ્રાહ્મણો દ્વારા પુનર્જીવિત કરવામાં આવ્યા હોઈ, ઉદાર મનવાળા તે બલિરાજા દઢ વિશ્વાસથી (સર્વ) પદાર્થોના સમર્પણ દ્વારા તે ભૃગુવંશીઓની સેવા કરતા હતા.॥ ૩॥

યુદ્ધમાં ઈન્દ્ર દ્વારા જેમની રાજ્યલક્ષ્મી હરી લેવામાં આવી તથા જેમના પ્રાણો પણ હરી લેવામાં આવ્યા તે બલિરાજા '**भृगून्**' ભૃગુવંશના શુક્રાચાર્ય વગેરેની (સેવા કરતા હતા). '**महात्मा**' ઉદાર મનવાળા, સર્વ પદાર્થોના '**निवेदनेन**' સમર્પણ દ્વારા॥ ૩॥

પ્રસન્ન થયેલા મહાપ્રતાપી ભૃગુવંશી બ્રાહ્મણોએ સ્વર્ગને જીતી લેવાની ઈચ્છાવાળા તે બલિરાજાનો મહાભિષેકની વિધિ દ્વારા અભિષેક કરીને (સર્વસ્વની દક્ષિણા આપી દેવાના સ્વરૂપવાળા) વિશ્વજિત નામના યજ્ઞ દ્વારા યજન કરાવ્યું.॥ ૪॥

'**त्रिणाकम्**' સ્વર્ગને જીતી લેવાની ઈચ્છાવાળા તે બલિરાજાને વિશ્વજિત યાગ દ્વારા યજન કરાવ્યું. '**महाभिषेकेण**' ઈન્દ્રસંબંધી, ઋગ્વેદના બ્રાહ્મણગ્રંથમાં પ્રસિદ્ધ એવા મહાભિષેકની વિધિ દ્વારા॥ ૪॥

તે યજ્ઞમાંથી હવિષ્યો દ્વારા પૂજન કરવામાં આવેલા (હુતાશન) અગ્નિમાંથી સોનાના પતરાથી મઢેલો રથ, સિંહના ચિહ્નથી શોભતી ધજા અને ઈન્દ્રના ઘોડા જેવા રંગના ઘોડા નીકળ્યા.॥ ૫॥

'**हर्यश्वस्य**' ઈન્દ્રના જે ઘોડાઓ છે તેમના જેવો લીલો રંગ છે જેમનો॥ ૫॥

સુવર્ણથી મઢેલું દિવ્ય ધનુષ્ય, અખૂટ બાણોથી ભરેલાં બે ભાથાં અને દિવ્ય કવચ (નીકળ્યાં). પિતામહ પ્રહ્લાદે તે બલિને કરમાય નહીં તેવાં પુષ્પોવાળી માળા અને શુક્રાચાર્યે શંખ આપ્યો.॥ ૬॥

पुरटं सुवर्णम्। तूणाविषुधी अरिक्तावक्षय्यशरौ। पितामहः प्रह्लादः। जलजं शङ्खम्॥ ६॥

एवं स विप्रार्जितयोधनार्थस्तैः कल्पितस्वस्त्ययनोऽथ विप्रान्।
प्रदक्षिणीकृत्य कृतप्रणामः प्रह्लादमामन्त्र्य नमश्चकार॥ ७

विप्रैरर्जितः संपादितो योधनार्थो युद्धपरिकरो यस्य तैरेव कल्पितं कृतं स्वस्त्ययनं मङ्गलवाचनादि यस्य। आमन्त्र्य पृष्ट्वा॥ ७॥

अथारुह्य रथं दिव्यं भृगुदत्तं महारथः।
सुस्त्रग्धरोऽथ संनह्य धन्वी खड्गी धृतेषुधिः॥ ८

अथारुह्य रराजेति द्वयोरन्वयः। सुस्त्रग्धरः शोभनमालाधरः॥ ८॥

हेमाङ्गदलसद्बाहुः स्फुरन्मकरकुण्डलः।
रराज रथमारूढो धिष्ण्यस्थ इव हव्यवाट्॥ ९

हेमाङ्गदाभ्यां लसन्तौ बाहू यस्य। धिष्ण्यस्थो वने प्रज्वलितः, कुण्डस्थ आहवनीय इवेति वा॥ ९॥

तुल्यैश्वर्यबलश्रीभिः स्वयूथैर्दैत्ययूथपैः।
पिबद्भिरिव खं दृग्भिर्दहद्भिः परिधीनिव॥ १०

वृतो विकर्षन् महतीमासुरीं ध्वजिनीं विभुः।
ययाविन्द्रपुरीं स्वृद्धां कम्पयन्निव रोदसी॥ ११

‘**पुरटम्**’ સુવર્ણ, ‘**तूणौ**’ બે ભાથાં, ‘**अरिक्तौ**’ ખૂટે નહીં તેટલાં બાણોવાળાં ‘**पितामहः**’ પિતામહ પ્રહ્‌લાદજી, ‘**जलजम्**’ શંખ॥ ૬॥

આમ, વિપ્રો દ્વારા જેમને યુદ્ધસામગ્રી સંપાદિત કરી આપવામાં આવી અને તે વિપ્રો દ્વારા જેમનું સ્વસ્તિવાચન કરવામાં આવ્યું, તે બલિરાજાએ વિપ્રોની પ્રદક્ષિણા કરીને પ્રણામ કર્યા અને પ્રહ્‌લાદજીની આજ્ઞા લઈ તેમને નમસ્કાર કર્યા.॥ ૭॥

વિપ્રો દ્વારા ‘**अर्जितः**’ સંપાદિત કરી આપવામાં આવી છે ‘**योधन-अर्थः**’ યુદ્ધસામગ્રી જેમને તથા તેમના જ દ્વારા ‘**कल्पितम्**’ કરવામાં આવ્યું છે ‘**स्वस्ति-अयनम्**’ સ્વસ્તિ (મંગળ) વાચન વગેરે જેમનું– ‘**आमन्त्र्य**’ આજ્ઞા લઈને॥ ૭॥

ત્યાર પછી સુંદર માળા ધારણ કરનાર, ધનુષ્ય, તલવાર અને ભાથાંઓ ધારણ કરનાર મહારથી બલિ કવચ પહેરી, ભૃગુવંશી બ્રાહ્મણોએ આપેલા દિવ્ય રથમાં આરૂઢ થઈ (શોભતા હતા).॥ ૮॥

પછી આરૂઢ થઈ શોભવા લાગ્યા, (શ્લોક-૯) એમ બે શ્લોકોનો અન્વય છે. ‘**सुस्त्रग्धरः**’ સુંદર માળા ધારણ કરનાર॥ ૮॥

સુવર્ણના બાજુબંધથી શોભતા બાહુવાળા, ઝળકતા મકરાકૃતિ કુંડળવાળા, બલિરાજા કુંડના સ્થાનમાં રહેલા અગ્નિની જેમ શોભતા હતા.॥ ૯॥

સુવર્ણના બંને બાજુબંધથી શોભતા બાહુઓ છે જેમના, ‘**धिष्ण्यस्थः**’ વનમાં પ્રજ્વલિત થયેલા અથવા કુંડમાં રહેલા આહવનીય અગ્નિની જેમ॥ ૯॥

સમાન ઐશ્વર્ય, બળ અને લક્ષ્મીવાળા તેમ જ દૃષ્ટિથી જાણે આકાશને પી જતા હોય અને દિશાઓને બાળી નાખતા હોય તેવા પોતાના સેવક તથા અસુર સેનાપતિઓ દ્વારા વીંટળાયેલા, અસુરોની મહાન સેનાને લઈ જતા તે સમર્થ બલિરાજા આકાશ અને પૃથ્વીને જાણે કમ્પાવતા હોય તેમ અત્યંત સમૃદ્ધિશાળી ઈન્દ્રપુરી તરફ ગયા.॥ ૧૦॥ ૧૧॥

तुल्यमैश्वर्यं बलं च श्रीश्च येषां तैर्दैत्ययूथपैर्वृतो ययाविति द्वयोरन्वयः। परिधीन्दिशः ॥ १० ॥

स्वृद्धामतिसमृद्धाम् ॥ ११ ॥

धिक् ग्राम्यसुखं तथा तथाविधां पुरीमकस्मादेव परित्यज्येन्द्रादयः पलायिता इति वैराग्यार्थमिन्द्रपुरीमनुवर्णयति—**रम्यामिति** सार्धैरेकादशभिः —

रम्यामुपवनोद्यानैः श्रीमद्भिर्नन्दनादिभिः।
कूजद्विहङ्गमिथुनैर्गायन्मत्तमधुव्रतैः ॥ १२
प्रवालफलपुष्पोरुभारशाखामरद्रुमैः।
हंससारसचक्राह्वकारण्डवकुलाकुलाः।
नलिन्यो यत्र क्रीडन्ति प्रमदाः सुरसेविताः ॥ १३

उपवनानि फलप्रधानानि निकटानि वा, उद्यानानि पुष्पप्रधानानि दूरस्थानि वा तैः रम्याम्। कूजन्ति विहङ्गमिथुनानि येषु। गायन्तो मत्ता मधुव्रता येषु ॥ १२ ॥

प्रवालादीनामुरुर्भारो यासु ताः शाखा येषां तेऽमरद्रुमा येषु तैः। यत्र यासु सुरसेविताः

સમાન ઐશ્વર્ય, બળ અને લક્ષ્મી છે જેમની તે અસુર સેનાપતિઓ દ્વારા વીંટળાયેલા બલિરાજા ગયા, એમ બંને શ્લોકોનો સંબંધ છે— **'परिधीन्'** દિશાઓને ॥ ૧૦ ॥

'स्वृद्धाम्' 'सु-ऋद्धाम्' અતિ સમૃદ્ધશાળી ॥ ૧૧ ॥

ભોગ્ય પદાર્થોના સુખને ધિક્કાર છે! તેવાં સુખોવાળી નગરી અચાનક જ છોડીને ઈન્દ્ર વગેરે દેવો ભાગી ગયા. (અતિપ્રયાસપૂર્વક પ્રાપ્ત કરેલા અતિસમૃદ્ધ ભોગ્ય પદાર્થો પણ નાશવંત હોવાથી દુઃખ દેનારા જ છે, આથી તેમની અભિલાષા છોડીને પરમાનંદના લાભ માટે સન્તોષ ધારણ કરી એક માત્ર ભગવાનનું જ શરણ લેવું, એવા આશયથી) વૈરાગ્ય માટે ઈન્દ્રની નગરીનું સાડા અગિયાર શ્લોકો વડે વર્ણન કરે છે— **'रम्याम् इति।'**

જેમાં હંસ, સારસ, ચક્રવાક અને બતકોનાં ઝુંડોથી ભરેલાં સરોવરો છે, દેવભોગ્યા દેવાંગનાઓ ક્રીડા કરે છે તેવાં નન્દનવન વગેરે સુંદર ઉપવનો અને ઉદ્યાનોથી, કલરવ કરતાં પક્ષીયુગલોથી, ગુંજારવ કરતા મત્ત ભમરાઓથી, કૂંપળો અને ફળ-ફૂલોનો જેમાં અતિભાર છે તેવી ડાળીઓવાળાં દેવવૃક્ષો જેમાં છે તેમનાથી સુંદર એવી ઈન્દ્રપુરી છે. ॥ ૧૨ ॥ ૧૩ ॥

'उपवनानि' ઉપવનો ફળપ્રધાન હોય છે અથવા નિકટ હોય તે બધાં ઉપવનો કહેવાય છે. **'उद्यानानि'** ઉદ્યાનો પુષ્પપ્રધાન હોય છે અથવા દૂર હોય તે ઉદ્યાનો કહેવાય છે. તે ઉપવનો અને ઉદ્યાનોથી સુંદર એવી ઈન્દ્રપુરી, જે ઉપવનો અને ઉદ્યાનોમાં પક્ષીયુગલો કલરવ કરે છે. જ્યાં મત્ત ભમરાઓ ગુંજારવ કરે છે. ॥ ૧૨ ॥

કૂંપળો વગેરેનો અતિભાર છે જેમાં તેવી ડાળીઓ છે જેમની તેવાં દેવવૃક્ષો જે ઉપવનો અને ઉદ્યાનોમાં છે, તેમનાથી સુંદર એવી ઈન્દ્રપુરી, **'यत्र'** જે સરોવરોમાં દેવભોગ્ય દેવાંગનાઓ ક્રીડા કરે છે. હંસાદિ પક્ષીઓનાં

प्रमदाः क्रीडन्ति ता हंसादिकुलैराकुला व्याप्ता नलिन्यः सरांसि यत्र येषु सन्ति तैरुपवनोद्यानै रम्यामिति पूर्वेणैवान्वयः ॥ १३ ॥

ઝુંડોથી ભરેલાં '**નલિન્યઃ**' સરોવરો છે '**યત્ર**' જેમાં, તે ઉપવનો અને ઉદ્યાનોથી સુંદર એવી ઈન્દ્રપુરી, એમ પૂર્વના શ્લોક (૧૨) સાથે જ સંબંધ છે. ॥ ૧૩ ॥

आकाशगङ्ग्या देव्या वृतां परिखभूतया ।
प्राकारेणाग्निवर्णेन साट्टालेनोन्नतेन च ॥ १४

જ્યોતિર્મય આકાશગંગા વડે ખાઈરૂપે વીંટળાયેલી, ઊંચી અટારીઓવાળા અગ્નિવર્ણા કિલ્લા વડે ચોતરફથી ઘેરાયેલી, ॥ ૧૪ ॥

रुक्मपट्टकपाटैश्च द्वारैः स्फटिकगोपुरैः ।
जुष्टां विभक्तप्रपथां विश्वकर्मविनिर्मिताम् ॥ १५

સોનાનાં પતરાંનાં બારણાંવાળાં દ્વારો અને સ્ફટિકમય નગરદ્વારોવાળી, જુદા જુદા રાજમાર્ગોવાળી ઈન્દ્રપુરી વિશ્વકર્મા દ્વારા નિર્માણ પામેલી છે. ॥ ૧૫ ॥

सभाचत्वररथ्याढ्यां विमानैर्न्यर्बुदैर्युताम् ।
शृङ्गाटकैर्मणिमयैर्वज्रविद्रुमवेदिभिः ॥ १६

સભાસ્થાનો, ચોતરા અને શેરીઓથી યુક્ત તથા મણિઓના ચોકવાળી, દસ કરોડ વિમાનોથી યુક્ત તથા હીરા અને પરવાળાંની વેદીઓવાળી (ઓટલાવાળી) ઈન્દ્રપુરી છે. ॥ ૧૬ ॥

किंच परिखाभूतया आकाशगङ्ग्या वृताम्। प्राकारेण सौवर्णेन चावृताम्। अट्टालाः प्राकारोपरि रचितान्युन्नतानि युद्धस्थानानि तत्सहितेन ॥ १४ ॥

रुक्मपट्टानि कपाटानि येषु तैर्द्वारैरवान्तरैः स्फटिकमयैर्गोपुरैश्च पुरद्वारैर्जुष्टाम्। विभक्ताः प्रपथा राजमार्गा यस्याम् ॥ १५ ॥

सभा उपवेशस्थानानि, चत्वराण्यङ्गनानि, रथ्या उपमार्गास्तैराढ्यां संपन्नाम्। न्यर्बुदं दशकोट-यस्तैर्गणनीयैरनन्तैर्विमानैर्युताम्। वज्रविद्रुममय्यो वेदयो येषु तैः। शृङ्गाटकैश्चतुष्पथैर्युताम् ॥ १६ ॥

વળી, ખાઈરૂપે આકાશગંગા વડે વીંટળાયેલી, સુવર્ણના કિલ્લા વડે ચોતરફથી ઘેરાયેલી, '**अट्टालाः**' કિલ્લા ઉપર યુદ્ધ કરવા માટે રચાયેલી ઊંચી અટારીઓ, તે અટારીઓવાળા કિલ્લાથી ઘેરાયેલી ॥ ૧૪ ॥

સોનાનાં પતરાંવાળાં બારણાં છે જેમાં તેવાં દ્વારોથી અને સ્ફટિકનાં નગરદ્વારોથી યુક્ત, જેમાં જુદા જુદા '**प्रपथाः**' રાજમાર્ગો છે. ॥ ૧૫ ॥

'**सभा**' (નાગરિકોને) બેસવા માટેનાં સ્થાનો, '**चत्वराणि**' ચોતરા, '**रथ्या**' શેરીઓ, તેમનાથી યુક્ત– '**न्यर्बुदम्**' દસ કરોડ જેટલી સંખ્યા કરવા જેટલાં અસંખ્ય વિમાનોથી યુક્ત, હીરા અને પરવાળાંની વેદીઓ (ઓટલા) છે જેમાં, તેમનાથી યુક્ત– '**शृङ्गाटकैः**' (મણિઓના) ચોક (ચાર રસ્તાઓ) વાળી ઈન્દ્રપુરી ॥ ૧૬ ॥

यत्र नित्यवयोरूपाः श्यामा विरजवाससः ।
भ्राजन्ते रूपवन्नार्यो ह्यर्चिर्भिरिव वह्नयः ॥ १७

જે નગરીમાં નિત્ય તરુણ વયની, સુકુમાર અને શુદ્ધ વસ્ત્રોવાળી રૂપવતી શ્યામા સ્ત્રીઓ, જ્વાળાઓ(રૂપી અલંકારો) વડે અગ્નિઓની જેમ જ દેદીપ્યમાન થાય છે. ॥ ૧૭ ॥

नित्यं वयस्तारुण्यं रूपं च सौकुमार्यं यासां ताः रूपवन्नार्यः स्वलंकृताः स्त्रियः यत्र यस्यां भ्राजन्ते॥ १७॥

નિત્ય **'वयः'** તરુણ વય તથા **'रूपम्'** સૌકુમાર્ય (કોમળતા) છે જેમનું તે રૂપવતી અને સુંદર રીતે અલંકૃત થયેલી નારીઓ **'यत्र'** જે નગરીમાં દેદીપ્યમાન થાય છે.॥ ૧૭॥

सुरस्त्रीकेशविभ्रष्टनवसौगन्धिकस्त्रजाम्।
यत्रामोदमुपादाय मार्ग आवाति मारुतः॥ १८

જ્યાં દેવાંગનાઓના કેશમાંથી ખરી પડેલી નવીન સુગંધિત પુષ્પમાળાઓના પરિમલને લઈને માર્ગમાં વાયુ વાય છે.॥ ૧૮॥

सुरस्त्रीणां केशेभ्यो विभ्रष्टानां नवसौगन्धिकस्त्रजामामोदम्॥ १८॥

દેવાંગનાઓના કેશમાંથી ખરી પડેલી નવીન સુગંધિત પુષ્પમાળાઓના પરિમલને॥ ૧૮॥

हेमजालाक्षनिर्गच्छद्धूमेनागुरुगन्धिना।
पाण्डुरेण प्रतिच्छन्नमार्गे यान्ति सुरप्रियाः॥ १९

સુવર્ણનાં જાળિયાંમાંથી નીકળતા, અગરની સુગંધવાળા સફેદ ધૂમાડાથી ઢંકાયેલા રાજમાર્ગમાં દેવપ્રિયા અપ્સરાઓ મહાલે છે.॥ ૧૯॥

हेमगवाक्षेभ्यो निर्गच्छता धूमेन। सुरप्रिया अप्सरसः॥ १९॥

સુવર્ણનાં જાળિયાંમાંથી નીકળતા ધૂમાડાથી– **'सुरप्रियाः'** અપ્સરાઓ॥ ૧૯॥

मुक्तावितानैर्मणिहेमकेतुभि-
र्नानापताकावलभीभिरावृताम्।
शिखण्डिपारावतभृङ्गनादितां
वैमानिकस्त्रीकलगीतमङ्गलाम्॥ २०

મોતીમય ચંદરવા, મણિજડિત સુવર્ણ ધજાઓ અને જાત જાતની પતાકાવાળાં છજાંથી છવાયેલી, મોર, પારેવાં અને ભમરાના નાદથી ગુંજતી, ભવનોમાં રહેલી સ્ત્રીઓના મધુર ગીતોથી મંગળમય એવી નગરી॥ ૨૦॥

मृदङ्गशङ्खानकदुन्दुभिस्वनैः
सतालवीणामुरजर्ष्टिवेणुभिः।
नृत्यैः सवाद्यैरुपदेवगीतकै-
र्मनोरमां स्वप्रभया जितप्रभाम्॥ २१

મૃદંગ, શંખ, ઢોલ તથા દુંદુભિના નાદથી તેમ જ તાલ સહિત વીણા, મુરજ, ઋષ્ટિ (વાદ્યવિશેષ) અને વંશી વગેરે વાદ્યોથી, નૃત્યોથી અને ગંધર્વોનાં ગીતોથી મનને આનંદ આપનારી તેમ જ પોતાની કાન્તિથી (સાક્ષાત્) કાન્તિની અધિષ્ઠાત્રી દેવીને પણ જેણે જીતી લીધી છે તેવી ઈન્દ્રપુરી॥ ૨૧॥

मुक्तामयैर्वितानैर्मणिहेममयैः केतुभिश्च ध्वजैर्नानापताकायुक्ताभिर्वलभीभिश्च विमानानां पुरोभागैरावृतां व्याप्ताम्। वैमानिकस्त्रीणां कलगीतैर्मङ्गलाम्॥ २०॥

મોતીમય ચંદરવાઓથી, મણિજડિત સુવર્ણ ધજાઓથી અને જાતજાતની પતાકાવાળાં છજાંથી, ભવનોના આગળના ભાગમાં રચાયેલાં છજાંથી છવાયેલી, ભવનોમાં રહેલી દેવાંગનાઓનાં મધુર ગીતોથી મંગળમય એવી નગરી॥ ૨૦॥

उपदेवानां गन्धर्वादीनां गीतकैश्च मनोरमाम्। जिता प्रभा साक्षाद्दीप्त्यधिष्ठात्री देवता यया ताम्। अन्यैरजितप्रभामिति वा। पाठान्तरे जिता ग्रहाः सूर्यादयो यया॥ २१॥

'**उपदेवानाम्**' ગંધર્વોનાં ગીતોથી મનોરમ, પોતાની કાંતિથી સાક્ષાત્ કાંતિની અધિષ્ઠાત્રી દેવીને પણ જેણે જીતી લીધી છે તેવી ઈન્દ્રપુરી અથવા અન્ય દ્વારા જીતી ન શકાય તેવી કાન્તિવાળી ઈન્દ્રપુરી– '**जितप्रभाम्**' ને બદલે '**जितग्रहाम्**' પાઠાંતરમાં, જિતાઈ ગયા છે સૂર્યાદિ ગ્રહો જેમનાથી તેવી ઈન્દ્રપુરી॥ ૨૧॥

यां न व्रजन्त्यधर्मिष्ठाः खला भूतद्रुहः शठाः।
मानिनः कामिनो लुब्धा एभिर्हीना व्रजन्ति यत्॥ २२

અધર્મિષ્ઠ, ખલ, પ્રાણીઓનો દ્રોહ કરનાર, શઠ, અભિમાની, કામી અને લોભીજનો જે નગરીમાં જઈ શકતા નથી, પરંતુ તે સિવાયના ઉપરના દોષોથી રહિત હોય તેઓ જ જેમાં જઈ શકે છે,॥ ૨૨॥

यत् याम्॥ २२॥

'**यत्**' જે નગરીમાં॥ ૨૨॥

तां देवधानीं स वरूथिनीपति-
र्बहिः समन्ताद् रुरुधे पृतन्यया।
आचार्यदत्तं जलजं महास्वनं
दध्मौ प्रयुञ्जन्भयमिन्द्रयोषिताम्॥ २३

અસુરસેનાપતિ એવા તે રાજા બલિએ દેવોના નિવાસસ્થાનરૂપ તે ઈન્દ્રપુરીને બહાર ચોતરફ સેના વડે ઘેરી લીધી અને ઈન્દ્રની પત્નીઓને ભય ઉપજાવતાં તેમણે શુક્રાચાર્યે આપેલો પ્રચંડ ઘોષ કરનારો શંખ વગાડ્યો.॥ ૨૩॥

पृतन्यया सेनया॥ २३॥

'**पृतन्यया**' સેના વડે॥ ૨૩॥

मघवांस्तमभिप्रेत्य बलेः परममुद्यमम्।
सर्वदेवगणोपेतो गुरुमेतदुवाच ह॥ २४

॥ २४॥

બલિરાજાનો તે મહાન ઉદ્યમ જાણીને ઈન્દ્રે સર્વ દેવગણો સાથે ગુરુ બૃહસ્પતિને આ પ્રમાણે કહ્યું:॥ ૨૪॥ ૨૪॥

भगवन्नुद्यमो भूयान्बलेर्नः पूर्ववैरिणः।
अविषह्यमिमं मन्ये केनासीत्तेजसोर्जितः॥ २५

'હે ભગવાન, અમારા પૂર્વના વેરી બલિનો ખૂબ મોટો ઉદ્યમ છે. હું માનું છું કે આ અસહ્ય છે. કયા કારણે તે આવા તેજથી બળવાન બન્યો છે ?॥ ૨૫॥

केन हेतुनैवं तेजसोर्जित आसीत्॥ २५॥

કયા કારણે આવા તેજથી બળવાન બન્યો છે ?॥ ૨૫॥

नैनं कश्चित् कुतो वापि प्रतिव्योढुमधीश्वरः।
पिबन्निव मुखेनेदं लिहन्निव दिशो दश।
दहन्निव दिशो दृग्भिः संवर्ताग्निरिवोत्थितः॥ २६

'કોઈ પણ મનુષ્ય (કે દેવ) કોઈ પણ સ્થળેથી આ બલિરાજાનો પ્રતીકાર કરવા માટે સમર્થ નથી. મુખથી આ જગતને જાણે પી જતો હોય, દશે દિશાઓને ચાટી જતો હોય તેમ જ નેત્રોથી જાણે દિશાઓને બાળતો, હોય તેમ તે પ્રલયકાળના અગ્નિની જેમ ઉદય પામ્યો છે.॥ ૨૬॥

प्रतिव्योढुमपाकर्तुम् ॥ २६ ॥

ब्रूहि कारणमेतस्य दुर्धर्षत्वस्य मद्रिपोः ।
ओजः सहो बलं तेजो यत एतत्समुद्यमः ॥ २७

यतः कारणादेतस्य ओजआदि। यत ओजआदेः एतस्य समुद्यमः ॥ २७ ॥

गुरुरुवाच

जानामि मघवञ्छत्रोरुन्नतेरस्य कारणम् ।
शिष्यायोपभृतं तेजो भृगुभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ २८

भवद्विधो भवान्वापि वर्जयित्वेश्वरं हरिम् ।
नास्य शक्तः पुरः स्थातुं कृतान्तस्य यथा जनाः ॥ २९

उपभृतं संचितम् ॥ २८ ॥ २९ ॥

तत्रोचितं मन्त्रमाह—

तस्मान्निलयमुत्सृज्य यूयं सर्वे त्रिविष्टपम् ।
यात कालं प्रतीक्षन्तो यतः शत्रोर्विपर्ययः ॥ ३०

तस्माद्यूयं त्रिविष्टपमुत्सृज्य निलयमदर्शनं यात। यतः कालात् ॥ ३० ॥

केनास्य विपर्ययः स्यादित्यत आह— **एष इति**।

एष विप्रबलोदर्कः सम्प्रत्यूर्जितविक्रमः ।
तेषामेवापमानेन सानुबन्धो विनंक्ष्यति ॥ ३१

'प्रतिव्योढुम्' પ્રતીકાર કરવા માટે ॥ ૨૬ ॥

'મારા શત્રુ બલિની આ દુ:સહતાનું કારણ મને કહો, કે જેને કારણે ઇન્દ્રિયસામર્થ્ય, અંત:કરણનું સામર્થ્ય, દેહસામર્થ્ય તથા પ્રભાવ આને પ્રાપ્ત થયાં છે, કે જેથી આનો આ મહાન ઉદ્યમ આરંભાયો છે.' ॥ ૨૭ ॥

જેને કારણે આ બલિને ઇન્દ્રિયસામર્થ્યાદિ પ્રાપ્ત થયાં છે, કે જે સામર્થ્યાદિથી આનો મહાન ઉદ્યમ આરંભાયો છે! ॥ ૨૭ ॥

ગુરુ (બૃહસ્પતિ) બોલ્યા – હે ઇન્દ્ર, આ શત્રુની ઉન્નતિનું કારણ હું જાણું છું. (અતિશય શ્રદ્ધા અને ભક્તિને કારણે) શિષ્ય બલિને બ્રહ્મવેત્તા ભૃગુવંશી બ્રાહ્મણો દ્વારા તેજ સંચિત કરી આપવામાં આવ્યું છે. જેમ મનુષ્યો કાળની સામે ઊભા રહેવા સમર્થ નથી, તેમ સર્વશક્તિમાન ઈશ્વરને છોડીને તમારા જેવો બીજો કે તમે પણ આની સામે ઊભા રહેવાને સમર્થ નથી. ॥ ૨૮ ॥ ૨૯ ॥

'उपभृतम्' સંચિત કરી આપવામાં આવ્યું છે. ॥ ૨૮ ॥ ૨૯ ॥

તે માટે યોગ્ય સલાહ આપે છે—

તેથી તમે બધા જ્યાં સુધી શત્રુની પડતી થાય ત્યાં સુધી પ્રતીક્ષા કરતા, સ્વર્ગ છોડીને ક્યાંક છુપાઈ જાઓ. ॥ ૩૦ ॥

(શત્રુ મહાબળવાન છે,) તેથી તમે સ્વર્ગ છોડીને **'निलयम्'** છુપાઈ જાઓ. જ્યાં સુધી (શત્રુની પડતી થાય ત્યાં સુધી) ॥ ૩૦ ॥

કોનાથી આ બલિની પડતી થશે એ હવે કહે છે— **'एषः इति।'**

હમણાં બ્રાહ્મણોના બળને લીધે ઉત્તરોત્તર જેને અધિક ફળ મળે છે તેવો વધી ગયેલા પરાક્રમવાળો આ બલિ તેમના જ અપમાનથી કુળપરિવાર સહિત નાશ પામશે. ॥ ૩૧ ॥

विप्राणां बलेनोदर्क उत्तरोत्तरमधिकं फलं यस्य सः ॥ ३१ ॥

બ્રાહ્મણોના બળને કારણે **'उदर्कः'** ઉત્તરોત્તર જેને અધિક ફળ મળે છે તે બલિ ॥ ૩૧ ॥

एवं सुमन्त्रितार्थास्ते गुरुणाऽर्थानुदर्शिना।
हित्वा त्रिविष्टपं जग्मुर्गीर्वाणाः कामरूपिणः॥ ३२

યથાવત્ વિચાર કરવામાં નિપુણ એવા ગુરુ દ્વારા જેમની સાથે કાર્ય વિષે સારી રીતે વિચારણા કરવામાં આવી, તેવા ઈચ્છાનુસાર રૂપ ધારણ કરનારા તે દેવો સ્વર્ગ છોડીને ચાલ્યા ગયા. ॥ ૩૨ ॥

सुमन्त्रितोऽर्थः कार्यं येषां ते। निलयं जग्मुः ॥ ३२ ॥

વિચારપૂર્વક **'अर्थः'** કરવાયોગ્ય સલાહ જેમને આપવામાં આવી તે દેવો છુપાઈ ગયા. ॥ ૩૨ ॥

देवेष्वथ निलीनेषु बलिर्वैरोचनः पुरीम्।
देवधानीमधिष्ठाय वशं निन्ये जगत्त्रयम्॥ ३३ ॥ ३३ ॥

પછી આમ, દેવો જ્યારે છુપાઈ ગયા, ત્યારે વિરોચનનંદન બલિએ દેવોની રાજધાની અમરાવતી નગરીમાં અધિષ્ઠિત થઈ ત્રણેય લોકને વશ કર્યા. ॥ ૩૩ ॥ ૩૩ ॥

तं विश्वजयिनं शिष्यं भृगवः शिष्यवत्सलाः।
शतेन हयमेधानामनुव्रतमयाजयन्॥ ३४

શિષ્યપ્રેમી ભૃગુવંશી બ્રાહ્મણોએ (પોતાને) અનુસરનારા તે વિશ્વવિજયી શિષ્ય બલિરાજા પાસે સો અશ્વમેધ યજ્ઞો કરાવ્યા. ॥ ૩૪ ॥

एवं प्राप्तमिन्द्रपदं स्थिरीकर्तुमयाजयन्। अनुव्रतमनुवर्तिनम् ॥ ३४ ॥

આમ, પ્રાપ્ત થયેલા ઈન્દ્રપદને સ્થિર કરવા માટે યજ્ઞો કરાવ્યા. **'अनुव्रतम्'** અનુસરનારા બલિરાજાને ॥ ૩૪ ॥

ततस्तदनुभावेन भुवनत्रयविश्रुताम्।
कीर्तिं दिक्षु वितन्वानः स रेज उडुराडिव॥ ३५ ॥ ३५ ॥

ત્યાર પછી તે યજ્ઞોના પ્રભાવથી ત્રણેય લોકોમાં ફેલાયેલી પોતાની કીર્તિને (દસે) દિશાઓમાં ફેલાવતા તે બલિરાજા નક્ષત્રોના રાજા ચન્દ્રમાની જેમ શોભાયમાન થયા. ॥ ૩૫ ॥ ૩૫ ॥

बुभुजे च श्रियं स्वृद्धां द्विजदेवोपलम्भिताम्।
कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यमानो महामनाः॥ ३६

તથા ઉદાર મનવાળા અને પોતે કૃતકૃત્ય થયા હોય તેમ માનતા બલિરાજા ભૂદેવો દ્વારા પ્રાપ્ત કરાવવામાં આવેલી સમૃદ્ધ રાજ્યલક્ષ્મીનો ઉપભોગ કરવા લાગ્યા. ॥ ૩૬ ॥

द्विजदेवैर्ब्राह्मणैरुपलम्भितां प्रापिताम् ॥ ३६ ॥

'द्विजदेवैः' બ્રાહ્મણદેવતાઓ દ્વારા **'उपलम्भिताम्'** પ્રાપ્ત કરાવવામાં આવેલી લક્ષ્મીને ॥ ૩૬ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

❋❋❋❋❋

अथ षोडशोऽध्यायः

કશ્યપજી દ્વારા અદિતિને પયોવ્રતનો ઉપદેશ

षोडशे पुत्रनाशेन शोचन्त्या अदितेः पतिः।
प्रार्थितः कश्यपः प्राह पयोव्रतमितीर्यते॥ १॥

(પોતાના) પુત્રો (દેવો)ના અદૃશ્ય થવાથી શોક કરતાં અદિતિ માતાના, પ્રાર્થના કરવામાં આવેલા પતિ કશ્યપ ઋષિ પયોવ્રતનો ઉપદેશ કરે છે, તે (કથા) સોળમા અધ્યાયમાં કહેવામાં આવે છે.॥ ૧॥

इदानीं श्रीवामनावतारप्रसङ्गमाह—**एवमित्यादि** यावत्समाप्ति।

હવે અધ્યાય સમાપ્ત થાય ત્યાં સુધી શ્રીવામનઅવતારના પ્રસંગને વર્ણવે છે— '**एवम् इति।**' વગેરે.

श्रीशुक उवाच

एवं पुत्रेषु नष्टेषु देवमाताऽदितिस्तदा।
हृते त्रिविष्टपे दैत्यैः पर्यतप्यदनाथवत्॥ १

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – આમ, પુત્રો અદૃશ્ય થયા ત્યારે દૈત્યો દ્વારા સ્વર્ગ લઈ લેવામાં આવ્યું, તેથી દેવમાતા અદિતિ અનાથ (અસહાય)ની જેમ સંતાપ કરવા લાગ્યાં.॥ ૧॥

नष्टेष्वदृष्टेषु सत्सु॥ १॥

'**नष्टेषु**' અદૃશ્ય થયા ત્યારે॥ ૧॥

एकदा कश्यपस्तस्या आश्रमं भगवानगात्।
निरुत्सवं निरानन्दं समाधेर्विरतश्चिरात्॥ २

॥ २॥

એક વખત ચિર સમાધિમાંથી નિવૃત્ત થયેલા ભગવાન કશ્યપ અદિતિના આનંદ-ઉત્સાહથી રહિત આશ્રમમાં ગયા.॥ ૨॥ ૨॥

स पत्नीं दीनवदनां कृतासनपरिग्रहः।
सभाजितो यथान्यायमिदमाह कुरूद्वह॥ ३

હે કુરુવંશી પરીક્ષિત, યથાયોગ્ય સત્કાર પામેલ તે કશ્યપ ઋષિએ આસન ગ્રહણ કરી ઉદાસ મુખવાળાં પત્ની અદિતિને આ પ્રમાણે કહ્યું.॥ ૩॥

स कश्यपः पत्नीमिदमाह॥ ३॥

તે કશ્યપ ઋષિએ પત્ની અદિતિને આ પ્રમાણે કહ્યું.॥ ૩॥

दीनवदनत्वादिकमालक्ष्य बहुधा विकल्पयन् पृच्छति—**अप्यभद्रमिति** सप्तभिः—

ઉદાસ મુખ વગેરે જોઈને અનેક કલ્પનાઓ કરતા ઋષિ સાત શ્લોકો વડે પૂછે છે— '**अपि-अभद्रम् इति।**'

अप्यभद्रं न विप्राणां भद्रे लोकेऽधुनाऽऽगतम्।
न धर्मस्य न लोकस्य मृत्योश्छन्दानुवर्तिनः॥ ४

હે કલ્યાણી, હમણાં જગતમાં બ્રાહ્મણોનું, ધર્મનું તેમ જ મૃત્યુની (યમની) ઈચ્છાને વશ રહેનાર લોકનું અમંગળ તો નથી થયું ને?॥ ૪॥

हे भद्रे, मृत्योश्छन्दमिच्छामनुवर्तत इति तथा, मृत्युवशवर्तिनो जनस्येत्यर्थः॥ ४॥

હે કલ્યાણી, મૃત્યુની '**छन्दम्**' ઈચ્છાને અનુસરનારા હોય તેવા, મૃત્યુને વશ રહેનારા લોકનું, એમ અર્થ છે.॥ ૪॥

अपि वाऽकुशलं किञ्चिद् गृहेषु गृहमेधिनि।
धर्मस्यार्थस्य कामस्य यत्र योगो ह्ययोगिनाम्॥ ५

હે ગૃહસ્વામિની, યોગ નહીં કરનારાઓને પણ યોગનું ફળ આપનારા તે ગૃહસ્થાશ્રમોમાં ધર્મ, અર્થ, કામનું કંઈ અમંગળ તો નથી થઈ રહ્યું ને?॥ ૫॥

हे गृहमेधिनि, अपि वा किंवा गृहेषु धर्मादेः किंचिदकुशलमिति काक्वा प्रश्नः। यत्र येषु गृहेषु। अयोगिनामपि योगः स्वधर्मादिना योगफलं भवति॥ ५॥

હે ગૃહસ્વામિની, '**अपि वा**' શું ગૃહસ્થાશ્રમોમાં ધર્મ વગેરેનું કંઈ અમંગળ તો નથી થઈ રહ્યું ને? વક્રોક્તિથી પ્રશ્ન કરે છે. '**यत्र**' જે ગૃહોમાં, યોગ નહીં કરનારાઓને પણ સ્વધર્માદિના આચરણથી '**योगः**' યોગનું ફળ મળે છે.॥ ૫॥

अपि वाऽतिथयोऽभ्येत्य कुटुम्बासक्तया त्वया।
गृहादपूजिता याताः प्रत्युत्थानेन वा क्वचित्॥ ६

કે પછી કુટુંબકબીલામાં ગળાડૂબ એવી તારા દ્વારા ક્યારેક સામે ઊભા થઈને સત્કાર ન પામેલા અતિથિઓ આવીને ઘરમાંથી ચાલ્યા તો નથી ગયા ને?॥ ૬॥

किंवा त्वया अपूजिता एवाभ्येत्य गृहाद्याताः॥ ६॥

શું તારા દ્વારા સત્કાર જ ન પામેલા અતિથિઓ આવીને ઘરમાંથી ચાલ્યા ગયા છે?॥ ૬॥

गृहेषु येष्वतिथयो नार्चिताः सलिलैरपि।
यदि निर्यान्ति ते नूनं फेरुराजगृहोपमाः॥ ७

જે ઘરોમાં અતિથિઓ પાણીથી પણ સત્કાર પામ્યા વિના જો ત્યાંથી પાછા જાય, તો તે ઘરો શિયાળની બખોલ જેવાં જ છે.॥ ૭॥

नार्चिता अनर्चिताः सन्तो यदि निर्गच्छन्ति ते गृहाः फेरुराजः श‍ृगालराजस्तदीयविवरतुल्याः॥ ७॥

'**न-अर्चिताः**' સત્કાર પામ્યા વિના જો પાછા જાય તો તે ઘરો '**फेरुराजः**' શિયાળરાજા, તેની બખોલ જેવાં જ છે.॥ ૭॥

अप्यग्नयस्तु वेलायां न हुता हविषा सति।
त्वयोद्विग्नधिया भद्रे प्रोषिते मयि कर्हिचित्॥ ८

હે કલ્યાણી, હે સતી, હું પ્રવાસે ગયો હતો ત્યારે ઉદ્વિગ્ન મનવાળી એવી તેં ક્યારેક હોમ કરવાના સમયે અગ્નિઓમાં હવિષદ્રવ્યોથી શું હોમ નથી કર્યો?॥ ૮॥

वेलायां होमकाले कर्हिचिन्न हुताः किम्॥ ८॥

'**वेलायाम्**' હોમ કરવાના સમયે ક્યારેક હોમ નથી કર્યો કે શું?॥ ૮॥

यत्पूजया कामदुघान्याति लोकान्गृहान्वितः।
ब्राह्मणोऽग्निश्च वै विष्णोः सर्वदेवात्मनो मुखम्॥ ९

॥ ९॥

જેમની પૂજાથી ગૃહસ્થ સર્વ કામનાઓને પૂર્ણ કરનારા લોકોમાં જાય છે, તે બ્રાહ્મણ અને અગ્નિ સર્વદેવમય ભગવાન વિષ્ણુનું મુખ જ છે.॥ ૯॥ ૯॥

अपि सर्वे कुशलिनस्तव पुत्रा मनस्विनि।
लक्षयेऽस्वस्थमात्मानं भवत्या लक्षणैरहम्॥ १०

भवत्या आत्मानं मनः अस्वस्थमप्रकृतिस्थं लक्षणैर्मुखम्लान्यादिभिर्लक्षयामि॥ १०॥

અસ્વસ્થ્યકારણમન્યદસ્તીતિ વક્તું

अस्वास्थ्यकारणमन्यदस्तीति वक्तुं त्वत्पृष्टमभद्रादिकं नास्तीत्याह—**भद्रमिति** द्वाभ्याम्।

अदितिरुवाच

भद्रं द्विजगवां ब्रह्मन्धर्मस्यास्य जनस्य च।
त्रिवर्गस्य परं क्षेत्रं गृहमेधिन्गृहा इमे॥ ११

इमे गृहास्त्रिवर्गस्य परं क्षेत्रमुद्भवस्थानम्। त्रिवर्गोऽपि यथावद्वर्तत इत्यर्थः॥ ११॥

अग्नयोऽतिथयो भृत्या भिक्षवो ये च लिप्सवः।
सर्वं भगवतो ब्रह्मन्ननुध्यानान्न रिष्यति॥ १२
(लभ-लब्धुम् इच्छा लिप्सा)

भगवतस्तवानुध्यानं यन्मया क्रियते तस्मादग्नयोऽतिथय इत्यादि सर्वं न रिष्यति न हीयते॥ १२॥

प्रस्तुतं विज्ञापयितुमाह—**को न्विति**।

को नु मे भगवन्कामो न सम्पद्येत मानसः।
यस्या भवान्प्रजाध्यक्ष एवं धर्मान्प्रभाषते॥ १३

॥ १३॥

संपाद्यं काममाह—**तवैवेति** चतुर्भिः।

હે ઉદાર મનવાળી, તારા સર્વ પુત્રો તો કુશળ છે ને? (મુખમ્લાનિ વગેરે) લક્ષણો ઉપરથી તારું મન અસ્વસ્થ છે, એ હું કળી શકું છું.॥ ૧૦॥

તારું '**आत्मानम्**' મન '**अस्वस्थम्**' અસ્વસ્થ છે, એ મુખમ્લાનિ વગેરે ચિહ્નો ઉપરથી હું કળી શકું છું.॥ ૧૦॥

અસ્વસ્થતાનું કારણ અન્ય છે એમ કહેવા માટે આપે પૂછ્યું તે સર્વ અમંગળ નથી, એમ બે શ્લોકો વડે કહે છે— '**भद्रम् इति।**'

અદિતિએ કહ્યું – હે ભગવાન! બ્રાહ્મણ, ગાય, ધર્મ અને આ લોકનું (સર્વ) કુશળ-મંગળ છે. હે ગૃહસ્વામી, આ ગૃહો ધર્મ, અર્થ, કામરૂપ ત્રિવર્ગનું શ્રેષ્ઠ ઉદ્‌ભવસ્થાન છે.॥ ૧૧॥

આ ગૃહો ત્રિવર્ગનું શ્રેષ્ઠ ઉદ્‌ભવસ્થાન છે. ધર્મ, અર્થ, કામરૂપ ત્રિવર્ગ પણ યથાયોગ્ય રીતે છે, એમ અર્થ છે.॥ ૧૧॥

હે ભગવાન, અગ્નિઓ, અતિથિઓ, સેવકો તથા મેળવવાની ઈચ્છાવાળા જે ભિક્ષુઓ છે, તે સર્વ (આપ) ભગવાનના નિરંતર ધ્યાનથી તિરસ્કૃત નથી થયા.॥ ૧૨॥

આપ ભગવાનનું નિરંતર ધ્યાન, કે જે મારા દ્વારા કરવામાં આવે છે, તેને કારણે અગ્નિઓ, અથિતિઓ વગેરે સર્વ '**न रिष्यति**' તિરસ્કૃત (ન્યૂન) નથી થયા.॥ ૧૨॥

પ્રસ્તુત વિષયનું સૂચન કરવા માટે કહે છે— '**कः नु इति।**'

હે ભગવાન, પ્રજાપતિ એવા આપ જેને આ રીતે ધર્મનો ઉપદેશ આપો છો, તેવી મારી કઈ મનઃકામના પૂર્ણ ન થાય?॥ ૧૩॥ ૧૩॥

સંપન્ન કરવા યોગ્ય ઈચ્છાનું ચાર શ્લોક વડે વર્ણન કરે છે— '**तव-एव-इति।**'

तवैव मारीच मनःशरीरजाः
प्रजा इमाः सत्त्वरजस्तमोजुषः।
समो भवांस्तास्वसुरादिषु प्रभो
तथापि भक्तं भजते महेश्वरः॥ १४
॥ १४ ॥

હે મરીચિનંદન! સત્ત્વગુણ, રજોગુણ અને તમોગુણનું સેવન કરતી આ પ્રજાઓ આપના જ મન અને શરીરમાંથી ઉત્પન્ન થયેલી છે અને તેથી આપ તે અસુરો વગેરે ઉપર (પણ) સમાન ભાવવાળા છો, તેમ છતાં પણ હે પ્રભુ, (સૃષ્ટિ વગેરેના કર્તા) પરમેશ્વર પોતાના ભક્તનો (જ) મનોરથ પૂર્ણ કરે છે.॥ ૧૪॥ ૧૪॥

तस्मादीश भजन्त्या मे श्रेयश्चिन्तय सुव्रत।
हृतश्रियो हृतस्थानान्सपत्नैः पाहि नः प्रभो॥ १५

તેથી સર્વસમર્થ, શ્રેષ્ઠ વ્રતધારી હે સ્વામી, આપની સેવા કરતી એવી મારું કલ્યાણ વિચારો. શત્રુઓ દ્વારા જેમની લક્ષ્મી હરી લેવામાં આવી છે અને જેમનાં રહેવાનાં સ્થાનો પણ હરી લેવામાં આવ્યાં છે તેવાં અમારું રક્ષણ કરો॥ ૧૫॥

सपत्नैर्दैत्यैर्हृता श्रीर्येषाम्। हृतं स्थानं येषामिति पुत्राभिप्रायेण बहुवचनम्॥ १५ ॥

'सपत्नैः' શત્રુ એવા દૈત્યો દ્વારા હરી લેવામાં આવી છે લક્ષ્મી જેમની, હરી લેવામાં આવ્યું છે સ્થાન જેમનું– પુત્રોના અભિપ્રાયથી બહુવચનનો ('નઃ') પ્રયોગ છે.॥ ૧૫॥

परैर्विवासिता साहं मग्ना व्यसनसागरे।
ऐश्वर्यं श्रीर्यशः स्थानं हृतानि प्रबलैर्मम॥ १६
॥ १६ ॥

શત્રુઓ દ્વારા હાંકી કાઢવામાં આવેલી તે હું દુઃખના દરિયામાં ડૂબી ગઈ છું. મહાબળવાન શત્રુઓ દ્વારા મારું ઐશ્વર્ય, શ્રી, યશ અને સ્થાન હરી લેવામાં આવ્યાં છે.॥ ૧૬॥ ૧૬॥

यथा तानि पुनः साधो प्रपद्येरन् ममात्मजाः।
तथा विधेहि कल्याणं धिया कल्याणकृत्तम॥ १७
॥ १७ ॥

શ્રેષ્ઠ કલ્યાણ કરનાર હે સાધુપુરુષ, મારા પુત્રો તે સર્વ પદાર્થોને જે રીતે પુનઃ પ્રાપ્ત કરે તે રીતે વિચારીને આપ અમારું કલ્યાણ કરો!॥ ૧૭॥ ૧૭॥

श्रीशुक उवाच

एवमभ्यर्थितोऽदित्या कस्तामाह स्मयन्निव।
अहो मायाबलं विष्णोः स्नेहबद्धमिदं जगत्॥ १८

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – અદિતિ દ્વારા આ પ્રમાણે પ્રાર્થના કરાયેલા પ્રજાપતિ કશ્યપ ઋષિ હસતા હોય તેમ તેને કહેવા લાગ્યા, 'અહો! ભગવાનની માયાનું કેવું બળ છે? આ જગત સ્નેહ(ના દોરડા)થી બંધાયેલું છે.'॥ ૧૮॥

कः कश्यपः। प्रथमं तावत्पुत्रस्नेहं त्याजयितुं विस्मयव्याजेनैव तत्त्वमुपदिशति— अहो इति सार्धेन॥ १८॥

'कः' પ્રજાપતિ કશ્યપ ઋષિ– તેથી પહેલાં તો પુત્રસ્નેહ છોડાવવા માટે આશ્ચર્ય પ્રકટ કરવાના બહાને જ અદિતિને દોઢ શ્લોકો વડે તત્ત્વનો ઉપદેશ કરે છે— **'अहो इति।'**॥ ૧૮॥

क्व देहो भौतिकोऽनात्मा क्व चात्मा प्रकृतेः परः।
कस्य के पतिपुत्राद्या मोह एव हि कारणम्॥ १९

॥ १९ ॥

पंचमहाभूतोथी बनेलुं जड शरीर क्यां अने प्रकृतिथी पर आत्मा क्यां? कोण कोना पति के पुत्रादि छे? (आ सर्वमां) खरेखर, मोह ज कारण छे.॥ १९ ॥ १९ ॥ (विषम अलंकार)

अत्रापरितुष्यन्तीं प्रत्याह—**उपतिष्ठस्वेति** द्वाभ्याम्।

અહીં અસંતોષ પ્રકટ કરતી અદિતિને બે શ્લોકોથી કહે છે— **'उपतिष्ठस्व'**

उपतिष्ठस्व पुरुषं भगवन्तं जनार्दनम्।
सर्वभूतगुहावासं वासुदेवं जगद्गुरुम्॥ २०

॥ २० ॥

સમગ્ર પ્રાણીઓની હૃદયગુહામાં વિરાજમાન અને (પોતાના ભક્તોનાં દુઃખ દૂર કરનારા) જનાર્દન, જગદ્‌ગુરુ, પરમ પુરુષ, ભગવાન વાસુદેવની તમે આરાધના કરો.॥ ૨૦ ॥ ૨૦ ॥

बा.प्र.—जनाम् मायाम् अर्दयति निवर्तयति इति जनार्दनः।

માયાને દૂર કરે તે જનાર્દન

वंशीधरी—जननाम्नोऽसुरस्यार्दनम्।

જન નામના અસુરને મારનાર

स विधास्यति ते कामान्हरिर्दीनानुकम्पनः।
अमोघा भगवद्भक्तिर्नेतरेति मतिर्मम॥ २१

પોતાના અભિમાનરહિત ભક્તો ઉપર અનુકમ્પા કરનારા શ્રીહરિ તારી કામનાઓ પૂરી કરશે. ભગવાન શ્રીહરિની ભક્તિ (ક્યારેય) નિષ્ફળ જતી નથી (અને) અન્ય દેવોની સેવા સફળ થતી નથી, એવું મારું માનવું છે.॥ ૨૧ ॥

नन्वेवंभूतकामप्राप्तिहेतुर्देवान्तरसेवा प्रसिद्धा तत्राह—**अमोघेति**॥ २१ ॥

શંકા કરવામાં આવી છે કે આવી કામનાઓની પ્રાપ્તિ માટે અન્ય દેવોની સેવા પ્રસિદ્ધ છે. તે માટે કહે છે— **'अमोघा इति।'**॥ ૨૧ ॥

अदितिरुवाच

केनाहं विधिना ब्रह्मन्नुपस्थास्ये जगत्पतिम्।
यथा मे सत्यसङ्कल्पो विदध्यात् स मनोरथम्॥ २२

અદિતિ બોલ્યાં – હે ભગવાન, કયા વિધિથી હું જગત્પતિની ઉપાસના કરું, કે જેથી સત્યસંકલ્પ એવા તે ભગવાન મારો મનોરથ પૂર્ણ કરે?॥ ૨૨ ॥

यथा च मे मनोरथं विदध्यात्॥ २२॥

કે જેથી તે મારો મનોરથ પૂર્ણ કરે.॥ ૨૨ ॥

आदिश त्वं द्विजश्रेष्ठ विधिं तदुपधावनम्।
आशु तुष्यति मे देवः सीदन्त्याः सह पुत्रकैः॥ २३

હે બ્રાહ્મણશ્રેષ્ઠ, પુત્રો સાથે દુઃખી થતી એવી મારા ઉપર (તે) શીઘ્ર પ્રસન્ન થાય તેવો આરાધનાવિષયક વિધિ આપ મને કહો.॥ ૨૩ ॥

यथा च मे आशु तुष्यति तथा तत्सेवाप्रकारमादिश॥ २३ ॥

તે જે રીતે મારી ઉપર શીઘ્ર પ્રસન્ન થાય તેવો સેવાપ્રકાર મને કહો.॥ ૨૩ ॥

कश्यप उवाच

एतन्मे भगवान्पृष्टः प्रजाकामस्य पद्मजः।
यदाह ते प्रवक्ष्यामि व्रतं केशवतोषणम्॥ २४

કશ્યપ (ઋષિ) બોલ્યા – સંતાનની ઈચ્છાવાળા એવા મારા વડે જેમને પૂછવામાં આવ્યું હતું, તે ભગવાન બ્રહ્માજીએ ભગવાન કેશવને પ્રસન્ન કરનારું જે વ્રત મને કહ્યું હતું, તે તમને કહું છું.॥ ૨૪ ॥

मे मया पृष्टः पद्मजो मे तद्व्रतमाह एतत्ते तव प्रवक्ष्यामीत्यन्वयः ॥ २४ ॥

'मे' મારા દ્વારા જેમને પૂછવામાં આવ્યું હતું તે બ્રહ્માજીએ મને તે વ્રત કહ્યું હતું, એ તમને કહીશ (કહું છું), એમ અન્વય છે. ॥ ૨૪ ॥

फाल्गुनस्यामले पक्षे द्वादशाहं पयोव्रतः ।
अर्चयेदरविन्दाक्षं भक्त्या परमयाऽन्वितः ॥ २५

ફાગણ મહિનાના શુક્લ પક્ષમાં બાર દિવસ સુધી (પડવાથી દ્વાદશી પર્યન્ત) પયોવ્રત કરનારા મનુષ્યે (તેમાં) પરમ ભક્તિયુક્ત થઈ ભગવાન કમળનયનનું પૂજન કરવું જોઈએ. ॥ ૨૫ ॥

अमले शुक्ले ॥ २५ ॥

'अमले' શુક્લ પક્ષમાં ॥ ૨૫ ॥

तत्रादौ पूर्वेद्युःकृत्यमाह—**सिनीवाल्या-मित्यादिना** ब्रह्मचार्यथ तद्रात्र्यामित्यन्तेन ग्रन्थेन ।

તેમાં પ્રથમ આગલા દિવસે કરવાનું કાર્ય જણાવે છે— **'सिनीवाल्याम्'** વગેરે દ્વારા. 'તે રાત્રે બ્રહ્મચારી રહેવું.' (જુઓ શ્લોક-૪૪) ત્યાં સુધીના ગ્રંથ દ્વારા

सिनीवाल्यां मृदाऽऽलिप्य स्नायात् क्रोडविदीर्णया ।
यदि लभ्येत वै स्त्रोतस्येतं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ २६

અમાસના દિવસે જો મળે તો ભૂંડે ખોતરેલી માટીથી (શરીરે) લેપન કરી નદીમાં (પ્રવાહમાં) સ્નાન કરવું અને આ મંત્ર બોલવો જોઈએ. ॥ ૨૬ ॥

यदि लभ्येत तर्हि क्रोडविदीर्णया वन्यवराहोत्खातया आलिप्य ॥ २६ ॥

જો મળે તો **'क्रोडविदीर्णया'** જંગલી ભૂંડે ખોતરેલી (માટીથી શરીરે) લેપન કરીને ॥ ૨૬ ॥

वंशीधरी—सिनीवाल्यां दृष्टचन्द्रायाममायामर्था-च्चतुर्दशीयुक्तामायामित्यायातम् ।

સિનીવાલી અમાસ હોય ત્યારે ચન્દ્ર દેખાય તેવી અમાસે અર્થાત્ ચતુર્દશીથી યુક્ત અમાસ આવે ત્યારે

स्त्रोतसि स्वतो निस्सृताम्बुसरआदौ ।

સ્વયં નીકળેલા જળવાળા સરોવર વગેરેમાં

तत्र मन्त्रः—**त्वं देवीति** ।

તે માટેનો મંત્ર— **'त्वं देवि इति ।**

त्वं देव्यादिवराहेण रसायाः स्थानमिच्छता ।
उद्धृतासि नमस्तुभ्यं पाप्मानं मे प्रणाशय ॥ २७

હે પૃથ્વીદેવી, (પ્રાણીમાત્રના) સ્થાનને ઈચ્છતા આદિવરાહ દ્વારા આપનો રસાતળમાંથી ઉદ્ધાર કરવામાં આવ્યો છે. આપને નમસ્કાર. આપ મારાં પાપોનો નાશ કરો. ॥ ૨૭ ॥

हे देवि, त्वं रसाया उद्धृतासि ॥ २७ ॥

હે પૃથ્વીદેવી, આપનો રસાતળમાંથી ઉદ્ધાર કરવામાં આવ્યો છે. ॥ ૨૭ ॥

निर्वर्तितात्मनियमो देवमर्चेत् समाहितः ।
अर्चायां स्थण्डिले सूर्ये जले वह्नौ गुरावपि ॥ २८

પોતાના નિત્ય અને નૈમિત્તિક નિયમો પૂરા કરી એકાગ્રચિત્ત થઈ મૂર્તિ, ભૂમિ, સૂર્ય, જળ, અગ્નિ અને ગુરુમાં પણ ભગવાનનું પૂજન કરવું. ॥ ૨૮ ॥

निर्वर्तित आत्मनियमो नित्यनैमित्तिको येन ॥ २८ ॥

પૂરા કર્યા છે પોતાના નિત્ય અને નૈમિત્તિક નિયમો જેણે ॥ ૨૮ ॥

तत्रावाहनादौ नवमन्त्रानाह—**नमस्तुभ्यमिति** ।

તેમાં સૌ પ્રથમ આવાહન વગેરેમાં નવ મન્ત્રો કહે છે— **'नमस्तुभ्यं इति ।'**

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महीयसे।
सर्वभूतनिवासाय वासुदेवाय साक्षिणे॥ २९

સર્વ પ્રાણીઓમાં નિવાસ કરનાર, સાક્ષાત્ દ્રષ્ટા, ઐશ્વર્યાદિ ગુણોથી પૂર્ણ, સર્વથી મહાન, વસુદેવનંદન, પુરુષોત્તમ એવા આપને નમસ્કાર હો.॥ ૨૯ ॥

पाद्यादौ विशेषतस्तु द्वादशाक्षरं वक्ष्यति ॥ २९ ॥ *'**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।**'

પાદ્ય (અર્ઘ્ય, આચમનીય, સ્નાન, ગંધ, પુષ્પ, ધૂપ, દીપ, નૈવેદ્ય) માટે *દ્વાદશાક્ષર મંત્ર ૐકારસ્વરૂપ ભગવાન વાસુદેવને નમસ્કાર વિશેષરૂપે કહેશે.॥ ૨૯ ॥

नमोऽव्यक्ताय सूक्ष्माय प्रधानपुरुषाय च।
चतुर्विंशद्गुणज्ञाय गुणसंख्यानहेतवे॥ ३०

ચક્ષુ વગેરે ઈન્દ્રિયોથી દેખાય નહીં તેવા, અત્યંત સૂક્ષ્મ, ચોવીસ તત્ત્વોને જાણનારા, સાંખ્યશાસ્ત્રના પ્રવર્તક, પ્રકૃતિના પ્રવર્તક પુરુષને નમસ્કાર.॥ ૩૦ ॥

चतुर्विंशतिगुणास्तत्त्वानि जानातीति तथा तस्मै। गुणसंख्यानस्य हेतवे सांख्यप्रवर्तकाय॥ ३० ॥

ચોવીસ '**गुणाः**' તત્ત્વોને જાણે છે તેવા તેમને (નમસ્કાર). '**गुणसंख्यानहेतवे**' સાંખ્યશાસ્ત્રના પ્રવર્તકને નમસ્કાર.॥ ૩૦ ॥

एवं सामान्यतो नत्वा गुणावतारान्प्रणमति त्रिभिः—तत्रादौ मन्त्रोक्तयज्ञरूपेण विष्णोः प्रणामो नम इति।

આમ, સામાન્ય રીતે નમન કરીને (બ્રહ્મા, વિષ્ણુ, રુદ્રરૂપ) ગુણાવતારને ત્રણ શ્લોક વડે પ્રણામ કરે છે– તે અવતારોમાં પ્રથમ આ મંત્રમાં કહેલા યજ્ઞસ્વરૂપ વિષ્ણુને પ્રણામ કરે છે— '**नमः इति।**'

नमो द्विशीर्ष्णे त्रिपदे चतुःश्रृङ्गाय तन्तवे।
सप्तहस्ताय यज्ञाय त्रयीविद्यात्मने नमः॥ ३१

(પ્રાયણીય અને ઉદયનીય કર્મો) બે મસ્તકો છે જેમનાં, (પ્રાતઃસવન, મધ્યાહ્નસવન અને સાયંસવન– એ) ત્રણ ચરણ છે જેમના, (ઋગ્વેદ, યજુર્વેદ, સામવેદ અને અથર્વવેદ– એ) ચાર શૃંગો છે જેમનાં, (ગાયત્રી, ત્રિષ્ટુપ્, અનુષ્ટુપ, બૃહતી, જગતી, પંક્તિ અને ઉષ્ણિક્– એમ) સાત હાથ છે જેમના તથા ત્રણેય વેદવિદ્યામાં દર્શાવવામાં આવેલું સ્વરૂપ છે જેમનું, તે યજ્ઞસ્વરૂપ તેમ જ યજ્ઞફળનો વિસ્તાર કરનારને નમસ્કાર હો.॥ ૩૧ ॥

द्वे शीर्षे यस्य। त्रयः पादा यस्य। तन्तवे फलविस्तारकाय। त्रय्यां विद्यायामात्मा यस्येति 'त्रिधा बद्धः' इत्यस्यार्थ उक्तः। तथा च मन्त्रः —

બે મસ્તકો છે જેમનાં, ત્રણ ચરણ છે જેમના, '**तन्तवे**' ફળનો વિસ્તાર કરનારને પ્રણામ. વેદત્રયીરૂપ વિદ્યામાં દર્શાવેલું સ્વરૂપ છે જેમનું એ રીતે '**त्रिधा बद्धः**' આનો અર્થ કહેવામાં આવ્યો છે. તે અનુસાર મંત્ર છે—

'चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।

त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आविवेश।' इति।

'(પરમેશ્વર પ્રણવ વડે જાણવાયોગ્ય હોવાથી **अ, उ, म्** અને અર્ધમાત્રા– એમ) ચાર શિંગડાં છે જેમનાં, (વિશ્વ, તૈજસ, પ્રાજ્ઞ એમ ત્રણ અવસ્થાના અભિમાની આત્મારૂપ આધ્યાત્મિક તેમ જ વિરાટ, હિરણ્યગર્ભ અને અવ્યાકૃત– એમ આધિદૈવિક) ત્રણ ચરણ છે જેમના, (ચેતન અને અચેતનવર્ગ– એમ) બે મસ્તકો છે જેમનાં, (ભૂઃ, ભુવઃ વગેરે) સાત લોક હસ્ત છે જેમના તથા (**अ** કાર, **उ** કાર **म** કાર તથા વિશ્વ, તૈજસ, પ્રાજ્ઞ તેમ જ વિરાટ, હિરણ્યગર્ભ, અવ્યાકૃત– એમ) ત્રણ રૂપે બદ્ધ થઈ બ્રહ્મતત્ત્વનું પ્રતિપાદન કરે છે, તે વૃષભરૂપ મહાદેવ મનુષ્યશરીરોમાં પ્રવેશેલા છે.' (ઋ.સં. ૪/૫૮/૩, વાજસનેયી સં ૧૭/૯૧, નિરુક્ત ૧૩/૧/૭)

मार्गमुद्गवदालूनः सोऽयं प्राज्ञैर्यथायथम्।
विष्णुस्तु यज्ञरूपेण स्तूयतेऽनेन तत्त्वतः॥'
इति।

'પ્રવૃત્તિમાર્ગમાં પ્રમુદિત થનારા વિદ્વાનોથી ન જાણી શકાય તેવા આ વિષ્ણુ ભગવાન આ શ્લોકથી યજ્ઞસ્વરૂપે યથાયોગ્ય તત્ત્વતઃ આરાધિત થાય છે.'

तथा च यास्कः —'चत्वारि शृङ्गेति वेदा वा एत उक्तास्त्रयोऽस्य पादाः सवनानि त्रीणि द्वे शीर्षे प्रायणीयोदयनीये सप्तहस्तासः सप्त–च्छन्दांसि त्रिधा बद्धस्त्रेधा बद्धो मन्त्रब्राह्मण–कल्पैर्वृषभो रोरवीति रोरवणमस्य सवनक्रमेण

તે અનુસાર યાસ્ક મુનિ કહે છે— ('**चत्वारि शृंगा**' એ મંત્ર દ્વારા તાત્ત્વિક રીતે ભગવાન વિષ્ણુની યજ્ઞરૂપે સ્તુતિ કરવામાં આવી છે.) ચાર શિંગડાં એ શબ્દો દ્વારા આ ચાર વેદ કહેવાયા છે. આ મહાન દેવના ત્રણ ચરણ છે, એ શબ્દો દ્વારા ત્રણ સવનનો નિર્દેશ કરવામાં આવ્યો છે. આ મંત્રમાં બે મસ્તક, એ શબ્દો દ્વારા પ્રાયણીય (સોમયાગનું પ્રારંભિક કર્મ) અને ઉદયનીય (વિધિનું સમાપ્તિકરણ) એ બંનેનો નિર્દેશ કરેલો છે. મંત્રના '**सप्तहस्तासः**' એ શબ્દથી સાત છંદોનો નિર્દેશ કરેલો છે. એ મંત્રના '**त्रिधाबद्धः**' શબ્દોથી યજ્ઞરૂપી વૃષભ ત્રણ રીતે બંધાયેલો છે; મંત્ર, બ્રાહ્મણ અને કલ્પ દ્વારા એ સુનિશ્ચિત રીતે બંધાયેલો છે. એવો યજ્ઞરૂપી વૃષભ અત્યંત ગર્જના કરે છે. આના સવનના ક્રમ પ્રમાણે ગર્જના કરે છે, પ્રાતઃસવનમાં ઋગ્વેદના મંત્રોથી, મધ્યાહ્નસવનમાં યજુર્વેદના મંત્રોથી અને સાયંસવનમાં

ऋग्भिर्यजुर्भिः सामभिर्यदेनमृग्भिः शंसन्ति यजुर्भिर्यजन्ति सामभिः स्तुवन्ति महो देव इत्येष हि महान्देवो यद्यज्ञो मर्त्यां आविवेशेत्येष हि मनुष्यानाविशति यजनाय' इति॥ ३१ ॥

સામવેદના મંત્રોથી યજન કરવામાં આવે છે. ઋગ્વેદના મંત્રોથી '**शंसन्ति**' પ્રશંસા કરે છે, યજુર્વેદના મંત્રોથી યજન કરે છે અને સામવેદના મંત્રોથી સ્તુતિ કરે છે. '**महो देव**' એટલે કે મહાન દેવ કે જે યજ્ઞ છે તે યજ્ઞ મનુષ્યોમાં પ્રવેશે છે, કે જેથી યજન કરી શકાય. ॥ ૩૧ ॥

नमः शिवाय रुद्राय नमः शक्तिधराय च।
सर्वविद्याधिपतये भूतानां पतये नमः॥ ३२ ॥ ३२ ॥

(પુણ્યશાળીઓને શુભ ફળ આપનાર) શિવસ્વરૂપ, (દુષ્કર્મો કરનારાઓને રડાવનાર) રુદ્રસ્વરૂપ, (ઉમાદેવીરૂપ અથવા ત્રણ ગુણોરૂપ) શક્તિને ધારણ કરનાર, સર્વ વિદ્યાઓના અધિપતિ અને સમસ્ત પ્રાણીઓના પતિને નમસ્કાર. ॥ ૩૨ ॥ ૩૨ ॥

नमो हिरण्यगर्भाय प्राणाय जगदात्मने।
योगैश्वर्यशरीराय नमस्ते योगहेतवे॥ ३३

જેમના ગર્ભમાં (સ્વરૂપમાં) બ્રહ્માંડ છે, જે જગતના આત્મા (નિયંતા) છે, જે (પ્રાણસ્વરૂપ) સૂત્રાત્મા છે, (ભગવદ્ધ્યાનરૂપ) યોગનું ઐશ્વર્ય જેમનું સ્વરૂપ છે તથા જે યોગના પ્રવર્તક છે તે આપને નમસ્કાર. ॥ ૩૩ ॥

प्राणाय सूत्रात्मने। योगैश्वर्यं शरीरं यस्य ॥ ३३ ॥

'**प्राणाय**' સૂત્રાત્માને નમસ્કાર. (ભગવદ્ધ્યાનરૂપ) યોગનું ઐશ્વર્ય જેમનું શરીર છે. ॥ ૩૩ ॥

वीर.—प्राणायति सर्वाणि भूतानीति प्राणः तस्मै प्राणशरीरकत्वाद्वा प्राणः।

પ્રાણીમાત્રને જીવાડે છે તે પ્રાણ, તેને નમસ્કાર અથવા પ્રાણ જેમનું સ્વરૂપ હોવાથી જે પ્રાણરૂપ છે તેમને નમસ્કાર.

नमस्त आदिदेवाय साक्षिभूताय ते नमः।
नारायणाय ऋषये नराय हरये नमः॥ ३४ ॥ ३४ ॥

બ્રહ્માદિના કારણરૂપ (હોવાથી સકળ જગતના પૂજ્ય એવા) આપને નમસ્કાર, (ઉપાદાનરૂપે સર્વત્ર પ્રવિષ્ટ હોવાથી શુભ અને અશુભના) દ્રષ્ટા આપને નમસ્કાર, નરનારાયણ ઋષિને નમસ્કાર. દુઃખ હરી લેવાનો સ્વભાવ છે જેમનો તે આપને નમસ્કાર. ॥ ૩૪ ॥ ૩૪ ॥

नमो मरकतश्यामवपुषेऽधिगतश्रिये।
केशवाय नमस्तुभ्यं नमस्ते पीतवाससे॥ ३५

મરકતમણિ જેવા શ્યામસ્વરૂપને નમસ્કાર, જેમણે શ્રીદેવીને પ્રાપ્ત કર્યાં છે તેમને નમસ્કાર, પીતાંબરધારી કેશવ એવા આપને નમસ્કાર. ॥ ૩૫ ॥

अधिगता प्राप्ता श्रीर्यस्य तस्मै॥ ३५ ॥

'**अधिगता**' પ્રાપ્ત કર્યાં છે શ્રીલક્ષ્મીદેવી જેમણે તેમને નમસ્કાર. ॥ ૩૫ ॥

त्वं सर्ववरदः पुंसां वरेण्य वरदर्षभ।
अतस्ते श्रेयसे धीराः पादरेणुमुपासते॥ ३६ ॥ ३६ ॥

હે વરેણ્ય (વરણ કરવા યોગ્ય), હે વરદશ્રેષ્ઠ, આપ મનુષ્યોને સર્વ વરદાન આપનારા છો, આથી વિવેકીજનો કલ્યાણ માટે આપની ચરણરજની ઉપાસના કરે છે. ॥ ૩૬ ॥ ૩૬ ॥

अन्ववर्तन्त यं देवाः श्रीश्च तत्पादपद्मयोः।
स्पृहयन्त इवामोदं भगवान्मे प्रसीदताम्॥ ३७

(સર્વ) દેવો અને (સ્વયં) લક્ષ્મીજી પણ તે ચરણપદ્મોની સૌરભની સ્પૃહા કરતા હોય તેમ જેમની સેવા કરે છે, તે ભગવાન મારા ઉપર પ્રસન્ન થાઓ! ॥ ૩૭ ॥

तत्पादपद्मयोरामोदं स्पृहयन्त इव देवाश्च श्रीश्च यमन्ववर्तन्त स मे प्रसीदतु॥ ३७॥

તે બંને ચરણકમળોની સૌરભની સ્પૃહા કરતા હોય તેમ દેવો અને લક્ષ્મીજી પણ જેમની સેવા કરે છે તે મારા ઉપર પ્રસન્ન થાઓ! ॥ ૩૭ ॥

एतैर्मन्त्रैर्हृषीकेशमावाहनपुरस्कृतम् ।
अर्चयेच्छ्रद्धया युक्तः पाद्योपस्पर्शनादिभिः॥ ३८

આ મંત્રો દ્વારા આવાહનમાં સન્માનિત કરવામાં આવેલા ભગવાન હૃષીકેશનું શ્રદ્ધાયુક્ત થઈ પાદ્ય, આચમન વગેરે દ્વારા પૂજન કરવું. ॥ ૩૮ ॥

आवाहने पुरस्कृतं संमानितम्॥ ३८॥

આવાહનમાં '**पुरस्कृतम्**' સન્માનિત કરવામાં આવેલા ભગવાન હૃષીકેશનું ॥ ૩૮ ॥

अर्चित्वा गन्धमाल्याद्यैः पयसा स्नपयेद् विभुम्।
वस्त्रोपवीताभरणपाद्योपस्पर्शनैस्ततः ।
गन्धधूपादिभिश्चार्चेद् द्वादशाक्षरविद्यया॥ ३९ ॥ ३९ ॥

ચંદન, પુષ્પો વગેરેથી પ્રભુનું પૂજન કરી દૂધથી સ્નાન કરાવવું અને પછી દ્વાદશાક્ષર મંત્રના ઉચ્ચારણપૂર્વક વસ્ત્ર, ઉપવીત, અલંકાર, પાદ્ય, આચમન, ચંદન, ધૂપ વગેરેથી પૂજા કરવી. ॥ ૩૯ ॥ ૩૯ ॥

शृतं पयसि नैवेद्यं शाल्यन्नं विभवे सति।
ससर्पिः सगुडं दत्त्वा जुहुयान्मूलविद्यया॥ ४०

સામર્થ્ય હોય તો દૂધમાં રાંધેલો ભાત તથા ઘી અને ગોળ સહિત ભાતનું નૈવેદ્ય ધરાવી દ્વાદશાક્ષર મંત્રથી તેનું હવન કરવું. ॥ ૪૦ ॥

पयसि शृतं पक्वं पायसम्। मूलविद्यया द्वादशाक्षरेणैव॥ ४०॥

દૂધમાં '**शृतम्**' રાંધેલો ભાત (પાયસ), '**मूलविद्यया**' દ્વાદશાક્ષર મંત્રથી ॥ ૪૦ ॥ (**सर्पिष्** નપું.-ઘી)

निवेदितं तद् भक्ताय दद्याद् भुञ्जीत वा स्वयम्।
दत्त्वाऽऽचमनमर्चित्वा ताम्बूलं च निवेदयेत्॥ ४१ ॥ ४१ ॥

ધરાવેલું નૈવેદ્ય હોય તે ભક્તોને આપવું અને પોતે પણ જમવું. આચમન કરાવી, પૂજન કરીને તાંબૂલ ધરાવવું. ॥ ૪૧ ॥ ૪૧ ॥

जपेदष्टोत्तरशतं स्तुवीत स्तुतिभिः प्रभुम्।
कृत्वा प्रदक्षिणं भूमौ प्रणमेद् दण्डवन्मुदा॥ ४२

(દ્વાદશાક્ષર મંત્રના) એકસો આઠ જપ કરવા. (પૂર્વોક્ત અને અન્ય) સ્તુતિઓ દ્વારા પ્રભુનું સ્તવન કરવું અને પ્રદક્ષિણા કરીને હર્ષપૂર્વક ભૂમિ ઉપર દંડવત્ પ્રણામ કરવા. ॥ ૪૨ ॥

पूर्वोक्ताभिरन्याभिश्च स्तुतिभिः ॥ ४२ ॥

कृत्वा शिरसि तच्छेषां देवमुद्वासयेत् ततः ।
द्व्यवरान्भोजयेद् विप्रान्पायसेन यथोचितम् ॥ ४३

તસ્ય શેષાં નિર્માલ્યમ્। દ્વાવવરૌ યેષાં તાન્। અસંભવે દ્વાવપિ ભોજયેદિત્યર્થઃ ॥ ४३ ॥

पूर्वोक्त અને અન્ય સ્તુતિઓ દ્વારા ॥ ૪૨ ॥

તેમનું (પુષ્પાદિ) નિર્માલ્ય મસ્તક ઉપર ચડાવી ભગવાનનું વિસર્જન કરવું અને પછી ઓછામાં ઓછા બે વિપ્રોને યથોચિત રીતે પાયસ (દૂધપાક)નું ભોજન કરાવવું. ॥ ૪૩ ॥

તે દેવનું '**શેષામ્**' નિર્માલ્ય (મસ્તક ઉપર ચડાવીને)– ઓછામાં ઓછા જેમાં બે છે તેમને, બેથી વધુ સંભવિત ન હોય તો બે તો જમાડવા જ, એમ અર્થ છે. ॥ ૪૩ ॥

भुञ्जीत तैरनुज्ञातः शेषं सेष्टः सभाजितैः ।
ब्रह्मचार्यथ तद्रात्र्यां श्वोभूते प्रथमेऽहनि ॥ ४४
स्नातः शुचिर्यथोक्तेन विधिना सुसमाहितः ।
पयसा स्नापयित्वार्चेद् यावद्व्रतसमापनम् ॥ ४५

सभाजितैस्तैरनुज्ञातः सन्। सेष्टो बन्धुभिः सहितः तस्यां रात्र्यां ब्रह्मचारी सन्। श्वोभूते प्रभाते सति ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

સત્કાર પામેલા તે બ્રાહ્મણો દ્વારા (ભોજન કરવાની) આજ્ઞા પ્રાપ્ત કરી સંબંધીઓ સહિત બાકી રહેલું અન્ન જમવું અને પછી તે રાત્રિએ બ્રહ્મચારી રહેવું. બીજે દિવસે સવારે પ્રથમ દિવસે (અમાસ પછીના દિવસે) સ્નાન કરી, પવિત્ર થઈ, સાવધાન ચિત્તે જેમ કહેલું છે તે વિધિ પ્રમાણે દૂધથી સ્નાન કરાવી, વ્રત સમાપ્ત થાય ત્યાં સુધી (પ્રતિદિન) પૂજા કરવી. ॥ ૪૪ ॥ ૪૫ ॥

સત્કાર પામેલા તે બ્રાહ્મણો દ્વારા આજ્ઞા પ્રાપ્ત કરી '**स-इष्टः**' સંબંધીઓ સહિત તે રાત્રિએ બ્રહ્મચારી થઈ '**श्वः-भूते**' બીજે દિવસે સવાર થાય ત્યારે ॥ ૪૪ ॥ ૪૫ ॥

पयोभक्षो व्रतमिदं चरेद् विष्णवर्चनादृतः ।
पूर्ववज्जुहुयादग्निं ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत् ॥ ४६

पय एव भक्ष आहारो यस्य ॥ ४६ ॥

ભગવાન વિષ્ણુની અર્ચનામાં આદરબુદ્ધિવાળા થઈ, દૂધનું ભક્ષણ કરનારે (વ્રતધારીએ) આ પયોવ્રત કરવું. પૂર્વે કહ્યા પ્રમાણે અગ્નિમાં હોમ કરવો તથા બ્રાહ્મણોને પણ જમાડવા. ॥ ૪૬ ॥

દૂધ જ '**भक्षः**' આહાર છે જેનો ॥ ૪૬ ॥

एवं त्वहरहः कुर्याद् द्वादशाहं पयोव्रतः ।
हरेराराधनं होममर्हणं द्विजतर्पणम् ॥ ४७

॥ ४७ ॥

આમ, (કેવળ) દૂધનો આહાર કરવાના વ્રતવાળાએ બાર દિવસ પ્રતિદિન શ્રીહરિની આરાધના, પૂજન તથા હવન કરવાં અને બ્રાહ્મણોને તૃપ્ત કરવા. ॥ ૪૭ ॥ ૪૭ ॥

प्रतिपद्दिनमारभ्य यावच्छुक्लत्रयोदशी ।
ब्रह्मचर्यमधःस्वप्नं स्नानं त्रिषवणं चरेत् ॥ ४८

(ફાગણ સુદ) પડવાના દિવસથી આરંભીને સુદ તેરસ સુધી બ્રહ્મચર્ય, ભૂમિશયન અને ત્રિકાળસ્નાન કરવું. ॥ ૪૮ ॥

अधःस्वप्नं शयनम् ॥ ४८ ॥

'अधःस्वप्नम्' નીચે, ભૂમિ ઉપર શયન કરવું. ॥ ૪૮ ॥

वर्जयेदसदालापं भोगानुच्चावचांस्तथा।
अहिंस्रः सर्वभूतानां वासुदेवपरायणः॥ ४९
॥ ४९ ॥

સર્વ પ્રાણીઓ માટે હિંસારહિત થઈ વાસુદેવ ભગવાનની આરાધનામય રહેવું તેમ જ અસત્યભાષણ અને નાના-મોટા (સર્વ પ્રકારના) ભોગોનો ત્યાગ કરવો. ॥ ૪૯ ॥ ૪૯ ॥

त्रयोदश्यामथो विष्णोः स्नपनं पञ्चकैर्विभोः।
कारयेच्छास्त्रदृष्टेन विधिना विधिकोविदैः॥ ५०

पञ्चकैः पञ्चामृतैः ॥ ५० ॥

ત્યાર પછી તેરસના દિવસે શાસ્ત્રોક્ત વિધિ જાણનાર બ્રાહ્મણો દ્વારા શાસ્ત્રોક્ત વિધિપૂર્વક ભગવાન વિષ્ણુને પંચામૃતથી સ્નાન કરાવવું. ॥ ૫૦ ॥

'पञ्चकैः' પંચામૃતથી ॥ ૫૦ ॥

पूजां च महतीं कुर्याद् वित्तशाठ्यविवर्जितः।
चरुं निरूप्य पयसि शिपिविष्टाय विष्णवे॥ ५१

शृतेन तेन पुरुषं यजेत सुसमाहितः।
नैवेद्यं चातिगुणवद् दद्यात्पुरुषतुष्टिदम्॥ ५२
॥ ५१ ॥ ५२ ॥

ધનનો લોભ (શઠતા) કર્યા વિના (ઉદાર ચિત્તવાળા થઈ) મહાપૂજા કરવી અને ગરુડ પર બેઠેલા ભગવાન વિષ્ણુ માટે દૂધમાં ચરુ નાખીને એકાગ્ર થઈ, રાંધેલા ચરુથી ભગવાન વિષ્ણુનું યજન કરવું તથા અતિ ગુણયુક્ત અને ભગવાનને સન્તોષ આપનારું નૈવેદ્ય અર્પણ કરવું. ॥ ૫૧ ॥ ૫૨ ॥ ૫૧ ॥ ૫૨ ॥

वंशीधरी—शिपिषु रश्मिषु यज्ञपशुषु वा विष्टः शिपिविष्टः।

શિપિવિષ્ટ એટલે કિરણોમાં પ્રવેશનાર અથવા યજ્ઞપશુમાં પ્રવેશનાર વિષ્ણુ.

आचार्यं ज्ञानसम्पन्नं वस्त्राभरणधेनुभिः।
तोषयेदृत्विजश्चैव तद्विद्ध्याराधनं हरेः॥ ५३

(ત્યાર પછી) જ્ઞાનસંપન્ન આચાર્યને તથા (અન્ય વરણ કરેલા બ્રહ્માદિ) ઋત્વિજોને વસ્ત્રો, અલંકારો તથા ગાયોથી સંતુષ્ટ કરવા. તેને (પણ) શ્રીહરિનું આરાધન જાણો. ॥ ૫૩ ॥

भोजयेत् तान् गुणवता सदन्नेन शुचिस्मिते।
अन्यांश्च ब्राह्मणाञ्छक्त्या ये च तत्र समागताः॥ ५४

હે શુચિસ્મિતા (હે પવિત્ર સ્મિતવાળાં), જે ત્યાં આવ્યા હોય તે અન્ય બ્રાહ્મણોને પણ ગુણયુક્ત, ઉત્તમ અન્નથી શક્તિ પ્રમાણે જમાડવા. ॥ ૫૪ ॥

दक्षिणां गुरवे दद्यादृत्विग्भ्यश्च यथार्हतः।
अन्नाद्येनाश्वपाकांश्च प्रीणयेत्समुपागतान्॥ ५५

ગુરુને તથા ઋત્વિજોને યથાયોગ્ય દક્ષિણા આપવી અને ત્યાં આવેલા ચંડાળ પર્યન્ત (પ્રત્યેક) મનુષ્યને અન્નાદિ આપીને પ્રસન્ન કરવા. ॥ ૫૫ ॥

भुक्तवत्सु च सर्वेषु दीनान्धकृपणेषु च।
विष्णोस्तत्प्रीणनं विद्वान्भुञ्जीत सह बन्धुभिः॥ ५६

જ્યારે સર્વ દીન, અંધ અને રાંક જનો ભોજન કરી લે, ત્યારે તેને વિષ્ણુની પ્રસન્નતા જાણનારે (સ્વયં વ્રતીએ) પોતાના કુટુંબીજનો સાથે ભોજન કરવું. ॥ ૫૬ ॥

नृत्यवादित्रगीतैश्च स्तुतिभिः स्वस्तिवाचकैः।
कारयेत्तत्कथाभिश्च पूजां भगवतोऽन्वहम्॥ ५७

॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

(પ્રતિપદાથી ત્રયોદશી સુધી) પ્રતિદિન નૃત્ય, ગીત, વાજિંત્રો, સ્તુતિઓ, સ્વસ્તિવાચક મંત્રોથી અને ભગવાનની તે કથાઓ દ્વારા ભગવાનની પૂજા (કરવી અને) કરાવવી. ॥ ૫૭ ॥

॥ ૫૩ ॥ ૫૪ ॥ ૫૫ ॥ ૫૬ ॥ ૫૭ ॥

एतत्पयोव्रतं नाम पुरुषाराधनं परम्।
पितामहेनाभिहितं मया ते समुदाहृतम्॥ ५८

मया च ते समुदाहृतम्॥ ५८ ॥

આ પયોવ્રત નામનું ભગવાનનું શ્રેષ્ઠ આરાધન પિતામહ બ્રહ્માજી દ્વારા કહેવામાં આવ્યું હતું, (તે) મેં તમને કહ્યું. ॥ ૫૮ ॥

અને મેં તમને કહ્યું. ॥ ૫૮ ॥

त्वं चानेन महाभागे सम्यक्चीर्णेन केशवम्।
आत्मना शुद्धभावेन नियतात्मा भजाव्ययम्॥ ५९

॥ ५९ ॥

હે મહાભાગ્યવતી અદિતિ, મનને વશમાં કરી શુદ્ધ ભાવવાળા અન્તઃકરણથી સુચારુ રીતે આચરેલા આ વ્રતથી તમે અવિનાશી ભગવાન કેશવની આરાધના કરો. ॥ ૫૯ ॥ ૫૯ ॥

अयं वै सर्वयज्ञाख्यः सर्वव्रतमिति स्मृतम्।
तपःसारमिदं भद्रे दानं चेश्वरतर्पणम्॥ ६०

सर्वयज्ञाख्योऽयं यज्ञः। सर्वव्रतमिति च स्मृतमेतद्व्रतम्॥ ६० ॥

હે કલ્યાણી, આ (યજ્ઞ) સર્વયજ્ઞરૂપ અને સર્વવ્રતરૂપ છે એમ જાણવું તથા આ (વ્રત) તપના સારરૂપ, દાનરૂપ અને ઈશ્વરને પ્રસન્ન કરનાર છે. ॥ ૬૦ ॥

આ યજ્ઞ સર્વયજ્ઞરૂપ છે અને આ વ્રત સર્વવ્રતરૂપ છે એમ જાણવું. ॥ ૬૦ ॥

त एव नियमाः साक्षात्त एव च यमोत्तमाः।
तपो दानं व्रतं यज्ञो येन तुष्यत्यधोक्षजः॥ ६१

જેનાથી સાક્ષાત્ ભગવાન અધોક્ષજ પ્રસન્ન થાય છે તે જ (સાચા) નિયમો છે, તે જ શ્રેષ્ઠ યમો છે, તે જ (વાસ્તવમાં) તપ, દાન, વ્રત અને યજ્ઞ છે. ॥ ૬૧ ॥

तस्मादेतद्व्रतं भद्रे प्रयता श्रद्धया चर।
भगवान्परितुष्टस्ते वरानाशु विधास्यति॥ ६२

॥ ६१ ॥ ६२ ॥

માટે હે કલ્યાણી, સંયમયુક્ત શ્રદ્ધાથી તું આ વ્રતનું અનુષ્ઠાન કર. (આનાથી) પ્રસન્ન થયેલા ભગવાન શીઘ્ર તારા મનોરથો પરિપૂર્ણ કરશે. ॥ ૬૨ ॥ ॥ ૬૧ ॥ ૬૨ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धेऽदितिपयोव्रतकथनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां षोडशोऽध्यायः॥ १६ ॥

*****

अथ सप्तदशोऽध्यायः

ભગવાનનું પ્રાકટ્ય અને અદિતિને વરદાન

ततः सप्तदशेऽदित्या कृते तस्मिन्व्रते हरिः ।
तत्कामपूरणायादौ तत्पुत्रोऽभूदितीर्यते ॥ १ ॥

(કશ્યપ ઋષિના ઉપદેશ) પછી અદિતિ દ્વારા જ્યારે તે વ્રત કરવામાં આવ્યું, ત્યારે તે અદિતિનો મનોરથ પૂર્ણ કરવા માટે શ્રીહરિ પૂર્વે તેના પુત્ર થયા હતા, તે (કથા) સત્તરમા અધ્યાયમાં કહેવામાં આવે છે. ॥ ૧ ॥

श्रीशुक उवाच

**इत्युक्ता साऽदिती राजन्स्वभर्त्रा कश्यपेन वै ।
अन्वतिष्ठद् व्रतमिदं द्वादशाहमतन्द्रिता ॥ १ ॥ १ ॥**

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – હે રાજા (પરીક્ષિત), પોતાના પતિ કશ્યપ દ્વારા આ પ્રમાણે ઉપદેશ પામેલાં તે અદિતિએ બાર દિવસ સાવધાન થઈ આ વ્રતનું અનુષ્ઠાન કર્યું. ॥ ૧ ॥ ૧ ॥

**चिन्तयन्त्येकया बुद्ध्या महापुरुषमीश्वरम् ।
प्रगृह्येन्द्रियदुष्टाश्वान्मनसा बुद्धिसारथिः ॥ २
मनश्चैकाग्रया बुद्ध्या भगवत्यखिलात्मनि ।
वासुदेवे समाधाय चचार ह पयोव्रतम् ॥ ३ ॥ २ ॥ ३ ॥**

બુદ્ધિને સારથિ બનાવીને, ઇન્દ્રિયરૂપી દુષ્ટ અશ્વોને મનથી વશ કરીને, એકાગ્ર બુદ્ધિથી સર્વના અન્તર્યામી ભગવાન વાસુદેવમાં મન સ્થાપી, એકનિષ્ઠ બુદ્ધિથી મહાપુરુષ ઈશ્વરનું ચિંતન કરતાં અદિતિમાતાએ પયોવ્રતનું અનુષ્ઠાન કર્યું. ॥ ૨ ॥ ૩ ॥ ૨ ॥ ૩ ॥

**तस्याः प्रादुरभूत्तात भगवानादिपूरुषः ।
पीतवासाश्चतुर्बाहुः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ४ ॥ ४ ॥**

હે પ્રિય (પરીક્ષિત), પીતાંબર ધારણ કરેલા, ચાર બાહુઓવાળા, શંખ-ચક્ર-ગદાધારી ભગવાન આદિપુરુષ તેમની આગળ પ્રકટ થયા. ॥ ૪ ॥ ૪ ॥

**तं नेत्रगोचरं वीक्ष्य सहसोत्थाय सादरम् ।
ननाम भुवि कायेन दण्डवत् प्रीतिविह्वला ॥ ५**

તે ભગવાનને પોતાના નેત્રના વિષયરૂપે પ્રાપ્ત થયેલા જોઈ પ્રેમથી વ્યાકુળ થયેલાં અદિતિએ એકદમ ઊભા થઈ આદર સહિત દેહથી પૃથ્વી ઉપર દંડવત્ પ્રણામ કર્યા. ॥ ૫ ॥

**सोत्थाय बद्धाञ्जलिरीडितुं स्थिता
नोत्सेह आनन्दजलाकुलेक्षणा ।
बभूव तूष्णीं पुलकाकुलाकृति-
स्तद्दर्शनात्युत्सवगात्रवेपथुः ॥ ६**

ઊભા થઈ, કરાંજલિ જોડીને સ્તુતિ કરવા માટે તૈયાર થયેલાં, આનંદનાં અશ્રુથી છલકાઈ ગયેલાં બંને નયનોવાળાં, ઊભાં થયેલાં રૂંવાડાંથી વ્યાપેલા દેહવાળાં અને તે ભગવાનનાં દર્શનના મહાન ઉત્સવને કારણે કંપતા શરીરવાળાં હોઈ તે અદિતિમાતા સ્તુતિ કરવાને સમર્થ થયાં નહીં, પરંતુ મૌન જ થઈ ગયાં. ॥ ૬ ॥

प्रीतिविह्वलत्वादेव सा बद्धाञ्जलिः सती स्थिता केवलमीडितुं पुनर्नोत्सेहे न शशाक, अपितु तूष्णीं बभूव। कथंभूता। आनन्दजलैराकुले ईक्षणे यस्याः। पुलकैराकुला आकृतिर्देहो यस्याः। तस्य दर्शनेन योऽत्युत्सवस्तेन गात्रे वेपथुः कम्पो यस्याः॥ ६॥

प्रीत्या शनैर्गद्‌गदया गिरा हरिं
तुष्टाव सा देव्यदितिः कुरूद्वह।
उद्वीक्षती सा पिबतीव चक्षुषा
रमापतिं यज्ञपतिं जगत्पतिम्॥ ७

तुष्टाव पिबतीवोद्वीक्ष्यमाणेति च क्रियाभेदात्सेत्यस्य पदस्य द्विरुक्तिरदोषः॥ ७॥

'अयत्नतो विनिर्जित्य दैत्यानत्यूर्जितानपि।
भक्तान् रक्षितुमीशस्त्वमित्यस्तौददितिस्त्रिभिः॥'
इति।

अदितिरुवाच

यज्ञेश यज्ञपुरुषाच्युत तीर्थपाद
तीर्थश्रवः श्रवणमङ्गलनामधेय।
आपन्नलोकवृजिनोपशमोदयाद्य
शं नः कृधीश भगवन्नसि दीननाथः॥ ८

(છંદ - વસંતતિલકા)

यज्ञेशेत्यादिदशभिः संबोधनैस्तवाशक्यं किमपि नास्तीति वदन्ती प्रार्थयते—शं नः कृधि। यतो दीनानां नाथोऽसि त्वम्। तीर्थं श्रवः कीर्तिर्यस्य।

ભગવાન ઉપરના પ્રેમને કારણે વિહ્‌વળ થવાથી જ કરાંજલિ જોડીને ઊભેલાં તે અદિતિમાતા કેવળ સ્તુતિ કરવા માટે જ પુનઃ '**न-उत्सेहे**' સમર્થ થયાં નહીં, પણ મૌન જ થઈ ગયાં. કેવાં અદિતિમાતા? આનંદનાં અશ્રુથી છલકાઈ ગયાં છે નેત્રો જેમનાં, ઊભાં થયેલાં રૂંવાડાંથી વ્યાપ્ત થયો છે '**आकृतिः**' દેહ જેમનો. તે ભગવાનનાં દર્શનથી જે ઉત્સવ થાય, તેનાથી શરીરમાં '**वेपथुः**' કંપ છે જેમને॥ ૬॥

હે કુરુકુળવર્ધક (રાજા પરીક્ષિત), યજ્ઞપતિ અને જગત્પતિ એવા શ્રીલક્ષ્મીપતિને જાણે ચક્ષુથી તેઓ પી જતાં હોય તેમ નીરખતાં તે માતા અદિતિદેવીએ ગદ્‌ગદ વાણીથી ધીમે ધીમે શ્રીહરિની પ્રીતિપૂર્વક સ્તુતિ કરી.॥ ૭॥

જાણે પી જતાં હોય તેમ નિરખતાં તેમણે સ્તુતિ કરી– એમ ક્રિયાભેદને કારણે '**सा**' પદની દ્વિરુક્તિ દોષ નથી.॥ ૭॥ '**सा देवी-सा पिबती**'

'દૈત્યો અતિબળવાન હોવા છતાં પણ પ્રયત્ન કર્યા વિના જ તેમને જીતી લઈને ભક્તોની રક્ષા કરવા માટે આપ સમર્થ છો.' એમ અદિતિમાતાએ ત્રણ શ્લોકો (૮,૯,૧૦) થી સ્તુતિ કરી.

અદિતિ(માતા) બોલ્યાં – હે યજ્ઞેશ, હે યજ્ઞપુરુષ, હે અચ્યુત, હે તીર્થરૂપ ચરણવાળા (જેમના ચરણોમાં સર્વ તીર્થ છે તેવા હે તીર્થપાદ), હે તીર્થરૂપ કીર્તિવાળા (જેમની કથા સર્વ તીર્થરૂપ છે તેવા હે તીર્થશ્રવ), શ્રવણ થતાં જ સર્વ મંગળ કરનાર નામવાળા, શરણે આવેલા લોકોના પાપનો નાશ કરવા પ્રકટેલા, હે આદિપુરુષ, હે ઈશ, હે ભગવાન, આપ દીનાનાથ છો, અમારું કલ્યાણ કરો.॥ ૮॥

'યજ્ઞેશ' વગેરે દસ સંબોધનો દ્વારા આપને માટે કાંઈ પણ અશક્ય નથી, એમ કહેતાં અદિતિમાતા પ્રાર્થના કરે છે— અમારું કલ્યાણ કરો, કારણ કે આપ દીનજનોના નાથ છો, તીર્થરૂપ '**श्रवः**' કીર્તિ છે જેમની.

श्रवणमेव मङ्गलं यस्य तन्नामधेयं यस्य। आपन्नानां शरणागतानां वृजिनोपशमायोदयो यस्य॥ ८॥

वंशीधरी—यज्ञानामीशः फलदाता। न्यूनेऽपि तस्मिंस्त्वं स्वरूपात्पूर्णमेव फलं ददासीत्याह—यज्ञपुरुषेति। तत्र हेतुः—अच्युतेति। सर्वथा च्युतिरहितोऽसीति। तीर्थं श्रीगंगा स्वाभीष्टघ्न-सकलदुष्कृतनाशिनी पादयोर्यस्य स तथा। यद्वा तीर्थवच्छोधकौ ध्यानेनैवाखिलाघहरौ पादौ यस्य स तथेति। ध्यानेऽप्यसमर्थानां हितकरोषीत्याह—तीर्थं पावनं श्रवो यस्येति तथा। तत्रापि मननाद्यपेक्षा नास्तीत्याह—श्रवणमंगलेति। केवलश्रवणादेव मंगलं करोषीति। आद्यत्वात्सर्व-विदसि ईशत्वात्सर्वथा समर्थोऽसीत्यर्थः।

શ્રવણ માત્રથી જ સર્વ મંગળ થાય છે તેવું નામ છે જેમનું. **'आपन्नानाम्'** શરણે આવેલા લોકોના પાપનો નાશ કરવા માટે જન્મ છે જેમનો॥ ૮॥

યજ્ઞેશ એટલે યજ્ઞના ફળદાતા. તેમાં ઊણપ હોય તો પણ સ્વરૂપથી પૂર્ણ ફળ જ આપનાર છો, એમ 'યજ્ઞપુરુષ' સંબોધનથી કહે છે. તે માટેનું કારણ—આપ સર્વ રીતે ચ્યુતિરહિત એવા અચ્યુત છો. પોતાના ઈચ્છિત ફળને અટકાવનારાં સકળ દુષ્કર્મોનો નાશ કરનારાં શ્રીગંગાજી જેમના ચરણોમાં છે તેવા તે છે અથવા તીર્થની જેમ શુદ્ધ કરનારા ચરણો છે જેમના તેવા તે છે. ધ્યાનથી જ સર્વ પાપ હરી લેનારા ચરણો છે જેમના તે. ધ્યાન કરવાને અસમર્થ હોય તેમનું પણ હિત કરો છો, એમ કહે છે— પાવન છે કીર્તિ જેમની, તેમાં પણ મનન વગેરેની અપેક્ષા નથી, એમ કહે છે. કેવળ શ્રવણ કરવાથી જ મંગળ કરો છો. આદ્ય–આદિપુરુષ હોવાથી આપ સર્વજ્ઞ છો તથા ઈશ હોવાથી સર્વસમર્થ છો, એમ અર્થ છે.

विश्वाय विश्वभवनस्थितिसंयमाय
स्वैरं गृहीतपुरुशक्तिगुणाय भूम्ने।
स्वस्थाय शश्वदुपबृंहितपूर्णबोध-
व्यापादितात्मतमसे हरये नमस्ते॥ ९

વિશ્વરૂપને નમસ્કાર. વિશ્વનાં ઉત્પત્તિ, સ્થિતિ અને સંહાર માટે સ્વેચ્છાથી મહતી માયાના ગુણો ધારણ કરનાર અત્યંત વ્યાપક એવા આપને નમસ્કાર. નિરંતર ઊર્જાયુક્ત, પૂર્ણ જ્ઞાનસ્વરૂપથી સદાય માયારૂપી અંધકાર દૂર કરનારને નમસ્કાર. પોતાના સ્વરૂપમાં સ્થિત રહેનારને તથા ભક્તોનાં દુઃખ હરણ કરનાર શ્રીહરિને નમસ્કાર હો.॥ ૯॥

भूम्ने महते नमः। महत्त्वे हेतवः —विश्वाय विश्वस्य भवनस्थितिसंयमार्थं स्वैरं गृहीताः पुरुशक्तेर्मायाया गुणा येन तस्मै। तथापि स्वस्थाया-प्रच्युतस्वरूपाय। कुतः। शश्वदुपबृंहितो नित्योर्जितो यः पूर्णबोधस्तेन व्यापादितं नित्यनिरस्तमात्मनि तमो मायालक्षणं येन तस्मै॥ ९॥

'भूम्ने' (અત્યંત) મહાનને નમસ્કાર. મહાન હોવા માટેનાં કારણો— **'विश्वाय'** વિશ્વરૂપને (નમસ્કાર). વિશ્વનાં ઉત્પત્તિ, સ્થિતિ અને સંયમ માટે સ્વેચ્છાથી ધારણ કર્યા છે **'पुरुशक्तेः'** માયાના ગુણો જેમણે તેમને નમસ્કાર. તેમ છતાં પણ **'स्वस्थाय'** પોતાના સ્વરૂપમાં સ્થિત રહેનારને, ચ્યુત ન થાય તેવા સ્વરૂપવાળાને (નમસ્કાર). કેમ ? નિરંતર **'उपबृंहितः'** નિત્ય ઊર્જાયુક્ત જે પૂર્ણજ્ઞાન છે, તેનાથી **'व्यापादितम्'** સદાય દૂર કર્યો છે પોતાનો માયારૂપ લક્ષણવાળો અંધકાર જેમણે તેમને નમસ્કાર.॥ ૯॥

अस्मदीयमनोरथपूरणमीषत्करमेव तवेति कैमुत्यन्यायेनाह—

आयुः परं वपुरभीष्टमतुल्यलक्ष्मी-
द्यौभूरसाः सकलयोगगुणास्त्रिवर्गः।
ज्ञानं च केवलमनन्त भवन्ति तुष्टात्
त्वत्तो नृणां किमु सपत्नजयादिराशीः॥ १०

અમારો મનોરથ પૂર્ણ કરવો તે આપને માટે સ્હેજ વાત છે, તે કૈમુત્યન્યાયથી કહે છે—

હે અનંત, આપની પ્રસન્નતા થતાં મનુષ્યોને દીર્ઘ આયુષ્ય, ઈચ્છિત શરીર, અતુલ્ય લક્ષ્મી, પૃથ્વીલોક, સ્વર્ગલોક, અધોલોક, અણિમા વગેરે સમગ્ર યોગના ગુણો, ધર્મ-અર્થ-કામરૂપ ત્રિવર્ગ અને (પરમાત્મા સંબંધી) કેવળ-જ્ઞાન પ્રાપ્ત થાય છે, તો શત્રુઓ ઉપર વિજય વગેરે મનોરથ પૂર્ણ થાય તેમાં શું આશ્ચર્ય છે?॥૧૦॥

आयुः परं ब्रह्मायुः। पुनरपि द्यौश्च भूश्च रसातलं च द्योभूरसाः। द्यौरिति पृथक्पाठे भूश्च रसाश्च बिलस्वर्गा इति विग्रहः। रसेति पाठे त्रीणि पदानि। सकला योगगुणा अणिमादयः ॥ १० ॥

'आयुः परम्' બ્રહ્માજીનું (દ્વિપરાર્ધ) આયુષ્ય. વળી, **'द्योभूरसाः'** સ્વર્ગ, પૃથ્વી અને રસાતળ. **'द्यौः'** એમ છૂટા પાઠમાં **'भूः'** પૃથ્વી અને **'रसाः'** પાતાળો, એમ છૂટાં પડે છે. **'द्यौर्भूरसाः'** ને બદલે **'द्यौर्भूरसा'** એમ વિસર્ગરહિત (દ્યૌઃ ભૂઃ રસા) પાઠમાં, ત્રણેય સ્થાનો– સમસ્ત **'योगगुणाः'** અણિમાદિ સમસ્ત યોગસિદ્ધિઓ ॥ ૧૦ ॥

श्रीशुक उवाच

अदित्यैवं स्तुतो राजन्भगवान्पुष्करेक्षणः।
क्षेत्रज्ञः सर्वभूतानामिति होवाच भारत॥ ११

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – હે ભરતવંશી (રાજા), અદિતિમાતા દ્વારા આ પ્રમાણે સ્તુતિ કરાયેલા, સર્વ પ્રાણીઓના શરીરને જાણનારા અન્તર્યામી કમલનયન ભગવાન આ પ્રમાણે બોલ્યા.॥૧૧॥

क्षेत्रज्ञोऽन्तर्यामी ॥ ११ ॥

'क्षेत्रज्ञः' અન્તર્યામી ॥ ૧૧ ॥

श्रीभगवानुवाच

देवमातर्भवत्या मे विज्ञातं चिरकांक्षितम्।
यत् सपत्नैर्हृतश्रीणां च्यावितानां स्वधामतः॥ १२

શ્રીભગવાન બોલ્યા – હે દેવજનની, શત્રુઓ દ્વારા જેમની રાજલક્ષ્મી હરી લેવામાં આવી છે તથા જેમને પોતાના સ્થાનથી ભ્રષ્ટ કરવામાં આવ્યા છે, તે તમારા (પુત્રો સંબંધી) તમારી જે લાંબા કાળથી આકાંક્ષા છે તેને મેં જાણી છે.॥૧૨॥

सपत्नैर्हृता श्रीर्येषां स्वधामतश्च्यावितानां च पुत्राणां संबन्धि यत्तद्भवत्याश्चिरमाकाङ्क्षितं मया विज्ञातम्॥ १२॥

શત્રુઓ દ્વારા હરી લેવામાં આવી છે રાજલક્ષ્મી જેમની તથા જેમને પોતાના સ્થાનથી ભ્રષ્ટ કરવામાં આવેલા છે, તે પુત્રોના સંબંધમાં લાંબા કાળથી તમારી જે આકાંક્ષા છે તેને મેં જાણી છે.॥૧૨॥

काङ्क्षितमेवाह—**तानिति** त्रिभिः—

અદિતિમાતાની આકાંક્ષાને ત્રણ શ્લોકો વડે જણાવે છે— **'तान् इति।'**

तान्विनिर्जित्य समरे दुर्मदानसुरर्षभान्।
प्रतिलब्धजयश्रीभिः पुत्रैरिच्छस्युपासितुम्॥ १३

પ્રતિલબ્ધો જયશ્ચ શ્રીશ્ચ યૈસ્તૈઃ પુત્રૈઃ સહોપાસિતુમેકત્ર સ્થાતુમિચ્છસિ॥ ૧૩॥

दुष्ट मदवाळा ते श्रेष्ठ असुरोने युद्धमां जीतीने विजय अने लक्ष्मी प्राप्त करेला पुत्रो साथे तमे रहेवा ईच्छो छो.॥ १३॥

प्राप्त कर्या छे विजय अने लक्ष्मी जेमणे ते पुत्रो साथे '**उप-आसितुम्**' साथे रहेवा ईच्छो छो.॥ १३॥

इन्द्रज्येष्ठैः स्वतनयैर्हतानां युधि विद्विषाम्।
स्त्रियो रुदन्तीरासाद्य द्रष्टुमिच्छसि दुःखिताः॥ १४

॥ १४॥

ઈન્દ્ર જેઓમાં જ્યેષ્ઠ છે એવા તમારા પોતાના પુત્રો દ્વારા યુદ્ધમાં (પોતાનું સ્થાન) પ્રાપ્ત કરીને હણાયેલા શત્રુઓની સ્ત્રીઓને (તમે) દુઃખી થઈને રડતી જોવા ઈચ્છો છો.॥ ૧૪॥ ૧૪॥

आत्मजान्सुसमृद्धांस्त्वं प्रत्याहृतयशःश्रियः।
नाकपृष्ठमधिष्ठाय क्रीडतो द्रष्टुमिच्छसि॥ १५

प्रत्याहृतं यशश्च श्रीश्च यैस्तान्॥ १५॥

યશ અને લક્ષ્મી પુનઃ પ્રાપ્ત કરનારા, અતિ સમૃદ્ધ થયેલા તમારા પુત્રોને સ્વર્ગમાં અધિષ્ઠિત થઈ રમણ કરતા (તમે) જોવા ઈચ્છો છો.॥ ૧૫॥

જેમના દ્વારા યશ અને લક્ષ્મી પાછાં લાવવામાં આવ્યાં છે તેમને॥ ૧૫॥

प्रायोऽधुना तेऽसुरयूथनाथा
अपारणीया इति देवि मे मतिः।
यत्तेऽनुकूलेश्वरविप्रगुप्ता
न विक्रमस्तत्र सुखं ददाति॥ १६

अपारणीया अनतिक्रमणीयाः। यद्यस्मात् अनुकूलः ईश्वरः कालो येषां तैर्विप्रैर्गुप्ता रक्षिताः। अनुकूलैरीश्वरैः समर्थैर्विप्रैर्गुप्ता इति वा॥ १६॥

હે દેવી, અત્યારે તે અસુરોના સેનાનાયકોને ઘણું કરીને જીતી શકાય તેમ નથી એમ હું માનું છું, કારણ કે જેમની ઉપર કાળ અનુકૂળ છે તેવા વિપ્રોથી તેઓ રક્ષાયેલા હોઈ તેમની સામે પરાક્રમ કરવું સુખદ નથી.॥ ૧૬॥

'**अपारणीयाः**' અતિક્રમણ કરી ન શકાય, જીતી ન શકાય તેવા છે, '**यत्**' કારણ કે જેમની ઉપર '**ईश्वरः**' કાળ અનુકૂળ છે તેવા વિપ્રોથી '**गुप्ताः**' તેઓ રક્ષાયેલા છે, અથવા '**ईश्वरैः**' સમર્થ અને અનુકૂળ બ્રાહ્મણો દ્વારા તેઓ રક્ષાયેલા છે.॥ ૧૬॥

अथाप्युपायो मम देवि चिन्त्यः
सन्तोषितस्य व्रतचर्यया ते।
ममार्चनं नार्हति गन्तुमन्यथा
श्रद्धानुरूपं फलहेतुकत्वात्॥ १७

मम मया चिन्त्य एव। तत्र हेतुः— संतोषितस्येत्यादि। श्रद्धानुरूपमिच्छानुसारेण फलहेतुत्वात्॥ १७॥

તેમ છતાં હે દેવી, તમારા વ્રતના અનુષ્ઠાનથી સન્તુષ્ટ થયેલા મારે ઉપાય વિચારવા જેવો છે. મારું અર્ચન ઈચ્છાનુસાર ફળ આપવામાં કારણરૂપ થતું હોવાથી તમે કરેલું અર્ચન નિષ્ફળ જવા યોગ્ય નથી.॥ ૧૭॥

'**मम**' મારે વિચારવા યોગ્ય જ છે. તે માટેનું કારણ— '**सन्तोषितस्य**' વગેરે. '**श्रद्धानुरूपम्**' ઈચ્છાનુસાર ફળ આપવામાં કારણરૂપ હોવાથી॥ ૧૭॥

त्वयाऽर्चितश्चाहमपत्यगुप्तये
पयोव्रतेनानुगुणं समीडितः।
स्वांशेन पुत्रत्वमुपेत्य ते सुतान्
गोप्तास्मि मारीचतपस्यधिष्ठितः॥ १८

मारीचस्य तपस्यधिष्ठाय स्थितः सन् गोप्तास्मि पालयिष्यामि॥ १८॥

उपधाव पतिं भद्रे प्रजापतिमकल्मषम्।
मां च भावयती पत्यावेवंरूपमवस्थितम्॥ १९

अतः पतिमुपधाव भजस्व॥ १९॥

नैतत् परस्मा आख्येयं पृष्टयापि कथंचन।
सर्वं सम्पद्यते देवि देवगुह्यं सुसंवृतम्॥ २०

देवानां गुह्यं रहस्यं सर्वं सुसंवृतं सुगुप्तं सत्संपद्यते सिध्यति॥ २०॥

(*अदितिरुवाच

नाहं वोढुं क्षमा देव त्वामाद्यं पुरुषं परम्।
ब्रह्माण्डकोटिसाहस्त्रं रोमकूपे तवाव्यय॥ १
महापातकयुक्तोऽपि यन्नामस्मृतिमात्रतः।
प्रयाति मुक्तिं देवेश तं कथं धारयाम्यहम्॥ २

श्रीभगवानुवाच

सत्यमुक्तं महाभागे त्वया नास्त्यत्र संशयः।
पतिव्रताः पतिप्राणाः पतिभक्तिपरायणाः॥ ३
वहन्ति सततं बाले स्त्रियोऽपि त्यक्तमत्सराः।)

*अत्रत्यो धनुश्चिह्नान्तर्गतो भागः (क्रमांक १-३) क्वचिन्मुद्रितपुस्तकधृत एवास्ति, न सार्वत्रिकः।

પુત્રોની રક્ષા માટે તમારા દ્વારા કરવામાં આવેલા પયોવ્રત વડે યથોચિતરૂપે પૂજન અને પ્રસન્ન (સ્તુતિ) કરાયેલો હું, કશ્યપ ઋષિના તપોજનિત તેજમાં રહી મારા અંશથી આપનો પુત્ર બની આપના પુત્રોની રક્ષા કરીશ.॥ ૧૮॥ (**ગુપ્** ધાતુનું શ્વસ્તન ભ.કા. '**गोप्ता**')

મરીચિનંદન કશ્યપના તપમાં રહી '**गोप्तास्मि**' રક્ષા કરીશ.॥ ૧૮॥

હે ભદ્રા, આ જ રૂપે (તમારા) પતિમાં રહેલા મારી ભાવના કરતાં તમે તમારા નિષ્પાપ પતિ પ્રજાપતિ કશ્યપની સેવા કરો.॥ ૧૯॥

આથી તમારા પતિની '**उपधाव**' સેવા કરો.॥ ૧૯॥

હે દેવી, પૂછવામાં આવે તો પણ બીજા કોઈને આ વાત કહેવી નહીં. ગુપ્ત રાખવામાં આવેલું દેવોનું સર્વ રહસ્ય સારી રીતે સિદ્ધ થાય છે.॥ ૨૦॥

દેવોનું '**गुह्यम्**' સર્વ રહસ્ય એકદમ ગુપ્ત રાખવામાં આવ્યું હોય તો તે '**सम्पद्यते**' સારી રીતે સિદ્ધ થાય છે.॥ ૨૦॥

(શ્લોક-૨૦ પછી ના ૧,૨,૩, પદ્યો પ્રક્ષિપ્ત મનાય છે.)

*** અદિતિ(માતા) બોલ્યાં** – હે દેવ, પરમ આદ્ય પુરુષને ધારણ કરવાને હું સમર્થ નથી. હે અવિનાશી આપના રોમકૂપમાં અનંત કોટિ બ્રહ્માંડો રહેલાં છે. મોટાં પાપોથી યુક્ત હોવા છતાં મનુષ્ય જેમના માત્ર નામસ્મરણથી મુક્તિ પામે છે તેવા આપને હે દેવેશ, હું કેવી રીતે ધારણ કરું ?॥ ૧॥ ૨॥

શ્રીભગવાન બોલ્યા – હે મહાભાગ્યવતી અદિતિ, તમે સત્ય કહ્યું. આ બાબતમાં સંશય નથી, પરંતુ હે બાળા, પતિ એ જ જેમનો પ્રાણ છે અને પતિભક્તિમાં જેઓ પરાયણ છે, તેવી મત્સરને ત્યજનારી પતિવ્રતા સ્ત્રીઓ મને નિત્ય ધારણ કરી શકે છે.॥ ૩॥)

* અહીં કૌંસમાં રહેલો ભાગ કેટલાંક છપાયેલાં પુસ્તકોમાં છે, સર્વ સ્થળે નથી.

श्रीशुक उवाच

एतावदुक्त्वा भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत।
अदितिर्दुर्लभं लब्ध्वा हरेर्जन्मात्मनि प्रभोः॥ २१
उपाधावत् पतिं भक्त्या परया कृतकृत्यवत्।
स वै समाधियोगेन कश्यपस्तदबुध्यत॥ २२
प्रविष्टमात्मनि हरेरंशं ह्यवितथेक्षणः।
सोऽदित्यां वीर्यमाधत्त तपसा चिरसंभृतम्।
समाहितमना राजन्दारुण्यग्निं यथानिलः॥ २३

प्रभोर्हरेरात्मनि जन्म लब्ध्वा॥ २१॥ २२॥

अवितथमीक्षणं दृष्टिर्यस्य सः। अनिलो यथा सर्वत्र समोऽपि दारुणि संघर्षेण वनदाहकमग्निमाधत्ते, एवं स्वयं पुत्रेषु समोऽपि दैत्यक्षपणं वीर्यमाधत्तेत्यर्थः॥ २३॥

वंशीधरी—वीर्यं भगवद्रूपं तेजः।

अदितेर्धिष्ठितं गर्भं भगवन्तं सनातनम्।
हिरण्यगर्भो विज्ञाय समीडे गुह्यनामभिः॥ २४

धिष्ठितमधिष्ठाय स्थितम्। समीडे तुष्टावेत्यर्थः॥ २४॥

ब्रह्मोवाच

जयोरुगाय भगवन्नुरुक्रम नमोऽस्तु ते।
नमो ब्रह्मण्यदेवाय त्रिगुणाय नमो नमः॥ २५

॥ २५॥

नमस्ते पृश्निगर्भाय वेदगर्भाय वेधसे।
त्रिनाभाय त्रिपृष्ठाय शिपिविष्टाय विष्णवे॥ २६

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – આટલું કહીને ભગવાન ત્યાં જ અન્તર્ધાન થયા. માતા અદિતિ પોતાની કૂખેથી પ્રભુ શ્રીહરિનો દુર્લભ જન્મ થશે એમ જાણી, પોતે કૃતકૃત્ય હોય તેમ પરમ ભક્તિથી પતિને જ સેવવા લાગ્યાં. સત્યદૃષ્ટિવાળા કશ્યપજીએ પોતાનામાં પ્રવેશેલા શ્રીહરિના અંશને સમાધિયોગથી જાણ્યો. હે રાજા, વાયુ જેમ કાષ્ઠમાં અગ્નિને સ્થાપે તેમ તેમણે મન એકાગ્ર કરી તપોબળથી દીર્ઘકાળપર્યન્ત એકઠા કરેલા વીર્યને અદિતિમાં સ્થાપ્યું.॥ ૨૧॥ ૨૨॥ ૨૩॥

પ્રભુ શ્રીહરિનો જન્મ પોતાની કૂખમાં થશે એમ જાણીને ॥ ૨૧॥ ૨૨॥

અવિતથ(સત્ય) **'ईक्षणम्'** દૃષ્ટિ છે જેમની– વાયુ જેમ સર્વત્ર સમાન હોવા છતાં કાષ્ઠમાં ઘર્ષણ કરીને વનને બાળનાર અગ્નિને સ્થાપે છે, તેમ પુત્રો પ્રત્યે સમાન હોવા છતાં દૈત્યોનો નાશ કરનારું વીર્ય સ્થાપ્યું, એમ અર્થ છે.॥ ૨૩॥

વીર્ય એટલે ભગવદ્રૂપ તેજ.

અદિતિના ગર્ભમાં રહેલા સનાતન ભગવાનને જાણી બ્રહ્માજી ગુહ્યનામોથી (તેમની) સ્તુતિ કરવા લાગ્યા.॥ ૨૪॥

'धिष्ठितम्' અધિષ્ઠિત થઈને રહેલા ભગવાનને– **'समीडे'** સ્તુતિ કરવા લાગ્યા.॥ ૨૪॥

બ્રહ્માજી બોલ્યા – હે ભગવાન! આપનો જય થાઓ. અનેક રીતે સ્તુતિ કરાતા અને અનંત પરાક્રમવાળા ભગવાન, આપને નમસ્કાર હો. બ્રાહ્મણોનું હિત કરનારને અને ત્રણે ગુણોના નિયન્તાને નમસ્કાર, નમસ્કાર.॥ ૨૫॥ ૨૫॥

પૃશ્નિમાતાની કૂખે પ્રકટેલા પૃશ્નિગર્ભ ભગવાનને નમસ્કાર. વેદોમાં પ્રકાશમાન થનાર ભગવાનને નમસ્કાર. સર્વના વિધાતાને નમસ્કાર. નાભિમાં ત્રણે લોક ધારણ કરનારને નમસ્કાર. ત્રણેય લોકની ઉપર રહેલા ભગવાનને નમસ્કાર. પશુતુલ્ય જીવોમાં અન્તર્યામી તરીકે પ્રવેશેલા વિષ્ણુ એવા આપને નમસ્કાર.॥ ૨૬॥

अदितेरेव पूर्वस्मिञ्जन्मनि पृश्निरिति नाम तस्या गर्भायार्भकाय। वेदा गर्भे यस्य। यद्वा वेदानां गर्भाय। वेदेषु प्रकाशमानायेत्यर्थः। त्रयो लोका नाभौ यस्य स त्रिनाभस्तस्मै। त्रयाणां लोकानां पृष्ठे उपरि स्थिताय। शिपिशब्देन पशवो जीवास्तेष्वन्तर्यामितया प्रविष्टाय 'यज्ञो वै विष्णुः पशवः शिपिर्यज्ञ एव पशुषु प्रतितिष्ठति' इति श्रुतेः। यद्वा शिपयो रश्मयस्तैर्वेष्टितायेत्यर्थः। तथापि विष्णवे व्यापिने॥ २६॥

પૂર્વ જન્મમાં અદિતિમાતાનું જ પૃશ્નિ નામ હતું. તેમની કૂખે જન્મેલા '**गर्भाय**' બાળકને, વેદો જેમના ગર્ભમાં છે અથવા વેદના ગર્ભરૂપ (સારરૂપ) ભગવાનને, વેદોમાં પ્રકાશમાન થનારને, એમ અર્થ છે. ત્રણેય લોક જેમની નાભિમાં છે તે '**त्रिनाभः**', તેમને નમસ્કાર. ત્રણેય લોકની '**पृष्ठे**' ઉપર રહેલાને નમસ્કાર. '**शिपिः**' શબ્દથી પશુઓ અર્થાત્ જીવો, તેમનામાં અન્તર્યામી તરીકે પ્રવેશેલાને નમસ્કાર. 'યજ્ઞ ખરેખર વિષ્ણુ છે. શિપિ એટલે પશુઓ. યજ્ઞ જ અહીં પશુઓમાં પ્રતિષ્ઠિત થઈને રહે છે.' અથવા '**शिपयः**' એટલે કિરણો, તે કિરણોથી વીંટળાયેલા, એમ અર્થ છે.॥ ૨૬॥

त्वमादिरन्तो भुवनस्य मध्य-
मनन्तशक्तिं पुरुषं यमाहुः।
कालो भवानाक्षिपतीश विश्वं
स्त्रोतो यथान्तःपतितं गभीरम्॥ २७

હે ઈશ, આપ જગતના આદિ, મધ્ય અને અંત હોઈ જેમને (વેદો) અનંત શક્તિવાળા પુરુષ (એવા નામથી) કહે છે તે આપ જ છો. જેમ નદીનો ગંભીર પ્રવાહ પોતાની અંદર પડેલાં (તરણાં વગેરે)ને ખેંચી જાય છે, તેમ કાળસ્વરૂપ આપ વિશ્વને ખેંચી રહ્યા છો.॥ ૨૭॥

अन्तः पतितं तृणादि यथा गभीरं स्त्रोत आक्षिपत्याकर्षति, तथा कालात्मा भवान्विश्वमाक्षिपति॥ २७॥

પોતાની અંદર પડેલાં તરણાં વગેરેને જેમ ગંભીર પ્રવાહ '**आक्षिपति**' ખેંચી જાય છે, તેમ કાળસ્વરૂપ આપ વિશ્વને ખેંચી રહ્યા છો.॥ ૨૭॥

त्वं वै प्रजानां स्थिरजङ्गमानां
प्रजापतीनामसि सम्भविष्णुः।
दिवौकसां देव दिवश्च्युतानां
परायणं नौरिव मज्जतोऽप्सु॥ २८

હે દેવ, સ્થાવરજંગમ પ્રજાઓ અને પ્રજાપતિઓને ઉત્પન્ન કરનારા આપ જ છો. જળમાં ડૂબતા પ્રાણીને જેમ નૌકા પરમ આશ્રયરૂપ થાય છે, તેમ સ્વર્ગથી ભ્રષ્ટ થયેલા દેવોને આપ જ પરમ આશ્રયરૂપ છો.॥ ૨૮॥

प्रजापतीनां च त्वमेव संभविष्णुरुत्पादन-शीलोऽसि। अयं भावः। न ह्येवंभूतस्य तव जन्मादिसंभवः, किंतु देवानां प्रजापतीनां प्रजानां च परमाश्रयत्वेन तत्कार्यसाधनायावतारोऽयम्। अतस्तान्स्वर्गच्युतान्पुनः स्वर्गे स्थापयेति॥ २८॥

(પ્રજાઓ) અને પ્રજાપતિઓને આપ જ '**सम्भविष्णुः**' ઉત્પન્ન કરનારા છો. ભાવ આ પ્રમાણે છે. આવા, સર્વને ઉત્પન્ન કરનાર એવા આપના જન્માદિ ન સંભવે, પરંતુ દેવોના, પ્રજાપતિઓના અને પ્રજાઓના પરમ આશ્રયરૂપ હોવાથી તેમનું કાર્ય સિદ્ધ કરવા માટે આ (વામન) અવતાર આપે ધારણ કર્યો છે. આથી સ્વર્ગથી ભ્રષ્ટ થયેલા તેમને પુનઃ સ્વર્ગમાં સ્થાપિત કરો.॥ ૨૮॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे वामनप्रादुर्भावे सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

*****

अथाष्टादशोऽध्यायः

વામન ભગવાનનો પ્રાદુર્ભાવ અને બલિરાજાની યજ્ઞશાળામાં ગમન

ततस्त्वष्टादशे भूत्वा वामनः सत्कृतोऽखिलैः ।
यज्ञं गतस्ततस्तेन सत्कृत्योक्तो वरान्वृणु॥ १ ॥

(દેવોની પ્રાર્થના) પછી, સર્વ વડે સત્કાર પામેલા ભગવાન, વામન બનીને (બલિરાજાના) યજ્ઞમાં ગયા. ત્યાર પછી તે બલિ દ્વારા સત્કાર પામ્યા તથા તેમને વરદાન માંગો, એમ કહેવામાં આવ્યું, તે કથા અઢારમા અધ્યાયમાં છે. ॥ ૧ ॥

श्रीशुक उवाच

इत्थं विरिञ्चस्तुतकर्मवीर्यः
प्रादुर्बभूवामृतभूरदित्याम् ।
चतुर्भुजः शङ्खगदाब्जचक्रः
पिशङ्गवासा नलिनायतेक्षणः ॥ १
श्यामावदातो झषराजकुण्डल-
त्विषोल्लसच्छ्रीवदनाम्बुजः पुमान् ।
श्रीवत्सवक्षा वलयाङ्गदोल्लस-
त्किरीटकाञ्चीगुणचारुनूपुरः ॥ २
मधुव्रतव्रातविघुष्टया स्वया
विराजितः श्रीवनमालया हरिः ।
प्रजापतेर्वेश्मतमः स्वरोचिषा
विनाशयन् कण्ठनिविष्टकौस्तुभः ॥ ३

શ્રીશુકદેવજીએ બોલ્યા – આમ, બ્રહ્માજી દ્વારા જેમનાં કર્મ તથા પરાક્રમની સ્તુતિ કરવામાં આવી તે જન્મમૃત્યુરહિત ભગવાન શ્રીહરિ અદિતિમાં પ્રકટ થયા. ચાર ભુજાઓવાળા, (તે ભુજાઓમાં) શંખ, ગદા, પદ્મ અને ચક્ર ધારણ કરેલા, પીતાંબર ધારણ કરેલા, કમળ જેવાં વિશાળ નેત્રવાળા, ઉજ્જ્વળ શ્યામ વર્ણવાળા, મકરાકૃતિ કુંડળની કાન્તિથી ઝળહળતા મુખારવિંદની શોભાવાળા, (મનોહર) પુરુષાકૃતિવાળા, વક્ષઃસ્થળમાં શ્રીવત્સના ચિહ્નવાળા, કંકણો અને કેયૂરો સહિત શોભાયમાન કિરીટ, કંદોરાની સેરો અને સુંદર નૂપુર ધારણ કરેલા, (વક્ષઃસ્થળમાં) મધુકરવૃન્દથી ગુંજતી સુંદર સ્વકીય (શ્રી)વનમાળાથી શોભતા, પોતાના તેજથી કશ્યપ પ્રજાપતિના ભવનના અંધકારનો નાશ કરતા, કૌસ્તુભમણિને કંઠમાં ધારણ કરેલા (અમૃતમય અજન્મા) શ્રીહરિ અદિતિમાં પ્રકટ થયા. ॥ ૧ ॥ ૨ ॥ ૩ ॥

इत्थं विरिञ्चेन स्तुतं कर्म देवकार्यलक्षणं वीर्यं च प्रभावो यस्य सः। हरिरदित्यां प्रादुर्बभूवेति त्रयाणामन्वयः ।अमृतभूर्मृत्युजन्मशून्यः ।

આમ, બ્રહ્માજી દ્વારા જેમનાં કર્મ તથા દેવકાર્યના લક્ષણવાળા પરાક્રમની સ્તુતિ કરવામાં આવી છે તે શ્રીહરિ અદિતિમાં પ્રકટ્યા, એમ ત્રણ શ્લોકોનો અન્વય છે. **'अमृतभूः'** જન્મમૃત્યુરહિત– શંખ, ગદા, કમળ, ચક્ર જેમનાં છે તેવા. **'अर्शस्'** વગેરે શબ્દગણમાં **मतु (मत्)** એ સ્વામિત્વદર્શક પ્રત્યય **'अच्'** લાગે છે–**'अर्शआदिभ्योऽच्'** (પા.સૂ. ૫/૨/૨૭) અહીં

शङ्खगदाब्जचक्राण्यस्य सन्तीति तथा। अर्श-आदित्वेन मत्वर्थीयोऽच् प्रत्ययः। अविसर्गपाठे स चासौ पिशङ्गवासाश्च॥ १ ॥

શંખ-ગદા-પદ્મ-ચક્રવાળા અર્થ થાય છે. વિસર્ગરહિત પાઠમાં **शंखगदाब्जचक्रपिशङ्गवासा** શંખ, ગદા, પદ્મ, ચક્ર અને પીતાંબર ધારણ કરનાર, એમ અર્થ થાય. ॥ ૧ ॥

झषराजो मकरस्तदाकारयोः कुण्डलयो-स्त्विषा उल्लसन्ती श्रीर्वदनाम्बुजे यस्य। श्रीवत्सो वक्षसि यस्य वलयैरङ्गदैश्च सहोल्लसन्ति किरीटादीनि यस्य॥ २ ॥

'**झषराजः**' મગર, તેના આકારનાં બંને કુંડળોની કાંતિથી ઝળહળતી શોભા છે જેમના મુખારવિંદમાં. શ્રીવત્સનું ચિહ્ન જેમના વક્ષઃસ્થળમાં છે. કંકણો અને કેયૂરો સહિત શોભાયમાન કિરીટ વગેરે છે જેમનાં ॥ ૨ ॥

श्रीमत्या वनमालया विराजितः। वेश्मगतं तमः ॥ ३ ॥

સુંદર વનમાળાથી શોભતા– ભવનના અંધકારનો (નાશ કરતા) ॥ ૩ ॥

दिशः प्रसेदुः सलिलाशयास्तदा
प्रजाः प्रहृष्टा ऋतवो गुणान्विताः।
द्यौरन्तरिक्षं क्षितिरग्निजिह्वा
गावो द्विजाः संजहृषुर्नगाश्च॥ ४

(ભગવાન પ્રકટ થયા) ત્યારે દિશાઓ પ્રસન્ન થઈ ગઈ. જળાશયો (અથવા લોકોનાં અંતઃકરણ) નિર્મળ થઈ ગયાં. પ્રજાઓ અતિ હર્ષ પામી. (સર્વ) ઋતુઓ (એક સાથે પોતાના) ગુણો ધારણ કરવા લાગી. સ્વર્ગ, અંતરિક્ષ, પૃથ્વી, દેવો, ગાયો, દ્વિજો અને પર્વતો અત્યંત હર્ષિત થઈ ગયા. ॥ ૪ ॥

अग्निजिह्वा देवाः। नगाः पर्वताः ॥ ४ ॥

'**अग्निजिह्वाः**' દેવો– '**नगाः**' પર્વતો ॥ ૪ ॥

तत्प्रादुर्भावसमयमाह—**श्रोणायामिति**।

તેમના પ્રાદુર્ભાવના સમયનું વર્ણન કરે છે— '**श्रोणायाम् इति।**'

श्रोणायां श्रवणद्वादश्यां मुहूर्तेऽभिजिति प्रभुः।
सर्वे नक्षत्रताराद्याश्चक्रुस्तज्जन्म दक्षिणम्॥ ५

ભાદરવા સુદ બારશના દિવસે શ્રવણ નક્ષત્રમાં ચન્દ્ર હતો ત્યારે અભિજિત મુહૂર્તમાં પ્રભુ વામન ભગવાન (પ્રકટ થયા). સર્વ નક્ષત્રો, તારા તથા (સૂર્યાદિ ગ્રહો) વગેરેએ તેમના જન્મને અતિ મંગળકારી કર્યો. ॥ ૫ ॥

भाद्रपदशुक्लद्वादशी श्रवणद्वादशीति प्रसिद्धा तस्याम्। तत्रापि श्रोणायां श्रवणस्थे चन्द्र इत्यर्थः। तत्रापि श्रवणस्य प्रथमांशेऽभिजिति नक्षत्रे। तच्च श्रुत्या दर्शितम्—'अभिजिन्नाम नक्षत्रमुपरिष्टाद-षाढानामधस्ताच्छ्रोणायाः' इति।

ભાદરવા સુદ બારશ શ્રવણ દ્વાદશી તરીકે પ્રસિદ્ધ છે, તે દિવસે, તેમાં પણ '**श्रोणायाम्**' શ્રવણ નક્ષત્રમાં ચન્દ્ર (હતો ત્યારે), એમ અર્થ છે. તેમાં પણ શ્રવણ નક્ષત્રના પ્રથમ અંશમાં અર્થાત્ અભિજિત નક્ષત્રમાં. તે પણ શ્રુતિ વડે દર્શાવવામાં આવ્યું છે— 'અભિજિત નામનું નક્ષત્ર છે અને તે નક્ષત્રની ઉપર ઉત્તરાષાઢા નક્ષત્ર હોય છે અને તેની નીચે શ્રવણ નક્ષત્ર હોય છે.'

एवं विशिष्टे मुहूर्ते प्रभुः प्रादुर्बभूवेत्यर्थः। किंच नक्षत्राण्यश्विन्यादीनि ताराशब्देन ग्रहा गुरुशुक्रादयस्ते आद्या येषां ते सूर्यादयोऽपि सर्वे तस्य जन्म दक्षिणमुदारं चक्रुः। जन्ममुहूर्ते गुणा बहवो बभूवुरित्यर्थः॥ ५॥

આમ, વિશિષ્ટ મુહૂર્તમાં પ્રભુ વામન ભગવાન પ્રાદુર્ભાવ પામ્યા, એમ અર્થ છે. વળી, અશ્વિની, (ભરણી, કૃત્તિકા) વગેરે નક્ષત્રો, તારા શબ્દથી ગુરુ, શુક્ર વગેરે ગ્રહો, તે સર્વ જેના આદિમાં છે તે સૂર્ય વગેરેએ પણ તેમના જન્મને '**दक्षिणम्**' મંગળકારી કર્યો. જન્મના મુહૂર્તમાં ઘણા ગુણો થયા, એમ અર્થ છે.॥ ૫॥

विशेषान्तरमाह—

બીજું વિશેષ કહે છે—

द्वादश्यां सविताऽतिष्ठन्मध्यंदिनगतो नृप।
विजया नाम सा प्रोक्ता यस्यां जन्म विदुर्हरेः॥ ६

હે રાજા (પરીક્ષિત), જે દ્વાદશી તિથિએ શ્રીહરિનો જન્મ થયો, ત્યારે સૂર્ય મધ્યાહ્નમાં હતો. તે જ દ્વાદશી 'વિજયા દ્વાદશી' નામે કહેવામાં આવી છે.॥ ૬॥

यस्यां द्वादश्यां हरेर्जन्म तत्तस्यामहन्येव विदुः। तदा च मध्यन्दिनगतः सवितातिष्ठत्। सा च द्वादशी विजया नाम प्रोक्तेत्यन्वयः॥ ६॥

જે દ્વાદશી તિથિએ શ્રીહરિનો જન્મ થયો '**तत्**' તે દિવસ વિષે જ વિદ્વાનો જાણે છે. તે સમયે સૂર્ય મધ્યાહ્નમાં હતો. તે જ દ્વાદશી '**વિજયા દ્વાદશી**' નામે કહેવાઈ છે, એમ અન્વય છે.॥ ૬॥

शङ्खदुन्दुभयो नेदुर्मृदङ्गपणवानकाः।
चित्रवादित्रतूर्याणां निर्घोषस्तुमुलोऽभवत्॥ ७

શંખો, નગારાં, નરઘાં, ઢોલ, ઢોલક વાગી રહ્યાં હતાં. જાતજાતનાં વાજિંત્રો અને શરણાઈઓનો મહાન ઘોષ થઈ રહ્યો હતો.॥ ૭॥

शङ्खादयो ये तेषामन्येषां च चित्रतूर्याणां निर्घोषोऽभवत्॥ ७॥

શંખ વગેરે જે હતાં તેમનો તથા અન્ય જાતજાતનાં વાજિંત્રોનો ઘોષ થઈ રહ્યો હતો.॥ ૭॥

प्रीताश्चाप्सरसोऽनृत्यन्गन्धर्वप्रवरा जगुः।
तुष्टुवुर्मुनयो देवा मनवः पितरोऽग्नयः॥ ८

અપ્સરાઓ પ્રસન્ન થઈ નૃત્ય કરતી હતી, શ્રેષ્ઠ ગંધર્વો ગાન કરતા હતા, મુનિઓ સ્તુતિ કરતા હતા, દેવો, મનુઓ, પિતૃઓ અને અગ્નિઓ (પુષ્પવૃષ્ટિ કરતા હતા).॥ ૮॥

देवा मनव इत्यादीनां कुसुमैः समवाकिरन्निति तृतीयेनान्वयः॥ ८॥

દેવો, મનુઓ વગેરે પુષ્પોથી વૃષ્ટિ કરતા હતા– એમ તેનો આનાથી ત્રીજા શ્લોક (૧૦) સાથે અન્વય છે.॥ ૮॥

सिद्धविद्याधरगणाः सकिंपुरुषकिन्नराः।
चारणा यक्षरक्षांसि सुपर्णा भुजगोत्तमाः॥ ९

गायन्तोऽतिप्रशंसन्तो नृत्यन्तो विबुधानुगाः।
अदित्या आश्रमपदं कुसुमैः समवाकिरन्॥ १०
॥ ९॥ १०॥

કિમ્પુરુષો અને કિન્નરો સહિત સિદ્ધો અને વિદ્યાધરોના સમૂહો, ચારણો, યક્ષો, રાક્ષસો, ગરુડો, શ્રેષ્ઠ સર્પો તથા દેવોના અનુચરો ગાતા ગાતા અતિ પ્રશંસા કરતા હતા, નૃત્ય કરતા હતા અને અદિતિમાતાના આશ્રમસ્થાન ઉપર પુષ્પવૃષ્ટિ કરતા હતા.॥ ૯॥ ૧૦॥ ૯॥ ૧૦॥

दृष्ट्वाऽदितिस्तं निजगर्भसम्भवं
परं पुमांसं मुदमाप विस्मिता।
गृहीतदेहं निजयोगमायया
प्रजापतिश्चाह जयेति विस्मितः॥ ११
॥ ११ ॥

અદિતિમાતા તે પરમ પુરુષને પોતાની યોગમાયાથી શરીર ધારણ કરી પોતાના ગર્ભથી જન્મેલા જોઈ વિસ્મિત થયાં અને આનંદ પામ્યાં તથા પ્રજાપતિ કશ્યપ વિસ્મિત થઈ 'જય હો' એમ કહેવા લાગ્યા. ॥ ૧૧ ॥ ૧૧ ॥

विस्मयान्तरमाह—**यत्तदिति**।

બીજા આશ્ચર્યનું વર્ણન કરે છે— **'यत्-तत् इति।'**

यत् तद् वपुर्भाति विभूषणायुधै-
रव्यक्तचिद् व्यक्तमधारयद्धरिः।
बभूव तेनैव स वामनो बटुः
संपश्यतोर्दिव्यगतिर्यथा नटः॥ १२

તે અવ્યક્ત જ્ઞાનસ્વરૂપ શ્રીહરિએ કાન્તિ, આભૂષણો અને આયુધો વડે જે શ્રીવિગ્રહ પ્રકટ ધારણ કર્યો હતો તેના દ્વારા જ જેમ નટ (વેષ બદલે) તેમ દિવ્ય લીલાવાળા તે ભગવાન (માતાપિતાના) દેખતાં જ વામન બ્રહ્મચારી બની ગયા. ॥ ૧૨ ॥

यत्तद्वपुर्हरिरधारयत्प्रकटितवांस्तेनैव वपुषा मातापित्रोः संपश्यतोरेव वामनो बटुर्बभूव। दिव्यगतिरद्भुतचेष्टितः। स्वयं कथंभूतः। अव्यक्त-चिद्रूपः। कथमधारयत्।

જે શ્રીવિગ્રહ શ્રીહરિએ **'अधारयत्'** પ્રકટ (ધારણ) કર્યો હતો તેના જ દ્વારા માતાપિતાના દેખતાં જ તે વામન બ્રહ્મચારી બની ગયા. **'दिव्यगतिः'** અદ્ભુત લીલાવાળા ભગવાન સ્વયં કેવા છે? અવ્યક્ત જ્ઞાનસ્વરૂપ છે. આવું રૂપ કેવી રીતે ધારણ કર્યું?

भातिर्दीप्तिर्विभूषणानि चायुधानि च तैर्व्यक्तं यथा भवति तथा॥ १२॥

'भातिः' દીપ્તિ, આભૂષણો તથા આયુધો, તેમના દ્વારા જે રીતે વ્યક્ત થાય તે રીતે ॥ ૧૨ ॥

तं बटुं वामनं दृष्ट्वा मोदमाना महर्षयः।
कर्माणि कारयामासुः पुरस्कृत्य प्रजापतिम्॥ १३

તે બટુક વામનને જોઈને પ્રસન્ન થયેલા મહર્ષિઓએ પ્રજાપતિ કશ્યપને આગળ કરીને જાતકર્માદિ સંસ્કારો કરાવ્યા. ॥ ૧૩ ॥

कर्माणि जातकर्मादीनि॥ १३॥

'कर्माणि' જાતકર્માદિ સંસ્કારો ॥ ૧૩ ॥

तस्योपनीयमानस्य सावित्रीं सविताब्रवीत्।
बृहस्पतिर्ब्रह्मसूत्रं मेखलां कश्यपोऽददात्॥ १४
॥ १४ ॥

તેમનો ઉપનયન સંસ્કાર થવા લાગ્યો ત્યારે (ગાયત્રીના અધિષ્ઠાતા દેવતા સ્વયં) સૂર્યનારાયણે સાવિત્રીનો ઉપદેશ કર્યો, શ્રીબૃહસ્પતિજીએ ઉપવીત આપ્યું, કશ્યપ ઋષિએ (મુંજ ઘાસની) મેખલા આપી. ॥ ૧૪ ॥ ૧૪ ॥

ददौ कृष्णाजिनं भूमिर्दण्डं सोमो वनस्पतिः।
कौपीनाच्छादनं माता द्यौश्छत्रं जगतः पतेः॥ १५

જગતના પતિ વામન ભગવાનને ભૂમિએ કૃષ્ણ (કાળું) મૃગચર્મ, ઔષધિઓના પતિ ચન્દ્રમાએ દંડ, માતા અદિતિએ કૌપીન વસ્ત્ર અને આકાશે છત્ર આપ્યું. ॥ ૧૫ ॥

वनस्पतिर्वनानां पतिः सोमः ॥ १५ ॥

'वनस्पतिः' વનના અથવા ઔષધિઓના પતિ ચન્દ્રમા ॥ ૧૫ ॥

कमण्डलुं वेदगर्भः कुशान्सप्तर्षयो ददुः ।
अक्षमालां महाराज सरस्वत्यव्ययात्मनः ॥ १६

હે મહારાજ પરીક્ષિત, અવિનાશીસ્વરૂપ વામન ભગવાનને બ્રહ્માજીએ કમંડળ, સપ્તર્ષિઓએ દર્ભ અને સરસ્વતીએ રુદ્રાક્ષની માળા આપી. ॥ ૧૬ ॥

तस्मा इत्युपनीताय यक्षराट् पात्रिकामदात् ।
भिक्षां भगवती साक्षादुमादादम्बिका सती ॥ १७

આ પ્રમાણે ઉપનયન સંસ્કાર પામેલા તે વામન ભગવાનને યક્ષરાજ કુબેરે ભિક્ષાપાત્ર અને સાક્ષાત્ ભગવતી સતી ઉમા અંબિકાએ ભિક્ષા આપી. ॥ ૧૭ ॥

पात्रिकां भिक्षापात्रीम् ॥ १७ ॥

'पात्रिकाम्' ભિક્ષાપાત્ર ॥ ૧૭ ॥

स ब्रह्मवर्चसेनैवं सभां संभावितो बटुः ।
ब्रह्मर्षिगणसञ्जुष्टामत्यरोचत मारिषः ॥ १८

આમ (સર્વનો) સત્કાર પામેલા તે શ્રેષ્ઠ બ્રહ્મચારીએ પોતાના બ્રહ્મતેજથી બ્રહ્મર્ષિઓના સમૂહથી સેવાયેલી સભાને અત્યંત સુશોભિત કરી. ॥ ૧૮ ॥

स एवं संभावितो मारिषः श्रेष्ठो बटुर्ब्रह्मवर्चसेन ब्रह्मर्षिगणसंजुष्टां तां सभामतिक्रम्यारोचत ॥ १८ ॥

આમ, સર્વનો સત્કાર પામેલા તે શ્રેષ્ઠ બ્રહ્મચારી પોતાના બ્રહ્મતેજથી બ્રહ્મર્ષિઓના સમૂહથી સેવાયેલી સભાને અતિક્રમીને શોભવા લાગ્યા. (વામનજીના બ્રહ્મતેજથી બધા ઝાંખા પડી ગયા.) ॥ ૧૮ ॥

समिद्धमाहितं वह्निं कृत्वा परिसमूहनम् ।
परिस्तीर्य समभ्यर्च्य समिद्भिरजुहोद् द्विजः ॥ १९

॥ १९ ॥

(ત્યાર પછી) બ્રાહ્મણ વામનજીએ, સ્થાપેલા પ્રજ્વલિત અગ્નિનું (દર્ભોથી) પરિસમૂહન કરી, (દર્ભોનું) પરિસ્તરણ કરી, (અગ્નિદેવનું) ઉત્તમ અર્ચન કરીને સમિધોથી હોમ કર્યો. ॥ ૧૯ ॥ ૧૯ ॥

बा.प्र.—'परिसमूहनमृजुं कृत्वा परिस्तीर्य प्रसार्य'

પરિસમૂહન અને પરિસ્તરણ–આ બે શબ્દો યજ્ઞવિહિત છે. અગ્નિસ્થાપનની પૂર્વે પરિસમૂહન અને પરિસ્તરણ કરવામાં આવે છે. વેદીને વાળીને શુદ્ધ કરવી એટલે પરિસમૂહન અને દર્ભને પાથરવા એટલે પરિસ્તરણ.

यदर्थं बटुर्बभूव तदाह—**श्रुत्वेत्यादि** यावत्समाप्ति ।

જેને માટે બટુક બ્રહ્મચારી બન્યા તે અધ્યાય સમાપ્ત થાય ત્યાં સુધી કહે છે— **'श्रुत्वा'** ઈત્યાદિ

श्रुत्वाऽश्वमेधैर्यजमानमूर्जितं
बलिं भृगूणामुपकल्पितैस्ततः ।
जगाम तत्राखिलसारसंभृतो
भारेण गां सन्नमयन्पदे पदे ॥ २०

(ત્યાર પછી) ભૃગુવંશી બ્રાહ્મણો દ્વારા કરાવવામાં આવેલા અશ્વમેધ યજ્ઞો દ્વારા યજ્ઞ કરતા બલિરાજાને સમૃદ્ધ બનેલા સાંભળીને અખિલ સામર્થ્યથી સમ્પન્ન શ્રીવામન ભગવાન (પોતાના) ભારથી પગલે પગલે પૃથ્વીને નમાવતા (પોતાના) સ્થાનેથી ત્યાં (બલિરાજા પાસે) ગયા. ॥ ૨૦ ॥

यजमानं यजन्तम्। भृगूणां भृगुभिः। उपकल्पितैः प्रवर्तितैः। अखिलेन सारेण बलेन संभृतः संपूर्णः॥ २०॥

'**यजमानम्**' યજ્ઞ કરતા બલિરાજાને, '**भृगूणाम्**' ભૃગુવંશી બ્રાહ્મણો દ્વારા (ષષ્ઠીને બદલે તૃતીયા લેવી), '**उपकल्पितैः**' કરાવવામાં આવેલા યજ્ઞો દ્વારા– સમગ્ર '**सारेण**' બળથી '**सम्भृतः**' સંપૂર્ણ॥ ૨૦॥

तं नर्मदायास्तट उत्तरे बले-
र्य ऋत्विजस्ते भृगुकच्छसंज्ञके।
प्रवर्तयन्तो भृगवः क्रतूत्तमं
व्यचक्षतारादुदितं यथा रविम्॥ २१

નર્મદાના ઉત્તર કિનારે ભૃગુકચ્છ (ભરૂચ) નામના ક્ષેત્રમાં (બલિરાજા પાસે) અશ્વમેધ નામનો ઉત્તમ યજ્ઞ કરાવતા બલિના જે ભૃગુવંશી ઋત્વિજો હતા, તેમણે તે વામન ભગવાનને પોતાની પાસે ઉદય પામેલા સૂર્ય જેવા નિહાળ્યા.॥ ૨૧॥

नर्मदाया उत्तरे तटे भृगुकच्छसंज्ञके क्षेत्रे क्रतूत्तमं प्रवर्तयन्तो ये बलेर्ऋत्विजो भृगवस्ते तं व्यचक्षतापश्यन्। आरात्समीप एवोदितं रविमिव ॥ २१ ॥

નર્મદાના ઉત્તર કિનારે ભરૂચ નામના ક્ષેત્રમાં ઉત્તમ યજ્ઞ કરાવતા જે બલિરાજાના ભૃગુવંશી ઋત્વિજો હતા, તેમણે તે વામન ભગવાનને '**व्यचक्षत**' નિહાળ્યા. '**आरात्**' સમીપમાં જ ઉદય પામેલા સૂર્ય જેવા॥ ૨૧॥

त ऋत्विजो यजमानः सदस्या
हतत्विषो वामनतेजसा नृप।
सूर्यः किलायात्युत वा विभावसुः
सनत्कुमारोऽथ दिदृक्षया क्रतोः॥ २२

હે નૃપ, વામન ભગવાનના તેજથી નિસ્તેજ થયેલા ઋત્વિજો સહિત યજમાન બલિરાજા અને સભાસદો (તર્ક કરવા લાગ્યા કે) યજ્ઞનાં દર્શન કરવાની ઇચ્છાથી સૂર્યનારાયણ, અગ્નિદેવ કે પછી સનત્કુમાર આવે છે કે શું?॥ ૨૨॥

त ऋत्विगादयः सूर्यः किलेत्येवमादि व्यतर्कयन्निति शेषः॥ २२॥

તે ઋત્વિજો વગેરે તર્ક કરવા લાગ્યા, એટલું શેષ છે (તે ઉમેરવું), કે સૂર્ય વગેરે આવે છે કે શું?॥ ૨૨॥

इत्थं सशिष्येषु भृगुष्वनेकधा
वितर्क्यमाणो भगवान्स वामनः।
छत्रं सदण्डं सजलं कमण्डलुं
विवेश बिभ्रद्धयमेधवाटम्॥ २३

શિષ્યો સહિત ભાર્ગવો દ્વારા આ પ્રમાણે અનેક પ્રકારે જેમને માટે તર્કવિતર્ક થઈ રહ્યો હતો, તે ભગવાન વામન જળભરેલું કમંડળ અને દંડસહિત છત્રને ધારણ કરતા અશ્વમેધયજ્ઞના મંડપમાં પધાર્યા.॥ ૨૩॥

हयमेधवाटमश्वमेधमण्डपं विवेश॥ २३॥

'**हयमेधवाटम्**' અશ્વમેધયજ્ઞના મંડપમાં પધાર્યા. ॥ ૨૩॥

मौञ्ज्या मेखलया वीतमुपवीताजिनोत्तरम्।
जटिलं वामनं विप्रं मायामाणवकं हरिम्॥ २४

(કમરમાં) મુંજ ઘાસની મેખલાથી વીંટાયેલા, જનોઈની જેમ મૃગચર્મનો ઉપરણો ધારણ કરેલા, (મસ્તકે) જટાવાળા, માયાથી બટુક બનેલા શ્રીહરિ એવા વિપ્ર વામનજીને॥ ૨૪॥

प्रविष्टं वीक्ष्य भृगवः सशिष्यास्ते सहाग्निभिः।
प्रत्यगृह्णन्समुत्थाय संक्षिप्तास्तस्य तेजसा॥ २५

(યજ્ઞમંડપમાં) પધારેલા જોઈને તેમના તેજથી અભિભૂત થયેલા ભૃગુવંશી બ્રાહ્મણોએ શિષ્ય સહિત અને અગ્નિઓ સહિત ઊભા થઈને (પાદ્ય, અર્ઘ્ય વગેરે આપી તેમનું) સન્માન કર્યું.॥ ૨૫॥

उपवीताजिनमुपवीतवद्धृतमजिनमेवोत्तर- मुत्तरीयं यस्य तम्॥ २४॥

'उपवीताजिनम्' જનોઈની જેમ ધારણ કરેલ મૃગચર્મ એ જ **'उत्तरम्'** ઉપરણો છે જેમનો તે વામનજીને ॥ ૨૪॥

संक्षिप्ता अभिभूताः सन्तः॥ २५॥

'संक्षिप्ताः' અભિભૂત (પ્રભાવિત) થયેલા ભાર્ગવો વગેરે॥ ૨૫॥

यजमानः प्रमुदितो दर्शनीयं मनोरमम्।
रूपानुरूपावयवं तस्मा आसनमाहरत्॥ २६

યજમાન બલિરાજાએ રૂપને અનુરૂપ (સુડોળ કર, ચરણાદિ) અવયવોવાળા, દર્શનીય, મનોહર વામન ભગવાનની ઝાંખી કરીને અત્યંત આનંદિત થઈ તેમને આસન આપ્યું.॥ ૨૬॥

रूपस्यानुरूपा अवयवा यस्य तम्। दृष्ट्वेति शेषः॥ २६॥

રૂપને અનુરૂપ અવયવો છે જેમના તેમને જોઈને, એટલું શેષ છે.॥ ૨૬॥

स्वागतेनाभिनन्द्याथ पादौ भगवतो बलिः।
अवनिज्यार्चयामास मुक्तसङ्गमनोरमम्॥ २७
॥ २७॥

પછી બલિરાજાએ સ્વાગતપૂર્વક અભિનંદન આપી ભગવાન વામનજીના ચરણોનું પ્રક્ષાલન કરી, આત્મારામ મનુષ્યોને આનંદ આપનાર ભગવાનની અર્ચના કરી.॥ ૨૭॥ ૨૭॥

तत्पादशौचं जनकल्मषापहं
स धर्मविन्मूर्ध्न्यदधात् सुमङ्गलम्।
यद् देवदेवो गिरिशश्चन्द्रमौलि-
र्दधार मूर्ध्ना परया च भक्त्या॥ २८

ધર્મવેત્તા એવા એ બલિરાજાએ મનુષ્યોના કલ્મષનો (પાપનો) નાશ કરનારા, અત્યંત મંગળ એવા તે ચરણના તીર્થજળને પોતાના મસ્તક પર ધારણ કર્યું, કે જેને દેવાધિદેવ ચન્દ્રમૌલિ ભગવાન શંકર પણ પરમ ભક્તિથી મસ્તક ઉપર ધારણ કરે છે.॥ ૨૮॥

चन्द्रमौलिश्चेत्यन्वयः। अप्यर्थे चकारः। चन्द्रमौलिरपि गङ्गारूपं यन्मूर्ध्ना दधारेत्यर्थः ॥ २८॥

ચન્દ્રમૌલિ પણ, એમ અન્વય છે. પણના અર્થમાં 'ચ'કાર છે. ભગવાન ચન્દ્રમૌલિ પણ ગંગાજીરૂપે જેને મસ્તક ઉપર ધારણ કરે છે, એમ અર્થ છે.॥ ૨૮॥

बलिरुवाच

स्वागतं ते नमस्तुभ्यं ब्रह्मन्किं करवाम ते।
ब्रह्मर्षीणां तपः साक्षान्मन्ये त्वाऽऽर्य वपुर्धरम्॥ २९

બલિરાજા બોલ્યા – બ્રાહ્મણકુમાર, (પધારો,) આપનું સ્વાગત છે. આપને નમસ્કાર. હે આર્ય, આપની શી સેવા કરીએ? હું માનું છું કે આપ બ્રહ્મર્ષિઓના સાક્ષાત્ મૂર્તિમાન તપરૂપ જ થયા છો.॥ ૨૯॥

हे आर्य, त्वा त्वां साक्षात्प्रत्यक्षं ब्रह्मर्षीणां तप एव मन्ये। कथंभूतं तपः। वपुर्धरं मूर्तिधारि॥ २९॥

હે આર્ય, **'त्वा'** આપ **'साक्षात्'** પ્રત્યક્ષ, બ્રહ્મર્ષિઓના તપરૂપ જ છો, એમ હું માનું છું. કેવું તપ? **'वपुर्धरम्'** મૂર્તિનું રૂપ ધારણ કરેલું તપ॥ ૨૯॥

अद्य नः पितरस्तृप्ता अद्य नः पावितं कुलम्।
अद्य स्विष्टः क्रतुरयं यद् भवानागतो गृहान्॥ ३०

॥ ३०॥

આજે આપ અમારા ઘરમાં પધાર્યા છો, તેથી અમારા પિતૃઓ તૃપ્ત થયા છે, આજે અમારું કુળ પવિત્ર થયું છે અને આજે આ યજ્ઞ પણ સફળ થયો છે.॥ ૩૦॥

अद्याग्नयो मे सुहुता यथाविधि
द्विजात्मज त्वच्चरणावनेजनैः।
हतांहसो वार्भिरियं च भूरहो
तथा पुनीता तनुभिः पदैस्तव॥ ३१

અહો દ્વિજકુમાર, આજે આપનાં ચરણપ્રક્ષાલિત જળથી જેનું પાપ નાશ પામ્યું છે તેવા મારા અગ્નિઓ વિધિપૂર્વક સારી રીતે આહુતિઓ પામ્યા છે. આ ભૂમિને આપના કોમળ ચરણોથી પવિત્ર કરવામાં આવી છે.॥ ૩૧॥

त्वच्चरणावनेजनैर्वार्भिर्हतमंहो यस्य तस्य मे पुनीता पवित्रीकृता॥ ३१॥

આપનાં ચરણપ્રક્ષાલિત જળથી નાશ પામ્યું છે પાપ જેનું તેવા મારા (અગ્નિઓ)– **'पुनीता'** (ભૂમિ) પવિત્ર કરવામાં આવી છે.॥ ૩૧॥

यद् यद् बटो वाञ्छसि तत्प्रतीच्छ मे
त्वामर्थिनं विप्रसुतानुतर्कये।
गां काञ्चनं गुणवद् धाम मृष्टं
तथाऽन्नपेयमुत वा विप्रकन्याम्।
ग्रामान् समृद्धांस्तुरगान् गजान् वा
रथांस्तथाऽर्हत्तम सम्प्रतीच्छ॥ ३२

હે બટુકજી, હે પરમપૂજ્ય બ્રાહ્મણકુમાર, આપ જે જે ઈચ્છો તે મારી પાસેથી ગ્રહણ કરો. તમને માંગવાની ઈચ્છા હોય એમ મને લાગે છે. હે વિપ્ર, ગાય, સુવર્ણ, સામગ્રીઓથી સુસજ્જિત ઘર, પવિત્ર અન્નપાણી, બ્રાહ્મણકન્યા, સમૃદ્ધ ગામો, ઘોડા, હાથી તથા રથો– જે કાંઈ ઈચ્છા હોય તે મારી પાસે માંગો.॥ ૩૨॥

मे मत्तः प्रतीच्छ गृहाण। हे अर्हत्तम पूज्यतम॥ ३२॥

'मे' મારી પાસેથી **'प्रतीच्छ'** ગ્રહણ કરો. **'हे अर्हत्तम'** હે પરમપૂજ્ય॥ ૩૨॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे वामनप्रादुर्भावे बलिवामनसंवादेऽष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां अष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

*****

अथैकोनविंशोऽध्यायः

ત્રણ પગલાં ભૂમિની યાચના અને શુક્રાચાર્ય દ્વારા દાનનો નિષેધ

ऊनविंशे तु हरिणा याचिते च पदत्रये।
प्रतिश्रुते च बलिना जानन्भृगुरवारयत्॥ १॥

શ્રીહરિ દ્વારા જ્યારે ત્રણ પગલાં ભૂમિ માગવામાં આવી અને રાજા બલિએ તે આપવાનું વચન આપ્યું, ત્યારે તે જાણીને ભૃગુવંશી શુક્રાચાર્યે તેને અટકાવ્યો, તે કથા ઓગણીસમા અધ્યાયમાં છે.॥ ૧॥

दातुः स्तुतिः स्वयंतुष्टिरित्यादि प्रस्तुतोचितम्।
वक्तव्यमिति भिक्षूंस्तु शिक्षयन्नाह वामनः॥ २॥

દાતાની સ્તુતિ અને પોતાનો સંતોષ વગેરે પ્રસંગોચિત કહેવું જોઈએ, એમ ભિક્ષુકોને શીખવતા વામન ભગવાન કહે છે.॥ ૨॥

श्रीशुक उवाच

इति वैरोचनेर्वाक्यं धर्मयुक्तं ससूनृतम्।
निशम्य भगवान्प्रीतः प्रतिनन्द्येदमब्रवीत्॥ १
॥ १ ॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – આમ, વિરોચનપુત્ર બલિનું ધર્મયુક્ત, સત્ય અને માધુર્યયુક્ત વચન સાંભળીને પ્રસન્ન થયેલા તે ભગવાન વામને બલિને અભિનંદન આપી આ પ્રમાણે કહ્યું. ॥ ૧ ॥॥ ૧ ॥

वचस्तवैतदिति षोडशभिः।

‘वचः तव-एतत् इति।’ એમ સોળ શ્લોકોથી (ભગવાન વામન કહે છે).

श्रीभगवानुवाच

वचस्तवैतज्जनदेव सूनृतं
कुलोचितं धर्मयुतं यशस्करम्।
यस्य प्रमाणं भृगवः सांपराये
पितामहः कुलवृद्धः प्रशान्तः॥ २

શ્રીભગવાન બોલ્યા – હે રાજા, જેમને પારલૌકિક ધર્મના વિષયમાં ભૃગુવંશી બ્રાહ્મણો તથા પરમ શાંત, કુળવૃદ્ધ પિતામહ પ્રહ્‌લાદજી માન્ય છે, તેવા આપનું આ વચન સત્ય, મધુર, ધર્મયુક્ત, યશસ્કર અને કુળ(ની પરંપરા)ને યોગ્ય છે.॥ ૨॥

हे जनदेव, सांपराये पारलौकिके धर्मे पितामहश्च प्रह्लादः प्रमाणम्॥ २॥

‘હે રાજા, **‘साम्पराये’** પારલૌકિક ધર્મના વિષયમાં (ભૃગુવંશી બ્રાહ્મણો) તથા પિતામહ પ્રહ્‌લાદજી આપને માન્ય છે.’॥ ૨॥

न ह्येतस्मिन्कुले कश्चिन्निःसत्त्वः कृपणः पुमान्।
प्रत्याख्याता प्रतिश्रुत्य यो वाऽदाता द्विजातये॥ ३

આ કુળમાં કોઈ પણ પુરુષ સત્ત્વહીન, કૃપણ થયો જ નથી, કે જે બ્રાહ્મણને આપવાની ના કહેનારો કે પ્રતિજ્ઞા કરીને ન આપનારો હોય!॥ ૩॥

निःसत्त्वस्य लक्षणं यो द्विजातये याचकाय प्रत्याख्याता न ददामीति वक्ता। कृपणस्य लक्षणं प्रथमं प्रतिश्रुत्य यो वा न दातेति॥ ३॥

માગનાર બ્રાહ્મણને **‘प्रत्याख्याता’** આપવાની ના પાડનારો– એ સત્ત્વહીન મનુષ્યનું લક્ષણ છે અને પહેલાં પ્રતિજ્ઞા કરીને પછી ન આપનારો– એ કૃપણનું લક્ષણ છે.॥ ૩॥

न सन्ति तीर्थे युधि चार्थिनार्थिताः
पराङ्मुखा ये त्वमनस्विनो नृपाः।
युष्मत्कुले यद्यशसाऽमलेन
प्रह्लाद उद्भाति यथोडुपः खे॥ ४

દાનના અવસરે યાચક બ્રાહ્મણ દ્વારા કે યુદ્ધમાં (ક્ષત્રિય દ્વારા) જેમની પાસે દાન કે યુદ્ધ માંગવામાં આવ્યું હોય, ત્યારે ના પાડનારા કે ઉત્સાહરહિત હોય તેવા રાજાઓ (આપના) કુળમાં થયા નથી, કે જે આપના કુળમાં આકાશમાં ચન્દ્ર શોભે તેમ વિશુદ્ધ યશથી પ્રહ્‌લાદજી શોભી રહ્યા છે.॥ ૪॥

तीर्थे दानावसरे। यद्यस्मिन्युष्मत्कुले ॥ ४ ॥

'**तीर्थे**' દાનના અવસરે– '**यत्**' જે આપના કુળમાં ॥ ૪ ॥

यतो जातो हिरण्याक्षश्चरन्नेक इमां महीम्।
प्रतिवीरं दिग्विजये नाविन्दत गदायुधः ॥ ५

જે કુળમાં જન્મેલો, (હાથમાં) ગદાના આયુધવાળો, દિગ્વિજય સમયે આ પૃથ્વી પર એકલો ઘૂમતો હિરણ્યાક્ષ પોતાનો સમોવડિયો ન મેળવી શક્યો. ॥ ૫ ॥

यतो यस्मिञ्जातः ॥ ५ ॥

'**यतः**' જે કુળમાં જન્મેલો ॥ ૫ ॥

यं विनिर्जित्य कृच्छ्रेण विष्णुः क्ष्मोद्धार आगतम्।
नात्मानं जयिनं मेने तद्वीर्यं भूर्यनुस्मरन् ॥ ६

પૃથ્વીનો ઉદ્ધાર કરતી વખતે (સામે) આવેલા જે હિરણ્યાક્ષને મહાકષ્ટથી જીતીને (પણ) તેના મહાન પરાક્રમનું સ્મરણ કરતા વિષ્ણુએ પોતાને વિજયી માન્યા ન હતા. ॥ ૬ ॥

क्ष्मोद्धारे भूम्या उद्धरणे ॥ ६ ॥

'**क्ष्मा-उद्धारे**' પૃથ્વીનો ઉદ્ધાર કરતી વખતે ॥ ૬ ॥

निशम्य तद्वधं भ्राता हिरण्यकशिपुः पुरा।
हन्तुं भ्रातृहणं क्रुद्धो जगाम निलयं हरेः ॥ ७

॥ ७ ॥

ભાઈ હિરણ્યકશિપુ પૂર્વે પોતાના તે ભાઈનો વધ સાંભળી ક્રોધિત થઈ ભાઈનો વધ કરનારને મારવા માટે હરિના નિવાસસ્થાને ગયો હતો. ॥ ૭ ॥ ॥ ૭ ॥

तमायान्तं समालोक्य शूलपाणिं कृतान्तवत्।
चिन्तयामास कालज्ञो विष्णुर्मायाविनां वरः ॥ ८

॥ ८ ॥

માયાવીઓમાં શ્રેષ્ઠ અને સમયને પારખનારા વિષ્ણુએ હાથમાં ત્રિશૂળ લઈને કાળની જેમ ધસી આવતા તે હિરણ્યકશિપુને જોઈને મનમાં વિચાર કર્યો. ॥ ૮ ॥ ॥ ૮ ॥

यतो यतोऽहं तत्रासौ मृत्युः प्राणभृतामिव।
अतोऽहमस्य हृदयं प्रवेक्ष्यामि पराग्दृशः ॥ ९

હું જ્યાં જ્યાં જઈશ ત્યાં ત્યાં દેહધારીઓની પાછળ આવતા મૃત્યુ જેવો આ (પાછળ આવશે), માટે હું બહિર્મુખ એવા આ અસુરના હૃદયમાં જ પ્રવેશી જાઉં. ॥ ૯ ॥

पराग्दृशो बहिर्दृष्टेः ॥ ९ ॥

'**पराक्-दृशः**' જેની દૃષ્ટિ બહાર છે તેવા બહિર્મુખના ॥ ૯ ॥

एवं स निश्चित्य रिपोः शरीर-
माधावतो निर्विविशेऽसुरेन्द्र।
श्वासानिलान्तर्हितसूक्ष्मदेह-
स्तत्प्राणरन्ध्रेण विविग्नचेताः ॥ १०

હે અસુરેન્દ્ર બલિ, ઉદ્વિગ્ન ચિત્તવાળા તે વિષ્ણુ આ પ્રમાણે નિશ્ચય કરી શ્વાસવાયુમાં અદૃશ્ય એવા સૂક્ષ્મદેહવાળા થઈ સામે દોડી આવતા શત્રુના શરીરમાં તે નાસિકામાર્ગે પ્રવેશી ગયા. ॥ ૧૦ ॥

अतो हृदये स्थितं मां न ज्ञास्यतीत्येवं निश्चित्य श्वासानिलेऽन्तर्हितः सूक्ष्मो देहो यस्य। विविग्नमतिकम्पितं चेतो यस्य। अकम्पितचित्त इति वास्तवोऽर्थः॥ १०॥

अन्वि.—'अनुकम्पितचित्त इति वास्तवोऽर्थः।'

स तन्निकेतं परिमृश्य शून्य-
मपश्यमानः कुपितो ननाद।
क्ष्मां द्यां दिशः खं विवरान्समुद्रान्
विष्णुं विचिन्वन् न ददर्श वीरः॥ ११

न ददर्श, अन्तः प्रविष्टत्वात्॥ ११॥

अपश्यन्निति होवाच मयान्विष्टमिदं जगत्।
भ्रातृहा मे गतो नूनं यतो नावर्तते पुमान्॥ १२

पुमान्यतः सकाशान्नावर्तते तद्ब्रह्मैव नूनं गतो नित्यमुक्तत्वादिति वास्तवोऽर्थः॥ १२॥

एवं मृत्युपर्यन्तमखण्डं विष्णौ वैरं यत्कृतवांस्तदुचितमेव तस्याप्रतिद्वन्द्वमहाबल-पराक्रमस्य शूराहंमानविजृम्भितक्रोधानुबन्धस्य कथं नामासौ शूरशिरोमणिर्जीवन्नेव कातरवद् वैरमुपेक्षितवानित्याशङ्क्याह—

वैरानुबन्ध एतावानामृत्योरिह देहिनाम्।
अज्ञानप्रभवो मन्युरहंमानोपबृंहितः॥ १३

આથી હૃદયમાં રહેલા મને જાણશે નહીં, એમ નિશ્ચય કરી શ્વાસવાયુમાં અદશ્ય થયો છે સૂક્ષ્મ દેહ જેમનો તે વિષ્ણુ. '**विविग्नम्**' અતિકંપિત ચિત્ત છે જેમનું– વાસ્તવિક અર્થ છે '**अकम्पितचित्तः**' અત્યંત શાંત ચિત્ત છે જેમનું॥ ૧૦॥

અનુકંપિત છે ચિત્ત જેમનું, એમ વાસ્તવિક અર્થ છે.

વીર એવા તે હિરણ્યકશિપુએ તે વિષ્ણુના સ્થાનને ચારે બાજુથી ખોળીને તેને ન જોતાં કોપાયમાન થઈ ગર્જના કરી. પૃથ્વી, સ્વર્ગ, દિશાઓ, આકાશ, પાતાળ, સમુદ્રોમાં વિષ્ણુને શોધતા એવા તેણે (ક્યાંય તેમને) જોયા નહીં.॥ ૧૧॥

અંદર પ્રવિષ્ટ હોવાથી જોયા નહીં.॥ ૧૧॥

(ક્યાંય પણ) વિષ્ણુને ન જોતાં તે કહેવા લાગ્યો: આ જગતમાં મેં શોધ્યું. (પણ તેને મેં જોયો નહીં, આથી) જ્યાંથી મનુષ્ય પાછો ફરતો નથી, તે (મૃત્યુ)ને જ તે ભાઈનો હણનારો પ્રાપ્ત થયો છે.॥ ૧૨॥

મનુષ્ય જેની પાસે જઈને પાછો નથી ફરતો તે બ્રહ્મને જ ખરેખર પ્રાપ્ત થયો છે, કારણ કે નિત્યમુક્ત છે, એમ વાસ્તવિક અર્થ છે.॥ ૧૨॥

આમ, વિષ્ણુ ઉપર મૃત્યુપર્યન્ત જે અખંડ વેર હિરણ્યકશિપુએ રાખ્યું હતું તે ઉચિત જ છે. પ્રતિદ્વન્દ્વી વગરના, મહાબળવાન, પરાક્રમી, શૌર્યના અભિમાનથી વધી ગયેલા ક્રોધભાવના સંબંધવાળા હિરણ્યાક્ષના વેરની શું એ શૂરવીરશિરોમણિ હિરણ્ય-કશિપુએ ખરેખર જીવતાં જ કાયરની જેમ ઉપેક્ષા કરી હતી? એવી શંકા કરીને કહે છે—

આ સંસારમાં દેહધારીઓનો વેરભાવનો સંબંધ આટલો જ હોય છે. અર્થાત્ મૃત્યુ થાય ત્યાં સુધી જ હોય છે કારણ કે ક્રોધ અજ્ઞાનમાંથી જન્મે છે અને શરીરધારીઓનાં શરીર ઉપરના ગાઢ અભિમાનને કારણે વધે છે.॥ ૧૩॥

वैरानुबन्ध एतावानामृत्योर्भवति। देहिनां देहे निगूढाभिमानवतां शूराणां तथाऽहंमानेनोपबृंहितो मन्युश्च भवत्येव। यतोऽज्ञानप्रभवः, अज्ञाननिवृत्तेः प्राक् पौरुषत्यागो मान्द्यमेवेत्यर्थः ॥ १३ ॥

તો આ પ્રમાણે પૂર્વજોની સ્તુતિ કરી તે બલિના પિતાની પ્રશંસા કરે છે— **'પિતા ઇતિ।'**

'**દેહિનામ્**' શરીર ઉપર ગાઢ અભિમાનવાળા શૂરવીરોને તેવા અભિમાનથી વધી ગયેલો ક્રોધ થાય છે જ, કારણ કે ક્રોધ અજ્ઞાનથી જન્મે છે. અજ્ઞાન દૂર થતાં પહેલાં પૌરુષનો ત્યાગ કરવો એ તો મંદતા–કાયરતા જ છે, એમ અર્થ છે. ॥ ૧૩ ॥

तदेवं पूर्वजान्स्तुत्वा तत्पितरं स्तौति— **पितेति**।

पिता प्रह्लादपुत्रस्ते तद्विद्वान्द्विजवत्सलः।
स्वमायुर्द्विजलिङ्गेभ्यो देवेभ्योऽदात् स याचितः॥ ॥ १४ ॥

પ્રહ્લાદજીના પુત્ર એવા તમારા પિતા બ્રાહ્મણભક્ત હતા. જેમની પાસે માગવામાં આવ્યું હતું તેવા તેમણે (બ્રાહ્મણવેશધારી આ દેવો છે) તે જાણતા હોવા છતાં બ્રાહ્મણવેશધારી દેવોને પોતાનું આયુષ્ય આપી દીધું હતું. ॥ ૧૪ ॥

द्विजवेषधारिणो मद्वैरिणो देवा एते न तु द्विजा इति तद्विद्वानपि स याचितः सन्स्वीयमायुर्देवेभ्यो ददौ॥ १४ ॥

આ બ્રાહ્મણવેશધારી, મારા શત્રુઓ એવા દેવો છે પણ બ્રાહ્મણો નથી, એમ તે હકીકત જાણતા હોવા છતાં પણ જેમની પાસે માગવામાં આવ્યું તેવા તેમણે પોતાનું આયુષ્ય દેવોને આપી દીધું. ॥ ૧૪ ॥

भवानाचरितान्धर्मानास्थितो गृहमेधिभिः।
ब्राह्मणैः पूर्वजैः शूरैरन्यैश्चोद्दामकीर्तिभिः॥ १५ ॥ १५ ॥

આપ પણ ગૃહસ્થાશ્રમી બ્રાહ્મણો, પૂર્વજો અને અન્ય વિપુલ કીર્તિવાળા શૂરવીરો દ્વારા આચરેલા ધર્મોનું યથાર્થ પાલન કરો છો. ॥ ૧૫ ॥ ॥ ૧૫ ॥

तस्मात् त्वत्तो महीमीषद् वृणेऽहं वरदर्षभात्।
पदानि त्रीणि दैत्येन्द्र संमितानि पदा मम॥ १६

તેથી હે દૈત્યેન્દ્ર, વરદાન આપનારાઓમાં શ્રેષ્ઠ એવા આપની પાસેથી મારા પગથી મપાયેલાં ત્રણ પગલાં જેટલી થોડી ભૂમિ હું માગું છું. ॥ ૧૬ ॥

मम पदा संमितानीति त्रिविक्रमपदाभिप्रायेण न चानृतवादः, तत्रापि स्वपदत्वानपगमात्॥ १६ ॥

મારા પગથી મપાયેલાં–એમ જે કહ્યું છે તે ત્રણ વિશાળ પગલાંના અભિપ્રાયથી કહેલું છે, તેથી તે અસત્ય વચન નથી. તે વિષયમાં પણ પોતાનાં પગલાંનો ભાવ જણાય છે. ॥ ૧૬ ॥

नान्यत् ते कामये राजन्वदान्याज्जगदीश्वरात्।
नैनः प्राप्नोति वै विद्वान्यावदर्थप्रतिग्रहः॥ १७

હે રાજા, દાનવીર અને જગતના ઈશ્વર એવા આપની પાસેથી હું બીજું કાંઈ માગતો નથી. જેટલું પ્રયોજન હોય તેટલું જ સ્વીકારનારો વિદ્વાન (પ્રતિગ્રહજન્ય) પાપમાં પડતો નથી. ॥ ૧૭ ॥

यावदर्थमेव प्रतिग्रहो यस्य सः॥ १७॥

જેટલું પ્રયોજન હોય તેટલા જ દાનનો સ્વીકાર છે જેને તે. ॥ ૧૭ ॥

ईश्वरस्यापि याच्ञाप्रकारं चोक्त्वा बलेर्बन्धन-प्रश्नोत्तरत्वेन तस्य गर्वातिरेकेणाधिक्षेपप्रकारमाह— **अहो इति** त्रिभिः।

बलिरुवाच

अहो ब्राह्मणदायाद वाचस्ते वृद्धसंमताः।
त्वं बालो बालिशमतिः स्वार्थं प्रत्यबुधो यथा॥ १८

ते वाचो वृद्धानां संमतास्त्वं तु बालो बालिशमतिश्च बालिशानामज्ञानामिव मतिर्यस्य। अत एव स्वार्थं प्रति यथावदबुधः। वस्तुतस्तु बाल इवाबालिशमतिश्चेति च्छेदः। स्वार्थं प्रत्यबुधः इति च भक्तानामेवार्थं बुध्यसे न स्वार्थम्। परिपूर्णस्य तव तद्व्यतिरेकेण स्वार्थाभावादित्यर्थः ॥ १८॥

અબુધત્વમેવાહ—**मामिति**।

मां वचोभिः समाराध्य लोकानामेकमीश्वरम्।
पदत्रयं वृणीते योऽबुद्धिमान् द्वीपदाशुषम्॥ १९

द्वीपस्य दाशुषं दातारम्। अबुद्धिमान् वस्तुतस्तु बुद्धिमानित्येव छेदः॥ १९॥

दाश् = આપવું. તેનું પરોક્ષ ભૂ.કૃ. **दाशिवस्**, તેનું દ્વિ.એ.વ. **दाशुषम्**

न पुमान् मामुपव्रज्य भूयो याचितुमर्हति।
तस्माद् वृत्तिकरीं भूमिं बटो कामं प्रतीच्छ मे॥ २०

कामं यथेच्छं सम्यक् पादप्रसारणेनेत्यर्थः। अत एव तथा करिष्यति॥ २०॥

ઈશ્વરની પણ માગવાની રીત કહીને બલિના બંધનના પ્રશ્નના ઉત્તરરૂપે તે બલિના ગર્વના અતિરેકથી કહેલાં નિંદામિશ્રિત વચનોનો પ્રકાર ત્રણ શ્લોકો વડે જણાવે છે— '**अहो इति**'

બલિરાજા બોલ્યા – અહો! બ્રાહ્મણકુમાર, તમારી વાણી વૃદ્ધજનોને પણ સમ્મત છે, (તો પણ) તમે બાળક છો અને બાળકબુદ્ધિના છો. સ્વાર્થ પ્રત્યે નાદાન જેવા છો.॥૧૮॥

તમારી વાણી વૃદ્ધજનોને સમ્મત છે, તો પણ તમે બાળક છો અને બાળકબુદ્ધિના છો. '**बालिशः**' અબુધોના જેવી મતિ છે જેની, આથી જ સ્વાર્થ પ્રત્યે નાદાન જેવા છો. વાસ્તવિક રીતે તો બાળક જેવા, બાળકબુદ્ધિ નથી. '**अबालिशमतिः**' એમ પદચ્છેદ છે. સ્વાર્થ પ્રત્યે અજ્ઞાત છો અર્થાત્ ભક્તોનું જ પ્રયોજન જાણો છો, પોતાનું નહીં. પરિપૂર્ણ એવા આપ તેનાથી (સ્વાર્થથી) ભિન્ન હોવાથી આપનામાં સ્વાર્થનો અભાવ છે, એમ અર્થ છે.॥૧૮॥

નાદાનિયતનું જ વર્ણન કરે છે— '**माम् इति**।'

જે મનુષ્ય ત્રણેય લોકના એક જ અધિપતિ અને એક બેટ આપી શકે તેવા ઉદાર દાતા એવા મારી વાણીથી પ્રશંસા કરીને ત્રણ પગલાં ભૂમિ માગે તે મનુષ્ય બુદ્ધિમાન નથી.॥૧૯॥

બેટ પણ આપી શકે તેવા '**दाशुषम्**' દાતાને, '**अबुद्धिमान्**' વાસ્તવમાં '**बुद्धिमान्**' એમ જ પદચ્છેદ છે.॥૧૯॥

હે બટુક બ્રહ્મચારી, મનુષ્યે (એક વાર) મારી પાસે આવી, (યાચના કરીને) ફરીથી (અન્ય પાસે) યાચના કરવાનું રહેતું નથી. તેથી તમારી આજીવિકા ચલાવવા જેટલી ભૂમિ મારી પાસેથી ખુશીથી માગી લો.॥૨૦॥

'**कामम्**' યથેચ્છ, ખુશીથી. અંદર પ્રવેશીને પગ સારી રીતે પહોળા કરવા દ્વારા, એમ અર્થ છે. આથી તે પ્રમાણે જ કરશે.॥૨૦॥

पुनरपि निस्पृहत्वमेवाविष्कुर्वन्नाह— **यावन्त इति** सप्तभिः ।

श्रीभगवानुवाच

यावन्तो विषयाः प्रेष्ठास्त्रिलोक्यामजितेन्द्रियम् ।
न शक्नुवन्ति ते सर्वे प्रतिपूरयितुं नृप॥ २१

॥ २१ ॥

त्रिभिः क्रमैरसंतुष्टो द्वीपेनापि न पूर्यते ।
नववर्षसमेतेन सप्तद्वीपवरेच्छया॥ २२

नववर्षसमेतेन द्वीपेनापि सप्तानां द्वीपवराणामिच्छया॥ २२ ॥

सप्तद्वीपाधिपतयो नृपा वैन्यगयादयः ।
अर्थैः कामैर्गता नान्तं तृष्णाया इति नः श्रुतम्॥ २३

तृष्णाया अन्तं न गता इत्यस्माभिः श्रुतम् ॥ २३ ॥

यदृच्छयोपपन्नेन संतुष्टो वर्तते सुखम् ।
नासंतुष्टस्त्रिभिर्लोकैरजितात्मोपसादितैः ॥ २४

असंतुष्टप्राप्तैस्त्रिभिर्लोकैरपि न सुखं वर्तते ॥ २४ ॥

पुंसोऽयं संसृतेर्हेतुरसंतोषोऽर्थकामयोः ।
यदृच्छयोपपन्नेन संतोषो मुक्तये स्मृतः॥ २५

यदृच्छालाभतुष्टस्य तेजो विप्रस्य वर्धते ।
तत् प्रशाम्यत्यसंतोषादम्भसेवाशुशुक्षणिः ॥ २६

ફરી પાછી નિઃસ્પૃહતા જ પ્રકટ કરતા સાત શ્લોકો વડે કહે છે— **'यावन्तः इति।'**

શ્રીવામન ભગવાન બોલ્યા – હે રાજા, ત્રણે લોકમાં જેટલા અતિપ્રિય પદાર્થો છે તે સર્વ અજિતેન્દ્રિય મનુષ્યને પરિતૃપ્ત કરવા માટે સમર્થ નથી.॥ ૨૧ ॥॥ ૨૧ ॥

ત્રણ પગલાં પૃથ્વીથી અસન્તુષ્ટ એવો મનુષ્ય નવ ખંડો સહિતના એક દ્વીપથી પણ સંતુષ્ટ થતો નથી, (કારણ કે એક દ્વીપ મળ્યા પછી) સાત દ્વીપો માગવાની ઈચ્છા થવાથી (તે અસન્તુષ્ટ જ રહેશે).॥ ૨૨ ॥

નવ ખંડો સહિત એક દ્વીપથી પણ સંતુષ્ટ થતો નથી. (એક દ્વીપ મળ્યા પછી) સાતે દ્વીપ માગવાની ઈચ્છા થવાથી॥ ૨૨ ॥

સાત દ્વીપોના અધિપતિઓ એવા પૃથુ, ગય વગેરે રાજાઓ ધન અને કામને કારણે જન્મેલી તૃષ્ણાનો પાર પામ્યા ન હતા, એમ અમે સાંભળ્યું છે.॥ ૨૩ ॥

તૃષ્ણાનો પાર પામ્યા ન હતા, એમ અમે સાંભળ્યું છે.॥ ૨૩ ॥

દૈવેચ્છાથી પ્રાપ્ત થયેલી વસ્તુથી સંતુષ્ટ થનારો જેમ સુખ મળે તેમ રહે છે. મનને વશમાં ન રાખનારો અસંતોષી પ્રાપ્ત થયેલા ત્રણે લોકથી પણ સુખ થાય તેમ રહેતો નથી.॥ ૨૪ ॥

અસંતુષ્ટ મનુષ્ય દ્વારા પ્રાપ્ત થયેલા ત્રણે લોકોથી પણ સુખે રહી શકાતું નથી.॥ ૨૪ ॥

મનુષ્યને ધન અને કામનો આ અસન્તોષ સંસારના કારણરૂપ છે અને દૈવેચ્છાથી મળેલ પદાર્થથી થતો સંતોષ મુક્તિના કારણરૂપ માનવામાં આવ્યો છે.॥ ૨૫ ॥ ૨૫ ॥

દૈવેચ્છાથી મળેલ વસ્તુથી સંતુષ્ટ રહેનાર વિપ્રનું તેજ વધે છે, પરંતુ જેમ અગ્નિ જળ વડે શાન્ત થઈ જાય તેમ અસંતોષથી બ્રહ્મતેજ શાંત થઈ જાય છે.॥ ૨૬ ॥

आशुशुक्षणिरग्निः ॥ २६ ॥

तस्मात् त्रीणि पदान्येव वृणे त्वद् वरदर्षभात् ।
एतावतैव सिद्धोऽहं वित्तं यावत्प्रयोजनम् ॥ २७

सिद्धोऽहं कृतार्थः । एतावतैव सर्वस्वापहार-सिद्धेरिति गूढोऽभिप्रायः । तदेवाह—वित्तं हि यावत्प्रयोजनमेव सुखम् । अधिकस्य क्लेशावहत्वादित्यर्थः ॥ २७ ॥

श्रीशुक उवाच

इत्युक्तः स हसन्नाह वाञ्छातः प्रतिगृह्यताम् ।
वामनाय महीं दातुं जग्राह जलभाजनम् ॥ २८
॥ २८ ॥

विष्णवे क्ष्मां प्रदास्यन्तमुशना असुरेश्वरम् ।
जानंश्चिकीर्षितं विष्णोः शिष्यं प्राह विदां वरः ॥ २९
॥ २९ ॥

शुक्र उवाच

एष वैरोचने साक्षाद् भगवान्विष्णुरव्ययः ।
कश्यपाददितेर्जातो देवानां कार्यसाधकः ॥ ३०
॥ ३० ॥

बा.प्र.—हे वैरोचने इति सम्बोधयन् यथा देवैस्तव पितुश्छलो जातस्तथैवानेन तवापीति सूचयति ।

प्रतिश्रुतं त्वयैतस्मै यदनर्थमजानता ।
न साधु मन्ये दैत्यानां महानुपगतोऽनयः ॥ ३१

अनयोऽन्यायः ॥ ३१ ॥

अन्यायमेवाह—**एष इति** ।

'**आशुशुक्षणिः**' અગ્નિ ॥ ૨૬ ॥

તેથી વરદશિરોમણિ એવા આપની પાસેથી હું ત્રણ પગલાં પૃથ્વી જ પસંદ કરું છું. આટલાથી જ હું કૃતાર્થ થઈશ, (કારણ કે) ધન તો જરૂર જેટલું (જ સારું). ॥ ૨૭ ॥

'**सिद्धः अहम्**' કૃતાર્થ (થઈશ). '**एतावता एव**' આટલાથી જ બધી સંપત્તિ હરી લેવાનું પ્રયોજન સિદ્ધ થઈ જતું હોવાથી. તે જ કહે છે— ધન તો જરૂર જેટલું જ સુખરૂપ છે, કારણ કે અધિક ધન દુઃખદાયી છે, એમ અર્થ છે. ॥ ૨૭ ॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – આમ, જેમને કહેવામાં આવ્યું તે બલિરાજા હસતાં હસતાં કહે છે કે (આપની) ઈચ્છાનુસાર સ્વીકારો. (એમ કહી) તે બલિરાજાએ વામનજીને ભૂમિનું દાન (આપવાનો સંકલ્પ) કરવા માટે જળનું પાત્ર ગ્રહણ કર્યું. ॥ ૨૮ ॥ ૨૮ ॥

ત્રિકાળજ્ઞાનીઓમાં શ્રેષ્ઠ અને વિષ્ણુ ભગવાન જે કરવા ઈચ્છે છે તે જાણતા શુક્રાચાર્યે વિષ્ણુને ભૂમિ પ્રદાન કરનાર (પોતાના) શિષ્ય અસુરેશ્વર બલિને કહ્યું. ॥ ૨૯ ॥ ॥ ૨૯ ॥

શુક્રાચાર્ય બોલ્યા – હે વિરોચનપુત્ર, આ અવિનાશી ભગવાન સાક્ષાત્ વિષ્ણુ દેવોના કાર્યસાધક છે અને કશ્યપથી અદિતિમાં જન્મ્યા છે! ॥ ૩૦ ॥ ૩૦ ॥

'હે વિરોચનપુત્ર' એમ સંબોધન કરતાં સૂચવે છે કે જેમ દેવો દ્વારા તારા પિતા વિરોચનને ઠગવામાં આવ્યા હતા તેમ જ આ વિષ્ણુ વડે તને પણ ઠગવામાં આવી રહ્યો છે.

અનર્થ ન જાણતા એવા તારા દ્વારા આને જે વચન આપવામાં આવ્યું છે, તેને હું યોગ્ય માનતો નથી. દૈત્યોને મહાન અન્યાય થવાનો પ્રસંગ આવ્યો છે. ॥ ૩૧ ॥

'**अनयः**' અન્યાય ॥ ૩૧ ॥

અન્યાયનું જ વર્ણન કરે છે— '**एषः इति**।'

एष ते स्थानमैश्वर्यं श्रियं तेजो यशः श्रुतम्।
दास्यत्याच्छिद्य शक्राय मायामाणवको हरिः॥ ३२
॥ ३२ ॥

ननु मया पदत्रयमेव प्रतिश्रुतं नाधिकं तत्राह—**त्रिभिरिति**।

त्रिभिः क्रमैरिमाँल्लोकान्विश्वकायः क्रमिष्यति।
सर्वस्वं विष्णवे दत्त्वा मूढ वर्तिष्यसे कथम्॥
॥ ३३ ॥

क्रमतामिति चेत्तत्राह—**सर्वस्वमिति**॥ ३३॥

तथापि प्रतिश्रुतं संपादनीयमेवेति चेत्तत्राह—**क्रमत इति** द्वाभ्याम्।

क्रमतो गां पदैकेन द्वितीयेन दिवं विभोः।
खं च कायेन महता तार्तीयस्य कुतो गतिः॥ ३४

एकेन पदा पादन्यासेन भूमिं क्रममाण-स्येत्यर्थः। तार्तीयस्य तृतीयपादन्यासस्य॥ ३४॥

निष्ठां ते नरके मन्ये ह्यप्रदातुः प्रतिश्रुतम्।
प्रतिश्रुतस्य योऽनीशः प्रतिपादयितुं भवान्॥ ३५

तथापि सर्वस्वदानात्कीर्तिस्तावद्भविष्यतीति चेत्तत्राह—**न तद्दानमिति**।

न तद्दानं प्रशंसन्ति येन वृत्तिर्विपद्यते।
दानं यज्ञस्तपः कर्म लोके वृत्तिमतो यतः॥ ३६

માયાથી વામન બનેલો આ હરિ તારું સ્થાન, ઐશ્વર્ય, લક્ષ્મી, તેજ અને વિશ્વવિખ્યાત કીર્તિ છીનવીને ઈન્દ્રને આપી દેશે.॥ ૩૨ ॥ ૩૨ ॥

શંકા કરવામાં આવી છે કે બલિરાજા જો કહે કે મેં તો ત્રણ પગલાં જ વચન આપ્યું હતું, અધિક નહીં, તો તે માટે કહે છે— '**त्रिभिः इति।**'

વિશ્વ જેટલી કાયા બનાવીને ત્રણ પગલાં વડે (આ વામન) આ(ત્રણે) લોકને માપી લેશે. હે મૂર્ખ, સર્વસ્વ વિષ્ણુને આપી દઈ જીવનનિર્વાહ કેવી રીતે કરીશ?॥ ૩૩ ॥

જો કહેવામાં આવે કે 'તે ભલે પગલાં ભરે' તો તે માટે કહે છે— '**सर्वस्वम् इति।**'॥ ૩૩ ॥

(હું મૂર્ખ હોઉં) તો પણ વચન પૂરું કરવું યોગ્ય જ છે, એમ જો (બલિ કહે) તો તે માટે બે શ્લોકો વડે કહે છે— '**क्रमतः इति।**'

એક પગલાથી ભૂમિ, બીજા પગલાથી સ્વર્ગ અને દેહ વડે આકાશમાં પગલું ભરતા વિશ્વરૂપ (વિષ્ણુ)ના ત્રીજા પગલાની ગતિ ક્યાં થશે?॥ ૩૪ ॥

એક '**पदा**' પાદવિન્યાસથી, પગલાથી ભૂમિ માપતા વિભુના '**तार्तीयस्य**' ત્રીજા પગલાની॥ ૩૪ ॥

જે તું આપેલા વચનને પાળવા અસમર્થ છે, એવા આપેલા વચન પ્રમાણે વસ્તુ ન આપનાર તારું સ્થાન નરકમાં થશે, એમ હું માનું છું, ॥ ૩૫ ॥ ૩૫ ॥

(વચન પૂરું કરવા માટે અસમર્થ હોઉં) તો પણ સર્વસ્વના દાતા તરીકે કીર્તિ તો થશે જ, એમ જો (બલિ) કહે તો તે માટે કહે છે— '**न-तत्-दानम् इति।**'

જે દાનથી પોતાની આજીવિકા નાશ પામે તે દાનની (વિદ્વાનો) પ્રશંસા નથી કરતા, કારણ કે સંસારમાં આજીવિકાવાળા મનુષ્યનાં જ દાન, યજ્ઞ, ચિત્તની એકાગ્રતા અને પૂર્તકર્મ થાય છે.॥ ૩૬ ॥

तपश्चित्तैकाग्र्यम्। कर्म पूर्तम्॥ ३६ ॥

धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च।
पञ्चधा विभजन्वित्तमिहामुत्र च मोदते॥ ३७
॥ ३७ ॥

ननु तर्हि प्रतिश्रुत्य नेति कथमनृतं वाच्यं तत्राह—**अत्रापीति** सार्धैः षड्भिः।

अत्रापि बह्वृचैर्गीतं शृणु मेऽसुरसत्तम।
सत्यमोमिति यत् प्रोक्तं यन्नेत्याहानृतं हि तत्॥ ३८

अत्रापि सत्यानृतव्यवस्थायाम्। बह्वृचश्रुत्या हि प्रथमम्—'ओमिति सत्यं नेत्यनृतम्' इत्यादिना सत्यानृतयोर्लक्षणपूर्वकं स्तुतिनिन्दाभ्यां सत्यं विहितमनृतं च निषिद्धम्। अनन्तरं च—'पराग्वा एतद्रिक्तमक्षरम्' इत्यादिना सत्ये दोषाननृते च गुणानुक्त्वा—'तस्मात्काल एव दद्यात्काले न दद्यात्तत्सत्यानृते मिथुनीकरोति'

'तपः' ચિત્તની એકાગ્રતા, **'कर्म'** પૂર્તકર્મ (વાવ, ધર્મશાળા, દવાખાનાં વગેરે બંધાવવાં)॥ ૩૬ ॥

ધર્મ માટે, યશ માટે, વેપાર (અર્થવૃદ્ધિ) માટે, કામભોગ માટે અને સ્વજનો માટે– એમ પાંચ પ્રકારે ધનનું વિભાજન કરતો મનુષ્ય આ લોક અને પરલોકમાં સુખ પામે છે.॥ ૩૭ ॥ ૩૭ ॥

શંકા કરવામાં આવી છે કે તો પછી (હું આપીશ, એમ) વચન આપીને, હું નહીં આપું, એમ અસત્ય કેવી રીતે કહેવાય? તે વિષયમાં સાડા છ શ્લોકો દ્વારા કહે છે— **'अत्र अपि इति।'**

હે અસુરશ્રેષ્ઠ, આ વિષયમાં (સત્ય અને અસત્યનો નિશ્ચય કરવામાં) ઋગ્વેદીઓ દ્વારા ગવાયું છે, (તે તું) મારી પાસેથી સાંભળ. 'ઓમ્' એમ કહીને યાચના સ્વીકાર કરવા દ્વારા જે કહેવામાં આવે છે તે સત્ય છે અને તે યાચનાને નકારવી તે જ અસત્ય છે.॥ ૩૮ ॥

'अत्र-अपि' સત્ય અને અસત્યનો નિશ્ચય કરવાના વિષયમાં– પ્રથમ ઋગ્વેદની શ્રુતિ દ્વારા– 'ઓમ્' એમ યાચનાનો અંગીકાર કરવા દ્વારા જે કહેવામાં આવે છે તે સત્ય છે અને તે યાચનાને નકારવી તે અસત્ય છે.' (ઐ. આ. ૨/૩/૬/૮) વગેરે દ્વારા સત્ય અને અસત્યના લક્ષણપૂર્વકની સ્તુતિ અને નિંદા દ્વારા સત્યનું વિધાન કરવામાં આવ્યું છે અને અનૃતનો નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે અને ત્યાર પછી 'ઓમ્' એમ યાચનાનો અંગીકાર કર્યા પછી યાચક ધનને લઈને દૂર જાય છે અને આ 'ઓમ્' અક્ષર રિક્ત અર્થાત્ ખાલી કરનાર છે. (ઐ.આ.૨/૬/૩/૧૧) વગેરે દ્વારા સત્યમાં દોષો અને અસત્યમાં ગુણો કહીને, 'તેથી યોગ્ય સમયે જ દાન આપવું અને અયોગ્ય સમયે ન આપવું, એમ સત્ય અને અસત્ય બંનેને મિશ્ર કરે છે.' (ઐ.આ.૨/૬/૩/૧૩) આમ, ઉપસંહાર કરીને આજીવિકાના સંકટ વગેરેમાં

इत्युपसंहारेण वृत्तिसंकटादिष्वनृतमप्यनुज्ञातम्, तमिमं श्रुत्यर्थं दर्शयन्नाह—ओमित्यङ्गीकारेण यत्प्रोक्तं तत्सत्यम्। नेति यदाह तदेवानृतम्॥ ३८॥

અસત્યની પણ અનુજ્ઞા આપવામાં આવી છે. તે આ શ્રુતિનો અર્થ દર્શાવતાં કહે છે— 'ઓમ્' એમ સ્વીકાર કરવા દ્વારા જે કહેવામાં આવે છે તે સત્ય છે અને 'ના' એમ જે કહે તે જ અસત્ય છે. (એકલું સત્ય પણ નહીં અને એકલું અસત્ય પણ નહીં, એમ ઉપસંહાર કરવામાં આવ્યો છે.)॥ ૩૮॥

तत्तु सत्यमीषदनृतं विना न सिध्यती-त्याशयेनाह—

પરંતુ સત્ય તો થોડા અસત્ય વિના સિદ્ધ થતું નથી, એ આશયથી કહે છે —

सत्यं पुष्पफलं विद्यादात्मवृक्षस्य गीयते।
वृक्षेऽजीवति तन्न स्यादनृतं मूलमात्मनः॥ ३९

સત્ય એ શરીરરૂપી વૃક્ષનાં પુષ્પ અને ફળ છે, એમ જાણવું, એમ (વેદોમાં) કહેવાય છે. વૃક્ષ નષ્ટ થતાં પુષ્પ અને ફળ થતાં નથી, (કારણ કે) અસત્ય શરીરનું મૂળ છે.॥ ૩૯॥

सत्यं पुष्पफलं विद्याज्जानीयात्। आत्मवृक्षस्य देहरूपस्य वृक्षस्य। कुतः। गीयते श्रुत्योच्यते इत्यर्थः।

સત્યને પુષ્પ અને ફળ **'विद्यात्'** જાણવું. **'आत्मवृक्षस्य'** શરીરરૂપી વૃક્ષનાં, શા માટે? **'गीयते'** શ્રુતિ દ્વારા કહેવામાં આવ્યું છે, એમ અર્થ છે.

पाठान्तरं तु सुगमम्। यद्यपि श्रुत्या वाचः सत्यं पुष्पफलं चेत्युक्तं तथापि वाचो देहनिर्वाहा-धीनत्वादात्मवृक्षस्येति प्रस्तुतानुसारेणोक्तम्। भवतु पुष्पफलस्थानीयं सत्यं, ततः किमत आह—वृक्षे देहे अजीवति तत् पुष्पफलं न स्यात्।

(आत्मवृक्षस्य गीयते ને બદલે) **आत्मवृक्षस्य जीवतः** એમ પાઠાંતર સરળ છે. શરીરરૂપી વૃક્ષ જીવતું હોય તો સત્યરૂપી ફળ-ફૂલ આવે. જો કે શ્રુતિ દ્વારા વાણીરૂપી વૃક્ષનાં ફળ-ફૂલને પણ સત્ય કહેવામાં આવ્યું છે, તેમ છતાં **'वाचः'** વાણી શરીરરૂપી વૃક્ષના નિર્વાહને અધીન હોવાથી, પ્રસ્તુત વિષય અનુસાર કહેવામાં આવ્યું છે. એમ ભલે બને કે સત્ય પુષ્પ અને ફળના સ્થાને હોય. તો પછી શું થાય તે કહે છે— **'वृक्षे'** દેહ નષ્ટ થાય ત્યારે તે પુષ્પ, ફળ હોય નહીં.

'सा न स्यात्' इति पाठे श्रुत्युक्ताया वाचः परामर्शः। देहश्चानृतेन रक्षणीय इत्याह—अनृतं त्वात्मनो देहस्य मूलम्॥ ३९॥

(तन्न स्यात् ને બદલે) **'सा न स्यात्'** પાઠમાં, શ્રુતિ દ્વારા કહેવામાં આવેલી વાણીનો વિચાર કરવામાં આવ્યો છે. વળી, દેહ અસત્ય દ્વારા રક્ષણ કરવાયોગ્ય છે, એમ કહે છે— અસત્ય તો **'आत्मनः'** શરીરનું મૂળ છે.॥ ૩૯॥ (વાણી શબ્દથી દેહ લક્ષિત થાય છે.)

एतदेव दृष्टान्तेन स्पष्टयति—

(અસત્ય એ શરીરનું મૂળ છે) એ જ વાત દૃષ્ટાંતથી સ્પષ્ટ કરે છે—

तद् यथा वृक्ष उन्मूलः शुष्यत्युद्वर्ततेऽचिरात्।
एवं नष्टानृतः सद्य आत्मा शुष्येन्न संशयः ॥ ४०

જેમ ઉખાડી નાખેલા મૂળવાળું વૃક્ષ જલદી સુકાઈ જાય છે અને પડી જાય છે, તેમ નાશ પામેલા અસત્ય(રૂપી મૂળ)વાળું શરીર તરત જ સુકાઈ જાય છે, તેમાં સંશય નથી. ॥ ૪૦ ॥

तद्यथा वृक्ष उत्पाटितमूलः शुष्यत्यचिरादेवोद्वर्तते पतति च, एवं नष्टमनृतं यस्य स आत्मा देहः शुष्येत्। यद्यपि च श्रुत्या— 'एवमेवानृतं वदन्नात्मानमाविर्मूलं करोति' इत्येवं निन्दयाऽनृतं निषिद्धं तथाप्युपसंहारानुसारेण तत्केवलानृतविषयमित्यभिप्रेत्यैवं व्याख्यातम्। 'दयेत त्वेतेन' इति च तयैवोक्तेः।

'**तत्**' જેમ ઉખાડી નાખેલા મૂળવાળું તે વૃક્ષ તરત જ સુકાઈ જાય છે અને '**उत्-वर्तते**' પડી જાય છે, એમ જેનું અસત્ય નાશ પામ્યું છે તે '**आत्मा**' શરીર સુકાઈ જાય છે. જો કે શ્રુતિ દ્વારા— 'આ જ રીતે અસત્ય બોલતો મનુષ્ય શરીરને પ્રકટ થયેલા મૂળવાળો કરે છે.' (ઐ.આ.૨/૩/૬/૧૦) આમ નિંદા દ્વારા અસત્યનો નિષેધ કરે છે. તેમ છતાં પણ ઉપસંહારમાં તે કેવળ અસત્યના વિષયવાળું છે, એમ અભિપ્રાય રાખીને આ પ્રમાણે વ્યાખ્યા કરે છે, 'પરંતુ આ અસત્ય દ્વારા પોતાની રક્ષા કરવી જોઈએ.' (ઐ.આ.૨/૩/૬/૧૦) એમ પણ તે શ્રુતિ દ્વારા જ કહેવામાં આવ્યું છે.

तथा च श्रुतिः—'ओमिति सत्यं नेत्यनृतं तदेतत्पुष्पं फलं वाचो यत्सत्यं स हेश्वरो यशस्वी कल्याणकीर्तिर्भविता पुष्पं हि फलं वाचः सत्यं वदत्यथैतन्मूलं वाचो यदनृतं तद्यथा वृक्ष आविर्मूलः शुष्यति स उद्वर्तत एवमेवानृतं वदन्नाविर्मूलमात्मानं करोति स शुष्यति स उद्वर्तते तस्मादनृतं न वदेद्दयेत त्वेतेन' इति। एतेनानेन त्वनृतेन दयेत संकटेष्वात्मानं रक्षेदिति श्रुत्यर्थः ॥ ४० ॥

તે પ્રમાણે શ્રુતિ છે— 'ઓમ્ એમ સ્વીકાર કરવા દ્વારા સત્ય કહેવામાં આવે છે અને નકારવા દ્વારા અસત્ય કહેવામાં આવે છે. તે આ સત્ય વાણીરૂપી દેહનાં પુષ્પ અને ફળ છે. વાણીરૂપી દેહનાં પુષ્પ અને ફળરૂપ સત્ય બોલનાર મનુષ્ય દેવ બને છે, (લૌકિક ધન સંપત્તિ વગેરે) યશવાળો થાય છે તથા (વૈદિક પુણ્યકર્મો અનુષ્ઠાન કરનારી) કલ્યાણકારી કીર્તિવાળો થાય છે. હવે વાણીરૂપી શરીરના મૂળરૂપ જે આ અસત્ય છે તે, જેમ પ્રકટ થઈ ગયેલા મૂળવાળું વૃક્ષ સુકાઈ જાય છે, ઊખડી જાય છે, તેવી જ રીતે અસત્ય બોલતો મનુષ્ય પોતાને પ્રકટ થયેલા મૂળવાળો કરે છે અને તેથી તે સુકાઈ જાય છે, નાશ પામે છે, માટે અસત્ય બોલવું જોઈએ નહીં, પરંતુ સંકટસમયે આ અસત્ય દ્વારા પોતાના શરીરની રક્ષા કરવી જોઈએ.' (ઐ.આ.૨/૩/૬/૧૦) પરંતુ '**एतेन**' આ અસત્ય દ્વારા '**दयेत**' સંકટસમયે પોતાના શરીરની રક્ષા કરવી જોઈએ, એમ શ્રુતિનો અર્થ છે. ॥ ૪૦ ॥

सर्वथा सत्यवचनेन देहो न निर्वहेदिति स्फुटीकर्तुं सत्यस्य दोषाननृतस्य गुणानाह— **परागिति** द्वाभ्याम्।

पराग् रिक्तमपूर्णं वा अक्षरं यत् तदोमिति।
यत् किञ्चिदोमिति ब्रूयात् तेन रिच्येत वै पुमान्।
भिक्षवे सर्वमोङ्कुर्वन्नालं कामेन चात्मने॥ ४१

संપૂર્ણપણે સત્ય બોલવાથી શરીરનો નિર્વાહ ન થાય એમ સ્પષ્ટ કરવા માટે સત્યના દોષો અને અસત્યના ગુણો બે શ્લોકો વડે કહે છે— '**पराक् इति।**'

'ઓમ્' (હા, હું આપીશ) એ જે શબ્દ છે તે દ્વારા યાચક ધનને લઈને દૂર જનારો છે તેમ જ આ 'ઓમ્' શબ્દ દાતાને અપૂર્ણ, ખાલી કરનારો છે. જે (દાતા) કોઈને 'ઓમ્' કહે તેનાથી તે મનુષ્ય ધનહીન, ભોગશૂન્ય થઈ જાય છે. ભિક્ષુની સર્વ યાચના સ્વીકારતા મનુષ્યને પોતાને માટે પૂરતાં ભોગસાધનો રહેતાં નથી.॥ ૪૧ ॥

यदोमित्यक्षरं तत्पराक् दूरेऽर्थं गृहीत्वाऽञ्चतीति पराक् रिक्तमिति श्रुतिपदस्य व्याख्यानमपूर्णं वै इति। तत्तस्मादर्थिने यत्किंचिदोमिति दास्यामीति ब्रूयात्तेन रिच्येत न्यूनो भवेत्। किंच भिक्षवे सर्वमोंकुर्वन्दास्यामीत्यङ्गीकुर्वन्नात्मने कामेन नालं पर्याप्तो न भवति। तस्य भोगो न सिध्यतीत्यर्थः।

तथा च श्रुतिः—'पराग्वा एतद् रिक्तमक्षरं यदेतदोमिति तद्यत्किंचोमित्याहात्रैवास्मै तद् रिच्यते स यत्स सर्वमोंकुर्यात् रिच्यादात्मानं स कामेभ्यो नालं स्यात्' इति॥ ४१ ॥

જે 'ઓમ્' અક્ષર છે તે દ્વારા યાચક ધનને દૂર લઈને જનારો બને છે, એટલે '**पराक्**' અને '**रिक्तम्**' એ શ્રુતિ પદની વ્યાખ્યા દાતાને ખાલી, અપૂર્ણ કરનારી છે. '**तत्**' તેથી યાચક જે કાંઈ માગે તેમાં 'ઓમ્' હું આપીશ એમ દાતા યાચકને કહે, તેથી તે દાતા '**रिच्येत**' ખાલી થઈ જાય. વળી, યાચકની સર્વ યાચના માટે 'ઓમ્' કહીને સ્વીકાર કરનાર મનુષ્યને પોતાને માટે '**न-अलम्**' પર્યાપ્ત ભોગ રહેતા નથી. તેનો ભોગ સિદ્ધ થતો નથી, એમ અર્થ છે.

તે અનુસાર શ્રુતિ છે— "જે ઓમ્ અક્ષર છે તે દ્વારા યાચક ધનને લઈને દૂર જનારો બને છે અને રિક્ત શબ્દ સૂચવે છે અપૂર્ણ. જે કોઈને 'ઓમ્' એમ કહે તે માટે આ લોકમાં ધન ખૂટી જાય છે. સર્વ બાબતમાં 'હા' કહેનાર મનુષ્યને પોતાને માટે પૂરતાં ભોગસાધનો રહેતાં નથી." (એ. આ. ૨/૩/૬/૧૧)॥ ૪૧ ॥

अथैतत् पूर्णमभ्यात्मं यच्च नेत्यनृतं वचः।
सर्वं नेत्यनृतं ब्रूयात् स दुष्कीर्तिः श्वसन्मृतः॥ ४२

અને જો મનુષ્ય (યાચકને) 'ના' એમ અસત્ય કહે, તો (અર્થ વ્યય ન થવાથી મનુષ્યને) એ રીતે ભરપૂર રાખે છે તથા પોતાની પાસે (ધન ખેંચી લાવે છે તો ખરો,) પણ સર્વને 'ના'એમ અસત્ય કહે તે અપકીર્તિવાળો જીવતાં મરેલો છે.॥ ૪૨ ॥

नेति यदनृतं वच एतत्पूर्णमर्थव्ययाभावात्। अभ्यात्मं चेति चकारान्वयः। आत्मनोऽभिमुख-

'ના' એમ જે અસત્ય વચન, એ '**पूर्णम्**' અર્થનો વ્યય ન થવાથી ભરપૂર રાખે છે. '**अभि-आत्मम् च इति।**' ચકાર દ્વારા બે જુદાં વાક્યો બનાવવાં. પોતાના તરફ બીજાના ધનને આકર્ષે તે '**अभि-**

मन्यस्यार्थमाकर्षतीत्यभ्यात्मम्। यो हि नित्यं मम किंचिदपि नास्ति सीदामीति ब्रूते स हि तेनानृतेन परेषामर्थानाकर्षतीति प्रसिद्धम्। ननु तर्हीदमनृतमेव सर्वदा सेव्यं स्यान्नेत्याह— सर्वमिति। तथा च श्रुतिः—'अथैतत्पूर्णमभ्यात्मं यन्नेति स यत्सर्वं नेति ब्रूयात्पापिकास्य कीर्तिर्जायेत सैनं तत्रैव हन्यात्' इति॥ ४२॥

आत्मम्' જે હંમેશાં એમ જ કહ્યા કરે છે કે 'મારું કાંઈ છે નહીં, હું દુ:ખી છું,' તે અસત્યના કારણે તે અન્યનું ધન આકર્ષે છે, તે પ્રસિદ્ધ છે. શંકા કરે છે કે તો પછી સદાય જૂઠું જ બોલવું જોઈએ. તો કહે છે ના— '**सर्वम् इति**' શ્રુતિ પણ તે અનુસાર છે— હવે તે મનુષ્ય 'આ દાન હું નહીં આપું.' એમ જે વચન કહે (છે), તે આ વચન ધનને પૂર્ણ રાખે છે. વળી, (ન અપાયેલું અને પૂર્ણરૂપે રહેલું તે ધન) બીજા ધનને પોતાના તરફ લાવી આપે છે. 'ધનનું દાન નથી આપવું' એમ સર્વ પ્રત્યે જે વચન કહે (છે) તેની અપકીર્તિ થાય છે. એ અપકીર્તિ તેને ત્યાં જ (લોભમાં જ) હણી નાખે (છે).॥ ૪૨॥

अतो वृत्तिसंकटादिष्वनृतं न दोषायेत्युपसंहरति—

आथी આજીવિકાના સંકટ વગેરેમાં અસત્ય બોલવાથી દોષ નથી, એમ ઉપસંહાર કરે છે–

स्त्रीषु नर्मविवाहे च वृत्त्यर्थे प्राणसंकटे।
गोब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम्॥ ४३

સ્ત્રીઓ(ને પ્રોત્સાહન આપવામાં, વશ કરવા)માં, વિનોદમાં, વિવાહમાં, આજીવિકામાં, પ્રાણસંકટના પ્રસંગે (સત્ય બોલવાથી) ગાયો અને બ્રાહ્મણોની હિંસા થતી હોય, ત્યારે અસત્ય બોલવું નિંદ્ય નથી. (તેમાં પાપ તો છે જ.)॥ ૪૩॥

स्त्रीषु प्रोत्साहनेन वशीकरणे, नर्मणि परिहासे, विवाहे च वरादिस्तुतौ, गवां ब्राह्मणानां च हितार्थम्, हिंसायां च कस्यचित्प्राप्तायाम्। तथा च याज्ञवल्क्यः—'वर्णिनां हि वधो यत्र तत्र साक्ष्येऽनृतं वदेत्' इति। तथा च श्रुतिः — 'तस्मात्काल एव दद्यात्काले न दद्यात्तत्सत्यानृते मिथुनीकरोति' इति॥ ४३॥

સ્ત્રીઓને પ્રોત્સાહન આપવામાં કે વશ કરવામાં, **नर्मणि** પરિહાસ (વિનોદ)માં તથા '**विवाहे**' વર વગેરેની પ્રશંસા કરવામાં, ગાયો અને બ્રાહ્મણોના હિત માટે, '**हिंसायाम्**' કોઈની હિંસા થતી હોય ત્યારે– તે અનુસાર યાજ્ઞવલ્ક્યજી કહે છે— 'જ્યાં કોઈ પણ બ્રહ્મચારીનો વધ થતો હોય, ત્યાં સાક્ષી તરીકે અસત્ય બોલવું જોઈએ.' (યાજ્ઞવલ્ક્ય સ્મૃતિ ૨/૮૩) શ્રુતિ પણ કહે છે— 'માટે યોગ્ય સમયે આપવું જોઈએ અને અયોગ્ય સમયે ન આપવું, તેથી સત્ય અને અસત્ય બંનેને જોડી દે છે.' (ઐ.આ.૨/૩/૬/૧૪)॥ ૪૩॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे वामनप्रादुर्भावे एकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां एकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

*****

अथ विंशोऽध्यायः

બલિરાજાનું ત્રણ પગલાં ભૂમિદાન અને વામનજીનું વિરાટ રૂપ

विंशे त्वनृतभीतोऽसौ ज्ञात्वापि कपटं हरेः।
ददावेव ततो विष्णुः सहसाऽवर्धताद्भुतम्॥ १॥

અસત્યથી ભય પામેલા તે બલિરાજાએ શ્રીહરિનું કપટ જાણીને પણ (પૃથ્વીનું દાન) આપ્યું જ. (દાન ગ્રહણ કર્યા) પછી ભગવાન વિષ્ણુ એકાએક અદ્ભુત રીતે વધવા લાગ્યા.॥ ૧॥

श्रीशुक उवाच

बलिरेवं गृहपतिः कुलाचार्येण भाषितः।
तूष्णीं भूत्वा क्षणं राजन्नुवाचावहितो गुरुम्॥ १॥ १॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – હે રાજા (પરીક્ષિત), કુલાચાર્ય શુક્ર દ્વારા આ પ્રમાણે જેને કહેવામાં આવ્યું તે ગૃહપતિ બલિરાજાએ સાવધાન થઈ ક્ષણ માટે મૌન થઈ ગુરુને કહ્યું.॥ ૧॥ ૧॥

बलिरुवाच

सत्यं भगवता प्रोक्तं धर्मोऽयं गृहमेधिनाम्।
अर्थं कामं यशो वृत्तिं यो न बाधेत कर्हिचित्॥ २

બલિરાજા બોલ્યા – ધન, ભોગ, યશ અને આજીવિકાને કોઈ પણ રીતે હાનિ ન કરે તેવો ગૃહસ્થોનો જે આ ધર્મ છે, તે આપ ભગવાન દ્વારા સત્ય જ કહેવામાં આવ્યો છે.॥ ૨॥

भगवता त्वया प्रोक्तं सत्यम्। किं तत्। योऽर्थकामादिकं न बाधेत स हि गृहमेधिनां धर्म इति॥ २॥

'भगवता' આપ ભગવાન દ્વારા કહેવામાં આવ્યું તે સત્ય છે. તે કયો ધર્મ છે? જે ધર્મ ધન, ભોગ વગેરેને આંચ ન આવવા દે તે જ ગૃહસ્થોનો ધર્મ છે.॥ ૨॥

स चाहं वित्तलोभेन प्रत्याचक्षे कथं द्विजम्।
प्रतिश्रुत्य ददामीति प्राह्लादिः कितवो यथा॥ ३

પરંતુ તે પ્રહ્લાદપૌત્ર હું '(યાચકને) આપીશ' એમ પ્રતિજ્ઞા કરીને ધનના લોભથી ધૂર્તની જેમ બ્રાહ્મણને કેવી રીતે ના પાડું?॥ ૩॥

कथं प्रत्याचक्षे निराकरोमि॥ ३॥

'कथं प्रत्याचक्षे' કેવી રીતે ના પાડું?॥ ૩॥

न ह्यसत्यात् परोऽधर्म इति होवाच भूरियम्।
सर्वं सोढुमलं मन्ये ऋतेऽलीकपरं नरम्॥ ४॥ ४॥

આ ધરતીએ કહ્યું જ છે કે અસત્યથી મોટો બીજો કોઈ અધર્મ નથી. અસત્યપરક (બોલનાર) મનુષ્ય સિવાય (મેરુ, મન્દર વગેરે) સર્વને સહન કરવા (મારી જાતને) હું સમર્થ માનું છું.॥ ૪॥ ૪॥

નોંધ—ઋગ્વેદ અંતર્ગત ઐતરેય આરણ્યકના દ્વિતીય આરણ્યકના ત્રીજા અધ્યાયના છઠ્ઠા ખંડના મંત્રોનું શ્રીમદ્ ભાગવતના ૮/૧૯/૩૮ થી ૪૨ સુધીના શ્લોકોમાં પ્રતિબિંબ છે. **अत्रापि** (શ્લોક-૩૮)થી **'अथैतत्'** (શ્લોક-૪૨) સુધીના શ્લોકોમાં ઐતરેય આરણ્યકના મંત્રોને જ ભાગવતકારે પુરાણના સ્વાંગમાં લોકભોગ્ય બનાવવાનો પ્રયત્ન કર્યો છે. ભાગવતકારને વેદ હસ્તામલકવત્ છે, આથી શ્રીમદ્ ભાગવતમાં વેદપ્રાચુર્ય પદે પદે નિખરી ઊઠે છે.

नन्वप्रत्याख्याने दोषा उक्तास्तत्राह— **नाहमिति।**

शंका કરવામાં આવી કે પ્રતિજ્ઞા ન પાળવામાં (ધન અને ભોગને લગતી મુશ્કેલીઓરૂપ) અનર્થ કહેવામાં આવ્યા છે. તેના ઉત્તરમાં (રાજા) કહે છે— **'न-अहम् इति।'**

नाहं बिभेमि निरयान्नाधन्यादसुखार्णवात्।
न स्थानच्च्यवनान्मृत्योर्यथा विप्रप्रलम्भनात्॥ ५

હું જેવો વિપ્રની વંચનાથી ભય પામું છું, તેવો નરકથી, દુઃખના સાગરથી, દરિદ્રતાથી, પદભ્રષ્ટ થવાથી કે મૃત્યુથી પણ ભય પામતો નથી. ॥ ૫ ॥

अधन्याद्दारिद्र्यान्मृत्योरपि ॥ ५ ॥

'अधन्यात्' દ્રરિદ્રતાથી, મૃત્યુથી પણ ॥ ૫ ॥

यद् यद्धास्यति लोकेऽस्मिन्संपरेतं धनादिकम्।
तस्य त्यागे निमित्तं किं विप्रस्तुष्येन्न तेन चेत्॥ ६

આ સંસારમાં જે જે ધન વગેરે છે તે મૃત્યુ પામેલા મનુષ્યને ત્યજી જ દેશે. (તો જીવતાં જ પોતે શા માટે ન આપવું?) વળી, તે ધનથી જો વિપ્ર સંતુષ્ટ ન થાય તો તેનું દાન કરવાનું પ્રયોજન શું? ॥ ૬ ॥

यद्यद्धनादिकं तत्सर्वं संपरेतं मृतं पुरुषं हास्यति त्यक्ष्यत्येव। तत्किमिति जीवतैव स्वयं न देयमिति भावः।

જે જે ધન વગેરે છે તે બધું **'सम्परेतम्'** મૃત્યુ પામેલા પુરુષને **'हास्यति'** ત્યજી જ દેશે, તો શા માટે જીવતાં જ પોતે દાન ન કરવું, એવો ભાવ છે.

तथापि तावद्वृत्तिसंकटपरिहारार्थमर्धं दीयतामिति चेत्तत्राह—तस्येति। विप्रश्चेत्तेनार्थेन दत्तेनापि न तुष्येत्तर्हि तस्यार्थस्य त्यागे दाने किं निमित्तम्, न किंचित्। याचितादल्पस्य दाने विप्रस्यासंतोषेण दानं व्यर्थमेव स्यात्, अतस्त-द्याचितं सर्वं देयं न किंचिदिति भावः॥ ६॥

છતાં પણ આજીવિકામાં મુશ્કેલી દૂર કરવા માટે અર્ધું આપવામાં આવે, એમ જો કહેવામાં આવે તો તે માટે ઉત્તર આપે છે— **'तस्य इति।'** તે આપેલા ધનથી પણ જો વિપ્ર સંતુષ્ટ ન થાય, તો તે ધનના **'त्यागे'** દાનનું શું પ્રયોજન છે? કંઈ જ નહીં. માગેલાથી થોડું આપવામાં બ્રાહ્મણના અસંતોષથી દાન વ્યર્થ જ જવાનું છે, આથી માગવામાં આવેલું બધું જ આપવું જોઈએ, થોડું નહીં, એવો ભાવ છે. ॥ ૬ ॥

तर्हि न देयमेवेति चेत्तत्राह—**श्रेय इति।**

તો પછી આપવું જ નહીં, એમ જો કહેવામાં આવે તો તે માટે ઉત્તર આપે છે— **'श्रेयः इति।'**

श्रेयः कुर्वन्ति भूतानां साधवो दुस्त्यजासुभिः।
दध्यङ्शिबिप्रभृतयः को विकल्पो धरादिषु॥ ७

દધીચિ ઋષિ, શિબિ રાજા વગેરે સાધુપુરુષો દુઃખથી ત્યજી શકાય તેવા પોતાના પ્રાણ(ના ત્યાગ)થી પ્રાણીઓનું કલ્યાણ કરે છે, તો ભૂમિ વગેરે આપી દેવામાં શો વિચાર કરવાનો? ॥ ૭ ॥

दुस्त्यजैरसुभिरपि। को विकल्पो विचारः ॥ ७ ॥

દુઃખથી ત્યજી શકાય તેવા પોતાના પ્રાણના પણ ત્યાગથી– શું '**विकल्पः**' વિચાર કરવાનો ? ॥ ૭ ॥

यैरियं बुभुजे ब्रह्मन्दैत्येन्द्रैरनिवर्तिभिः।
तेषां कालोऽग्रसील्लोकान् न यशोऽधिगतं भुवि ॥ ८

હે બ્રહ્મન્, (યુદ્ધમાં) પીછેહઠ ન કરનારા જે દૈત્યરાજાઓ દ્વારા આ પૃથ્વીને ભોગવવામાં આવી, તેમના ભોગોનો કાળ કોળિયો કરી ગયો, પરંતુ પૃથ્વી પર પ્રાપ્ત કરેલા યશને કાળ ગળી શકે નહીં. ॥ ૮ ॥

यैर्दैत्येन्द्रैर्युद्धेऽनिवर्तिभिरियं भूर्बुभुजे उपभुक्ता। तेषामिह लोकान्परलोकांश्च भोगानिति वा। कालोऽग्रसीत्संहृतवान्न तु भुवि तैरधिगतं प्राप्तं यशोऽग्रसीत्। अतः कीर्तिरेव साध्या नान्यदिति भावः ॥ ८ ॥

યુદ્ધમાં પીછેહઠ ન કરનારા જે દૈત્યરાજાઓ દ્વારા આ પૃથ્વી '**बुजुभे**' ભોગવવામાં આવી, તેમના આ લોક, પરલોક અથવા ભોગોનો કાળ '**अग्रसीत्**' કોળિયો કરી ગયો છે, પણ પૃથ્વી પર તેમના દ્વારા '**अधिगतम्**' પ્રાપ્ત થયેલા યશને કાળ ગળી ગયો નથી. આથી કીર્તિ જ સાધવા યોગ્ય છે, બીજું કાંઈ નહીં, એવો ભાવ છે. ॥ ૮ ॥

देहत्यागादपि धनत्यागे कीर्तिर्भवतीत्याह— **सुलभा इति**।

દેહનો ત્યાગ કરવા કરતાં પણ ધનનો ત્યાગ કરવામાં પ્રતિષ્ઠા થાય છે, એમ કહે છે— '**सुलभाः इति।**'

सुलभा युधि विप्रर्षे ह्यनिवृत्तास्तनुत्यजः।
न तथा तीर्थ आयाते श्रद्धया ये धनत्यजः ॥ ९

હે બ્રહ્મર્ષિ, યુદ્ધમાં પાછી પાની ન કરી શરીર છોડનારા (મનુષ્યો આ સંસારમાં) સુલભ છે, પરંતુ સુપાત્ર આવે ત્યારે જેઓ શ્રદ્ધાથી ધનનો ત્યાગ કરનારા હોય તેવા (મનુષ્યો) સુલભ નથી. ॥ ૯ ॥

तनुं त्यजन्तीति तनुत्यजः। तीर्थे पात्रे। अतोऽतिदुष्करो धनत्याग एव मया कार्य इति भावः ॥ ९ ॥

તનુ અર્થાત્ શરીર ત્યાગ કરે છે તેઓ '**तनुत्यजः**' છે. '**तीर्थे**' સુપાત્ર આવે ત્યારે– આથી અતિ દુષ્કર એવો ધનત્યાગ જ મારે કરવા યોગ્ય છે, એવો ભાવ છે. ॥ ૯ ॥

तर्हि निर्धनत्वेन दैन्यं स्यादिति चेत्तत्राह— **मनस्विन इति**।

(આ રીતે ધનનો ત્યાગ કરવામાં આવે) તો પછી નિર્ધન થઈ જવાને કારણે (દરિદ્રતારૂપી) દૈન્ય આવશે, એમ જો કહેવામાં આવે તો તે માટે ઉત્તર આપે છે— '**मनस्विनः इति।**'

मनस्विनः कारुणिकस्य शोभनं
यदर्थिकामोपनयेन दुर्गतिः।
कुतः पुनर्ब्रह्मविदां भवादृशां
ततो बटोरस्य ददामि वाञ्छितम्॥ १०

યાચકની ઈચ્છા પૂરી કરવાથી જે દુર્ગતિ (રૂપ દરિદ્રતા) આવે તે, ઉદાર અને દયાળુ મનુષ્ય માટે શોભાસ્પદ છે, તો આપના જેવા બ્રહ્મવેત્તા મનુષ્યોને (દાન કરવાથી) દુર્ગતિ(રૂપ દરિદ્રતા) આવે એ શોભાસ્પદ હોય એ માટે શું કહેવું? (માટે) આ બ્રહ્મચારીને હું ઈચ્છિત વસ્તુ આપીશ.॥ ૧૦॥

यादृशतादृशानामप्यर्थिनां कामोपनयेन कामपूरणेन दुर्गतिर्दैन्यमिति यत् तच्छोभनं भद्रमेव। भवादृशानां तु कामोपनयेन दुर्गतिः शोभनमिति किं पुनर्वक्तव्यमित्यर्थः॥ १०॥

જેવા તેવા યાચકોની '**काम-उपनयेन**' ઈચ્છા પૂરી કરવાથી જે '**दुर्गतिः**' દુર્ગતિરૂપ દૈન્ય આવે તે '**शोभनम्**' કલ્યાણકારી જ છે. આપના જેવા યાચકોની ઈચ્છા પૂરી કરવાથી થયેલી દુર્ગતિ શોભાસ્પદ હોય તે માટે વળી શું કહેવા જેવું છે, એમ અર્થ છે.॥ ૧૦॥

ननु नायं बटुः किंतु विष्णुस्तव शत्रुरित्युक्तं, तर्हि सुतरामेव दास्यामीत्याह—**यजन्तीति**।

આ તો બ્રહ્મચારી નથી, પણ તારો શત્રુ વિષ્ણુ છે, એમ કહેવામાં આવ્યું. તે માટે કહે છે કે જો વિષ્ણુ હોય તો વધારે સારું. આપીશ જ, એમ કહે છે— '**यजन्ति इति।**'

यजन्ति यज्ञक्रतुभिर्यमादृता
भवन्त आम्नायविधानकोविदाः।
स एव विष्णुर्वरदोऽस्तु वा परो
दास्याम्यमुष्मै क्षितिमीप्सितां मुने॥ ११

હે મુનિ, વેદોક્ત યજ્ઞોનું અનુષ્ઠાન કરવામાં કુશળ એવા આપ જેમનું યજ્ઞયાગાદિથી યજન કરો છો, તે આ વરદાની વિષ્ણુ હોય કે કોઈ બીજો (શત્રુ) હોય, પણ તેણે પ્રાપ્ત કરવા ઈચ્છેલી પૃથ્વી હું તેને આપીશ. ॥ ૧૧॥

परः शत्रुर्वाऽस्तु॥ ११॥

'**परः**' અથવા કોઈ બીજો શત્રુ હોય॥ ૧૧॥

अन्वि.—यज्ञैः ससोमैः क्रतुभिरसोमकैश्च।

યજ્ઞ સોમસહિત હોય અને ક્રતુ સોમરહિત હોય છે.

यदप्यसावधर्मेण मां बध्नीयादनागसम्।
तथाप्येनं न हिंसिष्ये भीतं ब्रह्मतनुं रिपुम्॥ १२
॥ १२॥

જો તે નિરપરાધી એવા મને અધર્મથી બાંધે, તો પણ બ્રાહ્મણનું શરીર ધારણ કરેલા આ ભયભીત શત્રુની હિંસા હું નહીં કરું. ॥ ૧૨॥ ૧૨॥

एष वा उत्तमश्लोको न जिहासति यद् यशः।
हत्वा मैनां हरेद् युद्धे शयीत निहतो मया॥ १३

જો આ શ્રેષ્ઠ કીર્તિવાળા (વિષ્ણુ) જ હશે તો પોતાનો યશ છોડવા નહીં ઈચ્છે. કાં તો યુદ્ધમાં મને હણીને આ ભૂમિ લઈ લે અથવા મારા હાથે મૃત્યુ પામી શયન કરે.॥ ૧૩॥

यद्यदि यशो न जिहासति तर्हि युद्धेऽयं मां हत्वैनां भूमिं हरेच्छयीत वा। सम्यग्ज्ञातः सन्मम चित्ते शयीतेति वास्तवोऽर्थः॥ १३॥

'यत्' જો (ઉત્તમ કીર્તિવાળા વિષ્ણુ હશે તો) યશ છોડવા નહીં ઇચ્છે અને તો પછી યુદ્ધમાં આ મને હણીને આ ભૂમિ હરી લે અથવા શયન કરે. (ભગવાન વિષ્ણુ અવધ્ય અને અજિત હોવાથી તેમનું) સમ્યક્ જ્ઞાન થતાં જ મારા ચિત્તમાં શયન કરે, એમ વાસ્તવિક અર્થ છે.॥ ૧૩॥

श्रीशुक उवाच

एवमश्रद्धितं शिष्यमनादेशकरं गुरुः।
शशाप दैवप्रहितः सत्यसन्धं मनस्विनम्॥ १४

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – દૈવથી પ્રેરાયેલા ગુરુ શુક્રાચાર્યે આ રીતે (પોતાના પ્રતિ) શ્રદ્ધારહિત થયેલા, આજ્ઞાનું ઉલ્લંઘન કરનારા, સત્ય પ્રતિજ્ઞાવાળા અને મનસ્વી શિષ્ય બલિરાજાને શાપ આપ્યો. ॥ ૧૪॥ ૧૪॥

अश्रद्धितमजातश्रद्धम्॥ १४॥

'अश्रद्धितम्' શ્રદ્ધારહિત થયેલા॥ ૧૪॥

दृढं पण्डितमान्यज्ञः स्तब्धोऽस्यस्मदुपेक्षया।
मच्छासनातिगो यस्त्वमचिराद् भ्रश्यसे श्रियः॥ १५
॥ १५॥

જે તું, પોતાને મહાપંડિત માનનાર, અજ્ઞાની, ગર્વિષ્ઠ, મારી આજ્ઞાનું અતિક્રમણ કરનાર છે, તે તું અમારી ઉપેક્ષાને કારણે રાજ્યલક્ષ્મીથી શીઘ્ર ભ્રષ્ટ થઈશ.॥ ૧૫॥ ૧૫॥

एवं शप्तः स्वगुरुणा सत्यान्न चलितो महान्।
वामनाय ददावेनामर्चित्वोदकपूर्वकम्॥ १६
॥ १६॥

પોતાના ગુરુ દ્વારા આમ શાપ પામેલા એ મહાન બલિરાજાએ સત્યથી ન ડગનારા થઈ (વામન ભગવાનની) અર્ચના કરીને જળથી સંકલ્પ કરીને વામન ભગવાનને આ ભૂમિનું દાન કર્યું.॥ ૧૬॥ ૧૬॥

विन्ध्यावलिस्तदाऽऽगत्य पत्नी जालकमालिनी।
आनिन्ये कलशं हैममवनेजन्यपां भृतम्॥ १७

તે સમયે મોતીની માળા ધારણ કરેલાં પત્ની વિન્ધ્યાવલિએ આવીને ચરણપ્રક્ષાલન કરવા માટેનો જળથી ભરેલો સુવર્ણકળશ આણ્યો.॥ ૧૭॥

जालकं मुक्ताभरणविशेषस्तन्मालावती। अवनेजनीनामपां कलशम्। भृतं पूर्णम्॥ १७॥

'जालकम्' મોતીની વિશિષ્ટ સજાવટ, તેની માળા ધારણ કરેલાં, ચરણપ્રક્ષાલન કરવા માટેના જળનો કળશ– **'भृतम्'** ભરેલો॥ ૧૭॥

यजमानः स्वयं तस्य श्रीमत्पादयुगं मुदा।
अवनिज्यावहन्मूर्ध्नि तदपो विश्वपावनीः॥ १८
॥ १८॥

યજમાન એવા સ્વયં બલિરાજાએ પ્રસન્નતાપૂર્વક શ્રીસંપન્ન ચરણયુગલનું પ્રક્ષાલન કરી, વિશ્વને પવિત્ર કરનારું તે (પવિત્ર) જળ મસ્તક ઉપર ચડાવ્યું.॥ ૧૮॥ ૧૮॥

तदाऽसुरेन्द्रं दिवि देवतागणा
गन्धर्वविद्याधरसिद्धचारणाः ।
तत्कर्म सर्वेऽपि गृणन्त आर्जवं
प्रसूनवर्षैर्ववृषुर्मुदान्विताः ॥ १९
॥ १९ ॥

नेदुर्मुहुर्दुन्दुभयः सहस्रशो
गन्धर्वकिंपूरुषकिन्नरा जगुः ।
मनस्विनाऽनेन कृतं सुदुष्करं
विद्वानदाद् यद् रिपवे जगत्त्रयम्॥ २०
॥ २० ॥

तद् वामनं रूपमवर्धताद्भुतं
हरेरनन्तस्य गुणत्रयात्मकम् ।
भूः खं दिशो द्यौर्विवराः पयोधय-
स्तिर्यङ्नृदेवा ऋषयो यदासत॥ २१

अवर्धत 'वाञ्छातः प्रतिगृह्यताम्' इति बलिना पूर्वमुक्तत्वात्। गुणत्रयमात्मनि यस्य तत्। अत एव भूः खमित्यादयो यद्यस्मिन्नासत स्थितवन्तः ॥ २१ ॥

काये बलिस्तस्य महाविभूतेः
सहर्त्विगाचार्यसदस्य एतत् ।
ददर्श विश्वं त्रिगुणं गुणात्मके
भूतेन्द्रियार्थाशयजीवयुक्तम् ॥ २२

ऋत्विगादिसहितो बलिस्तस्य हरेः काये एतद्विश्वं ददर्श॥ २२ ॥

तदेव प्रपञ्चयति—**रसामिति** पादोनैः सप्तभिः ।

તે અવસરે આકાશમાં, પ્રસન્નતાયુક્ત દેવગણો, ગંધર્વો, વિદ્યાધરો, સિદ્ધો, ચારણો સર્વેએ તે કર્મની અને તેમની સરળતાની સ્તુતિ કરતાં, અસુરેન્દ્ર બલિરાજાને પુષ્પોની વર્ષાથી ઢાંકી દીધા.॥ ૧૯ ॥ ૧૯ ॥

હજારો નગારાં વારંવાર વાગવા લાગ્યાં. ગન્ધર્વો, કિમ્પુરુષો અને કિન્નરો ગાવા લાગ્યા કે જાણતા હોવા છતાં બલિરાજાએ શત્રુને ત્રણે લોક આપી દીધા! આ ઉદારશિરોમણિ દ્વારા અતિદુષ્કર કર્મ કરવામાં આવ્યું છે.॥ ૨૦ ॥ ૨૦ ॥

અનન્ત એવા શ્રીહરિનું ત્રિગુણાત્મક અદ્ભુત તે વામન સ્વરૂપ વધી ગયું, જેમાં પૃથ્વી, આકાશ, દિશાઓ, સ્વર્ગ, (સપ્ત) ભૂવિવરો (પાતાળો), સમુદ્રો, પશુપક્ષીઓ, મનુષ્યો, દેવો અને ઋષિઓ રહેલાં હતાં.॥ ૨૧ ॥

વામન ભગવાનનું સ્વરૂપ વધી ગયું. 'ઇચ્છા અનુસાર સ્વીકારવામાં આવે' એમ બલિરાજા દ્વારા (શ્રીમદ્ભા.૮/૧૯/૨૮માં) પૂર્વે કહેવામાં આવ્યું હતું તેથી– જેમના પોતાનામાં ત્રણે ગુણો છે તે વામન ભગવાન– આથી જ પૃથ્વી, આકાશ વગેરે '**यत्**' જેમના સ્વરૂપમાં '**आसत**' રહેલાં છે. ॥ ૨૧ ॥

ઋત્વિજો, આચાર્યો અને સભાસદો સહિત બલિરાજાએ મહાન ઐશ્વર્યવાળા તે ભગવાનની ત્રિગુણાત્મક કાયામાં પંચમહાભૂતો, ઇન્દ્રિયો, ઇન્દ્રિયોના વિષયો, અન્તઃકરણ અને જીવો સહિત આ (સંપૂર્ણ) ત્રિગુણાત્મક વિશ્વને જોયું.॥ ૨૨ ॥

ઋત્વિજો વગેરે સહિત બલિએ તે શ્રીહરિની કાયામાં આ વિશ્વ જોયું.॥ ૨૨ ॥

તે વિશ્વરૂપને વિસ્તારપૂર્વક સમજાવે છે— '**रसाम् इति।**' જેમાં એક ચરણ ઓછું છે તેવા સાત (પોણા સાત) શ્લોકોથી

रसामचष्टांघ्रितलेऽथ पादयो-
र्महीं महीध्रान्पुरुषस्य जङ्घयोः।
पतत्त्रिणो जानुनि विश्वमूर्ते-
रूर्वोर्गणं मारुतमिन्द्रसेनः॥ २३

मारुतं गणं वायुसङ्घम्। इन्द्रस्य सेनेव सेना यस्य सः। इन्द्रपदे स्थितत्वात्। अचष्ट ऐक्षत॥ २३॥

ઈન્દ્ર જેવી સેનાવાળા બલિરાજાએ વિશ્વરૂપ ભગવાનનાં ચરણતળમાં રસાતળ, ચરણોમાં પૃથ્વી, પિંડીઓમાં પર્વતો, ઢીંચણમાં પક્ષીઓ, બંને સાથળોમાં મરુદ્‌ગણને જોયા.॥ ૨૩॥

'मारुतं गणम्' વાયુઓના સમૂહને, ઈન્દ્રની સેના જેવી સેના છે જેમની તે બલિરાજાએ, કારણ કે ઈન્દ્રના પદ ઉપર તે રહેલા હતા. **'अचष्ट'** જોયા॥ ૨૩॥

सन्ध्यां विभोर्वाससि गुह्य ऐक्षत्
प्रजापतीञ्जघने आत्ममुख्यान्।
नाभ्यां नभः कुक्षिषु सप्तसिन्धू-
नुरुक्रमस्योरसि चर्क्षमालाम्॥ २४

आत्मा स्वयं बलिर्मुख्यो येषां तानसुरान्। ऋक्षमालां नक्षत्रपंक्तिम्॥ २४॥

મહાન એવા ઉરુક્રમ ભગવાનના વસ્ત્રમાં સન્ધ્યા, ગુહ્યભાગમાં પ્રજાપતિઓ, જાંઘમાં આત્મારૂપ સ્વયં બલિ જેમનામાં મુખ્ય છે તે અસુરો, નાભિમાં આકાશ, ઉદરમાં સાત સમુદ્રો તથા તે ભગવાનના વક્ષ:સ્થળમાં નક્ષત્રોનો સમૂહ જોયો.॥ ૨૪॥

આત્મારૂપ સ્વયં બલિ જેમનામાં મુખ્ય છે તે અસુરોને– **'ऋक्षमालाम्'** નક્ષત્રોના સમૂહને (જોયો).॥ ૨૪॥

हृद्यङ्ग धर्मं स्तनयोर्मुरारे-
र्ऋतं च सत्यं च मनस्यथेन्दुम्।
श्रियं च वक्षस्यरविन्दहस्तां
कण्ठे च सामानि समस्तरेफान्॥ २५

अङ्ग हे राजन्। समस्तान् रेफांश्च शब्दान्॥ २५॥

હે પ્રિય પરીક્ષિત, મુરારિ ભગવાનના હૃદયમાં ધર્મ, બંને સ્તનોમાં ઋત અને સત્ય, વળી મનમાં ચન્દ્ર, વક્ષ:સ્થળમાં શ્રીહસ્તમાં કમળ ધારણ કરેલાં લક્ષ્મીદેવી, કંઠમાં સામવેદ તથા સમ્પૂર્ણ શબ્દસમૂહ,॥ ૨૫॥

'अङ्ग' હે રાજા પરીક્ષિત, સંપૂર્ણ **'रेफान्'** શબ્દોના સમૂહને જોયો.॥ ૨૫॥

इन्द्रप्रधानानमरान्भुजेषु
तत्कर्णयोः ककुभो द्यौश्च मूर्ध्नि।
केशेषु मेघाञ्छ्वसनं नासिकाया-
मक्ष्णोश्च सूर्यं वदने च वह्निम्॥ २६

द्यौश्च द्यां च॥ २६॥

બાહુઓમાં ઈન્દ્ર જેમનામાં મુખ્ય છે તે દેવો, તેમના બંને કાનમાં દિશાઓ, મસ્તકમાં સ્વર્ગ, કેશોમાં મેઘમાળા, નાસિકામાં વાયુ, નેત્રોમાં સૂર્ય અને મુખમાં અગ્નિ (જોયા).॥ ૨૬॥

'द्यौः च' द्याम् (દ્વિ.એ.વ. હોવું જોઈએ.) સ્વર્ગને પણ (જોયું).॥ ૨૬॥

वाण्यां च छन्दांसि रसे जलेशं
भ्रुवोर्निषेधं च विधिं च पक्ष्मसु।
अहश्च रात्रिं च परस्य पुंसो
मन्युं ललाटेऽधर एव लोभम्॥ २७

પરમ પુરુષની વાણીમાં છંદો, જીભમાં વરુણદેવ, બંને ભ્રૂકુટિઓમાં વિધિ અને નિષેધ, પાંપણોમાં દિવસ તથા રાત્રિ અને લલાટમાં ક્રોધ તેમ જ નીચલા હોઠમાં લોભ (જોયાં).॥ ૨૭॥

रसे रसने॥ २७॥

स्पर्शे च कामं नृप रेतसोऽम्भः
पृष्ठे त्वधर्मं क्रमणेषु यज्ञम्।
छायासु मृत्युं हसिते च मायां
तनूरुहेष्वोषधिजातयश्च ॥ २८

रेतसो रेतसि। क्रमणेषु पादन्यासेषु। ओषधिजातय ओषधिजातीः॥ २८॥

नदीश्च नाडीषु शिला नखेषु
बुद्धावजं देवगणानृषींश्च।
प्राणेषु गात्रे स्थिरजङ्गमानि
सर्वाणि भूतानि ददर्श वीरः॥ २९

प्राणेष्विन्द्रियेषु॥ २९॥

सर्वात्मनीदं भुवनं निरीक्ष्य
सर्वेऽसुराः कश्मलमापुरङ्ग।
सुदर्शनं चक्रमसह्यतेजो
धनुश्च शार्ङ्गं स्तनयित्नुघोषम्॥ ३०

सर्वात्मनीत्यादिवाक्यान्तरम्। सुदर्शन-मित्यादीनामीशमुपतस्थुरित्युत्तरेणान्वयः॥ ३०॥

पर्जन्यघोषो जलजः पाञ्चजन्यः
कौमोदकी विष्णुगदा तरस्विनी।
विद्याधरोऽसिः शतचन्द्रयुक्त-
स्तूणोत्तमावक्षयसायकौ च॥ ३१

विद्याधरसंज्ञोऽसिः॥ ३१॥

वंशीधरी—नंदकस्यैव नामांतरं विद्याधर इति।

'**रसे**' અર્થાત્ '**रसने**' જીભમાં॥ ૨૭॥

હે રાજા, ભગવાનના સ્પર્શમાં કામ, વીર્યમાં જળ, પીઠમાં અધર્મ, પાદવિન્યાસોમાં યજ્ઞ, છાયામાં મૃત્યુ, હાસ્યમાં માયા અને રોમાવલિમાં ઔષધિઓની જાતિઓ (જોઈ).॥ ૨૮॥

'**रेतसः**' સપ્તમીના અર્થમાં છઠ્ઠી વિ. છે– '**रेतसि**' વીર્યમાં, '**क्रमणेषु**' પાદવિન્યાસોમાં, '**ओषधिजातयः**' ઔષધિની જાતિઓને॥ ૨૮॥

વીર બલિરાજાએ ભગવાનની નાડીઓમાં નદી, નખોમાં શિલાઓ, બુદ્ધિમાં બ્રહ્મા, ઈન્દ્રિયોમાં દેવગણો અને ઋષિઓ તથા શરીરના બીજા અવયવોમાં સ્થાવરજંગમ સર્વ પ્રાણીઓને જોયાં.॥ ૨૯॥

'**प्राणेषु**' ઈન્દ્રિયોમાં॥ ૨૯॥

હે પ્રિય (પરીક્ષિત), સર્વાત્મા ભગવાનમાં આ વિશ્વ જોઈને સર્વ અસુરો ભયભીત થઈ ગયા. તે સમયે ભગવાનની પાસે અસહ્ય તેજવાળું સુદર્શન ચક્ર, વીજળીના કડાકા જેવા ઘોષવાળું શાર્ઙ્ગ ધનુષ્ય, ॥ ૩૦॥

સર્વાત્મા ભગવાનમાં વગેરે બીજું વાક્ય છે. સુદર્શન વગેરેનો '**ईशम् उपतस्थुः**' એમ આ પછીના શ્લોક (૩૨) સાથે અન્વય છે.॥ ૩૦॥

મેઘની ગર્જના જેવો શબ્દ કરતો પાંચજન્ય શંખ, વિષ્ણુ ભગવાનની અત્યંત વેગવતી કૌમોદકી ગદા, સો ચન્દ્રાકાર ચિહ્નોવાળી ઢાલ સહિત વિદ્યાધર નામની તલવાર, અક્ષય બાણોથી ભરેલાં બે ભાથાંઓ સેવામાં ઉપસ્થિત થયાં॥ ૩૧॥

વિદ્યાધર નામની તલવાર॥ ૩૧॥

વિદ્યાધર નંદક તલવારનું બીજું નામ છે.

सुनन्दमुख्या उपतस्थुरीशं
पार्षदमुख्याः सहलोकपालाः।
स्फुरत्किरीटाङ्गदमीनकुण्डल-
श्रीवत्सरत्नोत्तममेखलाम्बरैः ॥ ३२
मधुव्रतस्त्रग्वनमालयाऽऽवृतो
रराज राजन्भगवानुरुक्रमः।
क्षितिं पदैकेन बलेर्विचक्रमे
नभः शरीरेण दिशश्च बाहुभिः ॥ ३३

तथा લોકપાલો સહિત સુનંદ જેમનામાં મુખ્ય છે તે શ્રેષ્ઠ પાર્ષદો ઈશ્વરની સેવામાં ઉપસ્થિત થયા. દેદીપ્યમાન મુકુટ, બાજુબંધ, મકરાકૃતિ કુંડળો, શ્રીવત્સ ચિહ્ન, શ્રેષ્ઠ રત્ન કૌસ્તુભમણિ, કંદોરો અને પીતાંબર તથા ભમરાઓથી ગુંજતી પંક્તિ જેની ઉપર છે તે વનમાળાથી વીંટળાયેલા ભગવાન શોભતા હતા. ભગવાન ઉરુક્રમે એક પગલાથી બલિની પૃથ્વી, શરીરથી આકાશ અને બાહુઓથી દિશાઓને માપી લીધાં. ॥ ૩૨ ॥ ૩૩ ॥

मीनकुण्डले मकरकुण्डले। स्फुरन्ति किरीटादीनि यस्य सः ॥ ३२ ॥

मधुव्रतानां स्त्रजो यस्यां तया वनमालया श्रीवत्सादिभिश्चावृतो व्याप्तः। उरुक्रमत्वमेवाह—क्षितिमिति ॥ ३३ ॥

'मीनकुण्डले' બંને મકરાકૃતિ કુંડળો તથા દેદીપ્યમાન મુકુટ વગેરે જેમનાં છે તે ભગવાન ॥ ૩૨ ॥

ભમરાઓની પંક્તિ છે જેની ઉપર તે વનમાળાથી તથા શ્રીવત્સ વગેરેથી **'आवृतः'** વીંટળાયેલા ભગવાન– ભગવાનનું ઉરુક્રમત્વ વર્ણવે છે— **'क्षितिम् इति।'** (ઉરુક્રમત્વ– વિરાટ પાદવિન્યાસવાળું સ્વરૂપ) ॥ ૩૩ ॥

पदं द्वितीयं क्रमतस्त्रिविष्टपं
न वै तृतीयाय तदीयमण्वपि।
उरुक्रमस्यांघ्रिरुपर्युपर्यथो
महर्जनाभ्यां तपसः परं गतः ॥ ३४

બીજું પગલું ભરતાં (માપતાં) ભગવાને સ્વર્ગને (માપી લીધું). ત્રીજું પગલું માપવા માટે તે બલિનું પોતાનું અણુ માત્ર પણ ન રહ્યું, આથી ઉરુક્રમ ભગવાનનું ચરણ ઉપર ઉપર મહર્લોક, જનલોકથી પણ ઉપર તપોલોકથી પણ ઉપર સત્યલોકમાં જતું રહ્યું. ॥ ૩૪ ॥

द्वितीयं पदं क्रमतो विक्षिपतस्त्रिविष्टपं तदीयं किंचिन्मात्रं जातम्। तृतीयाय तु न किंचिदपि। तत्र हेतुः—उरुक्रमस्याङ्घ्रिस्त्रि-विष्टपादुपर्युपरि गच्छन् महर्जनाभ्यां तपसश्च परं गतः सत्यलोकं गत इति ॥ ३४ ॥

બીજું પગલું **'क्रमतः'** માંડતાં ભગવાને સ્વર્ગને (માપી લીધું). તે તો તેમને (અનંત ભગવાનને) માટે જરા જેટલું જ થયું, પરંતુ ત્રીજા પગલા માટે તો કંઈ જ ન રહ્યું. તે માટેનું કારણ— ઉરુક્રમ ભગવાનનું ચરણ સ્વર્ગની ઉપર ઉપર જતાં મહર્લોક અને જનલોકથી ઉપર તપોલોકથી પણ ઉપર બ્રહ્મલોકમાં જતું રહ્યું. ॥ ૩૪ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे विश्वरूपदर्शनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

*****

अथैकविंशोऽध्यायः

વામન ભગવાન દ્વારા બલિને બંધન

एकविंशे पदापूर्तिमिषेण बलिबन्धनम्।
विष्णुना कृतमुत्कर्षं तस्य ख्यापयितुं जने॥ १॥

એકવીસમા અધ્યાયમાં તે બલિરાજાનો ઉત્કર્ષ લોકોમાં પ્રસિદ્ધ કરવા માટે ત્રણ પગલાં પૂરાં નહીં થવાને બહાને ભગવાન વિષ્ણુએ બલિ રાજાને બાંધ્યો, (તે કથા કહેવામાં આવશે.)॥ ૧॥

उरुक्रमस्याङ्घ्रिस्तपसः परं गत इत्युक्तं, ततः किं वृत्तं तदाह—

ઉરુક્રમ વામન ભગવાનનું ચરણ તપોલોકથી ઉપર ગયું, એમ કહેવામાં આવ્યું. પછી શું થયું, તે કહે છે–

श्रीशुक उवाच

सत्यं समीक्ष्याब्जभवो नखेन्दुभि-
र्हतस्वधामद्युतिरावृतोऽभ्यगात्।
मरीचिमिश्रा ऋषयो बृहद्व्रताः
सनन्दनाद्या नरदेव योगिनः॥ १

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – હે નરદેવ (પરીક્ષિત), (શ્રીવામન ભગવાનના ચરણનાં) નખચન્દ્રો વડે જેમના પોતાના લોકની કાન્તિ ઝાંખી પડી ગઈ અને જે (પોતે પણ એ કાન્તિથી) ઢંકાઈ ગયા, તે કમળયોનિ બ્રહ્માજી (ભગવાનના ચરણકમળને) સત્યલોક સુધી (આવેલો) જોઈ તેની સન્મુખ ગયા. મરીચિ વગેરે ઋષિઓ અને મહાન (નૈષ્ઠિક બ્રહ્મચર્ય) વ્રત ધારણ કરનાર સનંદન વગેરે યોગીઓ તેની સમ્મુખ ગયા. ॥ ૧॥

सत्यं सत्यलोकं प्राप्तं तमङ्घ्रिं समीक्ष्याब्जभवोऽभ्यगात्। तथा मरीचिमिश्रादयश्चेति द्वयोरन्वयः। कथंभूतोऽब्जभवः। हरेरङ्घ्रेर्नखा एवेन्दवस्तैर्हता स्वधाम्नो द्युतिर्यस्य सः। स्वयं च तैरावृतश्छन्नः। हे नरदेव, बृहद्व्रता योगिनश्च॥ १॥

'सत्यम्' સત્યલોક સુધી આવેલા તે ચરણને જોઈ બ્રહ્માજી તેની સન્મુખ ગયા તેમ જ મરીચિ વગેરે ઋષિઓ પોતાના ગણો સાથે તેની સન્મુખ ગયા, એમ બે વાક્યોનો સંબંધ છે. બ્રહ્માજી કેવા? શ્રીહરિના ચરણના નખો એ જ ચન્દ્રો. તેમના દ્વારા ઝાંખી પડી ગઈ છે પોતાના ધામની કાન્તિ તથા પોતે પણ તે કાન્તિથી **'आवृतः'** ઢંકાઈ ગયા. હે નરદેવ (પરીક્ષિત), **'बृहद्व्रताः'** મહાન નૈષ્ઠિક બ્રહ્મચર્યવ્રતધારી યોગીઓ ॥ ૧॥

वेदोपवेदा नियमान्विता यमा-
स्तर्केतिहासाङ्गपुराणसंहिताः।
ये चापरे योगसमीरदीपित-
ज्ञानाग्निना रन्धितकर्मकल्मषाः॥ २
ववन्दिरे यत्स्मरणानुभावतः
स्वायम्भुवं धाम गता अकर्मकम्।

વેદો, ઉપવેદો, નિયમો સહિત યમો, તર્કો (સાંખ્ય, ન્યાય, મીમાંસાદિ તર્કગર્ભ શાસ્ત્રો), (મહાભારતાદિ) ઈતિહાસો, છ વેદાંગો, (ભાગવતાદિ અઢાર) પુરાણો, (પંચરાત્રાદિ) સંહિતાઓ તથા યોગરૂપી પવનથી પ્રજ્વલિત થયેલા જ્ઞાનરૂપી અગ્નિ વડે કર્મરૂપી મળને બાળી નાખનાર જે બીજા મહાત્માઓ છે તેઓ, કામ્ય કર્મો વડે પ્રાપ્ત ન થનારા બ્રહ્માજીના ધામમાં જે ચરણના સ્મરણના

अथांघ्रये प्रोन्नमिताय विष्णो-
रुपाहरत् पद्मभवोऽर्हणोदकम्।
समर्च्य भक्त्याभ्यगृणाच्छुचिश्रवा
यन्नाभिपङ्केरुहसंभवः स्वयम्॥ ३

अङ्गानि शिक्षादीनि। पुराणानि तत्संहिताश्च। योग एव समीरस्तेन दीपितं ज्ञानमेवाग्निस्तेन रन्धितं दग्धं कर्मकल्मषं कर्ममलं येषाम्॥ २॥

ते च सर्वे तमङ्घ्रिं ववन्दिरे। यस्याङ्घ्रेः स्मरणानुभावतः। अकर्मकं कर्मभिरप्राप्यम्। विष्णोरङ्घ्रये स्वयं यस्य नाभिपङ्केरुहसंभवस्तस्य विष्णोरङ्घ्रिं समर्च्य॥ ३॥

धातुः कमण्डलुजलं तदुरुक्रमस्य
पादावनेजनपवित्रतया नरेन्द्र।
स्वर्धुन्यभून्नभसि सा पतती निमार्ष्टि
लोकत्रयं भगवतो विशदेव कीर्तिः॥ ४

लोकत्रयं निमार्ष्टि पवित्रयति॥ ४॥

ब्रह्मादयो लोकनाथाः स्वनाथाय समादृताः।
सानुगा बलिमाजह्रुः संक्षिप्तात्मविभूतये॥ ५

संक्षिप्ता उपसंहृतात्मविभूतिः स्वविस्तारो येन तस्मै। यथापूर्वं वामनरूपेण स्थितायेत्यर्थः॥ ५॥

वंशीधरी—कार्यकारणोत्तरं स्थविष्ठरूप-प्रयोजनाभावादिति भावः।

પ્રભાવથી ગયા, તેમણે તે ચરણને વંદન કર્યાં. ત્યાર પછી પવિત્ર કીર્તિવાળા પદ્મસંભવ બ્રહ્માજી પોતે જેમના નાભિકમળમાંથી ઉત્પન્ન થયા હતા, તે વિષ્ણુ ભગવાનના છેક સત્યલોક સુધી ઊંચે ગયેલા ચરણકમળને માટે અર્ઘ્યનું જળ લાવ્યા તથા સુંદર રીતે ચરણકમળની અર્ચના કરીને ભક્તિપૂર્વક સ્તુતિ કરી.॥ ૨॥ ૩॥

'**अङ्गानि**' (શિક્ષા, કલ્પ, વ્યાકરણ, નિરુક્ત, છંદ અને જ્યોતિષ્– આ છ) વેદાંગો, પુરાણો, તેની સંહિતાઓ પણ (બ્રહ્મલોકમાં ગયાં). યોગ એ જ પવન, તેનાથી પ્રજ્વલિત થયેલું જ્ઞાન, એ જ અગ્નિ, તેનાથી '**रन्धितम्**' બળી ગયો છે '**कर्मकल्मषम्**' કર્મરૂપી મળ જેમનો॥ ૨॥

તે સર્વેએ તે ચરણકમળને વંદન કર્યાં. જે ચરણના સ્મરણના પ્રભાવથી બ્રહ્મલોકમાં ગયા. '**अकर्मकम्**' કર્મો વડે પ્રાપ્ત ન થનારા બ્રહ્મલોકમાં, પોતે જેમના નાભિકમળમાંથી ઉત્પન્ન થયા હતા તે વિષ્ણુ ભગવાનના ચરણની સુંદર રીતે પૂજા કરીને॥ ૩॥

હે નરેન્દ્ર, બ્રહ્માજીના કમંડળનું તે જળ ઉરુક્રમ વામન ભગવાનના ચરણોનું પ્રક્ષાલન કરવાથી પવિત્ર થયેલું હોવાથી આકાશગંગા બન્યું. ભગવાનની ઉજ્જ્વળ કીર્તિ જેવી તે સ્વર્ગંગા આકાશમાર્ગમાં પડતી ત્રણેય લોકને પવિત્ર કરે છે.॥ ૪॥

ત્રણેય લોકને '**निमार्ष्टि**' પવિત્ર કરે છે. ('**नि** +$\sqrt{\text{मृज्}}$'નું વ.કા.ત્રી.પુ.એ.વ.)॥ ૪॥

અનુચરો સહિત બ્રહ્માદિ લોકપાલોએ આદરભાવવાળા થઈ, પોતાના ઐશ્વર્યનો વિસ્તાર જેમણે સમેટી લીધો છે તેવા પોતાના નાથને ઉપહાર અર્પણ કર્યા.॥ ૫॥

સમેટી લીધો છે પોતાના ઐશ્વર્યનો વિસ્તાર જેમણે તેમને, પૂર્વવત્ વામનરૂપે રહેલા નાથને, એમ અર્થ છે.॥ ૫॥

કાર્યકારણથી પર એવા અત્યંત સ્થૂળ રૂપનું પ્રયોજન ન હોવાથી વામનરૂપ પુનઃ ધારણ કર્યું.

बा.प्र.—न च पञ्चमे स्कन्धे वामपादाङ्गुष्ठनखनिर्भिन्नोर्ध्वाण्डकटाहजलं गङ्गेत्युक्तिविरोधः शङ्कनीयः। जलद्वयमिलितं गङ्गेत्यङ्गीकारे विरोधाभावात्।

પાંચમા સ્કંધમાં જે કહેવામાં આવ્યું કે ભગવાનના વામ ચરણના અંગૂઠાના નખથી ચિરાઈ ગયેલા ઊર્ધ્વ બ્રહ્માંડકટાહનું જળ ગંગા છે, તે માટે વિરોધની શંકા કરવી યોગ્ય નથી, કારણ કે બંનેનું મળેલું જળ ગંગાજી છે એમ સ્વીકારવામાં વિરોધ થતો નથી.

तोयैः समर्हणैः स्त्रग्भिर्दिव्यगन्धानुलेपनैः।
धूपैर्दीपैः सुरभिभिर्लाजाक्षतफलांकुरैः॥ ६
स्तवनैर्जयशब्दैश्च तद्वीर्यमहिमाङ्कितैः।
नृत्यवादित्रगीतैश्च शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनैः॥ ७

॥ ६ ॥ ७ ॥

તેઓએ અર્ઘ્યજળ (તથા સ્નાન અને આચમનાદિના જળ)થી, પુષ્પમાળાઓથી, દિવ્ય ચંદનનાં વિલેપનોથી, સુગંધી ધૂપદીપથી, ખીલ, અક્ષત, ફળ અને જવારાઓથી (ભગવાનના ચરણની અર્ચના કર્યા પછી), તે ભગવાનનાં પરાક્રમ અને મહિમાથી યુક્ત સ્તોત્રોથી, જયઘોષથી, નૃત્ય, વાદિત્ર અને ગીતોથી તથા શંખ અને દુંદુભિઓનાં ધ્વનિથી (ભગવાનની આરાધના કરી).॥૬॥૭॥૬॥૭॥ (કટાહ - કઢાઈ)

जाम्बवानृक्षराजस्तु भेरीशब्दैर्मनोजवः।
विजयं दिक्षु सर्वासु महोत्सवमघोषयत्॥ ८

॥ ८ ॥

મન જેવા વેગવાળા ઋક્ષરાજ જાંબવાને સર્વ દિશાઓમાં (દોડીને) ભેરીનાદથી વિજયમહોત્સવની ઘોષણા કરી.॥૮॥૮॥

महीं सर्वां हृतां दृष्ट्वा त्रिपदव्याजयाच्ञया।
ऊचुः स्वभर्तुरसुरा दीक्षितस्यात्यमर्षिताः॥ ९

યજ્ઞમાં દીક્ષિત થયેલા પોતાના સ્વામી બલિરાજા પાસેથી ત્રણ પગલાં માગવાના બહાને આખી પૃથ્વી પડાવી લીધેલી જોઈને અત્યંત ક્રોધિત થયેલા અસુરો બોલી ઊઠ્યા.॥૯॥

त्रिपदविषया या व्याजयाच्ञा कपटयाच्ञा तया स्वभर्तुर्बलेर्महीं हृतां दृष्ट्वा अत्यमर्षिताः सन्त ऊचुः॥ ९॥

ત્રણ પગલાંના વિષયવાળી જે **'व्याजयाच्ञा'** કપટભરી માગણી હતી, તેનાથી પોતાના સ્વામી બલિરાજાની પૃથ્વીને પડાવી લીધેલી જોઈને અત્યંત ક્રોધિત થયેલા અસુરો બોલી ઊઠ્યા.॥૯॥

किमूचुस्तदाह—**न वै इति** सार्धैस्त्रिभिः।

અસુરો શું બોલ્યા તે સાડા ત્રણ શ્લોકોથી કહે છે— **'न वै इति।'**

न वा अयं ब्रह्मबन्धुर्विष्णुर्मायाविनां वरः।
द्विजरूपप्रतिच्छन्नो देवकार्यं चिकीर्षति॥ १०

॥ १० ॥

આ નામમાત્રથી પણ બ્રાહ્મણ નથી, આ તો માયાવીઓમાં શ્રેષ્ઠ એવો વિષ્ણુ છે. બ્રાહ્મણના વેશમાં ગુપ્ત રહી દેવોનું કાર્ય કરવા ઈચ્છે છે.॥૧૦॥૧૦॥

अनेन याचमानेन शत्रुणा बटुरूपिणा।
सर्वस्वं नो हृतं भर्तुर्न्यस्तदण्डस्य बर्हिषि॥ ११

॥ ११ ॥

આ યાચના કરતા બ્રહ્મચારીવેષધારી શત્રુ દ્વારા યજ્ઞમાં કોઈને પણ શિક્ષા નહિ કરનારા આપણા સ્વામીનું બધું જ પડાવી લેવામાં આવ્યું છે.॥ ૧૧ ॥ ૧૧ ॥

सत्यव्रतस्य सततं दीक्षितस्य विशेषतः।
नानृतं भाषितुं शक्यं ब्रह्मण्यस्य दयावतः॥ १२

॥ १२ ॥

સદાય સત્યવ્રતી, બ્રાહ્મણભક્ત, દયાવાન અને વિશેષરૂપે યજ્ઞમાં દીક્ષિત (થયા હોવાથી) આપણા સ્વામીને માટે અસત્ય બોલવાનું તો શક્ય જ નથી.॥ ૧૨ ॥ ૧૨ ॥

तस्मादस्य वधो धर्मो भर्तुः शुश्रूषणं च नः।
इत्यायुधानि जगृहुर्बलेरनुचरासुराः॥ १३

અનુચરાશ્ચ તે અસુરાશ્ચ॥ १३ ॥

તેથી આનો વધ કરવો તે આપણા સ્વામીની સેવા છે અને ધર્મ છે, એમ (વિચારીને) બલિરાજાના સેવક અસુરોએ હથિયારો (હાથમાં) લીધાં.॥ ૧૩ ॥

તે સેવકો જ અસુરો છે.॥ ૧૩ ॥

ते सर्वे वामनं हन्तुं शूलपट्टिशपाणयः।
अनिच्छतो बले राजन् प्राद्रवञ्जातमन्यवः॥ १४

॥ १४ ॥

હે રાજા (પરીક્ષિત), ત્રિશૂળો અને પટ્ટિશો હાથમાં લઈ તે સર્વે ક્રોધાયમાન થયેલા અસુરો બલિરાજાની ઈચ્છા ન હોવા છતાં વામનને મારી નાખવા ધસ્યા.॥ ૧૪ ॥ ૧૪ ॥

तानभिद्रवतो दृष्ट्वा दितिजानीकपान् नृप।
प्रहस्यानुचरा विष्णोः प्रत्यषेधन्नुदायुधाः॥ १५

॥ १५ ॥

હે નૃપ, વિષ્ણુ ભગવાનના સેવકોએ તે દૈત્યોના સેનાપતિઓને દોડતા જોઈ, હસીને આયુધો ઉગામી તેમને અટકાવ્યા.॥ ૧૫ ॥ ૧૫ ॥

नन्दः सुनन्दोऽथ जयो विजयः प्रबलो बलः।
कुमुदः कुमुदाक्षश्च विष्वक्सेनः पतत्त्रिराट्॥ १६

॥ १६ ॥

નંદ, સુનંદ, જય, વિજય, પ્રબલ, બલ, કુમુદ, કુમુદાક્ષ, વિષ્વક્સેન, ગરુડજી,॥ ૧૬ ॥

जयन्तः श्रुतदेवश्च पुष्पदन्तोऽथ सात्वतः।
सर्वे नागायुतप्राणाश्चमूं ते जघ्नुरासुरीम्॥ १७

॥ १७ ॥

જયંત, શ્રુતદેવ, પુષ્પદંત અને સાત્વત– દસ હજાર હાથીઓ સમાન પ્રાણ (બળ)વાળા એ સર્વેએ અસુરોની સેનાનો સંહાર કરવા માંડ્યો.॥ ૧૭ ॥ ૧૭ ॥

वंशीधरी—ननु जयविजययोः शापवशादधः-पातादत्र तयोः कथं संभवः इत्याशंक्य भगवतो ब्रह्मण्यत्वस्य भक्तानामपराधविभीषकाय प्रदर्शनार्थमेवानयोः प्रकाशावेव वैकुंठादधः पेततुर्न साक्षादिति समाहितं चक्रवर्त्तिना। अन्यथा न मत्परा नंक्ष्यंति शांतरूपाः इत्युक्ते-र्व्याकोपः स्यादिति।

શંકા કરવામાં આવી છે કે જય-વિજયનું શાપવશાત્ અધ:પતન થવાથી તે બંનેનું આ સ્થાનમાં હોવું કેવી રીતે સંભવે? એવી આશંકા કરીને વિશ્વનાથ ચક્રવર્તીજી દ્વારા સમાધાન કરવામાં આવ્યું છે કે ભગવાનની બ્રહ્મણ્યતાનું અને ભક્તોના અપરાધની ભયંકરતાનું પ્રદર્શન કરવા માટે જ આ બંનેનો માત્ર પ્રકાશ જ વૈકુંઠથી નીચે પડ્યો છે, તે બંને સાક્ષાત્ નથી પડ્યા. નહીં તો ‘મત્પરાયણ શાંતસ્વરૂપ (ભક્તો) નાશ પામતા નથી.’ એમ કહેવાયું હોવાથી વિરોધ થાય.

हन्यमानान् स्वकान् दृष्ट्वा पुरुषानुचरैर्बलिः ।
वारयामास संरब्धान् काव्यशापमनुस्मरन् ॥ १८ ॥ १८ ॥

વિષ્ણુ ભગવાનના સેવકો દ્વારા પોતાના અનુચરોને હણાતા જોઈ શુક્રાચાર્યના શાપને યાદ કરતા રાજા બલિએ આવેશમાં આવેલા પોતાના અનુચરોને અટકાવ્યા. ॥ ૧૮ ॥ ૧૮ ॥

हे विप्रचित्ते हे राहो हे नेमे श्रूयतां वचः ।
मा युध्यत निवर्तध्वं न नः कालोऽयमर्थकृत् ॥ १९

अर्थकृदनुकूलः ॥ १९ ॥

(બલિરાજા બોલ્યા–) હે વિપ્રચિત્તિ, હે રાહુ, હે નેમિ, મારી વાત સાંભળો. લડો નહીં, પાછા ફરો. આ સમય આપણને અનુકૂળ નથી. ॥ ૧૯ ॥

'अर्थकृत्' અનુકૂળ ॥ ૧૯ ॥

यः प्रभुः सर्वभूतानां सुखदुःखोपपत्तये ।
तं नातिवर्तितुं दैत्याः पौरुषैरीश्वरः पुमान् ॥ २०

पौरुषैस्तं कालमतिवर्तितुं पुमानीश्वरः समर्थो न भवति ॥ २० ॥

હે દૈત્યો, જે કાળ સર્વ પ્રાણીઓને સુખદુઃખ આપવા સમર્થ છે, તેનું પુરુષાર્થથી અતિક્રમણ કરવા પુરુષ સમર્થ થતો નથી. ॥ ૨૦ ॥

પુરુષાર્થથી તે કાળનું અતિક્રમણ કરવા માટે પુરુષ **'ईश्वरः'** સમર્થ થતો નથી. ॥ ૨૦ ॥

यो नो भवाय प्रागासीदभवाय दिवौकसाम् ।
स एव भगवानद्य वर्तते तद्विपर्ययम् ॥ २१ ॥ २१ ॥

જે કાળ પહેલાં આપણી ઉન્નતિ માટે અને દેવોની અવનતિ માટે હતો, તે જ કાળ ભગવાન હાલ તેનાથી વિપરીત વર્તી રહ્યા છે. ॥ ૨૧ ॥ ૨૧ ॥

बलेन सचिवैर्बुद्ध्या दुर्गैर्मन्त्रौषधादिभिः ।
सामादिभिरुपायैश्च कालं नात्येति वै जनः ॥ २२ ॥ २२ ॥

મનુષ્ય બળથી, સલાહકારોથી, બુદ્ધિથી, કિલ્લાઓથી, મંત્રોથી, ઔષધાદિથી કે સામાદિ ઉપાયોથી કાળનું અતિક્રમણ કરી જ શકતો નથી. ॥ ૨૨ ॥ ૨૨ ॥

भवद्भिर्निर्जिता ह्येते बहुशोऽनुचरा हरेः ।
दैवेनर्द्धैस्त एवाद्य युधि जित्वा नदन्ति नः ॥ २३

हरेरनुचरा देवाः । दैवेन ऋद्धैः समृद्धैर्भवद्भिः ॥ २३ ॥

દૈવને કારણે સમૃદ્ધિવાળા એવા તમારા વડે શ્રીહરિના આ સેવકોને અનેક વાર જીતી લેવામાં આવ્યા છે અને આજે તેઓ જ યુદ્ધમાં જીતીને સિંહનાદ કરે છે. ॥ ૨૩ ॥

'हरेः' શ્રીહરિના સેવકોને, દૈવને કારણે **'ऋद्धैः'** સમૃદ્ધિવાળા તમારા વડે ॥ ૨૩ ॥

एतान् वयं विजेष्यामो यदि दैवं प्रसीदति ।
तस्मात् कालं प्रतीक्षध्वं यो नोऽर्थत्वाय कल्पते ॥ २४

अर्थत्वायानुकूल्याय ॥ २४ ॥

જો દૈવ પ્રસન્ન થશે તો આપણે આ લોકોને જીતી લઈશું. તેથી જે (કાળ) આપણી અનુકૂળતા માટે ઉચિત હોય તે કાળની પ્રતીક્ષા કરો. ॥ ૨૪ ॥

'अर्थत्वाय' અનુકૂળતા માટે ॥ ૨૪ ॥

श्रीशुक उवाच

पत्युर्निगदितं श्रुत्वा दैत्यदानवयूथपाः ।
रसां निविविशू राजन् विष्णुपार्षदताडिताः ॥ २५ ॥ २५ ॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — હે રાજા, વિષ્ણુ ભગવાનના પાર્ષદો દ્વારા પિટાયેલા દૈત્યો અને દાનવોના સેનાપતિઓ પોતાના સ્વામી બલિરાજાનું વચન સાંભળીને રસાતળમાં પેસી ગયા. ॥ ૨૫ ॥ ૨૫ ॥

अथ तार्क्ष्यसुतो ज्ञात्वा विराट् प्रभुचिकीर्षितम्।
बबन्ध वारुणैः पाशैर्बलिं सौत्येऽहनि क्रतौ ॥ २६

(દૈત્યોના ગયા) પછી કશ્યપપુત્ર વિરાટ પક્ષીરાજ ગરુડે વામન પ્રભુ શ્રીહરિની કર્તવ્યેચ્છા જાણીને વરુણના પાશોથી સોમરસ કાઢવાના દિવસે યજ્ઞમાં બલિરાજાને બાંધ્યો. ॥ ૨૬ ॥

विषु पक्षिषु राजत इति विराट्। प्रभोश्चिकीर्षितं ज्ञात्वा। अयमर्थः—अस्य सर्वस्वापहारेण ममेत्यभिमानं संत्याज्येदानीं देहस्वीकारेणाहंकारमपि त्याजयित्वा परमानुग्रहं कर्तुमिच्छति, न चानेन तुल्योऽन्यः कोऽपि सत्यसंधो धीरो वाऽस्तीति तद्यशःप्रख्यापनार्थं किंचित्पातयितुमपीच्छतीति प्रभोरभिप्रायं ज्ञात्वा तं बबन्धेति। सौत्येऽहनि सोमाभिषवदिने ॥ २६ ॥

'विषु' પક્ષીઓમાં **(राजते)** શોભે તે વિરાટ ગરુડજીએ વામન પ્રભુની (કંઈક) કરવાની ઈચ્છા જાણીને–આ પ્રમાણે અર્થ છે– (ગરુડજીએ વિચાર્યું કે) આ બલિનું સર્વસ્વ હરી લેવા દ્વારા 'મારું' એ અભિમાનનો ત્યાગ કરાવી, હવે દેહના સ્વીકાર દ્વારા અહંકાર પણ છોડાવીને શ્રીહરિ પરમ અનુગ્રહ કરવા ઈચ્છે છે. વળી, આ દ્વારા બલિરાજા જેવો સત્યપ્રતિજ્ઞ અને ધીર બીજો કોઈ મનુષ્ય છે નહીં, એવો તેનો યશ પ્રખ્યાત કરવા માટે તેને જરાક નીચે પાડવા ભગવાન ઈચ્છે છે, એમ પ્રભુનો અભિપ્રાય જાણીને તેને બાંધ્યો. **'सौत्ये-अहनि'** સોમરસ કાઢવાના દિવસે ॥ ૨૬ ॥

हाहाकारो महानासीद् रोदस्योः सर्वतोदिशम्।
गृह्यमाणेऽसुरपतौ विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ २७

સર્વશક્તિમાન ભગવાન વિષ્ણુ દ્વારા જ્યારે અસુરપતિ બલિને બાંધવામાં આવ્યો, ત્યારે આકાશમાં, પૃથ્વી ઉપર અને સર્વ દિશાઓમાં મહાન હાહાકાર થયો. ॥ ૨૭ ॥

रोदस्योर्द्यावापृथिव्योः ॥ २७ ॥

'रोदस्योः' આકાશમાં અને પૃથ્વી ઉપર ॥ ૨૭ ॥

तं बद्धं वारुणैः पाशैर्भगवानाह वामनः।
नष्टश्रियं स्थिरप्रज्ञमुदारयशसं नृप ॥ २८

॥ २८ ॥

હે નૃપ (પરીક્ષિત), વરુણના પાશથી બંધાયેલા, જેની રાજ્યલક્ષ્મી ભ્રષ્ટ થઈ છે છતાં સ્થિતપ્રજ્ઞ અને ઉદાર યશવાળા તે બલિરાજાને વામન ભગવાન કહે છે. ॥ ૨૮ ॥ ૨૮ ॥

पदानि त्रीणि दत्तानि भूमेर्मह्यं त्वयासुर।
द्वाभ्यां क्रान्ता मही सर्वा तृतीयमुपकल्पय ॥ २९

॥ २९ ॥

હે અસુર (બલિ), તારા દ્વારા મને ત્રણ પગલાં ભૂમિ અપાઈ (આપવાનું વચન અપાયું) છે. બે પગલાંમાં મેં સમ્પૂર્ણ પૃથ્વી (ત્રિલોકી) માપી લીધી છે, તો હવે ત્રીજું પગલું આપ. ॥ ૨૯ ॥ ૨૯ ॥

यावत् तपत्यसौ गोभिर्यावदिन्दुः सहोडुभिः।
यावद् वर्षति पर्जन्यस्तावती भूरियं तव ॥ ३०

જ્યાં (જેટલી હદ) સુધી તે (સૂર્ય) કિરણો સાથે તપે છે તથા નક્ષત્રો સાથે ચન્દ્રમા પ્રકાશે છે તેમ જ જ્યાં સુધી પર્જન્ય (વાદળા) વરસે છે, ત્યાં સુધીની આ ભૂમિ તારી હતી. ॥ ૩૦ ॥ ૩૦ ॥

असौ सूर्यः ॥ ३० ॥

'असौ' તે સૂર્ય ॥ ૩૦ ॥

पदैकेन मया क्रान्तो भूर्लोकः खं दिशस्तनोः।
स्वर्लोकस्तु द्वितीयेन पश्यतस्ते स्वमात्मना॥ ३१

मया आत्मनेत्यन्वयः। व्यापिनेत्यर्थः। खं च दिशश्च तनोः तन्वा। ते स्वं त्वदीयं सर्वस्वम्॥ ३१॥

તારા દેખતાં વ્યાપક એવા મારા વડે એક ચરણથી ભૂલોક, શરીરથી (સર્વ) દિશાઓ અને આકાશ તથા બીજા ચરણથી સ્વર્ગલોક ઓળંગી લેવામાં આવ્યા છે.॥ ૩૧॥

'मया आत्मना' એમ અન્વય છે. વ્યાપક એવા મારા વડે, એમ અર્થ છે. આકાશ અને દિશાઓ પણ **'तनोः'** શરીરથી **'ते स्वम्'** તારું પોતાનું સર્વસ્વ (મેં બે પગલામાં લઈ લીધું છે.)॥ ૩૧॥

प्रतिश्रुतमदातुस्ते निरये वास इष्यते।
विश त्वं निरयं तस्माद् गुरुणा चानुमोदितः॥ ३२

गुरुणा शुक्रेणानुमोदितः सन्॥ ३२॥

એવમુક્તેऽપિ निरयपरिहारार्थं स्वर्गभ्रंश-परिहारार्थं च मनोरथं कुर्वन्तं प्रत्याह—**वृथेति**।

વચન પ્રમાણે ન આપનાર તારો નરકમાં વાસ થાય તે ઈષ્ટ છે. તારા ગુરુ દ્વારા પણ અનુમોદન આપવામાં આવ્યું છે, તેથી તું નરકમાં પ્રવેશ કર.॥ ૩૨॥

ગુરુ શુક્રાચાર્ય દ્વારા અનુમોદન આપવામાં આવ્યું છે.॥ ૩૨॥

આમ કહેવામાં આવ્યું હોવા છતાં પણ નરક દૂર કરવા માટે અને સ્વર્ગભ્રંશ પણ દૂર કરવા માટે મનોરથ કરતા બલિરાજા પ્રત્યે ભગવાન કહે છે— **'वृथा इति।'**

वृथा मनोरथस्तस्य दूरे स्वर्गः पतत्यधः।
प्रतिश्रुतस्यादानेन योऽर्थिनं विप्रलम्भते॥ ३३

यः प्रतिश्रुतस्यादानेन याचकं विप्रलम्भते तस्य मनोरथो वृथैव स्वर्गश्च तस्य दूर एव, स चाधः पतत्येव॥ ३३॥

જે મનુષ્ય યાચના કરનારને પ્રતિજ્ઞા કરેલી વસ્તુનું દાન ન આપવા દ્વારા તેની વંચના કરે છે, તેનો મનોરથ નિષ્ફળ થાય છે. તેને માટે સ્વર્ગ દૂર છે અને તે નીચે (નરકમાં) જ પડે છે.॥ ૩૩॥

જે મનુષ્ય પ્રતિજ્ઞા કરેલી વસ્તુનું દાન ન આપવા દ્વારા યાચકની વંચના કરે છે, તેનો મનોરથ નિષ્ફળ જ થાય છે અને સ્વર્ગ તેને માટે દૂર જ છે તથા તે નીચે જ પડે છે.॥ ૩૩॥

विप्रलब्धो ददामीति त्वयाहं चाढ्यमानिना।
तद् व्यलीकफलं भुङ्क्ष्व निरयं कतिचित् समाः॥ ३४

त्वया चाहं विप्रलब्धस्तस्माद्व्यलीक-स्यानृतस्य फलं निरयं भुङ्क्ष्वेत्यर्थः॥ ३४॥

પોતાને ધનવાન માનનાર એવા તારા દ્વારા '(હું ત્રણ પગલાં પૃથ્વી) આપીશ', એમ (વચન આપીને દાન ન આપવાથી) હું ઠગાયો છું, માટે તે અસત્યના ફળરૂપ નરક તું કેટલાંક વર્ષો સુધી ભોગવ.॥ ૩૪॥

અને તારા દ્વારા હું છેતરાયો છું, તેથી **'व्यलीकस्य'** અસત્યના ફળરૂપ નરક ભોગવ, એમ અર્થ છે.॥ ૩૪॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे वामनप्रादुर्भावे बलिनिग्रहो नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां एकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

❋❋❋❋❋

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

બલિનું આત્મનિવેદન તથા બલિને દુર્લભ વરપ્રદાન

द्वाविंशे तु प्रसन्नः सन् प्रस्थाप्य सुतलं बलिम्।
दत्त्वा वरान्हरिर्न्यूनं मत्वा तद् द्वारपोऽभवत्॥ १॥

બાવીસમા અધ્યાયમાં તો પ્રસન્ન થયેલા શ્રીહરિએ બલિરાજાને વરદાનો આપી સુતલલોકમાં પ્રસ્થાપિત કરીને (પોતે આપેલું) ઓછું માનીને તેના દ્વારપાળ થયા (તે કથા છે).॥ ૧॥

समर्पिततनूवित्तनिर्मलाचलभक्तितः ।
छलितो बलिना चित्रं स्वमेवार्पयदच्युतः॥ २॥

જેમાં તન અને ધન સમર્પિત કરવામાં આવ્યાં છે તેવી નિર્મળ અને નિશ્ચળ ભક્તિથી શ્રીહરિ પોતે જ બલિ દ્વારા અદ્‌ભુત છેતરાઈ ગયા અને અચ્યુત શ્રીહરિ પોતાની જાતને જ આપી બેઠા.॥ ૨॥ *

श्रीशुक उवाच

एवं विप्रकृतो राजन् बलिर्भगवताऽसुरः।
भिद्यमानोऽप्यभिन्नात्मा प्रत्याहाविक्लवं वचः॥ १

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – હે રાજા પરીક્ષિત, આ પ્રમાણે ભગવાન શ્રીહરિ દ્વારા (લોકદૃષ્ટિએ) અપમાનિત કરવામાં આવેલા અને સત્યથી વિચલિત કરવામાં આવેલા અસુર રાજા બલિ વ્યાકુળતારહિત (સત્યધર્મયુક્ત) વચન બોલ્યા.॥ ૧॥

* દેખીતી રીતે વામનભગવાન દ્વારા બલિ છેતરાઈ ગયો એવું લાગે પણ વાસ્તવમાં બલિએ શ્રીહરિને ત્રણે પગલાં માપવા દ્વારા જે આપ્યું તે સર્વ (આ લોક, પરલોક અને પોતાનો અહંકાર) તો વિનાશી છે જેના બદલામાં અવિનાશી અચ્યુત શ્રીહરિ જ તેને મળી ગયા. આમ, ભગવાને બલિને છેતર્યો કે ભક્તના હાથે ભગવાન જ છેતરાઈ ગયા! ખરેખર તો કપટથી (વામનરૂપે ત્રણ પગલાં માગી વિરાટરૂપે માપવા) બલિને છેતર્યો તેમ જણાય અને ભરી સભામાં તેની પાસેથી કશું બાકી ન રાખ્યા પછી પણ ત્રીજા પગલાની માગણી કરવા અને તે માટે તેને બાંધવા દ્વારા ભક્તવત્સલ ભગવાને પોતે અપકીર્તિ વ્હોરી. પોતાના ભક્ત (વળી, પોતાના પ્રિય ભક્ત પ્રહ્‌લાદના પૌત્ર)નો અવિચળ યશ સ્થાપ્યો અને બલિના આત્મસમર્પણના બદલામાં પોતે કશું આપી શકે તેમ નથી એમ માની કૃતજ્ઞતાની ભાવનાથી પોતાનું જ સમર્પણ કરી તેના જ દ્વારપાળ બન્યા, જેથી બલિરાજાને ભગવાનનું નિત્ય સાન્નિધ્ય-દર્શન-અભય પ્રાપ્ત થાય.

પૂ. શ્રી રામચંદ્ર ડોંગરેજી મહારાજ આ પ્રસંગનું વર્ણન કરતાં ગદ્‌ગદિત થઈ (શ્રીમદ્‌ભાગવત રસામૃતમાં) જણાવે છે— બલિરાજા પ્રત્યેક દ્વારમાં ચતુર્ભુજ નારાયણનાં દર્શન કરે છે, જ્યાં નજર જાય ત્યાં તેમને ભગવાનનું સ્વરૂપ દેખાય છે. તેમની પ્રત્યેક ઈન્દ્રિયના દ્વારમાં ભગવાન બિરાજેલા છે. અરે! સ્વયં ભગવતી શ્રીમહાલક્ષ્મી બલિરાજાનાં બહેન બની તેમને રાખડી બાંધી તેમની(બલિરાજા) પાસેથી ભગવાન માંગે છે! ચતુર્ભુજરૂપે પ્રત્યક્ષ શ્રીલક્ષ્મીનારાયણ ત્યાં પ્રગટ થાય છે. આમ, બલિરાજાને અવિચળ લક્ષ્મી સહિત નારાયણનો સાક્ષાત્ અનુગ્રહ પ્રાપ્ત થાય છે!

विप्रकृतोऽपकृतः भिद्यमानः सत्त्वाच्चाल्यमानः ॥ १ ॥

'**विप्रकृतः**' અપમાનિત (અપકાર) કરવામાં આવેલા તેમ જ '**भिद्यमानः**' સત્યથી વિચલિત કરવામાં આવેલા (રાજા બલિ) ॥ ૧ ॥

बलिरुवाच

यद्युत्तमश्लोक भवान् ममेरितं
वचो व्यलीकं सुरवर्य मन्यते।
करोम्यृतं तन्न भवेत् प्रलम्भनं
पदं तृतीयं कुरु शीर्ष्णि मे निजम्॥ २

બલિરાજા બોલ્યા – હે ઉત્તમ કીર્તિવાળા શ્રેષ્ઠ દેવ! મેં કહેલા વચનને આપ જો અસત્ય માનો છો, તો તેને પણ હું સત્ય જ કરું છું. મારું તે વચન છેતરનારું ન બનો. આપ પોતાનું ત્રીજું ચરણ મારા મસ્તક ઉપર પધરાવો. ॥ ૨ ॥

हे उत्तमश्लोकेति कटाक्षः। मम वच ईरितं प्रतिश्रुतं न तावद्व्यलीकम्। त्वया कपटेन वामनतया भिक्षित्वा रूपान्तरस्याविष्कृतत्वात्। एवमपि यदि भवान्व्यलीकं मन्यते तथापि ऋतमेवाहं करोमि। मदुक्तं विप्रलम्भनं न भवतु। मे शीर्ष्णि निजं तृतीयं पदं कुरु। न च द्वाभ्यां विश्वं क्रान्तवतो मे तव शिरः पादपर्याप्तं न भवतीति मन्येथाः। वित्तेन चेत्पदद्वयं जातं तर्हीदमधिकमेव स्यात्। वित्तादपि वित्तवतोऽधिकत्वादिति भावः॥ २॥

'**हे उत्तमश्लोक**' એ કટાક્ષ છે. મારું '**वचः ईरितम्**' કહેલું વચન ખરેખર અસત્ય ન બનો. આપે કપટથી વામનરૂપે ભિક્ષા માગીને બીજા રૂપનું પ્રાકટ્ય કર્યું. આવું હોવા છતાં પણ જો આપ અસત્ય માનો છો, તો તેને પણ હું સત્ય જ કરું છું. મારું વચન છેતરનારું ન બનો. મારા મસ્તક ઉપર આપનું '**निजम्**' પોતાનું ત્રીજું પગલું ભરો. વળી, 'બે પગલાંમાં આખું વિશ્વ માપી લેનાર મારા માટે, તારું મસ્તક મારું ચરણ મૂકવા માટે પૂરતું નહીં થાય,' એમ ન માનશો. જો (સંપૂર્ણ) સંપત્તિ દ્વારા બે પગલાં મપાયાં તો આ મસ્તક એનાથી અધિક જ હોય, કારણ કે સમ્પત્તિ કરતાં પણ સમ્પત્તિવાન અધિક હોય છે, એવો ભાવ છે. ॥ ૨ ॥

वंशीधरी—न ह्येतादृशकर्मकृतामुत्तमश्लोकत्वोक्तिः शोभत इति भावः।

આવું કર્મ કરનારને ઉત્તમશ્લોક સંબોધન શોભતું નથી, એમ ભાવ છે.

ननु च—

'आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि॥'

વળી, કદાચ ભગવાન કહે કે,

'આપત્તિનો સામનો કરવા માટે ધનની રક્ષા કરવી, ધનને ભોગે પણ પત્નીની રક્ષા કરવી. પોતાની જાતને પત્ની અને ધનથી પણ રક્ષવી. (મનુસ્મૃતિ ૭/૨૧૩)

इत्यादिवचनादात्मभयपरिहाराय सर्वस्वं त्यज्यते, त्वं तु कुतो भीतः सन्नात्मानमर्पयस्यत आह—**बिभेमीति**।

વગેરે વચન અનુસાર પોતાના ઉપરનો ભય દૂર કરવા માટે સર્વસ્વનો ત્યાગ કરવામાં આવે છે, તો તું કોનાથી ભય પામીને જાતને સમર્પિત કરે છે? આ માટે ઉત્તર આપે છે— '**बिभेमि इति।**'

बिभेमि नाहं निरयात् पदच्युतो
न पाशबन्धाद् व्यसनाद् दुरत्ययात्।
नैवार्थकृच्छ्राद् भवतो विनिग्रहा-
दसाधुवादाद् भृशमुद्विजे यथा॥ ३

અસાધુવાદાદપકીર્તેર્યથાऽहं भृशमुद्विजे, निरयादिभ्यो न तथा बिभेमि॥ ३॥

मारी અપકીર્તિથી હું જેવો અત્યંત ભય પામું છું તેવો સ્થાનભ્રષ્ટ થવાને કારણે નરકમાં પડવાથી, પાશમાં બંધાવાથી, દુષ્પાર દુઃખમાં આવી પડવાથી, આર્થિક સંકટથી કે આપના દ્વારા મને ઘોર દંડ પ્રાપ્ત થવાથી પણ ભય પામતો નથી.॥ ૩॥

'असाधुवादात्' અપકીર્તિથી હું જેવો અત્યંત ભય પામું છું, તેવો નરકાદિથી પણ ભય પામતો નથી.॥ ૩॥

वंशीधरी—असाधुवादात् इति। भगवद्भक्ता ब्राह्मणवञ्चका भवन्तीति यथा बलिरिति वैष्णवलोकदुष्कीर्तिवादात्।

'ભગવાનના ભક્તો બ્રાહ્મણોને છેતરનારા બને છે, જેમ કે બલિ,' એમ વૈષ્ણવલોકોમાં થતી અપકીર્તિથી હું ભય પામું છું.

ननु मया निगृहीतत्वात्तवापकीर्तिर्जातैव, नैवेत्याह—**पुंसामिति**।

વળી, શંકા કરે છે કે (ભગવાન કહે કે) મારા દ્વારા દંડ થવાથી તારી અપકીર્તિ જ થઈ છે, તો તે માટે ઉત્તર આપે છે કે અપકીર્તિ નથી જ થઈ— **'पुंसाम् इति।'**

पुंसां श्लाघ्यतमं मन्ये दण्डमर्हत्तमार्पितम्।
यं न माता पिता भ्राता सुहृदश्चादिशन्ति हि॥ ४

અત્યંત પૂજનીય ગુરુજનો દ્વારા આપવામાં આવેલો દંડ, તો મનુષ્યો માટે અત્યંત પ્રશંસનીય છે, એમ હું માનું છું, કે જે દંડ માતા, પિતા, ભાઈ અને મિત્ર પણ આપી શકતા નથી.॥ ૪॥

अर्हत्तमैरर्पितम्। यं दण्डं मात्रादयोऽपि न ह्यादिशन्ति नैवार्पयन्ति। हितैषिणा त्वया निगृहीतोऽहं श्लाघ्य एवास्मीति भावः॥ ४॥

અત્યંત પૂજનીય ગુરુજનો દ્વારા આપવામાં આવેલો દંડ કે જે દંડ માતા વગેરે પણ **'न हि आदिशन्ति'** ખરેખર, આપી શકતા નથી. હિતૈષી એવા આપના દ્વારા આપવામાં આવેલા દંડથી તો હું પ્રશંસાને પાત્ર બન્યો છું, એવો ભાવ છે.॥ ૪॥

नन्वहं देवानां हितैषी नासुराणां तत्राह—**त्वं नूनमिति**।

જો ભગવાન કહે કે હું તો દેવોનો હિતૈષી છું, અસુરોનો નહીં, તો તે માટે ઉત્તર આપે છે— **'त्वं नूनम् इति।'**

त्वं नूनमसुराणां नः पारोक्ष्यः परमो गुरुः।
यो नोऽनेकमदान्धानां विभ्रंशं चक्षुरादिशत्॥ ५

શત્રુના બહાને અસુરોરૂપે રહેલા આપ અમારા પરોક્ષરૂપે (હિતકારી) પરમગુરુ જ છો, કે જે આપ (શૌર્ય, વીર્ય, ધન, જનાદિથી યુક્ત) અનેક જાતના મદ વડે આંધળા બનેલા અમને ઐશ્વર્યથી ભ્રષ્ટ કરીને જ્ઞાનદૃષ્ટિ જ આપો છો.॥ ૫॥

पारोक्ष्यः शत्रुच्छलेन वर्तमानः ॥ ५ ॥

शत्रुत्वं पुनर्भक्तानिवास्माननुग्रहीतुमेवेत्याह— **यस्मिन्निति।**

यस्मिन् वैरानुबन्धेन रूढेन विबुधेतराः।
बहवो लेभिरे सिद्धिं यामु हैकान्तयोगिनः ॥ ६

उ अहो। ह प्रसिद्धम् ॥ ६ ॥

अतो नात्र मम लज्जा नापि दुःखमित्याह—

तेनाहं निगृहीतोऽस्मि भवता भूरिकर्मणा।
बद्धश्च वारुणैः पाशैर्नातिव्रीडे न च व्यथे ॥ ७

तेन गुरुणा भवता ॥ ७ ॥

किंच योऽयं दण्डरूपो ममानुग्रहस्त्वया कृतः स तु त्वद्भक्तपौत्रत्वेन, न त्वहमनुग्रहस्य पात्रमित्याशयेनाह—**पितामह इति।**

पितामहो मे भवदीयसंमतः
प्रह्लाद आविष्कृतसाधुवादः।
भवद्विपक्षेण विचित्रवैशसं
संप्रापितस्त्वत्परमः स्वपित्रा ॥ ८

भवदीयानां संमतः। यत आविष्कृतः साधुवादो यस्य। त्वमेव परम आश्रयो यस्य सः। अतो भवतो विपक्षेण विद्विषा हिरण्यकशिपुना विचित्रं वैशसं हिंसां संप्रापितोऽपि देहादीनामसारतां

'पारोक्ष्यः' શત્રુના બહાને રહેલા ॥ ૫ ॥

વળી, આપ જે શત્રુતા રાખો છો તે તો જેમ ભક્તોની ઉપર અનુગ્રહ કરો છો, તેમ અમારી ઉપર પણ અનુગ્રહ કરવા માટે જ છે, એમ કહે છે— **'यस्मिन् इति।'**

જેમના પ્રત્યે દૃઢ કરેલા અતિ વેરબંધનથી ઘણા અસુરો જે સિદ્ધિ પામ્યા છે, તે અનન્ય ભાવવાળા યોગીઓને જ પ્રાપ્ત થાય છે. ॥ ૬ ॥

'उ' અહો! **'ह'** પ્રસિદ્ધ છે. ॥ ૬ ॥

આથી આ માટે નથી મને લજ્જા કે નથી દુઃખ, એમ કહે છે—

તેથી અનંત લીલાઓવાળા તે (ગુરુ) આપના દ્વારા મને વરુણના પાશોથી બાંધવામાં આવ્યો અને કેદ કરવામાં આવ્યો, તેનાથી નથી હું લજ્જિત થયો કે નથી હું દુઃખી થયો. ॥ ૭ ॥

'तेन' તે ગુરુ એવા આપના દ્વારા ॥ ૭ ॥

વળી, મારા ઉપર જે આ દંડરૂપ અનુગ્રહ કરવામાં આવ્યો છે તે તો આપના ભક્ત પ્રહ્લાદજીના પૌત્ર હોવાને કારણે છે, પરંતુ હું અનુગ્રહને પાત્ર નથી, એ આશયથી કહે છે— **'पितामहः इति।'**

આપના ભગવદ્ભક્તોમાં (શ્રેષ્ઠ) મનાતા અને જેમને સત્કીર્તિ પ્રાપ્ત થઈ હતી તેવા મારા પિતામહ પ્રહ્લાદજીએ આપના શત્રુ અને પોતાના પિતા હિરણ્યકશિપુ દ્વારા અનેક જાતનાં દુઃખો પ્રાપ્ત કર્યાં હતાં, (છતાં પણ) આપ જ તેમના પરમ આશ્રયરૂપ હતા. ॥ ८ ॥

ભગવદ્ભક્તોમાં શ્રેષ્ઠ માનવામાં આવેલા પ્રહ્લાદજી, જેને કારણે પ્રાપ્ત થઈ છે સત્કીર્તિ જેમને. આપ જ જેમના પરમ આશ્રયરૂપ છો. આથી આપના **'विपक्षेण'** શત્રુ એવા પિતા હિરણ્યકશિપુ દ્વારા અનેક જાતનાં **'वैशसम्'** (હિંસા) દુઃખો પ્રાપ્ત કરાવ્યાં હોવા છતાં પણ દેહાદિની અસારતાનો

निश्चित्य, अकुतोभयं ध्रुवं च भवतः पादपद्ममेव प्रपेदे। अथ तस्मादहमपि दैवेन तस्यैव भाग्येन तवान्तिकं नीत इति चतुर्णामन्वयः॥ ८॥

किमात्मनाऽनेन जहाति योऽन्ततः
किं रिक्थहारैः स्वजनाख्यदस्युभिः।
किं जायया संसृतिहेतुभूतया
मर्त्यस्य गेहैः किमिहायुषो व्ययः॥ ९

अन्तत आयुषोऽन्ते। रिक्थहारैः पुत्रैः। इह गेहेषु केवलमायुषो व्यय एव न तु सुखं किंचित्॥ ९॥

इत्थं स निश्चित्य पितामहो महा-
नगाधबोधो भवतः पादपद्मम्।
ध्रुवं प्रपेदे ह्यकुतोभयं जनाद्
भीतः स्वपक्षक्षपणस्य सत्तमः॥ १०

स प्रसिद्धो महान्। स्वपक्षं दैत्यकुलं क्षपयतीति तस्यापि॥ १०॥

अथाहमप्यात्मरिपोस्तवान्तिकं
दैवेन नीतः प्रसभं त्याजितश्रीः।
इदं कृतान्तान्तिकवर्ति जीवितं
ययाऽध्रुवं स्तब्धमतिर्न बुध्यते॥ ११

નિશ્ચય કરી નિર્ભય અને નિશ્ચળ એવાં આપનાં ચરણકમળનું તેમણે શરણ લીધું. '**अथ**' આથી મને પણ દૈવ દ્વારા તેમના જ ભાગ્યથી આપની પાસે લાવવામાં આવ્યો છે, એમ આનાથી ચોથા શ્લોક(૧૧) સાથે અન્વય છે.॥ ૮॥

(પ્રહ્લાદજીએ એ નિશ્ચય કરી લીધો હતો કે) જે શરીર આયુષ્યના અંતે (એક દિવસ તો) સાથ છોડી દે છે, એ શરીરથી શું વળવાનું છે? ધન લઈ લેનારા (પુત્રાદિ) સ્વજનો નામના ચોરોથી પણ શું કામ છે? સંસાર માટે કારણરૂપ એવી જાયાથી અને ગૃહાદિથી પણ શું પ્રયોજન સિદ્ધ થવાનું છે? અહીં ઘર વગેરેમાં તો મનુષ્યના આયુષ્યનો કેવળ નાશ જ થાય છે.॥ ૯॥

'**अन्ततः**' આયુષ્યના અંતે '**रिक्थहारैः**' વારસો (ધન) હરી લેનારા પુત્રોથી શું પ્રયોજન છે? અહીં ઘર વગેરેમાં આયુષ્યનો કેવળ નાશ જ છે, પણ જરાય સુખ નથી.॥ ૯॥

આ પ્રમાણે નિશ્ચય કરીને લોકો(ના સંગ)થી ભય પામેલા, અગાધ જ્ઞાનવાળા, સંતશિરોમણિ એવા મારા તે પિતામહ પ્રહ્લાદજીએ પોતાના કુળનો નાશ કરનારા હોવા છતાં સર્વ તરફથી નિર્ભય અને અવિનાશી આપનાં ચરણકમળનો આશ્રય કર્યો.॥ ૧૦॥

'**सः**' તે પ્રસિદ્ધ મહાન પ્રહ્લાદજીએ '**स्वपक्षम्**' પોતાના દૈત્યકુળનો નાશ કરનારા હોવા છતાં (આપનાં ચરણકમળનો આશ્રય કર્યો.)॥ ૧૦॥

(પ્રહ્લાદજીનો પૌત્ર છું,) તેથી જ જેની લક્ષ્મી બળપૂર્વક ત્યાગ કરાવવામાં આવી છે તેવો હું પણ પોતાના શત્રુ એવા આપની પાસે દૈવ દ્વારા લાવવામાં આવ્યો છું, કે જે લક્ષ્મીને કારણે મનુષ્ય જડબુદ્ધિ થઈ આ જીવનને નાશવંત અને મૃત્યુની નિકટ રહેનારું છે, એમ સમજતો નથી.॥ ૧૧॥

प्रसभं बलात्त्याजिता श्रीर्यस्य। यया श्रिया स्तब्धमतिः सन्पुमानिदं जीवितमध्रुवं न बुध्यते। कथंभूतम्। कृतान्तस्यान्तिकवर्ति मृत्योः संनिहितम्॥ ११॥

'प्रसभम्' બળપૂર્વક ત્યાગ કરાવવામાં આવી છે જેની લક્ષ્મી, કે જે લક્ષ્મીને કારણે મનુષ્ય જડબુદ્ધિ થઈ આ જીવન નાશવંત છે, એમ સમજતો નથી. કેવા જીવનને? **'कृतान्तस्य'** અંત કરનાર મૃત્યુની **'अन्तिकवर्ति'** નિકટ રહેનારા જીવનને॥ ૧૧॥

श्रीशुक उवाच

तस्येत्थं भाषमाणस्य प्रह्रादो भगवत्प्रियः।
आजगाम कुरुश्रेष्ठ राकापतिरिवोत्थितः॥ १२

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — હે કુરુશ્રેષ્ઠ (પરીક્ષિત), તે રાજા બલિ આ પ્રમાણે બોલતા હતા, તેવામાં ભગવાનના પ્રિય પ્રહ્‌લાદજી ઉદય પામેલા પૂર્ણચન્દ્રની જેમ આવી પહોંચ્યા.॥ ૧૨॥

राकापतिः पूर्णेन्दुः॥ १२॥

'राकापतिः' પૂર્ણચન્દ્ર॥ ૧૨॥

तमिन्द्रसेनः स्वपितामहं श्रिया
विराजमानं नलिनायतेक्षणम्।
प्रांशुं पिशङ्गाम्बरमञ्जनत्विषं
प्रलम्बबाहुं सुभगं समैक्षत॥ १३

(કાન્તિથી) પ્રકાશતા, કમળ સમાન વિશાળ નેત્રોવાળા, ઉન્નત (શરીરવાળા), આજાનબાહુ, શ્યામવર્ણા, (પીળું) પીતાંબર પહેરેલા, (સર્વાંગ-) સુંદર એવા પોતાના તે પિતામહ પ્રહ્‌લાદજીને બલિરાજાએ જોયા.॥ ૧૩॥

अञ्जनत्विषं श्यामम्॥ १३॥

'अञ्जनत्विषम्' શ્યામ વર્ણના પ્રહ્‌લાદજીને (જોયા.)॥ ૧૩॥

तस्मै बलिर्वारुणपाशयन्त्रितः
समर्हणं नोपजहार पूर्ववत्।
ननाम मूर्ध्नाश्रुविलोललोचनः
सव्रीडनीचीनमुखो बभूव ह॥ १४

વરુણના પાશમાં બંધાયેલા બલિરાજાએ તે પ્રહ્‌લાદજીનું પહેલાંની જેમ (અર્ઘ્યાદિપૂર્વક) પૂજન ન કર્યું, (પરંતુ કેવળ) મસ્તકથી નમન કર્યું. અશ્રુથી ચંચળ બનેલાં નેત્રોવાળા બલિરાજા લજ્જાથી નતમસ્તક જ થઈ ગયા.॥ ૧૪॥

स्वकृताहंकारादिरूपापराधस्मरणेन सव्रीडं नीचीनमधोमुखं यस्य सः॥ १४॥

પોતે કરેલા અહંકારાદિરૂપ અપરાધના સ્મરણથી લજ્જા સહિત **'नीचीनम्'** નીચું મુખ જેમનું છે તે બલિરાજા॥ ૧૪॥

स तत्र हासीनमुदीक्ष्य सत्पतिं
सुनन्दनन्दाद्यनुगैरुपासितम्।
उपेत्य भूमौ शिरसा महामना
ननाम मूर्ध्ना पुलकाश्रुविक्लवः॥ १५

ત્યાં બિરાજેલા, નંદ-સુનંદ વગેરે સેવકો દ્વારા ઉપાસના કરાતા ભક્તપાલક વામન ભગવાનને જોઈને ઉદાર (પ્રસન્ન) મનવાળા પ્રહ્‌લાદજીએ (આનંદને કારણે) રોમાંચિત થવાથી અને અશ્રુઓથી વિહ્‌વળ થઈ મસ્તકથી ભૂમિ ઉપર નમન કરતાં કરતાં પાસે જઈને મસ્તકથી પ્રણામ કર્યા. ॥ ૧૫॥

शिरसा नमन्नेवोपेत्य मूर्ध्ना ननाम। बलेस्तत् कृतमनुग्रहं दृष्ट्वा पुलकैरश्रुभिश्च विक्लवो विह्वलः ॥ १५ ॥

મસ્તકથી ભૂમિ ઉપર નમન કરતાં કરતાં પાસે જઈને મસ્તકથી પ્રણામ કર્યા. બલિની ઉપર તે ભગવાને કરેલા અનુગ્રહને જોઈ (આનંદને કારણે) રોમાંચિત થવાથી અને અશ્રુઓથી **'विक्लवः'** વિહ્વળ પ્રહ્‌લાદજીએ ॥ ૧૫ ॥

प्रह्लाद उवाच

त्वयैव दत्तं पदमैन्द्रमूर्जितं
हृतं तदेवाद्य तथैव शोभनम्।
मन्ये महानस्य कृतो ह्यनुग्रहो
विभ्रंशितो यच्छ्रिय आत्ममोहनात्॥ १६

પ્રહ્લાદજી બોલ્યા – (પૂર્વે) આપના જ દ્વારા (બલિને) સમૃદ્ધ ઈન્દ્રપદ આપવામાં આવ્યું હતું, તે રીતે આજે હરી લેવામાં આવ્યું છે તે યોગ્ય જ છે, કારણ કે મનના મોહરૂપ એવી લક્ષ્મીથી ભ્રષ્ટ થયેલા આ બલિની ઉપર મહાન અનુગ્રહ જ કરવામાં આવ્યો છે, એમ હું માનું છું. ॥ ૧૬ ॥

त्वयैवेति। न ह्यैन्द्रं पदमेतदीयं त्वयापहृतं, किंतु स्वीयमेव पुनः स्वीकृतं, तच्च शोभनमेव कृतम्। तत्र हेतुः—मन्य इति। यद्यस्माच्छ्रीरेव यदात्ममोहनं तस्माद्विभ्रंशितः ॥ १६ ॥

'त्वया एव इति' ઈન્દ્રસંબંધી આ બલિનું પદ આપે હરી લીધું એમ નહીં, પરંતુ આપે જ આપનું પાછું સ્વીકાર્યું છે અને તે યોગ્ય જ કરવામાં આવ્યું છે. તે માટેનું કારણ— **'यत्'** કારણ કે મનના મોહરૂપ એવી લક્ષ્મી, તેનાથી ભ્રષ્ટ થયેલો બલિ ॥ ૧૬ ॥

मोहनत्वमेवाह—

લક્ષ્મીની મોહકારકતાનું જ વર્ણન કરે છે—

यया हि विद्वानपि मुह्यते यत-
स्तत् को विचष्टे गतिमात्मनो यथा।
तस्मै नमस्ते जगदीश्वराय वै
नारायणायाखिललोकसाक्षिणे ॥ १७

જે લક્ષ્મીથી વિદ્વાન મનુષ્ય પણ જિતેન્દ્રિય હોવા છતાં મોહ પામે છે, તે લક્ષ્મી હોય, ત્યારે કયો મનુષ્ય આત્માના તત્ત્વને યથાવત્ જુએ છે? તે (લક્ષ્મીને હરી લઈને મહાન કરુણા કરનાર) જગતના ઈશ્વરને નમસ્કાર, આપ નારાયણને નમસ્કાર, સમગ્ર લોકના સાક્ષીને નમસ્કાર. ॥ ૧૭ ॥

यया श्रिया विद्वानपि यतः संयतोऽपि मुह्यति तत्तस्यां सत्यां कोऽन्यः पुमानात्मनो गतिं तत्त्वं यथावद्विचष्टे पश्यति। तस्मै महाकारुणिकाय ॥ १७ ॥

જે લક્ષ્મીથી વિદ્વાન મનુષ્ય પણ **'यतः'** જિતેન્દ્રિય હોવા છતાં મોહ પામે છે, **'तत्'** તે લક્ષ્મી હોય, ત્યારે **'कः'** કયો મનુષ્ય આત્માના **'गतिम्'** તત્ત્વને યથાવત્ **'विचष्टे'** જુએ છે? તે અત્યન્ત કરુણા કરનારને (નમસ્કાર). ॥ ૧૭ ॥

श्रीशुक उवाच

तस्यानुशृण्वतो राजन् प्रह्लादस्य कृताञ्जलेः।
हिरण्यगर्भो भगवानुवाच मधुसूदनम्॥ १८

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – હે રાજા, બે હાથ જોડીને ઊભા રહેલા તે પ્રહ્‌લાદજીના સાંભળતાં જ હિરણ્યગર્ભ ભગવાન (બ્રહ્મા) (વામન નામના) મધુસૂદનને (કંઈક) કહેવા પ્રવૃત્ત થયા. ॥ ૧૮ ॥

तस्य प्रह्लादस्यानुशृण्वत उवाचेति। किंचिद्वक्तुं प्रवृत्त इत्यर्थः॥ १८॥

તે પ્રહ્‌લાદજીના સાંભળતાં જ બ્રહ્માજી '**उवाच इति।**' કંઈક કહેવા પ્રવૃત્ત થયા, એમ અર્થ છે.॥ ૧૮॥

तदैव विन्ध्यावलिरपि वक्तुं प्रवृत्ता, तां च संमानयन् हिरण्यगर्भः क्षणं तूर्ष्णीं स्थितः, अतस्तस्या एव वाक्यं प्रथममवतारयति— **बद्धं वीक्ष्येति।**

(બ્રહ્માજી બોલવા જતા હતા) તે જ સમયે વિન્ધ્યાવલિ પણ બોલવા માટે પ્રવૃત્ત થઈ. તેને સન્માન આપતા બ્રહ્માજી થોડી વાર માટે મૌન રહ્યા. આથી તે વિન્ધ્યાવલિનું વાક્ય પહેલાં ઉતારવામાં આવ્યું છે– (પતિને) બંધાયેલો જોઈને

बद्धं वीक्ष्य पतिं साध्वी तत्पत्नी भयविह्वला।
प्राञ्जलिः प्रणतोपेन्द्रं बभाषेऽवाङ्मुखी नृप॥ १९
॥ १९ ॥

હે નૃપ, (પોતાના) પતિને બંધાયેલો જોઈ, ભયવિહ્‌વળ થયેલી તે બલિની સાધ્વી પત્ની વિન્ધ્યાવલિ (ઈન્દ્રના નાના ભાઈ વામન ભગવાનના ચરણોમાં પ્રણામ કરી) નતમસ્તક થઈ ઉપેન્દ્ર વામન ભગવાનને કહેવા લાગી.॥ ૧૯॥ ૧૯॥

विन्ध्यावलिरुवाच

क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत् कृतं ते
स्वाम्यं तु तत्र कुधियोऽपर ईश कुर्युः।
कर्तुः प्रभोस्तव किमस्यत आवहन्ति
त्यक्तह्रियस्त्वदवरोपितकर्तृवादाः ॥ २०

વિન્ધ્યાવલિ બોલ્યાં – હે ઈશ, આપે પોતાની ક્રીડા માટે આ ત્રણેય લોક રચ્યા છે, પરંતુ તે માટે જે કુમતિઓ પોતાનું સ્વામિત્વ સમજે તેઓ નિર્લજ્જ છે. 'અમે કરનારાઓ સ્વતંત્ર છીએ.' એમ આપની માયા દ્વારા આરોપિત કર્તૃત્વનો વાદ કે માન્યતા જેમની છે તેઓ, કર્તા અને હર્તા, સર્વના સ્વામી એવા આપને શું આપવાના હતા ?॥ ૨૦॥

त्रिजगतः कर्तुः प्रभोः पालकस्यास्यतः संहर्तुश्चेश्वरस्य तवान्ये किमावहन्ति किं समर्पयन्ति। त्वयावरोपितः कर्तृवादः कर्तारः स्वतन्त्रा वयमिति वादमात्रमपि येषां ते। अयं भावः—लोकत्रयं मयार्पितं तृतीयपादाय देहं समर्प्य प्रतिश्रुतमृतं करोमीति देहादिषु स्वाम्याविष्कारेण ब्रुवन्नयं कुबुद्धिर्निर्लज्जश्च, यतस्त्वमेव सर्वस्यापि स्वामी, अतो मन्दबुद्धिमेनं केवलं कृपया विमुच्य पालयेति॥ २०॥

ત્રણેય લોકના કર્તા, સ્વામી, પાલક, '**अस्यतः**' સંહારક અને ઈશ્વર એવા આપને વળી, બીજાઓ '**किम्-आवहन्ति**' શું આપવાના હતા ? '**कर्तृवादः**' 'અમે કરનારાઓ સ્વતન્ત્ર છીએ.' એમ માત્ર કહેવાનું પણ જેમને આપના દ્વારા જ આરોપિત કરવામાં આવ્યું છે. ભાવ આ પ્રમાણે છે— ભગવાનને મેં ત્રણેય લોક આપી દીધા અને ત્રીજા ચરણ માટે દેહ સમર્પીને મારી પ્રતિજ્ઞાને સત્ય કરું છું, એમ દેહાદિ ઉપર સ્વામિત્વ પ્રકટ કરીને બોલતા આ મારા સ્વામી કુમતિ અને નિર્લજ્જ છે, કારણ કે આપ જ સર્વના સ્વામી છો. આથી આ મંદબુદ્ધિ એવા મારા સ્વામીને આપ કેવળ કૃપાથી મુક્ત કરીને તેમનું પાલન કરો.॥ ૨૦॥

तदेवं प्रह्लादस्य विन्ध्यावलेश्च परमार्थोक्त्या प्रसन्नो हरिः, ब्रह्मा तु लोकदृष्ट्यैव विज्ञापयति—**भूतभावनेति** त्रिभिः।

ब्रह्मोवाच

भूतभावन भूतेश देवदेव जगन्मय।
मुञ्चैनं हृतसर्वस्वं नायमर्हति निग्रहम्॥ २१ ॥ २१ ॥

निग्रहानर्हत्वे हेतुः—**कृत्स्नेति**।

कृत्स्ना तेऽनेन दत्ता भूर्लोकाः कर्मार्जिताश्च ये।
निवेदितं च सर्वस्वमात्माविक्लवया धिया॥ ॥ २२ ॥

सर्वस्वमेवाह—आत्मेति॥ २२॥

तदेव कैमुत्यन्यायेनाह—

यत्पादयोरशठधीः सलिलं प्रदाय
दूर्वाङ्कुरैरपि विधाय सतीं सपर्याम्।
अप्युत्तमां गतिमसौ भजते त्रिलोकीं
दाश्वानविक्लवमनाः कथमार्तिमृच्छेत्॥ २३

यस्य तव पादयोः सलिलमात्रमपि प्रदाय सर्वोऽपि जन उत्तमां गतिं प्राप्नोति, तस्मै तुभ्यमसौ बलिस्त्रिलोकीं दाश्वान्दत्तवान्स आर्तिं कथं प्राप्नुयात्॥ २३॥

श्रीभगवानुवाच

ब्रह्मन् यमनुगृह्णामि तद्विशो विधुनोम्यहम्।
यन्मदः पुरुषः स्तब्धो लोकं मां चावमन्यते॥ २४

તો આમ, પ્રહ્‌લાદજીની અને વિન્ધ્યાવલિની પરમાર્થવાણીથી શ્રીહરિ પ્રસન્ન થયા. બ્રહ્માજી તો લોકદૃષ્ટિથી જ ત્રણ શ્લોકોથી વિનંતિ કરે છે—**'भूतभावन इति।'**

બ્રહ્માજી બોલ્યા – હે પ્રાણીઓના રક્ષણહાર, હે પ્રાણીઓના નિયન્તા, હે દેવાધિદેવ, હે સર્વ જગ**તના** ઉપાદાનરૂપ, જેનું સર્વસ્વ હરી લેવામાં આવ્યું છે તે આ બલિને મુક્ત કરો. આ બલિ બંધનને પાત્ર નથી.॥ ૨૧॥ ૨૧॥

દંડને પાત્ર ન હોવા માટેનું કારણ—**'कृत्स्ना इति।'**

આ બલિ દ્વારા સંપૂર્ણ ભૂલોક આપી દેવામાં આવ્યો છે તથા (પુણ્ય) કર્મોથી ઉપાર્જિત કરવામાં આવેલા જે (સ્વર્ગાદિલોક છે તે તથા) સર્વસ્વ એવી પોતાની જાત પણ ઉદાર બુદ્ધિથી નિવેદન કરવામાં આવેલી છે.॥ ૨૨॥

સર્વસ્વનું જ વર્ણન કરે છે— **'आत्मा इति।'**॥ ૨૨॥

તે (દંડની અપાત્રતાની) જ કૈમુત્યન્યાયથી વાત કરે છે—

નિષ્કપટ બુદ્ધિવાળા મનુષ્ય જેમનાં ચરણોમાં જળ સમર્પીને કેવળ દૂર્વાંકુરોથી આપની સાચી પૂજા કરીને ઉત્તમ ગતિને પ્રાપ્ત કરે છે તો ત્રણેય લોકને આપી દેનાર, ઉદાર મનવાળો એ બલિ પીડા કેમ પામે?॥ ૨૩॥

આપનાં જે ચરણોમાં કેવળ જળ સમર્પીને સર્વ જનો પણ ઉત્તમ ગતિ પ્રાપ્ત કરે છે, (**'तस्मै'**) તેવા આપને તે બલિ ત્રણેય લોક **'दाश्वान्'** આપી દેનારો છે, તો તે પીડા કેવી રીતે પામે?॥ ૨૩॥

શ્રીભગવાન બોલ્યા – હે બ્રહ્મા, જેના પર હું અનુગ્રહ કરું છું તેનું ધન હરી લઉં છું, કે જે ધનથી ગુમાની બનેલો મનુષ્ય લોકોનો અને મારો તિરસ્કાર કરે છે.॥ ૨૪॥

तस्य विशोऽर्थान्। नन्वर्थापहारः कोऽयमनुग्रहस्तत्राह—यन्मदः यैरर्थैर्मदो यस्य सः। अत एव स्तब्धोऽनम्रः सन्। मदस्तम्भहेतूनामर्थानामपहार एवानुग्रह इत्यर्थः॥ २४॥

દુર્લભ એવા મનુષ્યજન્મને ક્યારેક જ પ્રાપ્ત કરતા જીવને જન્મ વગેરેને કારણે થતો ગર્વ ખૂબ હાનિકારક છે અને તેનો નાશ પણ મારા અનુગ્રહને કારણે જ થાય છે, એમ બે શ્લોકો વડે કહે છે— 'यदा इति।'

तेना '**विशः**' ધનનું–શંકા કરે છે કે ધનનું હરણ– એ વળી કેવો અનુગ્રહ? તે માટે કહે છે— '**यन्मदः**' જે ધનાદિથી મદ છે જેને તે મનુષ્ય, આથી જ '**स्तब्धः**' ગુમાની (અક્કડ) થયેલો– મદને કારણે અભિમાન આવે તે અભિમાનના હેતુરૂપ ધનનું અપહરણ તે જ અનુગ્રહ, એમ અર્થ છે.॥ ૨૪॥

दुर्लभं पुरुषजन्म कथंचिल्लब्धवतो जीवस्य जन्मादिनिमित्तो गर्वो महाहानिकरः, तस्य च नाशो मदनुग्रहादेवेत्याह—**यदेति** द्वाभ्याम्।

यदा कदाचिज्जीवात्मा संसरन् निजकर्मभिः।
नानायोनिष्वनीशोऽयं पौरुषीं गतिमाव्रजेत्॥ २५

આ પરતંત્ર જીવાત્મા પોતાનાં કર્મોને કારણે અનેક જાતની યોનિઓમાં ભટકતો, કોઈક વખત જ્યારે મનુષ્યજન્મ પામે છે,॥ ૨૫॥

अनीशः परतन्त्रः सन्निजैः कर्मभिर्नानायोनिषु कृमिकीटकादिषु संसरन्॥ २५॥

'**अनीशः**' પરતંત્ર હોઈ પોતાનાં કર્મોને કારણે કૃમિ, કીટક વગેરે જુદી જુદી અનેક યોનિઓમાં ભટકતો જીવાત્મા॥ ૨૫॥

जन्मकर्मवयोरूपविद्यैश्वर्यधनादिभिः।
यद्यस्य न भवेत् स्तम्भस्तत्रायं मदनुग्रहः॥ २६

(ત્યારે) જન્મ, કર્મ, વય, રૂપ, વિદ્યા, ઐશ્વર્ય તથા ધન વગેરેથી જો એને (ગર્વ) અભિમાન ન થાય, તો એ મારો (મહાન) અનુગ્રહ છે.॥ ૨૬॥

तत्र पौरुष्यां गतौ जन्मादिभिरपि यस्य यदि स्तम्भो न भवेत्तर्ह्ययं मदनुग्रह एव॥ २६॥

તે મનુષ્યજન્મમાં જન્મ વગેરેથી પણ જો અભિમાન ન થાય, તો એ મારો અનુગ્રહ જ છે.॥ ૨૬॥

कथं तर्हि ध्रुवादिभ्योऽर्थसंपदो ददासीति चेत्तत्राह—

તો પછી ધ્રુવ વગેરેને કેમ ધનસંપત્તિ આપો છો, એમ જો પૂછવામાં આવે તો તે માટે ઉત્તર આપે છે—

मानस्तम्भनिमित्तानां जन्मादीनां समन्ततः।
सर्वश्रेयःप्रतीपानां हन्त मुह्येन्न मत्परः॥ २७

અરે! હે બ્રહ્મા, સર્વ પ્રકારનાં કલ્યાણોનો સર્વ રીતે નાશ કરનાર અભિમાનના નિમિત્તરૂપ જન્માદિ હોવા છતાં મને પરાયણ રહેનાર (ભક્ત તેમનાથી) મોહ પામતો નથી.॥ ૨૭॥

मान एव स्तम्भोऽनम्रता तस्य निमित्तभूतानां समन्ततः सर्वशः सर्वश्रेयःप्रतिकूलानां जन्मादीनां सत्त्वेऽपि जन्मादिभिरिति वा। हन्तेति खेदे। हे

અભિમાન એ જ '**स्तम्भः**' અકડાઈ, અનમ્રતા, તેનાં કારણરૂપ '**समन्ततः**' સર્વ રીતે સર્વ પ્રકારનાં કલ્યાણ માટે જન્માદિ પ્રતિકૂળ હોવા છતાં ગર્વ થતો નથી. અથવા જન્માદિથી સર્વ તરફથી અભિમાન થાય છે. '**हन्त**' અરે!

ब्रह्मन्, मत्परो न मुह्येत्। अतो भक्तस्येच्छया संपदोऽपि ददामि। अभक्तस्तु मुह्येदिति तदपहार–रूपमेव तस्यानुग्रहं करोमीति भावः ॥ २७ ॥

હે બ્રહ્મા, એમ ખેદથી (સંબોધન કરે છે). મને પરાયણ રહેનાર મોહ નથી પામતો. આથી ભક્તની ઈચ્છા પ્રમાણે તેને સમ્પત્તિ પણ આપું છું. અભક્ત તો મોહ પામે છે, માટે તેની સંપત્તિનું હરણ કરી લેવા દ્વારા જ તેની ઉપર અનુગ્રહ કરું છું, એવો ભાવ છે. ॥ ૨૭ ॥

अस्य चेदानीं मत्परत्वादन्यैर्दुष्प्रापमपि दास्यामीति वक्तुं तस्य मोहाभावमाह—**एष इति** त्रिभिः ।

(હું જ જેને માટે મુખ્ય છું તેવા) મને પરાયણ રહેનાર આ બલિને હવે હું અન્યને દુષ્પ્રાપ્ય હોય તેવું આપીશ, એમ કહેવા માટે તેનો મોહાભાવ (મોહ ન હોવો તે) ત્રણ શ્લોકોથી કહે છે— '**एषः इति।**'

एष दानवदैत्यानामग्रणीः कीर्तिवर्धनः ।
अजैषीदजयां मायां सीदन्नपि न मुह्यति ॥ २८
॥ २८ ॥

દાનવો અને દૈત્યોમાં અગ્રણી અને કીર્તિ વધારનાર આ બલિએ મારી અજેય માયાને જીતી લીધી છે તથા દુઃખ ભોગવવા છતાં તે મોહ પામતો નથી. ॥ ૨૮ ॥ ૨૮ ॥

क्षीणरिक्थश्च्युतः स्थानात् क्षिप्तो बद्धश्च शत्रुभिः ।
ज्ञातिभिश्च परित्यक्तो यातनामनुयापितः ॥
॥ २९ ॥ २९ ॥

જેનું ધન નાશ પામ્યું છે, જે સ્થાનભ્રષ્ટ થયો છે, જેનું અપમાન કરવામાં આવ્યું છે તથા શત્રુઓ દ્વારા જેને બાંધવામાં આવ્યો છે, જ્ઞાતિજનો દ્વારા જેનો પરિત્યાગ કરવામાં આવ્યો છે, જેણે યાતના ભોગવી છે, ॥ ૨૯ ॥ ૨૯ ॥

गुरुणा भर्त्सितः शप्तो जहौ सत्यं न सुव्रतः ।
छलैरुक्तो मया धर्मो नायं त्यजति सत्यवाक् ॥ ३०

ગુરુ દ્વારા જે તિરસ્કૃત થયો છે તેમ જ શાપ પામ્યો છે, એવા તેને મેં છળપૂર્વક ધર્મોપદેશ કર્યો છે, છતાં પણ આ સત્યવાદી ધર્મને છોડતો નથી ! ॥ ૩૦ ॥

'न ह्येतस्मिन्कुले कश्चिन्निःसत्त्वः कृपणः पुमान्' इत्यादिना छलैरेव मया धर्म उक्तस्तथापि तं धर्ममयं न त्यजति, अतः सत्यवाक् ॥ ३० ॥

'આ કુળમાં કોઈ પણ નિઃસત્ત્વ અને કૃપણ મનુષ્ય પાક્યો નથી.' (શ્રીમદ્ ભા.૮/૧૯/૩) વગેરે દ્વારા કપટથી જ મેં ધર્મનો ઉપદેશ કર્યો, છતાં પણ ધર્મયુક્ત વસ્તુને તે ત્યજતો નથી, માટે તે સત્યવાદી છે. ॥ ૩૦ ॥

एष मे प्रापितः स्थानं दुष्प्रापममरैरपि ।
सावर्णेरन्तरस्यायं भवितेन्द्रो मदाश्रयः ॥ ३१

આ બલિને, મારા દ્વારા દેવોને પણ દુષ્પ્રાપ્ય એવું સ્થાન પ્રાપ્ત કરાવવામાં આવ્યું છે. સાવર્ણિ મન્વન્તરમાં આ બલિ, હું જેના આશ્રયરૂપ છું તેવો (મારો પરમ ભક્ત) ઈન્દ્ર થશે. ॥ ૩૧ ॥

मे मया। अहमेवाश्रयः पालको यस्य सः ॥ ३१ ॥

'**मे**' મારા દ્વારા (સ્થાન પામ્યો છે)– હું જ જેનો '**आश्रयः**' પાલક છું તે (બલિ) ॥ ૩૧ ॥

'स्थानं प्रापितः' इति यदुक्तं तदेव स्थानमाह—

तावत् सुतलमध्यास्तां विश्वकर्मविनिर्मितम्।
यन्नाधयो व्याधयश्च क्लमस्तन्द्रा पराभवः।
नोपसर्गा निवसतां संभवन्ति ममेक्षया॥ ३२

'स्थानं प्रापितः' એમ જે ઉપરના શ્લોક(૩૧)માં કહ્યું તે જ સ્થાન જણાવે છે—

(સાવર્ણિ મન્વન્તરનો કાળ આવે), ત્યાં સુધી વિશ્વકર્માએ નિર્માણ કરેલા સુતલ લોકમાં તે અધિવાસ કરે, જ્યાં રહેનારાઓને મારી કૃપાદૃષ્ટિથી મનની પીડા, શરીરના વ્યાધિ, શ્રમ, તંદ્રા, પરાજય અને ઉપદ્રવો થતા નથી.॥ ૩૨॥

तावत्सावर्णिमन्वन्तरपर्यन्तं सुतलमध्यास्ताम्। अधिवसत्वित्यर्थः। यद्यस्मिन्वसतामाध्यादयो ममेक्षया न संभवन्ति॥ ३२॥

'तावत्' સાવર્ણિ મન્વન્તરનો કાળ આવે, ત્યાં સુધી તે બલિ સુતલ લોકમાં રહે, અધિવાસ કરે, એમ અર્થ છે. **'यत्'** જ્યાં વસનારાઓને આધિ વગેરે મારી કૃપાદૃષ્ટિથી સંભવતાં નથી.॥ ૩૨॥

एवं ब्रह्माणं प्रत्युक्त्वा करुणापरवशः साक्षाद्बलिं प्रत्याह—**इन्द्रसेनेति** चतुर्भिः।

આ પ્રમાણે બ્રહ્માજીને કહીને કરુણાથી પરવશ બનેલા ભગવાન બલિને ચાર શ્લોકથી સાક્ષાત્ કહે છે— **'इन्द्रसेन इति।'**

इन्द्रसेन महाराज याहि भो भद्रमस्तु ते।
सुतलं स्वर्गिभिः प्रार्थ्यं ज्ञातिभिः परिवारितः॥ ३३
॥ ३३॥

હે મહારાજ ઈન્દ્રસેન (બલિ), તારું કલ્યાણ થાઓ! સ્વર્ગમાં નિવાસ કરનારા (દેવો) દ્વારા પણ પ્રાર્થના કરવા યોગ્ય એવા સુતલલોકમાં તું તારા જ્ઞાતિજનો સહિત જા.॥ ૩૩॥ ૩૩॥

न त्वामभिभविष्यन्ति लोकेशाः किमुतापरे।
त्वच्छासनातिगान् दैत्यांश्चक्रं मे सूदयिष्यति॥ ३४

(ઈન્દ્રાદિ) લોકપાલો (પણ) તને પરાજિત નહીં કરી શકે, તો બીજાઓની વાત જ શી? તારી આજ્ઞાનું ઉલ્લંઘન કરનાર દૈત્યોનો મારું (સુદર્શન) ચક્ર નાશ કરશે.॥ ૩૪॥

त्वच्छासनमतिगच्छन्त्यतिवर्तन्त इति तथा तान्॥ ३४॥

તારી આજ્ઞાનું **'अतिगच्छन्ति'** ઉલ્લંઘન કરે તેવા તે દૈત્યોનો॥ ૩૪॥

रक्षिष्ये सर्वतोऽहं त्वां सानुगं सपरिच्छदम्।
सदा सन्निहितं वीर तत्र मां द्रक्ष्यते भवान्॥ ३५

તારા અનુચરો અને તારી ભોગસામગ્રી સહિત હું તારી સર્વ રીતે રક્ષા કરીશ. હે વીર, ત્યાં સુતલમાં તું મને નિત્ય પોતાની સમીપ રહેલો જોઈશ.॥ ૩૫॥

तथापि भगवद्वियोगात्तदनिच्छन्तं प्रत्याह—सदेति॥ ३५॥

(ભગવાન દ્વારા સાન્ત્વન આપવામાં આવ્યું હોવા) છતાં પણ ભગવાનના વિયોગની અપેક્ષાએ તે સુતલને ન ઈચ્છતા બલિ પ્રત્યે ભગવાન કહે છે— **'सदा इति।'**॥ ૩૫॥

तत्र दानवदैत्यानां सङ्गात् ते भाव आसुरः ।
दृष्ट्वा मदनुभावं वै सद्यः कुण्ठो विनङ्क्ष्यति ॥ ३६

सङ्गात् य आसुरो भावः स विनङ्क्ष्यति ॥ ३६ ॥

ત્યાં સુતલમાં દાનવો અને દૈત્યોના સંસર્ગથી તારો જે કંઈ આસુરીભાવ થશે, તે મારા (અસાધારણ) પ્રભાવને જોઈને તત્કાળ છેદાઈને નાશ પામશે. ॥ ૩૬ ॥

સંસર્ગથી જે આસુરી ભાવ થશે, તે નાશ પામશે. ॥ ૩૬ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे वामनप्रादुर्भावे बलिवामनसंवादो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

❋❋❋❋❋

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

બલિરાજાનું બંધનમાંથી મુક્ત થઈ સુતલ લોકમાં ગમન

त्रयोविंशे बलौ याते सुतलं सपितामहे।
उपेन्द्रेण दिवं गत्वा पूर्ववन्मोदते हरिः ॥ १ ॥

ત્રેવીસમા અધ્યાયમાં પિતામહ (પ્રહ્‌લાદજી) સહિત બલિરાજા સુતલમાં ગયા, ત્યારે ઈન્દ્ર વામન ભગવાન સાથે સ્વર્ગમાં જઈ પહેલાંની જેમ આનંદ કરવા લાગ્યો. (તે કથા છે.) ॥ ૧ ॥

श्रीशुक उवाच

इत्युक्तवन्तं पुरुषं पुरातनं
महानुभावोऽखिलसाधुसंमतः ।
बद्धाञ्जलिर्बाष्पकलाकुलेक्षणो
भक्त्युद्गलो गद्गदया गिराऽब्रवीत् ॥ १

बाष्पस्य कलाभिर्बिन्दुभिराकुले ईक्षणे यस्य। भक्त्या उद्गल उत्कण्ठः ॥ १ ॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — સર્વ સાધુજનોના આદરણીય એવા મહાનુભાવ બલિરાજા, આ પ્રમાણે બોલેલા પુરાણ પુરુષ વામન ભગવાનને હાથ જોડીને અશ્રુબિંદુઓથી ઊભરાઈ જતાં નેત્રે તથા ભક્તિને કારણે ગળામાં ડૂમો ભરાઈ જવાથી તૂટક વાણીથી કહેવા લાગ્યા. ॥ ૧ ॥

અશ્રુજળનાં '**कलाभिः**' બિંદુઓથી ઊભરાઈ ગયાં છે બંને નેત્રો જેમનાં. ભક્તિને કારણે '**उत्-गलः**' ઉત્કંઠિત ॥ ૧ ॥

बलिरुवाच

अहो प्रणामाय कृतः समुद्यमः
प्रपन्नभक्तार्थविधौ समाहितः ।
यल्लोकपालैस्त्वदनुग्रहोऽमरै-
रलब्धपूर्वोऽपसदेऽसुरेऽर्पितः ॥ २

બલિરાજા બોલ્યા — અહો! (આપને) પ્રણામ કરવા માટે કરવામાં આવેલો કેવળ ઉદ્યમ જ શરણાગત ભક્તના અભિમત પુરુષાર્થને સંપન્ન કરવા માટે સાવધાન રહે છે, કે જેનાથી લોકપાલો અને દેવો દ્વારા પૂર્વે પ્રાપ્ત કરવામાં નથી આવ્યો તેવો આપનો અનુગ્રહ અધમ અસુર એવા મારા ઉપર કરવામાં આવ્યો છે! ॥ ૨ ॥

अहो त्वत्प्रणाममहिमा, यदर्थं कृतः समुद्यम एव प्रपन्नानां भक्तानां योऽर्थस्तस्य विधावभक्तेऽपि तस्य संपादने समाहितोऽप्रमत्तः स्थितः। कुतः। यद्येनोद्यमेन लोकपालैरमरैः सत्त्वप्रधानैरप्यलब्धपूर्वस्त्वदनुग्रहोपसदे नीचे राजसे मय्यर्पितः।

અહો! આપને કરવામાં આવેલા પ્રણામનો મહિમા (અદ્ભુત છે)! કારણ કે જેને માટે કરવામાં આવેલો ઉદ્યમ જ, શરણાગત ભક્તોનો જે (અભિમત) પુરુષાર્થ છે તેને સંપન્ન કરવા માટે સાવધાન રહે છે! અભક્ત (દ્વારા પ્રણામ કરવા માટે કરવામાં આવેલો ઉદ્યમ હોય તો તેના) પ્રત્યે પણ! શા માટે? **‘यत्’** કે જે પ્રણામ કરવાના ઉદ્યમથી (ઇન્દ્રાદિ) લોકપાલો તથા સત્ત્વપ્રધાન દેવો દ્વારા પણ પૂર્વે પ્રાપ્ત કરવામાં નથી આવ્યો તેવો આપનો અનુગ્રહ **‘अपसदे’** અધમ, રજોગુણી અસુર એવા મારા ઉપર કરવામાં આવ્યો છે!

अयं भावः—परमेश्वराय तुभ्यमहं वराकस्त्रिलोकीं दत्तवानित्येतदास्ताम्, प्रणामोऽपि न सम्यक्कृतः। किंतु तदर्थमुद्यममात्रं कृतं, तेन च कर्मतपोदानादिकोटिभिरप्यलभ्यस्त्वदनुग्रहः संपादितः अहो त्वत्प्रणामप्रभावाश्चर्यमिति॥ २॥

ભાવ આ પ્રમાણે છે— પરમેશ્વર એવા આપને ક્ષુદ્ર એવો હું ત્રણ લોક આપું, એ વાત બાજુએ મૂકો. મારાથી તો ઉચિત રીતે પ્રણામ પણ થયા નથી, પરંતુ તે માટે કેવળ ચેષ્ટા જ કરવામાં આવી છે! તેટલા જ માત્રથી, કરોડો કર્મ, તપ, દાન, વગેરેથી પણ અલભ્ય એવો આપનો અનુગ્રહ પ્રાપ્ત થયો છે. અહો! આપને પ્રણામ કરવાનો પ્રભાવ અદ્ભુત છે!॥ ૨॥

श्रीशुक उवाच

इत्युक्त्वा हरिमानम्य ब्रह्माणं सभवं ततः।
विवेश सुतलं प्रीतो बलिर्मुक्तः सहासुरैः॥ ३॥ ३॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — (વરુણના પાશથી) મુક્ત થયેલા બલિએ પ્રસન્ન થઈ, આ પ્રમાણે કહી, શંકર ભગવાન સહિત શ્રીહરિ અને બ્રહ્માજીને પ્રણામ કરીને પછી અસુરો સાથે સુતલમાં પ્રવેશ કર્યો.॥ ૩॥॥ ૩॥

एवमिन्द्राय भगवान् प्रत्यानीय त्रिविष्टपम्।
पूरयित्वाऽदितेः काममशासत् सकलं जगत्॥ ४

આ પ્રમાણે ભગવાન વામને ઇન્દ્રને સ્વર્ગ(નું રાજ્ય) પાછું લાવી આપીને, અદિતિનો મનોરથ પૂર્ણ કરી સમગ્ર જગતનું પાલન કર્યું.॥ ૪॥

अशासदुपेन्द्रः सन् पालयामास॥ ४॥

‘अशासत्’ ઉપેન્દ્ર બનીને પાલન કર્યું.॥ ૪॥

लब्धप्रसादं निर्मुक्तं पौत्रं वंशधरं बलिम्।
निशाम्य भक्तिप्रवणः प्रह्लाद इदमब्रवीत्॥ ५॥ ५॥

પોતાના વંશધર પૌત્ર બલિને બંધનમાંથી મુક્ત થયેલો અને ભગવાનની કૃપાને પ્રાપ્ત થયેલો જોઈ ભક્તિપ્રવણ પ્રહ્લાદજી આ પ્રમાણે બોલ્યા.॥ ૫॥ ૫॥

प्रह्लाद उवाच

नेमं विरिञ्चो लभते प्रसादं
न श्रीर्न शर्वः किमुतापरे ते।
यन्नोऽसुराणामसि दुर्गपालो
विश्वाभिवन्द्यैरपि वन्दितांघ्रिः ॥ ६

दुर्गपालोऽसि, 'रक्षिष्ये सर्वतोऽहं त्वाम्' इत्युक्तत्वात् ॥ ६ ॥

यत्पादपद्ममकरन्दनिषेवणेन
ब्रह्मादयः शरणदाश्नुवते विभूतीः।
कस्माद् वयं कुसृतयः खलयोनयस्ते
दाक्षिण्यदृष्टिपदवीं भवतः प्रणीताः ॥ ७

हे शरणदाश्रयप्रद, ये कुसृतयो दुर्वृत्ताः खलयोनय उग्रजातयश्च ते वयं तस्य भवतो दाक्षिण्यदृष्टेः पदवीं कस्माद्धेतोः प्रणीताः। बहुमानेन चित्तानुवर्तनं दाक्षिण्यं तेन या दृष्टिस्तद्विषयतां प्रापिताः ॥ ७ ॥

चित्रं तवेहितमहोऽमितयोगमाया-
लीलाविसृष्टभुवनस्य विशारदस्य।
सर्वात्मनः समदृशो विषमः स्वभावो
भक्तप्रियो यदसि कल्पतरुस्वभावः ॥ ८

भक्तप्रियत्वादिति चेत्तर्ह्येवं तवेहितम्। अहो चित्रम्। किं तत्। सर्वात्मनः समदृशश्च स्वभावो विषम इति यत्। सर्वात्मत्वे चित्रचरितत्वे हेतुः —अमिताचिन्त्या योगमाया तस्या लीला तया विसृष्टानि विरचितानि भुवनानि येन तस्य।

પ્રહ્લાદજી બોલ્યા — વિશ્વવન્દ્ય (બ્રહ્માજી વગેરે) દ્વારા પણ જેમના ચરણની વંદના કરવામાં આવે છે તે આપ, અસુરો એવા અમારા દ્વારપાળ થયા છો. આપની આ જે કૃપા છે તે નથી બ્રહ્માજીએ પ્રાપ્ત કરી કે ન લક્ષ્મીજીએ કે ન તો શિવજીએ પ્રાપ્ત કરી છે, તો બીજાઓ તો તે ક્યાંથી પ્રાપ્ત કરી શકે? ॥ ૬ ॥

દ્વારપાળ થયા છો, કારણ કે 'હું તારી સર્વ રીતે રક્ષા કરીશ.' (શ્રીમદ્ ભા.૮/૨૨/૩૫) એમ કહેવામાં આવ્યું હતું. ॥ ૬ ॥

હે આશ્રયપ્રદ, જેમનાં ચરણપદ્મના મકરન્દનું નિરંતર સેવન કરવાથી બ્રહ્માદિ (દેવો) ઐશ્વર્ય પ્રાપ્ત કરે છે તેવા આપની કૃપાદૃષ્ટિના વિષયને કુમાર્ગગામી અને જન્મથી જ દુષ્ટ એવા અમે કયા કારણે પ્રાપ્ત થયા છીએ? ॥ ૭ ॥

'**हे शरणद**' હે આશ્રયદાતા, જે '**कुसृतयः**' દુરાચારીઓ, '**खलयोनयः**' જન્મથી જ દુષ્ટ, ઉગ્ર જાતિવાળા એવા અમે '**तस्य**' આપની કૃપાદૃષ્ટિના વિષયને કયા કારણે પ્રાપ્ત થયા છીએ? બહુમાન દ્વારા અન્યના ચિત્તનું અનુસરણ કરવું તે દાક્ષિણ્ય. તે દાક્ષિણ્યથી જે દૃષ્ટિ હોય તેનો વિષય પ્રાપ્ત કરાયેલા અમે ॥ ૭ ॥

અહો! અચિન્ત્ય યોગમાયાની લીલાથી જેમણે ભુવનો સર્જ્યાં છે તેવા સર્વજ્ઞ, સર્વાત્મા અને સમદર્શી એવા આપની લીલા અદ્ભુત છે, કારણ કે (અ)વિષમ સ્વભાવવાળા આપ ભક્તોના પક્ષપાતી અને કલ્પવૃક્ષના સ્વભાવવાળા છો! ॥ ૮ ॥

જો આપને ભક્તો પ્રિય છે તો એ પ્રકારની આપની લીલા છે. અહો! આશ્ચર્ય છે, તે કયું? સર્વાત્મા અને સમદર્શી એવા આપનો સ્વભાવ વિષમ છે, એ આશ્ચર્ય છે! સર્વાત્મા હોવાથી આશ્ચર્યકારક ચરિત્ર હોવા માટેનું કારણ— '**अमिता**' અચિન્ત્ય યોગમાયા, તેની લીલા, તે લીલાથી '**विसृष्टानि**' સર્જાયાં છે ભુવનો જેમના દ્વારા તેમની લીલા

अहो इत्यत्र सन्धिरार्षः। समदृक्त्वे हेतुः— विशारदस्य सर्वज्ञस्य। अथवा भक्तप्रियत्वेऽपि तव वैषम्यं नास्त्येव। यतः कल्पतरुस्वभावः सन् भक्तप्रियोऽसि। न हि कल्पतरुराश्रितानामेव कामान्पूरयन्नपि विषमो भवतीत्यर्थः॥ ८॥

અહીં '**अहोऽमित**' સંધિ આર્ષ છે. (**अहो अमितः**, હોવું જોઈએ.) સમદર્શી હોવા માટેનું કારણ— '**विशारदस्य**' સર્વજ્ઞની (લીલા અથવા ભક્તો પ્રિય હોવા છતાં પણ આપનામાં વિષમતા નથી જ, કારણ કે કલ્પવૃક્ષના સ્વભાવવાળા હોઈ આપને ભક્તો પ્રિય છે. કલ્પતરુ આશ્રય કરનારાઓની જ કામના પૂરી કરવા છતાં પણ તે વિષમ બનતું નથી, એમ અર્થ છે.

श्रीभगवानुवाच

वत्स प्रह्लाद भद्रं ते प्रयाहि सुतलालयम्।
मोदमानः स्वपौत्रेण ज्ञातीनां सुखमावह॥ ९

॥ ९ ॥

શ્રીભગવાન બોલ્યા — હે પુત્ર પ્રહ્લાદ, તારું કલ્યાણ થાઓ! તું સુતલ નામના સ્થાન(લોક)માં જા અને પૌત્ર બલિ સાથે આનંદ કરતો (તું) જ્ઞાતિજનોને સુખ પ્રાપ્ત કરાવ.॥ ૯॥ ૯॥

नित्यं द्रष्टासि मां तत्र गदापाणिमवस्थितम्।
मद्दर्शनमहाह्लादध्वस्तकर्मनिबन्धनः ॥ १०

ત્યાં સુતલ લોકમાં હાથમાં ગદા લઈને (દ્વાર પર) ઊભેલા મને તું સદાય જોઈશ. મારાં દર્શનથી થતા પરમઆનંદથી જેના કર્મના કારણરૂપ અજ્ઞાનનો નાશ થયો છે (તેવો તું થઈશ).॥ ૧૦॥

मद्दर्शनेन यो महाह्लादस्तेन ध्वस्तं कर्मनिबन्धनमज्ञानं यस्य॥ १०॥

મારાં દર્શનથી જે પરમ આનંદ થાય છે, તેનાથી નાશ પામ્યું છે કર્મનું '**निबन्धनम्**' કારણરૂપ અજ્ઞાન જેનું (તેવો તું)॥ ૧૦॥

श्रीशुक उवाच

आज्ञां भगवतो राजन् प्रह्लादो बलिना सह।
बाढमित्यमलप्रज्ञो मूर्ध्न्याधाय कृताञ्जलिः॥ ११

॥ ११ ॥

परिक्रम्यादिपुरुषं सर्वासुरचमूपतिः।
प्रणतस्तदनुज्ञातः प्रविवेश महाबिलम्॥ १२

॥ १२ ॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — હે રાજા, સમગ્ર દૈત્યસેનાના સ્વામી, વિશુદ્ધ બુદ્ધિવાળા પ્રહ્લાદજીએ બલિની સાથે બે હાથ જોડી, 'ભલે' એમ કહી, ભગવાનની આજ્ઞાને મસ્તક પર ચઢાવી, આદિપુરુષ ભગવાનની પરિક્રમા કરી, પ્રણામ કરી, તેમની અનુજ્ઞા લઈ, સુતલ લોકમાં પ્રવેશ કર્યો. ॥ ૧૧॥ ૧૨॥ ૧૧॥ ૧૨॥

अथाहोशनसं राजन् हरिर्नारायणोऽन्तिके।
आसीनमृत्विजां मध्ये सदसि ब्रह्मवादिनाम्॥ १३

॥ १३ ॥

ત્યાર પછી હે રાજા, ભગવાન શ્રીહરિએ બ્રહ્મવાદી ઋત્વિજોની સભા વચ્ચે પોતાની પાસે જ બેઠેલા ભૃગુવંશી શુક્રાચાર્યને કહ્યું.॥ ૧૩॥ ૧૩॥

ब्रह्मन् संतनु शिष्यस्य कर्मच्छिद्रं वितन्वतः।
यत् तत् कर्मसु वैषम्यं ब्रह्मदृष्टं समं भवेत्॥ १४

હે બ્રહ્મન્, યજ્ઞકર્મ કરતા શિષ્યની જે ત્રુટિ રહી ગઈ હોય તેને પરિપૂર્ણ કરો. તે યજ્ઞાદિ કર્મોમાં જે કાંઈ (વૈષમ્ય) દોષ થઈ જાય છે, તે બ્રાહ્મણોની (કૃપા)દૃષ્ટિથી પૂર્ણ થાય છે.॥ ૧૪॥

कर्म वितन्वतः शिष्यस्य यच्छिद्रमन्तरं न्यूनं जातं तत्संतनु विस्तारय संधत्स्व। यजमानं विना कथं संधातव्यमिति न वाच्यमित्याह— यत्तदिति। ब्रह्मदृष्टं ब्राह्मणैर्दृष्टमेव समं भवेत्। किं पुनरनुष्ठितमित्यर्थः॥ १४॥

યજ્ઞકર્મ કરતા શિષ્યની જે **'છિદ્રમ્'** અપૂર્ણતા, ત્રુટિ રહી ગઈ હોય તેને **'સન્તનુ'** પરિપૂર્ણ કરો. યજમાન વિના કેવી રીતે અનુસંધાન થાય, એમ કોઈ ન કહે, એ વાત કહે છે— **'યત્-તત્-ઇતિ।'** **'બ્રહ્મદૃષ્ટમ્'** બ્રાહ્મણો દ્વારા દૃષ્ટિ કરવામાં આવેલું પૂર્ણ જ થઈ જાય છે, તો પછી બ્રાહ્મણો દ્વારા અનુષ્ઠાન કરવામાં આવ્યું હોય તે માટે શું કહેવું? એમ અર્થ છે. ॥ ૧૪॥ (દૃષ્ટિમાત્રથી પૂર્ણ થાય તો ક્રિયાથી પરિપૂર્ણ થાય તેમાં શું કહેવું.?)

वंशीधरी—ब्राह्मणकृतं सर्वेषां सर्वफलप्रदं भवतीति भावः। तदुक्तम्—

વ્રાહ્મણ દ્વારા કરવામાં આવેલું સર્વને માટે સર્વફળપ્રદ થાય છે, એવો ભાવ છે. તે જ કહેવાયું છે.

विप्रैः सम्पादितं यस्य तीर्थस्नानव्रतादिकम्।
उपवासः क्रतुर्होमः सम्पन्नं तस्य तत्फलम्॥

'જે મનુષ્યનાં તીર્થ, સ્નાન, વ્રતાદિ, ઉપવાસ, યજ્ઞ તથા હોમ વિપ્રો દ્વારા સંપાદિત કરવામાં આવે છે, તેનું ફળ સંપન્ન થાય છે.'

शुक्र उवाच

कुतस्तत्कर्मवैषम्यं यस्य कर्मेश्वरो भवान्।
यज्ञेशो यज्ञपुरुषः सर्वभावेन पूजितः॥ १५

શુક્રાચાર્ય બોલ્યા — કર્મોના પ્રવર્તક, યજ્ઞના ફળદાતા તથા યજ્ઞપુરુષ એવા આપ જે બલિ દ્વારા (સર્વસ્વના અર્પણ દ્વારા પરમ ભક્તિથી) સર્વ પ્રકારે પૂજાયા છો, તે બલિના કર્મમાં વિષમતા કેવી રીતે હોઈ શકે?॥ ૧૫॥

भवान्यस्य सर्वेणापि भावेन वस्तुमात्रेण पूजितस्तस्य कर्मसु कुतो वैषम्यम्। कथंभूतः। कर्मणामीश्वरः प्रवर्तकः। यज्ञेशो यज्ञफलदः यज्ञमयश्च पुरुषः॥ १५॥

આપ જે બલિ દ્વારા (સર્વસ્વના અર્પણ દ્વારા) **'सर्वभावेन'** સર્વ વસ્તુઓ દ્વારા પૂજાયા છો, તે બલિના કર્મમાં વિષમતા કેવી રીતે હોઈ શકે? કેવા આપ? કર્મોના **'ईश्वरः'** પ્રવર્તક, **'यज्ञेशः'** યજ્ઞફળદાતા તથા યજ્ઞરૂપ પુરુષ એવા આપ॥ ૧૫॥

मन्त्रतस्तन्त्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः।
सर्वं करोति निश्छिद्रं नामसंकीर्तनं तव॥ १६

મંત્રથી, તંત્રથી (અનુષ્ઠાનમાં વ્યુત્ક્રમ–વિપરીતતા થવાથી), દેશથી, કાળથી, પાત્રથી, દક્ષિણા વગેરે વસ્તુથી જે કાંઈ અપૂર્ણ હોય, તે સર્વને આપનું નામસંકીર્તન નિશ્છિદ્ર (પરિપૂર્ણ) કરે છે.॥ ૧૬॥

आस्तां तावत्पूजा। यस्मान्मन्त्रतः स्वरादि-भ्रंशेन, तन्त्रतो व्युत्क्रमादिना, देशतः कालतश्च, अर्हतः पात्रतः, वस्तुतश्च दक्षिणादिना यच्छिद्रं न्यूनं तत्सर्वं तव नामानुकीर्तनमात्रमेव निश्छिद्रं करोतीति॥ १६॥

वंशीधरी—तदुक्तम्—

'यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं संपूर्णतां याति तं वन्दे हरिमच्युतम्॥'
इति।

किञ्च—

'प्रमादात्कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत्।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः॥'

तथापि वदतो भूमन् करिष्याम्यनुशासनम्।
एतच्छ्रेयः परं पुंसां यत् तवाज्ञानुपालनम्॥ १७
॥ १७॥

श्रीशुक उवाच

अभिनन्द्य हरेराज्ञामुशना भगवानिति।
यज्ञच्छिद्रं समाधत्त बलेर्विप्रर्षिभिः सह॥ १८

हरेराज्ञां प्रतिनन्द्य बलेर्यज्ञच्छिद्रं समाधत्त संदधे। पाठान्तरे समाधाय तदाज्ञां संपादित-वानिति शेषः॥ १८॥

एवं बलेर्महीं राजन् भिक्षित्वा वामनो हरिः।
ददौ भ्रात्रे महेन्द्राय त्रिदिवं यत् परैर्हृतम्॥ १९
॥ १९॥

પૂજાની વાત બાજુએ મૂકો. જે '**मन्त्रतः**' મન્ત્રમાં સ્વર વગેરેનો ભ્રંશ થવાથી, '**तन्त्रतः**' ક્રમ પ્રમાણે અનુષ્ઠાન ન થવાથી, દેશથી અને કાળથી, '**अर्हतः**' પાત્રથી અને '**वस्तुतः**' દક્ષિણા વગેરેથી જે '**छिद्रम्**' ન્યૂનતા–અપૂર્ણતા હોય છે, તે સર્વને આપના નામનું કેવળ કીર્તન જ પરિપૂર્ણ કરે છે.॥ ૧૬॥

તે જ કહેવાયું છે–

'જેમના સ્મરણ (માત્ર)થી અને નામોચ્ચારણથી તપ, યજ્ઞ, ક્રિયા વગેરેની અપૂર્ણતા સંપૂર્ણતાને પ્રાપ્ત કરે છે, તે અચ્યુત ભગવાન શ્રીહરિને હું વન્દન કરું છું.'

વળી,

'યજ્ઞોમાં કર્મ કરનારાઓનું જે કર્મ પ્રમાદને કારણે રહી ગયું હોય, તે ભગવાન વિષ્ણુના સ્મરણમાત્રથી સંપૂર્ણ થાય છે, એવી શ્રુતિ છે.'

તેમ છતાં પણ હે અનંત, આમ કહેતા એવા આપની આજ્ઞાનું પાલન હું કરીશ, કારણ કે આપની આજ્ઞાનું પાલન કરવું એ જ મનુષ્યોનું પરમ કલ્યાણ છે.॥ ૧૭॥ ૧૭॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — ભગવાન શુક્રાચાર્યે આમ, શ્રીહરિની આજ્ઞાનો અંગીકાર કરીને, બલિના યજ્ઞની અપૂર્ણતાને બ્રહ્મર્ષિઓ સાથે પૂર્ણ કરી.॥ ૧૮॥

શ્રીહરિની આજ્ઞાનો સ્વીકાર કરીને, બલિના યજ્ઞની અપૂર્ણતાને '**समाधत्त**' પૂર્ણ કરી. '**समाधत्त**' ને બદલે '**समाधाय**' પાઠાંતર હોય તો, બલિના યજ્ઞની અપૂર્ણતાનું સમાધાન કરીને, તે ભગવાનની આજ્ઞા 'સંપન્ન કરી', એટલું શેષ છે તે ઉમેરવું.॥ ૧૮॥

હે રાજા, આમ, બલિરાજા પાસેથી પૃથ્વી માગીને શ્રીહરિ વામન ભગવાને શત્રુઓ દ્વારા હરી લેવામાં આવેલું સ્વર્ગ પોતાના ભાઈ ઈન્દ્રને (પાછું) આપ્યું.॥ ૧૯॥ ૧૯॥

प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा देवर्षिपितृभूमिपैः।
दक्षभृग्वङ्गिरोमुख्यैः कुमारेण भवेन च॥ २०

कश्यपस्यादितेः प्रीत्यै सर्वभूतभवाय च।
लोकानां लोकपालानामकरोद् वामनं पतिम्॥ २१

પ્રજાપતિઓના સ્વામી બ્રહ્માજીએ દેવો, ઋષિઓ, પિતૃઓ, રાજાઓ તેમ જ દક્ષ, ભૃગુ અને અંગિરા જેમનામાં મુખ્ય છે તેમને, સનત્કુમારોને અને શંકર ભગવાનને સાથે રાખીને કશ્યપ ઋષિ તથા અદિતિ માતાને પ્રસન્ન કરવા અને સર્વ પ્રાણીઓના કલ્યાણ માટે વામન ભગવાનને લોકો તથા લોકપાલોના સ્વામી (તરીકે અભિષિક્ત) કર્યા.॥ ૨૦॥ ૨૧॥

देवाश्च ऋषयश्च भूमिपाश्च मनवस्तैः सहितः॥ २०॥ २१॥

દેવો અને ઋષિઓ તથા '**भूमिपाः**' પૃથ્વીનું પાલન કરનારા મનુઓ, તેમની સાથે॥ ૨૦॥ ૨૧॥

वेदानां सर्वदेवानां धर्मस्य यशसः श्रियः।
मङ्गलानां व्रतानां च कल्पं स्वर्गापवर्गयोः॥ २२
उपेन्द्रं कल्पयाञ्चक्रे पतिं सर्वविभूतये।
तदा सर्वाणि भूतानि भृशं मुमुदिरे नृप॥ २३

(સર્વ) વેદો, સમસ્ત દેવતાઓ, ધર્મ, યશ, લક્ષ્મી, સર્વ મંગળો, વ્રતો, સ્વર્ગ અને મોક્ષનું (પાલન) કરવા માટે સમર્થ એવા વામન ભગવાનને સર્વના કલ્યાણ માટે ઉપેન્દ્ર(પદે સ્થાપીને જ્યારે સર્વના સ્વામી) બનાવ્યા, ત્યારે હે નૃપ, સર્વ પ્રાણીઓ અત્યંત આનંદ પામ્યાં.॥ ૨૨॥ ૨૩॥

ननु लोकादीनां पतिरिन्द्रोऽस्त्येव, सत्यम्, तथापि वेदादीनां कल्पं पालने दक्षं वामनमुपेन्द्रं कल्पयांचक्रे॥ २२॥ २३॥

શંકા કરવામાં આવી છે કે લોકાદિના સ્વામી ઈન્દ્ર છે જ, (એમ જો કોઈ કહે તો તે માટે ઉત્તર આપે છે.) એ સત્ય છે, તેમ છતાં વેદો વગેરેનું રક્ષણ કરવા માટે '**कल्पम्**' દક્ષ, સમર્થ એવા વામન ભગવાનને ઉપેન્દ્ર(પદે) સ્થાપ્યા.॥ ૨૨॥ ૨૩॥

ततस्त्विन्द्रः पुरस्कृत्य देवयानेन वामनम्।
लोकपालैर्दिवं निन्ये ब्रह्मणा चानुमोदितः॥ २४

ત્યાર પછી બ્રહ્માજી દ્વારા અનુમોદન પામેલા ઈન્દ્રદેવ (વસ્ત્રાલંકારાદિ દ્વારા) વામન ભગવાનનો સત્કાર કરી દેવોના વિમાન દ્વારા લોકપાલો સાથે તેમને સ્વર્ગમાં લઈ ગયા.॥ ૨૪॥

देवयानेन मार्गेण। विमानेनेति वा॥ २४॥

'**देवयानेन**' દેવોના માર્ગથી અથવા દેવોના વિમાન દ્વારા॥ ૨૪॥

प्राप्य त्रिभुवनं चेन्द्र उपेन्द्रभुजपालितः।
श्रिया परमया जुष्टो मुमुदे गतसाध्वसः॥ २५
॥ २५॥

ઉપેન્દ્ર ભગવાનની ભુજાઓથી રક્ષાયેલા અને પરમ ઐશ્વર્યથી સેવાયેલા ઈન્દ્રે આમ ત્રણે લોક પ્રાપ્ત કરીને, નિર્ભય થઈ, આનંદ કર્યો.॥ ૨૪॥ ૨૫॥

ब्रह्मा शर्वः कुमारश्च भृग्वाद्या मुनयो नृप।
पितरः सर्वभूतानि सिद्धा वैमानिकाश्च ये॥ २६
सुमहत् कर्म तद् विष्णोर्गायन्तः परमाद्भुतम्।
धिष्ण्यानि स्वानि ते जग्मुरदितिं च शशंसिरे॥ २७
॥ २६ ॥ २७ ॥

सर्वमेतन्मयाऽऽख्यातं भवतः कुलनन्दन।
उरुक्रमस्य चरितं श्रोतॄणामघमोचनम्॥ २८

एतच्चरितमाख्यातमिति विशेषोक्त्याऽन्यान्यपि सन्तीत्युक्तम्॥ २८॥

तानि तर्हि निःशेषाणि वर्णनीयानीत्यपेक्षायामाह—**पारमिति**।

पारं महिम्न उरु विक्रमतो गृणानो
यः पार्थिवानि विममे स रजांसि मर्त्यः।
किं जायमान उत जात उपैति मर्त्य
इत्याह मन्त्रदृगृषिः पुरुषस्य यस्य॥ २९

उरु बहुधा विक्रमतो विष्णोर्महिम्नः पारं यो गृणानो भवति स मर्त्यः पार्थिवानि रजांस्यपि विममे गणितवान्। यथा पार्थिवपरमाणुगणनमशक्यं तथा विष्णोर्गुणगणनमप्यशक्यमित्यर्थः।

तथा च मन्त्रः—'विष्णोर्नु कं वीर्याणि' इति। एतदेव मन्त्रान्तरार्थं सूचयन्नाह—यस्य पुरुषस्य पूर्णमहिम्नः पारं मन्त्रदृगृषिर्वसिष्ठ इति एवमाह—कथम्। किं जायमानो जातो वा उपैति न कोऽपीति वदन्ननन्तत्वेनैवाहेत्यर्थः।

હે નૃપ! બ્રહ્માજી, શંકર ભગવાન, સનત્કુમાર, ભૃગુ વગેરે ઋષિઓ, પિતૃઓ, સર્વ પ્રાણીઓ, સિદ્ધો તથા જે વિમાનચારી દેવો હતા, તે સર્વે વિષ્ણુ ભગવાનના તે પરમ અદ્‌ભુત અને અત્યંત મહાન કર્મનું ગાન કરતા પોતપોતાના સ્થાને ગયા અને તે સર્વેએ અદિતિ માતાની પણ પ્રશંસા કરી.॥ ૨૬ ॥ ૨૭ ॥ ૨૬ ॥ ૨૭ ॥

હે કુળનંદન પરીક્ષિત, શ્રવણ કરનારાઓનું પાપ છોડાવનારી ઉરુક્રમ ભગવાનની આ સર્વ લીલા મેં તમને કહી.॥ ૨૮ ॥

આ લીલા કહેવામાં આવી એટલે બીજી લીલાઓ પણ છે, એમ કહેવામાં આવ્યું છે. ॥ ૨૮ ॥

તો પછી તે લીલાઓ સંપૂર્ણપણે વર્ણવવી જોઈએ, એવી અપેક્ષાથી કહે છે— '**पारम् इति।**'

અનેક જાતનાં પરાક્રમો કરનાર વિષ્ણુ ભગવાનના મહિમાનો જે મનુષ્ય પાર પામવા ઈચ્છે છે (અપાર મહિમાને જે (સંપૂર્ણપણે) ગાવા ઈચ્છે છે), તે તો પૃથ્વી પરના રજકણો જ જાણે ગણે છે! મન્ત્રદ્રષ્ટા વસિષ્ઠ ઋષિ કહે છે કે આ જગતમાં જન્મતો કે જન્મેલો મનુષ્ય શું પૂર્ણ પુરુષોત્તમ ભગવાનના મહિમાનો પાર પામી શકે ખરો? (ન જ પામી શકે.)॥ ૨૯ ॥

અનેક રીતે પરાક્રમો કરતા વિષ્ણુ ભગવાનના અપાર મહિમાનું જે ગાન કરવા ઈચ્છે છે, તે મનુષ્ય (જાણે કે) પૃથ્વી પરના રજકણો ગણે છે. જેવી રીતે પૃથ્વીના પરમાણુઓની ગણના અશક્ય છે, તેવી રીતે વિષ્ણુ ભગવાનના ગુણોની ગણના પણ અશક્ય છે, એમ અર્થ છે.

તે પ્રમાણે મંત્ર છે— શ્રીવિષ્ણુનાં (દિવ્ય) પરાક્રમોનું જ હું વર્ણન કરું છું. (ઋ.૧/૧૫૪/૧) જે મનુષ્ય પૃથ્વીના રજકણો ગણી શકે તે વિષ્ણુનાં બધા પરાક્રમો વર્ણવી શકે. (અર્થાત્ પૃથ્વીના રજકણો ગણી શકાતા નથી, તેમ વિષ્ણુનાં પરાક્રમો પણ ગણી શકાતાં નથી.)

तथा च मन्त्रः—'न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमन्तमाप।' इति॥ २९॥

'જન્મેલો અથવા જન્મ પામતો કોઈ પણ મનુષ્ય હે વિષ્ણુ, તમારા મહિમાના પરમ અંતને પામી શકે નહીં.' (ઋ.૭/૯૯/૨)॥ ૨૯॥

य इदं देवदेवस्य हरेरद्भुतकर्मणः।
अवतारानुचरितं शृण्वन् याति परां गतिम्॥ ३०

જે મનુષ્ય અદ્ભુત કર્મો કરનારા દેવાધિદેવ શ્રીહરિનું આ અવતારચરિત્ર શ્રવણ કરે છે, તે પરમ ગતિને પામે છે.॥ ૩૦॥

य इदं शृण्वन्भवति स परां गतिं याति॥ ३०॥

જે આ ચરિત્રનું શ્રવણ કરવા માંડે છે તે પરમ ગતિને પામે છે. ॥ ૩૦॥

क्रियमाणे कर्मणीदं दैवे पित्र्येऽथ मानुषे।
यत्र यत्रानुकीर्त्येत तत् तेषां सुकृतं विदुः॥ ३१

દેવયજ્ઞ, પિતૃયજ્ઞ કે મનુષ્યયજ્ઞ કરવામાં આવે ત્યારે જ્યાં જ્યાં આ (વામનચરિત્ર)નું કીર્તન કરવામાં આવે છે, (ત્યાં ત્યાં) તેમનું તે કર્મ યથાયોગ્ય રીતે સંપન્ન થયેલું ગણાય છે.॥ ૩૧॥

सुकृतं यथावत्कृतं विदुः॥ ३१॥

'સુકૃતમ્' યથાયોગ્ય રીતે સંપન્ન થયેલું ગણાય છે.॥ ૩૧॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे वामनावतारचरिते त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

*****

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

શ્રીભગવાનના મત્સ્યાવતારની કથા

चतुर्विंशे प्रसङ्गेन मत्स्यरूपस्य शार्ङ्गिणः।
लीलोच्यते यतः सत्यव्रतरक्षा महार्णवे॥ १॥

ચોવીસમા અધ્યાયમાં અવતારકથાના પ્રસંગ પ્રમાણે શ્રીવિષ્ણુ ભગવાનના મત્સ્યરૂપની લીલા કહેવામાં આવી છે, જેના દ્વારા મહાસમુદ્રની અંદર સત્યવ્રતની રક્ષા કરવામાં આવી છે. (તે કથા છે.)॥ ૧॥

तनुं तनुं विदर्श्यादौ निजैश्वर्यनिदर्शनात्।
मत्स्यं पृच्छति पृथ्वीशो लीलया वामनोपमम्॥ २॥

પૂર્વે સૂક્ષ્મ શરીર દર્શાવીને પોતાનું ઐશ્વર્ય દર્શાવવા માટે લીલાથી વામનની ઉપમાવાળા મત્સ્યરૂપધારી ભગવાન વિષે પૃથ્વીપતિ (પરીક્ષિત) પૂછે છે.॥ ૨॥

राजोवाच

भगवन् श्रोतुमिच्छामि हरेरद्भुतकर्मणः।
अवतारकथामाद्यां मायामत्स्यविडम्बनम्॥ १

રાજા પરીક્ષિત બોલ્યા — હે ભગવાન, માયાથી જે મત્સ્યરૂપનું અનુકરણ કરવામાં આવ્યું હતું, (તે જેમાં નિરૂપવામાં આવ્યું છે,) અદ્ભુત કર્મ કરનારા શ્રીહરિની આદિ કાળની તે કથાનું શ્રવણ કરવા હું ઇચ્છું છું.॥ ૧॥

मायया मत्स्यविडम्बनं मत्स्यरूपानुकरणं यस्यां निरूप्यते ताम्॥ १॥

અન્वि.—पूर्वं तनुरूपं ततो महद्रूपमिति वामनावतारचरितसाम्यान्मत्स्यावतारं पृच्छति।

ननु कस्मादकस्मादेव मत्स्यावतारश्रवणेच्छा, श्रीवामनसादृश्यादित्याह—**यदर्थमिति** द्वाभ्याम्।

यदर्थमदधाद् रूपं मात्स्यं लोकजुगुप्सितम्।
तमःप्रकृति दुर्मर्षं कर्मग्रस्त इवेश्वरः॥ २

दुर्मर्षं दुःसहम्॥ २॥

एतन्नो भगवन् सर्वं यथावद् वक्तुमर्हसि।
उत्तमश्लोकचरितं सर्वलोकसुखावहम्॥ ३

बलेरनुग्रहाय जुगुप्सितमपि याचकरूपं धृतवानिति युक्तमुक्तम्। यदर्थं तु लोकजुगुप्सितं मात्स्यं रूपमधारयदेतन्नो यथावद्वक्तुमर्हसीत्यर्थः ॥ ३॥

सूत उवाच

इत्युक्तो विष्णुरातेन भगवान् बादरायणिः।
उवाच चरितं विष्णोर्मत्स्यरूपेण यत् कृतम्॥ ४

॥ ४॥

सामान्येनावतारप्रयोजनमाह—**गोविप्रेति**।

श्रीशुक उवाच

गोविप्रसुरसाधूनां छन्दसामपि चेश्वरः।
रक्षामिच्छंस्तनूर्धत्ते धर्मस्यार्थस्य चैव हि॥ ५

॥ ५॥

માયાથી '**मत्स्यविडम्बनम्**' મત્સ્યરૂપનું અનુકરણ જેમાં નિરૂપવામાં આવ્યું છે તે કથાનું (શ્રવણ કરવા ઈચ્છું છું.)॥ ૧॥

પહેલાં સૂક્ષ્મરૂપ, પછી વિરાટરૂપ- એમ વામન અવતારના ચરિત્રનું સામ્ય હોવાથી મત્સ્યાવતારચરિત્ર વિષે રાજા પૂછે છે.

શંકા કરવામાં આવી છે કે પરીક્ષિતને અચાનક જ કેમ મત્સ્યાવતારનું શ્રવણ કરવાની ઈચ્છા થઈ? શ્રીવામનચરિત્રનું સામ્ય હોવાથી આવી ઈચ્છા થઈ એમ બે શ્લોકો વડે કહે છે— '**यत्-अर्थम् इति।**'

(કાળ અને કર્મના નિયન્તા હોવા છતાં) કર્મગ્રસ્ત (કર્મપરવશ) હોય તેમ જે કારણે લોકનિન્દિત અને તમોગુણી સ્વભાવનું દુઃસહ એવું મત્સ્યરૂપ ઈશ્વરે ધારણ કર્યું,॥ ૨॥

'**दुर्मर्षम्**' દુઃસહ (રૂપ)ને॥ ૨॥

હે ભગવાન, આ બધું અમને યથાવત્ કહેવા માટે આપ સમર્થ છો. ઉત્તમ કીર્તિવાળા ભગવાનનું ચરિત્ર સર્વ લોકોને સુખ આપનારું હોય છે.॥ ૩॥

બલિ ઉપર અનુગ્રહ કરવા માટે નિંદિત હોવા છતાં યાચકનું રૂપ ધારણ કર્યું એ યોગ્ય કહેવાયું, પરંતુ જે કારણે લોકનિંદિત મત્સ્યરૂપ ધારણ કર્યું, એ અમને યથાવત્ કહેવા માટે આપ યોગ્ય છો.॥ ૩॥

સૂતજી બોલ્યા — આમ, વિષ્ણુરાત પરીક્ષિત દ્વારા જેમને કહેવામાં આવ્યું તે ભગવાન બાદરાયણિ મત્સ્યરૂપે જે કરવામાં આવ્યું હતું, તે વિષ્ણુભગવાનનું ચરિત્ર કહેવા લાગ્યા.॥ ૪॥ ૪॥

સામાન્યરૂપે અવતારનું પ્રયોજન જણાવે છે— '**गोविप्र इति।**'

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — ગાયો, બ્રાહ્મણો, દેવો, સત્પુરુષો, વેદો, ધર્મ અને અર્થની રક્ષા કરવા ઈચ્છતા ભગવાન ખરેખર, (મત્સ્યાદિ) શરીરો ધારણ કરે છે.॥ ૫॥ ૫॥

जुगुप्सितत्वं परिहरति—

उच्चावचेषु भूतेषु चरन् वायुरिवेश्वरः।
नोच्चावचत्वं भजते निर्गुणत्वाद्धियो गुणैः॥ ६

धियो गुणैर्यान्युच्चावचानि भूतानि तेषु नियन्तृत्वेन चरन्नपीश्वरो नोच्चावचत्वं भजते, निर्गुणत्वात्। कुतः पुनः शुद्धसत्त्वमयैर्मत्स्याद्याकारैरुच्चावचत्वशङ्केति भावः॥ ६॥

જુગુપ્સા અર્થાત્ ઘૃણા દૂર કરે છે–

જેમ વાયુ ઉચ્ચ-નીચ પ્રાણીઓમાં ફરતો હોવા છતાં ઉચ્ચ-નીચપણાને પ્રાપ્ત થતો નથી, તેમ (દેવ, મનુષ્ય, પશુપક્ષી વગેરે) ઉત્કૃષ્ટ અને નિકૃષ્ટ પ્રાણીઓમાં (અંતર્યામીરૂપે) વિચરતા હોવા છતાં પણ ઈશ્વર નિર્ગુણ હોવાથી બુદ્ધિના ગુણોને કારણે પ્રાપ્ત થતી ઉત્કૃષ્ટતા અને નિકૃષ્ટતાને પ્રાપ્ત થતા નથી.॥ ૬॥

બુદ્ધિના ગુણોને કારણે જે ઉચ્ચ-નીચ પ્રાણીઓ હોય છે તેમનામાં નિયંતા તરીકે વિચરતા હોવા છતાં ઈશ્વર ઉચ્ચ-નીચપણાને પ્રાપ્ત થતા નથી, કારણ કે નિર્ગુણ છે. તો પછી શુદ્ધ સત્ત્વમય મત્સ્યાદિ આકારોથી ભગવાનમાં ઉચ્ચ-નીચપણું આવે તેવી શંકા શા માટે? એવો ભાવ છે.॥ ૬॥

विशेषतो मत्स्यावतारप्रयोजनमाह—**आसीदिति** त्रिभिः—

आसीदतीतकल्पान्ते ब्राह्मो नैमित्तिको लयः।
समुद्रोपप्लुतास्तत्र लोका भूरादयो नृप॥ ७

ब्रह्मणो निद्रायां भवो ब्राह्मस्तेनैव निमित्तेन जातो नैमित्तिकः। समुद्रे उपप्लुता निमग्नाः॥ ७॥

વિશેષરૂપે મત્સ્યાવતારનું પ્રયોજન ત્રણ શ્લોકો વડે જણાવે છે— **'आसीत्-इति।'**

હે રાજા, આ પહેલાંના કલ્પના અંતે બ્રહ્માજીની નિદ્રાને કારણે નૈમિત્તિક પ્રલય થયો હતો, ત્યારે પૃથ્વી વગેરે લોકો સમુદ્રમાં ડૂબી ગયા હતા.॥ ૭॥

બ્રહ્માજીની નિદ્રામાં થયો તે **'ब्राह्मः'** 'બ્રાહ્મ'– તે નિદ્રાને જ નિમિત્તે થયો તે **'नैमित्तिकः'** 'નૈમિત્તક'– સમુદ્રમાં **'उपप्लुताः'** ડૂબી ગયા હતા.॥ ૭॥

कालेनागतनिद्रस्य धातुः शिशयिषोर्बली।
मुखतो निःसृतान् वेदान् हयग्रीवोऽन्तिकेऽहरत्॥ ८

अन्तिके निःसृतान्॥ ८॥

(પ્રલય)કાળ થવાથી શયન કરવાની ઈચ્છાવાળા બ્રહ્માજીના મુખમાંથી નીકળેલા વેદોને હયગ્રીવ નામના મહાબળવાન દૈત્યે તેમની સમીપમાં આવીને હરી લીધા.॥ ૮॥

મુખમાંથી નીકળેલા વેદોને॥ ૮॥

ज्ञात्वा तद् दानवेन्द्रस्य हयग्रीवस्य चेष्टितम्।
दधार शफरीरूपं भगवान् हरिरीश्वरः॥ ९

शफरीरूपं मत्स्यरूपम्॥ ९॥

प्रयोजनान्तरं लीलाप्रकारं चाह—तत्र राजर्षिरित्यादि यावत्समाप्ति।

સર્વશક્તિમાન ભગવાન શ્રીહરિએ દાનવરાજ હયગ્રીવનું તે કાર્ય જાણીને (વેદોને પાછા લાવવા) મત્સ્યનું રૂપ ધારણ કર્યું.॥ ૯॥

'शफरीरूपम्' મત્સ્યરૂપ॥ ૯॥

મત્સ્યાવતારનું પ્રયોજન જણાવીને પછી લીલાનો પ્રકાર અધ્યાયની સમાપ્તિ સુધી કહે છે— **'तत्र राजर्षिः'** વગેરેથી.

तत्र राजऋषिः कश्चिन्नाम्ना सत्यव्रतो महान्।
नारायणपरोऽतप्यत् तपः स सलिलाशनः॥ १०

॥ १० ॥

(હે રાજા,) તે સમયે સત્યવ્રત નામના કોઈ એક મહાન નારાયણપરાયણ રાજર્ષિ (કેવળ) જળનો આહાર કરી તપશ્ચર્યા કરતા હતા.॥ ૧૦॥ ૧૦॥

योऽसावस्मिन् महाकल्पे तनयः स विवस्वतः।
श्राद्धदेव इति ख्यातो मनुत्वे हरिणार्पितः॥ ११

(પૂર્વ કલ્પમાં) જે સત્યવ્રત (તપશ્ચર્યા કરતા) હતા, તે જ રાજા આ મહાકલ્પમાં વિવસ્વાન (સૂર્ય)ના પુત્ર શ્રાદ્ધદેવ તરીકે પ્રખ્યાત છે. શ્રીહરિ દ્વારા વિવસ્વાન મનુનું પદ જેમને આપવામાં આવ્યું હતું.॥ ૧૧॥

स एव श्राद्धदेव इति ख्यातः॥ ११॥

તે જ શ્રાદ્ધદેવ તરીકે પ્રખ્યાત છે.॥ ૧૧॥

एकदा कृतमालायां कुर्वतो जलतर्पणम्।
तस्याञ्जल्युदके काचिच्छफर्येकाभ्यपद्यत॥ १२

એક સમયે કૃતમાલા નદીમાં જળથી તર્પણ કરતા તે રાજર્ષિની અંજલિના જળમાં કોઈ એક માછલી આવી ગઈ.॥ ૧૨॥

कृतमालायां नद्याम्॥ १२॥

'कृतमालायाम्' કૃતમાલા નદીમાં॥ ૧૨॥

सत्यव्रतोऽञ्जलिगतां सह तोयेन भारत।
उत्ससर्ज नदीतोये शफरीं द्रविडेश्वरः॥ १३

॥ १३ ॥

હે ભરતવંશી રાજા, દ્રવિડેશ્વર રાજર્ષિ સત્યવ્રતે જળ સાથે અંજલિમાં આવેલી માછલીને નદીના જળમાં પાછી નાખી દીધી.॥ ૧૩॥ ૧૩॥

तमाह सातिकरुणं महाकारुणिकं नृपम्।
यादोभ्यो ज्ञातिघातिभ्यो दीनां मां दीनवत्सल।
कथं विसृजसे राजन् भीतामस्मिन् सरिज्जले॥ १४

॥ १४ ॥

(પોતાને જળમાં નાખી દેતા) તે મહાદયાળુ રાજાને અતિ કરુણા ઊપજે તેમ (તે માછલી) કહેવા લાગી, 'હે રાજા, હે દીનવત્સલ, પોતાના જાતભાઈઓનો (પણ) ઘાત કરનારાં જળચરોથી ભયભીત અને દીન એવી મને આ સરિતાના જળમાં કેમ નાખી દો છો?'॥ ૧૪॥ ૧૪॥

तमात्मनोऽनुग्रहार्थं प्रीत्या मत्स्यवपुर्धरम्।
अजानन् रक्षणार्थाय शफर्याः स मनो दधे॥ १५

॥ १५ ॥

પોતાની (સત્યવ્રતની) ઉપર અનુગ્રહ કરવા માટે પ્રેમથી મત્સ્યનું શરીર ધારણ કરનાર તેમને (ભગવાનને) ન જાણતા રાજાએ માછલીની રક્ષા કરવાનો સંકલ્પ કર્યો.॥ ૧૫॥ ૧૫॥

तस्या दीनतरं वाक्यमाश्रुत्य स महीपतिः।
कलशाप्सु निधायैनां दयालुर्निन्य आश्रमम्॥ १६

॥ १६ ॥

તે દયાળુ પૃથ્વીપતિ તેનું અતિ દીન વચન સાંભળી, તેને કળશના જળમાં મૂકી પોતાના આશ્રમમાં લાવ્યા.॥ ૧૬॥ ૧૬॥

सा तु तत्रैकरात्रेण वर्धमाना कमण्डलौ।
अलब्ध्वाऽऽत्मावकाशं वा इदमाह महीपतिम्॥ १७

॥ १७ ॥

પરંતુ ત્યાં કમંડળમાં એક રાતમાં જ વધી જતી તે માછલી પોતાને માટે અવકાશ પ્રાપ્ત ન કરીને, પૃથ્વીપતિ સત્યવ્રતને આ પ્રમાણે કહેવા લાગી.॥ ૧૭॥ ૧૭॥

नाहं कमण्डलावस्मिन् कृच्छ्रं वस्तुमिहोत्सहे।
कल्पयौकः सुविपुलं यत्राहं निवसे सुखम्॥ १८

यत्राहं सुखं निवसामि तदोकः स्थानं कल्पय॥ १८॥

અહીં આ કમંડળમાં સંકટ (સંકડાશ) પડે તેમ રહેવા હું ઈચ્છતી નથી. હું જ્યાં સુખપૂર્વક રહું તેવું ખૂબ વિશાળ સ્થાન તૈયાર કરો.॥ ૧૮॥

જ્યાં હું સુખપૂર્વક રહું તેવું '**ओकः**' સ્થાન તૈયાર કરો.॥ ૧૮॥

स एनां तत आदाय न्यधादौदञ्चनोदके।
तत्र क्षिप्ता मुहूर्तेन हस्तत्रयमवर्धत॥ १९

औदञ्चनोदके मणिकस्थे जले॥ १९॥

તે રાજાએ તેને તે(કમંડળ)માંથી માટીના મોટા કડાયાના જળમાં નાખી. ત્યાં નાખવામાં આવેલી તે બે ઘડીમાં ત્રણ હાથ વધી ગઈ.॥ ૧૯॥

'**औदञ्चन-उदके**' માટીના મોટા કડાયાના જળમાં॥ ૧૯॥

न म एतदलं राजन् सुखं वस्तुमुदञ्चनम्।
पृथु देहि पदं मह्यं यत् त्वाहं शरणं गता॥ २०

॥ २०॥

(અને બોલી) હે રાજા, સુખપૂર્વક રહેવા માટે આ પાત્ર પણ મને પર્યાપ્ત નથી, માટે તમે મને રહેવા માટે વિશાળ સ્થાન આપો, કારણ કે હું તમારે શરણે આવી છું.॥ ૨૦॥ ૨૦॥

तत आदाय सा राज्ञा क्षिप्ता राजन् सरोवरे।
तदावृत्त्यात्मना सोऽयं महामीनोऽन्ववर्धत॥ २१

॥ २१॥

હે રાજા (પરિક્ષિત), (આ પ્રમાણે જેમને કહેવામાં આવ્યું તે) રાજા દ્વારા તે(વિશાળ પાત્ર)માંથી લઈને તેને સરોવરમાં નાખવામાં આવી. તે આ મહામત્સ્ય પોતાના શરીરથી (આખા) સરોવરમાં વ્યાપીને વધી ગયો.॥ ૨૧॥ ૨૧॥

नैतन्मे स्वस्तये राजन्नुदकं सलिलौकसः।
निधेहि रक्षायोगेन ह्रदे मामविदासिनि॥ २२

॥ २२॥

रक्षायोगेन रक्षाया योगेनोपायेन। यथा महाह्रदप्राप्तेरर्वाक् जलं विना न शुष्येयं तेनोपायेन निधेहि। अविदासिनि अनुपक्षये॥ २२॥

હે રાજા, જળ એ જ જેનું નિવાસસ્થાન છે તેવા મારે માટે આ સરોવરનું જળ (પણ) સુખકારક નથી, (આથી) રક્ષા કરવા માટે ઉપાય કરીને મને અખૂટ જળવાળા સરોવરમાં મૂકો.॥ ૨૨॥

'**रक्षायोगेन**' રક્ષા કરવા માટે '**योगेन**' ઉપાય કરીને, જેથી ખૂબ મોટું સરોવર પ્રાપ્ત થતાં પહેલાં જ જળ વિના હું સુકાઈ ન જાઉં તેવો ઉપાય કરીને મને તેમાં મૂકો. '**अविदासिनि**' અખૂટ જળવાળા સરોવરમાં॥ ૨૨॥

इत्युक्तः सोऽनयन्मत्स्यं तत्र तत्राविदासिनि।
जलाशये संमितं तं समुद्रे प्राक्षिपज्झषम्॥ २३

આ પ્રમાણે જેને કહેવામાં આવ્યું તે રાજર્ષિ સત્યવ્રત ઉત્તરોત્તર અખૂટ (વિપુલ) જળવાળા જે જે સરોવરમાં લઈ જતા, તે તે જળાશય જેટલા માપવાળા થતા તે મત્સ્યને આખરે રાજાએ સમુદ્રમાં નાખ્યો.॥ ૨૩॥

संमितं तत्तज्जलाशयपरिमितम्॥ २३॥

'संमितम्' તે તે જળાશય જેટલા માપવાળા મત્સ્યને.॥ ૨૩॥

क्षिप्यमाणस्तमाहेदमिह मां मकरादयः।
अदन्त्यतिबला वीर मां नेहोत्स्रष्टुमर्हसि॥ २४ ॥ २४॥

(સમુદ્રમાં) નાખવામાં આવતો મત્સ્ય તે રાજાને આ પ્રમાણે કહે છેઃ 'હે વીર, અહીં મગર વગેરે મહાબળવાન જળચરો મને ખાઈ જશે માટે મને આપ અહીં નાખવાને યોગ્ય નથી.'॥ ૨૪॥ ૨૪॥

एवं विमोहितस्तेन वदता वल्गुभारतीम्।
तमाह को भवानस्मान् मत्स्यरूपेण मोहयन्॥ २५ ॥ २५॥

આમ મધુર વાણી બોલતા તે મત્સ્યથી વિમોહિત થયેલા રાજર્ષિએ તે મત્સ્યને કહ્યું, 'મત્સ્યરૂપે અમને મોહ પમાડતા આપ કોણ છો?'॥ ૨૫॥ ૨૫॥

नैवंवीर्यो जलचरो दृष्टोऽस्माभिः श्रुतोऽपि च।
यो भवान् योजनशतमह्नाऽभिव्यानशे सरः॥ २६

અમારા દ્વારા આવા પ્રભાવવાળું (કોઈ પણ) જળચર નથી જોવામાં આવ્યું કે નથી સાંભળવામાં આવ્યું, કે જે આપ માત્ર એક દિવસ જેટલા સમય દરમ્યાન સો યોજન જેટલા સરોવરમાં ચોતરફ વ્યાપી જનાર છો!॥ ૨૬॥

अभिव्यानशेऽभितो व्याप्तवान्॥ २६॥

'अभिव्यानशे' ચોતરફ વ્યાપી ગયું.॥ ૨૬॥

नूनं त्वं भगवान् साक्षाद्धरिर्नारायणोऽव्ययः।
अनुग्रहाय भूतानां धत्से रूपं जलौकसाम्॥ २७ ॥ २७॥

આપ અવશ્ય સાક્ષાત્ અવિનાશી ભગવાન નારાયણ શ્રીહરિ જ છો અને પ્રાણીઓ ઉપર અનુગ્રહ કરવા માટે જળમાં વસનાર મત્સ્યનું રૂપ ધારણ કરો છો!॥ ૨૭॥ ૨૭॥

नमस्ते पुरुषश्रेष्ठ स्थित्युत्पत्त्यप्ययेश्वर।
भक्तानां नः प्रपन्नानां मुख्यो ह्यात्मगतिर्विभो॥ २८

હે પુરુષશ્રેષ્ઠ, આપને નમસ્કાર હો. સ્થિતિ, ઉત્પત્તિ અને લયના કારણરૂપ હે ઈશ્વર, હે વિભુ, શરણે આવેલા ભક્તો એવા અમારા આપ સત્ય આત્મા છો અને આશ્રય છો.॥ ૨૮॥

मुख्यः सत्य आत्मा च गतिश्चाश्रयः॥ २८॥

'मुख्यः' સત્ય આત્મા છો તથા **'गतिः'** આશ્રય છો.॥ ૨૮॥

सर्वे लीलावतारास्ते भूतानां भूतिहेतवः।
ज्ञातुमिच्छाम्यदो रूपं यदर्थं भवता धृतम्॥ २९ ॥ २९॥

(જો કે) આપના સર્વ લીલાવતારો પ્રાણીઓના અભ્યુદય માટે હોય છે, (તેમ છતાં) જે કારણે આપના દ્વારા આ રૂપ લેવામાં આવ્યું છે તેનું (પ્રયોજન) હું જાણવા ઈચ્છું છું.॥ ૨૯॥ ૨૯॥

न तेऽरविन्दाक्ष पदोपसर्पणं
मृषा भवेत् सर्वसुहृत्प्रियात्मनः।
यथेतरेषां पृथगात्मनां सता-
मदीदृशो यद् वपुरद्भुतं हि नः॥ ३०

हे अरविन्दाक्ष, पृथगात्मनां देहाद्यभिमानिनां सतामितरेषां पदोपसर्पणं यथा मृषा भवेत्तथा सर्वसुहृत्प्रियात्मनस्तव पदोपसर्पणं मृषा न भवेत्। यद्यस्मान्नो भक्तानामद्भुतं वपुरदीदृशो दर्शितवानसि। पाठान्तरे पृथगात्मनो भेददर्शिनः पुंसः। असतां परिच्छिन्नानां पदोपसर्पणं यथा मृषेत्यर्थः ॥ ३० ॥

હે કમળનયન, સર્વ પ્રાણીઓના પરમ મિત્ર, પ્રિય અને આત્મા એવા આપના ચરણનું શરણ, આત્માથી પૃથક્ અનાત્મ પદાર્થોમાં પોતાપણાનું અભિમાન રાખનારા અન્ય જનોના ચરણના શરણની જેમ વૃથા થતું નથી, કારણ કે આપે ભક્તો એવા અમને (આપનું) અદ્ભુત સ્વરૂપ દર્શાવ્યું છે. ॥ ૩૦ ॥

હે કમળનયન, '**पृथक्-आत्मनाम्**' આત્માથી પૃથક્ દેહાદિ અનાત્મ પદાર્થોમાં પોતાપણાનું અભિમાન રાખનારાઓના– પોતાના ભક્તો સિવાયના બીજા (વિષયાવિષ્ટ) સંસારીઓના ચરણનું શરણ જેમ વ્યર્થ થાય છે, તેમ સર્વ પ્રાણીઓના પરમ મિત્ર, પ્રિય અને આત્મા એવા આપના ચરણની પાસે જવું વૃથા થતું નથી, '**यत्**' કારણ કે ભક્તો એવા અમને આપે અદ્ભુત સ્વરૂપ '**अदीदृशः**' દર્શાવ્યું છે. '**पृथक्-आत्मनां सताम्**' ને બદલે '**पृथगात्मनोऽसताम्**' પાઠાન્તરમાં આત્માથી પૃથક્ દેહાદિ અનાત્મ પદાર્થોમાં પોતાપણાનું અભિમાન રાખનાર મર્યાદિત થયેલા ભેદદર્શી મનુષ્યના, '**असताम्**' મર્યાદિત થયેલી બુદ્ધિવાળા સંસારી જનોના ચરણનું શરણ જેમ વ્યર્થ થાય છે તેમ, એમ અર્થ છે. ॥ ૩૦ ॥ (√**दृश्** નું ભૂ.કા. બીજો પુ.એ.વ. '**अदीदृशः**')

श्रीशुक उवाच

इति ब्रुवाणं नृपतिं जगत्पतिः
सत्यव्रतं मत्स्यवपुर्युगक्षये।
विहर्तुकामः प्रलयार्णवेऽब्रवी-
च्चिकीर्षुरेकान्तजनप्रियः प्रियम्॥ ३१

एकान्तजना भक्ताः प्रिया यस्य॥ ३१ ॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — આમ, કહેતા નરપતિ સત્યવ્રતને, એક માત્ર પોતાનો જ આશ્રય કરનારા ભક્ત જનો જેમને પ્રિય છે તેવા અને (સત્યવ્રતનું) પ્રિય (હિત) કરવાની ઈચ્છાવાળા તથા કલ્પાંતના પ્રલયસમુદ્રમાં વિહાર કરવાની કામનાવાળા મત્સ્યશરીરધારી જગતના નાથે કહ્યું. ॥ ૩૧ ॥

'**एकान्तजनाः**' (**अन्वि.—'स्वैकाश्रयाः'** એક માત્ર પોતાનો (ભગવાનનો) જ આશ્રય કરનારા) ભક્તો જેમને પ્રિય છે. ॥ ૩૧ ॥

श्रीभगवानुवाच

सप्तमेऽद्यतनादूर्ध्वमहन्येतदरिन्दम ।
निमंक्ष्यत्यप्ययाम्भोधौ त्रैलोक्यं भूर्भुवादिकम्॥ ३२

अप्ययाम्भोधौ प्रलयार्णवे। भूर्भुवआदिकमित्यर्थः ॥ ३२ ॥

श्रीભગવાન બોલ્યા – હે શત્રુદમન સત્યવ્રત, આજથી સાતમા દિવસે આ ભૂ:, ભુવ: વગેરે ત્રિલોક પ્રલયકાળના સમુદ્રમાં ડૂબી જશે.॥ ૩૨ ॥

'अप्यय-अम्भोधौ' પ્રલયસમુદ્રમાં, ભૂ:, ભુવ: વગેરે એમ અર્થ છે.॥ ૩૨ ॥

त्रिलोक्यां लीयमानायां संवर्ताम्भसि वै तदा।
उपस्थास्यति नौः काचिद् विशाला त्वां मयेरिता॥ ३३

संवर्ताम्भसि प्रलयोदके। त्वामुपस्थास्यति प्राप्स्यति॥ ३३ ॥

જ્યારે ત્રણેય લોક પ્રલયકાલીન જળમાં ડૂબી જશે, ત્યારે મારા દ્વારા પ્રેરાયેલી કોઈ વિશાળ નૌકા તને પ્રાપ્ત થશે.॥ ૩૩ ॥

'संवर्त-अम्भसि' પ્રલયકાલીન જળમાં તને **'उपस्थास्यति'** પ્રાપ્ત થશે.॥ ૩૩ ॥

त्वं तावदोषधीः सर्वा बीजान्युच्चावचानि च।
सप्तर्षिभिः परिवृतः सर्वसत्त्वोपबृंहितः॥ ३४
आरुह्य बृहतीं नावं विचरिष्यस्यविक्लवः।
एकार्णवे निरालोके ऋषीणामेव वर्चसा॥ ३५

ओषधीः आदायेति शेषः॥ ३४॥

ऋषीणामेवालोकेन विचरिष्यसि॥ ३५ ॥

તે સમયે સર્વ ઔષધિઓ અને નાનાં-મોટાં (વિવિધ) બીજોને લઈ, સમસ્ત પ્રાણીઓ (નાં સૂક્ષ્મ શરીરો) સહિત વધી ગયેલા મહત્ત્વવાળો તું, સપ્તર્ષિઓ સાથે વિશાળ નૌકામાં આરૂઢ થઈને, પ્રકાશરહિત એવા એકમાત્ર મહાસાગરમાં અવ્યાકુળ થઈ ઋષિઓની દિવ્ય જ્યોતિથી વિચરણ કરીશ.॥ ૩૪ ॥ ૩૫ ॥

ઔષધિઓને લઈને, એટલું શેષ છે.॥ ૩૪ ॥

ઋષિઓની દિવ્ય જ્યોતિથી જ વિચરણ કરીશ.॥ ૩૫ ॥

दोधूयमानां तां नावं समीरेण बलीयसा।
उपस्थितस्य मे शृङ्गे निबध्नीहि महाहिना॥ ३६

महाहिना वासुकिना॥ ३६ ॥

પ્રચંડ આંધીને કારણે વારંવાર ધ્રુજાવવામાં આવતી તે નૌકાને (આ મત્સ્ય સ્વરૂપે) આવી પહોંચેલા મારા શિંગડા સાથે મહાન વાસુકિ નાગ(ના પાશ)થી બાંધી દેજે.॥ ૩૬ ॥

'महा-अहिना' મહાન સર્પ વાસુકિથી॥ ૩૬ ॥

(ધૂ-કંપવું, પૌન:પુન્યાર્થ કર્મણિ વ.કૃ. **दोधूयमाना**)

अहं त्वामृषिभिः साकं सहनावमुदन्वति।
विकर्षन् विचरिष्यामि यावद् ब्राह्मी निशा प्रभो॥ ३७
॥ ३७ ॥

હે રાજા, જ્યાં સુધી બ્રહ્માની રાત્રિ રહેશે, ત્યાં સુધી ઋષિઓ સહિત તને હું નાવ સાથે સમુદ્રમાં ખેંચતો વિચરણ કરતો રહીશ.॥ ૩૭ ॥ ૩૭ ॥

मदीयं महिमानं च परं ब्रह्मेति शब्दितम्।
वेत्स्यस्यनुगृहीतं मे संप्रश्नैर्विवृतं हृदि॥ ३८

(તેં કરેલા) પ્રશ્નોથી મારા દ્વારા અનુગૃહીત થયેલા તને 'પરબ્રહ્મ' કહેવાતો મારો મહિમા પ્રકાશિત થતાં તું મને હૃદયમાં (અપરોક્ષ રીતે) જાણી લઈશ.॥ ૩૮ ॥

मे मयाऽनुगृहीतं प्रसादीकृतं हृदि अपरोक्षं वेत्स्यसि। त्वया कृतैः संप्रश्नैर्मया विवृतं प्रकाशितं सन्तम्॥ ३८॥

'मे' મારા દ્વારા **'अनुगृहीतम्'** કૃપા કરવામાં આવેલા તને હૃદયમાં અપરોક્ષ જ્ઞાન થશે. તેં કરેલા પ્રશ્નોથી મારા દ્વારા **'विवृतम्'** પ્રકાશિત થતાં॥ ૩૮॥

(विद्-वेत्स्यसे ભ.કા–**आत्मनेपद)**

इत्थमादिश्य राजानं हरिरन्तरधीयत।
सोऽन्ववैक्षत तं कालं यं हृषीकेश आदिशत्॥ ३९

॥ ३९ ॥

રાજા સત્યવ્રતને આ પ્રમાણે આદેશ આપીને શ્રીહરિ અંતર્ધાન થઈ ગયા. જે સમયનો ભગવાન હૃષીકેશે નિર્દેશ કર્યો હતો, તે સમયની તે રાજા પ્રતીક્ષા કરવા લાગ્યા.॥ ૩૯॥ ૩૯॥

आस्तीर्य दर्भान् प्राक्कूलान् राजर्षिः प्रागुदङ्मुखः।
निषसाद हरेः पादौ चिन्तयन् मत्स्यरूपिणः॥ ४०

॥ ४० ॥

પૂર્વ દિશા તરફ અગ્રભાગવાળા દર્ભોને (પૃથ્વી પર) પાથરીને પૂર્વોત્તર (ઈશાન) મુખ રાખીને મત્સ્યરૂપ શ્રીહરિના ચરણોનું ચિંતન કરતા રાજર્ષિ સત્યવ્રત બેસી ગયા.॥ ૪૦॥ ૪૦॥

ततः समुद्र उद्वेलः सर्वतः प्लावयन् महीम्।
वर्धमानो महामेघैर्वर्षद्भिः समदृश्यत॥ ४१

॥ ४१ ॥

(રાજર્ષિ સત્યવ્રત ચિંતન કરતા હતા), ત્યારે વરસતા મહાન મેઘોથી વધતો અને પોતાની હદ વટાવી ગયેલો સમુદ્ર સર્વ તરફથી પૃથ્વીને ડુબાડી દેતો દેખાયો.॥ ૪૧॥ ૪૧॥

ध्यायन् भगवदादेशं ददृशे नावमागताम्।
तामारुरोह विप्रेन्द्रैरादायौषधिवीरुधः॥ ४२

॥ ४२ ॥

ભગવાનના આદેશનું ધ્યાન કરતા રાજર્ષિએ (ત્યાં) આવેલી નૌકા જોઈ. ઔષધિઓ તથા લતાઓને લઈને શ્રેષ્ઠ વિપ્રો (સપ્તર્ષિઓ) સાથે રાજર્ષિ તે નૌકામાં બેસી ગયા.॥ ૪૨॥ ૪૨॥

तमूचुर्मुनयः प्रीता राजन् ध्यायस्व केशवम्।
स वै नः संकटादस्मादविता शं विधास्यति॥ ४३

॥ ४३ ॥

(તે સમયે) પ્રસન્ન થયેલા મુનિઓએ તેને કહ્યું, 'હે રાજા, ભગવાન કેશવનું તમે ધ્યાન ધરો. તે (શ્રીહરિ) જ સંકટથી બચાવશે અને આપણું કલ્યાણ કરશે.'॥ ૪૩॥ ૪૩॥

$\sqrt{}$**अव्** **'अविता'**-રક્ષણ કરશે.શ્વ.ભ.કા.

सोऽनुध्यातस्ततो राज्ञा प्रादुरासीन्महार्णवे।
एकशृङ्गधरो मत्स्यो हैमो नियुतयोजनः॥ ४४

॥ ४४ ॥

ત્યાર પછી (આ પ્રમાણે જેને કહેવામાં આવ્યું તે) રાજા દ્વારા ધ્યાન કરવામાં આવતાં એક લાખ યોજન (ચાર લાખ કોશ) વિસ્તારવાળા, એક શિંગડું ધારણ કરનારા, સુવર્ણમય મત્સ્ય (નારાયણ) મહાસાગરમાં પ્રાદુર્ભાવ પામ્યા. ॥ ૪૪॥ ૪૪॥

निबध्य नावं तच्छृङ्गे यथोक्तो हरिणा पुरा।
वरत्रेणाहिना तुष्टस्तुष्टाव मधुसूदनम्॥ ४५

પૂર્વે શ્રીહરિ દ્વારા જેને કહેવામાં આવ્યું હતું, તે પ્રસન્ન થયેલા રાજર્ષિ દોરડારૂપ સર્પથી નાવને તેના શિંગડામાં બાંધીને ભગવાન મધુસૂદનની સ્તુતિ કરવા લાગ્યા.॥ ૪૫॥

वरत्रेण दोरकरूपेण॥ ४५॥

'वरत्रेण' દોરડારૂપ (સર્પ)થી॥ ૪૫॥

राजोवाच

अनाद्यविद्योपहतात्मसंविद-
स्तन्मूलसंसारपरिश्रमातुराः ।
यदृच्छयेहोपसृता यमाप्नुयु-
र्विमुक्तिदो नः परमो गुरुर्भवान्॥ ४६

રાજા બોલ્યા — અનાદિ અવિદ્યાથી જેમનું આત્મજ્ઞાન ઢંકાઈ ગયું છે તે અવિદ્યારૂપી મૂળવાળા સંસારના ક્લેશોથી પીડાતા મનુષ્યો આ સંસારમાં જેમના અનુગ્રહથી જ જેમને આશ્રિત થઈ જેમને પ્રાપ્ત કરે છે, તે મુક્તિ આપનારા આપ જ અમારા પરમ ગુરુ છો.॥ ૪૬॥

'सागरं तारयिष्यन्तं तरिष्यन्निव सागरम्।
सत्यव्रतो गुरुत्वेन तुष्टाव हरिमष्टभिः॥'

'જાણે સાગરને તરી જનાર હોય તેમ સત્યવ્રતે સંસારસાગરને તારનાર શ્રીહરિની ગુરુરૂપે આઠ શ્લોકોથી સ્તુતિ કરી.'

अत्रेदं चिन्त्यम्—किमयं महाप्रलयो दैनन्दिनो वेति। तत्र तावत् ब्राह्मो लय इति 'योऽसावस्मिन् महाकल्पे' इति चोक्तेर्महाप्रलय इति प्राप्तम्।

અહીં આ (વિકલ્પો) વિચારણીય છે—

શું આ પ્રલય મહાપ્રલય હતો કે દૈનન્દિન પ્રલય હતો? (હજાર ચતુર્યુગ જેટલા બ્રહ્માજીના દિવસને અંતે દૈનન્દિન પ્રલય થાય છે અને આવો એક દિવસ અને એક રાત્રિ પ્રમાણેનું વર્ષ ગણતાં, તેવાં સો વર્ષ જેટલું બ્રહ્માજીનું પરમ આયુષ્ય છે, પછી મહાપ્રલય થાય છે.)

नेति ब्रूमः, महाप्रलये पृथिव्यादीनाम-वशेषासंभवात्, 'यावद्ब्राह्मी निशा' इत्याद्युक्ति-विरोधाच्च। अतो दैनन्दिन इति युक्तम्।

પહેલાં જે કહેવામાં આવ્યું **'ब्राह्मः लयः'** (જુઓ શ્લોક-૭) અને **'योऽसावस्मिन्महाकल्पे'** (જુઓ શ્લોક-૧૧) તે ઉપરથી (આ) મહાપ્રલય હોય તેમ સમજાય છે. પરંતુ અમે એમ નથી કહેતા, કારણ કે મહાપ્રલયમાં પૃથ્વી વગેરે કંઈ પણ અવશિષ્ટ (બાકી) રહે તે સંભવિત નથી. વળી, **'यावद्ब्राह्मी निशा'** (જુઓ શ્લોક-૩૭) વગેરે કહેવામાં આવ્યું તેની સાથે વિરોધ થતો હોવાથી (પણ આ મહાપ્રલય ન હોઈ શકે). તેથી આ દૈનન્દિન પ્રલય હશે તેમ યોગ્ય છે.

न चैतदपि सङ्गच्छते, सांवर्तकैरनावृष्ट्यादि-भिर्विना अकस्मादेव सप्तमेऽहनि त्रैलोक्यं निमङ्क्ष्यतीति मत्स्योक्तेरनुपपत्तेः।

પરંતુ આ પણ સુસંગત નથી. સંવર્તક મેઘો દ્વારા અનાવૃષ્ટિ વગેરે વિના અચાનક 'સાતમે દિવસે ત્રણેય લોક સમુદ્રમાં ડૂબી જશે.' (જુઓ શ્લોક-૩૨) એમ મત્સ્યનારાયણ દ્વારા કહેવામાં આવ્યું હતું તે ઘટતું નથી.

यच्चोक्तं प्रथमस्कन्धे—
'रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुषान्तरसंप्लवे।
नाव्यारोप्य महीमय्यामपाद्वैवस्वतं मनुम्॥'

इति। तदपि तदा दुर्घटम्, न हि प्रलयद्वयेऽपि महीमय्यां नाव्यारोहः संभवति, न च चाक्षुषमन्वन्तरे प्रलयोऽस्ति, तथा च सति सप्तमो मनुर्वैवस्वत इत्यपि दुर्घटं स्यात्। 'त्वं तावदोषधीः सर्वाः' इत्यादिनिर्देशोऽपि न सङ्गच्छते। न हि तदा ओषध्यादीनां सत्त्वानां चावशेषः संभवति।

तस्मादन्यथा वर्ण्यते। नैवायं वास्तवः कोऽपि प्रलयः, किंतु सत्यव्रतस्य ज्ञानोपदेशायाविर्भूतो भगवान्वैराग्यार्थमकस्मात्प्रलयमिव दर्शयामास। यथास्मिन्नेव वैवस्वतमन्वन्तरे मार्कण्डेयाय दर्शितवान्। तदपेक्षयैव महाकल्पेऽस्मिन्निति विशेषणं सङ्गच्छते।

तथा च—'ततः समुद्र उद्वेलः सर्वतः समदृश्यत' इति तस्यैव तथा दर्शनमुक्तमित्येषा दिक्।

प्रस्तुतं स्तोत्रं व्याख्यास्यामः।

तत्र नानायोनिषु संसरतः स्वस्य भगवत्कृपयैव तत्प्राप्तिं दृष्ट्वा मुक्तये तमेव प्रार्थयते—

अनादिर्याऽविद्या तयोपहता आवृतात्मनः संविद्येषां ते, अत एवाविद्यामूलैः संसारपरिश्रमैरातुरा इह संसारे यदृच्छया यदनुग्रहादेवोपसृता आश्रिताः सन्तो यमाप्नुयुः प्राप्नुयुः प्राप्नुवन्ति

વળી, પ્રથમ સ્કંધમાં જેમ કહેવામાં આવ્યું તેમ 'ચાક્ષુષ મન્વન્તરમાં સમુદ્રમાં પ્રલય થયો, ત્યારે તે શ્રીહરિએ મત્સ્યનું રૂપ ગ્રહણ કર્યું અને પૃથ્વીરૂપી નૌકામાં વૈવસ્વત મનુને બેસાડીને તેમની રક્ષા કરી.' (શ્રીમદ્ભા.૧/૩/૧૫) તે પણ તે રીતે ઘટતું નથી, (કારણ કે બંને પ્રકારના પ્રલયોમાં પૃથ્વીનો નાશ જ થાય છે.) તેથી બંને પ્રલયોમાં પૃથ્વીરૂપ નૌકામાં બેસવું સંભવે નહીં. વળી, ચાક્ષુષ મન્વન્તરમાં પ્રલય હોય જ નહીં. જો તેમ હોય તો સાતમો વૈવસ્વત મનુ થયો, એમ કહેવું પણ સુસંગત નથી. 'તે સમયે તું સર્વ ઔષધિઓ લઈને નૌકામાં બેસીશ.' (શ્લોક-૩૪) વગેરે નિર્દેશ પણ સુસંગત નથી, કારણ કે પ્રલયસમયે ઔષધિઓ કે પ્રાણીઓ બચે તે સંભવિત નથી.

તેથી બીજી રીતે કહેવામાં આવે છે. આ પ્રલય કોઈ વાસ્તવિક પ્રલય ન હતો, પરંતુ સત્યવ્રતને જ્ઞાનોપદેશ કરવા માટે પ્રકટ થયેલા ભગવાને તેને વૈરાગ્ય થાય તે માટે આકસ્મિક (વંશીધરી- અલ્પકાલિક) પ્રલય થયો હતો તેમ દર્શાવ્યું હતું, જેમ આ જ વૈવસ્વત મન્વન્તરમાં માર્કંડેય ઋષિને દર્શાવ્યું હતું. આમ માનવામાં આવે તો જ 'આ મહાકલ્પમાં' (શ્લોક-૧૧) એવું વિશેષણ સુસંગત થાય.

વળી, 'ત્યાર પછી સર્વ તરફથી મર્યાદા ઓળંગતો સમુદ્ર દેખાયો.'(જુઓ શ્લોક-૪૧) આમ સમુદ્રનું જ તેવું દર્શન કહેલું છે. આ પ્રમાણે નિર્દેશ છે.

હવે પ્રસ્તુત સ્તોત્રની વ્યાખ્યા કરીએ છીએ.

(પૂર્વે) જુદી જુદી યોનિઓમાં ભટકતા પોતાને ભગવાનની કૃપાથી જ તેમની પ્રાપ્તિ થઈ છે તે જોઈને તેમને જ મુક્તિ માટે પ્રાર્થના કરે છે—

અનાદિ એવી જે અવિદ્યા છે તેનાથી **'उपहता'** ઢંકાઈ ગયું છે આત્માનું જ્ઞાન જેમનું તેઓ, આથી જ અવિદ્યારૂપી મૂળવાળા સંસારના ક્લેશોથી પીડાતા મનુષ્યો આ સંસારમાં **'यदृच्छया'** જેમના અનુગ્રહથી જ **'उपसृताः'** આશ્રિત થઈ જેમને **'प्राप्नुयुः'** પ્રાપ્ત

स भवानेव साक्षान्नो गुरुः सन् ग्रन्थिं भिन्द्यादित्युत्तरेणान्वयः ॥ ४६ ॥

ननु वैराग्यं विना कुतो मुक्तिस्तर्हि तस्य त्वत्सेवैकफलत्वात्सेवामादिशेत्याशयेनाह—**जन इति**।

जनोऽबुधोऽयं निजकर्मबन्धनः
सुखेच्छया कर्म समीहतेऽसुखम्।
यत्सेवया तां विधुनोत्यसन्मतिं
ग्रन्थिं स भिन्द्याद्धृदयं स नो गुरुः ॥ ४७

अबुधोऽयं जनः असुखं यथा भवति तथा कर्म समीहते। तां सुखेच्छाम्। नो हृदयरूपं ग्रन्थिं स भिन्द्यात्। यतः स एव परमो गुरुः ॥ ४७ ॥

ननु यज्ञदानादिभिः सत्त्वशुद्धिं विना कथं ग्रन्थिभेदः स्यात्तत्राह—**यत्सेवयेति**।

यत्सेवयाऽग्नेरिव रुद्ररोदनं
पुमान् विजह्यान्मलमात्मनस्तमः।
भजेत वर्णं निजमेष सोऽव्ययो
भूयात्स ईशः परमो गुरोर्गुरुः ॥ ४८

यस्य सेवयैव पुमानात्मनो मनसो मलं तमो विजह्यात्। एष हीनमलो निजं वर्णं च स्वरूपं भजेत्। स ईशो नो गुरुर्भूयात्। यतः स एव गुरोरपि परमो गुरुः।

કરે છે, તે આપ જ સાક્ષાત્ અમારા ગુરુ હોઈ ‘અમારી હૃદયરૂપી ગાંઠ કાપી નાખો.’—એમ પછીના શ્લોક (૪૭) સાથે સંબંધ છે. ॥ ૪૬ ॥

પ્રશ્ન કરવામાં આવ્યો છે કે વૈરાગ્ય વિના મુક્તિ કેવી રીતે થાય? (જો વૈરાગ્ય વિના મુક્તિ ન થતી હોય) તો તે વૈરાગ્ય આપની સેવાનું એક માત્ર ફળ હોવાથી સેવાની આજ્ઞા આપો, એ આશયથી કહે છે— ‘**जनः इति।**’

પોતાનાં કર્મોથી બંધાયેલો આ અબુધ મનુષ્ય સુખની ઈચ્છાથી દુઃખ આવી પડે તેમ કર્મ કરે છે. જેમની સેવાથી તે સુખની ઈચ્છારૂપ દુષ્ટ બુદ્ધિ દૂર કરે છે, તે (પરમ) ગુરુ અમારી હૃદયરૂપ ગ્રંથિને ભેદી નાખો. ॥ ૪૭ ॥

અબુધ (અસ્વરૂપજ્ઞ) એવો આ મનુષ્ય જેમ દુઃખ આવી પડે તેમ કર્મ કરે છે. (સુખની ઈચ્છા માટે દુઃખ વહોરી લે છે,) તે સુખની ઈચ્છા (રૂપ દુષ્ટ બુદ્ધિ)ને, અમારી હૃદયરૂપ ગ્રન્થિને તે (ભગવાન આપ) કાપી નાખો, કારણ કે તે (આપ) જ પરમ ગુરુ છે. ॥ ૪૭ ॥

શંકા કરે છે કે યજ્ઞદાનાદિ વડે અંતઃકરણશુદ્ધિ થયા વિના ગ્રંથિભેદ કેવી રીતે થાય? તે માટે ઉત્તર આપે છે— ‘**यत्सेवया इति।**’

જેમ અગ્નિ(ના સંપર્ક)થી ચાંદી મેલ તજે છે અને પોતાના શુદ્ધ રૂપને પ્રાપ્ત થાય છે, તેમ જેમની સેવાથી (મુમુક્ષુ) મનુષ્ય મનનો મેલ તજે છે અને પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપને પ્રાપ્ત થાય છે, તે આ અવિનાશી પરમેશ્વર અમારા ગુરુના પણ પરમ પૂજ્ય છે, તે અમારા ગુરુ થાઓ! ॥ ૪૮ ॥

જેમની સેવાથી જ મનુષ્ય ‘**आत्मनः**’ મનના મેલ તમસ્‌ને તજે છે. (જેનામાંથી અવિદ્યા દૂર થઈ છે તેવો) આ મળરહિત મનુષ્ય પોતાના ‘**वर्णम्**’ (શુદ્ધ) સ્વરૂપને પ્રાપ્ત કરે છે, તે ઈશ્વર અમારા ગુરુ થાઓ, કારણ કે તે ઈશ્વર જ ગુરુના પણ ગુરુ, પરમગુરુ છે.

मलहाने दृष्टान्तः—रुद्ररोदनं रुद्रस्य रोदनं रजतम्। 'यदरोदीत्तद् रुद्रस्य रुद्रत्वं, यदश्र्ववशीर्यत तद् रजतं हिरण्यमभवत्' इति श्रुतेः।

तद्यथाऽग्नेः संपर्कान्मलं जहाति स्वं वर्णं भजते न तु क्षालनादिभिस्तथा न यज्ञादिभिर्मल-त्यागः, किंतु त्वत्सेवयैव। तेषां तु सेवाङ्गत्वमिति भावः॥ ४८॥

परमेश्वरत्वं परमगुरुत्वं च प्रपञ्चयन्नाह—नेति।

न यत्प्रसादायुतभागलेश-
मन्ये च देवा गुरवो जनाः स्वयम्।
कर्तुं समेताः प्रभवन्ति पुंस-
स्तमीश्वरं त्वां शरणं प्रपद्ये॥ ४९

यत्प्रसादस्यायुतभागस्तस्य लेशमात्रमप्यन्ये देवादयः सर्वे समेता अपि स्वयं तन्निरपेक्षाः सन्तः कर्तुं न प्रभवन्ति॥ ४९॥

तदेव दृष्टान्तेन स्पष्टयन्नाह—**अचक्षुरिति।**

अचक्षुरन्धस्य यथाग्रणीः कृत-
स्तथा जनस्याविदुषोऽबुधो गुरुः।
त्वमर्कदृक् सर्वदृशां समीक्षणो
वृतो गुरुर्नः स्वगतिं बुभुत्सताम्॥ ५०

મળ તજવા માટેનું દૃષ્ટાન્ત— **'रुद्ररोदनम्'** રુદ્રનું રુદન અર્થાત્ ચાંદી. 'રુદ્ર જે રડ્યા તે જ રુદ્રનું રુદ્રત્વ છે. જે અશ્રુ ખરી પડ્યાં તે અશ્રુ ચાંદી અને સોનું થઈ ગયાં.' (શ્રુતિનું મૂળ મળ્યું નથી.)

તે ચાંદી જેમ અગ્નિના સંપર્કથી મેલ તજે છે અને પોતાનો સાચો રંગ પ્રાપ્ત કરે છે, પરંતુ ધોવા વગેરેથી તેવી શુદ્ધ થતી નથી, તેમ યજ્ઞ વગેરેથી મનુષ્યનો મેલ દૂર થતો નથી, પરંતુ આપની સેવાથી જ દૂર થાય છે. તે યજ્ઞાદિ તો સેવાના અંગરૂપ છે, એવો ભાવ છે.॥ ૪૮॥

પરમેશ્વરત્વ અને પરમગુરુત્વને વિસ્તારપૂર્વક સમજાવતાં કહે છે— **'न इति।'**

અન્ય દેવો, ગુરુઓ અને બીજા જનો એકસાથે મળી, સ્વયં (નિરપેક્ષ થઈ કૃપા કરે તો) જેમની કૃપાના દસ હજારમા અંશના અંશ જેટલી પણ કૃપા કરવાને સમર્થ નથી, તે પરમેશ્વર એવા આપને શરણે હું આવ્યો છું.॥ ૪૯॥

જેમની કૃપાનો દસ હજારમો અંશ, તેનો પણ અંશ, બીજા દેવો વગેરે સર્વ એક સાથે મળીને પણ અને સ્વયં તેનાથી નિરપેક્ષ થઈને ભગવાનની અપેક્ષા વગર સ્વતંત્ર રીતે કૃપા કરવા માટે સમર્થ નથી.॥ ૪૯॥

'तत्' (વંશીધરી–**तदेव त्वां विना कोऽपि किंचित्कर्तुं न समर्थ इत्युक्तमेव।** આપના વિના કોઈ પણ કંઈ કરવા માટે સમર્થ નથી, એમ જે કહેવાયું) તે જ દૃષ્ટાન્તપૂર્વક સ્પષ્ટ કરીને કહે છે— **'अचक्षुः इति।'**

જેમ આંધળો મનુષ્ય આંધળાને આગળ દોરનારો બને, તેમ અજ્ઞાની મનુષ્યનો ગુરુ અજ્ઞાની મનુષ્ય (હોય તો તે સ્વયં નરકમાં પડે છે અને શિષ્યને પણ નરકમાં પાડે છે). સૂર્યપ્રકાશની જેમ આપ સ્વયંપ્રકાશિત જ્ઞાનવાન છો તથા સર્વ ઈન્દ્રિયોના પ્રકાશક છો, તેવા આપનું, સ્વસ્વરૂપ જાણવા ઈચ્છતા અમારા દ્વારા ગુરુ તરીકે વરણ કરવામાં આવ્યું છે.॥ ૫૦॥

अविदुषो जनस्याबुधोऽविद्वान् गुरुस्तथैव। अर्कप्रकाशवत्स्वत एव दृग्ज्ञानं यस्य सोऽर्कदृक्। अतः सर्वदृशां सर्वेन्द्रियाणां समीक्षणः प्रकाशकः। अत एव स्वगतिं बोद्धुमिच्छद्भिर्नोऽस्माभिर्गुरुर्वृतोऽसि॥ ५०॥

किंच प्राकृतो गुरुरनर्थहेतुरित्याह—**जन इति**।

जनो जनस्यादिशतेऽसतीं मतिं
यया प्रपद्येत दुरत्ययं तमः।
त्वं त्वव्ययं ज्ञानममोघमञ्जसा
प्रपद्यते येन जनो निजं पदम्॥ ५१

आदिशते उपदिशति। असतीं मतिमर्थकामादिमतिम्। तमः संसारम्॥ ५१॥

ननु तर्हि सर्वोऽपि लोको मामेव किं नोपसरति, अज्ञानादित्याह—**त्वमिति**।

त्वं सर्वलोकस्य सुहृत् प्रियेश्वरो
ह्यात्मा गुरुर्ज्ञानमभीष्टसिद्धिः।
तथापि लोको न भवन्तमन्धधी-
र्जानाति सन्तं हृदि बद्धकामः॥ ५२

प्रियश्चासावीश्वरश्च॥ ५२॥

अहं तु त्वामेव शरणं यामीत्याह—**तं त्वामिति**।

तं त्वामहं देववरं वरेण्यं
प्रपद्य ईशं प्रतिबोधनाय।
छिन्ध्यर्थदीपैर्भगवन् वचोभि-
र्ग्रन्थीन् हृदय्यान् विवृणु स्वमोकः॥ ५३

અજ્ઞાની મનુષ્યનો '**अबुधः**' અજ્ઞાની ગુરુ હોય તેમ જ. સૂર્યના પ્રકાશની જેમ સ્વયં '**दृक्**' જ્ઞાન છે જેને તે '**अर्कदृक्**' સ્વયંપ્રકાશિત જ્ઞાનવાન, આથી આપ '**सर्वदृशाम्**' સર્વ ઈન્દ્રિયોના '**समीक्षणः**' પ્રકાશક છો. આથી જ પોતાનું સ્વરૂપ જાણવા ઈચ્છતા એવા અમારા દ્વારા આપનું ગુરુ તરીકે વરણ કરવામાં આવ્યું છે. ॥ ૫૦॥

વળી, પ્રાકૃત ગુરુ અનર્થનું કારણ છે, એમ કહે છે— '**जनः इतिः।**'

(અજ્ઞાની) મનુષ્ય (બીજા અજ્ઞાની) મનુષ્યને (અર્થ-કામપરક) અસદ્બુદ્ધિનો જ ઉપદેશ કરે છે કે જેનાથી દુર્લંઘ્ય અંધકાર(રૂપ સંસાર) પ્રાપ્ત થાય છે, પરંતુ આપ અવિનાશી અને અમોઘ જ્ઞાનનો ઉપદેશ કરો છો, કે જેનાથી મનુષ્ય અનાયાસે સ્વસ્વરૂપ પ્રાપ્ત કરે છે. ॥ ૫૧ ॥

'**आदिशते**' ઉપદેશ આપે છે. '**असतीं मतिम्**' અર્થ અને કામાદિ પ્રાપ્ત કરવાની મતિનો (ઉપદેશ કરે છે). '**तमः**' અંધકારરૂપ સંસારને ॥ ૫૧ ॥

શંકા કરે છે કે (જો ભગવાન પૂછે કે) તો પછી સર્વ જનો મારે જ શરણે કેમ નથી આવતા? તે માટે ઉત્તર આપે છેઃ અજ્ઞાનને કારણે— '**त्वम् इति।**'

આપ સર્વ લોકના મિત્ર, પ્રિયતમ, ઈશ્વર, આત્મા, ગુરુ, જ્ઞાન અને અભીષ્ટસિદ્ધિરૂપ છો તથા હૃદયમાં રહેલા છો, તેમ છતાં પણ કામ-તથા વિષયોથી બંધાયેલો અંધબુદ્ધિવાળો (અવિવેકી) જન આપને જાણતો નથી. ॥ ૫૨ ॥

એ પ્રિય પણ છે અને ઈશ્વર પણ છે. ॥ ૫૨ ॥

પરંતુ હું આપને જ શરણે જાઉં છું, એમ કહે છે— '**तं त्वाम् इति।**'

દેવોમાં શ્રેષ્ઠ, આશ્રયરૂપે વરણ કરવા યોગ્ય અને ઈશ્વર એવા આપની પાસેથી તત્ત્વોપદેશ પ્રાપ્ત કરવા માટે હું આપને શરણે આવ્યો છું. (માટે) હે ભગવાન, પરમાર્થનો પ્રકાશ કરનારાં વચનોથી (મારા) હૃદયમાં રહેલી અહંકારાદિ ગ્રંથિઓને કાપી નાખો અને સ્વસ્વરૂપને પ્રકાશિત કરો. ॥ ૫૩ ॥

प्रतिबोधनायोपदेशाय। अर्थदीपैः परमार्थप्रकाशकैः। हृदये भवान् ग्रन्थीनहंकारादीन्। स्वमोकः स्वं रूपं विवृणु प्रकाशय॥ ५३॥

'**प्रतिबोधनाय**' (તત્ત્વના) ઉપદેશ માટે, '**अर्थदीपैः**' પરમાર્થનો પ્રકાશ કરનારાં દીવારૂપ (વચનો)થી ('**हृदय्यान्**') હૃદયમાં રહેલી અહંકારાદિ ગ્રન્થિઓને (કાપી નાખો.), '**स्वम्-ओकः**' પોતાનું સ્વરૂપ '**विवृणु**' પ્રકાશિત કરો. ॥ ૫૩ ॥

श्रीशुक उवाच

इत्युक्तवन्तं नृपतिं भगवानादिपूरुषः।
मत्स्यरूपी महाम्भोधौ विहरंस्तत्त्वमब्रवीत्॥ ५४

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — આમ, સ્તુતિ કરતા રાજા સત્યવ્રતને મત્સ્યરૂપધારી આદિપુરુષ શ્રીહરિએ મહાસાગરમાં વિહાર કરતાં તત્ત્વોપદેશ કર્યો હતો. ॥ ૫૪ ॥

नृपतिं प्रति॥ ५४॥

રાજા સત્યવ્રતને ॥ ૫૪ ॥

पुराणसंहितां दिव्यां सांख्ययोगक्रियावतीम्।
सत्यव्रतस्य राजर्षेरात्मगुह्यमशेषतः॥ ५५

રાજર્ષિ સત્યવ્રતને (શ્રીહરિએ) પોતાના સ્વરૂપનું સંપૂર્ણ રહસ્ય તથા જ્ઞાન, ભક્તિ અને કર્મયોગથી પરિપૂર્ણ મત્સ્યપુરાણ નામની દિવ્ય સંહિતા સંપૂર્ણપણે વર્ણવી હતી. ॥ ૫૫ ॥

पुराणसंहितां मत्स्यपुराणमशेषतोऽब्रवीदित्यनुषङ्गः॥ ५५॥

'**पुराणसंहिताम्**' મત્સ્યપુરાણ સંપૂર્ણપણે વર્ણવ્યું હતું. ॥ ૫૫ ॥

अश्रौषीदृषिभिः साकमात्मतत्त्वमसंशयम्।
नाव्यासीनो भगवता प्रोक्तं ब्रह्म सनातनम्॥ ५६

॥ ५६ ॥

નાવમાં બેસીને (રાજા સત્યવ્રતે) ઋષિઓ સાથે ભગવાન દ્વારા કહેવામાં આવેલ સનાતન બ્રહ્મરૂપ આત્મતત્ત્વનું સંદેહરહિત થઈને શ્રવણ કર્યું હતું. ॥ ૫૬ ॥ ૫૬ ॥

अतीतप्रलयापाय उत्थिताय स वेधसे।
हत्वासुरं हयग्रीवं वेदान् प्रत्याहरद्धरिः॥ ५७

છેલ્લા પ્રલયનો અંત આવી ગયો, ત્યારે (નિદ્રામાંથી) ઊઠેલા બ્રહ્માજીને તે ભગવાન શ્રીહરિએ હયગ્રીવ અસુરને હણીને વેદો પાછા લાવી આપ્યા હતા. ॥ ૫૭ ॥

अतीतः पूर्वो यः प्रलयस्तस्यापायेऽवसाने ॥ ५७॥

'**अतीतः**' પૂર્વનો જે છેલ્લો પ્રલય થયો તેનો '**अपाये**' અંત આવ્યો ત્યારે ॥ ૫૭ ॥

स तु सत्यव्रतो राजा ज्ञानविज्ञानसंयुतः।
विष्णोः प्रसादात् कल्पेऽस्मिन्नासीद् वैवस्वतो मनुः॥ ५८

॥ ५८ ॥

ભગવાન વિષ્ણુની કૃપાથી તે રાજા સત્યવ્રત જ્ઞાન અને વિજ્ઞાનથી યુક્ત થઈ આ કલ્પમાં વૈવસ્વત મનુ થયા. ॥ ૫૮ ॥ ૫૮ ॥

सत्यव्रतस्य राजर्षेर्मायामत्स्यस्य शार्ङ्गिणः।
संवादं महदाख्यानं श्रुत्वा मुच्येत किल्बिषात्॥ ५९

॥ ५९ ॥

(પોતાની) માયાથી મત્સ્યરૂપ ધારણ કરનારા સારંગપાણિ શ્રીહરિ અને રાજર્ષિ સત્યવ્રતના સંવાદરૂપ આ મહાન આખ્યાનનું શ્રવણ કરીને મનુષ્ય પાપથી મુક્ત થાય છે. ॥ ૫૯ ॥ ૫૯ ॥

अवतारो हरेर्योऽयं कीर्तयेदन्वहं नरः।
सङ्कल्पास्तस्य सिध्यन्ति स याति परमां गतिम्॥ ६०

જે મનુષ્ય શ્રીહરિનો જે આ મત્સ્યાવતાર છે, તેનું પ્રતિદિન કીર્તન કરે (છે), તેના સંકલ્પો સિદ્ધ થાય છે તથા તે પરમ ગતિ પામે છે. ॥ ૬૦ ॥

योऽयं हरेरवतारस्तं यः प्रकीर्तयेत्॥ ६० ॥

જે મનુષ્ય શ્રીહરિનો જે આ અવતાર છે, તેને પ્રતિદિન ગાય ॥ ૬૦ ॥

प्रलयपयसि धातुः सुप्तशक्तेर्मुखेभ्यः
श्रुतिगणमपनीतं प्रत्युपादत्त हत्वा।
दितिजमकथयद् यो ब्रह्म सत्यव्रतानां
तमहमखिलहेतुं जिह्ममीनं नतोऽस्मि॥ ६१

પ્રલયકાલીન જળમાં સુપ્ત થઈ ગયેલી શક્તિઓવાળા બ્રહ્માજીના મુખમાંથી નીકળેલા શ્રુતિગણને (જે હયગ્રીવ દ્વારા) લઈ લેવામાં આવ્યા હતા, તે દિતિપુત્ર અસુર હયગ્રીવને મારીને જે ભગવાને બ્રહ્માજીને વેદો પાછા લાવી આપ્યા તેમ જ રાજા સત્યવ્રતને અને સપ્તર્ષિઓને જેમણે બ્રહ્મજ્ઞાનનો ઉપદેશ કર્યો હતો, તે સમગ્ર જગતના કારણ અને માયાથી મત્સ્ય બનેલા ભગવાન શ્રીહરિને હું નમન કરું છું. ॥ ૬૧ ॥

सत्यव्रतानां सत्यव्रतस्य ऋषीणां च छत्रिणो गच्छन्तीतिवल्लिङ्गसमवायाद्बहुवचनम्। जिह्ममीनं मायामत्स्यम्॥ ६१ ॥

'**सत्यव्रतानाम्**' સત્યવ્રતને અને ઋષિઓને– અહીં લિંગસમવાય (સંબધ)થી બહુવચન છે. (અર્થાત્ એક ટોળામાં બે-ત્રણ છત્રીવાળા હોય તો) છત્રીવાળા જાય છે, એમ કહી શકાય. (આ ન્યાયપ્રસિદ્ધ સિદ્ધાન્ત અનુસાર સત્યવ્રત અને ઋષિઓને જ્ઞાન આપ્યું, એમ કહેવા માટે **सत्यव्रतानाम्** બ.વ. કહીને ઋષિઓનો સમાવેશ કરવામાં આવ્યો છે). '**जिह्ममीनम्**' માયાથી મત્સ્ય બનેલા શ્રીહરિને (હું નમન કરું છું). ॥ ૬૧ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यामष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे मत्स्यावतारचरितानुवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

*****

॥ समाप्तोऽयमष्टमस्कन्धः॥ ८॥

॥ हरिः ॐ तत्सत्॥

*****

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

नवमः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

વૈવસ્વત મનુના પુત્ર રાજા સુદ્યુમ્નની કથા

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

गुणा यं गुणतावाप्त्यै वृणते करुणानिधिम्।
तमहं शरणं यामि परमानन्दमाधवम्॥ १॥

त्रिगुणाष्टभिरध्यायैर्वैवस्वतसुतान्वयः।
नवमे कृष्णसत्कीर्तिप्रसङ्गाय वितन्यते॥ २॥

एवमुक्तोऽष्टमस्कन्धे सद्धर्मः सत्त्वशोधकः।
कर्तृपालकवक्त्रादिमन्वादीनां निरूपणैः॥ ३॥

सद्धर्मशुद्धसत्त्वानामन्तरङ्गेशसत्कथा।
सूर्यसोमान्वयाख्यानैरधुना सङ्गतोच्यते॥ ४॥

तत्र च—
त्रयोदशभिरध्यायैः सूर्यवंशोऽनुवर्ण्यते।
एकादशभिरध्यायैः सोमवंशस्ततः परैः॥ ५॥

तत्र तु प्रथमेऽध्याये वैवस्वतसुतान्वये।
सोमवंशप्रवेशोक्त्यै सुद्युम्नस्त्रीत्वमुच्यते॥ ६॥

उक्तानुवादपूर्वकं वैवस्वतमनोर्वंशं पृच्छति—**मन्वन्तराणीति** पञ्चभिः।

શ્રીગણેશજીને નમસ્કાર.

(સત્ય, પવિત્રતા વગેરે) ગુણો પ્રશંસાના કારણરૂપ ગુણત્વને પ્રાપ્ત કરવા માટે જે કરુણાનિધિનું વરણ કરે છે, તે પરમ આનંદરૂપ માધવને શરણે હું જાઉં છું. ॥ ૧ ॥

આઠના ત્રણ ગણા (ચોવીસ) અધ્યાયો દ્વારા શ્રીકૃષ્ણની સત્કથાના પ્રસંગ માટે વૈવસ્વત (મનુ શ્રાદ્ધદેવ)ના (ઈક્ષ્વાકુ વગેરે) પુત્રોનો વંશ કહેવામાં આવ્યો છે. ॥ ૨ ॥

આ પ્રમાણે કર્તા (બ્રાહ્મણો), પાલક (રાજાઓ) અને મનુ વગેરે વક્તાઓના નિરૂપણ દ્વારા સત્ત્વશુદ્ધિ કરનારો સદ્ધર્મ આઠમા સ્કંધમાં કહેવામાં આવ્યો. ॥ ૩ ॥

ઈશસત્કથાની અંતર્ગત શુદ્ધ અંતઃકરણવાળા (ભક્તો)ના સદ્‌ધર્મની સંગતિ પ્રાપ્ત કરવામાં આવે છે, તે હવે સૂર્યવંશ અને ચંદ્રવંશનાં આખ્યાનો દ્વારા કહેવામાં આવે છે. ॥ ૪ ॥

અને તે વંશકથનમાં, તેર અધ્યાયો દ્વારા સૂર્યવંશ અને તે પછી અગિયાર અધ્યાયો દ્વારા ચંદ્રવંશનું વર્ણન કરવામાં આવે છે. ॥ ૫ ॥

તેમાં પ્રથમ અધ્યાયમાં વૈવસ્વત મનુના પુત્રોના વંશમાં ચંદ્રવંશનો પ્રવેશ કહેવા માટે સુદ્યુમ્નનું સ્ત્રીત્વ કહેવામાં આવે છે. ॥ ૬ ॥

જણાવવામાં આવ્યું તે જ વસ્તુને પુનઃ કહેવા દ્વારા (રાજા પરીક્ષિત) મનુનો વંશ પાંચ શ્લોકો વડે પૂછે છે— **'मन्वन्तराणि इति।'**

राजोवाच

मन्वन्तराणि सर्वाणि त्वयोक्तानि श्रुतानि मे।
वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य हरेस्तत्र कृतानि च॥ १ ॥ १ ॥

योऽसौ सत्यव्रतो नाम राजर्षिर्द्रविडेश्वरः।
ज्ञानं योऽतीतकल्पान्ते लेभे पुरुषसेवया॥ २ ॥ २ ॥

स वै विवस्वतः पुत्रो मनुरासीदिति श्रुतम्।
त्वत्तस्तस्य सुताश्चोक्ता इक्ष्वाकुप्रमुखा नृपाः॥ ३ ॥ ३ ॥

तेषां वंशं पृथग् ब्रह्मन् वंश्यानुचरितानि च।
कीर्तयस्व महाभाग नित्यं शुश्रूषतां हि नः॥ ४ ॥ ४ ॥

ये भूता ये भविष्याश्च भवन्त्यद्यतनाश्च ये।
तेषां नः पुण्यकीर्तीनां सर्वेषां वद विक्रमान्॥ ५ ॥ ५ ॥

सूत उवाच

एवं परीक्षिता राज्ञा सदसि ब्रह्मवादिनाम्।
पृष्टः प्रोवाच भगवाञ्छुकः परमधर्मवित्॥ ६ ॥ ६ ॥

श्रीशुक उवाच

श्रूयतां मानवो वंशः प्राचुर्येण परंतप।
न शक्यते विस्तरतो वक्तुं वर्षशतैरपि॥ ७ ॥ ७ ॥

अनुक्तं वंशं वक्तुं पूर्वोक्तमेव तावद्वंशं तत्प्रवर्तकं श्रीनारायणमारभ्यानुस्मारयति— **परावरेषामिति** पञ्चभिः।

परावरेषां भूतानामात्मा यः पुरुषः परः।
स एवासीदिदं विश्वं कल्पान्तेऽन्यन्न किञ्चन॥ ८ ॥ ८ ॥

રાજા પરીક્ષિત બોલ્યા — આપે સર્વ (ચૌદ) મન્વન્તરો કહ્યાં અને તે મન્વન્તરોમાં અનન્ત પ્રભાવવાળા શ્રીહરિનાં ઐશ્વર્યપૂર્ણ ચરિત્રોનું વર્ણન કર્યું, તેનું મેં શ્રવણ કર્યું.॥ ૧ ॥ ૧ ॥

સત્યવ્રત નામના જે દ્રવિડનરેશ રાજર્ષિ હતા તેમણે છેલ્લા કલ્પના અંતે શ્રીહરિની સેવાથી જ્ઞાન પ્રાપ્ત કર્યું હતું.॥ ૨ ॥ ૨ ॥

તે જ (રાજર્ષિ સત્યવ્રત આ કલ્પમાં) વિવસ્વાન સૂર્યના પુત્ર મનુ થયા તે આપની પાસેથી શ્રવણ કર્યું તથા ઈક્ષ્વાકુ જેમનામાં મુખ્ય છે તેવા તેમના પુત્રો (રાજા) થયા તે પણ કહેવામાં આવ્યું.॥ ૩ ॥ ૩ ॥

હે બ્રહ્મન્, તેમના વંશો તથા તેમના વંશજોનાં જુદાં જુદાં ચરિત્રો, હે મહાભાગ, નિત્ય શ્રવણ કરવાની ઈચ્છાવાળા અમને કહો.॥ ૪ ॥ ૪ ॥

(વૈવસ્વત મનુના વંશમાં) જે રાજાઓ થઈ ગયા છે, જે થનારા છે તથા જે અદ્યતન (અત્યારે વિદ્યમાન) છે, તે સર્વ પવિત્ર કીર્તિવાળા રાજાઓનાં પરાક્રમો અમને કહો.॥ ૫ ॥ ૫ ॥

સૂતજી બોલ્યા — બ્રહ્મવાદીઓની સભામાં રાજા પરીક્ષિત દ્વારા આ પ્રમાણે જેમને પૂછવામાં આવ્યું, તે ઉત્તમ ધર્મના જાણનાર ભગવાન શુકદેવજી બોલ્યા.॥ ૬ ॥ ૬ ॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — હે શત્રુતાપન પરીક્ષિત, મનુનો વંશ પ્રાધાન્યપૂર્વક શ્રવણ કરો, (કારણ કે) વિસ્તારપૂર્વક તો સો વર્ષે પણ વર્ણવવાને શક્ય નથી.॥ ૭ ॥ ૭ ॥

વર્ણવવામાં ન આવેલા વંશનું વર્ણન કરવા માટે પૂર્વે કહેલા જ વંશનું અને તે વંશના પ્રવર્તકનું શ્રીનારાયણથી આરંભીને પાંચ શ્લોકો વડે સ્મરણ કરાવે છે— **'पर-अवरेषाम् इति।'**

કલ્પના અંતે નાનાં-મોટાં (સર્વ) પ્રાણીઓના જે આત્મા છે, તે પરમપુરુષ પરમાત્મારૂપ જ (આ) જગત હતું, અન્ય કાંઈ ન હતું.॥ ૮ ॥ ૮ ॥

तस्य नाभेः समभवत् पद्मकोशो हिरण्मयः।
तस्मिञ्जज्ञे महाराज स्वयंभूश्चतुराननः॥ ९ ॥ ९ ॥

હે મહારાજ, તે નારાયણની નાભિમાંથી સુવર્ણમય પદ્મકોશ ઉત્પન્ન થયો. તેમાંથી ચાર મુખવાળા સ્વયમ્ભૂ બ્રહ્માજી જન્મ્યા.॥ ૯ ॥ ૯ ॥

मरीचिर्मनसस्तस्य जज्ञे तस्यापि कश्यपः।
दाक्षायण्यां ततोऽदित्यां विवस्वानभवत् सुतः॥ १० ॥ १० ॥

તે બ્રહ્માજીના મનમાંથી મરીચિ ઋષિ જન્મ્યા. તે મરીચિ ઋષિના કશ્યપ ઋષિ થયા. તે કશ્યપથી દક્ષપુત્રી અદિતિમાં વિવસ્વાન (નામના) પુત્ર થયા.॥ ૧૦ ॥ ૧૦ ॥

ततो मनुः श्राद्धदेवः संज्ञायामास भारत।
श्रद्धायां जनयामास दश पुत्रान् स आत्मवान्॥ ११ ॥ ११ ॥

હે ભારત, ત્યાર પછી (વિવસ્વાન સૂર્યના) સંજ્ઞા વિષે શ્રાદ્ધદેવ નામના (વૈવસ્વત) મનુ થયા. આત્મવેત્તા એવા તેમણે શ્રદ્ધા વિષે ઈક્ષ્વાકુ, નૃગ, શર્યાતિ, દિષ્ટ, ધૃષ્ટ, કરૂષક, નરિષ્યન્ત, પૃષધ્ર, નભગ અને કવિ– એમ દસ પુત્રો ઉત્પન્ન કર્યા.॥ ૧૧ ॥ ૧૨ ॥ ૧૧ ॥

इक्ष्वाकुनृगशर्यातिदिष्टधृष्टकरूषकान्।
नरिष्यन्तं पृषध्रं च नभगं च कविं विभुः॥ १२

नाभागं चेति पाठेऽपि नभग एव नाभागः॥ १२ ॥

'नाभागं च' પાઠ હોય તો પણ નભગ એ જ નાભાગ॥ ૧૨ ॥

सूर्यपौत्रस्य सुद्युम्नस्य स्त्रीत्वे सति बुधात्पुरूरवःप्रभृतिसोमवंशसंचारं वक्तुं सप्रस्तावमिलोपाख्यानमाह—**अप्रजस्य मनोः पूर्व**मित्यादिना यावदध्यायसमाप्ति।

સૂર્યપૌત્ર સુદ્યુમ્નનું સ્ત્રીપણું હોઈ, બુધથી પુરૂરવા વગેરે સોમવંશનો પ્રારંભ કહેવા માટે પ્રસ્તાવના સહિત ઈલોપાખ્યાન વગેરે દ્વારા અધ્યાય સમાપ્ત થાય ત્યાં સુધી વર્ણવે છે— **'अप्रजस्य मनोः पूर्वम्'**

अप्रजस्य मनोः पूर्वं वसिष्ठो भगवान् किल।
मित्रावरुणयोरिष्टिं प्रजार्थमकरोत् प्रभुः॥ १३

મહાસમર્થ ભગવાન વસિષ્ઠે (ઈક્ષ્વાકુ વગેરેના જન્મ) પહેલાં નિ:સન્તાન મનુને પ્રજાપ્રાપ્તિ માટે 'મૈત્રાવરુણી ઈષ્ટિ' મિત્ર અને વરુણનો યજ્ઞ કરાવ્યો હતો.॥ ૧૩ ॥

पूर्वमिक्ष्वाकुप्रभृतीनामुत्पत्तेः प्राक्॥ १३ ॥

'पूर्वम्' ઈક્ષ્વાકુ વગેરે (દસ પુત્રો)ની ઉત્પત્તિ પહેલાં॥ ૧૩ ॥

तत्र श्रद्धा मनोः पत्नी होतारं समयाचत।
दुहित्रर्थमुपागम्य प्रणिपत्य पयोव्रता॥ १४

તે સમયે કેવળ દૂધનો આહાર કરવાના વ્રતવાળી મનુની પત્ની શ્રદ્ધાએ હોમ કરનાર (ભૂદેવ) હોતા પાસે આવીને પ્રણામ કરી પુત્રી માટે યાચના કરી.॥ ૧૪ ॥

दुहित्रर्थं मम कन्या यथा भवेत्तथा यजेति होतारं सम्यगयाचत। पय एव व्रतमाहारो नियतो यस्याः॥ १४ ॥

'दुहितृ-अर्थम्' મને કન્યા જે રીતે થાય તે રીતે યજન કરો, એમ હોતાની પાસે ઉચિત રીતે કન્યા માટે યાચના કરી. કેવળ દૂધ **'व्रतम्'** નિયત કરાયેલો આહાર છે જેનો॥ ૧૪ ॥

प्रेषितोऽध्वर्युणा होता ध्यायंस्तत् सुसमाहितः।
हविषि व्यचरत् तेन वषट्कारं गृणन्द्विजः॥ १५

अध्वर्युणा होतर्यजेति प्रेषितो होता तेन गृहीते हविषि सति तत्तया प्रार्थितं ध्यायन्व्यचरदयजत्। पाठान्तरे तत् आध्यायत् वाचा वषट्कारं गृणन्वौष-डित्युच्चारयन्॥ १५॥

અધ્વર્યુ દ્વારા પ્રેરાયેલા દ્વિજ હોતાએ હવ્ય પદાર્થ ગ્રહણ કર્યો ત્યારે એકાગ્રચિત્ત થઈ (મનુપત્ની) શ્રદ્ધા દ્વારા કરાયેલી યાચનાને ધ્યાનમાં લેતાં, વષટ્કાર ઉચ્ચારણ કરતાં, તે ગ્રહણ કરેલા હવ્ય પદાર્થથી (વૌષટ્–એમ) વિપરીત ઉચ્ચારણ કર્યું.॥ ૧૫॥

અધ્વર્યુ દ્વારા હોતા પ્રતિ યજન કરો, એમ પ્રેરણા કરાયેલા હોતાએ '**तेन**' તે ગ્રહણ કરેલા હવ્ય પદાર્થથી તેના (મનુપત્ની શ્રદ્ધા) દ્વારા કરવામાં આવેલી યાચનાને ધ્યાનમાં લેતાં વિપરીત ઉચ્ચારણ કરીને યજ્ઞ કર્યો. '**होता ध्यायंस्तत्**' ને બદલે '**होताऽध्यायत्तत्**' પાઠાન્તરમાં તેનું ધ્યાન કર્યું અને વાણીથી વષટ્કાર ઉચ્ચારણ કરવાને બદલે '**वौषट्**' ઉચ્ચારણ કરતાં (વિપરીત આચાર કર્યો).॥ ૧૫॥

होतुस्तद्व्यभिचारेण कन्येला नाम साभवत्।
तां विलोक्य मनुः प्राह नातिहृष्टमना गुरुम्॥ १६

॥ १६॥

હોતાના તે વિપરીત ઉચ્ચારણ (દોષ)થી તે (પ્રસિદ્ધ) ઈલા નામની કન્યા થઈ, તે કન્યાને જોઈ, જેનું મન અતિપ્રસન્ન ન થયું તે મનુમહારાજ ગુરુ (વસિષ્ઠ)ને કહેવા લાગ્યા. ॥૧૭॥૧૭॥

भगवन् किमिदं जातं कर्म वो ब्रह्मवादिनाम्।
विपर्ययमहो कष्टं मैवं स्याद् ब्रह्मविक्रिया॥ १७

ब्रह्मविक्रिया मन्त्रान्यथात्वम्॥ १७॥

હે ભગવાન, બ્રહ્મવાદીઓ એવા આપના દ્વારા અનુષ્ઠાન કરવામાં આવેલા કર્મનું વિપરીત ફળ કેવી રીતે થયું? અહો! કષ્ટની વાત છે! મંત્રશક્તિનું વિપરીત ફળ થવું ન જોઈએ. ॥૧૭॥

'**ब्रह्मविक्रिया**' મન્ત્રશક્તિનું વિપરીત ફળ ॥ ૧૪॥

यूयं मन्त्रविदो युक्तास्तपसा दग्धकिल्बिषाः।
कुतः संकल्पवैषम्यमनृतं विबुधेष्विव॥ १८

॥ १८॥

આપ સર્વ મંત્રવેત્તા છો, યોગીઓ છો, વળી તપથી પાપને બાળી નાખનારા છો. દેવોમાં અસત્ય ન સંભવે તેમ આપનામાં સંકલ્પની વિષમતા કેમ સંભવે?॥૧૮॥૧૮॥

तन्निशम्य वचस्तस्य भगवान् प्रपितामहः।
होतुर्व्यतिक्रमं ज्ञात्वा बभाषे रविनन्दनम्॥ १९

પ્રપિતામહ ભગવાન વસિષ્ઠ તે મનુનું તે (પૂર્વોક્ત) વચન સાંભળીને હોતાનો વિપરીત આચાર જાણી લઈ રવિનંદન શ્રાદ્ધદેવ મનુને કહેવા લાગ્યા.॥ ૧૯॥

प्रपितामहो वसिष्ठः ॥ १९ ॥

वंशीधरी—मनोः पिता सूर्यः, पितामहः कश्यपः, प्रपितामहः मरीचिः, वशिष्ठस्य ब्रह्मपुत्रत्वेन मरीचिभ्रातृत्वात्प्रपितामहत्वम्।

यद्वा—शुकस्य पिता व्यासः, पितामहः पराशरः, प्रपितामहश्शक्तिस्तत्पिता वशिष्ठोऽस्ति।

'પ્રપિતામહઃ' પ્રપિતામહ વસિષ્ઠ મુનિ ॥ ૧૯ ॥

શ્રાદ્ધદેવ વૈવસ્વત મનુના પિતા વિવસ્વાન સૂર્ય, પિતામહ કશ્યપ ઋષિ, પ્રપિતામહ મરીચિ ઋષિ. વસિષ્ઠ બ્રહ્માજીના પુત્ર હોવાથી અને મરીચિના ભાઈ હોવાથી મનુમહારાજના પ્રપિતામહ થાય.

અથવા શુકદેવજીના પિતા વ્યાસજી, પિતામહ પરાશર ઋષિ, પ્રપિતામહ શક્તિ, અને તે શક્તિના પિતા વસિષ્ઠ ઋષિ છે. આથી વસિષ્ઠ ઋષિ શુકદેવજીના પ્રપિતામહના પણ પિતા થાય.

एतत् संकल्पवैषम्यं होतुस्ते व्यभिचारतः।
तथापि साधयिष्ये ते सुप्रजास्त्वं स्वतेजसा॥ २०

॥ २० ॥

આ સંકલ્પની વિષમતા આપના હોતાના વિપરીત આચારને કારણે થઈ છે. તેમ છતાં મારા પોતાના તેજના પ્રભાવથી આપને શ્રેષ્ઠ સંતાન થાય તેમ હું સિદ્ધ કરીશ. ॥ ૨૦ ॥ ૨૦ ॥

एवं व्यवसितो राजन् भगवान् स महायशाः।
अस्तौषीदादिपुरुषमिलायाः पुंस्त्वकाम्यया॥ २१

॥ २१ ॥

હે રાજા પરીક્ષિત, આ પ્રમાણે નિશ્ચય કરી મહાયશસ્વી ભગવાન વસિષ્ઠે ઈલાને પુરુષ બનાવવાની ઈચ્છાથી આદિપુરુષ ભગવાન શ્રીહરિની સ્તુતિ કરી. ॥ ૨૧ ॥ ૨૧ ॥

तस्मै कामवरं तुष्टो भगवान् हरिरीश्वरः।
ददाविलाभवत् तेन सुद्युम्नः पुरुषर्षभः॥ २२

॥ २२ ॥

સર્વશક્તિમાન ભગવાન શ્રીહરિએ પ્રસન્ન થઈ તેમને ઈચ્છિત વરદાન આપ્યું. તેનાથી (ભગવાનના વરદાનથી) ઈલા સુદ્યુમ્ન નામનો શ્રેષ્ઠ પુરુષ બની ગઈ. ॥ ૨૨ ॥ ૨૨ ॥

स एकदा महाराज विचरन् मृगयां वने।
वृतः कतिपयामात्यैरश्वमारुह्य सैन्धवम्॥ २३

॥ २३ ॥

प्रगृह्य रुचिरं चापं शरांश्च परमाद्भुतान्।
दंशितोऽनु मृगं वीरो जगाम दिशमुत्तराम्॥ २४

॥ २४ ॥

હે મહારાજ પરીક્ષિત, એક દિવસ કેટલાક પ્રધાનો સાથે સુંદર ધનુષ્ય અને પરમ અદ્‌ભુત બાણો લઈ, સિંધુદેશના ઘોડા પર સવાર થઈ વનમાં શિકાર કરવા માટે વિચરતો તે કવચધારી વીર સુદ્યુમ્ન મૃગનો પીછો કરતો ઉત્તર દિશામાં જઈ ચઢ્યો. ॥ ૨૩ ॥ ૨૪ ॥ ૨૩ ॥ ૨૪ ॥

स कुमारो वनं मेरोरधस्तात् प्रविवेश ह।
यत्रास्ते भगवान् शर्वो रममाणः सहोमया॥ २५

॥ २५ ॥

જ્યાં ભગવાન શંકર ઉમા સાથે રમણ કરતા બિરાજે છે, ત્યાં મેરુ પર્વતની નીચે (તળેટીમાં) આવેલા વનમાં તે કુમાર સુદ્યુમ્ન પ્રવેશ્યો. ॥ ૨૫ ॥ ૨૫ ॥

तस्मिन् प्रविष्ट एवासौ सुद्युम्नः परवीरहा।
अपश्यत् स्त्रियमात्मानमश्वं च वडवां नृप॥ २६
॥ २६ ॥

હે નૃપ, શત્રુવીરોનો નાશ કરનારો એ સુદ્યુમ્ન તે વનમાં પ્રવેશ્યો ત્યારે તેણે પોતાને સ્ત્રી થયેલો અને ઘોડાને ઘોડી બનેલો જોયા.॥ ૨૬ ॥ ૨૬ ॥

तथा तदनुगाः सर्वे आत्मलिङ्गविपर्ययम्।
दृष्ट्वा विमनसोऽभूवन् वीक्षमाणाः परस्परम्॥ २७
॥ २७ ॥

વળી, તેની પાછળ ગયેલા સર્વ સેવકો પણ પોતાનું લિંગપરિવર્તન જોઈ એકબીજાનું મ્હોં વકાસતા દુઃખી થઈ ગયા.॥ ૨૭ ॥ ૨૭ ॥

राजोवाच

कथमेवंगुणो देशः केन वा भगवन् कृतः।
प्रश्नमेनं समाचक्ष्व परं कौतूहलं हि नः॥ २८
॥ २८ ॥

રાજા પરીક્ષિત બોલ્યા – હે ભગવાન, (એ) સ્થળ આવા (વિચિત્ર) ગુણવાળું કેવી રીતે થયું? આવું કોના વડે કરવામાં આવ્યું? આ પ્રશ્નનું આપ સમાધાન કરો. (તે માટે) અમને ઘણું જ આશ્ચર્ય થાય છે!॥ ૨૮ ॥ ૨૮ ॥

श्रीशुक उवाच

एकदा गिरिशं द्रष्टुमृषयस्तत्र सुव्रताः।
दिशो वितिमिराभासाः कुर्वन्तः समुपागमन्॥ २९

विगतं तिमिरमाभासः प्रकाशश्चान्यस्य यासु तथाभूता दिशः कुर्वन्तः॥ २९ ॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – એક દિવસ (પોતાના તેજથી) દિશાઓને અંધકારરહિત કરતા અને (અન્ય પદાર્થોના) પ્રકાશને દૂર કરતા શ્રેષ્ઠ વ્રતધારી ઋષિઓ ભગવાન શંકરનાં દર્શન કરવા તે વનમાં આવી ચઢ્યા.॥ ૨૯ ॥

દૂર થયો છે અંધકાર તથા અન્ય પદાર્થોનો '**आभासः**' પ્રકાશ જેમાં તેવી દિશાઓને કરતા ઋષિઓ॥ ૨૯ ॥

तान् विलोक्याम्बिका देवी विवासा व्रीडिता भृशम्।
भर्तुरङ्कात् समुत्थाय नीवीमाश्वथ पर्यधात्॥
॥ ३०॥ ३० ॥

તેમને જોઈ અંબિકાદેવી સારી રીતે વસ્ત્ર પરિધાન કરેલાં ન હોવાને કારણે અત્યંત લજ્જિત થયાં અને પતિના અંકમાંથી ઊઠી તરત જ વસ્ત્ર સારી રીતે પરિધાન કરી લીધું.॥ ૩૦ ॥ ૩૦ ॥

ऋषयोऽपि तयोर्वीक्ष्य प्रसङ्गं रममाणयोः।
निवृत्ताः प्रययुस्तस्मान्नरनारायणाश्रमम्॥ ३१

प्रसङ्गं रत्यभिनिवेशम्। स्त्रीप्रसङ्गदर्शन–कलुषितमनसः सन्तस्तत्प्रसङ्गशून्यं नरनारायणाश्रमं ययुः॥ ३१ ॥

ઋષિઓ પણ રમણ કરતાં તે બંને (શંકર-પાર્વતી)નો રતિ-અભિલાષ જોઈ ત્યાંથી પાછા ફર્યા અને નર-નારાયણના આશ્રમમાં ગયા.॥ ૩૧ ॥

'**प्रसङ्गम्**' રતિ-અભિલાષ–સ્ત્રીસંગના દર્શનથી કલુષિત મનવાળા થયા હોઈ સ્ત્રીની આસક્તિ ન હોય તેવા નર-નારાયણના આશ્રમમાં ગયા.॥ ૩૨ ॥

तदिदं भगवानाह प्रियायाः प्रियकाम्यया।
स्थानं यः प्रविशेदेतत् स वै योषिद् भवेदिति॥ ३२
॥ ३२ ॥

ત્યારે ભગવાન શંકરે પ્રિયા પાર્વતીનું પ્રિય કરવાની ઈચ્છાથી આ પ્રમાણે કહ્યું, 'જે પુરુષ આ સ્થાનમાં પ્રવેશ કરે તે સ્ત્રી થઈ જાય.' ॥ ૩૨ ॥ ૩૨ ॥

प्रासङ्गिकमुक्त्वा प्रस्तुतमनुवर्णयति—

तत ऊर्ध्वं वनं तद् वै पुरुषा वर्जयन्ति हि।
सा चानुचरसंयुक्ता विचचार वनाद् वनम्॥ ३३

अनुचरीसंयुक्तेति वक्तव्ये भूतपूर्वगत्या पुंस्त्वनिर्देशः ॥ ३३ ॥

अथ तामाश्रमाभ्याशे चरन्तीं प्रमदोत्तमाम्।
स्त्रीभिः परिवृतां वीक्ष्य चकमे भगवान् बुधः ॥ ३४
॥ ३४ ॥

सापि तं चकमे सुभ्रूः सोमराजसुतं पतिम्।
स तस्यां जनयामास पुरूरवसमात्मजम्॥ ३५
॥ ३५ ॥

एवं स्त्रीत्वमनुप्राप्तः सुद्युम्नो मानवो नृपः।
सस्मार स्वकुलाचार्यं वसिष्ठमिति शुश्रुम॥ ३६
॥ ३६ ॥

स तस्य तां दशां दृष्ट्वा कृपया भृशपीडितः।
सुद्युम्नस्याशयन् पुंस्त्वमुपाधावत शङ्करम्॥ ३७

आशयन्निच्छन्॥ ३७॥

तुष्टस्तस्मै स भगवानृषये प्रियमावहन्।
स्वां च वाचमृतां कुर्वन्निदमाह विशाम्पते॥ ३८
॥ ३८ ॥

मासं पुमान् स भविता मासं स्त्री तव गोत्रजः।
इत्थं व्यवस्थया कामं सुद्युम्नोऽवतु मेदिनीम्॥ ३९
॥ ३९ ॥

પ્રસંગોપાત્ત ચર્ચા કરી પ્રસ્તુત વિષયનું વર્ણન કરે છે—

ત્યારથી પુરુષો તે વનમાં જવાનું ત્યજે છે. (હવે જે સુદ્યુમ્ન સ્ત્રી થઈ ગયો હતો,) તે (સ્ત્રી બનેલા) અનુચરો સાથે એક વનમાંથી બીજા વનમાં વિચરવા લાગ્યો.॥ ૩૩॥

અનુચરીઓ સાથે– એમ કહેવાને બદલે અનુચરો સાથે– એમ જે કહ્યું છે, તે ભૂતપૂર્વ જાતિને કારણે પુંસ્ત્વનો નિર્દેશ છે.॥ ૩૩॥

હવે ભગવાન બુધે (પોતાના) આશ્રમની પાસે ફરતી સ્ત્રીઓથી વીંટળાયેલી તે ઉત્તમ સ્ત્રીને જોઈને તેની સાથે રમણ કરવાની ઈચ્છા કરી.॥ ૩૪॥ ૩૪॥

સુંદર ભ્રૂકુટિવાળી તેણે પણ ચન્દ્રકુમાર બુધને પતિ તરીકે ઈચ્છ્યો. તે બુધ ભગવાને તે સ્ત્રીમાં પુત્ર પુરૂરવાને ઉત્પન્ન કર્યો.॥ ૩૫॥ ૩૫॥

આમ મનુપુત્ર રાજા સુદ્યુમ્ન સ્ત્રીત્વને પામ્યો હતો. (અને તેમાંથી મુક્ત થવા તેણે) પોતાના કુળના આચાર્ય વસિષ્ઠ મુનિનું સ્મરણ કર્યું હતું, એમ અમે સાંભળ્યું છે.॥ ૩૬॥ ૩૬॥

તે (સુદ્યુમ્ન)ની તે દશા જોઈને દયા આવવાથી ભારે દુ:ખી થયેલા અને સુદ્યુમ્નનું પુરુષત્વ (પ્રાપ્ત કરાવવા) ઈચ્છતા તે મુનિએ ભગવાન શંકરની સ્તુતિ કરી.॥ ૩૭॥

'आशयन्' ઈચ્છતા॥ ૩૭॥

હે પ્રજાપતિ (રાજા), (સ્તુતિથી) પ્રસન્ન થયેલા તે ભગવાન શંકરે તે મુનિનું પ્રિય કરતાં અને પોતાની વાણીને સત્ય કરતાં આ પ્રમાણે કહ્યું:॥ ૩૮॥ ૩૮॥

શિષ્ય તરીકે સ્વીકારેલો તમારો (આ સુદ્યુમ્ન) એક મહિનો પુરુષ અને એક મહિનો સ્ત્રી બનશે. આવી વ્યવસ્થાથી ભલે તે પૃથ્વીનું પાલન કરે!॥ ૩૯॥ ૩૯॥

आचार्यानुग्रहात् कामं लब्ध्वा पुंस्त्वं व्यवस्थया।
पालयामास जगतीं नाभ्यनन्दन् स्म तं प्रजाः॥
॥ ४० ॥ ॥ ४० ॥

આમ, કુલાચાર્ય વસિષ્ઠજીના અનુગ્રહથી આવી વ્યવસ્થા દ્વારા પુરુષત્વ પ્રાપ્ત કરી તેણે પૃથ્વીનું પાલન કર્યું, (પરંતુ) પ્રજાએ તેને પસંદ કર્યો નહીં.॥ ૪૦॥

नाभ्यनन्दन्, स्त्रीत्वे लज्जया मासं मासं निलीयावस्थानात्॥ ४०॥

સ્ત્રી તરીકે લજ્જાથી મહિને મહિને સંતાઈને રહેવાને કારણે પ્રજાએ તેને પસંદ કર્યો નહીં.॥ ૪૦॥

तस्योत्कलो गयो राजन् विमलश्च सुतास्त्रयः।
दक्षिणापथराजानो बभूवुर्धर्मवत्सलाः॥ ४१
॥ ४१ ॥

હે રાજા, તેને ઉત્કલ, ગય અને વિમલ– એમ ત્રણ પુત્રો થયા. તેઓ દક્ષિણ દેશના ધર્મપ્રેમી રાજાઓ થયા.॥ ૪૧॥ ૪૧॥

ततः परिणते काले प्रतिष्ठानपतिः प्रभुः।
पुरूरवस उत्सृज्य गां पुत्राय गतो वनम्॥ ४२
॥ ४२ ॥

ત્યાર પછી કેટલાક કાળ વ્યતીત થતાં પ્રતિષ્ઠાનપુરના અધિપતિ રાજા સુદ્યુમ્ન પુત્ર પુરૂરવાને પૃથ્વી સોંપી (સ્વયં તપ કરવા) વનમાં ગયો.॥ ૪૨॥ ૪૨॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे इलोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः॥ १॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

*****

अथ द्वितीयोऽध्यायः

મનુના પૃષધ્ર વગેરે પાંચ પુત્રોનો વંશ

द्वितीये मनुपुत्राणां द्वावपुत्रौ विरागतः।
करूषकादिपञ्चानां वंशानाह लघुक्रमात्॥ १॥

મનુપુત્રોમાંના બે પુત્રો વૈરાગ્યને કારણે પુત્રરહિત હતા તથા કરૂષક વગેરે પાંચ પુત્રોના વંશોનું વર્ણન નાના પુત્રના ક્રમથી બીજા અધ્યાયમાં કહે છે.॥ ૧॥

श्रीशुक उवाच

एवं गतेऽथ सुद्युम्ने मनुर्वैवस्वतः सुते।
पुत्रकामस्तपस्तेपे यमुनायां शतं समाः॥ १

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — આમ, પુત્ર સુદ્યુમ્ન વનમાં ગયો ત્યારે પુત્રની ઈચ્છાવાળા મનુ મહારાજે યમુનાકિનારે સો વર્ષ સુધી તપ કર્યું.॥ ૧॥

वैवस्वतो मनुः श्राद्धदेवः॥ १॥

શ્રાદ્ધદેવ વૈવસ્વત મનુ॥ ૧॥

ततोऽयजन्मनुर्देवमपत्यार्थं हरिं प्रभुम्।
इक्ष्वाकुपूर्वजान् पुत्राँल्लेभे स्वसदृशान् दश॥ २

ત્યાં મનુએ સર્વશક્તિમાન ભગવાન શ્રીહરિનું પૂજન કર્યું અને ઈક્ષ્વાકુ જેમનામાં સૌ પ્રથમ જન્મ્યા હતા તેવા પોતાના જેવા દસ પુત્રો પ્રાપ્ત કર્યા.॥ ૨॥

इक्ष्वाकुः पूर्वजो येषां तान्दश पुत्रान् लेभे॥ २॥

ઈક્ષ્વાકુ જેમનામાં પૂર્વે જન્મ્યા હતા તેવા દસ પુત્રો પ્રાપ્ત કર્યા.॥ ૨॥

तत्र पृषध्रस्य वंशो नाभवदिति सहेतुकमाह— **पृषध्रस्त्वित्यादिना।**

पृषध्रस्तु मनोः पुत्रो गोपालो गुरुणा कृतः।
पालयामास गा यत्तो रात्र्यां वीरासनव्रतः॥ ३

ते दस पुत्रोमां पृषध्रनो वंश न थयो तेनुं कारण जणावीने कहे छे— **'पृषध्रः तु'** वगेरे द्वारा.

मनुनो पुत्र पृषध्र गुरु द्वारा गायोनो पालक बनाववामां आव्यो. रात्रे सावधान थई, वीरासनव्रत धारण करी ते गायोनुं रक्षण करतो. ॥ ३ ॥

कविः कनीयानित्यतः प्राक्तनेन ग्रन्थेन।

तेमनाथी नाना कवि (श्लोक ९/२/१५) हवे पछीना ग्रंथ द्वारा (वर्णवाया छे.)

खड्गपाणेः सततस्तिष्ठतो जागरणं वीरासनं तदेव व्रतं यस्य। यत्तोऽवहितः सन्। गाः पालयामास॥ ३॥

तलवार हाथमां लई ऊभा रहीने जागरण करवुं ते वीरासन, ते ज व्रत छे जेनुं. **'यत्तः'** सावधान थई (पृषध्र) गायोनुं पालन (रक्षण) करतो हतो. ॥ ३ ॥

एकदा प्राविशद् गोष्ठं शार्दूलो निशि वर्षति।
शयाना गाव उत्थाय भीतास्ता बभ्रमुर्व्रजे॥ ४

एक समये रात्रे वरसाद पडतो हतो त्यारे एक वाघ (गायोना) गमाणमां पेठो. तेथी सूतेली गायो ऊठीने, भयभीत थई वाडामां दोडादोड करवा लागी. ॥ ४ ॥

शार्दूलो व्याघ्रः॥ ४॥

'शार्दूलः' वाघ ॥ ४ ॥

एकां जग्राह बलवान् सा चुक्रोश भयातुरा।
तस्यास्तत् क्रन्दितं श्रुत्वा पृषध्रोऽभिससार ह॥ ५
॥ ५ ॥

बळवान वाघे एक गायने पकडी (एटले) ते भयथी दुःखी थई भांभरवा मांडी. तेनुं ते आक्रंद सांभळीने पृषध्र तेना तरफ धस्यो. ॥ ५ ॥ ५ ॥

खड्गमादाय तरसा प्रलीनोडुगणे निशि।
अजानन्नहनद् बभ्रोः शिरः शार्दूलशङ्कया॥ ६

(मेघली रात होवाथी) जेमां नक्षत्रो पण ढंकाई गयां हतां तेवी रात्रिना समये तेणे वाघनी शंकाथी तलवार लई वेगथी कपिला गायनुं मस्तक अजाणतां कापी नाख्युं. ॥ ६ ॥

प्रलीना उडुगणा यस्मिंस्तस्मिन्समये। बभ्रोः कपिलाया गोः॥ ६॥

ढंकाई गयां हतां नक्षत्रो जेमां ते समये **'बभ्रोः'** कपिला गायनुं ॥ ६ ॥

व्याघ्रोऽपि वृक्णश्रवणो निस्त्रिंशाग्राहतस्ततः।
निश्चक्राम भृशं भीतो रक्तं पथि समुत्सृजन्॥ ७

तलवारना अग्रभाग (धारी)थी घवायेलो अने तेथी कपायेला कानवाळो वाघ पण अत्यंत भयभीत थई, मार्गमां लोही नीतरतो त्यांथी भागी छूट्यो. ॥ ७ ॥

गां कामतो न जघानेति ख्यापयितुं वृक्णश्रवण इत्याद्युक्तम्॥ ७॥

गायने जाणी जोईने मारी न हती ते कहेवा माटे कान कपायेलो वाघ वगेरे कहेवामां आव्युं छे. ॥ ७ ॥

मन्यमानो हतं व्याघ्रं पृषध्रः परवीरहा।
अद्राक्षीत् स्वहतां बभ्रुं व्युष्टायां निशि दुःखितः ॥ ८

વાઘને હણાયેલો માનતા શત્રુવીરઘાતી પૃષધ્રે (રાત વીતી જતાં) પ્રભાતે પોતે હણેલી કપિલા ગાયને જોઈ અને (ભારે) દુઃખી થયો.॥૮॥

व्युष्टायां प्रभातायाम्॥८॥

'व्युष्टायाम्' પ્રભાતવાળી રાત્રિમાં ॥૮॥

तं शशाप कुलाचार्यः कृतागसमकामतः।
न क्षत्रबन्धुः शूद्रस्त्वं कर्मणा भवितामुना॥ ९

અનિચ્છાએ અપરાધ કરેલા તેને કુલાચાર્ય વસિષ્ઠે શાપ આપ્યો. આ કર્મથી તું અધમ ક્ષત્રિય પણ નહીં રહે, પરંતુ શૂદ્ર બનીશ.॥૯॥

क्षत्रबन्धुरपि त्वं न भविता, अपि तु शूद्रो भवितेति॥ ९ ॥

અધમ ક્ષત્રિય પણ નહીં રહે, પરંતુ શૂદ્ર બનીશ.॥૯॥

एवं शप्तस्तु गुरुणा प्रत्यगृह्णात् कृताञ्जलिः।
अधारयद् व्रतं वीर ऊर्ध्वरेता मुनिप्रियम्॥ १०

॥ १० ॥

આમ, ગુરુ દ્વારા શાપ પામેલા વીર પૃષધ્રે હાથ જોડીને તેનો સ્વીકાર કર્યો અને ઊર્ધ્વરેતા થઈ મુનિઓને પ્રિય એવું (ભગવદ્ભજનાત્મક) બ્રહ્મચર્યવ્રત ધારણ કર્યું.॥૧૦॥૧૦॥

वासुदेवे भगवति सर्वात्मनि परेऽमले।
एकान्तित्वं गतो भक्त्या सर्वभूतसुहृत् समः॥ ११

॥ ११ ॥

તે સર્વ પ્રાણીઓનો મિત્ર, સર્વ પ્રત્યે સમાન ભાવ રાખનાર થઈ સર્વથી પર, વિશુદ્ધ અને સર્વના આત્મા ભગવાન વાસુદેવમાં ભક્તિથી એકચિત્ત થઈ ગયો. (અન્ય ચિંતનથી રહિત થઈ એકચિત્તત્વને પ્રાપ્ત થઈ ગયો.)॥૧૧॥૧૧॥

विमुक्तसङ्गः शान्तात्मा संयताक्षोऽपरिग्रहः।
यदृच्छयोपपन्नेन कल्पयन् वृत्तिमात्मनः॥ १२

॥ १२ ॥

(ભોગોમાંથી) જેની આસક્તિ છૂટી ગઈ છે તેવો, (રાગાદિરહિત) શાન્તચિત્તવાળો, જિતેન્દ્રિય, અપરિગ્રહી, એવો તે દૈવેચ્છાથી પ્રાપ્ત થાય તેનાથી પોતાનો જીવનનિર્વાહ કરતો,॥૧૨॥૧૨॥

आत्मन्यात्मानमाधाय ज्ञानतृप्तः समाहितः।
विचचार महीमेतां जडान्धबधिराकृतिः॥ १३

॥ १३ ॥

પરમાત્મામાં ચિત્ત સ્થાપી, આત્મજ્ઞાનથી સંતુષ્ટ થઈ સમાધિસ્થ રહેતો અને આ પૃથ્વી ઉપર જડ, આંધળા અને બહેરા જેવા વેશવાળો થઈ વિચરણ કરતો.॥૧૩॥૧૩॥

एवंवृत्तो वनं गत्वा दृष्ट्वा दावाग्निमुत्थितम्।
तेनोपयुक्तकरणो ब्रह्म प्राप परं मुनिः॥ १४

આ પ્રકારે જીવન વ્યતીત કરતો (મનનશીલ પૃષધ્ર) વનમાં જઈ, પ્રજ્વલિત દાવાગ્નિ જોઈને, દાવાગ્નિથી બળી ગયેલા દેહવાળો તે મૌન થઈ પરબ્રહ્મને પામ્યો.॥૧૪॥

उपयुक्तकरणो दग्धदेहः॥ १४॥

'उपयुक्तकरणः' બળી ગઈ છે ઇન્દ્રિયો જેની તેવો બળેલા દેહવાળો॥૧૪॥

कवेरपि वंशो नाभवदित्याह—**कविरिति**।

कविः कनीयान् विषयेषु निःस्पृहो
विसृज्य राज्यं सह बन्धुभिर्वनम्।
निवेश्य चित्ते पुरुषं स्वरोचिषं
विवेश कैशोरवयाः परं गतः॥ १५

बन्धुभिः सह राज्यं विसृज्य॥ १५॥

करूषान्मानवादासन् कारूषाः क्षत्रजातयः।
उत्तरापथगोप्तारो ब्रह्मण्या धर्मवत्सलाः॥ १६

॥ १६॥

धृष्टाद् धार्ष्टमभूत् क्षत्रं ब्रह्मभूयं गतं क्षितौ।
नृगस्य वंशः सुमतिर्भूतज्योतिस्ततो वसुः॥ १७

ब्रह्मभूयं ब्राह्मणत्वम्। नृगस्य वंशः पुत्रः सुमतिस्ततो भूतज्योतिस्ततो वसुः॥ १७॥

वीर.—ब्रह्मभूयमपहतपाप्मत्वादिगुणाष्टकसम्पत्तिः।

वसोः प्रतीकस्तत्पुत्र ओघवानोघवत्पिता।
कन्या चोघवती नाम सुदर्शन उवाह ताम्॥ १८

ओघवतः पिता, तत्पुत्रोऽप्योघवानेवेत्यर्थः ॥ १८॥

तदेवं त्रिभिः श्लोकैः करूषधृष्टनृगाणां वंशा उक्ताः, नरिष्यन्तस्य वंशमाह—**चित्रसेन इति** सार्धैस्त्रिभिः—

કવિનો પણ વંશ ન થયો, એમ કહે છે— ‘**कविः इति।**’

વિષયો પ્રત્યે નિઃસ્પૃહ એવા પૃષધ્રથી નાના, કિશોરવયના કવિએ પોતાના બંધુઓ સાથે રાજ્ય છોડીને વનમાં પ્રવેશ કર્યો અને સ્વયંપ્રકાશ પરમ પુરુષને (પોતાના) ચિત્તમાં સ્થાપીને તે પરમ પદને પામ્યો.॥ ૧૫॥

બંધુઓ સાથે રાજ્ય છોડીને॥ ૧૫॥

મનુપુત્ર કરૂષથી ક્ષત્રિયજાતિના કારૂષો ઉત્પન્ન થયા. તેઓ ઉત્તરાપથના રક્ષકો, બ્રાહ્મણભક્તો અને ધર્મપ્રેમીઓ હતા.॥ ૧૬॥ ૧૬॥

(મનુના) ધૃષ્ટ (નામના પુત્ર)થી ધાર્ષ્ટ નામના ક્ષત્રિયો થયા, પરંતુ પૃથ્વી પર તેઓ (આ શરીરથી જ) બ્રાહ્મણ બની ગયા. (મનુના) નૃગ નામના પુત્રનો પુત્ર સુમતિ, તેનાથી ભૂતજ્યોતિ, તેનાથી વસુ થયો.॥ ૧૭॥

‘**ब्रह्मभूयम्**’ બ્રાહ્મણપણું— નૃગનો ‘**वंशः**’ પુત્ર સુમતિ, તેનાથી ભૂતજ્યોતિ, તેનાથી વસુ ॥ ૧૭॥

(છાં.ઉપ.૮/૭/૧) પાપરહિત વગેરે (જરા-મૃત્યુથી રહિત, શોકરહિત, ભૂખ-તરસરહિત, સત્યકામ, સત્યસંકલ્પ– એમ) આઠ ગુણોની સંપત્તિ એટલે બ્રાહ્મણત્વ. આ લોકમાં પરબ્રહ્મની ઉપાસનાથી તે ભાવ કરવો, એમ સૂત્રનો ભાવાર્થ છે.(બ્ર.સૂ.૪/૪/૫)

વસુનો પ્રતીક, તેનો પુત્ર ઓઘવાન જ ઓઘવાનનો પિતા હતો (અર્થાત્ ઓઘવાનનો પુત્ર પણ ઓઘવાન હતો), તેની ઓઘવતી નામની કન્યા હતી અને સુદર્શન તેને પરણ્યો હતો.॥ ૧૮॥

ઓઘવાનનો પિતા, તેનો પુત્ર પણ ઓઘવાન જ હતો, એમ અર્થ છે.॥ ૧૮॥

તે અનુસાર ત્રણ શ્લોકોથી કરૂષ, ધૃષ્ટ અને નૃગના વંશો કહેવામાં આવ્યા. (હવે) નરિષ્યંતનો વંશ સાડાત્રણ શ્લોકો દ્વારા કહે છે— ‘**चित्रसेनः इति।**’

चित्रसेनो नरिष्यन्तादृक्षस्तस्य सुतोऽभवत्।
तस्य मीढ्वांस्ततः कूर्च इन्द्रसेनस्तु तत्सुतः॥ १९

तत इत्यादेर्यत्राधिक्यं स्यात्तत्रानन्तर्ये तत इत्यादिपदं व्याख्येयम्। यत्र तु न्यूनत्वं तत्र पूर्वस्य परस्य वानुषङ्गादिभिर्व्याख्येयम्॥ १९॥

(મનુના) નરિષ્યન્ત (નામના પુત્ર)થી ચિત્રસેન અને તેનો પુત્ર દક્ષ થયો હતો. તેનો મીઢ્વાન, તેનાથી કૂર્ચ અને તેનો પુત્ર ઈન્દ્રસેન થયો.॥ ૧૯॥

'**ततः**' વગેરેની જ્યાં અધિકતા છે ત્યાં '**ततः**' વગેરે શબ્દની પછી અર્થ પ્રમાણે વ્યાખ્યા કરવી જોઈએ, પરંતુ જ્યાં '**ततः**' શબ્દની ન્યૂનતા છે ત્યાં પૂર્વના કે પછીના સંબંધાદિ દ્વારા વ્યાખ્યા કરવી જોઈએ.।।૧૯।।

वीतिहोत्रस्त्विन्द्रसेनात् तस्य सत्यश्रवा अभूत्।
उरुश्रवाः सुतस्तस्य देवदत्तस्ततोऽभवत्॥ २०

॥ २०॥

ઈન્દ્રસેનથી વીતિહોત્ર અને તેનો સત્યશ્રવા થયો. તેનો ઉરુશ્રવા અને તેનાથી દેવદત્ત થયો.॥ ૨૦॥

ततोऽग्निवेश्यो भगवानग्निः स्वयमभूत् सुतः।
कानीन इति विख्यातो जातूकर्ण्यो महानृषिः॥ २१

अग्निवेश्य एव कानीन इति जातूकर्ण्य इति च विख्यातः॥ २१॥

તે દેવદત્તથી અગ્નિવેશ્ય નામે ભગવાન અગ્નિ પોતે જ પુત્ર થયા હતા. કાનીન નામથી વિખ્યાત થયેલા તે જાતૂકર્ણ્ય નામના મહાન ઋષિ થયા.॥ ૨૧॥

અગ્નિવેશ્ય જ કાનીન તથા જાતૂકર્ણ્ય નામથી વિખ્યાત થયા.॥ ૨૧॥

ततो ब्रह्मकुलं जातमाग्निवेश्यायनं नृप।
नरिष्यन्तान्वयः प्रोक्तो दिष्टवंशमतः शृणु॥ २२

॥ २२॥

હે રાજા, તે અગ્નિવેશ્યથી જ અગ્નિવેશ્યાયન નામનું બ્રાહ્મણકુળ થયું છે. (આ પ્રમાણે મેં તમને) નરિષ્યન્તનો વંશ કહ્યો. હવે (મનુપુત્ર) દિષ્ટનો વંશ સાંભળો.॥ ૨૨॥ ૨૨॥

नाभागो दिष्टपुत्रोऽन्यः कर्मणा वैश्यतां गतः।
भलन्दनः सुतस्तस्य वत्सप्रीतिर्भलन्दनात्॥ २३

दिष्टस्य पुत्रो नाभागो वक्ष्यमाणनाभागादन्य इति भ्रान्तिव्युदासार्थमनुवादमात्रम्॥ २३॥

દિષ્ટનો પુત્ર નાભાગ (ખેતી, પશુપાલન, વ્યાપાર વગેરે) અન્ય કર્મ કરવાથી વૈશ્યત્વને પામ્યો. તેનો પુત્ર ભલંદન અને ભલંદનથી વત્સપ્રીતિ થયો.॥ ૨૩॥

દિષ્ટનો પુત્ર નાભાગ, આગળ કહેવામાં આવનાર (શર્યાતિના પુત્ર) નાભાગથી જુદો છે. ભ્રાન્તિ દૂર કરવા કહેલી વાત જ ફરીથી કહેવાઈ છે.॥ ૨૩॥

वत्सप्रीतेः सुतः प्रांशुस्तत्सुतं प्रमतिं विदुः।
खनित्रः प्रमतेस्तस्माच्चाक्षुषोऽथ विविंशतिः॥ २४

॥ २४॥

વત્સપ્રીતિનો પુત્ર પ્રાંશુ થયો, તેનો પુત્ર પ્રમતિ, પ્રમતિનો ખનિત્ર, તેનાથી ચાક્ષુષ અને ચાક્ષુષનો વિવિંશતિ થયો.॥ ૨૪॥ ૨૪॥

विविंशतिसुतो रम्भः खनिनेत्रोऽस्य धार्मिकः।
करन्धमो महाराज तस्यासीदात्मजो नृप॥ २५

॥ २५॥

વિવિંશતિનો પુત્ર રંભ થયો. આ રંભનો પુત્ર ખનિનેત્ર ધાર્મિક થયો. હે રાજા, હે મહારાજ (પરીક્ષિત), તે ખનિનેત્રનો પુત્ર કરંધમ થયો. ॥ ૨૫॥ ૨૫॥

तस्यावीक्षित् सुतो यस्य मरुत्तश्चक्रवर्त्यभूत्।
संवर्तोऽयाजयद् यं वै महायोग्यङ्गिरःसुतः ॥ २६

अङ्गिरसः सुतो महायोगी संवर्तो यमयाजयत्स मरुत्तः ॥ २६ ॥

वीर.—चक्रवर्ती कृत्स्नभूमंडलरूपं चक्रं यस्य वशे वर्तते स चक्रवर्ती।

मरुत्तस्य यथा यज्ञो न तथान्यस्य कश्चन।
सर्वं हिरण्मयं त्वासीद् यत् किञ्चिच्चास्य शोभनम् ॥ २७

अस्य यत्किंचित्पात्रादिकमस्ति तत्तु सर्वं हिरण्मयं शोभनमासीत्॥ २७॥

अमाद्यदिन्द्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः।
मरुतः परिवेष्टारो विश्वेदेवाः सभासदः ॥ २८

अमाद्यदहृष्यत्॥ २८॥

मरुत्तस्य दमः पुत्रस्तस्यासीद् राज्यवर्धनः।
सुधृतिस्तत्सुतो जज्ञे सौधृतेयो नरः सुतः ॥ २९

॥ २९ ॥

तत्सुतः केवलस्तस्माद् बन्धुमान् वेगवांस्ततः।
बन्धुस्तस्याभवद् यस्य तृणबिन्दुर्महीपतिः ॥ ३०

॥ ३० ॥

तं भेजेऽलम्बुषा देवी भजनीयगुणालयम्।
वराप्सरा यतः पुत्राः कन्या चेडविडाभवत्॥ ३१

यतो यस्यां तृणबिन्दोः पुत्रा अभवन्॥ ३१॥

तस्यामुत्पादयामास विश्रवा धनदं सुतम्।
प्रादाय विद्यां परमामृषिर्योगेश्वरात् पितुः ॥ ३२

॥ ३२ ॥

तानेवाह—**विशाल इति।**

તેનો પુત્ર આવીક્ષિત થયો, જેનો પુત્ર મરુત્ત ચક્રવર્તી બન્યો. અંગિરાપુત્ર મહાયોગી સંવર્તે જ જેની પાસે યજ્ઞ કરાવ્યો હતો॥ ૨૬॥

અંગિરાના પુત્ર મહાયોગી સંવર્તે જેને યજ્ઞ કરાવ્યો હતો તે મરુત્ત॥ ૨૬॥

સંપૂર્ણ ભૂમંડળરૂપ ચક્ર જેના વશમાં રહે છે તે ચક્રવર્તી છે.

મરુત્ત રાજાનો જેવો યજ્ઞ થયો હતો તેવો બીજા કોઈનો થયો નથી. વળી, આ યજ્ઞનું જે કંઈ હતું તે સર્વ સુવર્ણમય અને સુંદર હતું.॥ ૨૭॥

આ યજ્ઞનાં જે કાંઈ પાત્ર વગેરે હતાં, તે સર્વ સુવર્ણનાં અને સુંદર હતાં.॥ ૨૭॥

(આ યજ્ઞમાં) ઈન્દ્ર સોમપાન કરીને પ્રસન્ન થયો હતો અને બ્રાહ્મણો દક્ષિણા લઈને (પ્રસન્ન થયા હતા). મરુદ્ગણ પીરસણિયાઓ હતા અને વિશ્વેદેવો સભાસદો હતા.॥ ૨૮॥

‘**अमाद्यत्**’ (ઈન્દ્ર) પ્રસન્ન થયો હતો.॥ ૨૮॥

મરુત્તનો પુત્ર દમ, તેનો રાજ્યવર્ધન, તેનો પુત્ર સુધૃતિ અને સુધૃતિનો પુત્ર નર થયો.॥ ૨૯॥ ૨૯॥

તેનો પુત્ર કેવલ, તેનાથી બંધુમાન, તેનાથી વેગવાન અને તેનો પુત્ર બંધુ થયો, કે જેનો પુત્ર તૃણબિંદુ (પ્રસિદ્ધ) રાજા થયો.॥ ૩૦॥ ૩૦॥

સેવવા યોગ્ય ગુણોના ભંડારરૂપ તે તૃણબિંદુને દેવી અલમ્બુષા નામની શ્રેષ્ઠ અપ્સરાએ (પતિરૂપે) સેવ્યા હતા, જે અપ્સરામાં તૃણબિંદુને પુત્રો અને ઈડવિડા નામની કન્યા થઈ હતી.॥ ૩૧॥

‘**यतः**’ અર્થાત્ ‘**यस्याम्**’, જે અપ્સરામાં તે તૃણબિંદુને ‘**पुत्राः**’ પુત્રો થયા.॥ ૩૧॥

વિશ્રવા ઋષિએ યોગેશ્વર પિતા (પુલસ્ત્ય) પાસેથી શ્રેષ્ઠ વિદ્યા મેળવીને તે ઈડવિડામાં પુત્ર કુબેરને ઉત્પન્ન કર્યો હતો.॥ ૩૨॥ ૩૨॥

તે પુત્રોને વર્ણવે છે— ‘**विशालः इति।**’

विशालः शून्यबन्धुश्च धूम्रकेतुश्च तत्सुताः ।
विशालो वंशकृद् राजा वैशालीं निर्ममे पुरीम्॥ ३३

तस्य तृणबिन्दोः सुताः ॥ ३३ ॥

हेमचन्द्रः सुतस्तस्य धूम्राक्षस्तस्य चात्मजः ।
तत्पुत्रात् संयमादासीत् कृशाश्वः सहदेवजः ॥ ३४

सहदेवजः देवजेन सहितः। पाठान्तरे नामान्यत्वमात्रम्, अर्थस्तु स एव॥ ३४॥

कृशाश्वात् सोमदत्तोऽभूद् योऽश्वमेधैरिडस्पतिम्।
इष्ट्वा पुरुषमापाग्र्यां गतिं योगेश्वराश्रितः ॥
॥ ३५ ॥ ३५ ॥

सौमदत्तिस्तु सुमतिस्तत्सुतो जनमेजयः ।
एते वैशालभूपालास्तृणबिन्दोर्यशोधराः ॥ ३६

वैशालभूपाला विशालस्यान्वये जाताः ॥ ३६ ॥

તે તૃણબિંદુને વિશાલ, શૂન્યબંધુ અને ધૂમ્રકેતુ નામના ત્રણ પુત્રો હતા. વંશની વૃદ્ધિ કરનાર રાજા વિશાલે વૈશાલી નગરીનું નિર્માણ કર્યું હતું.॥ ૩૩॥

'तस्य' તે તૃણબિંદુના પુત્રો ॥ ૩૩ ॥

તે (વિશાલ)નો પુત્ર હેમચંદ્ર, તેનો ધૂમ્રાક્ષ તથા તે ધૂમ્રાક્ષના પુત્ર સંયમથી દેવજ સહિત કૃશાશ્વ (એમ બે પુત્રો) થયા.॥ ૩૪॥

'सहदेवजः' દેવજ સહિત– **'सहदेवकः'** અથવા **'सहदेवनः'** પાઠાન્તરમાં દેવક કે દેવન, એમ માત્ર નામ જ જુદાં છે, અર્થ તો એ જ છે.॥ ૩૪॥

કૃશાશ્વથી સોમદત્ત થયો, જેણે અશ્વમેધ યજ્ઞો કરીને યજ્ઞપતિ પરમાત્માનું યજન (પૂજન) કરી તથા યોગેશ્વરોના આશ્રિત થઈ શ્રેષ્ઠ ગતિ પ્રાપ્ત કરી.॥ ૩૫ ॥ ૩૫ ॥

સોમદત્તનો પુત્ર સુમતિ અને તેનો પુત્ર જનમેજય. આ વિશાલ વંશના રાજાઓ તૃણબિંદુની કીર્તિ વધારનારા થયા.॥ ૩૬ ॥

'वैशालभूपालाः' વિશાલના વંશમાં જન્મેલા રાજાઓ ॥ ૩૬ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां
भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

*****

अथ तृतीयोऽध्यायः

મહર્ષિ ચ્યવન અને સુકન્યાનું ચરિત્ર, રાજા શર્યાતિનો વંશ

तृतीये मनुपुत्रस्य शर्यातेः कीर्त्यतेऽन्वयः ।
यत्र सौकन्यमाख्यानं रैवतं च महाद्भुतम्॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच

शर्यातिर्मानवो राजा ब्रह्मिष्ठः स बभूव ह।
यो वा अङ्गिरसां सत्रे द्वितीयमह ऊचिवान्॥ १

ત્રીજા અધ્યાયમાં મનુપુત્ર શર્યાતિના વંશનું વર્ણન ગાવામાં આવે છે, જેમાં સુકન્યા અને રૈવતનું મહાઅદ્ભુત આખ્યાન છે.॥ ૧ ॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — મનુપુત્ર રાજા શર્યાતિ હતો. તે વેદના અર્થનું તત્ત્વ જાણનારો હતો, કે જેણે અંગિરાવંશી બ્રાહ્મણોના સત્રમાં બીજા દિવસે કરવામાં આવતું કર્મ જણાવ્યું હતું.

ब्रह्मिष्ठो वेदार्थतत्त्वज्ञः। तदेवाह—यो वा इति। द्वितीयमहो द्वितीयेऽह्नि क्रियमाणं कर्म ऊचिवानुवाच। तस्य वंशं—'उत्तानबर्हिरानर्तः' इत्यादिना वक्ष्यति॥ १॥

आदौ तावत्तत्कन्यावृत्तान्तमाह—**सुकन्या नामेत्यादिना।**

सुकन्या नाम तस्यासीत् कन्या कमललोचना।
तया सार्धं वनगतो ह्यगमच्च्यवनाश्रमम्॥ २
॥ २॥

सा सखीभिः परिवृता विचिन्वन्त्यङ्घ्रिपान् वने।
वल्मीकरन्ध्रे ददृशे खद्योते इव ज्योतिषी॥ ३
॥ ३॥

ते दैवचोदिता बाला ज्योतिषी कण्टकेन वै।
अविध्यन्मुग्धभावेन सुस्रावासृक् ततो बहु॥ ४
॥ ४॥

शकृन्मूत्रनिरोधोऽभूत् सैनिकानां च तत्क्षणात्।
राजर्षिस्तमुपालक्ष्य पुरुषान् विस्मितोऽब्रवीत्॥ ५
॥ ५॥

अप्यभद्रं न युष्माभिर्भार्गवस्य विचेष्टितम्।
व्यक्तं केनापि नस्तस्य कृतमाश्रमदूषणम्॥ ६

भार्गवस्य च्यवनस्य। अभद्रमपराधः॥ ६॥

वंशीधरी—व्यक्तम् निश्चितम्।

सुकन्या प्राह पितरं भीता किञ्चित् कृतं मया।
द्वे ज्योतिषी अजानन्त्या निर्भिन्ने कण्टकेन वै॥ ७
॥ ७॥

दुहितुस्तद् वचः श्रुत्वा शर्यातिर्जातसाध्वसः।
मुनिं प्रसादयामास वल्मीकान्तर्हितं शनैः॥ ८
॥ ८॥

'**ब्रह्मिष्ठः**' વેદના અર્થનું તત્ત્વ જાણનારો. તે જ કહે છે— '**यः वै इति।**' '**द्वितीयमहः**' બીજા દિવસે કરવામાં આવતું કર્મ '**ऊचिवान्**' જણાવ્યું હતું. તેનો વંશ '**उत्तानबर्हिरानर्तः**' વગેરે આ અધ્યાયનાં ૨૭મા શ્લોકથી કહેશે.॥ ૧॥

હવે પહેલાં કન્યાનો વૃત્તાન્ત જણાવે છે— '**सुकन्या नाम**' વગેરે દ્વારા.

તે રાજાને સુકન્યા નામની, કમળ જેવાં નેત્રોવાળી એક કન્યા હતી. તેની સાથે વનમાં ગયેલો તે રાજા ચ્યવન ઋષિના આશ્રમમાં જઈ ચઢ્યો.॥ ૨॥ ૨॥

સખીઓથી ઘેરાયેલી તેણે વનમાં વૃક્ષો નિરખતાં, (એક) રાફડાના બાકામાં બે આગિયા જેવી જ્યોતિઓ જોઈ.॥ ૩॥ ૩॥

દૈવથી પ્રેરાયેલી તે બાળાએ છોકરમતથી તે બંને ચળકતા પદાર્થોને કાંટાથી વીંધી નાખ્યા, એટલે તેમાંથી પુષ્કળ રક્ત વહેવા માંડ્યું.॥ ૪॥ ૪॥

તે જ ક્ષણે (રાજાના) સૈનિકોનાં મળમૂત્ર બંધ થઈ ગયાં. તે જોઈને આશ્ચર્ય પામેલા રાજર્ષિ શર્યાતિએ પોતાના માણસોને કહ્યું.॥ ૫॥ ૫॥

તમારામાંથી કોઈએ ભૃગુવંશી ચ્યવન ઋષિનો અપરાધ તો નથી કર્યો ને? આપણામાંના કોઈનાથી તો ચોક્કસ આશ્રમમાં અનર્થ થઈ ગયો હશે.॥ ૬॥

'**भार्गवस्य**' ભૃગુવંશી ચ્યવન ઋષિનો, '**अभद्रम्**' અપરાધ॥ ૬॥

'**व्यक्तम्**' નિશ્ચિત

ભય પામેલી સુકન્યાએ પિતાને કહ્યું કે મારાથી કંઈક અપરાધ થઈ ગયો છે. બે ચળકતા પદાર્થોને મેં કાંટાથી અજાણતાં વીંધી નાખ્યા છે.॥ ૭॥ ૭॥

પુત્રીનું તે વચન સાંભળીને જેમને ભય ઉત્પન્ન થયો તે શર્યાતિએ રાફડાની અંદર રહેલા મુનિને (સ્તોત્ર વગેરે દ્વારા) ધીમે ધીમે પ્રસન્ન કર્યા.॥ ૮॥ ૮॥

तदभिप्रायमाज्ञाय प्रादाद् दुहितरं मुनेः।
कृच्छ्रान्मुक्तस्तमामन्त्र्य पुरं प्रायात् समाहितः॥ ९

તે મુનિનો અભિપ્રાય જાણીને (રાજાએ) તેમને પુત્રી આપી દીધી (પરણાવી દીધી). (મળમૂત્ર બંધ થવાના) સંકટથી છૂટેલા રાજાએ સાવધાન થઈ તે મુનિની આજ્ઞા લઈ નગર તરફ પ્રયાણ કર્યું.॥ ૯॥

मुग्धेयं मम कन्या क्षन्तव्यं त्वयेत्युच्यमाने कति वर्षाण्यस्या विवाहः कृतो न वेत्यादि-वाक्यैस्तदभिप्रायं ज्ञात्वा तस्मै तां दुहितरं प्रादात्॥ ९॥

આ 'મારી કન્યા ભોળી છે. આપના દ્વારા ક્ષમા કરવા યોગ્ય છે.'– જ્યારે એમ કહેવામાં આવ્યું, ત્યારે 'તેને કેટલાં વર્ષ થયાં? તેનો વિવાહ થયો છે કે નહીં?' વગેરે વાક્યો દ્વારા તે મુનિનો અભિપ્રાય જાણી તેમને તે દીકરી આપી દીધી.॥ ૯॥

सुकन्या च्यवनं प्राप्य पतिं परमकोपनम्।
प्रीणयामास चित्तज्ञा अप्रमत्तानुवृत्तिभिः॥ १०

॥ १०॥

મહાક્રોધી પતિ ચ્યવન મુનિને પ્રાપ્ત કરી, પતિના ચિત્તને જાણનારી સુકન્યા સાવધાન થઈ તેમની સેવા કરીને તેમને પ્રસન્ન કરવા લાગી. ॥ ૧૦॥ ૧૦॥

कस्यचित् त्वथ कालस्य नासत्यावाश्रमागतौ।
तौ पूजयित्वा प्रोवाच वयो मे दत्तमीश्वरौ॥

॥ ११॥ ११॥

ત્યાર પછી થોડો સમય વીતતાં, પોતાના આશ્રમમાં આવી ચઢેલા બે અશ્વિનીકુમારોની પૂજા કરી તે બંનેને ચ્યવન મુનિએ કહ્યું, 'હે સમર્થ વૈદ્યો, તમે મને યુવાવસ્થા આપો.'॥ ૧૧॥

ग्रहं ग्रहीष्ये सोमस्य यज्ञे वामप्यसोमपोः।
क्रियतां मे वयो रूपं प्रमदानां यदीप्सितम्॥ १२

'સોમપાન(ના અધિકાર)થી રહિત હોવા છતાં તમને બંનેને હું સોમથી ભરેલું પાત્ર ગ્રહણ કરાવીશ. માટે ઉત્તમ સ્ત્રીઓને પ્રાપ્ત કરવા જેવું (મનોહર) રૂપ અને યૌવન મને પ્રદાન કરો.' ॥ ૧૨॥

हे ईश्वरौ सद्वैद्यौ, युवां मह्यं वयस्तारुण्यं दत्तं संपादयतम्॥ ११॥

'हे ईश्वरौ' હે શ્રેષ્ઠ વૈદ્યો, તમે બંને મને **'वयः'** યુવાવસ્થા **'दत्तम्'** આપો.॥ ૧૧॥

असोमपोः सोमपानरहितयोरपि वां युवयोः सोमस्य ग्रहं सोमपूर्णं पात्रं ग्रहीष्ये दास्यामीति। युवां सोमेन यक्ष्य इत्यर्थः। 'ऐन्द्रवायवं गृह्णाति' इत्यादिषु द्रव्यदेवता-संबन्धानुपपत्त्या गृह्णातेर्यागपर्यवसायित्वात्॥ १२॥

'असोमपोः' સોમપાન(ના અધિકાર)થી રહિત હોવા છતાં **'वाम्'** તમને બંનેને **'सोमस्य ग्रहम्'** સોમથી ભરેલું પાત્ર **'ग्रहीष्ये'** આપીશ. તમારા બંનેનું સોમયાગથી યજન કરીશ, એમ અર્થ છે. 'ઈન્દ્ર અને વાયુ માટે હોતા સોમપાત્રનું ગ્રહણ કરે છે.' વગેરે પ્રયોગોમાં દેવતા માટે દ્રવ્યત્યાગ અહીં થતો ન હોવાથી, **'ग्रह्'** ધાતુનો અર્થ અહીં યાગ એટલે યજ્ઞના અર્થમાં પરિણમે છે.॥ ૧૨॥

बाढमित्यूचतुर्विप्रमभिनन्द्य भिषक्तमौ।
निमज्जतां भवानस्मिन् ह्रदे सिद्धविनिर्मिते॥ १३

बाढमित्यभिनन्द्य भवानस्मिन्निमज्जता-मित्यूचतुः॥ १३॥

इत्युक्त्वा जरया ग्रस्तदेहो धमनिसन्ततः।
ह्रदं प्रवेशितोऽश्विभ्यां वलीपलितविप्रियः॥ १४

ह्रदं प्रवेशितः। तावपि तमपि वृद्धं गृहीत्वा प्रविष्टावित्यर्थः॥ १४॥

पुरुषास्त्रय उत्तस्थुरपीच्या वनिताप्रियाः।
पद्मस्रजः कुण्डलिनस्तुल्यरूपाः सुवाससः॥ १५
॥ १५॥

तान् निरीक्ष्य वरारोहा सरूपान् सूर्यवर्चसः।
अजानती पतिं साध्वी अश्विनौ शरणं ययौ॥ १६

अश्विनौ शरणं ययौ। युवां पृथक् स्थित्वा मत्पतिं दर्शयतमिति प्रार्थयामासेत्यर्थः॥ १६॥

दर्शयित्वा पतिं तस्यै पातिव्रत्येन तोषितौ।
ऋषिमामन्त्र्य ययतुर्विमानेन त्रिविष्टपम्॥ १७
॥ १७॥

यक्ष्यमाणोऽथ शर्यातिश्च्यवनस्याश्रमं गतः।
ददर्श दुहितुः पार्श्वे पुरुषं सूर्यवर्चसम्॥ १८
॥ १८॥

राजा दुहितरं प्राह कृतपादाभिवन्दनाम्।
आशिषश्चाप्रयुञ्जानो नातिप्रीतमना इव॥ १९
॥ १९॥

તે બંને શ્રેષ્ઠ વૈદ્યોએ ‘બહુ સારું’ એમ સ્વીકાર કરીને કહ્યું, ‘સિદ્ધજનો દ્વારા બનાવવામાં આવેલા આ કુંડમાં આપ સ્નાન કરો.’॥ ૧૩॥

‘બહુ સારું’ એમ સ્વીકાર કરીને ‘આપ આમાં સ્નાન કરો.’ એમ તે બંનેએ કહ્યું.॥ ૧૩॥

એમ કહીને વૃદ્ધાવસ્થાથી ઘેરાયેલા તેમ જ નાડીઓથી વ્યાપેલા શરીરવાળા, શરીર ઉપરની કરચલીઓ અને પળિયાંને કારણે (જોવા) ન ગમે તેવા ચ્યવન ઋષિ અશ્વિનીકુમારો સાથે કુંડમાં પ્રવિષ્ટ થયા.॥ ૧૪॥

કુંડમાં પ્રવિષ્ટ થયા. તે બંને અશ્વિનીકુમારો પણ તે વૃદ્ધને લઈને પ્રવિષ્ટ થયા, એમ અર્થ છે.॥ ૧૪॥

કમળની માળા, કુંડળ અને સુંદર વસ્ત્રો ધારણ કરેલા, સ્ત્રીઓને પ્રિય લાગે તેવા, અતિ કમનીય તથા એક સરખા રૂપવાળા ત્રણ પુરુષો (કુંડમાંથી) બહાર નીકળ્યા.॥ ૧૫॥ ૧૫॥

સૂર્ય સમાન તેજસ્વી, એક સરખા રૂપવાળા તે પુરુષોને જોઈને, પતિને ન ઓળખતાં તે સતી સુંદરી સુકન્યા અશ્વિનીકુમારોને શરણે ગઈ.॥ ૧૬॥

અશ્વિનીકુમારોને શરણે ગઈ. ‘તમે બંને જુદા ઊભા રહીને મારા પતિને દેખાડો, એમ પ્રાર્થના કરી.’ એમ અર્થ છે.॥ ૧૬॥

(સુકન્યાના) પતિવ્રતાધર્મથી પ્રસન્ન થયેલા અશ્વિનીકુમારો તેને પતિ દેખાડી, ઋષિની આજ્ઞા લઈ વિમાન દ્વારા સ્વર્ગમાં ગયા.॥ ૧૭॥ ૧૭॥

ત્યાર પછી (ભવિષ્યમાં) (ક્યારેક) યજ્ઞ કરનાર શર્યાતિ રાજા ચ્યવન મુનિના આશ્રમમાં ગયા. (ત્યાં) દીકરીની પાસે તેમણે સૂર્ય જેવો તેજસ્વી પુરુષ જોયો.॥ ૧૮॥ ૧૮॥

અતિ પ્રસન્ન મનવાળા ન હોય તેમ (પોતાના) ચરણોમાં પડીને પ્રણામ કરતી દીકરીને આશિષ ન આપતા રાજાએ કહ્યું.॥ ૧૯॥ ૧૯॥

चिकीर्षितं ते किमिदं पतिस्त्वया
प्रलम्भितो लोकनमस्कृतो मुनिः।
यत् त्वं जराग्रस्तमसत्यसम्मतं
विहाय जारं भजसेऽमुमध्वगम्॥ २०

प्रलम्भितो वञ्चितः। हे असति। असंमतमनभीष्टम्॥ २०॥

હે દુરાચારિણી, સર્વ લોક દ્વારા વંદિત એવા તારા પતિ ચ્યવન મુનિને તેં છેતર્યા! આ તેં શું કરવા ધાર્યું છે! કે જે તું ઘડપણથી ઘેરાયેલા અને (યુવતીએ) પ્રાપ્ત કરવા ન ઈચ્છેલા મુનિને છોડીને રસ્તે જતા આ પરપુરુષને સેવે છે!॥ ૨૦॥

'प्रलम्भितः' છેતર્યા– હે દુરાચારિણી, **'असंमतम्'** પ્રાપ્ત કરવા ન ઈચ્છેલ મુનિને॥ ૨૦॥

कथं मतिस्तेऽवगतान्यथा सतां
कुलप्रसूते कुलदूषणं त्विदम्।
बिभर्षि जारं यदपत्रपा कुलं
पितुश्च भर्तुश्च नयस्यधस्तमः॥ २१

हे सतां कुलप्रसूते, तव मतिरन्यथा तद्विपर्ययेण कथमवगताऽवसन्नाऽध्यवसितेति वा। तदेवाह—कुलदूषणं त्विदमित्यादि॥ २१॥

હે સજ્જનોના કુળમાં જન્મ લેનારી, તારી મતિ કેમ અવળી થઈ ગઈ? આ તો કુળને કલંક લગાડનારું કાર્ય છે! નિર્લજ્જ એવી તું પરપુરુષને સેવે છે, (તેથી) તારા પિતાના અને પતિના કુળને નીચે અંધકાર(રૂપ નરક)માં લઈ જાય છે!॥ ૨૧॥

હે સજ્જનોના કુળમાં જન્મ લેનારી, તારી મતિ કેમ અવળી થઈ ગઈ? અથવા તારી મતિ અવળા નિર્ણયવાળી કેમ થઈ? તે જ કહે છે— **'कुलदूषणं तु इदम्।'** વગેરે॥ ૨૧॥

एवं ब्रुवाणं पितरं स्मयमाना शुचिस्मिता।
उवाच तात जामाता तवैष भृगुनन्दनः॥ २२

॥ २२॥

એમ કહેતા પિતાને પવિત્ર સ્મિતવાળી સુકન્યાએ હસીને કહ્યું, 'પિતાજી, આ જ આપના જમાઈ ભૃગુનંદન (મહર્ષિ ચ્યવન) છે!'॥૨૨॥૨૨॥

शशंस पित्रे तत् सर्वं वयोरूपाभिलम्भनम्।
विस्मितः परमप्रीतस्तनयां परिषस्वजे॥ २३

॥ २३॥

(પોતાના પતિને) યૌવન અને રૂપની પ્રાપ્તિ થઈ તે સર્વ (વૃત્તાન્ત તેણે) પિતાને કહ્યું. આશ્ચર્ય પામેલા અને અત્યંત પ્રસન્ન થયેલા (પિતા તે સાંભળીને) પુત્રીને ભેટી પડ્યા.॥ ૨૩॥ ૨૩॥

सोमेन याजयन् वीरं ग्रहं सोमस्य चाग्रहीत्।
असोमपोरप्यश्विनोश्च्यवनः स्वेन तेजसा॥ २४

॥ २४॥

(ત્યાર પછી) વીર શર્યાતિ પાસે સોમ (નામના યજ્ઞ) વડે યજન કરાવતા ચ્યવન ઋષિએ સોમપાનથી રહિત એવા અશ્વિનીકુમારોને પોતાના તેજથી સોમપાત્ર ગ્રહણ કરાવ્યું.॥ ૨૪॥ ૨૪॥

हन्तुं तमाददे वज्रं सद्योमन्युरमर्षितः।
सवज्रं स्तम्भयामास भुजमिन्द्रस्य भार्गवः॥ २५

તે જ ક્ષણે જેને ક્રોધ ચડ્યો તે ઈન્દ્રે ક્રોધિત થઈ તેમને (ચ્યવન ઋષિને) મારવા માટે (હાથમાં) વજ્ર ધારણ કર્યું, (પરંતુ) ભૃગુનંદન મહર્ષિ ચ્યવને વજ્રસહિત ઈન્દ્રના હાથને થંભાવી દીધો.॥ ૨૫॥

सद्यस्तत्क्षणमेव मन्युर्यस्य स इन्द्रः ॥ २५ ॥

ते જ ક્ષણે જેને ક્રોધ ચડ્યો તે ઈન્દ્રે ॥ ૨૫ ॥

अन्वजानंस्ततः सर्वे ग्रहं सोमस्य चाश्विनोः ।
भिषजाविति यत् पूर्वं सोमाहुत्या बहिष्कृतौ ॥ २६ ॥ २६ ॥

ત્યાર પછી સર્વ દેવોએ અશ્વિનીકુમારોને સોમપાત્ર આપવાનું સ્વીકાર્યું, કે જેમને પૂર્વે વૈદ્યો હોવાથી સોમભાગથી બહિષ્કૃત કરવામાં આવ્યા હતા. ॥ ૨૬ ॥ ૨૬ ॥

उत्तानबर्हिरानर्तो भूरिषेण इति त्रयः ।
शर्यातेरभवन् पुत्रा आनर्ताद् रेवतोऽभवत् ॥ २७ ॥ २७ ॥

શર્યાતિના ઉત્તાનબર્હિ, આનર્ત અને ભૂરિષેણ– એમ ત્રણ પુત્રો થયા. આનર્તથી રેવત થયો. ॥ ૨૭ ॥ ૨૭ ॥

सोऽन्तःसमुद्रे नगरीं विनिर्माय कुशस्थलीम् ।
आस्थितोऽभुङ्क्त विषयानानर्तादीनरिन्दम ॥ २८

હે શત્રુદમન પરીક્ષિત, તે રેવતે સમુદ્રની અંદર કુશસ્થળી (હાલમાં દ્વારિકા) નગરી વસાવીને (ત્યાં) નિવાસ કર્યો. તે આનર્ત વગેરે દેશોનું પાલન કરતો હતો. ॥ ૨૮ ॥

विषयान्देशानानर्तादीन् अभुङ्क्त अपालयत् ॥ २८ ॥

‘**विषयान्**’ આનર્ત વગેરે દેશોનું ‘**अभुङ्क्त**’ પાલન કરતો હતો. ॥ ૨૮ ॥

तस्य पुत्रशतं जज्ञे ककुद्मिज्येष्ठमुत्तमम् ।
ककुद्मी रेवतीं कन्यां स्वामादाय विभुं गतः ॥ २९

कन्यावरं परिप्रष्टुं ब्रह्मलोकमपावृतम् ।
आवर्तमाने गान्धर्वे स्थितोऽलब्धक्षणः क्षणम् ॥ ३०

જેમનામાં કકુદ્મી જ્યેષ્ઠ હતો તેવા સો શ્રેષ્ઠ પુત્રો તેને જન્મ્યા હતા. કકુદ્મી પોતાની કન્યા રેવતીને લઈને વિભુ બ્રહ્માજી પાસે કન્યાનો વર (કોણ હશે તે) પૂછવા માટે, (તે સમયે) જેનાં દ્વાર ખુલ્લા રહેતાં હતાં તે બ્રહ્મલોકમાં ગયો હતો. (ત્યાં) ચારે તરફ ગંધર્વોનું ગાન ચાલતું હતું, (તેથી) જેને (પૂછવાની) તક પ્રાપ્ત ન થઈ તે કકુદ્મી ત્યાં ક્ષણવાર રોકાયો. ॥ ૨૯ ॥ ૩૦ ॥

ककुद्मी ज्येष्ठो यस्मिंस्तत् । विभुं ब्रह्माणम् ॥ २९ ॥

જેમનામાં કકુદ્મી જ્યેષ્ઠ હતો તે— ‘**विभुम्**’ વિભુ બ્રહ્માજીને ॥ ૨૯ ॥

न लब्धः क्षणोऽवसरो येन ॥ ३० ॥

ન પ્રાપ્ત થઈ ‘**क्षणः**’ તક જેને ॥ ૩૦ ॥

तदन्त आद्यमानम्य स्वाभिप्रायं न्यवेदयत् ।
तच्छ्रुत्वा भगवान् ब्रह्मा प्रहस्य तमुवाच ह ॥ ३१

તે સંગીત પૂરું થયું ત્યારે આદ્ય એવા બ્રહ્માજીને નમન કરીને પોતાના અભિપ્રાયનું નિવેદન કર્યું. તે સાંભળીને ભગવાન બ્રહ્માજીએ ખૂબ જ હસીને તેને કહ્યું. ॥ ૩૧ ॥

आद्यं ब्रह्माणम् ॥ ३१ ॥

‘**आद्यम्**’ આદ્ય એવા બ્રહ્માજીને ॥ ૩૧ ॥

अहो राजन् निरुद्धास्ते कालेन हृदि ये कृताः ।
तत्पुत्रपौत्रनप्तॄणां गोत्राणि च न शृण्महे॥ ३२

તે त्वया हृदये ये कृतास्ते सर्वे कालेन निरुद्धाः संहृताः ॥ ३२ ॥

कालोऽभियातस्त्रिणवचतुर्युगविकल्पितः ।
तद् गच्छ देवदेवांशो बलदेवो महाबलः ॥ ३३

त्रिणव सप्तविंशतिचतुर्युगानि तैर्विकल्पितो विभक्तः । यो देवदेवस्यांशोऽस्ति तस्मै नररत्नाय देहि ॥ ३३ ॥

कन्यारत्नमिदं राजन् नररत्नाय देहि भोः ।
भुवो भारावताराय भगवान् भूतभावनः ॥ ३४

अवतीर्णो निजांशेन पुण्यश्रवणकीर्तनः ।
इत्यादिष्टोऽभिवन्द्याजं नृपः स्वपुरमागतः ॥ ३५

तदेवाह—भुव इति ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

त्यक्तं पुण्यजनत्रासाद्भ्रातृभिर्दिक्ष्ववस्थितैः ।
सुतां दत्त्वानवद्याङ्गीं बलाय बलशालिने ।
बदर्याख्यं गतो राजा तप्तुं नारायणाश्रमम् ॥ ३६

અરે હે રાજા, (તારા આગમન સમયે–વર તરીકે) મનમાં ધારવામાં આવેલા જે રાજાઓ હતા, તેઓ કાળ દ્વારા નાશ પામ્યા છે. તેમના પુત્રો, પૌત્રો અને પ્રપૌત્રોના વંશ પણ અમે સાંભળતા નથી. ॥ ૩૨ ॥

'તે' તારા દ્વારા મનમાં જે રાજાઓ ધારવામાં આવ્યા છે, તેઓ કાળ દ્વારા **'निरुद्धाः'** નાશ પામ્યા છે. ॥ ૩૨ ॥

સત્યાવીસ ચતુર્યુગી જેટલા સમયથી છૂટો પડેલો (તું હવે અહીંથી પૃથ્વી પર) જા અને ભગવાન નારાયણના અંશરૂપ મહાબળવાન બલદેવજી છે (તે નરરત્નને તું આ કન્યારત્ન આપ). ॥ ૩૩ ॥

'त्रिणव' સત્યાવીસ ચતુર્યુગી જેટલા સમયથી **'विकल्पितः'** છૂટો પડેલો તું (પૃથ્વી પર જા). ભગવાન નારાયણના અંશ છે તે નરરત્નને (આ કન્યારત્ન) આપ. ॥ ૩૩ ॥

હે રાજા, પ્રાણીમાત્રનું રક્ષણ કરનારા તથા જેમનું શ્રવણ અને કીર્તન પવિત્ર છે તેવા ભગવાન શ્રીકૃષ્ણ પૃથ્વીનો ભાર ઉતારવા માટે પોતાના અંશ બલરામજી સાથે (પૃથ્વી પર) અવતર્યા છે. 'આ કન્યારત્ન નરરત્ન (બલરામજી)ને અર્પણ કરજો.' એમ આદેશ પામેલો રાજા કકુદ્મી બ્રહ્માજીને વંદન કરી પોતાના નગરમાં આવી ગયો. ॥ ૩૪ ॥ ૩૫ ॥

(બલરામજી ભગવાનના અંશરૂપ છે) તે જ કહે છે— **'भुवः इति ।'** ॥ ૩૪ ॥ ૩૫ ॥

યક્ષોના ત્રાસને કારણે ઘણા સમય પહેલાં, જુદી જુદી દિશાઓમાં રહેલા કકુદ્મીના ભાઈઓ (વંશજો) દ્વારા જે નગર છોડી દેવામાં આવ્યું હતું, (તેવા પોતાના નગરમાં તે આવી ગયો.) (ત્યાં આવીને પોતાની) સર્વાંગસુંદરી કન્યા રેવતી બળશાળી બલરામજીને આપી (પરણાવી) અને 'બદરી' નામના નરનારાયણના આશ્રમમાં રાજા કકુદ્મી તપ કરવા ચાલ્યો ગયો. ॥ ૩૬ ॥

पुण्यजनत्रासाद्यक्षभयात्पूर्वमेव चिरं पुरं तद्भ्रातृभिस्त्यक्तम् ॥ ३६ ॥

'पुण्यजनत्रासात्' યક્ષોના ભયથી પૂર્વે જ, ઘણા સમય પહેલાં તેના ભાઈઓ દ્વારા છોડી દેવામાં આવેલા નગરમાં (તે આવી પહોંચ્યો). ॥ ૩૬ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

*****

अथ चतुर्थोऽध्यायः

નાભાગ અને અંબરીષની કથા

चतुर्थे मनुपुत्रस्य नभगस्य कथोच्यते।
तत्सूनोश्चाम्बरीषस्य कृत्या प्रतिहता यतः ॥ १ ॥

ચોથા અધ્યાયમાં મનુપુત્ર* નભગની, તેના પુત્ર નાભાગની તથા (તેના પુત્ર) અમ્બરીષની કથા કહેવામાં આવી છે, કે જે અમ્બરીષથી (મંત્ર વગેરેથી ઉત્પન્ન કરવામાં આવેલી તેમ જ મારવાને સમર્થ દેવની પ્રતિકૃતિરૂપ) કૃત્યા નષ્ટ કરવામાં આવી હતી. ॥ ૧ ॥

श्रीशुक उवाच

नाभागो नभगापत्यं यं ततं भ्रातरः कविम्।
यविष्ठं व्यभजन् दायं ब्रह्मचारिणमागतम् ॥ १

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — નભગના પુત્ર નાભાગ હતા. (ગુરુકુળમાંથી) આવેલા સૌથી નાના, વિદ્વાન બ્રહ્મચારી એવા જેમને ભાઈઓએ વારસામાં પિતાને જ ભાગ તરીકે વહેંચી આપ્યા. ॥ ૧ ॥

नभगस्य वंशमाह—नभगस्यापत्यं नाभागः। नाभागादम्बरीषो महाभागवतोऽभूदिति वक्ष्यंस्तद्धेतुत्वेन वंशप्रवर्तकस्य नभगस्य निष्कपटं चरितं तेन तु श्रीरुद्रप्रसादमाह—यं ततमित्यादिना। ब्रह्मचारिणं बहुकालं गुरुकुले वसन्तं नैष्ठिकोऽसाविति मत्वा विभागसमये तस्मै भागमप्रकल्प्यैव भ्रातरः सर्वं दायं विभज्य गृहीत्वा पश्चाद्गुरुकुलादागतं यं भागार्थिनं

નભગના વંશનું વર્ણન કરે છે — નભગના પુત્ર નાભાગ હતા.'નાભાગથી મહાભાગવત અમ્બરીષ થયા.' (શ્લોક-૧૩) એમ શુકદેવજી કહેશે, એમ કહેવાના કારણરૂપે વંશ પ્રવર્તાવનાર નભગનું નિષ્કપટ ચરિત્ર અને તેને કારણે શ્રીરુદ્રદેવની કૃપાનું વર્ણન કરે છે— **'यं ततम्'** વગેરે દ્વારા. ગુરુકુળમાં ઘણો સમય રહેલા બ્રહ્મચારી નાભાગને 'આ નૈષ્ઠિક (સદાયને માટે) બ્રહ્મચારી છે.' એમ માનીને (પિતાની સમ્પત્તિના) ભાગલા પાડવાના સમયે તેમનો ભાગ રાખ્યા વિના જ ભાઈઓએ બધી સમ્પત્તિ પોતે વહેંચી

* શ્રાદ્ધદેવ મનુના દસ પુત્રો — ૧. ઈક્ષ્વાકુ ૨. નૃગ ૩. શર્યાતિ ૪. દિષ્ટ ૫. ધૃષ્ટ ૬. કરૂષ ૭. નરિષ્યંત ૮. પૃષધ્ર ૯. નભગ અને ૧૦. કવિ (શ્રીમદ્ ભા.૯/૧/૧૧-૧૨)

कविं विद्वांसं यविष्ठं प्रति ततं तातं पितरं दायं व्यभजन्नित्यर्थः ॥ १ ॥

લઈને (તેમનો ભાગ ન રાખી) પછી ગુરુકુળમાંથી પાછા આવી ગયેલા '**कविम्**' વિદ્વાન, સૌથી નાના અને ભાગની માગણી કરતા જે નાભાગને તેમના ભાઈઓએ '**ततम्**' તાતને, પિતાને જ ભાગ તરીકે વારસામાં આપ્યા, એમ અર્થ છે. ॥ ૧ ॥

एतदेव प्रश्नोत्तराभ्यां दर्शयति—

(ભાઈઓ નાભાગને ભાગ આપવાનું ભૂલી ગયા એટલે પિતાને જ ભાગ તરીકે આપ્યા.) એ જ વાત પ્રશ્નોત્તર વડે દર્શાવે છે–

भ्रातरोऽभाक्त किं मह्यं भजाम पितरं तव।
त्वां ममार्यास्तताभाक्षुर्मा पुत्रक तदादृथाः ॥ २

(નાભાગ ભાઈઓને પૂછે છે,) હે ભાઈઓ, મારા માટે શો ભાગ રાખ્યો છે? (ત્યારે ભાઈઓ કહે છે,) તારા પિતાને જ તારા ભાગ પેટે અમે આપીએ છીએ. (એટલે નાભાગ પિતાને કહે છે,) હે પિતાજી, મારા વડીલબંધુઓએ મારા માટે ભાગ તરીકે આપને આપ્યા છે. (તેથી પિતાજી કહે છે,) 'હે પુત્ર, તું તે સ્વીકારીશ નહીં.' ॥ ૨ ॥

तत्र नभगः पृच्छति, हे भ्रातरः, मह्यं किमभाक्त व्यभजन्त कं भागं मदर्थं यूयं प्रकल्पितवन्तः। भ्रातर आहुः—तदा विस्मृतमस्माभिरिदानीं तु तव पितरं विभजाम, त्वं पितरं गृहाणेत्यर्थः। स च पितरं गत्वाह—तत हे तात, आर्याः श्रेष्ठाः मे मम त्वामभाक्षुर्भागं चक्रुः। मदीयो भागस्त्वमित्यर्थः।

તેમાં પ્રથમ નાભાગ પૂછે છે, હે ભાઈઓ, '**मह्यं किं अभाक्त**' મારા માટે વહેંચણી કરતાં તમે શો ભાગ રાખ્યો છે? ભાઈઓ કહે છે— તે સમયે તો અમે તારો ભાગ રાખવાનું વિસરી ગયા, પણ હવે તને '**तव पितरं विभजाम**' પિતાને જ અમે તારા ભાગ પેટે આપીએ છીએ. તું પિતાને ગ્રહણ કર, એમ અર્થ છે. હવે નાભાગ પિતાની પાસે જઈને કહે છે— '**तत**' હે પિતાજી, '**आर्याः**' વડીલ એવા '**मे**' મારા ભાઈઓએ મારે માટે આપને ભાગ તરીકે આપ્યા છે. મારો ભાગ આપ જ છો, એમ અર્થ છે.

पाठान्तरे हे तात, किमिदं ममाभाक्षुः भजाम पितरं तवेत्युक्तवन्तः आर्यास्त्वां मह्यं किमर्थं ददुरित्यर्थः। पिताह—हे पुत्रक,

'**भ्रातरोऽभाक्त किं मह्यम्**' ને બદલે '**किं ममार्यास्तताभाक्षुः**' એમ પાઠાન્તર હોય તો, હે પિતાજી, મને આ શો ભાગ આપ્યો છે? વડીલ ભાઈઓએ કહ્યું, કે અમે પિતાને જ તારા ભાગ તરીકે આપીએ છીએ. ભાઈઓએ મારા માટે આપને કેમ આપ્યા? એમ અર્થ છે. પિતા કહે છે—

तत्तैरुक्तं मादृथाः प्रतारणमात्रं तैः कृतं तस्मिन्नादरं मा कार्षीः, न ह्यहं दाय इव भोगसाधनमित्यर्थः ॥ २ ॥

तथापि तैर्भागत्वेन दत्तोऽहं तव जीवनोपायमुपदेक्ष्यामीत्याह—**इमे इति** सपादाभ्यां द्वाभ्याम्।

इमे अङ्गिरसः सत्रमासतेऽद्य सुमेधसः।
षष्ठं षष्ठमुपेत्याहः कवे मुह्यन्ति कर्मणि॥ ३

'अभिप्लवः षडहो भवति' 'पृष्ठ्यः षडहो भवति' इति विहितेषु षडहेष्वावर्त्यमानेषु षष्ठं षष्ठमहः कर्मोपेत्य प्राप्य कर्मणि तदनुष्ठाने सुमेधसोऽपि ते सूक्तविशेषाज्ञानेन मुह्यन्ति। कवे हे विद्वन्॥ ३ ॥

तांस्त्वं शंसय सूक्ते द्वे वैश्वदेवे महात्मनः।
ते स्वर्यन्तो धनं सत्रपरिशेषितमात्मनः॥ ४

दास्यन्ति तेऽथ तान् गच्छ तथा स कृतवान् यथा।
तस्मै दत्त्वा ययुः स्वर्गं ते सत्रपरिशेषितम्॥ ५

હે પુત્ર, '**तत् तैः**' તેમના દ્વારા કહેવામાં આવ્યું તેનો '**मा-आदृथाः**' સ્વીકાર કરીશ નહીં. તેમના દ્વારા તો માત્ર છેતરપીંડી કરવામાં આવી છે, તે માનીશ નહીં કારણ કે હું કાંઈ દાયજાને લાયક ભોગનું સાધન નથી, એમ અર્થ છે.॥ ૨ ॥

(તારા ભાઈઓ દ્વારા અનુચિત કરવામાં આવ્યું છે,) તેમ છતાં તેમણે ભાગ તરીકે આપેલો હું તને આજીવિકાના ઉપાયનો ઉપદેશ કરીશ, એમ (પિતા નાભાગ) સવા બે શ્લોકો દ્વારા કહે છે— '**इमे इति।**'

હે વિદ્વાન (પુત્ર), હમણાં અંગિરા ગોત્રના આ બ્રાહ્મણો ('અભિપ્લવ' નામનો એક મહાન) યજ્ઞ કરી રહ્યા છે. (તેમાં) દર છઠ્ઠે છઠ્ઠે દિવસે થતા કર્મને પ્રાપ્ત કરીને કર્મનું તે અનુષ્ઠાન કરવામાં બુદ્ધિશાળી હોવા છતાં (સૂક્તનું વિશેષ જ્ઞાન ન હોવાથી) મૂંઝાય છે.॥ ૩ ॥

'અભિપ્લવ યાગ છ દિવસનો હોય છે.' 'પૃષ્ઠ્ય નામનો યજ્ઞ છ દિવસનો હોય છે.' ઐતરેય બ્રાહ્મણના પાંચમા અધ્યાયના દસમા ખંડમાં આ બંનેનો ઉલ્લેખ છે. એમ વિધાન પ્રમાણે છ દિવસના યજ્ઞોનું આવર્તન થતાં '**षष्ठं षष्ठं अहः**' છઠ્ઠા છઠ્ઠા દિવસે થતા કર્મને '**उपेत्य**' પ્રાપ્ત કરીને કર્મનું તે અનુષ્ઠાન (યથાવત્) કરવામાં તે બ્રાહ્મણો બુદ્ધિમાન હોવા છતાં વિશિષ્ટ સૂક્તના અજ્ઞાનને કારણે મૂંઝાય છે. '**कवे**' હે વિદ્વાન (પુત્ર)॥ ૩ ॥

તે મહાત્માઓને તું વૈશ્વદેવ સંબંધી બે સૂક્તો (કહેજે) ભણાવજે. સ્વર્ગે જતા તેઓ યજ્ઞમાં બાકી વધેલું પોતાનું ધન તને આપી દેશે. આથી તું તેમની પાસે જા. (હવે શ્રીશુકદેવજીનું વાક્ય છે.) જેને કહેવામાં આવ્યું હતું તે નાભાગે તે પ્રમાણે કર્યું. (ત્યાર પછી) (યજ્ઞકર્મ સમાપ્ત થતાં) તે મહાત્માઓ યજ્ઞાવશેષ ધન તેને આપીને સ્વર્ગમાં ગયા.॥ ૪ ॥ ૫ ॥

तान्महात्मनोऽपि त्वं 'इदमित्था रौद्रम्' इति च, 'ये यज्ञेन दक्षिणया' इति च वैश्वदेवे द्वे सूक्ते शंसय पाठय।

તે મહાત્માઓને પણ તું વૈશ્વદેવ સંબંધી બે સૂક્તો '**शंसय**' ભણાવજે. '**इदमित्था रौद्रम्**' (ઋગ્વેદ ૧૦/૬૧/૧) રુદ્રનું સૂક્ત આ પ્રમાણે છે. (તેમાં કુલ ૨૭ ઋચાઓ છે.) તથા '**ये यज्ञेन दक्षिणया**' (ઋગ્વેદ ૧૦/૬૨/૧) 'યજ્ઞ દ્વારા ઋત્વિજોને આપવાની દક્ષિણા વડે જે યજ્ઞ કરનારા છે.' (તેઓ અમરત્વને પામ્યા છે). (આ સૂક્તમાં ૧૧ ઋચાઓ છે.)

ततः कर्मणि समाप्ते सति ते स्वर्यन्तः स्वर्गं गच्छन्तः स्वसत्रे परिशेषितमवशिष्टमात्मनो धनं तुभ्यं दास्यन्ति। अथ तस्मात्तान्गाच्छेति। तथेत्यादि शुकवाक्यम्। यथावत्कृतवान्। सत्रपरिशेषितं सत्रावशिष्टं धनम्॥ ४॥ ५॥

ત્યાર પછી યજ્ઞકર્મ સમાપ્ત થતાં '**स्वर्यन्तः**' સ્વર્ગમાં જતા તેઓ પોતાના યજ્ઞમાં '**परिशेषितम्**' વધેલું પોતાનું ધન તને આપી દેશે. '**अथ**' તેથી તું તેમની પાસે જા. '**तथा-इत्यादि**' શુકદેવજીનું વાક્ય છે. નાભાગે જેમ કહ્યું હતું તેમ કર્યું. '**सत्रपरिशेषितम्**' યજ્ઞાવશિષ્ટ ધન॥ ૪॥ ૫॥

तं कश्चित् स्वीकरिष्यन्तं पुरुषः कृष्णदर्शनः।
उवाचोत्तरतोऽभ्येत्य ममेदं वास्तुकं वसु॥ ६

(યજ્ઞાવશેષ ધનને) લઈ જતા તે નાભાગને કાળા શરીરવાળો કોઈ પુરુષ ઉત્તર દિશામાંથી આવીને કહેવા લાગ્યો, 'યજ્ઞભૂમિ પર રહેલું આ ધન મારું છે.'॥ ૬॥

पुरुषः श्रीरुद्रः। दृश्यत इति दर्शनं शरीरम्, कृष्णं दर्शनं यस्य सः। वास्तुकं यज्ञभूमिगतं वसु धनं ममेत्युवाच॥ ६॥

'**पुरुषः**' શ્રીરુદ્ર– દેખાય છે તે '**दर्शनम्**' શરીર, કાળું શરીર છે જેનું તે– '**वास्तुकम्**' યજ્ઞભૂમિ પર રહેલું '**वसु**' ધન મારું છે, એમ તેમણે કહ્યું.॥ ૬॥

ममेदमृषिभिर्दत्तमिति तर्हि स्म मानवः।
स्यान्नौ ते पितरि प्रश्नः पृष्टवान् पितरं तथा॥ ७

ત્યારે મનુપૌત્ર નાભાગે કહ્યું, 'આ તો મારું છે. ઋષિઓએ મને આપ્યું છે.' (ત્યારે શ્રીરુદ્ર બોલ્યા–) 'આપણા બંનેના આ વિવાદ વિષે તારા પિતાને (જ) પ્રશ્ન કરીએ.' એટલે નાભાગે પિતાને તે અનુસાર પૂછ્યું.॥ ૭॥

तर्हि स्म तदैव ममेदमिति मानवो नभग उवाच। पुनश्च रुद्र उवाच। नौ आवयोरस्मिन्विवादे ते पितरि प्रश्नः स्यादिति। पृष्टवानिति शुकोक्तिः ॥ ७॥

'**तर्हि स्म**' ત્યારે જ મનુપૌત્ર નાભાગે કહ્યું, 'આ તો મારું છે.' શ્રીરુદ્ર પુનઃ બોલ્યા, '**नौ**' આપણા બંનેના આ વિવાદ વિષે તારા પિતાને પ્રશ્ન કરીએ. એટલે નાભાગે પિતાને પૂછ્યું, એ શુકદેવજીનું વાક્ય છે.॥ ૭॥

पृष्टस्य मनोर्वाक्यं—**यज्ञवास्तुगतमिति**।

જેને પૂછવામાં આવ્યું તે મનુના પુત્ર નભગનું વાક્ય છે— '**यज्ञवास्तुगतम् इति।**'

यज्ञवास्तुगतं सर्वमुच्छिष्टमृषयः क्वचित्।
चक्रुर्विभागं रुद्राय स देवः सर्वमर्हति॥ ८

उच्छिष्टमुर्वरितम्। क्वचिदिति दक्षाध्वरे। 'उच्छेषणभागो वै रुद्रः' इति श्रुतेश्च।

किंच स देव ईश्वरः सर्वमप्यर्हति, किं पुनर्यज्ञावशिष्टमित्यर्थः॥ ८॥

યજ્ઞભૂમિ પર અવશિષ્ટ રહેલા સર્વ ધનને ઋષિઓએ કોઈ એક સમયે (દક્ષના યજ્ઞમાં) શ્રીરુદ્રદેવ માટેનો ભાગ (નિશ્ચિત) કર્યો છે. (આથી) તે રુદ્રદેવ સઘળા (ધન)ને યોગ્ય છે.॥ ૮॥

'**उच्छिष्टम्**' અવશેષ રહેલું '**क्वचित् इति।**' કોઈ એક વાર દક્ષયજ્ઞમાં– 'યજ્ઞનો અવશિષ્ટ ભાગ રુદ્રનો હોય છે.' એમ શ્રુતિ છે.

વળી, તે '**देवः**' ઈશ્વર સર્વ કાંઈ પ્રાપ્ત કરવા યોગ્ય છે, તો પછી યજ્ઞાવશેષ પ્રાપ્ત કરવા યોગ્ય હોય તેમાં શું કહેવું, એમ અર્થ છે.॥ ૮॥

नाभागस्तं प्रणम्याह तवेश किल वास्तुकम्।
इत्याह मे पिता ब्रह्मन् शिरसा त्वां प्रसादये॥ ९

॥ ९॥

તે રુદ્રદેવને નાભાગ પ્રણામ કરીને બોલ્યા: હે ઈશ, યજ્ઞભૂમિ પર અવશેષ રહેલું ધન તો આપનું જ છે, એમ મારા પિતા કહે છે. માટે હે બ્રહ્મન્, (આપનો ભાગ ગ્રહણ કરવાથી થયેલા દોષનું નિવારણ કરવા માટે હું) આપને મસ્તક નમાવીને (ક્ષમા માગવા દ્વારા) પ્રસન્ન કરું છું.॥ ૯॥ ૯॥

श्रीरुद्र आह—**यत्ते इति।**

यत् ते पितावदद् धर्मं त्वं च सत्यं प्रभाषसे।
ददामि ते मन्त्रदृशे ज्ञानं ब्रह्म सनातनम्॥ १०

॥ १०॥

શ્રીરુદ્ર કહે છે— '**यत् ते इति।**'

(આ રીતે પ્રસન્ન થયેલા શ્રીરુદ્ર કહે છે—) તારા પિતા (તારો પક્ષપાત છોડી યથાર્થ) ધર્મ(વચન) બોલ્યા છે અને તું પણ (લોભ છોડીને) સત્ય (વચન) બોલે છે, માટે મંત્રદ્રષ્ટા એવા તને હું સનાતન બ્રહ્માત્મક જ્ઞાન પ્રદાન કરું છું.॥ ૧૦॥ ૧૦॥

गृहाण द्रविणं दत्तं मत्सत्रे परिशेषितम्।
इत्युक्त्वान्तर्हितो रुद्रो भगवान् सत्यवत्सलः॥ ११

इदमाख्यानं श्रुतिप्रसिद्धम्। तथा हि बह्वृचब्राह्मणम्—'नाभानेदिष्ठं शंसति नाभानेदिष्ठं वै मानवं ब्रह्मचर्यं वसन्तं भ्रातरो निरभजन्त्सोऽब्रवीत्' इत्यादि॥ ११॥

'યજ્ઞમાં અવશેષ રહેલું, મારું આપેલું ધન પણ તું સ્વીકાર.' એમ કહી સત્યવાણીથી પ્રસન્ન થયેલા ભગવાન શ્રીરુદ્ર અન્તર્ધાન થઈ ગયા.॥ ૧૧॥

આ આખ્યાન વેદમાં પ્રસિદ્ધ છે. જેમકે ઋગ્વેદના (ઐતરેય) બ્રાહ્મણમાં છે– 'નાભાનેદિષ્ઠ સૂક્તને ભણે છે. નાભાનેદિષ્ઠ નામનો મનુપુત્ર, બ્રહ્મચર્યનું પાલન કરતા અને ગુરુકુળમાં વસતા તેને ભાઈઓએ ભાગ ન આપ્યો. તે નાભાનેદિષ્ઠ બોલ્યો.' વગેરે.॥ ૧૧॥

अस्याख्यानस्य स्मरणे फलमाह— य एतदिति।

य एतत् संस्मरेत् प्रातः सायं च सुसमाहितः।
कविर्भवति मन्त्रज्ञो गतिं चैव तथाऽऽत्मनः॥ १२

आत्मनो गतिं च प्राप्नोतीति शेषः॥१२॥

नाभागादम्बरीषोऽभून्महाभागवतः कृती।
नास्पृशद् ब्रह्मशापोऽपि यं न प्रतिहतः क्वचित्॥ १३

क्वचिदपि न प्रतिहतो ब्रह्मशापोऽपि ब्राह्मणेन दुर्वाससा निर्मितः कृत्यानलोऽपि यं नास्पृशत्। अतोऽसौ महाभागवतोऽत एव कृती पुण्यवान् ॥१३॥

राजोवाच

भगवन् श्रोतुमिच्छामि राजर्षेस्तस्य धीमतः।
न प्राभूद् यत्र निर्मुक्तो ब्रह्मदण्डो दुरत्ययः॥ १४

तस्य श्रोतुमिच्छामि। चरितमिति शेषः। ब्रह्मदण्डः कृत्यानलो न प्राभून्न समर्थो बभूव ॥१४॥

श्रीशुक उवाच

अम्बरीषो महाभागः सप्तद्वीपवतीं महीम्।
अव्ययां च श्रियं लब्ध्वा विभवं चातुलं भुवि॥ १५
मेनेऽतिदुर्लभं पुंसां सर्वं तत् स्वप्नसंस्तुतम्।
विद्वान् विभवनिर्वाणं तमो विशति यत् पुमान्॥ १६

આ નાભાગ આખ્યાનના સ્મરણનું ફળ કહે છે— **'यः एतत् इति।'**

જે મનુષ્ય પ્રાતઃકાળે અને સાયંકાળે એકાગ્રચિત્ત થઈ આ નાભાગચરિત્રનું સ્મરણ કરે છે, તે કવિ (ક્રાન્તદર્શી), મન્ત્રવેત્તા બને છે અને આત્માના સ્વરૂપને (પ્રાપ્ત કરે છે.)॥૧૨॥

આત્માના સ્વરૂપને 'પ્રાપ્ત કરે છે', એટલું શેષ છે (તે ઉમેરવું).॥૧૨॥

નાભાગથી અમ્બરીષ થયા. તેઓ મહાન ભગવદ્‌ભક્ત અને પુણ્યવાન હતા, (કારણ કે) બ્રાહ્મણ દુર્વાસા દ્વારા આપવામાં આવેલો શાપ કે જેને ક્યારેય અટકાવી ન શકાય, તે પણ જે ભક્ત અમ્બરીષને સ્પર્શી શક્યો ન હતો.॥૧૩॥

ક્યારેય પણ અટકાવી ન શકાય તેવો બ્રહ્મશાપ પણ, બ્રાહ્મણ દુર્વાસા દ્વારા નિર્મિત થયેલો કૃત્યારૂપ અનલ પણ જેને સ્પર્શી શક્યો ન હતો. આથી તે મહાન ભગવદ્‌ભક્ત હતો અને આથી જ તે '**कृती**' પુણ્યવાન હતો.॥૧૩॥

રાજા પરીક્ષિત બોલ્યા — હે ભગવાન, તે બુદ્ધિમાન રાજર્ષિ અમ્બરીષનું (ચરિત્ર) શ્રવણ કરવા હું ઈચ્છું છું, કે જેની ઉપર છોડવામાં આવેલો દુર્લંઘ્ય બ્રહ્મદંડ (તેનો વાળ પણ વાંકો કરવા માટે) સમર્થ થયો ન હતો.॥૧૪॥

તેનું (ચરિત્ર) શ્રવણ કરવા ઈચ્છું છું, (તેમાં) 'ચરિત્ર' શેષ છે. '**ब्रह्मदण्डः**' કૃત્યા અગ્નિરૂપ બ્રાહ્મણ દુર્વાસાનો શાપ '**न प्राभूत्**' (તેનું કંઈ પણ બગાડવા માટે) શક્તિમાન થયો ન હતો.॥૧૪॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — જેનાથી મનુષ્ય અંધકાર (રૂપ મોહ)માં ડૂબી જાય છે તે ઐશ્વર્ય નાશવંત છે, એમ જાણનાર મહાભાગ્યશાળી રાજા અમ્બરીષ સાત દ્વીપોવાળી પૃથ્વી, અચળ (દીર્ઘકાળ પર્યન્ત રહેનારી) લક્ષ્મી તથા પૃથ્વી ઉપર પુરુષોને અતિદુર્લભ એવું અનુપમ ઐશ્વર્ય પ્રાપ્ત કરીને (પણ) તે સર્વને સ્વપ્નમાં જોયેલા (જેવું) માનતા.॥૧૫॥૧૬॥

श्रियं संपदम्। विभवमैश्वर्यम्। अतुलं निरुपमम्॥ १५॥

पुंसामतिदुर्लभमपि तत्सर्वं स्वप्नवत्संस्तुतं निरूपितमनुपादेयं मेने। तत्र हेतुः—विभवस्य निर्वाणं नाशं विद्वान्। यद्येन विभवेन तन्नाशेन वा पुमांस्तमो विशति मोहे निमज्जति॥ १६॥

નન્વેવં જાનન્તોऽपि विभवैषिणो दृश्यन्ते तत्राह—**वासुदेव इति**।

वासुदेवे भगवति तद्भक्तेषु च साधुषु।
प्राप्तो भावं परं विश्वं येनेदं लोष्टवत् स्मृतम्॥ १७

भावं भक्तिं प्राप्तः। येन भावेनेदं विश्वं लोष्टवदतितुच्छं स्मृतम्॥ १७॥

भक्तिमेव सर्वेन्द्रियाणां भगवत्परत्वकथनेन प्रपञ्चयति—**स वा इति** त्रिभिः—

स वै मनः कृष्णपदारविन्दयो-
र्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने।
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु
श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये॥ १८

श्रुतिं श्रोत्रमच्युतस्य सत्कथानामुदये श्रवणे चकारेत्यस्य सर्वत्रान्वयः॥ १८॥

‘**श्रियम्**’ સમ્પત્તિને, ‘**विभवम्**’ ઐશ્વર્યને, ‘**अतुलम्**’ નિરુપમ॥ ૧૫॥

પુરુષોને અતિદુર્લભ હોવા છતાં તે સર્વને સ્વપ્નમાં ‘**संस्तुतम्**’ જોયેલું હોય તેવું, ગ્રહણ ન કરવા યોગ્ય માનતા. તે માટેનું કારણ— વૈભવ ‘**निर्वाणम्**’ નાશવંત છે, એમ જાણનાર રાજા હતા. ‘**यत्**’ જે વૈભવથી કે તેના નાશથી પુરુષ ‘**तमः विशति**’ અંધકારરૂપ મોહમાં ડૂબી જાય છે.॥ ૧૬॥

આક્ષેપ કરવામાં આવ્યો છે કે આમ જાણતા હોવા છતાં પણ મનુષ્યો ધન વગેરેની ઈચ્છાવાળા જણાય છે. તે માટે કહે છે— ‘**वासुदेवे इति।**’

ભગવાન વાસુદેવ અને તેમના ભક્ત સાધુજનો ઉપર (અંબરીષને) અત્યંત ભક્તિભાવ પ્રાપ્ત થયો હતો, કે જેને કારણે તેઓ આ જગતને ધૂળના ઢેફા જેવું (અતિ તુચ્છ) માનતા. ॥ ૧૭॥

‘**भावम्**’ ભક્તિભાવ પ્રાપ્ત થયો છે જેમને, કે જે ભાવથી તેઓ આ વિશ્વને ‘**लोष्टवत्**’ ધૂળના ઢેફા જેવું અતિ તુચ્છ માનતા.॥ ૧૭॥

સર્વ ઈન્દ્રિયોની ભગવત્પરાયણતાના કથન દ્વારા રાજાની ભક્તિને જ વિસ્તારપૂર્વક ત્રણ શ્લોકો વડે સમજાવે છે— ‘**सः वै इति।**’

તેમણે મનનો શ્રીકૃષ્ણ ભગવાનનાં (બંને) ચરણારવિંદમાં, વચનોનો વૈકુંઠ ભગવાનના ગુણોનું વર્ણન કરવામાં, બંને હાથોનો શ્રીહરિના મંદિરની બુહારી કરવા વગેરેમાં તથા કાનનો અચ્યુત ભગવાનની મંગળમયી કથાઓના શ્રવણમાં (વિનિયોગ) કર્યો હતો.॥ ૧૮॥

‘**श्रुतिम्**’ કાનનો અચ્યુત ભગવાનની મંગળમયી કથાઓના ‘**उदये**’ શ્રવણમાં વિનિયોગ કર્યો હતો, એમ આનો સર્વત્ર અન્વય છે.॥ ૧૮॥

मुकुन्दलिङ्गालयदर्शने दृशौ
तद्भृत्यगात्रस्पर्शेऽङ्गसङ्गमम् ।
घ्राणं च तत्पादसरोजसौरभे
श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते॥ १९

बंने नेत्रोनो मुकुन्द भगवाननी मूर्तिओवाळां मंदिरोनां दर्शनमां, शरीरसंगनो तेमना भक्तोना शरीरस्पर्शमां, तेमनां चरणकमळ पर चढेली शोभायमान तुलसीनी (दिव्य) सौरभमां नासिकानो, तेमने अर्पण करेला (नैवेद्यनो प्रसाद ग्रहण करवा)मां रसना (जिह्वा)नो विनियोग कर्यो हतो.॥ १९॥

मुकुन्दस्य लिङ्गानामालयानि स्थानानि तेषां दर्शने दृशौ नेत्रे। श्रीमत्यास्तुलस्यास्तत्पादसरोजेन यत्सौरभं तस्मिन्। तदर्पिते तस्मै निवेदितान्नादौ ॥ १९ ॥

મુકુન્દ ભગવાનની મૂર્તિઓવાળાં '**आलयानि**' મંદિરો, તેમનાં દર્શનમાં '**दृशौ**' બંને નેત્રોનો, તેમનાં ચરણકમળથી યુક્ત થયેલી (ચરણ પર ચઢેલી) શોભાયમાન તુલસીની જે સૌરભ છે તેમાં (નાસિકાનો), '**तत्-अर्पिते**' તેમને નિવેદન કરવામાં આવેલા અન્ન વગેરેમાં (રસનાનો વિનિયોગ કર્યો હતો).॥ ૧૯॥

पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे
शिरो हृषीकेशपदाभिवन्दने।
कामं च दास्ये न तु कामकाम्यया
यथोत्तमश्लोकजनाश्रया रतिः॥ २०

બંને પગનો શ્રીહરિના ક્ષેત્રમાં પગપાળા યાત્રા કરવામાં, હૃષીકેશ ભગવાનના ચરણમાં વારંવાર વંદન કરવામાં મસ્તકનો, (તેમને અર્પણ કરાયેલાં માળા, ચંદન, નૈવેદ્ય વગેરે ગ્રહણ કરવાની) કામનાનો તેમના દાસ્યમાં વિનિયોગ કર્યો હતો, દાસ્યને કારણે કામનાનો દાસ્યમાં વિનિયોગ કર્યો હતો પણ વિષયભોગની ઈચ્છાથી નહીં. પવિત્રકીર્તિ ભગવાનના ભક્તોના આશ્રયવાળી પ્રીતિ જેમ થાય તેમ તે (આ સર્વ) કરતા હતા.॥ ૨૦॥

कामं स्रक्चन्दनादिसेवां दास्ये निमित्ते तत्प्रसादस्वीकाराय न तु कामकाम्यया विषयेच्छया। कथं चकार। उत्तमश्लोकजनाश्रया रतिर्यथा भवेत्तथा। अनेन तद्भक्तेषु च परं भावं प्राप्त इत्येतत्स्फुटीकृतम्॥ २०॥

માળા, ચંદન વગેરે સંપૂર્ણ ભોગસામગ્રી ગ્રહણ કરવાની '**कामम्**' ઈચ્છાનો દાસ્યમાં વિનિયોગ કર્યો હતો. દાસ્યને કારણે તેમનો પ્રસાદ સ્વીકારવા માટે કામનાનો દાસ્યમાં વિનિયોગ કર્યો હતો, પણ '**न कामकाम्यया**' વિષયભોગની ઈચ્છાથી નહીં. આ સર્વ તેઓ કેમ કરતા હતા? પવિત્રકીર્તિ ભગવાનના ભક્તોના આશ્રયવાળી પ્રીતિ જે રીતે થાય તે રીતે કરતા હતા. આ દ્વારા ભક્તો ઉપર પણ રાજા અત્યંત ભક્તિભાવને પ્રાપ્ત થતા હતા, એમ સ્પષ્ટ કરવામાં આવ્યું છે.॥ ૨૦॥

एवं सदा कर्मकलापमात्मनः
परेऽधियज्ञे भगवत्यधोक्षजे।
सर्वात्मभावं विदधन्महीमिमां
तन्निष्ठविप्राभिहितः शशास ह॥ २१

सर्वत्रात्मेति भावो भावना यस्मिंस्तमात्मनः स्वस्य कर्मणां कलापं समूहं भगवति विदधत् समर्पयंस्तन्निष्ठैर्भागवतैर्विप्रैरभिहितः शिक्षितः सन् महीं शशास पालयामास। अनेनाधिकृतो धर्मोऽपि यथावद्दर्शितः ॥ २१ ॥

આમ, સર્વમાં એક જ આત્મા છે તેવી ભાવના જેમાં છે તેવા પોતાના કર્મસમૂહને પ્રતિદિન યજ્ઞના અધિષ્ઠાતા પરમેશ્વર ભગવાન અધોક્ષજ પ્રત્યે સમર્પિત કરતા રાજા અમ્બરીષ એક તે ભગવાનમાં જ નિષ્ઠાવાળા વિપ્રો દ્વારા શિક્ષિત થઈ આ પૃથ્વીનું પાલન કરતા હતા.॥ ૨૧ ॥

(બ્રહ્માજીથી માંડીને તણખલા પર્યન્ત) સર્વમાં એક જ આત્મા છે એવી '**भावः**' ભાવના છે જેમાં તેવા '**आत्मनः**' પોતાનાં (નિત્ય, નૈમિત્તિક) કર્મોના સમૂહને ભગવાનમાં '**विदधत्**' સમર્પિત કરતા રાજા, એક તે ભગવાનમાં જ નિષ્ઠાવાળા ભગવદ્ભક્ત વિપ્રો દ્વારા '**अभिहितः**' શિક્ષિત થઈ પૃથ્વીનું '**शशास**' પાલન કરતા. આ દ્વારા અધિકાર પામેલો ધર્મ પણ જેવો હોવો જોઈએ તેવો દર્શાવાયો છે.॥ ૨૧ ॥

ईजेऽश्वमेधैरधियज्ञमीश्वरं
महाविभूत्योपचिताङ्गदक्षिणैः ।
ततैर्वसिष्ठासितगौतमादिभि-
र्धन्वन्यभिस्त्रोतमसौ सरस्वतीम्॥ २२

किंच यज्ञाधिष्ठातारमीश्वरमश्वमेधैरीजे आराधयामास। महाविभूत्योपचितान्यङ्गानि दक्षिणाश्च येषु तैः। वसिष्ठादिभिर्हेतुभूतैस्ततैर्विस्तृतैः। धन्वनि धन्वदेशे निरुदके सरस्वतीमभिस्त्रोतम्। तस्याः प्रतिलोममित्यर्थः ॥ २२ ॥

ધન્વદેશમાં સરસ્વતી નદીના પ્રવાહ સામે નિર્જળ પ્રદેશમાં વસિષ્ઠ, અસિત, ગૌતમ વગેરે બ્રાહ્મણોને કારણે વિસ્તાર પામેલાં તેમ જ મહાન ઐશ્વર્યને કારણે વિપુલ કરાયેલાં અંગો (સર્વાંગ-પરિપૂર્ણ) અને વધી ગયેલી (પ્રચુર) દક્ષિણાઓવાળા અશ્વમેધ યજ્ઞો દ્વારા તે રાજાએ યજ્ઞના અધિષ્ઠાતા પરમેશ્વરનું યજન (આરાધન) કર્યું હતું.॥ ૨૨ ॥

વળી, રાજાએ યજ્ઞના અધિષ્ઠાતા પરમેશ્વરનું અશ્વમેધ યજ્ઞો દ્વારા '**ईजे**' આરાધન કર્યું હતું. મહાન ઐશ્વર્યને કારણે વૃદ્ધિ પામેલાં અંગો અને દક્ષિણાઓ છે જેમનામાં તેવા યજ્ઞો દ્વારા– વસિષ્ઠ વગેરેને કારણે '**ततैः**' વિસ્તાર પામેલા યજ્ઞો વડે— '**धन्वनि**' ધન્વદેશમાં, નિર્જળ પ્રદેશમાં, સરસ્વતીના '**अभिस्त्रोतम्**' પ્રવાહની સામે, તે નદીના સામેના પ્રદેશમાં, એમ અર્થ છે.॥ ૨૨ ॥

यस्य क्रतुषु गीर्वाणैः सदस्या ऋत्विजो जनाः।
तुल्यरूपाश्चानिमिषा व्यदृश्यन्त सुवाससः॥ २३

જે અમ્બરીષ રાજાના (અશ્વમેધ) યજ્ઞોમાં દેવો સાથે સભ્યો, ઋત્વિજો અને (અન્ય) જનો (બેસતા હતા ત્યારે) સુંદર વસ્ત્રાભૂષણો અને નિર્નિમેષ નયનોવાળા (હોવાને કારણે તેઓ પણ) દેવો જેવા રૂપવાળા દેખાતા હતા.॥ ૨૩॥

किंच यस्य क्रतुषु सदस्यादयो गीर्वाणैः सह भूषणादिभिस्तुल्यरूपा व्यदृश्यन्त स इत्थमिति चतुर्थेनान्वयः। न च देवानां निमेषाभावाद्वैलक्षण्यम्। यतोऽनिमिषाश्च व्यदृश्यन्त। न निमिषन्तीति तथा। आश्चर्यदर्शनौत्सुक्येन तेषां निमेषोपरमादिति भावः॥ २३॥

स्वर्गो न प्रार्थितो यस्य मनुजैरमरप्रियः।
शृण्वद्भिरुपगायद्भिरुत्तमश्लोकचेष्टितम्॥ २४

यस्य यदीयैर्मनुजैरपि स्वर्गो न प्रार्थितस्तस्य तु का वार्ता॥ २४॥

समर्धयन्ति तान् कामाः स्वाराज्यपरिभाविताः।
दुर्लभा नापि सिद्धानां मुकुन्दं हृदि पश्यतः॥
॥ २५॥

आस्तां स्वर्गप्रार्थनशङ्कापि। यद्यतः मुकुन्दं हृदि पश्यतस्ताञ्जनान्कामा विषया न समर्धयन्ति न हर्षयन्ति। कथंभूताः।

स्वाराज्येन स्वरूपसुखेन परिभाविता अतिशायिताः। अत एव सिद्धानामपि दुर्लभाः।

વળી, જે રાજાના યજ્ઞોમાં સભ્યો વગેરે દેવો સાથે (બેસતા હતા ત્યારે) સુંદર વસ્ત્રાભૂષણો વગેરેને કારણે દેવો જેવા રૂપવાળા દેખાતા હતા. **'स इत्थम्'** એમ આનાથી ચોથા શ્લોક (૨૬) સાથે અન્વય છે. દેવોમાં પલકારાનો અભાવ હોવાથી દેવોની (સભ્યોથી) વિલક્ષણતા રહી નહીં, કારણ કે સભ્યો પણ નિર્નિમેષ નયનોવાળા દેખાતા હતા. પલકારા ન મારે તેવા– (યજ્ઞમાં) આશ્ચર્યકારક (દેવ)દર્શન માટે ઉત્સુકતાને કારણે તે સભ્યો વગેરેના પલકારા બંધ થઈ ગયા હતા, તેવો ભાવ છે.॥ ૨૩॥

ઉત્તમ કીર્તિવાળા ભગવાનનાં ચરિત્રોનું શ્રવણ કરતા અને ગાન કરતા જેના પ્રજાજનો દ્વારા પણ દેવોને પ્રિય એવા સ્વર્ગની પ્રાર્થના કરવામાં આવતી ન હતી. (તો તે નિઃસ્પૃહી રાજાને તો સ્વર્ગની કામના હોય જ ક્યાંથી?)॥ ૨૪॥

'यस्य' જેના પ્રજાજનો દ્વારા પણ સ્વર્ગની પ્રાર્થના કરવામાં આવતી ન હતી, તો તે રાજાની તો વાત જ શી?॥ ૨૪॥

(પરમાનંદસ્વરૂપ) મુકુન્દ ભગવાનને હૃદયમાં નિહાળતા, તે (પ્રજા)જનોને, સિદ્ધોને પણ દુર્લભ અને જેમનાથી સ્વરૂપનો આનંદ ચઢિયાતો છે તેવા વિષયભોગો આનંદ આપતા ન હતા.॥ ૨૫॥

સ્વર્ગપ્રાપ્તિની વાતતો બાજુએ રહી. સ્વર્ગ માટે પ્રાર્થના કરતા હોય તેવી શંકાને પણ સ્થાન નથી. **'यत्'** કારણ કે મુકુન્દ ભગવાનને હૃદયમાં નિહાળતા તે જનોને **'कामाः'** વિષયો **'न समर्धयन्ति'** આનંદ આપતા નથી. કેવા વિષયો? **'स्वाराज्येन' 'परिभाविताः'** ચઢિયાતા સ્વરૂપસુખની પ્રાપ્તિથી ઊતરતા બનાવી દેવામાં આવેલા વિષયો, આથી જ સિદ્ધોને પણ દુર્લભ એવા વિષયો— **'तान्कामाः'** ને

यानिति पाठे यान्मनुजान्। स्वाराज्येत्यत्रापि द्वितीयान्तपाठे मनुजानां विशेषणम्। यमिति पाठे यमम्बरीषम्। पश्यतामिति पाठे सिद्धानां विशेषणम्॥ २५॥

બદલે '**यान्कामाः**' પાઠ હોય તો '**यान् मनुजान्**' જે જનોને (વિષયો આનંદ આપતા ન હતા). '**स्वाराज्य**'ને બદલે '**स्वाराज्यान्**' એમ દ્વિતીયાન્ત પાઠ હોય તો આ શબ્દને મનુજના વિશેષણ તરીકે લેવો. '**स्वाराज्यान् मनुजान्**' આત્મસુખવાળા મનુષ્યોને (વિષયો આનંદ આપતા ન હતા). '**यम्**' પાઠમાં, જે અમ્બરીષને (મુકુન્દ ભગવાનને હૃદયમાં નિહાળતા જે અમ્બરીષને), '**पश्यतः**' ને બદલે '**पश्यताम्**' પાઠ હોય તો તે '**सिद्धानाम्**'નું વિશેષણ છે.॥ ૨૫॥

एवं भगवदाराधनपरस्य कामाद्युपेक्षा नैव चित्रमित्युपसंहरति—**स इत्थमिति** द्वाभ्याम्।

આમ, ભગવાનની આરાધનામાં પરાયણ એવા રાજાની કામાદિ પ્રત્યે ઉપેક્ષા હોય તેમાં આશ્ચર્ય જ નથી, એમ બે શ્લોકો દ્વારા ઉપસંહાર કરે છે— '**सः इत्थम् इति।**'

स इत्थं भक्तियोगेन तपोयुक्तेन पार्थिवः।
स्वधर्मेण हरिं प्रीणन् सङ्गान् सर्वान् शनैर्जहौ॥ २६
॥ २६॥

આમ, તપયુક્ત ભક્તિયોગથી અને સ્વધર્માચરણથી તે રાજાએ શ્રીહરિને પ્રસન્ન કરતાં ધીમે ધીમે સર્વ આસક્તિઓનો ત્યાગ કર્યો. ॥ ૨૬॥ ૨૬॥

गृहेषु दारेषु सुतेषु बन्धुषु
द्विपोत्तमस्यन्दनवाजिपत्तिषु।
अक्षय्यरत्नाभरणायुधादि-
ष्वनन्तकोशेष्वकरोदसन्मतिम्॥ २७
॥ २७॥

ઘર, સ્ત્રી, પુત્રો, સંબંધીઓ, હાથીઓ, ઉત્તમ રથો, ઘોડા, પાયદળો, અક્ષય રત્નો, અલંકારો, આયુધો વગેરે અને અનંત ખજાનાઓમાં તેમણે (આ સર્વ) મિથ્યા છે તેવો નિશ્ચય કર્યો હતો.॥ ૨૭॥ ૨૭॥

नन्वेवंभूतोऽसौ कथं प्रतिपक्षान् जयेत्तत्राह—**तस्मा इति**।

પ્રશ્ન કરવામાં આવ્યો છે કે આવા (વિષયાસક્તિરહિત) તે રાજા વિરોધીઓને શી રીતે જીતી શકે? તે માટે આ શ્લોક કહે છે— '**तस्मै इति।**'

तस्मा अदाद्धरिश्चक्रं प्रत्यनीकभयावहम्।
एकान्तभक्तिभावेन प्रीतो भृत्याभिरक्षणम्॥ २८
॥ २८॥

રાજાના અનન્ય ભક્તિભાવથી પ્રસન્ન થયેલા શ્રીહરિએ તેને વિરોધીઓને ભય ઉપજાવનારું અને સેવકોનું સર્વ રીતે રક્ષણ કરનારું સુદર્શનચક્ર આપ્યું હતું.॥ ૨૮॥ ૨૮॥

तदेवं तस्य वैराग्यादिकं हरिभक्तिं चोक्त्वा ब्रह्मदण्डो यत्र न प्राभूदिति यदुक्तं तदेव द्वादशीव्रतनिष्ठां कथयन्नाह—**आरिराधयिषुरित्यादिना** यावदध्यायसमाप्ति।

આમ, તે રાજાના વૈરાગ્યાદિ તથા હરિભક્તિનું વર્ણન કરીને, 'જેના ઉપર બ્રહ્મશાપ પણ કંઈ ન કરી શક્યો.' (શ્લોક-૧૩) એમ જે કહેવામાં આવ્યું, તે દ્વાદશીવ્રતમાં રાજાની નિષ્ઠાનું વર્ણન કરતાં '**आरिराधयिषुः**' વગેરેથી લઈને અધ્યાય સમાપ્ત થાય ત્યાં સુધી કહે છે—

आरिराधयिषुः कृष्णं महिष्या तुल्यशीलया।
युक्तः सांवत्सरं वीरो दधार द्वादशीव्रतम्॥ २९

॥ २९ ॥

શ્રીકૃષ્ણની આરાધના કરવાની ઈચ્છાવાળા વીર અમ્બરીષે પોતાના સમાન શીલવાળી ભાર્યા સાથે વાર્ષિક દ્વાદશીવ્રત કર્યું હતું.॥ ૨૯॥ ૨૯॥

वंशीधरी—द्वादशीव्रतं—द्वादशीमिलितैकादशीव्रतमित्यर्थः।

દ્વાદશીવ્રત–દ્વાદશી સાથે એકાદશીનું વ્રત એમ અર્થ છે.

व्रतान्ते कार्तिके मासि त्रिरात्रं समुपोषितः।
स्नातः कदाचित् कालिन्द्यां हरिं मधुवनेऽर्चयत्॥ ३०

વ્રતને અંતે કારતક માસમાં ત્રણ રાત્રિ પર્યન્ત જેમણે (વિધાન અનુસાર) ઉપવાસ કર્યો છે તેવા રાજાએ યમુનાજીમાં સ્નાન કરીને મધુવન (મથુરા)માં કોઈક સમયે શ્રીહરિની અર્ચના કરી.॥ ૩૦॥

अर्चयत्। अडागमाभाव आर्षः॥ ३०॥

'**अर्चयत्**' માં ભૂ.કા.ના '**अ**' નો અભાવ આર્ષ છે, '**आर्चयत्**' રૂપ થાય.॥ ૩૦॥

महाभिषेकविधिना सर्वोपस्करसम्पदा।
अभिषिच्याम्बराकल्पैर्गन्धमाल्यार्हणादिभिः॥ ३१

॥ ३१ ॥

સર્વ પ્રકારની સામગ્રીઓની સમ્પત્તિવાળા મહાઅભિષેકના વિધિથી ભગવાનનો અભિષેક કરી વસ્ત્રો, અલંકારો, ચંદન, પુષ્પ (પુષ્પમાળા), અર્ઘ્યજળ વગેરે દ્વારા॥ ૩૧॥ ૩૧॥

तद्गतान्तरभावेन पूजयामास केशवम्।
ब्राह्मणांश्च महाभागान् सिद्धार्थानपि भक्तितः॥ ३२

એક માત્ર તે ભગવાનમાં ચિત્ત રાખીને રાજાએ (એકાગ્રભાવે) કેશવની પૂજા કરી અને જેમની (સર્વ) કામનાઓ પરિપૂર્ણ થઈ હતી તેવા (બ્રાહ્મણો હોવા છતાં) તે મહાભાગ્યશાળી બ્રાહ્મણોની પણ ભક્તિપૂર્વક પૂજા કરી.॥ ૩૨॥

ब्राह्मणांश्च पूजयामास। सिद्धार्थानाप्तकामान् पूजानपेक्षानपि॥ ३२॥

બ્રાહ્મણોની પણ પૂજા કરી. '**सिद्धार्थान्**' જેમની કામનાઓ પરિપૂર્ણ થઈ છે તેવા બ્રાહ્મણોની, પૂજાની જેમને અપેક્ષા ન હતી તેવાઓની પણ (પૂજા કરી).॥ ૩૨॥

गवां रुक्मविषाणीनां रूप्याङ्घ्रीणां सुवाससाम्।
पयःशीलवयोरूपवत्सोपस्करसम्पदाम् ॥ ३३

प्राहिणोत् साधुविप्रेभ्यो गृहेषु न्यर्बुदानि षट्।
भोजयित्वा द्विजानग्रे स्वाद्वन्नं गुणवत्तमम्॥ ३४

लब्धकामैरनुज्ञातः पारणायोपचक्रमे।
तस्य तर्ह्यतिथिः साक्षाद् दुर्वासा भगवानभूत्॥ ३५

રૂપ્યાઙ્ઘ્રીણાં रूप्यखुराणाम्। पयःशीलादि-संपदो यासां तासाम्॥ ३३॥

न्यर्बुदानि षट् षष्टिकोटीः॥ ३४॥

तर्हि तदैव दुर्वासा अतिथिः साक्षात् प्रत्यक्षोऽभूत्॥ ३५॥

तमानर्चातिथिं भूपः प्रत्युत्थानासनार्हणैः।
ययाचेऽभ्यवहाराय पादमूलमुपागतः॥ ३६

आनर्चार्चितवान्। अभ्यवहाराय भोजनाय ॥ ३६॥

प्रतिनन्द्य स तद्याच्ञां कर्तुमावश्यकं गतः।
निममज्ज बृहद् ध्यायन् कालिन्दीसलिले शुभे॥ ३७

आवश्यकं नैयमिकं माध्याह्निकं कर्म कर्तुं गतः। बृहद् ब्रह्म॥ ३७॥

मुहूर्तार्धावशिष्टायां द्वादश्यां पारणं प्रति।
चिन्तयामास धर्मज्ञो द्विजैस्तद्धर्मसङ्कटे॥ ३८

॥ ३८॥

સોને મઢેલાં શિંગડાંવાળી, રૂપાથી મઢેલી ખરીઓવાળી, સુંદર વસ્ત્રો ઓઢાડેલી, ખૂબ દૂધ આપવાના સ્વભાવવાળી, નાની અવસ્થાવાળી, શરીરસૌષ્ઠવવાળી, વાછરડાવાળી તેમ જ (દોહનપાત્ર, ઘંટડી વગેરે) સાધનોથી સમ્પન્ન એવી સાઈઠ કરોડ ગાયોનું સુપાત્ર બ્રાહ્મણોના ગૃહોમાં (દાન કર્યું), પહેલાં ભૂદેવોને સ્વાદિષ્ટ અને અત્યંત ગુણવાન ભોજન જમાડીને, સર્વ કામનાઓને પ્રાપ્ત થયેલા તેમની પાસેથી આજ્ઞા લઈ રાજાએ પારણાં કરવાની તૈયારી કરી. તે જ સમયે સાક્ષાત્ ભગવાન દુર્વાસા તે રાજાના અતિથિ થયા.॥ ૩૩॥ ૩૪॥ ૩૫॥

'रूप्य-अङ्घ्रीणाम्' ચાંદીની ખરીઓવાળી, દૂઝણી વગેરે સંપત્તિઓ જેમની છે તેમનું ॥ ૩૩॥

'न्यर्बुदानि षट्' સાઈઠ કરોડ॥ ૩૪॥

'तर्हि' તે જ સમયે અતિથિરૂપે દુર્વાસા **'साक्षात्'** પ્રત્યક્ષ (પ્રકટ) થયા.॥ ૩૫॥

સામે ઊભા થઈ, આસન તથા અર્ઘ્યજળથી રાજાએ અતિથિ દુર્વાસાનું પૂજન કર્યું અને ચરણ સમીપે જઈ (પ્રણામ કરી) ભોજન માટે પ્રાર્થના કરી.॥ ૩૬॥

'आनर्च' પૂજા કરી— **'अभ्यवहाराय'** ભોજન માટે॥ ૩૬॥

તેઓ તેની પ્રાર્થનાનો સ્વીકાર કરીને (મધ્યાહ્નના નિયમ અનુસારનાં નિત્ય) આવશ્યક કર્મો કરવા માટે ગયા અને શ્રીયમુનાજીના પવિત્ર જળમાં બ્રહ્મનું ધ્યાન કરતાં ડૂબકી મારી.॥ ૩૭॥

'आवश्यकम्' મધ્યાહ્નના નિયમ અનુસારના નિત્ય કર્મો કરવા માટે ગયા. **'बृहत्'** બ્રહ્મ॥ ૩૭॥

પારણાં કરવા માટે દ્વાદશી તિથિ એક ઘડી (અર્ધ મુહૂર્ત) જેટલી બાકી રહી, ત્યારે ધર્મવેત્તા રાજા અમ્બરીષ (આવી પડેલા) તે ધર્મસંકટ વિષે બ્રાહ્મણો સાથે વિચારણા કરવા લાગ્યા.॥ ૩૮॥૩૮॥

वंशीधरी—

'एकादशीव्रतं कृत्वा द्वादश्यां यो न पारयेत्।
व्रतं सांवत्सरं तस्य व्येति कन्दर्पपारणात्॥'

इति स्मृतेः। 'कन्दर्पस्त्रयोदशी।'

धर्मसंकटमेवाह—

ब्राह्मणातिक्रमे दोषो द्वादश्यां यदपारणे।
यत् कृत्वा साधु मे भूयादधर्मो वा न मां स्पृशेत्॥ ३९

यद्यतो ब्राह्मणातिक्रमे दोषोऽधर्मः। द्वादश्यामपारणेऽपि दोषो व्रतवैगुण्यम्। यत्कृत्वा यस्मिन्कृते ॥ ३९ ॥

एवं द्विजैः सह विचार्य निश्चिनोति—**अम्भसेति**।

अम्भसा केवलेनाथ करिष्ये व्रतपारणम्।
प्राहुरब्भक्षणं विप्रा ह्यशितं नाशितं च तत्॥ ४०

व्रतस्य पारणं समाप्तिम्। तदशितमाहुरशितं नेति चाहुः—श्रुतिश्च 'अपोऽश्नाति तन्नैवाशितं नैवानशितम्' इति॥ ४०॥

इत्यपः प्राश्य राजर्षिश्चिन्तयन् मनसाच्युतम्।
प्रत्यचष्ट कुरुश्रेष्ठ द्विजागमनमेव सः॥ ४१

प्रत्यचष्ट प्रत्यैक्षत॥ ४१॥

(१ મુહૂર્ત = ૨ ઘડી = ૪૮ મિનિટ)

'એકાદશીવ્રત કરીને દ્વાદશીમાં જે પારણાં ન કરે તેનું વાર્ષિક દ્વાદશીવ્રત તેરશમાં પારણાં કરવાથી નષ્ટ થાય છે, એમ સ્મૃતિ છે.' '**कन्दर्पः**' = ત્રયોદશી

(રાજા ઉપર આવી પડેલા) ધર્મસંકટનું વર્ણન કરે છે—

બ્રાહ્મણનો અનાદર (નિમંત્રણ આપી તેનો નિરાદર કરીને પોતે ભોજન) કરવામાં અધર્મ થાય છે તથા દ્વાદશીમાં પારણાં ન કરવામાં (વ્રતમાં ત્રુટિ થવાથી પણ) પાપ લાગે છે. માટે જેમ કરવામાં મારું કલ્યાણ થાય અને મને અધર્મ ન સ્પર્શે (તેમ આજ્ઞા કરો).॥ ૩૯॥

'**यत्**' જેનાથી બ્રાહ્મણનો અનાદર કરવામાં '**दोषः**' અધર્મ થાય છે. દ્વાદશીમાં પારણાં ન કરવામાં પણ '**दोषः**' વ્રતમાં ત્રુટિ થાય છે. '**यत्कृत्वा**' જે કરવામાં॥ ૩૯॥

આમ, બ્રાહ્મણો સાથે વિચાર કરીને રાજા નિશ્ચય કરે છે— '**अम्भसा इति।**'

તો હવે કેવળ જળથી હું વ્રતનાં પારણાં કરીશ, કારણ કે જળાહારને વિપ્રો ભોજન કર્યા સમાન અને ભોજન ન કર્યા સમાન પણ કહે છે.॥ ૪૦॥

વ્રતની '**पारणम्**' સમાપ્તિ– તે જળાહારને (વિપ્રો) ભોજન કર્યા સમાન અને ન કર્યા સમાન પણ કહે છે— શ્રુતિ પણ છે. 'જળનું પાન કરે છે તેને ભોજન પણ કહેવાય અને ભોજન ન પણ કહેવાય.'॥ ૪૦॥

આમ, (નિશ્ચય કરી) મનથી અચ્યુત ભગવાનનું ચિંતન કરતા તે રાજર્ષિ અમ્બરીષ થોડા જળનું પાન કરીને, હે કુરુશ્રેષ્ઠ પરીક્ષિત, દ્વિજ દુર્વાસાના આગમનની પ્રતીક્ષા કરવા લાગ્યા.॥ ૪૧॥

'**प्रत्यचष्ट**' પ્રતીક્ષા કરવા લાગ્યા.॥ ૪૧॥

दुर्वासा यमुनाकूलात् कृतावश्यक आगतः।
राज्ञाभिनन्दितस्तस्य बुबुधे चेष्टितं धिया॥ ४२

॥ ४२॥

પોતાનું (મધ્યાહ્ને કરવામાં આવતું) આવશ્યક કર્મ કરીને દુર્વાસા યમુનાકિનારેથી આવી ગયા. રાજા દ્વારા આવકાર પામેલા દુર્વાસાએ સૂક્ષ્મ (**'धिया'**) દૃષ્ટિથી રાજાનું ચેષ્ટિત જાણ્યું.॥ ૪૨॥ ૪૨॥

मन्युना प्रचलद्गात्रो भ्रुकुटीकुटिलाननः।
बुभुक्षितश्च सुतरां कृताञ्जलिमभाषत॥ ४३

(ચડી ગયેલાં) ભવાંને કારણે કુટિલ મુખવાળા અને ક્રોધને કારણે કંપતા શરીરવાળા તથા અત્યન્ત ભૂખ્યા દુર્વાસા, હાથ જોડીને ઊભેલા રાજાને કહેવા લાગ્યા.॥ ૪૩॥

प्रचलत्कम्पमानं गात्रं यस्य। भ्रुकुटीभ्यां कुटिलमाननं यस्य॥ ४३॥

'प्रचलत्' કંપતું શરીર છે જેમનું, (ચડી ગયેલાં) બંને ભવાંઓને કારણે કુટિલ મુખ છે જેમનું॥ ૪૩॥

अहो अस्य नृशंसस्य श्रियोन्मत्तस्य पश्यत।
धर्मव्यतिक्रमं विष्णोरभक्तस्येशमानिनः॥ ४४

॥ ४४॥

અરે! સમ્પત્તિને કારણે ઉન્મત્ત બનેલા, પોતાને ઈશ્વર (સ્વતન્ત્ર) માનનારા, વિષ્ણુના અભક્ત અને ક્રૂર એવા આ રાજાનો અન્યાય (ધર્મનું ઉલ્લંઘન તો) જુઓ!॥ ૪૪॥ ૪૪॥

यो मामतिथिमायातमातिथ्येन निमन्त्र्य च।
अदत्त्वा भुक्तवांस्तस्य सद्यस्ते दर्शये फलम्॥ ४५

॥ ४५॥

જેણે આવેલા અતિથિ એવા મને અતિથિસત્કાર માટે નિમંત્રણ આપીને, મને ભોજન આપ્યા વિના પોતે ભોજન કરી લીધું! આનું ફળ હું, તને હમણાં જ બતાવું (ચખાડું) છું.॥ ૪૫॥ ૪૫॥

एवं ब्रुवाण उत्कृत्य जटां रोषविदीपितः।
तया स निर्ममे तस्मै कृत्यां कालानलोपमाम्॥ ४६

॥ ४६॥

ક્રોધથી બળી ગયેલા દુર્વાસાએ એમ બોલતાં બોલતાં જટા ઉખાડીને તે અમ્બરીષ માટે પ્રલયકાળના અગ્નિ જેવી કૃત્યા તે જટામાંથી ઉત્પન્ન કરી.॥ ૪૬॥ ૪૬॥

वीर.—'कृत्याम् मारिकां शक्तिम्।'

મારકશક્તિ કૃત્યાને (ઉત્પન્ન કરી).

तामापतन्तीं ज्वलतीमसिहस्तां पदा भुवम्।
वेपयन्तीं समुद्वीक्ष्य न चचाल पदान्नृपः॥ ४७

॥ ४७॥

હાથમાં તલવાર ધારણ કરી પગથી ધરણીને ધ્રુજાવતી, બળબળતી અને સામે ધસી આવતી તે કૃત્યાને જોઈને રાજા પોતાના સ્થાનેથી (સહેજ પણ) વિચલિત થયા નહીં.॥ ૪૭॥ ૪૭॥

प्राग्दिष्टं भृत्यरक्षायां पुरुषेण महात्मना।
ददाह कृत्यां तां चक्रं क्रुद्धाहिमिव पावकः॥ ४८

પરમ પુરુષ પરમાત્માએ ભક્તની રક્ષા માટે આપેલા સુદર્શન ચક્રે ક્રોધે ભરાયેલા સાપને જેમ દાવાગ્નિ (બાળે) તેમ તેને બાળી નાખી.॥ ૪૮॥

क्रुद्धमहिं पावको दावाग्निरिव॥ ४८॥

ક્રોધે ભરાયેલા સાપને **'पावकः'** જેમ દાવાગ્નિ (બાળે) તેમ તેને બાળી નાખી.॥ ૪૮॥

तदभिद्रवदुद्वीक्ष्य स्वप्रयासं च निष्फलम्।
दुर्वासा दुद्रुवे भीतो दिक्षु प्राणपरीप्सया॥ ४९

પોતાની સામે ધસતા તે ચક્રને જોઈને તથા પોતાના પ્રયાસને નિષ્ફળ થયેલો જોઈ ભયભીત થયેલા દુર્વાસા પ્રાણ બચાવવાની ઈચ્છાથી (ચારેય) દિશાઓમાં દોડવા લાગ્યા.॥ ૪૯॥

निष्फलमुद्वीक्ष्य॥ ४९॥

નિષ્ફળ જોઈને॥ ૪૯॥

तमन्वधावद् भगवद्रथाङ्गं
दावाग्निरुद्धूतशिखो यथाहिम्।
तथानुषक्तं मुनिरीक्षमाणो
गुहां विविक्षुः प्रससार मेरोः॥ ५०

ઊંચી શિખા (લપટો)વાળો દાવાગ્નિ જેમ સાપની પાછળ દોડે તેમ ભગવાનના તે ચક્રને પાછળ આવતું જોતાં, મેરુ પર્વતની ગુફામાં પ્રવેશવાની ઈચ્છાવાળા મુનિ નાઠા.॥ ૫૦॥

अनुषक्तं पृष्ठतः संसक्तम्। मेरोर्गुहां विविक्षुरधावत्॥ ५०॥

'अनुषक्तम्' પીછો કરતા ચક્રને– મેરુની ગુફામાં પ્રવેશવાની ઈચ્છાવાળા મુનિ નાઠા.॥ ૫૦॥

दिशो नभः क्ष्मां विवरान् समुद्राँ-
ल्लोकान् सपालांस्त्रिदिवं गतः सः।
यतो यतो धावति तत्र तत्र
सुदर्शनं दुष्प्रसहं ददर्श॥ ५१

॥ ५१॥

દિશાઓ, આકાશ, પૃથ્વી, ગુફાઓ, સમુદ્રો, (સર્વ) લોક, લોકપાલો અને સ્વર્ગમાં જ્યાં જ્યાં તે દુર્વાસા ભાગ્યા, ત્યાં ત્યાં અત્યંત અસહ્ય (તેજવાળું) સુદર્શનચક્ર તેમને દેખાયું. ॥ ૫૧॥ ૫૧॥

अलब्धनाथः स यदा कुतश्चित्
संत्रस्तचित्तोऽरणमेषमाणः।
देवं विरिञ्चं समगाद् विधात-
स्त्राह्यात्मयोनेऽजिततेजसो माम्॥ ५२

જ્યારે પોતાનું રક્ષણ કરનાર ક્યાંયથી પ્રાપ્ત ન થયો, ત્યારે ત્રાસી ગયેલા ચિત્તવાળા અને શરણ ઈચ્છતા તે દુર્વાસા દેવશિરોમણિ વિરિંચિ (બ્રહ્માજી) પાસે ગયા (અને કહેવા લાગ્યા). હે વિધાતા, હે આત્મયોનિ, અજિત ભગવાનના તેજોમય (ચક્ર)થી મારું રક્ષણ કરો.॥ ૫૨॥

अरणमेषमाणः शरणमिच्छन्। अजिततेजसो हरेश्चक्रात्॥ ५२॥

'अरणम्-एषमाणः' શરણ ઈચ્છતા દુર્વાસા, **'अजिततेजसः'** અજિત એવા ભગવાન શ્રીહરિના તેજોમય ચક્રથી॥ ૫૨॥

ब्रह्मोवाच

स्थानं मदीयं सहविश्वमेतत्
क्रीडावसाने द्विपरार्धसंज्ञे।
भ्रूभङ्गमात्रेण हि संदिधक्षोः
कालात्मनो यस्य तिरोभविष्यति॥ ५३

બ્રહ્માજી બોલ્યા – 'દ્વિપરાર્ધ' સંજ્ઞાવાળા પ્રલયકાળે (જગતના જન્માદિ વ્યાપારરૂપ) ક્રીડાના અંતે આ (સર્વ) બાળી નાખવા ઈચ્છતા કાળસ્વરૂપ જેમના (ભગવાનના) ભ્રૂભંગમાત્રથી વિશ્વસહિત મારું સ્થાન નાશ પામશે (તે ભગવાનના તેજથી રક્ષણ કરવા માટે હું સમર્થ નથી).॥ ૫૩॥

एतत्सर्वं यस्य भ्रूभङ्गमात्रेण तिरोभविष्यति। कदा। क्रीडाया अवसाने। तदपि कदा। द्विपरार्धसंज्ञे काले ॥ ५३ ॥

अहं भवो दक्षभृगुप्रधानाः
प्रजेशभूतेशसुरेशमुख्याः ।
सर्वे वयं यन्नियमं प्रपन्ना
मूर्ध्न्यर्पितं लोकहितं वहामः ॥ ५४

અતો वयं सर्वे यस्य नियममाज्ञां प्रपन्नाः प्राप्ताः सन्तो लोकहितं यथा भवत्येवं तन्नियमं मूर्ध्न्यर्पितं वहामः। अतस्तद्भक्तद्रोहिणं त्वां रक्षितुं न समर्थोऽहमिति शेषः। यत्तदोर्नित्यसंबन्धात् ॥ ५४ ॥

प्रत्याख्यातो विरिञ्चेन विष्णुचक्रोपतापितः।
दुर्वासाः शरणं यातः शर्वं कैलासवासिनम्॥ ५५

॥ ५५ ॥

श्रीरुद्रोऽपि प्रत्याचष्टे—**वयमिति** चतुर्भिः—

श्रीरुद्र उवाच

वयं न तात प्रभवाम भूम्नि
यस्मिन् परेऽन्येऽप्यजजीवकोशाः।
भवन्ति काले न भवन्ति हीदृशाः
सहस्रशो यत्र वयं भ्रमामः ॥ ५६

આ સર્વ જેમના ભ્રૂભંગ (વક્ર ભ્રૂકૂટિ) માત્રથી તિરોહિત (નષ્ટ) થઈ જશે, ક્યારે? ક્રીડાના અંતે. તે પણ ક્યારે? 'દ્વિપરાર્ધ' સંજ્ઞાવાળા પ્રલયકાળે ॥ ૫૩ ॥

(તેથી) હું, શંકર, દક્ષ અને ભૃગુ જેમનામાં મુખ્ય છીએ તેવા અમે, (મરીચિ વગેરે) પ્રજાપતિઓ, (એકાદશ રુદ્રાદિ) ભૂતપતિઓ તથા ઈન્દ્ર જેમનામાં મુખ્ય છે (તે દેવો)– અમે બધા જેમની આજ્ઞાને પ્રાપ્ત થઈ, સંસારનું કલ્યાણ જે રીતે થાય તે રીતે તેમની આજ્ઞા શિરોધાર્ય કરીને પાળીએ છીએ. ॥ ૫૪ ॥

આથી અમે બધા જેમની '**नियमम्**' આજ્ઞાને '**प्रपन्नाः**' પ્રાપ્ત થઈ સંસારનું કલ્યાણ જેમ થાય એમ તેમની આજ્ઞાને શિરોધાર્ય કરીને પાળીએ છીએ. આથી 'તેમના ભક્તનો દ્રોહ કરનાર એવા તમને બચાવવા હું સમર્થ નથી', એટલું શેષ છે, કારણ કે '**यत्**' અને '**तत्**' નો નિત્ય સંબંધ છે. ॥ ૫૪ ॥

બ્રહ્માજી દ્વારા અસ્વીકાર પામેલા અને ભગવાન વિષ્ણુના ચક્રથી સન્તપ્ત થયેલા દુર્વાસા કૈલાસવાસી ભગવાન શંકરને શરણે ગયા. ॥ ૫૫ ॥ ૫૫ ॥

શ્રીરુદ્રે પણ ચાર શ્લોકો દ્વારા અસ્વીકાર કર્યો— '**वयम् इति।**'

શ્રીરુદ્ર બોલ્યા — હે તાત (દુર્વાસાજી), જે બ્રહ્માંડોમાં 'લોકેશ' એવા અભિમાનવાળા અમે ભ્રમણ કરીએ છીએ તથા બ્રહ્મારૂપ જીવો અને તેમના નિવાસસ્થાનરૂપ આવાં દૃશ્યમાન થતાં બ્રહ્માંડ(ના પ્રમાણવાળાં બીજાં પણ હજારો બ્રહ્માંડો) જે પરમાત્મામાં સૃષ્ટિકાળે ઉત્પન્ન થાય છે અને પ્રલયકાળે (તેમનામાં જ) લીન થાય છે, તે (અત્યંત મહાન) ભૂમાના વિષયમાં અમે કંઈ પણ કરવાને સમર્થ નથી. ॥ ૫૬ ॥

भूम्नि महति। महत्त्वमेवाह— यस्मिन्परमेश्वरे। अजा ब्रह्माणस्त एव जीवास्तेषां कोशा उपाधिभूता ब्रह्माण्डविग्रहा ईदृशा दृश्यमानब्रह्माण्डप्रमाणा अन्येऽपि भवन्ति जायन्ते नश्यन्ति च। यत्र येषु ब्रह्माण्डेषु लोकेशाभिमानिनो वयं भ्रमामः ॥ ५६ ॥

'भूम्नि' મહાન (પરમેશ્વર)ના વિષયમાં પરમેશ્વરની મહત્તાનું જ વર્ણન કરે છે— જે પરમેશ્વરમાં **'अजाः'** બ્રહ્માઓ, તે બ્રહ્માઓ જ જીવો, તેમના **'कोशाः'** ઉપાધિભૂત (નિવાસરૂપ) બ્રહ્માંડરૂપ વિગ્રહો, **'ईदृशाः'** આવા દશ્યમાન થતા બ્રહ્માંડના પ્રમાણવાળાં બીજાં પણ બ્રહ્માંડો **'भवन्ति'** જન્મે છે અને નાશ પામે છે. **'यत्र'** જે બ્રહ્માંડોમાં 'લોકેશ' એવા અભિમાનવાળા અમે ભ્રમણ કરીએ છીએ. ॥ ૫૬ ॥

बा.प्र.—स्वांशावतारत्वात् प्रतारणशङ्कानिरासार्थं स्नेहं सूचयन् सम्बोधयति—तातेति।

દુર્વાસાજી પોતાના અંશાવતાર હોવાથી છળની શંકા દૂર કરવા માટે સ્નેહ સૂચવતા (ભગવાન રુદ્ર) 'હે તાત' એમ સંબોધન કરે છે.

ननु सर्वज्ञस्य तव भ्रमः कुतस्तत्राह— **अहमिति।**

શંકા કરવામાં આવી છે કે સર્વજ્ઞ એવા આપને ભ્રમ કેવી રીતે? તે માટે ઉત્તર આપે છે— **'अहम् इति।'**

अहं सनत्कुमारश्च नारदो भगवानजः।
कपिलोऽपान्तरतमो देवलो धर्म आसुरिः ॥ ५७ ॥ ॥ ५७ ॥
मरीचिप्रमुखाश्चान्ये सिद्धेशाः पारदर्शिनः।
विदाम न वयं सर्वे यन्मायां माययाऽऽवृताः ॥ ५८

હું, સનત્કુમાર, નારદ, ભગવાન બ્રહ્મા, કપિલ, અપાન્તરતમ (વ્યાસજી), દેવલ, ધર્મ, આસુરિ તથા મરીચિ જેમાં મુખ્ય છે તે બીજા સિદ્ધેશ્વરો– અમે બધા સર્વજ્ઞ છીએ, છતાં જેમની માયાને જાણતા નથી, (તેમની જ) માયાથી ઘેરાયેલા છીએ. ॥ ૫૭ ॥ ૫૭ ॥ ૫૮ ॥

पारदर्शिनः सर्वज्ञा अपि यस्य मायां न विद्मः ॥ ५८ ॥

'पारदर्शिनः' સર્વજ્ઞ હોવા છતાં જેમની માયાને જાણતા નથી ॥ ૫૮ ॥

तस्य विश्वेश्वरस्येदं शस्त्रं दुर्विषहं हि नः।
तमेव शरणं याहि हरिस्ते शं विधास्यति ॥ ५९ ॥ ५९ ॥

તે વિશ્વેશ્વરનું આ શસ્ત્ર આપણે માટે અસહ્ય છે. (માટે) તમે તેમને જ શરણે જાઓ. શ્રીહરિ તમારું કલ્યાણ કરશે. ॥ ૫૯ ॥ ॥ ૫૯ ॥

ततो निराशो दुर्वासाः पदं भगवतो ययौ।
वैकुण्ठाख्यं यदध्यास्ते श्रीनिवासः श्रिया सह ॥ ६० ॥ ६० ॥

નિરાશ થયેલા દુર્વાસા ત્યાંથી ભગવાનના વૈકુંઠ નામના ધામમાં ગયા, જ્યાં લક્ષ્મીના નિવાસસ્થાન એવા ભગવાન લક્ષ્મીજી સાથે રહે છે. ॥ ૬૦ ॥ ॥ ૬૦ ॥

संदह्यमानोऽजितशस्त्रवह्निना
तत्पादमूले पतितः सवेपथुः।
आहाच्युतानन्त सदीप्सित प्रभो
कृतागसं माऽव हि विश्वभावन ॥ ६१

અજિત ભગવાનના શસ્ત્રના વહ્નિથી બળબળતા દુર્વાસા ધ્રુજારી સાથે તેમના ચરણમૂળમાં પડી ગયા અને બોલ્યાઃ હે અચ્યુત, હે અનંત, હે સત્પુરુષો દ્વારા પ્રાપ્ત કરવા ઈચ્છેલા, હે પ્રભુ, હે વિશ્વના જીવનદાતા, અપરાધી એવા મને બચાવો! ॥ ૬૧ ॥

हे सतामीप्सित, मा मां अव पाहि॥ ६१ ॥

अपराधं निवेदयन्प्रार्थयते—**अजानतेति**।

अजानता ते परमानुभावं
कृतं मयाघं भवतः प्रियाणाम्।
विधेहि तस्यापचितिं विधात-
र्मुच्येत यन्नाम्न्युदिते नारकोऽपि॥ ६२

अघं दुःखम्। अपचितिं निष्कृतिम्। मद्भक्तद्रोहे निष्कृतिं न पश्यामीति चेत्तत्राह— यस्य तव नाम्नि कीर्तिते नरकस्थोऽपि मुच्यते, तस्य तव किमशक्यमिति भावः॥ ६२ ॥

श्रीभगवानुवाच

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥ ६३

॥ ६३ ॥

नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना।
श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा॥ ६४

न आशासे न स्पृहयामि॥ ६४ ॥

ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम्।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे॥ ६५

હે સત્પુરુષોના ઈષ્ટ, **'मा'** મને **'अव'** બચાવો.॥ ૬૧ ॥

(પોતાના) અપરાધનું નિવેદન કરતાં પ્રાર્થના કરે છે— **'अजानता इति।'**

આપનો પરમ પ્રભાવ ન જાણતા એવા મારાથી આપના પ્રિય ભક્તનો (તેને દુઃખ આપવારૂપ) અપરાધ થઈ ગયો છે. હે વિધાતા, જે આપનું નામ બોલતાં જ નારકી જીવ પણ (નરકમાંથી) છૂટી જાય છે તે આપ મને તે અપરાધનું પ્રાયશ્ચિત્ત બતાવો.॥ ૬૨ ॥

'अघम्' ભક્તને દુઃખ આપવારૂપ **'अपचितिम्'** પ્રાયશ્ચિત્તને– જો ભગવાન કહે કે મારા ભક્તના દ્રોહ માટે પ્રાયશ્ચિત્ત હું જોતો નથી, તો તે માટે કહે છે– જે આપનું નામ બોલતાં જ નરકમાં રહેલો પણ છૂટી જાય છે, તેવા આપને માટે શું અશક્ય છે? એવો ભાવ છે.॥ ૬૨ ॥

(શ્લોક ૬૩ થી ૬૮ ભક્તષટ્પદી કહેવામાં આવે છે.)

શ્રીભગવાન બોલ્યા — હે ભૂદેવ, હું ભક્તને અધીન છું. નિરપેક્ષ (સાધુ) ભક્તો દ્વારા ગ્રસ્ત (પ્રેમથી વશ કરાયેલા) હૃદયવાળો હું ખરેખર જાણે અસ્વતંત્ર છું, (કારણ કે) જેને ભક્તજનો પ્રિય છે તેવો હું છું.॥ ૬૩ ॥॥ ૬૩ ॥

હે ભૂદેવ, જેમનો પરમ આશ્રય (કેવળ) હું જ છું તેવા નિષ્કામ ભક્તો સિવાય હું ન તો મારી પોતાની સ્પૃહા કરું છું કે ન તો અવિનાશી લક્ષ્મીની.॥ ૬૪ ॥

'न आशासे' સ્પૃહા કરતો નથી.॥ ૬૪ ॥

જે ભક્તો પત્ની, ઘર, પુત્ર, સ્વજનો, પ્રાણ, ધન, આ લોક અને પરલોકને છોડીને કેવળ મારે શરણે આવેલા છે, તેમને છોડવા હું કેવી રીતે તૈયાર થાઉં?॥ ૬૫ ॥

इमं परं च लोकं हित्वा ॥ ६५ ॥

'इमम्' આ લોક અને **'परम्'** પરલોકને છોડીને ॥ ૬૫ ॥

मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः ।
वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा ॥
॥ ६६ ॥ ६६ ॥

જેમ પતિવ્રતા સ્ત્રીઓ સદાચારી પતિને વશ કરી લે છે, તેમ મારી સાથે (પ્રેમથી) બંધાઈ ગયેલા હૃદયવાળા, સમદર્શી સાધુ જનો મને ભક્તિથી વશ કરી લે છે. ॥ ૬૬ ॥ ॥ ૬૬ ॥

मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादिचतुष्टयम् ।
नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत् कालविद्रुतम् ॥ ६७

મારી સેવા કરવાથી જ પરિપૂર્ણ થયેલા (મનોરથવાળા) મારા ભક્તો, મારી સેવાને કારણે પ્રાપ્ત થઈ હોવા છતાં સાલોક્ય વગેરે (સામીપ્ય, સાયુજ્ય, સારૂપ્ય, સાર્ષ્ટિ નામની ચાર મુક્તિઓ પણ) ઈચ્છતા નથી, તો કાળથી જેમનો નાશ થાય છે તેવી બીજી વસ્તુઓને તો ક્યાંથી ઈચ્છે? ॥ ૬૭ ॥

प्रतीतं प्राप्तमपि ॥ ६७ ॥

'प्रतीतम्' પ્રાપ્ત થયા હોવા છતાં ॥ ૬૭ ॥

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम् ।
मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥ ६८
॥ ६८ ॥

સાધુઓ (મારા પ્રેમી ભક્તો) મારું હૃદય છે અને હું સાધુઓનું હૃદય છું. તેઓ મારા સિવાય બીજું કાંઈ જાણતા નથી અને હું પણ તેમના સિવાય બીજું કાંઈ જાણતો નથી. ॥ ૬૮ ॥ ॥ ૬૮ ॥

वंशीधरी—मह्यं ममाम्बरीषं ज्वलयितुमिच्छंस्त्वं मद्धृदयमेव ज्वालयितुं प्रवृत्तोऽभूरित्यर्थः । .... साधुहृदयप्रसादे सत्येव मत्प्रसाद इत्यतो याहि तमम्बरीषमेव प्रसादयेति भावः ।

મારા અમ્બરીષને બાળવા ઈચ્છતા તમે મારા હૃદયને જ બાળવા માટે પ્રવૃત્ત થયા, એમ અર્થ છે. ભક્તનું હૃદય પ્રસન્ન થાય ત્યારે જ મારી પ્રસન્નતા થાય છે. આથી તમે જાઓ અને તે અમ્બરીષને જ પ્રસન્ન કરો, એવો ભાવ છે.

उपायं कथयिष्यामि तव विप्र शृणुष्व तत् ।
अयं ह्यात्माभिचारस्ते यतस्तं यातु वै भवान् ।
साधुषु प्रहितं तेजः प्रहर्तुः कुरुतेऽशिवम् ॥ ६९

હે વિપ્ર, હું તમને ઉપાય બતાવું છું તે તમે સાંભળો. (તમારી) પોતાની જ આ હિંસા જ્યાંથી થઈ ત્યાં જ આપ પધારો. ભક્તજનો ઉપર પ્રયુક્ત કરવામાં આવેલું સામર્થ્ય પ્રયુક્ત કરનારનો જ અનર્થ કરે છે. ॥ ૬૯ ॥

आत्मनस्तवैवाभिचारो हिंसा यतोऽभूत्तमेव यातु । अशिवमनर्थम् ॥ ६९ ॥

'आत्मनः' તમારી પોતાની જ **'अभिचारः'** હિંસા જ્યાંથી થઈ ત્યાં જ આપ પધારો. **'अशिवम्'** અનર્થને ॥ ૬૯ ॥

तपोविद्यासंपन्नस्य मम कथमनर्थः समजनीति मा स्म विस्मयं कार्षीरित्याह—**तप इति** ।

(દુર્વાસાજી કહે કે) તપ અને વિદ્યાથી સંપન્ન એવા મને કેવી રીતે અનર્થ ઉત્પન્ન થયો? તે માટે કહે છે કે આશ્ચર્ય ન પામશો— **'तपः इति ।'**

तपो विद्या च विप्राणां निःश्रेयसकरे उभे।
ते एव दुर्विनीतस्य कल्पेते कर्तुरन्यथा॥ ७०
॥ ७० ॥

તપ અને વિદ્યા– એ બંને બ્રાહ્મણોનું કલ્યાણ કરનારાં છે, પરંતુ તે જ દુર્વિનીતને (નિરપરાધીને અપરાધી કહેનારને) તેનાથી ઊલટું (અકલ્યાણ) કરનારાં બને છે.॥ ૭૦ ॥॥ ૭૦ ॥

ब्रह्मंस्तद् गच्छ भद्रं ते नाभागतनयं नृपम्।
क्षमापय महाभागं ततः शान्तिर्भविष्यति॥ ७१
॥ ७१ ॥

માટે હે ભૂદેવ, આપ પરમ ભાગ્યવાન, નાભાગનંદન રાજા અંબરીષ પાસે પધારો. તેની ક્ષમા માગો, પછી શાંતિ થશે. તમારું કલ્યાણ થાઓ ! ॥ ૭૧ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धेऽम्बरीषचरिते चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

*****

अथ पञ्चमोऽध्यायः

દુર્વાસાજીના દુઃખનું નિવારણ

पञ्चमे विष्णुचक्रं तु प्रसाद्य प्राणसंकटात्।
दुर्वासा रक्षितस्तेन तथा तद्वृत्तमीर्यते॥ १ ॥

પાંચમા અધ્યાયમાં વિષ્ણુચક્રને પ્રસન્ન કરી તે અંબરીષ દ્વારા દુર્વાસાને પ્રાણસંકટમાંથી બચાવવામાં આવ્યા (તે કથા) તેમ જ તે (અંબરીષ)નું (ધર્મસ્થિતિરૂપ) આચરણ વર્ણવવામાં આવ્યું છે.॥ ૧ ॥

श्रीशुक उवाच

एवं भगवताऽऽदिष्टो दुर्वासाश्चक्रतापितः।
अम्बरीषमुपावृत्य तत्पादौ दुःखितोऽग्रहीत्॥ १
॥ १ ॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — આમ, ભગવાન દ્વારા આજ્ઞા પામેલા અને ચક્ર(ની જ્વાળા)થી તપી ગયેલા દુર્વાસાએ અંબરીષ પાસે જઈને દુઃખી થઈ તેમના બંને ચરણ પકડી લીધાં.॥ ૧ ॥॥ ૧ ॥

तस्य सोद्यमनं वीक्ष्य पादस्पर्शविलज्जितः।
अस्तावीत् तद्धरेरस्त्रं कृपया पीडितो भृशम्॥ २

તે દુર્વાસાનો (ચરણગ્રહણરૂપ) ઉદ્યમ જોઈને, ચરણસ્પર્શથી અત્યંત લજ્જિત થયેલા અને દયાને કારણે અત્યંત પીડા પામતા તે અંબરીષ રાજાએ શ્રીહરિના તે અસ્ત્રની સ્તુતિ કરવા માંડી.॥ ૨ ॥

स उद्यमनमिति छेदः। सुलोपः पादपूरणार्थः ॥ २ ॥

'सोद्यमनम्' શબ્દમાં આર્ષ સંધિ છે. **'सः उद्यमनम्'** એમ પદચ્છેદ કરવો. નિયમિત સંધિ **'स उद्यमनम्'** એમ થાય. અહીં **'सु'** (**स्**) વિસર્ગનો લોપ પાદના અક્ષરોની પૂર્તિ માટે છે. (**सोऽचि लोपे चेत् पादपूरणम्**–પા.સૂ. ૬/૧/૧૩૦, **सः** પછી **अच्** એટલે સ્વર આવે તો વિસર્ગનો લોપ થાય છે. પાદના અક્ષરો પૂરા થતા હોય તો આ પ્રમાણે સંધિ કરવી.) ॥ ૨ ॥

अम्बरीष उवाच

त्वमग्निर्भगवान् सूर्यस्त्वं सोमो ज्योतिषां पतिः।
त्वमापस्त्वं क्षितिर्व्योम वायुर्मात्रेन्द्रियाणि च॥ ३

અમ્બરીષ બોલ્યા — (હે સુદર્શન!) આપ અગ્નિસ્વરૂપ છો, ભગવાન સૂર્ય છો, નક્ષત્રોના પતિ ચન્દ્ર છો, જળ, પૃથ્વી, આકાશ, વાયુ, શબ્દાદિ વિષયો તથા ઈન્દ્રિયોરૂપ છો.॥૩॥

ज्योतिषां नक्षत्राणां पतिः सोमस्त्वम्। मात्राणीन्द्रियाणि च। त्वच्छक्त्यैवाग्न्यादयः स्वं स्वं कार्यं कुर्वन्तीत्यर्थः॥ ३॥

આપ '**ज्योतिषाम्**' નક્ષત્રોના પતિ ચન્દ્ર છો. શબ્દાદિ વિષયો અને ઈન્દ્રિયો છો. આપની શક્તિથી જ અગ્નિ વગેરે પોતપોતાનું કાર્ય કરે છે, એમ અર્થ છે.॥૩॥

सुदर्शन नमस्तुभ्यं सहस्राराच्युतप्रिय।
सर्वास्त्रघातिन् विप्राय स्वस्ति भूया इडस्पते॥ ४

જેના હજાર આરાઓ છે તેવા હે સુદર્શન, હે ભગવાન અચ્યુતના પ્રિય, હે સમસ્ત અસ્ત્રોને નષ્ટ કરનારા, હે પૃથ્વીપતિ, (આ) વિપ્રને માટે કલ્યાણકારી બનો! ॥૪॥

सहस्रमरा यस्य हे सहस्रार। स्वस्ति शरणं भूयाः। इडस्पते पृथ्वीपते॥ ४॥

જેના હજાર આરાઓ છે તેવા હે '**सहस्रार**', આપ કલ્યાણકારી શરણરૂપ બનો. '**इडस्पते**' હે પૃથ્વીપતિ॥૪॥

ब्राह्मणरक्षणं तव युक्तमेवेत्याह—**त्वं धर्म इति**।

બ્રાહ્મણનું રક્ષણ એ આપને માટે યોગ્ય જ છે, એમ કહે છે— '**त्वं धर्मः इति।**'

त्वं धर्मस्त्वमृतं सत्यं त्वं यज्ञोऽखिलयज्ञभुक्।
त्वं लोकपालः सर्वात्मा त्वं तेजः पौरुषं परम्॥ ५

આપ ધર્મરૂપ છો, મધુર વાણીરૂપ (ઋત) છો, (પ્રકૃતિના નિયમરૂપ ઋત છો), સમદર્શનરૂપ (સત્ય) છો, યજ્ઞરૂપ છો તથા સમસ્ત યજ્ઞોના ભોક્તા છો, લોકપાલ છો, સર્વના આત્મા છો તેમ જ (પરમ) પુરુષના શ્રેષ્ઠ સામર્થ્યરૂપ (તેજ) છો.॥૫॥

न च तवेयमतिस्तुतिरित्याह—पौरुषं पुरुषस्येश्वरस्य परं तेजः सामर्थ्यं त्वम्। अयं भावः— 'स ऐक्षत' इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धं भगवतः शोभनं दर्शनं सुदर्शनं तत एव सर्वं जातम्। अतस्त्वमेव सर्वात्मेति॥ ५॥

વળી, આપની આ સ્તુતિ અતિશયોક્તિ નથી, એમ કહે છે— આપ '**पौरुषम्**' પુરુષનું, ઈશ્વરનું '**तेजः**' પરમ સામર્થ્ય છો. ભાવ આ પ્રમાણે છે— '**सः ऐक्षत**'–(બૃહદા.ઉપ.૧/૨/૫) તેણે ઈક્ષણ કર્યું. (ભૂઃ, ભુવઃ, સ્વઃ લોકોનું સર્જન કર્યું.) વગેરે ભગવાનનું શોભન દર્શનરૂપ સુદર્શન, તેનાથી જ સર્વ ઉત્પન્ન થયું. આથી જ આપ સર્વના આત્મા છો.॥૫॥

नमः सुनाभाखिलधर्मसेतवे
ह्यधर्मशीलासुरधूमकेतवे ।
त्रैलोक्यगोपाय विशुद्धवर्चसे
मनोजवायाद्‌भुतकर्मणे गृणे ॥ ६

हे सुनाभ, अद्भुतकर्माणं त्वां कः स्तोतुं समर्थः। अतस्तुभ्यं केवलं नमो गृण इत्यन्वयः। अद्भुतकर्मत्वमेवाह—अखिलानां धर्माणां सेतवे मर्यादारूपाय। अत एवाधर्म-शीलानामसुराणां धूमकेतवे दाहकाय। त्रैलोक्यं गोपायतीति तथा। विशुद्धमत्युज्ज्वलं वर्चस्तेजो यस्य तस्मै ॥ ६ ॥

तदेव प्रपञ्चयति—**त्वत्तेजसेति** द्वाभ्याम्।

त्वत्तेजसा धर्ममयेन संहृतं
तमः प्रकाशश्च धृतो महात्मनाम्।
दुरत्ययस्ते महिमा गिरां पते
त्वद्रूपमेतत् सदसत् परावरम् ॥ ७

सूर्यादीनां प्रकाशश्च। त्वयैव रूप्यते प्रकाश्यत इति त्वद्‌रूपम् ॥ ७ ॥

यदा विसृष्टस्त्वमनञ्जनेन वै
बलं प्रविष्टोऽजित दैत्यदानवम्।
बाहूदरोर्वङ्घ्रिशिरोधराणि
वृक्णन्नजस्त्रं प्रधने विराजसे ॥ ८

હે સુદર્શન, સમસ્ત ધર્મોની મર્યાદારૂપ (આપ)ને નમસ્કાર હો. અધર્મશીલ અસુરોને (બાળનાર) અગ્નિની (ધૂમકેતુની), ત્રિલોકનું રક્ષણ કરનારની, અત્યંત ઉજ્જ્વળ તેજસ્વરૂપની, મન જેવા વેગવાળાની તથા અદ્‌ભુત કર્મ કરનારની હું સ્તુતિ કરું છું. ॥ ૬ ॥

હે સુનાભ, અદ્‌ભુત કર્મવાળા આપની સ્તુતિ કરવાને કોણ સમર્થ છે? આથી આપની કેવળ નમસ્કારરૂપ સ્તુતિ કરું છું, એમ અન્વય છે. અદ્‌ભુત કર્મનું જ વર્ણન કરે છે— સમસ્ત ધર્મોની '**सेतवे**' મર્યાદારૂપને (નમસ્કાર). આથી જ અધર્મશીલવાળા અસુરોને બાળનાર અગ્નિને (નમસ્કાર). ત્રણેય લોકનું રક્ષણ કરે તેમને (નમસ્કાર). '**विशुद्धम्**' અતિ ઉજ્જ્વળ '**वर्चः**' તેજ છે જેમનું તેમને નમસ્કાર. ॥ ૬ ॥

તે (અદ્‌ભુત તેજસ્વરૂપને) જ બે શ્લોકો વડે વિસ્તારપૂર્વક સમજાવે છે— '**त्वत्-तेजसा इति।**'

વેદવાણીના અધીશ્વર, આપના ધર્મમય તેજથી (અધર્મરૂપ) અંધકારનો સંહાર થાય છે તથા સૂર્યાદિ મહાન આત્માઓનો પ્રકાશ ધારણ કરાય છે. આપના મહિમાનો પાર પામવો અઘરો છે. કાર્યકારણરૂપ, ઉચ્ચનીચમય આ જગત આપનાથી જ પ્રકાશિત થાય છે. ॥ ૭ ॥

સૂર્ય વગેરેનો પ્રકાશ પણ (આપના ધર્મમય તેજથી ધારણ કરાય છે). (આ સર્વ) આપનાથી જ '**रूप्यते**' પ્રકાશિત થાય છે એટલે આ સર્વ જગત આપનું જ સ્વરૂપ છે. ॥ ૭ ॥

હે અજિત, અનંજન (અવિદ્યાદિ દોષરહિત) શ્રીહરિ દ્વારા યુદ્ધમાં જ્યારે આપ પ્રયુક્ત થાઓ છો, ત્યારે દૈત્યદાનવોની સેનામાં પ્રવિષ્ટ થઈ તેમની ભુજા, ઉદર, જાંઘ, ચરણ અને ગળાંઓને નિરંતર કાપતા (જ્યાં જુઓ ત્યાં) આપ જ શોભો છો. ॥ ૮ ॥

हे अजित, अनङ्गनेन श्रीहरिणा यदा विसृष्टस्त्वं तदा दैत्यदानवानां बलं प्रविष्टः संस्तेषां बाह्वादीन् भिन्दन्विराजसे। पाठान्तरे ऊर्जिता दैत्यदानवा यस्मिंस्तद्बलम्। पूर्वपदेन सन्धिरार्षः ॥ ८ ॥

હે અજિત, અવિદ્યાદિ દોષરહિત શ્રીહરિ દ્વારા જ્યારે આપ પ્રયુક્ત થાઓ છો, ત્યારે દૈત્યદાનવોની સેનામાં પ્રવિષ્ટ થઈ તેમનાં બાહુ વગેરે કાપતા (જ્યાં જુઓ ત્યાં) આપ જ શોભો છો.

(‘**प्रविष्टोऽजितदैत्यदानवम्**’ ને બદલે) પાઠાન્તરમાં ‘**प्रविष्टोर्जितदैत्यदानवम्**’ હોય તો, શક્તિશાળી દૈત્યદાનવો જે સેનામાં છે તે સેનામાં. (‘**प्रविष्टः+ऊर्जितः**’માં) પૂર્વપદ સાથે કરાયેલી સંધિ આર્ષ છે. ॥ ૮ ॥

(નિયમિત સંધિ ‘**प्रविष्टऊर्जितः**’ થાય.)

किंच त्वया भगवन्नियुक्तेन खलानामेव दण्डः कार्यः, साधवस्तु रक्षणीयाः, अतो विप्रस्य रक्षणेनास्माननुगृहाणेत्याह—**स त्वमिति**।

વળી, ભગવાન દ્વારા નિયુક્ત કરવામાં આવેલા આપના વડે દુષ્ટો જ દંડ કરવા યોગ્ય છે, સાધુજનો તો રક્ષણ યોગ્ય છે. આથી વિપ્રના રક્ષણથી અમને અનુગૃહીત કરો, એમ કહે છે— ‘**सः त्वम् इति**।’

स त्वं जगत्त्राण खलप्रहाणये
निरूपितः सर्वसहो गदाभृता।
विप्रस्य चास्मत्कुलदैवहेतवे
विधेहि भद्रं तदनुग्रहो हि नः॥ ९

હે જગતના રક્ષક, ગદાધારી ભગવાન દ્વારા સર્વ સહન કરનાર એવા આપને દુષ્ટોના વિનાશ માટે નિયુક્ત કરવામાં આવ્યા છે. તે આપ અમારા કુળના ભાગ્યોદય માટે (આ) વિપ્રનું કલ્યાણ કરો. અમારી ઉપર આપનો તે (મહાન) અનુગ્રહ (થશે). ॥ ૯ ॥

हे जगत्त्राण, स एवंभूतस्त्वं खलानामेव प्रहारार्थं निरूपितो नियुक्तः। अतोऽस्मत्कुलस्य दैवहेतवे भाग्यलाभाय विप्रस्य भद्रं विधेहि तदेव नोऽनुग्रहः ॥ ९ ॥

હે જગદ્રક્ષક, તે આવા આપ દુષ્ટોના જ વિનાશ માટે ‘**निरूपितः**’ નિયુક્ત કરવામાં આવ્યા છો. આથી અમારા કુળના ‘**दैवहेतवे**’ ભાગ્યોદય માટે વિપ્રનું કલ્યાણ કરો. તે જ અમારી ઉપર અનુગ્રહ થશે. ॥ ૯ ॥

सर्वसुकृतार्पणेन विप्ररक्षां प्रार्थयते—**यद्यस्तीति** द्वाभ्याम्।

સર્વ સુકૃત (પુણ્ય)ના અર્પણ દ્વારા વિપ્રની રક્ષા માટે (રાજા) બે શ્લોકો વડે પ્રાર્થના કરે છે— ‘**यदि अस्ति इति**।’

यद्यस्ति दत्तमिष्टं वा स्वधर्मो वा स्वनुष्ठितः।
कुलं नो विप्रदैवं चेद् द्विजो भवतु विज्वरः॥ १०

જો અમે દાન આપ્યું હોય કે યજ્ઞાદિનું સારી રીતે અનુષ્ઠાન કર્યું હોય કે સ્વધર્મનું સદાચરણ કર્યું હોય તેમ જ જો બ્રાહ્મણો અમારા કુળના (આરાધ્ય) દેવ હોય, તો (અમારા પુણ્યથી પ્રસન્ન થયેલા ભગવાન સુદર્શન દ્વારા આ) દ્વિજ તાપરહિત થાઓ! ॥ ૧૦ ॥

विप्रो दैवं देवता यस्मिंस्तत्॥ १०॥

यदि नो भगवान् प्रीत एकः सर्वगुणाश्रयः।
सर्वभूतात्मभावेन द्विजो भवतु विज्वरः॥ ११

॥ ११ ॥

श्रीशुक उवाच

इति संस्तुवतो राज्ञो विष्णुचक्रं सुदर्शनम्।
अशाम्यत् सर्वतो विप्रं प्रदहद् राजयाच्ञया॥ १२

राज्ञस्तस्यैव याच्ञया॥ १२॥

स मुक्तोऽस्त्राग्नितापेन दुर्वासाः स्वस्तिमांस्ततः।
प्रशशंस तमुर्वीशं युञ्जानः परमाशिषः॥ १३

॥ १३ ॥

दुर्वासा उवाच

अहो अनन्तदासानां महत्त्वं दृष्टमद्य मे।
कृतागसोऽपि यद् राजन् मङ्गलानि समीहसे॥ १४

॥ १४ ॥

दुष्करः को नु साधूनां दुस्त्यजो वा महात्मनाम्।
यैः संगृहीतो भगवान् सात्वतामृषभो हरिः॥ १५

॥ १५ ॥

यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान् भवति निर्मलः।
तस्य तीर्थपदः किं वा दासानामवशिष्यते॥ १६

॥ १६ ॥

राजन्ननुगृहीतोऽहं त्वयातिकरुणात्मना।
मदघं पृष्ठतः कृत्वा प्राणा यन्मेऽभिरक्षिताः॥ १७

॥ १७ ॥

વિપ્ર ‘**दैवम्**’ દેવ છે જે કુળમાં ॥ ૧૦॥

સમસ્ત ગુણોના એક માત્ર આશ્રય ભગવાન જો સર્વ પ્રાણીઓ ઉપર આત્મભાવ રાખવાથી અમારા ઉપર પ્રસન્ન થયા હોય, તો (આ) દ્વિજ તાપરહિત થાઓ! ॥ ૧૧ ॥॥ ૧૧ ॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — આમ, રાજા અંબરીષ (શપથપૂર્વક) સુંદર સ્તુતિ કરતા હતા ત્યારે વિપ્ર દુર્વાસાને સર્વ તરફથી બાળતું સુદર્શન નામનું વિષ્ણુચક્ર રાજાની પ્રાર્થનાથી શાંત થઈ ગયું. ॥ ૧૨ ॥

‘**राज्ञः**’ તે રાજાની જ પ્રાર્થનાથી ॥ ૧૨ ॥

ત્યાર પછી સુદર્શન અસ્ત્રના અગ્નિના તાપથી મુક્ત થયેલા તે દુર્વાસા કલ્યાણયુક્ત થઈ તે પૃથ્વીપતિ અંબરીષને ઉત્તમ આશીર્વાદ આપતા પ્રશંસા કરવા લાગ્યા. ॥ ૧૩ ॥॥ ૧૩ ॥

દુર્વાસા બોલ્યા — અહો! અનંત ભગવાનના દાસજનોનું મહત્ત્વ મેં આજે જોયું. હે રાજા, જે આપ અપરાધ કરનારનું પણ મંગળ ઈચ્છો છો! ॥ ૧૪ ॥॥ ૧૪ ॥

ભક્તોના પાલક ભગવાન શ્રીહરિ(ના ચરણો) જેમના દ્વારા (પ્રેમપૂર્વક) જકડી લેવામાં આવ્યા છે, તે સાધુપુરુષ મહાત્માઓને માટે કયું (કાર્ય) દુષ્કર છે? કે કયો (અપરાધ) દુસ્ત્યજ છે? ॥ ૧૫ ॥॥ ૧૫ ॥

જેમનાં (મંગળમય) નામોનાં શ્રવણમાત્રથી મનુષ્ય નિર્મળ થાય છે (રાગ, લોભ વગેરેથી રહિત થાય છે), તે તીર્થરૂપ ચરણવાળા ભગવાનના ભક્તોને શું મેળવવાનું બાકી હોય? ॥ ૧૬ ॥॥ ૧૬ ॥

હે રાજા, અત્યંત કરુણાપૂર્ણ હૃદયવાળા એવા તારા દ્વારા હું અનુગૃહીત થયો છું, કે જે તેં મારા અપરાધને વીસરી જઈને મારા પ્રાણોની રક્ષા કરી છે. ॥ ૧૭ ॥॥ ૧૭ ॥

राजा तमकृताहारः प्रत्यागमनकाङ्क्षया।
चरणावुपसंगृह्य प्रसाद्य समभोजयत्॥ १८

राजेत्यादिश्लोकद्वयं शुकोक्तिः॥ १८॥

सोऽशित्वाऽऽदृतमानीतमातिथ्यं सार्वकामिकम्।
तृप्तात्मा नृपतिं प्राह भुज्यतामिति सादरम्॥
॥ १९॥ १९॥

प्रीतोऽस्मीति श्लोकद्वयं पुनश्च विप्रोक्तिः।

प्रीतोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि तव भागवतस्य वै।
दर्शनस्पर्शनालापैरातिथ्येनात्ममेधसा ॥ २०

आत्मनि मेधा येन तेनातिथ्येन॥ २०॥

कर्मावदातमेतत् ते गायन्ति स्वःस्त्रियो मुहुः।
कीर्तिं परमपुण्यां च कीर्तयिष्यति भूरियम्॥ २१

भूरियं तत्रस्थो जनः कीर्तयिष्यति॥ २१॥

श्रीशुक उवाच

एवं संकीर्त्य राजानं दुर्वासाः परितोषितः।
ययौ विहायसाऽऽमन्त्र्य ब्रह्मलोकमहैतुकम्॥ २२
॥ २२॥

तस्य धैर्यातिशयमाह—

संवत्सरोऽत्यगात् तावद् यावता नागतो गतः।
मुनिस्तद्दर्शनाकाङ्क्षो राजाऽब्भक्षो बभूव ह॥ २३

(દુર્વાસા મુનિના) પાછા આવવાની પ્રતીક્ષા કરવાને કારણે જેમણે ભોજન નથી કર્યું તે રાજાએ તેમના ચરણ પકડી, તેમને પ્રસન્ન કરી સારી રીતે ભોજન કરાવ્યું.॥ ૧૮॥

'राजा' વગેરે બે શ્લોકો શુકદેવજીની ઉક્તિ છે.॥ ૧૮॥

આદરપૂર્વક લાવવામાં આવેલું, અતિથિને યોગ્ય અને સર્વોત્તમ રસાદિથી સંપન્ન એવું ભોજન જમીને જેમનું મન તૃપ્ત થયું છે તેવા તે દુર્વાસાએ રાજાને આદરપૂર્વક કહ્યું કે (હવે તમે) ભોજન કરો.॥ ૧૯॥॥ ૧૯॥

'प्रीतः अस्मि इति' એમ બે શ્લોકો પુનઃ વિપ્ર દુર્વાસાજીની ઉક્તિ છે.

ભક્ત એવા તમારાં દર્શનથી, સ્પર્શથી, વાર્તાલાપથી તથા પરમાત્મબુદ્ધિથી કરેલા આતિથ્યથી હું પ્રસન્ન થયો છું અને અનુગૃહીત થયો છું.॥ ૨૦॥

પરમાત્મરૂપ બુદ્ધિ છે જેમાં તેવા આતિથ્યથી ॥ ૨૦॥

(હે રાજા,) તારા આ ઉજ્જ્વળ ચરિત્રને (સ્વર્ગની) સ્વર્ગાંગનાઓ વારંવાર ગાશે અને આ પૃથ્વી (પરનાં મનુષ્યો) પણ તારી પરમ પવિત્ર કીર્તિનું ગાન કરશે.॥ ૨૧॥॥ ૨૧॥

આ પૃથ્વી એટલે ત્યાં રહેલા મનુષ્યો (તારી) કીર્તિનું ગાન કરશે.

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — આમ, રાજાની પ્રશંસા કરીને સંતુષ્ટ કરાયેલા દુર્વાસા (રાજાની) આજ્ઞા લઈ આકાશમાર્ગે નિષ્કામ કર્મથી પ્રાપ્ત થનારા બ્રહ્મલોકમાં ગયા.॥ ૨૨॥॥ ૨૨॥

તે રાજાના અતિશય ધૈર્યનું વર્ણન કરે છે—

(સુદર્શન ચક્ર દુર્વાસા મુનિની પાછળ પડ્યું ત્યારે) ગયેલા મુનિ જ્યાં સુધી પાછા ન આવ્યા ત્યાં સુધીમાં એક વર્ષ વીતી ગયું. મુનિના દર્શનની આકાંક્ષા જેમને હતી તે રાજાએ (પારણાંના સમયે લીધેલા) જળનું જ ભક્ષણ કર્યું હતું.॥ ૨૩॥

गतो मुनिर्यावता नागतस्तावत्संवत्सरोऽतिक्रान्त इति॥ २३॥

ગયેલા મુનિ જ્યાં સુધી આવ્યા નહીં ત્યાં સુધીમાં વર્ષ વીતી ગયું હતું.॥ ૨૩॥

गते च दुर्वाससि सोऽम्बरीषो
द्विजोपयोगातिपवित्रमाहरत् ।
ऋषेर्विमोक्षं व्यसनं च बुद्ध्वा
मेने स्ववीर्यं च परानुभावम्॥ २४

દુર્વાસા મુનિ ગયા ત્યારે તે અંબરીષ રાજાએ દ્વિજ દુર્વાસાના ઉપયોગ કરેલા ભોજનથી પરમ પવિત્ર થયેલા ભોજનનો આહાર કર્યો. ઋષિ દુર્વાસા ઉપર આવી પડેલું સંકટ, તેમાંથી તેમની મુક્તિ તથા (સંવત્સરપર્યન્ત અન્ન-જળ વિના ઊભા રહીને ઋષિની પ્રતીક્ષા કરવાના ધૈર્યાદિ લક્ષણરૂપ) પોતાની શક્તિને જાણીને રાજાએ (તેને કેવળ) પરમાત્માનો પ્રભાવ માન્યો.॥ ૨૪॥

द्विजस्योपयोगेन भोजनेनातिपवित्रमाहरद्-बुभुजे। स्ववीर्यं च धैर्यादिलक्षणं परानुभावं भगवतः प्रभावं मेने॥ २४॥

દ્વિજ દુર્વાસાના ઉપયોગ કરેલા ભોજનથી અતિ પવિત્ર થયેલા ભોજનનો '**आहरत्**' આહાર કર્યો. પોતાની ધૈર્યાદિ લક્ષણરૂપ શક્તિને '**पर-अनुभावम्**' પરમાત્માનો પ્રભાવ માન્યો.॥ ૨૪॥

एवंविधानेकगुणः स राजा
परात्मनि ब्रह्मणि वासुदेवे।
क्रियाकलापैः समुवाह भक्तिं
ययाऽऽविरिञ्चान् निरयांश्चकार॥ २५

આવા પ્રકારના અનેક ગુણવાળા રાજા અંબરીષે પોતાનાં (સ્વવર્ણાશ્રમધર્મ, તપ, વ્રત વગેરે) કર્મના સમૂહો દ્વારા પરબ્રહ્મ પરમાત્મા વાસુદેવમાં ભક્તિ કરી હતી, કે જે ભક્તિ (દ્વારા જન્મેલા વૈરાગ્ય)થી તેમણે બ્રહ્માજી(ના પદ) સુધીના ભોગોને નરક સમાન માન્યા હતા.॥ ૨૫॥

एवंविधा अनेके गुणा यस्य सः। आविरिञ्चान् विरिञ्चपदसहितान्भोगान्निरयप्रायानपश्यदित्यर्थः॥ २५॥

આવા પ્રકારના અનેક ગુણો જેમના છે તે રાજા, તેમણે '**आहरत्**' બ્રહ્માજીના પદસહિત (સર્વ) ભોગોને લગભગ નરક જેવા માન્યા હતા, એમ અર્થ છે.॥ ૨૫॥

अथाम्बरीषस्तनयेषु राज्यं
समानशीलेषु विसृज्य धीरः।
वनं विवेशात्मनि वासुदेवे
मनो दधद् ध्वस्तगुणप्रवाहः॥ २६
॥ २६॥

ત્યાર પછી પોતાના સમાન શીલવાળા પુત્રોની ઉપર રાજ્યભાર છોડી, પરમાત્મસ્વરૂપ ભગવાન વાસુદેવમાં મન સ્થાપીને ધ્વસ્ત થયો છે ગુણપ્રવાહ(રૂપ સંસાર) જેમનો તેવા ધીર રાજા અંબરીષે વનમાં પ્રવેશ કર્યો.॥ ૨૬॥॥ ૨૬॥

इत्येतत् पुण्यमाख्यानमम्बरीषस्य भूपतेः।
संकीर्तयन्ननुध्यायन् भक्तो भगवतो भवेत्॥ २७
॥ २७॥

આમ, પૃથ્વીપતિ અંબરીષ રાજાનું આ પવિત્ર આખ્યાન વર્ણન કરતો અને ચિંતન કરતો મનુષ્ય ભગવાનનો ભક્ત થાય છે.॥ ૨૭॥॥ ૨૭॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धेऽम्बरीषचरितं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

*****

अथ षष्ठोऽध्यायः

ઈક્ષ્વાકુના વંશનું વર્ણન, માંધાતા અને સૌભરિ ઋષિની કથા

षष्ठारम्भेऽम्बरीषस्य वंशमुक्त्वा ततः परम्।
षष्ठाद्यष्टभिरध्यायैरिक्ष्वाकोर्वंश उच्यते॥ १॥

છઠ્ઠા અધ્યાયના આરંભમાં અંબરીષ રાજાનો વંશ કહીને તેના પછી છઠ્ઠાથી માંડીને આઠ અધ્યાયો દ્વારા (અધ્યાય-૧૩ સુધી) ઈક્ષ્વાકુનો વંશ કહેવામાં આવે છે. ॥ ૧ ॥

तत्र षष्ठे शशादादिर्मान्धात्रन्तो निरूप्यते।
प्रसङ्गात्सौभरेराख्या मान्धातृतनयापतेः॥ २॥

તેમાં છઠ્ઠા અધ્યાયમાં શશાદથી માંડીને માંધાતા સુધી નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે. પ્રસંગોપાત્ત માંધાતાની પુત્રીઓના પતિ સૌભરિ ઋષિની કથા (પણ કહેવામાં આવે છે). ॥ ૨ ॥

श्रीशुक उवाच

विरूपः केतुमान् शम्भुरम्बरीषसुतास्त्रयः।
विरूपात् पृषदश्वोऽभूत् तत्पुत्रस्तु रथीतरः॥ १॥ ॥ १॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — વિરૂપ, કેતુમાન તથા શંભુ એમ ત્રણ અંબરીષના પુત્રો હતા. વિરૂપને પૃષદશ્વ (નામે પુત્ર) થયો તેમ જ તે (પૃષદશ્વ)નો પુત્ર રથીતર થયો. ॥ ૧ ॥ ૧ ॥

रथीतरस्याप्रजस्य भार्यायां तन्तवेऽर्थितः।
अङ्गिरा जनयामास ब्रह्मवर्चस्विनः सुतान्॥ २॥

प्रजारहित રથીતરની ભાર્યામાં સંતાન માટે જેમને પ્રાર્થના કરવામાં આવી તેવા અંગિરા ઋષિએ બ્રહ્મતેજવાળા પુત્રો ઉત્પન્ન કર્યા. ॥ ૨ ॥

तन्तवे सन्तानार्थम्॥ २॥

'तन्तवे' સન્તાન માટે ॥ ૨ ॥

एते क्षेत्रे प्रसूता वै पुनस्त्वाङ्गिरसाः स्मृताः।
रथीतराणां प्रवराः क्षत्रोपेता द्विजातयः॥ ३॥

આ પુત્રો રથીતરના ભાર્યારૂપ ક્ષેત્રમાં જન્મ્યા (હોવાથી રથીતરના ગોત્રવાળા) હતા, છતાં આંગિરસો કહેવાયા. રથીતર ગોત્રમાં ઉત્પન્ન થયેલા અન્ય પુત્રોમાં તેઓ સર્વશ્રેષ્ઠ ગણાતા હતા, (કારણ કે) તેઓ ક્ષત્રોપેત બ્રાહ્મણો હતા. (બ્રાહ્મણ અને ક્ષત્રિય બંને ગોત્રો સાથે સંબંધવાળા હતા.) ॥ ૩ ॥

ये अङ्गिरसा जनिता एते रथीतरस्य क्षेत्रे प्रसूतत्वेन रथीतरगोत्राः सन्तोऽङ्गिरसो वीर्येण प्रसूतत्वादाङ्गिरसाश्च। पुनरपि रथीतराणामन्येषां जातानां प्रवरा मुख्याः स्मृताः। यतः क्षत्रोपेता ब्राह्मणा इत्यर्थः॥ ३॥

જેઓ અંગિરા ઋષિથી જન્મ્યા હતા એ પુત્રો રથીતરની ભાર્યામાં જન્મ્યા હોવાથી રથીતરના ગોત્રવાળા હતા તેમ જ અંગિરા ઋષિના વીર્યથી જન્મ્યા હોવાથી 'આંગિરસો' પણ હતા. વળી, અન્ય જન્મેલા રથીતરપુત્રોમાં તે (આંગિરસો) **'प्रवराः'** મુખ્ય ગણાયા, કારણ કે તેઓ ક્ષત્રોપેત બ્રાહ્મણો હતા, (ક્ષત્રિય અને બ્રાહ્મણ બંને ગોત્રો સાથે સંબંધવાળા હતા,) એમ અર્થ છે. ॥ ૩ ॥

तदेवं मनोर्दशसु पुत्रेषु पृषध्रश्च कविश्च विरक्तत्वान्न वंशप्रवर्तकौ। करूषादीनां च सप्तानां वंशास्तारतम्यक्रमेणोक्ताः।

इदानीमतिविततमिक्ष्वाकोर्वंशमाह—**क्षुवतस्त्वित्यादिना** यावत्सोमवंशप्रस्तावः।

क्षुवतस्तु मनोर्जज्ञे इक्ष्वाकुर्घ्राणतः सुतः।
तस्य पुत्रशतज्येष्ठा विकुक्षिनिमिदण्डकाः॥ ४

क्षुतं कुर्वतो मनोर्घ्राणतो जज्ञे। श्रद्धायां जनयामास दशपुत्रानिति पूर्वोक्तं बाहुल्याभिप्रायेणेति द्रष्टव्यम्। पुत्राणां शते ज्येष्ठाः॥ ४॥

तेषां पुरस्तादभवन्नार्यावर्ते नृपा नृप।
पञ्चविंशतिः पश्चाच्च त्रयो मध्ये परेऽन्यतः॥ ५

'आर्यावर्तः पुण्यभूमिर्मध्यं विन्ध्यहिमालयोः' तस्मिन्पुरस्तात्समुद्रपर्यन्तं मण्डलविभागेन पञ्चविंशतिर्नृपा अभवन्। हे नृप, तथैव पश्चाच्च पञ्चविंशतिः। मध्ये तु ज्येष्ठास्त्रयः। अपरे त्वन्यतो दक्षिणोत्तरादिषु॥ ५॥

તો આમ, મનુના દસ પુત્રોમાંના પૃષધ્ર અને કવિ વિરક્ત હોવાથી વંશને વધારનારા બન્યા નહીં. કરૂષ વગેરે સાત પુત્રોના વંશ ઓછાવત્તા ક્રમથી કહેવામાં આવ્યા.

હવે ઈક્ષ્વાકુનો અતિવિસ્તારવાળો વંશ કહે છે— **'क्षुवतः तु'** વગેરે દ્વારા. સોમવંશની શરૂઆત થાય ત્યાં સુધી (ઈક્ષ્વાકુના વંશનું વર્ણન છે.)

(એક સમયે) વૈવસ્વત મનુને છીંક આવતાં તેમના નાકમાંથી ઈક્ષ્વાકુ નામનો પુત્ર ઉત્પન્ન થયો. તે ઈક્ષ્વાકુને વિકુક્ષિ, નિમિ અને દંડક જેમનામાં જ્યેષ્ઠ હતા તેવા સો પુત્રો થયા.॥ ૪॥

છીંક આવતાં મનુના નાકમાંથી (ઈક્ષ્વાકુ) ઉત્પન્ન થયા. શ્રદ્ધામાં દસ પુત્રો જન્મ્યા એમ પૂર્વે (૯/૧/૧૧માં) કહેવામાં આવ્યું. (તેમાં નવ પુત્રો શ્રદ્ધાથી અને દશમો ઈક્ષ્વાકુ છીંક આવતાં જન્મ્યો, તેથી દશ પુત્રો) એમ અધિકતાના અભિપ્રાયથી સમજવા. ઈક્ષ્વાકુના સો પુત્રોમાં વિકુક્ષિ, નિમિ અને દંડક જ્યેષ્ઠ પુત્રો હતા.॥ ૪॥

હે નૃપ પરીક્ષિત, (ઈક્ષ્વાકુના) તે સો પુત્રોમાંથી પચ્ચીસ પુત્રો આર્યાવર્તની પૂર્વ દિશામાં રાજા બન્યા. (બીજા) પચ્ચીસ પુત્રો આર્યાવર્તની પશ્ચિમ દિશામાં, (સૌથી મોટા) ત્રણ આર્યાવર્તના મધ્યપ્રદેશમાં અને બાકીના (સુડતાલીસ) દક્ષિણ તથા ઉત્તર દિશાઓમાં રાજાઓ હતા.॥ ૫॥

'વિંધ્યાચળ અને હિમાલયની મધ્યમાં આવેલી પવિત્ર ભૂમિ આર્યાવર્ત કહેવાય છે.' તેમાં પૂર્વ દિશામાં સમુદ્ર સુધી મંડળવિભાગ સાથે પચ્ચીસ પુત્રો રાજા બન્યા. હે નૃપ પરીક્ષિત, તે જ પ્રમાણે પશ્ચિમ દિશામાં પચ્ચીસ પુત્રો રાજા થયા. મધ્યભાગમાં ત્રણ જ્યેષ્ઠ પુત્રો રાજા થયા. (બાકીના) બીજા (સુડતાલીસ) **'अन्यतः'** બાકીની બીજી, દક્ષિણ તથા ઉત્તર દિશાઓમાં (રાજા બન્યા).॥ ૫॥

विकुक्षिरेव शशाद इति विश्रुत इति वक्ष्यति तत्र हेतुमाह—**स एकदेति** चतुर्भिः।

स एकदाष्टकाश्राद्धे इक्ष्वाकुः सुतमादिशत्।
मांसमानीयतां मेध्यं विकुक्षे गच्छ माचिरम्॥ ६ ॥ ६ ॥

तथेति स वनं गत्वा मृगान् हत्वा क्रियार्हणान्।
श्रान्तो बुभुक्षितो वीरः शशं चाददपस्मृतिः॥ ७

क्रियार्हणान् श्राद्धार्हान्। आददभक्षयत्॥ ७॥

शेषं निवेदयामास पित्रे तेन च तद्गुरुः।
चोदितः प्रोक्षणायाह दुष्टमेतदकर्मकम्॥ ८

तद्गुरुर्वसिष्ठः। प्रोक्षणाय श्राद्धोचित-संस्काराय॥ ८॥

ज्ञात्वा पुत्रस्य तत् कर्म गुरुणाभिहितं नृपः।
देशान्निःसारयामास सुतं त्यक्तविधिं रुषा॥ ९

त्यक्तो विधिः सदाचारो येन तम्॥ ९॥

स तु विप्रेण संवादं जापकेन समाचरन्।
त्यक्त्वा कलेवरं योगी स तेनावाप यत् परम्॥ १०

स त्विक्ष्वाकुः। जापकेन वसिष्ठेन। राज्यभोगेन विरक्तो योगी संस्तेन कलेवरं त्यक्त्वा स यत्परं तत्त्वं तदवाप॥ १०॥

વિકુક્ષિ જ શશાદ નામથી પ્રખ્યાત થયો, એમ કહેશે. તે માટેનું કારણ ચાર શ્લોકો દ્વારા કહે છે— **'सः एकदा इति।'**

એક દિવસ અષ્ટકા શ્રાદ્ધમાં ઈક્ષ્વાકુએ પુત્રને આજ્ઞા કરી, 'હે વિકુક્ષિ, તું પવિત્ર માંસ લઈ આવ, વિલંબ કરીશ નહીં.'॥ ६ ॥ ६ ॥

'બહુ સારું' એમ (કહી) તે વીર વિકુક્ષિ વનમાં જઈ, શ્રાદ્ધક્રિયાને યોગ્ય પશુઓને મારી, પોતે થાકેલો, ભૂખ્યો અને (શ્રાદ્ધ માટેની વસ્તુનો પોતાનાથી ઉપભોગ ન થાય, તે) વિસરી ગયો હોઈ એક સસલું ખાઈ ગયો.॥ ७॥

'क्रिया-अर्हणान्' શ્રાદ્ધક્રિયાને યોગ્ય હોય તેવાં પશુઓને, **'आदत्'** ખાઈ ગયો.॥ ७॥

બાકીનું માંસ તેણે પિતાને આપ્યું. તેમના (ઈક્ષ્વાકુ) દ્વારા પ્રોક્ષણ (શ્રાદ્ધોચિત સંસ્કાર) કરવા માટે જેમને પ્રેરણા કરવામાં આવી તે ગુરુ વસિષ્ઠે કહ્યું કે આ માંસ દૂષિત અને શ્રાદ્ધકર્મને અયોગ્ય છે.॥ ८॥

તે ગુરુ વસિષ્ઠ– **'प्रोक्षणाय'** શ્રાદ્ધને ઉચિત સંસ્કાર કરવા માટે॥ ८॥

ગુરુ દ્વારા કહેવામાં આવેલું પુત્રનું તે કર્મ જાણીને રાજાએ સદાચારનો ત્યાગ કરનારા તે પુત્રને રોષથી દેશનિકાલ કર્યો.॥ ९॥

ત્યાગ કર્યો છે **'विधिः'** સદાચાર જેણે તે પુત્રને॥ ९॥

તે ઈક્ષ્વાકુ જ્ઞાન આપનાર વિપ્ર ગુરુ વસિષ્ઠ સાથે (તત્ત્વવિચારવિષયક) સંવાદ કરતાં કરતાં (રાજ્યભોગથી વિરક્ત) યોગી થઈ, યોગ દ્વારા શરીર છોડીને, જે પરમ તત્ત્વ છે તેને પ્રાપ્ત થયો.॥ १०॥

'सः' તે ઈક્ષ્વાકુ **'जापकेन'** જપ કરનારા વસિષ્ઠ સાથે– રાજ્યભોગથી વિરક્ત યોગી થઈ, તે યોગ દ્વારા શરીર છોડીને, જે પરમ તત્ત્વ છે તેને પ્રાપ્ત થયો.॥ १०॥

चक्रवर्ती तु जापकेनेत्यत्र ज्ञापकेन ज्ञानदायिना वसिष्ठेनेति व्याचख्यौ।

पितर्युपरतेऽभ्येत्य विकुक्षिः पृथिवीमिमाम्।
शासदीजे हरिं यज्ञैः शशाद इति विश्रुतः॥ ११

शासत्पालयन्हरिमीजे॥ ११॥

पुरञ्जयस्तस्य सुत इन्द्रवाह इतीरितः।
ककुत्स्थ इति चाप्युक्तः शृणु नामानि कर्मभिः॥ १२

दैत्यपुरस्य जयात्पुरंजयः, इन्द्रो वाहो यस्येतीन्द्रवाहः, ककुदि स्थितत्वात्ककुत्स्थ इति च, शशादसुतस्य त्रीणि नामानि तत्तत्कर्म-निमित्तानि॥ १२॥

तान्येव व्याचक्षाण आह—**कृतान्त इति** सप्तभिः—

कृतान्त आसीत् समरो देवानां सह दानवैः।
पार्ष्णिग्राहो वृतो वीरो देवैर्दैत्यपराजितैः॥ १३

कृतं विश्वमन्तयतीति तथा पार्ष्णिग्राहः सहायः॥ १३॥

वचनाद् देवदेवस्य विष्णोर्विश्वात्मनः प्रभोः।
वाहनत्वे वृतस्तस्य बभूवेन्द्रो महावृषः॥ १४

ચક્રવર્તીજી '**जापकेन**' શબ્દનો અર્થ '**ज्ञापकेन**' જ્ઞાન આપનાર ગુરુ વસિષ્ઠ દ્વારા, એમ વ્યાખ્યા કરે છે.

પિતા મૃત્યુ પામ્યા ત્યારે વિકુક્ષિએ (પાછા) આવી આ પૃથ્વીનું પાલન (શાસન) કરતાં કરતાં યજ્ઞો દ્વારા શ્રીહરિનું યજન કર્યું અને (સંસારમાં) 'શશાદ' નામથી પ્રસિદ્ધ થયો.॥ ૧૧॥

'**शासत्**' પાલન કરતાં કરતાં શ્રીહરિનું યજન કર્યું.॥ ૧૧॥

તે (વિકુક્ષિ)નો પુત્ર પુરંજય હતો. તે 'ઈન્દ્રવાહ' નામે કહેવાયો અને કકુત્સ્થ પણ કહેવાયો. (આ) નામો જે કર્મોને કારણે પડ્યાં હતાં, તે તમે સાંભળો.॥ ૧૨॥

દૈત્યોનું નગર જીતવાને કારણે 'પુરંજય' (નામ પડ્યું). ઈન્દ્ર જેનું વાહન બન્યો તેથી 'ઈન્દ્રવાહ' અને (ઈન્દ્રની) ખાંધ ઉપર બેઠો હોવાથી 'કકુત્સ્થ' (નામ પડ્યું). શશાદના પુત્રનાં ત્રણ નામો તે તે કર્મોને કારણે પડ્યાં.॥ ૧૨॥

તે કર્મો જ વર્ણવતાં સાત શ્લોકો દ્વારા કહે છે— '**कृतान्तः इति।**'

દાનવો સાથે દેવોનું વિશ્વનો અંત કરનારું યુદ્ધ થયું ત્યારે દૈત્યોથી પરાજિત થયેલા દેવો દ્વારા વીર પુરંજય સહાયક તરીકે પસંદ થયો હતો.॥ ૧૩॥

'**कृतम्**' વિશ્વનો અંત કરે તેવું (યુદ્ધ), '**पार्ष्णिग्राहः**' સહાયક॥ ૧૩॥

દેવોના (આરાધ્ય) દેવ, સર્વશક્તિમાન વિશ્વાત્મા વિષ્ણુ ભગવાનના કહેવાથી તે પુરંજયના વાહન તરીકે પસંદ કરવામાં આવેલો ઈન્દ્ર મહાન વૃષ (બળદ) બન્યો.॥ ૧૪॥

इन्द्रो यदि मम वाहनं स्यात्तर्हि दैत्यान्हनिष्यामीति तेन वाहनत्वेन वृतः सन्निन्द्रो लज्जया तदनङ्गीकुर्वन्विष्णोर्वचनात्तस्य वाहनत्वाय महान्वृषो बभूवेत्यर्थः ॥ १४ ॥

(પુરંજયે કહ્યું કે) જો ઈન્દ્ર મારું વાહન થાય તો હું દૈત્યોને હણીશ. તેથી વાહન તરીકે વરણ કરાયેલો હોઈ ઈન્દ્રે લજ્જાથી તેનો અસ્વીકાર કરતાં (કર્યો ત્યારે) વિષ્ણુના કહેવાથી તેના વાહન તરીકે તે મહાન વૃષ બન્યો, એમ અર્થ છે. ॥ ૧૪ ॥

स संनद्धो धनुर्दिव्यमादाय विशिखान् शितान् ।
स्तूयमानः समारुह्य युयुत्सुः ककुदि स्थितः ॥ १५ ॥ १५ ॥

કવચ પહેરી, દિવ્ય ધનુષ્ય અને તીક્ષ્ણ બાણો લઈ (દેવો દ્વારા) સ્તુતિ કરાતો, યુદ્ધની ઈચ્છાવાળો પુરંજય (વૃષ ઉપર) આરૂઢ થઈ (તેની) ખાંધ પાસે બેઠો. ॥ ૧૫ ॥ ૧૫ ॥

तेजसाऽऽप्यायितो विष्णोः पुरुषस्य परात्मनः ।
प्रतीच्यां दिशि दैत्यानां न्यरुणत् त्रिदशैः पुरम् ॥ १६ ॥ १६ ॥

પરમપુરુષ પરમાત્મા વિષ્ણુના તેજથી વૃદ્ધિ પામેલા પુરંજયે પશ્ચિમ દિશામાં દૈત્યોના નગરને દેવોની સાથે રહી ઘેરી લીધું. ॥ ૧૬ ॥ ૧૬ ॥

तैस्तस्य चाभूत् प्रधनं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
यमाय भल्लैरनयद् दैत्यान् येऽभिययुर्मृधे ॥ १७

તે દૈત્યો સાથે તેનું ભયંકર, રોમાંચકારી યુદ્ધ થયું. જે જે દૈત્યો તેની સામે આવ્યા તે તે દૈત્યોને ભાલાઓથી યમને (ત્યાં) મોકલી દીધા. ॥ ૧૭ ॥

येऽभिमुखं ययुस्तान् यमं दर्शयितुं सदेहानेव भल्लैरनयदित्यर्थः ॥ १७ ॥

જે દૈત્યો સામે આવ્યા તેમને યમરાજનાં દર્શન કરાવવા માટે ભાલાઓથી (યમરાજને ત્યાં) સદેહે મોકલ્યા, એમ અર્થ છે. ॥ ૧૭ ॥

तस्येषुपाताभिमुखं युगान्ताग्निमिवोल्बणम् ।
विसृज्य दुद्रुवुर्दैत्या हन्यमानाः स्वमालयम् ॥ १८

હણવામાં આવતા બીજા દૈત્યોને જોઈને તે દૈત્યો પ્રલયકાળના અગ્નિ જેવી તેની દુઃસહ બાણવર્ષાની સામે જવાનું છોડી દઈ પોતાના સ્થાન (પાતાળ)માં નાસી ગયા. ॥ ૧૮ ॥

तच्च दृष्ट्वाऽन्ये दुद्रुवुः । स्वमालयं पातालम् ॥ १८ ॥

તે જોઈને બીજા દૈત્યો પોતાના '**आलयम्**' સ્થાન પાતાળમાં નાસી ગયા. ॥ ૧૮ ॥

जित्वा पुरं धनं सर्वं सश्रीकं वज्रपाणये ।
प्रत्ययच्छत् स राजर्षिरिति नामभिराहृतः ॥ १९

રાજર્ષિ પુરંજયે (દૈત્યોનું) નગર, ધન અને લક્ષ્મી સહિત સર્વ કંઈ જીતી લઈને હાથમાં વજ્ર ધારણ કરનાર ઈન્દ્રને પ્રદાન કરી દીધું. આમ તે આ કર્મોને કારણે (પુરંજયાદિ) નામોથી કહેવાયો. ॥ ૧૯ ॥

इति एतैः कर्मभिः । पुरञ्जयादिनामभिः । आहृतो व्याहृतः । पाठान्तरे आहूत इत्यर्थः ॥ १९ ॥

આમ, આ કર્મોથી તે પુરંજયાદિ નામોવાળો '**आहृतः**' કહેવાયો. પાઠાન્તરમાં '**आहृतः**' ને બદલે '**आहूतः**' હોય તો કહેવાયો, એમ અર્થ છે. ॥ ૧૯ ॥

पुरञ्जयस्य पुत्रोऽभूदनेनास्तत्सुतः पृथुः।
विश्वरन्धिस्ततश्चन्द्रो युवनाश्वश्च तत्सुतः॥ २०
॥ २० ॥

शाबस्तस्तत्सुतो येन शाबस्ती निर्ममे पुरी।
बृहदश्वस्तु शाबस्तिस्ततः कुवलयाश्वकः॥ २१

शाबस्तिः शाबस्तस्य पुत्रः। कुवलयाश्वक एव धुन्धुमार इति ख्यातः॥ २१॥

तत्र कारणमाह—**य इति**।

यः प्रियार्थमुतङ्कस्य धुन्धुनामासुरं बली।
सुतानामेकविंशत्या सहस्त्रैरहनद् वृतः॥ २२

सुतानामेकविंशत्या सहस्त्रैर्वृतः सन् हतवान् ॥ २२॥

धुन्धुमार इति ख्यातस्तत्सुतास्ते च जज्वलुः।
धुन्धोर्मुखाग्निना सर्वे त्रय एवावशेषिताः॥ २३

धुन्धुमार इति चेति चकारस्यान्वयः॥ २३॥

दृढाश्वः कपिलाश्वश्च भद्राश्व इति भारत।
दृढाश्वपुत्रो हर्यश्वो निकुम्भस्तत्सुतः स्मृतः॥ २४
॥ २४॥

बर्हणाश्वो निकुम्भस्य कृशाश्वोऽथास्य सेनजित्।
युवनाश्वोऽभवत् तस्य सोऽनपत्यो वनं गतः॥ २५

अथ तस्मान्निकुम्भात्कृशाश्वः॥ २५॥

भार्याशतेन निर्विण्ण ऋषयोऽस्य कृपालवः।
इष्टिं स्म वर्तयाञ्चक्रुरैन्द्रीं ते सुसमाहिताः॥ २६

પુરંજયનો અનેના (નામક) પુત્ર થયો. તેનો પુત્ર પૃથુ થયો. તેનાથી વિશ્વરંધિ, તેનાથી ચન્દ્ર અને ચન્દ્રનો યુવનાશ્વ થયો.॥ ૨૦॥ ૨૦॥

શાબસ્ત તે (યુવનાશ્વ)નો પુત્ર થયો, કે જેણે શાબસ્તી નગરી વસાવી. શાબસ્તનો બૃહદશ્વ અને તેનાથી કુવલયાશ્વક થયો.॥ ૨૧॥

'**शाबस्तिः**' શાબસ્તનો પુત્ર– કુવલયાશ્વક જ 'ધુન્ધુમાર' નામે વિખ્યાત થયો.॥ ૨૧॥

('ધુન્ધુમાર' નામ પડ્યું,) તેનું કારણ જણાવે છે— '**यः इति**।'

જે બળવાન કુવલયાશ્વકે ઉતંક ઋષિનું પ્રિય કરવા માટે એકવીસ હજાર પુત્રોથી વીંટાઈ ધુંધુ નામના અસુરને હણ્યો હતો.॥ ૨૨॥

એકવીસ હજાર પુત્રોથી વીંટાઈને અસુરને હણ્યો હતો.॥ ૨૨॥

અને 'ધુન્ધુમાર' નામથી પ્રખ્યાત થયો હતો, તેના તે સર્વ પુત્રો ધુન્ધુ દૈત્યના મુખના અગ્નિથી બળી ગયા હતા, માત્ર ત્રણ જ પુત્રો બાકી રહ્યા હતા.॥ ૨૩॥

'**धुन्धुमारः इति च**' એમ ચ કારનો સંબંધ છે.॥ ૨૩॥

હે ભરતવંશી પરીક્ષિત! દઢાશ્વ, કપિલાશ્વ અને ભદ્રાશ્વ– (એ ત્રણ બચેલા પુત્રો હતા.) દઢાશ્વનો પુત્ર હર્યશ્વ અને તેનો પુત્ર નિકુંભ કહેવાયો.॥ ૨૪॥ ૨૪॥

નિકુંભનો બર્હણાશ્વ, પછી તેનો બીજો પુત્ર કૃશાશ્વ, આ કૃશાશ્વનો સેનજિત્, તેનો યુવનાશ્વ થયો, તે સંતાનરહિત હોઈ વનમાં ગયો.॥ ૨૫॥

હવે તે નિકુંભથી કૃશાશ્વ બીજો પુત્ર થયો.॥ ૨૫॥

ખિન્ન મનવાળો તે (યુવાનાશ્વ) સો ભાર્યાઓ સાથે (વનમાં ગયો). (ત્યાં) દયાળુ ઋષિઓ આને ખૂબ એકાગ્ર થઈ (પુત્ર-પ્રાપ્તિ માટે) ઈન્દ્રદેવનો યજ્ઞ કરાવવા માંડ્યા.॥ ૨૬॥

भार्याणां शतेन सह। अस्य पुत्रार्थमिन्द्र-देवत्यामिष्टिं वर्तयामासुः। स्मेत्याश्चर्ये॥ २६॥

સો ભાર્યાઓ સાથે– આ (યુવનાશ્વ)ને પુત્રપ્રાપ્તિ માટે ઈન્દ્રદેવનો યજ્ઞ કરાવવા માંડ્યા. ત્યાં પણ એક આશ્ચર્યકારક ઘટના બની તે '**स्म**' શબ્દથી સૂચવે છે.॥ ૨૬॥

तदेवाह—**राजेति** षड्भिः।

તે આશ્ચર્યને જ છ શ્લોકો વડે કહે છે— '**राजा इति।**'

राजा तद् यज्ञसदनं प्रविष्टो निशि तर्षितः।
दृष्ट्वा शयानान् विप्रांस्तान् पपौ मन्त्रजलं स्वयम्॥ २७

(પુત્રકામેષ્ટિ યજ્ઞ દરમ્યાન) રાત્રે તરસ્યો થયેલો રાજા યુવનાશ્વ તે યજ્ઞશાળામાં પ્રવેશ્યો. તે વિપ્રોને (ત્યાં) સૂતેલા જોઈને (કોઈને કાંઈ પણ પૂછ્યા વિના પત્નીને આપવાનું) અભિમંત્રિત કરેલું જળ પોતે જ પી ગયો.॥ ૨૭॥

तर्षितस्तृषितः सन् जलार्थं प्रविष्टो मन्त्राभिमन्त्रितं जलं पत्न्यै देयं स्वयं पपौ॥ २७॥

'**तर्षितः**' તૃષિત થયેલો હોઈ રાજા જળ માટે પ્રવેશ્યો. '**मन्त्रजलम्**' અભિમંત્રિત જળ, પત્નીને આપવા યોગ્ય હતું તે પોતે જ પી ગયો.॥ ૨૭॥

उत्थितास्ते निशाम्याथ व्युदकं कलशं प्रभो।
पप्रच्छुः कस्य कर्मेदं पीतं पुंसवनं जलम्॥ २८

હે સમર્થ (પરીક્ષિત), (સવારમાં) ઊઠેલા તે વિપ્રોએ જળરહિત કળશ જોઈ પૂછ્યું. (પુત્રોત્પત્તિના કારણરૂપ) પુંસવનજળ પી જવાનું આ કામ કોનું છે?॥ ૨૮॥

व्युदकं निरुदकम्। पुंसवनं पुत्रोत्पत्तिकारणम्॥ २८॥

'**व्युदकम्**' જળરહિત (કળશ)ને, '**पुंसवनम्**' પુત્રોત્પત્તિના કારણ(રૂપ જળ)ને॥ ૨૮॥

राज्ञा पीतं विदित्वाऽथ ईश्वरप्रहितेन ते।
ईश्वराय नमश्चक्रुरहो दैवबलं बलम्॥ २९

ઈશ્વર દ્વારા પ્રેરાયેલા રાજા દ્વારા પી જવામાં આવ્યું છે, એમ જાણીને 'આશ્ચર્યની વાત છે કે દૈવબળ એ જ મહાન બળ છે.' (એમ બોલતા) તે ઋષિઓએ ઈશ્વરને નમસ્કાર કર્યા.॥ ૨૯॥

अहो दैवबलमेव मुख्यं बलं पुरुषबलं तु न किंचिदिति वदन्त ईश्वराय नमस्कारं चक्रुः॥ २९॥

'અહો! દૈવબળ જ મુખ્ય બળ છે, મનુષ્યનું કાંઈ પણ બળ નથી.' એમ બોલતા તે ઋષિઓએ નમસ્કાર કર્યા.॥ ૨૯॥

ततः काल उपावृत्ते कुक्षिं निर्भिद्य दक्षिणम्।
युवनाश्वस्य तनयश्चक्रवर्ती जजान ह॥ ३०

ત્યાર પછી પ્રસવકાળ આવતાં, યુવનાશ્વનું દક્ષિણ પડખું ફાડીને ચક્રવર્તી પુત્ર જન્મ્યો.॥ ૩૦॥ ૩૦॥

॥ ३०॥

भ.मनो.—जजान संबभूव।

પુત્ર જન્મ્યો અને તે ચક્રવર્તી બન્યો.

कं धास्यति कुमारोऽयं स्तन्यं रोरूयते भृशम्।
मां धाता वत्स मा रोदीरितीन्द्रो देशिनीमदात्॥ ३१

અા બાળક દૂધ માટે વારંવાર અત્યંત રડવા લાગ્યો. આ કોને ધાવશે? 'મને ધાવશે! હે વત્સ, તું રડીશ નહીં.' એમ કહી ઈન્દ્રે (તે બાળકના મુખમાં) તર્જની આપી.॥ ૩૧ ॥ (તર્જની = અંગૂઠા પાસેની આંગળી)

अयं कं धास्यति पास्यतीति दुःखितैर्विप्रैरुक्ते सति तस्यामिष्ट्यामाराधित इन्द्रो मां धाता पाता हे वत्स, मा रोदीरिति ब्रुवन् देशिनीं तर्जनीमदादित्यर्थः ॥ ३१ ॥

આ બાળક કોને **'धास्यति'** ધાવશે, એમ દુઃખી થયેલા વિપ્રો બોલ્યા ત્યારે તેની ઈષ્ટિમાં આરાધવામાં આવેલા ઈન્દ્રદેવ મને **'धाता'** ધાવશે, પાન કરશે. હે વત્સ, તું રડીશ નહીં, એમ બોલતા ઈન્દ્રે **'देशिनीम्'** તર્જનીને (મુખમાં) આપી, એમ અર્થ છે.॥ ૩૧ ॥

न ममार पिता तस्य विप्रदेवप्रसादतः।
युवनाश्वोऽथ तत्रैव तपसा सिद्धिमन्वगात्॥ ३२

(પેટ ચિરાઈ જવા છતાં) તેના પિતા (યુવનાશ્વ) વિપ્રો અને દેવોની કૃપાથી મર્યા નહીં અને ત્યાં (વનમાં) જ તપથી સિદ્ધિને પ્રાપ્ત થયા.॥ ૩૨ ॥

तस्य पिता युवनाश्वो भिन्नकुक्षिरपि न ममार किंतु कालान्तरे तपसा सिद्धिमन्वगात्॥ ३२ ॥

તેના પિતા યુવનાશ્વ ચિરાયેલા પેટવાળા હોવા છતાં મર્યા નહીં, પરંતુ કાળાન્તરે તપથી સિદ્ધિને પ્રાપ્ત થયા.॥ ૩૨ ॥

मान्धातुर्महिमानमाह—**त्रसद्दस्युरिति** षड्भिः।

માંધાતાના મહિમાનું છ શ્લોકો વડે વર્ણન કરે છે— **'त्रसद्-दस्युः इति।'**

त्रसद्दस्युरितीन्द्रोऽङ्ग विदधे नाम तस्य वै।
यस्मात् त्रसन्ति ह्युद्विग्ना दस्यवो रावणादयः॥ ३३

હે રાજા, રાવણ વગેરે દુષ્ટો જેનાથી ઉદ્વિગ્ન થઈ ત્રાસ પામતા હતા, તે (માંધાતા)નું નામ ઈન્દ્રે 'ત્રસદ્દસ્યુ' પાડ્યું હતું.॥ ૩૩ ॥

अङ्ग हे राजन्, यस्मान्मान्धातुर्दस्यव उद्विग्नाः कम्पिताः सन्तस्त्रसन्त्यत इन्द्रो यस्य त्रसद्दस्युरिति नाम विदधे। स मान्धाताऽवनीमेकः शशासेत्युत्तरेणान्वयः॥ ३३ ॥

'अङ्ग' હે રાજા, જે માંધાતાથી દુષ્ટો **'उद्विग्नाः'** કાંપતા હોઈ, ત્રાસ પામતા હતા, આથી ઈન્દ્રે જેનું નામ 'ત્રસદ્દસ્યુ' પાડ્યું હતું, તે માંધાતાએ એકલા જ પૃથ્વીનું શાસન કર્યું હતું, એમ પછીના શ્લોક (૩૪) સાથે અન્વય છે.॥ ૩૩ ॥

यौवनाश्वोऽथ मान्धाता चक्रवर्त्यवनीं प्रभुः।
सप्तद्वीपवतीमेकः शशासाच्युततेजसा॥ ३४

યુવનાશ્વપુત્ર ચક્રવર્તી સમર્થ માંધાતાએ એકલાએ જ અચ્યુત ભગવાનના પ્રભાવથી સાત દ્વીપવાળી પૃથ્વીનું શાસન કર્યું હતું.॥ ૩૪॥

अच्युतस्य तेजसा। अप्रच्युततेजसेति वा ॥ ३४ ॥

અચ્યુત ભગવાનના તેજથી (પ્રભાવથી) અથવા **'अप्रच्युतः'** ચ્યુત ન થાય તેવા અપ્રચ્યુત તેજથી॥ ૩૪ ॥

ईजे च यज्ञं क्रतुभिरात्मविद् भूरिदक्षिणैः।
सर्वदेवमयं देवं सर्वात्मकमतीन्द्रियम्॥ ३५

आत्मविदपि स यज्ञं विष्णुमीजे। तमेव विशिनष्टि—सर्वदेवमयमिति सार्धेन॥ ३५॥

द्रव्यं मन्त्रो विधिर्यज्ञो यजमानस्तथर्त्विजः।
धर्मो देशश्च कालश्च सर्वमेतद् यदात्मकम्॥ ३६

॥ ३६॥

यावत् सूर्य उदेति स्म यावच्च प्रतितिष्ठति।
सर्वं तद् यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते॥ ३७

प्रतितिष्ठत्यस्तं गच्छति॥ ३७॥

शशबिन्दोर्दुहितरि बिन्दुमत्यामधान्नृपः।
पुरुकुत्समम्बरीषं मुचुकुन्दं च योगिनम्।
तेषां स्वसारः पञ्चाशत् सौभरिं वव्रिरे पतिम्॥ ३८

प्रसङ्गात्सौभरेश्चरितमाह—तेषामिति यावत् समाप्ति। तेषां स्वसारो मान्धातुः कन्याः॥ ३८॥

ननु महातापसस्य कुतो विवाहप्रसङ्गः, कथं वा जराजर्जरं तं राजकन्या वव्रिरे तदाह—**यमुनान्तर्जल इति** षड्भिः।

यमुनान्तर्जले मग्नस्तप्यमानः परंतपः।
निर्वृतिं मीनराजस्य वीक्ष्य मैथुनधर्मिणः॥ ३९

॥ ३९॥

जातस्पृहो नृपं विप्रः कन्यामेकामयाचत।
सोऽप्याह गृह्यतां ब्रह्मन् कामं कन्या स्वयंवरे॥ ४०

આત્મવેત્તા એવા માંધાતાએ મોટી મોટી દક્ષિણાઓવાળા યજ્ઞો દ્વારા સર્વદેવમય, સર્વસ્વરૂપ, ઇન્દ્રિયાતીત, યજ્ઞદેવ ભગવાન વિષ્ણુનું યજન કર્યું હતું.॥ ૩૫॥

આત્મવેત્તા હોવા છતાં પણ તેણે '**यज्ञम्**' વિષ્ણુ ભગવાનનું યજન કર્યું હતું. તે વિષ્ણુ ભગવાનને જ દોઢ શ્લોકથી વિશેષણપૂર્વક કહે છે— '**सर्वदेवमयम् इति।**'॥ ૩૫॥

યજ્ઞની સામગ્રી, મંત્ર, વિધિ, યજ્ઞ, યજમાન તથા ઋત્વિજો, ધર્મ, દેશ અને કાળ– આ સર્વ જે છે તે વિષ્ણુ ભગવાનનું સ્વરૂપ છે.॥ ૩૬॥ ૩૬॥

જ્યાંથી સૂર્ય ઊગે છે અને જ્યાં અસ્ત થાય છે, તે સર્વ પ્રદેશ યુવનાશ્વપુત્ર માંધાતાનો (અધિકાર) કહેવાતો.॥ ૩૭॥

'**प्रतितिष्ठति**' અસ્ત પામે છે.॥ ૩૭॥

રાજા માંધાતાએ શશબિંદુની પુત્રી બિંદુમતીમાં પુરુકુત્સ, અંબરીષ અને યોગી મુચુકુન્દને ઉત્પન્ન કર્યા હતા. તેમની પચાસ બહેનોએ સૌભરિ ઋષિનું પતિ તરીકે વરણ કર્યું હતું.॥ ૩૮॥

પ્રસંગોપાત્ત અધ્યાય સમાપ્ત થાય ત્યાં સુધી સૌભરિ ઋષિનું ચરિત્ર કહે છે— '**तेषाम् इति**' તેમની બહેનો અર્થાત્ માંધાતાની પુત્રીઓ॥ ૩૮॥

શંકા કરવામાં આવી છે કે મહાતપસ્વી સૌભરિ ઋષિને વિવાહનો પ્રસંગ કેવી રીતે આવ્યો? વળી, ઘડપણથી જીર્ણ થયેલા તેમને રાજકન્યાઓ કેમ વરી? તે છ શ્લોકોથી કહે છે— '**यमुनान्तर्जले इति।**'

યમુનાના જળની અંદર ડૂબકી મારીને તપ કરતા પરમ તપસ્વી સૌભરિ ઋષિએ મૈથુન જ જેનો ધર્મ છે તેવા મત્સ્યરાજનું મૈથુનસુખ જોઈને, ॥ ૩૯॥ ૩૯॥ તે સુખની સ્પૃહા જેમને જન્મી તેવા તે વિપ્રે (સૌભરિએ) માંધાતા રાજા પાસે (જઈને) એક કન્યા માગી. તે રાજાએ પણ કહ્યું, 'હે બ્રહ્મન્, ભલે, (જે કન્યા) સ્વયંવરમાં (આપનું વરણ કરે તે) કન્યાને આપ ગ્રહણ કરી લેજો.'॥ ૪૦॥

नृपं मान्धातारम्। सोऽपि मान्धाता स्वयंवरे कामं गृह्यतामित्याह॥ ४० ॥

स विचिन्त्याप्रियं स्त्रीणां जरठोऽयमसम्मतः।
वलीपलित एजत्क इत्यहं प्रत्युदाहृतः॥ ४१

साधयिष्ये तथाऽऽत्मानं सुरस्त्रीणामपीप्सितम्।
किं पुनर्मनुजेन्द्राणामिति व्यवसितः प्रभुः॥ ४२

स विप्रः स्त्रीणामप्रियं मां विचिन्त्यानेनाहं प्रत्युक्तः, अत आत्मानं तथा साधयिष्यामीति व्यवसितो निश्चितवानिति द्वयोरन्वयः। अप्रियत्वे हेतुः—जरठो वृद्धः। वलीभिर्युक्तः पलितश्च। एजत् कः कम्पमानशिराः। तापसत्वादिना वाऽसंमतोऽहमिति कृत्वा॥ ४१ ॥

तथेत्यस्य प्रपञ्चः—सुरस्त्रीणामपीप्सितं, किं पुनर्मनुजेन्द्राणां याः स्त्रियस्तासामिति॥ ४२ ॥

ततः किं वृत्तं तदाह—**मुनिरिति** द्वाभ्याम्।

मुनिः प्रवेशितः क्षत्त्रा कन्यान्तःपुरमृद्धिमत्।
वृतश्च राजकन्याभिरेकः पञ्चाशता वरः॥ ४३

'**नृपम्**' રાજા માંધાતાની પાસે– તે માંધાતાએ પણ 'સ્વયંવરમાં આપ ભલે ગ્રહણ કરી લેજો.' એમ કહ્યું. ॥ ૪૦ ॥

'(શરીર ઉપર) વળિયાં અને (માથે) પળિયાંવાળો, કંપતા મસ્તકવાળો અને ઘરડો એવો આ, સ્ત્રીઓનું મન ન માને તેવો છે.' એમ (સ્ત્રીઓને) અપ્રિય લાગે તેવા મને જોઈને (આ સ્વયંવરના બહાને) હું નકારાયો જ છું. (અર્થાત્ આ રીતે રાજાએ મને ના જ પાડી છે.) (આથી) દેવાંગનાઓને પણ અભીપ્સિત એવા મને પોતાને હું બનાવીશ, તો વળી રાજકન્યાઓને અભીપ્સિત હોઉં, તેમાં શું કહેવું? એમ (વિચારીને) જેમણે નિશ્ચય કર્યો તે સમર્થ ઋષિએ (કામદેવ જેવું સુંદર રૂપ ધારણ કર્યું.)॥ ૪૧ ॥ ૪૨ ॥

સ્ત્રીઓને અપ્રિય લાગે તેવા મને જોઈને આ (સ્વયંવરના બહાના) દ્વારા હું નકારાયો જ છું. આથી હું પોતાને (સ્ત્રીઓ અભિલાષા સેવે) તેવો બનાવીશ, એમ '**व्यवसितः**' જેમણે નિશ્ચય કર્યો તે, એમ બે શ્લોકોનો સંબંધ છે. (સ્ત્રીઓને) અપ્રિય હોવાનું કારણ— '**जरठः**' વૃદ્ધ, વળિયાંથી યુક્ત અને પળિયાં (સફેદ વાળ), '**एजत्-कः**' કંપતા મસ્તકવાળો અથવા હું તપસ્વી વગેરે હોવાને કારણે સ્ત્રીઓનું મન ન માને તેવો છું, એમ વિચારીને॥ ૪૧ ॥

'**तथा इति।**' પદનો વિસ્તાર— દેવાંગનાઓને પણ અભીપ્સિત હોઉં તેવો, તો પછી રાજાઓની જે સ્ત્રીઓ છે તેમને (અભીપ્સિત હોઉં, તેમાં શું કહેવું?)॥ ૪૨ ॥

ત્યાર પછી શું થયું તે બે શ્લોકો વડે કહે છે— '**मुनिः इति।**'

કન્યાઓના સમૃદ્ધિવાળા અંતઃપુરમાં દ્વારપાળ દ્વારા પ્રવેશ કરાવવામાં આવેલા મુનિ સૌભરિ એકલા જ પચાસે રાજકન્યાઓ દ્વારા વર તરીકે વરણ કરાયા.॥ ૪૩ ॥

क्षत्रा प्रतीहारेण। पञ्चाशतापि राजकन्याभिः स एक एव वरो वृतः ॥ ४३ ॥

'क्षत्रा' દ્વારપાળ દ્વારા– પચાસેય રાજકન્યાઓ દ્વારા તે એકલા જ વર તરીકે પસંદ કરવામાં આવ્યા. ॥ ૪૩ ॥

तासां कलिरभूद् भूयांस्तदर्थेऽपोह्य सौहृदम्।
ममानुरूपो नायं व इति तद्‌गतचेतसाम्॥ ४४

॥ ४४ ॥

તે (અતિસુંદર વર)માં આસક્ત ચિત્તવાળી તેમનામાં (બહેનોમાં) તે (વર) માટે સહૃદયતા છોડીને 'આ તો મારે માટે યોગ્ય છે, તમારે માટે નહીં.' એમ મહાક્લેશ થઈ ગયો. ॥ ૪૪ ॥ ૪૪ ॥

तस्य गार्हस्थ्यं वर्णयति—**स इति** चतुर्भिः—

તેમના ગૃહસ્થાશ્રમનું ચાર શ્લોકો દ્વારા વર્ણન કરે છે— **'सः इति।'**

स बह्वृचस्ताभिरपारणीय-
तपःश्रियाऽनर्घ्यपरिच्छदेषु ।
गृहेषु नानोपवनामलाम्भः-
सरस्सु सौगन्धिककाननेषु॥ ४५
महार्हशय्यासनवस्त्रभूषण-
स्नानानुलेपाभ्यवहारमाल्यकैः ।
स्वलङ्कृतस्त्रीपुरुषेषु नित्यदा
रेमेऽनुगायद्‌द्विजभृङ्गवन्दिषु ॥ ४६

તે ઋગ્વેદી ઋષિ અપાર તપની સમૃદ્ધિથી બહુમૂલ્ય રાચરચીલાંવાળા, સુંદર રીતે અલંકૃત થયેલા દાસ-દાસીઓવાળા, પક્ષીઓ, ભમરાઓ અને બંદીજનો દ્વારા ગાન કરાતાં ગૃહોમાં, કહ્‌લારાદિના સમૂહો છે જેમાં તેવાં નિર્મળ જળવાળાં સરોવરોમાં તથા જાત જાતનાં ઉપવનોમાં, બહુમૂલ્ય શય્યા, આસન, વસ્ત્ર, આભૂષણ, સ્નાન, વિલેપન, ભોજન અને પુષ્પમાળાઓ વડે (તે પત્નીઓ સાથે) સદાય રમણ કરતા હતા. ॥ ૪૫ ॥ ૪૬ ॥

बह्वृच इति मन्त्रसामर्थ्यमुक्तम्। ताभिः सह रेमे इत्युत्तरेणान्वयः। क्व रेमे। अपारणीयं दुरन्तं यत्तपस्तस्य श्रिया समृद्ध्याऽनर्घ्याः परिच्छदा येषु तेषु गृहेषु तथा नानाविधेषूपवनेषु च। अमलान्यम्भांसि येषां तेषु सरस्सु च। कथंभूतेषु। सौगन्धिकानां कह्लाराणां च काननानि स्तोमा येषु॥ ४५ ॥

'बह्वृचः इति।' ઋગ્વેદી– એમ કહી તેમનું મંત્રસામર્થ્ય કહેવાયું છે. તે પત્નીઓ સાથે રમણ કરતા હતા, એમ પછીના શ્લોક (૪૬) સાથે અન્વય છે. ક્યાં રમણ કરતા હતા? **'अपारणीयम्'** અપાર એવું જે તપ છે તેની **'श्रिया'** સમૃદ્ધિથી અમૂલ્ય ઉપકરણો જેમાં છે તે ગૃહોમાં તથા અનેક જાતનાં ઉપવનોમાં અને નિર્મળ જળ છે જેમાં તે સરોવરોમાં. કેવાં સરોવરોમાં? **'सौगन्धिकानाम्'** મધુર સુગંધવાળાં કહ્‌લાર કુમુદોના સમૂહો છે જેમાં તે સરોવરોમાં ॥ ૪૫॥

कथंभूतेषु गृहादिषु। स्वलंकृताः स्त्रियः पुरुषाश्च येषु। अनु गायन्तो द्विजाश्च पक्षिणो भृङ्गाश्च बन्दिनश्च येषु। कथंभूतः। महार्हशय्यादि-भिरुपलक्षितः सन्॥ ४६ ॥

કેવાં ગૃહોમાં? સુંદર અલંકાર ધારણ કરેલા દાસ-દાસીઓ છે જેમાં, વારંવાર ગાન કરતાં **'द्विजाः'** પક્ષીઓ તથા ભમરાઓ અને બંદીજનો છે જે ગૃહોમાં. કેવા ઋષિ? બહુમૂલ્ય શય્યા વગેરે દ્વારા સૂચિત એવા તે સૌભરિ ઋષિ ॥ ૪૬ ॥

यद्गार्हस्थ्यं तु संवीक्ष्य सप्तद्वीपवतीपतिः ।
विस्मितः स्तम्भमजहात् सार्वभौमश्रियान्वितम् ॥ ४७

स्तम्भं गर्वम् ॥ ४७ ॥

एवं गृहेष्वभिरतो विषयान् विविधैः सुखैः ।
सेवमानो न चातुष्यदाज्यस्तोकैरिवानलः ॥ ४८

आज्यस्तोकैर्घृतबिन्दुभिः ॥ ४८ ॥

इदानीं तस्यानुतापपूर्वकं वानप्रस्थाश्रम-माह—**स कदाचिदिति** सप्तभिः ।

स कदाचिदुपासीन आत्मापह्नवमात्मनः ।
ददर्श बह्वृचाचार्यो मीनसङ्गसमुत्थितम् ॥ ४९

आत्मनो मनसो हेतोरात्मनोऽपह्नवं तपोहानिं ददर्श ॥ ४९ ॥

अहो इमं पश्यत मे विनाशं
तपस्विनः सच्चरितव्रतस्य ।
अन्तर्जले वारिचरप्रसङ्गात्
प्रच्यावितं ब्रह्म चिरं धृतं यत् ॥ ५०

संश्वासौ चरितव्रतश्च योऽहं तस्य। ब्रह्म तपः ॥ ५० ॥

सङ्गं त्यजेत मिथुनव्रतिनां मुमुक्षुः
सर्वात्मना न विसृजेद् बहिरिन्द्रियाणि ।
एकश्चरन् रहसि चित्तमनन्त ईशे
युञ्जीत तद्व्रतिषु साधुषु चेत् प्रसङ्गः ॥ ५१

સાત દ્વીપોવાળી પૃથ્વીના સ્વામી માંધાતાએ જેમના ગાર્હસ્થ્યને જોઈ, આશ્ચર્ય પામીને સાર્વભૌમ-સંપત્તિયુક્ત હોવાનો ગર્વ છોડી દીધો હતો. ॥ ૪૭ ॥

'स्तम्भम्' ગર્વને ॥ ૪૭ ॥

આમ, ગૃહોમાં આસક્ત થયેલા અને વિવિધ સુખવાળા વિષયોનું સેવન કરતા સૌભરિ, ઘીનાં ટીપાંઓથી અગ્નિ તૃપ્ત ન થાય તેમ તૃપ્ત થયા નહીં. ॥ ૪૮ ॥

'आज्यस्तोकैः' ઘીનાં ટીપાંઓથી ॥ ૪૮ ॥

હવે તેમના પશ્ચાત્તાપવાળો વાનપ્રસ્થાશ્રમ સાત શ્લોકો દ્વારા વર્ણવે છે— **'सः कदाचित् इति।'**

કોઈ એક દિવસે ઋગ્વેદાચાર્ય સૌભરિએ બેઠાં બેઠાં, માછલાના સંગથી ઉત્પન્ન થયેલી, પોતાના મનને કારણે પોતાની તપોહાનિ જોઈ. ॥ ૪૯ ॥

'आत्मनः' મનને કારણે આત્માની **'अपह्नवम्'** તપોહાનિ જોઈ. ॥ ૪૯ ॥

અરે! મારો આ વિનાશ જુઓ! તપોનિષ્ઠ થઈ વ્રતનું આચરણ કરનાર હોવા છતાં પણ મારું, જળની અંદર જળચરના પ્રસંગને કારણે ચિરકાળથી ધારણ કરેલું જે તપ હતું તે નષ્ટ થયું છે! ॥ ૫૦ ॥

તપોનિષ્ઠ થઈને વ્રતનું આચરણ કરનાર જે હું તેનું **'ब्रह्म'** તપ ॥ ૫૦ ॥

મોક્ષની ઈચ્છાવાળો (સાધક) દામ્પત્ય-ધર્મવાળાઓનો સંગ નિશ્ચિત મનથી છોડે, ઈન્દ્રિયોને બહિર્મુખ ન થવા દે, એકલા જ વિચરતાં, ચિત્તને એકાંતમાં સર્વનિયંતા અનંત ભગવાનમાં લગાડે અને જો સંગ કરવો જ પડે તો તે ઈશ્વર (માટે જ ધર્મપરાયણ રહેનારા)ના વ્રતવાળાઓમાં જ (સંગ રાખે.) ॥ ૫૧ ॥

मिथुनव्रतिनां दाम्पत्यधर्मवतां चेद्यदि प्रसङ्गस्तर्हि तद्व्रतिषु ईश्वरार्थधर्मपरेष्वेव कार्य इति शेषः ॥ ५१ ॥

सङ्गाज्जातं दोषं प्रपञ्चयति—**एक इति**।

एकस्तपस्व्यहमथाम्भसि मत्स्यसङ्गात्
पञ्चाशदासमुत पञ्चसहस्रसर्गः।
नान्तं व्रजाम्युभयकृत्यमनोरथानां
मायागुणैर्हृतमतिर्विषयेऽर्थभावः ॥ ५२

पञ्चाशता भार्याभिः संबन्धात्पञ्चाशदासम्। अभूवमित्यर्थः। ततश्च सुतैः पञ्चसहस्रसर्ग आसम्। प्रत्येकं तासु पुत्रशतरूपेणोत्पत्तेः। उभयकृत्यान्यैहिकपारत्रिकाणि कर्माणि तद्विषयाणां मनोरथानाम्। अर्थभावः पुरुषार्थबुद्धिमान्॥ ५२ ॥

एवं वसन् गृहे कालं विरक्तो न्यासमास्थितः।
वनं जगामानुययुस्तत्पत्न्यः पतिदेवताः॥ ५३

न्यासोऽत्र सङ्गत्याग एव। वानप्रस्थधर्म इत्यर्थः ॥ ५३ ॥

तत्र तप्त्वा तपस्तीक्ष्णमात्मकर्शनमात्मवान्।
सहैवाग्निभिरात्मानं युयोज परमात्मनि॥ ५४
॥ ५४ ॥

'मिथुनव्रतिनाम्' દામ્પત્યધર્મવાળાઓનો (સંગ છોડે). **'चेत्'** જો પ્રસંગ પડે તો **'तत्-व्रतिषु'** તે ઈશ્વર માટે જ ધર્મપરાયણ રહેનારા તે જનોમાં જ સંગ કરવો જોઈએ, એટલું શેષ છે.।। ૫૧।।

સંગને કારણે જન્મેલા દોષને વિસ્તારપૂર્વક સમજાવે છે— **'एकः इति।'**

(પહેલાં) હું કેવળ એક તપસ્વી હતો. પછી જળમાં મત્સ્યના સંગથી (પચાસ સ્ત્રીઓ સાથે વિવાહસંબંધ થવાથી) હું પચાસ રૂપોવાળો બન્યો. પછી તે સ્ત્રીઓમાં (પુત્રરૂપે ઉત્પન્ન થવાથી) પાંચહજારની સૃષ્ટિવાળો બન્યો. માયાના ગુણોથી હરાઈ ગયેલી બુદ્ધિવાળો અને (શબ્દાદિ) વિષયોમાં પુરુષાર્થ બુદ્ધિવાળો હું આ લોક અને પરલોકનાં કર્મો સંબંધી મનોરથોના અંતને પામ્યો નથી.।।૫૨।।

પચાસ ભાર્યાઓ સાથે સંબંધ થવાથી પચાસ રૂપોવાળો **'आसम्'** બન્યો, એમ અર્થ છે. ત્યાર પછી પુત્રો સાથે પાંચહજારની સૃષ્ટિવાળો બન્યો, પ્રત્યેક સ્ત્રીમાં સો સો પુત્રોરૂપે ઉત્પન્ન થવાથી– **'उभयकृत्यानि'** આ લોક અને પરલોકનાં કર્મો, તે કર્મો સંબંધી મનોરથોના (અંતને પામ્યો નથી.), **'अर्थभावः'** પુરુષાર્થબુદ્ધિવાળો।।૫૨।।

આમ, ઘણો સમય ઘરમાં રહેતા સૌભરિ મુનિ વિરક્ત થઈ સંગના ત્યાગ(રૂપ વાનપ્રસ્થ ધર્મ)માં સ્થિત થયા અને વનમાં ચાલ્યા ગયા. પતિ જ જેમના દેવતા છે તેવી તેમની પત્નીઓ પણ તેમની પાછળ વનમાં ગઈ.॥ ૫૩॥

અહીં **'न्यासः'** એટલે માત્ર સંગનો ત્યાગ, વાનપ્રસ્થ ધર્મ, એમ અર્થ છે.॥ ૫૩॥

ત્યાં શરીરને કૃશ કરનારું ઉગ્ર તપ કરી આત્મતત્ત્વજ્ઞ મુનિએ (આહવનીય) અગ્નિઓ સાથે આત્માને પરમાત્મામાં લીન કરી દીધો. ॥ ૫૪॥ ૫૪॥

ताः स्वपत्युर्महाराज निरीक्ष्याध्यात्मिकीं गतिम्।
अन्वीयुस्तत्प्रभावेण अग्निं शान्तमिवार्चिषः॥ ५५

હે મહારાજ (પરીક્ષિત), તે પત્નીઓ પણ પોતાના પતિની આધ્યાત્મિક ગતિ જોઈને, શાંત અગ્નિમાં જ્વાળાઓ લીન થઈ જાય તેમ તેમના પ્રભાવથી તેમને અનુસરી. (ભગવદ્દ્ગતિને પ્રાપ્ત થઈ)॥ ૫૫॥

आध्यात्मिकीं गतिं ब्रह्मणि लयम्॥ ५५॥

'आध्यात्मिकीं गतिम्' પરબ્રહ્મમાં લીન થવારૂપ ગતિને॥ ૫૫॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे सौभर्याख्याने षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

❋❋❋❋❋

अथ सप्तमोऽध्यायः

રાજા ત્રિશંકુ અને હરિશ્ચંદ્રની કથા

मान्धातुरन्वयः प्रोक्तः सप्तमे यत्र गीयते।
पुरुकुत्सस्य चाख्यानं हरिश्चन्द्रस्य चोत्तमम्॥ १॥

માંધાતાનો વંશ કહેવામાં આવ્યો કે જે માંધાતાના વંશમાં પુરુકુત્સ અને હરિશ્ચન્દ્રનું ઉત્તમ આખ્યાન છે, તે સાતમા અધ્યાયમાં ગાવામાં આવે છે.॥ ૧॥

श्रीशुक उवाच

मान्धातुः पुत्रप्रवरो योऽम्बरीषः प्रकीर्तितः।
पितामहेन प्रवृतो यौवनाश्वश्च तत्सुतः।
हारीतस्तस्य पुत्रोऽभून्मान्धातृप्रवरा इमे॥ १

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — માંધાતાનો શ્રેષ્ઠ પુત્ર અંબરીષ (નાભાગપુત્ર અંબરીષ કરતાં જુદો) જે (પૂર્વે ૯/૬/૩૮માં) કહેવાયો, તે પિતામહ (યુવનાશ્વ) દ્વારા પુત્ર તરીકે સ્વીકારવામાં આવ્યો હતો. તે અંબરીષનો પુત્ર યૌવનાશ્વ હતો અને તેનો પુત્ર હારીત થયો. (અંબરીષ, યૌવનાશ્વ અને હારીત) આ ત્રણ માંધાતાના વંશમાં શ્રેષ્ઠ હતા.॥ ૧॥

पुत्रप्रवरः पुत्रश्रेष्ठः। स पितामहेन युवनाश्वेन प्रवृतः पुत्रत्वेन स्वीकृतः। अत एव तस्य मान्धातृप्रवर्ग्यत्वम्। तत्सुतोऽम्बरीषस्य सुतः। इमे यौवनाश्वाम्बरीषहारीता मान्धातृगोत्रस्य प्रवरा अवान्तरविशेषप्रवर्तकाः। यद्वा यौवनाश्वविशेषणम्। पितामहेन मान्धात्रा सह आर्षेयवरणे प्रवृतः। मान्धाता प्रवरो येषां ते इमे अम्बरीषयौवना–

'पुत्रप्रवरः' શ્રેષ્ઠ પુત્ર. તે અંબરીષ પિતામહ યુવનાશ્વ દ્વારા પુત્ર તરીકે **'प्रवृतः'** સ્વીકારવામાં આવ્યો હતો. આથી જ તે અંબરીષ માંધાતાના ગોત્રમાં શ્રેષ્ઠ ગણાય છે. **'तत्सुतः'** તે અંબરીષનો પુત્ર યૌવનાશ્વ હતો. યૌવનાશ્વ, અંબરીષ અને હારીત– આ (ત્રણ) માંધાતાના ગોત્રમાં **'प्रवराः'** અવાન્તર વિશિષ્ટ ગોત્રોના પ્રવર્તકો હતા. અથવા **(प्रवृतः)** યૌવનાશ્વનું વિશેષણ હોય તો યૌવનાશ્વને સ્વીકારવામાં આવ્યો હતો. પિતામહ યુવનાશ્વ દ્વારા માંધાતા સાથે ઋષિઓના વરણમાં પ્રકૃષ્ટ તપશ્ચર્યા વગેરેને કારણે

श्वहारीताः। यथाहाश्वलायनः 'हरितकुत्सपिङ्गदर्भ-भैमगवानामाङ्गिरसाम्बरीषयौवनाश्वेति मान्धातारं हैके ब्रुवते। अतीत्याङ्गिरसं मान्धात्रम्बरीष-यौवनाश्वेति' इति॥ १॥

અંબરીષને સ્વીકારવામાં આવ્યો હતો. માંધાતા શ્રેષ્ઠ છે જેમનામાં તેવા અંબરીષ, યૌવનાશ્વ અને હારીત. જેમ આશ્વલાયન સૂત્ર કહે છેઃ 'હરિત, કુત્સ, પિંગ, દર્ભ, ભૈમગવ, અનામ, આંગિરસ, અંબરીષ, યૌવનાશ્વ– આ પુરુષોને ગણાવે છે અને કેટલાક માંધાતાને પણ ગણાવે છે. આંગિરસને અતિક્રમીને માંધાતા, અંબરીષ અને યૌવનાશ્વનો સ્વીકાર થયો.' (આશ્વ.શ્રૌ.સૂ. ૧૨/૩)॥ ૧॥

पुरुकुत्सस्य वंशं कथयिष्यन्नादौ तावत्तस्य विवाहं प्रभावं चाह—

પુરુકુત્સનો વંશ કહેવા ઈચ્છતા, પ્રારંભમાં તેના વિવાહ અને પ્રભાવને કહે છે.

नर्मदा भ्रातृभिर्दत्ता पुरुकुत्साय योरगैः।
तया रसातलं नीतो भुजगेन्द्रप्रयुक्तया॥ २

નાગભાઈઓ દ્વારા જે (નાગકન્યા) નર્મદા હતી તે પુરુકુત્સને (વિવાહમાં) આપવામાં આવી હતી. નાગરાજ વાસુકિ વડે પ્રેરાયેલી તે નર્મદા દ્વારા પુરુકુત્સને રસાતળમાં લાવવામાં આવ્યો હતો.॥ ૨॥

उरगैर्भ्रातृभिर्या दत्ता नर्मदा तया॥ २॥

નાગભાઈઓ દ્વારા જે નર્મદા આપવામાં આવી હતી તેના દ્વારા॥ ૨॥

गन्धर्वानवधीत् तत्र वध्यान् वै विष्णुशक्तिधृक्।
नागाल्लब्धवरः सर्पादभयं स्मरतामिदम्॥ ३

ભગવાન વિષ્ણુ દ્વારા સ્થાપિત કરવામાં આવેલું બળ ધારણ કરનાર પુરુકુત્સે વધ કરવા યોગ્ય ગંધર્વોનો ત્યાં વધ કર્યો હતો. (તેથી પ્રસન્ન થયેલા) નાગ પાસેથી 'આ આખ્યાનનું સ્મરણ કરનારને નાગથી ભય થશે નહીં.' તેવું વરદાન પ્રાપ્ત કરનારો તે હતો.॥ ૩॥

वध्यान् वधार्हान्। स च पुरुकुत्सो नागाल्लब्धवरोऽभूत्। वरमाह—इदं नर्मदया रसातलानयनादिकं स्मरतां सर्पादभयमिति॥ ३॥

'वध्यान्' વધ કરવા યોગ્ય ગંધર્વોને– અને તે પુરુકુત્સ નાગરાજ પાસેથી જેને વરદાન પ્રાપ્ત થયું હતું, તેવો બન્યો હતો. વરદાન જણાવે છે— નર્મદા દ્વારા રસાતળમાં લઈ જવારૂપ આ આખ્યાનનું સ્મરણ કરનારને સર્પથી ભય થશે નહીં.॥ ૩॥

त्रसद्दस्युः पौरुकुत्सो योऽनरण्यस्य देहकृत्।
हर्यश्वस्तत्सुतस्तस्मादरुणोऽथ त्रिबन्धनः॥ ४

પુરુકુત્સનો પુત્ર ત્રસદ્દસ્યુ જે અનરણ્યનો પિતા હતો, તેનો (અનરણ્યનો) પુત્ર હર્યશ્વ, તેનો પુત્ર અરુણ, અરુણનો ત્રિબંધન થયો.॥ ૪॥

देहकृत्पिता। त्रसद्दस्योः सुतोऽनरण्य इत्यर्थः ॥ ४ ॥

तस्य सत्यव्रतः पुत्रस्त्रिशङ्कुरिति विश्रुतः।
प्राप्तश्चाण्डालतां शापाद् गुरोः कौशिकतेजसा ॥ ॥ ५ ॥

सशरीरो गतः स्वर्गमद्यापि दिवि दृश्यते।
पातितोऽवाक्शिरा देवैस्तेनैव स्तम्भितो बलात् ॥ ॥ ६ ॥

त्रयः शङ्कव इव दुःखहेतवो दोषा यस्यासौ त्रिशङ्कुः। तदुक्तं हरिवंशे—

'पितुश्चापरितोषेण गुरोर्दोग्ध्रीवधेन च।
अप्रोक्षितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रमः।'

इति। परिणीयमानविप्रकन्यापहरणात् क्रुद्धस्य गुरोः पितुः शापात्। कौशिकस्य विश्वामित्रस्य तेजसा प्रभावेण ॥ ५ ॥

तेनैव कौशिकेन ॥ ६ ॥

त्रैशङ्कवो हरिश्चन्द्रो विश्वामित्रवसिष्ठयोः।
यन्निमित्तमभूद् युद्धं पक्षिणोर्बहुवार्षिकम् ॥ ७

पक्षिणोराडीबकयोः। विश्वामित्रो राजसूयदक्षिणाच्छलेन हरिश्चन्द्रसर्वस्वमपहृत्य यातयामास, तच्छ्रुत्वा कुपितो वसिष्ठोऽपि विश्वामित्रं त्वमाडी भवेति शशाप, सोऽपि त्वं बको भवेति वसिष्ठं शशाप, तयोश्च युद्धमभूदिति प्रसिद्धम् ॥ ७ ॥

भ.मनो.—इयं कथा सविस्तरा मार्कण्डेयपुराणे अस्ति।

'**देहकृत्**' દેહ આપનાર પિતા– ત્રસદ્દસ્યુનો પુત્ર અનરણ્ય, એમ અર્થ છે. ॥ ૪ ॥

તે ત્રિબંધનનો પુત્ર સત્યવ્રત 'ત્રિશંકુ' નામથી વિખ્યાત હતો. ગુરુ વસિષ્ઠના શાપથી તે ચાંડાળ-પણાને પ્રાપ્ત થયો હતો. કૌશિક (વિશ્વામિત્ર)ના પ્રભાવથી મનુષ્યશરીર સહિત સ્વર્ગમાં ગયેલો ત્રિશંકુ આજે પણ આકાશમાં દેખાય છે. દેવો દ્વારા ઊંધે માથે પાડી નાખવામાં આવેલો ત્રિશંકુ તે વિશ્વામિત્ર દ્વારા જ બળપૂર્વક (આકાશમાં જ) સ્તમ્ભિત કરી દેવામાં આવ્યો હતો. ॥ ૫ ॥ ૬ ॥

ત્રણ ખીલા જેવાં દુઃખનાં કારણરૂપ દોષો છે જેના તે ત્રિશંકુ. હરિવંશમાં તે કહેવાયું છે— 'પિતાના અસંતોષને કારણે તથા ગુરુની ગાયના વધને કારણે તેમ જ પ્રોક્ષણ કર્યા વિના માંસનો ઉપયોગ કરવાને કારણે તારો ત્રણ પ્રકારે દોષ છે.' (હરિવંશપુરાણ-હરિવંશપર્વ ૧૩/૧૮) પરણાવવામાં આવતી વિપ્રકન્યાના અપહરણથી ક્રોધિત થયેલા ગુરુરૂપ પિતાના શાપથી પ્રથમ દોષ થયો. કૌશિક અથવા વિશ્વામિત્રના '**तेजसा**' પ્રભાવથી ॥ ૫ ॥

'**तेन-एव**' તે વિશ્વામિત્ર દ્વારા જ ॥ ૬ ॥

ત્રિશંકુના પુત્ર હરિશ્ચન્દ્ર હતા, જેમને કારણે ઘણાં વર્ષો સુધી પક્ષિત્વ પ્રાપ્ત કરેલા વિશ્વામિત્ર અને વસિષ્ઠ વચ્ચે યુદ્ધ થયું હતું. ॥ ૭ ॥

'**पक्षिणोः**' આડી અને બગલો, એ બે પક્ષીઓ વચ્ચે– વિશ્વામિત્રે રાજસૂય યજ્ઞની દક્ષિણા માટે કપટ કરીને હરિશ્ચન્દ્રનું સર્વસ્વ હરી લઈને તેને દુઃખ આપવા માંડ્યું. તે સાંભળીને કુપિત થયેલા વસિષ્ઠે પણ વિશ્વામિત્રને શાપ આપ્યો: ''તું 'આડી' પક્ષી થઈ જા.'' તે વિશ્વામિત્રે પણ વસિષ્ઠને શાપ આપ્યો: 'તું બગલો થઈ જા.' તે બંને વચ્ચે યુદ્ધ થયું હતું, તે પ્રસિદ્ધ છે. ॥ ૭ ॥

આ કથા વિસ્તારપૂર્વક માર્કંડેય પુરાણ (અ-૭ થી અ-૯)માં છે.

'हरिश्चन्द्रो ह वैधस ऐक्ष्वाको राजा पुत्र आस' इत्यादि श्रुतिप्रसिद्धं हरिश्चन्द्रस्य चरितमाह— **सोऽनपत्य** इत्यादि यावत्समाप्ति।

'ઇક્ષ્વાકુ રાજા હરિશ્ચન્દ્ર વેધસ્ રાજાનો પુત્ર હતો.' (ઐ.બ્રા.પં/૭, અ/૩ નો ૩૩મો અધ્યાય) વગેરે શ્રુતિમાં પ્રસિદ્ધ એવું હરિશ્ચન્દ્રનું (શ્રીમદ્ દેવીભાગવત મહાપુરાણમાં પણ ૬/૧૩/૩૬, ૩૭માં છે.) ચરિત્ર વર્ણવે છે— '**सः अनपत्यः**' વગેરેથી માંડીને અધ્યાય સમાપ્ત થાય ત્યાં સુધી.

सोऽनपत्यो विषण्णात्मा नारदस्योपदेशतः।
वरुणं शरणं यातः पुत्रो मे जायतां प्रभो॥ ८

સંતાનરહિત એવો તે હરિશ્ચન્દ્ર વિષાદયુક્ત મનવાળો હોઈ નારદજીના ઉપદેશથી વરુણદેવને શરણે ગયો (અને કહ્યું), 'હે પ્રભુ, મને પુત્ર થાઓ!॥ ૮॥

यदि वीरो महाराज तेनैव त्वां यजे इति।
तथेति वरुणेनास्य पुत्रो जातस्तु रोहितः॥ ९

'હે મહારાજ, જો મને વીર પુત્ર થશે તો તેનાથી જ હું આપનું યજન કરીશ.' વરુણદેવે 'તથાસ્તુ' કહ્યું એટલે આ હરિશ્ચન્દ્રને પુત્ર રોહિત જન્મ્યો.॥ ૯॥

ઐ.બ્રા.માં '**यजा इति**' પાઠ મળે છે.

कथं शरणं यातस्तदाह—पुत्रो मे जायताम्॥ ८॥

શરણે કેમ ગયો તે કહે છે— 'મને પુત્ર થાઓ!'॥ ૮॥

यदि वीरः पुत्रो मे जायेत तर्हि तेनैव पुरुष-पशुना त्वां यजे यजामीति भाषया तथेत्युक्तवता वरुणेन निमित्तेनास्य रोहितो नाम पुत्रो जातः॥ ९॥

જો મને વીર પુત્ર જન્મશે તો તે જ પુરુષપશુ વડે આપનું '**यजे**' યજન કરીશ, એમ કહેવાથી 'તથાસ્તુ' એમ કહેતા વરુણદેવના નિમિત્તથી આ હરિશ્ચન્દ્રને રોહિત નામે પુત્ર જન્મ્યો.॥ ૯॥

जातः सुतो ह्यनेनाङ्ग मां यजस्वेति सोऽब्रवीत्।
यदा पशुर्निर्दशः स्यादथ मेध्यो भवेदिति॥ १०

(પુત્ર જન્મ્યો એટલે) તે વરુણદેવે કહ્યું : 'હે હરિશ્ચન્દ્ર, તને પુત્ર જન્મ્યો છે, (હવે તું) આના વડે મારું યજન કર.' (ત્યારે હરિશ્ચન્દ્રે કહ્યું:) 'જ્યારે યજ્ઞપશુ દસ દિવસનું થાય ત્યારે પવિત્ર થાય.'॥ ૧૦॥

जाते पुत्रे स वरुणो जातः सुतो मामनेन यजस्वेत्यब्रवीत्। यदा पशुर्निर्दशो निर्गतदशदिवसः स्यादित्यत्र स राजाऽब्रवीदित्यनुषङ्गः॥ १०॥

પુત્ર જન્મ્યો ત્યારે તે વરુણદેવે કહ્યું, 'પુત્ર જન્મ્યો છે, આનાથી મારું યજન કર.' 'જ્યારે યજ્ઞપશુ '**निर्दशः**' દસ દિવસનું થઈ જાય....' અહીં તે રાજા હરિશ્ચન્દ્ર બોલ્યો, એમ સંબંધ છે.॥ ૧૦॥

निर्दशे च स आगत्य यजस्वेत्याह सोऽब्रवीत्।
दन्ताः पशोर्यज्जायेरन्नथ मेध्यो भवेदिति॥ ११

॥ ११॥

દસ દિવસ પછી તેમણે આવીને કહ્યું, 'યજન કર.' (ત્યારે) તે હરિશ્ચન્દ્ર બોલ્યો, 'જ્યારે યજ્ઞપશુને દાંત આવે ત્યારે તે પવિત્ર થાય.'॥ ૧૧॥ ૧૧॥

जाता दन्ता यजस्वेति स प्रत्याहाथ सोऽब्रवीत्।
यदा पतन्त्यस्य दन्ता अथ मेध्यो भवेदिति॥ १२
॥ १२ ॥

દાંત આવ્યા એટલે તે વરુણદેવે કહ્યું : 'યજન કર.' આથી તે હરિશ્ચન્દ્ર બોલ્યો: 'આના દાંત પડી જાય ત્યારે તે પવિત્ર થાય.'॥ ૧૨ ॥ ૧૨ ॥

पशोर्निपतिता दन्ता यजस्वेत्याह सोऽब्रवीत्।
यदा पशोः पुनर्दन्ता जायन्तेऽथ पशुः शुचिः॥ १३
॥ १३ ॥

(દાંત પડી ગયા ત્યારે વરુણદેવે આવીને) કહ્યું : 'યજ્ઞપશુના (દૂધિયા) દાંત પડી ગયા. (હવે) યજન કર.' (ત્યારે) તે હરિશ્ચન્દ્રે કહ્યું : 'જ્યારે યજ્ઞપશુને ફરી દાંત ઊગે ત્યારે યજ્ઞપશુ પવિત્ર થાય.'॥ ૧૩ ॥ ૧૩ ॥

पुनर्जाता यजस्वेति स प्रत्याहाथ सोऽब्रवीत्।
सान्नाहिको यदा राजन् राजन्योऽथ पशुः शुचिः॥ १४

પાછા દાંત આવ્યા એટલે તે વરુણદેવે હરિશ્ચન્દ્રને કહ્યું, 'યજન કર.' તેથી તે હરિશ્ચન્દ્રે કહ્યું : 'હે (વરુણ)રાજ, જ્યારે ક્ષત્રિય કવચ બાંધવા યોગ્ય (યુદ્ધને યોગ્ય) થાય ત્યારે યજ્ઞપશુ પવિત્ર થાય.'॥ ૧૪ ॥

राजन् हे वरुण, राजन्यः पशुर्यदा सान्नाहिकः कवचसंबन्धार्हः संग्रामसमर्थः। अथ तदा शुचिः ॥ १४॥

'**राजन्**' હે વરુણરાજ, ક્ષત્રિય યજ્ઞપશુ જ્યારે કવચ ધારણ કરવા યોગ્ય થાય, સંગ્રામ કરવા માટે સમર્થ થાય, ત્યારે પવિત્ર થાય.॥ ૧૪ ॥

इति पुत्रानुरागेण स्नेहयन्त्रितचेतसा।
कालं वञ्चयता तं तमुक्तो देवस्तमैक्षत॥ १५

પુત્ર ઉપરના અનુરાગને કારણે સ્નેહથી જેનું ચિત્ત વશ થઈ ગયું તેવા હરિશ્ચન્દ્ર દ્વારા વરુણદેવને ઠગતાં, (જે જે સમય) કહેવામાં (માગવામાં) આવ્યો તે તે સમયની તેઓ પ્રતીક્ષા કરવા લાગ્યા.॥ ૧૫ ॥

इत्येवं तं तं कालं वञ्चयता राज्ञोक्तः प्रार्थितो देवो वरुणस्तं तं कालं प्रत्यैक्षतेत्यर्थः ॥ १५ ॥

આમ, વંચના કરતા રાજા દ્વારા '**उक्तः**' માંગવામાં આવેલા '**तं कालम्**' તે તે કાળની વરુણદેવ પ્રતીક્ષા કરવા લાગ્યા, એમ અર્થ છે.॥ ૧૫ ॥

रोहितस्तदभिज्ञाय पितुः कर्म चिकीर्षितम्।
प्राणप्रेप्सुर्धनुष्पाणिररण्यं प्रत्यपद्यत॥ १६

(યજ્ઞપશુ એવા પોતાના દ્વારા વરુણદેવનું યજન) કરવા ઈચ્છેલું પિતાનું તે કર્મ જાણીને પ્રાણ બચાવવાની ઈચ્છાવાળો (જિજીવિષાવાળો) (પુત્ર) રોહિત હાથમાં ધનુષ્ય લઈ જંગલમાં નાસી ગયો.॥ ૧૬ ॥

चिकीर्षितमात्मना पशुना वरुणयजनम् ॥ १६ ॥

'**चिकीर्षितम्**' યજ્ઞપશુ એવા પોતાના દ્વારા વરુણદેવનું યજન કરવા ઈચ્છેલ કર્મને॥ ૧૬ ॥

पितरं वरुणग्रस्तं श्रुत्वा जातमहोदरम्।
रोहितो ग्राममेयाय तमिन्द्रः प्रत्यषेधत॥ १७

(રોહિત વનમાં ગયો એટલે યજન કરવાની આશા ન રહેવાથી ક્રોધે ભરાયેલા) વરુણદેવ દ્વારા ગ્રસ્ત (પીડિત) થયેલા પિતાને મહોદર (જલોદર) રોગ થયો છે તેમ સાંભળીને રોહિત પોતાના ગામ તરફ નીકળી પડ્યો ત્યારે ઈન્દ્રે તેને રોક્યો.॥ ૧૭॥

ततश्च कुपितेन वरुणेन ग्रस्तम्, अत एव जातं महदुदरं यस्य तं पितरं श्रुत्वा॥ १७॥

અને તેથી કુપિત થયેલા વરુણથી ગ્રસ્ત, એટલે કે જેમનું ઉદર મોટું થઈ ગયું છે તેવા પિતા વિષે સાંભળીને॥ ૧૭॥

भूमेः पर्यटनं पुण्यं तीर्थक्षेत्रनिषेवणैः।
रोहितायादिशच्छक्रः सोऽप्यरण्येऽवसत् समाम्॥ १८

તીર્થક્ષેત્રોના સેવન દ્વારા પવિત્ર ભૂમિ પર પર્યટન કરવાનો શક્રે (ઈન્દ્રે) રોહિતને આદેશ આપ્યો. (એટલે) તે રોહિત પણ અરણ્યમાં (બીજું) એક વર્ષ રહ્યો.॥ ૧૮॥

समां वर्षम्॥ १८॥

'**समाम्**' એક વર્ષ॥ ૧૮॥

एवं द्वितीये तृतीये चतुर्थे पञ्चमे तथा।
अभ्येत्याभ्येत्य स्थविरो विप्रो भूत्वाऽऽह वृत्रहा॥ १९

આમ, બીજે, ત્રીજે, ચોથે અને પાંચમે વર્ષે વૃદ્ધ બ્રાહ્મણનું રૂપ લઈ, તેની પાસે આવીને ઈન્દ્ર (તેને પોતાને ગામ જતો અટકાવવા માટે કોઈ ને કોઈ ઉપાય) કહ્યા કરતો.॥ ૧૯॥

द्वितीये च वर्षे वृत्रहा अभ्येत्याभ्येत्य तथैव तं प्रतिषेधन्किंचित्किंचिदाह॥ १९॥

બીજે વર્ષે પણ ઈન્દ્રે તેની પાસે આવી આવીને તેને અટકાવતા, કંઈ ને કંઈ કહ્યું.॥ ૧૯॥

षष्ठं संवत्सरं तत्र चरित्वा रोहितः पुरीम्।
उपव्रजन्नजीगर्तादक्रीणान्मध्यमं सुतम्॥ २०

છઠ્ઠે વર્ષે પણ ત્યાં વનમાં જ ભટકીને પછી પોતાના ગામમાં પાછા આવતા રોહિતે અજીગર્ત પાસેથી તેનો વચલો પુત્ર વેચાતો લીધો.॥ ૨૦॥

शुनःशेपं पशुं पित्रे प्रदाय समवन्दत।
ततः पुरुषमेधेन हरिश्चन्द्रो महायशाः॥ २१

॥ २०॥ २१॥

શુનઃશેપને યજ્ઞના પશુ તરીકે પિતાને આપીને પ્રણામ કર્યા. ત્યાર પછી મહાયશસ્વી હરિશ્ચન્દ્રે પુરુષમેધ યજ્ઞથી (યજન કર્યું).॥ ૨૧॥ ૨૦॥ ૨૧॥

मुक्तोदरोऽयजद् देवान् वरुणादीन् महत्कथः।
विश्वामित्रोऽभवत् तस्मिन् होता चाध्वर्युरात्मवान्॥
॥ २२॥

जमदग्निरभूद् ब्रह्मा वसिष्ठोऽयास्यसामगः।
तस्मै तुष्टो ददाविन्द्रः शातकौम्भमयं रथम्॥ २३

વરુણાદિ દેવોનું તેણે યજન કર્યું. (વરુણદેવ દ્વારા) જેનું ઉદર (રોગથી) મુક્ત કરવામાં આવ્યું તે, મહાપુરુષોમાં જેની કથા થાય છે તેવો બન્યો. તે યજ્ઞમાં વિશ્વામિત્ર હોતા (હોમ કરનારા, દેવોનું આવાહન કરનારા) બન્યા. આત્મતત્ત્વજ્ઞ જમદગ્નિ અધ્વર્યુ બન્યા. વસિષ્ઠ બ્રહ્મા બન્યા અને અયાસ્ય મુનિ સામગાન કરનારા ઉદ્‌ગાતા બન્યા. પ્રસન્ન થયેલા ઈન્દ્રે તેને સુવર્ણમય રથ આપ્યો.॥ ૨૨॥ ૨૩॥

वरुणेन मुक्तमुदरं यस्य। महत्सु कथा यस्य सः। आत्मवान् जमदग्निरध्वर्युरभूत्॥ २२॥

અયાસ્યો મુનિ: सामग उद्गाता अभूदित्यर्थः॥ २३॥

शुनःशेपस्य माहात्म्यमुपरिष्टात् प्रचक्ष्यते। सत्यसारां धृतिं दृष्ट्वा सभार्यस्य च भूपतेः॥ २४

उपरिष्टाद्विश्वामित्रसुताख्यानप्रसङ्गेन॥ २४॥

अविहतां गतिं ज्ञानम्। तामेव गतिमाह सार्धाभ्याम्।

विश्वामित्रो भृशं प्रीतो ददावविहतां गतिम्। मनः पृथिव्यां तामद्भिस्तेजसापोऽनिलेन तत्॥ ॥ २५॥

मनः पृथिव्यां धारयन्ज्ञानकलां ध्यात्वा तयाऽज्ञानं विनिर्दहंस्तां च हित्वा मुक्त्वा मुक्तबन्धनस्तस्थावित्यन्वयः। मनोमूलो हि संसारः। मनश्चान्नमयम्—'अन्नमयं हि सोम्य मनः' इति श्रुतेः। अतोऽन्नशब्दवाच्यायां पृथिव्यां मनो धारयन्नेकीकुर्वन्, तां पृथिवीमद्भिरेकी–कुर्वन्, अपस्तेजसा, तत्तेजोऽनिलेन॥ २५॥

વરુણ દ્વારા મુક્ત થયું છે ઉદર જેનું. મહાપુરુષોમાં જેની કથા થાય છે તે હરિશ્ચન્દ્ર. આત્મવેત્તા જમદગ્નિ અધ્વર્યુ થયા.॥ ૨૨॥

અયાસ્ય મુનિ '**सामगः**' સામગાન કરનાર ઉદ્‌ગાતા બન્યા, એમ અર્થ છે.॥ ૨૩॥ (અહીં સમાસનો '**अयास्यः सामगः**' એમ વિગ્રહ કરવો અથવા '**अयास्यः**'ના વિસર્ગનો લોપ છાંદસ્ છે.)

શુનઃશેપનું માહાત્મ્ય આગળ કહેવામાં આવે છે. ભૂપતિ હરિશ્ચન્દ્રનું ભાર્યાસહિત સત્યના બળવાળું ધૈર્ય જોઈને॥ ૨૪॥

(શુનઃશેપનું માહાત્મ્ય) આગળ (૯/૧૬/૩૨થી) વિશ્વામિત્રના પુત્રોના આખ્યાનના પ્રસંગ દ્વારા કહેવામાં આવે છે॥ ૨૪॥

'**अविहतां गतिम्**' કદી નાશ ન થાય તેવી આત્મજ્ઞાનરૂપ ગતિ. તે ગતિનું દોઢ શ્લોકથી વર્ણન કરે છે.

વિશ્વામિત્રે અત્યંત પ્રસન્ન થઈ તેમને આત્મજ્ઞાનરૂપ ગતિ, જેનો કદી નાશ ન થાય તેવું જ્ઞાન આપ્યું હતું. (તે આત્મજ્ઞાનના પ્રભાવથી) હરિશ્ચન્દ્રે મનને પૃથ્વીમાં, તે પૃથ્વીને જળ સાથે એક કરીને જળને તેજ સાથે એક કર્યું અને તે તેજને વાયુ સાથે એકરૂપ કર્યું.॥ ૨૫॥

મનને પૃથ્વીમાં ધારણ કરી, જ્ઞાનકલાનું ધ્યાન કરી, તેનાથી અજ્ઞાનને બાળી નાખતાં, તે (જ્ઞાનકલા)ને પણ '**हित्वा**' છોડી દઈ, બંધનથી મુક્ત થઈ સ્થિત થયા, એમ અન્વય છે. સંસાર ખરેખર, મનરૂપ મૂળવાળો છે અને મન અન્નમય છે– 'હે સોમ્ય, મન અન્નમય જ છે.' (છાં.ઉપ.૬/૫/૪) એમ શ્રુતિ છે. આથી 'અન્ન' શબ્દવાચક પૃથ્વીમાં મનને એક કરતાં, તે પૃથ્વીને જળ સાથે એક કરતાં, જળને તેજ સાથે, તે તેજને વાયુ સાથે॥ ૨૫॥

खे वायुं धारयंस्तच्च भूतादौ तं महात्मनि।
तस्मिन् ज्ञानकलां ध्यात्वा तयाऽज्ञानं विनिर्दहन्॥ २६

વાયુને આકાશમાં તથા તે આકાશને ભૂતાદિરૂપ અહંકારમાં, તે અહંકારને મહત્તત્ત્વમાં, તે મહત્તત્ત્વ(રૂપ ચિત્ત)માં જ્ઞાનાંશનું (આત્મરૂપે) ધ્યાન કરીને, તે ધ્યાનવૃત્તિરૂપ જ્ઞાનાંશથી અજ્ઞાનને બાળી નાખતાં॥ ૨૬॥

हित्वा तां स्वेन भावेन निर्वाणसुखसंविदा।
अनिर्देश्याप्रतर्क्येण तस्थौ विध्वस्तबन्धनः॥ २७

મોક્ષરૂપ આનંદ(ના અનુભવ)થી તે જ્ઞાનાંશને ત્યજીને નષ્ટ થયેલા બંધનવાળા થઈ, વર્ણવવાને અશક્ય અને તર્ક ન કરી શકાય તેવા સ્વસ્વરૂપમાં તે સ્થિત થયા.॥ ૨૭॥

तं च खे आकाशे, तच्च भूतादावहंकारे, तं च भूतादिमहंकारं महात्मनि महत्तत्त्वे तस्मिन् विषयाकारं व्यावर्त्य ज्ञानकलां ज्ञानांशमात्मत्वेन ध्यात्वा तया ध्यानवृत्तिरूपयाऽऽत्मावरकमज्ञानं विनिर्दहन्॥ २६॥

અને તે વાયુને '**खे**' આકાશમાં તથા તે આકાશને '**भूतादौ**' અહંકારમાં, વળી, તે ભૂતાદિરૂપ અહંકારને '**महात्मनि**' મહત્તત્ત્વમાં, તે મહત્તત્ત્વરૂપ ચિત્તમાં વિષયાકારને અલગ કરીને '**ज्ञानकलाम्**' જ્ઞાનાંશનું આત્મરૂપે ધ્યાન કરીને, તે ધ્યાનવૃત્તિરૂપ જ્ઞાનાંશથી આત્માનું આવરણ કરતા અજ્ઞાનને બાળી નાખતાં ॥ ૨૬॥

निर्वाणसुखसंविदा तां च हित्वा मुक्तबन्धः सन्ननिर्देश्येनाप्रतर्क्येण स्वेन भावेन स्वस्वरूपेण तस्थौ॥ २७॥

મોક્ષરૂપ આનંદ(ના અનુભવ)થી તે જ્ઞાનાંશને ત્યજીને બંધનથી મુક્ત થઈ વર્ણવવાને અશક્ય અને તર્ક ન કરી શકાય તેવા '**स्वेन भावेन**' સ્વસ્વરૂપમાં તેઓ સ્થિત થયા (જીવન્મુક્ત થયા), એમ અર્થ છે.॥ ૨૭॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे हरिश्चन्द्रोपाख्यानं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

❋❋❋❋❋

अथाष्टमोऽध्यायः

સગર-ચરિત્ર

अष्टमे रोहितस्योक्तो वंशो यत्राभवन्नृपः।
सगरः कपिलाक्षेपान्निर्दग्धा यस्य सूनवः॥ १॥

આઠમા અધ્યાયમાં રોહિતનો વંશ કહેવામાં આવ્યો છે કે જેમાં રાજા સગર થઈ ગયા, જેમના પુત્રો કપિલ મુનિનો અપરાધ કરવાથી બળી ગયા.॥ ૧॥

श्रीशुक उवाच

हरितो रोहितसुतश्चम्पस्तस्माद् विनिर्मिता।
चम्पापुरी सुदेवोऽतो विजयो यस्य चात्मजः॥ १

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — રોહિતનો પુત્ર હરિત હતો. તે હરિતથી ચંપ જન્મ્યો, જેના દ્વારા ચંપાપુરીનું નિર્માણ થયું. ચંપથી સુદેવ થયો, જેનો પુત્ર વિજય હતો.॥ ૧॥

चम्पस्तस्मादभूत्। येन चम्पापुरी निर्मिता। अतश्चम्पात्सुदेवः॥ १॥

भरुकस्तत्सुतस्तस्माद् वृकस्तस्यापि बाहुकः।
सोऽरिभिर्हृतभू राजा सभार्यो वनमाविशत्॥ २

हृता भूर्यस्य॥ २॥

वृद्धं तं पञ्चतां प्राप्तं महिष्यनु मरिष्यती।
और्वेण जानताऽऽत्मानं प्रजावन्तं निवारिता॥ ३

और्वेण ऋषिणा। आत्मानं देहम्। प्रजावन्तं सगर्भम्॥ ३॥

आज्ञायास्यै सपत्नीभिर्गरो दत्तोऽन्धसा सह।
सह तेनैव संजातः सगराख्यो महायशाः॥ ४

गरो विषम्। तेन गरेण सहैव जातः॥ ४॥

सगरश्चक्रवर्त्यासीत् सागरो यत्सुतैः कृतः।
यस्तालजङ्घान् यवनाञ्छकान् हैहयबर्बरान्॥ ५

॥ ५॥

नावधीद् गुरुवाक्येन चक्रे विकृतवेषिणः।
मुण्डान् श्मश्रुधरान् कांश्चिन्मुक्तकेशार्धमुण्डितान्॥ ६

अनन्तर्वाससः कांश्चिदबहिर्वाससोऽपरान्।
सोऽश्वमेधैरयजत सर्ववेदसुरात्मकम्॥ ७

और्वोपदिष्टयोगेन हरिमात्मानमीश्वरम्।
तस्योत्सृष्टं पशुं यज्ञे जहाराश्वं पुरन्दरः॥ ८

તે હરિતથી ચંપ થયો, જેના દ્વારા ચંપાપુરી નિર્મિત થઈ. '**अतः**' આ ચંપથી સુદેવ થયો.॥ ૧॥

તે વિજયનો પુત્ર ભરુક, તે ભરુકથી વૃક અને તેનો બાહુક થયો. જેની રાજ્યભૂમિ શત્રુઓ દ્વારા હરી લેવામાં આવી હતી તે રાજા બાહુક ભાર્યા સહિત વનમાં પ્રવેશ્યો.॥ ૨॥

હરી લેવામાં આવી હતી રાજ્યભૂમિ જેની॥ ૨॥

પંચત્વ (મૃત્યુ)ને પ્રાપ્ત થયેલ તે વૃદ્ધ રાજાની પાછળ મરવા ઉદ્યત થયેલી રાણી સગર્ભા શરીરવાળી છે, તેમ જાણતા ઔર્વ ઋષિ દ્વારા તેને વારવામાં આવી હતી.॥ ૩॥

'**और्वेण**' ઔર્વ ઋષિ દ્વારા– '**आत्मानम्**' દેહને '**प्रजावन्तम्**' સગર્ભા(ને)॥ ૩॥

(તેને સગર્ભા) જાણીને સપત્નીઓ દ્વારા આ રાણીને અન્ન સાથે ગર (ઝેર) આપવામાં આવ્યું. (પરંતુ ઝેરની તે બાળક ઉપર કોઈ અસર થઈ નહીં.) તે ઝેરની સાથે જ જન્મેલો તે બાળક મહાયશસ્વી 'સગર' નામે પ્રખ્યાત થયો.॥ ૪॥

'**गरः**' વિષ (ઝેર), તે ગર સાથે જ જન્મેલો (હોવાથી સગર નામે પ્રખ્યાત થયો.)॥ ૪॥

સગર ચક્રવર્તી (સમ્રાટ) હતો, જેના પુત્રોએ (પૃથ્વી ખોદી) સાગર બનાવ્યો હતો. જે સગર રાજાએ તાલજંઘ, યવન, શક, હૈહય અને બર્બર (જાતિના) લોકોનો॥ ૫॥ ૫॥ ઔર્વ ગુરુની આજ્ઞાથી વધ ન કર્યો, પણ તેમને વિકૃત વેષવાળા કર્યા હતા. કેટલાકને મૂંડેલા, કેટલાકને મૂછાળા, કેટલાકને છૂટા વાળવાળા, કેટલાકને અર્ધા મૂંડેલા,।।૬।। કેટલાકને અંદરનાં વસ્ત્રો વગરના તો બીજાઓને બહારનાં વસ્ત્રો વગરના કર્યા. તેણે અશ્વમેધ યજ્ઞો દ્વારા સર્વવેદમય, સર્વદેવમય,।।૭।। સર્વના આત્મા અને સર્વના ઈશ્વર શ્રીહરિનું ગુરુ ઔર્વ દ્વારા ઉપદેશ કરાયેલા ઉપાયથી યજન કર્યું હતું. તેના યજ્ઞમાં છોડવામાં આવેલા યજ્ઞપશુ ઘોડાને પુરન્દર (ઈન્દ્ર) હરી ગયો હતો.॥ ૮॥

गुरुवाक्येनौर्ववचनेन। कांश्चिदहत्वैव विकृतवेषिणश्चक्रे। तदेवाह—मुण्डानिति। मुक्त-केशानर्धमुण्डितांश्च॥ ६॥ ७॥

औौर्वेणोपदिष्टो योग उपायस्तेन॥ ८॥

तस्य द्वे भार्ये सुमतिः केशिनी च। तत्र सुमत्याः पुत्राणां प्रभावं मृत्युं चाह—**सुमत्या इति** षड्भिः।

सुमत्यास्तनया दृप्ताः पितुरादेशकारिणः।
हयमन्वेषमाणास्ते समन्तान्यखनन् महीम्॥ ९॥ ९॥

प्रागुदीच्यां दिशि हयं ददृशुः कपिलान्तिके।
एष वाजिहरश्चौर आस्ते मीलितलोचनः॥ १०॥ १०॥

हन्यतां हन्यतां पाप इति षष्टिसहस्त्रिणः।
उदायुधा अभिययुरुन्मिमेष तदा मुनिः॥ ११

एष वाजिहर इति ब्रुवन्तोऽभिययुः। षष्टिसहस्राणि परिच्छेदकतया सन्ति येषाम्। उन्मिमेष लोचनोन्मीलनं चकार॥ ११॥

स्वशरीराग्निना तावन्महेन्द्रहृतचेतसः।
महद्व्यतिक्रमहता भस्मसादभवन् क्षणात्॥ १२॥ १२॥

केचित्तु कपिलस्य कोपाग्निना दग्धा इति वर्णयन्ति तन्निराकरोति—**नेति**।

'**गुरुवाक्येन**' ગુરુ ઔર્વની આજ્ઞાથી, વધ કર્યા વિના જ કેટલાકને વિકૃત વેષવાળા કર્યા, તે જ કહે છે— '**मुण्डान् इति।**' છૂટા વાળવાળા અને અર્ધા મૂંડેલા॥ ૬॥ ૭॥

ગુરુ ઔર્વ દ્વારા ઉપદેશ કરવામાં આવેલો '**योग**' ઉપાય, તેનાથી॥ ૮॥

તેની બે ભાર્યાઓ હતી, સુમતિ અને કેશિની. તેમાં સુમતિના પુત્રોનો પ્રભાવ અને મૃત્યુ છ શ્લોકો દ્વારા વર્ણવે છે— '**सुमत्याः इति।**'

(તેની પત્ની) સુમતિના ગર્વિષ્ઠ પુત્રો પિતાની આજ્ઞા માનનારા હતા. ઘોડાની શોધ કરતાં તેમણે બધી બાજુએથી પૃથ્વી ખોદી કાઢી હતી.॥ ૯॥ ૯॥

પૂર્વ-ઉત્તર દિશામાં (અર્થાત્ ઈશાન ખૂણામાં) કપિલ મુનિ પાસે તેમણે ઘોડો જોયો. (એટલે તેઓ બોલી ઊઠ્યા,) 'આ આંખો બંધ કરીને બેઠેલો જ ઘોડાને હરનારો ચોર છે.॥ ૧૦॥ ૧૦॥

'(આ) પાપી છે, (આને) મારી નાખવામાં આવે, મારી નાખવામાં આવે.' એમ ઉગામેલા આયુધવાળા સાઈઠે હજાર (પુત્રો મુનિની) સામે દોડ્યા. તે જ સમયે મુનિએ નેત્રો ઉઘાડ્યાં.॥ ૧૧॥

આ ઘોડાનો ચોર છે એમ બોલતાં સામા દોડ્યા. સાઈઠ હજારની સંખ્યા મર્યાદાથી છે જેમની તેવા પુત્રો (અર્થાત્ સાઈઠ હજાર પુત્રો), '**उन्मिमेष**' નેત્રો ઉઘાડ્યાં.॥ ૧૧॥

(મુનિએ નેત્રો ખોલ્યાં) તેટલામાં મહાપુરુષના અપરાધથી હણાયેલા તેમ જ ઈન્દ્ર દ્વારા હરી લેવામાં આવેલાં ચિત્તવાળા તે સૌ (સાઈઠ હજાર) પોતાના શરીરમાંથી ઉત્પન્ન થયેલા અગ્નિથી તે જ ક્ષણે ભસ્મીભૂત થઈ ગયા.॥ ૧૨॥ ૧૨॥

કેટલાક કહે છે કે કપિલ મુનિના કોપાગ્નિથી સગરપુત્રો બળી ગયા, તે વાતનું નિરાકરણ કરે છે— '**न इति।**'

न साधुवादो मुनिकोपभर्जिता
नृपेन्द्रपुत्रा इति सत्त्वधामनि।
कथं तमो रोषमयं विभाव्यते
जगत्पवित्रात्मनि खे रजो भुवः॥ १३

कुत इत्यत आह—सत्त्वधामनि शुद्धसत्त्वमूर्तौ। जगतः पवित्रः शुद्धिकर आत्मा यस्य तस्मिन्कथं विभाव्यते संभाव्यते। असंभावनायां दृष्टान्तः—भुवो रजः खे कथं संभाव्यते इति ॥ १३ ॥

કપિલ મુનિના ક્રોધથી નૃપેન્દ્ર સગરના પુત્રો બળી ગયા તે કથન શુદ્ધ સત્ત્વમૂર્તિ કપિલ ભગવાન વિષે ઉચિત નથી. આકાશમાં પૃથ્વીની રજ ન હોઈ શકે તેમ જેમનો આત્મા જગતને પવિત્ર કરનારો છે તેમનામાં ક્રોધમય તમોગુણ કેવી રીતે સંભવી શકે?॥ ૧૩॥

કેવી રીતે તે હવે કહે છે— '**सत्त्वधामनि**' શુદ્ધ સત્ત્વમૂર્તિ કપિલ ભગવાન વિષે. જગતને '**पवित्रः**' શુદ્ધ કરનારો આત્મા જેમનો છે તેમનામાં (ક્રોધમય તમોગુણ) કેવી રીતે '**विभाव्यते**' સંભવી શકે? અસંભાવના માટેનું દૃષ્ટાંત— પૃથ્વીની રજ આકાશમાં કેવી રીતે સંભવી શકે?॥ ૧૩॥

यस्येरिता सांख्यमयी दृढेह नौ-
र्यया मुमुक्षुस्तरते दुरत्ययम्।
भवार्णवं मृत्युपथं विपश्चितः
परात्मभूतस्य कथं पृथङ्मतिः॥ १४

किंच यस्य येनेरिता प्रवर्तिता तस्य विपश्चितः सर्वज्ञस्य कथं पृथङ्मतिररिमित्रादिभेददृष्टिः ॥ १४ ॥

જેમના દ્વારા આ સંસારમાં સાંખ્યશાસ્ત્રમયી દૃઢ નૌકા પ્રવર્તિત કરવામાં આવી, કે જે નૌકાથી મુમુક્ષુ મૃત્યુપથરૂપ દુર્લંઘ્ય સંસારસાગરને તરી જાય છે, તે સર્વજ્ઞ પરમાત્મસ્વરૂપ કપિલ મુનિને (શત્રુમિત્રાદિ) ભેદદૃષ્ટિ કેવી રીતે હોઈ શકે? ॥ ૧૪॥

વળી, '**यस्य**' (**येन**) જેમના દ્વારા '**ईरिता**' પ્રવર્તિત કરવામાં આવી, તે '**विपश्चितः**' સર્વજ્ઞને કેવી રીતે '**पृथङ्मतिः**' (આ) શત્રુ (અને આ) મિત્ર વગેરે ભેદબુદ્ધિ હોઈ શકે?॥ ૧૪॥

तदेवं सुमत्याः पुत्रेषु मृतेषु केशिन्याः पौत्रेणाश्वः समानीतः पितृव्योद्धरणप्रयत्नश्च कृत इति दर्शयितुमाह—

તો આમ, સુમતિના પુત્રો મૃત્યુ પામ્યા ત્યારે કેશિનીના પૌત્ર દ્વારા અશ્વ લાવવામાં આવ્યો તથા કાકાઓનો ઉદ્ધાર કરવાનો પ્રયત્ન પણ કરવામાં આવ્યો એ દર્શાવવા માટે કહે છે—

योऽसमञ्जस इत्युक्तः स केशिन्या नृपात्मजः।
तस्य पुत्रोंऽशुमान् नाम पितामहहिते रतः॥ १५

અસમંજસ એ નામથી જે કહેવાયો તે કેશિનીનો રાજકુમાર હતો. તેનો અંશુમાન નામનો પુત્ર દાદા સગરની સેવામાં રત હતો.॥ ૧૫॥

योऽसमञ्जस इत्युक्तः केवलमज्ञैः, वस्तुतस्तु समञ्जस एव। स तु केशिन्याः सुतः।

જે 'અસમંજસ' એ નામથી કહેવાયો તે કેવળ અજ્ઞો દ્વારા જ. વસ્તુતઃ તો તે સમંજસ– યોગ્ય (સદ્‌ગુણસંપન્ન) જ હતો. તે કેશિનીનો પુત્ર હતો. પતિ સિવાયના કોઈ બીજા પુરુષ દ્વારા જન્મેલો હોય

क्षेत्रजत्वमिव प्रतीतं वारयति—तस्यैव नृपस्यात्मनो देहाज्जातः ॥ १५ ॥

એવા 'ક્ષેત્રજ' પુત્રની શંકા અસમંજસ વિષે ન થાય તે માટે કહે છે— (કારણ કે **'केशिन्याः'** શબ્દથી આવી શંકા થવાનો સંભવ છે.) અસમંજસ તે જ સગરરાજાના દેહમાંથી જન્મ્યો હતો. ॥ ૧૫ ॥

तस्य कथामाह चतुर्भिः—

તેની કથા ચાર શ્લોકોથી કહે છે—

असमञ्जस आत्मानं दर्शयन्नसमञ्जसम्।
जातिस्मरः पुरा सङ्गाद् योगी योगाद् विचालितः ॥ १६

પોતાને અયોગ્ય દર્શાવતો અસમંજસ પૂર્વજન્મની સ્મૃતિવાળો હતો. પૂર્વજન્મમાં યોગી એવો તે સંગને કારણે યોગથી વિચલિત કરાયો હતો. ॥ ૧૬ ॥

असमञ्जसः पुरा पूर्वजन्मनि योगी सन्सङ्गाद्धेतोर्योगाद्विचालितोऽत इदानीं जातिस्मरः सन्सङ्गपरिहाराय जनमुद्वेजयन्। लोकगर्हितं ज्ञातीनां च विप्रियं कर्माचरन् क्रीडतो बालान्सरय्वां प्रास्यत् प्राक्षिपदिति द्वयोरन्वयः ॥ १६ ॥

અસમંજસ **'पुरा'** પૂર્વજન્મમાં યોગી હોઈ, સંગને કારણે યોગથી તેને વિચલિત કરવામાં આવ્યો હતો. આથી પૂર્વજન્મની સ્મૃતિવાળો હોઈ, સંગ (આસક્તિ)નો ત્યાગ કરવા માટે લોકોને ઉદ્વેગવાળા કરતો, લોકમાં નિંદિત અને જ્ઞાતિજનોમાં અપ્રિય કર્મ કરતો તે રમતાં બાળકોને સરયૂમાં **'प्रास्यत्'** નાખી દેતો, એમ બે શ્લોકોનો સંબંધ છે. ॥ ૧૬ ॥

आचरन् गर्हितं लोके ज्ञातीनां कर्म विप्रियम्।
सरय्वां क्रीडतो बालान् प्रास्यदुद्वेजयञ्जनम् ॥ १७

॥ १७ ॥

લોકોને ત્રાસ આપતો અને લોકમાં નિંદિત અને જ્ઞાતિજનોમાં અપ્રિય એવું કર્મ કરતો અસમંજસ રમતાં બાળકોને સરયૂમાં નાખી દેતો. ॥ ૧૭ ॥ ૧૭ ॥

एवंवृत्तः परित्यक्तः पित्रा स्नेहमपोह्य वै।
योगैश्वर्येण बालांस्तान् दर्शयित्वा ततो ययौ ॥ १८

આ પ્રકારનું કર્મ કરનાર (હોવાથી પુત્ર ઉપરનો) સ્નેહ છોડીને પિતા દ્વારા ત્યાગી દેવામાં આવેલો તે (સરયૂમાં ફેંકી દીધેલાં) તે બાળકોને યોગના ઐશ્વર્યથી (આ તમારાં બાળકો– એમ) દર્શાવીને, ત્યાં (અયોધ્યા)થી ચાલ્યો ગયો. ॥ ૧૮ ॥

एवंविधं वृत्तं कर्म यस्य सः ॥ १८ ॥

આ પ્રકારનું **'वृत्तम्'** કર્મ જેનું છે તે અસમંજસ ॥ ૧૮ ॥

अयोध्यावासिनः सर्वे बालकान् पुनरागतान्।
दृष्ट्वा विसिस्मिरे राजन् राजा चाप्यन्वतप्यत ॥ १९

॥ १९ ॥

હે રાજા (પરીક્ષિત), સર્વ અયોધ્યાવાસીઓ બાળકોને પાછા આવેલાં જોઈને વિસ્મિત થઈ ગયા અને રાજા સગરે પણ (ભારે) પશ્ચાત્તાપ કર્યો. ॥ ૧૯ ॥ ૧૯ ॥

अंशुमांश्चोदितो राज्ञा तुरङ्गान्वेषणे ययौ।
पितृव्यखातानुपथं भस्मान्ति ददृशे हयम्॥ २०

पितृव्यखातमनु यः पन्थास्तं ययौ। भस्मान्ति भस्मसमीपे॥ २०॥

तत्रासीनं मुनिं वीक्ष्य कपिलाख्यमधोक्षजम्।
अस्तौत् समाहितमनाः प्राञ्जलिः प्रणतो महान्॥ २१

॥ २१॥

'अजानन्तोऽवजानन्तोऽप्यनुकम्प्या वयं त्विति।
तुष्टाव षड्भिरीशानमंशुमानेवमाशयः॥'
इति।

अंशुमानुवाच

न पश्यति त्वां परमात्मनोऽजनो
न बुध्यतेऽद्यापि समाधियुक्तिभिः।
कुतोऽपरे तस्य मनःशरीरधी-
विसर्गसृष्टा वयमप्रकाशाः॥ २२

अजनोऽजो ब्रह्मापि त्वामद्यापि न पश्यति न च बुध्यते। कथंभूतम्। आत्मनः स्वस्मात्परं परमेश्वरम्। कैर्हेतुभिः। समाधियुक्तिभिः। समाधिनाऽप्यपरोक्षं न पश्यति। युक्तिभिः परोक्षमपि सम्यङ्न बुध्यत इत्यर्थः। अपरेऽर्वाची-

રાજા દ્વારા આદેશ પામેલો અંશુમાન ઘોડાની શોધ કરવા કાકાઓએ ખોદી કાઢેલા (ખાડાઓના) માર્ગે ગયો. (ત્યાં) ભસ્મ(ના ઢગલા)ની પાસે ઘોડો જોયો.॥ ૨૦॥

કાકાઓએ ખોદેલા ખાડાઓ પાસે જે માર્ગ હતો ત્યાં ગયો. '**भस्म-अन्ति**' ભસ્મ(ના ઢગલા)ની પાસે॥ ૨૦॥

અધોક્ષજ ભગવાનના અવતારરૂપ કપિલ નામના મુનિને ત્યાં બિરાજેલા જોઈ મહાન જનોનો આદર (પ્રણામ) કરનાર અંશુમાને હાથ જોડી, એકાગ્ર થઈ સ્તુતિ કરી.॥ ૨૧॥ ૨૧॥

'આપને ન જાણતા, આપના પ્રભાવને પણ ન જાણતા (આપની અવજ્ઞા કરતા) અમે તો (આપના દ્વારા કેવળ) અનુકંપાને યોગ્ય છીએ, એવા આશયવાળા અંશુમાને છ શ્લોકોથી ઈશાન (વિષ્ણુસ્વરૂપ કપિલ મુનિ)ની સ્તુતિ કરી.'

અંશુમાન બોલ્યો – અજન્મા (બ્રહ્માજી) પોતાનાથી પર પરમેશ્વર એવા આપને સમાધિ દ્વારા હજી સુધી પણ (પ્રત્યક્ષ) નથી જોઈ શકતા કે નથી યુક્તિઓ દ્વારા (પરોક્ષ રીતે યથાવત્) જાણી શકતા, તો તેમનાં મન, શરીર અને બુદ્ધિ દ્વારા જે (દેવ, પશુ-પક્ષી અને મનુષ્ય) સૃષ્ટિઓ છે તેમનામાં સર્જાયેલા, અજ્ઞાની, અર્વાચીન એવા અમે આપને ક્યાંથી જાણી શકીએ?॥ ૨૨॥

'**अजनः**' અજન્મા બ્રહ્માજી આપને હજી સુધી પણ નથી જોઈ શકતા કે નથી જાણી શકતા. કેવા આપને? '**आत्मनः**' પોતાનાથી '**परम्**' પર એવા પરમેશ્વરને. કયાં સાધનો દ્વારા? સમાધિ દ્વારા પણ અપરોક્ષ જોઈ શકતા નથી અને યુક્તિઓ (શાસ્ત્રોક્ત વિવિધ તર્કો) દ્વારા પરોક્ષ રીતે પણ યથાવત્ જાણતા નથી, એમ અર્થ છે. '**अपरे**' અર્વાચીન જનો આપને

नास्तु कुतस्त्वां पश्येयुः। अर्वाचीनत्वे हेतुः— तस्य ब्रह्मणो मनश्च शरीरं च धीश्च सत्त्व-तमोरजःकार्याणि ताभिर्ये विविधा देवतिर्यङ्नराणां सर्गास्तेषु सृष्टास्तत्रापि वयमप्रकाशा अज्ञाः कुतः पश्यामेत्यर्थः ॥ २२ ॥

ક્યાંથી જોઈ શકે? અર્વાચીન હોવા માટેનું કારણ– તે બ્રહ્માજીનાં મન, શરીર અને બુદ્ધિ– સત્ત્વ, તમસ્ અને રજસ્નાં કાર્યો– તેમનાં દ્વારા જે દેવ, પશુ-પક્ષી અને મનુષ્યની સૃષ્ટિઓ, તેમનામાં સર્જાયેલા અને તેમાં પણ '**अप्रकाशाः**' અજ્ઞાનીઓ એવા અમે આપને ક્યાંથી જોઈ શકીએ? એમ અર્થ છે. ॥ ૨૨ ॥

अपरे तर्हि किं पश्यन्ति तदाह—

અર્વાચીન જનો શું જુએ છે, તે કહે છે—

ये देहभाजस्त्रिगुणप्रधाना
गुणान् विपश्यन्त्युत वा तमश्च।
यन्मायया मोहितचेतसस्ते
विदुः स्वसंस्थं न बहिःप्रकाशाः ॥ २३

જે કારણે અથવા જે આપની માયાથી મોહિત થયેલાં ચિત્તવાળા, ત્રિગુણપ્રધાન (ત્રણેય ગુણોને અધીન), બહાર વિષયોમાં જ જ્ઞાનવાળા જે શરીરધારીઓ છે તેઓ પોતાના આત્મામાં સમ્યક્ રીતે (ઐશ્વર્યાદિપ્રચ્યુતિરહિતસ્વરૂપે) રહેલા (હોવા છતાં પણ) આપને નથી જાણતા, પરંતુ (જાગ્રત્ અને સ્વપ્નાવસ્થામાં) શબ્દાદિ વિષયોને અને (સુષુપ્તિમાં) અજ્ઞાનને જ જુએ છે. ॥ ૨૩ ॥

ये देहभाजस्ते स्वस्मिन्सम्यक् स्थितमपि त्वां न विदुः, किंतु गुणानेव विपश्यन्ति। अथवा न गुणानपि तु तम एव पश्यन्ति। यतस्त्रिगुणा बुद्धिरेव प्रधानं येषाम्, अतो बहिरेव प्रकाशो ज्ञानं येषाम्। बुद्धिपरतन्त्रतया जाग्रत्स्वप्नयोर्विषयान् पश्यन्ति, सुषुप्तौ तम एव केवलं न तु निर्गुणं त्वाम्। सर्वत्र हेतुः— यद्यतः, यस्य तव माययेति वा मोहितं चेतो येषां ते ॥ २३ ॥

જે શરીરધારીઓ (બદ્ધ જીવો) છે તેઓ પોતાનામાં સમ્યક્ રીતે રહેલા હોવા છતાં પણ આપને નથી જાણતા, પરંતુ શબ્દાદિ વિષયોને જ જુએ છે. અથવા શબ્દાદિ વિષયોને પણ નથી જોતા, પરંતુ અજ્ઞાનને જ જુએ છે, કારણ કે જેઓમાં '**त्रिगुणाः**' ત્રણ ગુણોવાળી બુદ્ધિ જ પ્રધાન છે, આથી તેઓ બહારના વિષયોમાં જ '**प्रकाशः**' જ્ઞાન છે જેમનું, તેવા છે. પરતંત્રબુદ્ધિ હોવાથી જાગ્રત્ અને સ્વપ્નાવસ્થામાં તેઓ વિષયોને જુએ છે અને સુષુપ્તિમાં અજ્ઞાનને જ જુએ છે, પરંતુ નિર્ગુણ એવા આપને નથી જોતા. આ બધાનું કારણ— '**यत्**' કારણ કે આપની માયાથી મોહિત છે ચિત્ત જેમનાં તેઓ '**यत्**'– '**यतः**' જે કારણથી, અથવા જે આપની માયાથી મોહિત થયાં છે ચિત્ત જેમનાં તેઓ ॥ ૨૩ ॥

तथाप्यहं विचारेण ज्ञास्यामीति चेत्तत्राह—

(આપ દુર્જ્ઞેય છો,) તેમ છતાં પણ હું ચિંતન દ્વારા આપને જાણીશ, એમ જો કહેવામાં આવે તો તે માટે ઉત્તર આપે છે—

तं त्वामहं ज्ञानघनं स्वभाव-
प्रध्वस्तमायागुणभेदमोहैः ।
सनन्दनाद्यैर्मुनिभिर्विभाव्यं
कथं हि मूढः परिभावयामि॥ २४

तं त्वामहं विमूढः कथं परिभावयामि विचारयामि। कथंभूतम्। ज्ञानघनं शुद्धज्ञान-मूर्तिम्। स्वत एव प्रध्वस्तौ मायागुणनिमित्तौ भेदमोहौ येषां तैर्विभाव्यं विचिन्त्यम्। अयं भावः—ज्ञानघनत्वान्न तावज्ज्ञानविषयत्वं विचार-विषयत्वेऽपि मायागुणैरभिभूतोऽहं न विचारे समर्थ इति॥ २४॥

प्रशान्त मायागुणकर्मलिङ्ग-
मनामरूपं सदसद्विमुक्तम्।
ज्ञानोपदेशाय गृहीतदेहं
नमाम हे त्वां पुरुषं पुराणम्॥ २५

हे प्रशान्त, तस्मात्त्वां पुरुषं पुराणं केवलं नमामेत्यन्वयः। पुराणपुरुषत्वे हेतुः—मायायाः गुणाः, कर्माणि च विश्वसृष्ट्यादीनि, लिङ्गानि च ब्रह्मादिरूपाणि यस्य तम्। प्रशान्तत्वे हेतुः—सदसद्भ्यां कार्यकारणाभ्यां पुण्यपापाभ्यां वा विमुक्तम्। अतोऽनामरूपं तत्तत्कृतनामरूपशून्यं, किंतु ज्ञानोपदेशाय गृहीतः प्रकटितो देहः

આત્મસ્વરૂપના અનુભવ દ્વારા, માયાના ગુણોને કારણે થતા જેમના ભેદ અને મોહ નષ્ટ થયા છે તે સનંદનાદિ મુનિઓ દ્વારા (કેવળ) ચિંતન કરવા યોગ્ય તે શુદ્ધ જ્ઞાનમૂર્તિ એવા આપનું (અત્યંત) મૂઢ એવો હું કેવી રીતે ચિંતન કરું? ॥ ૨૪ ॥

અત્યંત મૂઢ એવો હું તે આપનું કેવી રીતે '**परिभावयामि**' ચિંતન કરું? કેવા આપનું? '**ज्ञानघनम्**' શુદ્ધ જ્ઞાનમૂર્તિનું, '**स्वतः**' આત્મસ્વરૂપના અનુભવ દ્વારા નષ્ટ થયા છે માયાના ગુણોને કારણે થતા ભેદ અને મોહ જેમના, તેમના દ્વારા '**विभाव्यम्**' ચિંતન કરવા યોગ્ય એવા આપનું. ભાવ આ પ્રમાણે છે— વિશુદ્ધ જ્ઞાનસ્વરૂપ હોવાથી આપ જ્ઞાનના વિષયરૂપ થતા નથી, તો એવા આપનું, ચિંતનના વિષયરૂપે પણ, માયાના ગુણોથી અભિભૂત થયેલો હું ચિંતન કરવા માટે સમર્થ નથી. ॥ ૨૪ ॥

હે પ્રશાંત, માયાના ગુણો, વિશ્વનું સર્જન વગેરે કર્મો તથા બ્રહ્માદિરૂપો જેમનાં છે તેવા આપને અમે નમસ્કાર કરીએ છીએ. કાર્ય-કારણથી મુક્ત, નામ-રૂપથી રહિત તથા જ્ઞાનોપદેશ કરવા માટે દેહ ધારણ કરનાર પુરાણપુરુષ એવા આપને અમે નમસ્કાર કરીએ છીએ. ॥ ૨૫ ॥

હે અત્યન્ત શાંત, (અમે આપનું ચિંતન કરવાને અસમર્થ છીએ.) તેથી પુરાણપુરુષ એવા આપને કેવળ નમસ્કાર કરીએ છીએ, એમ અન્વય છે. પુરાણપુરુષ હોવા માટેનું કારણ— માયાના ગુણો, વિશ્વનું સર્જન વગેરે કર્મો અને બ્રહ્માદિરૂપો છે જેમનાં તેમને, પ્રશાંત હોવાનું કારણ— '**सत्-असद्भ्याम्**' કાર્ય-કારણથી અથવા પુણ્યપાપથી જે મુક્ત છે તેમને, આથી '**अनामरूपम्**' તે તે કાર્યકારણે કરેલાં નામ અને રૂપથી રહિતને, પરંતુ '**ज्ञान-उपदेशाय**'

शुद्धसत्त्वमूर्तिर्येन तम्। यद्वा हे प्रशान्तमायेति हे अगुणेति च संबोध्य कर्मभिः सृष्ट्यादिकार्यै-र्लिङ्गानि यस्येति योज्यम्। यद्वा प्रशान्ता मायागुणादयो यस्मिन्नित्येकमेव पदम्॥ २५ ॥

(ભક્તો ઉપર અનુગ્રહ કરવા) જ્ઞાનનો ઉપદેશ કરવા માટે '**गृहीतः**' પ્રકટ કર્યો છે શુદ્ધ સત્ત્વગુણમૂર્તિરૂપ દેહ જેમણે તેમને (નમસ્કાર કરીએ છીએ). અથવા, પ્રશાંત થઈ ગઈ છે માયા જેમનામાં તેવા હે પ્રશાંતમાય, હે અગુણ, એમ સંબોધીને '**कर्मभिः**' વિશ્વનું સર્જન વગેરે કર્મો દ્વારા બ્રહ્માદિરૂપો જેમનાં છે તેમને, અથવા, '**प्रशान्तमायागुणकर्मलिङ्गम्**' એમ એક જ પદ હોય તો, પ્રશાંત થઈ ગયા છે માયાના ગુણો, કર્મો, ચિહ્નો જેમનામાં તેમને (અમે નમસ્કાર કરીએ છીએ).॥ ૨૫ ॥

स्वभाग्यं श्लाघते—**त्वन्मायेति** द्वाभ्याम्।

(તેમનાં દર્શનથી કૃતાર્થ થઈ) પોતાના ભાગ્યની બે શ્લોકો વડે સરાહના કરે છે— '**त्वन्माया इति।**'

त्वन्मायारचिते लोके वस्तुबुद्ध्या गृहादिषु।
भ्रमन्ति कामलोभेर्ष्यामोहविभ्रान्तचेतसः॥ २६

આપની માયાથી રચાયેલા સંસારમાં કામ, લોભ, ઈર્ષ્યા અને મોહથી ભ્રમિત થયેલા ચિત્તવાળા જનો ઘર (દેહ, પુત્ર, પત્ની) વગેરેમાં વસ્તુબુદ્ધિથી (તેને સત્ય સમજીને) ભટકતા રહે છે.॥ ૨૬ ॥

कामादिभिर्विभ्रान्तानि चेतांसि येषां ते इमे सर्वे गृहादिषु भ्रमन्ति॥ २६ ॥

કામ વગેરેથી ભ્રમિત થયાં છે ચિત્ત જેમનાં તેઓ આ ગૃહાદિમાં ભટકે છે.॥ ૨૬ ॥

अद्य नः सर्वभूतात्मन् कामकर्मेन्द्रियाशयः।
मोहपाशो दृढश्छिन्नो भगवंस्तव दर्शनात्॥ २७

હે સમસ્ત પ્રાણીઓના આત્મા! કામના, કર્મ અને ઈન્દ્રિયોના આશ્રયરૂપ અમારો મજબૂત મોહમય ફાંસો, હે ભગવાન, આપનાં દર્શનથી આજે કપાઈ ગયો છે.॥ ૨૭ ॥

हे सर्वभूतात्मन्, नोऽस्माकं त्वत्कृपयैव घटितात्त्वद्दर्शनाददतिदृढोऽपि मोहमयः पाशश्छिन्नः। कथंभूतः—कामादीनामाशय आश्रयः। त्वत्प्रसादेन कृतार्थोऽस्मीत्यर्थः॥ २७ ॥

હે સમસ્ત પ્રાણીઓના આત્મા, '**नः**' અમારો, આપની જ કૃપાથી થયેલાં આપનાં દર્શનથી અતિ દૃઢ હોવા છતાં મોહમય પાશ કપાઈ ગયો છે. કેવો? કામ વગેરેનો '**आशयः**' આશ્રય. આપની કૃપાથી જ હું કૃતાર્થ થયો છું, એમ અર્થ છે.॥ ૨૭ ॥

श्रीशुक उवाच

इत्थंगीतानुभावस्तं भगवान् कपिलो मुनिः।
अंशुमन्तमुवाचेदमनुगृह्य धिया नृप॥ २८

॥ २८ ॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — હે રાજા પરીક્ષિત, આ પ્રમાણે જેમનો પ્રભાવ ગાવામાં આવ્યો તે ભગવાન કપિલ મુનિ મનથી અનુગ્રહ કરી અંશુમાનને આ પ્રમાણે કહેવા લાગ્યા. ॥ ૨૮ ॥ ૨૮ ॥

श्रीभगवानुवाच

अश्वोऽयं नीयतां वत्स पितामहपशुस्तव।
इमे च पितरो दग्धा गङ्गाम्भोऽर्हन्ति नेतरत्॥ २९

શ્રીભગવાન બોલ્યા — હે વત્સ, તારા પિતામહનું યજ્ઞપશુ આ ઘોડો તું લઈ જા. આ તારા બળી ગયેલા પિતૃઓ (કાકાઓ) ગંગાજળને જ યોગ્ય છે. (ગંગાજીને લાવીને તેમના જળથી તેમની ક્રિયા કરવી યોગ્ય છે.) અન્ય કશાથી (તેમનો ઉદ્ધાર) નહીં થાય.॥ ૨૯॥

अश्वं लब्ध्वापि साकाङ्क्षं प्रत्याह—इमे चेति॥ २९॥

અશ્વ પ્રાપ્ત કરીને પણ આકાંક્ષા સહિત રહેલા અંશુમાન પ્રત્યે કપિલ મુનિ કહે છે—**'इमे च इति।'**॥ ૨૯॥

तं परिक्रम्य शिरसा प्रसाद्य हयमानयत्।
सगरस्तेन पशुना क्रतुशेषं समापयत्॥ ३०

તે કપિલ મુનિની પરિક્રમા કરી, મસ્તક નમાવી, તેમને પ્રસન્ન કરી અંશુમાન અશ્વ લઈ આવ્યો. રાજા સગરે તે યજ્ઞપશુથી બાકીનો યજ્ઞ સમાપ્ત કર્યો.॥ ૩૦॥

तं परिक्रम्येति शुकोक्तिः॥ ३०॥

'तं परिक्रम्य इति।' 'तं परिक्रम्य' થી શ્રીશુકદેવજીની ઉક્તિ છે.॥ ૩૦॥

राज्यमंशुमति न्यस्य निःस्पृहो मुक्तबन्धनः।
और्वोपदिष्टमार्गेण लेभे गतिमनुत्तमाम्॥ ३१

॥ ३१॥

અંશુમાન ઉપર રાજ્ય (ભાર) મૂકી મહર્ષિ ઔર્વ દ્વારા ઉપદેશ કરવામાં આવેલા માર્ગે (વિષયોથી) નિઃસ્પૃહ અને બંધનમુક્ત થઈ રાજા સગરે પરમ પદ પ્રાપ્ત કર્યું.॥ ૩૧॥ ૩૧॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे सगरोपाख्यानेऽष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां अष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

❋❋❋❋❋

अथ नवमोऽध्यायः

ભગીરથચરિત્ર અને ગંગાવતરણ

नवमेंऽशुमतो वंशः खट्वाङ्गावधि वर्ण्यते।
गङ्गां भूतलमानिन्ये यस्य पौत्रो भगीरथः॥ १॥

નવમા અધ્યાયમાં ખટ્વાંગ સુધીનો અંશુમાનનો વંશ વર્ણવવામાં આવે છે, જે અંશુમાનના પૌત્ર ભગીરથ ગંગાજીને ભૂતળ ઉપર લાવ્યા (તે કથા કહેવામાં આવી છે).॥ ૧॥

श्रीशुक उवाच

अंशुमांश्च तपस्तेपे गङ्गानयनकाम्यया।
कालं महान्तं नाशक्नोत् ततः कालेन संस्थितः॥ १

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — અંશુમાને પણ (પુત્રને રાજ્ય સોંપી) ગંગાજીને લાવવાની ઈચ્છાથી દીર્ઘ કાળ સુધી તપ કર્યું, પરંતુ (તેઓ ગંગાજીને લાવવા માટે) સમર્થ થયા નહીં અને (ગંગાજીને લાવ્યા વિના જ) કાળે કરીને મૃત્યુ પામ્યા.॥ ૧॥

यथा सगरः पौत्राय राज्यं दत्त्वा तपस्तेपे तथांऽशुमांश्च स्वपुत्राय राज्यं दत्त्वा महान्तं कालं तपस्तेपे इति चकारस्यार्थः। नाशक्नोत्, गङ्गामानेतुमिति शेषः। संस्थितो मृतः ॥ १ ॥

दिलीपस्तत्सुतस्तद्वदशक्तः कालमेयिवान्।
भगीरथस्तस्य पुत्रस्तेपे स सुमहत् तपः ॥ २

कालं मृत्युमेयिवान्प्राप्तः ॥ २ ॥

दर्शयामास तं देवी प्रसन्ना वरदास्मि ते।
इत्युक्तः स्वमभिप्रायं शशंसावनतो नृपः ॥ ३

तं प्रत्यात्मानं दर्शयामास। ते वरदास्मीति गङ्गयोक्तः सन्स्वमभिप्रायं पूर्वजोद्धरणं शशंस कथयामास ॥ ३ ॥

आह गङ्गा—

कोऽपि धारयिता वेगं पतन्त्या मे महीतले।
अन्यथा भूतलं भित्त्वा नृप यास्ये रसातलम् ॥ ४

कोऽपि गगनात्पतन्त्या मे वेगं धारयिता धारयिष्यति ॥ ४ ॥

किं चाहं न भुवं यास्ये नरा मय्यामृजन्त्यघम्।
मृजामि तदघं कुत्र राजंस्तत्र विचिन्त्यताम् ॥ ५

किंच आमृजन्ति क्षालयिष्यन्ति तत्रोपायो विचिन्त्यताम् ॥ ५ ॥

જેમ રાજા સગરે પૌત્રને રાજ્ય આપીને તપ કર્યું, તેમ અંશુમાને પણ પોતાના પુત્રને રાજ્ય આપીને દીર્ઘ કાળ સુધી તપ કર્યું, એમ '**च**' કારનો અર્થ છે. '**न-अशक्नोत्**' 'ગંગાજીને લાવવા માટે' (એટલું શેષ છે) સમર્થ થયા નહીં. '**संस्थितः**' મૃત્યુ પામ્યા. ॥ ૧ ॥

તેમનો પુત્ર દિલીપ પણ તેમની જેમ ગંગાજીને લાવવા માટે અસમર્થ થઈ મૃત્યુને પ્રાપ્ત થયો. તેમના પુત્ર ભગીરથે અતિ મહાન તપશ્ચર્યા કરી. ॥ ૨ ॥

'**कालम्**' મૃત્યુને '**एयिवान्**' પ્રાપ્ત થયો. ॥ ૨ ॥

(તેના તપથી) પ્રસન્ન થઈ દેવી ગંગાએ તેને દર્શન આપ્યાં (અને કહ્યું), 'હું તને વરદાન આપું છું.' આમ, કહેવામાં આવેલા રાજાએ નમન કરી (પૂર્વજોના ઉદ્ધાર માટે મૃત્યુલોકમાં પધારવા માટે ગંગાજીને પ્રાર્થના કરતાં) પોતાનો અભિપ્રાય જણાવ્યો. ॥ ૩ ॥

તે ભગીરથને પોતાનાં દર્શન આપ્યાં. 'હું તને વરદાન આપું છું.' એમ ગંગાજી દ્વારા તે કહેવામાં આવેલો હોઈ, પૂર્વજોના ઉદ્ધાર માટે ભગીરથે પોતાનો અભિપ્રાય '**शशंस**' જણાવ્યો. ॥ ૩ ॥

ગંગાજી કહે છે—

હે રાજા, (આકાશમાંથી) ભૂતળ ઉપર પડતી એવી મારો વેગ ધારણ કરનારો પણ કોઈ છે ખરો? નહીં તો ભૂતળ ફાડીને હું રસાતળમાં ચાલી જઈશ. ॥ ૪ ॥

આકાશમાંથી પડતી એવી મારો વેગ ધારણ કરનારો '**धारयिता**' પણ કોઈ છે ખરો? ॥ ૪ ॥

વળી, હું પૃથ્વી ઉપર તો નહીં જાઉં. (ત્યાં) મનુષ્યો મારામાં (પોતાનાં) પાપ ધોશે. હે રાજા, તે પાપને હું ક્યાં ધોઉં? તે બાબતમાં તમારે વિચાર કરવો જોઈએ. ॥ ૫ ॥

વળી, (કોણ) '**आमृजन्ति**' પાપનું પ્રક્ષાલન કરશે તે માટે ઉપાય વિચારો. ॥ ૫ ॥

भगीरथ उवाच

साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः।
हरन्त्यघं तेऽङ्गसङ्गात् तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः॥ ६

અઘં હરન્તિ હરિષ્યન્તિ। અઘં ભિનત્તીત્યઘભિત્ ॥ ६ ॥

રાજા ભગીરથ બોલ્યા — શાસ્ત્રને અનુસરનારા, સર્વ કર્મોનું ફળ ભગવાનને અર્પણ કરનારા, શમાદિ સાધનસંપત્તિવાળા (શમ, દમ, તિતિક્ષા, સમાધાન, ઉપરતિ, શ્રદ્ધાવાળા), બ્રહ્મનિષ્ઠ અને લોકોને (સન્માર્ગના ઉપદેશ દ્વારા) પાવન કરનારા જનો પોતાનાં અંગસ્પર્શથી (તમારામાં સ્નાન કરવાથી) તમારાં પાપો હરી લેશે, કારણ કે તેવા સત્પુરુષોમાં પાપોનો નાશ કરનાર શ્રીહરિ (સર્વદા) નિવાસ કરે છે.॥ ૬॥

પાપને '**हरन्ति**' = **हरिष्यन्ति** હરી લેશે. પાપનો નાશ કરે તે '**अघभित्**' (શ્રીહરિ)॥ ૬॥

धारयिष्यति ते वेगं रुद्रस्त्वात्मा शरीरिणाम्।
यस्मिन्नोतमिदं प्रोतं विश्वं शाटीव तन्तुषु॥ ७

आत्मा कथंभूतः। यस्मिन्निदं विश्वमोतं ग्रथितमूर्ध्वतन्तुषु शाटीव पट इव। प्रोतं च तिर्यक् तन्तुषु पट इव। असौ सर्वाधारस्त्वद्वेगं धारयिष्यतीत्यर्थः॥ ७॥

(સર્વ) દેહધારીઓના આત્મા ભગવાન શંકર આપનો વેગ ધારણ કરશે, જે ભગવાન શંકર વિષે, (ઊભા અને આડા) તાંતણાઓમાં સાડી ઓતપ્રોત હોય છે તેમ આ (સંપૂર્ણ) વિશ્વ પરોવાયેલું છે.॥ ૭॥

કેવો આત્મા? જેમના વિષે આ વિશ્વ '**ओतम्**' ગૂંથાયેલા ઊભા તાંતણાઓમાં '**शाटी इव**' સાડીરૂપ પટ હોય તેમ અને '**प्रोतम्**' આડા તાંતણાઓમાં પણ પટ હોય તેમ. તે ભગવાન શંકર સર્વના આધાર હોઈ તમારા વેગને ધારણ કરશે, એમ અર્થ છે.॥ ૭॥ (**आ** + **वे** નું ભૂતકૃદન્ત **ओतम्** વણેલું)

इत्युक्त्वा स नृपो देवं तपसाऽतोषयच्छिवम्।
कालेनाल्पीयसा राजंस्तस्येशः समतुष्यत॥ ८

इत्येवं गङ्गामुक्त्वा।

तच्छ्रुत्वेति पाठे श्रावयित्वेत्यर्थः॥ ८॥

(ગંગાજીને) એમ કહીને તે રાજાએ ભગવાન શંકરને તપથી પ્રસન્ન કર્યા. હે રાજા, અલ્પકાળમાં ભગવાન (આશુતોષ) તેના ઉપર પ્રસન્ન થઈ ગયા.॥ ૮॥

આ પ્રમાણે ગંગાજીને કહીને

'**इत्युक्त्वा**' ને બદલે '**तच्छ्रुत्वा**' એમ પાઠ હોય તો, '**श्रावयित्वा**' સંભળાવીને એમ અર્થ છે.॥ ૮॥

तथेति राज्ञाभिहितं सर्वलोकहितः शिवः।
दधारावहितो गङ्गां पादपूतजलां हरेः॥ ९

સર્વ લોકનું હિત કરનારા ભગવાન શંકરે 'તથાસ્તુ' કહી, રાજા દ્વારા કહેવામાં આવેલું (સ્વીકારીને), શ્રીહરિના ચરણ દ્વારા પવિત્ર થયેલું જળ જેમનું છે તે ગંગાજીને સાવધાન થઈ (મસ્તક ઉપર) ધારણ કર્યાં.॥ ૯॥

राज्ञाभिहितं तथेत्यङ्गीकृत्य। हरेः पादेन पूतं जलं यस्याः ॥ ९ ॥

भगीरथः स राजर्षिर्निन्ये भुवनपावनीम्।
यत्र स्वपितॄणां देहा भस्मीभूताः स्म शेरते ॥ १०
॥ १० ॥

रथेन वायुवेगेन प्रयान्तमनुधावती।
देशान् पुनन्ती निर्दग्धानासिञ्चत् सगरात्मजान् ॥ ११
॥ ११ ॥

गमयति प्रापयति ज्ञापयति वा भगवत्पदं सा गङ्गा।

प्रसङ्गाद्गङ्गामाहात्म्यमाह चतुर्भिः—

यज्जलस्पर्शमात्रेण ब्रह्मदण्डहता अपि।
सगरात्मजा दिवं जग्मुः केवलं देहभस्मभिः ॥ १२

यस्या जलस्पर्शमात्रेण तच्च केवलं देहभस्मभिरेव न साक्षात्। ब्रह्मणि स्वकृतेन दण्डेन हता अपि। तां श्रद्धया ये सेवन्ते इति शेषः ॥ १२ ॥

तत्प्रपञ्चयति—

भस्मीभूताङ्गसङ्गेन स्वर्याताः सगरात्मजाः।
किं पुनः श्रद्धया देवीं ये सेवन्ते धृतव्रताः ॥ १३

રાજા દ્વારા કહેવામાં આવેલાને 'તથાસ્તુ' એમ અંગીકાર કરીને– શ્રીહરિના ચરણથી પવિત્ર થયેલું જળ જેમનું છે તેવાં ગંગાજીને ॥ ૯ ॥

જ્યાં પોતાના પિતૃઓનાં શરીરો ભસ્મીભૂત થઈને પડ્યાં હતાં, ત્યાં તે રાજર્ષિ ભગીરથ ત્રિભુવનપાવની ગંગાજીને લઈ ગયા. ॥ ૧૦ ॥ ૧૦ ॥

વાયુ સમાન વેગવાળા રથ દ્વારા પ્રયાણ કરતા ભગીરથની પાછળ દોડતાં, (માર્ગમાં આવતા) દેશોને પવિત્ર કરતાં ગંગાજીએ સગર રાજાના બળી ગયેલા પુત્રો(ની ભસ્મ)ને (જળમાં) આપ્લાવિત કરી દીધા. ॥ ૧૧ ॥ ૧૧ ॥

પ્રભુના ચરણને પ્રાપ્ત કરાવે અથવા તેનું જ્ઞાન કરાવે તે ગંગા.

પ્રસંગોપાત્ત ગંગાજીનું માહાત્મ્ય ચાર શ્લોકો વડે કહે છે—

બ્રાહ્મણના દંડથી અર્થાત્ તેમના પ્રત્યે તિરસ્કાર કરવાને કારણે નાશ પામેલા સગરપુત્રો માત્ર પોતાના દેહની ભસ્મ સાથે જેમના જળના સ્પર્શ માત્રથી સ્વર્ગમાં ગયા. (તે ગંગાદેવીને શ્રદ્ધાથી જેઓ ભજે છે, તેમને ફળ મળે તેમાં શું કહેવાનું ?) ॥ ૧૨ ॥

જેમના જળના સ્પર્શમાત્રથી અને તે પણ કેવળ દેહની ભસ્મ સાથે સ્પર્શ થવાથી, પ્રત્યક્ષ સ્પર્શ નહીં, બ્રાહ્મણ પ્રત્યે પોતે કરેલા તિરસ્કારને કારણે નષ્ટ થયા હોવા છતાં પણ (સગરપુત્રો સ્વર્ગે ગયા). તે ગંગાદેવીને શ્રદ્ધાથી જેઓ ભજે છે, એટલું શેષ છે. ॥ ૧૨ ॥

(શ્રદ્ધાપૂર્વક ગંગાજીનું જે સેવન છે,) તે વાતને વિસ્તારપૂર્વક સમજાવે છે—

ભસ્મ થયેલા શરીરને પણ (ગંગાજળનો) સ્પર્શ થવાથી સગરપુત્રો સ્વર્ગમાં ગયા, તો જેઓ ગંગાદેવીનું (સ્નાન, પાન, આચમનાદિ) નિયમો ધારણ કરી શ્રદ્ધાપૂર્વક સેવન કરે તેઓ સ્વર્ગમાં જાય, તેમાં વળી શું કહેવાનું ? ॥ ૧૩ ॥

भस्मीभूतेनाङ्गेन यः सङ्गस्तेन॥ १३॥

ભસ્મ થયેલા શરીરને જે સ્પર્શ થાય તેનાથી ॥ ૧૩ ॥

न ह्येतत् परमाश्चर्यं स्वर्धुन्या यदिहोदितम्।
अनन्तचरणाम्भोजप्रसूताया भवच्छिदः॥ १४
॥ १४॥

અનંત ભગવાનનાં ચરણકમળમાંથી ઉત્પન્ન થયેલાં અને સંસારનાં દુ:ખને દૂર કરનારાં, સ્વર્ગમાંથી આવેલાં ગંગાજીનું આ જે (માહાત્મ્ય) કહેવામાં આવ્યું, એ કાંઈ પરમ આશ્ચર્યની વાત નથી.॥ ૧૪ ॥ ૧૪ ॥

संनिवेश्य मनो यस्मिन् श्रद्धया मुनयोऽमलाः।
त्रैगुण्यं दुस्त्यजं हित्वा सद्यो यातास्तदात्मताम्॥ १५

કારણ કે જે અનંત ભગવાનમાં શ્રદ્ધાપૂર્વક મન સ્થાપી વિશુદ્ધ થયેલા મુનિજનો દુસ્ત્યજ દેહસંબંધ ત્યજી તત્કાળ તે ભગવત્સ્વરૂપને પ્રાપ્ત થયા છે (તે ભગવાનનાં ચરણકમળમાં ઉત્પન્ન થયેલાં વિષ્ણુપદી ગંગાજીનું આવું માહાત્મ્ય હોય તે પરમ આશ્ચર્યની વાત નથી!)।। ૧૫।।

अनन्तस्य विशेषणं संनिवेश्येति। त्रैगुण्यं देहसंबन्धम्॥ १५॥

અનંત ભગવાનની વિશેષતા દર્શાવે છે. '**संनिवेश्य इति।**' '**त्रैगुण्यम्**' ત્રિગુણાત્મક દેહ, અંતઃકરણાદિમાં આત્મભાવરૂપ દેહસંબંધ।। ૧૫।।

श्रुतो भगीरथाज्जज्ञे तस्य नाभोऽपरोऽभवत्।
सिन्धुद्वीपस्ततस्तस्मादयुतायुस्ततोऽभवत्॥ १६
॥ १६॥

ભગીરથથી શ્રુત જન્મ્યા, તે શ્રુતથી બીજા નાભ થયા, તેમનાથી સિંધુદ્વીપ, તેમનાથી અયુતાયુ અને તે અયુતાયુથી॥ ૧૬ ॥॥ ૧૬ ॥

ऋतुपर्णो नलसखो योऽश्वविद्यामयान्नलात्।
दत्त्वाऽक्षहृदयं चास्मै सर्वकामस्तु तत्सुतः॥
॥ १७॥

ઋતુપર્ણ થયા. નળરાજાના મિત્ર એવા તેમણે નળરાજાને દ્યૂતવિદ્યાનું રહસ્ય આપી તેમની પાસેથી અશ્વવિદ્યા પ્રાપ્ત કરી હતી. તેમનો પુત્ર સર્વકામ હતો॥ ૧૭॥

नलस्य सखा अयात्प्राप्तः। तत्सुतः ऋतुपर्णस्य सुतः॥ १७॥

નળરાજાના મિત્ર ઋતુપર્ણે '**अयात्**' પ્રાપ્ત કરી હતી. '**तत्सुतः**' ઋતુપર્ણનો પુત્ર.॥ ૧૭॥

ततः सुदासस्तत्पुत्रो मदयन्तीपतिर्नृप।
आहुर्मित्रसहं यं वै कल्माषांघ्रिमुत क्वचित्।
वसिष्ठशापाद् रक्षोऽभूदनपत्यः स्वकर्मणा॥ १८

હે રાજા પરીક્ષિત, તે સર્વકામથી સુદાસ થયો. તેનો પુત્ર સૌદાસ મદયંતીનો પતિ હતો, જેને (લોકો) મિત્રસહ અને કેટલાક કલ્માષપાદ પણ કહે છે. પોતાના કર્મને કારણે સંતાનરહિત એવો તે વસિષ્ઠ મુનિના શાપથી રાક્ષસ થયો હતો.॥ ૧૮ ॥

तत्पुत्रः सौदासः॥ १८॥

તે સુદાસનો પુત્ર સૌદાસ થયો.॥ ૧૮ ॥

राजोवाच

किं निमित्तो गुरोः शापः सौदासस्य महात्मनः।
एतद् वेदितुमिच्छामः कथ्यतां न रहो यदि॥ १९

न रहो न रहस्यम्॥ १९॥

રાજા બોલ્યા — મહાત્મા સૌદાસને ગુરુનો શાપ શા કારણે થયો હતો, તે અમે જાણવા ઈચ્છીએ છીએ. જો એ રહસ્ય (ગોપનીય) ન હોય તો અમને કહો.॥ ૧૯॥

'न रहः' રહસ્ય ન (હોય તો)॥ ૧૯॥

श्रीशुक उवाच

सौदासो मृगयां किञ्चिच्चरन् रक्षो जघान ह।
मुमोच भ्रातरं सोऽथ गतः प्रतिचिकीर्षया॥ २०

स चिन्तयन्नघं राज्ञः सूदरूपधरो गृहे।
गुरवे भोक्तुकामाय पक्त्वा निन्ये नरामिषम्॥ २१

मृगयां चरन्कंचिद्राक्षसं जघान, तस्य भ्रातरं मुमोच, स भ्राता पलाय्य गतः॥ २०॥

अघमनिष्टम्। सूदः पाचकस्तद्रूपधरः सन् राज्ञो गृहे वर्तमानः॥ २१॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — શિકાર કરવા માટે ફરતા (રાજા) સૌદાસે કોઈ એક રાક્ષસને મારી નાખ્યો અને તેના ભાઈને છોડી મૂક્યો અને નાસી ગયો. રાજાનું અનિષ્ટ થાય તેવો વિચાર કરતો તે ભાઈ વેર લેવાની ઈચ્છાથી રસોઈયાનું રૂપ ધારણ કરીને રાજાના ઘરે (ગયો) ભોજન કરવાની ઈચ્છાવાળા ગુરુ વસિષ્ઠને માટે મનુષ્યનું માંસ રાંધીને લઈ આવ્યો.॥ ૨૦॥ ૨૧॥

શિકાર કરવા માટે ફરતા સૌદાસે કોઈ રાક્ષસને મારી નાખ્યો, તેના ભાઈને છોડી મૂક્યો. તે ભાઈ નાસી ગયો.॥ ૨૦॥

'अघम्' અનિષ્ટનો (વિચાર કરતો), **'सूदः'** રસોઈયો, તેનું રૂપ ધારણ કરીને રાજાના ઘરમાં રહેતો તે॥ ૨૧॥

परिवेक्ष्यमाणं भगवान् विलोक्याभक्ष्यमञ्जसा।
राजानमशपत् क्रुद्धो रक्षो ह्येवं भविष्यसि॥
॥ २२॥

અભક્ષ્યमञ्जसा विलोक्य। एवं नरमांसव्यवहारेण॥ २२॥

(ભોજનપાત્રમાં) પીરસવામાં આવનારા નરામિષને તરત જ અભક્ષ્ય જોઈ (એકદમ) ક્રોધિત થઈ ગયેલા સર્વજ્ઞ વસિષ્ઠ મુનિએ રાજાને 'આવા કર્મથી તું રાક્ષસ થઈ જઈશ.' એમ શાપ આપ્યો.॥ ૨૨॥

(परि + विष् = पीरसवुं)

તરત જ અભક્ષ્ય જોઈને, આમ મનુષ્યમાંસના વ્યવહારથી॥ ૨૨॥

रक्षःकृतं तद् विदित्वा चक्रे द्वादशवार्षिकम्।
सोऽप्यपोऽञ्जलिनाऽऽदाय गुरुं शप्तुं समुद्यतः॥
॥ २३॥

(મનુષ્યનું માંસ પીરસવામાં આવ્યું તે રસોઈયાનું રૂપ ધારણ કરેલા) રાક્ષસ દ્વારા કરવામાં આવ્યું હતું (પણ રાજા સૌદાસે કરાવ્યું ન હતું) તે જાણીને (વસિષ્ઠે પોતે જ એ શાપની અવધિને) બાર વર્ષની કરી. (ત્યારે પોતાનો દોષ ન હોવાથી) તે સૌદાસ પણ હાથમાં જળ લઈને ગુરુને શાપ આપવા માટે તૈયાર થયો હતો.॥ ૨૩॥

वसिष्ठ एव तं शापं द्वादशवार्षिकं चक्रे॥ २३॥

वारितो मदयन्त्यापो रुशतीः पादयोर्जहौ।
दिशः खमवनीं सर्वं पश्यन् जीवमयं नृपः॥ २४

रुशतीस्तीक्ष्णा अपः स्वपादयोर्जहौ नान्यत्र। तत्र हेतुः—दिश इति। एवमनेन मित्रसहत्वमपि दर्शितम्। मित्रस्य कलत्रस्य वाचःसहनात्॥ २४॥

राक्षसं भावमापन्नः पादे कल्माषतां गतः।
व्यवायकाले ददृशे वनौकोदम्पती द्विजौ॥ २५

तदेवं राक्षसत्वे कल्माषांघ्रित्वे च कारणमुक्त्वा स्वकर्मणाऽनपत्य इति यदुक्तं तत्प्रपञ्चयति—व्यवायकाल इत्यादिना कर्मणा अप्रजा इत्यन्तेन। वनमोको निवासो ययोस्तौ वनौकसौ च तौ दम्पती च। पृथक्पदत्वे सकारलोप आर्षः॥ २५॥

बा.प्र.—अनेनैव सर्वजीवहितचिन्तनपूर्वक-स्ववैरूप्याङ्गीकारेण मित्रसहत्वमपि दर्शितम्।

क्षुधार्तो जगृहे विप्रं तत्पत्न्याहाकृतार्थवत्।
न भवान् राक्षसः साक्षादिक्ष्वाकूणां महारथः॥ २६

વસિષ્ઠ મુનિએ જ શાપને બાર વર્ષની અવધિનો કર્યો.॥ ૨૩॥

મદયંતી દ્વારા (તેમ કરતાં) વારવામાં આવેલા રાજાએ દિશાઓ, આકાશ તથા પૃથ્વી, સર્વને જીવમય જોઈ (ક્રોધાગ્નિરૂપ અભિમંત્રિત) તીક્ષ્ણ જળ (પોતાના) પગ ઉપર છોડ્યું હતું.॥ ૨૪॥

‘**रुशतीः**’ તીક્ષ્ણ જળ પોતાના પગ ઉપર છોડ્યું હતું, અન્ય ઠેકાણે નહીં, તે માટેનું કારણ— ‘**दिशः इति।**’ આમ, આ દ્વારા (અન્યત્ર શાપનું જળ ન છોડવા દ્વારા) તેનું મિત્રસહત્વ પણ દર્શાવવામાં આવ્યું છે. ‘**मित्रस्य**’ પત્નીરૂપ મિત્રની વાણી (ક્રોધના સમયે પણ) સહન કરવાથી॥ ૨૪॥

(આથી) તેના પગ કાબરચિતરા (કાળા) થઈ ગયા. રાક્ષસીભાવને પ્રાપ્ત થયેલા સૌદાસ (એક વખત) વનવાસી બ્રાહ્મણ દંપતીને સહવાસના સમયે જોઈ ગયો.॥ ૨૫॥

આ પ્રમાણે રાક્ષસ થવા માટેનું અને કાબરચિતરા (કાળા) પગ થવા માટેનું કારણ કહીને પોતાના જ કર્મને કારણે સંતાનરહિત હતો એમ જે (શ્લોક-૧૮માં) કહેવામાં આવ્યું હતું, તે વિસ્તારપૂર્વક સમજાવે છે— ‘**व्यवायकाले**’ વગેરેથી માંડીને ‘**कर्मणा अप्रजाः**’ (શ્લોક-૩૮) સુધી. વન ‘**ओकः**’ નિવાસ છે જે બંનેનો તથા જેઓ જાયા અને પતિ પણ છે.

‘**वनौकौ दम्पती**’ એમ પૃથક્ પદ પ્રમાણે પાઠ હોય તો (**वनौकस्** શબ્દના) સકારનો લોપ આર્ષ છે.॥ ૨૫॥

સર્વ જીવોના હિતના વિચારપૂર્વક પોતાની કુરૂપતા સ્વીકારવા દ્વારા પણ તેનું મિત્રસહત્વ દર્શાવવામાં આવ્યું છે.

ક્ષુધાથી પીડાયેલા તેણે બ્રાહ્મણને પકડ્યો. તે બ્રાહ્મણની પત્ની તેને દીનની જેમ કહેવા લાગી: આપ રાક્ષસ નથી પણ સાક્ષાત્ ઈક્ષ્વાકુઓના મહારથી છો.॥ ૨૬॥

अकृतार्थवद्दीनवत्॥ २६ ॥

'अकृतार्थवत्' દીનની જેમ, જેનું પ્રયોજન સિદ્ધ નથી થયું તેની જેમ॥ ૨૬॥

मदयन्त्याः पतिर्वीर नाधर्मं कर्तुमर्हसि।
देहि मेऽपत्यकामाया अकृतार्थं पतिं द्विजम्॥ २७

હે વીર, આપ મદયંતીના પતિ છો, અધર્મ કરવાને યોગ્ય નથી. જેનો રતિક્રીડારૂપ અર્થ સમાપ્ત નથી થયો તેવા મારા બ્રાહ્મણપતિને સંતાનની કામનાવાળી એવી મને આપી દો.॥ ૨૭॥

अकृतार्थमसमाप्तरतिम्॥ २७ ॥

'अकृतार्थम्' જેનો રતિક્રીડારૂપ અર્થ સમાપ્ત નથી થયો તેવા મારા પતિને॥ ૨૭॥

देहोऽयं मानुषो राजन् पुरुषस्याखिलार्थदः।
तस्मादस्य वधो वीर सर्वार्थवध उच्यते॥ २८
॥ २८ ॥

હે રાજા, હે વીર, આ મનુષ્યશરીર પુરુષને સર્વ પુરુષાર્થ આપનારું છે, માટે આ પુરુષનો વધ, સર્વ પુરુષાર્થની હત્યા કહેવામાં આવી છે.॥ ૨૮॥ ૨૮॥

एष हि ब्राह्मणो विद्वांस्तपःशीलगुणान्वितः।
आरिराधयिषुर्ब्रह्म महापुरुषसंज्ञितम्।
सर्वभूतात्मभावेन भूतेष्वन्तर्हितं गुणैः॥ २९

વળી, આ તો વિદ્વાન બ્રાહ્મણ છે, તપ, શીલ અને ગુણોથી સમ્પન્ન છે, સર્વ પ્રાણીઓના આત્માના ભાવથી, પ્રાણીઓમાં રહેલા હોવા છતાં ગુણોથી અંતર્ધાન થયેલા એવા મહાપુરુષની સંજ્ઞાવાળા પરબ્રહ્મની આરાધના કરવાની ઈચ્છાવાળો છે.॥ ૨૯॥

सर्वभूतानामात्मेति भावनयाराधयितुमिच्छुः। यद्वा सर्वभूतानामात्मभावेन भूतेषु स्थितमपि गुणैरन्तर्हितं ब्रह्मेति संबन्धः। पाठान्तरे अन्तर्हितः सोऽयमित्युत्तरेणान्वयः॥ २९ ॥

સર્વ પ્રાણીઓના આત્માની ભાવનાથી આરાધના કરવાની ઈચ્છાવાળો છે અથવા સર્વ પ્રાણીઓના આત્માના ભાવથી પ્રાણીઓમાં રહેલા હોવા છતાં ગુણોથી અંતર્ધાન થયેલ બ્રહ્મ, એમ સંબંધ છે. બીજો પાઠ **'अन्तर्हितम्'**ને બદલે **'अन्तर्हितः'** હોય તો તે શબ્દને પછીના શ્લોક (૩૦)ના **'ब्रह्मर्षिवर्यः'** પદ સાથે જોડવો.॥ ૨૯॥

सोऽयं ब्रह्मर्षिवर्यस्ते राजर्षिप्रवराद् विभो।
कथमर्हति धर्मज्ञ वधं पितुरिवात्मजः॥ ३०
॥ ३० ॥

હે ધર્મજ્ઞ, જેમ પુત્ર પિતાનો વધ કરે તે યોગ્ય નથી, તેમ બ્રહ્મર્ષિઓમાં શ્રેષ્ઠ એવા તે આ બ્રાહ્મણ, રાજર્ષિઓમાં શ્રેષ્ઠ એવા તમારાથી વધને યોગ્ય કેમ હોઈ શકે?॥ ૩૦॥ ૩૦॥

तस्य साधोरपापस्य भ्रूणस्य ब्रह्मवादिनः।
कथं वधं यथा बभ्रोर्मन्यते सन्मतो भवान्॥ ३१

સત્પુરુષોમાં માન્ય એવા આપ તે પરોપકારી, નિર્દોષ, શ્રોત્રિય અને બ્રહ્મવાદીના વધને કેમ સારો માનો છો? ગાયના વધની જેમ (આ પણ અનર્થના કારણરૂપ જ છે.)॥ ૩૧॥

भ्रूणस्य श्रोत्रियस्य गर्भस्य सत इति वा। बभ्रोर्गोः। सतां मतो भवान्वधं कथं साधु मन्यत इत्यर्थः॥ ३१॥

'**भ्रूणस्य**' શ્રોત્રિયનો (વધ) અથવા (અત્યારે જ મારામાં ગર્ભરૂપે ઉત્પન્ન થનાર હોઈ) ગર્ભનો (વધ)– '**बभ्रोः**' ગાયના– સત્પુરુષોમાં માન્ય એવા આપ કેમ (આવા) વધને સારો માનો છો, એમ અર્થ છે.॥ ૩૧॥

यद्ययं क्रियते भक्षस्तर्हि मां खाद पूर्वतः।
न जीविष्ये विना येन क्षणं च मृतकं यथा॥ ३२

જેના વિના હું ક્ષણ પણ જીવીશ નહીં તેવો આ બ્રાહ્મણ તારું ભોજન હોય, તો મૃતપ્રાય થયેલી મને પહેલાં ખાઈ જા.॥ ૩૨॥

क्षणमपि येन विना न जीविष्यामि सोऽयं यदि भक्षः क्रियते तर्हि मृतकं यथा मृतप्रायां मां पूर्वं भक्षय॥ ३२॥

જેના વિના હું ક્ષણ પણ જીવીશ નહીં તેવો આ બ્રાહ્મણ તારું ભોજન હોય, તો '**मृतकं यथा**' મૃતપ્રાય (મરણતોલ) થયેલી મને પહેલાં ખાઈ જા.॥ ૩૨॥

एवं करुणभाषिण्या विलपन्त्या अनाथवत्।
व्याघ्रः पशुमिवाखादत् सौदासः शापमोहितः॥ ३३
॥ ३३॥

આમ, તે બ્રાહ્મણી કરુણતાથી કરગરતી હતી અને અનાથની જેમ વિલાપ કરતી હતી, ત્યારે વાઘ પશુને ખાય તેમ શાપથી મોહિત થયેલો સૌદાસ (બ્રાહ્મણને) ખાઈ ગયો.॥ ૩૩॥ ૩૩॥

ब्राह्मणी वीक्ष्य दिधिषुं पुरुषादेन भक्षितम्।
शोचन्त्यात्मानमुर्वीशमशपत् कुपिता सती॥ ३४

ગર્ભાધાન કરનાર (પતિ)ને માનવભક્ષી (રાક્ષસ) દ્વારા ભક્ષણ કરાયેલો જોઈ, પોતાના વિષે શોક કરતી તેણે કુપિત થઈને પૃથ્વીપતિને શાપ આપ્યો.॥ ૩૪॥

दिधिषुं गर्भाधानकर्तारम्॥ ३४॥

'**दिधिषुम्**' ગર્ભાધાન કરવા ઈચ્છનારને॥ ૩૪॥

(ધા નું ઈચ્છાદર્શક રૂપ '**दिधिषा**', ધારણ કરવાની ઈચ્છા)

यस्मान्मे भक्षितः पाप कामार्तायाः पतिस्त्वया।
तवापि मृत्युराधानादकृतप्रज्ञ दर्शितः॥
॥ ३५॥

અરે હે પાપી, હે દુર્બુદ્ધિ, કામથી પીડાતી એવી મારી પાસેથી તારા દ્વારા જે કારણે મારો પતિ ખાઈ જવામાં આવ્યો છે, તેથી તારું મૃત્યુ પણ ગર્ભાધાન કરવાથી જ દર્શાવવામાં આવ્યું છે. (તારા દ્વારા ગર્ભાધાન થતાં જ તારું મૃત્યુ થશે.)॥ ૩૫॥

आधानान्मैथुनात्। हे अकृतप्रज्ञ, मृत्युर्मया दर्शितः॥ ३५॥

'**आधानात्**' મૈથુનથી (મૃત્યુ થશે). હે દુર્બુદ્ધિ, મારા દ્વારા મૃત્યુ દર્શાવવામાં આવ્યું છે.॥ ૩૫॥

एवं मित्रसहं शप्त्वा पतिलोकपरायणा।
तदस्थीनि समिद्धेऽग्नौ प्रास्य भर्तुर्गतिं गता॥ ३६
॥ ३६॥

આમ, મિત્રસહ (સૌદાસ)ને શાપ આપીને પતિના લોકમાં જવા માટે તત્પર થયેલી તે બ્રાહ્મણી ધધકતા અગ્નિમાં પતિનાં અસ્થિ પધરાવી પતિની ગતિને પ્રાપ્ત થઈ ગઈ.॥ ૩૬॥ ૩૬॥

विशापो द्वादशाब्दान्ते मैथुनाय समुद्यतः ।
विज्ञाय ब्राह्मणीशापं महिष्या स निवारितः ॥ ३७ ॥

॥ ३७ ॥

तत ऊर्ध्वं स तत्याज स्त्रीसुखं कर्मणाऽप्रजाः ।
वसिष्ठस्तदनुज्ञातो मदयन्त्यां प्रजामधात् ॥ ३८ ॥

तदेवं कर्मणा अप्रजाः ॥ ३८ ॥

सा वै सप्त समा गर्भमबिभ्रन्न व्यजायत ।
जघ्नेऽश्मनोदरं तस्याः सोऽश्मकस्तेन कथ्यते ॥ ३९ ॥

अबिभ्रद्दधारेत्यर्थः । न व्यजायत न प्रासूत । अतो वसिष्ठ एव तस्या उदरमश्मना जघान । स उत्पन्नः सुतोऽश्मकः ॥ ३९ ॥

अश्मकान्मूलको जज्ञे यः स्त्रीभिः परिरक्षितः ।
नारीकवच इत्युक्तो निःक्षत्रे मूलकोऽभवत् ॥ ४० ॥

स्त्रीभिः संवेष्ट्य परशुरामात्परिरक्षितः, अतो नारीकवच इत्युक्तः । निःक्षत्रे सति क्षत्रवंशस्य मूलमभवदतो मूलक इति चोक्तः ॥ ४० ॥

ततो दशरथस्तस्मात् पुत्र ऐडविडस्ततः ।
राजा विश्वसहो यस्य खट्वाङ्गश्चक्रवर्त्यभूत् ॥ ४१ ॥

॥ ४१ ॥

यो देवैरर्थितो दैत्यानवधीद् युधि दुर्जयः ।
मुहूर्तमायुर्ज्ञात्वैत्य स्वपुरं संदधे मनः ॥ ४२ ॥

બાર વર્ષના અંતે શાપથી છૂટેલો સૌદાસ મૈથુન માટે ઉદ્યત થયો, ત્યારે બ્રાહ્મણીનો શાપ જાણીને રાણી મદયંતી દ્વારા તેને રોકવામાં આવ્યો. ॥ ૩૭ ॥ ૩૭ ॥

ત્યાર પછી તેણે સ્ત્રીસુખનો પરિત્યાગ કર્યો અને આમ પોતાના કર્મથી તે પ્રજારહિત રહ્યો. તેના કહેવાથી વસિષ્ઠ મુનિએ મદયંતીમાં ગર્ભાધાન કર્યું. ॥ ૩૮ ॥

આમ, પોતાના કર્મથી તે સંતાનરહિત રહ્યો. ॥ ૩૮ ॥

તે મદયંતીએ સાત વર્ષ સુધી ગર્ભને ધારણ કર્યો, પણ બાળક જન્મ્યું નહીં. (આથી વસિષ્ઠે જ) તેના ઉદર ઉપર પથ્થરથી ઘા કર્યો. તેનાથી તે (પુત્ર) અશ્મક કહેવાયો. ॥ ૩૯ ॥

'अबिभ्रत्' ધારણ કર્યો, એમ અર્થ છે. **'न व्यजायत'** જન્મ્યો નહીં. આથી વસિષ્ઠે જ તેના ઉદર ઉપર પથ્થરથી ઘા કર્યો. તે ઉત્પન્ન થયેલો પુત્ર અશ્મક (કહેવાયો.) ॥ ૩૯ ॥

અશ્મકથી મૂલક જન્મ્યો, કે જે સ્ત્રીઓ દ્વારા (પરશુરામથી) રક્ષાયો હતો, (આથી) તે નારીકવચ કહેવાયો. (ભૂમંડળ) ક્ષત્રિયરહિત થયું ત્યારે તે ક્ષત્રિયવંશનું મૂળ બન્યો હોવાથી મૂલક પણ કહેવાયો. ॥ ૪૦ ॥

સ્ત્રીઓ દ્વારા (સ્ત્રીરૂપી કવચથી) સંવેષ્ટિત થઈ (લપેટાઈને) પરશુરામથી રક્ષાયો હતો, આથી નારીકવચ કહેવાયો.(ભૂમંડળ) ક્ષત્રિયરહિત થયું ત્યારે ક્ષત્રિયવંશનું મૂળ બન્યો હોવાથી મૂલક પણ કહેવાયો. ॥ ૪૦ ॥

તે મૂલકથી દશરથ થયા. તેમનાથી પુત્ર ઐડવિડ અને તેમનાથી રાજા વિશ્વસહ થયા, જેમના પુત્ર ખટ્વાંગ ચક્રવર્તી રાજા થયા. ॥ ૪૧ ॥ ૪૧ ॥

યુદ્ધમાં દુર્જય એવા જેમણે દેવો દ્વારા પ્રાર્થના કરાયેલા હોઈ દૈત્યોનો વધ કર્યો હતો. (પોતાનું) આયુષ્ય એક મુહૂર્ત (જેટલું જ બાકી છે તે) જાણી, પોતાના નગરમાં આવી મનને (ભગવાનમાં) લગાડ્યું હતું. ॥ ૪૨ ॥

प्रसन्नैर्देवैर्वरं वृणीष्वेत्युक्ते खट्वाङ्गेनोक्तं प्रथमं तावन्ममायुः कथ्यतामिति, देवैश्चोक्तं मुहूर्तमात्रमिति, तज्ज्ञात्वा देवैर्दत्तेन विमानेन शीघ्रं स्वपुरमेत्य मनः परमेश्वरे संदधे॥ ४२॥

પ્રસન્ન થયેલા દેવો દ્વારા વરદાન માગ એમ કહેવામાં આવ્યું, ત્યારે (તેણે પૂછ્યું કે) પહેલાં મારું આયુષ્ય કેટલું છે તે કહો. દેવો દ્વારા મુહૂર્ત જેટલું (આયુષ્ય) જ છે, એમ કહેવામાં આવ્યું. તે જાણીને દેવોએ આપેલા વિમાન વડે તરત જ પોતાના નગરમાં આવી મનને પરમેશ્વરમાં લગાડ્યું હતું.॥ ૪૨॥

(એક મુહૂર્ત = ૨ ઘડી = ૪૮ મિનિટ)

एतदेव स्वसाधुवृत्तानुस्मरणपूर्वकं तत्कृतेन निश्चयेन दर्शयति—**नेति** सप्तभिः—

(પરમાત્મામાં મન લગાડ્યું હતું) એ જ પોતાના સચ્ચરિત્રના સ્મરણપૂર્વક તે ખટ્વાંગે કરેલા નિશ્ચય દ્વારા સાત શ્લોકોથી દર્શાવે છે— **'न इति।'**

न मे ब्रह्मकुलात् प्राणाः कुलदैवान्न चात्मजाः।
न श्रियो न मही राज्यं न दाराश्चातिवल्लभाः॥
॥ ४३ ॥

મારા કુળદેવ એવા બ્રાહ્મણકુળ કરતાં મને મારા પ્રાણ, પુત્રો, લક્ષ્મી, ભૂમિ, રાજ્ય અને પત્ની પણ અધિક પ્રિય નથી.॥ ૪૩॥

कुलदैवाद्ब्रह्मकुलात्सकाशान्मे प्राणादयो नातिवल्लभा नातिप्रियाः॥ ४३॥

કુળદેવ એવા બ્રાહ્મણકુળ કરતાં મને પ્રાણાદિ **'न-अतिवल्लभाः'** અધિક પ્રિય નથી.॥ ૪૩॥

न बाल्येऽपि मतिर्मह्यमधर्मे रमते क्वचित्।
नापश्यमुत्तमश्लोकादन्यत् किञ्चन वस्त्वहम्॥ ४४

બાળપણમાં પણ મારી મતિ ક્યારેય અધર્મમાં રહી નથી. ઉત્તમ કીર્તિવાળા ભગવાનથી પૃથક્ બીજું કંઈ પણ મેં જોયું નથી. (સર્વ કાંઈ ભગવદાત્મક જ છે.)॥ ૪૪॥

मह्यं मम॥ ४४॥

'मह्यम्' मम મારી મતિ ॥ ૪૪॥

देवैः कामवरो दत्तो मह्यं त्रिभुवनेश्वरैः।
न वृणे तमहं कामं भूतभावनभावनः॥ ४५

ત્રણે લોકોના સ્વામી દેવતાઓ દ્વારા મને ઈચ્છિત વરદાન આપવામાં આવ્યું હતું, પરંતુ (સર્વ) પ્રાણીઓના પાલનકર્તા શ્રીહરિમાં જ જેની ભાવના છે તેવો હું તે ભોગોની લાલસાનું વરદાન નથી માગતો.॥ ૪૫॥

भूतभावनो हरिस्तस्मिन्नेव भावना यस्य सोऽहं तं कामं न वृणे॥ ४५॥

(સર્વ) પ્રાણીઓનું પાલન કરનારા શ્રીહરિ, તેમનામાં જ જેની ભાવના છે તેવો હું તે ભોગોની લાલસાનું વરદાન માગતો નથી.॥ ૪૫॥

तत्र हेतुः—**य इति।**

તે (વરદાન ન માગવા) માટેનું કારણ— **'ये इति।'**

ये विक्षिप्तेन्द्रियधियो देवास्ते स्वहृदि स्थितम्।
न विन्दन्ति प्रियं शश्वदात्मानं किमुतापरे॥ ४६

જેમની ઈન્દ્રિયો અને બુદ્ધિ વિષયોથી વ્યાકુળ થઈ જાય છે, તે દેવો (સત્ત્વગુણપ્રધાન હોવા છતાં) પોતાના હૃદયમાં સદાસર્વદા રહેલા આત્મસ્વરૂપ, પ્રિય ભગવાનને જાણતા નથી, તો અન્ય (રજોગુણી અને તમોગુણી સ્વભાવવાળા મનુષ્યાદિ તો) ક્યાંથી જાણે? ॥ ૪૬ ॥

विक्षिप्तानीन्द्रियाणि धीश्च येषां ते देवा अपि ॥ ४६ ॥

વિક્ષિપ્ત ઈન્દ્રિયો અને બુદ્ધિ છે જેમની તે દેવો પણ ॥ ૪૬ ॥

अथेशमायारचितेषु सङ्गं
गुणेषु गन्धर्वपुरोपमेषु।
रूढं प्रकृत्याऽऽत्मनि विश्वकर्तु-
र्भावेन हित्वा तमहं प्रपद्ये॥ ४७

આથી પરમેશ્વરની માયાથી રચાયેલા અને ગંધર્વનગરની ઉપમાવાળા (શીઘ્ર નષ્ટ થઈ જનારા) વિષયો ઉપરની, સ્વભાવથી જ પોતાનામાં દૃઢ થઈ ગયેલી આસક્તિને વિશ્વકર્તા ભગવાનની ભક્તિથી છોડીને તે વિશ્વકર્તાને જ શરણે હું જાઉં છું. ॥ ૪૭ ॥

अथ तस्मात्प्रकृत्या स्वभावेनात्मनि रूढं गुणेषु सङ्गं विश्वकर्तुर्भावेन हित्वा तमेवाहं प्रपद्ये ॥ ४७ ॥

‘**अथ**’ આથી ‘**प्रकृत्या**’ સ્વભાવથી જ પોતાનામાં દૃઢ થયેલી, વિષયો ઉપરની આસક્તિને વિશ્વકર્તાની ભક્તિથી છોડીને તેમને જ શરણે હું જાઉં છું. ॥ ૪૭ ॥

इति व्यवसितो बुद्ध्या नारायणगृहीतया।
हित्वाऽन्यभावमज्ञानं ततः स्वं भावमाश्रितः॥ ४८

આમ, નારાયણ પ્રત્યે આકૃષ્ટ થયેલી બૃદ્ધિથી કૃતનિશ્ચયી થયેલો રાજા દેહાદિ અભિમાનરૂપ અજ્ઞાન છોડીને પછી સ્વસ્વરૂપમાં સ્થિત થયો. ॥ ૪૮ ॥

अन्यभावं देहाद्यभिमानरूपमज्ञानं हित्वा ॥ ४८ ॥

‘**अन्यभावम्**’ દેહાદિ અભિમાનરૂપ અજ્ઞાનને છોડી ॥ ૪૮ ॥

स्वं भावमेवाह—**यत्तदिति**।

સ્વસ્વરૂપના ભાવને જ વર્ણવે છે—‘**यत् तत् इति।**’

यत् तद् ब्रह्म परं सूक्ष्ममशून्यं शून्यकल्पितम्।
भगवान् वासुदेवेति यं गृणन्ति हि सात्वताः॥ ४९

જે પરબ્રહ્મ છે, સૂક્ષ્મ છે, (શૂન્યરહિત, નિર્ગુણ હોવાથી) અશૂન્ય છે, (વાણી વગેરેનો અવિષય હોવાથી) શૂન્યની જેમ કલ્પિત છે, જેમને ભક્તો ભગવાન વાસુદેવ કહે છે (તેમને તે પ્રાપ્ત થયો). ॥ ૪૯ ॥ (**वासुदेवेति** સંધિ આર્ષ છે.)

शून्यवत्कल्पितं वागाद्यविषयत्वात्। वासुदेव इति यं गृणन्ति। ब्रह्मण एव भक्तानुग्रहार्थमा-विष्कृततनोर्वासुदेवत्वात्॥ ४९॥

'ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।'

(श्रीमद्भा. १/२/११)

વાણી વગેરેનો અવિષય હોવાથી શૂન્યની જેમ કલ્પિત છે, જેમને (ભક્તો) વાસુદેવ કહે છે. ભક્તો ઉપર અનુગ્રહ કરવા માટે બ્રહ્મનું પ્રકટ સ્વરૂપ એ જ વાસુદેવ છે.॥ ૪૯॥

(તે તત્ત્વ) બ્રહ્મ, પરમાત્મા અને ભગવાન– એ નામથી કહેવાય છે.

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे सूर्यवंशानुवर्णने नवमोऽध्यायः॥ ९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां नवमोऽध्यायः॥ ९॥

❋❋❋❋❋

अथ दशमोऽध्यायः

ભગવાન શ્રીરામની લીલાઓનું વર્ણન

दशमे प्राह खट्वाङ्गवंशे श्रीरामसंभवम्।
तच्चरित्रं च लंकेशं हत्वाऽयोध्यागमावधि॥ १॥

દસમા અધ્યાયમાં ખટ્વાંગ વંશમાં શ્રીરામચન્દ્રજીનો અવતાર તથા લંકાપતિ રાવણને હણીને અયોધ્યા-આગમન સુધીનું તેમનું ચરિત્ર કહે છે.॥ ૧॥

श्रीशुक उवाच

खट्वाङ्गाद् दीर्घबाहुश्च रघुस्तस्मात् पृथुश्रवाः।
अजस्ततो महाराजस्तस्माद् दशरथोऽभवत्॥ १

तस्यापि भगवानेष साक्षाद् ब्रह्ममयो हरिः।
अंशांशेन चतुर्धाऽगात् पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः।
रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्ना इति संज्ञया॥ २

तस्यानुचरितं राजन्नृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
श्रुतं हि वर्णितं भूरि त्वया सीतापतेर्मुहुः॥ ३

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – ખટ્વાંગથી દીર્ઘબાહુ, તેમનાથી મહાયશસ્વી રઘુ, તેમનાથી મહારાજ અજ અને તેમનાથી દશરથ થયા.॥ ૧॥ તે દશરથને પણ દેવો દ્વારા પ્રાર્થના કરવામાં આવેલા, આ સાક્ષાત્, બ્રહ્મમય ભગવાન શ્રીહરિ, પોતાના અંશના પણ અંશ વડે રામ, લક્ષ્મણ, ભરત તથા શત્રુઘ્ન નામના ચાર પુત્રોરૂપે પ્રાપ્ત થયા હતા. હે રાજા (પરીક્ષિત), (વાલ્મીકિ વગેરે) તત્ત્વદ્રષ્ટા ઋષિઓ દ્વારા તે રામજીનું ચરિત્ર ઘણું વર્ણવાયું છે, તે તમારા વડે વારંવાર શ્રવણ કરવામાં આવ્યું છે, છતાં પણ સંક્ષેપથી કહેવામાં આવે છે (તે ચરિત્ર તમે શ્રવણ કરો).॥ ૨॥ ૩॥

खट्वाङ्गाच्च दीर्घबाहुः॥ १॥ २॥

ऋषिभिर्वाल्मीकिमुख्यैर्भूरि वर्णितं त्वया मुहुः श्रुतं तथापि संक्षेपतः कथ्यमानं शृणु॥ ३॥

ખટ્વાંગથી દીર્ઘબાહુ થયો.॥ ૧॥ ૨॥

વાલ્મીકિ જેમાં મુખ્ય છે તે ઋષિઓ દ્વારા ઘણું વર્ણવાયું છે, તમારા દ્વારા વારંવાર શ્રવણ કરવામાં આવ્યું છે, છતાં પણ સંક્ષેપથી કહેવામાં આવે છે તે શ્રવણ કરો.॥ ૩॥

'ग्रन्थकोटिभिराकीर्णमद्भुतं रामविक्रमम्।
अध्यायद्वयतो वक्ष्यन्नेकश्लोके समस्यति॥'
इति।

गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं
पद्मपद्भ्यां प्रियायाः
पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो
यो हरीन्द्रानुजाभ्याम् ।
वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषा-
ऽऽरोपितभ्रूविजृम्भ-
त्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः
कोशलेन्द्रोऽवतान्नः ॥ ४

(છંદ-સ્રગ્ધરા, અક્ષર-૨૧)
ગણમાપ - મ ર ભ ન ય ય ય

स कोशलेन्द्रः श्रीरामो नोऽस्मानवतात्पातु। कथंभूतः। यो गुर्वर्थे पितुः सत्यस्य पालनार्थं त्यक्तराज्यः सन् पद्मवदतिसुकुमाराभ्यां पद्भ्याम्। तदेवाह—प्रियायाः पाणिनापि स्पर्शे नास्ति क्षमा ययोस्ताभ्यां प्रतिवनं व्यचरत्। हरीन्द्रो हनुमान्सुग्रीवो वाऽनुजो लक्ष्मणस्ताभ्यां मृजिता- पनीता पथरुजा मार्गश्रमो यस्य। शूर्पणख्या वैरूप्यात्कर्णनासिकाच्छेदाद्धेतोः तया प्रलोभितेन रावणेनापहारात्प्रियेण कलत्रेण विरहस्तेन रुट् तयारोपितयोर्भ्रुवोर्विजृम्भेणैव त्रस्तोऽब्धिर्यस्मात्। ततस्तद्विज्ञापनेन बद्धः सेतुर्येन। ततः खला रावणादय एव दवो वनं तस्य दहनः॥ ४॥

'કરોડો ગ્રંથોમાં વ્યાપેલું શ્રીરામજીનું અદ્ભુત પરાક્રમ બે અધ્યાયથી કહેનાર (વ્યાસજી) એક જ શ્લોકમાં સંક્ષેપથી કહે છે.'

પિતા(ના સત્યની રક્ષા) માટે જેમણે રાજ્યનો ત્યાગ કર્યો, પ્રિયા (સીતાજી)ના હસ્તથી થતા સ્પર્શ માટે પણ જે ચરણોની સહિષ્ણુતા નથી તેવા કમળ જેવા (અતિ સુકુમાર) ચરણોથી જેમણે વને વને વિચરણ કર્યું, વાનરેન્દ્ર હનુમાનજી તથા અનુજ લક્ષ્મણ દ્વારા હરી લેવામાં આવ્યો છે માર્ગનો શ્રમ જેમનો, શૂર્પણખાને કુરૂપ કરવાથી (શૂર્પણખાએ પ્રેરેલા રાવણે સીતાજીનું અપહરણ કર્યું તેથી) થયેલા પ્રિયાના વિરહના ક્રોધથી તણાયેલી ભ્રૂકુટિના ફેલાવાથી ત્રાસ પામ્યો છે સાગર જેમનાથી, જેમના દ્વારા (સાગર ઉપર) સેતુ બાંધવામાં આવ્યો તેમ જ દુષ્ટ રાક્ષસોના વનને માટે જે દાવાનળ સ્વરૂપ છે, તે ભગવાન કોશલનરેશ આપણું રક્ષણ કરે.॥૪॥

તે કોશલનરેશ શ્રીરામ '**नः**' અમને '**अवतात्**' રક્ષો. કેવા શ્રીરામ? જેમણે '**गुरु-अर्थे**' પિતાના સત્યની રક્ષા માટે રાજ્ય ત્યાગીને, કમળ જેવા અતિસુકુમાર ચરણોથી– તે જ કહે છે— પ્રિયા (સીતાજી)ના (કોમળ) હસ્તથી થતા સ્પર્શ માટે પણ જે બંને ચરણોની સહિષ્ણુતા નથી તે ચરણકમળથી વને વને વિચરણ કર્યું. '**हरीन्द्रः**' વાનરશ્રેષ્ઠ હનુમાનજી અથવા સુગ્રીવ તથા '**अनुजः**' લક્ષ્મણ, તે બંને દ્વારા '**मृजिता**' હરી લેવામાં આવ્યો છે '**पथरुजा**' માર્ગનો શ્રમ જેમનો. રાક્ષસી શૂર્પણખાને નાક-કાન કાપવા દ્વારા તેને કદરૂપી બનાવવાથી તેણે પ્રલોભિત કરેલા રાવણ વડે પત્ની પ્રિયા (સીતાજી)ના અપહરણથી થયેલો વિરહ, તેનાથી ક્રોધ, તેના વડે તણાયેલી ભ્રૂકુટિના ફેલાવાથી ત્રાસ પામ્યો છે સાગર જેમનાથી. ત્યાર પછી તે સાગરની વિનંતિથી જેમના દ્વારા સેતુ બંધાવવામાં આવ્યો. પછી રાવણાદિ દુષ્ટોરૂપી '**दवः**' વન, તેના દહનરૂપ॥ ૪॥

संक्षेपतो वर्णितं रामचरितमादित आरभ्य विस्तरेणाह—विश्वामित्राध्वर इत्यादिना यावदुत्तराध्यायसमाप्ति।

विश्वामित्राध्वरे येन मारीचाद्या निशाचराः।
पश्यतो लक्ष्मणस्यैव हता नैर्ऋतपुङ्गवाः॥ ५

पश्यत एव लक्ष्मणस्य। तमप्यनपेक्ष्यैव हता इत्यर्थः। यच्छब्दानां स कोशलेन्द्रोऽवतादित्यनेनैवान्वयः॥ ५॥

यो लोकवीरसमितौ धनुरैशमुग्रं
सीतास्वयंवरगृहे त्रिशतोपनीतम्।
आदाय बालगजलील इवेक्षुयष्टिं
सज्जीकृतं नृप विकृष्य बभञ्ज मध्ये॥ ६

(છંદ - વસંતતિલકા, ગણમાપ - ત ભ જા જ ગૌ ગ, અક્ષર - ૧૪)

लोके ये वीरास्तेषां समितौ समाजे ऐशं त्रैयम्बकं धनुरिक्षुयष्टिमिव लीलयैवादाय सज्जीकृतमारोपितं विकृष्य मध्ये बभञ्ज। हे नृप, उग्रं कठिनं गरिष्ठम्। तदाह—वाहकानां त्रिभिः शतैरुपनीतम्। बालगजस्य लीलेव लीला यस्य सः॥ ६॥

સંક્ષેપમાં વર્ણવવામાં આવેલું શ્રીરામજીનું ચરિત્ર પહેલેથી માંડી વિસ્તારપૂર્વક કહે છે— '**विश्वामित्राध्वरे**' વગેરેથી માંડીને પછીનો અધ્યાય-(૧૧) સમાપ્ત થાય ત્યાં સુધી.

વિશ્વામિત્રના યજ્ઞમાં જેમના દ્વારા મારીચ વગેરે રાત્રે ફરનારા મોટા રાક્ષસો લક્ષ્મણના દેખતાં જ હણાયા હતા (તે કોશલનરેશ ભગવાન શ્રીરામ આપણું રક્ષણ કરે).॥૫॥

લક્ષ્મણના દેખતાં જ રાક્ષસોને હણ્યા અને તે પણ લક્ષ્મણની અપેક્ષા વગર એકલાએ જ– '**यत्**' શબ્દનાં રામને લગતાં **यः, येन, यस्य** જે રૂપો આવે તેમને, તે કોશલેન્દ્ર આપણું રક્ષણ કરે, એની સાથે જોડવું.॥૫॥

(શ્લોક-૬ થી ૨૩ નો છંદ વસંતતિલકા છે.)

હે રાજા પરીક્ષિત, હાથીના બચ્ચા જેવી લીલા કરનારા શ્રીરામે સીતાના સ્વયંવરમંડપમાં જગતના વીરપુરુષોની સભામાં, ત્રણસો વાહકો (મજૂરો)એ આણેલા, ગરિષ્ઠ એવા શિવધનુષ્યને શેરડીના સાંઠાની જેમ (સહેજ)માં ઉપાડી લઈને સજ્જ કર્યું અને ખેંચીને વચમાંથી તોડી નાખ્યું (તે કોશલેન્દ્ર રામ આપણું રક્ષણ કરે).॥૬॥

જગતમાં જે વીરપુરુષો છે તેમની '**समितौ**' સભામાં '**ऐशम्**' ત્રિલોચન શંકર ભગવાનના ધનુષ્યને શેરડીના સાંઠાની જેમ રમતમાં ઉપાડી લઈને '**सज्जीकृतम्**' સજ્જ કર્યું અને પછી ખેંચીને વચમાંથી તોડી નાખ્યું. હે રાજા, '**उग्रम्**' ભંયકર, સૌથી ભારે વજનવાળા ધનુષ્યને. તે જ કહે છે– ત્રણસો વાહકો (મજૂરો)એ લાવેલા ધનુષ્યને. હાથીના બચ્ચા મદનિયાના જેવી જેમની લીલા છે તે શ્રીરામે॥૬॥

जित्वाऽनुरूपगुणशीलवयोऽङ्गरूपां
सीताभिधां श्रियमुरस्यभिलब्धमानाम्।
मार्गे व्रजन् भृगुपतेर्व्यनयत् प्ररूढं
दर्पं महीमकृत यस्त्रिरराजबीजाम्॥ ७

(પૂર્વે શ્રીહરિના) વક્ષઃસ્થળ ઉપર (સ્થાન પામીને) જેમણે સમ્માન પ્રાપ્ત કર્યું છે તેવાં, પોતાને અનુરૂપ ગુણ, શીલ, વય અને શારીરિક સૌંદર્યવાળાં સીતા નામનાં લક્ષ્મીજીને જીતીને (ત્યાંથી) માર્ગમાં જતાં જેમણે (શ્રીરામજીએ) ભૃગુપતિ પરશુરામના અત્યંત વધી ગયેલા ગર્વને દૂર કર્યો, કે જે પરશુરામે પૃથ્વીને એકવીસ વખત ક્ષત્રિયોના બીજથી રહિત કરી હતી (તે કોશલેન્દ્ર રામ આપણું રક્ષણ કરો).॥ ૭॥

अनुरूपाणि स्वयोग्यानि गुणशीलादीनि यस्यास्तां सीतासंज्ञां पूर्वमुरस्यभिलब्धो मानो यया तां श्रियं जित्वा धनुर्भङ्गमहानादश्रवण-क्षुभितस्य भृगुपतेर्दर्पं व्यनयदपनीतवान्। कथंभूतस्य। त्रिःसप्तकृत्वो राजबीजशून्यां महीं योऽकरोत्तस्य॥ ७॥

'अनुरूपाणि' પોતાને યોગ્ય ગુણ, શીલ વગેરે જેમનાં છે તે સીતા નામનાં અગાઉ વક્ષઃસ્થળ ઉપર (સ્થાન પામીને) પ્રાપ્ત કર્યું છે સમ્માન જેમણે તે લક્ષ્મીજીને જીતીને– ધનુષ્યનો ભંગ થવાથી થયેલા ભયંકર શબ્દથી ક્ષોભ પામેલા ભૃગુપતિ પરશુરામના દર્પને **'व्यनयत्'** દૂર કર્યો. કેવા પરશુરામનો (દર્પ દૂર કર્યો)? પૃથ્વીને જેમણે એકવીસ વખત ક્ષત્રિયોના બીજથી રહિત કરી હતી, તેવા પરશુરામનો॥ ૭॥

इदानीं गुर्वर्थ इति श्लोकं विवृण्वन्नाह— **य इति**।

હવે **'गुर्वर्थे'** શ્લોક (૪)નું વિવરણ કરતા કહે છે— **'यः इति।'**

यः सत्यपाशपरिवीतपितुर्निदेशं
स्त्रैणस्य चापि शिरसा जगृहे सभार्यः।
राज्यं श्रियं प्रणयिनः सुहृदो निवासं
त्यक्त्वा ययौ वनमसूनिव मुक्तसङ्गः॥ ८

(પોતાના પિતા) સ્ત્રીને વશ હોવા છતાં પણ સત્યના પાશથી બંધાયેલા પિતાની આજ્ઞા જેમણે (શ્રીરામે) મસ્તક પર ચડાવી હતી, અનાસક્ત (યોગી) જેમ પ્રાણોનો ત્યાગ કરે તેમ જેઓ રાજ્ય, લક્ષ્મી, ચાહકો, મિત્રો અને અયોધ્યાનો ત્યાગ કરી ભાર્યાસહિત વનમાં ગયા હતા (તે કોશલેન્દ્ર રામ આપણું રક્ષણ કરો).॥ ૮॥

कदाचित्कैकेय्यास्तुष्टेन राज्ञा त्वदपेक्षितं दास्यामीति प्रतिश्रुतम्, ततः श्रीरामस्य युवराज्या-भिषेकसमये तया भरतस्य राज्यं रामस्य च वने वासः प्रार्थितः, तदा सत्यपाशेन परिवीतस्य पितुर्निदेशमाज्ञां शिरसा जगृहे। ततो राज्यादिकं त्यक्त्वा सभार्यो वनं ययौ।

કોઈ એક વખત કૈકેયીથી પ્રસન્ન થયેલ રાજા દશરથ દ્વારા વચન આપવામાં આવ્યું હતું કે તને અપેક્ષિત વરદાન આપીશ. ત્યાર પછી શ્રીરામનો યુવરાજ તરીકે રાજ્યાભિષેક થવાનો હતો ત્યારે કૈકેયી દ્વારા ભરતને રાજ્ય અને રામને વનવાસ, એમ માગવામાં આવ્યું. તે સમયે સત્યના પાશથી બંધાયેલા પિતાની **'निदेशम्'** આજ્ઞા શ્રીરામે મસ્તક ઉપર ચડાવી અને રાજ્યાદિ છોડી ભાર્યાસહિત વનમાં ગયા.

दुस्त्यजस्यापि सहर्षत्यागे दृष्टान्तः— मुक्तसङ्गो योगी असून् प्राणानिवेति॥ ८॥

(સામાન્ય મનુષ્ય માટે) દુસ્ત્યજ હોવા છતાં પણ રાજ્યલક્ષ્મીને હર્ષસહિત ત્યાગવા માટેનું દષ્ટાન્ત— અનાસક્ત યોગી '**असून्**' પ્રાણ ત્યાગે તેમ!॥ ૮॥

रक्षःस्वसुर्व्यकृत रूपमशुद्धबुद्धे-
स्तस्याः खरत्रिशिरदूषणमुख्यबन्धून्।
जघ्ने चतुर्दशसहस्रमपारणीय-
कोदण्डपाणिरटमान उवास कृच्छ्रम्॥ ९

(ભગવાન શ્રીરામે) રાક્ષસ રાવણની અશુદ્ધ-બુદ્ધિવાળી બહેન શૂર્પણખાનું રૂપ વિકૃત કર્યું. ખર, ત્રિશિર તથા દૂષણ જેમાં મુખ્ય હતા તેવા તેના ભાઈઓ જેમનામાં છે તે ચૌદહજાર રાક્ષસોને હણ્યા તથા જેમના હાથમાં અસહ્ય ધનુષ્ય છે તેવા તેમણે (વનમાં) વિચરણ કરતાં (જનશિક્ષાર્થે અનેક) કષ્ટ સહી નિવાસ કર્યો (તે કોશલેન્દ્ર રામ આપણું રક્ષણ કરે).॥ ૯॥

रक्षसो रावणस्य स्वसुः शूर्पणखाया अशुद्धबुद्धेः सीतां जिघृक्षोः कामातुराया इति वा रूपं व्यकृत विकारमनयत्। तस्याः खरत्रिशिरदूषणमुख्या बन्धवो येषु तांश्चतुर्दशसहस्त्रं जघान। अपारणीयमलङ्घ्यम् असह्यं कोदण्डं पाणौ यस्य सः॥ ९॥

'**रक्षसः**' રાક્ષસ રાવણની બહેનનું, સીતાને પકડી લેવાની ઈચ્છાવાળી અથવા રામ પ્રત્યે કામાતુર એવી અશુદ્ધ બુદ્ધિવાળી શૂર્પણખાનું રૂપ '**व्यकृत**' વિકૃત કર્યું. ખર, ત્રિશિર અને દૂષણ જેમાં મુખ્ય છે તેવા તેના ભાઈઓ જેમનામાં છે તે ચૌદહજાર રાક્ષસોને હણ્યા. '**अपारणीयम्**' અતિક્રમણ ન કરી શકાય તેવું અસહ્ય ધનુષ્ય જેમના હાથમાં છે તે શ્રીરામે॥ ૯॥

सीताकथाश्रवणदीपितहृच्छयेन
सृष्टं विलोक्य नृपते दशकन्धरेण।
जघ्नेऽद्भुतैणवपुषाऽऽश्रमतोऽपकृष्टो
मारीचमाशु विशिखेन यथा कमुग्रः॥ १०

હે રાજા, સીતાની (સૌન્દર્ય) કથા સાંભળવાથી પ્રકટ થયેલી કામવાસનાવાળા રાવણ વડે મોકલવામાં આવેલા અદ્ભુત સુવર્ણમૃગના શરીરરૂપે મારીચને જોઈને આશ્રમમાંથી તેની પાછળ ખેંચાઈ આવેલા શ્રીરામે, ભગવાન રુદ્રે (વીરભદ્રરૂપે) દક્ષને માર્યો હતો તેમ, બાણથી મારીચને શીઘ્ર માર્યો હતો.॥ ૧૦॥

सीतायाः कथाश्रवणेन दीपितो हृच्छयो यस्य तेन सीतां हरिष्यता स्वस्माद्भीतेन स्वस्याश्रमादपकर्षणार्थं सृष्टं निसृष्टं मारीचं विलोक्य जघान। कथंभूतम्। अद्भुतैणवपुषा

(શૂર્પણખા પાસેથી) સીતાની (સૌન્દર્ય)કથા સાંભળવાથી પ્રકટ થઈ છે કામવાસના જેની તેવા, સીતાને હરી જનારા રાવણ દ્વારા શ્રીરામથી ભય પામવાને કારણે રામને પોતાના આશ્રમમાંથી બહાર લઈ આવવા માટે '**सृष्टम्**' મોકલવામાં આવેલા મારીચને જોઈને, રામે તેને માર્યો હતો. કેવા મારીચને?

स्वर्णहरिणदेहेनोपलक्षितम्। अत एव प्रलोभने-नाश्रमतस्तेनापकृष्टः सन्। कं दक्षं यथा उग्रः श्रीरुद्रः ॥ १० ॥

'**अद्भुत-ऐण-वपुषा**' અદ્‌ભુત એવા સુવર્ણમૃગના શરીરરૂપે દેખાતા મારીચને— આથી જ પ્રલોભન દ્વારા આશ્રમમાંથી તેના દ્વારા ખેંચાયેલા હોઈ '**कम्**' દક્ષને જેમ '**उग्रः**' (વીરભદ્રરૂપ) શ્રીશિવે માર્યો હતો તેમ મારીચને માર્યો.॥ ૧૦॥

रक्षोऽधमेन वृकवद् विपिनेऽसमक्षं
वैदेहराजदुहितर्यपयापितायाम् ।
भ्रात्रा वने कृपणवत् प्रियया वियुक्तः
स्त्रीसङ्गिनां गतिमिति प्रथयंश्चचार॥ ११

નીચ રાક્ષસ દ્વારા વનમાં વરુની જેમ (રામ-લક્ષ્મણની) અનુપસ્થિતિમાં વિદેહરાજનંદિનીને હરી લેવામાં આવી, ત્યારે પ્રિયાથી વિખૂટા પડેલા શ્રીરામ, સ્ત્રીમાં આસક્તિ રાખનારની ગતિ દર્શાવતાં, ભાઈ લક્ષ્મણ સાથે દુ:ખી મનુષ્યની જેમ વનમાં વિચર્યા હતા.॥ ૧૧ ॥

ततश्च रक्षोऽधमेन रावणेनासमक्षमपनीतायाम्। प्रियया वियुक्तो भ्रात्रा लक्ष्मणेन सह कृपणवद्वने चचार। किमभिप्रायः सन्।

ત્યાર પછી (રામ-લક્ષ્મણની) અનુપસ્થિતિમાં નીચ રાવણ દ્વારા સીતા હરી લેવામાં આવી, ત્યારે પ્રિયાથી વિખૂટા પડેલા શ્રીરામ ભાઈ લક્ષ્મણ સાથે દુ:ખી મનુષ્યની જેમ વનમાં વિચર્યા હતા. કેવા અભિપ્રાયવાળા થઈને?

इत्यनेन प्रकारेण स्त्रीसङ्गिनां दुःखोदर्कां गतिं प्रख्यापयन्॥ ११ ॥

આ રીતે સ્ત્રીમાં આસક્તિ રાખનારની ગતિ દુ:ખના પરિણામવાળી થાય છે, એમ જગતને દર્શાવતાં (વનમાં વિચર્યા હતા.)॥ ૧૧ ॥

दग्ध्वाऽऽत्मकृत्यहतकृत्यमहन् कबन्धं
सख्यं विधाय कपिभिर्दयितागतिं तैः।
बुद्ध्वाथ बालिनि हते प्लवगेन्द्रसैन्यै-
र्वेलामगात् स मनुजोऽजभवार्चिताङ्घ्रिः॥ १२

પોતાને માટે (સીતાજીના રક્ષણરૂપ ભગવત્સેવાનું) કર્મ કરવાથી (રાવણ સાથે યુદ્ધમાં પૌરુષ દાખવી) હણાયેલા તે (ગીધરાજ જટાયુ)ની (શાસ્ત્રોક્ત અગ્નિસંસ્કારાદિ) ક્રિયા કરીને જેમ પુત્ર (પિતાનો અગ્નિસંસ્કાર કરે) તેમ શ્રીરામે તેને બાળીને કબંધ (રાક્ષસ)નો સંહાર કર્યો. પછી વાલી હણાતાં, તે કપિઓ (સાથે મૈત્રી કરી, તેમના) દ્વારા પ્રિયા સીતાજીના સમાચાર જાણી બ્રહ્માજી અને શંકરજી દ્વારા જેમના ચરણો પૂજાય છે તે મનુના વંશમાં જન્મેલા શ્રીરામ (મનુષ્ય જેવી લીલા કરતાં) વાનરસૈન્ય સાથે સમુદ્ર કિનારે ગયા હતા. (તે કોશલેન્દ્ર આપણું રક્ષણ કરે.)॥ ૧૨ ॥

आत्मार्थेन कृत्येन कर्मणा रावणेन सह युद्धेन हतं कृत्यं शास्त्रीयं दहनादिकं यस्य तं जटायुषं पुत्र इव दग्ध्वा कबन्धं स्वग्रहणाय प्रसारितबाहुं राक्षसमहन्। अथ वालिनि हते तैः कपिभिर्दयिताया गतिं बुद्ध्वा अजभवाभ्यामर्चिता-वङ्घ्री यस्य समनुजो वेलां समुद्रतीरमगात्॥ १२ ॥

પોતાને માટે (સીતાજીના રક્ષણરૂપ ભગવત્સેવાનું) કર્મ કરવાથી રાવણ સાથે યુદ્ધમાં હણાયેલા જે જટાયુની શાસ્ત્રોક્ત અગ્નિસંસ્કારાદિ ક્રિયા કરીને જેમ પુત્ર (પિતાનો અગ્નિસંસ્કાર કરે) તેમ દહનક્રિયા કરી, પોતાને પકડવા માટે બાહુ પ્રસારનાર રાક્ષસ કબંધને હણ્યો. પછી વાલી હણાતાં, તે કપિઓ દ્વારા પ્રિયા સીતાજીના સમાચાર જાણી, બ્રહ્માજી અને શંકરજી દ્વારા જેમના ચરણો પૂજાય છે તે શ્રીરામજી (મનુષ્ય જેવી લીલા કરતાં) વાનરસૈન્ય સાથે સમુદ્રકિનારે ગયા હતા. ॥ ૧૨ ॥

यद्रोषविभ्रमविवृत्तकटाक्षपात-
संभ्रान्तनक्रमकरो भयगीर्णघोषः।
सिन्धुः शिरस्यर्हणं परिगृह्य रूपी
पादारविन्दमुपगम्य बभाष एतत्॥ १३

જેમની ક્રોધલીલાથી વિસ્તારિત થયેલ નેત્ર-કટાક્ષના દૃષ્ટિપાતથી જેમાં મગરમચ્છો અને મગરો ખળભળી ઊઠ્યા અને જેના ભયથી ગર્જનાઓ સ્તમ્ભિત થઈ ગઈ તેવો સમુદ્ર મૂર્તિમંત થઈ, મસ્તક ઉપર પૂજાનો ઉપહાર લઈ શ્રીરામના ચરણારવિંદના શરણે આવીને આ પ્રમાણે બોલ્યો. ॥ ૧૩ ॥

तत्र त्रिरात्रमुपवासेन प्रतीक्षितोऽपि सिन्धुर्यदा नोपस्थितस्तदा यस्य रोषविभ्रमेण क्रोधलीलया विवृत्तो यः कटाक्षस्तस्य पातेन संभ्रान्ता नक्रा मकराश्च यस्मिन्। भयेन गीर्णो ग्रस्तः स्तम्भितो घोषो येन स सिन्धुरेतद्वक्ष्यमाणं बभाषे। अर्हणम-र्घादिकम्। रूपी मूर्तिमान्॥ १३ ॥

ત્યાં (સમુદ્રકિનારે) ત્રણ રાતના ઉપવાસ કરીને પ્રતીક્ષા કરનાર, તેમ છતાં પણ જ્યારે સમુદ્ર ઉપસ્થિત ન થયો ત્યારે જેમની '**रोषविभ्रमेण**' ક્રોધલીલાથી વિસ્તારિત થયેલો જે નેત્રકટાક્ષ છે, તેના દૃષ્ટિપાતથી ખળભળી ઊઠેલા મગરમચ્છો અને મગરો જે સમુદ્રમાં છે, ભયથી '**गीर्णः**' ગ્રસ્ત, સ્તમ્ભિત થઈ છે ગર્જના જેનાથી તે સમુદ્રે આ (હવે આગળ) કહેવામાં આવનાર વાત જણાવી. '**अर्हणम्**' અર્ઘ વગેરે પૂજાનો ઉપહાર, '**रूपी**' મૂર્તિમંત થઈ ॥ ૧૩ ॥

भाषणमेवाह—**न त्वामिति** द्वाभ्याम्।

સમુદ્રનું વક્તવ્ય જ બે શ્લોકો દ્વારા જણાવે છે— '**न त्वाम् इति।**'

न त्वां वयं जडधियो नु विदाम भूमन्
कूटस्थमादिपुरुषं जगतामधीशम्।
यत्सत्त्वतः सुरगणा रजसः प्रजेशा
मन्योश्च भूतपतयः स भवान् गुणेशः॥ १४

હે વિરાટ વ્યાપક (દેવ), જડ બુદ્ધિવાળા અમે જગતના અધીશ્વર, નિર્વિકાર, આદિપુરુષ એવા આપને ખરેખર જાણી શક્યા જ ન હતા. જેમના (અથવા જેમને વશ રહેનારા) સત્ત્વગુણથી દેવગણો, રજોગુણથી પ્રજાપતિઓ અને તમોગુણથી ભૂતપતિઓ (ઉત્પન્ન થાય) છે, તે આપ ગુણોના નિયન્તા છો. ॥ ૧૪ ॥

एतावत्पर्यन्तं नु निश्चितं त्वां न विदाम। न जानीम इत्यर्थः। इदानीं तु ज्ञातोऽसीत्याह—यदिति पृथक्पदम्। यस्येत्यर्थः। यद्वशेभ्यः सत्त्वादिभ्यः सुरगणादयो भवन्ति स भवानिति ॥ १४ ॥

कामं प्रयाहि जहि विश्रवसोऽवमेहं
त्रैलोक्यरावणमवाप्नुहि वीर पत्नीम्।
बध्नीहि सेतुमिह ते यशसो वितत्यै
गायन्ति दिग्विजयिनो यमुपेत्य भूपाः ॥ १५

कामं यथेच्छं जलमाक्रम्यापि प्रयाहि। अवमेहं पुरीषप्रायम्। त्रैलोक्यं रावयत्याक्रन्दयतीति तथा तं जहि। हे वीर, यद्यपि तव जलं प्रतिबन्धकं न भवति तथापीह सेतुं बध्नीहि।

तर्हि किमर्थम्। ते यशसो विस्ताराय। तदेवाह—यं सेतुमुपेत्य दुष्करं कर्मावेक्ष्य त्वद्यशो गास्यन्ति भूपास्तम्॥ १५ ॥

तद्वाक्यमभिनन्द्य यत्कृतं तदाह—**बद्ध्वेति**।

बद्ध्वोदधौ रघुपतिर्विविधाद्रिकूटैः
सेतुं कपीन्द्रकरकम्पितभूरुहाङ्गैः।
सुग्रीवनीलहनुमत्प्रमुखैरनीकै-
र्लङ्कां विभीषणदृशाऽऽविशदग्रदग्धाम्॥ १६

'**नु**' નિશ્ચિત, આટલા સમય દરમ્યાન અમે આપને '**न विदाम**' જાણી શકતા જ નથી, એમ અર્થ છે, પરંતુ હવે અમે આપને જાણ્યા છે, એમ કહે છે— '**यत्**' એ જુદું પદ છે જેનો અર્થ છે— '**यस्य**' જેમના સત્ત્વગુણથી, અથવા જેમને વશ રહેનારા સત્ત્વાદિગુણોમાંથી દેવગણો વગેરે ઉત્પન્ન થાય છે તે આપ (ગુણોના નિયંતા) છો. ॥ ૧૪ ॥

હે વીર, આપ ઈચ્છાનુસાર પ્રયાણ કરો. વિશ્રવાના મળતુલ્ય અને ત્રણેય લોકને આક્રન્દ કરાવનાર (રાવણ)નો નાશ કરો. પત્ની સીતાને (પુનઃ) પ્રાપ્ત કરો તથા અહીં સેતુ બાંધો, કે જેની પાસે આવીને દિગ્વિજયી રાજાઓ આપના યશનો વિસ્તાર કરવા માટે ગાન કરશે. ॥ ૧૫ ॥

(આપની) '**कामम्**' ઈચ્છાનુસાર જળને પાર કરીને પ્રયાણ કરો. '**अवमेहम्**' મળતુલ્ય (રાવણ)ને– ત્રિલોકીને '**रावयति**' આક્રન્દ કરાવી મૂકે તેવા તે રાવણનો નાશ કરો. હે વીર, જો કે જળ આપને પ્રતિબંધક નથી થતું, તેમ છતાં પણ અહીં સેતુ બાંધો.

(જો જળ પ્રતિબંધક નથી,) તો પછી શા માટે સેતુ બાંધવો? આપના યશનો વિસ્તાર કરવા માટે. તે જ કહે છે— જે સેતુ પાસે આવીને (સેતુબંધનરૂપ) દુષ્કર કર્મ જોઈને રાજાઓ આપનો યશ ગાશે તે સેતુને ॥ ૧૫ ॥

તે સમુદ્રની વાતનું અનુમોદન કરીને શ્રીરામે જે કર્યું તે કહે છે— '**बद्ध्वा इति।**'

શ્રેષ્ઠ વાનરોના હાથથી (ઉપાડવાને કારણે) હાલતી ડાળીઓવાળાં વૃક્ષો જેમની ઉપર છે તેવાં અનેક પર્વતોનાં શિખરો વડે સમુદ્ર ઉપર સેતુ બાંધીને, સુગ્રીવ, નીલ તથા હનુમાનજી જેમનામાં મુખ્ય છે તે સેનાઓ સાથે રઘુપતિ શ્રીરામજી પૂર્વે (શ્રીહનુમાનજી દ્વારા) બાળવામાં આવેલી લંકામાં વિભીષણે દર્શાવેલા માર્ગે પ્રવેશ્યા. ॥ ૧૬ ॥

विविधैरद्रीणां कूटैः शृङ्गैः सेतुं बद्ध्वाऽग्रे सीतान्वेषणे हनुमतैव दग्धां लङ्कामाविशत्। कथंभूतैः शृङ्गैः। कपीन्द्राणां करैः कम्पितानि भूरुहाणामङ्गानि शाखादीनि येषु तैः। विभीषणस्य दृशा बुद्ध्या। कैः सहाविशत्। सुग्रीवादयः प्रमुखा येषां तैरनीकैः ॥ १६ ॥

અનેક '**अद्रीणाम्**' પર્વતોનાં શિખરો વડે સેતુ બાંધીને, '**अग्रे**' પહેલાં સીતાજીની શોધ કરતી વખતે શ્રીહનુમાનજી દ્વારા જ બાળી નાખવામાં આવેલી લંકામાં (શ્રીરામ) પ્રવેશ્યા. કેવાં શિખરો વડે (સેતુ બાંધીને)? શ્રેષ્ઠ વાનરોના હાથથી (ઉપાડવાને કારણે) વૃક્ષોની હાલતી '**अंगानि**' શાખાઓ છે જેમની, તેવાં વૃક્ષો છે જેમનામાં તેવાં શિખરો વડે– વિભીષણની '**दृशा**' બુદ્ધિ (સલાહ) દ્વારા (શ્રીરામ) કોની સાથે પ્રવેશ્યા? સુગ્રીવ વગેરે મુખ્ય છે જેમનામાં તે સેનાઓ સાથે ॥ ૧૬ ॥

सा वानरेन्द्रबलरुद्धविहारकोष्ठ-
श्रीद्वारगोपुरसदोवलभीविटङ्का ।
निर्भज्यमानधिषणध्वजहेमकुम्भ-
शृङ्गाटका गजकुलैर्ह्रदिनीव घूर्णा ॥ १७

(સેનાઓ પ્રવેશ્યા) પછી વાનરરાજોની સેનાઓ દ્વારા ઘેરાઈ ગયેલાં ક્રીડાસ્થળો, ધાન્યના કોઠારો, ખજાના, ઘર વગેરેનાં દ્વારો, નગરદ્વારો, સભાઓ, છજાંઓ અને ચબૂતરા જેમાં છે તેવી અને ભાંગી નાખવામાં આવતા ચોતરા, ધજાઓ, સોનાના કળશો તથા ચૌટાંઓ જેમાં છે તેવી તે લંકાપુરી, હાથીઓનાં ઝુંડો દ્વારા જેમ નદી ડહોળાઈ જાય તેમ ખળભળી ઊઠી. ॥ ૧૭ ॥

ततश्च सा लङ्का घूर्णा प्रचलिता बभूव। कथंभूता। वानरेन्द्राणां बलैरुद्धा विहारादयो यस्याम्। निर्भज्यमाना धिषणादयो यस्यां सा। तत्र विहारः क्रीडास्थानम्, कोष्ठं धान्यागारादि, श्रीः कोशः, द्वारं गृहादीनाम्, गोपुरं पुरद्वारम्, सदः सभा, वलभी प्रासादादिपुरोभागच्छादिनी, विटङ्कः कपोतपालिका। धिषणं वेदिकादि, शृङ्गाटकं चतुष्पथम् ॥ १७ ॥

(સેનાઓ પ્રવેશ્યા) પછી '**सा**' તે લંકાપુરી '**घूर्णा**' ખળભળી ગઈ હતી. કેવી લંકા? શ્રેષ્ઠ વાનરોની સેનાઓ દ્વારા ઘેરાઈ ગયાં છે ક્રીડાસ્થળો વગેરે જેમાં. ભાંગી નાખવામાં આવતા ચોતરા વગેરે છે જેમાં તે લંકા. તેમાં '**विहारः**' ક્રીડાસ્થળ, '**कोष्ठम्**' ધાન્યનો કોઠાર વગેરે, '**श्रीः**' ખજાનો, '**द्वारम्**' ઘર વગેરેનું દ્વાર, '**गोपुरम्**' નગરદ્વાર, '**सदः**' સભા, '**वलभी**' મહેલ વગેરેના આગળના ભાગને ઢાંકતું છજું, '**विटङ्कः**' ચબૂતરો, '**धिषणम्**' વેદી કે ચોતરો, '**शृङ्गाटकम्**' ચૌટું (ચાર રસ્તા) ॥ ૧૭ ॥

रक्षःपतिस्तदवलोक्य निकुम्भकुम्भ-
धूम्राक्षदुर्मुखसुरान्तनरान्तकादीन् ।
पुत्रं प्रहस्तमतिकायविकम्पनादीन्
सर्वानुगान् समहिनोदथ कुम्भकर्णम् ॥ १८

તે જોઈને રાક્ષસરાજ રાવણે નિકુમ્ભ, કુમ્ભ, ધૂમ્રાક્ષ, દુર્મુખ, સુરાન્તક, નરાન્તક વગેરેને, પુત્ર ઈન્દ્રજિતને તથા પ્રહસ્ત, અતિકાય, વિકમ્પન વગેરે સર્વ સેવકોને અને પછી કુંભકર્ણને પણ યુદ્ધ કરવા માટે મોકલ્યા. ॥ ૧૮ ॥

रक्षःपती रावणः पुत्रमिन्द्रजितं प्रहस्तादींश्च समहिनोत्प्रायुङ्क्त ॥ १८ ॥

રાક્ષસરાજ રાવણે '**पुत्रम्**' ઈન્દ્રજિતને તથા પ્રહસ્ત વગેરેને '**समहिनोत्**' મોકલ્યા. ॥ ૧૮ ॥ (**सम्** + **अहिनोत्** $\sqrt{\text{हि}}$ મોકલવું, ૫ મો ગણ)

तां यातुधानपृतनामसिशूलचाप-
प्रासर्ष्टिशक्तिशरतोमरखड्गदुर्गाम् ।
सुग्रीवलक्ष्मणमरुत्सुतगन्धमाद-
नीलाङ्गदर्क्षपनसादिभिरन्वितोऽगात् ॥ १९

તલવારો, ત્રિશૂળો, ધનુષ્યો, ભાલા, બેધારી તલવારો, શક્તિઓ, બાણો, લોખંડના દંડા અને ખડ્ગોથી દુર્ગમ એવી તે રાક્ષસોની સેનાની સામે (શ્રીરામચન્દ્રજી) સુગ્રીવ, લક્ષ્મણ, પવનસુત હનુમાનજી, ગંધમાદન, નીલ, અંગદ, ઋક્ષરાજ જામ્બવાન અને પનસ વગેરે સાથે ધસી ગયા હતા. ॥ ૧૯ ॥

असिशूलादिभिर्दुर्गमां तां यातुधानपृतनां सुग्रीवादिभिरन्वितः श्रीरामोऽभ्यगात्। मरुत्सुतो हनुमान्। ऋक्षो जाम्बवान्॥ १९ ॥

તલવારો, ત્રિશૂળો વગેરેથી દુર્ગમ એવી તે રાક્ષસસેનાની સામે સુગ્રીવ વગેરેની સાથે શ્રીરામચન્દ્રજી ધસી ગયા હતા. '**मरुत्सुतः**' પવનસુત હનુમાનજી, '**ऋक्ष**' રીંછ જામ્બવાન ॥ ૧૯ ॥

तेऽनीकपा रघुपतेरभिपत्य सर्वे
द्वन्द्वं वरूथमिभपत्तिरथाश्वयोधैः ।
जघ्नुर्द्रुमैर्गिरिगदेषुभिरङ्गदाद्याः
सीताभिमर्शहतमङ्गलरावणेशान् ॥ २०

રઘુપતિ શ્રીરામચન્દ્રજીના તે અંગદાદિ સર્વ સેનાપતિઓએ હાથીઓ, પાયદળો, રથીઓ, ઘોડેસવાર યોદ્ધાઓથી યુક્ત એવા રાવણના સૈન્ય સાથે જેમ દ્વન્દ્વયુદ્ધ થાય તેમ સામા થઈ, સીતાજીનો સ્પર્શ કરવાથી જેનું મંગળ નાશ પામ્યું હતું તેવો રાવણ જેમનો સ્વામી હતો તેવા રાક્ષસોને વૃક્ષો, પર્વતો, ગદાઓ અને બાણોથી મારી નાખ્યા. ॥ ૨૦ ॥

ते रघुपतेरनीकपा अङ्गदाद्याः सर्वे रावणस्येभादिभिर्यद्वरूथं सैन्यं तत्र द्वन्द्वं यथा भवति तथाभिपत्य सङ्गम्य द्रुमादिभिर्जघ्नुः। कान्। सीताया अभिमर्शेन हतं मङ्गलं यस्य स रावण ईशो येषां तान्॥ २० ॥

રઘુપતિ શ્રીરામચન્દ્રજીના તે અંગદાદિ સર્વ સેનાપતિઓએ રાવણનું હાથી વગેરેથી યુક્ત જે '**वरूथम्**' સૈન્ય હતું, તેમાં દ્વન્દ્વયુદ્ધ જેમ થાય તેમ '**अभिपत्य**' સામા થઈ, વૃક્ષો વગેરેથી માર્યા. કોને માર્યા? સીતાજીનો સ્પર્શ કરવાથી નાશ પામ્યું છે મંગળ જેનું તે રાવણ જેમનો સ્વામી છે, તેમને (માર્યા). ॥ ૨૦ ॥

रक्षःपतिः स्वबलनष्टिमवेक्ष्य रुष्ट
आरुह्य यानकमथाभिससार रामम् ।
स्वःस्यन्दने द्युमति मातलिनोपनीते
विभ्राजमानमहनन्निशितैः क्षुरप्रैः ॥ २१

આમ, પોતાના સૈન્યનો નાશ થતો જોઈ રાક્ષસરાજ રાવણ ક્રોધિત થઈ વિમાનમાં બેસી શ્રીરામચન્દ્રજીની સામે ધસ્યો અને માતલિ (સારથિ) દ્વારા લાવવામાં આવેલા તેજસ્વી સ્વર્ગીય રથમાં પ્રકાશમાન થતા શ્રીરામચન્દ્રજી ઉપર તીક્ષ્ણ બાણોથી પ્રહાર કરવા લાગ્યો. ॥ ૨૧ ॥

स्वबलस्य नष्टिं नाशमवेक्ष्य रुष्टः क्रुद्धः सन् यानकं पुष्पकं विमानं रथं वारुह्य श्रीराममभिससार। अथ तं स्वःस्यन्दने स्वर्गस्थे इन्द्रस्य रथे मातलिनेन्द्रसारथिनोपनीते द्युमति दीप्तियुक्ते विभ्राजमानमहनदहन्॥ २१॥

પોતાની સેનાનો '**नष्टिम्**' નાશ જોઈને '**रुष्टः**' ક્રોધિત થઈ '**यानकम्**' પુષ્પક વિમાન કે રથમાં બેસીને રાવણ શ્રીરામની સામે ધસ્યો પછી તે શ્રીરામને '**स्वःस्यन्दने**' સ્વર્ગમાં રહેતા ઈન્દ્રના રથમાં, ઈન્દ્રના સારથિ માતલિ દ્વારા લાવવામાં આવેલા '**द्युमति**' દીપ્તિમાન રથમાં પ્રકાશમાન થતા શ્રીરામ ઉપર '**अहनत्**' પ્રહાર કરવા લાગ્યો.॥૨૧॥ ('**अहन्**' રૂપ થાય.)

रामस्तमाह पुरुषादपुरीष यन्नः
कान्ताऽसमक्षमसतापहृता श्ववत् ते।
त्यक्तत्रपस्य फलमद्य जुगुप्सितस्य
यच्छामि काल इव कर्तुरलङ्घ्यवीर्यः॥ २२

શ્રીરામે તેને કહ્યું: હે અધમ રાક્ષસ, અમારી અનુપસ્થિતિમાં કૂતરાની જેમ આવીને દુષ્ટાત્મા એવા તારા દ્વારા જે કારણે અમારી પત્નીનું હરણ કરવામાં આવ્યું છે, તેથી જેના પરાક્રમનું ઉલ્લંઘન ન થઈ શકે તેવા કાળ જેવો હું, લાજશરમ છોડી દેનાર (નિર્લજ્જ) અને ઘૃણાસ્પદ કર્મ કરનાર એવા તને આજે ફળ આપું છું.॥૨૨॥

हे पुरुषादपुरीष राक्षसपुरीषप्राय, यद्यस्माद–पहृता। श्ववत् श्वा यथा असमक्षं गृहं प्रविश्य किमपि हरति तद्वत्। तस्माज्जुगुप्सितस्य कर्मणः कर्तुस्तेऽद्य काल इवालङ्घ्यवीर्योऽहं फलं यच्छामि। अधर्मकर्तुः पुंसः कालो यथा यच्छतीति वा॥ २२॥

'**हे पुरुषादपुरीष**' હે રાક્ષસની વિષ્ઠા!'**यत्**' જે કારણે (પત્ની) હરણ કરવામાં આવી છે– '**श्ववत्**' શ્વાન જેમ ગેરહાજરીમાં ઘરમાં પ્રવેશીને કંઈ પણ લઈ જાય તેની જેમ– તેથી ઘૃણાસ્પદ કર્મ '**कर्तुः**' કરનારને, તને આજે કાળ જેવો, ઉલ્લંઘન ન થઈ શકે તેવા પરાક્રમવાળો હું ફળ આપું છું. અથવા અધર્મ કરનાર પુરુષને જેમ કાળ ફળ આપે છે તેમ.॥૨૨॥

एवं क्षिपन् धनुषि संधितमुत्ससर्ज
बाणं स वज्रमिव तद्धृदयं बिभेद।
सोऽसृग् वमन् दशमुखैर्न्यपतद् विमाना–
द्धाहेति जल्पति जने सुकृतीव रिक्तः॥ २३

આમ, તિરસ્કાર કરતા શ્રીરામે ધનુષ્યમાં સાંધેલું વજ્ર જેવું બાણ છોડ્યું. તે બાણે તેનું હૃદય ચીરી નાખ્યું. દશ મુખથી રક્તનું વમન કરતો તે રાવણ, પુણ્ય ક્ષીણ થતાં પુણ્યશાળી મનુષ્ય (સ્વર્ગમાંથી પૃથ્વી પર નીચે) પડે તેમ, (પુષ્પક) વિમાન ઉપરથી, જનસમુદાય હાહાકાર કરતો હતો ત્યારે (નીચે) પડ્યો.॥૨૩॥

रिक्तः क्षीणपुण्यः सुकृती विमानादिव विमानात्पुष्पकान्न्यपतदिति वा॥ २३॥

'**रिक्तः**' જેનું પુણ્ય ક્ષીણ થયું છે તેવો પુણ્યશાળી (સ્વર્ગમાંથી નીચે પડે તેમ) '**विमानात् इव**' પુષ્પક વિમાનમાંથી રાવણ નીચે પડ્યો અથવા (રથમાં બેઠો હોય તો) વિમાનમાંથી નીચે પડે તેમ પડ્યો.॥૨૩॥

राक्षसस्त्रीणां विलापमाह—**तत इति** पञ्चभिः।

ततो निष्क्रम्य लङ्काया यातुधान्यः सहस्रशः।
मन्दोदर्या समं तस्मिन् प्ररुदत्य उपाद्रवन्॥ २४

मन्दं स्वल्पमुदरं यस्यास्तया रावणभार्यया सह॥ २४॥

स्वान् स्वान् बन्धून् परिष्वज्य लक्ष्मणेषुभिरर्दितान्।
रुरुदुः सुस्वरं दीना घ्नन्त्य आत्मानमात्मना॥ २५

॥ २५॥

हा हताः स्म वयं नाथ लोकरावण रावण।
कं यायाच्छरणं लङ्का त्वद्विहीना परार्दिता॥ २६

परैरर्दिता पीडिता॥ २६॥

नैवं वेद महाभाग भवान् कामवशं गतः।
तेजोऽनुभावं सीताया येन नीतो दशामिमाम्॥ २७

॥ २७॥

कृतैषा विधवा लङ्का वयं च कुलनन्दन।
देहः कृतोऽन्नं गृध्राणामात्मा नरकहेतवे॥ २८

गृध्राणामन्नं भक्ष्यः। नरकहेतवे नरक-भोगाय॥ २८॥

वंशीधरी—'नरकहेतवे' यद्यपि श्रीरामहतस्य—

'ये ये हताश्चक्रधरेण विष्णुना
त्रैलोक्यनाथेन जनार्दनेन।
ते ते गता विष्णुपुरं नरेन्द्राः
क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यः॥'

इत्याद्युक्तेः 'स्वर्गं प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्र-पूताः' इत्युक्तेश्च रावणस्य नरको न सम्भावी तथापि व्यभिचारिणां तदवश्यम्भावद्योतनायेयमुक्तिः।

રાક્ષસોની પત્નીઓના વિલાપનું પાંચ શ્લોકો વડે વર્ણન કરે છે— '**ततः इति।**'

ત્યાર પછી હજારો રાક્ષસીઓ મન્દોદરી સાથે લંકામાંથી નીકળીને (રાવણ પડ્યો હતો) તે સ્થળે કકળતી દોડી ગઈ.॥ ૨૪॥

'**मन्दम्**' અત્યંત અલ્પ ઉદર છે જેનું તે રાવણની ભાર્યા મંદોદરીની સાથે॥ ૨૪॥

લક્ષ્મણનાં બાણોથી હણાયેલા પોતપોતાના સંબંધીઓને ભેટીને પોતાના હાથથી પોતાની છાતીને પીટતી દુઃખિયારી (રાક્ષસીઓ) ઊંચા સ્વરે રડવા લાગી.॥ ૨૫॥ ૨૫॥

હે નાથ, લોકોને રડાવનાર હે રાવણ, અરે રે, અમે મરી ગયાં. શત્રુઓથી પીડાયેલી, તમારા વિનાની લંકા (હવે) કોને શરણે જશે?॥ ૨૬॥

'**परैः अर्दिता**' શત્રુઓથી પીડાયેલી લંકા॥ ૨૬॥

હે મહાભાગ, કામને વશ થયેલા આપે સીતાના તેજનો આવો પ્રભાવ જાણ્યો જ નહીં, કે જેનાથી તમારી આ દશા થઈ.॥ ૨૭॥ ૨૭॥

હે કુલનંદન, (તમારા વડે) આ લંકા અને અમે પણ વિધવા કરવામાં આવ્યાં છીએ. શરીરને ગીધડાંઓનું અન્ન (ભક્ષ્ય) અને આત્માને નરકભોગ માટે (તૈયાર કર્યાં છે).॥ ૨૮॥

ગીધડાંઓનું '**अन्नम्**' ખાવા યોગ્ય અન્ન, '**नरकहेतवे**' નરકભોગ માટે॥ ૨૮॥

જો કે શ્રીરામ દ્વારા હણાયેલાને નરક ન પ્રાપ્ત થાય, ત્રિલોકના નાથ, જનાર્દન ચક્રધારી વિષ્ણુ દ્વારા જે જે રાજાઓ હણાયા છે તે તે વિષ્ણુપુરીમાં ગયા છે. દેવાધિદેવ વિષ્ણુનો ક્રોધ પણ વરદાનતુલ્ય છે, વગેરે કહેવાયું છે. વળી, (ભગવતીના) શસ્ત્રથી હણાવાને લીધે પવિત્ર થયેલા શત્રુઓ પણ સ્વર્ગને પામે (દુર્ગા-સપ્તશતી ૪/૧૯). એમ કહેવાયું હોવાથી રાવણને માટે નરક ન સંભવે, તેમ છતાં પણ વ્યભિચારીઓને અવશ્ય થનારું થવાનું જ છે, એમ દર્શાવવા માટે આ ઉક્તિ છે.

श्रीशुक उवाच

स्वानां विभीषणश्चक्रे कोसलेन्द्रानुमोदितः।
पितृमेधविधानेन यदुक्तं साम्परायिकम्॥ २९

सांपरायिकमौर्ध्वदेहिकम्॥ २९॥

ततो ददर्श भगवानशोकवनिकाश्रमे।
क्षामां स्वविरहव्याधिं शिंशपामूलमास्थिताम्॥ ३०

॥ ३०॥

रामः प्रियतमां भार्यां दीनां वीक्ष्यान्वकम्पत।
आत्मसंदर्शनाह्लादविकसन्मुखपङ्कजाम्॥ ३१

आत्मनः स्वस्य संदर्शनेन य आह्लादस्तेन विकसन्मुखपङ्कजं यस्यास्ताम्॥ ३१॥

आरोप्यारुरुहे यानं भ्रातृभ्यां हनुमद्युतः।
विभीषणाय भगवान् दत्त्वा रक्षोगणेशताम्॥ ३२

लङ्कामायुश्च कल्पान्तं ययौ चीर्णव्रतः पुरीम्।
अवकीर्यमाणः कुसुमैर्लोकपालार्पितैः पथि॥ ३३

यानं पुष्पकम्। भ्रातृभ्यां लक्ष्मणसुग्रीवाभ्याम् ॥ ३२॥

अन्वि.—भ्रातृभ्यां लक्ष्मणसुग्रीवाभ्यां सह सख्युरपि भ्रातृत्वात्।

आयुश्च दत्त्वा तेनापि सहैव ययौ॥ ३३॥

वंशीधरी—कल्पान्तं यावत्कल्पम्। 'स कल्पो यत्र मनवश्चतुर्दश विशांपते।' इत्युक्तेर्ब्रह्मैकदिन जीविनं चकारेत्यर्थः।

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – કોશલાધીશ ભગવાન (શ્રીરામચન્દ્રજી) દ્વારા આજ્ઞા પામેલા વિભીષણે પિતૃયજ્ઞના વિધાન પ્રમાણે શાસ્ત્રમાં જેમ કહ્યું છે તેમ સ્વજનોનું (ભાવિદેહ પ્રાપ્ત કરવા યોગ્ય) પ્રેતકર્મ કર્યું.॥ ૨૯॥

'સામ્પરાયિકમ્' ભાવિ દેહ પ્રાપ્ત કરવા યોગ્ય પ્રેતકર્મ॥ ૨૯॥

ત્યાર પછી ભગવાન શ્રીરામે અશોકવનના આશ્રમમાં અશોકવૃક્ષની નીચે બેઠેલાં, પોતાના વિરહના વ્યાધિવાળાં અને દુર્બળ થઈ ગયેલાં (સીતાજી)ને જોયાં.॥ ૩૦॥ ૩૦॥

પોતાના દર્શનના આનંદથી ખીલતા મુખકમળવાળાં, પ્રિયતમા, ભાર્યા સીતાને દીન જોઈને શ્રીરામચન્દ્રજી અનુકંપિત થયા.॥ ૩૧॥

'આત્મનઃ' પોતાના દર્શનથી આનંદ, તેનાથી ખીલતું મુખકમળ છે જેમનું તેમને॥ ૩૧॥

વિભીષણને રાક્ષસગણનું સ્વામિત્વ, લંકાપુરી અને કલ્પપર્યન્ત આયુષ્ય આપી, (પિતાની આજ્ઞારૂપી) વ્રતનું અનુષ્ઠાન કરી ભગવાન શ્રીરામ સીતાજીને (પુષ્પક) વિમાનમાં બેસાડી, રસ્તામાં લોકપાલો દ્વારા અર્પણ કરાતાં પુષ્પો વડે આચ્છાદિત થતા, ભાઈઓ અને હનુમાનજી સહિત અયોધ્યાપુરીમાં પધાર્યા.॥ ૩૨॥ ૩૩॥

'યાનમ્' પુષ્પક વિમાનમાં **'ભાતૃભ્યામ્'** લક્ષ્મણ અને સુગ્રીવની સાથે॥ ૩૨॥

'ભ્રાતૃભ્યામ્' લક્ષ્મણ અને સુગ્રીવની સાથે સુગ્રીવ સખા હોવા છતાં ભાઈ સમાન હોવાથી (**'ભ્રાતૃભ્યામ્'** કહ્યું છે). (રાજ્ય) અને આયુષ્ય આપીને, તે વિભીષણની સાથે જ ગયા.॥ ૩૩॥

'કલ્પાન્તમ્' કલ્પપર્યન્ત– જ્યાં ચૌદ મન્વન્તરનો સમય તે એક કલ્પ, એમ કહેવાયું છે. એટલે બ્રહ્માજીના એક દિવસનું જીવન એમ 'ચ'કારનો અર્થ છે.

उपगीयमानचरितः शतधृत्यादिभिर्मुदा।
गोमूत्रयावकं श्रुत्वा भ्रातरं वल्कलाम्बरम्॥ ३४

महाकारुणिकोऽतप्यज्जटिलं स्थण्डिलेशयम्।
भरतः प्राप्तमाकर्ण्य पौरामात्यपुरोहितैः॥ ३५

पादुके शिरसि न्यस्य रामं प्रत्युद्यतोऽग्रजम्।
नन्दिग्रामात् स्वशिबिराद् गीतवादित्रनिःस्वनैः॥ ३६

વળી, જેમનું ચરિત્ર બ્રહ્માજી વગેરે દ્વારા આનંદપૂર્વક ગવાઈ રહ્યું છે તેવા (શ્રીરામ અયોધ્યા ગયા). (પોતાના) ભાઈ ભરતને ગોમૂત્રમાં રાંધેલા જવ ખાનાર, વલ્કલ વસ્ત્ર પહેરનાર, જટા ધારણ કરનાર અને ભૂમિ પર શયન કરનાર સાંભળીને અતિકરુણાવાન શ્રીરામ (ભારે) દુઃખી થયા. ભરતજી પણ શ્રીરામને આવેલા સાંભળી, તેમની ચરણપાદુકા મસ્તક પર પધરાવી, નગરજનો અને મંત્રીઓ તથા પુરોહિતો સાથે પોતાના નિવાસસ્થાન નંદિગ્રામથી મંગળ ગીતો અને વાજિંત્રોના નાદ સાથે મોટાભાઈ શ્રીરામનું સામૈયું કરવા ગયા.॥ ૩૪॥ ૩૫॥ ૩૬॥

गोमूत्रपक्वयवान्नभोजनम्। भ्रातरं भरतम् ॥ ३४॥ ३५॥

સ્વશિબિરાદ્રામં विनाऽयोध्यामप्रविशन्। स्वस्य वासं यत्र निर्मितवांस्तस्मात्सकाशाद्– गीतादिभिर्युक्तो रामं प्रत्युद्यतोऽभिमुखं ययौ ॥ ३६॥

ગોમૂત્રમાં પકવેલા જવનું અન્ન ભોજન કરનાર ભાઈ ભરતને॥ ૩૪॥ ૩૫॥

રામ વિના અયોધ્યામાં ન પ્રવેશતાં– (ભરતજી) '**स्वशिबिरात्**' પોતાનો નિવાસ જ્યાં બનાવ્યો હતો ત્યાંથી ગીતો વગેરેની સાથે રામનું '**प्रत्युद्यतः**' સામૈયું કરવા ગયા.॥ ૩૬॥

ब्रह्मघोषेण च मुहुः पठद्भिर्ब्रह्मवादिभिः।
स्वर्णकक्षपताकाभिर्हैमैश्चित्रध्वजै रथैः॥ ३७

सदश्वै रुक्मसन्नाहैर्भटैः पुरटवर्मभिः।
श्रेणीभिर्वारमुख्याभिर्भृत्यैश्चैव पदानुगैः॥ ३८

पारमेष्ठ्यान्युपादाय पण्यान्युच्चावचानि च।
पादयोर्न्यपतत् प्रेम्णा प्रक्लिन्नहृदयेक्षणः॥ ३९

पादुके न्यस्य पुरतः प्राञ्जलिर्बाष्पलोचनः।
तमाश्लिष्य चिरं दोर्भ्यां स्नापयन् नेत्रजैर्जलैः॥ ४०

વારંવાર વેદપાઠ કરતા વેદવાદી બ્રાહ્મણોના વેદધ્વનિ, સોનેરી કિનારવાળી પતાકાઓ અને રંગબેરંગી સુવર્ણની ધજાઓવાળા તથા સોનેરી સાજયુક્ત શ્રેષ્ઠ અશ્વોવાળા અને સુર્વણના કવચવાળા યોદ્ધાઓથી યુક્ત રથો, શ્રેષ્ઠીઓ, શ્રેષ્ઠ વારાંગનાઓ, સેવકો અને પગપાળા અનુચરો સાથે તથા રાજાને છાજે તેવી (છત્ર, ચામરાદિ) નાની-મોટી બહુમૂલ્ય ભેટો લઈને, પ્રેમથી દ્રવી ગયેલાં હૃદય અને નેત્રવાળા ભરતજી શ્રીરામચન્દ્રજીના ચરણોમાં પડી ગયા. તેમની પાદુકા પધરાવી અશ્રુભર્યાં નેત્રવાળા, અંજલિ બદ્ધ થયેલા તે ભરતજીને (શ્રીરામે) બંને બાહુઓથી ઘણી વાર સુધી ભેટી નેત્રજળથી સ્નાન કરાવી દીધું. ॥ ૩૭॥ ૩૮॥ ૩૯॥ ૪૦॥

ब्रह्मघोषेण महता घोषेण पठद्भिः। स्वर्ण-रसाक्ताः कक्षाः प्रान्ता यासां ताभिः पताकाभिः। हैमैरिति चत्वारि रथविशेषणानि॥ ३७॥ ३८॥

पारमेष्ठ्यानि राजार्हाणि छत्रचामरादीनि। प्रेम्णा प्रक्लिन्नं हृदयमीक्षणे च नेत्रे यस्य॥ ३९॥

नेत्रजैर्जलैः स्नापयन्नाश्लिष्य॥ ४०॥

रामो लक्ष्मणसीताभ्यां विप्रेभ्यो येऽर्हसत्तमाः।
तेभ्यः स्वयं नमश्चक्रे प्रजाभिश्च नमस्कृतः॥ ४१

येऽर्हसत्तमाः कुलवृद्धास्तेभ्योऽपि नमनं चक्रे॥ ४१॥

धुन्वन्त उत्तरासङ्गान् पतिं वीक्ष्य चिरागतम्।
उत्तराः कोसला माल्यैः किरन्तो ननृतुर्मुदा॥ ४२

॥ ४२॥

अयोध्याप्रवेशप्रकारमाह—**पादुके** इति सार्धैस्त्रिभिः।

पादुके भरतोऽगृह्णाच्चामरव्यजनोत्तमे।
विभीषणः ससुग्रीवः श्वेतच्छत्रं मरुत्सुतः॥ ४३

॥ ४३॥

धनुर्निषङ्गान् शत्रुघ्नः सीता तीर्थकमण्डलुम्।
अबिभ्रदङ्गदः खड्गं हैमं चर्मर्क्षराण् नृप॥ ४४

'**ब्रह्मघोषेण**' મોટા અવાજથી વેદપાઠ કરતા (વેદવાદી બ્રાહ્મણો) સાથે, સુવર્ણના રસથી રંગેલી '**कक्षाः**' કિનારીઓ છે જેમની, તે પતાકાઓવાળા રથો સાથે– '**हैमैः**' એમ રથનાં ચાર વિશેષણો છે.॥ ૩૭॥ ૩૮॥

'**पारमेष्ठ्यानि**' રાજાને છાજે તેવાં છત્ર, ચામર વગેરે, પ્રેમથી દ્રવી ગયાં છે હૃદય અને નેત્રો જેમનાં તે ભરતજી ॥ ૩૯॥

નેત્રમાંથી નીકળેલાં અશ્રુજળથી (પ્રથમ ભેટીને પછી) સ્નાન કરાવતા (રામજીએ પૂજ્યોને નમન કર્યાં).॥ ૪૦॥

લક્ષ્મણ અને સીતાજીની સાથે સ્વયં ભગવાન શ્રીરામે બ્રાહ્મણોને અને કુળના જે અત્યંત પૂજનીય વૃદ્ધજનો હતા તેમને નમસ્કાર કર્યા તથા પ્રજાજનો દ્વારા પણ તે સર્વને નમસ્કાર કરવામાં આવ્યા.॥ ૪૧॥

'**अर्हसत्तमाः**' અત્યંત પૂજનીય એવા જે કુળના વૃદ્ધજનો હતા, તેમને પણ શ્રીરામે નમસ્કાર કર્યા.॥ ૪૧॥

(પોતાના) રાજાને ઘણા સમય પછી આવેલા જોઈને ઉત્તરકોશલ દેશના લોકો પોતાનું ઉત્તરીય વસ્ત્ર ફરકાવતા અને પુષ્પો વેરતા (વધાવતા) આનંદથી નાચવા લાગ્યા.॥ ૪૨॥ ૪૨॥

અયોધ્યામાં કેવી રીતે પ્રવેશ્યા, તે સાડાત્રણ શ્લોકો વડે કહે છે— '**पादुके इति।**'

હે નૃપ પરીક્ષિત, ભરતજીએ (શ્રીરામચન્દ્રજીની) પાદુકાઓ લીધી હતી. વિભીષણે સુગ્રીવ સાથે શ્રેષ્ઠ ચામર અને શ્રેષ્ઠ વીંઝણો લીધાં હતાં. પવનસુત હનુમાનજીએ (ભગવાનની ઉપર) શ્વેત છત્ર ધર્યું હતું.॥ ૪૩॥ ૪૩॥

શત્રુઘ્ને ધનુષ્ય અને ભાથાં, સીતાજીએ તીર્થજળનું કમંડળ, અંગદે સોનાની તલવાર અને ઋક્ષરાજ જામ્બવાને ઢાલ લીધાં હતાં.॥ ૪૪॥

धनुश्च निषङ्गौ च तान्। ऋक्षराट् जाम्बवान् ॥ ४४ ॥

पुष्पकस्थोऽन्वितः स्त्रीभिः स्तूयमानश्च वन्दिभिः।
विरेजे भगवान् राजन् ग्रहैश्चन्द्र इवोदितः॥ ॥ ४५ ॥ ॥ ४५ ॥

भ्रातृभिर्नन्दितः सोऽपि सोत्सवां प्राविशत् पुरीम्।
प्रविश्य राजभवनं गुरुपत्नीः स्वमातरम्॥ ॥ ४६ ॥
गुरून् वयस्यावरजान् पूजितः प्रत्यपूजयत्।
वैदेही लक्ष्मणश्चैव यथावत् समुपेयतुः॥ ४७

गुरुपत्नीः कैकेय्याद्याः॥ ४६ ॥

वयस्यानवरजांश्च। यथावदनुक्रमेण समुपेयतुः ॥ ४७ ॥

पुत्रान् स्वमातरस्तास्तु प्राणांस्तन्व इवोत्थिताः।
आरोप्याङ्केऽभिषिञ्चन्त्यो बाष्पौघैर्विजहुः शुचः॥ ॥ ४८ ॥

बाष्पौघैरभिषिञ्चन्त्यः शुचः शोकान्विजहुः। शेषं स्पष्टम्॥ ४८ ॥

जटा निर्मुच्य विधिवत् कुलवृद्धैः समं गुरुः।
अभ्यषिञ्चद् यथैवेन्द्रं चतुःसिन्धुजलादिभिः॥ ४९ ॥ ४९ ॥

एवं कृतशिरःस्नानः सुवासाः स्त्रग्व्यलङ्कृतः।
स्वलङ्कृतैः सुवासोभिर्भ्रातृभिर्भार्यया बभौ॥ ॥ ५० ॥ ॥ ५० ॥

ધનુષ્ય અને ભાથાં, તેમને (શત્રુઘ્ને લીધાં.), **'ऋक्षराट्'** રીંછોના રાજા જામ્બવાને ॥ ૪૪ ॥

હે રાજા, સ્ત્રીઓથી વીંટાયેલા, બંદીજનો દ્વારા સ્તુતિ કરાતા, પુષ્પક વિમાનમાં વિરાજેલા ભગવાન શ્રીરામચન્દ્રજી ગ્રહો સાથે ઉદય પામેલા ચન્દ્રની જેમ શોભતા હતા. ॥ ૪૫ ॥ ૪૫ ॥

ભાઈઓ દ્વારા સત્કાર પામેલા તે શ્રીરામચન્દ્રજી પણ ઉત્સવોથી યુક્ત એવી અયોધ્યા નગરીમાં પધાર્યા. રાજભવનમાં પ્રવેશી (કૈકેયી વગેરે) અપરમાતાઓનું તથા પોતાની માતાનું, ગુરુજનોનું, મિત્રોનું તથા પોતાનાથી નાનાંઓનું અનુક્રમે સન્માન કર્યું તેમ જ પોતે પણ સન્માનિત થયા. વૈદેહી અને લક્ષ્મણે પણ સૌનું યથાયોગ્ય સન્માન કર્યું. ॥ ૪૬ ॥ ૪૭ ॥

'गुरुपत्नीः' કૈકેયી વગેરે અપરમાતાઓનું ॥ ૪૬ ॥

મિત્રો અને પોતાનાથી નાનાંઓનું **'यथावत्'** અનુક્રમે સમ્માન કર્યું. ॥ ૪૭ ॥

(મૂર્છા પામેલાં) શરીરો જેમ પ્રાણ આવતાં ઊઠે તેમ તે કૌશલ્યાદિ પોતાની માતાઓ, પુત્રોને આવેલા જોઈ ઊભી થઈ અને ખોળામાં બેસાડી હર્ષાશ્રુધારાથી અભિષેક કરતી તેમણે શોકનો ત્યાગ કર્યો. ॥ ૪૮ ॥

હર્ષાશ્રુધારાઓથી અભિષેક કરતી (તેમણે) **'शुचः'** શોકનો ત્યાગ કર્યો. શેષ સ્પષ્ટ છે. ॥ ૪૮ ॥

કુળના વૃદ્ધજનો સાથે ગુરુ વસિષ્ઠે શ્રીરામચન્દ્રજીની જટા વિધિસર ઊતરાવી અને (ઋષિઓએ) ઈન્દ્રનો અભિષેક થાય તેમ જ ચાર સમુદ્રોનાં જળ (તથા ગંગાજળ, યમુનાજળ) વગેરેથી (શ્રીરામનો) અભિષેક કર્યો. ॥ ૪૯ ॥ ૪૯ ॥

આમ, (રાજ્યાભિષેક સમયે) જેમણે શિરઃસ્નાન કર્યું તેવા સુંદર વસ્ત્રો, પુષ્પમાળા અને અલંકાર ધારણ કરેલા શ્રીરામચન્દ્રજી સુંદર વસ્ત્રોથી સુંદર રીતે અલંકૃત થયેલા ભાઈઓ તથા ભાર્યા (સીતાજી) સાથે શોભતા હતા. ॥ ૫૦ ॥ ૫૦ ॥

अग्रहीदासनं भ्रात्रा प्रणिपत्य प्रसादितः।
प्रजाः स्वधर्मनिरता वर्णाश्रमगुणान्विताः।
जुगोप पितृवद् रामो मेनिरे पितरं च तम्॥ ५१
॥ ५१ ॥

ભાઈ ભરતજી દ્વારા (ચરણોમાં) પડીને પ્રણામ કરવામાં આવ્યા. પ્રસન્ન થયેલા શ્રીરામચન્દ્રજીએ રાજસિંહાસનનો સ્વીકાર કર્યો. સ્વધર્મમાં તત્પર અને વર્ણાશ્રમધર્મના ગુણવાળા પ્રજાજનોનું શ્રીરામે પિતાની જેમ પાલન કર્યું અને પ્રજાજનો પણ તેમને પિતા માનતા હતા. ॥ ૫૧ ॥ ૫૧ ॥

त्रेतायां वर्तमानायां कालः कृतसमोऽभवत्।
रामे राजनि धर्मज्ञे सर्वभूतसुखावहे॥ ५२
॥ ५२ ॥

સર્વ પ્રાણીઓને સુખ આપનારા, ધર્મજ્ઞાની શ્રીરામચન્દ્રજી રાજા હતા ત્યારે ત્રેતાયુગનો સમય ચાલતો હતો, તે સત્યયુગ સમાન થયો હતો. ॥ ૫૨ ॥ ૫૨ ॥

वनानि नद्यो गिरयो वर्षाणि द्वीपसिन्धवः।
सर्वे कामदुघा आसन् प्रजानां भरतर्षभ॥ ५३
॥ ५३ ॥

હે ભરતશ્રેષ્ઠ પરીક્ષિત, (શ્રીરામચન્દ્રજી રાજા હતા ત્યારે) વનો, નદીઓ, પર્વતો, ખંડો, બેટો અને સમુદ્રો— એ સર્વે પ્રજાની કામનાઓ પૂર્ણ કરનારાં થયાં હતાં. ॥ ૫૩ ॥ ૫૩ ॥

नाधिव्याधिजराग्लानिदुःखशोकभयक्लमाः ।
मृत्युश्चानिच्छतां नासीद् रामे राजन्यधोक्षजे॥
॥ ५४ ॥ ५४ ॥

ઈન્દ્રિયાતીત ભગવાન રામ રાજા હતા ત્યારે માનસિક ચિન્તા, શારીરિક રોગ, ઘડપણ, ગ્લાનિ, દુઃખ, શોક, ભય કે શ્રમ (થાક) ન હતાં. મૃત્યુની ઈચ્છા ન હોય તેમને માટે મૃત્યુ પણ ન હતું. ॥ ૫૪ ॥ ૫૪ ॥

एकपत्नीव्रतधरो राजर्षिचरितः शुचिः।
स्वधर्मं गृहमेधीयं शिक्षयन् स्वयमाचरन्॥ ५५
॥ ५५ ॥

એકપત્નીવ્રત ધારણ કરનારા, રાજા હોવા છતાં ઋષિઓના જેવા ચરિત્રવાળા, પવિત્ર, ગૃહસ્થો દ્વારા અનુષ્ઠાન કરવા યોગ્ય ધર્મનું શિક્ષણ આપતા, સ્વયં પણ (ધર્મનું) અનુષ્ઠાન કરતા હતા. ॥ ૫૫ ॥ ૫૫ ॥

प्रेम्णाऽनुवृत्त्या शीलेन प्रश्रयावनता सती।
धिया ह्रिया च भावज्ञा भर्तुः सीताहरन्मनः॥ ५६
॥ ५६ ॥

વિનયને કારણે વિનમ્ર અને પતિના અભિપ્રાયને જાણનારાં સતી સીતાજીએ પ્રેમથી, સેવાથી, ચારિત્ર્યથી, (સૂક્ષ્મ) બુદ્ધિથી અને લજ્જાથી પતિનું મન હરી લીધું હતું. ॥ ૫૬ ॥ ૫૬ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे रामचरिते दशमोऽध्यायः॥ १०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां दशमोऽध्यायः॥ १०॥

❋❋❋❋❋

अथैकादशोऽध्यायः

ભગવાન શ્રીરામની શેષ લીલાઓનું વર્ણન

ततश्चैकादशेऽयोध्यामावसन्ननुजैः सह।
यज्ञादि यच्चकारेशो रामस्तदनुवर्ण्यते॥ १ ॥

ત્યાર પછી અગિયારમા અધ્યાયમાં, પોતાના નાના ભાઈઓ સાથે અયોધ્યામાં વસતા ભગવાન શ્રીરામચન્દ્રજીએ જે યજ્ઞાદિ કર્યા તે વર્ણવવામાં આવે છે.॥ ૧ ॥

श्रीशुक उवाच

भगवानात्मनाऽऽत्मानं राम उत्तमकल्पकैः।
सर्वदेवमयं देवमीज आचार्यवान् मखैः॥ १ ॥ १ ॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — જેમના કુલાચાર્ય ગુરુ વસિષ્ઠ હતા તેવા ભગવાન શ્રીરામચન્દ્રજીએ ઉત્તમ સામગ્રીઓથી યુક્ત યજ્ઞો દ્વારા પોતે પોતાના જ સર્વદેવમય સ્વરૂપનું યજન કર્યું.॥ ૧ ॥ ૧ ॥

होत्रेऽददाद् दिशं प्राचीं ब्रह्मणे दक्षिणां प्रभुः।
अध्वर्यवे प्रतीचीं च उदीचीं सामगाय सः॥ २ ॥ २ ॥

પ્રભુ શ્રીરામચન્દ્રે હોતાને પૂર્વ દિશા, બ્રહ્મા (થયેલા ઋત્વિજો)ને દક્ષિણ દિશા, અધ્વર્યુને પશ્ચિમ દિશા તથા સામગાન કરનારને ઉત્તર દિશા આપી હતી.॥ ૨ ॥ ૨ ॥

आचार्याय ददौ शेषां यावती भूस्तदन्तरा।
मन्यमान इदं कृत्स्नं ब्राह्मणोऽर्हति निःस्पृहः॥ ३

નિઃસ્પૃહ બ્રાહ્મણ (જ) સંપૂર્ણ ભૂમંડળને યોગ્ય છે, એમ માનતા શ્રીરામચન્દ્રે તે દિશાઓની વચ્ચે જેટલી ભૂમિ બાકી હતી તેટલી ભૂમિ આચાર્યને આપી.॥ ૩ ॥

तदन्तरा तासां दिशां मध्ये यावती भूस्तां ब्राह्मण एवार्हतीति मन्यमानः॥ ३ ॥

'तत्-अन्तरा' તે દિશાઓની વચ્ચે જેટલી ભૂમિ છે તેને યોગ્ય બ્રાહ્મણ જ છે, એમ માનતા શ્રીરામચન્દ્રજીએ ॥ ૩ ॥

इत्ययं तदलङ्कारवासोभ्यामवशेषितः।
तथा राज्ञ्यपि वैदेही सौमङ्गल्यावशेषिता॥ ४

આમ, (દાન કરવાથી) તે સમયે (શરીર ઉપર ધારણ કરેલાં) અલંકાર અને વસ્ત્રો જ જેમની પાસે બાકી રહ્યાં હતાં તેવા આ (શ્રીરામ) હતા અને સામ્રાજ્ઞી હોવા છતાં (શરીર ઉપર ધારણ કરેલાં સૌભાગ્યનાં) માંગલિક વસ્ત્રાભૂષણ જેમની પાસે બાકી રહ્યાં હતાં તેવાં વૈદેહી હતાં.॥ ૪ ॥

अयं श्रीरामः। तत्तदा। सौमङ्गल्यमाभरणादिकं तावन्मात्रमवशेषितं यस्याः। तद्व्यतिरिक्तं हिरण्यादि सर्वं ददावित्यर्थः॥ ४॥

'अयम्' આ શ્રીરામ, **'तत्'** ત્યારે– માંગલિક વસ્ત્રાભૂષણાદિ (શરીર પર ધારણ કર્યાં હતાં) તેટલાં જ માત્ર બાકી રહ્યાં હતાં જેમનાં, તે સિવાયનું સુવર્ણ વગેરે સર્વ આપી દીધું હતું, એમ અર્થ છે.॥ ૪ ॥

ते तु ब्रह्मण्यदेवस्य वात्सल्यं वीक्ष्य संस्तुतम्।
प्रीताः क्लिन्नधियस्तस्मै प्रत्यर्प्येदं बभाषिरे॥ ५ ॥ ५ ॥

બ્રાહ્મણભક્ત શ્રીરામચન્દ્રજીનું (સમસ્ત ભૂમંડળનું દાન કરવાના લક્ષણવાળું ઔદાર્યપૂર્ણ) અતિ પ્રશંસિત વાત્સલ્ય જોઈ પ્રસન્ન થયેલા અને પ્રેમથી દ્રવિત થયેલા ચિત્તવાળા તે ભૂદેવોએ તેમને તે સર્વ પાછું આપીને આ પ્રમાણે કહ્યું. ॥ ૫ ॥ ૫ ॥

अप्रत्तं नस्त्वया किं नु भगवन् भुवनेश्वर।
यन्नोऽन्तर्हृदयं विश्य तमो हंसि स्वरोचिषा॥ ६

હે ભગવાન, હે ભુવનેશ્વર, આપે અમને શું નથી આપ્યું? (આપે અમને સર્વ કાંઈ આપ્યું છે.) કારણ કે આપ અમારા હૃદયની અંદર પ્રવેશીને સ્વપ્રકાશથી અમારા અજ્ઞાનરૂપ અંધકારનો નાશ કરો છો. ॥ ૬ ॥

किमप्रत्तं किमदत्तम्। सर्वं दत्तमित्यर्थः। विश्य प्रविश्य॥ ६॥

'किम्-अप्रत्तम्' શું નથી આપ્યું? સર્વ કાંઈ આપ્યું છે, એમ અર્થ છે. **'विश्य'** પ્રવિષ્ટ થઈને ॥ ૬ ॥

नमो ब्रह्मण्यदेवाय रामायाकुण्ठमेधसे।
उत्तमश्लोकधुर्याय न्यस्तदण्डार्पिताङ्घ्रये॥ ७

બ્રાહ્મણો જેમના ઈષ્ટદેવ છે તેમને નમસ્કાર. અસ્ખલિત જ્ઞાનવાળા શ્રીરામસ્વરૂપને નમસ્કાર. પવિત્ર કીર્તિવાળા જનોમાં શ્રેષ્ઠ (એવા આપ)ને નમસ્કાર. (પ્રાણીમાત્રના સુહૃદ એવા) મુનિઓ દ્વારા ચિત્તમાં જેમનાં ચરણો સ્થાપવામાં આવ્યાં છે તેમને નમસ્કાર હો. ॥ ૭ ॥

न्यस्तदण्डैर्मुनिभिरर्पितौ चित्ते न्यस्तावङ्घ्री यस्य तस्मै। तेष्वर्पितावङ्घ्री येनेति वा॥ ७॥

દંડ ધારણ કરનાર મુનિઓ દ્વારા પોતાના ચિત્તમાં સ્થાપવામાં આવ્યા છે જેમના બંને ચરણ તેમને (નમસ્કાર) અથવા તે મુનિજનોનાં ચિત્તમાં જેમણે પોતાનાં બંને ચરણો પધરાવ્યા છે તેમને નમસ્કાર. ॥ ૭ ॥

कदाचिल्लोकजिज्ञासुर्गूढो रात्र्यामलक्षितः।
चरन् वाचोऽशृणोद् रामो भार्यामुद्दिश्य कस्यचित्॥ ॥ ८ ॥ ८ ॥

એક વખત લોકચર્યા જાણવાની ઈચ્છાવાળા શ્રીરામચન્દ્રજીએ ગુપ્ત વેશે કોઈ જાણે નહીં તેમ રાત્રે વિચરણ કરતાં, પત્નીને ઉદ્દેશીને કહેવાતા કોઈ (પુરુષ)નાં વચનો સાંભળ્યાં. ॥ ૮ ॥ ૮ ॥

नाहं बिभर्मि त्वां दुष्टामसतीं परवेश्मगाम्।
स्त्रीलोभी बिभृयात् सीतां रामो नाहं भजे पुनः॥ ९ ॥ ९ ॥

'પારકા ઘરમાં રહીને આવેલી, વ્યભિચારિણી, દુષ્ટા એવી તને હું નહીં રાખું (એ તો) સ્ત્રીલોભી રામ સીતાને રાખે, હું તને ફરી ન રાખું.' ॥ ૯ ॥ ૯ ॥

इति लोकाद् बहुमुखाद् दुराराध्यादसंविदः।
पत्या भीतेन सा त्यक्ता प्राप्ता प्राचेतसाश्रमम्॥ १०

આમ, અનેક પ્રકારે બોલનારા, પ્રસન્ન કરવા મુશ્કેલ અને અજ્ઞાની જનો(ના લોકાપવાદ)થી ભય પામેલા પતિ શ્રીરામચન્દ્રજી દ્વારા ત્યજાયેલાં તે સીતાજી વાલ્મીકિ ઋષિના આશ્રમમાં રહેવા લાગ્યાં.॥ ૧૦॥

असंविदोऽज्ञात्। प्राचेतसो वाल्मीकिस्तस्याश्रमं प्राप्ता॥ १०॥

'असंविदः' અજ્ઞાનીથી– **'प्राचेतसः'** વાલ્મીકિ, તેમના આશ્રમમાં રહેવા લાગ્યાં.॥ ૧૦॥

अन्तर्वत्न्यागते काले यमौ सा सुषुवे सुतौ।
कुशो लव इति ख्यातौ तयोश्चक्रे क्रिया मुनिः॥ ११

સગર્ભા એવાં તે સીતાજીએ પ્રસૂતિકાળ આવતાં બે જોડકા પુત્રોને જન્મ આપ્યો હતો. તેઓ કુશ અને લવ નામથી પ્રસિદ્ધ થયા. તે બંનેના જાતકર્માદિ સંસ્કાર વાલ્મીકિ ઋષિએ કર્યા.॥ ૧૧॥

अन्तर्वत्नी गर्भिणी क्रिया जातकर्माद्याः॥ ११॥

'अन्तर्वत्नी' સગર્ભા, **'क्रियाः'** જાતકર્માદિ સંસ્કાર॥ ૧૧॥

अङ्गदश्चित्रकेतुश्च लक्ष्मणस्यात्मजौ स्मृतौ।
तक्षः पुष्कल इत्यास्तां भरतस्य महीपते॥ १२

॥ १२॥

હે પૃથ્વીપતિ, લક્ષ્મણના અંગદ અને ચિત્રકેતુ, એમ બે પુત્રો થયા. ભરતના તક્ષ અને પુષ્કલ, બે પુત્રો થયા.॥ ૧૨॥ ૧૨॥

सुबाहुः श्रुतसेनश्च शत्रुघ्नस्य बभूवतुः।
गन्धर्वान् कोटिशो जघ्ने भरतो विजये दिशाम्॥ १३

॥ १३॥

શત્રુઘ્નના સુબાહુ અને શ્રુતસેન થયા. દિગ્વિજય સમયે ભરતજીએ કરોડો ગંધર્વોનો સંહાર કર્યો હતો.॥ ૧૩॥ ૧૩॥

तदीयं धनमानीय सर्वं राज्ञे न्यवेदयत्।
शत्रुघ्नश्च मधोः पुत्रं लवणं नाम राक्षसम्।
हत्वा मधुवने चक्रे मथुरां नाम वै पुरीम्॥ १४

॥ १४॥

તેઓનું સર્વ ધન લાવીને (ભરતજીએ) રાજા રામને (સેવામાં) નિવેદિત કર્યું હતું. શત્રુઘ્ને મધુના પુત્ર 'લવણ' નામના રાક્ષસને મારીને મધુવનમાં મથુરા નામની નગરી વસાવી હતી.॥ ૧૪॥ ૧૪॥

मुनौ निक्षिप्य तनयौ सीता भर्त्रा विवासिता।
ध्यायन्ती रामचरणौ विवरं प्रविवेश ह॥ १५

॥ १५॥

પતિ દ્વારા નિર્વાસિત કરાયેલાં સીતાજીએ વાલ્મીકિ મુનિને પુત્રો સોંપીને શ્રીરામચન્દ્રજીનાં ચરણોનું ધ્યાન ધરતાં પૃથ્વીના અન્તઃસ્થળમાં પ્રવેશ કર્યો.॥ ૧૫॥ ૧૫॥

तच्छ्रुत्वा भगवान् रामो रुन्धन्नपि धिया शुचः।
स्मरंस्तस्या गुणांस्तांस्तान्नाशक्नोद् रोद्धुमीश्वरः॥
॥ १६॥

તે સાંભળીને બુદ્ધિથી શોકને રોકતા શ્રીરામચન્દ્રજી સીતાજીના તે તે (સૌશીલ્યાદિ) ગુણોનું સ્મરણ કરતાં, ઈશ્વર હોવા છતાં શોકને રોકવા માટે સમર્થ ન હતા.॥ ૧૬॥

ईश्वरोऽपि शुचो रोद्धुं नाशक्नोत्॥ १६॥

ઈશ્વર હોવા છતાં શોકને રોકવા માટે સમર્થ ન હતા.॥ ૧૬॥

स्त्रीपुंप्रसङ्ग एतादृक्सर्वत्र त्रासमावहः।
अपीश्वराणां किमुत ग्राम्यस्य गृहचेतसः॥ १७

न चातिचित्रमेतत्। स्त्रीपुंसोः प्रसङ्ग आसक्तिः त्रासमावहतीति तथा। विभक्तेरलुगार्षः। पाठान्तरं सुगमम्। किमुतेति प्रासङ्गिकोक्तिः॥ १७॥

સમર્થ મનુષ્યોને પણ સ્ત્રી-પુરુષમાં આવી આસક્તિ સર્વ સ્થળે ત્રાસ આપનારી હોય છે, તો ઘરમાં આસક્ત મનવાળા ગૃહસ્થને ત્રાસ આપનારી હોય તેમાં શું કહેવું?॥ ૧૭॥

આ કંઈ બહુ આશ્ચર્યની વાત નથી. સ્ત્રી-પુરુષની '**प्रसंगः**' આસક્તિ ત્રાસ આપનારી હોય છે. '**त्रासम्-आवहः**' સમાસમાં અંદરનાં બધા પદોની વિભક્તિના પ્રત્યયનો લોપ થાય છે, તે રીતે અહીં '**त्रासावहः**' હોવું જોઈએ. અહીં વિભક્તિપ્રત્યયનો લોપ થયો નથી, તે આર્ષ છે. '**सर्वत्रैव भयावहः**' એ પાઠાન્તર સુગમ છે. '**किमुत**' પ્રાસંગિક ઉક્તિ છે.॥ ૧૭॥

तत ऊर्ध्वं ब्रह्मचर्यं धारयन्नजुहोत् प्रभुः।
त्रयोदशाब्दसाहस्रमग्निहोत्रमखण्डितम्॥ १८

अग्निहोत्रमजुहोत्। प्रभुः रामः॥ १८॥

ત્યાર પછી બ્રહ્મચર્ય ધારણ કરતા પ્રભુ શ્રીરામચન્દ્રજીએ તેર હજાર વર્ષ સુધી અખંડરૂપે અગ્નિહોત્ર હોમ કર્યો હતો.॥ ૧૮॥

અગ્નિહોત્ર હોમ કર્યો હતો. '**प्रभुः**' પ્રભુ શ્રીરામચન્દ્રજી॥ ૧૮॥

स्मरतां हृदि विन्यस्य विद्धं दण्डककण्टकैः।
स्वपादपल्लवं राम आत्मज्योतिरगात् ततः॥ १९

आत्मज्योतिर्निजं धाम॥ १९॥

ત્યાર પછી શ્રીરામચન્દ્રજી પોતાનું સ્મરણ કરનારા (ભક્તો)નાં હૃદયમાં, દંડકારણ્યના કંટકોથી વીંધાયેલાં પોતાનાં ચરણપલ્લવ સ્થાપી પોતાના જ્યોતિર્મય ધામમાં પધાર્યા.॥ ૧૮॥

'**आत्मज्योतिः**' પોતાના જ્યોતિર્મય ધામમાં (પધાર્યા.)॥ ૧૯॥

नेदं यशो रघुपतेः सुरयाच्ञयाऽऽत्त-
लीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः।
रक्षोवधो जलधिबन्धनमस्त्रपूगैः
किं तस्य शत्रुहनने कपयः सहायाः॥ २०

દેવોની પ્રાર્થનાથી જેમણે લીલાવિગ્રહનો સ્વીકાર કર્યો છે તથા (જેમના પ્રભાવને સમાન કોઈનો પ્રભાવ નથી, તો અધિક તો કયાંથી જ હોય એવા) અધિક અને સામ્યથી જેમનો પ્રભાવ વિમુક્ત (પર) છે તે રઘુપતિને માટે સમુદ્ર (ઉપર સેતુ) બાંધવો તથા અસ્ત્રોના સમૂહો વડે રાક્ષસોનો નાશ કરવો, એ (સર્વ કર્મ કાંઈ) બહુ મોટા ગૌરવની વાત નથી. તેવા શ્રીરઘુપતિને શત્રુઓનો સંહાર કરવામાં વાનરો સહાયરૂપ થઈ શકે ખરા? (ન જ થઈ શકે, તે કેવળ લીલા જ હતી.)॥ ૨૦॥

जलधिबन्धनमस्त्रपूगैश्च रक्षसां वध इतीदं कविभिराश्चर्यमिव वर्णितमपि यशः स्तुतिर्न भवति। तत्र हेतुः—

સમુદ્ર ઉપર સેતુ બાંધવો તથા અસ્ત્રોના સમૂહો વડે રાક્ષસોનો નાશ કરવો ઈત્યાદિ કર્મ કવિઓ દ્વારા આશ્ચર્યની જેમ વર્ણવાયાં હોવા છતાં તે (સર્વ) શ્રીરઘુપતિ માટે '**यशः**' સ્તુતિ નથી થતી. તે માટેનું કારણ—

अधिकसाम्याभ्यां विमुक्तं धाम प्रभावो यस्य तस्य किं कपयः सहायाः। अतः सुग्रीवाद्याश्रयणं यथा लीलामात्रं तथैवेदमपि। युक्तं चैतदित्याह—सुराणां याच्ञया आत्ता स्वीकृता लीलार्था तनुर्येन तस्य॥ २०॥

અધિક કે સમાનથી વિમુક્ત છે '**धाम**' પ્રભાવ જેમનો. (અર્થાત્ શ્રીરામચન્દ્રજીના પ્રભાવથી કોઈનો પ્રભાવ અધિક કે સમાન પણ નથી.) તે રઘુપતિને વાનરો શું સહાયરૂપ થાય? આથી સુગ્રીવાદિનો આશ્રય જેમ લીલામાત્ર હતો તેમ જ આ પણ (લીલા જ) છે અને એ યોગ્ય જ છે, એમ કહે છે— દેવોની પ્રાર્થનાથી '**आत्ता**' સ્વીકાર કર્યો છે જેમણે લીલાવિગ્રહનો, તે રઘુપતિ માટે॥ ૨૦॥

एवंविधलीलाप्रयोजनं दर्शयन्प्रणमति—

આ પ્રકારે લીલાનું પ્રયોજન દર્શાવતાં પ્રણામ કરે છે–

यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनापि
गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम्।
तं नाकपालवसुपालकिरीटजुष्ट-
पादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये॥ २१

સ્વર્ગના દેવો અને પૃથ્વીનું પાલન કરનારા રાજાઓના મુકુટોથી સેવાયેલાં ચરણકમળવાળા શ્રીરઘુપતિનું શરણ હું ગ્રહણ કરું છું કે જેમનો શ્રેષ્ઠ દિગ્ગજોના પટ્ટારૂપ દિશાઓ સુધી વ્યાપેલો, પાપનાશક, અમલ યશ (માર્કંડેયાદિ ઋષિ-મહર્ષિઓ) આજ સુધી પણ રાજાઓની સભાઓમાં ગાય છે.॥ ૨૧॥

यस्य यशो नृपाणां युधिष्ठिरादीनां सदस्सु ऋषयो मार्कण्डेयादयो गायन्ति। दिगिभेन्द्राणां पट्टवदाभरणरूपम्। तत्पर्यन्तं व्याप्तमित्यर्थः। नाकपाला देवाः। वसुपाला वसुधापालाश्च तेषां किरीटैर्जुष्टं पादाम्बुजं यस्य तं रघुपतिम्।

જેમનો યશ '**नृपाणाम्**' યુધિષ્ઠિર વગેરે રાજાઓની સભામાં '**ऋषयः**' માર્કંડેયાદિ ઋષિઓ ગાય છે. શ્રેષ્ઠ દિગ્ગજોના પટ્ટાની જેમ આભરણરૂપ યશ, ત્યાં સુધી વ્યાપેલો યશ, એમ અર્થ છે. '**नाकपालाः**' દેવો, '**वसुपालाः**' વસુધાનું પાલન કરનારા રાજાઓ, તેમના મુકુટોથી સેવાયેલું ચરણકમળ જેમનું છે તે રઘુપતિનું (શરણ)

पाठान्तरे तत्तस्य रघुपतेर्नाकपालादिभिर्जुष्टं पादाम्बुजं प्रपद्य इत्यर्थः॥ २१॥

પાઠાન્તરમાં '**जुष्टपादाम्बुजं रघुपतिम्**' ને બદલે '**जुष्टं पादाम्बुजं रघुपतेः**' હોય તો, તે રઘુપતિના દેવો વગેરેથી સેવાયેલા ચરણકમળનું શરણ હું ગ્રહણ કરું છું, એમ અર્થ છે.॥ ૨૧॥

**स यैः स्पृष्टोऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोऽपि वा।
कोशलास्ते ययुः स्थानं यत्र गच्छन्ति योगिनः॥
॥ २२॥**

જેમના દ્વારા તે શ્રીરામચન્દ્રજી સ્પર્શ કરવામાં આવ્યા છે, નિહાળવામાં આવ્યા છે, તેમની સમીપ બેસવામાં આવ્યું છે કે તેમનું અનુગમન કરવામાં આવ્યું છે, તે (સર્વ) કોશલદેશના નિવાસીઓ જ્યાં યોગીઓ જાય છે તે સ્થાનમાં ગયા.॥ ૨૨ ॥

स रामः संविष्ट उपवेशितोऽनुगतो वा यैस्ते कोशलदेशवासिनः सर्वेऽपि यत्र योगिनो गच्छन्ति तत्स्थानं ययुः॥ २२॥

'सः' તે શ્રીરામચન્દ્રજી **'संविष्टः'** જેમના દ્વારા તેમની સમીપ બેસવામાં આવ્યું છે અથવા જેમના દ્વારા તેમનું અનુસરણ કરવામાં આવ્યું છે તે બધા જ કોશલદેશના નિવાસીઓ જ્યાં યોગીઓ જાય છે તે સ્થાનમાં ગયા.॥ ૨૨ ॥

**पुरुषो रामचरितं श्रवणैरुपधारयन्।
आनृशंस्यपरो राजन् कर्मबन्धैर्विमुच्यते॥ २३**

હે રાજા, શ્રવણેન્દ્રિય(ની વૃત્તિઓ) વડે શ્રીરામચરિત્રનું ચિંતન કરતો મનુષ્ય ક્રૂરતા વગેરે દોષોથી રહિત થઈ કર્મના બંધનથી છૂટી જાય છે.॥ ૨૩ ॥

आनृशंस्यपर उपशमनिष्ठः सन्विमुच्यते ॥ २३॥

'आनृशंस्यपरः' ક્રૂરતા વગેરે દોષોથી રહિત, શાંતિમાં નિષ્ઠ થઈ છૂટી જાય છે.॥ ૨૩ ॥

(**नृशंसम्** = ક્રૂર, **अनृशंसम्** = અક્રૂર, **तस्य भावः आनृशंस्यम्**)

राजोवाच

**कथं स भगवान् रामो भ्रातॄन् वा स्वयमात्मनः।
तस्मिन् वा तेऽन्ववर्तन्त प्रजाः पौराश्च ईश्वरे॥
॥ २४॥**

રાજા પરીક્ષિત બોલ્યા — ભગવાન શ્રીરામચન્દ્રજી પોતે કેવી રીતે વર્તતા હતા? પોતાના (આત્માના) અંશરૂપ ભાઈઓ પ્રત્યે કેવી રીતે વર્તતા હતા? અને તે ઈશ્વર પ્રત્યે તે ભાઈઓ, પ્રજાજનો તથા નગરજનો કેવો વ્યવહાર કરતા હતા?॥ ૨૪ ॥

स रामः स्वयं कथमवर्तत। भ्रातॄन्प्रति वा कथमवर्तत। कथंभूतान्। आत्मन आत्मांश-भूतान्। तस्मिन्वा ईश्वरे ते भ्रात्रादयोऽनु अनन्तरं कथमवर्तन्तेति प्रश्नत्रयम्॥ २४॥

તે શ્રીરામચન્દ્રજી પોતે કેવી રીતે વર્તતા હતા? તથા ભાઈઓ પ્રત્યે કેવી રીતે વર્તતા હતા? કેવા ભાઈઓ? **'आत्मनः'** પોતાના અંશરૂપ ભાઈઓ પ્રત્યે અને તે ઈશ્વર પ્રત્યે તે ભાઈઓ વગેરે **'अनु'** પછી કેવી રીતે વર્તતા હતા? એમ ત્રણ પ્રશ્નો છે.॥ ૨૪ ॥

तत्र श्रीरामस्य भ्रात्रादिषु प्रवृत्तिप्रकार-माह—**अथेति**।

તે (ત્રણ પ્રશ્નો)માં શ્રીરામ ભાઈઓ પ્રત્યે જે રીતે વર્તતા હતા તે પ્રકટ કરે છે— **'अथ इति।'**

श्रीशुक उवाच

अथादिशद् दिग्विजये भ्रातॄंस्त्रिभुवनेश्वरः ।
आत्मानं दर्शयन् स्वानां पुरीमैक्षत सानुगः ॥ २५

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — (રાજસિંહાસન સ્વીકાર્યા) પછી ત્રિભુવનેશ્વર શ્રીરામચન્દ્રજીએ ભાઈઓને દિગ્વિજય કરવાની આજ્ઞા આપી હતી. પોતાના પ્રજાજનોને પોતાના દર્શન આપતા, પોતાના અનુચરો સાથે અયોધ્યાપુરીને નિહાળતા હતા. ॥ ૨૫ ॥

अनेनैव भ्रातॄणामपि तदाज्ञानुसारितया प्रवृत्तिरुक्ता। अथ सिंहासनस्वीकारानन्तरम् ॥ २५ ॥

આ દ્વારા ભાઈઓ પણ તેમની આજ્ઞાનુસાર પ્રવૃત્ત થતા હતા, તે કહેવાયું છે. '**अथ**' રાજસિંહાસન સ્વીકાર્યા પછી ॥ ૨૫ ॥

पुरीं वर्णयति त्रिभिः—

અયોધ્યા નગરીને ત્રણ શ્લોકો દ્વારા વર્ણવે છે—

आसिक्तमार्गां गन्धोदैः करिणां मदशीकरैः ।
स्वामिनं प्राप्तमालोक्य मत्तां वा सुतरामिव ॥ २६

ચંદનના (સુગંધિત) જળથી અને હાથીઓનાં મદબિંદુઓ વડે સર્વ તરફ સિંચન કરવામાં આવ્યા હતા માર્ગો જેના તે અયોધ્યા નગરી સ્વામીને (પુનઃ) પ્રાપ્ત થયેલા જોઈ જાણે કે મદથી અત્યંત ઉન્મત્ત (થઈ) હોય તેમ સમૃદ્ધ બની ગઈ હતી. ॥ ૨૬ ॥

गन्धोदकैर्मदबिन्दुभिश्चासिक्ता मार्गा यस्याम्। सुतरां मत्तामिव समृद्धाम्। वा इति वितर्के। पाठान्तरे वासितगां वासितां कामोन्मत्तां गामिवेत्यर्थः ॥ २६ ॥

ચંદનના જળથી અને (હાથીઓનાં) મદબિંદુઓથી સિંચન કરવામાં આવેલા માર્ગો હતા જે અયોધ્યાનગરીમાં. જાણે કે મદથી અત્યંત ઉન્મત્ત હોય તેમ સમૃદ્ધ બની ગઈ હતી. **वा इति** વિતર્ક અર્થાત્ ઉત્પ્રેક્ષાના અર્થમાં છે, 'જાણે કે' પાઠાન્તરમાં '**मत्तां वा सुतरामिव**' ને બદલે '**मत्तां वासितगामिव**' પાઠમાં, પોતાના સ્વામીને પુનઃ પ્રાપ્ત કરેલા હોઈ કામથી ઉન્મત્ત થયેલી પૃથ્વીની જેમ, એમ અર્થ છે. ॥ ૨૬ ॥

प्रासादगोपुरसभाचैत्यदेवगृहादिषु ।
विन्यस्तहेमकलशैः पताकाभिश्च मण्डिताम् ॥ २७

पूगैः सवृन्तै रम्भाभिः पट्टिकाभिः सुवाससाम् ।
आदर्शैरंशुकैः स्त्रग्भिः कृतकौतुकतोरणाम् ॥ २८

॥ २७ ॥ २८ ॥

રાજમહેલો, દરવાજાઓ, સભાગૃહો, યજ્ઞવેદી, દેવમંદિરો ઉપર સ્થાપેલા સુવર્ણ-કળશો તથા પતાકાઓથી સુશોભિત ડાળખીઓ સહિત સોપારીઓ, કેળના સ્તંભો, (નાની નાની) ધજાઓથી સુંદર વસ્ત્રો ધારણ કર્યાં હોય તેવી, દર્પણ (આભલાં), વસ્ત્રો અને પુષ્પમાળાઓથી બનાવવામાં આવેલાં માંગલિક તોરણોવાળી (અયોધ્યા નગરીને શ્રીરામચન્દ્રજી નિહાળતા હતા). ॥ ૨૭ ॥ ૨૮ ॥ ૨૭ ॥ ૨૮ ॥

अन्वि.—पूर्वेणैवान्वयः।

આ શ્લોકોનો અન્વય પૂર્વના શ્લોક (૨૫) સાથે કરવો.

पौराणां तस्मिन्वृत्तिमाह—**तमुपेयुरिति**।

તે શ્રીરામચન્દ્રજી પ્રત્યે નગરજનોનું વર્તન જણાવે છે— **'तम् उपेयुः इति।'**

तमुपेयुस्तत्र तत्र पौरा अर्हणपाणयः।
आशिषो युयुजुर्देव पाहीमां प्राक् त्वयोद्धृताम्॥ २९

(અયોધ્યામાં જ્યાં જ્યાં શ્રીરામચન્દ્રજી જતા) ત્યાં ત્યાં જેમના હાથમાં પૂજાની સામગ્રીઓ છે તેવા નગરવાસીઓ તેમની સન્મુખ જઈ આશિષો આપતા: 'હે દેવ, પૂર્વે (વરાહ અવતારમાં) આપના દ્વારા ઉદ્ધાર કરાયેલી આ પૃથ્વીનું પાલન કરો.' ॥ ૨૯ ॥

वराहरूपेण त्वयोद्धृतामिमां पृथ्वीं पाहीति ॥ २९ ॥

'વરાહરૂપે આપના દ્વારા ઉદ્ધાર કરાયેલી આ પૃથ્વીનું પાલન કરો.' એમ (આશિષો આપતા હતા). ॥ ૨૯ ॥

प्रजानां तस्मिन्वृत्तिमाह—**ततः प्रजा इति**।

તે શ્રીરામચન્દ્રજી પ્રત્યે પ્રજાઓનું વર્તન જણાવે છે— **'ततः प्रजाः इति।'**

ततः प्रजा वीक्ष्य पतिं चिरागतं
दिदृक्षयोत्सृष्टगृहाः स्त्रियो नराः।
आरुह्य हर्म्याण्यरविन्दलोचन-
मतृप्तनेत्राः कुसुमैरवाकिरन्॥ ३०

॥ ३० ॥

પછી ચિરકાળ બાદ આવેલા (પોતાના) રાજાને જોઈ, તેમનાં દર્શન કરવાની ઈચ્છાથી ઘર છોડી, હવેલીઓ ઉપર ચઢી, કમળનેત્ર ભગવાનનાં દર્શનથી જેમનાં લોચન અતૃપ્ત છે તેવાં નર, નારીઓએ (તેમના પર) પુષ્પોથી વૃષ્ટિ કરી (તેમને આચ્છાદિત કરી દીધા હતા). ॥ ૩૦ ॥ ૩૦ ॥

स्वयं कथमवर्ततेत्यस्योत्तरमाह—**अथेति** यावत्समाप्ति।

પોતે કેવી રીતે રહેતા હતા, એનો ઉત્તર અધ્યાય સમાપ્ત થાય ત્યાં સુધી આપે છે— **'अथ इति।'**

अथ प्रविष्टः स्वगृहं जुष्टं स्वैः पूर्वराजभिः।
अनन्ताखिलकोशाढ्यमनर्घ्योरुपरिच्छदम्॥ ३१

(પ્રજાઓનું નિરીક્ષણ કર્યા) પછી શ્રીરામચન્દ્રજી (ઈક્ષ્વાકુ) વગેરે પૂર્વે થઈ ગયેલા પોતાના (વંશના) રાજાઓ દ્વારા સેવાયેલ, સમગ્ર (રત્નાદિના) અપાર ખજાનાઓથી સમૃદ્ધ, અનેક બહુમૂલ્ય સામગ્રીઓ-વાળા પોતાના રાજમહેલમાં પ્રવેશ્યા હતા. ॥ ૩૧ ॥

स्वगृहं प्रविष्टः संस्तस्मिन् रेम इति पञ्चमेनान्वयः। गृहं वर्णयति सार्धैस्त्रिभिः—अनन्ता येऽखिलानां रत्नादीनां कोशास्तैराढ्यम्। अनर्घ्या उरवः परिच्छदा यस्मिन्॥ ३१ ॥

પોતાના મહેલમાં પ્રવિષ્ટ થઈ તેમાં રમણ કરતા હતા, એમ આનાથી પાંચમા શ્લોક (૩૫) સાથે અન્વય છે. મહેલનું વર્ણન સાડા ત્રણ શ્લોકોથી કરે છે— અપાર એવા જે સમગ્ર (રત્નાદિના) ખજાનાઓ છે તેમનાથી સમૃદ્ધ એવા રાજમહેલમાં, અનેક બહુમૂલ્ય સામગ્રીઓ છે જેમાં ॥ ૩૧ ॥

विद्रुमोदुम्बरद्वारैर्वैदूर्यस्तम्भपंक्तिभिः ।
स्थलैर्मारकतैः स्वच्छैर्भ्राजत्स्फटिकभित्तिभिः ॥ ३२

चित्रस्त्रग्भिः पट्टिकाभिर्वासोमणिगणांशुकैः ।
मुक्ताफलैश्चिदुल्लासैः कान्तकामोपपत्तिभिः ॥ ३३

धूपदीपैः सुरभिभिर्मण्डितं पुष्पमण्डनैः ।
स्त्रीपुम्भिः सुरसंकाशैर्जुष्टं भूषणभूषणैः ॥ ३४

પરવાળાંના ઉંબરા છે જેમાં તેવાં દ્વારોથી, વૈદૂર્યમણિના થાંભલાઓની હારમાળાઓથી, મરકત-મણિમય સ્વચ્છ ભૂમિ (ફર્શ)થી, ઉજ્જ્વળ સ્ફટિકની ભીંતોથી, જાતજાતની પુષ્પ-માળાઓથી, ધજાઓથી, વસ્ત્રો અને મણિઓના સમૂહોનાં કિરણોથી, ચૈતન્યના ઉલ્લાસવાળાં ઉજ્જ્વળ મોતીઓથી, સુંદર ભોગસાધનોથી, ધૂપ અને દીવડાઓથી તેમ જ સુગંધિત પુષ્પોના અલંકારોથી શોભતા અને ભૂષણોનાં ભૂષણરૂપ દેવતુલ્ય સ્ત્રીપુરુષોથી સેવાતા (પોતાના રાજમહેલમાં શ્રીરામચન્દ્રજી પ્રવિષ્ટ થઈ રમણ કરતા હતા.) ॥ ૩૨ ॥ ૩૩ ॥ ૩૪ ॥

विद्रुममया उदुम्बरा देहल्यो येषु तैर्द्वारैः। स्वच्छैः स्थलैः। तृतीयान्तानां मण्डितमिति तृतीयेनान्वयः ॥ ३२ ॥

પરવાળાંના ઉંબરા છે જેમાં તે દ્વારોથી, સ્વચ્છ ભૂમિથી, તૃતીયા વિભક્તિના અંતવાળાં પદોનો આનાથી ત્રીજા શ્લોક (૩૪)ના '**मण्डितम् इति**।' પદ સાથે અન્વય છે. ॥ ૩૨ ॥

वाससां मणिगणानां चांशुकैर्दीप्तिभिः चित् चैतन्यं तद्वदुल्लासैरुज्ज्वलैः। यद्वा चिदिति क्वचित्। वैदूर्यस्तम्भादिषु यथाशोभनमुज्ज्वलैर्मुक्ताफलै-र्मण्डितमित्यर्थः। कान्ताः कमनीयाः कामोपपत्तयो भोगसाधनानि ताभिः ॥ ३३ ॥

વસ્ત્રોનાં અને મણિઓના સમૂહોનાં '**अंशुकैः**' કિરણોથી, '**चित्**' ચૈતન્ય, તેના જેવા ઉલ્લાસવાળા ઉજ્જ્વળ (અર્થાત્ શુદ્ધ ચૈતન્ય જેવાં દેદીપ્યમાન મોતીઓથી–), અથવા '**चित्**' એટલે '**क्वचित्**' ક્યાંક વૈદૂર્યમણિના થાંભલાઓમાં શોભતાં હોય તેમ ઉજ્જ્વળ મોતીઓથી શોભતા (રાજમહેલમાં), એમ અર્થ છે. '**कान्ताः**' કમનીય (સુંદર) '**काम-उपपत्तयः**' ભોગસાધનો, તેમનાથી ॥ ૩૩ ॥

भूषणानां भूषणभूतैः ॥ ३४ ॥

ભૂષણોનાં ભૂષણરૂપ (સ્ત્રીપુરુષો)થી ॥ ૩૪ ॥

तस्मिन् स भगवान् रामः स्निग्धया प्रिययेष्टया।
रेमे स्वारामधीराणामृषभः सीतया किल॥
॥ ३५ ॥ ३५ ॥

આત્મારામ, ધીર પુરુષોમાં શ્રેષ્ઠ એવા તે ભગવાન રામ તે રાજમહેલમાં પોતાની અભિલષિત, પ્રેમાળ પ્રિયા સીતાજી સાથે રમણ કરતા હતા. ॥ ૩૫ ॥ ૩૫ ॥

बुभुजे च यथाकालं कामान् धर्ममपीडयन्।
वर्षपूगान् बहून् नृणामभिध्याताङ्घ्रिपल्लवः ॥
॥ ३६ ॥

મનુષ્યોમાં ચિંતન કરવામાં આવે છે (અથવા મનુષ્યો દ્વારા ચિંતન કરવામાં આવે છે) તેવાં ચરણપલ્લવ જેમનાં છે તે ભગવાન શ્રીરામચન્દ્રજીએ ધર્મનો ત્યાગ કર્યા વિના (વર્ણાશ્રમોચિત સ્વધર્મનું પાલન કરતા રહી) અનેક વર્ષો સુધી સમયાનુસાર ભોગોનો ઉપભોગ કર્યો હતો. ॥ ૩૬ ॥

नृणां मध्ये। यद्वा नृणां नृभिरभिध्यात-मङ्घ्रिपल्लवं यस्येति॥ ३६ ॥

મનુષ્યોમાં ચિંતન કરવામાં આવે છે અથવા મનુષ્યો દ્વારા જેમનાં ચરણપલ્લવોનું ચિંતન કરવામાં આવે છે.॥ ૩૬ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे श्रीरामोपाख्याने एकादशोऽध्यायः॥ ११ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां एकादशोऽध्यायः॥ ११ ॥

*****

अथ द्वादशोऽध्यायः

ઈક્ષ્વાકુવંશના શેષ રાજાઓનું વર્ણન

द्वादशे रामपुत्रस्य कुशस्यान्वय उच्यते।
एवमिक्ष्वाकुपुत्रस्य शशादस्येरितोऽन्वयः॥ १ ॥

બારમા અધ્યાયમાં શ્રીરામચન્દ્રજીના પુત્ર કુશનો વંશ કહેવામાં આવે છે. આ રીતે ઈક્ષ્વાકુના પુત્ર શશાદનો વંશ કહેવાય છે.॥ ૧ ॥ (ઈક્ષ્વાકુના સૌથી મોટા પુત્ર વિકુક્ષિ જ શશાદ નામે પ્રસિદ્ધ થયા.) (શ્રીમદ્ ભા.૯/૬/૧૧)

श्रीशुक उवाच

कुशस्य चातिथिस्तस्मान्निषधस्तत्सुतो नभः।
पुण्डरीकोऽथ तत्पुत्रः क्षेमधन्वाभवत्ततः॥ १

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — કુશનો પુત્ર અતિથિ થયો. તેનાથી નિષધ થયો. તે નિષધથી નભ થયો. પછી તેનો પુત્ર પુંડરીક થયો. તેનાથી ક્ષેમધન્વા થયો.॥ ૧ ॥

कुशस्य रामपुत्रस्यातिथिः सुतोऽभवत्॥ १ ॥

રામના પુત્ર કુશનો પુત્ર અતિથિ થયો.॥ ૧ ॥

देवानीकस्ततोऽनीहः पारियात्रोऽथ तत्सुतः।
ततो बलस्थलस्तस्माद् वज्रनाभोऽर्कसम्भवः॥ २

તેનાથી દેવાનીક થયો, તેનાથી અનીહ અને પછી તેનો પુત્ર પારિયાત્ર થયો. તેનાથી બલસ્થલ અને તેનાથી વજ્રનાભ થયો, જે સૂર્યના અંશથી ઉત્પન્ન થયો હતો.॥ ૨ ॥

अर्कसंभवोऽर्कस्यांशात्संभूतः॥ २ ॥

'अर्कसम्भवः' સૂર્યના અંશથી ઉત્પન્ન થયેલો॥ ૨ ॥

खगणस्तत्सुतस्तस्माद् विधृतिश्चाभवत् सुतः।
ततो हिरण्यनाभोऽभूद् योगाचार्यस्तु जैमिनेः॥ ३

તેનો પુત્ર ખગણ અને તેનો પુત્ર વિધૃતિ થયો. તેનાથી હિરણ્યનાભ થયો. જૈમિનિ ઋષિનો તે શિષ્ય યોગાચાર્ય હતો.॥ ૩॥

ततो विधृतेर्हिरण्यनाभः। कथंभूतः— जैमिनेः शिष्यो योगाचार्यः॥ ३ ॥

તે વિધૃતિથી હિરણ્યનાભ થયો. કેવો? જૈમિનિ મુનિનો શિષ્ય બનીને યોગાચાર્ય થયો હતો.॥ ૩ ॥

('શિષ્ય' શબ્દ ચોથા શ્લોકમાંથી લેવાનો છે.)

तदाह—

તે (યોગાચાર્યત્વ) વર્ણવે છે—

शिष्यः कौशल्य आध्यात्मं याज्ञवल्क्योऽध्यगाद् यतः।
योगं महोदयमृषिर्हृदयग्रन्थिभेदकम्॥
॥ ४॥

જેની પાસેથી કોશલદેશવાસી યાજ્ઞવલ્ક્ય ઋષિએ અધ્યાત્મયોગનું અધ્યયન કર્યું હતું, કે જેમાં મહાન સિદ્ધિઓ રહેલી છે તથા જે હૃદયની (અજ્ઞાનરૂપી) ગ્રંથિ કાપી નાખનારો છે.॥ ૪॥

यतः सकाशात् कौशल्यो याज्ञवल्क्यऋषिराध्यात्मं योगमध्यगात्। महान्त उदया सिद्धयो यस्मिंस्तम्। हृदयग्रन्थेर्भेदकं च॥ ४॥

વંશીધરી—शिष्य इति पूर्वान्वयि।

पुष्यो हिरण्यनाभस्य ध्रुवसन्धिस्ततोऽभवत्।
सुदर्शनोऽथाग्निवर्णः शीघ्रस्तस्य मरुः सुतः॥ ५॥ ५॥

मरुं विशिनष्टि—**योऽसाविति**।

योऽसावास्ते योगसिद्धः कलापग्राममाश्रितः।
कलेरन्ते सूर्यवंशं नष्टं भावयिता पुनः॥ ६

पुनर्भावयिता भावयिष्यति॥ ६॥

वंशीधरी—कलापग्रामो बदरिकाश्रमे ऋषिग्रामः।

अन्वि.—योगेन सिद्धः विनिर्जितमृत्युः कलापग्रामवासिभिः सह तत्रास्ते।

तस्मात् प्रसुश्रुतस्तस्य सन्धिस्तस्याप्यमर्षणः।
महस्वांस्तत्सुतस्तस्माद् विश्वसाह्वोऽन्वजायत॥ ७॥ ७॥

ततः प्रसेनजित् तस्मात् तक्षको भविता पुनः।
ततो बृहद्बलो यस्तु पित्रा ते समरे हतः॥ ८

पित्राऽभिमन्युना॥ ८॥

भ.मनो.—अत्र पुनः शब्दस्त्वर्थे भविता अभूत्।

एते हीक्ष्वाकुभूपाला अतीताः शृण्वनागतान्।
बृहद्बलस्य भविता पुत्रो नाम बृहद्रणः॥ ९॥ ९॥

उरुक्रियस्ततस्तस्य वत्सवृद्धो भविष्यति।
प्रतिव्योमस्ततो भानुर्दिवाको वाहिनीपतिः॥ १०॥ १०॥

सहदेवस्ततो वीरो बृहदश्वोऽथ भानुमान्।
प्रतीकाश्वो भानुमतः सुप्रतीकोऽथ तत्सुतः॥ ११॥ ११॥

જે હિરણ્યનાભ પાસેથી કોશલદેશવાસી યાજ્ઞવલ્ક્ય ઋષિએ અધ્યાત્મયોગનું અધ્યયન કર્યું હતું, કે જેમાં મહાન **'उदयाः'** સિદ્ધિઓ રહેલી છે તેનું તથા હૃદયની ગાંઠ કાપી નાખનાર યોગનું (અધ્યયન કર્યું હતું).॥ ૪॥

'શિષ્ય' પદ પૂર્વના શ્લોક સાથે જોડાય છે.

હિરણ્યનાભનો પુત્ર પુષ્ય, તેનાથી ધ્રુવસન્ધિ, તેનાથી સુદર્શન, તેનો અગ્નિવર્ણ, તેનો શીઘ્ર અને તેનો મરુ નામનો પુત્ર થયો.॥ ૫॥ ૫॥

મરુને વિશેષણપૂર્વક વર્ણવે છે— **'यः असौ इति।'**

તે મરુ યોગસિદ્ધ હોઈ (આજે પણ) કલાપ નામના ગામમાં રહે છે, કે જે કળિયુગનો અંત આવતાં, નષ્ટ થયેલા સૂર્યવંશને ફરી ચલાવશે.॥ ૬॥

ફરીથી **'भावयिता'** ચલાવશે.॥ ૬॥

બદરિકાશ્રમમાં ઋષિગ્રામ છે, તે કલાપગ્રામ છે.

યોગથી સિદ્ધ એવો મરુ, જેણે મૃત્યુને જીતી લીધું છે તે કલાપગ્રામના નિવાસીઓ સાથે ત્યાં રહે છે.

તે મરુથી પ્રસુશ્રુત, તેનો સન્ધિ અને તેનો અમર્ષણ થયો. તેનો પુત્ર મહસ્વાન થયો અને તેનાથી વિશ્વસાહ્વ જન્મ્યો.॥ ૭॥ ૭॥

તેનાથી પ્રસેનજિત અને તેનાથી વળી તક્ષક થયો. તેનાથી બૃહદ્બલ થયો, જે તમારા પિતા (અભિમન્યુ) દ્વારા યુદ્ધમાં હણાયો હતો.॥ ૮॥

પિતા અભિમન્યુ દ્વારા॥ ૮॥

અહીં **'पुनः'** શબ્દ **'तु'** ના અર્થમાં છે. **'भविता'** એટલે થયો હતો, એમ અર્થ કરવાનો છે.

ઈક્ષ્વાકુ વંશના આ રાજાઓ થઈ ગયા. (હવે) ભવિષ્યમાં થનારા રાજાઓનાં નામ શ્રવણ કરો. બૃહદ્બલનો બૃહદ્રણ નામનો પુત્ર થશે.॥ ૯॥ ૯॥

તે બૃહદ્રણથી ઉરુક્રિય, તેનો વત્સવૃદ્ધ થશે. તેનાથી પ્રતિવ્યોમ, તેનાથી ભાનુ, તેનો પુત્ર સેનાપતિ દિવાક થશે.॥ ૧૦॥ ૧૦॥

તેનાથી સહદેવ, તેનાથી વીર બૃહદશ્વ, પછી ભાનુમાન થશે. ભાનુમાનથી પ્રતીકાશ્વ તથા તેનો પુત્ર સુપ્રતીક થશે.॥ ૧૧॥ ૧૧॥

भविता मरुदेवोऽथ सुनक्षत्रोऽथ पुष्करः।
तस्यान्तरिक्षस्तत्पुत्रः सुतपास्तदमित्रजित्॥ १२

तत्तस्मादमित्रजित्॥ १२॥

સુપ્રતીકનો મરુદેવ થશે. પછી સુનક્ષત્ર, પછી પુષ્કર અને પછી તેનો પુત્ર અંતરિક્ષ, તેનો સુતપા અને તેનાથી અમિત્રજિત થશે.॥ ૧૨॥

'तत्' તેનાથી અમિત્રજિત થશે.॥ ૧૨॥

बृहद्राजस्तु तस्यापि बर्हिस्तस्मात् कृतञ्जयः।
रणञ्जयस्तस्य सुतः सञ्जयो भविता ततः॥ १३

॥ १३॥

તેનો પણ બૃહદ્રાજ, તેનાથી બર્હિ, તેનાથી કૃતંજય, તેનો પુત્ર રણંજય અને તેનાથી સંજય થશે.॥ ૧૩॥ ૧૩॥

तस्माच्छाक्योऽथ शुद्धोदो लाङ्गलस्तत्सुतः स्मृतः।
ततः प्रसेनजित् तस्मात् क्षुद्रको भविता ततः॥
॥ १४॥ ॥ १४॥

તેનાથી શાક્ય, પછી શુદ્ધોદ અને તેનો પુત્ર લાંગલ કહેવાશે. તેનાથી પ્રસેનજિત અને તેનાથી ક્ષુદ્રક થશે.॥ ૧૪॥ ૧૪॥

रणको भविता तस्मात् सुरथस्तनयस्ततः।
सुमित्रो नाम निष्ठान्त एते बार्हद्बलान्वयाः॥ १५

निष्ठा वंशस्य स्थितिस्तस्या अन्तः॥ १५॥

તેનાથી રણક થશે, પછી તેનાથી સુરથ નામનો પુત્ર થશે. તેનાથી વંશનો છેલ્લો રાજા સુમિત્ર થશે. બૃહદ્‌બલના વંશના આ વંશજો થશે.॥ ૧૫॥

'निष्ठा' વંશની સ્થિતિ, તે સ્થિતિના અંતરૂપ (છેલ્લો રાજા સુમિત્ર)॥ ૧૫॥

तदेवाह—**इक्ष्वाकूणामिति**।

તે જ કહે છે— **'इक्ष्वाकूणाम् इति।'**

इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रान्तो भविष्यति।
यतस्तं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ॥ १६

॥ १६॥

ઈક્ષ્વાકુઓનો આ વંશ સુમિત્ર સુધી રહેશે, કારણ કે કળિયુગમાં, અંતે સુમિત્ર રાજાને પ્રાપ્ત કરીને આ વંશ સમાપ્ત થશે.॥ ૧૬॥૧૬॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे इक्ष्वाकुवंशवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

❋❋❋❋❋

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

રાજા નિમિના વંશનું વર્ણન

इक्ष्वाकोरेव पुत्रस्य निमेर्वंशस्त्रयोदशे।
वर्ण्यते जज्ञिरे यत्र ब्रह्मज्ञा जनकादयः॥ १॥

તેરમા અધ્યાયમાં ઈક્ષ્વાકુના જ પુત્ર નિમિનો વંશ વર્ણવાય છે, જે વંશમાં જનક વગેરે બ્રહ્મજ્ઞાની (જીવન્મુક્ત મનુષ્યો) જન્મ્યા હતા.॥ ૧॥

निमेरौरसः पुत्रो नाभूदिति दर्शयन्कथामाह—**निमि**रित्येकादशभिः।

નિમિને ઔરસ પુત્ર ન હતો એ દર્શાવતાં અગિયાર શ્લોકો દ્વારા કથા કહે છે— **'निमिः इति।'**

श्रीशुक उवाच

निमिरिक्ष्वाकुतनयो वसिष्ठमवृतर्त्विजम्।
आरभ्य सत्रं सोऽप्याह शक्रेण प्राग्वृतोऽस्मि भोः॥ १

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા–ઈક્ષ્વાકુના પુત્ર નિમિએ સત્ર આરંભીને મહર્ષિ વસિષ્ઠનું ઋત્વિજ તરીકે વરણ કર્યું, પરંતુ વસિષ્ઠ મુનિએ કહ્યું, 'હે રાજા, ઈન્દ્ર દ્વારા પહેલેથી જ મારું વરણ થઈ ગયું છે.'॥ ૧॥

सत्रमारभ्य वसिष्ठमृत्विजमवृत वव्रे ॥ १ ॥

तं निर्वर्त्यागमिष्यामि तावन्मां प्रतिपालय।
तूष्णीमासीद् गृहपतिः सोऽपीन्द्रस्याकरोन्मखम्॥ २

तं शक्रस्य मखं निर्वर्त्य। प्रतिपालय प्रतीक्षस्वेति गृहपतिर्निमिः ॥ २ ॥

निमिश्चलमिदं विद्वान् सत्रमारभतात्मवान्।
ऋत्विग्भिरपरैस्तावन्नागमद् यावता गुरुः ॥ ३

इदं जीवितं चलमस्थिरं विद्वान्॥ ३ ॥

शिष्यव्यतिक्रमं वीक्ष्य निर्वर्त्य गुरुरागतः।
अशपत् पतताद् देहो निमेः पण्डितमानिनः ॥ ४

इन्द्रस्य मखं निर्वर्त्यागतो गुरुः शिष्यस्य व्यतिक्रममन्यायं वीक्ष्य निमेर्देहः पतत्वित्यशपत् ॥ ४ ॥

निमिः प्रतिददौ शापं गुरवेऽधर्मवर्तिने।
तवापि पतताद् देहो लोभाद् धर्ममजानतः ॥ ५

॥ ५ ॥

इत्युत्ससर्ज स्वं देहं निमिरध्यात्मकोविदः।
मित्रावरुणयोर्जज्ञे उर्वश्यां प्रपितामहः ॥ ६

उर्वशीदर्शनात्स्कन्नं रेतस्ताभ्यां कुम्भे निषिक्तं तस्मात्प्रपितामहो वसिष्ठो जज्ञे। तदाह— मित्रावरुणयोरिति। तथा च श्रुतिः—'कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानम्।' इति ॥ ६ ॥

નિમિએ સત્ર આરંભીને વસિષ્ઠ મુનિનું ઋત્વિજ તરીકે '**अवृत**' વરણ કર્યું હતું. ॥ ૧ ॥

ઈન્દ્રનો યજ્ઞ સમાપ્ત કરીને હું આવીશ, ત્યાં સુધી મારી પ્રતીક્ષા કર. (વસિષ્ઠ મુનિની આ વાત સાંભળીને) ગૃહ (ભૂમંડળ)પતિ નિમિ મૌન રહ્યા. વસિષ્ઠ મુનિએ પણ ઈન્દ્રને યજ્ઞ કરાવવા માંડ્યો. ॥ ૨ ॥

ઈન્દ્રનો તે યજ્ઞ સમાપ્ત કરીને (હું આવીશ ત્યાં સુધી) '**प्रतिपालय**' પ્રતીક્ષા કર— '**गृहपतिः**' નિમિ રાજા ॥ ૨ ॥

આ જીવન ક્ષણભંગુર છે, એમ જાણતા આત્મજ્ઞાની નિમિએ જ્યાં સુધી ગુરુ વસિષ્ઠ ન આવે ત્યાં સુધી અન્ય ઋત્વિજો સાથે યજ્ઞ આરંભી દીધો. ॥ ૩ ॥

'**इदम्**' આ જીવન '**चलम्**' અસ્થિર છે, એમ જાણતા નિમિ રાજાએ ॥ ૩ ॥

યજ્ઞ સમાપ્ત કરીને આવેલા ગુરુએ શિષ્યને પોતાની આજ્ઞાનું ઉલ્લંઘન કરતો જોઈ શાપ આપ્યો: '(પોતાને) પંડિત માનનાર નિમિનો દેહ પડી જાઓ!' ॥ ૪ ॥

ઈન્દ્રનો યજ્ઞ સમાપ્ત કરીને આવેલા ગુરુએ શિષ્યનો '**व्यतिक्रमम्**' (ગુરુની આજ્ઞાના ઉલ્લંઘનરૂપ) અન્યાય જોઈને 'નિમિનો દેહ પડી જાઓ.' એમ શાપ આપ્યો. ॥ ૪ ॥

અધર્મથી વર્તનાર ગુરુને નિમિએ સામો શાપ આપ્યો: 'લોભને કારણે ધર્મ ન જાણનાર એવો તમારો દેહ પણ પડી જાઓ.' ॥ ૫ ॥ ૫ ॥

આમ, કહીને આત્મવિદ્યામાં નિપુણ એવા નિમિએ પોતાનો દેહ ત્યાગી દીધો. અમારા વડદાદા (વસિષ્ઠજી) મિત્ર અને વરુણથી ઉર્વશીમાં જન્મ્યા. ॥ ૬ ॥

ઉર્વશીના દર્શનથી મિત્ર અને વરુણનું સ્ખલિત થયેલું વીર્ય, તે બંનેના વીર્યને ઘડામાં નાખવામાં આવ્યું, તેમાંથી અમારા વડદાદા વસિષ્ઠ મુનિ જન્મ્યા. તે કહે છે— '**मित्रावरुणयोः इति।**' તે અનુસાર જ શ્રુતિ છે. 'મિત્રદેવતા અને વરુણદેવતા– બંનેએ કુંભમાં વીર્યનું સમાન કાળે સિંચન કર્યું.' (ઋ.૭/૩૩/૧૩) ॥ ૬ ॥

गन्धवस्तुषु तद्देहं निधाय मुनिसत्तमाः।
समाप्ते सत्रयागेऽथ देवानूचुः समागतान्॥ ७
॥ ७ ॥

(યજ્ઞ કરાવવા આવેલા) શ્રેષ્ઠ મુનિજનોએ તે નિમિનો દેહ સુગંધિત વસ્તુઓમાં રાખીને સત્રયાગ સમાપ્ત થતાં આવેલા દેવોને કહ્યું. ॥ ૭ ॥ ૭ ॥

राज्ञो जीवतु देहोऽयं प्रसन्नाः प्रभवो यदि।
तथेत्युक्ते निमिः प्राह मा भून्मे देहबन्धनम्॥ ८

જો આપ વરદાન આપવામાં સમર્થ હો અને પ્રસન્ન થયા હો તો આ નિમિરાજાનો દેહ જીવતો થાય. (દેવોએ) 'તેમ જ થાઓ.' એમ કહ્યું, એટલે નિમિએ કહ્યું, 'મને દેહબંધન ન થાઓ!' ॥ ૮ ॥

यदि प्रसन्नाः प्रभवः समर्थाश्चेत्तर्हि जीवत्वित्यूचुः ॥ ८ ॥

જો આપ પ્રસન્ન થયા હો અને '**प्रभवः**' વરદાન આપવામાં સમર્થ હો તો આ જીવતો થાય, એમ મુનિજનોએ કહ્યું. ॥ ૮ ॥

यस्य योगं न वाञ्छन्ति वियोगभयकातराः।
भजन्ति चरणाम्भोजं मुनयो हरिमेधसः॥ ९

દેહના વિયોગના ભયથી વિકળ એવા મુનિઓ જે દેહનો સંબંધ ઈચ્છતા નથી, પરંતુ (દેહના સંબંધથી મુક્ત થવા માટે જ) (ભક્તોનાં દુઃખ) હરી લેનારી બુદ્ધિવાળા ભગવાનનાં ચરણકમળનું ભજન કરે છે. ॥ ૯ ॥

यस्य देहस्य योगं न वाञ्छन्त्यपि तु मोक्षायैव भजन्ति॥ ९ ॥

મુનિજનો જે દેહનો સંબંધ નથી ઈચ્છતા, પરંતુ તેનાથી મુક્ત થવા માટે જ તેમનું ભજન કરે છે. ॥ ૯ ॥

वंशीधरी—हरिमेधसः हरिः सूर्यस्तद्वत्प्रकाशमाना मेधा बुद्धिर्यस्य तस्य विष्णोः।

સૂર્ય જેવી પ્રકાશમાન બુદ્ધિ છે જેમની તે (મુનિઓ) વિષ્ણુનાં (ચરણકમળનું ભજન કરે છે).

अन्वि.—देहसंयोगवियोगादिसंसारदुःखम्।

દેહના સંયોગ, વિયોગ વગેરે સંસારના દુઃખને (હરી લેનારી બુદ્ધિ જેમની છે તે હરિમેધસ્)

देहं नावरुरुत्सेऽहं दुःखशोकभयावहम्।
सर्वत्रास्य यतो मृत्युर्मत्स्यानामुदके यथा॥ १०
॥ १० ॥

(માટે) દુઃખ, શોક અને ભય આપનારું શરીર ધારણ કરવા હું ઈચ્છતો નથી, કારણ કે જળમાં જેમ માછલાંઓનું મૃત્યુ થાય છે તેમ સર્વ સ્થળે આ શરીરનું મૃત્યુ થાય છે. ॥ ૧૦ ॥ ૧૦ ॥

देवा ऊचुः

विदेह उष्यतां कामं लोचनेषु शरीरिणाम्।
उन्मेषणनिमेषाभ्यां लक्षितोऽध्यात्मसंस्थितः॥ ११

દેવો બોલ્યા — દેહધારીઓનાં નેત્રોમાં દેહરહિત થઈ (નિમિ ભલે) ઈચ્છાનુસાર નિવાસ કરે. સૂક્ષ્મદેહમાં રહી નેત્રના ઊઘડવા અને મિચાવા દ્વારા (તેના પ્રવર્તક તરીકે) તે જણાતો રહેશે. ॥ ૧૧ ॥

निमिर्विदेह एव सन्नुष्यतां वसतु। कामं यथेच्छम्। एवं सति युष्माभिः प्रार्थितं जीवितमस्य भविष्यति न च देहबन्ध इति भावः। स चाध्यात्मसंस्थितो लोचनयोः स्थितः सन्नुन्मेषणनिमेषाभ्यां तत्प्रवर्तकत्वेन लक्षितो वर्तत इति शेषः ॥ ११ ॥

નિમિ દેહરહિત થઈને જ **'उष्यताम्'** નિવાસ કરે. **'कामम्'** ઈચ્છાનુસાર– આમ થતાં તમારા દ્વારા પ્રાર્થના કરવામાં આવેલું જીવન આને પ્રાપ્ત થશે અને નિમિરાજાને દેહનું બંધન પણ નહીં થાય, એવો ભાવ છે. વળી, (શરીરધારીઓના) દેહમાં રહી બંને નેત્રોમાં સ્થિત થઈ નેત્ર ઊઘડવા અને મિચાવા દ્વારા તેના પ્રવર્તક તરીકે નિમિરાજા જણાતો રહેશે, એટલું શેષ છે. ॥ ૧૧ ॥

तदेवं मृतादपि निमेर्देहाद्वंशप्रवृत्तिं दर्शयति—**अराजकभयमिति**।

તો આમ, મૃત હોવા છતાં પણ નિમિના શરીરમાંથી (**वंशीधरी—वेनात्पृथुवंशवत्** વેનમાંથી પૃથુનો વંશ થયો તેમ) વંશ પ્રવર્તમાન થયો તે દર્શાવે છે— **'अराजकभयम् इति।'**

अराजकभयं नृणां मन्यमाना महर्षयः।
देहं ममन्थुः स्म निमेः कुमारः समजायत॥ १२
॥ १२ ॥

(દેવો ગયા પછી) મનુષ્યોમાં અરાજકતા (ફેલાવા)ના ભયની (સંભાવના) વિચારતા મહર્ષિઓએ (નિમિ રાજાના મૃત) શરીરનું મંથન કર્યું. નિમિમાંથી એક કુમાર ઉત્પન્ન થયો. ॥ ૧૨ ॥ ૧૨ ॥

तस्यान्वर्थानि त्रीणि नामान्याह—

તે (મૃતદેહમાંથી ઉત્પન્ન થયેલા કુમાર)ના ત્રણ યથાર્થ નામો કહે છે—

जन्मना जनकः सोऽभूद् वैदेहस्तु विदेहजः।
मिथिलो मथनाज्जातो मिथिला येन निर्मिता॥ १३

(અસાધારણ) જન્મને કારણે તે 'જનક' કહેવાયો. દેહરહિત (નિમિના અંશમાંથી) જન્મ્યો હોવાથી 'વૈદેહ' અને દેહને મથવાથી ઉત્પન્ન થયો હોવાથી 'મિથિલ' કહેવાયો, જેણે મિથિલા નગરી વસાવી. ॥ ૧૩ ॥

जन्मनाऽसाधारणेन। जन एव जनकः। यद्वा स्वदेहद्वारा जनकत्वात्स निमिर्जनकोऽभू-दित्यर्थः। मिथिला येन निर्मिता इत्यनेन व्युत्पत्त्य-न्तरमर्थादुक्तम्॥ १३ ॥

'जन्मना' અસાધારણ જન્મને કારણે **'जनः'** એ જ જનક. અથવા પોતાના દેહ દ્વારા જન્મ્યો હોવાથી તે દેહરહિત નિમિ વૈદેહ થયો, એમ અર્થ છે. જેના દ્વારા મિથિલા નગરી વસાવવામાં આવી. આના દ્વારા અન્ય વ્યુત્પત્તિ (મિથિલા) આ અર્થથી કહેવામાં આવી. ॥ ૧૩ ॥

तस्मादुदावसुस्तस्य पुत्रोऽभून्नन्दिवर्धनः।
ततः सुकेतुस्तस्यापि देवरातो महीपते॥ १४
॥ १४ ॥

હે પૃથ્વીપતિ, તે જનકરાજાથી ઉદાવસુ થયો. તેનો પુત્ર નન્દિવર્ધન થયો. તેનાથી સુકેતુ થયો. તેનો પણ દેવરાત થયો. ॥ ૧૪ ॥ ૧૪ ॥

तस्माद् बृहद्रथस्तस्य महावीर्यः सुधृत्पिता।
सुधृतेर्धृष्टकेतुर्वै हर्यश्वोऽथ मरुस्ततः॥ १५

सुधृत्सुधृतिस्तस्य पिता॥ १५॥

मरोः प्रतीपकस्तस्माज्जातः कृतिरथो यतः।
देवमीढस्तस्य सुतो विश्रुतोऽथ महाधृतिः॥ १६

॥ १६॥

कृतिरातस्ततस्तस्मान्महारोमाथ तत्सुतः।
स्वर्णरोमा सुतस्तस्य ह्रस्वरोमा व्यजायत॥ १७

॥ १७॥

ततः सीरध्वजो जज्ञे यज्ञार्थं कर्षतो महीम्।
सीता सीराग्रतो जाता तस्मात् सीरध्वजः स्मृतः॥ १८

॥ १८॥

वंशीधरी—सीरो हलं तदेव ध्वजः कीर्तिव्यञ्जको यस्य स सीरध्वजः।

कुशध्वजस्तस्य पुत्रस्ततो धर्मध्वजो नृपः।
धर्मध्वजस्य द्वौ पुत्रौ कृतध्वजमितध्वजौ॥ १९

॥ १९॥

कृतध्वजात् केशिध्वजः खाण्डिक्यस्तु मितध्वजात्।
कृतध्वजसुतो राजन्नात्मविद्याविशारदः॥ २०

॥ २०॥

खाण्डिक्यः कर्मतत्त्वज्ञो भीतः केशिध्वजाद् द्रुतः।
भानुमांस्तस्य पुत्रोऽभूच्छतद्युम्नस्तु तत्सुतः॥ २१

तस्य केशिध्वजस्य भानुमान्॥ २१॥

शुचिस्तत्तनयस्तस्मात् सनद्वाजस्ततोऽभवत्।
ऊर्ध्वकेतुः सनद्वाजादजोऽथ पुरुजित्सुतः॥ २२

॥ २२॥

अरिष्टनेमिस्तस्यापि श्रुतायुस्तत्सुपार्श्वकः।
ततश्चित्ररथो यस्य क्षेमधिर्मिथिलाधिपः॥ २३

તે દેવરાતથી બૃહદ્રથ, તેનો મહાવીર્ય થયો. તે સુધૃતિનો પિતા હતો. સુધૃતિનો ધૃષ્ટકેતુ થયો, પછી હર્યશ્વ અને પછી મરુ થયો.॥ ૧૫॥

'સુધૃત્' સુધૃતિ, તેનો પિતા (મહાવીર્ય)॥ ૧૫॥

મરુથી પ્રતીપક થયો. તેનાથી કૃતિરથ થયો, જેનાથી દેવમીઢ થયો, તેનો પુત્ર વિશ્રુત થયો, પછી મહાધૃતિ થયો.॥ ૧૬॥ ૧૬॥

મહાધૃતિથી કૃતિરાત, તેનાથી મહારોમા, ત્યાર પછી તેનો પુત્ર સ્વર્ણરોમા અને તેનો પુત્ર હ્રસ્વરોમા થયો.॥ ૧૭॥ ૧૭॥

તે હ્રસ્વરોમાથી સીરધ્વજ જન્મ્યો. યજ્ઞ માટે ભૂમિ ખેડતાં, હળના અગ્ર ભાગમાંથી સીતાજી જન્મ્યાં. તેથી તે સીરધ્વજ કહેવાયો.॥ ૧૮॥ ૧૮॥

સીરઃ એટલે હળ. તે હળ જ જેની કીર્તિ પ્રકટ કરનાર ધ્વજ છે તે સીરધ્વજ.

તે સીરધ્વજનો પુત્ર કુશધ્વજ થયો. તેનો પુત્ર રાજા ધર્મધ્વજ થયો. ધર્મધ્વજને કૃતધ્વજ અને મિતધ્વજ, એમ બે પુત્રો થયા.॥ ૧૯॥ ૧૯॥

કૃતધ્વજથી કેશિધ્વજ થયો અને મિતધ્વજથી ખાંડિક્ય થયો. હે રાજા પરીક્ષિત, કૃતધ્વજનો પુત્ર કેશિધ્વજ આત્મવિદ્યામાં પ્રવીણ હતો. ॥ ૨૦॥ ૨૦॥

કર્મકાંડના તત્ત્વને જાણનારો ખાંડિક્ય કેશિધ્વજથી ભય પામી ભાગી ગયો. કેશિધ્વજનો પુત્ર ભાનુમાન થયો. તેનો પુત્ર શતદ્યુમ્ન થયો.॥ ૨૧॥

તે કેશિધ્વજનો ભાનુમાન થયો.॥ ૨૧॥

શતદ્યુમ્નનો પુત્ર શુચિ થયો. તેનાથી સનદ્વાજ થયો. તેનાથી ઊર્ધ્વકેતુ થયો. પછી અજ, કે જેનો પુત્ર પુરુજિત થયો.॥ ૨૨॥ ૨૨॥

તેનો પણ અરિષ્ટનેમિ થયો. તેનો શ્રુતાયુ અને તેનો સુપાર્શ્વક થયો. તેનાથી ચિત્રરથ, કે જેનો (પુત્ર) ક્ષેમધિ મિથિલાનરેશ હતો.॥ ૨૩॥

तत्तस्मात्सुपार्श्वकः ॥ २३ ॥

'**तत्**' તે શ્રુતાયુથી સુપાર્શ્વક થયો. ॥ ૨૩ ॥

तस्मात् समरथस्तस्य सुतः सत्यरथस्ततः ।
आसीदुपगुरुस्तस्मादुपगुप्तोऽग्निसंभवः ॥ २४

તે ક્ષેમધિથી સમરથ, તેનો પુત્ર સત્યરથ, તેનાથી ઉપગુરુ થયો. તેનાથી ઉપગુપ્ત થયો, જે અગ્નિમાંથી જન્મ્યો હતો. ॥ ૨૪ ॥

अग्निसंभवोऽग्नेरंशात्संभूतः ॥ २४ ॥

'**अग्निसम्भवः**' અગ્નિના અંશમાંથી ઉત્પન્ન થયો હતો. ॥ ૨૪ ॥

वस्वनन्तोऽथ तत्पुत्रो युयुधो यत् सुभाषणः ।
श्रुतस्ततो जयस्तस्माद् विजयोऽस्मादृतः सुतः ॥ २५

તેનો પુત્ર વસ્વનન્ત, તેનો પુત્ર યુયુધ, કે જેનાથી સુભાષણ થયો. તેનાથી શ્રુત, તેનાથી જય, તેનાથી વિજય અને તેનાથી ઋત નામનો પુત્ર થયો. ॥ ૨૫ ॥

यद्यस्मात्सुभाषणः ॥ २५ ॥

'**यत्**' જે યુયુધથી સુભાષણ થયો. ॥ ૨૫ ॥

शुनकस्तत्सुतो जज्ञे वीतहव्यो धृतिस्ततः ।
बहुलाश्वो धृतेस्तस्य कृतिरस्य महावशी ॥ २६
॥ २६ ॥

તે ઋતનો પુત્ર શુનક થયો. તેને વીતહવ્ય જન્મ્યો. તેનાથી ધૃતિ, તે ધૃતિથી બહુલાશ્વ થયો. તેનો પુત્ર કૃતિ થયો. આ કૃતિનો પુત્ર મહાવશી થયો. ॥ ૨૬ ॥ ૨૬ ॥

एते वै मैथिला राजन्नात्मविद्याविशारदाः ।
योगेश्वरप्रसादेन द्वन्द्वैर्मुक्ता गृहेष्वपि ॥ २७

હે રાજા, આત્મવિદ્યામાં કુશળ એવા આ મિથિલાના વંશજો મૈથિલો (યાજ્ઞવલ્ક્યાદિ) યોગેશ્વરોની કૃપાથી ઘરમાં રહેવા છતાં પણ રાગ-દ્વેષના દ્વન્દ્વથી મુક્ત હતા. ॥ ૨૭ ॥

योगेश्वरा याज्ञवल्क्यादयस्तेषां प्रसादेन ॥ २७ ॥

'**योगेश्वराः**' યાજ્ઞવલ્ક્યાદિ યોગેશ્વરો, તેમની કૃપાથી ॥ ૨૭ ॥

अन्वि.—योगेश्वराणां याज्ञवल्क्यादीनां प्रसादेन प्रीत्योपदेशेन आत्मविद्यायां विशारदा निपुणाः । अत एव गृहे स्थिता अपि द्वन्द्वैर्दुःखसुखहर्षशोकादिभिः विमुक्ता एव ।

યાજ્ઞવલ્ક્યાદિ યોગેશ્વરોની કૃપાથી મિથિલાના વંશજો તેમના પ્રેમપૂર્વકના ઉપદેશથી આત્મવિદ્યામાં નિપુણ હતા. તેથી ઘરમાં જ રહેવા છતાં દુઃખ-સુખ, હર્ષ-શોકાદિ દ્વન્દ્વોથી વિમુક્ત જ હતા.

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे निमिवंशानुवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

*****

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

ચંદ્રવંશનું વર્ણન

चतुर्दशादिभिः सोमवंशमाहासमाप्तितः ।
यस्मिन्नैलादयो भूपाः कीर्त्यन्ते पुण्यकीर्तयः ॥ १ ॥

ચૌદમા અધ્યાયથી માંડીને સ્કંધ સમાપ્ત થાય ત્યાં સુધી સોમવંશનું વર્ણન કરે છે, જેમાં ઐલ વગેરે પવિત્ર કીર્તિવાળા રાજાઓ વર્ણવાય છે. ॥ ૧ ॥

चतुर्दशे गुरोः पत्न्यां तारायां सोमजाद् बुधात्।
जातश्चैलः षडुर्वश्यामायुमुख्यानजीजनत्॥ २॥

ચૌદમા અધ્યાયમાં ગુરુ બૃહસ્પતિની પત્ની તારામાં ચન્દ્રથી જન્મેલા બુધથી ઉત્પન્ન થયેલા ઐલે (પુરૂરવાએ) ઉર્વશીમાં આયુ જેમાં મુખ્ય છે તેવા છ (પુત્રો) ઉત્પન્ન કર્યા. (તે કથા છે.)॥ ૨॥

श्रीशुक उवाच

अथातः श्रूयतां राजन् वंशः सोमस्य पावनः।
यस्मिन्नैलादयो भूपाः कीर्त्यन्ते पुण्यकीर्तयः॥ १॥ १॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – હે રાજા પરીક્ષિત, હવે પછી તમે ચન્દ્રનો પવિત્ર વંશ શ્રવણ કરો, જેમાં ઐલ વગેરે પવિત્ર કીર્તિવાળા રાજાઓ વર્ણવાય છે.॥ ૧॥ ૧॥

सहस्त्रशिरसः पुंसो नाभिह्रदसरोरुहात्।
जातस्यासीत् सुतो धातुरत्रिः पितृसमो गुणैः॥ २॥ २॥

હજાર મસ્તકવાળા (વિરાટ) પુરુષના નાભિસરોવરના કમળમાંથી જન્મેલા બ્રહ્માજીના પુત્ર અત્રિ થયા, જેઓ (સત્ય, પવિત્રતા, સુશીલતા વગેરે) ગુણોથી તેમના પિતા સમાન હતા.॥ ૨॥ ૨॥

तस्य दृग्भ्योऽभवत् पुत्रः सोमोऽमृतमयः किल।
विप्रौषध्युडुगणानां ब्रह्मणा कल्पितः पतिः॥ ३

તે અત્રિ ઋષિનાં નેત્રો(નાં હર્ષાશ્રુઓ)માંથી ચન્દ્ર નામનો અમૃતમય પુત્ર થયો, જેને બ્રહ્માજી દ્વારા વિપ્રો, ઔષધિઓ અને નક્ષત્રગણોનો અધિપતિ બનાવવામાં આવ્યો.॥ ૩॥

दृग्भ्य आनन्दाश्रुभ्यः। अत एवामृतमयः। किलेत्याश्चर्ये। पाठान्तरे दृशो नेत्रात्। वक्ष्यमाणदर्पकारणमाह—विप्रेति॥ ३॥

‘**दृग्भ्यः**’ નેત્રોમાંથી અર્થાત્ હર્ષાશ્રુઓમાંથી, આથી જ તે અમૃતમય છે. ‘**किल**’ આશ્ચર્ય દર્શાવે છે. પાઠાન્તરમાં (‘**दृग्भ्यः**’ને બદલે) ‘**दृशः**’ નેત્રથી– (ચન્દ્રને મદ થયો હતો તે) કહેવામાં આવનાર મદનું કારણ કહે છે— ‘**विप्र इति।**’॥ ૩॥

बा.प्र.—न च ‘चन्द्रमा मनसो जातः’ इति श्रुतिविरोधः समुद्रमथनोत्पत्तिश्रवणविरोधश्चेति शङ्कनीयं भगवन्मनस उत्पन्नस्यैव कल्पभेदेन तत्र तत्र प्रादुर्भावप्रकारभेदकथनात्। न च—

‘ચન્દ્રમા મનમાંથી ઉત્પન્ન થયો.’ (પુરુષસૂક્તની) એ શ્રુતિનો અને ચન્દ્રમા સમુદ્રમંથન કરવાથી ઉત્પન્ન થયો એમ જે શ્રવણ કરવામાં આવ્યું, તેનો અહીં વિરોધ છે, એમ શંકા કરવા યોગ્ય નથી, કારણ કે ભગવાનના મનમાંથી ઉત્પન્ન થયેલા ચન્દ્રમાનો જ કલ્પભેદથી તે તે કલ્પમાં જુદા જુદા પ્રકારે થયેલો પ્રાદુર્ભાવ કહેવામાં આવ્યો છે.

‘अत्रेः पत्न्यनसूया त्रीन् जज्ञे सुयशसः सुतान्।
सोमं दुर्वाससं दत्तमात्मेशब्रह्मसम्भवान्॥’

इति चतुर्थस्कन्धे अनसूयाजन्यत्वोक्ति-

‘અત્રિ ઋષિનાં પત્ની અનસૂયાએ વિષ્ણુ, શિવ તથા બ્રહ્માજીના અંશોથી ઉત્પન્ન થયેલા દત્ત, દુર્વાસા અને ચન્દ્ર નામના ત્રણ યશસ્વી પુત્રોને જન્મ આપ્યો.’ (શ્રીમદ્ભા.૪/૧/૧૫) એમ ચોથા સ્કંધમાં અનસૂયા દ્વારા જન્મ કહેવામાં આવ્યો

विरोधः अत्रिजन्यत्वेनोपचारतज्जन्यत्वकथने विरोधाभावात्।

તેનો (પણ) વિરોધ નથી, કારણ કે અત્રિ દ્વારા લાક્ષણિક જન્મ છે, લક્ષણા હોવાથી વાસ્તવિક જન્મ નથી. તેથી ચંદ્ર અત્રિથી ઉત્પન્ન થયા એમ કહેવામાં વિરોધ નથી.

सोऽयजद् राजसूयेन विजित्य भुवनत्रयम्।
पत्नीं बृहस्पतेर्दर्पात् तारां नामाहरद् बलात्॥ ४

તે ચન્દ્રમાએ ત્રણેય ભુવનો જીતી લઈને રાજસૂય યજ્ઞથી યજન કર્યું હતું તેમ જ બૃહસ્પતિની 'તારા' નામની પત્નીને ગર્વથી બળપૂર્વક હરી લીધી હતી.॥ ४॥

सोमस्य पुत्रो बुध इति कथाद्वारेणाह— **पत्नीमिति** सार्धैर्नवभिः॥ ४॥

ચન્દ્રનો પુત્ર બુધ થયો, એ કથા સાડા નવ શ્લોકો વડે દ્વારા કહે છે— **'पत्नीम् इति।'** ॥ ४॥

यदा स देवगुरुणा याचितोऽभीक्ष्णशो मदात्।
नात्यजत् तत्कृते जज्ञे सुरदानवविग्रहः॥ ५

દેવગુરુ બૃહસ્પતિ દ્વારા જ્યારે ચંદ્ર પાસે વારંવાર (તારાની) યાચના કરવામાં આવી, ત્યારે ગર્વને કારણે તે ચન્દ્રે (તેને પાછી) આપી નહીં. (અને) તેને કારણે દેવો અને દાનવો વચ્ચે યુદ્ધ થયું.॥ ५॥

तत्कृते तन्निमित्तम्॥ ५॥

'तत्कृते' તે તારાને કારણે॥ ५॥

सुराणां दानवानां च विग्रहे कारणमाह— **शुक्र इति।**

દેવો અને દાનવોના યુદ્ધનું કારણ કહે છે— **'शुक्रः इति।'**

शुक्रो बृहस्पतेर्द्वेषादग्रहीत् सासुरोडुपम्।
हरो गुरुसुतं स्नेहात् सर्वभूतगणावृतः॥ ६

બૃહસ્પતિ ઉપરના દ્વેષને કારણે અસુરો સહિત શુક્રાચાર્યે ચન્દ્રનો પક્ષ લીધો અને સમસ્ત ભૂતગણોથી વીંટળાયેલા મહાદેવજીએ સ્નેહને કારણે ગુરુપુત્ર બૃહસ્પતિનો પક્ષ લીધો.॥ ६॥

असुरैः सहितः। उडुपमग्रहीदित्यर्थः। सन्धिरार्षः। गुरोः सुतं बृहस्पतिमग्रहीत्। अङ्गिरसः सकाशात्प्राप्तविद्यो हर इति प्रसिद्धिः॥ ६॥

(શુક્રાચાર્યે) અસુરો સહિત ચન્દ્રનો (પક્ષ) લીધો, એમ અર્થ છે. **'सासुरोडुपम्'** માં સંધિ આર્ષ છે. (**सासुरः+उडुपम् = सासुरउडुपम्** હોવું જોઈએ.) ગુરુના પુત્ર બૃહસ્પતિનો પક્ષ લીધો. મહાદેવજીએ અંગિરા ઋષિની પાસેથી વિદ્યા પ્રાપ્ત કરી હતી, એ પ્રસિદ્ધ છે.॥ ६॥

सर्वदेवगणोपेतो महेन्द्रो गुरुमन्वयात्।
सुरासुरविनाशोऽभूत् समरस्तारकामयः॥ ७

॥ ७॥

સર્વ દેવગણોથી યુક્ત એવો ઈન્દ્ર ગુરુ બૃહસ્પતિને અનુસર્યો, તારાને કારણે (દેવો અને દાનવો વચ્ચે) યુદ્ધ થયું અને દેવો અને દાનવોનો વિનાશ થયો.॥ ७॥ ७॥

निवेदितोऽथाङ्गिरसा सोमं निर्भर्त्स्य विश्वकृत्।
तारां स्वभर्त्रे प्रायच्छदन्तर्वत्नीमवैत् पतिः ॥ ८

નિવેદિતો વિજ્ઞાપિતઃ। વિશ્વકૃદ્બ્રહ્મા। અવૈદબુધ્યત ॥ ૮ ॥

બૃહસ્પતિરાહ—**ત્યજ ત્યજેતિ**।

त्यज त्यजाशु दुष्प्रज्ञे मत्क्षेत्रादाहितं परैः।
नाहं त्वां भस्मसात् कुर्यां स्त्रियं सान्तानिकः सति॥ ९

पैरैराहितं गर्भम्। गर्भे त्यक्ते भस्मीकरिष्यतीति बिभ्यतीं प्रत्याह—नाहमिति। सान्तानिकः संतानार्थी। सांतानिके इति पाठे हे सत्पुत्रे इत्यर्थः ॥ ९ ॥

तत्याज व्रीडिता तारा कुमारं कनकप्रभम्।
स्पृहामाङ्गिरसश्चक्रे कुमारे सोम एव च॥ १०

॥ १० ॥

ममायं न तवेत्युच्चैस्तस्मिन् विवदमानयोः।
पप्रच्छुर्ऋषयो देवा नैवोचे व्रीडिता तु सा॥ ११

॥ ११ ॥

कुमारो मातरं प्राह कुपितोऽलीकलज्जया।
किं न वोचस्यसद्वृत्ते आत्मावद्यं वदाशु मे॥ १२

॥ १२ ॥

ત્યાર પછી અંગિરાપુત્ર બૃહસ્પતિ દ્વારા સર્વ વૃત્તાન્તનું જેમને નિવેદન કરવામાં આવ્યું તે વિશ્વકર્તા બ્રહ્માજીએ ચન્દ્રને ધમકાવીને તારાને તેના પોતાના પતિને પાછી અપાવી. પતિ બૃહસ્પતિએ જાણ્યું કે (તે તારા તો) ગર્ભવતી છે.॥ ૮॥

'**निवेदितः**' જેમને વિજ્ઞાપિત કરવામાં આવ્યું તે '**विश्वकृत्**' વિશ્વકર્તા બ્રહ્માજીએ–'**अवैत्**' જાણ્યું.॥ ૮॥

બૃહસ્પતિ બોલ્યા— '**त्यज त्यज इति।**'

હે દુર્બુદ્ધિ, બીજા દ્વારા સ્થાપવામાં આવેલા ગર્ભનો મારા ક્ષેત્રમાંથી તું જલદી ત્યાગ કર, ત્યાગ કર! (તું ભસ્મીભૂત કરવાના દંડને યોગ્ય હોવા છતાં) સંતાનની ઇચ્છાવાળો હું, સ્ત્રી એવી તને ભસ્મીભૂત નહીં કરું.॥ ૯॥

બીજા દ્વારા સ્થાપવામાં આવેલા ગર્ભને–ગર્ભનો ત્યાગ થશે ત્યારે મને ભસ્મીભૂત કરશે, એમ ભય પામતી તારા પ્રત્યે બૃહસ્પતિ કહે છે— '**न-अहम् इति।**' '**सान्तानिकः**' સંતાનની ઇચ્છાવાળો હું, '**सान्तानिकः**' ને બદલે '**सान्तानिके**' પાઠમાં હે સત્પુત્રને ધારણ કરનારી, એમ અર્થ છે.॥ ૯॥

તેથી લજ્જિત થયેલી તારાએ સુવર્ણ સમાન કાન્તિવાળા કુમારનો (ગર્ભમાંથી) ત્યાગ કર્યો. (ક્ષેત્રજ પુત્ર હોવાથી) બૃહસ્પતિએ અને (વીર્યજ પુત્ર હોવાથી) ચન્દ્રે પણ તે તેજસ્વી કુમારને (લેવાની) સ્પૃહા રાખી.॥ ૧૦॥ ૧૦॥

'આ કુમાર મારો છે, તારો નથી.' એમ તેને માટે મોટેથી તે બન્ને વિવાદ કરતા હતા, ત્યારે ઋષિઓએ અને દેવોએ તારાને પૂછ્યું. (કે આ કોનો પુત્ર છે? ત્યારે) લજ્જિત થયેલી તે કંઈ બોલી નહીં.॥ ૧૧॥ ૧૧॥

(પોતાની માતાની) ખોટી શરમથી કોપેલા કુમારે માતાને કહ્યું, 'હે દુરાચારિણી, બોલતી કેમ નથી? પોતાનું પાપ મને જલદી કહી દે.'॥ ૧૨॥ (**वोचसि-लेट्** સંશયાર્થ, વેદમાં જ માત્ર આ પ્રયોગ છે. બીજો પુ.એ.વ.)॥ ૧૨॥

ब्रह्मा तां रह आहूय समप्राक्षीच्च सान्त्वयन्।
सोमस्येत्याह शनकैः सोमस्तं तावदग्रहीत्॥ १३

बह्माजीએ તેને એકાંતમાં બોલાવીને શાંત પાડતાં પૂછ્યું, ત્યારે તેણે ‘ચન્દ્રનો’ એમ ધીમેથી કહ્યું એટલે ચન્દ્ર તેને લઈ ગયો.॥ ૧૩॥

रहः एकान्ते॥ १३॥

‘रहः’ એકાન્તમાં॥ ૧૩॥

पुरूरवस उर्वश्यामायुप्रमुखाः षट् पुत्रा जाता इति वक्तुं कथामाह—**तस्येत्यादिना** यावत्समाप्ति।

પુરૂરવાને ઉર્વશી વિષે આયુ જેમાં મુખ્ય છે તેવા છ પુત્રો જન્મ્યા, એ કહેવા માટે **‘तस्य’** ઈત્યાદિથી અધ્યાય સમાપ્ત થાય ત્યાં સુધી કથા કહે છે—

तस्यात्मयोनिरकृत बुध इत्यभिधां नृप।
बुद्ध्या गम्भीरया येन पुत्रेणापोडुराण्मुदम्॥ १४

॥ १४॥

હે રાજા, બ્રહ્માજીએ તે કુમારની ગંભીર બુદ્ધિને કારણે તેનું નામ બુધ પાડ્યું, જે પુત્રથી ચન્દ્રને હર્ષ પ્રાપ્ત થયો.॥ ૧૪॥॥ ૧૪॥

ततः पुरूरवा जज्ञे इलायां य उदाहृतः।
तस्य रूपगुणौदार्यशीलद्रविणविक्रमान्॥ १५

॥ १५॥

श्रुत्वोर्वशीन्द्रभवने गीयमानान् सुरर्षिणा।
तदन्तिकमुपेयाय देवी स्मरशरार्दिता॥ १६

॥ १६॥

તે બુધથી (સુદ્યુમ્નરૂપ છોડીને સ્ત્રીરૂપે રહેલી) ઈલામાં (જુઓ સ્કંધ-૯, અ-૧) જે કહેવામાં આવ્યો તે પુરૂરવા જન્મ્યો. ઈન્દ્રભવનમાં દેવર્ષિ નારદજી દ્વારા ગવાતાં તેનાં રૂપ, ગુણ, ઔદાર્ય, શીલ, સંપત્તિ તથા પરાક્રમો સાંભળીને કામદેવનાં બાણોથી પીડાયેલી અપ્સરા ઉર્વશી તેની પાસે ગઈ હતી.॥ ૧૫॥ ૧૬॥ ૧૫॥ ૧૬॥

मित्रावरुणयोः शापादापन्ना नरलोकताम्।
निशम्य पुरुषश्रेष्ठं कन्दर्पमिव रूपिणम्।
धृतिं विष्टभ्य ललना उपतस्थे तदन्तिके॥ १७
स तां विलोक्य नृपतिर्हर्षेणोत्फुल्ललोचनः।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा देवीं हृष्टतनूरुहः॥ १८

મિત્ર અને વરુણના શાપને કારણે મનુષ્યભાવને પ્રાપ્ત થયેલી ઉર્વશી પુરુષશ્રેષ્ઠ પુરૂરવાને કામદેવ જેવા રૂપવાળો સાંભળી ધૈર્ય છોડીને તેની પાસે આવીને ઉપસ્થિત થઈ. તેને જોઈને હર્ષથી ખીલી ઊઠેલા નેત્રવાળા અને રોમાંચિત થઈ ગયેલા (શરીરવાળા) નરપતિ પુરૂરવાએ અપ્સરા ઉર્વશીને મધુર વાણીથી કહ્યું,॥ ૧૭॥॥ ૧૮॥

ननु देवी कुतो मनुष्यस्यान्तिकमुपागच्छेत्तत्राह—मित्रावरुणयोः शापान्नरलोकतां मनुष्यभावमापन्ना सती॥ १७॥ १८॥

શંકા કરવામાં આવી છે કે અપ્સરા કેવી રીતે મનુષ્યની પાસે આવે? તે માટે ઉત્તર આપે છે— મિત્ર અને વરુણના શાપથી **‘नरलोकताम्’** મનુષ્યભાવને પ્રાપ્ત થયેલી હોઈ (તે ઉર્વશી આવી).॥ ૧૭॥ ૧૮॥

राजोवाच

स्वागतं ते वरारोहे आस्यतां करवाम किम्।
संरमस्व मया साकं रतिर्नौ शाश्वतीः समाः॥ १९

રાજા બોલ્યા — હે સુંદરી, તમારું સ્વાગત છે. બિરાજો, અમે તમારે માટે શું કરીએ? મારી સાથે તમે ક્રીડા કરો. આપણા બંનેનો પ્રેમ અનંતકાળ (અનેક વર્ષો) પર્યન્ત રહો.॥ ૧૯॥

नौ आवयोः रतिरस्त्विति ॥ १९ ॥

'**नौ**' આપણા બંનેનો પ્રેમ (વર્ષો સુધી) રહો. ॥ ૧૯ ॥

उर्वश्युवाच

कस्यास्त्वयि न सज्जेत मनो दृष्टिश्च सुन्दर।
यदङ्गान्तरमासाद्य च्यवते ह रिरंसया॥ २०

यस्य तवाङ्गान्तरं वक्ष आसाद्य रिरंसया रन्तुमिच्छया ह स्फुटं न च्यवते नापयाति। यद्यस्मादिति वा॥ २०॥

ઉર્વશી બોલી — હે સુંદર, કઈ સ્ત્રીનું મન અને દૃષ્ટિ તમારામાં આસક્ત ન થાય? જે (આપ)નું વક્ષ:સ્થળ પ્રાપ્ત કરીને રમણ કરવાની ઈચ્છાથી મન અને દૃષ્ટિ ત્યાંથી ખસતાં જ નથી. ॥ ૨૦॥

'**यस्य**' જે આપનું '**अङ्ग-अन्तरम्**' દેહના મધ્યભાગરૂપ વક્ષ:સ્થળ પ્રાપ્ત કરીને '**रिरंसया**' રમણ કરવાની ઈચ્છાથી '**ह**' સ્પષ્ટપણે '**न च्यवते**' ખસતાં નથી. અથવા '**यत्**' કારણ કે '**हे अङ्ग**' હે રાજા, '**अन्तरम्**' અવકાશ પ્રાપ્ત કરીને રમણ કરવાની ઈચ્છાથી મનમાં વિકૃતિ જન્મે છે. ॥ ૨૦॥

शापावसाने भाषाभङ्गमिषेण जिगमिषोस्तस्या भाषाबन्धमाह—**एताविति** द्वाभ्याम्।

શાપની અવધિ પૂરી થાય ત્યારે પ્રતિજ્ઞાભંગ થવાના બહાનાથી પાછા જવાની ઈચ્છાવાળી તે ઉર્વશીની પ્રતિજ્ઞા બે શ્લોકો દ્વારા જણાવે છે— '**एतौ इति।**'

एतावुरणकौ राजन् न्यासौ रक्षस्व मानद।
संरंस्ये भवता साकं श्लाघ्यः स्त्रीणां वरः स्मृतः॥ २१

હે રાજા, હે માન આપનાર, આ થાપણરૂપ બે ઘેટાનું તમે રક્ષણ કરો. (તેમનું રક્ષણ કરશો ત્યાં સુધી) હું તમારી સાથે રમણ કરીશ. (રૂપ, ગુણ વગેરેને કારણે) જે પ્રશંસનીય પુરુષ છે તે સ્ત્રીઓનો (અભીષ્ટ) વર કહેવાયો છે. ॥ ૨૧ ॥

उरणकौ मेषौ न्यासौ निक्षेपरूपौ रक्षस्व। यः श्लाघ्यः स एव स्त्रीणां वरः स्मृतः। अतो विजातीयत्वं न दोष इति भावः॥ २१॥

'**उरणकौ**' બે ઘેટાઓનું '**न्यासौ**' થાપણરૂપે રક્ષણ કરજો. જે પ્રશંસનીય છે તે જ સ્ત્રીઓનો (અભીષ્ટ) વર કહેવાયો છે. આથી (દેવત્વ અને મનુષ્યત્વ એમ) જુદી જાતિ હોવાનો દોષ નથી, એવો ભાવ છે. ॥ ૨૧ ॥

घृतं मे वीर भक्ष्यं स्यान्नेक्षे त्वान्यत्र मैथुनात्।
विवाससं तत् तथेति प्रतिपेदे महामनाः॥ २२

હે વીર, ઘી મારું ભોજન થશે. મૈથુન સિવાય હું તમને નિર્વસ્ત્ર નહીં જોઈ શકું. તે (સાંભળી) મોટા મનવાળા રાજાએ 'તે પ્રમાણે જ થાઓ.' એમ (કહી પ્રતિજ્ઞાનો) સ્વીકાર કર્યો. ॥ ૨૨ ॥

हे वीर, घृतं मे भक्ष्यं स्यात्। 'अमृतं वा आज्यम्' इति श्रुतेः। देवानां चामृताशित्वात्। मैथुनादन्यत्र विवाससं त्वां नेक्षिष्ये। इति प्रतिपेदेऽङ्गीकृतवान्॥ २२॥

હે વીર, ઘી મારું ભોજન થાય. 'ખરેખર, આજ્ય (ઘી) અમૃત છે.' કારણ કે એમ શ્રુતિ છે તથા દેવો અમૃતભોજી હોય છે. મૈથુન સિવાય અન્ય સ્થળે તમને નિર્વસ્ત્ર જોઈ શકીશ નહીં, એમ '**प्रतिपेदे**' પ્રતિજ્ઞાનો સ્વીકાર કર્યો. ॥ ૨૨ ॥

तदेवाह—**अहो इति।**

अहो रूपमहो भावो नरलोकविमोहनम्।
को न सेवेत मनुजो देवीं त्वां स्वयमागताम्॥ २३

॥ २३ ॥

तया स पुरुषश्रेष्ठो रमयन्त्या यथार्हतः।
रेमे सुरविहारेषु कामं चैत्ररथादिषु॥ २४

॥ २४ ॥

रममाणस्तया देव्या पद्मकिञ्जल्कगन्धया।
तन्मुखामोदमुषितो मुमुदेऽहर्गणान् बहून्॥ २५

पद्मकिंजल्कस्य गन्ध इव गन्धो यस्यास्तस्या मुखामोदेन मुषितः प्रलोभितः सन्॥ २५ ॥

अपश्यन्नुर्वशीमिन्द्रो गन्धर्वान् समचोदयत्।
उर्वशीरहितं मह्यमास्थानं नातिशोभते॥ २६

मह्यं मम॥ २६ ॥

ते उपेत्य महारात्रे तमसि प्रत्युपस्थिते।
उर्वश्या उरणौ जह्रुर्न्यस्तौ राजनि जायया॥ २७

महारात्रे मध्यरात्रे। 'महानिशा द्वे घटिके रात्रौ मध्यमयामयोः।' इति स्मृतेः॥ २७॥

निशम्याक्रन्दितं देवी पुत्रयोर्नीयमानयोः।
हतास्म्यहं कुनाथेन नपुंसा वीरमानिना॥ २८

जिगमिषोस्तस्याः परुषोक्तिमाह—हतास्मीति सार्धेन। नपुंसा नपुंसकेन॥ २८॥

(સ્વીકાર કર્યો) તે જ કહે છે— '**अहो इति।**'

અહો! મનુષ્યલોકને મોહ પમાડનારું તારું રૂપ, તારા હાવભાવ સુંદર છે! પોતાની જાતે જ આવેલી અપ્સરા એવી તને કયો મનુષ્ય ન સેવે?॥ ૨૩॥ ૨૩॥

યથાયોગ્ય રીતે રમણ કરાવતી તે ઉર્વશી સાથે પુરુષશ્રેષ્ઠ એવો તે પુરૂરવા ચૈત્રરથ વગેરે (નંદનવન, વૈભ્રાજક, પારિભદ્ર) દેવોનાં ઉદ્યાનોમાં ઇચ્છાનુસાર રમણ કરવા લાગ્યો.॥ ૨૪॥ ૨૪॥

કમળકેસરની સુગંધવાળી તે અપ્સરા સાથે રમણ કરતા તેણે તેના મુખની (આમોદ) સુવાસથી પ્રલોભિત થઈ ઘણાં વર્ષો સુધી આનંદ કર્યો.॥ ૨૫॥

કમળકેસરની સુગંધ જેવી સુગંધ છે જેની તેના મુખની સુવાસથી '**मुषितः**' પ્રલોભિત થઈ॥ ૨૫॥

(ત્યાર પછી એક વખત સભામાં) ઉર્વશીને ન જોતાં ઇન્દ્રે 'ઉર્વશી વગરનું મારું સભાસ્થાન બહુ શોભતું નથી.' (એમ વિચારીને ઉર્વશીને પાછી લઈ આવવા માટે) ગંધર્વોને પ્રેરણા કરી.॥ ૨૬॥

'**मह्यम्**' **मम** મારું॥ ૨૬॥

મધ્યરાત્રિના સમયે અંધકાર છવાઈ ગયો ત્યારે જાયા ઉર્વશી દ્વારા રાજાને થાપણ તરીકે સોંપાયેલા બંને ઘેટાઓને તે ગંધર્વોએ આવીને ચોરી લીધા.॥ ૨૭॥

'**महारात्रे**' મધ્યરાત્રિએ 'રાત્રિમાં, બે મધ્યમ પહોરની (બીજા પહોરની છેલ્લી ઘડી અને ત્રીજાની પહેલી ઘડી)' એમ સ્મૃતિ છે.॥ ૨૭॥

લઈ જવાતા ઘેટારૂપ પુત્રોનું આક્રંદ સાંભળીને અપ્સરા (બોલી), 'પોતાને વીર માનતા, નપુંસક, દુષ્ટ પતિ દ્વારા હું નાશ પામી છું.'॥ ૨૮॥

જવાની ઇચ્છાવાળી તે ઉર્વશીનાં કઠોર વચનો દોઢ શ્લોકોથી કહે છે— '**हता-अस्मि इति।**' '**नपुंसा**' નપુંસક પતિ દ્વારા॥ ૨૮॥

यद्विश्रम्भादहं नष्टा हृतापत्या च दस्युभिः।
यः शेते निशि संत्रस्तो यथा नारी दिवा पुमान्॥ २९

यथा नारी तथा संत्रस्तः शेते॥ २९॥

इति वाक्सायकैर्विद्धः प्रतोत्रैरिव कुञ्जरः।
निशि निस्त्रिंशमादाय विवस्त्रोऽभ्यद्रवद् रुषा॥ ३०

॥ ३०॥

ते विसृज्योरणौ तत्र व्यद्योतन्त स्म विद्युतः।
आदाय मेषावायान्तं नग्नमैक्षत सा पतिम्॥ ३१

विद्युतो विशिष्टद्युतिमन्तो व्यद्योतन्त दीप्तिम- कुर्वत। यद्वा तदैव तडितः प्राकाशन्तेत्यर्थः। नग्नमैक्षत। अतो भाषाभङ्गान्निर्जगामेति ज्ञेयम् ॥ ३१॥

ऐलोऽपि शयने जायामपश्यन् विमना इव।
तच्चित्तो विह्वलः शोचन् बभ्रामोन्मत्तवन्महीम्॥ ३२

॥ ३२॥

स तां वीक्ष्य कुरुक्षेत्रे सरस्वत्यां च तत्सखीः।
पञ्च प्रहृष्टवदनाः प्राह सूक्तं पुरूरवाः॥ ३३

तस्याः सखीश्च पञ्च वीक्ष्य। सूक्तं शोभनं वचनम् 'हये जाये' इत्यादि॥ ३३॥

वंशीधरी—'हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे वचांसि मिश्रा कृणवावहै नु। न नौ मन्त्रा अनुदितास एते मयस्करन्परतरे चनाहन्॥' इत्येवंरूपं सूक्तं व्याख्यातं चेदमेकादशस्कन्धषड्विंशाध्याये।

જેના ઉપર વિશ્વાસ રાખવાથી, ચોરો દ્વારા જેનાં સંતાન હરી લેવામાં આવ્યાં છે તેવી હું નાશ પામી છું, જે દિવસે પુરુષ છે પણ રાત્રે નારીની જેમ ભયભીત થઈ સૂઈ રહે છે.॥ ૨૯॥

(રાત્રે) નારીની જેમ ભયભીત થઈ સૂઈ રહે છે.॥ ૨૯॥

અંકુશોથી વીંધાયેલા હાથીની જેમ વાક્યબાણોથી વીંધાયેલો તે રાજા રાત્રે તલવાર લઈ વસ્ત્રવિહોણો જ ક્રોધથી દોડ્યો.॥ ૩૦॥ ૩૦॥

તે ગંધર્વોએ ઘેટાઓ છોડી ત્યાં પોતે અત્યંત પ્રકાશમાન થઈ અજવાળું કર્યું. તે ઉર્વશીએ ઘેટાઓને લઈને આવતા નગ્ન પતિને જોયો.॥ ૩૧॥

'**विद्युतः**' વિશિષ્ટ રીતે પ્રકાશમાન થઈને '**व्यद्योतन्त**' અજવાળું કર્યું. અથવા તે જ સમયે વીજળીઓ પ્રકાશી, એમ અર્થ છે. જેથી (તેણે તે રાજાને) નગ્ન જોયો. આથી પ્રતિજ્ઞાભંગ (વચનની વક્રતા) થવાથી તે ચાલી ગઈ, એમ સમજવું.॥ ૩૧॥

પુરૂરવા પણ શય્યામાં જાયા ઉર્વશીને ન જોતાં વિહ્‌વળ થઈ શોક કરતો, તેનામાં મનવાળો હોઈ વિમનસ્ક થઈ, ઉન્મત્તની જેમ પૃથ્વી પર ભટકવા લાગ્યો.॥ ૩૨॥ ૩૨॥

તે પુરૂરવાએ તે ઉર્વશીને અને તેની પાંચ પ્રસન્નવદના સખીઓને કુરુક્ષેત્રમાં સરસ્વતી નદીના કિનારે જોઈને સુંદર વચન કહ્યું.॥ ૩૩॥

(તેને) અને તેની પાંચ સખીઓને જોઈને, '**सु-उक्तम्**' સુંદર વચન '**हये जाये**' વગેરે॥ ૩૩॥

'અરે જાયા, મનથી આપણે વચનોને મિશ્ર કરીએ (વાતો કરીએ). હે ભયંકર સ્ત્રી, તું ઊભી રહે, આપણા બંનેના આ મંત્રો (મનોભાવો) અનુદિત (બોલ્યા વગરના) હોવાથી પહેલાંના દિવસોમાં (થયેલા વાર્તાલાપો) સુખકર ન હતા.' (ઋ.૧૦/૯૫/૧) આ પ્રકારનું સૂક્ત ભાગવતના અગિયારમા સ્કન્ધના છવ્વીસમા અધ્યાય (ઐલગીત)માં વ્યાખ્યા કરવામાં આવ્યું છે.

तदेवार्थत आह—**अहो इति** द्वाभ्याम्।

अहो जाये तिष्ठ तिष्ठ घोरे न त्यक्तुमर्हसि।
मां त्वमद्याप्यनिर्वृत्य वचांसि कृणवावहै॥ ३४

अनिर्वृत्य मत्कृतां निर्वृतिमप्राप्य। पाठान्तरे मां निर्वृतिमगमयित्वा मन्त्राननुक्त्वेति वा। वचांसि कृणवावहै गोष्टीः करवावहै॥ ३४॥

सुदेहोऽयं पतत्यत्र देवि दूरं हृतस्त्वया।
खादन्त्येनं वृका गृध्रास्त्वत्प्रसादस्य नास्पदम्॥ ३५

सुदेहोऽतिकमनीयोऽयं मम देहः॥ ३५॥

'पुरूरवो मा मृथा' इत्यादि तस्याः सूक्तं तदप्यर्थत आह—**मा मृथा इति** चतुर्भिः—

उर्वश्युवाच

मा मृथाः पुरुषोऽसि त्वं मा स्म त्वाऽद्युर्वृका इमे।
क्वापि सख्यं न वै स्त्रीणां वृकाणां हृदयं यथा॥
॥ ३६॥

मा म्रियस्व। पुरुषोऽसि। अतो धैर्यमावहेति भावः। इमे वृकाः प्रसिद्धा इन्द्रियाणि वा त्वा इति त्वां मा स्म अद्युर्भक्षयेयुः। इन्द्रियवशो मा भवेत्यर्थः॥ ३६॥

તે જ વાતને અર્થતઃ બે શ્લોકો વડે કહે છે— **'अहो इति।'**

ઓહ! ભાર્યા! ઊભી રહે, ઊભી રહે. હે નિષ્ઠુર સ્ત્રી, મારા દ્વારા થતા આનંદને પ્રાપ્ત ન કરીને તું મને ત્યજવા માટે યોગ્ય નથી. આજે પણ આપણે ગોષ્ઠિ કરીએ.॥ ૩૪॥

'अनिर्वृत्य' મારે કારણે થતા આનંદને ન પ્રાપ્ત કરીને– પાઠાંતરમાં **'अनिवर्त्य'** હોય તો મને આનંદ પ્રાપ્ત કરાવ્યા વગર અથવા વાતો ન કરીને (તું મને ત્યજવા યોગ્ય નથી). **'वचांसि कृणवावहै'** આપણે ગોષ્ઠિ કરીએ. ॥ ૩૪॥

હે દેવી, તારા દ્વારા દૂર (દેશમાં) લઈ જઈ (ત્યાગી દેવામાં) આવેલો આ મારો અતિ કમનીય દેહ તારી કૃપાનું પાત્ર નહીં બને, તો અહીં (જ) પડી જશે અને વરુઓ તેમ જ ગીધડાંઓ એને ખાઈ જશે.॥ ૩૫॥

'सुदेहः' અતિ કમનીય એવો મારો આ દેહ॥ ૩૫॥

पुरुरवो मा मृथा मा प्र पप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उ क्षन्। न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता॥ (ऋ.१०/९५/१५) આ ઋચાનો અર્થ આ શ્લોકમાં ચાર શ્લોકોથી કહે છે— **'मा मृथाः इति।'**

ઉર્વશી બોલી — તમે ન મરશો. તમે પુરુષ છો (માટે ધીરજ ધરો). આ વરુઓ તમને ખાઈ ન જાય. કોઈની પણ સાથે સ્ત્રીઓની મિત્રતા હોતી નથી. (ક્રૂર) વરુઓનાં હૃદય જેવાં સ્ત્રીઓનાં હૃદય હોય છે.॥ ૩૬॥

ન મરશો. તમે પુરુષ છો માટે ધૈર્ય ધરો, એવો ભાવ છે. આ પ્રસિદ્ધ વરુઓ અથવા ઈન્દ્રિયો **'त्वा इति'** તમને **'मा स्म अद्युः'** ખાઈ ન જાય, ઈન્દ્રિયોને વશ ન થાઓ, એમ અર્થ છે.॥ ૩૬॥

નોંધ—ભાગવતના શ્લોકોમાં ભગવાનવેદવ્યાસજી વેદના સૂક્તો ઉદ્ધૃત કરે છે, તે અહીં પણ જોઈ શકાય છે.

स्त्रियो ह्यकरुणाः क्रूरा दुर्मर्षाः प्रियसाहसाः।
घ्नन्त्यल्पार्थेऽपि विश्रब्धं पतिं भ्रातरमप्युत॥ ३७

प्रिये निमित्ते साहसं यासाम्॥ ३७॥

विधायालीकविश्रम्भमज्ञेषु त्यक्तसौहृदाः।
नवं नवमभीप्सन्त्यः पुंश्चल्यः स्वैरवृत्तयः॥ ३८

॥ ३८॥

तं सान्त्वयति—**संवत्सरान्त इति**।

संवत्सरान्ते हि भवानेकरात्रं मयेश्वर।
वत्स्यत्यपत्यानि च ते भविष्यन्त्यपराणि भोः॥ ३९

॥ ३९॥

अन्तर्वत्नीमुपालक्ष्य देवीं स प्रययौ पुरम्।
पुनस्तत्र गतोऽब्दान्ते उर्वशीं वीरमातरम्॥ ४०
उपलभ्य मुदा युक्तः समुवास तया निशाम्।
अथैनमुर्वशी प्राह कृपणं विरहातुरम्॥ ४१

अपराणीति वचनादन्तर्वत्नीमुपालक्ष्य ज्ञात्वा॥ ४०॥ ४१॥

गन्धर्वानुपधावेमांस्तुभ्यं दास्यन्ति मामिति।
तस्य संस्तुवतस्तुष्टा अग्निस्थालीं ददुर्नृप।
उर्वशीं मन्यमानस्तां सोऽबुध्यत चरन् वने॥ ४२

अनेनाग्निना कर्म कृत्वा तद्वशादुर्वशीं प्राप्स्यतीत्यभिप्रायेणाग्निस्थालीं ददुः। स तु तां स्थालीमेवोर्वशीं मन्यमानस्तया सहितो वने विचरन्नेयमुर्वशी किंत्वग्निस्थालीत्यबुध्यत॥ ४२॥

ખરેખર, સ્ત્રીઓ નિર્દય, ક્રૂર, ક્ષમારહિત, (પોતાના) સુખને માટે સાહસ કરનારી હોય છે. અલ્પ સ્વાર્થ કાજે પણ વિશ્વાસ રાખનાર પતિને કે ભાઈને પણ હણી નાખે છે.॥ ૩૭॥

સુખને માટે સાહસ છે જેમનું તેવી સ્ત્રીઓ॥ ૩૭॥

જેમણે સહૃદયતાનો ત્યાગ કર્યો છે તેવી સ્ત્રીઓ અજ્ઞ (મૂર્ખ) જનોમાં ખોટો વિશ્વાસ ઊભો કરી, નવો નવો (શિકાર) પ્રાપ્ત કરવા ઇચ્છતી વ્યભિચારિણી અને સ્વચ્છન્દચારિણી બને છે.॥ ૩૮॥ ૩૮॥

તે રાજાને સાન્ત્વન આપે છે— '**संवत्सरान्ते इति।**'

હે રાજેશ્વર, વર્ષને અંતે તમે મારી સાથે એક રાત્રિનો વાસ કરશો તથા તમને બીજાં સંતાનો પણ થશે.॥ ૩૯॥ ૩૯॥

દેવી ઉર્વશીને ગર્ભવતી જાણીને તે પુરૂરવા (પોતાના) નગરમાં પાછો ફર્યો. વર્ષને અંતે ફરી પાછો ત્યાં (કુરુક્ષેત્રમાં) ગયેલો રાજા ઉર્વશીને વીર પુત્રની માતા બનેલી જોઈ હર્ષ પામ્યો અને તેની સાથે એક રાત રહ્યો. પછી વિરહાતુર થયેલા એ દીન રાજાને ઉર્વશીએ કહ્યું.॥ ૪૦॥ ૪૧॥

બીજાં સંતાનો પણ થશે, એ વચનથી ઉર્વશીને ગર્ભવતી જાણીને॥ ૪૦॥ ૪૧॥

આ ગંધર્વોની તમે સ્તુતિ કરો. તેઓ તમને મને (ઉર્વશીને) આપશે. હે રાજા પરીક્ષિત, તે રાજાએ ગંધર્વોની સ્તુતિ કરી ત્યારે પ્રસન્ન થયેલા ગંધર્વોએ રાજાને અગ્નિસ્થાપન કરવાનું પાત્ર આપ્યું. તે પાત્રને ઉર્વશી માનતા અને વનમાં ભટકતા રાજાએ (પછી) જાણ્યું કે આ અગ્નિની થાળી છે.॥ ૪૨॥

'આ અગ્નિ દ્વારા કર્મ કરીને તેનાથી ઉર્વશીને તે પ્રાપ્ત કરશે.' એવા અભિપ્રાયથી અગ્નિની થાળી આપી, પરંતુ તે થાળીને જ ઉર્વશી માનતા અને તેની સાથે વનમાં ભટકતા રાજાએ જાણ્યું કે આ ઉર્વશી નથી પણ થાળી છે.॥ ૪૨॥

स्थालीं न्यस्य वने गत्वा गृहानाध्यायतो निशि।
त्रेतायां संप्रवृत्तायां मनसि त्रय्यवर्तत॥ ४३

तते થાળીને વનમાં જ મૂકી, ઘરે (પાછા) જઈ, નિત્ય પ્રતિ રાત્રે તેનું જ ધ્યાન ધરતાં તે રાજાનાં મનમાં, ત્રેતાયુગનો પ્રારંભ થતાં (કર્મનો બોધ કરનારા) ત્રણ વેદો ઉત્પન્ન થયા.॥ ४૩॥

ततश्च तां स्थालीं वने स्थापयित्वा गृहान्गत्वा निशि नित्यं तामेवाध्यायतस्तस्य मनसि त्रेतायां त्रयी अवर्तत कर्मबोधकं वेदत्रयं प्रादुरभूत्॥ ४३॥

(આ ઉર્વશી નથી પણ થાળી છે એવું જ્ઞાન પ્રાપ્ત થયા) પછી તે થાળીને વનમાં સ્થાપીને, ઘરે જઈ રાત્રે નિત્ય તે ઉર્વશીનું જ ધ્યાન ધરતાં તેના મનમાં, ત્રેતાયુગનો પ્રારંભ થતાં '**त्रयी अवर्तत**' કર્મનો બોધ કરનારા ત્રણ વેદો પ્રકટ થયા.॥ ४૩॥

स्थालीस्थानं गतोऽश्वत्थं शमीगर्भं विलक्ष्य सः।
तेन द्वे अरणी कृत्वा उर्वशीलोककाम्यया॥ ४४

થાળી મૂકી હતી તે સ્થાનમાં ગયેલા તે રાજાએ શમીવૃક્ષના ગર્ભમાં (ઊગેલા) પીપળાને જોઈ, તે પીપળામાંથી બે અરણિ બનાવીને ઉર્વશીના લોકમાં જવાની ઈચ્છાથી॥ ४૪॥

ततः स्थालीस्थानं गतः सन् शम्या गर्भे जातमश्वत्थं विलक्ष्य अस्मिन्नसावग्निरस्तीति विशेषेण लक्षयित्वा तेनाश्वत्थेन द्वे अरणी कृत्वाऽग्निं ममन्थेति शेषः। 'शमीगर्भादग्निं ममन्थ' इति श्रुतिः॥ ४४॥

ત્યાર પછી થાળી મૂકી હતી તે સ્થાને ગયેલા રાજાએ શમીવૃક્ષના ગર્ભમાં ઊગેલા પીપળાને જોઈ, આમાં જ તે અગ્નિ છે, એમ વિશેષરૂપે લક્ષમાં લઈ, તે પીપળામાંથી બે અરણિઓ બનાવી, અગ્નિનું મંથન કર્યું, એટલું શેષ છે. 'શમીવૃક્ષના ગર્ભમાંથી અગ્નિનું મંથન કર્યું.' એમ શ્રુતિ છે.॥ ४૪॥

मथनप्रकारमाह—

મંથન કરવાની રીત જણાવે છે—

उर्वशीं मन्त्रतो ध्यायन्नधरारणिमुत्तराम्।
आत्मानमुभयोर्मध्ये यत् तत् प्रजननं प्रभुः॥ ४५

નીચેની અરણિમાં ઉર્વશીનું, ઉપરની અરણિમાં પોતાનું અને બંને અરણિની વચ્ચે જે કાષ્ઠ હોય તેનું પુત્ર તરીકે ધ્યાન કરતાં પ્રભુ પુરૂરવાએ (અગ્નિ પ્રજ્વલિત કરનારા મંત્રોથી અગ્નિનું મંથન કર્યું.)॥ ४૫॥

अधरारणिमुर्वशीं ध्यायन्नुत्तरारणिं आत्मानं ध्यायन्नुभयोर्मध्ये यत्काष्ठं तत्प्रजननं पुत्रं ध्यायन्। तथा च मन्त्रः—'उर्वश्यस्यायुरसि पुरूरवाः' इति॥ ४५॥

નીચેની અરણિમાં ઉર્વશીનું ધ્યાન ધરતાં, ઉપરની અરણિમાં પોતાનું ધ્યાન ધરતાં, બંનેની વચ્ચે જે કાષ્ઠ છે તેનું '**प्रजननम्**' પુત્ર તરીકે ધ્યાન ધરતાં. તે પ્રમાણે મંત્ર છે— 'હે અધરારણિ (નીચે રહેલા અરણિકાષ્ઠ)! તું ઉર્વશી છે અને આ પુરૂરવાનું આયુષ્ય વધારનારી છે.'–(શુ.ય.મા.સં.૫/૨)॥ ४૫॥

तस्य निर्मन्थनाज्जातो जातवेदा विभावसुः ।
त्रय्या स विद्यया राज्ञा पुत्रत्वे कल्पितस्त्रिवृत् ॥ ४६

મંથન દ્વારા જેમાંથી ભોગવવા યોગ્ય ધન ઉત્પન્ન થાય છે તેવો અગ્નિ ઉત્પન્ન થયો. તે અગ્નિ ત્રણ વેદવિદ્યાથી આહવનીય, ગાર્હપત્ય અને દક્ષિણાગ્નિ– એમ ત્રણ પ્રકારે થયો હોઈ રાજા પુરૂરવા દ્વારા પુત્રરૂપે કલ્પવામાં આવ્યો. ॥ ૪૬ ॥

तस्य तेन कृतान्निर्मन्थनाद्विभावसुरग्निर्जातः । कथंभूतः । जातं वेदो धनं भोग्यं यस्मात् । स च त्रय्या विद्यया विहितेनाधानसंस्कारेण त्रिवृदाहवनीयादिरूपः, सन् राज्ञा पुरूरवसा पुत्रत्वे कल्पितः । पुण्यलोकप्रापकत्वात् ॥ ४६ ॥

'तस्य' तेन (વંશીધરી – છઠ્ઠી વિભક્તિ તૃતીયાના અર્થમાં છે.) તે પુરૂરવા દ્વારા કરવામાં આવેલા મંથનથી **'विभावसुः'** અગ્નિ ઉત્પન્ન થયો. કેવો અગ્નિ? ઉત્પન્ન થયું છે **'वेदः'** ભોગવવા યોગ્ય ધન જેમાંથી, તેવો જાતવેદા અગ્નિ અને તે **'त्रय्या विद्यया'** ત્રણ વેદની વિદ્યાથી શાસ્ત્રવિહિત આધાન સંસ્કારથી આહવનીય વગેરેરૂપે ત્રણ પ્રકારે થયો હોઈ રાજા પુરૂરવા દ્વારા પુત્રરૂપે કલ્પવામાં આવ્યો, કારણ કે તે પુણ્યલોક પ્રાપ્ત કરાવનારો છે. ॥ ૪૬ ॥

तदाह—**तेनेति** ।

તે કહે છે— **तेन इति ।**

तेनायजत यज्ञेशं भगवन्तमधोक्षजम् ।
उर्वशीलोकमन्विच्छन् सर्वदेवमयं हरिम् ॥ ४७

ઉર્વશીના લોકની ઈચ્છા કરતા પુરૂરવાએ તે અગ્નિ દ્વારા સર્વદેવસ્વરૂપ, ઈન્દ્રિયાતીત, યજ્ઞપતિ ભગવાન શ્રીહરિનું યજન કર્યું. ॥ ૪૭ ॥

॥ ४७ ॥ ॥ ૪૭ ॥

नन्वनादिर्वेदत्रयबोधितो ब्राह्मणादीनामिन्द्राद्यनेकदेवयजनेन स्वर्गप्राप्तिहेतुः कर्ममार्गः कथं सादिरिव वर्ण्यते तत्राह—**एक एवेति** द्वाभ्याम् ।

શંકા કરવામાં આવી છે કે કર્મમાર્ગ તો અનાદિ છે અને ત્રણ વેદમાંથી તેવું જ્ઞાન થાય છે. બ્રાહ્મણાદિ માટે ઈન્દ્રાદિ અનેક દેવના યજન દ્વારા તે કર્મમાર્ગ સ્વર્ગપ્રાપ્તિનો હેતુ બને છે. તે કર્મમાર્ગને આદિવાળો કેમ કહેવાય? તે માટે બે શ્લોકો વડે ઉત્તર આપે છે— **'एकः एव इति ।'**

एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः ।
देवो नारायणो नान्य एकोऽग्निर्वर्ण एव च ॥ ४८

પૂર્વે (સત્યયુગમાં) સર્વ વાઙ્મયના બીજરૂપ પ્રણવ (ઓમ્કાર)રૂપે એક માત્ર વેદ હતો. એક માત્ર નારાયણ દેવરૂપ હતા, બીજા દેવ ન હતા. લૌકિક અગ્નિ પણ એક જ હતો અને ('હંસ' નામનો) કેવળ એક જ વર્ણ હતો. ॥ ૪૮ ॥

पुरा कृतयुगे सर्ववाङ्मयः सर्वासां वाचां बीजभूतः प्रणव एक एव वेदः । देवश्च नारायण एक एव । अग्निश्चैक एव लौकिकः । वर्णश्चैक एव हंसो नाम ॥ ४८ ॥

'पुरा' પૂર્વે સત્યયુગમાં **'सर्ववाङ्मयः'** સર્વ વાણીના બીજરૂપ પ્રણવ જ એક વેદ હતો. નારાયણ એક માત્ર દેવરૂપ હતા. લૌકિક અગ્નિ એક જ હતો. 'હંસ' નામનો વર્ણ પણ એક જ હતો. ॥ ૪૮ ॥

क्रमसंदर्भः—ब्रह्मकल्पस्य प्रथमसत्ययुगः।

पुरूरवस एवासीत् त्रयी त्रेतामुखे नृप।
अग्निना प्रजया राजा लोकं गान्धर्वमेयिवान्॥ ४९

વેદત્રયી तु पुरूरवसः सकाशादासीत्। एयिवान् प्राप। अयं भावः—कृतयुगे सत्त्वप्रधानाः प्रायशः सर्वेऽपि ध्याननिष्ठाः। रजःप्रधाने तु त्रेतायुगे वेदादिविभागेन कर्ममार्गः प्रकटो बभूवेति॥ ४९॥

બ્રાહ્મકલ્પનો પ્રથમ સત્યયુગ

હે નૃપ પરીક્ષિત, ત્રેતાયુગના આરંભમાં પુરૂરવાથી જ વેદત્રયીનો આરંભ થયો. પુત્રરૂપ અગ્નિ દ્વારા રાજા પુરૂરવાએ ગંધર્વલોકને પ્રાપ્ત કર્યો.॥ ૪૯॥

ત્રણ વેદોનો આરંભ તો પુરૂરવાથી માંડીને થયો. **'एयिवान्'** પ્રાપ્ત થયા. ભાવ આ છે— સત્યયુગમાં લોકો સત્ત્વપ્રધાન હોવાથી મોટે ભાગે બધા જ ધ્યાનનિષ્ઠ હતા. ત્રેતાયુગમાં રજોગુણ મુખ્ય હોવાથી વેદ વગેરેના વિભાગ દ્વારા કર્મમાર્ગ પ્રકટ થયો.॥ ૪૯॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे ऐलोपाख्याने चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

*****

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

ઋચીક, જમદગ્નિ અને પરશુરામજીનું ચરિત્ર

ततः पञ्चदशे गाधिरैलपुत्रान्वयोऽजनि।
यद्दौहित्रसुतो रामः कार्तवीर्यमहन् रुषा॥ १॥

(પુરૂરવા ગંધર્વલોકમાં ગયો) પછી પુરૂરવાના પુત્રનો વંશજ ગાધિ જન્મ્યો, જેના દૌહિત્ર (પુત્રીના પુત્ર જમદગ્નિ)ના પુત્ર પરશુરામે કાર્તવીર્ય (સહસ્રાર્જુન)ને ક્રોધથી હણ્યો તે (કથા) પંદરમા અધ્યાયમાં છે.॥ ૧॥

श्रीशुक उवाच

ऐलस्य चोर्वशीगर्भात्षडासन्नात्मजा नृप।
आयुः श्रुतायुः सत्यायू रयोऽथ विजयो जयः॥ १॥ १॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — હે નૃપ પરીક્ષિત, ઉર્વશીના ગર્ભથી પુરૂરવાના આયુ, શ્રુતાયુ, સત્યાયુ, રય, વિજય અને જય નામના છ પુત્રો થયા.॥ ૧॥ ૧॥

सुग्रहत्वायाल्पादिक्रमेण श्रुतायुप्रभृतिषण्णां वंशानाह—**श्रुतायोरित्यादिना**।

ઝડપથી જાણવા માટે અલ્પ પુત્રાદિના ક્રમથી શ્રુતાયુ વગેરે છ પુત્રોના વંશોનું વર્ણન કરે છે— **'श्रुतायोः'** વગેરે દ્વારા.

श्रुतायोर्वसुमान् पुत्रः सत्यायोश्च श्रुतञ्जयः।
रयस्य सुत एकश्च जयस्य तनयोऽमितः॥ २

શ્રુતાયુના પુત્ર વસુમાન, સત્યાયુના (પુત્ર) શ્રુતંજય, રયના પુત્ર એક (નામના) અને જયના પુત્ર અમિત થયા.॥ ૨॥

एक एकसंज्ञः अमितस्तत्संज्ञः॥ २॥

(રયના) **'एकः'** એક નામનો, (જયના) અમિત નામના (પુત્ર)॥ ૨॥

भीमस्तु विजयस्याथ काञ्चनो होत्रकस्ततः।
तस्य जह्नुः सुतो गङ्गां गण्डूषीकृत्य योऽपिबत्।
जह्नोस्तु पूरुस्तत्पुत्रो बलाकश्चात्मजोऽजकः॥ ३

જહ્નોઃ પૂરુસ્તસ્ય બલાકસ્તસ્યાજકઃ ॥ ૩ ॥

विजयना पुत्र भीम थया. पछी भीमना कांचन, तेना होत्रक अने तेना पुत्र जह्नु थया, जे (भगीरथनी पाछळ आवतां) गंगाजीने (यज्ञसामग्री जळमां डुबाडी देवाने कारणे कोपायमान थई, योगबळथी अंजलिमां समावी) घूंटडो करीने पी गया हता. जह्नुना पुत्र पूरु थया, तेना पुत्र बलाक अने बलाकना अजक थया.॥ ३॥

जह्नुना पुत्र पूरु, तेना बलाक अने तेना अजक थया.॥ ३॥

ततः कुशः कुशस्यापि कुशाम्बुस्तनयो वसुः।
कुशनाभश्च चत्वारो गाधिरासीत् कुशाम्बुजः॥ ४
॥ ४ ॥

ते (अजक)ना (पुत्र) कुश, कुशना पण कुशाम्बु, तनय, वसु अने कुशनाभ, एम चार पुत्रो थया. कुशाम्बुना गाधि थया.॥ ४॥ ४॥

गाधेः पुत्रो विश्वामित्रो ब्रह्मर्षिरभूदित्युत्तराध्यायान्ते वक्ष्यति—'गाधेरभून्महातेजाः' इत्यादिना, तत्र तावत्तदुपोद्घातत्वेन भृगुवंशसंभवस्य ऋचीकस्य चरित्रं प्रसक्तानुप्रसक्तेन च परशुरामावतारचरितमाह—**तस्य सत्यवतीमित्यादिना**।

गाधिना पुत्र विश्वामित्र ब्रह्मर्षि थया, एम पछीना अध्याय (१६)ना अंते कहेशे, 'गाधिना महातेजस्वी (पुत्र) थया.' (श्रीमद् भा.९/१६/२८) वगेरे द्वारा. त्यां प्रस्तावनारूपे भृगुवंशमां जन्मेला ऋचीक ऋषिना चरित्रना प्रसंगानुसार बीजुं प्रासंगिक निरूपण आवतुं होवाथी परशुरामावतारचरित्र वर्णवे छे— '**तस्य सत्यवतीम्**' वगेरे द्वारा.

तस्य सत्यवतीं कन्यामृचीकोऽयाचत द्विजः।
वरं विसदृशं मत्वा गाधिर्भार्गवमब्रवीत्॥ ५

ते गाधिनी सत्यवती नामनी कन्याने ऋचीक नामना ब्राह्मणे मागी, (परंतु) वरने (ते कन्या माटे) अनुरूप न मानीने गाधिए भार्गव (ऋचीक ऋषि)ने कह्युं.॥ ५॥

विसदृशमननुरूपम्। भार्गवमृचीकम्॥ ५॥

'**विसदृशम्**' अनुरूप न मानीने '**भार्गवम्**' भृगुवंशी ऋचीक ऋषिने॥ ५॥

एकतः श्यामकर्णानां हयानां चन्द्रवर्चसाम्।
सहस्रं दीयतां शुल्कं कन्यायाः कुशिका वयम्॥ ६

एक तरफनो कान काळो होय तेवा अने चन्द्र जेवा तेजवाळा हजार अश्वो कन्याना विवाहने उचित मूल्य तरीके आपवामां आवे, (कारण के) अमे कुशिक वंशना (कौशिको) छीए.॥ ६॥

दक्षिणवामयोरेकतः श्यामः कर्णो येषाम्। सर्वस्मिन्नङ्गे चन्द्रस्येव वर्चो येषाम्। न चेदमपि पर्याप्तमस्मत्कन्यायाः। यतः कुशिकाः कौशिका वयम्॥ ६॥

जमणा अने डाबामांथी एक बाजुनो कान काळो छे जेमनो, आखा शरीरे चन्द्रना जेवुं तेज छे जेमनुं अने आ पण अमारी कन्या माटे पर्याप्त नथी, कारण के अमे '**कुशिकाः**' कौशिको छीए.॥ ६॥

इत्युक्तस्तन्मतं ज्ञात्वा गतः स वरुणान्तिकम्।
आनीय दत्त्वा तानश्वानुपयेमे वराननाम्॥ ७

॥ ७ ॥

આ પ્રમાણે જેમને કહેવામાં આવ્યું તે ઋચીક ઋષિ તેમના અભિપ્રાયને જાણીને વરુણદેવની પાસે ગયા અને (તેમની પાસેથી) તેવા અશ્વો લાવીને તેમને આપીને તે સુંદર મુખવાળી (કન્યા)ને પરણ્યા.॥ ૭ ॥ ૭ ॥

स ऋषिः प्रार्थितः पत्न्या श्वश्र्वा चापत्यकाम्यया।
श्रपयित्वोभयैर्मन्त्रैश्चरुं स्नातुं गतो मुनिः॥
॥ ८ ॥

(ત્યાર પછી એક સમયે) પત્ની દ્વારા અને સાસુ દ્વારા સંતાનની કામનાથી જેમને પ્રાર્થના કરવામાં આવી તે ઋચીક ઋષિ (બ્રાહ્મ અને ક્ષાત્ર – એમ) બે પ્રકારના મંત્રોથી ચરુ પકવીને સ્નાન કરવા ગયા.॥ ૮ ॥

उभयैर्मन्त्रैः, पत्न्यै ब्राह्मैर्मन्त्रैः, श्वश्र्वे तु क्षात्रैरित्यर्थः ॥ ८ ॥

'उभयैर्मन्त्रैः' બે પ્રકારના મંત્રોથી, પત્ની માટે બ્રાહ્મ મંત્રથી અને સાસુ માટે ક્ષાત્ર મંત્રથી, એમ અર્થ છે.॥ ૮ ॥

बा.प्र.—स्वस्य ब्राह्मणत्वात् पत्न्याः पुत्रार्थं ब्राह्म-मन्त्राभिमन्त्रितमेकं चरुं श्वश्र्वाश्च क्षत्रियत्वात् तत्पुत्रार्थं क्षात्रमन्त्राभिमन्त्रितपरं चरुं श्रपयित्वेत्यर्थः।

પોતે બ્રાહ્મણ હતા અને સાસુ ક્ષત્રિય હતાં, માટે પોતાને માટે સાત્ત્વિક મંત્રોથી અને સાસુને માટે રૌદ્ર-રાજસ્ મંત્રોથી ચરુ પકાવ્યો, એમ અર્થ છે.

तावत् सत्यवती मात्रा स्वचरुं याचिता सती।
श्रेष्ठं मत्वा तयाऽयच्छन्मात्रे मातुरदत् स्वयम्॥ ९

(ઋષિ સ્નાન કરીને આવે) તેટલામાં (સત્યવતીના ચરુને) શ્રેષ્ઠ માનીને તે માતા દ્વારા યાચના કરવામાં આવેલી સત્યવતીએ પોતાનો ચરુ માતાને આપી દીધો અને માતાનો ચરુ પોતે ખાઈ લીધો.॥ ૯ ॥

यावत्स्नात्वा मुनिर्नागतस्तावद्भार्यायां भर्तृस्नेहाधिक्यात्पुत्र्याः सत्यवत्याश्चरुं श्रेष्ठं मत्वा तया मात्रा सत्यवती याचिता सती ब्राह्ममन्त्रा-भिमन्त्रितं स्वचरुं मात्रे अयच्छत्प्रादात्। मातुश्चरुं क्षात्रमन्त्राभिमन्त्रितं स्वयमददादत्॥ ९ ॥

ઋષિ સ્નાન કરીને આવ્યા ત્યાં સુધીમાં, ભાર્યામાં પતિનો સ્નેહ અધિક હોવાથી પુત્રી સત્યવતીનો ચરુ શ્રેષ્ઠ માનીને તેની માતા દ્વારા યાચના કરવામાં આવેલી સત્યવતીએ બ્રાહ્મમંત્રોથી અભિમંત્રિત કરવામાં આવેલો પોતાનો ચરુ માતાને **'अयच्छत्'** આપી દીધો અને ક્ષત્રિયમંત્રથી અભિમંત્રિત કરવામાં આવેલો ચરુ પોતે **'अदत्'** **'आदत्'** ખાઈ લીધો.॥ ૯ ॥

अन्वि.—'आडभावः आर्षः।'

'अदत्' ને બદલે **'आदत्'** રૂપ થાય. **अदत्** માં **आ** નો અભાવ આર્ષ છે.

(હ્યસ્તન ભૂ.કા.ની પૂર્વે **अ** લાગે છે, પરંતુ સ્વરથી શરૂ થતા ધાતુની પૂર્વે **आ** લાગે છે, **आ** નો અભાવ આર્ષ છે.)

तद् विज्ञाय मुनिः प्राह पत्नीं कष्टमकारषीः।
घोरो दण्डधरः पुत्रो भ्राता ते ब्रह्मवित्तमः॥ १०

कष्टं जुगुप्सितम्। तदेवाह—ते पुत्रो घोरो भविष्यति। भ्राता तु ब्रह्मवित्तमो भविष्यतीति ॥ १० ॥

(ત્યાર પછી સ્નાન કરીને પાછા આવેલા) ઋષિએ તે (અદલાબદલીરૂપ કર્મ) જાણીને પત્નીને કહ્યું, 'તેં નિંદનીય કર્મ કર્યું. તારો પુત્ર શસ્ત્રધારી અને ભયંકર કર્મ કરનાર થશે અને તારો ભાઈ શ્રેષ્ઠ બ્રહ્મવેત્તા (થશે).'॥ ૧૦॥

'**कष्टम्**' નિંદનીય કર્મ, તે જ કહે છે તારો પુત્ર ભયંકર થશે, પરંતુ તારો ભાઈ શ્રેષ્ઠ બ્રહ્મવેત્તા થશે.॥ ૧૦॥

(તે શ્રેષ્ઠ બ્રહ્મવેત્તા વિશ્વામિત્ર વિષે પછીના અધ્યાયમાં કહેશે.)

प्रसादितः सत्यवत्या मैवं भूदिति भार्गवः।
अथ तर्हि भवेत् पौत्रो जमदग्निस्ततोऽभवत्॥ ११

एवं मा भूदिति प्रसादितो भार्गव आह—अथ तर्हि पौत्रो घोरो भविष्यति। जमदग्निः पुत्रोऽभवदित्यर्थः॥ ११ ॥

'આમ ન થાય.' એમ (પ્રાર્થનાથી) પ્રસન્ન કરવામાં આવેલા ભૃગુવંશી ઋચીક ઋષિ (જો આવો પુત્ર ન થાય) તો પૌત્ર આવો થશે (એમ બોલ્યા). પછી (સમય થતાં) તે સત્યવતીથી જમદગ્નિ જન્મ્યા.॥ ૧૧॥

'આમ ન થાય.' એમ પ્રસન્ન કરવામાં આવેલા ભૃગુવંશી ઋષિ કહે છે— તો પછી પૌત્ર (પરશુરામ) ભયંકર થશે. (સમય થતાં) જમદગ્નિ પુત્ર થયા, એમ અર્થ છે.॥ ૧૧॥

सा चाभूत् सुमहापुण्या कौशिकी लोकपावनी।
रेणोः सुतां रेणुकां वै जमदग्निरुवाह याम्॥ १२

सा च सत्यवती कौशिकी नद्यभूत्॥ १२॥

ત્યાર પછી તે સત્યવતી લોકોને પવિત્ર કરનારી પરમ પુણ્યમયી 'કૌશિકી' નદી થઈ. રેણુ ઋષિની કન્યા હતી રેણુકા, જેને જમદગ્નિ પરણ્યા.॥ ૧૨॥

અને તે સત્યવતી 'કૌશિકી' નદી થઈ.॥ ૧૨॥

तस्यां वै भार्गवऋषेः सुता वसुमदादयः।
यवीयाञ्जज्ञ एतेषां राम इत्यभिविश्रुतः॥ १३

भार्गवऋषेर्जमदग्नेः सुताः॥ १३॥

તે રેણુકામાં જ ભાર્ગવ ઋષિ (જમદગ્નિ)ના વસુમાન વગેરે પુત્રો થયા. તે સર્વમાં સૌથી નાના 'પરશુરામ' નામથી પ્રખ્યાત થયા,॥ ૧૩॥

'**भार्गवऋषेः**' ભાર્ગવ ઋષિ (જમદગ્નિ)ના પુત્રો॥ ૧૩॥

यमाहुर्वासुदेवांशं हैहयानां कुलान्तकम्।
त्रिःसप्तकृत्वो य इमां चक्रे निःक्षत्रियां महीम्॥ १४

॥ १४॥

જે પરશુરામને (વિદ્વાનો) ભગવાન વાસુદેવના અંશરૂપ અને હૈહયોના કુળનાશક કહે છે અને જેમણે આ પૃથ્વીને એકવીસ વખત નિઃક્ષત્રિય કરી હતી.॥ ૧૪॥ ૧૪॥

दुष्टं क्षत्रं भुवो भारमब्रह्मण्यमनीनशत्।
रजस्तमोवृतमहन् फल्गुन्यपि कृतेंऽहसि॥ १५

ભૂમિ માટે ભારરૂપ, બ્રાહ્મણોના અભક્ત (અહિતકર્તા), રજોગુણ તથા તમોગુણથી ઘેરાયેલા એવા દુષ્ટ ક્ષત્રિયકુળનો અતિ અલ્પ અપરાધ માટે (ભગવાન પરશુરામે) વધ કર્યો હતો અને (ભૂમિના ભારનો) નાશ કર્યો હતો.॥ ૧૫॥

अनीनशन्नाशयामास तदेवाह—रजस्तमोवृतमिति। पाठान्तरे सुगमम्॥ १५॥

'**अनीनशत्**' (ભૂમિના ભારનો) નાશ કર્યો હતો. તે જ કહે છે— '**रजस्तमोवृतम् इति।**' '**अब्रह्मण्यमनीनशत्**'ને બદલે પાઠાંતર '**अब्रह्मण्यमधार्मिकम्**' હોય તો અર્થ સુગમ છે. અધાર્મિક એવા ક્ષત્રિયકુળનો ॥ ૧૫॥

राजोवाच

किं तदंहो भगवतो राजन्यैरजितात्मभिः।
कृतं येन कुलं नष्टं क्षत्रियाणामभीक्ष्णशः॥ १६

॥ १६॥

રાજા પરીક્ષિતે પૂછ્યું — અજિતેન્દ્રિય ક્ષત્રિયો દ્વારા ભગવાન પરશુરામનો એવો તે કયો અપરાધ કરવામાં આવ્યો હતો, કે જેથી ક્ષત્રિયોના કુળનો વારંવાર નાશ કરવામાં આવ્યો?॥ ૧૬॥ ૧૬॥

कार्तवीर्यार्जुनेन कृतमपराधं वक्तुं तस्य दर्पहेतुमैश्वर्यादिकमाह—**हैहयानामिति** षड्भिः—

કાર્તવીર્ય અર્જુન દ્વારા કરવામાં આવેલા અપરાધને જણાવવા માટે તેના ગર્વના કારણરૂપ ઐશ્વર્યાદિનું વર્ણન છ શ્લોકો દ્વારા કરે છે— '**हैहयानाम् इति।**'

श्रीशुक उवाच

हैहयानामधिपतिरर्जुनः क्षत्रियर्षभः।
दत्तं नारायणस्यांशमाराध्य परिकर्मभिः॥ १७

बाहून् दशशतं लेभे दुर्धर्षत्वमरातिषु।
अव्याहतेन्द्रियौजःश्रीतेजोवीर्ययशोबलम्॥ १८

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — હૈહયોના અધિપતિ, ક્ષત્રિયોમાં શ્રેષ્ઠ એવા અર્જુને નારાયણના અંશરૂપ દત્તાત્રેયજીની પરિચર્યા (વગેરે) દ્વારા આરાધના કરીને એક હજાર બાહુઓ, (કોઈ પણ શત્રુ પરાજિત ન કરી શકે તેવું) શત્રુઓમાં અપરાજિતત્વ, નાશ ન કરી શકાય તેવી ઇન્દ્રિયશક્તિ, લક્ષ્મી, તેજસ્વિતા, વીરતા, યશ અને બળ પ્રાપ્ત કર્યાં હતાં.॥ ૧૭॥॥ ૧૮॥

परिकर्मभिः परिचर्याभिर्दत्तं दत्तात्रेयमाराध्य॥ १७॥

'**परिकर्मभिः**' પરિચર્યા દ્વારા '**दत्तम्**' દત્તાત્રેયજીની આરાધના કરીને॥ ૧૭॥

अव्याहतमिन्द्रियादिकं च लेभे॥ १८॥

નાશ ન કરી શકાય તેવાં ઇન્દ્રિયાદિ પ્રાપ્ત કર્યાં હતાં.॥ ૧૮॥

योगेश्वरत्वमैश्वर्यं गुणा यत्राणिमादयः।
चचाराव्याहतगतिर्लोकेषु पवनो यथा॥ १९

જેમાં અણિમાદિ (આઠ) ગુણો (મહાસિદ્ધિઓ) છે અને યોગેશ્વરત્વ છે તેવું ઐશ્વર્ય (તેણે પ્રાપ્ત કર્યું) હતું (અને તેથી) લોકોમાં અસ્ખલિત ગતિવાળા પવનની જેમ તે વિચરણ કરતો.॥ ૧૯॥

यत्र यस्मिन्नैश्वर्येऽणिमादयो गुणाः ॥ १९ ॥

'यत्र' જે ઐશ્વર્યમાં અણિમાદિ આઠ ગુણો છે. ॥ ૧૯ ॥

स्त्रीरत्नैरावृतः क्रीडन् रेवाम्भसि मदोत्कटः ।
वैजयन्तीं स्रजं बिभ्रद् रुरोध सरितं भुजैः ॥ २०

રત્નરૂપ શ્રેષ્ઠ (સુંદરી) સ્ત્રીઓથી ઘેરાયેલા, મદોન્મત્ત, વૈજયંતીમાળા ધારણ કરતા અને નર્મદાના જળમાં ક્રીડા કરતા સહસ્રાર્જુને (પોતાની હજાર) ભુજાઓથી નદી(ના પ્રવાહ)ને અટકાવી દીધો હતો. ॥ ૨૦ ॥

रेवाम्भसि नर्मदाजले। सरितं नर्मदाम् ॥ २० ॥

'रेवा-अम्भसि' નર્મદાના જળમાં, **'सरितम्'** નદી નર્મદાને ॥ ૨૦ ॥

विप्लावितं स्वशिबिरं प्रतिस्रोतःसरिज्जलैः ।
नामृष्यत् तस्य तद् वीर्यं वीरमानी दशाननः ॥ २१

પોતાને વીર માનતો દશ માથાંવાળો રાવણ, પાછા ફરતા પ્રવાહવાળી નર્મદા નદીના જળથી ડૂબતી પોતાની શિબિરને જોઈને (નદીના પ્રવાહને રોકવાનું) તેનું તે પરાક્રમ સહન કરી શક્યો નહીં. ॥ ૨૧ ॥

रावणो दिग्विजये माहिष्मत्याः समीपे नर्मदायां देवपूजां कुर्वंस्तेन प्रवाहस्यावरोधात्प्रतिस्रोतसः सत्यास्तस्याः सरितो जलैर्विप्लावितं स्वशिबिर-मालक्ष्य तस्य तद्वीर्यं न सेहे॥ २१ ॥

દિગ્વિજય માટે માહિષ્મતી નગરી પાસે નર્મદાકિનારે દેવપૂજા કરતો રાવણ તે સહસ્રાર્જુન દ્વારા પ્રવાહને રોકવાથી પાછા ફરતા પ્રવાહવાળી તે સરિતાના જળથી ડૂબતી પોતાની શિબિરને જોઈને તેનું તે પરાક્રમ સહન કરી શક્યો નહીં. ॥ ૨૧ ॥

गृहीतो लीलया स्त्रीणां समक्षं कृतकिल्बिषः ।
माहिष्मत्यां संनिरुद्धो मुक्तो येन कपिर्यथा ॥ २२

જેણે અપરાધ કર્યો હતો તેવો (રાવણ), સ્ત્રીઓના દેખતાં જ, જે સહસ્રાર્જુન દ્વારા રમતમાં પકડી લેવામાં આવ્યો, વાંદરાની જેમ માહિષ્મતીમાં પૂરી દેવામાં આવ્યો અને પછી છોડી દેવામાં આવ્યો. ॥ ૨૨ ॥

ततश्च कृतकिल्बिषः क्रीडन्तमभिभवितुं प्रवृत्तः सन्गृहीतो माहिष्मत्यां स्वपुर्यां कपिरिव संनिरुद्धश्च पुनश्चावज्ञया येन मुक्तः ॥ २२ ॥

પછી ક્રીડા કરતા સહસ્રાર્જુનને પરાજિત કરવા માટે પ્રવૃત્ત થયો હોઈ, અપરાધ કરનાર રાવણ પકડી લેવાયો અને પોતાની નગરી માહિષ્મતીમાં વાંદરાની જેમ પૂરી દેવાયો અને પાછો અવજ્ઞાપૂર્વક જેના દ્વારા છોડી મૂકવામાં આવ્યો. ॥ ૨૨ ॥

इदानीं तत्कृतमपराधं दर्शयन्नाह— **स एकदेत्यादिना।**

હવે તે અર્જુને કરેલો અપરાધ દર્શાવતાં કહે છે— **'सः एकदा'** વગેરે દ્વારા.

स एकदा तु मृगयां विचरन् विपिने वने।
यदृच्छयाऽऽश्रमपदं जमदग्नेरुपाविशत्॥ २३
॥ २३ ॥

કોઈ એક વખત તે અર્જુન પ્રવેશતાં જ ધ્રૂજી જવાય તેવા વનમાં મૃગયા માટે વિચરતા, દૈવેચ્છાથી જમદગ્નિના આશ્રમસ્થાને જઈ પહોંચ્યા. ॥ ૨૩ ॥॥ ૨૩ ॥

तस्मै स नरदेवाय मुनिरर्हणमाहरत्।
ससैन्यामात्यवाहाय हविष्मत्या तपोधनः॥ २४

તપ જ જેમનું ધન છે તેવા મુનિ જમદગ્નિએ સૈન્ય, પ્રધાનો અને વાહનો સહિત તે રાજા અર્જુન કાર્તવીર્યનો કામધેનુ (ના પ્રભાવ)થી અતિથિસત્કાર કર્યો. ॥ ૨૪ ॥

अर्हणमातिथ्यादि। हविष्मत्या कामधेन्वा ॥ २४ ॥

'**अर्हणम्**' આતિથ્ય વગેરે, '**हविष्मत्या**' કામધેનુ (ના પ્રભાવ)થી ॥ ૨૪ ॥

स वीरस्तत्र तद् दृष्ट्वा आत्मैश्वर्यातिशायनम्।
तन्नाद्रियताग्निहोत्र्यां साभिलाषः स हैहयः॥ २५

ત્યાં (મુનિના આશ્રમમાં) પોતાના ઐશ્વર્યથી પણ ચઢિયાતું એવું તે ઐશ્વર્ય જોઈને, કામધેનુ (પ્રાપ્ત કરવા) માટે અભિલાષાવાળા, હૈહયો સાથે રહેલા તે સહસ્રાર્જુને મુનિ દ્વારા કરવામાં આવેલા તે આતિથ્યનો આદર કર્યો નહીં. ॥ ૨૫ ॥

तदर्हणं नाद्रियत तस्मिन्नातुष्यत्। यतो–ऽग्निहोत्र्यां होमधेनौ साभिलाषः। सहैहयो हैहयैः सह वर्तमानः॥ २५ ॥

તે આતિથ્યનો '**न-आद्रियत**' આદર કર્યો નહીં. તે આતિથ્યથી પ્રસન્ન થયા નહીં, કારણ કે '**अग्निहोत्र्याम्**' કામધેનુ (પ્રાપ્ત કરવા) માટે અભિલાષાવાળા હતા. '**सहैहयः**' હૈહયો સાથે રહેલા તે સહસ્રાર્જુને ॥ ૨૫ ॥

हविर्धानीमृषेर्दर्पान्नरान् हर्तुमचोदयत्।
ते च माहिष्मतीं निन्युः सवत्सां क्रन्दतीं बलात्॥ २६

અભિમાનને કારણે (ઋષિ પાસેથી માગી નહીં, પણ) ઋષિની કામધેનુ ચોરી લેવા માટે સૈનિકોને પ્રેરણા કરી. એટલે તે સૈનિકો વાછરડા સહિત આક્રોશ કરતી તેને બળપૂર્વક માહિષ્મતી નગરીમાં લઈ આવ્યા. ॥ ૨૬ ॥

दर्पाद्धेतोः ऋषेर्हविर्धानीमग्निहोत्रधेनुं हर्तुं नरानचोदयत्प्रेरितवान्॥ २६ ॥

ગર્વને કારણે ઋષિની '**हविर्धानी**' અગ્નિહોત્રી કામધેનુ ચોરવા માટે સૈનિકોને '**अचोदयत्**' પ્રેરણા કરી. ॥ ૨૬ ॥

अथ राजनि निर्याते राम आश्रम आगतः।
श्रुत्वा तत् तस्य दौरात्म्यं चुक्रोधाहिरिवाहतः॥ २७
॥ २७ ॥

પછી રાજા સહસ્રાર્જુન (પાછો) જતા રહ્યા ત્યારે પરશુરામ આશ્રમમાં આવ્યા, (ગાય ચોરવારૂપ) રાજાની તે દુષ્ટતા સાંભળીને પ્રહાર કરાયેલા સાપની જેમ કોપી ઊઠ્યા. ॥ ૨૭ ॥ ૨૭ ॥

घोरमादाय परशुं सतूणं चर्म कार्मुकम्।
अन्वधावत दुर्धर्षो मृगेन्द्र इव यूथपम्॥ २८

सतूणं कार्मुकं चर्म चादाय॥ २८॥

तमापतन्तं भृगुवर्यमोजसा
धनुर्धरं बाणपरश्वधायुधम्।
ऐणेयचर्माम्बरमर्कधामभि-
र्युतं जटाभिर्ददृशे पुरीं विशन्॥ २९

ऐणेयं चर्म कृष्णाजिनमम्बरं यस्य॥ २९॥

अचोदयद्धस्तिरथाश्वपत्तिभि-
र्गदासिबाणर्ष्टिशतघ्निशक्तिभिः।
अक्षौहिणीः सप्तदशातिभीषणा-
स्ता राम एको भगवानसूदयत्॥ ३०
॥ ३०॥

भ.मनो.—२१८७० गजाः, २१८७० रथाः, ६५६१० अश्वाः, १०९३५० पदातयः, एषैकाक्षौहिणीसंख्या।

यतो यतोऽसौ प्रहरत्परश्वधो
मनोऽनिलौजाः परचक्रसूदनः।
ततस्ततश्छिन्नभुजोरुकन्धरा
निपेतुरुर्व्यां हतसूतवाहनाः॥ ३१

प्रहरन्परश्वधो यस्य। मनश्चानिलश्च तयोरिवौजो वीर्यं यस्य। परेषां चक्रं सैन्यं सूदयतीति तथा। छिन्ना भुजा ऊरवः कन्धराश्च येषाम्। हताः सूता वाहनानि च येषां ते वीरा निपेतुः॥ ३१॥

ભયંકર ફરશી, ભાથા સહિત ધનુષ્ય અને ઢાલ લઈ, વિકરાળ સિંહ ગજેન્દ્રની પાછળ દોડે તેમ દોડ્યા.॥ ૨૮॥

ભાથા સહિત ધનુષ્ય અને ઢાલ લઈને॥ ૨૮॥

(આ બાજુ પોતાની) નગરીમાં પ્રવેશતા સહસ્રાર્જુને પોતાની સામે બળપૂર્વક ધસી આવતા, ધનુષ્ય ધારણ કરનાર, બાણ અને ફરશીરૂપ આયુધવાળા, કાળા મૃગચર્મના વસ્ત્રવાળા, સૂર્યના તેજ જેવી તેજસ્વી જટાઓથી યુક્ત ભૃગુશ્રેષ્ઠ પરશુરામને જોયા.॥ ૨૯॥

'ऐणेयं चर्म' જેમનું વસ્ત્ર કૃષ્ણ મૃગચર્મ છે તે॥ ૨૯॥

સહસ્રાર્જુને હાથી, રથ, ઘોડા અને પાયદળથી યુક્ત તેમ જ ગદા, તલવાર, બાણ, બેધારી તલવાર, તોપ અને શક્તિઓ સહિત અત્યંત ભયંકર એવી તે સત્તર અક્ષૌહિણી સેના (તેમની સામે) મોકલી. એક માત્ર પરશુરામ ભગવાને જ તે સર્વને નષ્ટ કરી દીધા.॥ ૩૦॥ ૩૦॥

૨૧૮૭૦ હાથીઓ, ૨૧૮૭૦ રથ, ૬૫૬૧૦ ઘોડાઓ, ૧૦૯૩૫૦ પાયદળ મળીને આ એક અક્ષૌહિણી સેના થાય.

મન અને વાયુ જેવી શક્તિવાળા, શત્રુઓના સૈન્યનો સંહાર કરનારા અને પ્રહાર કરતી ફરસીવાળા તે પરશુરામ સૈન્યમાં જ્યાં જ્યાં ઘૂમી વળ્યા, ત્યાં ત્યાં કપાઈ ગયેલી ભુજાઓ, સાથળો અને ડોકવાળા, હણાયેલા સારથિઓ અને વાહનોવાળા (વીરો) પૃથ્વી પર પડ્યા હતા.॥ ૩૧॥

પ્રહાર કરતી ફરશી છે જેની; મન અને વાયુ, તે બંને જેવી **'ओजः'** શક્તિ છે જેની, શત્રુઓના **'चक्रम्'** સૈન્યનો સંહાર કરે તેવા, કપાઈ ગયેલી ભુજાઓ, સાથળો અને ડોક છે જેમની, હણાયેલા સારથિઓ, વાહનો છે જેમનાં તે વીરો (પૃથ્વી પર) પડ્યા હતા.॥ ૩૧॥

दृष्ट्वा स्वसैन्यं रुधिरौघकर्दमे
रणाजिरे रामकुठारसायकैः।
विवृक्णचर्मध्वजचापविग्रहं
निपातितं हैहय आपतद् रुषा॥ ३२

विवृक्णाश्चर्मादयो यस्य॥ ३२॥

अथार्जुनः पञ्चशतेषु बाहुभि-
र्धनुःषु बाणान् युगपत् स सन्दधे।
रामाय रामोऽस्त्रभृतां समग्रणी-
स्तान्येकधन्वेषुभिराच्छिनत् समम्॥ ३३

पञ्चशतेषु धनुःषु सोऽर्जुनो रामाय संदधे। एकमेव धनुर्यस्य सः। पाठान्तरे एक एव बन्धः संधानं येषां तैरिषुभिः। तानि धनूंषि समं सह तत्क्षणमेवाच्छिनत्॥ ३३॥

पुनः स्वहस्तैरचलान् मृधेऽङ्घ्रिपा-
नुत्क्षिप्य वेगादभिधावतो युधि।
भुजान् कुठारेण कठोरनेमिना
चिच्छेद रामः प्रसभं त्वहेरिव॥ ३४

मृधे साधनभूतानचलानङ्घ्रिपांश्चोत्क्षिप्याभिधावतस्तस्य भुजांश्चिच्छेद। अहेः फणा इवेत्यर्थः॥ ३४॥

कृत्तबाहोः शिरस्तस्य गिरेः शृङ्गमिवाहरत्।
हते पितरि तत्पुत्रा अयुतं दुद्रुवुर्भयात्॥ ३५

॥ ३५॥

રક્તના ધોધથી કીચડવાળા બનેલા સમરાંગણમાં પરશુરામના કુહાડા તથા બાણો (ના મારા)થી જેની ઢાલો, ધજાઓ, ધનુષ્યો અને દેહો કપાઈ ગયાં છે તેવા પોતાના સૈન્યને નીચે પાડવામાં આવેલું જોઈને સહસ્રાર્જુન ક્રોધથી ત્રાટક્યો.॥ ૩૨॥

કપાઈ ગયાં છે ઢાલ વગેરે જેનાં॥ ૩૨॥

ત્યાર બાદ સહસ્રાર્જુને પરશુરામને (મારવા) માટે પાંચસો બાહુઓ વડે પાંચસો ધનુષ્યોમાં (પાંચસો) બાણોનું એક સાથે સંધાન કર્યું. (પરંતુ) જેમનું એક જ ધનુષ્ય છે તેવા અને અસ્ત્રધારીઓમાં શિરોમણિ એવા પરશુરામે તે ધનુષ્યો સહિત બાણોને (પોતે છોડેલાં બાણોથી તે જ ક્ષણે) એક સાથે કાપી નાખ્યાં.॥ ૩૩॥

તે સહસ્રાર્જુને પરશુરામને (મારવા) માટે પાંચસો ધનુષ્યોમાં (પાંચસો બાણોનું) સંધાન કર્યું. જેમનું એક જ ધનુષ્ય છે તે (**एकधन्वा**), પાઠાંતરમાં '**एकधन्वेषुभिः**' ને બદલે '**एकबन्धेषुभिः**' એક જ '**बन्धः**' સંધાન છે જેમનું તે બાણો વડે, તે ધનુષ્યો સહિત બાણોને '**समम्**' એક સાથે તે જ ક્ષણે કાપી નાખ્યાં.॥ ૩૩॥

પછી પોતાના હાથો વડે પર્વતો અને વૃક્ષોને ઉખાડીને રણભૂમિ ઉપર વેગથી સામે દોડતા સહસ્રાર્જુનની ભુજાઓને પરશુરામે તીક્ષ્ણ ધારવાળા કુહાડાથી, સાપની ફણાઓને કાપે તેમ યુદ્ધમાં બળપૂર્વક કાપી નાખી.॥ ૩૪॥

યુદ્ધમાં સાધનરૂપ પર્વતો અને વૃક્ષોને ઉખાડીને સામે દોડતા તે સહસ્રાર્જુનની ભુજાઓને કાપી નાખી. સાપની ફણાઓની જેમ, એમ અર્થ છે.॥ ૩૪॥

જેના બાહુઓ કપાઈ ગયા તેનું પર્વતના શિખર જેવું મસ્તક (પરશુરામે) હરી લીધું (કાપી નાખ્યું). પિતા હણાયા ત્યારે તેના દસહજાર પુત્રો ભયથી નાસી ગયા.॥ ૩૫॥ ૩૫॥

अग्निहोत्रीमुपावर्त्य सवत्सां परवीरहा।
समुपेत्याश्रमं पित्रे परिक्लिष्टां समर्पयत्॥ ३६

समर्पयत् समार्पयत्॥ ३६॥

શત્રુઓના વીરોનો નાશ કરનારા પરશુરામે ખૂબ દુઃખી થયેલી કામધેનુને વાછરડા સહિત આશ્રમમાં પાછી વાળી અને પિતાને સમર્પિત કરી.॥ ૩૬॥

समर्पयत् સમર્પિત કરી.॥ ૩૬॥

(‘**समार्पयत्**’– રૂપ થાય. ‘**अड्**’ નો અભાવ આર્ષ છે.)

स्वकर्म तत्कृतं रामः पित्रे भ्रातृभ्य एव च।
वर्णयामास तच्छ्रुत्वा जमदग्निरभाषत॥ ३७

॥ ३७॥

(સૈન્યસહિત સહસ્રાર્જુનના વધરૂપ) કરેલું તે પોતાનું કર્મ પિતાને અને ભાઈઓને પણ પરશુરામે વર્ણવ્યું. તે સાંભળી જમદગ્નિ બોલ્યા. ॥ ૩૭॥ ૩૭॥

राम राम महाबाहो भवान् पापमकारषीत्।
अवधीन्नरदेवं यत् सर्वदेवमयं वृथा॥ ३८

॥ ३८॥

હે રામ, હે રામ, હે મહાબાહુ, તમે પાપ કર્યું! જે સર્વ દેવમય નરદેવનો વધ કર્યો તે વ્યર્થ છે.॥ ૩૮॥ ૩૮॥

वयं हि ब्राह्मणास्तात क्षमयार्हणतां गताः।
यया लोकगुरुर्देवः पारमेष्ठ्यमगात् पदम्॥ ३९

अर्हणतां पूज्यताम्॥ ३९॥

બેટા, આપણે તો બ્રાહ્મણો છીએ. ક્ષમા (કરવાના ગુણ)ને કારણે આપણે પૂજ્યતાને પ્રાપ્ત થયા છીએ, જે ક્ષમાને કારણે લોકગુરુ બ્રહ્મદેવ પરમેષ્ઠિપદ પામ્યા છે.॥ ૩૯॥

‘**अर्हणताम्**’ પૂજ્યતાને (પ્રાપ્ત થયા છીએ.) ॥ ૩૯॥

क्षमया रोचते लक्ष्मीर्ब्राह्मी सौरी यथा प्रभा।
क्षमिणामाशु भगवांस्तुष्यते हरिरीश्वरः॥ ४०

सौरी सूर्यस्य प्रभेव॥ ४०॥

ક્ષમાને કારણે જ બ્રાહ્મણકુળની (શમદમાદિ તેજરૂપ) લક્ષ્મી સૂર્યની પ્રભાની જેમ પ્રકાશે છે. સર્વશક્તિમાન ભગવાન શ્રીહરિ ક્ષમાવાન ઉપર શીઘ્ર પ્રસન્ન થાય છે.॥ ૪૦॥

‘**सौरी**’ સૂર્યની પ્રભાની જેમ॥ ૪૦॥

राज्ञो मूर्धाभिषिक्तस्य वधो ब्रह्मवधाद् गुरुः।
तीर्थसंसेवया चांहो जह्यङ्गाच्युतचेतनः॥ ४१

तीर्थसंसेवया। चकाराद्यमनियमैश्च। अच्युते चेतना चित्तं यस्य सः॥ ४१॥

હે વત્સ, મસ્તક ઉપર અભિષેક કરવામાં આવેલા (ચક્રવર્તી) રાજાનો વધ બ્રહ્મહત્યાથી પણ અધિક છે. જેનું ચિત્ત અચ્યુતમાં છે તેવો થઈ તીર્થનું સારી રીતે સેવન કરવા દ્વારા (અને યમ-નિયમો દ્વારા) પાપનો નાશ કરો.॥ ૪૧॥

તીર્થના સુંદર સેવન દ્વારા, ‘**च**’કારથી યમ-નિયમો દ્વારા, અચ્યુતમાં ‘**चेतना**’ ચિત્ત છે જેનું તે॥ ૪૧॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

❋❋❋❋❋

अथ षोडशोऽध्यायः

પરશુરામજીએ કરેલો ક્ષત્રિય-સંહાર અને વિશ્વામિત્રજીના વંશની કથા

षोडशेऽथार्जुनसुतैर्जमदग्नौ हते मुहुः।
रामात्क्षत्रवधः प्रोक्तो विश्वामित्रस्य चान्वयः ॥ १ ॥

(સહસ્રાર્જુનના મરણ) પછી સોળમા અધ્યાયમાં સહસ્રાર્જુનના પુત્રો દ્વારા જમદગ્નિ હણાયા, ત્યારે પરશુરામ દ્વારા વારંવાર ક્ષત્રિયોનો વધ કરવામાં આવ્યો (તે કથા) અને વિશ્વામિત્રનો વંશ કહેવામાં આવ્યા છે. ॥ ૧ ॥

श्रीशुक उवाच

पित्रोपशिक्षितो रामस्तथेति कुरुनन्दन।
संवत्सरं तीर्थयात्रां चरित्वाऽऽश्रममाव्रजत्॥ १
॥ १ ॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – હે કુરુનંદન પરીક્ષિત, પિતા દ્વારા જેમને આદેશ આપવામાં આવ્યો તે પરશુરામ 'તેમ થાઓ.' એમ (કહી,) એક વર્ષ સુધી તીર્થયાત્રા કરી આશ્રમમાં પાછા ફર્યા. ॥ ૧ ॥ ૧ ॥

कदाचिद् रेणुका याता गङ्गायां पद्ममालिनम्।
गन्धर्वराजं क्रीडन्तमप्सरोभिरपश्यत॥ २
॥ २ ॥

એક વખત (જળ ભરવા માટે) ગંગાકિનારે ગયેલાં (પરશુરામની માતા) રેણુકાએ કમળની માળા ધારણ કરેલા ગંધર્વરાજ (ચિત્રરથ)ને અપ્સરાઓ સાથે ક્રીડા કરતો જોયો. ॥ ૨ ॥ ૨ ॥

विलोकयन्ती क्रीडन्तमुदकार्थं नदीं गता।
होमवेलां न सस्मार किञ्चिच्चित्ररथस्पृहा॥ ३

જળ ભરવા માટે નદીએ ગયેલાં રેણુકા, ક્રીડા કરતા ગંધર્વરાજનું નિરીક્ષણ કરતાં, ગંધર્વરાજ ચિત્રરથ પ્રત્યે સહેજ કૌતુકભરી સ્પૃહાવાળાં થઈ, (પતિના અગ્નિહોત્રના) સમયને વીસરી ગયાં. ॥ ૩ ॥

किंचिदीषच्चित्ररथे गन्धर्वराजे स्पृहा यस्याः सा। किंचिन्न सस्मारेति वा॥ ३ ॥

'किंचित्' સહેજ સ્પૃહા છે જેમને, ગંધર્વરાજ ચિત્રરથ પ્રત્યે તે રેણુકા, અથવા કંઈક (પતિના અગ્નિહોત્રના સમયને) વીસરી ગયાં. ॥ ૩ ॥

क्र.सं.—किञ्चित् काचित् कौतुकमय्येव न तु काममयी चित्ररथे स्पृहा तस्याः। अत्र ब्रह्माण्ड–पुराणं द्रष्टव्यम्।

(રેણુકાદેવી) કામમયી નહીં, પરંતુ સહેજ કૌતુકમયી સ્પૃહાવાળાં થયાં, એમ અહીં બ્રહ્માંડપુરાણ (ની કથા)ને ધ્યાનમાં લેવા યોગ્ય છે.

कालात्ययं तं विलोक्य मुनेः शापविशङ्किता।
आगत्य कलशं तस्थौ पुरोधाय कृताञ्जलिः॥ ४

(હોમ કરવાના) તે સમયને વીતી ગયેલો જોઈને, મુનિ જમદગ્નિના શાપની શંકાવાળાં રેણુકા (આશ્રમમાં) આવીને, મુનિની આગળ કળશ મૂકીને બે હાથ જોડી ઊભાં રહ્યાં. ॥ ૪ ॥

कलशं पुरोधायाग्रे निधाय॥ ४॥

'पुरोधाय' (મુનિની) આગળ કળશ મૂકીને ॥ ૪ ॥

व्यभिचारं मुनिर्ज्ञात्वा पत्न्याः प्रकुपितोऽब्रवीत्।
घ्नतैनां पुत्रकाः पापामित्युक्तास्ते न चक्रिरे॥ ५

('હોમ કરવાના સમય પૂર્વે જ જળ લઈ આવીશ.' એમ તેના વચનનો અથવા માનસિક) વ્યભિચાર જાણીને પત્ની ઉપર કોપાયમાન થતા મુનિ બોલ્યા, 'હે પુત્રો, આ પાપિણીને મારી નાખો!' (પરંતુ) તેમ કહેવામાં આવેલા પુત્રોએ (તેમ) કર્યું નહીં.॥ ૫॥

व्यभिचारं मानसं ज्ञात्वा॥ ५॥

માનસિક વ્યભિચાર જાણીને॥ ૫॥

रामः सञ्चोदितः पित्रा भ्रातॄन् मात्रा सहावधीत्।
प्रभावज्ञो मुनेः सम्यक् समाधेस्तपसश्च सः॥ ६

પિતા દ્વારા આજ્ઞા કરવામાં આવેલા પરશુરામે માતા સહિત ભાઈઓનો વધ કર્યો, કારણ કે મુનિની સમાધિ અને તપના પ્રભાવને તેઓ યથોચિતરૂપે જાણતા હતા.॥ ૬॥

आज्ञातिलङ्घिनां भ्रातॄणां मातुश्च वधे संचोदितः सन्। मुनेर्यः समाधिस्तपश्च तयोः प्रभावज्ञः। यदि न हन्यां तर्हि मामपि शप्तुं समर्थः, यदि तु हन्यां तर्हि मयि संतुष्टः संस्तानपि जीवयितुं समर्थ इति जानन्नित्यर्थः॥ ६॥

આજ્ઞાનું ઉલ્લંઘન કરનારા ભાઈઓના અને માતાના વધ માટે આજ્ઞા કરવામાં આવેલા પરશુરામ, જમદગ્નિ મુનિનાં જે સમાધિ અને તપ હતાં, તે બંનેનો પ્રભાવ જાણતા હતા. 'જો હું તેમને ન હણું તો મને પણ શાપ આપવાને તેઓ સમર્થ છે, પરંતુ જો તેમને હણું તો મારા ઉપર પ્રસન્ન થઈ તેમને જીવાડવા પણ સમર્થ છે.' એમ જાણતા પરશુરામ, એમ અર્થ છે.॥ ૬॥

वरेणच्छन्दयामास प्रीतः सत्यवतीसुतः।
वव्रे हतानां रामोऽपि जीवितं चास्मृतिं वधे॥ ७

॥ ७॥

(ત્યાર પછી) પ્રસન્ન થયેલા સત્યવતીપુત્ર જમદગ્નિએ વરદાન દ્વારા પુત્રને પ્રસન્ન કર્યો. (પરશુરામને વરદાન માગવા માટે આજ્ઞા કરી) એટલે પરશુરામે મૃત્યુ પામેલાં (માતા અને ભાઈ)ઓનું જીવન અને (પોતે કરેલા) વધ વિષે સ્મરણ ન રહે તે (વરદાન) માગ્યું.॥ ૭॥ ૭॥

उत्तस्थुस्ते कुशलिनो निद्रापाय इवाञ्जसा।
पितुर्विद्वांस्तपोवीर्यं रामश्चक्रे सुहृद्वधम्॥ ८

(એટલામાં તો) નિદ્રાને અંતે જાગતા હોય તેમ (માતા સહિત) તે ભાઈઓ અનાયાસે ક્ષેમકુશળ (જાગી) ઊઠ્યા. પિતાના તપોબળને જાણતા (હોવાથી જ) પરશુરામે પોતાના સુહૃજ્જનોનો વધ કર્યો હતો.॥ ૮॥

नन्वतिनिन्दितं तत्कथं कृतवांस्तत्राह—पितुर्विद्वानिति। पूर्वोक्त एवाभिप्रायः॥ ८॥

આક્ષેપ કરવામાં આવ્યો છે કે પરશુરામે તે અતિનિંદિત કર્મ કેવી રીતે કર્યું? તે માટે ઉત્તર આપે છે— '**पितुः विद्वान् इति।**' પૂર્વે કહેલો અભિપ્રાય જ જણાવે છે.॥ ૮॥

सर्वक्षत्रियवधे कारणं वक्तुमाह—**येऽर्जुनस्य सुता** इत्यादिना।

सर्व क्ષત્રિયોના વધ માટેનું કારણ જણાવવા માટે કહે છે— **'ये अर्जुनस्य सुताः'** વગેરે દ્વારા.

वंशीधरी—निरपराधायाः पतिव्रताशिरोमणे रेणुकाया वधमादिष्टवतो जमदग्नेरपि तदपराधफलं वधं दर्शयति।

પતિવ્રતાશિરોમણિ નિરપરાધ રેણુકાના વધની આજ્ઞા આપવાવાળા જમદગ્નિને પણ તેમના અપરાધના ફળરૂપ વધને દર્શાવે છે.

येऽर्जुनस्य सुता राजन् स्मरन्तः स्वपितुर्वधम्।
रामवीर्यपराभूता लेभिरे शर्म न क्वचित्॥ ९

॥ ९ ॥

હે રાજા પરીક્ષિત, પરશુરામના પરાક્રમથી પરાજિત થયેલા જે સહસ્રાર્જુનના પુત્રો હતા, તેઓએ (પરશુરામે કરેલા) પોતાના પિતાના વધનું સ્મરણ કરતાં ક્યાંય શાંતિ પ્રાપ્ત કરી નહીં.॥ ૯॥ ૯॥

एकदाऽऽश्रमतो रामे सभ्रातरि वनं गते।
वैरं सिसाधयिषवो लब्धच्छिद्रा उपागमन्॥ १०

॥ १० ॥

એક સમયે આશ્રમમાંથી ભાઈઓ સાથે પરશુરામ વનમાં ગયા હતા, ત્યારે વેર સાધવાની ઈચ્છાવાળા સહસ્રાર્જુનના પુત્રો અવકાશ પ્રાપ્ત કરીને (ત્યાં) આવી ચઢ્યા.॥ ૧૦॥ ૧૦॥

दृष्ट्वाग्न्यगार आसीनमावेशितधियं मुनिम्।
भगवत्युत्तमश्लोके जघ्नुस्ते पापनिश्चयाः॥ ११

ઉત્તમશ્લોક ભગવાનમાં બુદ્ધિ એકાગ્ર કરીને અગ્નિશાળામાં બેઠેલા મુનિ જમદગ્નિને તે પાપી નિશ્ચયવાળા (ક્ષત્રિયો)એ મારી નાખ્યા.॥ ૧૧॥

भगवत्यावेशिता धीर्येन तम्॥ ११॥

ભગવાનમાં એકાગ્ર કરવામાં આવી છે બુદ્ધિ જેમના દ્વારા તે (મુનિ)ને॥ ૧૧॥

याच्यमानाः कृपणया राममात्रातिदारुणाः।
प्रसह्य शिर उत्कृत्य निन्युस्ते क्षत्रबन्धवः॥ १२

॥ १२ ॥

પરશુરામની દીન માતા દ્વારા પ્રાર્થના કરવામાં આવતી હોવા છતાં તે નીચ અને અત્યંત ભયંકર ક્ષત્રિયો બળજબરીથી (મુનિનું) મસ્તક કાપીને લઈ ગયા.॥ ૧૨॥ ૧૨॥

रेणुका दुःखशोकार्ता निघ्नन्त्यात्मानमात्मना।
राम रामेहि तातेति विचुक्रोशोच्चकैः सती॥ १३

॥ १३ ॥

દુઃખ અને શોકથી વ્યાકુળ થયેલાં, પોતાને (છાતીને) પોતાના (હાથ)થી કૂટતાં સતી રેણુકા 'હે રામ, હે રામ, હે તાત, (શીઘ્ર) આવો.' એમ જોર જોરથી આક્રંદ કરવા લાગ્યાં.॥ ૧૩॥ ૧૩॥

तदुपश्रुत्य दूरस्थो हा रामेत्यार्तवत्स्वनम्।
त्वरयाऽऽश्रममासाद्य ददृशे पितरं हतम्॥ १४

॥ १४ ॥

દૂર રહેલા રામે 'હા રામ!' એમ કરુણતાવાળું ક્રંદન સાંભળીને, ત્વરાપૂર્વક આશ્રમમાં આવીને પિતાને હણાયેલા જોયા.॥ ૧૪॥ ૧૪॥

तद्दुःखरोषामर्षार्तिशोकवेगविमोहितः।
हा तात साधो धर्मिष्ठ त्यक्त्वास्मान् स्वर्गतो भवान्॥

॥ १५ ॥

(પિતાના મૃત્યુથી થયેલા) તે દુઃખ, ક્રોધ, અસહિષ્ણુતા, પીડા અને શોકના વેગથી મોહિત થયેલા પરશુરામે 'હા તાત, હે સત્પુરુષ, હે ધર્મિષ્ઠ, અમને છોડીને આપ સ્વર્ગમાં સિધાવ્યા!'॥ ૧૫॥

विलप्यैवं पितुर्देहं निधाय भ्रातृषु स्वयम्।
प्रगृह्य परशुं रामः क्षत्रान्ताय मनो दधे॥ १६

દુઃખાદીનાં વેગેન વિમોહિતઃ ॥ १५ ॥ १६ ॥

एम विलाप करतां, पितानो देह भाईओने सोंपी, पोते फरशी धारण करीने क्षत्रियोनो नाश करवानो निश्चय कर्यो. ॥ १६ ॥

દુઃખ વગેરેના વેગથી વિમોહિત થયેલા પરશુરામ ॥ ૧૫ ॥ ૧૬ ॥

गत्वा माहिष्मतीं रामो ब्रह्मघ्नविहतश्रियम्।
तेषां स शीर्षभी राजन् मध्ये चक्रे महागिरिम्॥ १७

ब्रह्मघ्नैर्विहता श्रीर्यस्यास्ताम्। हे राजन्, स रामस्तेषां शीर्षभिर्माहिष्मत्या मध्ये महान्तं गिरिं चक्रे॥ १७॥

अन्वि.—शीर्षभिश्छिन्नैः शिरोभिः। आर्षः शीर्षन् शब्दः।

બ્રહ્મહત્યા કરનારાઓ દ્વારા જેની શોભા નષ્ટ થઈ હતી તેવી માહિષ્મતી નગરીમાં જઈને તે પરશુરામે, હે રાજા, તે નગરીની વચ્ચે તેના પુત્રોનાં (કપાયેલાં) મસ્તકોથી મોટો પર્વત બનાવ્યો. ॥ ૧૭ ॥

બ્રહ્મહત્યાથી જેની શોભા નષ્ટ થઈ છે તે નગરીમાં હે રાજા, તે રામે તેમનાં મસ્તકોથી માહિષ્મતીની વચ્ચે મોટો પર્વત બનાવ્યો. ॥ ૧૭ ॥

'**शीर्षभिः**' આર્ષ છે, '**शिरोभिः**' રૂપ થાય.

'**शीर्षंश्छन्दसि**' (પા.સૂ.૬/૧/૬૦) શીર્ષન્ નો પ્રયોગ વેદમાં કરવામાં આવે છે.

तद्रक्तेन नदीं घोरामब्रह्मण्यभयावहाम्।
हेतुं कृत्वा पितृवधं क्षत्रेऽमङ्गलकारिणि॥ १८

તેમના રક્તથી બ્રાહ્મણદ્રોહીઓને ભય ઉપજાવનારી ભયંકર નદી વહાવી. ક્ષત્રિયકુળ અન્યાય (અત્યાચાર) પ્રવર્તાવવા માંડ્યું ત્યારે પિતાના વધને નિમિત્ત બનાવીને ॥ ૧૮ ॥

त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः।
स्यमन्तपञ्चके चक्रे शोणितोदान् ह्रदान् नव॥ १९

સમર્થ પરશુરામે પૃથ્વીને એકવીસ વખત ક્ષત્રિયહીન કરી. (કુરુક્ષેત્રના) સ્યમંતપંચકમાં રક્તરૂપી જળના નવ ધરા કર્યા. ॥ ૧૯ ॥

तेषां रक्तेनाब्रह्मण्यानां भयावहां घोरां नदीं चक्रे। तथापि सर्वक्षत्रियवधे किं कारणं तदाह—हेतुं कृत्वेति सार्धेन। अमङ्गलकारिण्य- न्यायवर्तिनि सति॥ १८॥

તેમના રક્તથી બ્રાહ્મણદ્રોહીઓને ભય ઉપજાવનારી ભયંકર નદી વહાવી. તો પછી બધા ક્ષત્રિયોનો વધ કરવાનું શું કારણ હતું, તે દોઢ શ્લોકોથી કહે છે— '**हेतुं कृत्वा इति।**' '**अमंगलकारिणि**' ક્ષત્રિયકુળ અન્યાય પ્રવર્તાવવા માંડ્યું ત્યારે ॥ ૧૮ ॥

त्रिःसप्तकृत्वो रेणुकया दुःखावेशादुरस्ताडनं कृतम्, ततो रामस्तावत्कृत्वः क्षत्रमुत्सादितवानिति प्रसिद्धिः॥ १९॥

રેણુકાએ (પતિના મૃત્યુકાળે) દુઃખના આવેશથી એકવીસ વખત છાતી કૂટી હતી, તેથી પરશુરામે તેટલી વાર ક્ષત્રિયકુળનું નિકંદન કાઢ્યું હતું, એ પ્રસિદ્ધ છે. ॥ ૧૯ ॥

पितुः कायेन सन्धाय शिर आदाय बर्हिषि।
सर्वदेवमयं देवमात्मानमयजन्मखैः॥ २०
॥ २०॥

(ત્યાર પછી) પરશુરામે પિતાનું મસ્તક લાવીને યજ્ઞમાં પિતાના શરીર સાથે જોડી દઈ સર્વદેવમય આત્મસ્વરૂપ ભગવાનનું યજ્ઞો દ્વારા યજન કર્યું.॥ ૨૦॥ ૨૦॥

ददौ प्राचीं दिशं होत्रे ब्रह्मणे दक्षिणां दिशम्।
अध्वर्यवे प्रतीचीं वै उद्गात्रे उत्तरां दिशम्॥ २१
॥ २१॥

(યજ્ઞોમાં તેમણે) હોતાને પૂર્વ દિશા, બ્રહ્માને દક્ષિણ દિશા, અધ્વર્યુને પશ્ચિમ દિશા અને ઉદ્ગાતાને ઉત્તર દિશા આપી હતી.॥ ૨૧॥ ૨૧॥

बा.प्र.—सर्वाया: पृथ्व्या: वशीकृतत्वात्तद्दानमाह।

સમગ્ર પૃથ્વીને વશમાં કરી હોવાથી તેના દાનને વર્ણવે છે.

अन्येभ्योऽवान्तरदिशः कश्यपाय च मध्यतः।
आर्यावर्तमुपद्रष्ट्रे सदस्येभ्यस्ततः परम्॥ २२
॥ २२॥

અન્ય બ્રાહ્મણોને (અગ્નિ વગેરે) મધ્યાન્તર વિદિશાઓ તથા કશ્યપને મધ્યભાગ, ઉપદ્રષ્ટાને આર્યાવર્ત તથા (અન્ય) યાજક ભૂદેવોને બાકીનો ભાગ આપ્યો.॥ ૨૨॥ ૨૨॥

ततश्चावभृथस्नानविधूताशेषकिल्बिषः।
सरस्वत्यां ब्रह्मनद्यां रेजे व्यभ्र इवांशुमान्॥ २३
॥ २३॥

ત્યાર પછી બ્રહ્મનદી સરસ્વતીમાં (યજ્ઞની સમાપ્તિ પછી કરવામાં આવતું) અવભૃથ સ્નાન કરી જેમણે સમગ્ર પાપ ધોઈ નાખ્યાં તેવા પરશુરામ વાદળરહિત સૂર્યની જેમ શોભવા લાગ્યા.॥ ૨૩॥ ૨૩॥

स्वदेहं जमदग्निस्तु लब्ध्वा संज्ञानलक्षणम्।
ऋषीणां मण्डले सोऽभूत् सप्तमो रामपूजितः॥ २४

પરશુરામ દ્વારા જેમનું પૂજન કરવામાં આવ્યું તે મહર્ષિ જમદગ્નિ સ્મૃતિરૂપ લક્ષણવાળો પોતાનો દેહ પ્રાપ્ત કરીને સપ્તર્ષિઓના મંડળમાં સાતમા ઋષિ થયા.॥ ૨૪॥

संज्ञानं स्मृतिस्तदेव लक्षणं चिह्नं यस्य तं स्वदेहं लब्ध्वा स ऋषीणां मण्डले सप्तम ऋषिरभूत्॥ २४॥

'संज्ञानम्' સ્મૃતિ, તે જ **'लक्षणम्'** ચિહ્ન છે જેનું તેવો પોતાનો દેહ પ્રાપ્ત કરીને સપ્તર્ષિઓના મંડળમાં સાતમા ઋષિ થયા.॥ ૨૪॥

बा.प्र.—
'कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रोऽथ गौतमः।
जमदग्निर्भरद्वाज इति सप्तर्षयः स्मृताः॥'

'કશ્યપ, અત્રિ, વસિષ્ઠ, વિશ્વામિત્ર, ગૌતમ, જમદગ્નિ અને ભરદ્વાજ– એમ સપ્તર્ષિઓ કહેવાયા છે.'

सि.प्र.—जमदग्निस्तु संज्ञानं स्मरणं भगवद्ध्यानं तस्माल्लक्षणं स्वरूपं यस्य तं भगवद्ध्यानेन निष्पन्नं स्वदेहं लब्ध्वा सप्तर्षीणां मण्डले सप्तम ऋषिरभूत्।

મહર્ષિ જમદગ્નિ સ્મરણ અર્થાત્ ભગવદ્ધ્યાન, તેમાંથી સ્વરૂપ છે જેનું, તે ભગવદ્ધ્યાનથી નિષ્પન્ન થયેલા પોતાના દેહને પ્રાપ્ત કરીને સપ્તર્ષિઓના મંડળમાં સાતમા ઋષિ થયા.

जामदग्न्योऽपि भगवान् रामः कमललोचनः।
आगामिन्यन्तरे राजन् वर्तयिष्यति वै बृहत्॥ २५

हे રાજા, જમદગ્નિનંદન કમળનયન ભગવાન પરશુરામ પણ આવતા (સાવર્ણિ) મન્વન્તરમાં વેદપ્રવર્તક સપ્તર્ષિઓમાંના એક ઋષિ થશે.॥ ૨૫॥

बृहद्ब्रह्म वेदम्। वेदप्रवर्तकेषु सप्तर्षिष्वेकतमो भविष्यतीत्यर्थः॥ २५॥

'**बृहद्**' અર્થાત્ વેદ, વેદપ્રવર્તક સપ્તર્ષિઓમાંના એક થશે, એમ અર્થ છે.॥ ૨૫॥

आस्तेऽद्यापि महेन्द्राद्रौ न्यस्तदण्डः प्रशान्तधीः।
उपगीयमानचरितः सिद्धगन्धर्वचारणैः॥ २६

॥ २६॥

(ક્ષત્રિયવધાદિરૂપ) દંડનો જેમણે ત્યાગ કર્યો છે તેવા તથા સિદ્ધ, ગંધર્વ અને ચારણ જેમના ચરિત્રનું ગાન કરે છે તેવા પ્રશાંત બુદ્ધિવાળા ભગવાન પરશુરામ આજે પણ મહેન્દ્ર પર્વત ઉપર વિરાજે છે.॥ ૨૬॥ ૨૬॥

वंशीधरी—अद्यापि चिरजीवित्वात्।

'अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनुमांश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥
सप्तैतांश्च स्मरेन्नित्यं मार्कण्डेयमथाष्टमम्।
जीवेत् वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः॥'

શ્રીપરશુરામજી આજે પણ આ પર્વત ઉપર વિરાજે છે, કારણ કે ચિરંજીવી છે.

'અશ્વત્થામા, બલિરાજા, વ્યાસજી, હનુમાનજી અને વિભીષણ, કૃપાચાર્ય તથા પરશુરામ– આ સાત ચિરંજીવીઓ છે. આ સાત તથા આઠમા માર્કંડેયજીનું નિત્ય સ્મરણ કરતો મનુષ્ય અપમૃત્યુથી રહિત થઈને સો વર્ષ જીવે છે.'

एवं भृगुषु विश्वात्मा भगवान् हरिरीश्वरः।
अवतीर्य परं भारं भुवोऽहन् बहुशो नृपान्॥ २७

સર્વશક્તિમાન વિશ્વાત્મા ભગવાન શ્રીહરિએ ભૃગુવંશીઓમાં અવતાર લઈ પૃથ્વીના વિપુલ ભારરૂપ રાજાઓનો અનેક વાર નાશ કર્યો હતો.॥ ૨૭॥

भुवो भारमहन्। भारमेवाह—नृपानिति॥ २७॥

પૃથ્વીના ભારને ઉતાર્યો હતો. '**भारम्**' ભારનું જ વર્ણન કરે છે— '**नृपान् इति।**'॥ ૨૭॥

तदेवं प्रसक्तानुप्रसक्तं समाप्य प्रस्तुतमाह—**गाधेरिति**।

તો આમ પ્રસંગોપાત્ત જોડાયેલું જમદગ્નિચરિત્ર અને તેની સાથે જોડાયેલું પરશુરામચરિત્ર સમાપ્ત કરીને પ્રસ્તુત કથા કહે છે— '**गाधेः इति।**'

गाधेरभून्महातेजाः समिद्ध इव पावकः।
तपसा क्षात्रमुत्सृज्य यो लेभे ब्रह्मवर्चसम्॥ २८

મહારાજ ગાધિના પુત્ર વિશ્વામિત્ર થયા જે પ્રજ્વલિત અગ્નિ જેવા મહાતેજસ્વી હતા, જેમણે તપથી ક્ષત્રિયત્વનો ત્યાગ કરીને બ્રહ્મતેજ પ્રાપ્ત કર્યું હતું.॥ ૨૮॥

महातेजा विश्वामित्रः॥ २८॥

(૯/૧૫/૫ થી બાકી રહેલી ગાધિની કથા હવે કહે છે.) મહાતેજસ્વી વિશ્વામિત્ર થયા.॥ ૨૮॥

विश्वामित्रस्य चैवासन् पुत्रा एकशतं नृप।
मध्यमस्तु मधुच्छन्दा मधुच्छन्दस एव ते॥ २९

હે નૃપ, વિશ્વામિત્રને એકસો એક પુત્રો હતા. તેમાં વચ્ચેનો (મધ્યમ) પુત્ર મધુચ્છંદસ્ હતો, તેથી તે સર્વે પુત્રો મધુચ્છંદસ્ જ કહેવાયા.॥ ૨૯॥

ते सर्वे लिङ्गसमवायन्यायेन 'प्राणभृत उपदधाति' इतिवन्मधुच्छन्दस एवोच्यन्ते। तथा च श्रुतिः—'तस्य ह विश्वामित्रस्यैकशतं पुत्रा आसुः पञ्चाशदेव ज्यायांसो मधुच्छन्दसः पञ्चाशत् कनीयांसः' इत्यादि।

તે સર્વ પુત્રો લિંગસમવાય ન્યાયથી (નામરૂપ ચિહ્નને કારણે સમ્બદ્ધ હોવાથી મધુચ્છંદસ્ જ કહેવાયા. એક ઈંટ ઉપર પ્રાણભરણના સંસ્કાર કરવામાં આવે છે. તે સંસ્કાર પામેલી ઈંટના પ્રાધાન્યથી બીજી બધી ઈંટો '**प्राणभृतः**' 'પ્રાણ ધારણ કરેલી' માની લેવાય છે. '**उपदधाति**' ઈંટને વેદિ ઉપર સ્થાપિત કરે છે. તે અનુસાર શ્રુતિ છે— 'તે વિશ્વામિત્રને એકસો એક પુત્રો હતા. મધુચ્છંદસ્થી પચાસ મોટા હતા અને પચાસ નાના હતા.' વગેરે

तत्र च विश्वामित्रपुत्रेषु भार्गवस्याजीगर्तस्य देवरातस्य ज्येष्ठत्वमवगम्यते। तथा आश्वलायनबौधायनादिभिः कौशिकानां देवरातप्रवरत्वमुक्तम्। प्रवरश्च तस्मिन्नेव वंशेऽवान्तरभेदो न तु वंशान्तरम्। तथा च स्मृतिः—

'एक एव ऋषिर्यावत्प्रवरेष्वनुवर्तते।
तावत्समानगोत्रत्वं विना भृग्वङ्गिरोगणात्॥'
इति॥ २९॥

વળી, વિશ્વામિત્રના પુત્રોમાં ભૃગુવંશી અજીગર્ત એટલે કે દેવરાતનું જ્યેષ્ઠત્વ સમજાય છે. તે અનુસાર આશ્વલાયન સૂત્રો, બૌદ્ધાયન સૂત્રો વગેરે દ્વારા કૌશિકોનું પ્રવર 'દેવરાત પ્રવર' કહેવાયું છે. વળી, પ્રવર એટલે તે જ વંશના પેટાભેદ, પણ બીજો વંશ નહીં. તે અનુસાર સ્મૃતિ છે— 'અનેક પ્રવરોમાં ગોત્ર-ઋષિ એક જ અનુવર્તિત થાય છે તેથી ગોત્ર સમાન હોય છે, પરંતુ ભૃગુ અને અંગિરસ્, આ બંનેમાં ગોત્ર અને પ્રવર બંને બદલાય છે.' (વિશ્વામિત્રનું કૌશિક ગોત્ર અને દેવરાતનું ભાર્ગવ ગોત્ર. વિશ્વામિત્રે દેવરાતને દત્તક લીધો, તેથી તેનું ગોત્ર કૌશિક થાય.)॥ ૨૯॥

तत्कुतो भृगुवंशसंभवस्य देवरातस्य कौशिकप्रवरत्वमित्याशङ्क्य तदुपपादयन्नाह—**पुत्रं कृत्वेत्यादि** यावत्समाप्ति—

ભૃગુવંશમાં જન્મેલો દેવરાત કૌશિક વંશનો હોય તે કેવી રીતે બને, એવી શંકા કરીને તે સિદ્ધ કરતાં કહે છે— '**पुत्रं कृत्वा**' વગેરેથી માંડીને અધ્યાય સમાપ્ત થાય ત્યાં સુધી—

पुत्रं कृत्वा शुनःशेपं देवरातं च भार्गवम्।
आजीगर्तं सुतानाह ज्येष्ठ एष प्रकल्प्यताम्॥ ३०

ભૃગુવંશી અજીગર્તના પુત્ર શુનઃશેપ (જેનું બીજું નામ હતું) દેવરાત, (વિશ્વામિત્રે) પુત્ર તરીકે સ્વીકારીને (પોતાના) પુત્રોને કહ્યું, 'આ શુનઃશેપ જ્યેષ્ઠ પુત્ર છે, તેમ તમે માનજો.'॥ ૩૦॥

पूर्वमजीगर्तसुतत्वे मध्यमत्वेन पितृभ्यां ममतां विहाय विक्रीतत्वात्तस्य कृपया सुतानाह—ज्येष्ठ एष प्रकल्प्यतामिति॥ ३०॥

પૂર્વે અજીગર્તનો વચેટ પુત્ર હોવાથી માતાપિતા દ્વારા મમતા છોડીને વેચી દેવાયો હતો તેથી અને તે વિશ્વામિત્રની કૃપાને કારણે વિશ્વામિત્રે પુત્રોને કહ્યું:— આ શુનઃશેપ જ્યેષ્ઠ પુત્ર છે, એમ તમે માનજો.॥ ૩૦॥

एतदेव स्पष्टयितुं विशिनष्टि—**य इति** द्वाभ्याम्।

यो वै हरिश्चन्द्रमखे विक्रीतः पुरुषः पशुः।
स्तुत्वा देवान् प्रजेशादीन् मुमुचे पाशबन्धनात्॥ ३१

मुमुचे अमुच्यत॥ ३१॥

यो रातो देवयजने देवैर्गाधिषु तापसः।
देवरात इति ख्यातः शुनःशेपः स भार्गवः॥ ३२

भार्गवोऽपि गाधिषु गाधेर्वंशजेषु देवरात इति ख्यातः॥ ३२॥

ये मधुच्छन्दसो ज्येष्ठाः कुशलं मेनिरे न तत्।
अशपत् तान्मुनिः क्रुद्धो म्लेच्छा भवत दुर्जनाः॥ ३३

तत्तस्य ज्येष्ठत्वं कुशलं न मेनिरे मध्यमस्यानर्थावहत्वं दृष्ट्वा नाङ्गीकृतवन्तः। मुनिर्विश्वामित्रः॥ ३३॥

स होवाच मधुच्छन्दाः सार्धं पञ्चाशता ततः।
यन्नो भवान् संजानीते तस्मिंस्तिष्ठामहे वयम्॥ ३४

पञ्चाशता कनिष्ठैः साकं स मध्यमो मधुच्छन्दा उवाच। नोऽस्माकं यज्ज्येष्ठत्वं कनिष्ठत्वं वा भवान् पिता संजानीते मन्यते तस्मिन्वयं तिष्ठामेति॥ ३४॥

एवमुक्त्वा मन्त्रदृशं 'कस्य नूनं कतमस्यामृतानाम्' इत्यादिमन्त्राणां द्रष्टारं शुनःशेपं ज्येष्ठं चक्रुः। तदाह—

તે જ સ્પષ્ટ કરવા માટે બે શ્લોકોથી વિશેષણપૂર્વક કહે છે— **'यः इति।'**

જે અજીગર્ત હરિશ્ચન્દ્રના યજ્ઞમાં પુરુષપશુ તરીકે વેચાયો હતો અને (વિશ્વામિત્રે ઉપદેશેલા મંત્ર દ્વારા) પ્રજાપતિ વગેરે દેવોની સ્તુતિ કરીને પાશબંધનથી મુક્ત કરવામાં આવ્યો હતો.॥ ૩૧॥

'मुमुचे' મુક્ત કરવામાં આવ્યો હતો.॥ ૩૧॥

(વરુણ)દેવના યજ્ઞમાં જે શુનઃશેપ દેવો દ્વારા આપવામાં આવ્યો હતો (જીવતાં જ મુક્ત કરવામાં આવ્યો હતો), તે તપોનિષ્ઠ ભૃગુવંશી શુનઃશેપ ગાધિવંશમાં 'દેવરાત' નામે પ્રસિદ્ધ થયો.॥ ૩૨॥

ભૃગુવંશી હોવા છતાં **'गाधिषु'** ગાધિના વંશજોમાં 'દેવરાત' તરીકે પ્રસિદ્ધ થયો.॥ ૩૨॥

(વિશ્વામિત્રના પુત્રોમાં) જેઓ મધુચ્છંદસ્‌થી મોટા હતા તેમણે તે (શુનઃશેપનું જ્યેષ્ઠત્વ) યોગ્ય માન્યું નહીં. (તેથી) ક્રોધિત થયેલા મુનિએ તેમને શાપ આપ્યો, 'અરે દુષ્ટો, તમે મ્લેચ્છ થઈ જાઓ!'॥ ૩૩॥

'तत्' તે શુનઃશેપનું જ્યેષ્ઠત્વ યોગ્ય માન્યું નહીં. મધ્યમસ્થાન વચેટપણું અનર્થકારી છે, તેમ જોઈને તેનો સ્વીકાર કર્યો નહીં. **'मुनिः'** મુનિ વિશ્વામિત્રે॥ ૩૩॥

(શાપ સાંભળ્યા) પછી તે મધુચ્છંદસે (પોતાનાથી નાના) પચાસ ભાઈઓ સાથે (વિશ્વામિત્રને) કહ્યું, 'આપ અમારું જ્યેષ્ઠત્વ કે કનિષ્ઠત્વ, જે માનો છો તેમાં અમે રહીશું.'॥ ૩૪॥

પચાસ નાના ભાઈઓ સાથે તે વચેટ મધુચ્છન્દસ્ બોલ્યો. **'नः'** અમારું જ્યેષ્ઠત્વ કે કનિષ્ઠત્વ જે આપ પિતા **'संजानीते'** માનો છો તેમાં અમે રહીશું.॥ ૩૪॥

આમ કહીને **'मन्त्रदृशम्'** કોના, કયા દેવના નામનું ઉચ્ચારણ કરીએ કે જે મને મૃત્યુથી બચાવે? (ऋ.૧/૨૪/૧) વગેરે મંત્રોના દ્રષ્ટા શુનઃશેપને જ્યેષ્ઠ તરીકે સ્વીકાર્યો. તે કહે છે—

ज्येष्ठं मन्त्रदृशं चक्रुस्त्वामन्वञ्चो वयं स्म हि।
विश्वामित्रः सुतानाह वीरवन्तो भविष्यथ।
ये मानं मेऽनुगृह्णन्तो वीरवन्तमकर्त माम्॥ ३५

(આમ કહીને મધુચ્છન્દસે) મંત્રદ્રષ્ટા શુનઃશેપને જ્યેષ્ઠ તરીકે સ્વીકાર્યો (અને કહ્યું), 'અમે તમને જ અનુસરનારા છીએ.' (આ સાંભળીને) વિશ્વામિત્રે પુત્રોને કહ્યુંઃ 'તમે (સુ)પુત્રવાન થશો, કે જે તમે મારું માન જાળવનારા (મારા પૂજ્યત્વનો સ્વીકાર કરનારા) થઈ મને પુત્રવાન બનાવ્યો.'॥ ૩૪॥

वयं सर्वे त्वामन्वञ्चः स्म हि अनुगन्तारः। कनिष्ठाः स्म इत्यर्थः। ततः प्रसन्नो विश्वामित्रस्तान्सुतानाह—वीरवन्तः पुत्रवन्तो भविष्यथ। ये यूयं मे मानं पूज्यत्वमनुगृह्णन्तोऽनुवर्तमानाः सन्तो मां वीरवन्तं पुत्रवन्तमकर्त। कृतवन्त इत्यर्थः॥ ३५॥

અમે સર્વે તમને '**अन्वञ्चः**' અનુસરનારા છીએ. તમારાથી નાના છીએ. તેથી પ્રસન્ન થયેલા વિશ્વામિત્ર તે પુત્રોને કહે છે— '**वीरवन्तः**' પુત્રવાન થશો. જે તમે મારા '**मानम्**' પૂજ્યત્વને '**अनुगृह्णन्तः**' સ્વીકારનારા થઈ મને '**वीरवन्तम्**' પુત્રવાન '**अकर्त**' બનાવ્યો, એમ અર્થ છે.॥ ૩૪॥

एष वः कुशिका वीरो देवरातस्तमन्वित।
अन्ये चाष्टकहारीतजयक्रतुमदादयः॥ ३६

'હે કુશિકવંશી પુત્રો, આ દેવરાત તમારો (તમારા વંશનો કૌશિક જ છે,) કારણ કે (મારો) પુત્ર છે. તમે તેને અનુસરજો.' (હે પરીક્ષિત,) (વિશ્વામિત્રના) બીજા પણ અષ્ટક, હારીત, જય, ક્રતુમાન વગેરે પુત્રો હતા.॥ ૩૬॥

हे कुशिकाः, एष देवरातो वो युष्मदीयः कौशिक एव। यतो वीरो मत्पुत्रस्तमेनमन्वितानुगच्छत। अन्ये चाष्टकादयस्तस्य सुता आसन्॥ ३६॥

હે કુશિકવંશી પુત્રો, આ દેવરાત '**वः**' તમારા વંશનો કૌશિક જ છે, કારણ કે '**वीरः**' મારો પુત્ર છે. '**तम्**' તેને, આ દેવરાતને '**अन्वित**' અનુસરજો. વિશ્વામિત્રને બીજા પણ અષ્ટક વગેરે પુત્રો હતા.॥ ૩૬॥

उपसंहरति—**एवमिति**।

ઉપસંહાર કરે છે— '**एवम् इति।**'

एवं कौशिकगोत्रं तु विश्वामित्रैः पृथग्विधम्।
प्रवरान्तरमापन्नं तद्धि चैवं प्रकल्पितम्॥ ३७

આમ, કૌશિક ગોત્ર વિશ્વામિત્રનાં સંતાનોથી અનેક પ્રકારનું બન્યું તેમ જ બીજા પ્રવરને પ્રાપ્ત થયું, કારણ કે દેવરાતને જ્યેષ્ઠ પુત્ર માનવામાં આવ્યો હતો.॥ ૩૭॥

एके शप्ता एकेऽनुगृहीता अन्यस्तु पुत्रत्वेन स्वीकृत इत्येवं कौशिकगोत्रं पृथग्विधं नानाप्रकारं जातं, तच्च प्रवरान्तरमापन्नं प्राप्तम्। हि यस्मादेवं देवरातज्येष्ठत्वेन तत्प्रकल्पितम्॥ ३७॥

કેટલાક શાપિત થયા, કેટલાક અનુગૃહીત થયા, વળી બીજો પુત્ર તરીકે સ્વીકારાયો. આમ, કૌશિક ગોત્ર '**पृथक् विधं**' અનેક પ્રકારનું બન્યું અને તે પણ અન્ય પ્રવર (વંશજ)ને પ્રાપ્ત થયું. '**हि**' જે કારણે આમ થયું હતું તે કારણ આ છેઃ દેવરાતને જ્યેષ્ઠ પુત્ર તરીકે માનવામાં આવ્યો હતો.॥ ૩૭॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

*****

अथ सप्तदशोऽध्यायः

ક્ષત્રવૃદ્ધ, રજિ વગેરે રાજાઓના વંશનું વર્ણન

आयोः सप्तदशे त्वैलज्येष्ठपुत्रस्य पञ्चसु।
सुतेषु क्षत्रवृद्धादिचतुर्णां वंशवर्णनम्॥ १ ॥

इह श्रीकृष्णावतारप्रस्तावाय वंशानुक्रमणमैलादिक्रमेण प्रक्रान्तमिति यस्य वंशे कृष्णावतारस्तस्य वंशोऽतिविततत्वादन्ते निरूप्यते। अतः पुरूरवसः पुत्राणां पञ्चानां कनिष्ठानां वंशानुक्त्वेदानीं प्रथमस्य वंशमाह—**य इति**।

श्रीशुक उवाच

यः पुरूरवसः पुत्र आयुस्तस्याभवन् सुताः।
नहुषः क्षत्रवृद्धश्च रजी रम्भश्च वीर्यवान्॥ १
अनेना इति राजेन्द्र शृणु क्षत्रवृधोऽन्वयम्।
क्षत्रवृद्धसुतस्यासन् सुहोत्रस्यात्मजास्त्रयः॥ २

एवं नहुषययातियदुप्रभृतिष्वपि द्रष्टव्यम् ॥ १ ॥

क्षत्रवृधः क्षत्रवृद्धस्य॥ २॥

काश्यः कुशो गृत्समद इति गृत्समदादभूत्।
शुनकः शौनको यस्य बह्वृचप्रवरो मुनिः॥ ३

॥ ३ ॥

काश्यस्य काशिस्तत्पुत्रो राष्ट्रो दीर्घतमःपिता।
धन्वन्तरिर्दैर्घतम आयुर्वेदप्रवर्तकः॥ ४

दीर्घतमसः पिता॥ ४॥

सि.प्र.—सामुद्रश्चन्द्रवंशे धन्वन्तरिरवतीर्ण इति ज्ञेयं—तथाह भगवान्पराशरः भगवता नारायणेन

ઐલ(પુરૂરવા)ના જ્યેષ્ઠ પુત્ર આયુના પાંચ પુત્રોમાંના ક્ષત્રવૃદ્ધ વગેરે ચાર પુત્રોના વંશનું વર્ણન સત્તરમા અધ્યાયમાં છે.॥ ૧ ॥

અહીં શ્રીકૃષ્ણાવતારની ભૂમિકા માટે વંશના અનુક્રમ માટે ઐલ વગેરે ક્રમથી આરંભ કર્યો છે, એટલે જેના વંશમાં કૃષ્ણાવતાર થયો છે તેનો વંશ અતિ વિસ્તૃત હોવાથી તેનું અંતમાં નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે. આથી પુરૂરવાના પાંચ પુત્રોમાંના નાના પુત્રોના વંશોને વર્ણવીને હવે પ્રથમ પુત્રનો વંશ કહે છે— **'यः इति।'**

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – પુરૂરવાના જે આયુ નામના પુત્ર હતા તેમના નહુષ, ક્ષત્રવૃદ્ધ, રજિ, મહાબળવાન રંભ તથા॥ ૧ ॥

અનેના નામના પુત્રો થયા. હે રાજેન્દ્ર પરીક્ષિત, (તેમાંના) ક્ષત્રવૃદ્ધનો વંશ તમે શ્રવણ કરો. ક્ષત્રવૃદ્ધના પુત્ર સુહોત્રના ત્રણ પુત્રો થયા:॥ ૨ ॥

નહુષ, યયાતિ અને યદુ વગેરેના વંશોમાં પણ (સૂચિકટાહન્યાયથી અલ્પ વસ્તુનું નિરૂપણ સરળ હોવાથી) એ જ પ્રમાણે સમજવું.॥ ૧ ॥

'क्षत्रवृधः' क्षत्रवृद्धस्य ક્ષત્રવૃદ્ધના॥ ૨ ॥

કાશ્ય, કુશ અને ગૃત્સમદ. ગૃત્સમદથી શુનક થયા, જેમના પુત્ર શૌનક ઋગ્વેદીઓમાં શ્રેષ્ઠ મુનિ થયા.॥ ૩ ॥॥ ૩ ॥

કાશ્યના કાશિ અને તેમના પુત્ર રાષ્ટ્ર કે જે દીર્ઘતમસ્‌ના પિતા હતા. દીર્ઘતમસ્ (દીર્ઘતમા)ના પુત્ર દૈર્ઘતમ આયુર્વેદના પ્રવર્તક ધન્વન્તરિ હતા. ॥ ૪ ॥

'दीर्घतमसः' દીર્ઘતમાના પિતા (રાષ્ટ્ર)॥ ૪॥

સમુદ્રમાંથી ઉત્પન્ન થયેલા ધન્વન્તરિ ચંદ્રવંશમાં અવતરિત થયા, એ જાણવું જોઈએ, એમ ભગવાન પરાશર કહે છે.

चातीतसम्भूतावस्मै वरो दत्तः काशिराजगोत्रेऽवतीर्य त्वमष्टधा सम्यगायुर्वेदं करिष्यसीति।

ભૂતકાળમાં સમુદ્રમાંથી ઉત્પન્ન થયેલા ધન્વન્તરિને ભગવાન શ્રીનારાયણ દ્વારા વરદાન આપવામાં આવ્યું હતું કે તમે કાશિરાજના ગોત્રમાં અવતાર લઈને આયુર્વેદને આઠ પ્રકારવાળો કરશો.

(ચંદ્રવંશમાં ચંદ્ર, બુધ, પુરૂરવા, આયુ, નહુષ, ક્ષત્રવૃદ્ધ, હોત્ર, કાશ્ય, કાશિ, રાષ્ટ્ર, દીર્ઘતમા અને ધન્વન્તરિ થયા.)

यज्ञभुग् वासुदेवांशः स्मृतमात्रार्तिनाशनः।
तत्पुत्रः केतुमानस्य जज्ञे भीमरथस्ततः॥ ५

(ભગવાન ધન્વન્તિર) યજ્ઞભોક્તા ભગવાન વાસુદેવના અંશરૂપ અને સ્મરણમાત્રથી રોગોનો નાશ કરનારા હતા. તેમના પુત્ર (કેતુમાન થયા). કેતુમાનના ભીમરથ જન્મ્યા, તેમનાથી ॥ ૫॥

दिवोदासो द्युमांस्तस्मात् प्रतर्दन इति स्मृतः।
स एव शत्रुजिद् वत्स ऋतध्वज इतीरितः।
तथा कुवलयाश्वेति प्रोक्तोऽलर्कादयस्ततः॥ ६

દિવોદાસ, તેમનાથી દ્યુમાન, કે જે પ્રતર્દન નામથી પણ પ્રખ્યાત છે, તે જ શત્રુજિત્, વત્સ, ઋતધ્વજ અને કુવલયાશ્વ નામથી કહેવાય છે. તેમનાથી અલર્ક વગેરે પુત્રો થયા.॥ ૬॥

स्मृतमात्र एवार्तिं रोगदुःखं नाशयतीति तथा॥ ५॥

સ્મરણ માત્રથી જ '**आर्तिं**' રોગરૂપ દુઃખનો નાશ કરે તેવા॥ ૫॥

ततः प्रतर्दनादिशब्दवाच्याद् द्युमतः सकाशादलर्कादयः॥ ६॥

'**ततः**' પ્રર્તદન વગેરે નામથી કહેવાતા દ્યુમાનથી અલર્ક વગેરે થયા.॥ ૬॥

षष्टिवर्षसहस्त्राणि षष्टिवर्षशतानि च।
नालर्कादपरो राजन् मेदिनीं बुभुजे युवा॥ ७
॥ ७॥

હે રાજા પરીક્ષિત, અલર્ક સિવાય બીજા કોઈ રાજાએ યુવાન રહી છાસઠ હજાર છસો (૬૬૬૦૦) વર્ષો સુધી પૃથ્વી ભોગવી નથી.॥ ૭॥ ૭॥

अलर्कात् सन्ततिस्तस्मात् सुनीथोऽथ सुकेतनः।
धर्मकेतुः सुतस्तस्मात् सत्यकेतुरजायत॥ ८

અલર્કથી સંતતિ (નામના પુત્ર) થયા. તેમનાથી સુનીથ, પછી સુકેતન, તેમનાથી ધર્મકેતુ નામના પુત્ર અને તેમનાથી સત્યકેતુ થયા.॥ ૮॥

अलर्कात्सन्ततिसंज्ञः॥ ८॥

અલર્કથી સંતતિ નામના (પુત્ર)॥ ૮॥

धृष्टकेतुः सुतस्तस्मात् सुकुमारः क्षितीश्वरः।
वीतिहोत्रस्य भर्गोऽतो भार्गभूमिरभून्नृपः॥ ९

સત્યકેતુના ધૃષ્ટકેતુ, તેમનાથી પૃથ્વીપતિ સુકુમાર, તેમનાથી વીતિહોત્ર, વીતિહોત્રના પુત્ર ભર્ગ અને પછી ભાર્ગભૂમિ નામના પુત્ર રાજા થયા.॥ ૯॥

सत्यकेतोर्धृष्टकेतुस्तस्मात्सुकुमारस्तस्माद्वीति-होत्रस्तस्य भर्गः। अतो भर्गाद्भार्गभूमिः॥ ९॥

સત્યકેતુના ધૃષ્ટકેતુ, તેમનાથી સુકુમાર, તેમનાથી વીતિહોત્ર, તેમના ભર્ગ અને પછી ભર્ગથી ભાર્ગભૂમિ॥ ૯॥

इतीमे काशयो भूपाः क्षत्रवृद्धान्वयायिनः ।
रम्भस्य रभसः पुत्रो गम्भीरश्चाक्रियस्ततः ॥ १०

આમ, આ કાશિવંશના રાજાઓ (કાશિના પ્રપિતામહ) ક્ષત્રવૃદ્ધના વંશમાં આવે છે. (હવે આયુના પુત્ર રંભનો વંશ કહે છે.) રંભના પુત્ર રભસ થયા. તેમના ગંભીર અને તેમનાથી અક્રિય (નામના પુત્ર) થયા. ॥ ૧૦ ॥

काशयः काशेर्वंश्याः । काशेः प्रपितामहस्य क्षत्रवृद्धस्यान्वयमयन्ते यान्तीति तथा ॥ १० ॥

'**काशयः**' કાશિના વંશજો– કાશિના પ્રપિતામહ ક્ષત્રવૃદ્ધના વંશમાં આવે છે તે રીતે ॥ ૧૦ ॥

तस्य क्षेत्रे ब्रह्म जज्ञे शृणु वंशमनेनसः ।
शुद्धस्ततः शुचिस्तस्मात् त्रिककुद् धर्मसारथिः ॥ ११

તે અક્રિયની ભાર્યામાં બ્રાહ્મણજાતિ જન્મી. (હવે આયુના પાંચમા પુત્ર) અનેનાનો વંશ શ્રવણ કરો. અનેનાના શુદ્ધ, તેમનાથી શુચિ, તેમનાથી ત્રિકકુદ થયા, કે જે ધર્મસારથિ કહેવાયા. ॥ ૧૧ ॥

ततोऽनेनसः शुद्धो जज्ञे ॥ ११ ॥

તે અનેનસ્‌થી શુદ્ધ જન્મ્યા. ॥ ૧૧ ॥

ततः शान्तरयो जज्ञे कृतकृत्यः स आत्मवान् ।
रजेः पञ्चशतान्यासन् पुत्राणाममितौजसाम् ॥ १२

તે ત્રિકકુદથી શાંતરય જન્મ્યા. તેમણે આત્મતત્ત્વનો સાક્ષાત્કાર કર્યો હોવાથી તે કૃતકૃત્ય (સર્વકર્તવ્યશૂન્ય-બા.પ્ર.) હતા. (આયુના પુત્ર) રજિના અમાપ બળવાળા પાંચસો પુત્રો હતા. ॥ ૧૨ ॥

कृतकृत्यः सः । यत आत्मवान् ज्ञानी । अतः पुत्रोत्पादनं न कृतवानित्यर्थः ॥ १२ ॥

તે શાંતરય કૃતકૃત્ય હતા, કારણ કે '**आत्मवान्**' જ્ઞાની હતા, આથી પુત્રોત્પત્તિ કરી ન હતી, એમ અર્થ છે. ॥ ૧૨ ॥

देवैरभ्यर्थितो दैत्यान् हत्वेन्द्रायाददाद् दिवम् ।
इन्द्रस्तस्मै पुनर्दत्त्वा गृहीत्वा चरणौ रजेः ॥ १३

॥ १३ ॥

आत्मानमर्पयामास प्रह्लादाद्यरिशङ्कितः ।
पितर्युपरते पुत्रा याचमानाय नो ददुः ॥ १४

॥ १४ ॥

त्रिविष्टपं महेन्द्राय यज्ञभागान् समाददुः ।
गुरुणा हूयमानेऽग्नौ बलभित् तनयान् रजेः ॥ १५

દેવો દ્વારા જેને પ્રાર્થના કરવામાં આવી હતી તે રજિએ દૈત્યોને હણીને ઇન્દ્રને સ્વર્ગ આપ્યું હતું. (પરંતુ) પ્રહ્‌લાદ વગેરે શત્રુઓથી ભયભીત રહેતા ઇન્દ્રે રજિના બંને ચરણો પકડીને તેને રાજ્ય પાછું આપીને પોતાની જાત સોંપી દીધી હતી (પોતાની રક્ષાનો ભાર તેને સોંપ્યો હતો). પિતા રજિ મૃત્યુ પામ્યા ત્યારે સ્વર્ગ (પાછું) માગતા ઇન્દ્રને પુત્રોએ સ્વર્ગ (પાછું) આપ્યું નહીં. વળી, યજ્ઞભાગ પણ પોતે જ ગ્રહણ કરવા લાગ્યા. ગુરુ બૃહસ્પતિ દ્વારા અગ્નિમાં હોમ કરવામાં આવ્યો ત્યારે (અભિચાર મંત્રથી રજિના પુત્રોની બુદ્ધિ ભ્રષ્ટ થવાથી) ધર્મમાર્ગથી

अवधीद् भ्रंशितान् मार्गान्न कश्चिदवशेषितः।
कुशात् प्रतिः क्षात्रवृद्धात् सञ्जयस्तत्सुतो जयः॥ १६

ભ્રષ્ટ થયેલા રજિના પુત્રોનો ઈન્દ્રે વધ કર્યો, એક પણ બચ્યો નહીં. (હવે ક્ષત્રવૃદ્ધના પુત્ર સુહોત્રના પુત્ર કુશ અર્થાત્) ક્ષાત્રવૃદ્ધના પુત્ર કુશથી પ્રતિ, તેમનાથી સંજય અને તેમના પુત્ર જય થયા.॥ ૧૩॥ ૧૪॥ ૧૫॥ ૧૬॥

तेषां मतिभ्रंशाय गुरुणा बृहस्पतिनाऽभिचार-विधानेनाग्नौ हूयमाने सति॥ १५॥

તે રજિના પુત્રોની બુદ્ધિ ભ્રષ્ટ કરવા માટે ગુરુ બૃહસ્પતિ દ્વારા અભિચારના વિધાનથી અગ્નિમાં હોમ કરવામાં આવ્યો ત્યારે ॥ ૧૫॥

सिंहावलोकनेनाह—क्षात्रवृद्धात्क्षत्रवृद्धपौत्रात् कुशात्प्रतिः। प्रतेः संजयः॥ १६॥

સિંહાવલોકન દ્વારા કહે છે – ક્ષત્રવૃદ્ધના પૌત્ર કુશથી પ્રતિ થયા. પ્રતિના સંજય થયા.॥ ૧૬॥

ततः कृतः कृतस्यापि जज्ञे हर्यवनो नृपः।
सहदेवस्ततोऽहीनो जयसेनस्तु तत्सुतः॥ १७
॥ १७॥

તે જયથી કૃત, કૃતના પુત્ર રાજા હર્યવન જન્મ્યા. તેમનાથી સહદેવ, તેમના પુત્ર અહીન અને તે અહીનના પુત્ર જયસેન થયા.॥ ૧૭॥

सङ्कृतिस्तस्य च जयः क्षत्रधर्मा महारथः।
क्षत्रवृद्धान्वया भूपाः शृणु वंशं च नाहुषात्॥ १८
॥ १८॥

જયસેનના સંકૃતિ, તેમના (પુત્ર) જય ક્ષત્રધર્મનિષ્ઠ મહારથી થયા. (આ) ક્ષત્રવૃદ્ધના વંશજ રાજાઓ (કહેવામાં આવ્યા) છે. (હવે) નહુષપુત્ર યયાતિથી ચાલેલો વંશ સાંભળો.॥ ૧૮॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे चन्द्रवंशानुवर्णने सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

*****

अथाष्टादशोऽध्यायः

યયાતિ-ચરિત્ર

अष्टादशे ययातेस्तु नाहुषस्य कथोच्यते।
यस्य पञ्चसु पुत्रेषु कनीयानग्रहीज्जराम्॥ १॥

અઢારમા અધ્યાયમાં નહુષપુત્ર યયાતિની કથા કહેવામાં આવે છે, જેના પાંચ પુત્રોમાંના સૌથી નાના પુત્રે તેની વૃદ્ધાવસ્થા ગ્રહણ કરી હતી.॥ ૧॥

श्रीशुक उवाच

यतिर्ययातिःसंयातिरायतिर्वियतिः कृतिः।
षडिमे नहुषस्यासन्निन्द्रियाणीव देहिनः॥ १
॥ १॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — દેહધારીઓને જેમ છ ઈન્દ્રિયો હોય છે તેમ (આયુના પુત્ર) નહુષને યતિ, યયાતિ, સંયાતિ, આયતિ, વિયતિ અને કૃતિ– એ છ પુત્રો હતા.॥ ૧॥ ૧॥

राज्यं नैच्छद् यतिः पित्रा दत्तं तत्परिणामवित्।
यत्र प्रविष्टः पुरुष आत्मानं नावबुध्यते॥ २

પિતાએ આપેલું રાજ્ય, તેના (અનર્થકારી) પરિણામને જાણનાર યતિએ લેવા ઈચ્છ્યું નહીં, જ્યાં પ્રવેશેલો (રાજ્યની ખટપટમાં પડેલો) મનુષ્ય પોતાના આત્માને જાણી શકતો નથી.॥ ૨॥

तस्य राज्यस्य परिणाममनर्थावहत्वं वेत्तीति तथा। तत्र हेतुः—यत्रेति॥ २॥

'तस्य' તે રાજ્યના અનર્થકારી પરિણામને જાણે તેવો– તે માટેનું કારણ— **'यत्र इति।'**॥ ૨॥

पितरि भ्रंशिते स्थानादिन्द्राण्या धर्षणाद्द्विजैः।
प्रापितेऽजगरत्वं वै ययातिरभवन्नृपः॥ ३

પિતા નહુષ જ્યારે સ્વર્ગરૂપી સ્થાનથી ભ્રષ્ટ થયા ત્યારે શચી ઈન્દ્રાણી સાથે વિષયભોગની અભિલાષા રાખવાથી અગસ્ત્યાદિ દ્વિજો દ્વારા (શાપ પામી) અજગરત્વને પ્રાપ્ત થયા હતા. (તે સમયે) યયાતિ રાજા થયા હતા.॥ ૩॥

स्थानात्स्वर्गात्। द्विजैरगस्त्यादिभिः॥ ३॥

'स्थानात्' સ્વર્ગરૂપી સ્થાનથી, **'द्विजैः'** અગસ્ત્યાદિ દ્વિજો દ્વારા (આ કથા શ્રીમદ્ભા. ૬/૧૩/૧૬માં છે.)॥ ૩॥

चतसृष्वादिशद् दिक्षु भ्रातॄन् भ्राता यवीयसः।
कृतदारो जुगोपोर्वीं काव्यस्य वृषपर्वणः॥ ४

(જ્યેષ્ઠ) ભાઈ યયાતિએ (પોતાનાથી) નાના (ચાર) ભાઈઓને ચારેય દિશાઓમાં (રાજ્ય કરવાની) આજ્ઞા આપી હતી અને પોતે શુક્રાચાર્ય અને વૃષપર્વાની (એમ બે કન્યાઓને પત્ની બનાવી) (મધ્યવર્તી) ભૂમિનું પાલન કરતો હતો.॥ ૪॥

यवीयसो भ्रातॄनादिशत्। काव्यस्य शुक्रस्य वृषपर्वणश्च कन्याभ्यां कृतदारः सन्॥ ४॥

નાના ભાઈઓને આજ્ઞા આપી હતી. (પ્રજાપાલન માટે નિયુક્ત કર્યા હતા.) **'काव्यस्य'** શુક્રાચાર્યની અને વૃષપર્વા દાનવની બે કન્યાઓને પત્ની બનાવીને॥ ૪॥

राजोवाच

ब्रह्मर्षिर्भगवान् काव्यः क्षत्रबन्धुश्च नाहुषः।
राजन्यविप्रयोः कस्माद् विवाहः प्रतिलोमकः॥ ५
॥ ५॥

રાજા પરીક્ષિત બોલ્યા — ભગવાન શુક્રાચાર્ય બ્રહ્મર્ષિ હતા અને નહુષપુત્ર યયાતિ ક્ષત્રિય હતા. (તો પછી) બ્રાહ્મણ (કન્યા) અને ક્ષત્રિય (વર)નો પ્રતિલોમ કરનારો (વિપરીત) વિવાહ કેવી રીતે થયો?॥ ૫॥ ૫॥

बा.प्र.—'प्रतिलोमक इति।' क्षत्त्रियकन्या कदाचित् ब्राह्मणेन विवाह्यतेऽपि, न तु ब्राह्मण-कन्या क्षत्त्रियेण विपरीतत्वादिति भावः।

ક્ષત્રિયની કન્યા ક્યારેક બ્રાહ્મણ વર સાથે વિવાહ કરી શકે (આ અનુલોમ વિવાહ છે), પરંતુ બ્રાહ્મણ કન્યા ક્ષત્રિય સાથે વિવાહ કરી શકે નહીં, કારણ કે તે વિપરીત (પ્રતિલોમ વિવાહ) છે, એવો ભાવ છે.

नात्र प्रतिलोमतादोष ईश्वरघटनादिति दर्शयन्कथामाह—एकदेत्यादिना प्रतिजग्राह तद्वच इत्यन्तेन।

અહીં પ્રતિલોમતાનો દોષ નથી, પણ આ વિવાહ ઈશ્વરનિર્મિત છે, એમ દર્શાવતાં કથા કહે છે— **'एकदा'** વગેરેથી **'प्रतिजग्राह तद्वचः'** (શ્લોક-૨૩) સુધી

श्रीशुक उवाच

एकदा दानवेन्द्रस्य शर्मिष्ठा नाम कन्यका ।
सखीसहस्त्रसंयुक्ता गुरुपुत्र्या च भामिनी ॥ ६

देवयान्या पुरोद्याने पुष्पितद्रुमसङ्कुले ।
व्यचरत् कलगीतालिनलिनीपुलिनेऽबला ॥ ७

गुरोः शुक्रस्य पुत्र्या देवयान्या च व्यचरदिति द्वयोरन्वयः ॥ ६ ॥

कलगीता अलयो येषु तानि नलिनीपुलिनानि यस्मिंस्तस्मिन्पुरोद्याने। अबला शर्मिष्ठा ॥ ७ ॥

ता जलाशयमासाद्य कन्याः कमललोचनाः ।
तीरे न्यस्य दुकूलानि विजह्रुः सिञ्चतीर्मिथः ॥ ८

वीक्ष्य व्रजन्तं गिरिशं सह देव्या वृषस्थितम् ।
सरसोत्तीर्य वासांसि पर्यधुर्व्रीडिताः स्त्रियः ॥ ९

सिंचतीः सिंचन्त्यः ॥ ८ ॥ ९ ॥

शर्मिष्ठाऽजानती वासो गुरुपुत्र्याः समव्ययत् ।
स्वीयं मत्वा प्रकुपिता देवयानीदमब्रवीत् ॥ १०

अजानती स्वीयं मत्वा गुरुपुत्र्या वासः समव्ययत्पर्यधात् ॥ १० ॥

अहो निरीक्ष्यतामस्या दास्याः कर्म ह्यसाम्प्रतम् ।
अस्मद्धार्यं धृतवती शुनीव हविरध्वरे ॥ ११

असांप्रतमन्याय्यम् ॥ ११ ॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — એક દિવસ દાનવોના રાજા વૃષપર્વાની શર્મિષ્ઠા નામની તરુણી, માનિની કન્યા ગુરુ શુક્રાચાર્યની પુત્રી દેવયાની અને હજારો સખીઓ સાથે પુષ્પોથી લચી પડેલાં પુષ્કળ વૃક્ષોવાળા અને મધુર ગુંજારવ કરતા ભમરા જેમાં છે તેવા કમળના સરોવરના રેતાળ કિનારાવાળા, નગરના ઉદ્યાનમાં ફરતી હતી. ॥ ૬ ॥ ૭ ॥

ગુરુ શુક્રાચાર્યની પુત્રી દેવયાની સાથે (શર્મિષ્ઠા) ફરતી હતી, એમ બે શ્લોકોનો અન્વય છે. ॥ ૬ ॥

મધુર ગુંજારવ કરતા ભમરા છે જેમાં તેવા, કમળના સરોવરોના કિનારા છે જેમાં તે નગરના ઉદ્યાનમાં, '**अबला**' તરુણી શર્મિષ્ઠા ॥ ૭ ॥

જળાશયની પાસે આવીને તે કમલનયની કન્યાઓ કિનારે કપડાં મૂકીને પરસ્પર જળ ઉડાડતી ક્રીડા કરવા લાગી. ॥ ૮ ॥

(તે સમયે) દેવી પાર્વતી સાથે નંદિ ઉપર બિરાજેલા ભગવાન શંકરને જતા જોઈને લજ્જિત થયેલી લલનાઓ સરોવરમાંથી નીકળીને વસ્ત્રો પહેરવા લાગી. ॥ ૯ ॥

'**सिंचतीः**' **सिंचन्त्यः** (પ્ર.બ.વ.નું રૂપ થાય.) જળ ઉડાડતી (લલનાઓ) ॥ ૮ ॥ ૯ ॥

અજાણ શર્મિષ્ઠાએ ગુરુપુત્રી દેવયાનીનું વસ્ત્ર પોતાનું માનીને પહેરી લીધું. (એટલે) અત્યંત કુપિત થયેલી દેવયાની આ પ્રમાણે બોલી. ॥ ૧૦ ॥

અજાણ શર્મિષ્ઠાએ પોતાનું માનીને ગુરુપુત્રીનું વસ્ત્ર '**समव्ययत्**' પહેરી લીધું. ॥ ૧૦ ॥

અરે, આ દાસીનું અનુચિત કર્મ તો જુઓ! કૂતરી જેમ યજ્ઞમાં હવિષ્ય ઉઠાવી જાય તેમ અમારે ધારણ કરવાનું વસ્ત્ર પોતે ધારણ કરી લીધું. ॥ ૧૧ ॥

'**असाम्प्रतम्**' અનુચિત ॥ ૧૧ ॥

अन्यायमेव ब्राह्मणोत्कर्षवर्णनेन व्यनक्ति— **यैरिति** त्रिभिः—

यैरिदं तपसा सृष्टं मुखं पुंसः परस्य ये।
धार्यते यैरिह ज्योतिः शिवः पन्थाश्च दर्शितः॥ १२

બ્રાહ્મણોના ઉત્કર્ષના વર્ણન દ્વારા ત્રણ શ્લોકો વડે અનૌચિત્ય જ વ્યક્ત કરે છે— **'यैः इति।'**

જે બ્રાહ્મણો દ્વારા તપથી આ વિશ્વનું સર્જન કરવામાં આવ્યું છે, જેઓ પરમ પુરુષ પરમાત્માનું મુખ છે, આ સંસારમાં જે બ્રાહ્મણો દ્વારા જ્યોતિર્મય પરમાત્માને ધારણ કરવામાં આવે છે, તથા જેમના દ્વારા કલ્યાણકારી (વૈદિક) માર્ગ પ્રવર્તાવવામાં આવ્યો છે,॥ ૧૨॥

यान् वन्दन्त्युपतिष्ठन्ते लोकनाथाः सुरेश्वराः।
भगवानपि विश्वात्मा पावनः श्रीनिकेतनः॥ १३

(મોટા મોટા) લોકપાલો તથા (બ્રહ્મા, ઈન્દ્ર જેવા) સુરેશ્વરો જેમ(ના ચરણો)ની વંદના કરે છે તથા સ્તુતિ કરે છે, પરમ પાવન વિશ્વાત્મા ભગવાન શ્રીનિવાસ પણ જેમને પ્રણામ કરે છે અને સ્તુતિ કરે છે,॥ ૧૩॥

वयं तत्रापि भृगवः शिष्योऽस्या नः पितासुरः।
अस्मद्धार्यं धृतवती शूद्रो वेदमिवासती॥ १४

તેમાં પણ અમે ભૃગુવંશીઓ અને આનો પિતા અસુર અમારો શિષ્ય! જેમ શૂદ્ર વેદ (ભણે) તેમ (આ) દુષ્ટાએ અમારે ધારણ કરવાનું વસ્ત્ર (પોતે) ધારણ કરી લીધું!॥ ૧૪॥

ये ब्राह्मणाः परस्य पुंसो मुखम्, मुखादुत्पन्नत्वेन तृप्तिद्वारत्वेन श्रेष्ठा इत्यर्थः। ज्योतिर्ब्रह्म। पन्था वेदमार्गः॥ १२॥ १३॥

જે બ્રાહ્મણો પરમ પુરુષનું મુખ છે, મુખથી ઉત્પન્ન થવાને કારણે તૃપ્તિના દ્વારરૂપ હોવાથી શ્રેષ્ઠ છે, એમ અર્થ છે. **'ज्योतिः'** જ્યોતિર્મય પરમાત્મા, **'पन्थाः'** વેદમાર્ગ॥ ૧૨॥ ૧૩॥

तदेवं ब्राह्मणमात्रमेव तावत्पूज्यं तत्रापि भृगवः। अस्याश्च पिता नः शिष्यः। एवं सत्यप्यस्माभिर्धार्यं वास इयमसती धृतवती॥ १४॥

તે અનુસાર બ્રાહ્મણમાત્ર અત્યંત પૂજનીય છે, તેમાં પણ અમે ભૃગુવંશીઓ અને આનો પિતા અમારો શિષ્ય, આમ હોવા છતાં પણ અમારા દ્વારા ધારણ કરવાયોગ્ય વસ્ત્ર આ દુષ્ટાએ ધારણ કરી લીધું!॥ ૧૪॥

एवं शपन्तीं शर्मिष्ठा गुरुपुत्रीमभाषत।
रुषा श्वसन्त्युरङ्गीव धर्षिता दष्टदच्छदा॥ १५

॥ १५॥

(નિષ્ઠુર વચનોથી) તુચ્છકારવામાં આવેલી, (પગ તળે દબાયેલી) સાપણની જેમ ક્રોધથી ફૂંફાડો મારતી, જેનાથી હોઠ પિસાઈ ગયો છે તેવી શર્મિષ્ઠાએ આમ તિરસ્કાર કરતી ગુરુપુત્રીને કહ્યું:॥ ૧૫॥ ૧૫॥

आत्मवृत्तमविज्ञाय कत्थसे बहु भिक्षुकि।
किं न प्रतीक्षसेऽस्माकं गृहान् बलिभुजो यथा॥ १६ ॥ १६ ॥

અરે ભિખારણ, પોતાની (ભિખારી જેવી) સ્થિતિ જાણ્યા વિના બહુ ડંફાસ હાંકે છે? કાગડા (કૂતરા)ની જેમ (જીવિકા માટે) શું તું અમારા ઘરની આશા નથી રાખતી?॥ ૧૬ ॥ ૧૬ ॥

एवंविधैः सुपरुषैः क्षिप्त्वाऽऽचार्यसुतां सतीम्।
शर्मिष्ठा प्राक्षिपत् कूपे वास आदाय मन्युना॥ १७ ॥ १७ ॥

પૂજનીય એવી શુક્રાચાર્યપુત્રીને આવા પ્રકારનાં (બીજાં) ઘણા કઠોર વચનોથી તિરસ્કાર કરીને શર્મિષ્ઠાએ ક્રોધથી તેનું વસ્ત્ર લઈ તેને કૂવામાં ફેંકી દીધી.॥ ૧૭ ॥ ૧૭ ॥

तस्यां गतायां स्वगृहं ययातिर्मृगयां चरन्।
प्राप्तो यदृच्छया कूपे जलार्थी तां ददर्श ह॥ १८ ॥ १८ ॥

તે શર્મિષ્ઠા પોતાના ઘરે ચાલી જતાં, મૃગયા માટે ફરતો અને જળ ઈચ્છતો યયાતિ દૈવેચ્છાથી કૂવા પાસે ગયો અને (તેણે) તે દેવયાનીને જોઈ.॥ ૧૮ ॥ ૧૮ ॥

दत्त्वा स्वमुत्तरं वासस्तस्यै राजा विवाससे।
गृहीत्वा पाणिना पाणिमुज्जहार दयापरः॥ १९ ॥ १९ ॥

નિર્વસ્ત્ર એવી તે દેવયાનીને પોતાનું ઉત્તરીય વસ્ત્ર આપીને દયાળુ રાજાએ પોતાના હાથથી તેનો હાથ પકડીને (તેને કૂવામાંથી) બહાર કાઢી.॥ ૧૯ ॥ ૧૯ ॥

तं वीरमाहौशनसी प्रेमनिर्भरया गिरा।
राजंस्त्वया गृहीतो मे पाणिः परपुरञ्जय॥ २० ॥ २० ॥

ઉશનાની પુત્રી દેવયાનીએ તે વીર યયાતિને પ્રેમભરી વાણીથી કહ્યુંઃ શત્રુઓની નગરીને જીતનારા હે રાજા, આપનાથી મારો હાથ ગ્રહણ કરવામાં આવ્યો છે.॥ ૨૦ ॥ ૨૦ ॥

हस्तग्राहोऽपरो मा भूद् गृहीतायास्त्वया हि मे।
एष ईशकृतो वीर सम्बन्धो नौ न पौरुषः॥ २१ ॥

(હવે) (આપનાથી) બીજો પુરુષ (મારો) હાથ ગ્રહણ કરનારો ન થાઓ! આપ દ્વારા મને સ્વીકારવામાં આવી છે. હે વીર, આપણા બંનેનો આ સંબંધ ઈશ્વરનિર્મિત છે, મનુષ્યનિર્મિત નથી.॥ ૨૧ ॥

निषिद्धोऽयं प्रतिलोमसंबन्ध इति चेत्तत्राह—एष इति॥ २१ ॥

જો રાજા કહે કે આ પ્રતિલોમ સંબંધ નિષિદ્ધ છે, તો તે માટે કહે છે— '**एषः इति।**'॥ ૨૧ ॥

यदिदं कूपलग्नाया भवतो दर्शनं मम।
न ब्राह्मणो मे भविता हस्तग्राहो महाभुज।
कचस्य बार्हस्पत्यस्य शापाद् यमशपं पुरा॥ २२

કારણ કે કૂવામાં પડેલી મને આ (અસંભવિત એવાં) આપનાં દર્શન થયાં છે. હે મહાભુજ, જેને મેં પહેલાં શાપ આપ્યો હતો તે બૃહસ્પતિપુત્ર કચના શાપથી કોઈ પણ બ્રાહ્મણ મારો હાથ નહીં સ્વીકારે.॥ ૨૨ ॥

ब्राह्मणमेव त्वं वृणीहि किमनेनाग्रहेणेति चेत्तत्राह—न ब्राह्मण इति। बृहस्पतेः सुतः कचः शुक्रान्मृतसंजीवनीं विद्यामध्यगात्, तदा च देवयानी तं पतिं चकमे, स च गुरुपुत्री मम पूज्येति न तामुदवहत्, ततश्च कुपिता सती तवेयं विद्या निष्फला भवत्विति तं शशाप, स च तव ब्राह्मणः पतिर्न भवेदिति तां शशाप। तदेतदाह—यमहमशपं तस्य शापात्॥ २२॥

જો યયાતિ કહે કે બ્રાહ્મણને જ તું (વર તરીકે) પસંદ કર. આવા આગ્રહથી શો લાભ છે? તે માટે ઉત્તર આપે છે— **'न ब्राह्मणः इति।'** બૃહસ્પતિનો પુત્ર કચ શુક્રાચાર્ય પાસે મૃતસંજીવની વિદ્યા ભણ્યો અને ત્યારે દેવયાનીએ તેની પતિ તરીકે કામના કરી. તે કચે તો ગુરુપુત્રી મારે માટે પૂજનીય છે, એમ (કહી) તેની સાથે લગ્ન કરવાની ના પાડી, તેથી ક્રોધિત થયેલી દેવયાનીએ તેને શાપ આપ્યો, 'તારી આ વિદ્યા નિષ્ફળ થાઓ.' તે કચે પણ તેને શાપ આપ્યો, 'બ્રાહ્મણ તારો પતિ નહીં થાય.' આ તે જ વાત કહે છે— જેને મેં શાપ આપ્યો હતો તેના શાપથી॥ ૨૨॥

ययातिरनभिप्रेतं दैवोपहृतमात्मनः।
मनस्तु तद्गतं बुद्ध्वा प्रतिजग्राह तद्वचः॥ २३

યયાતિને (આ સંબંધ અશાસ્ત્રીય હોવાથી) અભીષ્ટ ન હતો, પરંતુ (આ પ્રસંગ) દૈવ દ્વારા પ્રાપ્ત કરાવવામાં આવેલો જાણીને તેમ જ પોતાના મનને પણ તેનામાં આસક્ત થયેલું જાણીને તે દેવયાનીનું વચન તેણે સ્વીકાર્યું.॥ ૨૩॥

अशास्त्रीयत्वादनभिप्रेतमपि दैवेनोपहृतं प्रापितं बुद्ध्वा तद्गतं तस्यां सकामं स्वं मनश्च बुद्ध्वा न ह्यधर्मे मदीयं मनः प्रविशेदिति तस्या वचः प्रतिजग्राहाङ्गीकृतवान्॥ २३॥

અશાસ્ત્રીય હોવાથી યયાતિને તે અભીષ્ટ ન હતું, પરંતુ દૈવ દ્વારા **'उपहृतम्'** પ્રાપ્ત કરાવવામાં આવેલું જાણીને તથા **'तद्-गतम्'** તેનામાં આસક્ત થયેલા પોતાના મનને જાણીને, 'અધર્મમાં મારું મન ન પ્રવેશે.' (એમ વિચારીને) તે દેવયાનીનું વચન **'प्रतिजग्राह'** સ્વીકાર્યું.॥ ૨૩॥

शर्मिष्ठासंबन्धोऽपि दैववशादेवाभवदिति दर्शयन्नाह—गते राजनीति नवभिः उक्तं भिक्षुकीत्यादि।

શર્મિષ્ઠા સાથેનો (યયાતિનો) સંબંધ પણ દૈવવશાત્ જ થયો, એમ નવ શ્લોકો દ્વારા દર્શાવતાં કહે છે— **'गते राजनि इति।'** **'उक्तम्'** 'ભિખારણ' વગેરે જે કહેવામાં આવ્યું હતું.

गते राजनि सा वीरे तत्र स्म रुदती पितुः।
न्यवेदयत् ततः सर्वमुक्तं शर्मिष्ठया कृतम्॥ २४

વીર રાજા યયાતિ ગયો ત્યારે દેવયાની ત્યાંથી રડતી રડતી પિતા પાસે ગઈ અને તે શર્મિષ્ઠા દ્વારા જે કહેવામાં અને કરવામાં આવ્યું તે સર્વ જણાવ્યું.॥ ૨૪॥

कृतं कूपे प्रक्षेपादि॥ २४॥

'कृतम्' કૂવામાં ફેંકી દીધી વગેરે (જે કરવામાં આવ્યું હતું તે)॥ ૨૪॥

दुर्मना भगवान् काव्यः पौरोहित्यं विगर्हयन्।
स्तुवन् वृत्तिं च कापोतीं दुहित्रा स ययौ पुरात्॥ २५

(તે સાંભળી) દુઃખી મનવાળા ભગવાન શુક્રાચાર્ય પુરોહિતપણાની નિંદા કરતા અને કાપોતી વૃત્તિની પ્રશંસા કરતા, પુત્રી સાથે નગરમાંથી નીકળી ગયા.॥ ૨૫॥

कापोतीमुञ्छवृत्तिम्॥ २५॥

'**कापोतीम्**' ઉંછ વૃત્તિને॥ ૨૫॥

वंशीधरी—कपोतः पक्षी तद्वत्संग्रहयाचनादि-शून्यां वृत्तिम्।

પક્ષીની જેમ સંગ્રહ અને યાચના વગેરે વિનાની વૃત્તિ. (બજારમાં કે ખેતરમાં વેરાયેલા દાણા વીણી લાવીને તેનાથી આજીવિકા ચલાવવી તેને ઉંછ વૃત્તિ કહેવામાં આવે છે.)

वृषपर्वा तमाज्ञाय प्रत्यनीकविवक्षितम्।
गुरुं प्रसादयन् मूर्ध्ना पादयोः पतितः पथि॥ २६

અસુરોનો દ્વેષ કરનારા દેવોને અભિપ્રેત વચનો કહેવાની જેમને ઇચ્છા છે તેવા તે ગુરુને જાણીને (તેમની પાછળ જઈ) રસ્તામાં મસ્તક નમાવીને પ્રસન્ન કરતો વૃષપર્વા તેમના પગમાં પડી ગયો.॥ ૨૬॥

प्रत्यनीका देवास्ते विवक्षिता जयं प्रापणीया इत्यभिप्रेतं यस्य तथाभूतं ज्ञात्वा। प्रत्यनीकानां विवक्षितमिति वा॥ २६॥

'**प्रति-अनीकाः**' વિરોધી દેવો, તેઓ વિજય પ્રાપ્ત કરવા યોગ્ય છે એમ જેમને અભિપ્રેત છે તેવા ગુરુને જાણીને અથવા '**प्रत्यनीकानाम् विवक्षितम् इति।**'॥ ૨૬॥

वंशीधरी—विवक्षितं त्यक्तदैत्यस्त्वमस्माकं जयमाशास्वेत्येवंरूपं वक्तुमिष्टम्।

'જેમણે દૈત્યોનો ત્યાગ કર્યો છે તેવા આપ અમારા વિજયની આશા સેવો.' એમ જે ગુરુને કહેવા ઇષ્ટ છે તેવા ગુરુને

क्रम.—प्रत्यनीकं प्रतिकूलं शापमयं विवक्षितं यस्य तादृशम्।

પ્રતિકૂળ એવું શાપયુક્ત વચન કહેવાની ઇચ્છા છે જેમની તેવા ગુરુજીને જાણીને

क्षणार्धमन्युर्भगवान् शिष्यं व्याचष्ट भार्गवः।
कामोऽस्याः क्रियतां राजन् नैनां त्यक्तुमिहोत्सहे॥
॥ २७॥ २७॥

જેમનો ક્રોધ ક્ષણાર્ધ માટે છે તેવા ઐશ્વર્યવાન શુક્રાચાર્યે શિષ્ય વૃષપર્વાને કહ્યું: 'હે રાજા, આ દેવયાનીનો મનોરથ પૂર્ણ કરો. આ (માતૃહીન દીકરી)ને હું અહીં દુઃખી કરવા ઇચ્છતો નથી. ॥ ૨૭॥ ૨૭॥

तथेत्यवस्थिते प्राह देवयानी मनोगतम्।
पित्रा दत्ता यतो यास्ये सानुगा यातु मामनु॥ २८

'ભલે' એમ (સ્વીકાર કરીને) વૃષપર્વા ઊભો રહ્યો ત્યારે દેવયાનીએ પોતાના મનમાં રહેલો (ઇરાદો) પ્રકટ કર્યો, 'પિતા દ્વારા આપવામાં આવેલી હું જ્યાં જાઉં ત્યાં સખીઓ સહિત (આ શર્મિષ્ઠા મારી દાસી થઈને) મને અનુસરે.'॥ ૨૮॥

सानुगा सखीसहिता शर्मिष्ठा मामनुयात्विति ॥ २८ ॥

'स-अनुगाः' સખીઓ સહિત શર્મિષ્ઠા મને અનુસરે. ॥ ૨૮ ॥

स्वानां तत् सङ्कटं वीक्ष्य तदर्थस्य च गौरवम् ।
देवयानीं पर्यचरत् स्त्रीसहस्रेण दासवत् ॥ २९

સ્વજનોનું તે સંકટ જોઈને અને તેના પ્રયોજનનું મહત્ત્વ જોઈને (શર્મિષ્ઠા) હજાર સખીઓ સાથે દાસીની જેમ દેવયાનીની સેવા કરવા લાગી. ॥ ૨૯ ॥

तत्तस्मान्निर्गताच्छुक्रात्संकटं वीक्ष्य। तत्तस्मादवस्थितादर्थस्य प्रयोजनस्य गौरवं च वीक्ष्य ॥ २९ ॥

'तत्' ત્યાંથી ઘર છોડીને નીકળી જતા શુક્રાચાર્ય(ના કોપ)થી અસુરો ઉપર સંકટ (આવી પડવાનો ભય) જોઈને તથા **'तत्'** તેમાં રહેલા **'अर्थस्य'** પ્રયોજનનું ગૌરવ (મહત્ત્વ) જોઈને ॥ ૨૯ ॥

नाहुषाय सुतां दत्त्वा सह शर्मिष्ठयोशनाः ।
तमाह राजन् शर्मिष्ठामाधास्तल्पे न कर्हिचित् ॥ ३०

નહુષપુત્ર યયાતિને શર્મિષ્ઠાસહિત પુત્રી દેવયાની આપીને શુક્રાચાર્યે તે (યયાતિ)ને કહ્યું: 'હે રાજા, શર્મિષ્ઠાને કદાપિ શય્યામાં સમીપ લાવીશ નહીં.' ॥ ૩૦ ॥

तल्पे नाधाः। नोपगच्छेरित्यर्थः ॥ ३० ॥

'तल्पे न अधाः' શય્યામાં સમીપ લાવીશ નહીં, એમ અર્થ છે. ॥ ૩૦ ॥

विलोक्यौशनसीं राजञ्छर्मिष्ठा सप्रजां क्वचित् ।
तमेव वव्रे रहसि सख्याः पतिमृतौ सती ॥
॥ ३१ ॥ ३१ ॥

હે રાજા પરીક્ષિત, ઉશનાની પુત્રી દેવયાનીને પુત્રવતી જોઈને એક વખત (પોતાના) ઋતુકાળ દરમ્યાન શર્મિષ્ઠા, સખીના પતિ તે યયાતિને જ એકાંતમાં વરી ચૂકી. ॥ ૩૧ ॥ ૩૧ ॥

अन्वि.—अपत्यार्थं सङ्गमं प्रार्थितवती इत्यर्थः ।

સંતાન માટે સહવાસની પ્રાર્થના કરી, એમ અર્થ છે.

राजपुत्र्यार्थितोऽपत्ये धर्मं चावेक्ष्य धर्मवित् ।
स्मरन् शुक्रवचः काले दिष्टमेवाभ्यपद्यत ॥ ३२

રાજપુત્રી શર્મિષ્ઠાએ સંતાન માટે પ્રાર્થના કરી ત્યારે (ઋતુકાળે સંતાન માટે પ્રાર્થના કરતી શર્મિષ્ઠાની કામપૂર્તિ એ મારો) ધર્મ છે, એમ વિચારીને ધર્મજ્ઞ રાજા યયાતિએ શુક્રાચાર્યનું વચન (શ્લોક-૩૦) સ્મરતો (હોવા છતાં) દૈવયોગે પ્રાપ્ત થયેલા (તેના સહવાસ)ને સ્વીકાર્યો. ॥ ૩૨ ॥

अपत्यार्थमृतुकाले प्रार्थनात्तस्याः कामपूरणं धर्ममवेक्ष्य शुक्रस्य वचश्च स्मरन् दिष्टं दैव-प्रापितमेव तत्सङ्गमभ्यपद्यत न तु कामत इत्यर्थः ॥ ३२ ॥

સંતાન માટે ઋતુકાળે કરવામાં આવેલી પ્રાર્થનાથી તેની કામપૂર્તિને ધર્મ વિચારીને શુક્રાચાર્યનું વચન સ્મરતો હોવા છતાં **'दिष्टम्'** દૈવયોગે જ પ્રાપ્ત થયેલો તેનો સહવાસ સ્વીકાર્યો, નહીં કે કામનાને કારણે, એમ અર્થ છે. ॥ ૩૨ ॥

यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत।
द्रुह्युं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी॥ ३३

॥ ३३ ॥

દેવયાનીએ યદુ અને તુર્વસુને જ જન્મ આપ્યો તથા વૃષપર્વાનંદિની શર્મિષ્ઠાએ દ્રુહ્યુ, અનુ અને પૂરુને જન્મ આપ્યો.॥ ૩૩॥ ૩૩॥

गर्भसम्भवमासुर्या भर्तुर्विज्ञाय मानिनी।
देवयानी पितुर्गेहं ययौ क्रोधविमूर्च्छिता॥ ३४

आसुर्याः शर्मिष्ठायाः। भर्तुः सकाशात् ॥ ३४ ॥

અસુરપુત્રી શર્મિષ્ઠાનો (પોતાના) પતિથી રહેલો ગર્ભ જાણીને, ક્રોધથી ભાન ભૂલેલી માનિની દેવયાની પિતૃગૃહે ચાલી ગઈ.॥ ૩૪॥

'आसुर्याः' અસુરની પુત્રી શર્મિષ્ઠાનો પતિથી રહેલો ગર્ભ॥ ૩૪॥

प्रियामनुगतः कामी वचोभिरुपमन्त्रयन्।
न प्रसादयितुं शेके पादसंवाहनादिभिः॥ ३५

उपमन्त्रयन्प्रसादयन्॥ ३५ ॥

પ્રિયાની પાછળ ગયેલો, (મધુર) વચનોથી રીઝવતો કામી યયાતિ તેના ચરણ ચાંપવા વગેરે દ્વારા તેને પ્રસન્ન કરી શક્યો નહીં.॥ ૩૫॥

'उपमन्त्रयन्' રીઝવતો યયાતિ॥ ૩૫॥

शुक्रस्तमाह कुपितः स्त्रीकामानृतपूरुष।
त्वां जरा विशतां मन्द विरूपकरणी नृणाम्॥ ३६

विकृतं रूपं करोतीति तथा॥ ३६ ॥

(દેવયાની પાસેથી બધો વૃત્તાન્ત જાણી) ક્રોધિત થયેલા શુક્રાચાર્યે તે (યયાતિ)ને કહ્યું: 'અરે ઓ સ્ત્રીલોભી! જુઠ્ઠા મનુષ્ય! મૂર્ખ! મનુષ્યોને કદરૂપા કરનારી વૃદ્ધાવસ્થા (તારા શરીરમાં) પ્રવેશ કરે!'॥ ૩૬॥

કદરૂપા બનાવે તેવી (વૃદ્ધાવસ્થા)॥ ૩૬॥

ययातिरुवाच

अतृप्तोऽस्म्यद्य कामानां ब्रह्मन् दुहितरि स्म ते।
व्यत्यस्यतां यथाकामं वयसा योऽभिधास्यति॥ ३७

ते दुहितरि कामैरद्याप्यतृप्तोऽस्मि, कामानां भोगैरिति वा। शुक्र आह—तर्हि योऽभिधास्यत्यभितो धारयिष्यति तस्य वयसा यथाकामं व्यत्यस्यतां यथेच्छं जरा व्यत्ययं यातु। व्यत्ययं नीयतामिति वा। यद्वा व्यत्यस्येति छेदः। तां जरां व्यत्यस्य व्यत्यासं गमयेत्यर्थः॥ ३७॥

યયાતિ બોલ્યા — હે ભગવાન, આપની પુત્રીમાં કામભોગો ભોગવવાથી હું હજુ તૃપ્ત થયો નથી. (આપની પુત્રીને ખાતર પણ આવો શાપ ન આપો.) (તે સાંભળી શુક્રાચાર્યે કહ્યું,) જે (પુત્ર) (તારી વૃદ્ધાવસ્થાને) ધારણ કરશે તેની સાથે ઈચ્છા પ્રમાણે વયની અદલાબદલી કરવામાં આવે.॥ ૩૭॥

આપની પુત્રીમાં કામભોગો ભોગવવાથી હું હજુ તૃપ્ત થયો નથી. અથવા કામનાઓના ભોગથી હું અતૃપ્ત છું. શુક્રાચાર્ય કહે છે— તો પછી **'यः'** જે પુત્ર **'अभिधास्यति'** સર્વ રીતે (તારી વૃદ્ધાવસ્થાને) ધારણ કરશે તેની વય સાથે **'व्यत्यस्यताम्'** ઈચ્છાનુસાર વૃદ્ધાવસ્થા ભલે અદલાબદલી પામે, અથવા અદલાબદલી કરવામાં આવે, અથવા **'व्यत्यस्य-ताम्'** એમ પદચ્છેદ કરવામાં આવે તો તે વૃદ્ધાવસ્થાની તું અદલાબદલી કર.॥ ૩૭॥

इति लब्धव्यवस्थानः पुत्रं ज्येष्ठमवोचत।
यदो तात प्रतीच्छेमां जरां देहि निजं वयः॥ ३८

मातामहकृतां वत्स न तृप्तो विषयेष्वहम्।
वयसा भवदीयेन रंस्ये कतिपयाः समाः॥ ३९

इति लब्धं व्यवस्थानं जराया व्यवस्थितिर्येन सः॥ ३८॥ ३९॥

यदुरुवाच

नोत्सहे जरसा स्थातुमन्तरा प्राप्तया तव।
अविदित्वा सुखं ग्राम्यं वैतृष्ण्यं नैति पूरुषः॥ ४०

॥ ४०॥

तुर्वसुश्चोदितः पित्रा द्रुह्युश्चानुश्च भारत।
प्रत्याचख्युरधर्मज्ञा ह्यनित्ये नित्यबुद्धयः॥ ४१

यतो न धर्मज्ञाः। अनित्ये च यौवने नित्यबुद्धयः॥ ४१॥

अपृच्छत् तनयं पूरुं वयसोनं गुणाधिकम्।
न त्वमग्रजवद् वत्स मां प्रत्याख्यातुमर्हसि॥ ४२

त्वं जरां किं ग्रहीष्यसीत्यपृच्छत्। प्रत्याख्यानं मा कृथा इत्याह—**न त्वमिति**॥ ४२॥

पूरुरुवाच

को नु लोके मनुष्येन्द्र पितुरात्मकृतः पुमान्।
प्रतिकर्तुं क्षमो यस्य प्रसादाद् विन्दते परम्॥ ४३

આમ, જેને વૃદ્ધાવસ્થાની વ્યવસ્થા પ્રાપ્ત થઈ તે યયાતિએ જ્યેષ્ઠ પુત્ર યદુને કહ્યું: 'બેટા યદુ, તારી માતાના પિતાએ કરેલી આ વૃદ્ધાવસ્થાને તું ગ્રહણ કર અને તારી પોતાની યુવાની મને આપ! હે પ્રિય પુત્ર, વિષયોથી હું હજી તૃપ્ત થયો નથી માટે તારા યૌવનથી હું થોડાંક વર્ષો સુધી ભોગો ભોગવીશ.'॥ ૩૮॥ ૩૯॥

આમ, પ્રાપ્ત થઈ છે વૃદ્ધાવસ્થાની '**व्यवस्थानम्**' વ્યવસ્થા જેને તે યયાતિ॥ ૩૮॥ ૩૯

યદુ બોલ્યા — અધવચ્ચે (અકાળે) પ્રાપ્ત થયેલી વૃદ્ધાવસ્થા સાથે રહેવા (જીવવા) હું ઈચ્છતો નથી. વિષયસુખનો અનુભવ કર્યા વિના મનુષ્ય વૈરાગ્ય (તૃષ્ણારાહિત્ય)ને પ્રાપ્ત થતો નથી.॥ ૪૦॥ ૪૦॥

હે ભારત (પરીક્ષિત), પિતા દ્વારા (વૃદ્ધાવસ્થા ગ્રહણ કરવા માટે) જેને કહેવામાં આવ્યું તે તુર્વસુએ તથા દ્રુહ્યુ અને અનુએ પણ ના પાડી, કારણ કે તેઓ ધર્મને જાણતા ન હતા તેમ જ અનિત્ય (એવા યૌવન)માં નિત્યતાની બુદ્ધિ ધરાવનારા હતા.॥ ૪૧॥

કારણ કે તેઓ ધર્મ જાણતા ન હતા તથા અનિત્ય એવા યૌવનમાં નિત્યતાની બુદ્ધિ ધરાવનારા હતા.॥ ૪૧॥

વયથી નાના પણ ગુણથી અધિક એવા પુત્ર પૂરુને યયાતિએ પૂછ્યું, (શું તું વૃદ્ધાવસ્થા લઈશ?) 'હે વત્સ, તારા મોટાભાઈઓની જેમ મને ના પાડે તે તને યોગ્ય નથી.'॥ ૪૨॥

'શું તું ઘડપણ લઈશ?' એમ પૂછ્યું. અસ્વીકાર ના કરીશ, એમ કહે છે— '**न त्वम् इति**।'॥ ૪૨॥

પૂરુ બોલ્યો — હે મનુષ્યોના ઈન્દ્ર, જેમના અનુગ્રહથી (આ લોક અને પરલોકનો) પરમ પુરુષાર્થ પ્રાપ્ત થાય છે તે, પોતાના દેહને ઉત્પન્ન કરનાર પિતાના ઉપકારનો બદલો ચૂકવવા આ લોકમાં કયો મનુષ્ય સમર્થ છે?॥ ૪૩॥

आत्मकृतः स्वदेहकर्तुः प्रत्युपकारं कर्तुं को नु क्षमः ॥ ४३ ॥

'आत्मकृतः' પોતાના દેહને ઉત્પન્ન કરનાર પિતાના ઉપકારનો બદલો ચૂકવવા કોણ સમર્થ છે ? ॥ ૪૩ ॥

उत्तमश्चिन्तितं कुर्यात् प्रोक्तकारी तु मध्यमः ।
अधमोऽश्रद्धया कुर्यादकर्तोच्चरितं पितुः ॥ ४४

(પિતાનું મનમાં) વિચારેલું કાર્ય કરે તે પુત્ર ઉત્તમ છે, પિતાનું કહ્યું કરનારો પુત્ર મધ્યમ છે, પિતાનું કહેલું કાર્ય શ્રદ્ધારહિત થઈને કરે તે અધમ પુત્ર છે અને પિતાનું કહ્યું ન કરનારો તો પિતાના મળ સમાન છે. ॥ ૪૪ ॥

तथापि पितुर्यच्चिन्तितं कुर्यात्स उत्तमः । यस्तु प्रोक्तकारी स मध्यमः । यस्त्वश्रद्धया कुर्यात्सोऽधमः । अकर्ता पितुरुच्चरितं पुरीषप्रायः ॥ ४४ ॥

તેમ છતાં પણ પિતાનું વિચારેલું કાર્ય જે કરે તે ઉત્તમ પુત્ર છે, જે કહ્યું કરનાર છે તે મધ્યમ પુત્ર છે, જે શ્રદ્ધારહિત થઈને કરે તે અધમ પુત્ર છે અને પિતાનું કહ્યું ન કરનારો પિતાના **'उच्चरितम्'** મળ સમાન છે. ॥ ૪૪ ॥

इति प्रमुदितः पूरुः प्रत्यगृह्णाज्जरां पितुः ।
सोऽपि तद्वयसा कामान् यथावज्जुजुषे नृप ॥ ४५

હે નૃપ (પરીક્ષિત), આમ, હર્ષયુક્ત થઈ પૂરુએ પિતાની વૃદ્ધાવસ્થા સ્વીકારી લીધી અને તે યયાતિ તેની યુવાવસ્થાથી ઈચ્છાનુસાર ભોગોનું સેવન કરવા લાગ્યો. ॥ ૪૫ ॥

जुजुषे सेवितवान् ॥ ४५ ॥

'जुजुषे' સેવન કરવા લાગ્યો. ॥ ૪૫ ॥

सप्तद्वीपपतिः सम्यक् पितृवत् पालयन् प्रजाः ।
यथोपजोषं विषयाञ्जुजुषेऽव्याहतेन्द्रियः ॥ ४६

પિતાની જેમ પ્રજાનું સારી રીતે પાલન કરતો, સાત દ્વીપોનો અધિપતિ યયાતિ દૃઢ ઈન્દ્રિયોવાળો થઈ યથેચ્છ વિષયોનું સારી રીતે સેવન કરતો હતો. ॥ ૪૬ ॥

यथोपजोषं यथाप्रीति जुजुषे ॥ ४६ ॥

'यथा-उपजोषम्' યથેચ્છ (યથા પ્રીતિ) સેવન કરતો હતો. ॥ ૪૬ ॥

देवयान्यप्यनुदिनं मनोवाग्देहवस्तुभिः ।
प्रेयसः परमां प्रीतिमुवाह प्रेयसी रहः ॥ ४७

॥ ४७ ॥

પ્રિયતમા દેવયાની પણ પ્રિયતમ યયાતિને માટે મન,વચન, કાયા અને વસ્તુઓ દ્વારા એકાંતમાં પરમ પ્રીતિ ઉપજાવતી હતી. ॥ ૪૭ ॥ ૪૭ ॥

अयजद् यज्ञपुरुषं क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ।
सर्वदेवमयं देवं सर्ववेदमयं हरिम् ॥ ४८

॥ ४८ ॥

રાજા યયાતિએ સમસ્ત વેદોના તાત્પર્યરૂપ તથા સર્વ દેવતાસ્વરૂપ યજ્ઞપુરુષ ભગવાન શ્રીહરિનું મોટી મોટી દક્ષિણાઓવાળા યજ્ઞોથી યજન કર્યું. ॥ ૪૮ ॥ ૪૮ ॥

यस्मिन्निदं विरचितं व्योम्नीव जलदावलिः।
नानेव भाति नाभाति स्वप्नमायामनोरथः॥ ४९

જેમ આકાશમાં (કેટલીક વાર) મેઘપંક્તિ અનેકરૂપ હોય તેમ ભાસે છે અને (કેટલીક વાર) નથી પણ ભાસતી, (જ્યાં સુધી ઇન્દ્રિયોની પ્રવૃત્તિ છે ત્યાં સુધી અનેક હોય તેમ દેહ, ઇન્દ્રિય, વિષય વગેરે ભેદ ભાસે છે અને સુષુપ્તિમાં ઇન્દ્રિયોની વૃત્તિઓ શાંત થઈ જાય ત્યારે ભેદ ભાસતો નથી.) તેમ જે શ્રીહરિમાં કલ્પિત એવું સ્વપ્ન અને માયા સહિત મનોરથ જેવું આ જગત અનેકરૂપે ભાસે છે અને (પ્રલયકાળે) નથી પણ ભાસતું.॥ ૪૯॥

नानेव भाति यावदिन्द्रियप्रवृत्तिः। तदुपरमे नाभाति। स्वप्नमायाभ्यां सहितो मनोरथ इवेत्यर्थः॥ ४९॥

'नाना-इव भाति।' જ્યાં સુધી ઇન્દ્રિયોની પ્રવૃત્તિ છે (ત્યાં સુધી અનેકરૂપે ભેદ ભાસે છે). તે શાંત થતાં ભેદ ભાસતો નથી. સ્વપ્ન અને માયા સહિત મનોરથ જેવું, એમ અર્થ છે.॥ ૪૯॥

तमेव हृदि विन्यस्य वासुदेवं गुहाशयम्।
नारायणमणीयांसं निराशीरयजत् प्रभुम्॥ ५०

॥ ५०॥

તે જ હૃદયગુહામાં રહેલા અતિસૂક્ષ્મ વાસુદેવ શ્રીનારાયણ પ્રભુને (ધ્યાન દ્વારા) હૃદયમાં સ્થાપીને નિષ્કામ થઈ યયાતિએ યજન કર્યું હતું.॥ ૫૦॥ ૫૦॥

एवं वर्षसहस्राणि मनःषष्ठैर्मनःसुखम्।
विदधानोऽपि नातृप्यत् सार्वभौमः कदिन्द्रियैः॥ ५१

આમ, ચક્રવર્તી સમ્રાટ યયાતિ હજારો વર્ષો સુધી, મન જેમાં છઠ્ઠું છે તેવી બહિર્મુખ જ્ઞાનેન્દ્રિયો દ્વારા કામભોગ કરતો હોવા છતાં તૃપ્ત થયો નહીં.॥ ૫૧॥

मनःसुखं कामभोगम्। कदिन्द्रियैः कुत्सितैः पराङ्मुखैरिन्द्रियैः॥ ५१॥

'मनःसुखम्' કામભોગ, **'कदिन्द्रियैः'** દુષ્ટ, બહિર્મુખ ઇન્દ્રિયો દ્વારા॥ ૫૧॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां अष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

❋❋❋❋❋

अथैकोनविंशोऽध्यायः

યયાતિનો ગૃહત્યાગ

ऊनविंशे ययातिः स्वं चेष्टितं नन्वजोपमम्।
देवयानीं समाश्राव्य विरक्तो मुक्तिमाप्तवान्॥ १॥

ઓગણીસમા અધ્યાયમાં બકરા જેવું પોતાનું કર્મ દેવયાનીને સંભળાવીને વિરક્ત થયેલા યયાતિએ મુક્તિ પ્રાપ્ત કરી (તે કથા છે).॥ ૧॥

भुक्तभोगामजां हास्यन्नजवद्वृत्तमात्मनः।
विडम्बयन्प्रियामाह निर्वेदयितुमात्मवान्॥ २॥

श्रीशुक उवाच

स इत्थमाचरन् कामान् स्त्रैणोऽपह्नवमात्मनः।
बुद्ध्वा प्रियायै निर्विण्णो गाथामेतामगायत॥ १

कामानाचरन्नुपभुञ्जानः। गाथामितिहासम्॥ १॥

शृणु भार्गव्यमूं गाथां मद्विधाचरितां भुवि।
धीरा यस्यानुशोचन्ति वने ग्रामनिवासिनः॥ २

मद्विधेन मत्सदृशेनाचरितामनुष्ठिताम्। मद्विधस्याचरितं यस्यामिति वा। यस्य ग्रामनिवासिनः कामिनो मद्विधस्याचरितं वने स्थिता धीराः शोचन्ति तस्य गाथां शृणु॥ २॥

आत्मानमनुलक्ष्याह—**बस्त इति**।

बस्त एको वने कश्चिद् विचिन्वन् प्रियमात्मनः।
ददर्श कूपे पतितां स्वकर्मवशगामजाम्॥ ३

प्रियामनुलक्ष्याह—अजामिति। वने संसारे। प्रियं विषयम्॥ ३॥

तस्या उद्धरणोपायं बस्तः कामी विचिन्तयन्।
व्यधत्त तीर्थमुद्धृत्य विषाणाग्रेण रोधसी॥ ४

જેનો વિષયભોગ ભોગવ્યો તે બકરીને તજતા બકરા જેવા પોતાના જીવનનો ઉપહાસ કરતાં જેણે જ્ઞાન પ્રાપ્ત કર્યું તેવો રાજા યયાતિ વૈરાગ્ય ધારણ કરવા માટે પ્રિયા દેવયાનીને કહે છે.॥ ૨॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – આ પ્રમાણે સ્ત્રીવશ થઈને વિષયોનો ઉપભોગ કરતો તે (યયાતિ) પોતાનું અધ:પતન (થયું છે, એમ) સમજીને વિરક્ત થઈ પ્રિયા (દેવયાની)ને આ ઈતિહાસ કહેવા લાગ્યો.॥ ૧॥

વિષયોનો '**आचरन्**' ઉપભોગ કરતો, '**गाथाम्**' ઈતિહાસને॥ ૧॥

હે ભૃગુનંદિની, પૃથ્વી ઉપર મારા જેવાના આચરણની આ ગાથા સાંભળ કે જેમને માટે વનમાં વસનારા જિતેન્દ્રિય મનુષ્યો (કેવી રીતે આનું કલ્યાણ થાય? એમ) ગ્રામ્યસુખ ભોગવનારા મનુષ્યના આચરણનો વિચાર કરે છે.॥ ૨॥

'**मद्-विधेन**' મારા જેવાએ '**आचरिताम्**' આચરેલી ગાથાને અથવા મારા જેવાનું આચરણ જેમાં છે (તે ગાથાને), જે '**ग्रामनिवासिनः**' વિષયી એવા મારા જેવાના આચરણનો વનમાં રહેલા જિતેન્દ્રિય પુરુષો શોકપૂર્વક વિચાર કરે છે, તેની ગાથા સાંભળ.॥ ૨॥

પોતાની જાતને અનુલક્ષીને કહે છે— '**बस्तः इति।**'

વનમાં પોતાની પ્રિય વસ્તુની શોધ કરતા કોઈ એક બકરાએ પોતાના કર્મને વશ થઈ કૂવામાં પડેલી બકરીને જોઈ.॥ ૩॥

પ્રિયા દેવયાનીને અનુલક્ષીને કહે છે— '**अजाम् इति।**' '**वने**' સંસારમાં, '**प्रियम्**' વિષયને ॥ ૩॥

તેને બહાર કાઢવાનો ઉપાય વિચારતા વિષયી બકરાએ શિંગડાની અણી વડે કૂવાના કિનારા પરની (માટી વગેરે) ખોદીને પાર કરી શકાય તેવા સ્થાને નીકળવા માટે માર્ગ કર્યો.॥ ૪॥

रोधसी तटे विषाणाग्रेण मृदादिकमुद्धृत्य तीर्थं निर्गमाय मार्गं व्यधत्त॥ ४॥

'**रोधसी**' કિનારે શિંગડાની અણીથી માટી વગેરે ખોદીને પાર કરી શકાય તેવા સ્થાને નીકળવા માટે માર્ગ કર્યો.॥ ૪॥

सोत्तीर्य कूपात् सुश्रोणी तमेव चकमे किल।
तया वृतं समुद्वीक्ष्य बह्व्योऽजाः कान्तकामिनीः॥ ५

पीवानं श्मश्रुलं प्रेष्ठं मीढ्वांसं याभकोविदम्।
स एकोऽजवृषस्तासां बह्वीनां रतिवर्धनः।
रेमे कामग्रहग्रस्त आत्मानं नावबुध्यत॥ ६

કૂવામાંથી બહાર નીકળીને સુંદર નિતમ્બવાળી તે બકરીએ શરીરે હૃષ્ટપુષ્ટ, દાઢી-મૂછવાળા, અત્યંત પ્રેમાસ્પદ, વીર્યસિંચન કરી શકે તેવા, મૈથુનકુશળ એવા તે બકરાની જ કામના કરી. તેનાથી કરાયેલું કર્મ જોઈને ઘણી બકરીઓ (તે બકરારૂપી) કાન્ત પ્રત્યે કામનાવાળી થઈ. તે એક જ શ્રેષ્ઠ બકરો અનેક બકરીઓને પ્રીતિ વધારનાર થઈ પડ્યો. કામરૂપી પિશાચથી ગ્રસ્ત થયેલો તે રમણ કરવા લાગ્યો અને (દેહાદિથી વિલક્ષણ સ્વરૂપવાળા) તેણે આત્માને જાણ્યો નહીં.॥ ૫॥ ૬॥

बह्व्य इति शर्मिष्ठाप्रमुखाः कामयामासुः। कान्तं प्रति कामिनीः कामवत्यः॥ ५॥

'**बह्व्यः इति**' જેમનામાં શર્મિષ્ઠા મુખ્ય છે તે ઘણી સ્ત્રીઓએ કામના કરી– કાન્ત પ્રત્યે '**कामिनीः**' કામનાવાળી થઈ.॥ ૫॥

पीवानं पुष्टम्। श्मश्रुलं श्मश्रुबहुलम्, रतिसमर्थमित्यर्थः। मीढ्वांसं रेतःसेक्तारम्। याभे कोविदमभिज्ञम्। अत एव प्रेष्ठम्। नावबुध्यत नान्वबुध्यत॥ ६॥

'**पीवानम्**' હૃષ્ટપુષ્ટને, '**श्मश्रुलम्**' ખૂબ દાઢી-મૂછવાળાને, રતિક્રીડામાં સમર્થને, એમ અર્થ છે. '**मीढ्वांसम्**' વીર્યસિંચન કરી શકે તેવાને, મૈથુનમાં '**कोविदम्**' કુશળને, આથી જ અત્યંત પ્રેમાસ્પદને– '**न-अवबुध्यत**' '**न-अनु-अबुध्यत**' જાણ્યો નહીં. (**अन्वबुध्यत** માં ભૂ.કા.નો **अ** ઉમેરાયો છે.)॥ ૬॥

तमेव प्रेष्ठतमया रममाणमजान्यया।
विलोक्य कूपसंविग्ना नामृष्यद् बस्तकर्म तत्॥ ७
॥ ७॥

કૂવામાં પડી ગઈ હતી તે બકરી તે જ બકરાને બીજી અત્યંત પ્રિયતમા બકરી સાથે રમણ કરતો જોઈને બકરાનું તે કર્મ સહન કરી શકી નહીં.॥ ૭॥ ૭॥

तं दुर्हृदं सुहृद्रूपं कामिनं क्षणसौहृदम्।
इन्द्रियाराममुत्सृज्य स्वामिनं दुःखिता ययौ॥ ८

કપટી અંતઃકરણવાળા (ઉપરથી પ્રેમીરૂપે દેખાતા), કામી, ક્ષણિક સ્નેહવાળા અને ઇન્દ્રિયોમાં રમણ કરનાર તે બકરાને છોડીને, દુઃખી એવી તે પોતાના પાલક પાસે જતી રહી.॥ ૮॥

स्वामिनमिति शुक्राभिप्रायेणाह॥ ८॥

'**स्वामिनम् इति।**' પોતાના પાલક એમ શુક્રાચાર્ય માટે કહે છે.॥ ૮॥

सोऽपि चानुगतः स्त्रैणः कृपणस्तां प्रसादितुम्।
कुर्वन्निडविडाकारं नाशक्नोत् पथि संधितुम्॥ ९

इडविडाकारं बस्तजातिशब्दम्। संधितुं प्रसादयितुम्॥ ९॥

तस्यास्तत्र द्विजः कश्चिदजास्वाम्यच्छिनद् रुषा।
लम्बन्तं वृषणं भूयः सन्दधेऽर्थाय योगवित्॥ १०

वृषणमच्छिनज्जरया संभोगासमर्थमकरोत्। अर्थाय स्वपुत्र्याः कामोपभोगाय। योगविदुपायज्ञः। जराव्यत्ययेन रतिशक्तिं ददावित्यर्थः॥ १०॥

सम्बद्धवृषणः सोऽपि ह्यजया कूपलब्धया।
कालं बहुतिथं भद्रे कामैर्नाद्यापि तुष्यति॥ ११

कूपलब्धया सह कामैः सेव्यमानैर्न तुष्यति॥ ११॥

तथाहं कृपणः सुभ्रु भवत्याः प्रेमयन्त्रितः।
आत्मानं नाभिजानामि मोहितस्तव मायया॥ १२

॥ १२॥

ननु तर्हि पुनरपि बहवो विषयाः सेव्यन्ताम्, ततो मनसि प्रीते सति कामोपशान्त्या मोहो निवर्तेतेति चेत्तत्राह—**यदिति** द्वाभ्याम्।

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
न दुह्यन्ति मनःप्रीतिं पुंसः कामहतस्य ते॥ १३

न दुह्यन्ति न पूरयन्ति॥ १३॥

દીન અને સ્ત્રૈણ એવો તે બકરો તે બકરીને પ્રસન્ન કરવા માટે બેં બેં કરતો રસ્તામાં તેની પાછળ ગયો, પણ પ્રસન્ન કરી શક્યો નહીં.॥ ૯॥

'इडविडाकारम्' બકરાની જાતિનો અવાજ– **'संधितुम्'** પ્રસન્ન કરવા માટે સમર્થ થયો નહીં.॥ ૯॥

ત્યારે તે બકરીના પાલક બ્રાહ્મણે તેના લટકતા વૃષણને ક્રોધથી કાપી નાખ્યું અને ઉપાય જાણનાર તેણે ફરી પાછું (બકરીના) સ્વાર્થ માટે સાંધી દીધું.॥ ૧૦॥

વૃષણને કાપી નાખ્યું એટલે વૃદ્ધાવસ્થા દ્વારા તેને સંભોગ કરવા માટે અસમર્થ કર્યો. **'अर्थाय'** પોતાની પુત્રીના કામોપભોગ માટે, **'योगवित्'** ઉપાય જાણનારે, વૃદ્ધાવસ્થાની અદલાબદલી દ્વારા રતિ માટેની શક્તિ આપી, એમ અર્થ છે.॥ ૧૦॥

હે કલ્યાણી, જેનું વૃષણ જોડાઈ ગયું તેવો તે કૂવામાંથી મળેલી બકરી સાથે ઘણા લાંબા સમયથી (ભોગો ભોગવતો હોવા છતાં) હજુ સુધી કામનાઓથી તુષ્ટ થયો નહીં.॥ ૧૧॥

કૂવામાંથી મળેલી બકરી સાથે સેવાતી કામનાઓથી સંતુષ્ટ થયો નહીં.॥ ૧૧॥

હે સુંદર ભ્રૂકુટિવાળી, તે પ્રમાણે દીન એવો હું તારા પ્રેમથી વશ થઈ અને તારી માયાથી મોહિત થઈ મારા આત્માના સ્વરૂપને ઓળખી શકતો નથી.॥ ૧૨॥ ૧૨॥

શંકા કરવામાં આવી છે કે તો પછી ફરી પાછા ઘણા વિષયોનું સેવન કરો, તેનાથી મનમાં પ્રસન્નતા થતાં કામનાઓ શાંત થવાથી મોહ દૂર થઈ જશે. એમ જો હોય તો તે માટે બે શ્લોકો વડે ઉત્તર આપે છે— **'यत् इति'**

પૃથ્વી ઉપર જેટલું ધાન્ય, જવ, સુવર્ણ, પશુઓ અને સ્ત્રીઓ છે, તે કામાસક્ત પુરુષના મનને પરિપૂર્ણ (પરિતૃપ્ત) કરી શકતાં નથી.॥ ૧૩॥

'न दुह्यन्ति' પૂર્ણ કરતાં નથી॥ ૧૩॥

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥ १४

हविषा घृतेन कृष्णवर्त्माऽग्निरिव॥ १४॥

तर्हि कदा केनोपायेन वा मनसः संपूर्णा प्रीतिः स्याद्यया कामोपशमः स्यादित्यत आह— **यदेति** षड्भिः—

यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेष्वमङ्गलम्।
समदृष्टेस्तदा पुंसः सर्वाः सुखमया दिशः॥ १५

अमङ्गलं भावं रागद्वेषादिवैषम्यम्॥ १५॥

अन्वि.—सुखमयाः सुखमय्यः।

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्जीर्यतो या न जीर्यते।
तां तृष्णां दुःखनिवहां शर्मकामो द्रुतं त्यजेत्॥ १६

दुःखानि नितरां वहतीति तथा ताम्॥ १६॥

स्त्रीसंनिधानं तु सर्वथा त्याज्यमित्याह— **मात्रेति**।

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा नाविविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥ १७

વિષયભોગના ઉપભોગથી વિષયભોગની તૃષ્ણા કદાપિ શાંત થતી નથી. (ઊલટું) (ઘીની) આહુતિ નાખવાથી અગ્નિ (પ્રજ્વલિત થઈ) વધે છે તેમ તૃષ્ણા પ્રબળ થાય છે.॥ ૧૪॥

‘**हविषा**’ ઘીની આહુતિથી ‘**कृष्णवर्त्मा**’ અગ્નિ ભડકે તેમ॥ ૧૪॥

(મનુસ્મૃતિ ૨/૯૪, વિષ્ણુપુરાણ ૪/૧૦/૨૩)

તો પછી ક્યારે અથવા કયા ઉપાયથી મનમાં સંપૂર્ણ સુખ થાય કે જેનાથી કામનાઓ શાંત થાય? તે માટે છ શ્લોકો વડે કહે છે— ‘**यदा इति।**’

જ્યારે મનુષ્ય સર્વ પ્રાણીઓ પ્રત્યે (રાગદ્વેષાદિ વિષમતારૂપ) અમંગળ ભાવ નથી કરતો, ત્યારે સમદૃષ્ટિવાળા તે મનુષ્યની સર્વ દિશાઓ સુખમય થાય છે.॥ ૧૫॥

‘**अमङ्गलं भावम्**’ રાગદ્વેષાદિ વિષમતારૂપ અમંગળ ભાવ॥ ૧૫॥

‘**सुखमय्यः**’ (રૂપ થાય) ‘**सुखमयाः**’ છે (તે આર્ષ છે).

(નિરાહાર રહેવાથી કે વય વધવાથી) જરા પ્રાપ્ત કરતા મનુષ્યની, દુષ્ટ બુદ્ધિવાળા મનુષ્યો દ્વારા ત્યાગ કરવા માટે અત્યંત અઘરી એવી તૃષ્ણા જીર્ણ થતી નથી, માટે અત્યંત દુઃખ પ્રાપ્ત કરાવનારી તે તૃષ્ણાનો શાંતિ ઈચ્છનાર મનુષ્યે (વિવેકથી) શીઘ્ર (અવશ્ય) ત્યાગ કરવો જોઈએ.॥ ૧૬॥

અત્યંત દુઃખો પ્રાપ્ત કરાવે તેવી તે તૃષ્ણાને॥ ૧૬॥

સ્ત્રીનો સહવાસ તો સંપૂર્ણપણે ત્યજવા યોગ્ય છે, એમ કહે છે— ‘**मात्रा इति।**’

માતા, બહેન કે પુત્રી સાથે (પણ) અભિન્ન આસન પર ન બેસવું. (અર્થાત્ અડીને નજીકમાં ન બેસવું.) બળવાન એવો ઈન્દ્રિયસમૂહ વિદ્વાનને પણ (વિષયો તરફ) ખેંચે છે.॥ ૧૭॥

अविविक्तं संकीर्णमासनं यस्य सः। कर्षत्याकर्षति ॥ १७ ॥

पूर्णं वर्षसहस्रं मे विषयान् सेवतोऽसकृत्।
तथापि चानुसवनं तृष्णा तेषूपजायते ॥ १८ ॥ १८ ॥

तस्मादेतामहं त्यक्त्वा ब्रह्मण्याधाय मानसम्।
निर्द्वन्द्वो निरहंकारश्चरिष्यामि मृगैः सह ॥ १९ ॥ १९ ॥

ननु तृष्णात्यागस्यातिदुष्करत्वात्कथं ब्रह्मणि मनस आधानं स्यात्तत्राह—**दृष्टमिति**।

दृष्टं श्रुतमसद् बुद्ध्वा नानुध्यायेन्न संविशेत्।
संसृतिं चात्मनाशं च तत्र विद्वान् स आत्मदृक् ॥ २०

यो नानुध्यायेन्न संविशेन्न चोपभुञ्जीत। तत्र दृष्टश्रुतयोरनुध्यानादौ स आत्मदृक् भवति ॥ २० ॥

इत्युक्त्वा नाहुषो जायां तदीयं पूरवे वयः।
दत्त्वा स्वां जरसं तस्मादाददे विगतस्पृहः ॥ २१ ॥ २१ ॥

दिशि दक्षिणपूर्वस्यां द्रुह्युं दक्षिणतो यदुम्।
प्रतीच्यां तुर्वसुं चक्र उदीच्यामनुमीश्वरम् ॥ २२ ॥ २२ ॥

भूमण्डलस्य सर्वस्य पूरुमर्हत्तमं विशाम्।
अभिषिच्याग्रजांस्तस्य वशे स्थाप्य वनं ययौ ॥ २३

'**अविविक्तम्**' સાથોસાથ જોડાયેલું (અભિન્ન) આસન છે જેનું તે— '**कर्षति**' ખેંચે છે. ॥ ૧૭ ॥

વિષયોનું વારંવાર સેવન કરતા મને પૂરાં હજાર વર્ષ થયાં, તેમ છતાં પણ તે વિષયો ઉપર વારંવાર તૃષ્ણા ઉત્પન્ન થાય છે. ॥ ૧૮ ॥ ૧૮ ॥

માટે આ તૃષ્ણાને ત્યાગીને મનને બ્રહ્મમાં સ્થિર કરીને (રાગ-દ્વેષાદિ) દ્વંદ્વોથી તથા અહંકારથી રહિત થઈ (વનમાં) હું મૃગો સાથે વિચરીશ. ॥ ૧૯ ॥ ૧૯ ॥

શંકા કરવામાં આવી છે કે તૃષ્ણાત્યાગ અતિદુષ્કર હોવાથી મનને બ્રહ્મમાં કેવી રીતે સ્થિર કરી શકાય? તે માટે ઉત્તર આપે છે— '**दृष्टम् इति**।'

(આ લોકના દેખાય છે તે) દૃષ્ટ અને (પરલોકના સંભળાય છે તે) શ્રુત ભોગોને મિથ્યા જાણીને તેમનું ચિંતન અને ઉપભોગ કરવા જોઈએ નહીં. ત્યાં– દૃષ્ટ અને શ્રુતના ચિંતન વગેરેમાં મનુષ્ય (જન્મ-મરણાદિરૂપ) સંસાર અને આત્મનાશ (સ્વરૂપજ્ઞાનનો નાશ) પ્રાપ્ત કરે છે. (આમ, તૃષ્ણા છોડીને) તે આત્મ-પરમાત્મતત્ત્વનો દ્રષ્ટા (જ્ઞાતા) બને છે. ॥ ૨૦ ॥

(દૃષ્ટ અને શ્રુત ભોગોનું) જે ચિંતન નથી કરતો અને '**न संविशेत्**' ઉપભોગ નથી કરતો. '**तत्र**' દૃષ્ટ અને શ્રુત ભોગોના ચિંતન વગેરેમાં (સંસાર છે અને આત્મનાશ છે.) (આમ તૃષ્ણાત્યાગી એવો) તે આત્મદ્રષ્ટા બને છે. ॥ ૨૦ ॥

જાયા (પત્ની) દેવયાનીને આમ કહીને, જેની વિષયતૃષ્ણા નાશ પામી છે તે નહુષપુત્ર યયાતિએ પૂરુને તેની યુવાવસ્થા પાછી આપીને પોતાની વૃદ્ધાવસ્થા તેની પાસેથી લઈ લીધી. ॥ ૨૧ ॥ ૨૧ ॥

દક્ષિણ-પૂર્વ (અગ્નિ) દિશામાં દ્રુહ્યુને, દક્ષિણ દિશામાં યદુને, પશ્ચિમ દિશામાં તુર્વસુને અને ઉત્તર દિશામાં અનુને અભિષિક્ત કરીને તથા પૂરુને સમસ્ત ભૂમંડળના અતિશય પૂજ્યતમ ચક્રવર્તી રાજા તરીકે અભિષિક્ત કરીને, જ્યેષ્ઠ ભાઈઓને તેને અધીન બનાવી યયાતિ વનમાં ગયો. ॥ ૨૨ ॥ ૨૨ ॥ ૨૩ ॥

तस्य पूरोर्वंशे स्थापयित्वा॥ २३॥

आसेवितं वर्षपूगान् षड्वर्गं विषयेषु सः।
क्षणेन मुमुचे नीडं जातपक्ष इव द्विजः॥ २४

विषयेषु शब्दादिष्वासेवितं षड्वर्गं षडिन्द्रियसुखं मुमुचे तत्याज। यद्वा विषयेष्वा–सेवितं सेवां कारितं षण्णामिन्द्रियाणां वर्गं मुमुचे उपैक्षतेत्यर्थः॥ २४॥

स तत्र निर्मुक्तसमस्तसङ्ग
आत्मानुभूत्या विधुतत्रिलिङ्गः।
परेऽमले ब्रह्मणि वासुदेवे
लेभे गतिं भागवतीं प्रतीतः॥ २५

विधुतं निरस्तं त्रिगुणात्मकं लिङ्गं येन। प्रतीतः प्रख्यातः॥ २५॥

श्रुत्वा गाथां देवयानी मेने प्रस्तोभमात्मनः।
स्त्रीपुंसोः स्नेहवैक्लव्यात् परिहासमिवेरितम्॥ २६

प्रस्तोभमेवाह—परिहासमिवेति। यद्वा प्रस्तोभं निवृत्तिमार्गे प्रोत्साहनं मेने॥ २६॥

તે પૂરુને અધીન બનાવીને॥ ૨૩॥

જેમ પાંખો આવતાં પક્ષી માળો છોડી દે તેમ ઘણાં વર્ષો સુધી શબ્દાદિ વિષયોમાં ભરપૂર સેવેલું છ ઇન્દ્રિયોના સમૂહનું સુખ તે યયાતિએ ક્ષણમાત્રમાં છોડી દીધું.॥ ૨૪॥

‘**विषयेषु**’ શબ્દાદિ વિષયોમાં ભરપૂર સેવેલું છ ઇન્દ્રિયોના સમૂહનું સુખ ‘**मुमुचे**’ છોડી દીધું. અથવા વિષયોમાં ‘**आसेवितम्**’ સેવેલા છ ઇન્દ્રિયોના સમૂહની ‘**मुमुचे**’ ઉપેક્ષા કરી, એમ અર્થ છે.॥ ૨૪॥

જે સમસ્ત આસક્તિથી નિર્મુક્ત થઈ ગયો છે, આત્મસ્વરૂપના સાક્ષાત્કારથી જેનું ત્રિગુણાત્મક લિંગશરીર દૂર થઈ ગયું છે, તે પ્રસિદ્ધ યયાતિએ વનમાં (માયામળથી રહિત એવા) અમલ, પરબ્રહ્મ પરમાત્મા વાસુદેવ વિષે (ભગવત્પ્રેમી સંતોને પ્રાપ્ત થનારી) ભાગવતી ગતિ પ્રાપ્ત કરી.॥ ૨૫॥

‘**विधुतम्**’ દૂર થયું છે ત્રિગુણાત્મક લિંગશરીર જેનાથી, ‘**प्रतीतः**’ પ્રખ્યાત॥ ૨૫॥

(પતિએ કહેલો) ઈતિહાસ સાંભળીને દેવયાનીએ સ્ત્રી અને પુરુષના વિયોગથી થતી સ્નેહવિકળતાથી (પર થઈ જવા માટે) કહેલા ઈતિહાસને પરિહાસ હોય તેમ ઉપાલંભ માન્યો. અથવા (સંબંધના અંતે ઉપાલંભ-ઠપકો ઉચિત ન હોય, તેથી બીજો અર્થ કરે છે, કહેલા ઈતિહાસને) પોતાને નિવૃત્તિમાર્ગે જવા માટેનું પ્રોત્સાહન કે સૂચન માન્યું.॥ ૨૬॥

ઉપાલંભ જ જણાવે છે— પરિહાસ હોય તેમ અથવા ‘**प्रस्तोभम्**’ નિવૃત્તમાર્ગે જવા માટેનું પ્રોત્સાહન માન્યું.॥ ૨૬॥

सा संनिवासं सुहृदां प्रपायामिव गच्छताम्।
विज्ञायेश्वरतन्त्राणां मायाविरचितं प्रभोः॥ २७॥ २७॥

सर्वत्र सङ्गमुत्सृज्य स्वप्नौपम्येन भार्गवी।
कृष्णे मनः समावेश्य व्यधुनोल्लिङ्गमात्मनः॥ २८॥ २८॥

કથં समावेश्य तदाह—**नम इति**।

ત્યાર પછી તે ભૃગુનંદિની દેવયાનીએ ઈશ્વરાધીન રહેનારા પરબના પથિકો જેવો સુહૃજ્જનોનો સહવાસ પ્રભુની માયાથી રચાયેલો જાણીને સ્વપ્નમાં જોયેલા પદાર્થના દૃષ્ટાન્ત દ્વારા સર્વત્ર સંગ ત્યજીને મનને શ્રીકૃષ્ણમાં તન્મય કરી પોતાના લિંગશરીરનો ત્યાગ કર્યો. ॥ ૨૭ ॥ ૨૮ ॥ ૨૭ ॥ ૨૮ ॥

મનને શ્રીકૃષ્ણમાં કેવી રીતે તન્મય કર્યું તે કહે છે— **'नमः इति।'**

नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे।
सर्वभूताधिवासाय शान्ताय बृहते नमः॥ २९

ઐશ્વર્યાદિ ગુણોથી પૂર્ણ એવા ભગવાનને નમસ્કાર. જગતના કારણરૂપ, સર્વ પ્રાણીઓના આશ્રયરૂપ, અશનાદિ છ ઊર્મિઓથી રહિત એવા શાંતસ્વરૂપ, અનંતસ્વરૂપ, વસુદેવનંદનને નમસ્કાર. ॥ ૨૯ ॥

नमनादिभिः समावेश्येत्यर्थः। शुको वा नमस्करोति॥ २९॥

નમન વગેરે દ્વારા તન્મય કરીને, એમ અર્થ છે. અથવા (ભગવાનનું સ્મરણ થતાં) શ્રીશુકદેવજી નમસ્કાર કરે છે. ॥ ૨૯ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां एकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

❋❋❋❋❋

अथ विंशोऽध्यायः

પૂરુના વંશનું તથા રાજા દુષ્યંત અને ભરતના ચરિત્રનું વર્ણન

विंशे पितृप्रसादाप्तराजासनमहोन्नतेः।
पूरोर्वंशे हि दौष्यन्तेर्भरतस्येर्यते यशः॥ १॥

વીસમા અધ્યાયમાં પિતા યયાતિની કૃપાથી જેને રાજ્યાસનરૂપ મહાન ઉન્નતિ પ્રાપ્ત થઈ છે તેવા પૂરુના વંશમાં થયેલા દુષ્યન્તપુત્ર ભરતનો યશ વર્ણવવામાં આવ્યો છે. ॥ ૧ ॥

श्रीशुक उवाच

पूरोर्वंशं प्रवक्ष्यामि यत्र जातोऽसि भारत।
यत्र राजर्षयो वंश्या ब्रह्मवंश्याश्च जज्ञिरे॥ १

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા – હે ભરતવંશી પરીક્ષિત, જે વંશમાં તમે જન્મ્યા છો તથા રાજર્ષિઓ અને બ્રાહ્મણો પણ જે વંશમાં જન્મ્યા છે, તે પૂરુનો વંશ તમને કહીશ. ॥ ૧ ॥

जन्मेजयो ह्यभूत् पूरोः प्रचिन्वांस्तत्सुतस्ततः।
प्रवीरोऽथ नमस्युर्वै तस्माच्चारुपदोऽभवत्॥ २

પૂરુનો પુત્ર જન્મેજય થયો. તેનો પ્રચિન્વાન, તેનો પ્રવીર, પછી તેનો નમસ્યુ તથા તેનો ચારુપદ થયો. ॥ ૨ ॥

तस्य सुद्युरभूत् पुत्रस्तस्माद् बहुगवस्ततः।
संयातिस्तस्याहंयाती रौद्राश्वस्तत्सुतः स्मृतः॥ ३

तत्सुतः अहंयातेः सुतः॥ ३॥

ऋतेयुस्तस्य कुक्षेयुः स्थण्डिलेयुः कृतेयुकः।
जलेयुः सन्ततेयुश्च धर्मसत्यव्रतेयवः॥ ४

दशैतेऽप्सरसः पुत्रा वनेयुश्चावमः स्मृतः।
घृताच्यामिन्द्रियाणीव मुख्यस्य जगदात्मनः॥ ५

धर्मेयुश्च सत्येयुश्च व्रतेयुश्च धर्मसत्यव्रतेयवः॥ ४॥

वनेयुश्चावमः स्मृतः। एवं दशैते ऋतेयुप्रमुखास्तस्य रौद्राश्वस्य घृताच्यामप्सरसि पुत्रा जाताः। अप्सरस इति षष्ठी सप्तम्यर्थे। वशवर्तित्वे दृष्टान्तः—जगदात्मनो जगत आत्मभूतस्य मुख्यस्य प्राणस्येन्द्रियाणीव॥ ५॥

ऋतेयो रन्तिभारोऽभूत् त्रयस्तस्यात्मजा नृप।
सुमतिर्ध्रुवोऽप्रतिरथः कण्वोऽप्रतिरथात्मजः॥ ६

॥ ६॥

तस्य मेधातिथिस्तस्मात् प्रस्कण्वाद्या द्विजातयः।
पुत्रोऽभूत् सुमते रैभ्यो दुष्यन्तस्तत्सुतो मतः॥ ७

॥ ७॥

दुष्यन्तस्य शकुन्तलायां भरतः पुत्रोऽभवदिति कथाद्वारेणाह—**दुष्यन्तो मृगयामिति** प्रञ्चदशभिः—

दुष्यन्तो मृगयां यातः कण्वाश्रमपदं गतः।
तत्रासीनां स्वप्रभया मण्डयन्तीं रमामिव॥ ८

विलोक्य सद्यो मुमुहे देवमायामिव स्त्रियम्।
बभाषे तां वरारोहां भटैः कतिपयैर्वृतः॥ ९

તે ચારુપદનો સુદ્યુ, તેનો બહુગવ, તેનો સંયાતિ, તેનો અહંયાતિ અને તેનો પુત્ર રૌદ્રાશ્વ કહેવાયો.॥ ૩॥

‘**तत्सुतः**’ તે અહંયાતિનો પુત્ર રૌદ્રાશ્વ॥ ૩॥

તે રૌદ્રાશ્વના ઘૃતાચી નામની અપ્સરામાં ઋતેયુ, કુક્ષેયુ, સ્થંડિલેયુ, કૃતેયુ, જલેયુ, સંતતેયુ, ધર્મેયુ, સત્યેયુ, વ્રતેયુ અને સૌથી નાનો વનેયુ– એમ આ દસ પુત્રો થયા હતા. જગતના આત્મારૂપ મુખ્ય પ્રાણને જેમ દસ ઇન્દ્રિયો (વશમાં રહે છે તેમ રૌદ્રાશ્વને તેઓ વશમાં રહેનારા હતા).॥ ૪॥ ૫॥

ધર્મેયુ અને સત્યેયુ તથા વ્રતેયુ એટલે ‘**धर्मसत्यव्रतेयवः**’ ॥ ૪॥

વનેયુ સૌથી નાનો હતો. આમ, ઋતેયુ જેમાં મુખ્ય હતો તે આ રૌદ્રાશ્વના દસ પુત્રો ઘૃતાચી નામની અપ્સરામાં જન્મ્યા હતા. ‘**अप्सरसः**’ એમ છઠ્ઠી વિભક્તિ સપ્તમીના અર્થમાં છે. વશવર્તી હોવા માટેનું દૃષ્ટાન્ત— ‘**जगत्-आत्मनः**’ જગતના આત્મારૂપ મુખ્ય પ્રાણને જેમ ઇન્દ્રિયો (વશમાં રહે) તેમ॥ ૫॥

ઋતેયુનો રંતિભાર થયો. હે નૃપ, તે રંતિભારને સુમતિ, ધ્રુવ અને અપ્રતિરથ– એમ ત્રણ પુત્રો થયા. અપ્રતિરથને કણ્વ નામનો પુત્ર થયો.॥ ૬॥ ૬॥

કણ્વનો મેધાતિથિ, તેનાથી પ્રસ્કણ્વ વગેરે બ્રાહ્મણો થયા. (રંતિભારના પુત્ર) સુમતિનો રૈભ્ય થયો અને તે રૈભ્યનો પુત્ર દુષ્યંત થયો.॥ ૭॥ ૭॥

દુષ્યંતને શકુન્તલામાં પુત્ર ભરત થયો, એમ કથા પંદર શ્લોકો વડે દ્વારા કહે છે— ‘**दुष्यन्तः मृगयाम् इति।**’

કેટલાક સૈનિકોથી વીંટળાઈને મૃગયા રમવા ગયેલો રાજા દુષ્યંત કણ્વ ઋષિના આશ્રમના સ્થાને જઈ ચઢ્યો. પોતાની કાન્તિથી (તે આશ્રમને) શોભાવતી, લક્ષ્મી જેવી, દેવની માયા હોય તેવી કન્યાને ત્યાં બેઠેલી જોઈને તરત જ તે એના પર મોહિત થઈ ગયો અને તે સુંદરીને કહેવા લાગ્યો.॥ ૮॥ ૯॥

तमाश्रमं मण्डयन्तीम्॥ ८॥

स्त्रियं विलोक्य मुमुहेऽमुह्यत्॥ ९॥

ते આશ્રમને શોભાવતી॥ ૮॥

કન્યાને જોઈને '**मुमुहे**' મોહિત થઈ ગયો.॥ ૯॥

तद्दर्शनप्रमुदितः संनिवृत्तपरिश्रमः।
पप्रच्छ कामसन्तप्तः प्रहसन् श्लक्ष्णया गिरा॥ १०

તેના દર્શનથી આનંદિત થયેલા અને તેથી જેનો પરિશ્રમ દૂર થઈ ગયો તેવા કામથી સંતપ્ત થયેલા રાજાએ સ્મિત કરતાં, મધુર વાણીથી પૂછ્યું.॥ ૧૦॥

तस्या दर्शनेन प्रमुदितोऽत एव संनिवृत्तः परिश्रमो यस्य॥ १०॥

તેના દર્શનથી આનંદિત થયેલા અને તેથી દૂર થઈ ગયો છે પરિશ્રમ જેનો॥ ૧૦॥

का त्वं कमलपत्राक्षि कस्यासि हृदयङ्गमे।
किं वा चिकीर्षितं त्वत्र भवत्या निर्जने वने॥ ११

॥ ११॥

કમળની પાંખડી સમાન નેત્રોવાળી હે મનોહર દેવી, તું કોણ છે? કોની પુત્રી છે? અહીં નિર્જન વનમાં તું શું કરવા ઈચ્છે છે?॥ ૧૧॥ ૧૧॥

व्यक्तं राजन्यतनयां वेद्म्यहं त्वां सुमध्यमे।
न हि चेतः पौरवाणामधर्मे रमते क्वचित्॥ १२

જેનો મધ્યમ ભાગ સુંદર છે તેવી (કૃશ ઉદરવાળી) હે સુંદરી, ક્ષત્રિયકન્યા એવી તને હું સ્પષ્ટપણે જાણી ગયો છું, કારણ કે પૂરુવંશી રાજાઓનું ચિત્ત ક્યારેય અધર્મમાં જતું નથી.॥ ૧૨॥

पौरवाणां चेतो न ह्यधर्मे रमते। अतो मच्चेतसस्त्वयि रमणादेवाहं त्वां राजन्यतनयां वेद्मि॥ १२॥

પૂરુવંશી રાજાઓનું ચિત્ત ખરેખર અધર્મમાં જતું નથી. આથી મારું ચિત્ત તારામાં રમણ કરતું હોવાથી ક્ષત્રિયકન્યા એવી તને હું જાણી ગયો છું.॥ ૧૨॥

शकुन्तलोवाच

विश्वामित्रात्मजैवाहं त्यक्ता मेनकया वने।
वेदैतद् भगवान् कण्वो वीर किं करवाम ते॥ १३

શકુંતલા બોલી — (અપ્સરા) મેનકા દ્વારા વનમાં ત્યજાયેલી એવી હું વિશ્વામિત્રની આત્મજા (પુત્રી) છું. ભગવાન કણ્વ આ વાતને જાણે છે. હે વીર! અમે આપને માટે શું કરીએ?॥ ૧૩॥

विश्वामित्रस्यात्मजाऽहं मेनकायां जाता तया च स्वर्गं गच्छन्त्यात्र त्यक्ता। अतो राजकन्यैवाहमित्यर्थः॥ १३॥

મેનકા વિષે જન્મેલી અને સ્વર્ગમાં જતી તેના દ્વારા અહીં વનમાં ત્યજાયેલી એવી હું વિશ્વામિત્રની આત્મજા છું. આથી હું રાજકન્યા જ છું, એમ અર્થ છે.॥ ૧૩॥

आस्यतां ह्यरविन्दाक्ष गृह्यतामर्हणं च नः।
भुज्यतां सन्ति नीवारा उष्यतां यदि रोचते॥ १४

॥ १४॥

હે કમળનયન, આપ બેસો અને અમારા સ્વાગત-સત્કાર સ્વીકારો. (અહીં) અરણ્યમાં થતું નીવાર નામનું ધાન્ય છે, તેનું આપ ભોજન કરો. ઈચ્છા હોય તો અહીં રોકાઈ જાઓ.॥ ૧૪॥ ૧૪॥

किं करवामेत्यादिवाक्यात्तदभिप्रायं ज्ञात्वाह—**उपपन्नमिति**।

'**किं करवाम**' ઈત્યાદિ સ્વાગતવચનોથી તેનો અભિપ્રાય જાણીને કહે છે— '**उपपन्नम् इति**।'

दुष्यन्त उवाच

उपपन्नमिदं सुभ्रु जातायाः कुशिकान्वये।
स्वयं हि वृणते राज्ञां कन्यकाः सदृशं वरम्॥ १५ ॥ १५ ॥

ओमित्युक्ते यथाधर्ममुपयेमे शकुन्तलाम्।
गान्धर्वविधिना राजा देशकालविधानवित्॥ १६

गान्धर्वविधिना मिथः समयपूर्वकेण॥ १६ ॥

अमोघवीर्यो राजर्षिर्महिष्यां वीर्यमादधे।
श्वोभूते स्वपुरं यातः कालेनासूत सा सुतम्॥ १७ ॥ १७ ॥

कण्वः कुमारस्य वने चक्रे समुचिताः क्रियाः।
बद्ध्वा मृगेन्द्रांस्तरसा क्रीडति स्म स बालकः॥ १८ ॥ १८ ॥

तं दुरत्ययविक्रान्तमादाय प्रमदोत्तमा।
हरेरंशांशसम्भूतं भर्तुरन्तिकमागमत्॥ १९

दुरत्ययं विक्रान्तं विक्रमणं यस्य॥ १९ ॥

यदा न जगृहे राजा भार्यापुत्रावनिन्दितौ।
शृण्वतां सर्वभूतानां खे वागाहाशरीरिणी॥ २० ॥ २० ॥

माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः।
भरस्व पुत्रं दुष्यन्त माऽवमंस्थाः शकुन्तलाम्॥ २१

દુષ્યંત બોલ્યા — હે સુંદર ભ્રૂવાળી, કૌશિકવંશમાં જન્મેલી એવી તારાં આ સત્કારવચનો યોગ્ય છે. રાજાની કન્યાઓ યોગ્ય વરનું પોતાની જાતે જ વરણ કરતી હોય છે.॥ ૧૫ ॥ ૧૫ ॥

‘ओम्’ (હા) એમ (શકુંતલાએ) કહ્યું ત્યારે દેશ, કાળ અને શાસ્ત્રની આજ્ઞા જાણનાર રાજા દુષ્યંત ધર્મ અનુસાર ગાંધર્વવિધિથી શકુંતલાને પરણ્યા.॥ ૧૬ ॥

વરવધૂની પરસ્પર સંમતિ અને શરત સાથે થતા ગાંધર્વવિવાહથી॥ ૧૬ ॥

અમોઘ વીર્યવાળા રાજર્ષિ દુષ્યંતે મહારાણી શકુંતલામાં વીર્યસ્થાપન કર્યું. બીજે દિવસે સવારે પોતાના નગરમાં ગયા. સમય થતાં તેણે પુત્રને જન્મ આપ્યો.॥ ૧૭ ॥ ૧૭ ॥

મહર્ષિ કણ્વે વનમાં જ રાજકુમારના (જાતકર્માદિ) યોગ્ય સંસ્કાર કર્યા. તે બાળક પણ (બાલ્યાવસ્થામાં જ) સિંહોને બળપૂર્વક બાંધીને તેમની સાથે રમતો હતો.॥ ૧૮ ॥ ૧૮ ॥

ભગવાન શ્રીહરિના અંશાંશાવતારમાંથી ઉત્પન્ન થયેલા અને દુર્લંઘ્ય પરાક્રમવાળા પુત્રને લઈને તે સ્ત્રીઓમાં શ્રેષ્ઠ એવી શકુંતલા પતિ દુષ્યંતની પાસે આવી.॥ ૧૯ ॥

દુર્લંઘ્ય **‘विक्रान्तम्’** પરાક્રમ છે જેનું॥ ૧૯ ॥

અનિંદિત (નિર્દોષ) ભાર્યા અને પુત્રને જ્યારે રાજાએ સ્વીકાર્યાં નહીં, ત્યારે સર્વ પ્રાણીઓના સાંભળતાં આકાશમાં અશરીરી વાણી બોલી. ॥ ૨૦ ॥ ૨૦ ॥

હે દુષ્યંત, (પુત્રને ઉત્પન્ન કરવામાં) માતા (તો કેવળ) ધમણરૂપ છે. પુત્ર પિતાનો (જ) હોય છે, (કેમ કે) જેનાથી તે જન્મે છે તે જ તેનું સ્વરૂપ છે. (માટે) પુત્રનો (સ્વીકાર કરી) તેનું ભરણપોષણ કર અને શકુંતલાની અવજ્ઞા કરીશ નહીં.॥ ૨૧ ॥

भस्त्रा चर्मपात्रं तद्वन्माता आधारमात्रम्। पितुरेव तु पुत्रः। तत्र हेतुः—येनेति। 'आत्मा वै पुत्रनामासि' इति श्रुतेः। भरस्व पुषाण। अनेन भरतनाम निरुक्तम्॥ २१॥

'**भस्त्रा**' ધમણ– ચામડાનું પાત્ર, તેની જેમ માતા તો આધાર માત્ર છે, પરંતુ પિતાનો જ પુત્ર હોય છે. તે માટેનું કારણ— '**येन इति**।' ''આત્મા તું ખરેખર 'પુત્ર' નામવાળો છે.'' (પુત્ર એ પિતાનો આત્મા છે.) (કૌષી.ઉપ.૨/૧૧) '**भरस्व**' ભરણપોષણ કર. આ દ્વારા 'ભરત' નામની વ્યાખ્યા કરી છે.॥ ૨૧॥

रेतोधाः पुत्रो नयति नरदेव यमक्षयात्।
त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला॥ २२

હે નરદેવ, વંશવૃદ્ધિ કરનારો પુત્ર યમસદન (નરક)માંથી ઉગારે છે. (અર્થાત્ માતા-પિતાને સ્વર્ગમાં લઈ જાય છે.) આ ગર્ભનો ધારણ કરાવનાર તું જ છે. શકુંતલા સત્ય કહે છે.॥ ૨૨॥

किंच रेतोधा रेतःसेक्ता वंशकृत्पुत्रो यमक्षयात् पितरं नयति तारयति। तथा च श्रुतिः—

'पुंनाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा॥'

इति। पाठान्तरे मातापित्रोः पुत्रं प्रति विवादे यमक्षयाद्धर्मनिर्णेतुर्यमस्य सभायाः सकाशाद्रेतोधा रेतःसेक्ता पितैव धर्मेण विजित्य पुत्रं नयति न तु मातेत्यर्थः। ततश्च भार्यापुत्रौ स्वीकृतवानिति ज्ञेयम्॥ २२॥

વળી '**रेतोधाः**' વીર્યસિંચન કરનાર, વંશવૃદ્ધિ કરનાર પુત્ર યમસદનથી પિતાને '**नयति**' તારે છે એ અનુસાર શ્રુતિ છે—

''**पुत्**' નામના જે નરકમાંથી પુત્ર પિતાને તારે છે, તેથી સ્વયં બ્રહ્માજી દ્વારા તેને 'પુત્ર' કહેવામાં આવ્યો છે.' (પુત્+ત્ર=પુત્ર) (મનુસ્મૃતિ ૯/૧૩૮) '**पुत्रो नयति**' ને બદલે '**पुत्रं नयति**' પાઠાન્તરમાં માતાપિતાના પુત્ર પ્રત્યેના વિવાદમાં યમસદનમાં ધર્મનો નિર્ણય કરવા માટે યમની સભામાં વીર્યસિંચન કરનાર પિતા જ પુત્રને ધર્મથી જીતીને લાવે છે, નહીં કે માતા, એમ અર્થ છે. ત્યાર પછી ભાર્યા અને પુત્રનો દુષ્યંતે સ્વીકાર કર્યો, એમ સમજવું.॥ ૨૨॥

पितर्युपरते सोऽपि चक्रवर्ती महायशाः।
महिमा गीयते तस्य हरेरंशभुवो भुवि॥ २३

પિતા મૃત્યુ પામ્યા ત્યારે તે ભરત પણ મહાયશસ્વી ચક્રવર્તી સમ્રાટ થયો. શ્રીહરિના અંશમાંથી ઉત્પન્ન થયેલા એવા તેનો મહિમા (આજે પણ) પૃથ્વી ઉપર ગવાય છે.॥ ૨૩॥

चक्रवर्ती बभूवेति शेषः। तस्य महिमा गीयते—'तदप्येते श्लोका अभिगीताः' इत्यादि बह्वृचश्रुत्या हरेरंशभुवोंऽशाज्जातस्य॥ २३॥

ચક્રવર્તી સમ્રાટ 'થયો' એટલું શેષ છે, તેનો મહિમા ગવાય છે— 'તેના વિષે પણ આ શ્લોકો ગવાયા છે.' વગેરે ઋગ્વેદની શ્રુતિથી ભરતની કીર્તિ વિષે કહેવાયું છે. '**हरेरंशभुवः**' શ્રીહરિના અંશમાંથી ઉત્પન્ન થયેલા એવા તેનો (મહિમા)॥ ૨૩॥

तत्र लिङ्गमाह—**चक्रमिति**।

चक्रं दक्षिणहस्तेऽस्य पद्मकोशोऽस्य पादयोः।
ईजे महाभिषेकेण सोऽभिषिक्तोऽधिराड् विभुः॥
॥ २४॥ २४॥

पञ्चपञ्चाशता मेध्यैर्गङ्गायामनु वाजिभिः।
मामतेयं पुरोधाय यमुनायामनु प्रभुः॥ २५

अष्टसप्ततिमेध्याश्वान् बबन्ध प्रददद् वसु।
भरतस्य हि दौष्यन्तेरग्निः साचीगुणे चितः।
सहस्त्रं बद्वशो यस्मिन् ब्राह्मणा गा विभेजिरे॥ २६

गङ्गायामनुलोमं पञ्चपञ्चाशता वाजिभिरीजे। पुरोधाय पुरोहितं कृत्वा। यमुनायामनु च यमुनायाश्चानुलोमम्॥ २५॥

भ.मनो.—गङ्गायामनु गङ्गासागरसङ्गमादारभ्य यावदुत्पत्ति तावदित्यर्थः। यमुनायास्तु प्रयागे गङ्गायाः संयुक्तत्वाद् गङ्गावदेव ज्ञेयम्।

अष्टाधिकसप्ततिमेध्यानश्वान्बबन्ध। किं कुर्वन्। वसु धनं प्रकर्षेण ददत्। साचीगुणे प्रकृष्टगुणवति देशेऽग्निश्चितोऽभूत्। यस्मिन्नग्निचयने देशे वा सहस्त्रं ब्राह्मणा भरतेन

તે શ્રીહરિના અંશમાંથી ઉત્પન્ન થયો હોવાથી ચિહ્નનું વર્ણન કરે છે— ‘**चक्रम् इति।**’

આ ભરતના જમણા હાથમાં ચક્રનું ચિહ્ન હતું તેમ જ બંને ચરણમાં પદ્મકોશ હતા. મહાઅભિષેકની વિધિથી રાજાધિરાજના પદ ઉપર અભિષિક્ત થયેલા તે સમર્થ રાજાએ યજન કર્યું હતું.॥ ૨૪॥ ૨૪॥

મમતાના પુત્ર દીર્ઘતમસ્ ઋષિને પુરોહિત બનાવીને સમર્થ ભરતે શ્રીગંગાજીના કિનારે પંચાવન પવિત્ર અશ્વમેધ યજ્ઞો દ્વારા અને શ્રીયમુનાજીના કિનારે (ઇઠ્યોતેર પવિત્ર અશ્વમેધ યજ્ઞો દ્વારા ભગવાનનું આરાધન) કર્યું હતું તથા ધનનું દાન કરતાં કરતાં ઇઠ્યોતેર (અને પંચાવન) પવિત્ર અશ્વો બાંધ્યા હતા. દુષ્યંતપુત્ર ભરતના યજ્ઞીય અગ્નિનું ચયન ઉત્તમ ગુણવાળા સ્થાનમાં કરવામાં આવ્યું હતું, કે જે સ્થાનમાં (ભરતજી દ્વારા) પુષ્કળ દાનપૂર્વક ‘**बद्वशः**’ વિભાગ કરીને આપવામાં આવેલી ગાયો હજાર બ્રાહ્મણોએ ગ્રહણ કરી હતી. ॥ ૨૫॥ ૨૬॥

શ્રીગંગાજીના પ્રવાહની દિશામાં પંચાવન અશ્વમેધ યજ્ઞો દ્વારા આરાધન કર્યું હતું. ‘**पुरोधाय**’ પુરોહિત બનાવીને તથા ‘**यमुनायाम् अनु**’ શ્રીયમુનાજીના પ્રવાહની દિશામાં પણ॥ ૨૫॥

ગંગાસાગરસંગમથી માંડી ઉત્પત્તિસ્થાન ગંગોત્રી સુધી તેમ જ પ્રયાગથી માંડીને યમુનોત્રી સુધી સમજવું.

ઇઠ્યોતેર પવિત્ર અશ્વોને બાંધ્યા. શું કરતાં? ‘**वसु**’ ધન, પુષ્કળ ધન આપતાં, ‘**साचीगुणे**’ ઉત્તમ ગુણવાળા સ્થાનમાં અગ્નિ પ્રજ્વલિત થયો હતો. અથવા ‘**यस्मिन्**’ અગ્નિસ્થાપન કરવામાં આવેલા જે સ્થાનમાં ભરત દ્વારા પુષ્કળ દાન દ્વારા આપવામાં આવેલી ગાયોને ‘**बद्वशः**’

भूरिदानेन दत्ता गाः बद्वशः प्रत्येकं बद्वं बद्वं विभेजिरे विभज्य जगृहुः। चतुरशीत्यधिकै-स्त्रयोदशसहस्रैरेकं बद्वं भवति। तथा हि—

‘हिरण्येन परीवृतान्कृष्णाञ्छुक्लदतो मृगान्।
मष्णारे भरतोऽददाच्छतं बद्वानि सप्त च॥’

इति श्रुत्युक्तानि सप्ताधिकशतं बद्वानि श्रीशुकेनोत्तरश्लोके चतुर्दशलक्षत्वेन संगृहीतानि— ‘अदात्कर्मणि मष्णारे नियुतानि चतुर्दश।’ इति। एवं चतुर्दशलक्षणां सप्ताधिकशतभागो बद्वमित्युक्तम्। इयं च बद्वसंख्या श्लोकेन संगृह्यते—

‘चतुर्दशानां लक्षाणां सप्ताधिकशतांशकः।
बद्वं चतुरशीत्यग्रसहस्राणि त्रयोदश॥’

॥ २६ ॥

त्रयस्त्रिंशच्छतं ह्यश्वान् बद्ध्वा विस्मापयन् नृपान्।
दौष्यन्तिरत्यगान्मायां देवानां गुरुमाययौ॥
॥ २७॥

देवानामपि मायां वैभवमत्यगादत्यशेत। यतः गुरुं पूज्यं हरिमाययौ प्राप्तः, तदंशभवत्वात्। मायावत्तर इति पाठे ह्रस्वः श्रुत्यनुसारेण। मायावतां श्रेष्ठो हरिरेवासावित्यर्थः॥ २७॥

(**बद्वम्** = ૧૩૦૮૪) પ્રત્યેકને ‘**बद्वशः**’ ગાયોનો વિભાગ કરીને, હજાર બ્રાહ્મણોએ ગ્રહણ કરી હતી. તેર હજાર ચોર્યાશી એટલે એક બદ્વ થાય. તે જ રીતે–

‘રાજા ભરતે મષ્ણાર નામના સ્થાન પર સુવર્ણના અલંકારોથી અલંકૃત, કાળા રંગના, સફેદ દાંતવાળા, એકસો સાત કરોડ હાથીઓનું દાન કર્યું.’ (ઐ.બ્રા.૮/૪/૯) (કેટલાકના મતે બદ્વ સંખ્યા કરોડ માટે કહેવાય છે પણ બદ્વ = ૧૩૦૮૪ ગણીએ તો ૧૦૭ ગણા કરતાં લગભગ ૧૪ લાખ હાથી થાય.) આથી શ્રુતિમાં કહેલા એકસો સાત બદ્વને શ્રીશુકદેવજી ૧૪ લાખ તરીકે સ્વીકારે છે, (કારણ કે પછી શ્લોક ૨૮માં કહેવામાં આવ્યું છે કે) ‘મષ્ણાર’ નામના વૈદિક કર્મમાં (ભરતજીએ) ચૌદ લાખ હાથીઓ આપ્યા.’ (શ્રીમદ્ ભા.૯/૨૦/૨૮) આમ એકસો સાત બદ્વ એટલે ચૌદ લાખ એમ કહેવાયું છે. વળી, આ બદ્વ સંખ્યાનો એક શ્લોક દ્વારા ઉલ્લેખ કરવામાં આવ્યો છે

‘એકસો સાત બદ્વ એટલે (લગભગ) ચૌદ લાખ અને બદ્વ એટલે તેરહજાર ચોર્યાશી.’ ॥ ૨૬ ॥

(આમ ૫૫+૭૮) એકસો તેત્રીસ અશ્વો બાંધીને ભરતે સમસ્ત રાજાઓને વિસ્મિત કર્યા હતા અને દેવોના વૈભવથી પણ અધિક વૈભવવાળો બન્યો હતો, કારણ કે શ્રીહરિને પ્રાપ્ત થયો હતો.॥ ૨૭॥

દેવોના ‘**मायाम्**’ વૈભવને પણ ‘**अत्यगात्**’ અતિક્રમી ગયો હતો, કારણ કે ‘**गुरुम्**’ પૂજ્ય એવા શ્રીહરિને ‘**आययौ**’ પ્રાપ્ત થયો હતો, તેમના અંશરૂપ હોવાથી.(‘**मायां देवानाम्**’ ને બદલે) ‘**मायवत्तरः**’ પાઠમાં શ્રુતિ અનુસાર હ્રસ્વ છે. (ઋગ્વેદ પ્રમાણે ‘**मायवताम्**’ પાઠ છે–વં.) તે ભરત માયાવાળા જનોમાં શ્રેષ્ઠ એવા શ્રીહરિ જ છે, એમ અર્થ છે.॥ ૨૭॥ **(मायवत्+तरः=मायवत्तरः)**

(૧ બદ્વ = ૧૩૦૮૪, ૧૦૭ બદ્વ એટલે ૧,૩૦,૮૪,૦૦૦ લગભગ ૧૪ લાખ ગાયો આપવામાં આવી હતી.)

मृगान् शुक्लदतः कृष्णान् हिरण्येन परीवृतान्।
अदात् कर्मणि मष्णारे नियुतानि चतुर्दश॥ २८

मृगान् श्रेष्ठगजान्। भद्रमन्द्रमृगादयो गजजातिभेदाः। मष्णारे इत्यस्य श्रुतिपदस्य व्याख्यानं—कर्मणीति। कस्मिंश्चित्कर्मविशेषे। केचित्तु मष्णारे तीर्थ इति व्याचक्षते॥ २८॥

મષ્ણાર નામના વૈદિક કર્મમાં ભરતે શ્વેત દાંતવાળા, કાળા રંગના, સુવર્ણથી વિભૂષિત કરેલા ચૌદ લાખ શ્રેષ્ઠ હાથીઓનું દાન કર્યું હતું.॥ ૨૮॥

‘**मृगान्**’ શ્રેષ્ઠ હાથીઓને, ભદ્ર, મંદ્ર, મૃગ– એમ ત્રણ પ્રકારના હાથીઓ (અનુક્રમે હિમાલય, વિંધ્યાચળ અને સહ્યાદ્રિમાં ઉત્પન્ન થાય) છે. ‘**मष्णारे इति।**’ આ શ્રુતિપદનું વ્યાખ્યાન— ‘**कर्मणि इति।**’ કોઈક વિશિષ્ટ કર્મમાં– કેટલાક મષ્ણારનો અર્થ તીર્થ પણ કરે છે.॥ ૨૮॥

भरतस्य महत् कर्म न पूर्वे नापरे नृपाः।
नैवापुर्नैव प्राप्स्यन्ति बाहुभ्यां त्रिदिवं यथा॥ २९

॥ २९॥

ભરત રાજાના મહાન કર્મને પૂર્વે થઈ ગયેલા રાજાઓ પહોંચી શક્યા નથી અને ભવિષ્યમાં થનારા રાજાઓ પણ પહોંચશે નહીં, જેમ બે હાથથી સ્વર્ગને પહોંચી ન શકાય તેમ!॥ ૨૯॥ ૨૯॥

किरातहूणान् यवनानन्ध्रान् कङ्कान् खशान् शकान्।
अब्रह्मण्यान् नृपांश्चाहन् म्लेच्छान् दिग्विजयेऽखिलान्॥
॥ ३०॥ ३०॥

રાજા ભરતે દિગ્વિજયમાં કિરાત, હૂણ, યવન, અંધ્ર, કંક, ખશ, શક તથા બ્રાહ્મણદ્રોહી સમસ્ત મ્લેચ્છ રાજાઓને હણ્યા હતા.॥ ૩૦॥ ૩૦॥

जित्वा पुरासुरा देवान् ये रसौकांसि भेजिरे।
देवस्त्रियो रसां नीताः प्राणिभिः पुनराहरत्॥ ३१

पुरा देवान् जित्वा येऽसुरा रसौकांसि रसातलादिस्थानानि भेजिरे तैः प्राणिभिर्बलि-भिर्देवस्त्रियो रसातलं नीताः सतीः पुनराहरदानिन्ये। प्राणिभिरन्यैर्मनुष्यादिभिः सह नीता इति वा। ‘पणिभिः’ इति पाठे पणयोऽसुरास्तैर्नीताः सतीः। यद्वा पणयो दूतास्तैर्दूतान्प्रस्थाप्याहरदित्यर्थः॥ ३१॥

પૂર્વે દેવોને જીતીને જે અસુરો રસાતળ વગેરે સ્થાનોમાં રહેતા હતા તે (બળવાન) પ્રાણીઓ દ્વારા દેવોની સ્ત્રીઓને રસાતળમાં લઈ જવામાં આવી હતી. તે સ્ત્રીઓને રાજા ભરતે ફરી પાછી લાવી આપી હતી.॥ ૩૧॥

પૂર્વે દેવોને જીતીને જે અસુરો ‘**रस-ओकांसि**’ રસાતળ વગેરે સ્થાનોમાં રહેતા હતા તે બળવાન પ્રાણીઓ દ્વારા દેવોની સ્ત્રીઓને રસાતળમાં લઈ જવામાં આવી હતી, તે સ્ત્રીઓને રાજા ભરતે ફરી ‘**आहरत्**’ પાછી લાવી આપી હતી. અથવા ‘**प्राणिभिः**’ અન્ય મનુષ્યો સાથે લઈ જવામાં આવેલી સ્ત્રીઓને– ‘**पणिभिः**’ પાઠમાં ‘**पणयः**’ અસુરો, તેમના દ્વારા લઈ જવામાં આવેલી સ્ત્રીઓને અથવા ‘**पणयः**’ દૂતો, તે અસુરો દ્વારા દૂતોને મોકલીને સ્ત્રીઓને હરી લીધી હતી, એમ અર્થ છે.॥ ૩૧॥

सर्वकामान् दुदुहतुः प्रजानां तस्य रोदसी।
समास्त्रिणवसाहस्रीर्दिक्षु चक्रमवर्तयत्॥ ३२

(ભરત રાજા હતા ત્યારે) તેની પ્રજાઓની સર્વ અભિલાષાઓ આકાશ અને પૃથ્વી પરિપૂર્ણ કરતાં હતાં. સત્યાવીસ હજાર વર્ષો સુધી (સર્વ) દિશાઓમાં રાજા ભરતનું શાસન પ્રવર્તતું હતું. ॥ ૩૨ ॥

त्रिणवसाहस्रीः समाः सप्तविंशतिसहस्रं वत्सरान्। चक्रं सेना आज्ञा वा॥ ३२॥

'त्रिणवसाहस्रीः समाः' સત્યાવીસ હજાર વર્ષો સુધી, **'चक्रम्'** સેના અથવા આજ્ઞા ॥ ૩૨ ॥

तस्य वैराग्येण मोक्षप्रकारमाह—**स इति।**

તેના વૈરાગ્ય દ્વારા મોક્ષનો પ્રકાર કહે છે—**'सः इति।'**

स सम्राड् लोकपालाख्यमैश्वर्यमधिराट् श्रियम्।
चक्रं चास्खलितं प्राणान् मृषेत्युपरराम ह॥ ३३

(અંતે) સાર્વભૌમ સમ્રાટ ભરત, લોકપાલોમાં પણ જેની ખ્યાતિ છે તેવું ઐશ્વર્ય, સાર્વભૌમ સંપત્તિ, અખંડ શાસન અને જીવન પણ મિથ્યા છે એમ માની, તે સર્વથી વિરક્ત થયા હતા. ॥ ૩૩ ॥

मृषेति विचार्येति शेषः॥ ३३॥

મિથ્યા છે, એમ વિચારીને, એટલું શેષ છે. ॥ ૩૩ ॥

तस्यासन् नृप वैदर्भ्यः पत्न्यस्तिस्रः सुसम्मताः।
जघ्नुस्त्यागभयात् पुत्रान् नानुरूपा इतीरिते॥ ३४

હે રાજા પરીક્ષિત, વિદર્ભ રાજાની ત્રણ કન્યાઓ તેની પ્રિય પત્નીઓ હતી. પતિ ભરત દ્વારા 'મારા જેવા (આ પુત્રો) નથી.' એમ કહેવામાં આવ્યું, ત્યારે ત્યાગના ભયથી તેમણે પુત્રોને મારી નાખ્યા. ॥ ૩૪ ॥

नानुरूपा मत्सदृशा न भवन्तीति भर्त्रा ईरिते सति व्यभिचारशङ्कयास्मांस्त्यक्ष्यतीति भयात्पुत्रान् जघ्नुः। पुनः पुत्राणां दर्शने वैसादृश्या-नुसन्धानेन त्यजेन्नान्यथेत्याशयेन हतवत्यः॥ ३४॥

'न-अनुरूपाः' 'મારા જેવા નથી.' એમ પતિ દ્વારા કહેવામાં આવ્યું ત્યારે વ્યભિચારની શંકાથી અમને ત્યજી દેશે, એવા ભયથી તે પત્નીઓએ પુત્રોને મારી નાખ્યા. ફરી પુત્રો થાય ત્યારે અસમાનતાનું અનુમાન કરીને, 'અમારો ત્યાગ કરશે' એમ વિચારીને મારી નાખતી હતી, બીજા કોઈ આશયથી નહીં. ॥ ૩૪ ॥

तस्यैवं वितथे वंशे तदर्थं यजतः सुतम्।
मरुत्स्तोमेन मरुतो भरद्वाजमुपाददुः॥ ३५

આમ, તેનો વંશ વ્યર્થ જવા બેઠો ત્યારે પુત્ર માટે 'મરુત્સ્તોમ' નામના યજ્ઞથી યજન કરતા તે (ભરત)ને (પ્રસન્ન થયેલા) મરુત્ દેવોએ 'ભરદ્વાજ' નામનો પુત્ર આપ્યો હતો. ॥ ૩૫ ॥

वितथे व्यर्थे सति तदर्थं पुत्रार्थं मरुत्स्तोमेन यागेन यजतस्तस्य प्रसन्नाः सन्तो मरुतो भरद्वाजं नाम पुत्रमुपाददुः समर्पयामासुः ॥ ३५ ॥

मरुतां भरद्वाजागमप्रकारं प्रदर्शयन्नाह— **अन्तर्वत्यामिति** चतुर्भिः—

अन्तर्वत्न्यां भ्रातृपत्न्यां मैथुनाय बृहस्पतिः ।
प्रवृत्तो वारितो गर्भं शप्त्वा वीर्यमवासृजत् ॥ ३६

अन्तर्वत्न्यां गर्भिण्यां भ्रातुरुतथ्यस्य पत्न्यां ममतायां चौर्येण मैथुनाय कदाचित्प्रवृत्तो बृहस्पतिस्तदा द्वितीयगर्भस्यावकाशाभावादाक्रोश-पूर्वकं गर्भस्थेन वारितस्ततः क्रुद्धो बृहस्पतिरन्धो भवेति तं गर्भं शप्त्वा बलाद्वीर्यं न्यषिञ्चत्ततो बृहस्पतेः शापाद्गर्भस्थो दीर्घतमा अन्धो बभूव तेन च तद्वीर्यं पार्ष्णिप्रहारेण योनेर्बहिर्निःसारितं भूमौ पतितं सद्य एव कुमारोऽभवत् ॥ ३६ ॥

तं त्यक्तुकामां ममतां भर्तृत्यागविशङ्किताम् ।
नामनिर्वचनं तस्य श्लोकमेनं सुरा जगुः ॥ ३७

तं च परवीर्यजं भर्तुस्त्यागाद्विशङ्कितां सतीं त्यक्तुकामां ममतां प्रति सुरा एनं बृहस्पतेर्ममतायाश्च विवादरूपं श्लोकं जगुः । किमर्थं जगुरत आह— तस्य नाम निरुच्यते येन तत् । तन्नामनिर्वचनेनैव भर्तुस्त्यागशङ्कामपाकर्तुमित्यर्थः ॥ ३७ ॥

'**वितथे**' વ્યર્થ જવા બેઠો ત્યારે '**तत्-अर्थम्**' તે પુત્રને માટે મરુત્સ્તોમ યજ્ઞથી યજન કરતા તેને પ્રસન્ન થયેલા મરુત્ દેવોએ 'ભરદ્વાજ' નામનો પુત્ર '**उपाददुः**' સમર્પિત કર્યો હતો. ॥ ૩૫ ॥

મરુત્ દેવોને ભરદ્વાજ મળ્યા, તે પ્રકાર ચાર શ્લોકોથી દર્શાવતા કહે છે— '**अन्तर्वत्न्याम् इति**'

ભાઈ (ઉતથ્ય)ની ગર્ભવતી પત્ની (મમતા) સાથે (છૂપી રીતે) મૈથુન કરવા માટે પ્રવૃત્ત થયેલા અને તેથી (ગર્ભસ્થ ભ્રૂણ દ્વારા) વારવામાં આવેલા બૃહસ્પતિએ ગર્ભને શાપ આપીને મમતામાં બળપૂર્વક વીર્યસિંચન કર્યું. ॥ ૩૬ ॥

ભાઈ ઉતથ્યની '**अन्तर्वत्न्याम्**' ગર્ભવતી પત્ની મમતા સાથે છૂપી રીતે મૈથુન માટે ક્યારેક બૃહસ્પતિ પ્રવૃત્ત થયા, ત્યારે બીજા ગર્ભનો અવકાશ ન હોવાથી ગર્ભસ્થ ભ્રૂણ દ્વારા આક્રોશપૂર્વક વારવામાં આવેલા બૃહસ્પતિએ તેથી ક્રોધિત થઈ 'તું આંધળો થઈ જા.' એમ ગર્ભને શાપ આપીને મમતામાં બળપૂર્વક વીર્યસિંચન કર્યું. તેથી બૃહસ્પતિના શાપથી ગર્ભસ્થ ભ્રૂણ દીર્ઘતમસ્ અંધ થયા અને તેમના દ્વારા (દીર્ઘતમસ્ દ્વારા) તે બૃહસ્પતિના વીર્યને એડીના પ્રહારથી યોનિની બહાર નાખવામાં આવ્યું. પૃથ્વી પર પડેલા તે વીર્યમાંથી તરત જ એક કુમાર જન્મ્યો. ॥ ૩૬ ॥

પતિ પોતાનો ત્યાગ કરશે એવા ભયની શંકાવાળી અને તે પુત્રનો ત્યાગ કરવા ઇચ્છતી મમતાને દેવોએ (બૃહસ્પતિ અને મમતાના વિવાદરૂપ) બાળકના નામનો નિર્ણય કરાવનારો આ શ્લોક ગાઈ સંભળાવ્યો. ॥ ૩૭ ॥

પતિ ત્યાગ કરશે એવા ભયની શંકાવાળી અને બીજાના વીર્યમાંથી ઉત્પન્ન થયેલા તે પુત્રનો ત્યાગ કરવા ઇચ્છતી મમતા પ્રત્યે દેવોએ બૃહસ્પતિ અને મમતાના વિવાદરૂપ આ શ્લોક ગાયો. શાથી ગાયો, તે હવે કહે છે— તેનું નામ જેનાથી નક્કી થયું તેથી. તેના નામના નિર્વચન (વ્યુત્પત્તિ)થી જ પતિ દ્વારા ત્યાગની શંકા દૂર કરવા માટે (દેવોએ શ્લોક ગાયો). ॥ ૩૭ ॥

मूढे भर द्वाजमिमं भर द्वाजं बृहस्पते।
यातौ यदुक्त्वा पितरौ भरद्वाजस्ततस्त्वयम्॥ ३८

(બૃહસ્પતિ મમતાને કહે છે:) 'હે મૂર્ખ સ્ત્રી, (મારા ભાઈનો ક્ષેત્રજ અને મારો ઔરસ– એમ અમારા બેથી જન્મેલા) આ દ્વાજ પુત્રનું ભરણપોષણ કર!' (એટલે મમતા બૃહસ્પતિને કહે છે:) 'હે બૃહસ્પતિ, આપણા બંનેથી જન્મેલા આ દ્વાજ પુત્રનું તમે ભરણપોષણ કરો.' આમ કહીને માતા-પિતા જતાં રહ્યાં તેથી આ 'ભરદ્વાજ' છે. ॥ ૩૮ ॥

तत्र पुत्रं त्यक्त्वा यान्तीं ममतां बृहस्पतिराह— हे मूढे, इमं पुत्रं भर पुषाण। भर्तुर्बिभेमीति चेत्तत्राह—द्वाजमेकस्य क्षेत्रेऽन्यस्य बीजादित्येवं द्वाभ्यां जातम्, अतस्तस्याप्ययं पुत्र इति न तस्माद्भयशङ्केत्यर्थः। एवमुक्ता सती तं प्रत्याह— हे बृहस्पते, त्वमिमं भर। यतो द्वाभ्यामावाभ्याम- न्यायतो जातम्। अतो नाहमेकाकिनी भरामीत्यर्थः। यद्यस्मादेवमुक्त्वा पितरौ ममताबृहस्पती विवदमानौ पुत्रं परित्यज्य यातौ ततो हेतोरयं भरद्वाज इति।

(વિવાદ કરતાં મમતા-બૃહસ્પતિની વચ્ચે) ત્યાં પુત્રને ત્યાગીને જતી મમતાને બૃહસ્પતિ કહે છે— 'હે મૂર્ખ સ્ત્રી, આ પુત્રનું ભરણપોષણ કર.' જો મમતા કહે કે— 'હું પતિથી ભય પામું છું.' તો તે માટે બૃહસ્પતિ કહે છે— '**द्वाजम्**' એક પુરુષના ક્ષેત્રમાં બીજા પુરુષનું બીજ હોવાથી, એ રીતે આ બેમાંથી જન્મેલો છે તેથી, આ પુત્ર તે ઉતથ્યનો પણ ક્ષેત્રજ પુત્ર છે, તેથી ભયની શંકા કરીશ નહીં, એમ અર્થ છે. આમ કહેવામાં આવેલી મમતા તે (બૃહસ્પતિ)ને કહે છે— 'હે બૃહસ્પતિ, તમે આનું ભરણપોષણ કરો, કારણ કે '**द्वाभ्याम्**' આપણા બંને દ્વારા અન્યાયથી જન્મેલો આ પુત્ર છે. આથી હું એકલી આનું ભરણપોષણ નહીં કરું.' '**यत्**' જે કારણે આમ કહીને વિવાદ કરતાં માતાપિતા મમતા-બૃહસ્પતિ પુત્રનો પરિત્યાગ કરીને ચાલ્યાં ગયાં, તે કારણે આ 'ભરદ્વાજ' છે.

पाठान्तरे यस्य त्यागदुःखात्पितरौ यातावित्यर्थः ॥ ३८ ॥

'**यातौ यदुक्त्वा पितरौ**' ને બદલે '**यातौ यद्+दुःखात्पितरौ**' એમ પાઠાંતરમાં જેના ત્યાગના દુઃખથી માતા-પિતા ચાલ્યાં ગયાં, એમ અર્થ છે. ॥ ૩૮ ॥

चोद्यमाना सुरैरेवं मत्वा वितथमात्मजम्।
व्यसृजन् मरुतोऽबिभ्रन् दत्तोऽयं वितथेऽन्वये॥ ३९

(પુત્ર ભરદ્વાજનું ભરણપોષણ કરવા માટે) દેવો દ્વારા પ્રેરણા કરવામાં આવેલી મમતાએ (વ્યભિચારથી થયેલા) પુત્રને નિરર્થક માનીને તેનો ત્યાગ કર્યો. આમ, તેના દ્વારા ત્યજાયેલા પુત્રનું મરુત્ દેવોએ ભરણપોષણ કર્યું અને (ભરતનો) વંશ વ્યર્થ જતો હતો ત્યારે (તેને) આ પુત્ર આપવામાં આવ્યો. ॥ ૩૯ ॥

वितथं व्यभिचारसंभवात्तमात्मजं वितथं निरर्थकं मत्वा ममता व्यसृजत्तत्याज। पाठान्तरे आदिजं प्रथमजं भर्तुर्वीर्याज्जातमेव मुख्यमात्मजं मत्वा बृहस्पतेर्जातं तत्याजेत्यर्थः। एवं तया त्यक्तं मरुतोऽबिभ्रन्नबिभरुः। तदेवं मरुद्भिः प्राप्तोऽयं भरतस्यान्वये वितथे सति दत्तः॥ ३९॥

'वितथम्' વ્યભિચારથી ઉત્પન્ન થવાના કારણે તે પુત્રને વિતથ (નિરર્થક) માનીને મમતાએ તેનો **'व्यसृजत्'** ત્યાગ કર્યો. **'मत्वा वितथमात्मजम्'** ને બદલે **'मत्वा चादिजमात्मजम्'** પાઠાંતરમાં, પૂર્વે જન્મેલાને, પતિના વીર્યથી જન્મેલાને જ મુખ્ય પુત્ર માનીને બૃહસ્પતિથી જન્મેલા પુત્રનો ત્યાગ કર્યો, એમ અર્થ છે. આમ, તેના દ્વારા ત્યજાયેલા પુત્રને મરુત્ દેવોએ **'अबिभ्रन्'** પોષ્યો. (**अबिभरुः** રૂપ થાય છે.) તો આમ, મરુત્ દેવો દ્વારા પ્રાપ્ત થયેલો આ (ભરદ્વાજ નામનો પુત્ર) ભરતનો વંશ વ્યર્થ જતો હતો ત્યારે આપવામાં આવ્યો હતો.॥ ૩૯॥

अन्वि.—मरुतोऽबिभ्रन्नबिभरुः। आर्षः प्रयोगः।

'अबिभ्रन्' ને બદલે **'अबिभरुः'** રૂપ થાય છે. આર્ષ પ્રયોગ છે.

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे विंशोऽध्यायः॥ २०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां विंशोऽध्यायः॥ २०॥

*****

अथैकविंशोऽध्यायः

ભરતવંશનું વર્ણન, રાજા રંતિદેવની કથા

एकविंशे तु दौष्यन्तेः सुतस्यान्वय उच्यते।
रन्तिदेवाजमीढादेर्यत्र कीर्तिः प्रतन्यते॥ १॥

એકવીસમા અધ્યાયમાં દુષ્યંતપુત્ર ભરતનો વંશ કહેવામાં આવે છે તથા અજમીઢ વગેરેની કીર્તિ વિસ્તારવામાં આવે છે.॥ ૧॥

श्रीशुक उवाच

वितथस्य सुतो मन्युर्बृहत्क्षत्रो जयस्ततः।
महावीर्यो नरो गर्गः संकृतिस्तु नरात्मजः॥ १

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — વિતથનો પુત્ર મન્યુ થયો. તેનાથી બૃહત્ક્ષત્ર, જય, મહાવીર્ય, નર તથા ગર્ગ થયા. સંકૃતિ નરનો પુત્ર હતો.॥ ૧॥

भरतस्यान्वये वितथे सति दत्तत्वाद्वितथसंज्ञो भरद्वाजः। स च ब्राह्मणोऽपि भरतस्य दत्तः पुत्रो जात इति तद्वंशोऽनुक्रम्यते। वितथस्य सुतो मन्युस्तस्माद्बृहत्क्षत्रजयमहावीर्यनरगर्गाः पञ्च पुत्रा बभूवुः॥ १॥

ભરતનો વંશ નિર્વંશ (વિતથ) થયો ત્યારે (મરુત્ દેવોએ તેને દત્તક પુત્ર તરીકે) ભરદ્વાજ આપ્યા, તેથી તેમનું 'વિતથ' નામ પડ્યું. તે તો બ્રાહ્મણ હતા, પણ ભરતના દત્તક પુત્ર થયા એટલે તેમની વંશાવળી કહેવામાં આવે છે. વિતથનો પુત્ર મન્યુ, તેનાથી બૃહત્ક્ષત્ર, જય, મહાવીર્ય, નર તથા ગર્ગ– એમ પાંચ પુત્રો થયા.॥ ૧॥

गुरुश्च रन्तिदेवश्च संकृतेः पाण्डुनन्दन।
रन्तिदेवस्य हि यश इहामुत्र च गीयते॥ २
॥ २॥

હે પાંડુનંદન, સંકૃતિના પુત્રો ગુરુ અને રંતિદેવ થયા. રંતિદેવનો યશ ખરેખર, આ લોક અને પરલોકમાં ગવાય છે.॥૨॥૨॥

वियद्वित्तस्य ददतो लब्धं लब्धं बुभुक्षतः।
निष्किञ्चनस्य धीरस्य सकुटुम्बस्य सीदतः॥ ३

व्यतीयुरष्टचत्वारिंशदहान्यपिबतः किल।
घृतपायससंयावं तोयं प्रातरुपस्थितम्॥ ४

कृच्छ्रप्राप्तकुटुम्बस्य क्षुत्तृड्भ्यां जातवेपथोः।
अतिथिर्ब्राह्मणः काले भोक्तुकामस्य चागमत्॥ ५

આકાશમાંથી આવી પડતું ધન જ જેને ઉપભોગ કરવા યોગ્ય છે તેવા રંતિદેવને જે જે પ્રાપ્ત થતું તે દાન કરતા (હોવાથી), નિષ્કિંચન (રહેતા અને તેથી), કુટુંબસહિત દુઃખ પામતા. (એક વખત) ખરેખર, ધૈર્યવાન રાજાના પાણી પણ ન પીધું હોય તેવા અડતાલીસ દિવસ વીતી ગયા. સંકટ પ્રાપ્ત થયેલા કુટુંબવાળા અને ભૂખ-તરસથી કંપતા શરીરવાળા તેમને (દૈવયોગે) ઘી, પાયસ, લાપસી તથા જળ પ્રાપ્ત થયાં. ભોજન કરવાની ઈચ્છાવાળા તેમની પાસે તે જ સમયે બ્રાહ્મણ અતિથિ આવી ચડ્યો.॥૩॥૪॥૫॥

वियद्वित्तस्य वियतो गगनादिवोद्यमं विना दैवादुपस्थितमेव वित्तं भोग्यं यस्य। यद्वा वियद् व्ययं प्राप्नुवद्वित्तं भोग्यं यस्य। तदेवाह— बुभुक्षतोऽपि सतो लब्धं लब्धं ददतः। तत्प्रपञ्चयति निष्किंचनस्येत्यादिसार्धैः पञ्चदशभिः॥ ३॥

'वियद्-वित्तस्य' આકાશમાંથી જેમ ઉદ્યમ કર્યા વિના દૈવથી આવી પડેલું ધન જ જેને માટે ભોગવવા યોગ્ય છે. અથવા **'वियद्'** એટલે વ્યયને પ્રાપ્ત થનારું વિત્ત જેને માટે ઉપભોગ કરવા યોગ્ય છે. તે જ કહે છે— ભોજન કરવાની ઈચ્છાવાળો હોવા છતાં પણ જે જે પ્રાપ્ત થાય તે આપી દેતા રાજા– તે સાડા પંદર શ્લોકો દ્વારા વિસ્તારપૂર્વક સમજાવે છે— **'निष्किञ्चनस्य'** વગેરે ॥૩॥

अपिबतो जलपानमप्यकुर्वतः। घृतादि-त्रयाणां द्वन्द्वैक्यम्। तोयं च॥४॥५॥

'अपिबतः' જળનું પણ પાન ન કર્યું હોય તેવા રાજાને, ઘૃત(ઘી) વગેરે ત્રણનો દ્વન્દ્વૈક્ય સમાસ છે. ઘી, દૂધપાક અને લાપસી તથા જળ પ્રાપ્ત થયાં.॥૪॥૫॥

तस्मै संव्यभजत् सोऽन्नमादृत्य श्रद्धयान्वितः।
हरिं सर्वत्र संपश्यन् स भुक्त्वा प्रययौ द्विजः॥ ६
॥ ६॥

સર્વત્ર શ્રીહરિનાં દર્શન કરતા રાજાએ શ્રદ્ધાથી યુક્ત થઈ, તેનો આદરસત્કાર કરીને તે અન્ન (કુટુંબ સહિત) તેને વહેંચી આપ્યું. ભોજન કરીને તે બ્રાહ્મણ ચાલ્યો ગયો. તે સાડા પંદર શ્લોકો દ્વારા ॥૬॥૬॥

अथान्यो भोक्ष्यमाणस्य विभक्तस्य महीपते।
विभक्तं व्यभजत् तस्मै वृषलाय हरिं स्मरन्॥ ७

अथान्यो वृषलोऽतिथिरागमत्। विभक्तस्य कुटुम्बार्थमन्नादिकं विभक्तवतः॥ ७॥

याते शूद्रे तमन्योऽगादतिथिः श्वभिरावृतः।
राजन् मे दीयतामन्नं सगणाय बुभुक्षते॥ ८

सगणाय श्वयूथसहिताय॥ ८॥

स आदृत्यावशिष्टं यद् बहुमानपुरस्कृतम्।
तच्च दत्त्वा नमश्चक्रे श्वभ्यः श्वपतये विभुः॥ ९
॥ ९ ॥

पानीयमात्रमुच्छेषं तच्चैकपरितर्पणम्।
पास्यतः पुल्कसोऽभ्यागादपो देह्यशुभस्य मे॥ १०

उच्छेषमुर्वरितम्। एकमेव तर्पयतीति तथा ॥ १०॥

तस्य तां करुणां वाचं निशम्य विपुलश्रमाम्।
कृपया भृशसन्तप्त इदमाहामृतं वचः॥ ११
॥ ११ ॥

परदुःखासहिष्णुतया सर्वेषां दुःखं स्वयं भोक्तुमाशास्ते—**नेति**।

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात् परा-
मष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा।
आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजा-
मन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः॥ १२

હે પૃથ્વીપતિ (પરીક્ષિત)! પોતાના કુટુંબને વહેંચી દીધેલા અન્નનું રાજા ભોજન કરવા તૈયાર થયા, ત્યાં તો બીજો કોઈ શૂદ્ર અતિથિ આવી ચડ્યો. એટલે શ્રીહરિનું સ્મરણ કરતા તેમણે (કુટુંબ માટે) વહેંચી દીધેલું અન્ન તે શૂદ્રને વહેંચી આપ્યું.॥ ૭॥

હવે બીજો શૂદ્ર અતિથિ આવી ચડ્યો. '**विभक्तस्य**' કુટુંબ માટેના અન્નાદિને વહેંચી આપ્યું.॥ ૭॥

શૂદ્ર ગયો ત્યારે કૂતરાંથી વીંટાયેલો બીજો અતિથિ આવ્યો. તેમને (રંતિદેવને) (તેણે કહ્યું:) 'હે રાજા, કૂતરાંના ટોળા સહિત ખાવા ઇચ્છતા મને અન્ન આપો.'॥ ૮॥

'**सगणाय**' કૂતરાંના ટોળા સહિત (મને)॥ ૮॥

તે મહાન રંતિદેવે તેનો પણ આદર કરીને બહુ સન્માનપૂર્વક જે વધ્યું હતું, તે આપી દઈને કૂતરાંઓને અને કૂતરાંઓના સ્વામીને નમસ્કાર કર્યા.॥ ૯॥ ૯॥

હવે માત્ર પાણી જ વધ્યું હતું અને તે પણ માત્ર એક વ્યક્તિ તૃપ્ત થાય તેટલું જ. તે પીવા જતા હતા ત્યાં કોઈ ચાંડાળ આવી ચડ્યો (અને બોલ્યો), 'નીચ એવા મને પાણી આપો!'॥ ૧૦॥

'**उत्-शेषम्**' બાકી વધ્યું હતું, એક વ્યક્તિ તૃપ્ત થાય તેટલું॥ ૧૦॥

અત્યંત કષ્ટપૂર્વકની તેની કરુણ વાણી સાંભળીને દયા આવવાથી ખૂબ જ સંતપ્ત થયેલા રાજા આ અમૃતમય વચન બોલ્યા:॥ ૧૧॥ ૧૧॥

બીજાના દુ:ખને (રાજા) સહન ન કરી શકતા હોવાથી સર્વનું દુ:ખ પોતે જ ભોગવવા માટે ઇચ્છા રાખે છે— '**न इति।**'

અણિમાદિ અષ્ટ ઐશ્વર્યયુક્ત પરમ ગતિ અને મોક્ષ પણ હું ઈશ્વર પાસેથી ઇચ્છતો નથી. સમસ્ત શરીરધારીઓની અંદર રહી (સર્વ દુ:ખોના ભોક્તારૂપે તેમનું) દુ:ખ હું પ્રાપ્ત કરું, જેથી તેઓ દુ:ખરહિત થાય.॥ ૧૨॥

अणिमाद्यष्टसमृद्धियुक्तां गतिमपि मोक्षमपि चाहं न कामये। तर्हि किं कामयसे तदाह— अखिलदेहभाजामार्तिं दुःखं तत्तद्भोक्तृरूपेणान्तः-स्थितः सन्नहं प्रपद्ये प्राप्नुयामित्येवं कामये। येन तद्दुःखभोक्त्रा मया हेतुभूतेन ते सर्वेऽदुःखा भवन्ति॥ १२॥

ननु दुःखं किमिति प्रार्थयसे। परदुःख-निवृत्त्यैव मम सर्वदुःखनिवृत्तिरित्याह—**क्षुत्तृडिति**।

क्षुत्तृट्श्रमो गात्रपरिश्रमश्च
दैन्यं क्लमः शोकविषादमोहाः।
सर्वे निवृत्ताः कृपणस्य जन्तो-
र्जिजीविषोर्जीवजलार्पणान्मे ॥ १३

कृपणस्य जन्तोर्जीवनहेतोर्जलस्यार्पणान्मे सर्वे क्षुत्तृडादयो निवृत्ताः॥ १३॥

इति प्रभाष्य पानीयं म्रियमाणः पिपासया।
पुल्कसायाददाद्धीरो निसर्गकरुणो नृपः॥ १४

इत्येवं प्रभाष्य॥ १४॥

तस्य त्रिभुवनाधीशाः फलदाः फलमिच्छताम्।
आत्मानं दर्शयाञ्चक्रुर्माया विष्णुविनिर्मिताः॥
॥ १५॥

त्रिभुवनाधीशा ब्रह्मादयः। मायास्तदीयधैर्य-परीक्षार्थं प्रथमं मायया वृषलादिरूपेण प्रतीताः सन्त इत्यर्थः॥ १५॥

અણિમાદિ અષ્ટ ઐશ્વર્યયુક્ત પરમ ગતિ અને '**अपुनर्भवम्**' મોક્ષ પણ હું ઈચ્છતો નથી. તો પછી શું ઈચ્છો છો? તે કહે છે—સમસ્ત શરીરધારીઓનું '**आर्तिम्**' દુઃખ. તે તે દુઃખના ભોક્તારૂપે અંદર રહી હું (તેમનું દુઃખ) '**प्रपद्ये**' પ્રાપ્ત કરું, એમ ઈચ્છું છું, જેથી તેમનું દુઃખ ભોગવનાર એવા મારે કારણે તે સર્વ દેહધારીઓ દુઃખરહિત થાય.॥ ૧૨॥

શંકા કરવામાં આવી છે કે દુઃખને માટે કેમ પ્રાર્થના કરો છો? તે માટે જ ઉત્તર આપે છે કે બીજાનું દુઃખ દૂર થવાથી જ મારું સર્વ દુઃખ દૂર થાય છે— '**क्षुत्तृड् इति।**'

જીવવા ઈચ્છતા આ દીન પ્રાણીના જીવનના હેતુરૂપ જળના અર્પણ દ્વારા મારી ભૂખ-તરસની પીડા, શરીરની શિથિલતા, દીનતા, ગ્લાનિ, શોક, વિષાદ અને મોહ સર્વ નિવૃત્ત થાય.॥ ૧૩॥

દીન એવા (આ) પ્રાણીના જીવનના કારણરૂપ જળના અર્પણ દ્વારા મારા સર્વ ભૂખ-તરસ વગેરે દૂર (થાય).॥ ૧૩॥

આ પ્રમાણે કહીને, તરસને કારણે પોતે મરતા હોવા છતાં, ધૈર્યવાન અને સ્વાભાવિક કૃપાવાન એવા રાજા રંતિદેવે ચાંડાળને પાણી આપ્યું.॥ ૧૪॥

'**इति**' આ પ્રમાણે કહીને॥ ૧૪॥

ફળની ઈચ્છા રાખનારાઓને ફળ આપનારા ત્રણે ભુવનના સ્વામીઓએ તેમના (રંતિદેવના) (ધૈર્યની પરીક્ષા કરવા) ભગવાન વિષ્ણુ દ્વારા રચાયેલી માયાઓને (બ્રાહ્મણ, શૂદ્ર વગેરેરૂપે) દર્શાવીને (સંતુષ્ટ થઈ) પોતાના સ્વરૂપનાં દર્શન દીધાં.॥ ૧૫॥

ત્રણે ભુવનના બ્રહ્મા વગેરે સ્વામીઓએ માયાઓને દર્શાવીને, તેમના ધૈર્યની પરીક્ષા કરવા માટે માયાથી પ્રથમ (બ્રાહ્મણ), શૂદ્ર વગેરેરૂપે પ્રતીત થઈને, એમ અર્થ છે.॥ ૧૫॥

स वै तेभ्यो नमस्कृत्य निःसङ्गो विगतस्पृहः ।
वासुदेवे भगवति भक्त्या चक्रे मनः परम् ॥ १६

परं केवलं वासुदेवे भक्त्या नमश्चक्रे न तु तान्किमपि याचितवान् ॥ १६ ॥

ईश्वरालम्बनं चित्तं कुर्वतोऽनन्यराधसः ।
माया गुणमयी राजन् स्वप्नवत् प्रत्यलीयत ॥ १७

अनन्यराधस ईश्वरातिरिक्तफलान्तरानपेक्षस्य । प्रत्यलीयतात्मन्येव लीना बभूव ॥ १७ ॥

बा.प्र.—स्वप्नदृष्टः पदार्थो जाग्रदवस्थापन्नस्य यथाऽदृश्यो भवति तथेत्यर्थः ।

तत्प्रसङ्गानुभावेन रन्तिदेवानुवर्तिनः ।
अभवन् योगिनः सर्वे नारायणपरायणाः ॥ १८

॥ १८ ॥

मन्युसुतस्य नरस्य वंशमुक्त्वा तत्सुतस्यैव गर्गस्य वंशमाह—**गर्गादिति** ।

गर्गाच्छिनिस्ततो गार्ग्यः क्षत्राद् ब्रह्म ह्यवर्तत ।
दुरितक्षयो महावीर्यात् तस्य त्रय्यारुणिः कविः ॥ १९

पुष्करारुणिरित्यत्र ये ब्राह्मणगतिं गताः ।
बृहत्क्षत्रस्य पुत्रोऽभूद्धस्ती यद्धस्तिनापुरम् ॥ २०

महावीर्यस्य वंशमाह—दुरितक्षयस्तस्य त्रय्यारुणिः कविः पुष्करारुणिश्चेति त्रयः पुत्राः ॥ १९ ॥

અનાસક્ત અને વરદાન માગવાની સ્પૃહાથી રહિત એવા રાજાએ તેમને નમસ્કાર કરીને, ભગવાન વાસુદેવને ભક્તિથી કેવળ નમન કર્યું (પણ કંઈ જ માગ્યું નહીં). ॥ ૧૬ ॥

‘**परम्**’ કેવળ, વાસુદેવ ભગવાનને ભક્તિથી નમન કર્યું, પણ તેમની પાસે કંઈ જ માગ્યું નહીં. ॥ ૧૬ ॥

ઈશ્વર સિવાય અન્ય ફળની આકાંક્ષારહિત અને ભગવાનમાં નિરંતર એકનિષ્ઠ ચિત્ત રાખવા રંતિદેવની ત્રિગુણાત્મિકા માયા સ્વપ્નની જેમ પોતાનામાં જ વિલીન થઈ ગઈ (નાશ પામી). ॥ ૧૭ ॥

‘**अनन्यराधसः**’ ઈશ્વર સિવાય અન્ય ફળની આકાંક્ષારહિત એવા રંતિદેવની (માયા) ‘**प्रत्यलीयत**’ પોતાનામાં જ વિલીન થઈ ગઈ. ॥ ૧૭ ॥

સ્વપ્નમાં જોયેલો પદાર્થ જાગૃત અવસ્થા પ્રાપ્ત કરનારને માટે જેમ અદૃશ્ય થઈ જાય છે તેમ, એમ અર્થ છે.

રંતિદેવને અનુસરનારા સર્વ મનુષ્યો તેમના પ્રકૃષ્ટ પ્રભાવથી નારાયણના પરમ આશ્રયવાળા યોગીઓ બની ગયા. ॥ ૧૮ ॥ ૧૮ ॥

(વિતથના પુત્ર) મન્યુના પુત્ર નરનો વંશ કહીને તેના પુત્ર ગર્ગનો વંશ કહે છે— ‘**गर्गात् इति ।**’

ગર્ગથી શિનિ અને તેનો ગાર્ગ્ય (નામનો પુત્ર થયો). (ગાર્ગ્ય ક્ષત્રિય હતો, પરંતુ તે) ક્ષત્રિયથી બ્રહ્મકુળ થયું હતું.(મન્યુના પુત્ર) મહાવીર્યથી દુરિતક્ષય નામનો પુત્ર થયો હતો. તેના ત્રય્યારુણિ, કવિ અને ॥ ૧૯ ॥

પુષ્કરારુણિ હતા, જેઓ ક્ષત્રિયપણામાં જ બ્રહ્મપણું પામ્યા હતા. (મન્યુના પુત્ર) બૃહત્ક્ષત્રનો હસ્તિ નામે પુત્ર થયો, જેણે હસ્તિનાપુર વસાવ્યું હતું. ॥ ૨૦ ॥

(મન્યુના પુત્ર) મહાવીર્યનો વંશ કહે છે— દુરિતક્ષય, તેના ત્રય્યારુણિ, કવિ અને પુષ્કરારુણિ— એમ ત્રણ પુત્રો હતા. ॥ ૧૯ ॥

कथंभूताः—ये अत्र क्षत्रवंशे ब्राह्मणगतिं ब्राह्मणरूपतां गतास्ते। मन्युपुत्राणां पञ्चानां ज्येष्ठस्य वंशमाह—बृहत्क्षत्रस्येति। यद्येन हस्तिनापुरं कृतमित्यर्थः ॥ २० ॥

કેવા પુત્રો હતા? જેઓ '**अत्र**' ક્ષત્રિયવંશમાં '**ब्राह्मणगतिम्**' બ્રાહ્મણપણાને પામ્યા હતા તે. મન્યુના પાંચેય પુત્રોના જ્યેષ્ઠ પુત્રનો વંશ કહે છે— '**बृहत्क्षत्रस्य इति**' '**यत्**' જેણે હસ્તિનાપુર વસાવ્યું, એમ અર્થ છે. ॥ ૨૦ ॥

अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च हस्तिनः ।
अजमीढस्य वंश्याः स्युः प्रियमेधादयो द्विजाः ॥ २१

હસ્તિના અજમીઢ, દ્વિમીઢ અને પુરુમીઢ નામના પુત્રો થયા. અજમીઢના વંશજો પ્રિયમેધાદિ બ્રાહ્મણો થયા. ॥ ૨૧ ॥

अजमीढादयस्त्रयो हस्तिनः पुत्राः ॥ २१ ॥

અજમીઢ વગેરે ત્રણ હસ્તિના પુત્રો થયા. ॥ ૨૧ ॥

अजमीढाद् बृहदिषुस्तस्य पुत्रो बृहद्धनुः ।
बृहत्कायस्ततस्तस्य पुत्र आसीज्जयद्रथः ॥ २२

અજમીઢથી બૃહદિષુ થયો. તેનો પુત્ર બૃહદ્ધનુ થયો. તેનાથી બૃહત્કાય અને તેનો પુત્ર જયદ્રથ થયો. ॥ ૨૨ ॥

अजमीढादेवान्यः पुत्रो बृहदिषुर्नामाभवत् ॥ २२ ॥

અજમીઢથી જ બૃહદિષુ નામનો બીજો પુત્ર થયો. ॥ ૨૨ ॥

तत्सुतो विशदस्तस्य सेनजित् समजायत ।
रुचिराश्वो दृढहनुः काश्यो वत्सश्च तत्सुताः ॥ २३

॥ २३ ॥

તે (જયદ્રથ)નો વિશદ, તેનો સેનજિત્ અને તેના રુચિરાશ્વ, દઢહનુ, કાશ્ય અને વત્સ નામના પુત્રો થયા. ॥ ૨૩ ॥ ૨૩ ॥

रुचिराश्वसुतः पारः पृथुसेनस्तदात्मजः ।
पारस्य तनयो नीपस्तस्य पुत्रशतं त्वभूत् ॥ २४

રુચિરાશ્વનો પુત્ર પાર અને તેનો પુત્ર પૃથુસેન થયો. પારનો બીજો પુત્ર નીપ હતો, તેના સો પુત્ર થયા. ॥ ૨૪ ॥

पारस्य तनयो नीपः। नीपस्य पुत्रशतम् ॥ २४ ॥

પારનો પુત્ર નીપ થયો. નીપના સો પુત્રો થયા. ॥ ૨૪ ॥

स कृत्व्यां शुककन्यायां ब्रह्मदत्तमजीजनत् ।
स योगी गवि भार्यायां विष्वक्सेनमधात् सुतम् ॥ २५

શુકદેવજીની કન્યા કૃત્વીમાં તેણે બ્રહ્મદત્ત નામનો પુત્ર ઉત્પન્ન કર્યો હતો. તે યોગી બ્રહ્મદત્તે સરસ્વતી નામની ભાર્યામાં વિષ્વક્સેન નામનો પુત્ર ઉત્પન્ન કર્યો હતો. ॥ ૨૫ ॥

स एव कृत्व्यां कृत्वीसंज्ञायां शुककन्यायां ब्रह्मदत्तं च जनयामास। तदुक्तं हरिवंशादिषु—

'पराशरकुलोत्पन्नः शुको नाम महायशाः।
व्यासादरण्यां संभूतो विधूमोऽग्निरिवोज्ज्वलन्॥

તે નીપે જ '**कृत्व्याम्**' કૃત્વી નામની શુકદેવજીની કન્યામાં બ્રહ્મદત્ત ઉત્પન્ન કર્યો હતો. હરિવંશ (અ-૧૮, ૫૦ થી ૫૩) વગેરેમાં તે કહેવાયું છે— 'પરાશરના વંશમાં વ્યાસથી અરણિમાં આવિર્ભૂત નિર્ધૂમ અગ્નિ જેવા ઉજ્જવળ, શુકદેવજી નામના મહાયશસ્વી પુત્ર થયા હતા. તેમણે (બર્હિષદ્) પિતૃઓની કન્યા તે

स तस्यां पितृकन्यायां वीरिण्यां जनयिष्यति।
कृष्णं गौरप्रभं शंभुं तथा भूरिश्रुतं जयम्॥
कन्यां कीर्तिमतीं षष्ठीं योगिनीं योगमातरम्।
ब्रह्मदत्तस्य जननीं महिषीमणुहस्य च॥'
इति।

*यद्यपि शुक उत्पत्त्यैव विमुक्तसङ्गो निर्गतस्तथापि विरहातुरं व्यासमनुयान्तं दृष्ट्वा छायाशुकं निर्माय गतवांस्तदभिप्रायेणैव गार्हस्थ्यादिव्यवहार इत्यविरोधः। स ब्रह्मदत्तो योगी। गवि वाचि सरस्वत्याम्॥ २५॥

वीरिणी (पीवरी)માં કૃષ્ણ, ગૌરપ્રભ, શંભુ, ભૂરિશ્રુત તથા જય અને કીર્તિમતી (કૃત્વી) છઠ્ઠી યોગમાતા યોગિની ઉત્પન્ન કરી હતી. તે બ્રહ્મદત્તની જનની અને અણુહની રાણી હતી.'

*જો કે શુકદેવજી જન્મથી જ આસક્તિરહિત હતા અને (બધાને છોડીને) નીકળી ગયા હતા, તેમ છતાં પણ વિરહાતુર પિતા વ્યાસને પાછળ આવતા જોઈ, છાયાશુકનું નિર્માણ કરીને ચાલ્યા ગયા હતા. શ્રીકૌશિક સંહિતા (શ્રીમદ્‌ભા.માહાત્મ્ય ૨૭/૪/૪૭) આ અભિપ્રાયથી જ ગૃહસ્થાશ્રમ વગેરે વ્યવહાર કર્યો હતો, એમ અહીં વિરોધ નથી. તે બ્રહ્મદત્ત યોગી હતો. '**गवि**' વાણી સરસ્વતીમાં ॥ ૨૫॥

वंशीधरी—स एव नीप एव। नीपस्याणुह इत्यपि नामांतरम्।

'**सः एव**' તે નીપ જ, નીપનું જ બીજું નામ અણુહ છે.

किञ्च—पुराणानां कल्पभदेनैव व्यवस्था स्कंदपुराणादावुक्ता—

'कथावैचित्र्यमखिलं सत्यमेव न संशयः।
पुराणानां यतः कर्त्ता व्यासः साक्षात्स्वयं हरिः॥
कल्पभेदं समादाय कथाभेदं जगाद ह।
धीदोषकल्पनं चात्र सर्वज्ञे न हि संभवेत्॥'
इति वारतंतव्युक्तेः।

વળી, કલ્પભેદ દ્વારા જ પુરાણોની વ્યવસ્થા સ્કંદપુરાણાદિમાં કહેવાઈ છે–

"કથાઓમાં વિભિન્નતા સંપૂર્ણ સત્ય છે, એમાં સંશય નથી, કારણ કે પુરાણોના કર્તા વ્યાસજી સાક્ષાત્ સ્વયં શ્રીહરિ છે. કલ્પભેદને ધ્યાનમાં લઈને કથાભેદ કહેવાય છે. સર્વજ્ઞ એવા વ્યાસજી વિષે આ વિષયમાં બુદ્ધિમાં દોષ હોવાની કલ્પના સંભવે જ નહીં."

એમ વારતંતવિમાં કહેવાયું છે.

वंशीधरी—यद्वाऽरण्युद्भूतच्छायाशुकाभ्यामन्यस्तृतीयः शुकोऽपि मुख्यः ब्रह्मवैवर्त्ते।

અથવા અરણિ(કાષ્ઠ)થી ઉત્પન્ન થયેલા અને છાયાશુકથી (પણ) અન્ય ત્રીજા જ મુખ્ય શુકદેવજી બ્રહ્મવૈવર્ત પુરાણમાં કહેવાયા છે.

वि.चक्र.—श्रीभागवतवक्ता शुकस्तु व्यासस्य प्रथमः पुत्रोऽरणिसम्भूतादन्यः।

શ્રીમદ્ ભાગવતના વક્તા શુકદેવજી વ્યાસજીના પ્રથમ પુત્ર છે. અરણિથી ઉત્પન્ન થયેલા તો બીજા છે.

---

* (શ્રીધર સ્વામીએ '**यद्यपि** થી.....**इत्यविरोधः।**' જે કહ્યું છે તેની સામે અન્ય અભિપ્રાય પણ પં.વંશીધરજી, પં.ગંગાસહાયજી (અન્વિતાર્થ), જીવગોસ્વામીજી (ક્રમસન્દર્ભ), વિશ્વનાથ ચક્રવર્તીજી (સારાર્થદર્શિની), ગોસ્વામી ગિરિધરલાલ (બાલપ્રબોધિની), ભગવત્પ્રસાદાચાર્ય (ભક્ત મનોરંજની)એ વ્યક્ત કર્યો છે. તે વિષયમાં બ્રહ્મવૈવર્ત પુરાણની શ્રીશુકદેવજીની કથા ઉદ્‌ધૃત કરી છે.)

क्र.सं.—शुककन्यायामित्यत्र न तु मम कन्याया-मित्युक्तमिति स्वस्मादन्योऽसौ शुक इति बोधयति तच्च युक्तं ब्रह्मवैवर्तवर्णितस्वयंश्रीभगवन्महानुग्रह-पात्रत्वात्तत एव विष्णुरातवन्नराकृतिपरब्रह्मणा दत्तत्वेन तद्ब्रह्मरातत्वसम्भवात् तस्यैव श्रीभागवत-वक्तृत्वं सम्भवति नाऽन्यस्य। कल्पभेदव्यवस्थया भारतादिवर्णितस्याऽरणिसम्भवस्य किमुत छाया-शुककल्पितस्येति।

અહીં શ્લોકમાં 'શુકની કન્યામાં' એમ કહેવામાં આવ્યું છે, 'મારી કન્યામાં' નથી કહેવાયું, આથી એ શુક પોતાનાથી બીજા છે, એમ જણાવે છે અને તે યોગ્ય છે. બ્રહ્મવૈવર્તપુરાણમાં વર્ણિત સ્વયં શ્રીભગવાનના મહાન અનુગ્રહને પાત્ર હોવાથી તેમનાથી જ વિષ્ણુરાત (પરીક્ષિત) જેવા, નરાકૃતિ પરબ્રહ્મ દ્વારા અપાયેલા હોવાથી તેમનામાં (શુકદેવજીમાં) બ્રહ્મરાતત્વ સંભવિત થયું માટે તેમના દ્વારા જ શ્રીભાગવતનું વક્તૃત્વ સંભવે છે, અન્ય વડે નહીં. કલ્પભેદની વ્યવસ્થા પ્રમાણે મહાભારતમાં વર્ણવવામાં આવેલા, અરણિથી ઉત્પન્ન થયેલા કે કલ્પિત છાયાશુક વડે શ્રીમદ્ભાગવતનું વક્તૃત્વ સંભવિત નથી.

अन्वि.—'भारतरचनानन्तरं व्यासो जाबालि-कन्यामुवाह। सा च गर्भवती एकादश वर्षाणि न प्रासूत। ततो व्यासेन गर्भस्थं पुत्रं प्रति गर्भान्निःसरेत्युक्तम्। गर्भश्चाह—गर्भान्निःसृतं मां मायाभिभविष्यतीत्यतो न निःसर्त्तुमिच्छामि। यदि च मायायाः स्वाम्येव मायाभिभवाभावे प्रतिभूः स्यात्तदा निःसरेयम्। तच्छ्रुत्वा व्यासो द्वारकातः श्रीकृष्णमानिनाय। श्रीकृष्णेन मायाभिभवाभावे प्रतिज्ञाते गर्भाच्छुको निःससार।' इति।

મહાભારતની રચના પછી વ્યાસજીએ જાબાલિની કન્યા(વાટિકા) સાથે લગ્ન કર્યાં. તે ગર્ભવતી થઈ અને અગિયાર વર્ષ સુધી તેની પ્રસૂતિ થઈ નહીં. તેથી (બારમે વર્ષે) વ્યાસજીએ ગર્ભમાં રહેલા પુત્રને કહ્યું: 'તું ગર્ભમાંથી બહાર નીકળ.' ગર્ભસ્થ શિશુએ કહ્યું: 'ગર્ભમાંથી નીકળેલા મને માયા અભિભૂત કરશે, આથી હું બહાર નીકળવા નથી ઈચ્છતો. જો માયાના પતિ જ, હું માયાથી અભિભૂત નહીં થાઉં તેની ખાત્રી આપતા હોય, તો હું બહાર નીકળું.' તે સાંભળીને વ્યાસજી દ્વારકાથી શ્રીકૃષ્ણને લઈ આવ્યા. શ્રીકૃષ્ણ દ્વારા માયાથી અભિભૂત ન થવા દેવાની પ્રતિજ્ઞા કરવામાં આવી, ત્યારે શુકદેવજી ગર્ભમાંથી બહાર નીકળ્યા.

जैगीषव्योपदेशेन योगतन्त्रं चकार ह।
उदक्स्वनस्ततस्तस्माद् भल्लादो बार्हदीषवाः ॥ २६

(તે બ્રહ્મદત્તે) જૈગીષવ્ય મુનિના ઉપદેશથી યોગતંત્ર રચ્યું હતું.(બ્રહ્મદત્તના પુત્ર વિષ્વક્સેનથી) ઉદક્સ્વન થયો, તેનાથી ભલ્લાદ થયો. આ બધા બૃહદિષુના વંશજો થયા.॥ ૨૬॥

स एव योगतन्त्रं चकार। बार्हदीषवा बृहदिषोर्वंश्या इमे, दीर्घत्वमार्षम्॥ २६॥

यवीनरो द्विमीढस्य कृतिमांस्तत्सुतः स्मृतः।
नाम्ना सत्यधृतिर्यस्य दृढनेमिः सुपार्श्वकृत्॥ २७

सुपार्श्वकृत्सुपार्श्वस्य पिता॥ २७॥

सुपार्श्वात् सुमतिस्तस्य पुत्रः सन्नतिमांस्ततः।
कृतिर्हिरण्यनाभाद् यो योगं प्राप्य जगौ स्म षट्॥ २८

संहिताः प्राच्यसाम्नां वै नीपो ह्युग्रायुधस्ततः।
तस्य क्षेम्यः सुवीरोऽथ सुवीरस्य रिपुञ्जयः॥ २९

प्राच्यसाम्नां षट्संहिता जगौ विभज्याध्यापितवान्॥ २८॥ २९॥

ततो बहुरथो नाम पुरुमीढोऽप्रजोऽभवत्।
नलिन्यामजमीढस्य नीलः शान्तिः सुतस्ततः॥ ३०

अजमीढस्य वंश्याः प्रियमेधादयः केचिद्ब्राह्मणाः बभूवुर्बृहदिषुप्रभृतयः क्षत्रियाश्चेति वंशद्वयमुक्तम्। तस्यैव वंशान्तरमाह— नलिन्यामिति यावत्समाप्ति॥ ३०॥

शान्तेः सुशान्तिस्तत्पुत्रः पुरुजोऽर्कस्ततोऽभवत्।
भर्म्याश्वस्तनयस्तस्य पञ्चासन्मुद्गलादयः॥ ३१
॥ ३१॥

તે બ્રહ્મદત્તે જ યોગતંત્ર રચ્યું. '**बार्हदीषवाः**' આ બધા બૃહદિષુના વંશજો થયા. (**बार्हदिषवाः** હોવું જોઈએ. તેમાં '**दी**' દીર્ઘ છે તે આર્ષ છે.)॥ ૨૬॥

દ્વિમીઢનો પુત્ર યવીનર હતો. તેનો પુત્ર કૃતિમાન કહેવાયો, જેનો સત્યધૃતિ નામનો પુત્ર થયો. તેનો દૃઢનેમિ અને તે સુપાર્શ્વને ઉત્પન્ન કરનાર હતો.॥ ૨૭॥

'**सुपार्श्वकृत्**' સુપાર્શ્વનો પિતા॥ ૨૭॥

સુપાર્શ્વથી સુમતિ થયો, તેનો પુત્ર સન્નતિમાન થયો. તેનો કૃતિ (નામનો પુત્ર) થયો, જેણે હિરણ્યનાભ પાસેથી યોગવિદ્યા પ્રાપ્ત કરીને ('પ્રાચ્યસામ' નામની) છ સંહિતાઓનો વિભાગ કરીને અધ્યાપન કર્યું હતું. (કૃતિનો પુત્ર) નીપ થયો. તેનો ઉગ્રાયુધ થયો. તેનો ક્ષેમ્ય, પછી સુવીર થયો અને સુવીરનો રિપુંજય થયો.॥ ૨૮॥ ૨૯॥

'પ્રાચ્યસામ' નામની છ સંહિતાઓનો '**जगौ**' વિભાગ કરીને અધ્યાપન કર્યું.॥ ૨૮॥ ૨૯॥

તે (રિપુંજય)નો બહુરથ નામનો પુત્ર થયો. (હસ્તિનો ત્રીજો પુત્ર) પુરુમીઢ પ્રજારહિત હતો. અજમીઢનો નલિની નામની ભાર્યામાં નીલ થયો. તેનો પુત્ર શાંતિ થયો.॥ ૩૦॥

અજમીઢના વંશજો કેટલાક પ્રિયમેધાદિ બ્રાહ્મણો થયા. બૃહદિષુ વગેરે ક્ષત્રિયો થયા, એમ બે વંશો કહેવામાં આવ્યા. તેનો જ બીજો વંશ અધ્યાય સમાપ્ત થાય ત્યાં સુધી કહે છે— '**नलिन्याम् इति।**'॥ ૩૦॥

શાંતિનો સુશાંતિ થયો. તેનો પુરુજ, તેનો અર્ક થયો. તેનો ભર્મ્યાશ્વ થયો. તેને મુદ્ગલ વગેરે પાંચ પુત્રો થયા.॥ ૩૧॥ ૩૧॥

यवीनरो बृहदिषुः काम्पिल्यः संजयः सुताः।
भर्म्याश्वः प्राह पुत्रा मे पञ्चानां रक्षणाय हि॥ ३२
विषयाणामलमिमे इति पञ्चालसंज्ञिताः।
मुद्गलाद् ब्रह्म निर्वृत्तं गोत्रं मौद्गल्यसंज्ञितम्॥ ३३

(મુદ્ગલ,) યવીનર, બૃહદિષુ, કામ્પિલ્ય અને સંજય. ભર્મ્યાશ્વે (પુત્રોને) કહ્યું, 'હે પુત્રો! મારા પાંચેય દેશોનું રક્ષણ કરવા માટે તમે સમર્થ છો.' તેથી આ સર્વે 'પંચાલ' નામથી પ્રસિદ્ધ થયા. મુદ્ગલથી મૌદ્ગલ્ય નામનું બ્રાહ્મણકુળ પ્રવૃત્ત થયું.॥ ૩૨ ॥ ૩૩ ॥

मुद्गल एको यवीनरादयश्चत्वार इत्येवं पञ्च॥ ३२॥ ३३॥

મુદ્ગલ એક અને યવીનર વગેરે ચાર થઈને પાંચ પુત્રો॥ ૩૨ ॥ ૩૩ ॥

मिथुनं मुद्गलाद् भार्म्याद् दिवोदासः पुमानभूत्।
अहल्या कन्यका यस्यां शतानन्दस्तु गौतमात्॥ ३४

ભર્મ્યાશ્વપુત્ર મુદ્ગલથી જોડકું જન્મ્યું. તેમાં પુત્ર દિવોદાસ અને અહલ્યા પુત્રી થયાં, જેમનામાં ગૌતમ ઋષિથી શતાનંદ પુત્ર થયા.॥ ૩૪ ॥

भार्म्याद्भर्म्याश्वपुत्रात् मिथुनं चाभूत्। तदेवाह—दिवोदासः पुमानहल्या च कन्यकेति॥ ३४॥

'भार्म्यात्' ભર્મ્યાશ્વના પુત્ર મુદ્ગલથી જોડકું થયું. તે જ કહે છે. દિવોદાસ પુત્ર અને અહલ્યા કન્યા થયાં.॥ ૩૪ ॥

तस्य सत्यधृतिः पुत्रो धनुर्वेदविशारदः।
शरद्वांस्तत्सुतो यस्मादुर्वशीदर्शनात् किल॥ ३५
शरस्तम्बेऽपतद् रेतो मिथुनं तदभूच्छुभम्।
तद् दृष्ट्वा कृपयागृह्णाच्छन्तनुर्मृगयां चरन्।
कृपः कुमारः कन्या च द्रोणपत्न्यभवत् कृपी॥ ३६
॥ ३५॥ ३६॥

તે (શતાનંદ)નો પુત્ર સત્યધૃતિ ધનુર્વેદમાં નિપુણ હતો. તેનો પુત્ર શરદ્વાન હતો. ઉર્વશીને જોવાને કારણે તેનું વીર્ય ઘાસના ગુચ્છા પર પડ્યું. તે શુભ લક્ષણવાળું જોડકું થયું. તેને જોઈને મૃગયા રમતા રાજા શન્તનુએ દયાથી લઈ લીધું હતું. કુમાર કૃપાચાર્ય થયા અને કન્યા કૃપી દ્રોણાચાર્યનાં પત્ની થયાં॥ ૩૫ ॥ ૩૬ ॥ ૩૫ ॥ ૩૬ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः॥ २१॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां एकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

*****

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

પાંચાલ, કૌરવ અને મગધદેશીય રાજાઓના વંશનું વર્ણન

द्वाविंशे तु दिवोदासवंशमुक्त्वाथ वर्णिताः।
ऋक्षवंशे जरासन्धपार्थदुर्योधनादयः॥ १॥

બાવીસમા અધ્યાયમાં દિવોદાસનો વંશ કહીને પછી ઋક્ષવંશમાં જરાસંધ, પાર્થ, દુર્યોધન વગેરે વર્ણવાયા છે.॥ ૧ ॥

श्रीशुक उवाच

मित्रेयुश्च दिवोदासाच्च्यवनस्तत्सुतो नृप।
सुदासः सहदेवोऽथ सोमको जन्तुजन्मकृत्॥ १
॥ १॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — હે નૃપ (પરીક્ષિત), દિવોદાસથી મિત્રેયુ થયો. તેના ચ્યવન, સુદાસ, સહદેવ, સોમક— એમ ચાર પુત્રો થયા. સોમક જન્તુ નામના પુત્રને જન્મ આપનાર હતો.॥ ૧ ॥ ૧ ॥

तस्य पुत्रशतं तेषां यवीयान् पृषतः सुतः।
द्रुपदो द्रौपदी तस्य धृष्टद्युम्नादयः सुताः॥ २

તે સોમકના સો પુત્રો હતા. (તેમાં સૌથી મોટો જન્તુ અને) સૌથી નાનો પૃષત હતો. તેનો દ્રુપદ થયો. તેને દ્રૌપદી નામની કન્યા અને ધૃષ્ટદ્યુમ્ન વગેરે પુત્રો હતા.॥ ૨॥

तस्य सोमकस्य पुत्राणां शतं बभूव। तेषां जन्तुर्ज्येष्ठो यवीयान्पृषतः॥ २॥

'**तस्य**' તે સોમકના સો પુત્રો થયા. તેમાં જ્યેષ્ઠ જંતુ અને કનિષ્ઠ પૃષત હતો.॥ ૨॥

धृष्टद्युम्नाद् धृष्टकेतुर्भार्म्याः पञ्चालका इमे।
योऽजमीढसुतो ह्यन्य ऋक्षः संवरणस्ततः॥ ३

ધૃષ્ટદ્યુમ્નથી ધૃષ્ટકેતુ થયો. આ સર્વે ભર્મ્યાશ્વના વંશમાં થયેલા પંચાલ (રાજાઓ) થઈ ગયા. (હવે હસ્તિના પુત્ર) અજમીઢનો જે ઋક્ષ નામનો બીજો પુત્ર હતો તેનાથી સંવરણ થયો.॥ ૩॥

अजमीढस्यैव वंशान्तरमाह—य इति। ततः संवरणात्कुरुः॥ ३॥

અજમીઢનો જ બીજો વંશ કહે છે— '**यः इति।**' તે સંવરણથી કુરુ જન્મ્યો હતો.॥ ૩॥

तपत्यां सूर्यकन्यायां कुरुक्षेत्रपतिः कुरुः।
परीक्षित् सुधनुर्जह्नुर्निषधाश्वः कुरोः सुताः॥ ४
॥ ४॥

તે સંવરણથી સૂર્યકન્યા તપતીમાં કુરુક્ષેત્રના રાજા કુરુનો જન્મ થયો હતો. પરીક્ષિત, સુધનુષ્, જહ્નુ, નિષધાશ્વ– કુરુના પુત્રો હતા.॥ ૪॥ ૪॥

सुहोत्रोऽभूत् सुधनुषश्च्यवनोऽथ ततः कृती।
वसुस्तस्योपरिचरो बृहद्रथमुखास्ततः॥ ५

कुशाम्बमत्स्यप्रत्यग्रचेदिपाद्याश्च चेदिपाः।
बृहद्रथात् कुशाग्रोऽभूदृषभस्तस्य तत्सुतः॥ ६

जज्ञे सत्यहितोऽपत्यं पुष्पवांस्तत्सुतो जहुः।
अन्यस्यां चापि भार्यायां शकले द्वे बृहद्रथात्॥ ७

સુધનુષ્નો સુહોત્ર, પછી સુહોત્રનો ચ્યવન, તેનાથી કૃતિ, તેનો ઉપરિચર વસુ, તેનાથી બૃહદ્રથ જેમાં મુખ્ય છે તેવા કુશામ્બ, મત્સ્ય, પ્રત્યગ્ર, ચેદિપ વગેરે ચેદિદેશના રાજાઓ થયા. બૃહદ્રથથી કુશાગ્ર અને તેનો પુત્ર ઋષભ થયો. તેનો પુષ્પવાન જન્મ્યો, તેનો પુત્ર સત્યહિત અને તેનો પુત્ર જહુ થયો. બૃહદ્રથની બીજી ભાર્યામાં એક જ શરીરના બે ટુકડા જન્મ્યા. ॥ ૫॥ ૬॥ ૭॥

तस्य कृतिनः उपरिचरो वसुः। ततो वसोः बृहद्रथो मुखमादिर्येषाम्॥ ५॥

તે કૃતિનો ઉપરિચર વસુ થયો. તે વસુથી બૃહદ્રથ જેમાં મુખ્ય છે જેમનામાં॥ ૫॥

तानेवाह—**कुशाम्बेति**। तत्सुतः पुष्पवान् जज्ञे। तस्यापत्यं सत्यहित इति योज्यम्॥ ६॥ ७॥

તેમને જ જણાવે છે– '**कुशाम्ब इति**' તેનો (ઋષભનો) પુત્ર પુષ્પવાન થયો અને તેનો પુત્ર સત્યહિત થયો, એમ વાક્ય બનાવવું.॥ ૬॥ ૭॥

ते मात्रा बहिरुत्सृष्टे जरया चाभिसन्धिते।
जीव जीवेति क्रीडन्त्या जरासन्धोऽभवत् सुतः ॥ ८

તે ટુકડાઓને માતા દ્વારા બહાર ફેંકી દેવામાં આવ્યા ત્યારે ક્રીડા કરતી જરા રાક્ષસી દ્વારા 'જીવ, જીવ' એમ કહી સાંધી દેવામાં આવતાં 'જરાસંધ' નામનો પુત્ર થયો.॥ ૮॥

जरया राक्षस्या॥ ८॥

જરા રાક્ષસી દ્વારા॥ ૮॥

ततश्च सहदेवोऽभूत् सोमापिर्यच्छ्रुतश्रवाः।
परीक्षिदनपत्योऽभूत् सुरथो नाम जाह्नवः॥ ९

તેનાથી સહદેવ થયો. સહદેવનો સોમાપિ અને તેનો શ્રુતશ્રવા થયો. (કુરુનો જ્યેષ્ઠ પુત્ર) પરીક્ષિત સંતાનરહિત હતો. (કુરુના ત્રીજા પુત્ર જહ્નુથી) સુરથ નામનો જહ્નુપુત્ર થયો.॥ ૯॥

यद्यस्मात्सोमापेः श्रुतश्रवाः कुरोः पुत्रः परीक्षिदनपत्यः। जाह्नवो जह्नोः पुत्रः॥ ९॥

'यत्' જે સોમાપિથી શ્રુતશ્રવા થયો. કુરુનો પુત્ર પરીક્ષિત સંતાનરહિત હતો. **'जाह्नवः'** જહ્નુનો પુત્ર॥ ૯॥

ततो विदूरथस्तस्मात् सार्वभौमस्ततोऽभवत्।
जयसेनस्तत्तनयो राधिकोऽतोऽयुतो ह्यभूत्॥ १०

તે સુરથનો વિદૂરથ, તેનાથી સાર્વભૌમ, તેનાથી જયસેન, તેનો રાધિક અને આ રાધિકથી અયુત થયો.॥ ૧૦॥

अतो राधिकादयुतोऽभूदित्यर्थः॥ १०॥

'अतः' આ રાધિકથી અયુત જન્મ્યો, એમ અર્થ છે.॥ ૧૦॥

ततश्च क्रोधनस्तस्माद् देवातिथिरमुष्य च।
ऋष्यस्तस्य दिलीपोऽभूत्प्रतीपस्तस्य चात्मजः॥ ११

॥ ११॥

તે અયુતથી ક્રોધન, તેનાથી દેવાતિથિ, આ દેવાતિથિનો ઋષ્ય, તેનો દિલીપ થયો અને તેનો પુત્ર પ્રતીપ થયો.॥ ૧૧॥ ૧૧॥

देवापिः शन्तनुस्तस्य बाह्लीक इति चात्मजाः।
पितृराज्यं परित्यज्य देवापिस्तु वनं गतः॥ १२

તે પ્રતીપના દેવાપિ, શંતનુ અને બાહ્લીક નામના પુત્રો થયા. દેવાપિ તો પિતાનું રાજ્ય ત્યજીને વનમાં ગયો.॥ ૧૨॥

तस्य प्रतीपस्य देवापिशन्तनुबाह्लीकाः॥ १२॥

તે પ્રતીપના દેવાપિ, શંતનુ અને બાહ્લીક થયા.॥ ૧૨॥

अभवच्छन्तनू राजा प्राङ्महाभिषसंज्ञितः।
यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं यौवनमेति सः॥ १३

(દેવાપિ વનમાં ગયા તેથી નાનો ભાઈ) શંતનુ રાજા થયો. પૂર્વજન્મમાં તે મહાભિષ નામવાળો હતો. તે મહાભિષ જે જે વૃદ્ધ મનુષ્યને બંને હાથથી સ્પર્શ કરે તે તે યૌવનને પ્રાપ્ત થતો.॥ ૧૩॥

प्राक् पूर्वजन्मनि महाभिष इति संज्ञा यस्य सः॥ १३॥

'प्राक्' પૂર્વજન્મમાં મહાભિષ નામ હતું જેનું તે શંતનુ॥ ૧૩॥

शान्तिमाप्नोति चैवाग्र्यां कर्मणा तेन शन्तनुः।
समा द्वादश तद्राज्ये न ववर्ष यदा विभुः॥ १४

યદા દેવો ન વવર્ષ તદા શન્તનુસ્તત્ર કારણં બ્રાહ્મણાન્પપ્રચ્છ॥ ૧૪॥

बा.प्र.—शं सुखं तनुते इति शंतनुः।

અને પરમ શાંતિ પ્રાપ્ત કરતો. તે કર્મથી તે શંતનુ કહેવાયો. જ્યારે તેના રાજ્યમાં બાર વર્ષ સુધી વિભુ ઈન્દ્રદેવ વરસ્યા નહીં, (ત્યારે શંતનુએ બ્રાહ્મણોને કારણ પૂછ્યું.)॥ ૧૪॥

જ્યારે વિભુ ઈન્દ્રદેવ વરસ્યા નહીં, ત્યારે શંતનુએ બ્રાહ્મણોને તે માટેનું કારણ પૂછ્યું.॥ ૧૪॥

સુખનો વિસ્તાર કરે તે શંતનુ.

शन्तनुर्ब्राह्मणैरुक्तः परिवेत्तायमग्रभुक्।
राज्यं देह्यग्रजायाशु पुरराष्ट्रविवृद्धये॥ १५

एवमुक्तो द्विजैर्ज्येष्ठं छन्दयामास सोऽब्रवीत्।
तन्मन्त्रिप्रहितैर्विप्रैर्वेदाद्विभ्रंशितो गिरा॥ १६

वेदवादातिवादान् वै तदा देवो ववर्ष ह।
देवापिर्योगमास्थाय कलापग्राममाश्रितः॥ १७

'મોટો ભાઈ હયાત હોય ત્યારે પૃથ્વીને ભોગવનાર એવો તું અગ્રભુક્ (હોવાથી) પરિવેત્તા (મોટાભાઈ કરતાં પહેલાં પરણેલો નાનો ભાઈ) છે, માટે રાજ્ય અને રાષ્ટ્રની ઉન્નતિ માટે મોટાભાઈને રાજ્ય જલદી આપી દે.' બ્રાહ્મણો દ્વારા આ પ્રમાણે જેને કહેવામાં આવ્યું તે શંતનુએ (વનમાં જઈ) મોટાભાઈને રાજ્ય સ્વીકારવા માટે પ્રાર્થના કરી. (પરંતુ) શંતનુના મંત્રી દ્વારા પૂર્વે મોકલાયેલા બ્રાહ્મણો દ્વારા (પાખંડમતના આશ્રય-વાળી) વાણી વડે વેદમાર્ગથી ભ્રષ્ટ થયેલા તે દેવાપિએ વેદની નિંદાનાં વચનો કહ્યાં. (વેદમાર્ગથી વિચલિત થવાને કારણે દેવાપિ રાજ્યાધિકારથી વંચિત થયા) ત્યારે ઈન્દ્રદેવે વર્ષા કરી. અત્યારે પણ યોગમાર્ગમાં સ્થિત થઈને દેવાપિ કલાપગ્રામમાં નિવાસ કરે છે.॥ ૧૫॥ ૧૬॥ ૧૭॥

બ્રાહ્મણૈશ્ચૈવમુક્તઃ—

'દારાગ્નિહોત્રસંયોગં કુરુતે યોઽગ્રજે સ્થિતે।
પરિવેત્તા સ વિજ્ઞેયઃ પરિવિત્તિસ્તુ પૂર્વજઃ॥'

इति स्मृतेर्योऽग्रभुक् भुवमग्रतो भुनक्ति अयं त्वादृशोऽपि परिवेत्तैव भवति। अतस्तद्दोषपरिहाराय

બ્રાહ્મણો દ્વારા આ પ્રમાણે કહેવામાં આવેલો શંતનુ—

'મોટો ભાઈ હયાત હોય ત્યારે (તેને મૂકીને) જે મનુષ્ય દારા અને અગ્નિહોત્રનો સંયોગ કરે છે તે 'પરિવેત્તા' અને મોટો ભાઈ 'પરિવિત્તિ' જાણવા યોગ્ય છે.' (મનુસ્મૃતિ-૩/૧૭૧)

એમ સ્મૃતિ હોવાથી '**अग्रभुक्**' અગ્રજ હોવા છતાં પૃથ્વીને આ (જે) ભોગવે છે તે તારા જેવો પણ પરિવેત્તા જ બને છે. આથી તે દોષ દૂર કરવા માટે મોટાભાઈને રાજ્ય આપી દે. પછી

राज्यमग्रजाय देहि ततो वृष्टिर्भविष्यतीत्येवमुक्तः शन्तनुर्वनं गत्वा ज्येष्ठं छन्दयामास राज्ञः प्रजापालनादिः परो धर्मोऽतस्त्वं राज्यं स्वीकुर्विति प्रार्थितवान्। ततः पूर्वमेव तस्य मन्त्रिणा अश्मराव-संज्ञेन देवापिं पाखण्डीकृत्य राज्यानर्हं कर्तुं ये प्रहिता विप्रास्तैः पाखण्डमताश्रयया गिरा वेदाद्विभ्रंशितः सन्, वेदवादस्यातिवादान्निन्दा-वचनानि सोऽब्रवीत्, ततस्तस्य पातित्येन राज्यानर्हत्वे जाते शन्तनोर्दोषाभावाद्देवो ववर्षेत्यर्थः ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥

વરસાદ પડશે. આમ કહેવામાં આવેલા શંતનુએ વનમાં જઈને મોટાભાઈને 'પ્રજાપાલનાદિ રાજાનો પરમ ધર્મ છે. આથી તમે રાજ્ય સ્વીકારો.' એમ '**छन्दयामास**' પ્રાર્થના કરી. તેની પહેલાં જ તે શંતનુના અશ્મરાવ નામના મંત્રી વડે, દેવાપિને પાખંડી બનાવીને રાજ્યાધિકારને અયોગ્ય બનાવવા માટે જે બ્રાહ્મણો મોકલવામાં આવ્યા, તેમના દ્વારા પાખંડમતના આશ્રયવાળી વાણી વડે વેદમાર્ગથી ભ્રષ્ટ થઈ, વેદવાદની '**अतिवादान्**' નિંદાનાં વચનો તે બોલ્યો. તેથી તેના પતિત થવાથી, તે રાજ્યાધિકારને અયોગ્ય થયો ત્યારે શંતનુનો દોષ દૂર થયો, તેથી ઈન્દ્રદેવે વર્ષા કરી, એમ અર્થ છે. ॥ ૧૫ ॥ ૧૬ ॥ ૧૭ ॥

सोमवंशे कलौ नष्टे कृतादौ स्थापयिष्यति।
बाह्लीकात् सोमदत्तोऽभूद् भूरिर्भूरिश्रवास्ततः ॥ १८

કળિયુગમાં ચંદ્રવંશ નાશ પામશે ત્યારે સત્યયુગના આરંભમાં (તે ચંદ્રવંશની) સ્થાપના કરશે. બાહ્લીકથી સોમદત્ત થયો. તે સોમદત્તથી ભૂરિ, ભૂરિશ્રવા અને શલ (એમ ત્રણ પુત્રો) થયા હતા. ॥ ૧૮ ॥

ततः सोमदत्ताद्भूरिर्भूरिश्रवाः शलश्चेति त्रयः ॥ १८ ॥

'**ततः**' તે સોમદત્તથી ભૂરિ, ભૂરિશ્રવા અને શલ–એમ ત્રણ પુત્રો થયા હતા. ॥ ૧૮ ॥ ૧૯ ॥

शलश्च शन्तनोरासीद् गङ्गायां भीष्म आत्मवान्।
सर्वधर्मविदां श्रेष्ठो महाभागवतः कविः ॥ १९ ॥ १९ ॥
वीरयूथाग्रणीर्येन रामोऽपि युधि तोषितः।
शन्तनोर्दाशकन्यायां जज्ञे चित्राङ्गदः सुतः ॥ २०

શંતનુને ગંગામાં જિતેન્દ્રિય એવા ભીષ્મ થયા હતા. તેઓ ધર્મવેત્તાઓમાં શ્રેષ્ઠ, મહાન ભગવદ્ભક્ત અને વિદ્વાન હતા, શૂરવીરોના સૈન્યના નાયક હતા તથા તેમણે પરશુરામને પણ યુદ્ધમાં સંતુષ્ટ કર્યા હતા. શંતનુથી મત્સ્યકન્યા સત્યવતીમાં ચિત્રાંગદ નામનો પુત્ર ઉત્પન્ન થયો હતો. ॥ ૧૯ ॥ ૨૦ ॥૧૯ ॥

रामो जामदग्न्यः। दाशकन्यायामिति। उपरिचरस्य वसोर्वीर्येण मत्स्यगर्भादुत्पन्ना दाशैः कैवर्तैः पालिताऽतो दाशकन्येति प्रसिद्धायां सत्यवत्याम् ॥ २० ॥

'**रामः**' જમદગ્નિના પુત્ર પરશુરામ– '**दाश-कन्यायाम् इति।**' ઉપરિચર વસુના વીર્યથી મત્સ્યના ગર્ભમાં ઉત્પન્ન થયેલાં અને '**दाशैः**' માછીમારો દ્વારા પાળવામાં આવેલાં, મત્સ્યકન્યા તરીકે પ્રસિદ્ધ થયેલાં સત્યવતીમાં ॥ ૨૦ ॥

विचित्रवीर्यश्चावरजो नाम्ना चित्राङ्गदो हतः।
यस्यां पराशरात् साक्षादवतीर्णो हरेः कला॥ २१

नाम्ना तत्समाननाम्ना चित्राङ्गदेन गन्धर्वेण युद्धे हतः। यस्यां सत्यवत्यां शन्तनुपरिग्रहात्पूर्वमेव ॥ २१ ॥

वेदगुप्तो मुनिः कृष्णो यतोऽहमिदमध्यगाम्।
हित्वा स्वशिष्यान् पैलादीन् भगवान् बादरायणः॥ २२
मह्यं पुत्राय शान्ताय परं गुह्यमिदं जगौ।
विचित्रवीर्योऽथोवाह काशिराजसुते बलात्॥ २३

स्वयंवरादुपानीते अम्बिकाम्बालिके उभे।
तयोरासक्तहृदयो गृहीतो यक्ष्मणा मृतः॥ २४

वेदा गुप्ता येन। यतोऽहं जात इदं भागवतं चाध्यगामधिगतवानस्मि॥ २२॥ २३॥

स्वयंवराद्भीष्मेण बलादुपानीते॥ २४॥

क्षेत्रेऽप्रजस्य वै भ्रातुर्मात्रोक्तो बादरायणः।
धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत्॥ २५

તથા નાનો વિચિત્રવીર્ય થયો હતો. ચિત્રાંગદ તેના સમાન (ચિત્રાંગદ) નામવાળા (ગંધર્વ) દ્વારા (યુદ્ધમાં) હણાયો હતો. (શંતનુના સત્યવતી સાથેના લગ્ન પૂર્વે જ) જે સત્યવતીમાં પરાશર ઋષિથી સાક્ષાત્ શ્રીહરિના અંશરૂપ વેદવ્યાસજી અવતાર પામ્યા હતા.॥ ૨૧॥

‘**नाम्ना**’ ચિત્રાંગદના સમાન નામવાળા ચિત્રાંગદ નામના ગંધર્વ દ્વારા તે યુદ્ધમાં હણાયો હતો. ‘**यस्याम्**’ જે સત્યવતીમાં, શંતનુનાં લગ્ન પૂર્વે જ॥ ૨૧॥

જેમનાથી ઉત્પન્ન થઈ હું આ (ભાગવત)ને પ્રાપ્ત થયો છું તથા જેમના દ્વારા વેદોની રક્ષા કરવામાં આવી તે મુનિ કૃષ્ણદ્વૈપાયન વ્યાસ ભગવાન બાદરાયણે પોતાના પૈલાદિ શિષ્યોને છોડીને શાંત (કામક્રોધાદિથી રહિત) પુત્ર એવા મને અત્યન્ત રહસ્યમય આ (શ્રીમદ્ ભાગવત)નો ઉપદેશ કર્યો.

હવે (શંતનુનો નાનો પુત્ર) વિચિત્રવીર્ય (ભીષ્મ દ્વારા સ્વયંવરમાંથી) બળપૂર્વક લાવવામાં આવેલી કાશિરાજની બે કન્યાઓ અંબિકા અને અંબાલિકાને પરણ્યો. તે બંનેમાં આસક્ત થયેલા હૃદયવાળો વિચિત્રવીર્ય (સંતાનરહિત અવસ્થામાં જ) ક્ષયરોગથી (ઘેરાઈને) મૃત્યુ પામ્યો. ॥ ૨૨॥ ૨૩॥ ૨૪॥

જેમના દ્વારા વેદની રક્ષા કરવામાં આવી તથા જેમનાથી ઉત્પન્ન થઈ હું આ ભાગવતને ‘**अध्यगाम्**’ પ્રાપ્ત થયો છું.॥ ૨૨॥ ૨૩॥

ભીષ્મ દ્વારા સ્વયંવરમાંથી બળપૂર્વક લાવવામાં આવેલી બન્ને કન્યાઓને॥ ૨૪॥

માતા સત્યવતી દ્વારા જેમને આજ્ઞા આપવામાં આવી તે ભગવાન બાદરાયણે સંતાનરહિત ભાઈના ક્ષેત્રમાં (અંબિકાથી) ધૃતરાષ્ટ્ર, (અંબાલિકાથી) પાંડુ અને (દાસીથી) વિદુરને ઉત્પન્ન કર્યા.॥ ૨૫॥

मात्रा सत्यवत्योक्त इति निषेधाभावमाह— 'अपतिरपत्यलिप्सुर्देवराद् गुरुप्रयुक्ता ऋतुमतीयात्' इत्यादिवचनात् ॥ २५ ॥

માતા સત્યવતી દ્વારા આજ્ઞા આપવામાં આવેલા બાદરાયણ વ્યાસ, એમ કહીને નિષેધનો અભાવ કહે છે— 'સંતાનની કામનાવાળી, પતિરહિત તેમ જ વડીલ દ્વારા પ્રવૃત્ત કરવામાં આવી હોય તેવી ઋતુમતી સ્ત્રી દિયર પાસે જાય.' વગેરે વચન કહેવાયું હોવાથી (બીજી સ્ત્રી સાથે સંભોગ કરવાનો નિષેધ નથી. આ માટે શાસ્ત્રના વિરોધની શંકા કરવી જોઈએ નહીં). ॥ ૨૫ ॥

(**इ-इयात्** વિધ્યર્થ પ્ર.પુ. એ.વ.)

गान्धार्यां धृतराष्ट्रस्य जज्ञे पुत्रशतं नृप।
तत्र दुर्योधनो ज्येष्ठो दुःशला चापि कन्यका॥ २६

હે રાજા (પરીક્ષિત), ધૃતરાષ્ટ્રને ગાંધારીમાં સો પુત્રો ઉત્પન્ન થયા હતા, તેમાં દુર્યોધન જ્યેષ્ઠ હતો તથા દુઃશલા નામની કન્યા પણ જન્મી હતી. ॥ ૨૬ ॥

दुःशला नाम कन्या च जज्ञे॥ २६ ॥

દુઃશલા નામની કન્યા પણ જન્મી હતી. ॥ ૨૬ ॥

शापान्मैथुनरुद्धस्य पाण्डोः कुन्त्यां महारथाः।
जाता धर्मानिलेन्द्रेभ्यो युधिष्ठिरमुखास्त्रयः॥ २७

શાપને કારણે મૈથુનકર્મમાં અટકાવવામાં આવેલા પાંડુના, કુંતીમાં ધર્મ, વાયુ અને ઈન્દ્રથી યુધિષ્ઠિર જેમાં મુખ્ય છે તેવા (ભીમ અને અર્જુન– એમ) ત્રણ મહારથીઓ જન્મ્યા. ॥ ૨૭ ॥

अरण्ये मृगशापान्मैथुनेन रुद्धस्य प्रतिबद्धस्य ॥ २७ ॥

વનમાં મૃગના શાપને કારણે મૈથુનકર્મમાં **'रुद्धस्य'** અટકાવવામાં આવેલા (પાંડુના) ॥ ૨૭ ॥

नकुलः सहदेवश्च माद्र्यां नासत्यदस्रयोः।
द्रौपद्यां पञ्च पञ्चभ्यः पुत्रास्ते पितरोऽभवन्॥ २८

તથા માદ્રીમાં અશ્વિનીકુમારોથી નકુળ અને સહદેવ જન્મ્યા હતા. પાંચ પાંડવોથી દ્રૌપદીમાં પાંચ પુત્રો થયા હતા, (જેઓ પુત્રો ઉત્પન્ન કર્યા વિના જ અશ્વત્થામાને હાથે માર્યા ગયા હતા.) તેઓ (હે રાજા પરીક્ષિત,) તમારા કાકાઓ હતા. ॥ ૨૮ ॥

नासत्यदस्राभ्यामश्विनीकुमाराभ्याम्। पञ्चभ्यो युधिष्ठिरादिभ्यः पञ्चाभवन्॥ २८ ॥

'नासत्यदस्राभ्याम्' બંને અશ્વિનીકુમારોથી– **'पञ्चभ्यः'** યુધિષ્ઠિર વગેરે પાંચ પાંડવોથી પાંચ પુત્રો થયા હતા. ॥ ૨૮ ॥

युधिष्ठिरात् प्रतिविन्ध्यः श्रुतसेनो वृकोदरात्।
अर्जुनाच्छ्रुतकीर्तिस्तु शतानीकस्तु नाकुलिः॥ २९

॥ २९ ॥

યુધિષ્ઠિરથી પ્રતિવિન્ધ્ય, ભીમથી શ્રુતસેન, અર્જુનથી શ્રુતકીર્તિ અને નકુળપુત્ર શતાનીક થયો. ॥ ૨૯ ॥ ૨૯ ॥

सहदेवसुतो राजन् श्रुतकर्मा तथापरे।
युधिष्ठिरात् तु पौरव्यां देवकोऽथ घटोत्कचः ॥ ३०

भीमसेनाद्धिडिम्बायां काल्यां सर्वगतस्ततः।
सहदेवात् सुहोत्रं तु विजयाऽसूत पार्वती ॥ ३१

હે રાજા, સહદેવનો પુત્ર શ્રુતકર્મા થયો. યુધિષ્ઠિરની બીજી ભાર્યા પૌરવીમાં દેવક થયો. ભીમસેનથી હિડિમ્બામાં ઘટોત્કચ થયો તેમ જ 'કાલી' નામની (ત્રીજી) પત્નીમાં સર્વગત નામનો પુત્ર થયો. સહદેવથી પર્વતકન્યા વિજયામાં સુહોત્ર થયો. ॥ ૩૦ ॥ ૩૧ ॥

तथापरे भार्यान्तरेषु ॥ ३० ॥

તેમ જ '**अपरे**' બીજી ભાર્યામાં ॥ ૩૦ ॥

काली चान्या भीमस्य भार्या तस्यां ततो भीमसेनात्सर्वगतो नाम पुत्रोऽभवदित्यर्थः ॥ ३१ ॥

કાલી, ભીમસેનની અન્ય ભાર્યા, તેનામાં '**ततः**' તે ભીમસેનથી સર્વગત નામનો પુત્ર થયો, એમ અર્થ છે. ॥ ૩૧ ॥

करेणुमत्यां नकुलो निरमित्रं तथार्जुनः।
इरावन्तमुलूप्यां वै सुतायां बभ्रुवाहनम्।
मणिपूरपतेः सोऽपि तत्पुत्रः पुत्रिकासुतः ॥ ३२

નકુળે કરેણુમતીમાં નિરમિત્ર તથા અર્જુને ઉલૂપીમાં ઈરાવાન ઉત્પન્ન કર્યો હતો તથા મણિપુરના રાજાની પુત્રીમાં બભ્રુવાહન ઉત્પન્ન કર્યો હતો, પરંતુ તે (તેની માતા ચિત્રાંગદાના પિતાનો) પુત્રિકાસુત ગણાતો હતો. ॥ ૩૨ ॥

उलूप्यां नागकन्यायाम्। मणिपूरपतेः सुतायां पुत्रिकाधर्मेण दत्तायां बभ्रुवाहनमसूत। अतस्तत्पुत्रः सन्नपि स पुत्रिकासुतः मातामहसुत इत्यर्थः ॥ ३२ ॥

ઉલૂપી નામની નાગકન્યામાં– મણિપુરના રાજાની પુત્રીમાં પુત્રિકાધર્મથી અપાયેલો બભ્રુવાહન જન્મ્યો હતો. આથી તે અર્જુનનો પુત્ર હોવા છતાં પણ '**पुत्रिकासुतः**' માતાના પિતાનો પુત્ર ગણાતો હતો, એમ અર્થ છે. ॥ ૩૨ ॥

तव तातः सुभद्रायामभिमन्युरजायत।
सर्वातिरथजिद् वीर उत्तरायां ततो भवान् ॥ ३३

॥ ३३ ॥

(હે પરીક્ષિત,) તમારા પિતા, સર્વ અતિરથીઓને જીતી લેનાર વીર અભિમન્યુ (અર્જુનની) સુભદ્રા નામની પત્નીમાં જન્મ્યા હતા અને તેમનાથી (અભિમન્યુથી) ઉત્તરામાં આપશ્રી જન્મ્યા છો. ॥ ૩૩ ॥ ૩૩ ॥

परिक्षीणेषु कुरुषु द्रौणेर्ब्रह्मास्त्रतेजसा।
त्वं च कृष्णानुभावेन सजीवो मोचितोऽन्तकात् ॥ ३४

॥ ३४ ॥

(દુર્યોધનાદિ) કૌરવો નાશ પામ્યા ત્યારે દ્રોણપુત્ર અશ્વત્થામાના બ્રહ્માસ્ત્રના તેજથી (બળી ગયેલા) તમે પણ કૃષ્ણના પ્રભાવને કારણે મૃત્યુથી જીવતા બચ્યા છો. ॥ ૩૪ ॥ ૩૪ ॥

तवेमे तनयास्तात जनमेजयपूर्वकाः।
श्रुतसेनो भीमसेन उग्रसेनश्च वीर्यवान्॥ ३५

॥ ३५ ॥

હે પુત્ર, જેમનામાં જનમેજય પ્રથમ છે તેવા તમારા આ પુત્રો શ્રુતસેન, ભીમસેન અને ઉગ્રસેન પરાક્રમી પુત્રો છે.॥ ૩૫ ॥ ૩૫ ॥

जनमेजयस्त्वां विदित्वा तक्षकान्निधनं गतम्।
सर्पान् वै सर्पयागाग्नौ स होष्यति रुषान्वितः॥ ३६

॥ ३६ ॥

આપને તક્ષક નાગથી મૃત્યુ પામેલા જાણીને ક્રોધે ભરાયેલો જનમેજય સર્પયજ્ઞના અગ્નિમાં સર્પોનું જ હવન કરશે.॥ ૩૬ ॥ ૩૬ ॥

कावषेयं पुरोधाय तुरं तुरगमेधयाट्।
समन्तात् पृथिवीं सर्वां जित्वा यक्ष्यति चाध्वरैः॥ ३७

તેમજ કવષપુત્ર તુરને પુરોહિત બનાવીને, સંપૂર્ણ પૃથ્વીને સર્વ તરફથી જીતી લઈને અશ્વમેધ યજ્ઞો વડે (ભગવાન શ્રીહરિની) આરાધના કરશે. ॥ ૩૭ ॥

तुरसंज्ञं पुरोहितं कृत्वा॥ ३७॥

‘તુર’ નામનો પુરોહિત બનાવીને॥ ૩૭॥

भविष्यानाह—**तस्य पुत्र इति** यावत्समाप्ति।

ભવિષ્યમાં થનારા રાજાઓને અધ્યાય સમાપ્ત થાય ત્યાં સુધી વર્ણવે છે— ‘**तस्य पुत्रः इति।**’

तस्य पुत्रः शतानीको याज्ञवल्क्यात् त्रयीं पठन्।
अस्त्रज्ञानं क्रियाज्ञानं शौनकात् परमेष्यति॥ ३८

તે (જનમેજય)નો પુત્ર શતાનીક યાજ્ઞવલ્ક્ય પાસેથી ત્રણ વેદોનું અધ્યયન કરતાં ક્રિયાજ્ઞાન, શૌનક પાસેથી આત્મજ્ઞાન અને કૃપાચાર્ય પાસેથી અસ્ત્રજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરશે.॥ ૩૮ ॥

याज्ञवल्क्यात्क्रियाज्ञानं परं चात्मानं शौनकात्प्राप्स्यत्यस्त्रज्ञानं च कृपाचार्यादिति द्रष्टव्यम्। याज्ञवल्क्यात् त्रयीमधीत्य कृपाद-स्त्राण्यवाप्येति वैष्णवोक्तेः। क्वचित्तु—‘अस्त्रज्ञानं कृपाचार्यात्’ इत्येव पाठः॥ ३८॥

યાજ્ઞવલ્ક્ય પાસેથી ક્રિયાજ્ઞાન અને ‘**परम्**’ આત્માનું જ્ઞાન શૌનક પાસેથી તથા અસ્ત્રજ્ઞાન કૃપાચાર્ય પાસેથી પ્રાપ્ત કરશે, એમ સમજવું. યાજ્ઞવલ્ક્ય પાસેથી વેદત્રયીનું અધ્યયન કરીને કૃપાચાર્ય પાસેથી અસ્ત્રજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરીને– એમ વિષ્ણુપુરાણમાં કહેવાયું છે. ક્યાંક તો, અસ્ત્રજ્ઞાન કૃપાચાર્ય પાસેથી, એમ જ પાઠ છે. ॥ ૩૮ ॥

सहस्त्रानीकस्तत्पुत्रस्ततश्चैवाश्वमेधजः।
असीमकृष्णस्तस्यापि नेमिचक्रस्तु तत्सुतः॥ ३९

॥ ३९ ॥

તે શતાનીકનો પુત્ર સહસ્રાનીક તથા તેનાથી અશ્વમેધજ, તેનો પણ અસીમકૃષ્ણ અને તેનો પુત્ર નેમિચક્ર થશે.॥ ૩૯ ॥ ૩૯ ॥

गजाह्वये हृते नद्या कौशाम्ब्यां साधु वत्स्यति।
उक्तस्ततश्चित्ररथस्तस्मात् कविरथः सुतः॥ ४०

॥ ४० ॥

જ્યારે હસ્તિનાપુર નદીમાં તણાઈ જશે ત્યારે (નેમિચક્ર) કૌશામ્બી પુરીમાં સુખપૂર્વક નિવાસ કરશે. તેનો (નેમિચક્રનો) પુત્ર ઉક્ત, તેનો ચિત્રરથ, તેનાથી કવિરથ નામનો પુત્ર થશે.॥ ૪૦ ॥ ૪૦ ॥

तस्माच्च वृष्टिमांस्तस्य सुषेणोऽथ महीपतिः ।
सुनीथस्तस्य भविता नृचक्षुर्यत् सुखीनलः ॥ ४१

यद्यस्मात्सुखीनलः पुत्रः ॥ ४१ ॥

તેનાથી વૃષ્ટિમાન, તેનો સુષેણ પૃથ્વીપતિ થશે. તેનો પુત્ર સુનીથ, તેનો નૃચક્ષુ, જેનાથી સુખીનલ પુત્ર થશે. ॥ ૪૧ ॥

'**यत्**' જેનાથી સુખીનલ પુત્ર ॥ ૪૧ ॥

परिप्लवः सुतस्तस्मान्मेधावी सुनयात्मजः ।
नृपञ्जयस्ततो दूर्वस्तिमिस्तस्माज्जनिष्यति ॥ ४२

तस्मात्परिप्लवात्सुनयस्तस्यात्मजो मेधावीत्यर्थः ॥ ४२ ॥

(તે સુખીનલથી) પરિપ્લવ, તેનાથી મેધાવી જેનો પુત્ર છે તે સુનય, (સુનયના પુત્ર મેધાવીથી) નૃપંજય, તેનો દૂર્વ, તેનાથી તિમિ જન્મશે. ॥ ૪૨ ॥

તેનાથી (પરિપ્લવથી) સુનય, તે (સુનય)નો પુત્ર મેધાવી, એમ અર્થ છે. ॥ ૪૨ ॥

तिमेर्बृहद्रथस्तस्माच्छतानीकः सुदासजः ।
शतानीकाद्‌दुर्दमनस्तस्यापत्यं बहीनरः ॥ ४३

तस्मात्सुदासस्ततः शतानीक इत्यर्थः ॥ ४३ ॥

તિમિથી બૃહદ્રથ, તેનાથી સુદાસથી જન્મેલો શતાનીક, શતાનીકથી દુર્દમન તથા તેનો પુત્ર બહીનર થશે. ॥ ૪૩ ॥

તે બૃહદ્રથથી સુદાસ, તેનો શતાનીક, એમ અર્થ છે. ॥ ૪૩ ॥

दण्डपाणिर्निमिस्तस्य क्षेमको भविता नृपः ।
ब्रह्मक्षत्रस्य वै प्रोक्तो वंशो देवर्षिसत्कृतः ॥ ४४

॥ ४४ ॥

(બહીનરનો) દંડપાણિ, તેનો નિમિ અને તેનો પુત્ર ક્ષેમક રાજા થશે. બ્રાહ્મણ અને ક્ષત્રિયકુળના કારણરૂપ તથા દેવો અને ઋષિઓ દ્વારા સત્કાર પામેલો (આ) વંશ કહેવામાં આવ્યો. ॥ ૪૪ ॥ ૪૪ ॥

क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ।
अथ मागधराजानो भवितारो वदामि ते ॥ ४५

॥ ४५ ॥

રાજા ક્ષેમકને પ્રાપ્ત કરીને (આ વંશ) કળિયુગમાં નાશ પામશે. હવે પછી થનારા મગધવંશી રાજાઓ તમને કહું છું. ॥ ૪૫ ॥ ૪૫ ॥

भविता सहदेवस्य मार्जारिर्यच्छ्रुतश्रवाः ।
ततोऽयुतायुस्तस्यापि निरमित्रोऽथ तत्सुतः ॥ ४६

बृहद्रथस्य जरासन्धस्तस्य सहदेवस्तस्य मार्जारिः । यस्मान्मार्जरिः श्रुतश्रवाः ॥ ४६ ॥

(જરાસંધના પુત્ર) સહદેવનો પુત્ર માર્જારિ, જેનાથી શ્રુતશ્રવા, તેનાથી અયુતાયુ તથા તેનો પુત્ર નિરમિત્ર થશે. ॥ ૪૬ ॥

બૃહદ્રથનો પુત્ર જરાસંધ, તેનો સહદેવ, તેનો માર્જારિ, જે માર્જારિથી શ્રુતશ્રવા થશે. ॥ ૪૬ ॥

सुनक्षत्रः सुनक्षत्राद्‌ बृहत्सेनोऽथ कर्मजित् ।
ततः सृतञ्जयाद् विप्रः शुचिस्तस्य भविष्यति ॥ ४७

॥ ४७ ॥

(નિરમિત્રનો) સુનક્ષત્ર, સુનક્ષત્રથી બૃહત્સેન, પછી કર્મજિત્, તેનાથી સૃતંજય અને તેનાથી વિપ્ર તથા તેનો શુચિ થશે. ॥ ૪૭ ॥ ૪૭ ॥

क्षेमोऽथ सुव्रतस्तस्माद् धर्मसूत्रः शमस्ततः।
द्युमत्सेनोऽथ सुमतिः सुबलो जनिता ततः॥ ४८ ॥

(શુચિનો) ક્ષેમ, પછી સુવ્રત, તેનાથી ધર્મસૂત્ર, તેનાથી શમ, પછી દ્યુમત્સેન, તેનો સુમતિ અને તેનાથી સુબલ જન્મશે.॥ ૪૮॥ ૪૮॥

सुनीथः सत्यजिदथ विश्वजिद् यद् रिपुञ्जयः।
बार्हद्रथाश्च भूपाला भाव्याः साहस्रवत्सरम्॥ ४९ ॥

સુબલનો સુનીથ, પછી સત્યજિત્, પછી વિશ્વજિત્, જેનાથી રિપુંજય થશે. બૃહદ્રથના વંશમાં થનારા રાજાઓ હજાર વર્ષ સુધી રહેશે.॥ ૪૯॥

सहस्रसंवत्सरमेते भाव्या भूपालास्ततः परं भाव्यान् द्वादशस्कन्धे वक्ष्यति॥ ४९॥

હજાર વર્ષ સુધી આ રાજાઓ થશે. તે પછી થનારા રાજાઓનું વર્ણન બારમા સ્કંધમાં કરશે. ॥ ૪૯॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

*****

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

અનુ, દ્રુહ્યુ, તુર્વસુ અને યદુના વંશનું વર્ણન

त्रयोविंशे त्वनोर्द्रूह्योस्तुर्वसोश्चान्वयः क्रमात्।
यदोश्च वंशोऽनुक्रान्तो यावज्ज्यामघसंभवः॥ १॥

(યયાતિના પાંચ પુત્રોમાંથી પૂરુનો વંશ કહેવામાં આવ્યો. હવે) ત્રેવીસમા અધ્યાયમાં અનુ, દ્રુહ્યુ, તુર્વસુનો વંશ ક્રમથી (કહેવાશે) તથા જ્યામઘની ઉત્પત્તિ સુધી યદુનો વંશ ગયો છે.॥ ૧॥

तदेवं ययातेः पुत्राणां पञ्चमस्य पूरोर्वंशो-ऽनुक्रान्तः, इदानीं चतुर्थस्य वंशमनुक्रामति— **अनोरिति** कर्णस्य जगतीपतेरित्यन्तेन।

તો આમ યયાતિના પુત્રોમાંના પાંચમા પુત્ર પૂરુનો વંશ કહેવાયો. હવે ચોથા પુત્ર અનુનો વંશ કહેવાય છે— **'अनोः इति।'** **'कर्णस्य जगतीपतेः'** (શ્લોક-૧૪) સુધી

श्रीशुक उवाच

अनोः सभानरश्चक्षुः परोक्षश्च त्रयः सुताः।
सभानरात् कालनरः सृञ्जयस्तत्सुतस्ततः॥ १ ॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — (યયાતિના ચોથા પુત્ર) અનુના સભાનર, ચક્ષુ અને પરોક્ષ નામના ત્રણ પુત્રો થયા. સભાનરથી કાલનર અને તેનો પુત્ર સૃંજય થયો.॥ ૧॥

जनमेजयस्तस्य पुत्रो महाशीलो महामनाः।
उशीनरस्तितिक्षुश्च महामनस आत्मजौ॥ २

(તે સૃંજયથી) જનમેજય, તેનો પુત્ર મહાશીલ, તેનો મહામના થયો. મહામનાના ઉશીનર અને તિતિક્ષુ– એમ બે પુત્રો થયા.॥ ૨॥

तस्य जनमेजयस्य महाशीलस्तस्य महामना: ॥ २ ॥

शिबिर्वनः शमिर्दक्षश्चत्वारोशीनरात्मजाः ।
वृषादर्भः सुवीरश्च मद्रः कैकेय आत्मजाः ॥ ३
शिबेश्चत्वार एवासंस्तितिक्षोश्च रुशद्रथः ।
ततो हेमोऽथ सुतपा बलिः सुतपसोऽभवत् ॥ ४

चत्वार उशीनरात्मजाः । सन्धिरार्षः ॥ ३ ॥ ४ ॥

अङ्गवङ्गकलिङ्गाद्याः सुह्मपुण्ड्रान्ध्रसंज्ञिताः ।
जज्ञिरे दीर्घतमसो बलेः क्षेत्रे महीक्षितः ॥ ५

॥ ५ ॥

चक्रुः स्वनाम्ना विषयान् षडिमान् प्राच्यकांश्च ते ।
खनपानोऽङ्गतो जज्ञे तस्माद् दिविरथस्ततः ॥

॥ ६ ॥ ६ ॥

सुतो धर्मरथो यस्य जज्ञे चित्ररथोऽप्रजाः ।
रोमपाद इति ख्यातस्तस्मै दशरथः सखा ॥ ७

शान्तां स्वकन्यां प्रायच्छदृष्यशृङ्ग उवाह ताम् ।
देवेऽवर्षति यं रामा आनिन्युर्हरिणीसुतम् ॥ ८

नाट्यसङ्गीतवादित्रैर्विभ्रमालिङ्गनार्हणैः ।
स तु राज्ञोऽनपत्यस्य निरूप्येष्टिं मरुत्वतः ॥ ९

प्रजामदाद् दशरथो येन लेभेऽप्रजाः प्रजाः ।
चतुरङ्गो रोमपादात् पृथुलाक्षस्तु तत्सुतः ॥ १०

॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥

'तस्य' તે જનમેજયનો મહાશીલ, તેનો મહામના ॥ ૨ ॥

ઉશીનરના શિબિ, વન, શમિ અને દક્ષ– એમ ચાર પુત્રો થયા. (તેમાંથી) શિબિના પણ વૃષાદર્ભ, સુવીર, મદ્ર અને કૈકેય– એમ ચાર જ થયા. તિતિક્ષુનો રુશદ્રથ, તેનાથી હેમ, પછી સુતપા અને સુતપાનો બલિ થયો. ॥ ૩ ॥ ૪ ॥

ચાર ઉશીનરપુત્રો **उशीनरः+आत्मजाः** ની સંધિ **उशीनरआत्मजाः** થાય, તેને બદલે **उशीनरात्मजाः** છે, તે આર્ષ છે. ॥ ૩ ॥ ૪ ॥

પૃથ્વીપતિ બલિની ભાર્યામાં (ઉતથ્યના પુત્ર) દીર્ઘતમસ્ (ઋષિ)થી અંગ, વંગ, કલિંગ, સુહ્મ, પુંડ્ર અને અંધ્ર નામના પુત્રો થયા. ॥ ૫ ॥ ૫ ॥

તે આ છ પુત્રોએ (ભરતખંડની) પૂર્વ દિશામાં પોતપોતાના નામથી દેશો વસાવ્યા. (તેમાંના) અંગથી ખનપાન જન્મ્યો અને તેનાથી દિવિરથ થયો. ॥ ૬ ॥ ૬ ॥

(તે દિવિરથથી) ધર્મરથ થયો, જેનો ચિત્રરથ થયો. સંતાનરહિત ચિત્રરથ રોમપાદ નામે પ્રખ્યાત હતો. (તેના) મિત્ર રાજા દશરથે પોતાની કન્યા શાન્તા તે (રોમપાદ)ને (દત્તકપુત્રી તરીકે) આપી હતી. તેને ઋષ્યશૃંગ ઋષિ પરણ્યા હતા, (રોમપાદના રાજ્યમાં) વરસાદ વરસ્યો નહીં ત્યારે ગણિકાઓ જેમને પોતાના નૃત્ય, સંગીત, વાદ્ય, હાવ-ભાવ, આલિંગન અને ઉપહારોથી (મોહિત કરીને રોમપાદના નગરમાં) લાવી હતી. અને તેમણે સંતાનહીન રાજા માટે ઈન્દ્રની ઈષ્ટિ કરીને (રોમપાદને) પ્રજા આપી હતી. જેનાથી પ્રજારહિત એવા રાજા દશરથ પણ પ્રજા પામ્યા હતા. રોમપાદથી ચતુરંગ થયો. તેનો પુત્ર પૃથુલાક્ષ થયો. ॥ ૭ ॥ ૮ ॥ ૯ ॥ ૧૦ ॥ ૭ ॥ ૮ ॥ ૯ ॥ ૧૦ ॥

बृहद्रथो बृहत्कर्मा बृहद्भानुश्च तत्सुताः।
आद्याद् बृहन्मनास्तस्माज्जयद्रथ उदाहृतः॥ ११
॥ ११ ॥

તે (પૃથુલાક્ષ)ના બૃહદ્રથ, બૃહત્કર્મા અને બૃહદ્ભાનુ– એમ (ત્રણ) પુત્રો થયા. તેમાં પ્રથમ બૃહદ્રથનો બૃહન્મના, તેનાથી થયેલો પુત્ર જયદ્રથ કહેવાયો.॥ ૧૧ ॥ ૧૧ ॥

विजयस्तस्य सम्भूत्यां ततो धृतिरजायत।
ततो धृतव्रतस्तस्य सत्कर्माधिरथस्ततः॥ १२
॥ १२ ॥

તે (જયદ્રથ)નો સંભૂતિમાં વિજય નામનો પુત્ર થયો. તેનાથી ધૃતિ જન્મ્યો. તેનાથી ધૃતવ્રત, તેનાથી સત્કર્મા અને તેનાથી અધિરથ થયો. ॥ ૧૨ ॥ ૧૨ ॥

योऽसौ गङ्गातटे क्रीडन् मञ्जूषान्तर्गतं शिशुम्।
कुन्त्यापविद्धं कानीनमनपत्योऽकरोत् सुतम्॥ १३
॥ १३ ॥

ગંગાકિનારે ક્રીડા કરતો જે અધિરથ હતો તેણે, (કુંતીની) કન્યાવસ્થામાં જન્મેલા અને કુંતી દ્વારા પરિત્યાગ કરવામાં આવેલા, પેટીની અંદર રહેલા શિશુને (પ્રાપ્ત કરીને), પોતે સંતાનરહિત હોઈ પુત્ર તરીકે સ્વીકાર્યો હતો.॥ ૧૩ ॥ ૧૩ ॥

वृषसेनः सुतस्तस्य कर्णस्य जगतीपतेः।
द्रुह्योश्च तनयो बभ्रुः सेतुस्तस्यात्मजस्ततः॥ १४

आरब्धस्तस्य गान्धारस्तस्य धर्मस्ततो धृतः।
धृतस्य दुर्मनास्तस्मात् प्रचेताः प्राचेतसं शतम्॥ १५

म्लेच्छाधिपतयोऽभूवन्नुदीचीं दिशमाश्रिताः।
तुर्वसोश्च सुतो वह्निर्वह्नेर्भर्गोऽथ भानुमान्॥ १६

त्रिभानुस्तत्सुतोऽस्यापि करन्धम उदारधीः।
मरुतस्तत्सुतोऽपुत्रः पुत्रं पौरवमन्वभूत्॥ १७

दुष्यन्तः स पुनर्भेजे स्वं वंशं राज्यकामुकः।
ययातेर्ज्येष्ठपुत्रस्य यदोर्वंशं नरर्षभ॥ १८

वर्णयामि महापुण्यं सर्वपापहरं नृणाम्।
यदोर्वंशं नरः श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ १९
॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥

જગત્પતિ એવા તે કર્ણનો પુત્ર વૃષસેન થયો. (હવે યયાતિના ત્રીજા પુત્ર) દ્રુહ્યુનો પુત્ર બભ્રુ, તેનો પુત્ર સેતુ, તેનાથી આરબ્ધ, તેને ગાંધાર, તેનો ધર્મ, તેનાથી ધૃત થયો. ધૃતનો દુર્મના, તેનાથી પ્રચેતા અને પ્રચેતાના સો પુત્રો ઉત્તર દિશામાં રહેનારા, મ્લેચ્છોના રાજાઓ થયા. (હવે યયાતિના ચોથા પુત્ર) તુર્વસુનો પુત્ર વહ્નિ, વહ્નિનો ભર્ગ, પછી ભાનુમાન, તેનો પુત્ર ત્રિભાનુ થયો. આ ત્રિભાનુનો ઉદારબુદ્ધિવાળો કરંધમ થયો. તેનો પુત્ર મરુત અપુત્ર હતો. તેણે પુરુવંશી (દુષ્યંત)ને પુત્ર તરીકે સ્વીકાર્યો હતો. (પરંતુ) રાજ્યની કામનાવાળો દુષ્યંત ફરી પાછો પોતાના વંશમાં જ પાછો ફર્યો હતો. (કારણ કે રાજ્યાસનનો અધિકાર પૂરુવંશીઓને જ હતો.) હે નરશ્રેષ્ઠ પરીક્ષિત, યયાતિના જ્યેષ્ઠ પુત્ર યદુનો વંશ (હવે હું) વર્ણવું છું. મનુષ્યોના સર્વ પાપને હરનારો યદુવંશ સાંભળીને મનુષ્ય સર્વ પાપોથી છૂટી જાય છે. ॥ ૧૪ ॥ ૧૫ ॥ ૧૬ ॥ ૧૭ ॥ ૧૮ ॥ ૧૯ ॥ ૧૪ ॥ ૧૫ ॥ ૧૬ ॥ ૧૭ ॥

स दुष्यन्तः स्वं वंशं पौरवं वंशम्॥ १८॥ १९॥

यत्रावतीर्णो भगवान् परमात्मा नराकृतिः।
यदोः सहस्रजित्क्रोष्टा नलो रिपुरिति श्रुताः॥ २०
॥ २०॥

चत्वारः सूनवस्तत्र शतजित् प्रथमात्मजः।
महाहयो वेणुहयो हैहयश्चेति तत्सुताः॥ २१

प्रथमस्य सहस्रजित आत्मजः॥ २१॥

धर्मस्तु हैहयसुतो नेत्रः कुन्तेः पिता ततः।
सोहञ्जिरभवत् कुन्तेर्महिष्मान् भद्रसेनकः॥ २२

कुन्तेः सोहञ्जिः, सोहञ्जेर्महिष्मान्, महिष्मतो भद्रसेनकः॥ २२॥

बा.प्र.—स्वार्थे कः।

दुर्मदो भद्रसेनस्य धनकः कृतवीर्यसूः।
कृताग्निः कृतवर्मा च कृतौजा धनकात्मजाः॥ २३

भद्रसेनस्य दुर्मदो धनकश्चेति द्वौ पुत्रौ। कृतवीर्यस्य जनकः। कृतवीर्यादयश्चत्वारो धनकस्यात्मजा इत्यर्थः॥ २३॥

अर्जुनः कृतवीर्यस्य सप्तद्वीपेश्वरोऽभवत्।
दत्तात्रेयाद्धरेरंशात् प्राप्तयोगमहागुणः॥ २४
॥ २४॥

न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः।
यज्ञदानतपोयोगश्रुतवीर्यजयादिभिः ॥ २५
॥ २५॥

તે દુષ્યંત **'स्वं वंशम्'** પોતાના પુરુવંશમાં ॥ ૧૮ ॥ ૧૯ ॥

જે (યદુના) વંશમાં ભગવાન પરબ્રહ્મ શ્રીકૃષ્ણે મનુષ્યરૂપમાં અવતાર ગ્રહણ કર્યો હતો. યદુના સહસ્રજિત્, ક્રોષ્ટા, નળ અને રિપુ– એમ ચાર પ્રસિદ્ધ પુત્રો હતા. તેમાં પ્રથમ પુત્ર સહસ્રજિત્નો પુત્ર શતજિત્ હતો. તેના મહાહય, વેણુહય અને હૈહય– એમ (ત્રણ) પુત્રો હતા. ॥ ૨૦ ॥ ૨૧ ॥ ૨૦ ॥

'प्रथमस्य' પ્રથમ પુત્ર સહસ્રજિત્નો પુત્ર ॥ ૨૧ ॥

હૈહયનો પુત્ર ધર્મ, (ધર્મનો પુત્ર) નેત્ર કુંતિનો પિતા હતો. તે કુંતિથી સોહંજિ થયો. તેનો મહિષ્માન અને તેનો ભદ્રસેન થયો. ॥ ૨૨ ॥

કુંતિનો સોહંજિ, સોહંજિનો મહિષ્માન અને મહિષ્માનનો ભદ્રસેનક થયો. ॥ ૨૨ ॥

'ભદ્રસેનક' માં ક પોતાના અર્થમાં છે (અર્થાત્ ભદ્રસેન).

ભદ્રસેનના દુર્મદ અને ધનક થયા. ધનક કૃતવીર્યનો જનક હતો. કૃતવીર્ય, કૃતાગ્નિ, કૃતવર્મા અને કૃતૌજા– એમ ચાર ધનકપુત્રો થયા. ॥ ૨૩ ॥

ભદ્રસેનના દુર્મદ અને ધનક, એમ બે પુત્રો થયા. **(कृतवीर्यसूः)** કૃતવીર્યનો જન્મદાતા જનક. કૃતવીર્ય વગેરે ચાર ધનકના પુત્રો થયા, એમ અર્થ છે. ॥ ૨૩ ॥

કૃતવીર્યનો પુત્ર અર્જુન સાત દ્વીપોનો પતિ હતો. શ્રીહરિના અંશરૂપ દત્તાત્રેય પાસેથી તે યમાદિ અષ્ટાંગયોગની અણિમાદિ સિદ્ધિઓરૂપ મહાન ઉત્કર્ષને પ્રાપ્ત થયો હતો. ॥ ૨૪ ॥ ૨૪ ॥

યજ્ઞ, દાન, તપ, યોગ, શાસ્ત્રાભ્યાસ, પરાક્રમ તથા વિજય વગેરેમાં પૃથ્વી પરના રાજાઓ કાર્તવીર્ય(અર્જુન)ના સામ્યને ખરેખર નહીં પામી શકે. ॥ ૨૫ ॥ ૨૫ ॥

पञ्चाशीतिसहस्राणि ह्यव्याहतबलः समाः।
अनष्टवित्तस्मरणो बुभुजेऽक्षय्यषड्वसु॥ २६

જેનાથી ધનનો નાશ ન થાય તેવું જેનું સ્મરણ છે તે અક્ષુણ્ણ બળવાળા અર્જુને પંચ્યાશીહજાર વર્ષો સુધી છ ઇન્દ્રિયોના અખૂટ વિષયભોગ ભોગવ્યા હતા.॥ ૨૬॥

अनष्टमविनाशं वित्तं येन तथाविधं स्मरणं यस्य सः। अक्षय्यं षड्वसु षडिन्द्रियविषयं बुभुजे॥ २६॥

'अनष्टम्' જેનાથી ધનનો વિનાશ ન થાય તેવા પ્રકારનું સ્મરણ છે જેનું તે અર્જુને **'षड्वसु'** છ ઇન્દ્રિયોના અખૂટ વિષયભોગ ભોગવ્યા હતા.॥ ૨૬॥

तस्य पुत्रसहस्रेषु पञ्चैवोर्वरिता मृधे।
जयध्वजः शूरसेनो वृषभो मधुरूर्जितः॥ २७
॥ २७॥

તેના હજાર પુત્રોમાંના જયધ્વજ, શૂરસેન, વૃષભ, મધુ અને ઊર્જિત– એમ પાંચ જ પુત્રો (પરશુરામ સાથેના) યુદ્ધમાં બચ્યા હતા. ॥ ૨૭॥ ૨૭॥

जयध्वजात् तालजङ्घस्तस्य पुत्रशतं त्वभूत्।
क्षत्रं यत् तालजङ्घाख्यमौर्वतेजोपसंहृतम्॥ २८

જયધ્વજથી તાલજંઘ થયો. તેના સો પુત્રો થયા જેઓ તાલજંઘ નામના ક્ષત્રિયો હતા. ઔર્વ ઋષિના તેજથી તેઓ (સગર દ્વારા) નષ્ટ કરવામાં આવ્યા હતા.॥ ૨૮॥

और्वस्य तेजसा सगरेणोपसंहृतमित्यर्थः ॥ २८॥

ઔર્વ ઋષિના તેજથી તેઓ સગર દ્વારા નષ્ટ કરવામાં આવ્યા હતા.॥ ૨૮॥

तेषां ज्येष्ठो वीतिहोत्रो वृष्णिः पुत्रो मधोः स्मृतः।
तस्य पुत्रशतं त्वासीद् वृष्णिज्येष्ठं यतः कुलम्॥ २९

તે (તાલજંઘના પુત્રો)માં વીતિહોત્ર જ્યેષ્ઠ હતો. (સહસ્રાર્જુન અર્થાત્ કાર્તવીર્યના પુત્ર) મધુનો પુત્ર વૃષ્ણિ હતો. વૃષ્ણિ જેમાં જ્યેષ્ઠ હતો તેવા સો પુત્રો તેને થયા હતા, કે જે વૃષ્ણિના નામથી વૃષ્ણિકુળ ચાલુ થયું હતું.॥ ૨૯॥

तेषां तालजंघपुत्राणां ज्येष्ठः। तस्य मधोः पुत्रशतम्। वृष्णिर्ज्येष्ठो यस्मिन्। यतो मधोर्वृष्णेर्यदोश्च हेतोरिदं कुलम्॥ २९॥

'तेषाम्' તે તાલજંઘના પુત્રોમાં (વીતિહોત્ર) જ્યેષ્ઠ હતો. તેમાં મધુના સો પુત્રો હતા, જેમાં વૃષ્ણિ જ્યેષ્ઠ હતો. જે વૃષ્ણિ અને યદુને કારણે આ કુળ વિખ્યાત થયું હતું.॥ ૨૯॥

माधवा वृष्णयो राजन् यादवाश्चेति संज्ञिताः।
यदुपुत्रस्य च क्रोष्टोः पुत्रो वृजिनवांस्ततः॥ ३०
॥ ३०॥

હે રાજા પરીક્ષિત, (મધુથી) માધવો, (વૃષ્ણિથી) વૃષ્ણિઓ (અથવા વાર્ષ્ણેયો) અને (યદુથી) યાદવો કહેવાયા. યદુપુત્ર ક્રોષ્ટુનો પુત્ર વૃજિનવાન થયો.॥ ૩૦॥ ૩૦॥

श्वाहिस्ततो रुशेकुर्वै तस्य चित्ररथस्ततः।
शशबिन्दुर्महायोगी महाभोजो महानभूत्॥ ३१
॥ ३१ ॥

चतुर्दशमहारत्नश्चक्रवर्त्यपराजितः ।
तस्य पत्नीसहस्राणां दशानां सुमहायशाः॥ ३२

दशलक्षसहस्राणि पुत्राणां तास्वजीजनत्।
तेषां तु षट्प्रधानानां पृथुश्रवस आत्मजः॥ ३३

धर्मो नामोशना तस्य हयमेधशतस्य याट्।
तत्सुतो रुचकस्तस्य पञ्चासन्नात्मजाः शृणु॥ ३४

चतुर्दशमहारत्नानि तत्तज्जातिश्रेष्ठानि यस्य सः। तानि च मार्कण्डेयपुराणे वर्णितानि—

'गजवाजिरथस्त्रीषु निधिमाल्याम्बरद्रुमाः।
शक्तिपाशमणिच्छत्रविमानानि चतुर्दश॥'
इति।

दशानां पत्नीसहस्राणां भार्यायुतस्य प्रत्येकं लक्षं लक्षमित्येवं तासु पुत्राणां दशलक्षसहस्राणि जनयामास॥ ३२॥

पृथुश्रवाः पृथुकीर्तिः पृथुयशा इत्यादयः षट्प्रधानाः श्रेष्ठा येषां तेषां मध्ये॥ ३३॥

पञ्च आत्मजा आसंस्तान् शृणु॥ ३४॥

तानेवाह—**पुरुजिदिति**।

पुरुजिद्रुक्मरुक्मेषुपृथुज्यामघसंज्ञिताः।
ज्यामघस्त्वप्रजोऽप्यन्यां भार्यां शैब्यापतिर्भयात्॥ ३५

नाविन्दच्छत्रुभवनाद् भोज्यां कन्यामहारषीत्।
रथस्थां तां निरीक्ष्याह शैब्या पतिममर्षिता॥ ३६

તેનાથી શ્વાહિ, તેનાથી રુશેકુ, તેનો ચિત્રરથ, તેનાથી મહાયોગી અને મહાભોગી એવો મહાન શશબિંદુ થયો.॥ ૩૧॥ ૩૧॥

ચૌદ રત્નોના સ્વામી, ચક્રવર્તી અને યુદ્ધમાં અજેય એવા તેની તે દસ હજાર પત્નીઓમાં અત્યંત મહાન યશવાળા તેણે સો કરોડ (પ્રત્યેકમાં એક લાખ) પુત્રો ઉત્પન્ન કર્યા હતા. તેમાં (પૃથુશ્રવા વગેરે) છ મુખ્ય (શ્રેષ્ઠ) હતા. પૃથુશ્રવાનો 'ધર્મ' નામનો પુત્ર હતો. તેનો ઉશના થયો. તે સો અશ્વમેધ યજ્ઞ કરનાર ઉશનાનો પુત્ર રુચક હતો. તે રુચકના પાંચ પુત્રો થયા, (તેમનાં નામ) સાંભળો.॥ ૩૨॥ ૩૩॥ ૩૪॥

તે તે જાતિમાં શ્રેષ્ઠ એવા ચૌદ મહારત્નો જેનાં છે તે શશબિંદુ. તે ચૌદ રત્નો માર્કંડેયપુરાણમાં વર્ણવાયાં છે–

હાથી, ઘોડા, રથ, સ્ત્રીઓ, બાણ, ભંડાર, પુષ્પ, વસ્ત્ર, વૃક્ષો, શક્તિ નામનું અસ્ત્ર, પાશ, મણિ, છત્ર, વિમાનો– એમ ચૌદ રત્નો (વર્ણવાયાં છે).

'**दशानां पत्नीसहस्राणाम्**' દસ હજાર ભાર્યાઓમાં **(षष्ठी सप्तम्यर्थे—'अन्वि.')** પ્રત્યેકમાં લાખ, લાખ– એમ તેમનામાં એક અબજ (સો કરોડ) પુત્રો ઉત્પન્ન કર્યા.॥ ૩૨॥

પૃથુશ્રવા, પૃથુકીર્તિ, પૃથુયશા– વગેરે છ '**प्रधानाः**' શ્રેષ્ઠ છે જેમનામાં, તેમનામાં॥ ૩૩॥

પાંચ પુત્રો હતા, તેમનાં (નામ) સાંભળો.॥ ૩૪॥

તેમનાં નામ કહે છે— '**पुरुजित् इति।**'

પુરુજિત્, રુક્મ, રુક્મેષુ, પૃથુ અને જ્યામઘ નામના (પાંચ પુત્રો હતા.) (તેમાં) શૈબ્યાપતિ જ્યામઘે અપુત્ર હોવા છતાં ભયથી અન્ય ભાર્યાને સ્વીકારી નહીં. (એક વખત) શત્રુના ઘરમાંથી તેણે ભોજ્યા નામની કન્યાનું હરણ કર્યું. રથમાં બેઠેલી તે ભોજ્યાને જોઈને ક્રોધે ભરાયેલી શૈબ્યાએ પતિને કહ્યું.॥ ૩૫॥ ૩૬॥

भार्याभयादेवैकभार्यस्य वन्ध्यापतेर्ज्यामघस्यापुत्रस्य तद्भयमेव पुत्रप्रदमभवदिति दर्शयन्नाह—ज्यामघस्त्विति ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

ભાર્યાના ભયથી જ વાંઝણીના પતિ, એક ભાર્યાવાળા સંતાનરહિત જ્યામઘને તે ભય જ પુત્ર પ્રદાન કરનારો થયો, એમ દર્શાવતાં કહે છે— **'ज्यामघः तु इति।'** ॥ ૩૫ ॥ ૩૬ ॥

केयं कुहक मत्स्थानं रथमारोपितेति वै।
स्नुषा तवेत्यभिहिते स्मयन्ती पतिमब्रवीत्॥ ३७ ॥ ३७ ॥

'અરે ઓ કપટી, મારા સ્થાન પર રથમાં બેસાડેલી આ કોણ છે?' (જ્યામઘે) 'તારી પુત્રવધૂ.' આમ કહ્યું ત્યારે મંદ હાસ્ય કરતી શૈબ્યાએ પતિને કહ્યું. ॥ ૩૭ ॥ ૩૭ ॥

अहं वन्ध्याऽसपत्नी च स्नुषा मे युज्यते कथम्।
जनयिष्यसि यं राज्ञि तस्येयमुपयुज्यते॥ ३८

'હું વાંઝણી છું, મારે સપત્ની પણ નથી, તો આ મારી પુત્રવધૂ કેવી રીતે?' (તેથી જ્યામઘે કહ્યું:) 'હે રાણી, જે પુત્રને તું જન્મ આપીશ તેને યોગ્ય આ થશે.' ॥ ૩૮ ॥

यदि मे सपत्नी स्यात्तर्हि स्नुषेयं युज्येतापि, न त्वेतदस्तीत्याह—असपत्नी चेति।

જો મારે સપત્ની હોત તો આ મારી પુત્રવધૂ હોય તે યોગ્ય છે, પણ એમ છે નહીં— **'असपत्नी च इति।'**

अतिभयव्याकुल आह—**जनयिष्यतीति** ॥ ३८ ॥

અતિ ભયથી વ્યાકુળ એવો જ્યામઘ બોલ્યો, **'जनयिष्यति इति।'** ॥ ૩૮ ॥

अन्वमोदन्त तद्विश्वेदेवाः पितर एव च।
शैब्या गर्भमधात् काले कुमारं सुषुवे शुभम्।
स विदर्भ इति प्रोक्त उपयेमे स्नुषां सतीम्॥ ३९

(રાજા જ્યામઘના) તે વચનનું વિશ્વેદેવો અને પિતૃઓએ પણ અનુમોદન કર્યું. શૈબ્યાએ ગર્ભ ધારણ કર્યો અને સમય થતાં શુભ લક્ષણવાળા કુમારને જન્મ આપ્યો. તે વિદર્ભ કહેવાયો અને (શૈબ્યાની) પુત્રવધૂ સતી ભોજ્યા સાથે લગ્ન કર્યાં. ॥ ૩૯ ॥

भार्याभयप्रकम्पमानस्विन्नसर्वाङ्गस्य राज्ञः प्राणसंकटमालोक्यानुकम्पितास्तेन पूर्वं बहुकालमाराधिताश्च विश्वेदेवाः पितरश्च तथेत्यन्वमोदन्त। ततश्च देवताप्रसादेन जनयिष्यसीति प्रतिवचनमुहूर्तगुणेन च निवृत्तरजस्कापि शैब्या गर्भमधात्। तस्य च महिमा पराशरादिभिरुक्तः। यथोक्तम्—

ભાર્યાના ભયથી ધ્રૂજતા અને પરસેવે નીતરતાં અંગોવાળા રાજાનું પ્રાણસંકટ જોઈ અનુકંપિત થયેલા અને તે રાજા દ્વારા પૂર્વે ચિરકાળ સુધી આરાધવામાં આવેલા વિશ્વેદેવો અને પિતૃઓએ 'તેમ જ થાઓ!' એમ અનુમોદન આપ્યું. ત્યાર પછી દેવતાની કૃપાથી 'તું જન્મ આપીશ.' એમ પ્રત્યુત્તરના શ્રેષ્ઠ મુહૂર્તના ગુણને કારણે, જેનું રજોદર્શન નિવૃત્ત થઈ ગયું છે તેવી હોવા છતાં પણ શૈબ્યાએ ગર્ભ ધારણ કર્યો, તેનો મહિમા પરાશરાદિ દ્વારા ગવાયો છે—

'भार्यावश्यास्तु ये केचिद्भविष्यन्त्यथ वा मृताः।
तेषां तु ज्यामघः श्रेष्ठः शैब्यापतिरभून्नृपः॥'
इति॥ ३९॥

'ભાર્યાને વશ થયેલા જે કોઈ પુરુષો થશે અને થઈ ગયા છે, તેમાં શૈબ્યાપતિ જ્યામઘ શ્રેષ્ઠ છે.'॥ ૩૯॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे यदुवंशानुवर्णने त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

*****

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

વિદર્ભના વંશનું વર્ણન

चतुर्विंशे विदर्भस्य पुत्रत्रयसमुद्भवाः।
वंशा नानामुखाः प्रोक्ता रामकृष्णोद्भवावधि॥ १॥

ચોવીસમા અધ્યાયમાં વિદર્ભના ત્રણ પુત્રોથી ઉદ્ભવેલા, અનેક શાખાવાળા વંશો બળરામ અને શ્રીકૃષ્ણના જન્મ પર્યન્ત કહેવામાં આવ્યા છે.॥ ૧॥

श्रीशुक उवाच

तस्यां विदर्भोऽजनयत् पुत्रौ नाम्ना कुशक्रथौ।
तृतीयं रोमपादं च विदर्भकुलनन्दनम्॥ १
॥ १॥

શ્રીશુકદેવજી બોલ્યા — (જ્યામઘ અને શૈબ્યાના પુત્ર) વિદર્ભે તે ભોજ્યામાં કુશ અને ક્રથ– એમ બે પુત્રો અને ત્રીજો વિદર્ભકુળને આનંદ આપનારો રોમપાદ નામનો પુત્ર ઉત્પન્ન કર્યો.॥ ૧॥ ૧॥

रोमपादसुतो बभ्रुर्बभ्रोः कृतिरजायत।
उशिकस्तत्सुतस्तस्माच्चेदिश्चैद्यादयो नृप॥ २

હે નૃપ પરીક્ષિત, રોમપાદનો પુત્ર બભ્રુ, બભ્રુનો પુત્ર કૃતિ થયો. તેનો પુત્ર ઉશિક, તેનાથી ચેદિ અને ચેદિના ચૈદ્ય વગેરે (રાજાઓ) થયા.॥ ૨॥

चैद्यादयो दमघोषादयः॥ २॥

'चैद्यादयः' દમઘોષ, શિશુપાળ વગેરે ચૈદ્ય (રાજાઓ)॥ ૨॥

क्रथस्य कुन्तिः पुत्रोऽभूद् धृष्टिस्तस्याथ निर्वृतिः।
ततो दशार्हो नाम्नाभूत् तस्य व्योमः सुतस्ततः॥ ३
॥ ३॥

जीमूतो विकृतिस्तस्य यस्य भीमरथः सुतः।
ततो नवरथः पुत्रो जातो दशरथस्ततः॥ ४

(વિદર્ભના બીજા પુત્ર) ક્રથનો કુન્તિ નામનો પુત્ર થયો. તેનો ધૃષ્ટિ, ત્યાર પછી તેનો નિર્વૃતિ, તેનાથી દશાર્હ નામનો પુત્ર થયો, તેનો પુત્ર વ્યોમ થયો. તેનો જીમૂત અને તેનો વિકૃતિ થયો, જેનો પુત્ર ભીમરથ થયો, તેનાથી નવરથ નામનો પુત્ર થયો, તેનાથી દશરથ થયો. ॥ ૩॥ ૩॥ ૪॥

ततो दशरथाच्छकुनिः पुराणान्तरादेवमादि-विशेषो द्रष्टव्यः॥ ४॥

'ततः' તે દશરથથી શકુનિ થયો, અન્ય પુરાણ (વિષ્ણુપુરાણ તથા હરિવંશપુરાણ)માંથી આમ વિશેષ જોવા યોગ્ય છે.॥ ૪॥

करम्भिः शकुनेः पुत्रो देवरातस्तदात्मजः।
देवक्षत्रस्ततस्तस्य मधुः कुरुवशादनुः॥ ५

શકુનિનો પુત્ર કરંભિ, તેનો પુત્ર દેવરાત, તેનાથી દેવક્ષત્ર, તેનો મધુ, (મધુનો કુરુવશ) અને કુરુવશથી અનુ થયો.॥૫॥

ततः कुरुवशादनुः॥५॥

તે કુરુવશથી અનુ થયો.॥૫॥

पुरुहोत्रस्त्वनोः पुत्रस्तस्यायुः सात्वतस्ततः।
भजमानो भजिर्दिव्यो वृष्णिर्देवावृधोऽन्धकः॥ ६

અનુનો પુત્ર પુરુહોત્ર, તેનો આયુ, તેનાથી સાત્વત, તેનાથી ભજમાન, ભજિ, દિવ્ય, વૃષ્ણિ, દેવાવૃધ, અંધક॥૬॥

सात्वतस्य सुताः सप्त महाभोजश्च मारिष।
भजमानस्य निम्लोचिः किङ्किणो धृष्टिरेव च॥ ७

તથા મહાભોજ–એમ સાત સાત્વતના પુત્રો થયા. હે મારિષ (હે આર્ય), (એક ભાર્યામાં) ભજમાનના નિમ્લોચિ, કિંકિણ અને ધૃષ્ટિ (નામના પુત્રો) થયા.॥૭॥

अनोः पुत्रः पुरुहोत्रः॥६॥

महाभोजश्चेत्येवं सप्त। मारिष हे आर्य॥७॥

અનુનો પુત્ર પુરુહોત્ર થયો.॥૬॥

તથા મહાભોજ– એમ સાત પુત્રો– **'मारिष'** હે આર્ય॥૭॥

एकस्यामात्मजाः पत्न्यामन्यस्यां च त्रयः सुताः।
शताजिच्च सहस्राजिदयुताजिदिति प्रभो॥ ८

॥८॥

એક ભાર્યામાં (આ ત્રણ) પુત્રો થયા અને બીજી ભાર્યામાં પણ હે પ્રભુ (પરીક્ષિત), શતાજિત્, સહસ્રાજિત્ અને અયુતાજિત્– એમ (ત્રણ પુત્રો) થયા.॥૮॥૮॥

बभ्रुर्देवावृधसुतस्तयोः श्लोकौ पठन्त्यमू।
यथैव शृणुमो दूरात् सम्पश्यामस्तथान्तिकात्॥ ९

॥९॥

(સાત્વતના પાંચમા પુત્ર) દેવાવૃધનો પુત્ર બભ્રુ થયો. તે પિતા-પુત્ર બંનેના સંબંધમાં (વિદ્વાનો) આ બે શ્લોકો કહે છે. દૂરથી અમે જે પ્રમાણે શ્રવણ કર્યું હતું, તે પ્રમાણે અમે નિકટથી જોઈએ છીએ.॥૯॥ ૯॥

बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः।
पुरुषाः पञ्चषष्टिश्च षट् सहस्राणि चाष्ट च॥ १०

येऽमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रोर्देवावृधादपि।
महाभोजोऽपि धर्मात्मा भोजा आसंस्तदन्वये॥ ११

બભ્રુ મનુષ્યોમાં શ્રેષ્ઠ છે અને દેવાવૃધ દેવો સમાન છે, (કારણ કે) બભ્રુ અને દેવાવૃધના ઉપદેશના (પ્રભાવથી) જે ચૌદ હજાર પાંસઠ મનુષ્યો હતા, તેઓ મુક્તિ (અમૃતત્વ)ને પ્રાપ્ત થયા હતા. સાત્વતનો છેલ્લો (સાતમો) પુત્ર મહાભોજ પણ ધર્માત્મા હતો. તેના વંશમાં થયેલા રાજાઓ ભોજવંશી થયા.॥૧૦॥૧૧॥

ततस्तदुपदेशेन ये पञ्चषष्ट्यादिसंख्याः पुरुषास्तेऽमृतत्वं मोक्षं प्राप्ताः ॥ १० ॥ ११ ॥

તેમના તે ઉપદેશથી જે ચૌદ હજાર પાંસઠ સંખ્યાવાળા પુરુષો હતા, તેઓ '**अमृतत्वम्**' મુક્તિને પ્રાપ્ત થયા. ॥ ૧૦ ॥ ૧૧ ॥

वृष्णेः सुमित्रः पुत्रोऽभूद् युधाजिच्च परंतप ।
शिनिस्तस्यानमित्रश्च निम्नोऽभूदनमित्रतः ॥ १२

હે શત્રુતાપન (પરીક્ષિત), (સાત્વતના ચોથા પુત્ર) વૃષ્ણિના સુમિત્ર અને યુધાજિત્ નામના (બે) પુત્રો થયા અને તે યુધાજિત્‌ના પણ શિનિ અને અનમિત્ર થયા. અનમિત્રથી નિમ્ન થયો. ॥ ૧૨ ॥

तस्य युधाजितः शिनिरनमित्रश्च ॥ १२ ॥

તે યુધાજિત્‌ના શિનિ અને અનમિત્ર થયા. ॥ ૧૨ ॥

सत्राजितः प्रसेनश्च निम्नस्याप्यासतुः सुतौ ।
अनमित्रसुतो योऽन्यः शिनिस्तस्याथ सत्यकः ॥ १३
॥ १३ ॥

નિમ્નના સત્રાજિત્ અને પ્રસેનજિત્– એમ બે પુત્રો થયા. અનમિત્રનો (બીજી પત્નીમાં થયેલો) જે અન્ય પુત્ર શિનિ હતો, તેનો સત્યક થયો. ॥ ૧૩ ॥ ૧૩ ॥

युयुधानः सात्यकिर्वै जयस्तस्य कुणिस्ततः ।
युगन्धरोऽनमित्रस्य वृष्णिः पुत्रोऽपरस्ततः ॥ १४

સત્યકનો પુત્ર યુયુધાન સાત્યકિ (નામે ઓળખાયો) હતો. તેનો પુત્ર જય, તેનો કુણિ, તેનાથી યુગંધર નામનો પુત્ર થયો. અનમિત્રનો બીજો પુત્ર વૃષ્ણિ હતો. ॥ ૧૪ ॥

सत्यकस्य पुत्रो युयुधानस्तस्य जयस्तस्य कुणिस्ततः कुणेर्युगन्धरः । अनमित्रस्यैवापरो वृष्णिर्नाम पुत्रः ॥ १४ ॥

સત્યકનો પુત્ર યુયુધાન, તેનો જય, તેનો કુણિ, તેનાથી યુગંધર– અનમિત્રનો વૃષ્ણિ નામનો બીજો પુત્ર હતો. ॥ ૧૪ ॥

श्वफल्कश्चित्ररथश्च गान्दिन्यां च श्वफल्कतः ।
अक्रूरप्रमुखा आसन् पुत्रा द्वादश विश्रुताः ॥ १५

(તે વૃષ્ણિથી) શ્વફલ્ક અને ચિત્રરથ થયા. શ્વફલ્કથી ગાંદિનીમાં અક્રૂર જેમનામાં શ્રેષ્ઠ હતા તે અક્રૂર ઉપરાંત બાર પ્રસિદ્ધ પુત્રો હતા. ॥ ૧૫ ॥

अक्रूरः प्रमुखो येषामित्यतद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः ॥ १५ ॥

જેમનામાં અક્રૂર શ્રેષ્ઠ (હતા)– એમ અતદ્‌ગુણ-સંવિજ્ઞાન બહુવ્રીહિ સમાસ છે. * ॥ ૧૫ ॥

अतोऽक्रूरातिरिक्तान् द्वादश दर्शयति— **आसङ्ग इति ।**

આથી અક્રૂર ઉપરાંત બાર પુત્રો દર્શાવે છે— '**आसंगः इति ।**'

* જે સમાસમાં સામાસિક પદ સમાસના સમગ્ર અર્થના એક ભાગરૂપે બનવાનો ગુણ ધરાવતું નથી, એટલે કે તેવા ગુણની જે સમાસમાં પ્રતીતિ (સંવિજ્ઞાન) થતી નથી, તેને અતદ્‌ગુણસંવિજ્ઞાન બહુવ્રીહિ સમાસ કહે છે. આ શ્લોકમાં અક્રૂરજી તે બાર પુત્રોમાંના એક ન હતા, પરંતુ તે બાર ઉપરાંત હતા, એમ અર્થ છે.

आसङ्गः सारमेयश्च मृदुरो मृदुविद् गिरिः ।
धर्मवृद्धः सुकर्मा च क्षेत्रोपेक्षोऽरिमर्दनः ॥ १६
शत्रुघ्नो गन्धमादश्च प्रतिबाहुश्च द्वादश ।
तेषां स्वसा सुचीराख्या द्वावक्रूरसुतावपि ॥ १७

॥ १६ ॥ १७ ॥

देववानुपदेवश्च तथा चित्ररथात्मजाः ।
पृथुर्विदूरथाद्याश्च बहवो वृष्णिनन्दनाः ॥ १८

पृथुरेकः। विदूरथाद्या अन्ये च बहवः। विपृथुधामाद्या इति पाठे आद्यशब्देन विदूरथोऽप्युक्तस्ततश्च—'शूरो विदूरथादासीत्' इति वक्ष्यमाणनिर्देशोपपत्तिः ॥ १८ ॥

कुकुरो भजमानश्च शुचिः कम्बलबर्हिषः ।
कुकुरस्य सुतो वह्निर्विलोमा तनयस्ततः ॥ १९

कुकुरादयश्चत्वारोऽन्धकस्य सुता इति ज्ञेयम्। तथा च पराशरः—'कुकुरभजमानशुचिकम्बल-बर्हिषाख्यास्तथान्धकस्य पुत्राः' इति॥ १९ ॥

कपोतरोमा तस्यानुः सखा यस्य च तुम्बुरुः ।
अन्धको दुन्दुभिस्तस्य दरिद्योतः पुनर्वसुः ॥ २०

अनोरन्धकोऽन्धकाद्दुन्दुभिरित्यपि तद्वचनादेव ज्ञेयम् ॥ २० ॥

तस्याहुकश्चाहुकी च कन्या चैवाहुकात्मजौ ।
देवकश्चोग्रसेनश्च चत्वारो देवकात्मजाः ॥ २१

॥ २१ ॥

આસંગ, સારમેય, મૃદુર, મૃદુવિદ્, ગિરિ, ધર્મવૃદ્ધ, સુકર્મા, ક્ષેત્રોપેક્ષ, અરિર્મદન, શત્રુઘ્ન, ગંધમાદ અને પ્રતિબાહુ– એમ બાર પુત્રો હતા. તેમની સુચીરા નામની બહેન હતી. અક્રૂરને પણ બે પુત્રો હતા, દેવવાન તથા ઉપદેવ. ચિત્રરથના પૃથુ અને વિદૂરથ વગેરે બીજા અનેક વૃષ્ણિવંશી પુત્રો થયા.॥ ૧૬ ॥ ૧૭ ॥ ૧૮ ॥૧૬ ॥ ૧૭ ॥

પૃથુ એક તથા વિદૂરથ વગેરે બીજા અનેક– '**पृथुविपृथुधामाद्याः**' પાઠમાં આદ્ય શબ્દ દ્વારા વિદૂરથ પણ સૂચિત થઈ જાય છે, તેથી 'વિદૂરથથી શૂર નામનો પુત્ર થયો.' (શ્લોક-૨૬) આગળ કહેવામાં આવનાર નિર્દેશ સુસંગત થાય છે.॥ ૧૮ ॥

(સાત્વતના છઠ્ઠા પુત્ર અંધકના) કુકુર, ભજમાન, શુચિ, કમ્બલબર્હિષ્ (– એમ ચાર પુત્રો હતા.) કુકુરનો વહ્નિ, તેનો પુત્ર વિલોમા હતો.॥ ૧૯ ॥

કુકુર વગેરે ચાર અંધકના પુત્રો હતા, એમ જાણવું. તે પ્રમાણે પરાશરજી કહે છે— 'કુકુર, ભજમાન, શુચિ અને કમ્બલબર્હિષ્ નામના અંધકના પુત્રો હતા.'॥ ૧૯ ॥

તે (વિલોમા)નો (પુત્ર) કપોતરોમા, તેનો પુત્ર અનુ થયો, જેનો મિત્ર તુમ્બુરુ ગંધર્વ હતો. (અનુનો) અંધક, તેનો દુંદુભિ, તેનો દરિદ્યોત, તેનો પુનર્વસુ થયો.॥ ૨૦॥

અનુનો અંધક, અંધકથી દુંદુભિ– એ પણ તે પરાશરજીના વચનથી જાણવા યોગ્ય છે.॥ ૨૦॥

તે પુનર્વસુને આહુક પુત્ર અને આહુકી નામની કન્યા હતી. દેવક અને ઉગ્રસેન એ બંને આહુકના પુત્રો હતા. દેવકને ચાર પુત્રો હતા– ॥ ૨૧ ॥ ૨૧ ॥

देववानुपदेवश्च सुदेवो देववर्धनः।
तेषां स्वसारः सप्तासन् धृतदेवादयो नृप॥ २२
शान्तिदेवोपदेवा च श्रीदेवा देवरक्षिता।
सहदेवा देवकी च वसुदेव उवाह ताः॥ २३

धृतदेवा आदिर्यासां शान्तिदेवादीनां षण्णां ताः सप्त॥ २२॥

ताः सप्त॥ २३॥

દેવવાન, ઉપદેવ, સુદેવ અને દેવવર્ધન. તેમની સાત બહેનો હતી. હે રાજા (પરીક્ષિત), ધૃતદેવા, શાંતિદેવા, ઉપદેવા, શ્રીદેવા, દેવરક્ષિતા, સહદેવા અને દેવકી. તેમને વસુદેવ પરણ્યા હતા.॥ ૨૨॥ ૨૩॥

શાંતિદેવા વગેરે જે છ બહેનોમાં ધૃતદેવા પ્રથમ હતી, તે સાતેયને॥ ૨૨॥

‘**ताः**’ તે સાતેયને॥ ૨૩॥

कंसः सुनामा न्यग्रोधः कङ्कः शङ्कुः सुहूस्तथा।
राष्ट्रपालोऽथ सृष्टिश्च तुष्टिमानौग्रसेनयः॥ २४

औग्रसेनय उग्रसेनस्य सुताः॥ २४॥

ઉગ્રસેનના કંસ, સુનામા, ન્યગ્રોધ, કંક, શંકુ, સુહૂ, રાષ્ટ્રપાલ, સૃષ્ટિ અને તુષ્ટિમાન– એમ (નવ) પુત્રો થયા.॥ ૨૪॥

‘**औग्रसेनयः**’ ઉગ્રસેનના પુત્રો॥ ૨૪॥

कंसा कंसवती कङ्का शूरभू राष्ट्रपालिका।
उग्रसेनदुहितरो वसुदेवानुजस्त्रियः॥ २५

वसुदेवस्य येऽनुजा देवभागादयस्तेषां स्त्रियो भार्याः॥ २५॥

अन्धकसुतानां चतुर्णां प्रथमस्य कुकुरस्य वंश उक्तः, द्वितीयस्य भजमानस्य वंशमाह— **शूरो विदूरथादिति।**

કંસા, કંસવતી, કંકા, શૂરભૂ, રાષ્ટ્રપાલિકા– એમ (પાંચ) ઉગ્રસેનની પુત્રીઓ વસુદેવના નાના ભાઈઓની પત્નીઓ હતી.॥ ૨૫॥

વસુદેવજીના જે દેવભાગ વગેરે નાના ભાઈઓ હતા તેમની ‘**स्त्रियः**’ ભાર્યાઓ॥ ૨૫॥

અંધકના ચાર પુત્રોમાંના પ્રથમ પુત્ર કુકુરનો વંશ કહેવાયો. હવે (અંધકના) બીજા પુત્ર ભજમાનનો વંશ કહે છે— ‘**शूरः विदूरथात् इति।**’

शूरो विदूरथादासीद् भजमानः सुतस्ततः।
शिनिस्तस्मात् स्वयम्भोजो हृदीकस्तत्सुतो मतः॥ २६

‘भजमानाच्च विदूरथः पुत्रोऽभूद्विदूरथाच्च शूरः’ इति पराशरादिवचनात्। यद्वा पृथुर्विदूर-थाद्याश्चेति पूर्वोक्तचित्ररथात्मजाद्विदूरथात्॥ २६॥

(ભજમાનના પુત્ર) વિદૂરથથી શૂર નામનો પુત્ર થયો. તેનો પુત્ર ભજમાન, તેનાથી શિનિ, તેનાથી સ્વયંભોજ, તેનો પુત્ર હૃદીક મનાય છે.॥ ૨૬॥

‘ભજમાનથી વિદૂરથ નામે પુત્ર થયો તથા વિદૂરથથી શૂર થયો.’ એમ પરાશરજીના વચનથી (કહેવાયું છે), અથવા ‘**पृथुर्विदूरथाद्याः च**’ (શ્લોક-૧૮) એમ પૂર્વે કહેવામાં આવેલા (વૃષ્ણિપુત્ર) વિદૂરથથી॥ ૨૬॥

देवबाहुः शतधनुः कृतवर्मेति तत्सुताः।
देवमीढस्य शूरस्य मारिषा नाम पत्न्यभूत्॥ २७

તે હૃદીકના દેવબાહુ, શતધનુ, કૃતવર્મા (તથા દેવમીઢ) થયા. દેવમીઢના પુત્ર શૂરની મારિષા નામની પત્ની હતી.॥ ૨૭॥

देवमीढस्य यः शूरो नाम पुत्रस्तस्य। देवमीढो हृदीकस्यैव सुतः। यथाह पराशरः— ‘तस्यापि कृतवर्मशतधनुर्देवमीढुषाद्या बभूवुः। देवमीढुषस्य शूरस्यापि मारिषा नाम पत्न्यभवत्तस्यां चासौ दश पुत्रानजनयद्वसुदेवपूर्वान्’ इति॥ २७॥

દેવમીઢનો જે શૂર નામનો પુત્ર હતો તેની (મારિષા પત્ની હતી). દેવમીઢ હૃદીકનો જ પુત્ર હતો. પરાશરજી કહે છે તે પ્રમાણે— ‘તે હૃદીકને પણ કૃતવર્મા, શતધનુ, દેવમીઢુષ વગેરે પુત્રો થયા. દેવમીઢુષના પુત્ર શૂરને પણ મારિષા નામની પત્ની હતી. તેનામાં વસુદેવજી જેમાં પ્રથમ હતા તેવા દસ પુત્રો જન્મ્યા.’॥ ૨૭॥

तस्यां स जनयामास दश पुत्रानकल्मषान्।
वसुदेवं देवभागं देवश्रवसमानकम्॥ २८॥
सृञ्जयं श्यामकं कङ्कं शमीकं वत्सकं वृकम्।
देवदुन्दुभयो नेदुरानका यस्य जन्मनि॥ २९॥

તે શૂરે તે મારિષામાં વસુદેવ, દેવભાગ, દેવશ્રવા, આનક, સૃંજય, શ્યામક, કંક, શમીક, વત્સક અને વૃક– એમ દસ નિષ્પાપ પુત્રો ઉત્પન્ન કર્યા હતા. જે વસુદેવજીના જન્મસમયે દેવતાઓનાં દુંદુભિ (નોબત) તથા નગારાં (સ્વયં) વાગ્યાં હતાં.॥ ૨૮॥ ૨૯॥

आनकाश्च नेदुः॥ २९॥

નગારાં પણ વાગ્યાં હતાં.॥ ૨૯॥

वसुदेवं हरेः स्थानं वदन्त्यानकदुन्दुभिम्।
पृथा च श्रुतदेवा च श्रुतकीर्तिः श्रुतश्रवाः॥ ३०॥
राजाधिदेवी चैतेषां भगिन्यः पञ्च कन्यकाः।
कुन्तेः सख्युः पिता शूरो ह्यपुत्रस्य पृथामदात्॥ ३१॥

(આથી) શ્રીહરિના (આવિર્ભાવના યોગ્ય) સ્થાનરૂપ વસુદેવજીને ‘આનકદુંદુભિ’ કહે છે. પૃથા, શ્રુતદેવા, શ્રુતકીર્તિ, શ્રુતશ્રવા તથા રાજાધિદેવી– આ પાંચ કન્યાઓ તેમની બહેનો હતી. પિતા શૂરસેને અપુત્ર એવા પોતાના મિત્ર કુંતીભોજને પૃથા (દત્તક) આપી હતી.॥ ૩૦॥ ૩૧॥

हरेः प्रादुर्भावस्य स्थानम्॥ ३०॥

શ્રીહરિના આવિર્ભાવના સ્થાનરૂપ વસુદેવજીને ॥ ૩૦॥

पृथायाः कन्यकावस्थायां कर्णोत्पत्तिप्रकारमाह—कुन्तेरिति पञ्चभिः॥ ३१॥

પૃથાને કન્યાવસ્થામાં કર્ણ કેવી રીતે જન્મ્યો હતો, તે પાંચ શ્લોકો વડે કહે છે— ‘**कुन्तेः इति**’ ॥ ૩૧॥

अन्वि.—कुन्तेरित्यादयश्चतुर्थ्यर्थे षष्ठ्यः।

કુંતી વગેરેમાં છઠ્ઠી વિભક્તિ ચતુર્થીના અર્થમાં છે.

कदाचिद्गृहमागतं दुर्वाससं पृथा परिचर्यादिना तोषयामास, ततश्च सा तस्माद्देवहूतीं देवाह्वानहेतुं विद्यामवाप, तदाह—**साऽऽपेति**।

કોઈ એક સમયે પોતાના ઘરમાં પધારેલા દુર્વાસા મુનિને પૃથાએ પરિચર્યા વગેરેથી પ્રસન્ન કર્યા હતા. તેથી તેમની પાસેથી તેણે ‘**देवहूतीम्**’ દેવોનું આવાહન કરવા માટેની વિદ્યા પ્રાપ્ત કરી હતી, તે કહે છે— ‘**सा आप इति।**’

साऽऽप दुर्वाससो विद्यां देवहूतीं प्रतोषितात्।
तस्या वीर्यपरीक्षार्थमाजुहाव रविं शुचिम्॥ ३२

॥ ३२ ॥

(સેવાથી) પ્રસન્ન થયેલા દુર્વાસા મુનિ પાસેથી તેણે (કુંતીએ) દેવોને બોલાવવાની વિદ્યા પ્રાપ્ત કરી હતી. તે વિદ્યાની શક્તિની પરીક્ષા કરવા માટે તેણે પવિત્ર સૂર્યદેવનું આવાહન કર્યું હતું.॥ ૩૨ ॥ ૩૨ ॥

तदैवोपागतं देवं वीक्ष्य विस्मितमानसा।
प्रत्ययार्थं प्रयुक्ता मे याहि देव क्षमस्व मे॥ ३३

તે જ સમયે આવેલા સૂર્યદેવને જોઈને વિસ્મિત થયેલા મનવાળી તેણે કહ્યું : 'હે દેવ, પરીક્ષા કરવા માટે મારાથી વિદ્યાનો પ્રયોગ થઈ ગયો છે, માટે આપ મને ક્ષમા કરો અને પધારો.'॥ ૩૩ ॥

देवमुपागतं वीक्ष्य सा प्राह—प्रत्ययार्थं परीक्षार्थं मया विद्या प्रयुक्ता, न तु त्वया किंचित्कार्यमित्यभिसंधिना—अतो याहीति॥ ३३॥

સૂર્યદેવને આવેલા જોઈને તેણે કહ્યું— '**प्रत्ययार्थम्**' પરીક્ષા કરવા માટે મારાથી વિદ્યાનો પ્રયોગ થઈ ગયો, પરંતુ આપની સાથે મારે અન્ય કંઈ જ પ્રયોજન નથી, એમ ફળના સંકલ્પથી બોલાવ્યા નથી, આથી આપ (પાછા) પધારો.॥ ૩૩ ॥

एवमुक्तो रविरुवाच—**अमोघं दर्शनमिति**।

આમ, જેમને કહેવામાં આવ્યું તે સૂર્યદેવ બોલ્યા— '**अमोघं दर्शनम् इति**।'

अमोघं दर्शनं देवि आधित्से त्वयि चात्मजम्।
योनिर्यथा न दुष्येत कर्ताहं ते सुमध्यमे॥ ३४

(સૂર્યદેવે કહ્યું:) 'હે દેવી, મારું દર્શન નિષ્ફળ ન હોઈ શકે. હે સુંદરી, તારી યોનિ દૂષિત ન થાય તેમ તારામાં હું પુત્ર ઉત્પન્ન કરીશ.'॥ ૩૪॥

कन्याहमिति चेत्तत्राह—यथा योनिर्न दुष्येत तथाहं कर्ता करिष्यामि॥ ३४॥

જો (કુંતી કહે કે) હું તો કુંવારી કન્યા છું, તો તે માટે (સૂર્યદેવ) કહે છે— જે રીતે તારી યોનિ દૂષિત ન થાય તે રીતે હું '**कर्ता**' પુત્ર ઉત્પન્ન કરીશ.॥ ૩૪॥

इति तस्यां स आधाय गर्भं सूर्यो दिवं गतः।
सद्यः कुमारः संजज्ञे द्वितीय इव भास्करः॥ ३५

॥ ३५ ॥

એમ કહી તેનામાં તે સૂર્યદેવ ગર્ભનું સ્થાપન કરી સ્વર્ગમાં ગયા. તે જ ક્ષણે બીજા સૂર્ય જેવો કુમાર ઉત્પન્ન થયો.॥ ૩૫॥ ૩૫॥

तं सात्यजन्नदीतोये कृच्छ्राल्लोकस्य बिभ्यती।
प्रपितामहस्तामुवाह पाण्डुर्वै सत्यविक्रमः॥ ३६

॥ ३६ ॥

લોકનિંદાથી ભયભીત થયેલી તે કુંતીએ તે પુત્રને મહાદુ:ખથી નદીના જળમાં છોડી દીધો હતો. તે કુંતીને તમારા દાદા(અર્જુન)ના (પ્રપિતામહ), સત્ય પરાક્રમવાળા પાંડુ જ પરણ્યા હતા.॥ ૩૬॥ ૩૬॥

अन्वि.—सत्यविक्रमः सत्ये यथार्थधर्म एव विक्रमः प्रयत्नो यस्य सः।

યથાર્થ ધર્મમાં જ જેમનો પ્રયત્ન છે તે સત્યવિક્રમ (પાંડુ)

श्रुतदेवां तु कारूषो वृद्धशर्मा समग्रहीत्।
यस्यामभूद् दन्तवक्त्र ऋषिशप्तो दितेः सुतः॥ ३७ ॥ ३७ ॥

(પૃથાથી નાની, બીજી) શ્રુતદેવાને કરૂષાધિપતિ વૃદ્ધશર્મા પરણ્યા હતા, જેનામાં સનકાદિ ઋષિઓ દ્વારા શાપ પામેલો (ભગવાનનો દ્વારપાળ વિજય) દંતવક્ત્ર જન્મ્યો હતો, (કે જે પૂર્વ જન્મમાં) દિતિપુત્ર હિરણ્યાક્ષ હતો.॥ ૩૭ ॥ ૩૭ ॥

कैकेयो धृष्टकेतुश्च श्रुतकीर्तिमविन्दत।
सन्तर्दनादयस्तस्यं पञ्चासन् कैकयाः सुताः॥ ३८ ॥ ३८ ॥

(શ્રુતદેવાથી નાની, ત્રીજી) શ્રુતકીર્તિને કેકયનરેશ ધૃષ્ટકેતુ પરણ્યા હતા. તેનામાં સંતર્દન વગેરે પાંચ કૈકય રાજકુમારો થયા.॥ ૩૮ ॥ ૩૮ ॥

राजाधिदेव्यामावन्त्यौ जयसेनोऽजनिष्ट ह।
दमघोषश्चेदिराजः श्रुतश्रवसमग्रहीत्॥ ३९

(પાંચમી) રાજાધિદેવીમાં જયસેને બે અવન્તીના કુમારો વિંદ અને અનુવિંદ ઉત્પન્ન કર્યા તથા (ચોથી) શ્રુતશ્રવાને ચેદિનરેશ દમઘોષ પરણ્યા હતા.॥ ૩૯ ॥

आवन्त्यौ विन्दानुविन्दौ॥ ३९ ॥

‘**आवन्त्यौ**’ અવંતીના બે રાજકુમારો વિંદ અને અનુવિંદ॥ ૩૯ ॥

शिशुपालः सुतस्तस्याः कथितस्तस्य सम्भवः।
देवभागस्य कंसायां चित्रकेतुबृहद्बलौ॥ ४०

તે (શ્રુતશ્રવા)નો પુત્ર શિશુપાળ હતો. તેની ઉત્પત્તિ (સાતમા સ્કંધના પ્રથમ અધ્યાયમાં) કહેવામાં આવી છે. (વસુદેવજીના બીજા ભાઈ) દેવભાગને કંસામાં ચિત્રકેતુ અને બૃહદ્બલ– એમ બે પુત્રો થયા.॥ ૪૦ ॥

तदेवं वसुदेवस्य भगिनीनां पतीन्पुत्रांश्चोक्त्वा तद्भ्रातृणां नवानां पत्नीः पुत्रांश्चाह—देवभागस्येति नवभिः श्लोकार्धैः॥ ४० ॥

તો આમ વસુદેવજીની બહેનોના પતિ-પુત્રો કહીને તેમના નવ ભાઈઓની પત્નીઓ અને પુત્રોને સાડા નવ શ્લોકોથી વર્ણવે છે— ‘**देवभागस्य इति।**’॥ ૪૦ ॥

कंसवत्यां देवश्रवसः सुवीर इषुमांस्तथा।
कङ्कायामानकाज्जातः सत्यजित् पुरुजित् तथा॥ ४१

દેવશ્રવાથી કંસવતીમાં સુવીર અને ઈષુમાન થયા. આનકથી કંકામાં સત્યજિત્ અને પુરુજિત્ જન્મ્યા.॥ ૪૧ ॥

सृञ्जयो राष्ट्रपाल्यां च वृषदुर्मर्षणादिकान्।
हरिकेशहिरण्याक्षौ शूरभूम्यां च श्यामकः॥ ४२

સૃંજયે રાષ્ટ્રપાલીમાં વૃષ, દુર્મર્ષણ વગેરેને તથા શ્યામકે શૂરભૂમિમાં હરિકેશ અને હિરણ્યાક્ષ ઉત્પન્ન કર્યા.॥ ૪૨ ॥

मिश्रकेश्यामप्सरसि वृकादीन् वत्सकस्तथा।
तक्षपुष्करशालादीन् दुर्वाक्ष्यां वृक आदधे॥ ४३

વત્સકે મિશ્રકેશી અપ્સરામાં વૃક વગેરેને તથા વૃકે દુર્વાક્ષીમાં તક્ષ, પુષ્કર, શાલ વગેરેને ઉત્પન્ન કર્યા.॥ ૪૩ ॥

सुमित्रार्जुनपालादीन् शमीकात्तु सुदामिनी।
कङ्कश्च कर्णिकायां वै ऋतधामजयावपि॥ ४४

॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

वसुदेवस्य पत्नीः पुत्रांश्चाह—**पौरवीत्येकादशभिः।**

पौरवी रोहिणी भद्रा मदिरा रोचना इला।
देवकीप्रमुखा आसन् पत्न्य आनकदुन्दुभेः॥ ४५

बलं गदं सारणं च दुर्मदं विपुलं ध्रुवम्।
वसुदेवस्तु रोहिण्यां कृतादीनुदपादयत्॥ ४६

सुभद्रो भद्रवाहश्च दुर्मदो भद्र एव च।
पौरव्यास्तनया ह्येते भूताद्या द्वादशाभवन्॥ ४७

॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

नन्दोपनन्दकृतकशूराद्या मदिरात्मजाः।
कौशल्या केशिनं त्वेकमसूत कुलनन्दनम्॥ ४८

कौशल्या भद्रा॥ ४८॥

रोचनायामतो जाता हस्तहेमाङ्गदादयः।
इलायामुरुवल्कादीन् यदुमुख्यानजीजनत्॥ ४९

विपृष्ठो धृतदेवायामेक आनकदुन्दुभेः।
शान्तिदेवात्मजा राजन् श्रमप्रतिश्रुतादयः॥ ५०

राजानः कल्पवर्षाद्या उपदेवासुता दश।
वसुहंससुवंशाद्याः श्रीदेवायास्तु षट्सुताः॥ ५१

શમીકથી સુદામિનીએ સુમિત્ર, અર્જુન અને પાલ વગેરેને તથા કંકે કર્ણિકામાં ઋતધામ અને જયને (ઉત્પન્ન કર્યા).॥ ૪૪॥

॥ ૪૧॥ ૪૨॥ ૪૩॥ ૪૪॥

વસુદેવજીની પત્નીઓ અને પુત્રોનું વર્ણન અગિયાર શ્લોકો વડે કરે છે— **'पौरवी इति।'**

આનકદુંદુભિ (વસુદેવજી)ને પૌરવી, રોહિણી, ભદ્રા, મદિરા, રોચના, ઈલા અને દેવકી જેમાં મુખ્ય હતી તેવી (ઘણી) પત્નીઓ હતી.॥ ૪૫॥

વસુદેવજીએ રોહિણીમાં બલરામજી, ગદ, સારણ, દુર્મદ, વિપુલ, ધ્રુવ તથા કૃત વગેરે પુત્રોને ઉત્પન્ન કર્યા.॥ ૪૬॥

પૌરવીમાં સુભદ્ર, ભદ્રવાહ, દુર્મદ, ભદ્ર તથા ભૂત વગેરે આ બાર (પુત્રો) ઉત્પન્ન કર્યા.॥ ૪૭॥ ૪૭॥

॥ ૪૫॥ ૪૬॥ ૪૭॥

નંદ, ઉપનંદ, કૃતક તથા શૂર વગેરે મદિરાના પુત્રો ઉત્પન્ન કર્યા. કૌશલ્યા (ભદ્રા)એ કુળને આનંદ આપનાર કેશી નામના એક જ પુત્રને જન્મ આપ્યો.॥ ૪૮॥

'कौशल्या' અર્થાત્ ભદ્રા॥ ૪૮॥

આ (વસુદેવ)થી રોચનામાં હસ્ત, હેમાંગદ વગેરે (પુત્રો) થયા તથા ઈલામાં યદુ જેમાં મુખ્ય હતો તેવા ઉરુ, વલ્ક વગેરે (પુત્રો)ને ઉત્પન્ન કર્યા.॥ ૪૯॥

વસુદેવજીથી ધૃતદેવામાં વિપૃષ્ઠ નામનો એક પુત્ર થયો તથા હે રાજા, શાંતિદેવાના શ્રમ, પ્રતિશ્રુત વગેરે ઉત્પન્ન થયા.॥ ૫૦॥

ઉપદેવાના પુત્રો કલ્પ, વર્ષ વગેરે દસ રાજાઓ થયા. વસુ, હંસ, સુવંશ વગેરે છ પુત્રો શ્રીદેવાના ઉત્પન્ન કર્યા.॥ ૫૧॥

देवरक्षितया लब्धा नव चात्र गदादयः।
वसुदेवः सुतानष्टावादधे सहदेवया॥ ५२
पुरुविश्रुतमुख्यांस्तु साक्षाद् धर्मो वसूनिव।
वसुदेवस्तु देवक्यामष्ट पुत्रानजीजनत्॥ ५३

॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

દેવરક્ષિતાથી ગદ વગેરે નવ પુત્રો થયા તથા સાક્ષાત્ ધર્મે જેમ આઠ વસુઓ ઉત્પન્ન કર્યા હતા, તેમ વસુદેવે સહદેવાથી જેમાં પુરુ અને વિશ્રુત મુખ્ય છે તેવા આઠ પુત્રોને ઉત્પન્ન કર્યા હતા. વસુદેવજીએ દેવકીમાં (પણ) આઠ પુત્રોને ઉત્પન્ન કર્યા. ॥ ૫૨ ॥ ૫૩ ॥

॥ ૪૯ ॥ ૫૦ ॥ ૫૧ ॥ ૫૨ ॥ ૫૩ ॥

कीर्तिमन्तं सुषेणं च भद्रसेनमुदारधीः।
ऋजुं सम्मर्दनं भद्रं संकर्षणमहीश्वरम्॥ ५४

॥ ५४ ॥

अष्टमस्तु तयोरासीत् स्वयमेव हरिः किल।
सुभद्रा च महाभागा तव राजन् पितामही॥ ५५

કીર્તિમાન, સુષેણ, ભદ્રસેન, ઋજુ, સંમર્દન, ભદ્ર, શેષનાગ સંકર્ષણ– (એમ સાત) ઉદાર બુદ્ધિવાળા અને આઠમા સ્વયં શ્રીહરિ જ તે બંનેથી જન્મ્યા હતા. હે રાજા, મહાભાગ્યશાળી એવાં તમારા દાદી સુભદ્રાજી પણ તે બંનેથી જ જન્મ્યા હતા. ॥ ૫૪ ॥ ૫૫ ॥ ૫૪ ॥

अष्टमस्तु स्वयमेवासीन्न तु कर्मादिना हेतुना ताभ्यां जनितो वा, यतोऽसौ हरिः॥ ५५ ॥

આઠમા તો સ્વયં શ્રીહરિ જ ઉત્પન્ન થયા હતા. અથવા કર્મ વગેરેને કારણે તે બંનેથી જન્મ્યા ન હતા, કારણ કે તે શ્રીહરિ છે. ॥ ૫૫ ॥

तदेवोपपादयति—**यदेति** त्रिभिः।

(વસ્તુતઃ શ્રીહરિ જન્મ ધારણ કરતા નથી,) તે જ ત્રણ શ્લોકો વડે સિદ્ધ કરે છે— '**यदा इति।**'

यदा यदेह धर्मस्य क्षयो वृद्धिश्च पाप्मनः।
तदा तु भगवानीश आत्मानं सृजते हरिः॥ ५६

॥ ५६ ॥

જ્યારે જ્યારે આ સંસારમાં ધર્મનો ક્ષય થાય છે અને પાપની વૃદ્ધિ થાય છે, ત્યારે સર્વશક્તિમાન ભગવાન શ્રીહરિ પોતાના સ્વરૂપને પ્રકટ કરે છે. (અવતાર લે છે.) ॥ ૫૬ ॥ ૫૬ ॥

वंशीधरी—तदुक्तं श्रीगीतासु—
'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥'
इति।

શ્રીગીતાજીમાં તે કહ્યું છે—

'હે ભારત, જ્યારે જ્યારે ધર્મની હાનિ અને અધર્મની વૃદ્ધિ થાય છે, ત્યારે (ત્યારે) હું મારા સ્વરૂપને પ્રકટ કરું છું.' (ગીતા ૪/૭)

न ह्यस्य जन्मनो हेतुः कर्मणो वा महीपते।
आत्ममायां विनेशस्य परस्य द्रष्टुरात्मनः॥ ५७

હે પૃથ્વીપતિ (પરીક્ષિત), માયાના નિયંતા, સર્વ સંગથી રહિત, સર્વના સાક્ષી અને સર્વવ્યાપી એવા આ શ્રીહરિનો કેવળ માયાના વિનોદ સિવાય જન્મ કે કર્મનો કોઈ હેતુ નથી. ॥ ૫૭ ॥

ईशस्य मायानियन्तुः। परस्यासङ्गस्य। द्रष्टुः साक्षिणः। आत्मनः सर्वगस्य। न ह्येवंभूतस्य मायाविनोदं विना जन्मनः कर्मणो वा हेतुः संभवतीत्यर्थः ॥ ५७ ॥

'**ईशस्य**' માયાના નિયંતાનો, '**परस्य**' સર્વ સંગથી રહિત એવા અસંગનો, '**द्रष्टुः**' સર્વના સાક્ષીનો, '**आत्मनः**' સર્વવ્યાપીનો– ખરેખર, આવા શ્રીહરિનો માયાના વિનોદ સિવાય જન્મનો કે કર્મનો કોઈ હેતુ સંભવે નહીં, એમ અર્થ છે. ॥ ૫૭ ॥

यन्मायाचेष्टितं पुंसः स्थित्युत्पत्त्यप्ययाय हि।
अनुग्रहस्तन्निवृत्तेरात्मलाभाय चेष्यते ॥ ५८

જે પરમાત્માની માયાની ચેષ્ટા (લીલા) છે તે પુરુષના (જીવનાં) જન્મ, સ્થિતિ અને લયના હેતુ માટે છે, કારણ કે તે માયાની લીલા પરમાત્માનો અનુગ્રહ જ છે. તે અનુગ્રહથી તે માયાની નિવૃત્તિ થાય છે અને આત્મસાક્ષાત્કાર માટે એવા અનુગ્રહની ઈચ્છા કરવામાં આવે છે. ॥ ૫૮ ॥

किंच यस्य मायाचेष्टितं पुंसो जीवस्यानुग्रह–स्तस्य जीवानुग्राहकस्य कुतः कर्मादिपारतन्त्र्येण जन्मादिसंभवः।

અને વળી, જે પરમાત્માની માયાની ચેષ્ટા છે તે જીવ ઉપર અનુગ્રહરૂપ છે. કેવી રીતે? કર્મ વગેરેમાં જીવ પરતંત્ર હોવાથી (પરમાત્માની માયાથી જીવને કર્મ કરવું જ પડે છે. કર્મ કરવામાં તે પરતંત્ર છે. તેથી) જીવનાં જન્માદિ સંભવે છે.

अनुग्रहमेवाह—हि यस्मात्तदेव स्थित्यादये इष्यते। प्रलये लीनोपाधेर्जीवस्य धर्माद्यसंभवादुपाधिसृष्ट्यादिना धर्मादिसंपादनेना–नुग्रहः। तथात्मलाभाय मोक्षाय चेष्यते। तत्र हेतुः—तेनेव श्रूयमाणेन तस्य स्थित्यादेर्निवृत्तेः ॥ ५८ ॥

અનુગ્રહ વિષે કહે છે— '**हि**' જે કારણે, તે લીલા જ જીવના પોષણ વગેરે માટે ઈષ્ટ છે. પ્રલયમાં જેની ઉપાધિ લય પામી છે તેવા જીવ માટે ધર્માદિ (કર્મ)નો સંભવ નથી. (ઉપાધિ વિના કર્મ થઈ શકે નહીં.) ભગવાને ઉપાધિનું સર્જન વગેરે કર્યું હોવાથી જીવ કર્મ વગેરેના સંપાદન દ્વારા અનુગ્રહ પામે છે. તે પ્રમાણે આત્મલાભ (મોક્ષ) માટે પણ ભગવલ્લીલા ઈષ્ટ મનાય છે. તે માટેનું કારણ— શ્રુતિમાં કહેલી તે લીલા દ્વારા જ તે જીવનાં પોષણ, જન્મ, સ્થિતિ અને નિવૃત્તિ થાય છે. ॥ ૫૮ ॥

तस्य चेष्टितं भूमेरनुग्रह इत्याह—**अक्षौहिणीनामिति** द्वाभ्याम्।

તે શ્રીહરિની લીલા ભૂમિ ઉપર અનુગ્રહ કરવા માટે છે, એમ બે શ્લોકો વડે કહે છે— '**अक्षौहिणीनाम् इति।**'

अक्षौहिणीनां पतिभिरसुरैर्नृपलाञ्छनैः।
भुव आक्रम्यमाणाया अभाराय कृतोद्यमः ॥ ५९

રાજાઓનો માત્ર વેશ ધારણ કરનારા તેમ જ અક્ષૌહિણી સેનાઓના નાયકો એવા અસુરો દ્વારા (પાપના) ભારથી દબાતી પૃથ્વીનો ભાર દૂર કરવા માટે ભગવાન દ્વારા અવતાર ધારણ કરવારૂપ ઉદ્યમ કરવામાં આવ્યો હતો. ॥ ૫૯ ॥

अभाराय भारपरिहाराय ॥ ५९ ॥

कर्माण्यपरिमेयाणि मनसापि सुरेश्वरैः ।
सहसङ्कर्षणश्चक्रे भगवान् मधुसूदनः ॥ ६०

सुरेश्वरैरपि मनसाप्यपरिमेयाण्यवितर्क्याणि। संकर्षणसहितश्चक्रे ॥ ६० ॥

संकल्पमात्रेण भूभारहरणसमर्थस्यापि कर्मकरणं यशोविस्तारद्वारा भक्तानुग्रहार्थमित्याह— **कलाविति** द्वाभ्याम्।

कलौ जनिष्यमाणानां दुःखशोकतमोनुदम्।
अनुग्रहाय भक्तानां सुपुण्यं व्यतनोद्यशः ॥ ६१

दुःखशोकतमांसि नुदतीति तथा तद्यशो व्यतनोत् ॥ ६१ ॥

यस्मिन् सत्कर्णपीयूषे यशस्तीर्थवरे सकृत्।
श्रोत्राञ्जलिरुपस्पृश्य धुनुते कर्मवासनाम् ॥ ६२

यस्मिन्सतां कर्णपीयूषे यशोरूपे तीर्थवरे श्रोत्रमेवाञ्जलिः पानसाधनं यस्य स पुरुषः। सकृदप्युपस्पृश्याचमनमात्रं कृत्वा तत्सौन्दर्याकृष्ट-चित्तः कर्मवासनां धुनुते ॥ ६२ ॥

तदेवाह द्वाभ्याम्।

भोजवृष्ण्यन्धकमधुशूरसेनदशार्हकैः ।
श्लाघनीयेहितः शश्वत् कुरुसृञ्जयपाण्डुभिः ॥ ६३

स्निग्धस्मितेक्षितोदारैर्वाक्यैर्विक्रमलीलया।
नृलोकं रमयामास मूर्त्या सर्वाङ्गरम्यया ॥ ६४

'**अभाराय**' ભાર દૂર કરવા માટે ॥ ૫૯ ॥

(ઇન્દ્રાદિ) દેવેશ્વરો દ્વારા મનથી પણ અવિતર્ક્ય એવી લીલાઓ સંકર્ષણ સહિત ભગવાન મધુસૂદને કરી હતી. ॥ ૬૦ ॥

દેવેશ્વરો દ્વારા મનથી પણ '**अपरिमेयाणि**' અવિતર્ક્ય એવી લીલાઓ સંકર્ષણ સહિત કરી હતી. ॥ ૬૦ ॥

માત્ર સંકલ્પથી જ પૃથ્વીનો ભાર હરી લેવાને સમર્થ હોવા છતાં પણ યશના વિસ્તાર દ્વારા ભક્તો ઉપર અનુગ્રહ કરવા માટે કર્મ કર્યું, એમ બે શ્લોકોથી કહે છે— '**कलौ इति**।'

કળિયુગમાં જન્મ લેનારા ભક્તો ઉપર અનુગ્રહ કરવા માટે (ભગવાને) દુઃખ, શોક અને અજ્ઞાન દૂર કરનારો અતિપુણ્યકારી યશ ફેલાવ્યો. ॥ ૬૧ ॥

દુઃખ, શોક, અજ્ઞાન દૂર કરે તેવો તે યશ ફેલાવ્યો. ॥ ૬૧ ॥

સજ્જનોના કર્ણો માટે અમૃતતુલ્ય એવા જે યશરૂપ શ્રેષ્ઠ તીર્થમાં કર્ણો જ જેના પીવાના સાધનરૂપ (પડિયા) છે, તે મનુષ્ય એક જ વાર તેનું આચમન કરીને કર્મવાસનાનો નાશ કરે છે. ॥ ૬૨ ॥

સજ્જનોના કર્ણો માટે અમૃતતુલ્ય એવા જે યશરૂપ શ્રેષ્ઠ તીર્થમાં કર્ણો જ જેના પીવાના સાધનરૂપ છે તે પુરુષ એક વાર પણ '**उपस्पृश्य**' માત્ર આચમન કરીને તેના સૌન્દર્યથી ખેંચાયેલા (આકર્ષાયેલા) ચિત્તવાળો થઈને કર્મવાસના નષ્ટ કરે છે. ॥ ૬૨ ॥

(કર્મવાસના કેવી રીતે નષ્ટ કરી હતી,) તે જ બે શ્લોકોથી કહે છે.

ભોજ, વૃષ્ણિ, અંધક, મધુ, શૂરસેન, દશાર્હ, કુરુ, સૃંજય અને પાંડુવંશના રાજાઓ દ્વારા જેમનું ચરિત્ર નિત્ય પ્રશંસનીય છે તે ભગવાન શ્રીકૃષ્ણે પ્રેમાળ સ્મિતભર્યા અવલોકન સહિત રમ્ય વચનોથી, પરાક્રમપૂર્ણ લીલાથી અને સર્વાંગસુંદર વિગ્રહથી મનુષ્યલોકને આનંદિત કર્યો હતો. ॥ ૬૩ ॥ ૬૪ ॥

भोजादिभिः श्लाघनीयमीहितं यस्य॥ ६३॥

ભોજ વગેરે રાજાઓ દ્વારા જેમનું ચરિત્ર પ્રશંસનીય છે.॥ ૬૩॥

सर्वैरङ्गैः रम्यया मूर्त्या च॥ ६४॥

તથા સર્વ અંગોથી સુંદર એવા વિગ્રહ દ્વારા॥ ૬૪॥

तत्प्रदर्शनार्थं मुखशोभामाह।

તે (સર્વાંગસૌન્દર્ય) દર્શાવવા માટે મુખની શોભાનું વર્ણન કરે છે.

यस्याननं मकरकुण्डलचारुकर्ण-
भ्राजत्कपोलसुभगं सविलासहासम्।
नित्योत्सवं न ततृपुर्दृशिभिः पिबन्त्यो
नार्यो नराश्च मुदिताः कुपिता निमेश्च॥ ६५

મકરાકૃતિ કુંડળોથી કમનીય દેખાતા કર્ણોથી દેદીપ્યમાન થતા ગાલથી મનોહર, વિલાસપૂર્ણ હાસ્યમય અને સદૈવ ઉત્સવ (આનંદ)પૂર્ણ એવા જેમના મુખનું નેત્રોથી પાન કરતાં નર-નારી આનંદિત થઈ તૃપ્ત થતાં ન હતાં અને (આંખોના પલકારાઓના કર્તા) નિમિ ઉપર કુપિત થતાં હતાં.॥ ૬૫॥

यस्याननं दृशिभिर्नेत्रैः पिबन्त्यो नार्यो नराश्च न ततृपुर्न तृप्ताः। निमेषोन्मेषमात्रव्यवधानमप्य-सहमानास्तत्कर्तुर्निमेः कुपिताश्च बभूवुः। कथंभूत-माननम्। मकरकुण्डलाभ्यां चारू कर्णौ भ्राजन्तौ कपोलौ च तैः सुभगम्। सविलासो हासो यस्मिन्। नित्यमुत्सवो यस्मिन्॥ ६५॥

જેમના મુખનું નેત્રોથી પાન કરતાં નર-નારી **'न ततृपुः'** તૃપ્ત થતાં ન હતાં. નિમેષ અને ઉન્મેષ (પલકારા) માત્રનો અંતરાય પણ સહન ન કરતાં તેઓ તેના કર્તા નિમિ ઉપર કુપિત થતાં હતાં. કેવા મુખનું (પાન કરતાં)? મકરાકૃતિ કુંડળોથી કમનીય કર્ણોથી દેદીપ્યમાન થતા બંને ગાલ અને તેમનાથી મનોહર એવા મુખનું, જેમાં વિલાસપૂર્ણ હાસ્ય છે તથા જેમાં સદૈવ આનંદ છે.॥ ૬૫॥

श्रीकृष्णस्य चरितं समासतो वर्णयति— **जात इति** द्वाभ्याम्।

શ્રીકૃષ્ણનું ચરિત ટૂંકાણમાં બે શ્લોકોથી વર્ણવે છે— **'जातः इति।'**

जातो गतः पितृगृहाद् व्रजमेधितार्थो
हत्वा रिपून् सुतशतानि कृतोरुदारः।
उत्पाद्य तेषु पुरुषः क्रतुभिः समीजे
आत्मानमात्मनिगमं प्रथयञ्जनेषु॥ ६६

મનુષ્યરૂપે જન્મીને શ્રીકૃષ્ણ પિતૃગૃહ (કારાગૃહ) થી વ્રજમાં (નંદબાબાના ગૃહે) ગયા. (વ્રજવાસીઓને આનંદ આપવાનાં) પ્રયોજનોને સંવર્ધિત કર્યાં. (અનેક) શત્રુઓનો સંહાર કરીને ઘણી સ્ત્રીઓ સાથે લગ્ન કર્યાં તથા તેમનામાં સેંકડો પુત્રો ઉત્પન્ન કરીને મનુષ્યોમાં સ્વકીય (પોતાના) વેદમાર્ગનો પ્રચાર કરતાં (કરવા માટે) પરમાત્મસ્વરૂપે યજ્ઞો દ્વારા પોતાનું જ યજન કર્યું.॥ ૬૬॥

जातो निजेन रूपेण पश्चात्पुरुषो मनुष्याकारः सन् व्रजं गतः। व्रजवासिनामेधिता अर्था येन तेषु दारेषु सुतानां शतान्युत्पाद्य। आत्मनिगमं स्वकीयं वेदमार्गम्॥ ६६॥

'જાતઃ' પોતાના (નિજ) સ્વરૂપે (પુરુષોત્તમરૂપે) અને પછી **'પુરુષઃ'** મનુષ્યરૂપે જન્મીને વ્રજમાં પધાર્યા. વ્રજવાસીઓને આનંદ આપવાનું પ્રયોજન જેમણે સંવર્ધિત કર્યું. તે સ્ત્રીઓમાં સેંકડો પુત્રો ઉત્પન્ન કરીને **'આત્મનિગમમ્'** પોતાના વેદમાર્ગને ફેલાવતા (ફેલાવવા માટે)॥ ૬૬॥

पृथ्व्याः स वै गुरुभरं क्षपयन् कुरूणा-
मन्तःसमुत्थकलिना युधि भूपचम्वः।
दृष्ट्या विधूय विजये जयमुद्विघोष्य
प्रोच्योद्धवाय च परं समगात् स्वधाम॥ ६७

(કુરુવંશીઓમાં) અંદરોઅંદર ઊભા થયેલા ક્લેશને કારણે પૃથ્વીનો અધિક ભાર દૂર કરતાં, યુદ્ધમાં રાજાઓની (અક્ષૌહિણી) સેનાઓને પોતાની દષ્ટિથી દૂર કરીને, અર્જુનના વિજયની ઘોષણા કરીને, ઉદ્ધવજીને પરમ તત્ત્વનો ઉપદેશ કરીને (સ્વસ્વરૂપે શ્રીનારાયણસ્વરૂપે) સ્વધામ સિધાવ્યા. ॥ ૬૭॥

अन्तःसमुत्थेन कलिना निमित्तेन गुरुभारं क्षपयन् दृष्ट्यैव भूपचमूर्विधूय विजये जयमर्जुनेन जितमित्येवमुद्घोषं कृत्वा परं तत्त्वमुद्धवायोपदिश्य स्वधाम सम्यक्स्वेनैव रूपेण जगामेति॥ ६७॥

અંદરોઅંદર ઊભા થયેલા ક્લેશને કારણે ઘણો ભાર દૂર કરતાં, દષ્ટિથી જ રાજાઓની સેનાઓને દૂર કરીને 'અર્જુન જીત્યો છે.' એમ વિજયની ઘોષણા કરીને, ઉદ્ધવજીને પરમ તત્ત્વનો ઉપદેશ કરીને ભગવાન સ્વસ્વરૂપે (શ્રીનારાયણસ્વરૂપે) સ્વધામ વૈકુંઠમાં સિધાવ્યા.॥ ૬૭॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यामष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे श्रीसूर्यसोमवंशानुकीर्तने यदुवंशानुवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

❋❋❋❋❋

॥ समाप्तश्चायं नवमः स्कन्धः॥

॥ हरिः ॐ तत्सत्॥

❋❋❋❋❋